

बौर सेवा मन्दिर
दिल्ली



क्रम संख्या

काल नं०

संग्रह

३५८६

(१२)४२२४२६

३५८७



COLLECTION OF VARIOUS
-> HINDUISM SCRIPTURES
-> HINDU COMICS
-> AYURVEDA
-> MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with
By
Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server!

३५

श्रीसीतारामान्यां नमः

श्रीरामचन्द्रं शरणं प्रपदे

श्रीरामायणाङ्क



सहदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ।

अभयं सर्वभूतेभ्यो ददास्येतद्वितं मम ॥

संगुक्त भगवद्गीता—

ज्वालाप्रसाद कानोडिया

इन्द्रियानप्रसाद ओदवार

हरे राम हरे राम राम हरे हरे, हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।

जयति शिवा-शिव जानकि-राम । जय रघुनन्दन राथेश्याम ॥

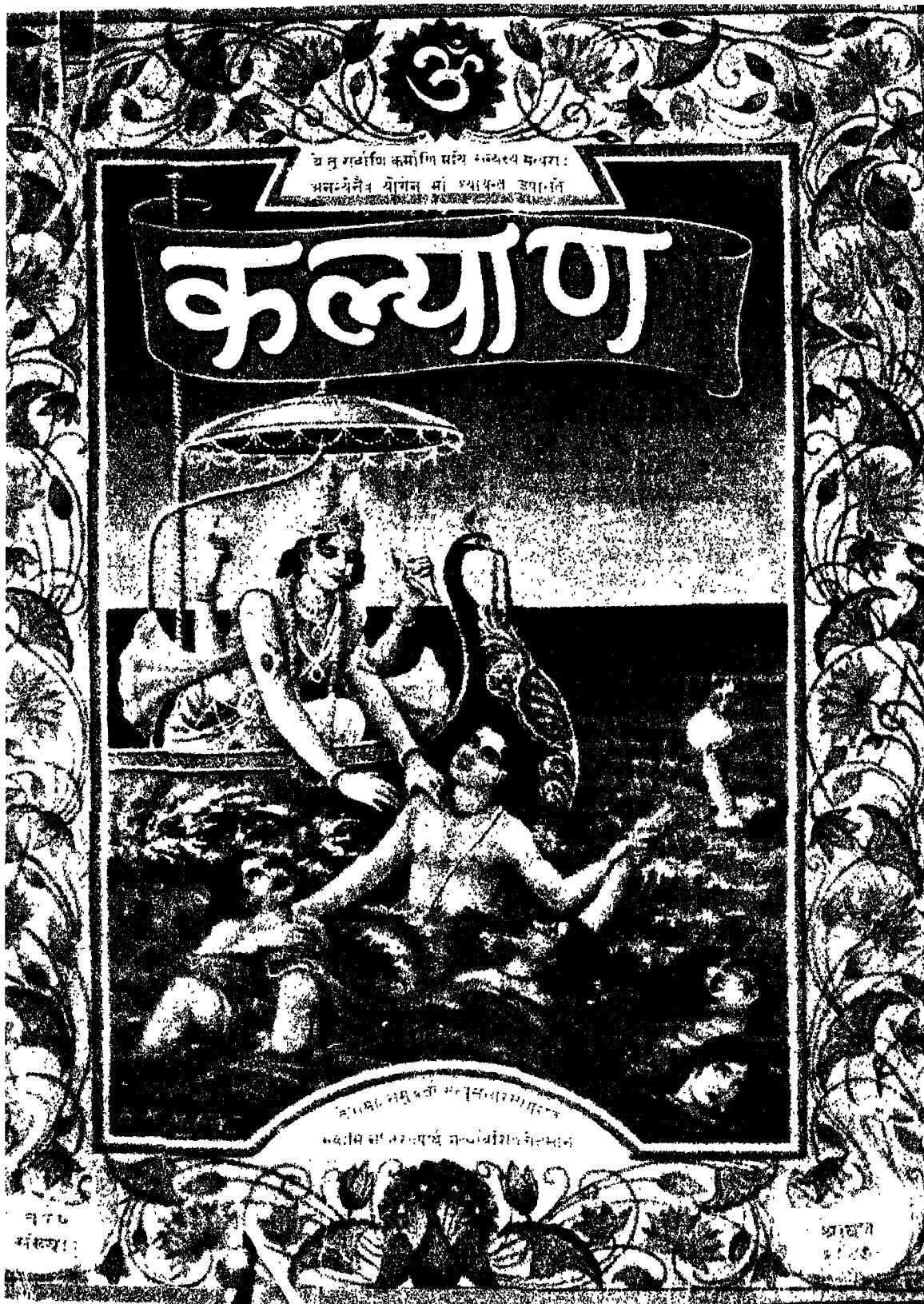
रघुपति राघव राजा राम । पतितपावन सीतागाम ॥

जय जय दुर्गा जय मा तारा । जय गणेश जय शुभ-आगामा ॥

[संकरण - १०२४०]

अँडे मज्जन विडापन भैंसंका कट न झुटवै ।
बायला बाहरका विडापन नहीं आएता ।

धार्यिक मूल्य	जय पाचक इवि चन्द्र जयति जय । सत् चित् अनन्द भूया जय जय ॥ (रामानुज का सूची)	
भागतमें ४=)	जय जय विडवरूप हरि जय । जय अग्निलात्मनु जगमय जय ॥ (विदेशमें ३)	
विदेशमें ५=)	जय विग्रह जग अगत्पते । गाँरीपनि जय रमापन ॥ (विदेशमें ५)	



पाठक-पाठिकाओंमें प्रार्थना

कई कारणोंसे 'रामायणांक' के निकलनेमें कुछ दिनोंकी देर हो गयी है, इसके लिये प्रभाई पाठक-पाठिकागण कृपापूर्वक श्रमा करें।

पहले चारसौ पृष्ठ और १०० चित्रोंका ही विचार था, परन्तु अब यह ७५२ पृष्ठ और १०० से अधिक चित्रोंका निकल रहा है। कीमत पहलेकी सूचनाके अनुसार रु०=) ही है। धर्मार्थ चाँटने, इनाममें देने, उपहार देने, संग्रहमें रखने आदिके लिये यह एक सुन्दर निर्देश और शक्तिपूर्वक अमूल्य वस्तु है।

इस बार केवल ७५२०० प्रतियाँ ही छापी गयी हैं, जब रामायणांकका जल्दी विक जाना समझव है।

चार सप्तर्थ दो आने देकर ग्राहक चतुनेवालोंको यह अंक पांचवें वर्षके पहले अङ्कके नौरपर याँ ही मिल रहा है। ग्राहक बनने और बनानेवालोंको जल्दी करनी चाहिये।

इस अङ्ककी लैयरीमें किनारा सर्व और परिश्रम हुआ है इसका कुछ अनुदाता भाषणोग कर सकते हैं। देश-चित्रेशोंमें अनेक लेख भैंगाये गये हैं, चित्रादिका संग्रह किया गया है। लेखोंके अनुवाद करवाये गये हैं, इस अङ्कमें जिनते जित हैं, उनमें चित्र भी रु०=) में नहीं मिल सकते। इस स्थितिमें हर एक ग्राहक-अनुवाहकसे यह प्राप्तना करना हमारी समझसे अनुचित नहीं होगा कि वे कृपापूर्वक कम-से-कम दो-दो ग्राहक भी रहा दें। पाठक-पाठिकागण यदि कृपापूर्वक थोड़ा-सा प्रयत्न करें, तो ऐसा होना कोई बड़ा बान नहीं है।

'कल्याण' के ग्राहक बढ़ानेके लिये जिन प्रेमी सज्जन और देवियोंने निष्काम और निष्पर्थ भावमें प्रयत्न किया और जो कर रहे हैं, उन गवर्नर्स हम हृदयसं कृनज हैं। 'कल्याण'के ग्राहक बढ़ानेवाले गजनींका न तो नाम छापा जाता है, न उन्हें ऐसे ही मिलते हैं, न उन्हें मान-सम्मानकी आदाया है, ऐसी स्थितिमें आजकलके ज़मानेसे विश्वदू केवल परमान्पार्का नेवार्का भावनासे 'कल्याण' के प्रचारकी चेष्टा करनेवाले सज्जनोंके हम बड़े ही आभागी हैं।

यह याद रखना चाहिये कि कल्याणमें विज्ञापन आदिको कोई आमदनी नहीं है। यह केवल ग्राहक-संस्थापर ही निर्भर करता है अतएव प्रभियोंको ग्राहक बढ़ानेकी विशेष चेष्टा करनी चाहिये।

ग्राहकोंकी सेवामें सूचना

(१) जिन सज्जनोंने अभीतक आगामी वर्षका मूल्य नहीं भेजा है उनकी सेवामें शीघ्र ही च० पी० डागा रामायणांक सेजा जायगा, परन्तु कामकी बहुत अधिकता होनेके कारण च० पी० पी० भेजनेमें समझवतः महीनेतककी देर होसकती है। अतएव जिनको जल्दी हो वे इस सूचनाकी पढ़ने ही ४०) मनिआईरम्ब तुरन्त भेज दें—

(२) जिन सज्जनोंके नाम च० पी० भेजा जायगी, उनमेंसे समझव है कि कोई सज्जन मनिआईरम्ब भी भेज दें, ऐसी हालतमें उनसे प्रार्थना है कि वे च० पी० लौटावें नहीं। भरमक वहींपर दृस्मरा ग्राहक बनाकर च० पी० चुड़ा लें और उनका नाम लिखनेकी कृपा करें। रूपये मिलते ही उनके नाम अक अद्यग भेज दिया जायगा।

व्यवस्थापक 'कल्याण'

आवश्यक सूचना

गतवर्ष 'कल्याण' के विशेषाङ्क 'भगवद्गीताङ्क' में गीता-सम्बन्धी ग्रन्थोंकी एक विस्तृत सूची * छपी थी। उस सूचीके प्रायः सभी ग्रन्थ गीता-पुस्तकालयमें संग्रहीत हो चुके हैं।

'कल्याण' के प्रेमी पाठकोंसे अनुरोध किया जाता है कि उस सूचीमें संग्रहीत ग्रन्थोंके अतिरिक्त किसी भी भाषाके हस्तलिखित या मुद्रित गीता-सम्बन्धी ग्रन्थ उनकी जानकारीमें हों, उनकी सूचना-गीता-पुस्तकालय, ३० बाँसतल्हा गली, कलकत्ताके पतेसे भेजनेकी कृपा करें।

इसीप्रकार सब प्रकारकी रामायण और रामचरितसम्बन्धी ग्रन्थोंका भी एक सुन्दर संग्रह होना आवश्यक है। यदि सब रामायणाचार्यों और रामप्रेमी सज्जनोंकी सहानुभूति हो तो यह कार्य होना सहज ही है। इसके लिये सब भाषाओंके हस्तलिखित और मुद्रित ग्रन्थोंकी पृष्ठे विवरणसहित सूचना और अपनी सम्मतियाँ भी उपर्युक्त पतेपर भेजनेकी कृपा करें।

आशा है सब धर्म-प्रेमी सज्जन आवश्यक सूचनाएँ भेजकर हमें ग्रन्थ-संग्रहमें सहायता देंगे।

भगवद्गीता

ग्रन्थाङ्क-'कल्याण'

श्रीगीता-परीक्षा

गीता-परीक्षा आगामी कानिक बढ़ी १० नां० १७ अक्टूबरमें आयगम होगी। केन्द्रोंमें अभीमें तैयारी होनी चाहिये। भाद्रपदके अन्ततक परीक्षार्थियोंके आवेदनपत्र कार्यालयमें आ जाने चाहिये।

इसबार विशेष उत्साहसे इस कार्यमें भाग लेनेके लिये देशवासियोंमें प्रार्थना की जानी है।

संयोजक,

श्रीगीता-परीक्षा-समिति,

बरहज (गोरखपुर)

* यह विशेष 'गीता-सूची' अलग पुस्तकाकारमें भी छप रही है।

कल्याणके नियम

उद्देश्य

भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, धर्म और सदाचार-समन्वित
लेखोंद्वारा जनताको कल्याणके पथपर पहुँचानेका प्रयत्न
करना इसका उद्देश्य है।

प्रबन्ध सम्बन्धी नियम

(१) यह प्रतिमासकी कृष्णा एकादशीको प्रकाशित
होता है।

(२) हमका डाकघर और विरोधांक सहित अग्रिम
वार्षिक मूल्य भारतवर्षमें ४०=) और भारतवर्षसे बाहरके लिये
२०=) नियत है। एक संख्याका मूल्य १०=) है। विना अग्रिम
मूल्य प्राप्त हुए, यत्र प्राप्त: नहीं भेजा जाता; नमूना १०=)
मिलनेपर भेजा जाता है।

(३) एक वर्षमें कमके आहुक नहीं बनाये जाते। आहुक
प्रथम अंकमें १२ वें अंकनकके ही बनाये जाते हैं। एक सालके
बांधके किंवा अङ्कसे दूसरों सालके उस अङ्क तक नहीं
बनाये जाते। 'कल्याण'का वर्ष आवलम्बे शुरू होता है।

(४) हममें व्यवस्थायियोंके विज्ञापन किसी भी
दरमें स्वीकार कर प्रकाशित नहीं किये जाते।

(५) कार्यालयसे 'कल्याण' दो तीन बार जाँच करके
प्रत्येक प्राहुकके नामसे भेजा जाता है। यदि किसी मासका
'कल्याण' ढीक समयपर न पहुँचे तो अपने डाकघरसे
लिखापढ़ी करनी चाहिये। वहाँसे जो उत्तर मिले, वह
अगला अङ्क निकलनेके कम-से-कम सात दिन पहले तक
कार्यालयमें पहुँच जाना चाहिये। नेत्र होनेसे या डाकघरका
जबाब शिकायती पत्रके साथ न आनेसे दूसरी प्रति विना
मूल्य मिलनेमें बड़ी अड़चन होती।

(६) पता बदलनेकी सूचना (हिन्दी) महीनेकी
कृष्ण प्रतिपदाके पहले पहले कार्यालयमें पहुँच जानी
चाहिये। लिखते समय आहुक-संख्या, पुराना और नया
नाम पता साफ साफ लिखना चाहिये। महीने दो महीनों
के लिये बदलनाहो तो अपने पोस्टमास्टरको ही लिख-
कर प्रकल्प कर लेना चाहिये।

लेख-सम्बन्धी नियम

भगवद्गीता, भक्तचरित, ज्ञान, वैराग्यादि हृष्टरपरक,
कल्याणमार्गमें सहायक, अध्यात्मविषयक व्यक्तिगत आप्तेप
रहित लेखोंके अतिरिक्त अन्य विषयोंके लेख भेजनेका
कोई सज्जन कठन करें। लेखोंको बटाने बढ़ाने और
छापने अथवा न छापनेका अधिकार सम्पादकको है।
असुनित लेख विना माँगे लाईये नहीं जाते। लेखोंमें
प्रकाशित मतके लिये सम्पादक उत्तरदाता नहीं हैं।

आवश्यक सूचनाएँ

(१) आहुकोंको अपना नाम पता भ्यष्ट लिखनेके
साथ साथ प्राहुक नम्बर आवश्यक लिखना चाहिये।

(२) पत्रके उत्तरके लिये जवाबी कार्ड या टिकट
भेजना आवश्यक है।

(३) आहुकोंको चन्दा मनिशार्डर द्वारा भेजना
चाहिये उन्होंकि बी० पी० के रूपमें प्राप्त: देरीसे पहुँचने
हैं। कभी कभी तो ढेढ़ दो मर्हीनांतक नहीं मिलते।
इससे निश्चय नहीं होता कि बी० पी० छूटी या नहीं।
रुपये न मिलने नक आहुकोंमें नाम नहीं लिखा जाता,
मिलनेपर ही आगेके अङ्क भेजे जाते हैं। नवाँ दोनोंमें
एक ही है परन्तु पहला अन्यन्त सुविधाजनक और तूसरा
असुविधा है। जिनका रुपया आता है उन्होंको कल्याण
पहले भेजा जाता है।

(४) ब्रेस-विभाग और कल्याण-विभाग अलग-अलग
समझकर अलग अलग पत्रव्यवहार करना और रुपया
आदि भेजना चाहिये। कल्याणके मूल्यके साथ पुस्तकों या
चित्रोंका मूल्य या और अधिक पैसे नहीं भेजने चाहिये।

(५) सादी चिठ्ठीमें टिकट कभी नहीं भेजनी चाहिये।

(६) मनिशार्डरके कूपनपर, सप्तांशी नावान, रुपये
भेजनेका मतलब, आहुक नम्बर, पूरा पता आदि सब काने
साफ-साफ लिखनी चाहिये।

(७) प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र, आहुक होनेका सूचना,
मनिशार्डर आदि 'च्यवस्थापक' 'कल्याण' 'गांगरमपुर'
के नामसे और सम्पादकसे सम्बन्ध रखनेवाले पत्रादि
'सम्पादक' 'कल्याण' 'गांगरमपुर' के नामसे भेजने
चाहिये।

कल्याणकी तीसरे वर्षकी फाइल

४०० से ऊपर लेख और कविताएँ, सुन्दर ७२ चित्र और ११२८ पृष्ठ, इसमें प्रसिद्ध भक्तांक भी शामिल हैं, सुन्दर डाक महसूल सहित केवल अजिलद ४=) यह काइल कितनी उपादेय है लेखकोंके नाम देखनेसे ही इस बातका पता लग सकता है—

तीसरे वर्षके कुछ लेखक

महारामा श्रीगांधीजी, काका कालेलकर, आचार्य आनन्दशंकर बापूभाई भ्रुव, हिन्दू युनिवर्सिटी काशी, श्रीजयदयालजी गोयन्दका, श्रीभूपेन्द्रनाथजी संन्याज, दीनबन्दु श्री सी० एक० एन्डर्जन महोदय, श्रीकवित्ती राजगोपालाचारी, हरिभक्त श्रीयाद्वरजी महाराज बबई, जगदगुरु श्रीअनन्दाचार्यजी महाराज प्रतिवादी भषडर मठ बबई ; सेठ श्री-कन्हैयालजी पोद्दर, बाबा राघवदासजी, श्रीसदानन्दजी सम्पादक 'मेसेज' स्वामीजी श्रीभोलेशाचारी, औधरो श्री-खुन्दनप्रसादसिंहजी, स्वामी श्रीचिदाम्बरनन्दजी, स्वामीजी श्रीविज्ञानहंसजी, श्री वी वी० अलूर वी० ए०, एल० एल० वी०, विद्यामार्तण्ड प० श्रीसीतारामजी शास्त्री, श्रीशनिलवरहराय पाण्डीचेरी, बिलू श्रीगौरीशंकरजी, श्रीआरविन्द धोष, रा० ब० अवधनसोलाला श्रीरामजी वी० ए०, गोस्वामी सार्वभौम श्रीश्वत्युत्सुनिजी महाराज, व्याध्यानवाचस्पति श्रीदोनददालुजी शर्मा, बालोभूदण प० श्रीनन्दकिशोरजी शुक्ल, श्रीहिरभाऊजी उपाध्याय सम्पादक 'श्वागमूलि', श्रीउवालाप्रसादजी कानोदिया, श्रीरामचन्द्रकृष्ण कामत, श्रीरामदामजी गौड एम० ए०, श्रीनलिनीकाल्त गृह पाण्डीचेरी, प० झारकाप्रसादजी चतुर्वेदी आदि ।

इसके लिवा अनेक कवियोंकी सुन्दर रचनाएँ भी हैं । स्थान कम होनेके कारण विद्वांक अस्त्रालय अलग नाम नहीं लिखे गये ।—बड़ा सुन्दर संग्रह है, विक जानेपर पिछे छपना कठिन है । सबके कामकी चीज है । केवल भक्तांक ६॥२=) भाव ।

कल्याणकी चौथे वर्षकी फाइल

पैने चार सौ लेख, डेट सौ कविताएँ और ११२१ सुन्दर चित्रोंसे सुन्दरिल, पृष्ठ १३८६ । इसमें सुधगिरि, गोपालक भी शामिल हैं । सून्य डाकव्यवस्थहित ४=) (अजिलद)

'कल्याण' और उम्मेक्षमय-भूमयपर निकलनेवाले विदेशीकोंसे पुस्तक-प्रेमी आनेक मज़न पहिलित ही होंगे । इसपर देश-विदेशमें जितनी स्वरमतियाँ लिखी गयी हैं उनमेंसे जो इमारे पास मंगूँत हैं उन सबको छापनेसे पृष्ठ चहुन बड़ा पोथा बन ग्रहना है । अपने कामके लिये हमारा अधिक कहना नीतिके विषयद्वारा । हाँ, इनमा कह मकते हैं कि यह इनना लोकप्रिय हुआ कि काश्मीरसे मझास और कोटामे शिवमार तककी तो यान ही या विदेशीके भी कई ग्राहक हो गये । ग्राहक-संख्या, ८००० से १२००० हो गयी । विहार और उडीसा, सी० पी०, घरावकं भरकारी शिक्षा विभागने अपने स्कूल और कालेजके उपयोगके लिये स्वीकृति ही है । हिन्दी संसारमें इनना बड़ा हननी अधिक संख्यामें दूसरा कोई भी विदेशीक नहीं निकला ।

इसमें केवल हिन्दी भाषाके विद्वानोंके ही नहीं बरन बंगला, उडिया, गुजराती, मराठी, काश्मीरी, पंजाबी, उर्दू, संस्कृत, मंड्रामी, अंग्रेजी, अमेरिकन, जर्मनी आदिके आनेक विद्वानोंके लेख हैं । मुकानियोंकी सुन्दर रचनाएँ हैं । भाव पूर्ण मनोहर चित्र हैं । और ज्या क्या है यो देखनेसे ही जाना जा सकता है । केवल गीतांक ३॥३=)

पुरानी फाइलें और विदेशीक

१ प्रथमवर्षके १० अंक अजिलद	... २॥१=)	५ दूसरीवर्षकी फाइल भक्तांक सहित सूच्य	४=)
(तीसरा व १२ वां अङ्क चुक गया, दूसी फाइल नहीं है)		६ चून्यवर्षकी फाइल गीतांक सहित सूच्य	४=)
२ प्रथमवर्षके छठे अङ्कसे बाहरवें अङ्क तक सजिलद २)		७ भगवत्तामाङ्क पृष्ठ ११० रुप विलङ्ग ४१चित्र सूच्य ३॥१=)	
३ हिन्दीवर्षकी फाइल भगवत्तामाङ्क सजिलद ३॥१=)		८ भक्तांक, पृष्ठ २४६ चित्र ४८ सू० १॥२=) स० २=)	
४ हिन्दीवर्षके भगवत्तामाङ्क सजिल ११ अंक अजिलद (१२ वां अंक नहीं है)	... २॥१=)	९ 'गीतांक' पृष्ठ २०० से अधिक तिरङ्गे एकरङ्गे १०० चित्र २॥२=)	
		१० हालहीका प्रकाशित रामायणक (धारके हाथमें है) २॥१=)	

श्रीहरि:

विषय-सूची

	पृष्ठ संख्या		पृष्ठ संख्या
१ श्रीरामायण-माहात्म्य ।	३०	२० श्रीगामप्रेमी दशरथ महाराज ।	४४
२-तेरी हँसी । ('तेरा ही')	३०	(दशरथकुमार-पद-रज) ।	४५
३-श्रीगमायण-तत्त्व-रहस्य । (गोवयेनपीठाधीशवर जगदगुरु श्रीशंकराचार्य स्वामीजी श्री ११०८ श्रीभारतीकृष्णतीर्थजी महाराज)	४	२१ विदेह-भक्त राजा जनक । (श्रीकृष्णानागयण्डी चौधरी)	४६
४-गमोपदिष्ट-भक्ति । (स्वामीजी श्रीभोलेश्वाराज्ञा)	५०	२२-श्रीवशिष्ठजीकी महदत्ता । (परिषद्वत्वर श्रीनव्वारामजी शर्मा, गुजरात)	४७
५-श्रीरामायण-रहस्य । (श्राकाङ्क-प्रतिवादिभयद्वर मठाध्येश जगदगुरु श्रीभगवद्गामानुज-सम्प्रदायाचार्य श्री ११०८ श्रीग्रनन्ताचार्य स्वामीजी महाराज)	५०	२३ श्रीहनुमानन्दजीके चरित्रमें शिक्षा । (पं० श्रीजयरामदासजी 'दीन' रामायणी)	४८
६-रामायणका निक्ष पाठ करो । (महाभास्त्रं० श्रीमद्वन्नमानन्दजी मालवीय)	५८	२४-विभीषण । (श्रीरघुनाथप्रसादसिंहजी)	४९
७-रामायणका यन्त्रेश । (सातु श्री ११०८ एवं० वस्त्रानीजी)	५८	२५-रावणके जीवनसे शिक्षा । (पं० उपेन्द्रनाथजी पाठक)	५०
८-श्रीरामायणका प्रसाद । (मं श्रीसूक्तकलाजी)	५९	२६ गीथराज जटायुकी अलौकिक भक्ति । (चौहार श्रीराजेन्द्रमिहडी)	५०
९-कामांकांश रामायणका विशेषता । (पिट्ठूरं० श्रीवाल्मीकीजी मिश्र)	५९	२७ भगवान् श्रीराम । (श्रीज्वालाप्रसाद कानोदिवा)	५०
१०-श्रीमद्वन्नमायण । (श्री ११०८ स्वामी पं० गमध्येनाश्रयाजी महाराज, श्रीजनकाशाद, श्रीशंकराचार्य)	६४	२८ श्रीरामका प्रणत्रदशा-प्रणा । (श्रणन-ज्ञन-शरण)	५०
११-मर्यादा-पृथिव्याचम श्रीराम । (रावद्वादुर श्राविन्ननाथगिरि विनायक वैश एम-४०, एल-एन० वी०)	६५	२९-श्रीरामावतारके विविधभाव श्रीर रहस्य । (विहूरं० श्रीभवानीशद्वरजी)	५०
१२-मर्यादा पृथिव्याचमकी मर्यादा । (रावद्वादुर राजा श्रीरुद्गुर्जसिंहजी, जावली)	६५	३० रामायणका गहन्य । (स्वामीजी श्रीशिवानन्दजी)	५०
१३-श्रामीनानके चरित्रमें आदर्श शिक्षा । (श्रीजयद्वालजी गोयन्दका)	६६	३१ श्रीरामचन्द्रजीका लालभंग वज्र और उपका महत्व । (डा० आर० शाम शास्त्रीजी पुस्तक, पा०-एच० ई०, मसो०)	५०
१४-रामायणमें भरत । (साहि-याचार्यं० श्रीशाल्यामजी शास्त्री)	६७	३२-रामायणमें आदर्श गृहस्थ । (महामहोपाध्याय पं० श्रीप्रमथनाथजी तक्षसुप्रण, काशी)	५०
१५-लक्ष्मण और भरतकी भक्ति । (श्री० वज्रबलभ०)	६७	३३-हिन्दू धर्माजपर रामपूजाका प्रभाव । (स्वामीजी श्रीदयानन्दजी, काशी)	५०
१६-महारानी कौशल्या । (कौशिलाकृमारशरण)	६८	३४ कौन वडा है? (स्वामी कृष्णानन्दजी चक्रवर्ती)	५०
१७-रानी सुमित्रा । (पं० श्रीजीवनशङ्करजी याज्ञिक पूर्ण० प०)	६८	३५-श्रीरामायणमें सामाहार । (विद्यावाचस्पति पं० श्रीवाल्मीकीजी शास्त्री)	५०
१८-सदगुणपती कैकेयी । (कैकेयीनन्दन-पदवन्दन)	६९	३६-श्रीसंतानजीका बनवाम । ('महामहोपाध्याय डा० श्रीगंगानाथजी भाग्य० प०, ति० लिद० वाहस चैन्सलर, प्रयाग-विश्वविद्यालय)	५०
१९-श्रीशत्रुघ्नी । (रिपुद्धन-दासानुदास)	६९	३७ दास और परमपद । (पं० श्रीरमशङ्करजी मिश्र 'श्रीपति')	५०

	पृष्ठ संख्या		पृष्ठ संख्या
३८-विषयादका प्रेस। (आचार्य श्रीश्रीनन्दलालजी गोस्वामी, बुन्दाचन) ...	१४४	४४-सतीके भरणान्त्र ब्रावश्चित्का गुप्त कारण। (श्रीश्रीमन्नद छुट्टा कामत) ...	२०२
३९-दशरथके समयकी अयोध्या। ...	१४५	४५-श्रीरामचरितमानसका दर्शनिक सिद्धान्त। (श्रीज्ञानाप्रसादजी मिहल एम० ए०) ...	२०७
४०-श्रीरामायणका महत्व। (पं० श्रीश्यामसुन्दरजी याज्ञिक) ...	१४६	४६-रामायणमें आदर्श पातिव्रत-धर्म। (श्रीयुत संयद कामिनश्रीली, विशारद, साहित्यालङ्कार) २११	
४१-अभियोग। (श्रीसिंहारामशरणजी गुप्त) ...	१४७	४७-तुलसीगायणमें भक्त-श्रेणी। (पं० श्रीजीवनश्रुत्ताजी याज्ञिक एम० ए०) ...	२१३
४२-रामायणमें हिन्दुसंस्कृति। (माहित्यरक दं० अयोध्यासिंहजी उपाध्याय 'हरिचंद्र') ...	१४८	४८-श्रीशुकदेवजी और रामायण। (श्री पी० एन० शश्वरनारायण अरणार बी० ए०, बी० ए० साहित्यरक) ...	२१५
४३-रामचरितमानसके मत्व है। (पं० श्रीरामनरेशजी त्रिपाठी) ...	१४९	४९-त्रीरामजीका शूर्पयज्ञके साथ द्यवहार। (पं० श्रीज्ञानाद्रजी भारद्वाज शास्त्री, आचार्य, बी० ए०) ...	२१६
४४-रामायणमें कोष-गान्धनिका वपाय। (पं० श्रीरामद्रव्यालजी मन्जुमदार एम० ए०, सम्पादक 'उत्तर') ...	१५०	५०-रामायणमें भल्याघृह। (श्रीमन्न यादवश्रुत्ताजी नामदार, विद्यार्थी, योगी) ...	२१८
४५-रामचरितमानसके लोकग्रन्थ होनेवा कारण। (रायबहादुर अवधारनामी लाला श्रीमीतारामजी बी० ए० साहित्यरक) ...	१५१	५१-श्रीमद्रामायणका महत्व। (पं० श्रीज्ञानाद्रजी विजयकांत अयोध्या) ...	२१९
४६-श्रीरामकी पुनः लक्ष्मायामा और सेतुभंग। ('रामकिंकर') ...	१५२	५२-रामायणमें राजनीतिक उत्थानके महापत्र। (रायबहादुर भरद्वार माधवराम विनायक किंरे एम० ए०, पं० श्री आर. ए० ए०, डि० प्राद्यम मितिस्ट्र ईलेक्ट्र मेट्र) ...	२२०
४७-श्रीस्वामीजीकी निष्काम भक्ति। (पं० श्रीज्ञानाध्यप्रसादजी मिथ बी० ए०, बी० ए०) १५३		५३-साजनमें जीव और सत्त्व : (पं० श्रीनाथमात्रजी विजय) ...	२२१
४८-गुप्ताहंजी और सानातनवाद। (ब्रौहर श्रीरामन्दसिंहजी) ...	१५४	५४-रामायणमें जीव और सत्त्व। (पं० श्रीविष्णुशेखरजी अद्वान्यन एम० ए०, विश्वभारती, शान्तिनिकेनन) ...	२२२
४९-रामायणीकथा। (पं० श्रीविष्णुशेखरजी अद्वान्यन एम० ए०, विश्वभारती, शान्तिनिकेनन) ...	१५५	५५-सुपलमात्र गमनभक्ति। (ब्रौहर श्रीविष्णुशेखरजी अद्वान्यन) ...	२२३
५०-नुल्लोक्त रामायण और उम्मे संवारका उपकार। (श्रीदंवीष्माद्रजी गुप्त, 'कुम्यमाक') बी० ए०, एल-एल० बी०) ...	१५६	५६-रामायणारक। महापत्र। (श्रीविष्णुशेखरजी अद्वान्यन) ...	२२४
५१-बन्दी व्याहृह रामके नामे। (श्रीभुवनेधरनाथजी मिथ 'माधव' बी० ए०) ...	१५७	५७-रामचरितमानसके निर्देश श्रीरामका विनायक। (संक्ष. श्रीकृष्णलालजी बी० ए०) ...	२२५
५२-श्रीज्ञानाकीय सुन्दरकारणम्। (श्रीहरियस्त्रपत्रजी बी० ए० ए०) ...	१५८	५८-रामचरितमानसकी कलिपय विशेषताएँ। (पं० श्रीज्ञानाध्यप्रसादजी चतुर्दशी 'आनन्द' और श्रीमुखलोधरजी दीनिन 'आनन्द') ...	२२६
५३-श्रीरामानाहरण-रहस्य। (श्रीज्ञानकम्पनाशरण शंकरानन्दजी नामन, बी० ए०, एल-एल० बी०, सम्पादक 'मानसरोवरपृष्ठ') ...	१५९	५९-श्रीरामायणापद्मण। (श्रीकृष्णलालजी बी० ए०) ...	२२७
५४-रामायणकालमें परदायन। (शाहित्यभूषण चतुर्दशी पं० श्रीझारकप्रसादजी शमां एम० आर० ए०) ...	१६०	६०-श्रीरामायणपद्मण। (श्रीकृष्णलालजी बी० ए०) ...	२२८
५५-रामायणकालमें परदायन। (शाहित्यभूषण चतुर्दशी पं० श्रीझारकप्रसादजी शमां एम० आर० ए०) ...	१६१	६१-सबमें बड़ा रामनाम। (श्रीयुनके० बी० अक्षा) ...	२२९
५६-रामायणकालमें परदायन। (शाहित्यभूषण चतुर्दशी पं० श्रीझारकप्रसादजी शमां एम० आर० ए०) ...	१६२	६२-राजनीतिज्ञ वाल्मीकि। (श्रीयुन 'महाराष्ट्रीय') ...	२३०
५७-ज्ञानदीपका स्पष्टीकरण। (साहित्यरक्षुन पं० श्रीज्ञानानन्दजी त्रिपाठी) ...	१६३	६३-ज्ञानदीपका स्पष्टीकरण। (साहित्यरक्षुन पं० श्रीज्ञानानन्दजी त्रिपाठी) ...	२३१

पृष्ठ नंबर	पृष्ठ नंबर
७४-विवाहके अमय सीतार्जीकी अवस्था । (पं० श्रीराजेन्द्रनाथ विद्याभूषण)	२८२
७५-श्रीरामचरितमानम्-पात्रपरिचय । (श्रीज्वलाप्रसाद कानोड़िया)	२८७
७६-सूर्यवंश । (श्री वी० ए० वंदेर, एम० प० ए०-ए० वी०, ए०-ए० आ० ए० ए०)	२८८
७७-भगवान् श्रीरामकी रावणपर दया । (मेहता पं० श्रीलक्ष्मारामर्जी शर्मा)	२९६
७८-गोक्कामीजी और महिला-समाज । (पं० श्रीजगद्धारथप्रमादर्जी चतुर्वेदी)	२९०
७९-भगवान् श्रीरामचन्द्रर्जीके वनवासकी दिनचर्या । (श्रीयुत वी० ए० वंदेर, एम० प०, ए०-ए० वी०, ए०-ए० आ० ए० ए०)	२९२
८०-अन्दरामायणके अनुमान रामायणका तिथिविद्या । (श्रीयुत वी० ए० वंदेर, एम० प०, ए०-ए० वी०, ए०-ए० आ० ए० ए०)	२९४
८१-दमगामल और रावणवधकी तिथिविद्या । (पं० श्रीरामाद्वयगति मिश्र)	२९६
८२-राम-नाम । (पं० श्रीलक्ष्मेवप्रमादर्जी मिश्र प०-ए०, ए०-ए० वी०, ए०-ए० ए०-ए०)	२९७
८३-रामलक्ष्मामैं सुधार । (श्रीयुत राजवद्दार्जी लक्ष्मीदा, प०-ए०, ए०-ए० वी०)	२९९
८४-रावणाकी ज़ड़ा कहाँ थी ? (श्री वी० ए० वंदेर, एम० प०, ए०-ए० वी०, ए०-ए० आ० ए० ए०)	२१०
८५-श्रीरामनामकी महिमा । (श्रीचार्य श्रीमद्दनमोहनर्जी गोविंदा वी० श्रीनन्दीर्थ, भागवतरत्न)	२१२
८६-र और म का रमणीयता । (पं० श्रीमुखरामर्जी चोबे 'भुजाकर')	२१४
८७-रामायण और उम्मकी शास्त्राणि । (प्र०० श्रीलक्ष्मिन्देवन कार ए० प० वी० ए० वी०, वाल्यनार्थ)	२२६
८८-राम-नाम-मादाल्प्य । (स्वामीजी श्रीत्योतिर्स्यानन्दर्जी पुरी, बंगवई)	२२८
८९-वालिवधका औचित्य । (श्रीजनकन्तुताशरण शीतलासहायजी सावन वी० प०, ए०-ए० वी०, सम्पादक 'मानमपीयूप')	२३२
९०-तुलसीकृत रामायणकी समीक्षा । (रैवरेश्वर श्रीपूर्वविन ग्रीष्म, मेलचन्द, दैरालैंगड)	२४०
९१-रामायण संसारका सर्वोच्च महाकाव्य है । (ड०० श्री ए० ड०० ड०० वी० मोर्णिंदा, ए०-ए० वी०-ए०० ड००, प्रेसिडेंशन 'एंगलो हिंडिंगल लींग')	२४१
९२-रामायणके कुछ राजनीतिक तिथान्त और शामलमंस्थाएँ । (श्रीयुक्त वी० आ० रामचन्द्र दीक्षितार ए०-ए० प०)	२४३
९३-यूरोपक सामान्य वाटकोंके लिये रामायणका स्वास्थ्य । (श्रीयुन ए० वी० ड०० टन्डुक, ए०-ए० वेत्रिज, इंगलैंगट)	२४०
९४-महाकाव्योंमें राहस । (श्रीयुत ए०-ए० नाडपत्रीकर ए०-ए० वी०, ग्राम्यविद्यालयकार भाष्यकारकर रियर्च इन्स्टिट्यूट, यूना)	२४३
९५-आदर्श पुरुष श्रीराम । (श्री चाहैं वी० ए० तारापुरुषाला वी० ए०, ए०-ए० वी० ड००, वास-ए०-वा०, विश्वपल H. E. Athorn (Athorn (1) stius.)	२४४
९६-रामायणके राजस । (पं० श्रीनोविनदराम्भीर्जी दुर्गवेश)	२४६
९७-रामायणके वामर जाति । (श्रीरामायण-प्रेमी)	२४८
९८-रामायण और महाभारत । (ड०० श्रीमुखदेवर्जी जात्रा, ए०-ए० वी०, वी०-मिल०)	२४९
९९-रामायणकी प्राचीनता । (एक रामायण-प्रेमी)	२५०
१००-वाल्मीकीय रामायणमें आवतारवादर्जी मिद्दि । (माहिन्याचार्य श्रीरवुपर मिश्टुलालर्जी शार्मी कान्त्य-वेदान्त-नीर्य ए०-ए०, ए०-ए० ओ० ए०-ए०)	२५१
१०१-उदासी साधु भगवान् श्रीराम । (श्रीर्जी श्रीहिन्दूरादासर्जी डामीन, महान्त, श्रीसाधुवेला, ए०-ए०)	२५२
१०२-फारमीमें रामायण । (श्रीमहेशप्रभानन्दर्जी मौलवी, आजिम-फाजिल)	२५५
१०३-मगारीमें रामायण । (पं० वाचमल रामचन्द्र पाद्मारकर वी० ए०, सम्पादक 'मुसुकु')	२५६
१०४-यंगलामें रामायण	२५७
१०५-उक्कल-रामायण । (पं० श्रीजोत्तमप्रभानन्दर्जी पारंपर्य)	२५८

	पृष्ठ संख्या		पृष्ठ संख्या
१०६- गुजरातीमें रामायण । (श्रीयुत प्रह्लाद चन्द्रशेखर दीवान)	... ३६८	१२४- रामायणमें आदर्श पितृभक्ति । (राजाबहादुर राजा श्रीबद्धमीतारायण हरिचन्दन जगद्विद्यावाचस्पति, पुरातत्त्व-विशारद, टेकाली राज्य)	... ४५८
१०७- हाड़ोतीभाषामें रामायण । (श्रीनन्दकिशोरजी सक्सेना)	... ३६९	१२५- रामकथामें पुक अर्जुन पाटान्तर । (श्री जी०पुन० शोधनकर ए० ए०, ए०-ए० बी०)	... ४६९
१०८- द्विङ-रामायण ।	... ३६९	१२६- श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीकी स्वकथित जीवनी । (साहित्यरत्ननं प० श्रीविजयनन्दजी त्रिपाठी)	४७३
१०९- रामायण और राजनीति । (काव्यतीर्थ प्र० लौहसिंहजी गौतम ए०प०, ए०ल० टी०, ए०म० आर० ए० ए०)	... ४०१	१२७- श्रीहन्मानजीका महच्च । (श्रीरामचन्द्र शंकर दक्षी महाराज बी० प०)	४५६
११०- बालिवधका राजनीतिक कारण । (प० श्रीराजेन्द्रनाथजी विद्याभूषण)	... ४०६	१२८- रामायणकालीन भौगोलिक दिव्यदर्शन । (श्री बी०प०च०वडेर, ए०प०प०, ए०-ए०बी०, ए० आर० ए० ए०स०)	... ४८३
१११- रामायण और आद्रतपंग । (प० श्रीआशारामजी शास्त्री, साहित्यभूषण, व्याकरणाचार्य, वेदान्तपठिक)	... ४०६	१२९- रामायणकालीन स्थानपरिचय । (,,) ... ४८२	
११२- रामायणमें सन्दर्भ और प्रेम । (श्रीमद्वानन्दजी सर्वादक 'मेमेज')	... ४११	१३०- रामावतार-रहस्य । (श्रीमानलीला विद्याशंकर बोडा बी० प०, ए०-ए०ल० बी०)	... ४५७
११३- रामायणी प्रकाश । (श्रीदत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर, गुजरातविद्यापीठ अहमदाबाद)	... ४१३	१३१- श्रीरामनाभकी महात्मा । (विविध-विद्या-विशारद, प० श्रीनन्दघनरामजी नामगांवकर)	... ४५४
११४- रामायणी शक्ति । (श्रीनलिनीकान्तगुप्त, अरविन्द-श्रीश्रम-पाचिड्हेजी)	४१५	१३२- श्रीमानसकी चौपाइयोंका विनोदी व्यर्थ । (व्याध-वाचस्पति कविसम्मान प० बालग्रामजी शुल्क) ४०२	
११५- श्रीलक्ष्मण और देवी उर्मिलाका महच्च । (उर्मिला-पद-रचन-हस्य)	... ४१५	१३३- तुलसी-रामायण । (श्रीविनोदवार्जी भावे) ... ५०३	
११६- पशु-पश्चियोंका रामप्रेम । (श्रीरामेश्वर बाजेश्वरी) २१=		१३४- रामायण हमें क्या मिलती है ।	२०६
११७- रामायणके कुछ रचन । (श्रीयुत रामायणशशस्त्रजी 'रामायणी')	... ४२८	१३५- चित्रपरिचय ।	२०७
११८- केवटका आहुत प्रेम । (प० श्रीरामनारायणजी शुल्क 'माहित्यरत्न')	... ४२८	१३६- समायाचना । (मण्डपक)	२०९
११९- मानस और व्याकरण । (प० श्रीजगद्धात्रप्रसादजी चतुर्वेदी)	... ४२९	१३७- हे राम !	(दाहटलके नीसरे पृष्ठपर)
१२०- रामायण-सञ्चाली यन्त्रिकान्ति । (प० श्रीभीष्मवर्ममल्लजी शर्मा)	... ४३०	कविता	
१२१- रामायण-सञ्चाली यन्त्रिकान्ति । (प० श्रीभीष्मवर्ममल्लजी शर्मा)	... ४३०	१३८- श्रीराम-भक्ति । (श्रीमत्याचरणजी 'मर्य' बी० प० विशारद)	१६
१२२- रामायणमें आदर्श आनुप्रेम । (श्रीजगद्धात्रजी गोपन्दका)	... ४३४	१३९- तुलसी-मध्यन । (प० श्रीरामसेवकजी त्रिपाठी, सर्वादक 'माधुरी')	१६
१२३- रामचरितमानसका महाकाव्यरचन । (श्रीविक्कु ब्रह्मचारीजी, कनकभवन, अयोध्या)	४३४	१४०- राम-विरहक आंसू । (श्रीअमृतलालजी माधुर)	३२
		१४१- शंकर और राम । (श्रीअर्जुनदासजी केडिया)	३२
		१४२- हृष्टदेव रामसे विनय । (श्रीरामवचनजी हृष्टेवी 'शरविन्द')	४४
		१४३- रामचरितमानस । (श्रीमवानन्दसिंहजी 'सर्वेश')	४६
		१४४- सहृदय रामनाम है । (श्रीगोविन्दरामजी आगवाल)	१४४

पृष्ठ संख्या		पृष्ठ संख्या
१४५-आह्वान । (पं० बलदेवप्रसाद मिश्र, एम०ए०, एल०एल० बी०, एम० आर० ए० एम०) *** १०१		१६८- रामजन्मकी प्रतीक्षा । (श्रीमातादीनजी हुक्क, साहित्यशास्त्री, काल्यभूषण) *** ४३७
१४६- राम-चरित्र शिक्षासार । (श्रीनन्दकिशोरजी का 'किशोर' काव्यतीर्थ) १७६		१६९- रसने (भक्ति-गान) । (कवीन्द्र 'रसिकेन्द्रजी') ४२४
१४७- वैदेही-विलाप । (पं० रमाशंकरजी मिश्र 'श्रीपति') २०१		१७०- तुलमी-काव्य । (श्रीदामोदरसहायसिंहजी 'कविकिर' एल० टी०) *** ५३३
१४८- आराध्य राम । (श्रीबालकृष्णजी बलदुबा) *** २१२		१७१- दोनों खोकोंका पन्थ । (श्रीबाजुनदासजी केडिया) ४५२
१४९- राम नाम । (श्रीमोतीकालजी ओमरे) *** २१३		१७२- बरसाये देत । (पं० जगज्ञायप्रसादजी हृषेदी) ४५३
१५०- श्रीरामचरितमानस-महिमा । (श्रीलोचनप्रसादजी पायदंड) *** २४४		१७३- तुम्हे अर्पण करे । (श्रीतराचन्द्रजी पण्डया बी० ए० 'चन्द्र') *** ४७२
१५१- तुलमीदाससे । (श्रीमोहनलालजी महतो 'वियोगी') *** २४५		१७४- प्रार्थना (अकिञ्चन) *** २०४
१५२- रामायण । (श्रीरामपलटसिंह 'मधुर' एम० ए०, एम० आर० ए० एम०) *** २६२		संग्रहीत
१५३- रघुवर भजो । (श्रीनारायणाचार्यजी शास्त्री वेदान्तभूषण) २७१		१७५- रामायण । (महान्मा गाँधीजी) *** २८
१५४- राज्य । (श्रीमंथिरशशास्त्रजी गुप्त) *** २८२		१७६- रामचन्द्र मंगल करे । (स्व० पं० माधवप्रसादजी मिश्र, सुदर्शन-सम्पादक) *** ३२
१५५- आदिकवि वालमीकि । (पं० श्रीरामचरितजी उषण्याय) *** २८५		१७७- रामायणकी विशेषता । (कविसन्नाट् श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर) *** १६८
१५६- कैसे आँऊँ छार । (श्री 'तरझी') *** ३०१		१७८- रामायणसे स्वार्थपरनाका नाश । (स्व० श्रीबड्डिमचन्द्र चट्टोपाध्याय) *** १८६
१५७- तुलमी । (श्रीश्रवनविहारीजी माधुर 'श्रवन') ३०५		१७९- रामायणमें ग्रनिहातिक नव्य । (डा० पुच० डल्लू० बैलौ०, बी० ए० आई०) १४३
१५८- भक्तभावना । (श्री 'रसिकेन्द्र' जी) ३१३		१८०- रामायण सबोच्च महाकाव्य है । (गोरोसिंह) २१०
१५९- तुलसीत्रनदना । (श्री योगेन्द्र रामी) *** ३२१		१८१- रामायणसे उच्च भावोंका प्राप्तुभाव । (ग्राफिथ - रामायणके अनुवाद) *** २३५
१६०- रामायणके इच्छिता । (क० श्रीप्रतापनारायणजी पुरोहित कविरत्न) ३२२		१८२- रामायणमें रथ । (ब्रवर) *** २४३
१६१- तुलसीसमृति । (पं० श्रीशान्तिप्रियजी हृषेदी) ३२२		१८३- रामायणमें परम्पर सहानुभूतिकी वृद्धि । (श्रीबस) २७०
१६२- रामकथा सुरजोक-नमैनी । (पं० लक्ष्मीचन्द्रजी श्रोत्रिय) *** ३४२		१८४- रामायणसंकारनमाला पदा । *** २४४
१६३- पतिनोद्धारक तुलसी । (पं० श्रीग्रेमतारायणजी त्रिपाठी 'प्रंग') *** ३३९		१८५- संचिस रामचरितमाला पदा । (श्रीमच्छंश्वर योगीन्द्रजी) *** २१
१६४- राम । (पं० गंगाविलुणी यारादेय, विद्याभूषण 'विलुण') *** ३४२		१८६- रामायणकी श्रीर अधिक आकर्षण । (नेलसन - विश्वकोप रचयिता) *** २६४
१६५- रामचरितमालस-कवि तुलसी । (श्रीविन्दु ब्रह्मचारीजी) *** ३४६		१८७- रामायण नैसर्गिक काव्य है । (श्रीमन् इच्छियन पवित्रसके रचयिता) *** २६५
१६६- मानसकी महता । (विद्यार्थी श्रीमहेशप्रसादजी मिश्र 'रसिकेश') ३६५		१८८- रामायणमें संग्रह हैशर । (डा० सर जार्ज ग्रियर्सन) *** ३१०
१६७- राम । (पं० भगवतीशप्रसादजी त्रिपाठी विश्वरद एम० ए०, एल०-एल०-बी०) *** ३६४		१८९- आमर काव्य । (स्वर्गीय जटिसू टी० बी० शेषगिरि शर्मा) ३६८

पृष्ठ संख्या		पृष्ठ संख्या	
	गो० तुलसीदामजीके उपदेश-रत्न		
१६३- जीवनका फक ।	... १	२००- जीवना हो तो शमको ही जीचो ।	... २२६
१६४- रामके हृदयमें कौन बसते हैं ?	... ७८	२०१- रामायण-पञ्चदशी ।	... २७१
१६५- ज्ञानी परिदेव आदि कौन है ?	... १३८	(सं० श्रीरघुनन्दनमसाविसिहजी)	... २७१
१६६- रामके चार निवासस्थान ।	... १४०	२०२- सन्तके लक्षण ।	... २७३
१६७- दुःखको अगमें कौन नहीं जलता ?	... १४१	२०३- सुबेल पहाड़पर श्रीरामजीकी झाँकी ।	... ३४६
१६८- सन्त कौन है ?	... १६२	२०४- श्रीरामचरितमानसकी नवधा भक्ति ।	... ३५७
१६९- रघुवीरके सच्चे सेवक कौन है ?	... २२२	२०५ श्रीरामका आदर्श विजयरथ ।	... ४००
		२०६- आहल्याका श्रीराम-पद-वन्दन ।	... ४७५

चित्र-मूर्ची

वहुरंगे

१ उद्धारकर्ता भगवान् ।	अन्दरका मुखपृष्ठ	२४- विश्वामित्रकी रामभिज्ञा ।	... २२४
२- श्रीरामपञ्चायतन ।	(सुनहरी)	२५- श्रीरामजन्म ।	(प्राचीन चित्र) ... २३६
३- परशुराम-राम ।		२६- रामायण-गान-शिळा ।	... २६६
४- पुष्पवाटिकामें श्रीराम-सीताकी गुप्त मन्त्रणा ।	(सुनहरी)	२७- गोसाई तुलसीदामजी ।	... ३३०
५- श्रीरामके चरणोंमें भरत	...	२८- रामायणद्रुम ।	... ३८८
६- कैक्यीकी लमा-याचना ।	...	२९- अजय दथ ।	... ४०८
७- आराम-प्रतिज्ञा ।	...	३०- श्रीराम और केवट ।	... ४२६
८- श्रीसीता-राम ।	...	३१- राम-विजाप ।	... ४४०
९- शिव-परिष्णन ।	...	३२- आहल्योद्धार ।	... ४७८
१०- राम-शबरी ।	...	३३- लंका जलानेके बाद हनुमानजी सीताजीकी चरण-वन्दना कर रहे हैं ।	... ५२०
११- श्रीसीता-आनसूया ।	...	३४- हनुमानजीका दोलगिरि लाना ।	... ५८०
१२- श्रीराम-पादुका पूजन ।	(सुनहरी)	३५- गरव-गाव-हरण ।	... ५८०
१३- मदाप्रसन्न श्रीराम ।	...	३६- हार सौडना और हृदय चीरना ।	... ५८०
१४- भगवान् श्रीराम और काकभुशुयिड ।	...	३७- श्रीरामका ज्ञानोपदेश ।	... ५८१
१५- सुबेल पहाड़पर श्रीरामकी झाँकी ।	...	३८- पार्यके इथपर हनुमानजी ।	... ५८१
१६- श्रीसीताजीके गहने ।	...	३९- हनुमानपर इन्द्रका बज्रधात ।	... ५८१
१७- कौसल्या-भरत ।	...	४०- सीताका पाताल-प्रवेश ।	... ५००
१८- सीताकी अस्ति-परीक्षा ।	...		
१९- मानस-सरोवर ।	...		

सादे

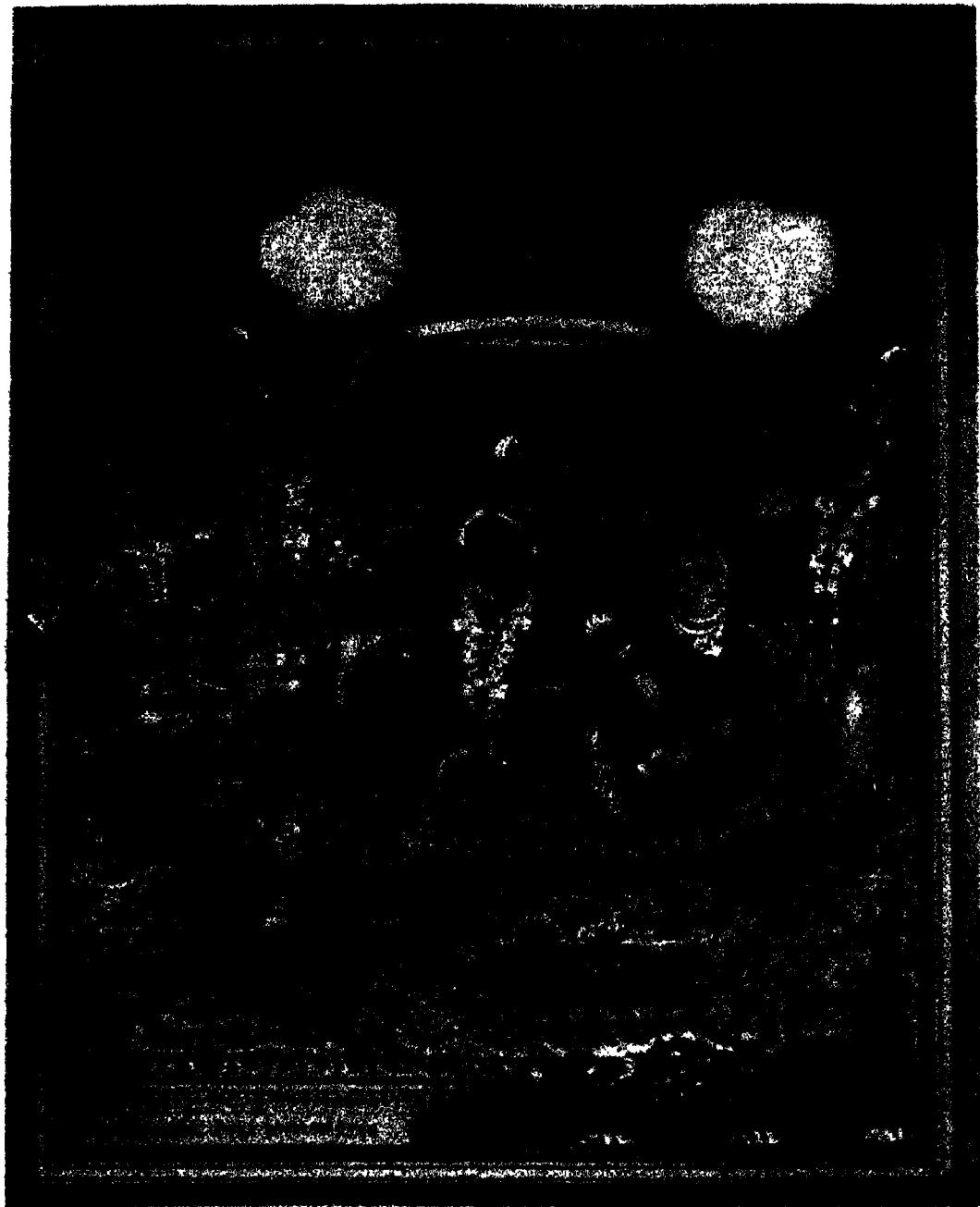
२०- श्रीरामगीता ।	...	४१- पार्वतीकी तपस्या	१२
२१- सोहे राम-सियाकी लोरी ।	...	४२- शिव-विवाह	१२
२२- सीता-वनवाम ।	...	४३- कपट-मूनि और राजा प्रतापभन्न	१३
२३- भक्तवर रामाजी ब्रेसमें नाच रहे हैं ।	...	४४- महाराजा जनकका प्रथम रामदर्शन	१३
		४५- जयमाला	२८
		४६- जनकपुरमें दशरथजी	२८
		४७- जनकपुरसे विदा	२८

	पृष्ठसंख्या		पृष्ठसंख्या
४८ - शिव-बनुप-भग	२६	८३ - लक्ष्मणजीके मन्दिरकी भाँकी (भीतरसे)	२३०
४९ - महाराजा दशरथजीका दरबार	७४	८४ - श्रीमण-किला (सामनेका हथ)	२३१
५० - गुरु वशिष्ठजीका आगमन	७४	८५ - , , (पिछला हथ)	२३२
५१ - श्रीराम और केषट	७५	८६ - दूर ज-कुरड	२३३
५२ - दशरथ-मरण	७५	८७ - , , जनानाधार	२३४
५३ - भरद्वाज आधममें श्रीराम	७४	८८ - चंडिअकुरड	२३५
५४ - लक्ष्मणका कोष	७४	८९ - दृश्युअन कुरड	२३६
५५ - चित्रकूटमें भरत	७५	९० - तुलसीचौरा	२३७
५६ - चित्रकूटमें महाराजा जनक	७५	९१ - गोस्वामी तुलसीदासजीकी कृती	२३८
५७ - विराज-वध	१०२	९२ - मणि-पर्वत	२३९
५८ - जयन्तकी दुष्टा	१०२	९३ - मन-गजेन्द्र	२४०
५९ - कपट-मुग्ध	१०३	९४ - भाँकी सद्गुरु-सदन	२४१
६० - सीता-हरण	१०३	९५ - स्वर्णद्वारधार	२४२
६१ - ऋष्यमूकपर श्रीराम-लक्ष्मण	१०३	९६ - मन्दिर राजद्वार	२४३
६२ - किञ्चिकन्धामें लक्ष्मण	१०३	९७ - ददुवा राजमहल पांसे मन्दिर श्रीदर्शनेश्वरनाथ	२४४
६३ - अशोकनाटिकामें रावण	१०३	९८ - मन्दिर दशरथ-जन-भवन	२४५
६४ - सेतुबन्ध रामेश्वर	१०३	९९ - धर्महरि	२४६
६५ - लंकापर खदाई	१००	१०० - चेताके ढाकुर	२४७
६६ - रावणको मन्दोदरीकी सीख	१००	१०१ - गंजशहीदाँ	२४८
६७ - लक्ष्मण-मूळी	१०१		
६८ - कुरुभक्षण-युद्ध	१०१		
६९ - भरत-हनुमान-मिलाप	१०२		
७० - श्रीराम पुनः अयोध्यामें	१०२		
अयोध्यापुरीके			
७१ - अयोध्या-नगर-हथ	(१)	१८६	
७२ - , , (२)		१८६	
७३ - मन्दिर कलक-भवन (बाहरी हथ)		१८६	
७४ - , , (भीती हथ)		१८६	
७५ - मन्दिर श्रीनगेशवरनाथ		१८७	
७६ - मन्दिर शीशमहल		१८७	
७७ - हनुमानगढ़ी (१)		१८७	
७८ - , , (२)		१८७	
७९ - जन्मस्थान, कसौटीका खम्भा		२३६	
८० - मन्दिर जन्मभूमि		२३६	
८१ - जन्मस्थान		२३६	
८२ - लक्ष्मणजीका मन्दिर लक्ष्मणधार (बाहरी)	२३७		
जनकपुरधारके			
१०२ - श्रीजानकीजीका नौलखा मन्दिर।		१०२	
१०३ - श्रीजानकीजीके मन्दिरमें जानकीजीका मिहासन।		१०३	
१०४ - श्रीजानकी-मन्दिरके भीतर जगमोहनजीके मन्दिरका पूर्वी हथ।		१०३	
१०५ - धनुयज्ञेश्वरे श्रीरामजीके मन्दिरका सामनेका पूर्वी हथ।		१०६	
१०६ - श्रीरामजीके मन्दिरका पश्चिमी हथ।		१०६	
१०७ - श्रीरामजीके मन्दिरमें प्राचीन मूर्तियाँ।		१०६	
१०८ - श्रीलक्ष्मणजीका मन्दिर।		१०६	
श्रुगवेरपुरके			
१०९ - शान्तादेवीका मन्दिर।		३१६	
११० - शंगिश्वपिका समाधि।		३४१	
१११ - श्रीरामके सोनेका स्थान रामचंद्रा।		३४१	
११२ - श्रीगौरीरंगका पाठशाला।		३४१	

चित्रकूटके	पृष्ठसंख्या	नाशिक पञ्चवटीके	पृष्ठसंख्या
११३-मत्त-गजेन्द्र-मन्दिर (राघवप्रयाग)।	... ३४८	१३६-नासिक-गोदावरी-दरथ (१)।	... ४०६
११४-मल्दाकिनीघाट।	... ३५८	१३७- " " (२)।	... ४०६
११५-राघवप्रयाग (संगम)।	... ३५९	१३८-ताङड़का नाला।	... ४०६
११६-पर्वतकुटी। (१)	... ३५८	१३९-पञ्चवटीमें श्रीराममन्दिर।	... ४०६
११७- " (२)	... ३५९	१४०-गोदावरीपर नारोशंकरका मन्दिर।	... ४०७
११८- परिक्रमामें तुलसीदासजीका मन्दिर।	... ३५९	१४१-श्रीप्रभुकेश्वर मन्दिरका बाहरी दरथ।	... ४०७
११९-जातकाकुण्ड।	... ३५९	१४२-गोदावरीका पुल।	... ४०७
१२० तुलसीदासजीका मन्दिर रामघाटके पास।	... ३५९	१४३-रामकुण्ड और गंगामन्दिर।	... ४०७
१२१-फटिकशिला।	... ३६०	मेतुबन्ध रामेश्वरके	
१२२-जानकीकुण्ड (मन्दूकिनीका दरथ)।	... ३६१	१४४-रामेश्वर मन्दिरका स्तंभ।	... ४०८
१२३-फटिकशिलाके सामनेका दरथ।	... ३६२	१४५-रामेश्वर मन्दिरका प्रधान प्रवेशद्वार।	... ४०८
१२४-कामतानाथ (पहाड़)।	... ३६३	१४६-रामेश्वर मन्दिरका एक पारव प्रवेशद्वार।	... ४०८
१२५-चरण-चिह्न (परिक्रमामें)।	... ३६४	१४७-रामेश्वर मन्दिरकी प्रदक्षिणा।	... ४०८
१२६-रामशरण्यके ऊपर बना हुआ मन्दिर।	... ३६५	१४८-राम-भूमोत्था।	... ४०९
१२७-राम-शरण्य।	... ३६५	१४९-लक्ष्मण-तीर्थ।	... ४०९
१२८-भरत-कृष्ण।	... ३६६	तुलसीदासजीके जीवन यम्यन्धी काशीके	
१२९-भरत-मन्दिर।	... ३६६	१५०-प्रहादिघाट काशी।	... ४०९
१३०-सीताकी इसोई।	... ३६६	१५१-पूर्ण गंगाराम जीशीका घर (बाहरी दरथ) ...	४०९
१३१-हनुमानधारा। (१)	... ३६६	१५२-विनयपत्रिका लिखनेका स्थान 'बाहरी भाग' ...	४०९
१३२- " . (२)	... ३६७	१५३-तुलसीधारा	... ४०९
१३३-शनसूयूजी।	... ३६७	१५४-ओहनुमानजीका मन्दिर।	... ४०९
१३४-कामतानाथगिरि। (२)	... ३६७	१५५-गोमाहंजीका चित्र।	... ४०९
प्रयागके		१५६-संकटमोचनका भीतरी दरथ।	... ४०९
१३५-भरहाज-आधम।	... ३७०	१५७-संकटमोचनका बाहरी दरथ।	... ४०९
इनके अतिरिक्त दो हेंडिंग-चित्र, दूः मार्त्त्वचित्र, और दो लिपिचित्र हैं।			



कल्याण



श्रीराम पञ्चायतन ।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवाबशिष्यते ॥



मायानीतं माधवमाद्यं जगदादि, मानातीतं पोहविनाशं मुनिवन्दय् ।
योगिध्येयं योगविधानं परिपूर्णं, वन्दे रामं रज्जितलोकं रमणीयय् ॥

वर्ष ५
खण्ड १

श्रावण १०८७ जुलाई १९३०

संख्या १
पूर्णमंड्या ४०

जीवनका फल

सिय-राम-सरूप अगाध अनूप विलांचन-मीननको जल है ।

श्रुति रामकथा, मुख रामको नाम, हिये पुनि रामहिको थल है ॥

माति रामहिं सों, गति रामहिं सों, रनि रामसों, रामहिंको बल है ।

सबकी न कहै, तुलसीके भते इतनो जग-जीवनको फल है ॥

—गोसार्वजी महाराज

श्रीरामायण-माहात्म्य

सनत्कुमारके प्रति देवर्षि नारदके बचन—

रामायणमहाकाव्यं सर्ववेदार्थसम्मतम् । रामचन्द्रगुणंपेतं सर्वकल्याणासिद्धिदम् ॥

आदिकविद्वत् रामायण महाकाव्यं सर्ववेदार्थसम्मत और सब पांडोंका नाश करनेवाला तथा दुष्ट ग्रहोंको निवारण करनेवाला है। यह दुःखोंको नाश करनेवाला, भुक्ति-मुक्ति प्रदान करनेवाला, श्रीरामके गुणोंसे युक्त सब प्रकारके कल्याण और सिद्धियोंको प्रदान करनेवाला रामायण धन्य है।

आदिकाव्य रामायण स्वर्ग और मोक्ष प्रदान करनेवाला है।

जिसके पूर्व-जन्मके पाप निवारणपूर्वक नष्ट हो जाते हैं उस मनुष्यको अवश्य ही रामायणमें अटल महाप्रीति उत्पन्न होती है।

मानव-शरीरमें पाप तभीतक रह सकते हैं, जबतक मनुष्य श्रीमद्रामायणकी कथा सम्यक् प्रकारसे नहीं सुनता।

रामायण सब दुःखोंका नाश करनेवाला, सब पुण्योंका फल प्रदान करनेवाला और सब यशोंके फल देनेवाला है।

जो द्विज रामनाम-रत्त होकर रामायणमें लबलीन रहते हैं इस घोर कलियुगमें वे ही कृतकृत्य हैं।

जो मनुष्य नित्य रामायणमें लबलीन रहते हैं, गंगा-स्नान करते हैं और धर्मगार्गका उपदेश करते हैं वे मुक्त ही हैं, इसमें कुछ भी संशय नहीं।

जो जितेन्द्रिय और शान्त-चित्त हो रामायणका नित्य पाठ करता है वह उस परम आनन्दधारमको प्राप्त होता है जहाँ जानेपर उसे कभी शोक नहीं सताता।

क्षमाके समान कोई सार पदार्थ नहीं, कीर्तिके समान कोई धन नहीं, ज्ञानके समान कोई लाभ नहीं और श्रीरामायणसे बढ़कर कुछ भी नहीं है।

जगत्का हित करनेवाले जो सज्जन रामायणमें लगे रहते हैं वे ही सर्वशास्त्रार्थमें पण्डित हैं और धन्य हैं।

जिस धरमें नित्य रामायणकी कथा होती है, वह धरतीर्थरूप है और दुष्टोंके पापका नाश करनेवाला है।

रामनामैव नार्मव नार्मव मम जीवनम् ।

संसारविषयान्धानां नराणां फापकर्मणाम् ॥

कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥

रामनाम ही मेरा जीवन है, नाम ही मेरा जीवन है। इस कलियुगमें संसारके विषयोंमें अन्धे दुष्ट पापकर्मा मनुष्योंके लिये दूसरी गति नहीं है, नहीं है, नहीं है। (स्कन्दपुराण)

भगवान् शिवजी कहते हैं—

मुनि-दुर्लभ हरिभगति नर, पावहि विनुहि प्रयास ।

जो यह कथा निरन्तर, सुनहि मानि विस्वास ॥

राम-चरन-रति जो चहै, अथवा पद-निर्बान ।

भावसहित सो यह कथा, करहि सर्वन-पुर पान ॥

तेरी हँसी

मेरे प्रायाराम राम ! तू बड़ा ही लीकामय है, तू वे खेल खेलता है । मम माना जाए भी न चाहता है और अबग बैठा ढुक-ढुक देखता हुआ हँसा भी करता है । यह सुनि तेरे हास्यका ही तो विकास है, परन्तु तेरा हँसना नित बधे-बधे रंग जाता है, सेरी पृक्ष हँसीमें सृष्टिका उदय होता है, दूसरीमें उसकी विस्ति होती है और तीसरीमें वह तेरे अन्दर पुनः बिलीन हो जाती है । पर तू तीनों ही अवस्थामें हँसता है, इतनी उच्चेश्च-कुन हो जाती है, परन्तु तेरी हँसीमें कहीं विस्मता नहीं जाती । खोग तेरी हँसीके नामा अर्थ करते हैं, उनका वैसा करना अनुचित भी नहीं है, म्योंकि लोगोंको मिल मिल रूप भासते भी हैं । वही तो तेरी हँसीकी विजयजाता है, इसीमें तो तेरी मौज़का अजब नजारा है । किसीका अन्म होता है, तू हँसता है; वह खाता-खेलता और रंग-रामामें मस्त रहता है, तू हँसता है; किर हाथ फैलाकर वह सदाके लिये सो जाता है — कन्दनकी कल्प-ध्वनिसे दिशाएँ रो उठती हैं, तू यहीं भी हँसता ही है । तेरी हास्यलीला अनादि और अनन्त है !

बोगतेरे हस हास्यकी थाह लेना चाहते हैं, अपने परिमित और विकास-विभ्रम-प्रस्तु तुदिक्षकसे तेरी हँसीका रहस्य जानना चाहते हैं, यह तुदिक्षक सूखमें सूखमतर होते-होते सर्वथा विसूस हो जाना नहीं तो क्या है ? जलका जूरा-सा नगरण कण सब घोरते परिपूर्ण पारावारहीन जलनिधिका अन्ध जानना चाहता है, यह असरभव भावना नहीं तो क्या है ? जबकि वह अलग खदा देखेगा तबतक तो पता जागेगा कैसे ? और कहीं पता खगानेकी लगानमें अन्दर खला गया तब तो उसकी अलग सत्ता ही नह हो जायगी किर पता खगायेगा ही कौन ? जो हँडने गया था, वही खो गया ! अतः हे महामहिम युनि-मन मोहन माथिक-मुकुट-मणि राम ! मेरी समझसे तो तेरे हस हास्यके नर्म जावनेकी सामर्थ्य खगदके किसी भी प्रायोंमें नहीं है । हाँ, कोई तेरा खास ग्रेमी तेरी हुएसे रहस्य समझ पाता है, परन्तु उसका

समझना न समझना हमारे लिये एक-सा है, म्योंकि वह किर तुक्कसे अखग रहता ही नहीं—

सो जाने जेहि देहु जनई । जानत तुमहि तुमहि देह जाई ॥

जो तेरी मधुर मुसुकानपर मोहित होकर तेरी ओर दौड़ता है, और तेरे समीय पहुँच जाता है, उसे तो तू अपनी गोदसे कभी नीचे डलारता नहीं, और जो विषय-विमोहित है उनको तेरे हास्यका दता नहीं !

आश्रय है कि हसपर भी हम तेरी लीकाभ्रोंके रहस्यो-द्वाटनका दम भरते हैं और जो बात हमारी रथव तुदिमें नहीं जैचती, उसे तेरे लिये भी असम्भव ही मान बैठते हैं ! हमारी हस तुदिपर — हमारे हस खाक-चारस्यपर तुम्हे देश तो जाती ही होगी दशमय !

महर्षि वाशनोकि, महर्षि वेदव्यास और गोसाई तुदसीदासबी प्रभृति धन्य हैं, जिनकी वाणीसे तूने दधाकर अपनी कुछ लीकाएँ जगतको सुनायें । तेरी इन लीकाभ्रोंके विद्यालोकसे असंक्षम प्राणियोंका तमोमय मार्ग प्रकाशित हो उठा, जिसके सहारे वे अनाथास ही अपने गन्तव्य स्थान-पर पहुँचकर सदाके लिये सुखी हो गये ! परन्तु तेरी ये लीकाएँ हैं जबी ही विचित्र, अहुत और मोहिती, बदे-बदे तार्किक विद्वानोंकी तुदि इनकी मोहकतामें पदकर चकरा जाती है । अवश्य ही जो खोग अद्वा-भक्तिरूपक तुदिका अवधारिमान छोड़कर तेरी शरण हो जाते हैं, उनके विवेक-चमुद्रोंके सामनेसे तेरी दुखर मायाका आवरण हट जाता है !

ग्रमो ! आज 'कल्पयाण'के पाँचवें वर्षके प्रारम्भपर तूने जो अपनी उन लीकाभ्रोंका कुछ गुणगान करवाया है, सेरी सबपर सदा रहनेवाली अपार कृपाके एक कथका अनुभव ही हसमें कारण है । नाय ! ऐसा कर दे, जिससे प्रथेक अवस्था, प्रथेक समय, प्रथेक वस्तु और प्रथेक चेष्टामें सेरी नित्य अनन्त कृपाकी पूर्ण अखदद माझुरी भूतिके दर्शन होते रहें और फिर वह पूर्ण कृपाचिपह कभी अँखोंसे ओकड़ न हो । सुना है, तेरी हँसीका रहस्य सभी जाना जा सकता है !

'तेरा ही'

श्रीरामायण-तत्त्व-रहस्य

(गौवर्धनपीठीधीश्वर पूज्यपाद जगद्गुरु श्रीराकरा वार्य स्वामीजी श्री १३०८ श्रीभारतीकृष्णतांचंडी महाराज)

शंकाकुटिरायितवीक्षणाभ्यां शंकाकरकत्वप्रदपूजनाभ्याम् ।
लंकाविपारातिरित्रिप्रदाभ्यां नमोनमः श्रीगुरुपादुकाभ्याम् ॥
पवनजरविसुतपश्चमवज्मुखविनुतांप्रिम् ।
त्रिमुवनजनततिपालं दिनमणिकुलमणिमीडे ॥



स्थित संसारके देवता समस्त मनुष्योंके ही नहीं, सभी जीवोंके मनमें स्वाभाविक यही एक हृद्धा सबंदा हुआ करती है कि हमें किसी भी समय, किसी भी स्थानमें, किसी भी अवस्थामें, किसी भी कारबसे, किसी प्रकारका भी तनिक-सा भी दुःख नहीं होता है । सब समय, सभी स्थानोंमें और सभी अवस्थाओंमें केवल सब प्रकारसे सुख ही होता है । इसी स्वाभाविक हृद्धासे प्रेरित होकर समस्त जीव अपनी अपनी शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, आर्थिक, दैशिक, सामरिक आदि योग्यता तथा अनुकूलताके अनुसार अनेक प्रकारके प्रयत्नोंमें प्रवृत्त रहते हैं ।

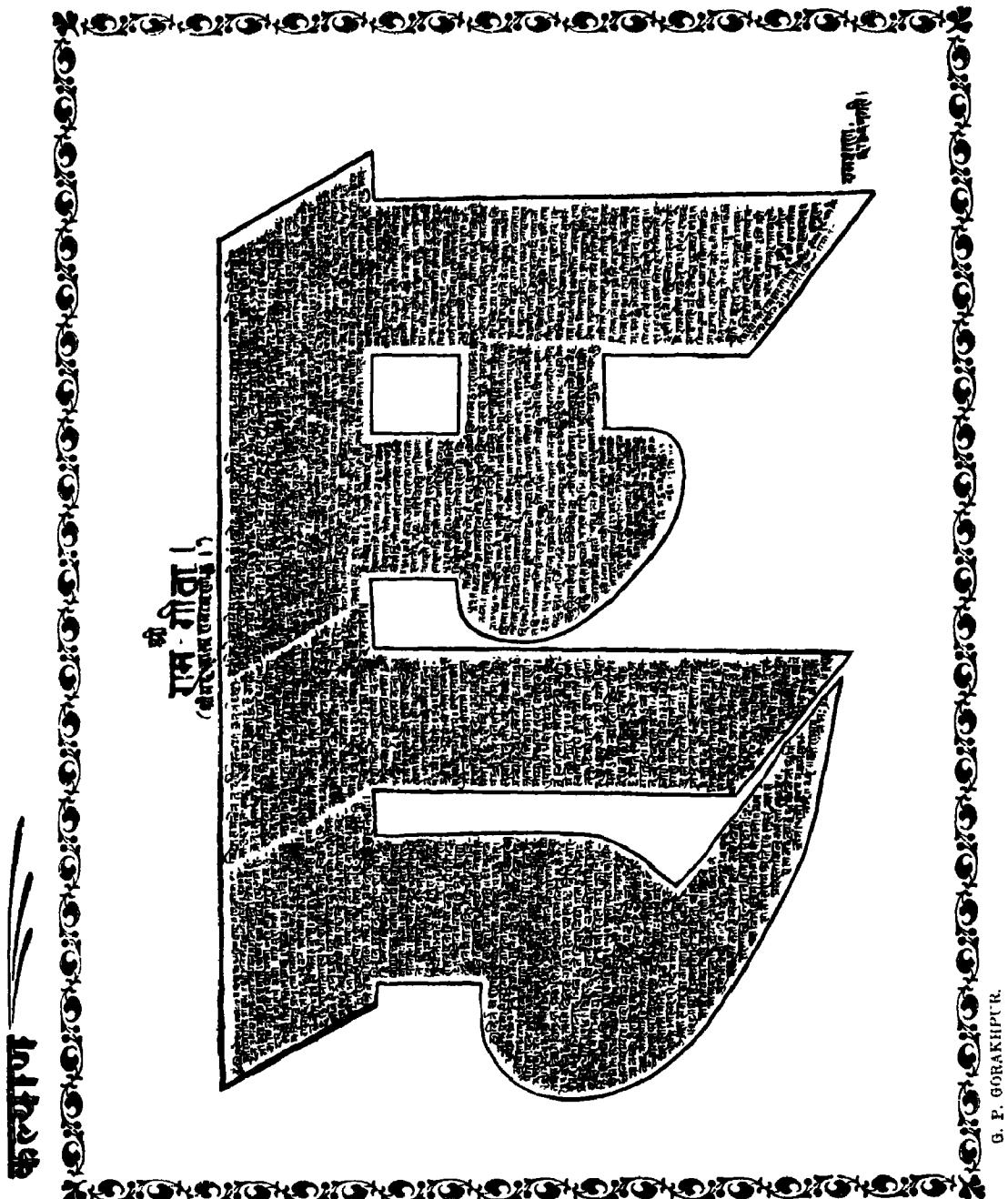
सुखकी हृद्धाके साथ ही दुःख दूर करनेकी हृद्धा अर्थात् केवल शुद्ध सुखकी चाह होना स्वाभाविक ही है । कारण, मनुष्यादि सभी जीवोंके मनका- तो यही स्वभाव है कि योद्देसे भी दुःखके प्राप्त होनेपर वह अपने अनुभवमें आये हुए और आते हृदनेवाले अनेकानेक और बड़े-बड़े सुखोंका ज्ञेयमात्र भी अनुभव न कर, उसी एक छोटे दुःखका अनुभव करता है और दुखी होकर एकमात्र उसी दुःख-निवृत्तिकी विनामें पढ़ जाता है ।

मनका यह अनुभव और वृत्ति युक्तियुक्त भी है । कारण, दुःख इतनी जुरी वस्तु है कि जैसे एक लोटेमें भरकर रखें हुए दूध या जलमें एक तो बूँद विष डाल देनेपर वह सबका सब दूध या जलका जरा-सा भी प्रभाव नहीं रहता, वैसे ही अनेक तथा अनेक प्रकारके बड़े-बड़े सुखोंमें जड़ थोड़ा-सा भी दुःख मिल जाता है तो वे सारे सुख दुःखमय ही बन जाते हैं, किंतु उन बड़े बड़े सुखोंका तनिक-सा भी प्रभाव नहीं रह जाता । इसीलिये यह अनुभवकी वात हुआ करती है कि अवशक वह दुःख दूर नहीं होता तथतक मनमें शान्ति नहीं रह सकती और भगवद्गीतमें आनन्दकन्द

परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके श्रीमुखसे लिखते हुए ‘अशान्तस्य कुतः सुखम्’ इस वाक्यानुसार जहाँ अशान्ति है, वहाँ सुख कभी नहीं हो सकता ।

इस विचारपर विचार करना चाहिये कि हमलोग मनुष्य-योनिमें आकर अपनी मनुष्यजातिको पशु, पश्ची आदि सबसे श्रेष्ठ वर्यों मानते हैं ? जब सभी जीव मनुष्य, पशु, पश्ची, हृष्मि और कीट-समानरूपसे ही दुःख दूर करना और सुख प्राप्त करना चाहते रहते हैं, अर्थात् जब सबका घ्येय तथा लक्षण एक ही प्रतीत होता है, तब उन सब जातियोंको अपेक्षा मनुष्य जाति किस अंशमें श्रेष्ठ है, जिसके आधारपर मनुष्य अपनेको सर्वश्रेष्ठ माना करता है । यह केवल अहानी मनुष्योंका ही अभिमानजनित कथन नहीं है कि मनुष्ययोनि सर्वश्रेष्ठ है, जगद्गुरु श्रीशार्दि शंकराचार्य भगवान्ने भी अपने ‘विवेकचन्द्रमणि’ अन्यमें मङ्गल शोकके पश्चात् प्रथम शोकमें ही ‘जन्मतां नरजन्म दुलभं’ हृत्यादिसे सर्वप्रथम यही विषय बनलाया है और श्रीमद्भागवतके पश्चात् स्वरूपमें तो मनुष्ययोनिको देवयोनिकी अपेक्षा भी अंग बतलाया गया है । पर हमलोगोंको इननेमें ही सन्तुष्ट न होकर कि हमारी मनुष्यजाति सर्वश्रेष्ठ है, यह विचार भी करना चाहिये कि वह क्यों श्रेष्ठ है और हमें उस श्रेष्ठताको किसप्रकारसे सफल करना होगा ?

इस विचारमें उत्तरनेपर यह सो स्पष्ट है कि शारीरिक बल आदि वाणि अंशोंमें मनुष्य अपनी श्रेष्ठताका दावा नहीं कर सकता, क्योंकि इन अंशोंमें तो उससे श्रेष्ठ बहुत-सी योनियाँ पशु पश्ची आदिमें भी पायी जाती हैं । क्षदाचित् मनुष्य यह समझें कि हम सुख-दुःखके सम्बन्धमें, अन्य जीवोंके सदृश विचार करते हुए भी बन्धनकी निवृत्ति या मोक्ष चाहतेमें विशेषता रखते हैं (जैसे आवकल बहुतसे लोग यह दावा करते हैं कि परराज्यकी निवृत्ति या स्वराज्यका स्थापन करना पाश्चात्योंकी विशेषता है इत्यादि ।) तो यह भी बही भूल ही है, क्योंकि सुखका तो अनुभावकी



G. P. GORAKHPR.

इसी परमामरण कार्यमें हम छोगोंको सहायता देनेके लिये, सर्वज्ञ महर्षियोंने अपनी विशाव तपस्याके बालसे अनुभव किये हुए बड़े-बड़े तरहोंको इसारे सामने, अधिकार-भेदके अनुसार, अनेक तथा निष्ठ-निष्ठ प्रकारके शास्त्र-ग्रन्थोंके रूपमें उपकर, महान् उपकार तथा अनुभव किया है। इन ग्रन्थोंमें श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीमद्भागवत, श्रीमद्भागवत आदि अनेक प्रम्पराके जगहिंस्यात हैं जो अस्तुतम ज्ञानीसे लेकर अति पापम और अधम धर्म मतुर्ध-तक सब प्रकारके अधिकारियोंके अपनी-अपनी योग्यता और अधिकारके अनुसार, कर्म, भक्ति और ज्ञान हन तीनों मार्गोंपर कुछ-न-कुछ प्रकाश ढाककर, इहलोक तथा परलोकमें परम कल्पयात्रीकी प्राप्तिमें अत्यन्त सहायता देनेवाले हैं।

उपर्युक्त उपदेशकी पूर्तिके लिये ही श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान् ने उपदेश दिया है। गीताके प्रथमांश्यामें अर्जुनरूपी नरके विषादयुक्त उपरसे तथा उस आव्यायके 'अर्जुन-विषाद-योग' नामसे यह स्पष्ट है कि सहतों प्रकारके अंगठोंमें पहुंचे हुए, आगे पीछेकी परस्पर विस्तृत बातोंका समन्वय न कर सकनेके कारण हुखी होकर रोते रहना ही नरका बहाव है। भगवान् श्रीकृष्णरूपी नारायणके समस्त उपदेशसे तथा 'भगवद्गीता' शब्दमें भी यह स्पष्ट है कि सुख-दुःख, ज्ञानाभाव तथा जय-क्षयाभावकी चिन्ता छोड़कर निष्ठाम-धारणसे अपने कर्तव्यको केवल कर्तव्य-नुजिके ही करते हुए, जातेखेबते-गाते रहना, अर्थात् सभी अवस्था और कियाओंमें सभी शान्ति और आनन्दमें निमग्न रहना ही नारायणका बहाव है, अतएव यदि किसी मतुर्धको सब दुःखों तथा बन्धनोंसे मुक्त होकर, अपने जन्मरूपी विष्य, शुद्ध, कुरु, मुक्त, सत्तिदानन्दवनस्त्रलूपी परमामरूप परमायस्त्ररूपमें पहुंचना हो, अर्थात् यदि किसी नरको नारायण बनना हो, तो उसे भी, अर्जुनरूपी नरकी तरह श्रीकृष्णरूपी नारायणको ही अपने रथका सारथि बनाकर, उससे यह कहना चाहिये कि—

'यज्ञेः स्याच्चिद्धतं श्रुह तत्म
शिष्यस्तेऽहं शामि मां नां प्रपद्य ॥'

'मैं जापका शिष्य हूं, आपके शरण हूं, मेरे लिये जो कुछ निश्चित भ्रम हो वही बताऊँये,' सद्गुरन्तर नारायणसे वह केवल अपने लिये बहिक भगवद्भगवान् भक्तमानके लिये वह अद्वितीय अमर दान ग्रास करना चाहता है, कि—

'सर्व वसन्पर्वतयः य मामकं शरणं ब्रज ।

अहं त्वा सर्वपापम्यां मांक्षयिष्यामि मा शुचः ॥१॥

'कौन्तेय ! प्रातिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥२॥

'नन्याश्चिन्तयन्तो मा य जनाः पशुपासते ।

तेऽनि निवासिमुक्तानां योगस्थमें वहाम्बहम् ॥३॥

'समस्त कर्मोके भाग्यको त्वाग केवल एक मुक्तसविदानम्-
धन वासुदेवकी शरण हो जा । 'मैं तुम्हे सम्पूर्ण पारोंसे मुक्त
कर दूँगा, तू शोक न कर ।' हे कौन्तेय ! यह निष्ठायकर कि
मेरे भक्तका नाश नहीं होता । 'जो अनन्य भक्त मुझे चिन्तन
करते हुए मेरी उपासना करते हैं उन नित्य मुक्तमें जागे हुए
पुरुषोंका बोगलेम मैं स्वयं वहन करता हूं ।'

इसप्रकार उसीके उपदेशाभ्युत्तमका अवश्य करके अन्तमें उसके—

कृचिदेतत्पूर्तं पार्यं त्वयेकाग्रेण चेतसा ।

कृचिदऽनामसंमाहः प्रनग्नते धनंजय ॥

- इस प्रकार सुनकर ए निष्ठयके साथ उसको यह
ज्ञान देते हुए कि—

नां माहः मर्मांतर्मां न-प्रसादः मध्यात्म्यन् ।

प्रसादाऽप्यम् भवत्तदः कर्मणे नन्त तत् ॥

'हे अच्युत ! आपकी कृशासे मेरा मोह नह हो गया,
मुझे स्मृति प्राप्त हो गयी, मैं सन्देहरहित होकर लिख हूं,
अब आपकी ही जाग्रता का पालन करूँगा।' श्रद्धा-भक्ति-प्रेमके
बालसे निर्भय तथा निश्चिन्त होकर, उसीके हाथमें अपने
रथकी जगाम छोड़कर, उसीकी जाग्रातुसार अपने वर्णाभ्रमादि
अधिकारसिद्ध कर्तव्यकर्मको पूरा करके, इस नियमके
अनुसार कि—

मर्मामन्तमाः पार्यं याम् गुप्तमदाश्रय ।

प्रसादय समयं मां यथा ग्राम्यसि तन् ॥४॥

अक्षिमसेत कर्मेषोगसे अन्तःकरणकी शुद्धिके द्वारा
संशय, विकल्प, विपरीतभावान्वयी छोड़करहित और
प्रसाद विज्ञानको पाकर मोक्षकी प्राप्ति इहनेमें द्विषय
प्राप्त की जा सकती है, क्योंकि—

यत्र योग्यशः कृष्णो यत्र पार्यो धनुर्धरः ।

तत्र ग्राविंजयो भृत्युपुवा नीतिमंतिर्मम ॥

—जहाँ योगेश्वर श्रीकृष्णरूपी जारहवलको आपने सार्वति-
रूपसे आगे भरके अतुर्जारी पार्यरूपी गर रीढ़े रहकर पुरु

करता हो, वही सचमी, जय, विभूति और चीति आवश्यक ही रहेंगी। यही गीतोक्त उद्देश्यका सारांश है।

इसी प्रकारसे नर होकर नारायण बननेके लिये, अर्थात् रोना क्षोभकर गते रहनेके लिये, नारायणको ही अपने शशीरादि रूपी रथका सारथि बनाकर, अद्वा, भक्ति और प्रेमके बहसे निर्भय तथा निश्चिन्न होकर, उसीके हाथमें अपने रथकी लगाम सौंपकर, उसीकी आशानुसार अपने वक्ताभ्यादि अधिकारसिद्ध कर्तव्योंको निःसूक्ष्मा और केवल कर्तव्य-कुदिसे पूरा करके, भक्तियुक्त कर्मयोगसे अन्तःकरणकी शुद्धिके द्वारा ज्ञान और मोक्ष प्राप्त करनेमें विजयी होना होगा।

श्रीमद्भागवतमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रादि रूपसे इसी सत्त्वको अपने इतिहास तथा जीवनचरित्रसे दिखाया है कि नारायणका यही सच्चय है जो ऊपर बताया गया है।

श्रीमद्भागवतमें भगवान् श्रीरामचन्द्ररूपसे पश्चात् कर प्रथेक व्यवहारमें अपनी आवश्यकता और ज्ञान-प्रवालीसे मनुष्यजातिको यह दिखायाया है कि मनुष्यमात्रको किस-प्रकार संतारके अनेक प्रकारके दुःखोंका सामना करते हुए धर्मका पालन करना है। कर्म, भक्ति और ज्ञान इन तीनों कारणोंकी इष्टिसे भी भगवान् श्रीरामचन्द्रका इतिहास इमण्डोंके लिये अत्यन्त आवश्यक और उपयुक्त शिक्षा देता है।

अनेक प्रकारके सम्बन्धियोंके साथ व्यवहारमें यथोचित सदाचरणकी इष्टिसे देखें तो भगवान् श्रीरामचन्द्रने अपने गुरुजन, माता, विमाता, पिता, भासुगण, सहायक, सेवक, सर्वसाधारण प्रजा आदि सभी सम्बन्धियोंके साथ यहाँतक कि शशुद्धोंके साथ भी ऐसा सुन्दर आदर्श व्यवहार किया है जो बात-बातमें इम लोगोंके लिये असुखम रीतिसे शिखा प्रद है और जिसके विशेष विनाशपूर्वक वर्णनकी कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि श्रीरामचन्द्र-सम्बन्धी वे सभी बातें जगत्प्रसिद्ध हैं।

परन्तु इस प्रसंगमें इस बातके लिये विशेष रूपसे ध्यान देना होगा कि भगवान् की दया तथा प्रेमके पात्र बननेके लिये प्रेम तथा भक्तिके अतिरिक्त और अन्य किसी भी प्रयोगक लक्षणकी आवश्यकता नहीं है। इस विषयमें श्रीरामचन्द्रजीके माता, पिता, गुह आदि खास सम्बन्धियोंके अतिरिक्त, अनागरिक अरण्यवासी गुह, पशुरूपमें आये हुए महारारादि वानरगण और राजस जात्यन्तरात विभीषण

आदिका अवश्यकता पर्याप्त है। विस्तृत वर्णनकी कोई आवश्यकता नहीं।

कर्मकायडके अन्तर्गत चत्रिय-धर्मकी खास इष्टिसे देखा जाय तो उसमें अपने सुख-दुःखादिकी परवा न करते हुए, केवल धर्म-कुदिसे तथा विजा ही हेष शशुद्धिवैर्ण्य करना और प्रजापालन करना ही सुख है। भगवान् श्रीरामचन्द्रजी इन दोनों चर्चाओंमें भी अनुपम ही ये।

शशुद्धिवैर्ण्यमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अपनी वारयावस्थामें किये हुए ताडकासंहारसे खेलर अन्तमें रावणादिके संहारातक हेषरहित हो केवल धर्म-कुदि और सत्यप्रतिज्ञाके साथ अहितीय शूरता और पराक्रमसे युद्ध करनेवाले ही ये। इस बातका पता इसीसे लगता है कि जब श्रीकाश्मवाजी इन्द्रजितको किसी प्रकार किसी भी धर्म-शास्त्रादिसे परास न कर सके तब उन्होंने ऐन्द्राक्ष दण्डमें लेकर कहा कि—

‘र्मायाम गन्धमन्पश्च गतो दाशरथिर्यदि ।

रामः चाप्रतिहृदः अैन जहि गर्जिमः ॥

‘यदि दशरथनन्दन श्रीराम धर्मार्त्था, सत्यसत्त्व और इच्छमें प्रतिहृदी न रखनेवाले हों तो यह बाय इन्द्रजितका वध करे।’ इसप्रकार श्रीरामचन्द्रजीकी धर्मार्त्थता, सत्यप्रतिज्ञता और अहितीय युद्धीतापर मन्त्ररूपी शापथ करके छोड़े हुए एक ही बायसे उसी शपथके बाजसे उन्होंने इन्द्रजितको मार डाना था। भगवान् पूर्णावतार श्रीकृष्णचन्द्रजीने भी श्रीभगवद्गीताके दशमाव्यायमें अपनी विभूतियोंके वर्णनके प्रसंगमें ‘रामः शस्त्रशृतामहम्’ कहकर स्पष्ट किया है कि शश-धारियों अर्थात् युद्धीतोंमें श्रीरामचन्द्रजी सर्वोत्तम है।

प्रजापालनके विषयमें तो ये जगत्प्रसिद्ध बात है कि श्रीरामचन्द्रजीने प्रजाके मनमें शंकाकी सम्भावनासे भी उसे दुःख न होने देनेके शपालसे, उस भगवती श्रीसीतादेवीके विद्योगकी परम आसद्धा दुःखदेनाको सहा, जो अपने प्राणोंसे भी अधिक प्रिय थी और जिसके लिये अरण्य तथा लक्ष्मीमें भगवान् भयंकर कट उठाये थे।

श्रीरामचन्द्रजीका शासन इसना धर्मपूर्ण था कि उनके राज्यमें प्रजाको दुर्भिक्ष, अकालसूख आदि आज-कलकी इष्टिसे तो अतिसाधारण दुःख भी कभी नहीं हो सकते थे।

जब इस विषयमें एकमात्र अपवादस्वरूप एक ब्राह्मण बालककी सूख हुई और उसका पिता भगवान् के राजभवनके

द्वापर पहुँचकर खरी-खोटी सुनाने लगा कि राजा के अधर्मसे ही हमारे बालककी अकालमृत्यु हुई है इत्यादि, तब श्रीरामचन्द्रजीने उसको राजनिन्दा करनेवाला राजद्रोही समझकर न तो दण्ड दिया और न उसका कोई ख्याल या प्रतिवाद ही किया बल्कि अत्यन्त नव्रत्ताके साथ यह स्वीकार किया कि 'यथापि हमने स्वयं ऐसा कोई पाप नहीं किया है, सो भी यदि हमने अपने राज्यमें ऐसा कुछ कुर्कम होने दिया हो जिससे हर वाहाणके बालककी यह अकालमृत्यु हुई है, तो यह अनर्थ भी हमारे ही दोषसे हुआ है, क्योंकि राजाकी हैसियतसे हमारा ही यह करत्व है कि हम स्वयं भद्राचारी रहते हुए राज्यमें भी पापाचरण न होने दें। अतएव हम प्रयोग दिशामें भूमकर पता लगायेंगे कि राज्यमें कहाँ क्या पाप हुआ है जिसके कारण हमारे राज्यमें एक बार भी अपवाद-रूपसे भी एक अकाल-मृत्युका प्रसंग आया।' तदनन्तर भगवान् ने उस पापका पता लगाकर उसे दूर भी कर दिया, इस विषयपर विशेष विज्ञानकी आवश्यकता नहीं, क्योंकि श्रीरामचन्द्रजीके नमयके बाद व्रेता और द्वापर इन दोनों युगोंकी समाप्ति होकर तीनरे युगमें पाँच हजार पक्षतीस वर्षके बीत जानेपर भी, अब भी, जव-जव तथा जहाँ-जहाँ आदर्श राजयशामन तथा प्रजाके सुखका लिक्क करनेकी आवश्यकता होती है, तब-तब और तहाँ-सहाँ सारे भारतवर्षमें यही प्रथा है कि लग्ने-लग्ने वर्षान न करके, आदर्श आदि छोटे शब्दोंसे भी काम न केकर, केवल 'रामराज्य' शब्दसे ही बक्ता अपने पूरे ताप्यर्थको स्पष्ट कर देते हैं और धोना भी उसका अर्थ समझ लेते हैं।

आचार-व्यवहार, सुदृढीरता, धार्मिक शासन आदिके पश्चात् जब उपासना और ज्ञानकाशडकी इष्टिमें देखते हैं, तो श्रीरामचन्द्रजीकी महिमा केवल पुराणोंसे ही सिद्ध नहीं है, (जिनपर आजकलके सुधारक अभद्राके साथ कटाव किया करते हैं) सीतोपनिषद्, रामरहस्योपनिषद्, रामतापिन्युपनिषद्, मुक्तिकोपनिषद् आदि वेदान्तकी खास-खास मूल ग्रन्थोंसे भी प्रसिद्ध है।

उपासनाकाशडकी इष्टिमें भी श्रीरामचन्द्रजीका माहात्म्य पुराणोंसे तथा उपर्युक्त उपनिषदोंमें यहाँ तक स्पष्ट है कि भगवान् श्रीशंकर भी स्वयं सर्वदा राम-नाम रटते हुए श्रीपार्वतीजीसे कहते हैं—

राम रामति रामेति रंभं रामं मयोरम् ।
सहस्रनामं तत्त्वं गमनाम वरानं ॥

— और मुक्तिपुरी श्रीकाशीलेश्वरमें श्रीविश्वनाथस्वरूपसे अधिष्ठाता होकर, वहाँ भरनेवालोंके दक्षिण कर्त्त्वमें अपने श्रीमुखसे ही रामतारक-मन्त्रोपदेश देकर उनको मुक्ति देते हैं इत्यादि । ये सभी बातें इननी प्रस्तुत हैं कि इनका केवल उच्चेष्व ही पर्याप्त है, वर्णनकी आवश्यकता नहीं ।

अब कर्म, उपासना और ज्ञानकाशडकी समिक्षित इष्टिसे अर्थात् अत्यन्त उपबोगी आज्ञालिङ्ग इष्टिसे भी विचार करना चाहिये कि श्रीरामचन्द्रका वताया हुआ आप्यात्मिक तत्त्व कौन-सा है ? परम लक्ष्य क्या है ? और उसके साधन वया क्या है ? इस विषयपर भगवान् जगद्गुरु श्रीआदिशंकराचार्य महाराजजीने अपने 'आत्मबोध' नामक छोटे परन्तु अति बुन्दर बेशःस-प्रथमें इस एक ही शोकसे विग्रहानमात्र करा दिया है । यथा —

नन्दो मोहर्षिं दद्यते कामकोनादिगत्तमान ।

शान्तिसंतो मध्यमुन् शमामगो विश्रान्ते ॥

श्रामज्जगवद्वीमाके

गृह इत्परिनिः ॥ ग्रामाद्वात् तत्प्र मानयः ॥

॥ मः येत न मन्त्रः ॥ ॥ ॥

इन लक्षणोंके अनुसार जो आत्माराम बना हो, वही आत्मारामरूपी श्रीराम अज्ञानरूपी समुद्रसे पार होकर काम-क्रोधादिरूपी राज्ञोंका वध कर, शान्तिरूपी सीताजीके साथ विराजता है । इसके ताप्यर्थका निश्चिक्षित विवरण है —

सीतोपनिषद्में बतलाया गया है कि श्रीरामचन्द्रजीको धर्मपतीरूपी श्रीसीताजी सच्चिदानन्दकन्द परमात्मस्वरूपी भगवान् की चिद्रूपिणी महाशक्ति हैं । वह महाशक्ति आनन्दस्वरूपी भगवान् के साथ रहनेवाली शान्तिस्वरूपिणी महासमर्पणि होती है । इस शान्तिस्वरूपिणी सीताजीको यदि काम-क्रोधादिरूपी राज्ञोंका अधिपतिरूपी अहंकार-स्वरूपी रावण अपनाना चाहे और उठाकर जो भी जाय, तो भी शान्तिस्वरूपिणी श्रीसीताजीका तो आत्मारामरूपी श्रीरामजीके ही साथ रहना सम्भव है, अन्य किसीके साथ कदापि नहीं । अतः काम-क्रोधादि राज्ञोंके राजा अहंकाररूपी रावणके साथ मिलकर उसकी होकर रहना शान्तिस्वरूपिणी सीताजीके लिये सर्वथा अराक्ष और असम्भव है । इसीकिये शान्तिस्वरूपिणी सीताजी रावणका घोर तिरस्कार ही किया करती हैं क्योंकि वह तो-'रावणोंलोकरावणः' है, अर्थात् सारी दुनियाको लगातार हुःस-

पर दुःख वेता हुआ, उसे लगाते ही रखनेवाला अहंकाररूपी राष्ट्रसेवर है जिसके साथ शान्ति कहापि ठहर नहीं सकती।

अतएव श्रीमद्भागवत दृश्यमस्कन्धके रासपञ्चायामीमें ऐसा एक प्रसंग आता है कि अपनेको भूलकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीके साथ नाचती, खेलती और गाती हुई आनन्दमें निमग्न हुई श्रीकृष्णके दिव्य दर्शन रखनेवाली गोपियोंके मनमें जब अहंकार आ गया, तब भगवान् पद्मदम अन्तर्धान हो गये। क्योंकि अहंकार और परमात्म-दर्शन एक साथ कभी नहीं हो सकते, परन्तु जब भगवान्के गुम हो जानेपर गोपियाँ वहे दुःखमें पड़कर उनकी लोकमें लगती हैं और—तन्मनस्कास्तदात्मिकाः उन्हींके सतत ध्यानसे पुनः अपनेको सर्वथा भूलकर तद्रूप बन जाती हैं, तब—

तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः ।

—भगवान् हँसते-हँसते फिर प्रस्तुत हो जाते हैं, क्योंकि अहंकारके छूट जानेपर परमात्माका दर्शन निर्विज्ञतासे हो सकता है!

इसीकिये श्रीमद्भागवतके दृश्यमस्कन्धमें यह बात भी हुई कि परमात्म-रूपी भगवान् अवतीर्ण होनेके बाद अहंकार-रूपी कंससे कभी मिलते ही नहीं और जब मिलते हैं तब उसे मार डाकनेके किये ही मिलते हैं। अतएव शान्ति-रूपिणी सीताजी अहंकाररूपी रावणसे मिल ही नहीं सकती!

जब यह देखता है कि शान्तिरूपिणी सीताजी आत्मारामरूपी श्रीरामके साथ किसप्रकारसे मिलती हैं? पहले तो श्रीहनूमान्जीके हारा सीताजीका पता लगाया जाता है। आच्यात्मिक दृष्टिसे यह हनूमान्जीने तत्त्व है?

हनूमान्जी जिज्ञासा या विचाररूपी आध्यात्मिक तत्त्व है, विचारके हारा आत्मारामको यह पता लग सकता है कि शान्ति कहाँ रहती है? हनूमान्जी (विचार) से ही पता लगता है कि सीताजी (शान्ति) को लंकामें (अर्थात् लीयते यस्मिन्कर्मणि तथा भवति तथा लं, कः=आनन्दः, आ=शृतिः, अर्थात् नश्वर आनन्दकी शृतिमें) रावणने (अहंकारने) रख छोड़ा है। वहाँ (लंकामें) रक्षे जानेपर भी सीताजी (शान्ति) किसी विपरीत स्थानमें नहीं रक्षी जाती, वह केवल 'अशोक' बनमें (अर्थात् दुःखलेशरहित और सन्तत-धाराप्रवाहरूपी स्वस्पभूत आनन्दमें ही) स्थित रहती है, इसका कारण यह है कि जन्म अर्थात् विचाररूपी ('यज्जन्म-

तदनित्यम्', इस न्यायसे) नश्वर आनन्दमें यथार्थ शान्ति कभी नहीं रह सकती, क्योंकि उसका तो वास्तविक स्थान अशोक (आनन्द) का बन ही है।

इसके सिवा श्रीमद्रामायणमें यह भी बतायाया जाता है कि जिस सीताजीको रावण ले गया था वह तो छाया-सीता ही थी। असकी सीताजी तो श्रीरामजीकी अनिमें छिप गयी थी। इसका आच्यात्मिक तात्पर्य यह है कि जिस शान्तिको अहंकाररूपी रावण ले लाकर नश्वर आनन्दरूपी लंकामें रखकर देखता है, वह तो शान्तिकी छाया या आभासमान है। असकी शान्ति तो आत्मारामरूपी श्रीरामकी ज्ञानरूपी अनिमें ही छिपी रहती है। अहंकाररूपी रावणको वह जारसी भी नहीं मिल सकती। उठाकर ले गयी हुई उस छाया-सीताको भी जब लंका (अर्थात् नश्वर आनन्दवृत्ति) में विचाररूपी हनूमान्जी देखते हैं तो वह छाया-सीता (अर्थात् शान्तिकी छाया या आभास) भी बाहरकी वस्तुओंमें न होकर लंकामें भी (अर्थात् नश्वर आनन्दमें भी) अशोकबनमें अर्थात् भीतरके मूलस्वरूप-रूपी संविदानम्बद्धे कव या भवदारमें ही दिखायी पड़ती है भगवती श्रुति भी कहती है—

तस्यैव मात्रामुपजीवन्ति ।

इसप्रकार विचाररूपी हनूमान्जीने शान्त्यामासरूपी छाया-सीताके रहनेके स्थानका पता लगाकर आत्मारामरूपी श्रीरामको बतलाया। अतएव हनूमान्जीका यह प्रसिद्ध स्तोत्र आच्यात्मिक इटिसे भी ठीक है कि—

अजनानन्दनं वीरं जानकीशोकनाशनम् ।

कपीशमङ्खन्तारं वन्दे लंकाभयङ्करम् ॥

अजना = तुदि (अनकिं, अज्जेते जेति कर्त्तरि कर्मणि च ल्युट्)। तुदिका पुत्र तथा तुदिको आनन्द देनेवाला तो विचार ही होता है। जो काम अविचारसे किये जाते हैं, उनसे तुदिको उस समय कितना भी आनन्द हो, परन्तु पीड़े तो भयङ्कर पश्चात्तापका दुःख ही भोगना पड़ता है।

वीरं अर्थात् (वि+ईर) प्रेरक। विचारसे ही यथार्थ हितके किये प्रेरणा होती है। विचार ही वास्तवमें वीर होता है। अविचारसे यद्यपि तात्कालिक विचाररूपी वीरता होती है पर अन्ततक रहनेवाली यथार्थ वीरता नहीं होती।

जानकी अर्थात् (जायते हित जनः, जनध्यासौ कश्च अर्थात् आनन्दक जनकः) जन्म आनन्दसे उत्पन्न होनेवाली तुदि-

वृत्ति । अन्य आनन्दसे उपर दुई वृत्तियों जो दुःख होता रहता है, उसका भी विचारसे ही नाश हो सकता है ।

कर्पीश अर्थात्-(कं आनन्दं विवन्तीति कपयः, अर्थात् दश इन्द्रियाणि मनश्च, तेषां ईशः) इन्द्रियोंको तथा मनको अपने बहामें रखनेवाला । यदि इनको बहामें न रखता जाय, तो विचार हो ही नहीं सकता, फिर तो विकारोंका ही राज्य हो जाता है । अथवा (कपिः आनन्दपाती तत्त्वः परमेश्वरः स एव ईशो नियन्ता यस्य सः) केवल परमात्माका शासन माननेवाला विचार आहिये, और किसी पदार्थके दबावमें आ जाय तो भी यथार्थ विचार नहीं हुआ ।

अक्ष शब्दका एक अर्थ तो इन्द्रिय है । अतः ‘अचहंता’ शब्दका अर्थ कर्पीश शब्दके पहले बहाये दुए अर्थमें ही आ गया है । ‘अच’ शब्दका दूसरा अर्थ (चूत-कीड़ामें साधनरूपी अवरोंसे खचाया करके) होता है संशयामुक्त । अतः अचहंता धाने संशय (और उसके साथ उपलब्ध्यविधय विकल्प और विपरीत भावना) का नाशक विचार तबतक पक्ष नहीं हो सकता, जबतक संशयादिका भूम्बले ही विमुक्त न हो जाए । किंतु श्रीमद्भगवद्गीतामें तो श्रीभगवान् ने पर्हातक कहा है कि—

‘संशयात्मा विनश्यति’

इसीलिये विचाररूपी इन्द्रियोंको सबसे पहले अहंकाररूपी रावणके उत्तर संशय (विकल्प और विपरीत भावना) रूपी अहंकारको मार जाना पड़ता है ।

लहू थानी नशर आनन्दवालों विश्वृति । इसका तो विचारसे अवश्य ही नाश हो जाता है और शाश्वत (स्वरूप भूत) सविदानन्दवाली तुष्टिवृत्तिमें पर्हुचरेका यही साधन है । अतएव विचाररूपी इन्द्रियों नशर आनन्दवाली वित्तवृत्तिके भवहर शत्रु होते हैं ।

अब स्वयं हो गया कि उपर्युक्त खचायादेव विचारसे (जिसका नाम इन्द्रियों है) ही शान्तिका (जिसका नाम सोताजी है) पता लगाया जा सकता है । अन्य किसी साधन, उपाय या युक्तिसे नहीं । और उस विचारके लिये भी, जिससे शान्तिका पता लगाना हो, सर्वप्रथम रागादेवादि मनोमादिन्यसे रहित होना अर्थात् इन्द्रियों समुद्रसे पार होना पड़ता है, क्योंकि रागादेवादिके साथ किये दुए विचारसे शान्तिका पता नहीं लग सकता । इसलिये इन्द्रियोंको सबसे पहले उमुद्र पार होना पड़ता है ।

परन्तु यह अवस्था केवल विचार-वर्णकी बात है, इसलिये इन्द्रियों अन्तरिक्षमें ही छह पड़ते हैं, पहले उबसे नहीं जाते, परन्तु जब सीताजीका पता लगनेपर उसकी प्राप्तिके लिये जाना होता है, तब तो साधनरूपी पक्षी सेतुसे ही जाना होता है । अर्थात् पहले मनोरूपी अन्तरिक्षमें ही विचाररूपी इन्द्रियों जाते हैं परन्तु जब शान्तिरूपी सीताजीका पता लग जाता है और उसकी प्राप्तिके लिये आमारामरूपी रामजीका जाना होता है तब साधनरूपी पक्षी सेतु बाँधकर उससे ही जाते हैं, क्योंकि उक्त खचायादेव विचाररूपी इन्द्रियोंसे शान्ति सीताजीका पता लगनेसे ही, आमारामरूपी रामजीका कार्य पूरा नहीं हो जाता, अर्थात् केवल इस सिद्धान्तके ज्ञान (Theoretical knowledge) से ही,—कि, ‘शान्तरूपी सीताजीका आभास भी अशोकवनमें रहा करता है’ काम पूरा नहीं हो जाता । आमारामरूपी रामजीको स्वयं आकर, पहली साधन-रूपी सेतुसे अशान्तरूपी समुद्र पारकर काम-क्रोधादि परिवार समेत अहंकाररूपी रावणका वध करके, शान्तिरूपी सीताको प्राप्त करना पड़ता है ।

श्रीरामायणकी कथामें इसी प्रकारसे अन्यान्य सब पदार्थोंके भी आध्यात्मिक तत्त्वरूपी अर्थ होते हैं (जैसे श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीमद्भागवत, श्रीमन्महाभारत आदिमें उत्तराहृ सञ्चय, द्वांशु, भोध्म कृप, पाण्डु, कुन्ती, माद्री, कर्ण, युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव, दुष्पद द्वौपदी, दृष्टशुभ्र, शिखरदी, श्रीकृष्ण, देवकी, बसुदेव, सुभद्रा, अभिमन्यु, अश्वकथामा, जयद्रथ, मधुरा, गोकुल, वृन्दावन, द्वारका, विराट, हरिहार, हषिकेश, शङ्ख, उक्त आदि सब पदार्थोंके सुन्दर-सुन्दर आध्यात्मिक तत्त्वरूपी अर्थ होते हैं) । परन्तु विज्ञान-भृत्यसे उन सबका उल्लेख नहीं किया जाता । यहाँ जो बातें उपर बतायी हैं, ये तो केवल स्थानीयुक्ताक्षयायासे विद्यर्थनमात्रके लिये हैं ।

इसप्रकार सिद्ध हो गया कि आचार, अवधार, शूलता, प्रजापात्रन, कर्मकायद, उपासनाकायद, ज्ञानकायद, आध्यात्मिक तत्त्वादि सभी उष्टियांसे श्रीरामचन्द्रजीकी कथा हमेंगोंगे किये रारण-नामोक्तारणादिन्य अनन्त पुण्य देनेके अतिरिक्त, अवश्य ही शिष्यांशु और बड़े-बड़े गहन-से-गहन छौकिक, अवधारिक और पारमार्थिक तथा आध्यात्मिक तत्त्वोंसे भरी दुई है ।

अब प्रश्न यह है कि ऐसे श्रीरामायण क्षौर श्रीरामचन्द्रजीके साथ हमलोगोंका क्या सम्बन्ध होना चाहिये ।

श्रीमद्रामायणके साथ हमारा अद्वा भक्ति और नक्षत्रासे शिखा लेनेवालोंका ही सम्बन्ध होना चाहिये और भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके साथ तो यहीं सम्बन्ध होना चाहिये कि हम अपने हृष्यको विलकुल खाली और शुद्ध करके, भगवान्‌को हृष्य-सिंहासनपर बिठाकर अद्वा, भक्ति, प्रेम और आत्मसमर्पणके भावसे उनको सेवा करनेवाले बन जायें ।

इस सद्बृन्द्रमें भगवती श्रीराधार्जीका एक महान् उपाख्यान सर्वदा स्मरणीय है । यथापि श्रीराधार्जी भगवान्‌की स्वरूप प्रेमसे सेवा करती थीं तथापि अपने अहंकारमें एक दिन भगवन्नकी मुरुखीसे पूछती है कि 'हे मुरुखी, तुमने जन्मान्तरमें ऐसा क्या बड़ा पुण्य किया था जिससे हृस जन्ममें अचेतन वंशीरूपमें आकर अद्वा, भक्ति, प्रेम आदि न करती हुई थीं, नित्य भगवान्‌के अधरास्तृ पीनेका सौभाग्य प्राप्त करती है ।' मुरुखी जगब देनी है कि 'राधार्जी ! मुझे तो पता ही नहीं कि जन्मान्तरमें मैं क्या थीं, और क्या करती थीं । हाँ इसी जन्मकी एक खास बात मेरे ध्यानमें है वह यह कि मेरे अन्दर तो कुछ है ही नहीं, भगवान् मुझको अपने मुखमें लगाकर अपनी मरजीके अनुसार जो स्वर या राग-रागिणी देते हैं वही मेरा स्वर, राग और मेरी रागिणी है, मेरी कोई भी स्वतन्त्र इच्छा पा लगाक नहीं है । सध्यव है कि भगवान् इसी कारणसे मुझपर प्रसन्न हों ।' मुरुखीके इन मार्गिक वचनोंसे श्रीराधार्जी समझ जाती हैं और मुरुखीकी भाँति अपने हृष्यको विलकुल खाली तथा शुद्ध बनाकर, उसके भीतर सिंहासनपर भगवान्‌को विराजित कर देती हैं । उसीका यह परिणाम है कि आजतक भी दुनियामें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीके नामके साथ श्रीराधार्जीका नाम इतने स्थायीरूपसे जुड़ा हुआ है जितना किसी भी अन्य (गोपी या रानी)का नहीं जुड़ा ।

यह तो हुआ भगवान्‌के लिये अपने हृष्यको खाली और शुद्ध बनाकर सिंहासन बनानेका फल । अब और एक रुदान्तसे (जिसमें शब्दरूपेषसे चमत्कार है) पता लगाया जा सकता है कि भगवान्‌के लिये ऐसा (अद्वा, भक्ति, प्रेम, दासता और आत्मसमर्पणका) भाव न रखनेपर क्या फल मिलता है ? जब नक्षत्रे हाथसे फेंके हुए पर्याप्त आदिसे समुद्र पर सेतुके बन सकनेकी आशा

होने लगती है और भगवान्‌को यह चबर मिलती है, तब भगवान् स्वर्ण लाकर उस अनुत दरवाजे देख नक्षे पूछते हैं कि 'हे नक्ष ! तुमको पह महिमा कहाँसे मिली ?' वह कहता है कि 'भगवन्, आदिसे नामोवारणके प्रतापसे पह काम हो रहा है' तब भगवान् ने अपने ही हाथसे एक पर्याप्त समुद्रमें फेंका और जब वह दूरने लगा तो भगवान् ने फिर पूछा कि 'हे नक्ष ! मेरे नामके प्रभावसे जो कार्य तुमसे हो सकता है और हो रहा है, वह मेरे हाथसे क्यों नहीं होता ?' तब नक्षे शब्द-रुपेषसे बड़ा ही चमत्कारी उत्तर दिया, कि 'हे भगवन् ! आप तो त्रिलोकीके नाय हैं, पर्याप्ती तो बात ही कौन-नहीं है साक्षात् देवेन्द्र भी अगर आपके हाथसे फेंक दिया जायगा तो वह तो अवश्य शुभेगा ही, जिसको आपने हाथसे फेंक दिया, वह कैसे बच सकता है ?'

यस्तु रामन् पवयेतु यं च रामो न पदयति ।

निन्दितः स मेवलोके स्वात्माप्येन विगर्हति ॥

अर्थात् जो (भक्ति और प्रेमके भावसे) रामको नहीं देखता तथा जिसको (दयाके साथ) शाम नहीं देखते वह तो दुनियामें और अपने हृष्यमें भी वृश्चित ही होगा ।

इस उपाख्यानमें यथापि 'हूँने' शब्दपर किये हुए शब्द-रुपेषके चमत्कारसे ज्ञान उठाया गया है, तो भी तात्पर्य तो सिद्धान्तरूपसे ही निकलता है कि जो मनुष्य भगवान्‌को अपने हृष्यसे फेंकजा भगवान्‌के हाथमें (या वसन्में अर्थात् सेवामें) नहीं रहता, वह तो भगवान्‌के हाथसे कूट आनेपर, भगवान्‌के हाथसे छोड़े हुए पर्याप्ती भाँति (संसाररूपी या अज्ञानरूपी) महासमुद्रमें एकदम दूर ही जायगा, वह कभी बच नहीं सकता ।

अतएव हमलोगोंको आदिये कि हम अपने हृष्यरूपी सिंहासनको विलकुल खाली तथा शुद्ध करके, उसपर भगवान्‌को बिठा दें, फिर भगवान् जो केवल भक्तवस्तु ही नहीं है, वहिक स्वर्ण अपनेको भक्त-भक्त और भक्तपराधीश बताते हैं, वह तो अपनी ही —

'अहं त्वा सर्वपोम्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ।'

'न मे भक्तः प्रणदयति ।'

"तेषां योगमेष्टं वहस्यहम्" इत्यादि

—प्रतिशासनोंको अवश्य पालेंगे और स्वयम्भेव ही हमारे पापों तथा तज्ज्ञ दुःखोंको दूर करके, हमारे धोग-

जेमके भारको अपने कल्पोंपर बैसे ही डठा लौगे जैसे उन्होंने प्रहार, व्रौपदी, मीराबाई आदि अपने भक्तोंके भारको बारम्बार उठाया था ।

इम सभी दुःखोंसे मुक्त होकर शान्ति और आनन्दमें रहना चाहते हैं परन्तु शान्तिरूपिणी सीताजी आत्माराम-रूपी रामको छोड़कर दूसरे कितीके साथ कभी नहीं रह सकती और—

‘अशान्तस्य कुतः सुखम् ।’

—विना शान्तिके आनन्द भी नहीं रह सकता, इसलिये इम संस्कृत और हिन्दीके पुक अतिसरल शब्द-झेंसे लाभ उठाते हुए, इस लेखक उपसंहार करते हैं कि ‘हे कल्याण-पाठको और कल्याण-कांडी सज्जनो, यदि तुम आराम चाहते हो, तो मनसे, वाणीसे और अपने कामसे लूँ

जोरसे कहो ‘आ राम !’ अभी तो ‘आ राम’ ‘आ राम’ कहते रहते हो, अर्थात् अपने इन्द्रके भीतर रामके लिये स्थान नहीं देते हो तो राम कैसे आ सकता है ? अर्थात् ‘आराम’ कैसे हो सकता है ?

अतएव अगर चाहते हो आराम, तो मनसे चाहो ‘आ राम’, वाणीसे कहो ‘आ राम’ कामसे भी कहो ‘आ राम’ और फिर पाते रहो ‘आराम’—

जय भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की ।

तीर्त्वा मोहमहार्णवं स्थिरनिजानन्देष्या रामणं

हत्वा काममुख्यामुरव्रजवृताह्कारलंकाचिपम् ।

भूयः प्राप्य विचाररूपहनुभत्पूर्वोक्षितां प्रेमसीं

सीतां शान्तिनिजाकृति विजयते ह्यात्मामिरामो हरिः ॥

रामोपदिष्ट-भक्ति

(लेखक—स्वामीजी श्रीभेलेवान्जी)

अयोध्यानगरे रम्ये रत्नमण्डपमध्यमे ।

रामचन्द्रमहं वन्दे सविदानन्दविग्रहम् ॥



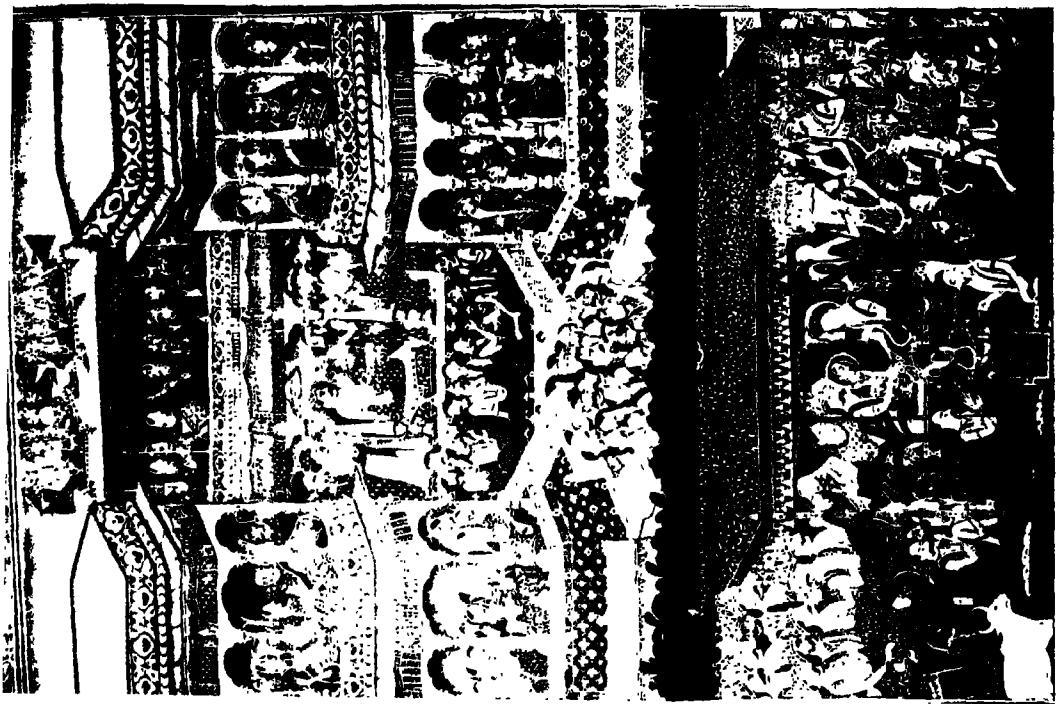
य
अयि अयोध्यावासी प्रभुके पांचद नित्य
मुक्त और सदा हृद है, तो भी प्रकृति-
भरद्वजमें इहनेसे कदाचित् विषयोंका
किञ्चित् वायु लग गया हो, तो उसको
मिटानेके लिये अथवा अयोध्या-
वासियोंके ध्याजसे संसारके जीवोंका
मुक्त फरके कलियुगी प्राणियोंका
उदार करनेके लिये एक बार
श्रीरघुनाथजीने सब पुरावासियोंको बुलाया। भगवान्‌की आज्ञा
सुनकर गुरु वशिष्ठजी, अन्यान्य मुनिजन और आश्रणादि
चारों बण्योंके लोग राज-सभामें आये एवं यथोचित मस्तक
नवा, आशीष दे प्रभु-आज्ञा पा गुरु वशिष्ठजी तथा अनेक
मुनि और ब्राह्मण तथा अन्य उत्तम वर्योंके विसर्जन सज्जन थे
वे सब सभामें भगवान्‌के समीप बैठे और अन्य सब लोग
बाहर बैठे, तब भक्तोंके जन्म-मरणादि भव-दुःखोंको मिटाने-
वाले श्रीरघुनाथजी इसप्रकार कहने लगे—

‘हे पुरावासियो ! आप सब मेरी बात सुनिये, वह सबके हितकी वाणी है, इसलिये सुनकर अकीकर कीजिये,

क्योंकि मैं अपने किसी स्वार्थके लिये नहीं कहूँगा, सबके कल्याणके देहु परमार्थके बचन ही कहूँगा, इन बचनमें किसी प्रकारकी अनीति भी नहीं होगी, सब जोकमर्यादा-सहित वेदप्रमाणित सन्तोंके मतानुसार कहूँगा, यह बात मैं पेशवै दिखलानेके लिये रजोगुण धारण करके नहीं कहूँगा, किन्तु सतोगुणवहित शान्तचित्त होकर कहूँगा, इसलिये चित्त लगाकर सुनिये । यदि मेरे बचन आपको भावें—अच्छे लगें तो उनका आचरण कीजिये, मेरे कथनानुसार चलिये ।’

बचन तीन प्रकारके होते हैं, एक प्रभुसम्मित, जैसे—राजालोंग प्रजापर शासन करते हैं, दूसरे सुहद-सम्मित, जैसे—मित्रसे मित्र भन मिलाकर कहता है और तीसरे कान्तासम्मित, जैसे—स्त्री नन्दतासम्मित पतिसे वार्तालाप करती है । यहाँपर भगवान्‌ने प्रथम मित्रके समान सबको समका कर प्रिय बचन कहे । अब प्रभु-सम्मित कहते हैं—

‘हे पुरावासियो ! मेरा सेवक वही है और मेरा प्रियतम भी वही है, जो मेरा अनुशासन मानता है अर्थात् वेद, वेष्टन आदि शास्त्र, संहिता, मुराया, रामायण आदिमें जितनी श्रीमुखमार्गित आज्ञाएँ हैं, उनको मानकर, उन के



शिव-विवाह ।

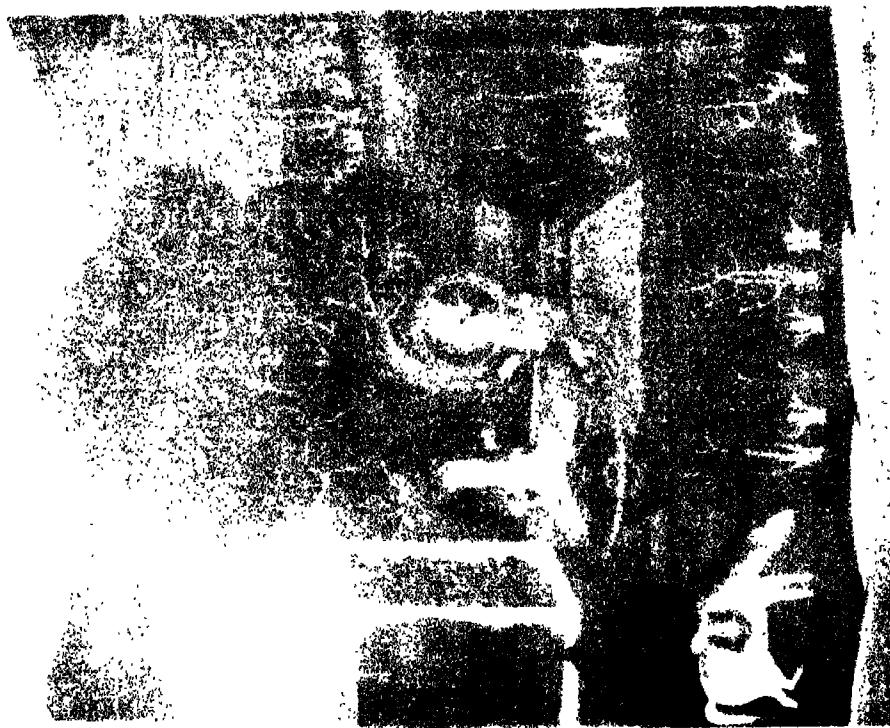
गहि निरोस कुस कन्या-पानी । तिच्छि समरणी जानि भवानी ॥



पावतीकी तपस्या ।

जन्म कोटि लगि रहति हमारी । बरँ संभु न उ रहो कुअँतरी ॥

जनक का गामदण्डन ।
मुर्गी सभूतः विद्युत् शृङ्गः विद्युत् विद्युत् ॥



कृपा मर्ति उत्तर गाजा धनाधारा ।
मर्ति लाल भास्त्र वानि वानि ॥

अनुसार आचरण करता है, वही मेरा प्रियतम सेवक है, मैं उसीकी सर्वप्रकारसे रक्षा करता हूँ और तो मेरी आज्ञासे प्रतिकृत चलते हैं, वे अपनी करतृत्व के बैसा ही फज्ज भी भोगते हैं, इसलिये यदि तुम मेरी आज्ञाके अनुसार चलोगे, तब तो मैं सब प्रकारसे तुम्हारी रक्षा करूँगा, और यदि न मानोगे, तो अपने कियेके अनुसार सुख-दुःख भोगोगे, उसमें मेरा कुछ दोष नहीं।'

तदनन्दन भगवान् कान्तासम्मित वचन कहते हैं—
‘भाइयो ! यदि मैं कोई अन्यथा वचन कहूँ, मेरे जिस वचनमें भावधर्मनीति, वेद-प्रमाण, साधुमत इत्यादि सबकी सम्मति न मिले, ऐसे वचनको सुन भय छोड़कर सुझे रोक देना, अर्थात् राजाज्ञा-भंगका बर मत मानना, क्योंकि सत्पुरुषोंकी समाने सत्पुरुषके लिये असत् कहना उचित नहीं है यही नीतिशास्का मत है।

‘भाइयो ! विधार करो ! यह मनुष्य-शरीर बड़े भास्यसे प्राप्त हुआ है। जब जीवके अनेक जन्मोंका पुरुष उदय होता है, तब वह मनुष्य-शरीर पाता है। यह शरीर सुर-दुर्लभ है, अर्थात् देवताओंको भी मनुष्य-शरीरकी प्राप्ति हुई है। यह बात छिपी नहीं है। वेद, शास्त्र, संहिता, पुराण, रामायण, रहस्य, नाटकादि सभी ग्रन्थोंमें प्रसिद्ध है कि मनुष्य-शरीर सुकिका हार है।

‘देखो ! यह मनुष्य-शरीर सब साधनोंका धाम है। इस शरीरमें सभी साधन हो सकते हैं—प्रथम कर्मके साधन—यज्ञ, होम, पूजा, जप, सप, तीर्थ, व्रत, दानादि; दूसरे ज्ञानके साधन—विवेक, वैराग्य, शम, दम, उपराम, तितिचा, अद्वा, समाधान, मुमुक्षुता, अवग्नि, मनन, निदित्यासन और तर्थ-पदार्थ शोधन; तीसरे योगके साधन—थम, नियम, आसन, प्रस्तावाहर, प्राणायाम, प्याज, धारणा और समाधि एवं औये भक्तिके साधन—अचरण, कीर्तन, स्मरण, सेवन, अर्चन, धन्दन, दात्य, सक्षमता आत्मनिवेदन हैं। इसप्रकार जितने साधन हैं वे सब मनुष्यदेहसे स्वाभाविक ही हो सकते हैं, इसलिये यह देह सब साधनोंका घर है, सब साधन इसी देहमें रहते हैं—अन्य देहोंमें नहीं रहते। पश्च, पश्ची, कीट, पतंगोंमें तो साधन करनेका ज्ञान ही नहीं है, देवयोनिमें ज्ञान तो है परन्तु वे येरवर्य-सुख-भोगमें भूखे होनेके कारण साधन कर नहीं सकते, क्योंकि अमरदेहोंमें होनेसे वे जन्म-मरण और गम्भीरासाक्षा भय नहीं मानते। मनुष्य ब्रह्मलोकमें होनेसे जन्म, मरण, गम्भीरास, नरक, चौरासी आदिका भय

मानते हैं। मनुष्योंमें ऐश्वर्य भी अचल नहीं है, इसलिये वे विषय-आशा, लौकिक-सुख त्यागकर मुक्ति-मार्गपर आहुद हो जाते हैं। इसप्रकार मनुष्य-शरीर मोक्षका हार है, क्योंकि इस शरीरमें मुक्ति प्राप्त होना सुनाम है। ऐसे शरीरको पाकर भी जो परदोक नहीं सुधारते, मुक्तिमार्गमें आहुद नहीं होते और विषय-भोगके बर दुष्प, इन्द्रिय-सुखोंके साधनमें लगे रहकर अनेक कुर्कमं करते हैं, वे अनेक दुःख भोगते हैं। काम-वश-पर-ची-इरण्य, क्रोध-वश दूसरोंकी हिंसा, लोभ-वश चोरी, ठगी, पर-धन-इरण्य, ईर्ष्य-वश पराया अपवाद छरना, इत्यादि कुर्कमं करनेमें तो नहीं ढरते हैं परन्तु जब उन्हीं कर्मोंके फलरूप अनेक प्रकारके दुःख भोगते हैं, तब यिर पीट-पीटकर पछताते हैं। आग जगना, चोरी होना, राजाहारा लूटा जाना, चौप, रकास, पीनस, बाई, बवासीर, कुठ आदि किसी कराज रोगका होना, दन्तु, ची, पुत्र आदिका विषेग होना, बँडुडा होना, दरिद्र होना इत्यादि अनेक प्रकारके कष्ट जब पाते हैं, तब पछताते हैं और काल कर्म एवं ईरवरको वृथा ही दोष देते हैं।

‘यहाँ शंका होती है कि जब जीवोंकी व्यवस्था काल, कर्म और ईरवरके अधीन है, तो वृथा दोष कैसे हुआ ? इसका समाधान सुनिये—जीवोंकी व्यवस्था काल, कर्म और ईरवर-के अधीन है—यह ठीक है। अवश्य ही ईरवर सबपर प्रधान है, परन्तु जीव भी तो ईरवरका ही अंश है, वह सब प्रकारसे वैतन्य है क्योंकि वह अपना गुण, स्वभाव सब जानता है और वेद-पुराणोंहारा काल-कर्मको भी जानता है क्योंकि वेद उसी ईरवरकी आज्ञा है। वेदका सिद्धान्त स्वातिहारा आचार्य सुनाते हैं। जैसे कि सरोजसुन्दर धर्म-शास्त्रमें कहा है—‘आहार, मैथुन, निद्रा, अप्यथन, दान देना और देना ये सब सन्द्याकालमें वर्जित हैं। ‘कांसेका पात्र, मसूर, चने, कोदों, शाक, शहव, पराया अस, दो बारका भोजन और मैथुन आदि एकादशी, विद्यमा तिथि और दृश्यमानोंको वर्जित हैं।’ इस प्रकार कालका प्रभाव बताया है। स्वाभाविक वर्जित कर्म इसप्रकार बताये हैं कि ‘जो अपनी सम्बन्धिनी नारीको कष्ट देता है, वह दिन-प्रति-दिन ब्रह्म-वधावि पापोंको प्राप्त होता है।’ और भी कहा है कि ‘तेल मजानेके बाद, सूतके साथ जानेके बाद, और बनवानेके बाद और मैथुनके बाद मनुष्य अवतक स्नानसे शुद्ध नहीं हो जाता, तबतक वह चारडालके समान

है।' हत्यादि कर्म अुति-स्वतिहारा प्रसिद्ध है। चोरी, हिंसा, परक्षीयमन, धनहरण, परविन्दा आपकादि महायापोंको तो सभी जानते हैं। इसप्रकार जान-बूँझकर भी लोग न पुण्यकाल जानते हैं, न सीर्यादि पुण्यदेश जानते हैं और न ईश्वरके द्वयका भय करते हैं। सब कालमें, सर्वत्र हर्षतहित महायाप तो करते हैं परन्तु जब उनका फल भोगना पड़ता है, तब कालको मिथ्या दोष जानते हैं कि हमारे द्विये आवकल बड़े नष्ट दिन हैं या हमारे दिनोंका फल है इसीलिये हमें ये दुःखदायी भोग प्राप्त दुष्ट हैं। कर्मोंको भी मिथ्या दोष जानते हैं और कहते हैं कि हमको कर्म दुःख देते हैं। इसप्रकार ईश्वरको मिथ्या दोष देते हैं कि ईश्वर हमको दुःख देता है। हमारे परोसीको तो खूब चन दे रखता है, वह दिन-रात दूध-मार्दाई जाता है और हमको खूली-रोटी भी समयपर नहीं मिलती। सारांश यह कि काल, कर्म और ईश्वरका दूर तो मानते नहीं, हुष्ट-स्वभाव-चरण देह-सुखके द्विये, स्वार्थ-हेतु अनेक कुक्षमं करते हैं, परन्तु फल भोगके समय अपना दोष काल-कर्म अथवा ईश्वरके शिर मानते हैं। इसलिये हे पुरावासियो ! देखो, जैसा तुम्हारा शरीर है, वैसा ही हमारा भी है। जैसे हमने विषय-भोग त्याग रखते हैं, वैसे तुम्हों भी त्याग देने चाहिये। विषयोंमें आसक्त नहीं होना चाहिये।'

'हे भाईयो ! यह मनुष्य-शरीर विषय-भोगके द्विये नहीं प्राप्त हुआ है, इसलिये इन्द्रियोंके स्वाद आदि देह-सुखके साधनोंमें मनको आसक्त करना उचित नहीं है, कर्मोंकि मृत्युजोकमें सुख तो योद्धे हैं पर शोक, विद्योग, रोग, कष्टह, भय विद्येष हैं। अन्मरण यहाँ बने रहनेका निश्चय भी नहीं है। चण्डमनुर शरीर है, दम आवेगा या नहीं, इसकी भी खबर नहीं है, किर यहाँ सुख कैसा ? जो लोग यज्ञ, तपस्या, पूजा, पाठ, जप, तीर्थ, ब्रत, दानादि सकाम कर्म करते हैं वे उनका फल सुख भोगलेके द्विये स्वर्गजोको जाते हैं। परन्तु स्वर्गमें भी सुख योद्धा ही है, अवतरण सुकृतरूप दैवी रहती है, तबतक तो सुख भोगते हैं, पर पुण्य चीज़ होते ही मृत्युजोकमें गिरा दिये जाते हैं। इसलिये स्वर्ग भी दुःखदायी है। यहाँ आकर फिर इन्द्रिय-सुख-साधनमें जगो, तो चौरासीको बड़े जाते हैं। जैसा कि गीतामें कहा है 'क्षीणे पुण्ये मर्यालोके विशन्ति' और सत्योपाक्षयानमें कहा है—

'स्वर्गवासस्तु तैः पुण्यैः पुण्यान्ते च पतत्यः ।'

'हे भाईयो ! मनुष्य-शरीर पालेका कल यह है कि इन्द्रियोंके विषय त्यागकर सत्संगमें मन जागाये, सन्तोषकी कृपा और सत्सङ्घके प्रभावसे जब मन शुद्ध हो जाय, तब परकोक्षसाधनमें मन जागाये अर्थात् अवश्य, छीर्णन, सारक, सेवन, अर्थन, बन्दन, दात्य, सरक, आमनिवेदनादि भक्ति करे, इसप्रकार भक्तिके द्वारा भव-चन्द्रनसे कूटकर हरिसभीपतारूप सुकिपद प्राप्त करे ! जो मूढ़ नद-शरीर पाकर सुकिपदके साधन त्याग इन्द्रियोंके विषय—देह-सुखके साधन—में जाग जाते हैं, वे शह सुखा जानी असूतसे विष बदल भेते हैं अर्थात् भक्तिरूप असूतके बदलमें विषयरूप विष ले भेते हैं। विषय-संगमें कामना बढ़ती है, कामना-हानिसे क्रोध होता है, क्रोधसे मोह होता है, मोहसे वेद-धर्म भूले जाते हैं, वेदधर्म भूल जानेसे बुद्धि नष्ट हो जाती है और बुद्धि नष्ट हो जानेसे जीवका सर्वनाश हो जाता है यानी वह अधोगतिका प्राप्त हो जाता है।'

अब भगवान् अतिशयोक्ति रूपकालिकारसे देवल उपमानसे उपमेयका बोध कराते हैं—

'हे भाईयो ! पारसमणि तो सब धनोंकी मूल है परन्तु युआ यानी धोंधची किसी कामको नहीं। जो लोग सब धनोंकी मूल पारसमणिको खोकर बदलमें निकम्मी धोंधचीको उठा लेते हैं, वे मूढ़ हैं। पारसमणिके छू जानेसे कुचातु खोहा भी सुवर्णां हो जाता है। उससे रुप्ये-अशारकी, मणि-मुक्ता, चरणी-धाम, भूषण-बसन और भोजन-वाहनादि सभी कुछ हो सकते हैं। ऐसी पारसमणि किसी मूलको मिल गयी, उसको चाहिये या कि वह उसके गुण विचारता परन्तु उसने उसके गुणोंका विचार न कर उसे बदसूरत देखकर फैल दिया। फिर उसे धोंधची मिली, सुहावनी सूरत देखकर मूलने उसको ढाठा दिया। धोंधची देखनेमात्रको ही सुहावनी होती है, वह किसी कामकी नहीं होती। उसमें जो देखनेको छलायी होती है, वह भी आधी होती है, आधा धंग हो श्याम होता है, भीतरसे वह सर्वथा कष्टी ही होती है। यहाँ पारसके स्थानपर हरिभक्ति है, जो कुचातुरूप परित जीवोंको भी उत्तम हरि-सम्बन्धी बना देती है। बदि कोई तुराचारी भी सुखे अनन्यभावसे भजता है तो उसे साझु ही मानना चाहिये, कर्मोंकि वह सम्मानपर चल रहा है। इससे वह शीघ्र ही धर्माल्मा हो जाता है, मेरे भक्तका कभी नाश नहीं होता (गीता)। हे पुरावासियो ! भक्ति समता, सम्मोह,

विवेक, विश्वामी, शान, विज्ञानादि सब गुणोंको उत्पन्न करनेवाली है। बायुदेवकी भगवती भक्ति मनुष्योंमें शान, वैराग्य, वीर्य उत्पन्न करती है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है। ऐसी परम उपरोक्ती भक्तिको स्थागकर मृढ़ मनुष्य गुआरूप विषयोंको ग्रहण कर लेते हैं, जो देखनेमात्रको सुख देनेवाले और सुखावने वाले हैं। वह सुख भी निरा सुख ही नहीं होता। जितना सुख होता है, उतना ही उसमें तुःस भी होता है और विचारनेसे तो विषय संवाद तुःसरूप ही है। इसप्रकार अकिरूप पारसको स्थागकर विषयरूप गुआरूप देनेवालोंको कौन भक्ता कहेगा? कोई भी नहीं! वेद, पुराण, सन्त, महात्मा सभी उसकी निन्दा करेंगे!

'हे भाइयो! मनुष्य-शरीर पाकर जो भक्तिका स्थाग कर विषयोंमें आसक्त होते हैं, उनकी दुर्दशाका वर्णन सुनिये!

जानि—'भाकर यानी जानि चार हैं, प्रथम जरायुज जो किछीमें देखे उत्पन्न होते हैं, दूसरे अवश्य जो अवदेसे उत्पन्न होते हैं, तीसरे उत्तिज्ज जो भूमिको फोड़कर उत्पन्न होते हैं और चौथे स्वेदज जो पसीनेसे उत्पन्न होते हैं। मनुष्यादि जरायुज हैं, पहली आदि अवश्य हैं, तृष्णवता आदि उत्तिज हैं आर मध्दर, डाँसादि स्वेदज हैं, इनकी चौरासी लाल योनियाँ हैं। उनमें मीनादि जलचर योनि नौ लाल हैं, बूँदादि स्थावर योनि चाँस लाल हैं, कृषि कीदादि योनि भ्यारह लाल हैं, पहली-योनि दश लाल हैं, पश्य योनि सीस लाल हैं और मनुष्य-योनि चार लाल हैं।

'भाइयो! यह जीव ईश्वरका अंश होनेके कारण अविनाशी है परन्तु हरिभक्ति स्थागकर विषयोंके वश होनेसे चार जानि और चौरासी लाल योनियोंमें भ्रमता रहता है अर्थात् जीवरूप पहली शुभाशुभ कर्मरूप पश्योंके बजासे अनेक योनियोंमें डडा-डडा फिरता है। आदिकर्त्तमें इन जीवोंमें जो सतोगुणी होते हैं, वे मुनि होते हैं, त्र्यांगुणी होते हैं, वे देवता होते हैं, और जो तमोगुणी होते हैं, वे दैत्य होते हैं। यह सत्ययुगका प्रभव है। पश्यात् ज्यों-ज्यों काढ बदलता जाता है, त्यों-यों गुण-स्वभाव बदलता रहता है। जीव ज्यों-ज्यों असत् करते हैं, त्यों-ही-त्यों नीच योनियोंमें जन्मते जाते हैं।

अमणका अध्यार—'पूर्वमें जब जीव विषयको ग्रहण करता है, तब उसे मायाकी प्रेरणासे काळ कर्म, स्वभाव और गुण धेर लेते हैं। उनके बन्धनमें पकड़ जीव सब योनियोंमें भ्रमता फिरता है अर्थात् गुणके अनुसार जीवका स्वभाव

होता है, फिर काढ और कुसंग पाकर स्वभाव बदल जाता है इसलिये जीव असत् कर्म करके नीच योनियों जाता है। जैसे कि सतोगुणके प्रभावसे प्रथम मुनि हुआ, फिर काढ पाकर तमोगुणी स्वभाव हो गया, तो असत् कर्म करके जीव ब्राह्मण हुआ। फिर असत् कर्म करके चत्रिप हो गया, वैराग्य हो गया, शूद्र हो गया, फिर न्येष्ठ हुआ, चार्याक द्वारा, चढ़ा पश्य हुआ, छोटा पश्य हुआ, पक्षी, कोट खलाचर हो गया, फिर अन्मत्में वृद्ध तृष्ण पर्यन्त हो गया। फिर कभी काढ पाकर नर हो गया। इसप्रकार सब योनियोंमें भ्रमता है और उनमें अन्मता भ्रता, दुःसद दुःख और जरा व्याप्ति विवोगादि अनेक कष्ट पाता है। यही जीवोंकी स्वभाविक गति है।

ईश्वरका प्रभाव—'ईश्वर जीवका परमसुहृद-विना हेतु स्नेही है यानी वह जीवोंपर स्वार्थरहित लेह करता है, यह ईश्वरका व्यारूप गुण है, कहा है—

रक्षणे सर्वमूर्तनामहमेव परो विभुः ।
इति दृष्टानुसन्धानं कृपा सा परमेश्वरी ॥
(मगवद्गुण-र्दर्शन)

अर्थात् भूतमात्रके पासका करनेको मैं ही समर्थ हूँ, इस प्रकारका एवं अनुसन्धान रखता हूँ, इसप्रकारका अनुसन्धान रखनेसे ईश्वर विना हेतु स्नेही है। भागवतमें दूसरा गुण करवा कहा है—

परदुःखानुसन्धानदिवृह्णी मवनं विमो ।
काशप्रथमगुणस्वेष आर्तीनां भीतितारकः ॥

अर्थात् जीवोंका दुःख देखकर स्वयं भी दुखी होकर, उनके दुःख मिदानेके लिये उपाय करनेका नाम कल्पा है। विना हेतु स्नेही ईश्वर इस कल्पाके वश किसी भी जीवका दुःख देखकर, उसे दुःखसे छुड़ानेके लिये कल्पा करके कभी मनुष्य देह दे देता है अर्थात् चौरासीका भोग पूरा होनेसे पूर्व जीवमें ही साधनका धार्म, मुक्तिका द्वार जानकर मनुष्य शरीर दे देता है। क्योंकि इस शरीरमें सब वस्तुभूमोंका ज्ञान हो सकता है।

मनुष्य शरीरका माहात्म्य—यह शरीर जीवोंको भवसागर-से पार के जानेके लिये बेहा है। जब सांख्य, सीसम आद्विदि कहोंको नदीहारा देशान्तरमें के जाना होता है, तो मङ्गाह पश्यास-तीस छट्ठोंको मिला उनपर पाँच बैंडी लकड़ी रक्ष सबको रस्सोंसे एकमें ही बीच देते हैं और उसके ऊपर चाँसका छाठ धर देते हैं। इसको बेहा कहते हैं, यह बेहा किसी भी विज्ञासे कभी नहीं हूँचता, इसी प्रकार नद-शरीरमें

तीर्थ, व्रत, कथा, अवश्य, कीर्तन, पूजा, पाठ, जप और शान्तिदि सत्कार में कहे हैं। ये शुद्धि, विचार, धैर्य, कथा और शर्मादि स्तोत्रों से बंधे हुए हैं। इनके ऊपर सुख-दुःखका ज्ञानरूप छाठ बंधा हुआ है, इसप्रकार नर-शरीर संसाररूप सागरमें बेदा है, इसपर वैष्णव मनोरथरूप जलके बेगमें पढ़ा हुआ भीव वहा आता है। यदि भीव किनारे पर आना चाहता है और अद्वारूप वरदान चढ़ा लेता है तो वहते हुए बेदको फेर देखेके लिये मेरा अनुग्रह यानी जीवोंपर सदा दयारूप जो सम्मुख पवन वहती है वह उसे किनारे लगा देती है। अर्थात् नर-तनुमें यदि जीव मेरी किञ्चित् भी अद्वा करे तो उसे मेरा अनुग्रह सहज ही भवसे पार कर देता है।

‘भाइयो ! यह मनुष्य-शरीररूप बेदा दूबने थोक्य नहीं है, यह सुखद नाव है, इसमें जब मनुष्य अद्वारूप वरदान लगाता है, तब उसको मेरा अनुग्रहरूप बायु ढकेलता है और सद्गुरुरूप कर्णधार—खेनेवाला उसको घाटपर लगा देता है। इन सब सामग्रियोंका प्राप्त होना जीवोंके लिये दुर्लभ है—ये बड़े परिश्रमसे प्राप्त होती हैं। इन सब सामग्रियोंके प्राप्त होनेपर तर जाना झुङ्क कठिन नहीं है। पर ऐसी सामग्रियोंको पाकर भी जो निर्बुद्धि मनुष्य भवसागरसे नहीं तरते और विषयोंमें आसक्ष होकर फिर भवसागरमें ही चले जाते हैं वे कृतनित्यक हैं अर्थात् यदि कोई उनके साथ भवाह करता है, उसका आभार मानना तो अलग रहा, उलटी उसीकी विन्दा करते हैं। जिस निर्देश स्नेही ईश्वरने करुणा करके नर-शरीर दिया है और सदा इथा रहता है, उसका स्नेहसहित नाम तो भूलकर भी नहीं लेते और जब आपने किये हुए पापोंका फल दुःख भोगते हैं तो उसको गालियाँ देते हैं। ये ऐसे कृतज्ञ हैं। जैसे महावनमें एक चिंगारी छगा देनेसे दावाप्रिकी सीमा नहीं रहती कि कहाँ तक वह आयगी, जैसे ही कृतज्ञताके योदे ही कर्मसे असंख्य पाप वह आते हैं। एक दृष्टान्त सुनिये—

कृतज्ञीकी कथा

एक इतिहास है कि कोई शुद्धी दरिद्री विश्रुत चुधानिवारणार्थ महावनको गया, वहाँ एक पश्चीने उसकी अवश्या पूछी तब उसने भनकी भूल बतायी। पश्ची उसे वास देकर और भोजन कराकर बोका कि उत्तर बनमें एक दैत्य भेरा मिथ्र है, मैं उसके वास प्रतिदिन जाता हूँ, तू वहाँ जा। मेरा नाम लेनेसे वह तुम्हे बहुत-सा जन देगा। श्रावणने जाकर दैत्यसे

सब हाथ कहा, दैत्यने जन देकर श्रावणको विदा कर दिया। जब श्रावण लौटकर महावनमें आया तो मार्गके भोजनके लिये उसी पश्चीको मारकर बाँध ले चढ़ा। दैत्यने यह जानकर उसे पकड़ा भूमाया और दूसरे दैत्योंसे कहा कि इसको सा जाओ, दैत्योंने कहा कि इस कृतज्ञको हम नहीं खायेंगे। तब दैत्यने उसे भरवाकर छब्बा दिया और गीधोंसे कहा कि इसको सा जाओ। गीधोंने भी कहा कि इस कृतज्ञका मांस हम कभी नहीं खायेंगे। तदनन्तर श्रावण देवताओंने वहाँ आकर पश्चीको परोपकारी जानकर उसे जिला दिया। तब पश्ची बोला कि ‘महाराज ! इस श्रावणके लकड़े-बाले भूले मरते होंगे, इसको भी जिला दीजिये।’ इसप्रकार आग्रह करके पश्चीने श्रावणको भी जिला दिया और जन दिलाकर विदा किया। पश्चात् जब पश्चीने शरीर त्यागा तो वह ईरिलोकको गया और कृतज्ञी विश्रुत मरनेके बाद यमुनमें आकर रौरव नरकमें पढ़ा। यह तो लौकिक कृतज्ञताकी गति है, जो ईश्वरसे कृतज्ञता करते हैं, उनकी तो न मालूम क्यादशा होगी ? जिसमें सुख-दुःख, बन्ध-मोक्ष आदि सब वस्तुओंका ज्ञान होता है ऐसे मनुष्य-शरीरको पाकर मुक्तिमार्गको त्याग जो विषयोंके कश हो भवसागरके मार्गपर चलेंगे, वे अवश्य ‘आत्महा’ गतिको प्राप्त होंगे। जो जहर खाकर, पानीमें दूबकर अथवा गला काटकर मरते हैं, और जो अपने हाथ ही अपने आत्माका बात करते हैं, उनको आत्महा कहते हैं। ऐसे आत्महा जिस गतिको प्राप्त होते हैं, उसी गतिको वे कृतज्ञी प्राप्त होंगे। कहा है—

‘नृदेहमायं सुक्लं सुदुर्लभं
सुतं सुकृत्यं गुरुकर्णवारम्।
मयानुकूले नभस्वेत रितं
पुमान् भवान्विष न तंरत्स आत्महा ॥१॥

ईश्वरकी विमुक्तता तो लोक-परलोक दोनोंमें दुःखरूप है, यह बात उपर दिलाकर जब भगवान् सुक्लका मार्ग दिलाते हैं—

‘हे शुद्धासियो ! यदि तुम परलोकमें शुभ गति और इस लोकमें यश, कीर्ति, आनन्दसहित जीवन-सुख आहते हो, तो मेरे बचन सुनकर उसका सिद्धान्त हृष्टमें भारण करो। हे भाइयो ! जिसका प्रभाव वेद-पुराण गते हैं, मेरी वह भक्ति सुखद मार्ग है अर्थात् भक्ति-पव्य परिश्रम विना ही सब प्रकारका सुख देनेवाला है। कर्म, धोग, शानादिके साधनोंको तरह इसमें काण्डा के अनेक प्रकारके

क्षेत्र, परिव्रम आदि करने नहीं पड़ते। भक्तिके अवयव, कीर्तनादि सभी साधन सुखप्रद हैं।

ज्ञानकी कठिनाई—बथपि ज्ञान भी जीवका कल्पनाय करता है परन्तु ज्ञानमार्ग अगम है। विषयी, विमुख, घोषक-आदाकादि परित जीवोंकी तो उसमें गति ही नहीं है, केवल सुहृत्ति सुमुकुर्धोंकी ही गति है। उनके विषये भी अनेक प्रश्नहृत जानी चिन्ह हैं, साधन तो कठिन है ही पर साथ ही स्वभावसे सहज आवक मनको खिल रखनेका कोई देसा आचार भी नहीं है, जिसमें मन टिका रहे। साधनमें कठिनता और विज्ञ इसप्रकार है—

प्रथम साधन है वैतान्य, अर्थात् ब्रह्मोक्तकके भोग-मुखोंको तुरङ्कु जानकर त्याग देना, यही कठिन है, इसमें जोभ अनेक विज्ञ करता है। दूसरा साधन है विवेक अर्थात् देह-समवन्ध-ज्ञोकम्बवहार असार जानकर त्याग करे, आत्मसार जानकर ग्रहण करे, यह महाकठिन है, इसमें मोह-ममता अनेक विज्ञ करते हैं। तीसरा साधन पट्टसम्पत्ति है, इसमें प्रथम शाम अर्थात् वासना-त्याग, द्वितीय दम अर्थात् इन्द्रियोंको विषयसे रोकना, तीसरी उपरामता अर्थात् विषयों-से मुख मोड़ लेना, चौथी तितिचा अर्थात् दुःख-सुख समान जानना, पाँचवीं अद्वा अर्थात् गुह, वेदान्त-वाक्यमें विश्वास होना और छठी समाचार, मनकी खिलता है। ये सब अस्त्यन्त कठिन हैं, इनमें काम-कोध आदि अनेक विज्ञ करते हैं। चौथा साधन है सुमुकुर्ता अर्थात् मुकिकी उत्कट इच्छा होना, यह सबसे कठिन है क्योंकि सब साधनोंकी कठिनता और विज्ञ इसी-के अन्तर्गत हैं। इसप्रकार ज्ञानका पन्थ अगम है। यथपि माया किसीसे जीती जानेवाली नहीं है, परन्तु जीव भी तो ईश्वर-का ही अंश है, इसलिये जीवमें भी महान् शक्ति है। अपनी उस शक्तिको सेभालकर यदि कोई मनको बरबस स्वाधीन कर ले, जोक-जनोंके संगको विश्वोंका कारण जानकर उससे अलग हो, पहाड़, गुफा आदिमें असंग रहकर बहुत कष्ट करके वैराग्य ज्ञानादि साधन प्राप्त कर ले और आत्म-अनुभवको प्राप्त हो जाय, तो वह भी भक्तिसे इनी रूप्या ज्ञानी मुझे यिन नहीं है अर्थात् मैं उसकी रक्षा नहीं करता, इसलिये उसका स्वतन्त्रता निवाहना दुर्घट है क्योंकि जीवमें एकरस ज्ञान नहीं रह सकता, इसलिये जीव स्वतन्त्र नहीं है।

भक्तिकी सुलभता—‘हे पुरुषासियो ! समता, शान्ति, सम्प्रोप, वैराग्य, विवेक, ज्ञान-विज्ञानादि सकल गुणोंकी

जानि मेरी भक्ति स्वतन्त्र है अर्थात् भक्तिके होनेपर ज्ञानादि गुण आप ही आ जाते हैं। भक्त-सम्प्रोक्त संग करनेसे वे सहजमें ही प्राप्त हो जाते हैं, सल्संग विना कुछ भी प्राप्त नहीं होता, अनेक जन्मोंका पुरुष उदय हुए विना सम्प्रोक्त संग नहीं जिज्ञासा और सन्तोंका संग तुरन्त ही भवसे पार करनेवाला है, सल्संगसे भक्ति होती है और भक्ति भवसे पार करनेवाली है।

‘हे पुरुषासियो ! मन, कर्म और वचनसे ब्राह्मणोंके चरणोंकी पूजा करना सबसे बढ़ा पुरुष है। मनसे ब्राह्मणको बढ़ा माने, कर्मसे साधांग प्रशान्त करे, औंचे आसनपर बैठाये, घोड़शोपचारसे पूजन करे, भोजन-दान दे और वचनसे स्तुति करे। वेदके वचन हैं कि गाँवमें (पुरोहित), तीर्थोंमें (पवार गंगापुजा), वज्रमें, कथापरायणमें, आदमें और घृतकर्ममें विप्र पूज्य हैं। पुरुषमात्रमें दानका पात्र ब्राह्मण ही है।’

इसप्रकार भगवान् ने विग्र-पद्म-पूजाको उत्तम पुरुष बताया, फिर आगे कहने लगे—

‘हे पुरुषासियो ! जो पुरुष कपट त्यागकर भीतर-बाहरकी समान प्रीतिसे ब्राह्मणोंकी सेवा करता है, उसपर सब मुनि और देवता ग्रसम होते हैं। विष्णोंकी पूजामें देवता, मुनि, पितृ इत्यादि सभीको पूजाका भाग मिलता है। इस-लिये ब्राह्मणोंकी पूजा महापुरुष है, इस पुरुषके प्रभावसे सल्संग प्राप्त होता है और सल्संगके प्रभावसे भक्ति प्राप्त होती है।’

‘हे माइयो ! एक गुप्त मत और भी है अर्थात् विग्र-यद-पूजारूप पुरुषमें तीन ही वर्णोंका अधिकार है, ब्राह्मणोंका विशेष अधिकार नहीं है, क्योंकि स्वाक्षरता इनेके कारण वे बराबरी, छोटाई-बड़ाईके मानापमानका स्वाक्षर रखते, इस-लिये सभी भेद रखते, ब्राह्मणमात्रको कोई बढ़ा करके नहीं मानेगा, इस कारण यह पुरुषमत ब्राह्मणोंको भक्तिवायक नहीं है, केवल तीन वर्णोंके लिये ही है परन्तु समाजमें चारों वर्ण हैं अतः वह गुप्त मत सभीसे कहता है। अद्यतक तीनों वर्णोंसे पुरुष-मत कहा, अब विशेषकरके ब्राह्मणोंके लिये कहता है। यहाँ ब्राह्मणोंमें वशिष्ठादि पक्षसे एक महान् है माधुर्यमें मैं चत्रिय हूँ और ऐश्वर्यमें भी ब्रह्मवदेव कहताता हूँ, इसलिये हाथ जोड़कर कहता हूँ कि शंकरकी भक्ति किये जिज्ञासा कोई मेरी भक्ति नहीं पाता। अर्थात् अप, तप, वज्र, हृष्ण, शौच, आचार आदि करनेसे भक्ति नहीं जिज्ञासी, केवल

भक्तजनोंकी—महात्माजनोंकी सेवा करनेपर उनकी कृपासे
ही मिलती है। कहा है—

‘रहुगणैतत् तपसा न यन्ति
न चेऽया निर्विषाद् गृहादा ।
न छन्दसा नैव जलाप्रिसूर्यै—
रिना महत्पादरजोभिषेकम् ॥’
(श्रीमद्भागवत ५।१२।१२)

शंकर भक्तोंमें सर्वोत्तम महात्मा हैं इसलिये प्रथम उनकी
भक्ति करनी चाहिये, फिर वे मेरी भक्ति देते हैं।

‘हे पुरुजनो ! ज्ञान-पथका परिश्रम मैंने तुम जोगोंको
बताया। भक्तिमें कुछ भी परिश्रम नहीं है। केवल दो चार
घड़ी सन्तोंके पास बैठकर सख्संग करतेमें क्या परिश्रम है ?
विप्र-सेवामें भी परिश्रम नहीं है, वे तो केवल मधुर भोजनमें
प्रसन्न हो जाते हैं और शिवकी सेवामें तो कुछ भी परिश्रम नहीं
है, वह तो बेलपत्र और घटूरके फूलोंसे प्रसन्न हो जाते हैं, ये
सब कर्मसुगम हैं। साधनोंमें भी न अष्टांग योग करना है,
न मन्त्र-आप या पुरुचरण करना है, न पञ्चामि आदि तप
करना है, न राजसूय अश्वमेहादि यज्ञ करना है और न
चान्द्रायण्यादि व्रत ही करना है।’

‘हे पुरुचासियो ! केवल इतनाही करना है कि सरल
स्वभाव रहे, किसीसे न प्रीति करे, न वैर। सहज ही सबसे
प्रिय वचन बोले, क्रोध, ईर्ष्या, परुवचन, मान, मद, झुल,
कषट आदि कुटिक्रान्ता मनमें न रखे। शुद्ध भनको मेरे सम्मुख
करदे, जीविकार्य जो व्यापार करे, उसमें जो कुछ लाभ हो,
उसीमें सन्तोष रखे, लोभ न बढ़ावे।’

‘हे भाइयो ! मेरा भक्त कहाकर मनुष्यकी आशा
करना उद्दी मारी भूल है। जो अचला, आवचन्द लगा,
काठ-कमलहलू लेकर, त्यागी साधुका वेष बना सेठ
साहुकारादि धनियोंके इरान-इरारपर द्रव्यार्थं याचना करता
है वह मेरा भक्त कहाँ है ? वह तो मायाका ही दास है ! अथवा
मनुष्य मेरा दास कहाकर यज्ञ, पूजा-पाठ, इच्छादि सकाम
कर्म करके देवताओंसे फज लाँगे, तो उसे मेरा विश्वास
कहाँ है ? मैं चराचरकी पालना करता हूँ, फिर मेरा दास
होकर दूसरेसे क्यों याचना करे ? कहा है—

भोजनान्त्तदने चिन्ता वृथा कुर्वन्ति वैष्णवाः ।
योऽसौ विश्वमरो देवो स मकान् किमुपेष्यति ॥

और भी कहा है—

यावदन्याश्रयस्तावत् भगवानपि तं जनम् ।
विलोकयेत् कृपया द्वनन्यजनवत्सला ॥

शिवसंहितामें कहा है—

मलं स्यादन्यदेवानां सेवनं फलवाञ्छया ।
तस्मादनन्यसेवी सन् सर्वकामपराह्मुखः ॥
जितेन्द्रियमनः कार्या रामं ध्यायेदनन्यविः ।

‘हे भाइयो ! अधिक क्या कहूँ, उपर्युक्त आचरणसे मैं
प्रसन्न होता हूँ। जो ऐसा करता है, उस सन्तके मैं आर्थिन
हो जाता हूँ। वह जो कहता है, वही करता हूँ, हे भाइयो !
किसीके हितकी हानि करना ही वैरका मूल विश्रह है और
धरणी, धन, धाम, वाहन, भूषण, वसन, भोजन, पान,
गन्ध, खी, पुत्र, पौत्र, राज्य एवं स्वर्गादिको आहमें
मन लगाना आश है तथा शत्रु, चोर, सर्व ज्यामादिका भय
रखना आस है। जो भक्त या सन्त वैर, विश्रह, आशा,
आस आदि एक भी नहीं रखता और सबसे समझाव रखता
है, उस सज्जनके लिये दशाँ दिशाँ सुखमय हैं, वह जहाँ
जाय वहाँ आगम्द है।’

‘हे भाइयो ! जो लोग कर्ता बनकर किसी द्वाभाषुभ
कार्यका आरम्भ नहीं करते यानी जो ऐसा नहीं मानते कि
‘आज हम यह कर्म करेंगे’ किन्तु ऐसा मानते हैं ‘जैसी हहि-
हच्छा होगी, वही कार्य उस कालमें होगा।’ ऐसा समझकर
आप कर्ता नहीं बनते और घर भी नहीं बनाते अर्थात् घरको
आपना नहीं मानने, सिर्फ निर्वाहसे प्रबोजन रखते हैं। जाति,
विद्या, धन, रूप, वबाई, इन सबमें मन जौँचा (अभिमान) नहीं
करते, नीचे ही बने रहते हैं। जीव-हिंसादि यावत् पापकर्मोंसे
दूर रहते हैं। काँइ कैसा भी क्रोध करे आप क्रोध
नहीं करते। वेद, वेदान्त, शास्त्र, संहिता, स्मृति, उपनिषद्,
काव्य, पुराणादिका सिद्धान्त जाननेमें प्रबोज्ञ होते हैं और
विज्ञानी होते हैं यानी अपना स्वरूप, मायाका स्वरूप और
ईश्वरका स्वरूप भलीभाँति जानते हैं, ऐसे सन्तोंका सदा
संग करे क्योंकि इनकी संगतिसे ये गुण आप ही आ जाते
हैं। सज्जनोंके साथ प्रीति करनेसे त्यागी-स्वभाव उत्पन्न होता
है, त्यागी स्वभाव होनेसे मनुष्य इन्द्रिय-विषय-सुख, स्वर्ग-सुख,
अपवर्ग मोक्ष—तिनकेके समान त्याग देता है, फिर साधन
करनेका प्रयोगन ही नहीं है।’

‘हे भाइयो ! भक्ति-पदका आग्रह रखते, जैसे चन्द्रपर
चक्रो, जलपर मीन, स्वाती-विन्दुपर आतक हठ रखते हैं,

इसी प्रकार इष्ट-उपासनाकी दृष्टिके लिये अनन्यताव्रत धारण करे। जैसे उत्तम पतिव्रता अपने ही पतिको, पुरुष मानती है, दूसरे पुरुषको जानती ही नहीं, इसी प्रकार अपने हृष्टके सिवा न दूसरे हृष्टपर हृष्ट करे और न दूसरेका नाम ले। उपासनाकी दृष्टिके लिये भक्तिपदका इन रखे परन्तु शठता भी न करे अर्थात् किसी भी रूपकी निन्दा न्यूनता भी न करे और हृष्ट तर्कोंको जैसे कि 'आनकी रावणके यहाँ रही फिर राम उसे घर ले आये' इत्यादि तर्कोंकी हैं, इनको दूर बहा दे, कभी मनमें आने न दे।'

उपर्युक्त गुण सो साधन करनेपर भी हृष्ट्यंत है, फिर स्वाभाविक कैसे आ जायेंगे? इसपर भगवान् कहते हैं—

'ऐ पूर्वासियो! शक्ति, वीर्य, तेज, बल, कृपा, दया, वास्तवलयना, करुणा, सौहाद्र, सौलभ्य, शील, उदारता आदि मेरे गुणोंका मन लगाकर अवश्य-कीर्तन करे, मेरे नाममें रत हो यानी प्रेमसे मेरा नाम स्वरण करे। इसके प्रभावसे ममना, मद, मोह आदि भाग जाते हैं, और मेरे रूपमें अनुराग

होता है। मेरे रूपमें अनुराग होना ही पराभक्ति है। इस पराभक्तिके अर्थमें सुखको वही जानता है, जिसको वह प्राप्त है। उसके आनन्दमें देह-न्यवद्वारमें मन नहीं लगता, इसलिये जीव निर्विनाश होता है।'

भगवान् के असृत-सम बचन सुनकर सब पुरवासियोंने प्रश्न किया और भगवान् के बचन शिर-माथेपर धारण कर लिये।

प्रिय पाठक! इस आपके बावजूद अनुचरकी इतनी प्रार्थना है कि आप भी भगवान् के बचन ध्यानीकार करके सर्ववाके लिये सुखी हो जाएं—

कु०—जैसे कैसे भी बने, कौन्ज भगवद्वक्ति।

तनसे मनसे बचनसे, जैसा होवे शक्ति॥

जैसी हंवे शक्ति, भक्ति कर भवसे तरिये।

जन्म-मृत्युसे कृष्ट, राज्य निष्कंटक करिये॥

मोला हरिसे प्यार, करे भगवज्ञ ऐसे।

ध्यासा जलसे करे, अज्ञसे भूखा जैसे॥

श्रीराम-भाँकी

(लेखक—श्रीमत्याचरणजी 'मन्द्य' वं० ५०, विशारद)

(१)

उज्ज्वल मयङ्क रथ मञ्चुल सु-रङ्गमय
बांधी कल कलपनाका जोड़ चढ़ जायेंगे।
नुन नुन चार हार हीरक बनाने हेतु
जगमग ज्योतियुत तरे तोड़ लायेंगे॥
हंसवाहिनीके सङ्ग मानस तरङ्गणीपै
दीणाके सहस्र रसवार ही बढ़ायेंगे।
एक बार शितिजपै रास भी मचा दें हम
मनहर रामजूकी शाँकी यदि पायेंगे॥

(२)

भूधरके शृङ्गपर गन्धवाहके समान
चलदल-नृत्य नित्य नूतन दिखायेंगे।
एकड़ चपल छवि चब्बल मनोहरकी
अम्बरके छोरपर केतु फहरायेंगे॥
एक ही हुमङ्कमें समस्त विश्व-मण्डलमें
प्रलयकी क्रान्ति-चिनगारी-सी समायेंगे।
दिग बो दिगन्त को कँपादें क्षण क्षण हम
मनहर रामजूकी शाँकी यदि पायेंगे॥

तुलसी-स्तवन

(लेखक -५० आंरामसेवकजी त्रिपाठी, सम्पादक 'माझुरी')

(१)

आन आङ बक्कमें बचाई तुलसीने सूब,
दास हो रहा था हिन्दू-धर्मके सुमर्मसा।
हो रहे थे प्रबल प्रहर यवनोंके रोज़,
नाम मिटाना ही चाहता था वर्ण-धर्मका।
चोटी और चन्दन बना था जुर्म हिन्दुओंका।

'चटी और रोटी था बनाम बोटी-धर्मका।'

'मानस'की ढाल दे स्व-बन्धुओंको तूने तब—
अमर बनाया, बतलाया ज्ञान कर्मका।

(२)

ऐसा मंत्र फँका रामनामका विमुग्ध होंक,
लाखों मृतकोंमें फिरसे ये जान आगई।
तेरी भक्त-मात्रानामे, भव्य-मारतीकी मूर्ति-
अंकित हुई जो, वह दिलमें समागई।
मटक रहे थे अमसे जो भव-सागरमें,
'मानस'की नैका पार उनको लगा गई।
सुशस-पताका स्वर्गमें भी फहराती आज,
अचल सुकीर्ति विश्वमें है तेरी छा गई।

श्रीरामायण-रहस्य

(श्रीकाश्ची-प्रतिवादिभवकूरमठार्थीश्वर जगद्गुरु श्रीभगवद्गामानुज-सम्प्रदायाचार्य श्री ११०८ श्रीअनन्तान्नार्थ स्वामीजी महाराज)

**अथ आदि लौकिक प्रमाणोंसे अवेद्य अर्थोंके
नी प्राप्त जाननेका एकमात्र उपाय वेद है, इसीलिये
उसका नाम वेद यदा है।**

प्रत्यक्षेणानुभित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते ।
बत्तं विदन्ति वेदेन तस्माद्देदस्य वेदता ॥

अर्थात् प्रत्यक्ष वा अनुभितिसे जो उपाय नहीं जाना जाता, ऐसे उपायको वेदसे जाननेके कारण उसका वेदन्त है।

कर्म-ज्ञान-कार्यडात्मक वेदके अर्थोंको समझनेके लिये स्मृतीतिहासपुराणोंकी सहायता लेना आवश्यक होता है। उनकी सहायताके लिया वेदार्थ-निर्णय करना असम्भव है। अतएव कहा गया है कि—

प्रयेण पूर्वभागार्थो धर्मशास्त्रेण कथ्यते ।
इतिहासपुराणाभ्यां वेदान्तार्थः प्रकाशयते ॥

अर्थात् वेदके पूर्वभागके अर्थ प्रायः धर्मशास्त्रोंमें वर्णित है, वेदान्तका अर्थ इतिहास-पुराणोंसे प्रकाशित होता है। अस्पष्टार्थक वेदोंके अर्थोंका स्पष्टीकारण स्मृतीतिहासपुराणोंमें लिये जानेके कारण उनकी सहायता लेकर ही वेदार्थनिर्णय करना योग्य माना गया है। वेदोत्तरभागरूप वेदान्तके अर्थ निर्णय करनेमें तो इतिहासपुराणोंकी सहायता लेना अत्याकरणक माना गया है, अन्यथा घोखा खानेकी सम्भावना रहती है। इसी आशयको लेकर वार्षस्पत्य स्मृतिमें कहा गया है।

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपवृहयेत् ।
विभेद्यत्पशुताद्वदो मामयं प्रतिरिप्ति ॥

अर्थात् इतिहास-पुराणोंसे वेदोंका उपबृंहण करना चाहिये, क्योंकि वेद अल्पभूत पुरुषसे डरता है कि कहीं यह हमारी बजाना न कर दे, अतिविलक्ष नाना-शास्त्राविभक्त वेदका एकमात्रात्मक अर्थ निर्णय करना अल्पभूत नाना-शास्त्राभिष्ठ पुरुषका ही काम है, अल्पभूत पुरुष यह काम करने लगे तो सम्भव है कि भूलसे अर्थका अनर्थ कर दे। ऐसे पुरुष इतिहास-पुराणोंकी सहायतासे तयानुकूल्येन अर्थ निर्णय करें तो अल्पभूतताकी कमी पूरी हो जानेसे विफरीतार्थ करनेका भय नहीं रहता।

इतिहास और पुराण ये दोनों स्तृतियोंसे श्रेष्ठ हैं, इनके लिये काल्पनिक उपनिषद्में ‘इतिहासपुराणं पञ्चमम्’ इसप्रकार पञ्चम वेदके नामसे उल्लेख पाया जाता है। यह महात्म वेदमें सारभूत ब्रह्मकायके उपबृंहण होनेके कारण है। इतिहास और पुराण इन दोनोंमेंसे इतिहास प्रबल है, क्योंकि पुराणोंके समान वेदतापश्चात् इतिहासोंमें नहीं है। सास्त्रिक, राजस, तामस-भेदसे भिन्न षट्काव्य-विभक्त पुराण भिन्नदेवता-महात्म-प्रतिपादक माने जाते हैं। यथा—

अंग्रेदिवावस्य माहात्म्यं तामसेषु प्रकृत्येति ।
राजसेषु तु कल्पेषु माहात्म्यं ब्रह्मणो विदुः ॥
सात्त्विकेषु च कल्पेषु माहात्म्यमधिकं हरेः ॥
यस्मिन्कल्पे तु यत्रोक्तं पुराणं ब्रह्मणा पुरा ।
तस्य तस्य तु माहात्म्यं तत्स्वरूपेण वर्ण्यते ॥

(मन्त्रपुण्ड्र)

पुराण सुख्यतया पाँच विषयोंके प्रतिपादक होते हैं। सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित ये पुराणोंके मुख्य विषय हैं—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पव लक्षणम् ॥

यह पुराणोंके लक्षण हैं : इतिहासोंमें इसप्रकार प्रतिपाद्य विषय सीमाबद्ध नहीं है। नानार्थप्रतिपादक इतिहास होते हैं। पुराणापेहवा इतिहासका महत्व ‘इतिहासपुराणं पञ्चमम्’ ‘इतिहासपुराणाभ्याम्’ इसप्रकारके नामनिवेदियोंसे ही आलूम हो जाता है। इतिहासपुराण यह समस्त पद है, इतिहास-शब्दकी अपेक्षा पुराण शब्दमें कहम ‘अच्छ्’ अद्वार है। अतएव ‘अल्पाच्छरंपूर्वम्’ इस व्याकरण-विधिके अनुसार कहम अच्छालाला पुराण शब्द इतिहास शब्दसे पहले आगा चाहिये, परन्तु आया है पीछे, इसका कारण इतिहासका अद्वार है, क्योंकि ‘अभ्यर्हितं पूर्वम्’ इस दूसरी व्याकरण-विधिके अनुसार अधिक अच्छाला होनेपर भी अभ्यर्हित (श्रेष्ठ) का नाम पहले आ सकता है। इसी विधिके अनुसार ‘इतिहासपुराणम्’

कल्याण



‘सोहे राम-सियाकी जोरी’ ।

इसप्रकार निवेदा हुआ है, इससे सिद्ध है कि उराजकी अपेक्षा इतिहास श्रेष्ठ है ।

आयोंके इतिहास-ग्रन्थ मुख्यतया दो माने गये हैं, एक श्रीरामायण और दूसरा महाभारत । इन दोनोंमें श्रीरामायणका स्थान ऊँचा है । महर्षि वाल्मीकिका तपः-प्रभाव खोकपसिद्ध है । वे आविकवि कहलाते हैं, ब्रह्माजी तक उनको बहुमानको इहिस देखते थे ।

वाल्मीक्ये महर्ष्ये सनिदेशासनं ततः ॥

श्रीरामायणका यह इकोक इसका प्रभाव है । अहाजी जब वाल्मीकिके आश्रममें पहुँचे थे, तो उन्होंने वाल्मीकिजीको आसन-दानसे सम्मानित किया था । उनको ब्रह्माजीका यह बरदान निकाया था कि श्रीरामायणमें वे जो लिखेंगे, उसमेंसे एक बात भी मिथ्या न होगी ।

न ते वाग्नृता काव्ये कविदत्र भविष्यति ॥

इससे यह सिद्ध है कि श्रीरामायण सत्यार्थप्रतिपादक है ।

श्रीरामायणका जितना अधिक लोकप्रिय है उतना दूसरे किसीका नहीं, यह बात आज भी अनुभवसे सिद्ध होती है । नाना-फल-सिद्धिके लिये लोग श्रीरामायणका पाठ किया करते हैं । विद्वानोंके इसके अनेक प्रकारके प्रयोग मालूम हैं । वक्तु-वैलभय, अधिक लोक-प्रियर्ह, अवतार-वैलभय इन सबसे श्रीरामायणका महत्व अधिक है । श्रीरामायणका अवतरणक्रम भी विचित्र है । यह श्रीरामायणके प्रारम्भमें वर्णित है । मात्याद्विक-ज्ञानके लिये जाते हुए श्रीवाल्मीकिजीके सामने न्यायका बाणसे क्रौञ्च-पत्नीको मारना, क्रौञ्ची (की-पड़ी) का विलाप, इस दृश्यके देखनेसे कल्पणाद्वय श्रीवाल्मीकिजीके भुखसे श्लोकका निकलना, योद्धी ही देरके पश्चात् ब्रह्माजीका वाल्मीकिके आश्रममें आकर यह कहना कि 'मच्छन्दादंव ते ब्रह्मन् प्रवृत्तेयं सरस्वती ।' ब्रह्माजीका श्रीरामायण रचनेकी आज्ञा वाल्मीकिजीको देना, भूत, भविष्यत् समझ रामचरित-ज्ञान-काभका बरदान, रामायणमें वर्णित किसी भी विशेषके मिथ्या न होनेका वर, यह सब रामायणावतरणके पूर्व कालकी घटनाएँ हैं । इनके विचारसे श्रीरामायणका महत्व हृदयकृत हो जाता है ।

श्रीरामायणका महत्व इस बातसे स्पष्ट होता है कि इसको वेदका रूपान्तर कहकर आचीनोंने प्रशंसा की है । जैसे महाभारतको पश्चात् वेद कहकर महत्व दिया जाता है, जैसे ही इसको वेदका रूपान्तर कहकर दिया जाता है । यथा—

वेदवेदे परे पुंसि जाते दशरथात्मजे ।

वेदः प्राचेतसादासीत्साक्षाद्रामायणात्मना ॥

अर्थात् वेदप्रतिपाद्य परम पुरुष जब दशरथके पुत्र हुए, तब वेद भी प्राचेतस-वाल्मीकिके द्वारा रामायणके रूपमें प्रकट हुआ ।

श्रीरामायण के वेद इतिहास ही नहीं है, किन्तु काव्य भी है, आविकाव्य होनेका गौरव इसीको प्राप्त है—

आदिकाव्यमिदं त्वार्थं पुरा वाल्मीकिना कृतम् ।

यह आदिकाव्य इसकिये है कि इसके पूर्व वेदको छोड़ कर संस्कृतकी व्यावहारिक भाषामें छन्दोवद् कोई ग्रन्थ ही नहीं था । महर्षि वाल्मीकिके सुखसे ही चतुर्सुख अहाजीकी इच्छासे संस्कृतका छन्दोवद् श्लोक सर्वप्रथम निकला था ।

इसप्रकार श्रीरामायण इतिहास सुहृत्समित छोड़के साथ ही काम्तासमित भी होकर पाठकोंका महान् उपकार करता है । श्रीरामायण इतिहास होनेके कारण सुहृत्के समान पाठकोंको 'रामादिवदान्तिवर्यं न रावणादिवत्'-उपदेश देकर जो उपकार करता है, रमणीयार्थप्रतिपादक व्यन्यलङ्घार-प्रसुर सुन्दर काव्यरूप होनेके कारण कान्ताके समान र अन करता हुआ अभिमानी मनुष्योंको भी सम्मार्गमें लाकर महान् ज्ञान पहुँचाता है ।

श्रीरामायणमें नाना छन्दके श्लोक नाना प्रकारके शब्दालङ्घार और अर्थालङ्घार स्थान-स्थानपर सञ्चितिष्ठ हैं । वर्णनशैली अत्यन्त सुन्दर है । सुन्दरकाशदमें इस बातका अनुभव हम जोगोंको मिलता है ।

श्रीरामायण इतिहास होनेके कारण वेदान्त-भागका उपर्युक्तरूप है, यह कहनेकी आवश्यकता ही नहीं रही । अतएव वेदान्तप्रतिपाद्य अर्थोंका इसमें वर्णन होना आवश्यक है । यह बात—'वेदोपवृद्धार्थार्थ्यं ताव्यादियत प्रसुः ।' इस श्लोक-से स्पष्ट हो जाती है । यहाँ हम रामायणप्रतिपाद्य अर्थोंमें सुख सुख अर्थोंका वर्णन करेंगे ।

वेदान्त अर्थात् वेदका व्रह्मकाशद परतरशका प्रतिपादक है, यह सबको मालूम है । लक्षणापुरस्सर परब्रह्मका निरूपण वेदान्त-भागमें है । श्रीरामायणमें वह परब्रह्म कौन-से देवता है ? इसका विर्याय किया गया है ।

शास्त्रतात्पर्य-निर्णयके लिये सात लिङ्ग माने गये हैं, जिस अर्थमें वे सातों लिङ्ग अनुकूल हों वही शास्त्रतात्पर्य विषयभूत माना जायगा ।

उपक्रमोपसंहारावभ्यासोऽपूर्वता फलम् ।

अर्थवादोपपत्ति च लिङ्गं तात्पर्यनिर्णये ॥

शास्तात्पर्य-निर्णयके लिये उसका प्रारम्भ और अन्त देखा जाता है। वहाँ जिस अर्थका वर्णन हो वह तात्पर्यर्थ माना जाता है। जिस शास्त्रमें वारंवार जिस अर्थका वर्णन आया हो, वही उसका तात्पर्यर्थ है। जो अर्थ अपूर्व हो, जिसका फल कहा गया हो, जिसकी प्रशंसा की गयी हो, जिसमें सर्व प्रकारकी उपपत्तियाँ हों, वही तात्पर्यर्थ है।

श्रीरामायणके आदिमें बालकायडके पन्द्रहवें सर्गमें श्रीविष्णु भगवान्के परत्वका वर्णन आया है—

पतस्मिन्नन्तरे विष्णुहपयातो महाशुतिः ।

शङ्खचक्रगदापाणिः पीतवासा जगत्पतिः ॥

इस श्लोकमें महाशुतिः ‘पीतवासा’ और ‘जगत्पतिः’ ये तीन शब्द परत्वके सूचक पढ़े हुए हैं। परज्योतीरुपत्व, पीतवासस्त्र और जगत्पतित्व ये परमात्माके असाधारण धर्म हैं।

तमनुवन्सुरास्तर्वे समभिष्टूय सक्तातः ।

इस श्लोकमें समस्त देवतन्त्वत्व समस्त देवस्तुत्वत्व ये परमात्मधर्म कहे गये हैं।

अवधं दैतैस्तर्वेस्समरे जहि रावणम् ॥

इस श्लोकमें सर्वदेवाऽत्वत्व रावणवध-सामर्थ्य विष्णु भगवान्का बताया गया है।

वधार्थं वयमायातात्त्वत्वं वै मुनिमिः सह ।

सिद्धगन्वर्यक्षाश्च ततस्त्वां शरणं गताः ॥

सर्वदेवतारवत्यत्वरूप परमात्मधर्म बताया गया है। इस-प्रकार उपक्रममें विष्णु-परत्वका वर्णन आया है।

उपसंहारमें उत्तर-रामायणके अन्तमें—

अथ तस्मिन्मुद्भूते तु ब्रह्मा लोकपितामहः ।

सर्वं परिवृतो देवैः ऋषिभित्र महात्ममिः ॥

आपसौ यत्र कानुस्त्वः स्वर्णीय समुपस्थितः ॥

इन श्लोकोंमें सर्वदेवाभिगम्यत्व बताया गया है।

आगच्छ विष्णो भद्रं ते दिष्टथा प्राप्तोसि राघव ।

आतृतिः सह देवैः प्रविशस्ता स्वकान्तनुम् ॥

यामिच्छसि महाबाहो तान्तनुं प्रविश स्वकाम् ।

वैष्णवीं तां महतंजो यद्वाकाशं सनातनम् ॥

ब्रह्माकी इस उकिमें श्रीरामरूप विष्णुका आकाश-शब्दवात्म वरब्रह्ममें प्रवेश बताया गया है।

त्वं हि लोकगतिर्वीर न त्वं केचित्प्रजानते ।

श्रहते माया विशालाक्षीं तव पूर्वपरिग्रहम् ॥

त्वामचिन्त्यं महद्भूतमश्रमं आजरं तथा ॥

पितामहकी इस उकिमें सर्वलोकातित्व, अशेषत्व, अचिन्त्यत्व, महाभूतत्व ये परमात्मासाधारण धर्म रामस्त्री विष्णुके बताये गये हैं। अतएव विष्णुका परत्व सिद्ध होता है।

युद्धकायडके अन्तमें भी—

ततो वैथ्रवणो गजा गमश्चाभित्रकर्तीनः ।

सहस्राशो महेन्द्रश्च नरणदच परंतपः ॥

घर्धनयनः श्रीमान् महोददो नृष्ठवजः ।

कर्ती सर्वस्य लोकस्य ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः ॥

पंतं सर्वे समाप्तम्य विमानेस्तूर्यसक्षिमः ।

आगम्य नगरी लक्ष्मीमित्रमुखं राशवम् ॥

इन श्लोकोंमें रावण-विष्णुका सर्वदेवाभिगम्यत्व बताया गया है।

कर्ती सर्वस्य लोकस्य श्रेष्ठो ज्ञानवतां वरः ।

देवताश्रोकी इस उकिमें सर्वलोक-कर्तृत्वरूप जगत्कारणत्व ब्रह्मासाधारण धर्म राघवरूपी विष्णुमें बताया गया है।

त्रयाणां त्वं हि लोकानामादिकर्ता स्वयम्प्रभः ।

इस श्लोकमें भी सर्वलोककर्तृत्व बताया गया है।

अन्ते चादौ च लोकानां दद्यसे त्वं परंतप ।

इस श्लोकमें भी रामका परब्रह्म-सद्ब्रह्म जगत्कारणत्व बताया गया है।

अश्वरं ब्रह्म सर्वं च मध्ये चान्ते च राघव ।

इस चतुर्सुखकी उकिमें इष्ट ही रामको अक्षरब्रह्म बताया है।

‘प्रभवश्चाव्यय त्वम्’ ‘शरणं शरणं च त्वामाकुदिद्या महर्षयः’ ‘त्वं त्रयाणां हि लोकानामादिकर्ता’ ‘स्वयम्प्रभुः’ ‘पूर्वजः’ न विदुः को भवानिति’ ‘दद्यसे सर्वभूतेषु’ ‘त्वं भारयसि भूतानि’ ‘संस्कारासंडभवनवेदाः’ ‘न तदस्ति त्वया विना’ ‘जगत्सर्वं शर्वरं ते’ इन वाक्योंमें परब्रह्मासाधारण धर्म-सर्व-जगत्कारणत्व, सर्वशरणत्व, स्वप्रब्रह्मत्व, अशेषत्व,

सर्वभूतान्तर्यामित्य, सर्वधारकल, वेदसंस्कारक्षय, अनन्तत्व, सर्वशरीरक्षय आदि श्रीरामरूपी विष्णुमें बताये गये हैं।

इस बातका भी रामायणमें वारंवार अभ्यास यानी कहन है। बालकाशडमें ‘अधिकं मेनिरे विष्णुं देवास्तर्पिण्यास्तथा’ इसमें सर्वाधिकरब कहा गया है। अयोध्याकाशडके—‘अर्थितो मानुषे लंके जंदे विष्णुमनातनः’ इस श्लोकमें सनातनत्व बताया गया है। आरथ्यकाशडके ‘अप्रमेयं हि तत्तेजो यस्य सा जनकायजा’ इस श्लोकमें अप्रमेय तेजोरूपत्व बताया गया है। किञ्चिन्नां काशडके—

त्वमप्रमेयश्च दुरासदश्च जितेन्द्रियश्चात्मवार्यिकश्च ।

अक्षयकीर्तिश्च विचक्षणश्च किंतु क्षमावान्क्षतजोपमाक्षः ॥

—इस श्लोकमें अप्रमेयत्व तत्तेजोपमाक्षत्व ये दो असाधारण व्रश्चलक्षण बताये गये हैं। सुन्दरकाशडके—

ब्रह्मा स्वयम्भूतुराननो वा

रद्धिनेत्रविपुरान्तको वा ।

इन्द्रो महेन्द्रसुरनायको वा

त्रातुं न शक्ता युधि रामवध्यम् ॥

—इस श्लोकमें सर्वसंहृत्यं त्वं मुखेन परब्रह्मत्व बताया गया है।

विष्णुका परत्व प्रमाणान्तरावेद्य होनेसे अपर्वता भी है।

आराम-भक्तोंका भगवत्सालोक्य मिलता है, यह बात रामायणके अन्तमें कही गयी है, अतएव फल भी है।

बाल-काशडमें—‘इमे द्वे धनुषी श्रेष्ठे’ हृत्यादिसे अथवाद कहा गया है। ‘जन्मितं तदसुर्दृष्ट्वा शंखं विष्णुपराक्रमः। अधिकं मेनिरे विष्णुं देवास्तर्पिण्यास्तथा’। हृत्यादि अन्थमें विचारपूर्वक विष्णुके श्रेष्ठवक्ता निर्णय देवताओंने किया है, अतएव उपर्युक्त भी वर्तमान है।

इसप्रकार पद्मविष तात्पर्य लिङ्गोंसे श्रीरामायणमें विष्णु-यस्य प्रतिपादन होनेसे वेदान्त-वेद्य परब्रह्मका स्वरूप निश्चय होता है।

इसप्रकारका परतत्व किस डणावसं प्राप्त होता है, यह बात भी श्रीरामायणमें वर्णित है। वह डणाव है शरणागति। परब्रह्म परमात्माकी प्राप्तिका डणाव वेदान्तोंमें शरणागति ही बताया गया है। यथा—

यो ब्रह्माण विदवाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिष्णेति तस्मै ।

तं ह देवमात्मनुद्दिप्रसादं मुमुक्षुवै शरणमहं प्रपद्ये ॥

(भेत्राश्वर उ० ६।१८)

इस रवेतारबतरोपनिषद्के मन्त्रमें मुमुक्षु-पुरुषोंको शरणागति कर्तव्य बताया गया है। इसी शरणागतिका वर्णन श्रीरामायणमें है। शरणागति सर्वकलसाधन है। इसके अधिकारी भी अनेक प्रकारके होते हैं। आरम्भसे खेळर अन्ततक श्रीरामायणमें शरणागति-उपायका वर्णन कई स्थलोंमें आया है।

बालकाशडमें—

देवगन्धर्वयक्षाश्च ततस्त्वां शरणं गताः ।

इस श्लोकमें रावण-प्रधरूप फलार्थी देव-जातियोंकी शरणागतिका वर्णन है।

त्रिशकुके वृत्तान्त और शुनःरोपके वृत्तान्तसे शरणागत-रहस्य परमधर्म बताया गया है और गुणीके विषयमें शरणागति करनेसे फल अवश्य मिलता है, यह बात भी बतायी गयी है।

अयोध्या-काशडमें—

स भ्रातुश्चरणौ गाढं निरीक्ष्य रघुनन्दनः ।

सीतामुवाचातियशा राघवं च महाब्रान्म् ॥

इस श्लोकमें लक्ष्मणकी शरणागति कही गयी है।

शिश्ये पुरस्तच्छालया शावन्मे न प्रसीदति ॥

इस श्लोकमें भरतकी शरणागतिका वर्णन है।

आरथ्य-काशडमें—

ते वयं भवता रक्षा भवद्विषयवासिनः ।

नगरस्यो बनस्यो वात्वं नो राजा वयं प्रजाः ॥

इस श्लोकमें महर्षियोंकी शरणागतिका वर्णन है।

स तं निपतिं भूमौ शरण्यदशरणागतम् ।

ववाहमपि काकुत्स्थः कृपया पर्यपालयत् ॥

स पित्रा च परित्यक्तसुरैव धरमर्धिभिः ।

तीन्लोकान् समपरिक्रम्य तमेव शरणं गतः ॥

इन श्लोकोंमें काककी शरणागतिका वर्णन है।

किञ्चिन्नां काशडमें—

कृतपागधस्य हि ते नान्यतपश्याम्यहं हितम् ।

अन्तरेणाज़िलि बद्ध्वा लक्षणस्य प्रसादनात् ॥

इस श्लोकमें सुभ्रीवकी शरणागतिका वर्णन है।

सुन्दर-काशडमें—

मित्रमौपथिकं कर्तुं रामस्स्थानं परीप्सता ।

वयं चानिच्छता धोरं त्वयासौ पुरुषर्वमः ॥

विदितस्स हि र्घमशशरणागतवत्सलः ।
तेन मैत्री भवतु ते यदि जीवितुभिच्छसि ॥
इन शोकोंमें जानकीजीका उपवेश रावणको शरणागति
उननेके विषयमें हुआ है ।

युद्धकावडमें—

सोहं पशवितस्तेन दासवशावमानितः ।
यक्त्वा पुश्टांश्च दारांश्च राधं शरणं गतः ॥
इस शोकमें विभीषणकी शरणागतिका वर्णन है ।
तत्सागरवेण्यां दर्भानास्तांश्च राधः ।
अजलिं प्राड्मुखः कृत्वा प्रतिशिश्ये महोदेवः ॥

इस शोकमें श्रीरामचन्द्रकी शरणागतिका वर्णन है ।
इसप्रकार नानविषय फलापेनी युरुचोंकी शरणागतिका वर्णन
करते हुए उन लोगोंकी फलसिद्धिका वर्णन करनेसे मोह
रूपी फलके लिये भी शरणागति ही सुख्य उपाय है—यह
बात सूचित हुई ।

उपाय दो प्रकारके होते हैं—सिद्धोपाय और साध्योपाय ।
मोहके लिये सिद्धोपाय ईश्वर है और साध्योपाय भक्ति
आदि हैं । ईश्वर सिद्ध उपाय होनेपर भी उनका उपायत्वेन
इह आवश्यकताके साथ बरण करना आवश्यक है—यही
शरणागति है । शरणागतिमें प्रधान शरण वस्तु है,
शरणागतिकी सफलताके लिये पुरुषकारकी आवश्यकता है,
अतएव वह अङ्गभूत है ।

मोहरूप परम पुरुषार्थ-सिद्धिके लिये जो शरणागति की
जाती है, वह यदि आवश्यक समस्त गुणपूर्ण व्यक्तिके विषयमें
को जाय, तभी सफल होती है, अन्यथा श्रीरामचन्द्रजीकी
समुद्रदेव-शरणागतिके समान निष्फल होती है । श्रीराम-
कृत समुद्र-शरणागतिके निष्फल होनेका कोई कारण है तो
यही है, और कोई नहीं ! श्रीरामचन्द्र भगवान्ने जो
समुद्रकी शरणागति की थी, उसमें किसी प्रकारकी त्रुटि
नहीं दिखायी जा सकती उसमें करनेवालोंकी ओरसे कोई
आमाव नहीं बतलाया जा सकता । शरणमें जिन गुणोंका
होना आवश्यक है, समुद्रमें उन गुणोंके अभावके कारण
ही, वह शरणागति निष्फल हुई । अतएव मोहार्थ-शरणागति
जिन परमात्माके विषयमें करनी चाहिये, उनका समस्त
गुणपूर्णत्व श्रीरामायणमें विस्तारके साथ वर्णित हुआ है ।
श्रीरामरूपसे अवतीर्ण्य परमात्मा श्रीमत्तारावश्यके गुणोंका
वर्णन श्रीरामायणभरमें सर्वत्र ही मिलेगा ।

वास्तल्य, सौशील्य, सौख्यम्, शान, शक्ति आदि
जिन मुख्य गुणोंकी आवश्यकता शरणमें होती है उनका
श्रीरामचन्द्र भगवान्नमें होना श्रीरामायणमें अनेक शब्दोंमें
स्पष्ट वर्णित है ।

वास्तल्यगुण—दोषमोम्यत्वं या दोषादर्शात्वको कहते हैं,
दूसरोंके दोषोंको गुणके रूपसे अहम्य करना आथवा दोषों-
को न देखना यही वास्तल्य है । युद्धकावडके १८ वें सर्गमें
श्रीरामचन्द्र भगवान् कहते हैं—

मित्रमादेवं सम्प्राप्तं न लजेयं कथञ्चन ।
द्वंषो यद्यपि तस्य स्पातस्तामेतदगर्हितम् ॥

अर्थात् जो मित्रभावसे आवे, उसको मैं किसी हालतमें
नहीं छोड़ सकता, उसका चाहे कोई दोष ही कर्तों
न हो, सपुरुषोंके लिये वह निन्दनीय नहीं है । यह उक्ति
श्रीरामचन्द्र भगवान्के वास्तल्य-गुणका प्रमाण है ।

महान् पुरुषका अपनेसे छोटे पुरुषोंके साथ अभिज्ञ
भावसे मिलनसार स्वभावका नाम सौशील्य है । यह गुण
श्रीरामचन्द्रजीमें वर्तमान था । इसके कहै प्रमाण हैं ।
अयोध्याकावडमें श्रीरामके गुणोंका वर्णन करते हुए अयोध्या-
वासी जन दशरथके सामने कहते हैं—

संग्रामात्पुरनामयं कुञ्जरेण रथेन वा ।
पौरान् स्वजनवित्तं कुशलं परिपृच्छति ॥
व्यसंनेषु मनुष्याणां मृशं भवति दुःखितः ।
उत्संवपु च सर्वेषु पितेव परितुष्यति ॥

अर्थात् श्रीराम जब दण्डयात्रासे लौटकर आते हैं तब
नगरवासियोंसे स्वजनके समान कुशल-प्रश्न करते हैं ।
नगरवासियोंके हुःस देखकर स्वयं हुःकित हो जाते हैं । उनके
उत्सवमें जैसे पिता पुत्रके उत्सवमें सन्तुष्ट होता है वैसे
सन्तुष्ट होते हैं ।

निषाव गुहके साथ श्रीराम किसप्रकार मिलते थे यह
बात—‘भुजाभ्यां साधुवीनाभ्यां पीडयन्वाक्यमन्वीत’ इस शोकसे
स्पष्ट हो जाती है । अपनी भुजाओंसे गुहको आर्द्धिगन
करते थे । श्रीविमीषणको अङ्गीकार करनेके पश्चात् उनके
साथ भगवान् रामचन्द्र इसी प्रकार मिले थे—‘इति त्रुवाणं
रामस्तु परिष्वय विभीषणम् ।’ विभीषणका भी आर्द्धिगन
रामचन्द्रने किया था । वह सुशीलताका ही कारण है ।

श्रीरामचन्द्रका सौख्यगुण सब विदित है । ‘सर्वदा-
भिगतस्सद्विदीनात्मा विनक्षणः ।’ यह शोक सौख्यगुणका

प्रमाण है। इसमें कहा गया है कि सुखुरुप सर्वदा उनके पास पहुँचते रहते थे।

भगवान् श्रीरामचन्द्रका ज्ञान 'बुद्धिमत्तिमानाभ्यम्' 'थशस्वा ज्ञानसम्पदः' 'वेदवेदाहृतस्वतः' 'सर्वज्ञार्थतस्वतः स्मृतिमान्प्रतिभानवान्' इत्यादि स्त्रियोंमें उहसित हुआ है।

भगवान् श्रीरामचन्द्रकी शक्ति-भवद्वितष्ठटनासामर्थ्य उनके चरित्रमें अत्र-तत्र देखने योग्य है। काकासुरको आवदान करना, सुग्रीवकी रक्षा करना, अहस्याका उदाहरण जटायुको मोष देना अयोध्यावासी जन्मुमात्रको साम्नाविक बोक पहुँचाना, समुद्रको प्रश्नभित करना इत्यादि कार्य उनकी शक्तिके निर्दर्शन हैं।

शरणघुणवर्णनके साथ पुरुषकार-स्वरूपका भी वर्णन श्रीरामायणमें हुआ है। सुमुकुर्द्धोंकी भगवद्वरणागतिमें श्रीमहालक्ष्मीजी ही सुख्य पुरुषकार होती है। श्रीरामायणमें श्रीजानकीजीके पुरुषकारस्तोपयुक्त गुणोंका वर्णन विशेषरूप से हुआ है। पुरुषकारमें रक्ष्य और रक्षक दोनोंके साथ विशेष सम्बन्धकी आवश्यकता होती है। जानकीजीके रूपमें अर्थात् श्रीमहालक्ष्मीजीमें भगवान्के साथ पद्मीत्व-सम्बन्ध और चेतनोंके साथ मातृत्व-सम्बन्ध वर्तमान है। अतएव महालक्ष्मी अत्यर्थ पुरुषकार मानी गयी हैं। उनके पुरुषकारत्वोचित गुणोंका वर्णन श्रीरामायणमें है।

जैसे श्रीरामायण श्रीरामचरित्र-वर्णनपर है वैसे ही श्रीसीता-चरित्र-वर्णनपर भी है। अतएव इस काम्यका नाम सीताचरित भी है। वात्म-कायदके लिये सर्वमें—

कार्यं रामायणं कृत्स्नं सीतायाश्चरितमहत् ।

समग्र रामायणको सीताका चरित बताया है। पुरुषकार होनेमें कृपा, परतन्त्रता, अनन्यार्थत्व हन तीन गुणोंकी आवश्यकता होती है। श्रीजानकीजीमें ये तीनों गुण विशेषरूपसे वर्तमान थे। इस बातका वर्णन श्रीरामायणमें है।

श्रीजानकीजीका लक्ष्मीमें अशोकवनिकामें बन्दिनीके रूपसे वस महीने रहना ही उनकी कृपाका सूचक है। जैसे भगवान्का रामावतार देवताओंके कष्ट-निवारणार्थ हुआ और उनका बनवास दुखी मर्हियोंके दुःख-निवारणार्थ हुआ, इसी प्रकार श्रीमहालक्ष्मीजीका ज्ञवतार भी चेतनोदारके लिये ही हुआ था, और अयोध्याविकावास वन्दीकृत देवादि स्त्रियोंके उदाहरणके लिये ही हुआ। कृपा या दया दूसरोंके दुःखोंको देख स्वर्वं दुर्लभ होनेको कहते

हैं।

देवतियोंके दुःखसे कृपिनी हो स्वयं तत्समान भावसे बन्दिनी बन उनके दुःखोंके निवारणके लिये अशोकवनिकामें वास करना आपको कृपाका ही कार्य है। श्रीजानकीजी असमर्थता हें कारण बन्दिनीके रूपमें अशोकवनिकामें वास करती थीं—ये सा कहाना उनके सामर्थ्यसे अनभिज्ञोंकी उक्ति है। श्रीजानकीजी चाहतीं तो रावणको भस्म कर सकती थीं। श्रीजानकीजीने रावणके प्रति इस बातको स्पष्ट शब्दोंमें कहा भी है—

असन्देशात् रामस्य तपसश्चानुपालनाऽ ।

न त्वा कुर्ति दशाश्रीव भस्म भस्माहंतेजसा ॥

अर्थात् 'श्रीरामकी आज्ञा न पाने और तपस्याके रक्षाकी इच्छासे ही मैं तुमको अपने तेजसे भस्म नहीं करती हूँ।' इससे ज्ञानित है कि 'नहीं तो कर देती।' श्रीहनुमान्के पैरङ्कमें जबते हुए अविनको शीतल करनेके लिये जो जानकीजी अविनको 'रातो भव हनुमतः' कहकर आज्ञा देनेका सामर्थ्य रखती थीं, व्या उनमें 'भरभी कुरु दशाश्रीवम्' कहनेका सामर्थ्य नहीं था ? जानकीजीका बन्दीवास ही उनके द्वया आदि गुणोंका सूचक है।

संसारी चेतनोंके दुःखोंको देख असहिष्य हो, उनके दुःखोंके निवारण करनेके लिये स्वयं पुरुषकार बन ईश्वरसे प्रार्थना कर समस्त अपराधोंकी ज्ञान करवाकर उनके उदाहरण क्रयन करनेके लिये कृपाकी आवश्यकता होती है।

स्वतन्त्र परमामाको अपने वशमें कर उनसे चेतनोंका कार्य करा देनेके लिये ईश्वरानुवर्तन करनेकी आवश्यकता होती है। अतएव भगवत्परतन्त्रतारूप गुणकी भी आवश्यकता पुरुषकारमें है। भगवान् इनके वचनसे चेतनोंका उदाहर कर दें, इसके लिये अर्थात् इनके वचनानुसार कार्य करनेके लिये अनन्यार्थताकी भी आवश्यकता होती है। भगवान् जिनको अपने परतन्त्र समझें और अनन्यार्थ समझें उनके वचनोंके अनुसार कार्य करना उनके लिये आवश्यक हो जाता है। अतएव परमामाको वशमें करनेके लिये पारतन्त्र और अनन्यार्थ इन दो गुणोंका पुरुषकारमें होना आवश्यक है। श्रीजानकीजीके ये दोनों गुण श्रीरामायणमें दो घटनाओंके द्वारा प्रकटित हुए हैं।

हितीय बार जब जानकीजीको श्रीरामवियोग हुआ, अर्थात् श्रीरामचन्द्रजीने जानकीजीका परित्याग किया, तब ज्ञवतारीजीके द्वारा वनमें छोड़ी जानेके बाद अत्यन्त शोकाकुञ्ज श्रीजानकीजी शरीर त्याग करनेका इच्छा होनेपर

भी केवल भर्तु-परतन्त्रताके कारण ही जीवित रही। जन्मताके प्रति श्रीजानकीजी कहती है—

न खल्वदैव सौमित्रं जीवितं जाह्नवीजले ।
लगेयं राजवंशस्तु भर्तुर्मा परिदास्ति ॥
पतिर्हि दैवतं नार्यः पतिर्बन्धुः पतिर्गतिः ।
प्रणैरपि प्रियं तस्माद्गृह्युः कार्यं विशेषतः ॥

अर्थात् 'हे जन्मता ! अभी मैं गंगाजलमें दूषकर प्राण क्षोड देती, किन्तु मेरे पतिका राजवंश नष्ट हो जायगा, इसलिये मैं ऐसा नहीं करती। जीके लिये पति देवता है, पति ही बन्धु है, पति ही गति है, अतएव प्राण देकर भी पतीको भर्ताका प्रिय-साधन विशेषरूपसे करना चाहिये।' इससे यह बात स्पष्ट है कि जानकीजी इतनी पति-परतन्त्र थीं कि अपनेहुँसे तूर करनेके लिये प्राण भी नहीं क्षोड सकती थीं।

सीसरी बार जब सर्वथा भूखोकसे ही जानकीजी अन्तर्हित हो गयीं, उस समयकी जानकीजीकी डक्किसे उनकी अनन्याहंता स्पष्ट हो जाती है। भरी सभामें श्रीरामचन्द्रजीके सामने श्रीजानकीजी खड़ी हैं, श्रीवाल्मीकीजीने जानकीजीके शुद्धताके विषयमें शपथ की, तब श्रीरामचन्द्रजीने कहा कि 'भगवान् श्रीवाल्मीकि जानकीको शुद्ध बता रहे हैं, उनके वचनसे मुझे इनकी शुद्धतामें पूरा विश्वास है, किन्तु सर्वसाधारण जनसमुदायके सामने जानकी अपनी शुद्धताका परिचय दें, जिससे कि लोगोंको विश्वास हो जाय।' इसके बाद श्रीजानकीजी हाथ जोड़े हुए नीचे देखती हुई शपथ करने लगीं—

यथाहं राघवादन्यं मनसापि न चिन्तये ।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुर्महति ॥
मनसा कर्मणा वाचा यथा रामं सर्वमर्जये ।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुर्महति ॥
यैवतस्तस्यमुक्तं मे वेद्धि रामात्परं न च ।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुर्महति ॥

अर्थात् 'यदि मैं राघवसे अन्यका मनसा चिन्तन भी नहीं करती होऊँ तो माधवी देवी मुझे जगह दें। यदि मैं मन, वाणी, शरीरसे रामहार्की अचंका करती होऊँ तो माधवी देवी मुझे जगह दें, रामसे अन्यको मैं जानती ही नहीं, मेरी यह बात यदि सत्य है तो माधवी देवी मुझे जगह दें!' श्रीजानकीजीको इन शपथोक्तियोंमें कैसी अनन्यता भरी हुई है, यह स्पष्ट है।

इसप्रकार उपायभूत परमात्मा रामरूप श्रीमकारायण

और पुरुषकारभूता जानकीरूप श्रीमहावाल्मीजीके उपायत्वोंसे-युक्त और पुरुषकारत्वोपयुक्त गुणोंके वर्णनके द्वारा शरणागति-की प्रधान दो वस्तुओंका प्रतिपादन श्रीरामायणमें होनेके कारण वेदान्तके उस भागकी व्याख्या भी हो गयी।

मुख्यभूतोंको वेदान्तोदित उपायके अनुष्ठानसे जो फल मिलता है, उसका भी वर्णन श्रीरामायणमें है। कर्मबन्धनसे छूटनेके बाद शुद्ध मुक्त श्रीवाल्मीको भगवद्गुरुवत्त्वानन्द प्राप्त होता है। उस आनन्दसे प्रेरित होकर वे यथोचित भगवपरिचर्यामें लगते हैं, उससे उनको विलक्षण आनन्द प्राप्त होता है, वही दृष्टि होती है। भगवत्परिचर्या कार्यिक वाचिक और मानसिक भेदसे भिन्न-भिन्न होती है। 'तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूर्यः । दिवांव चक्षुराततम् । तदिप्रासो विपन्यवो जाग्रांभस्तमिन्द्रते । विष्णोयंतपमं पदम्' 'एतत्साम गायत्रास्ते' 'येन येन धाता गच्छति तेन तेन सहगच्छति' 'रसं शेवायं लघ्वानन्दी भवति' इत्यादि श्रुतियोंमें भगवान्के सदा दश्मन करनेवाले, स्तोत्र करनेवाले, सामग्रान् करनेवाले, परमात्माके पीछे-पीछे फिरनेवाले, परमात्माका अनुभव करनेवाले मुक्त जीवोंका उपर्योग है, इससे मुक्त जीवोंके प्राप्त फलका बोध हो जाता है। परमात्म-परिचर्याजन्मानन्द ही मुक्त पुरुषोंके लिये प्राप्त मुख्य फल है। भगवच्छरणागत पुरुष जबतक यहाँ जीते रहते हैं तबतक यहाँ भी उसी भगवपरिचर्याको अपना कर्तव्य समझते हैं, उसीमें उनको आनन्द मिलता है। इसी भगवकैङ्कर्त्त्वके लिये श्रीकाश्मयजीने भगवान् रामचन्द्रजीसे प्रार्थना की थी कि—

कुरुष्व मामनुचरं वैष्मयं नेह विद्यते ।
अहं सर्वकरिष्यामि जाग्रतस्त्वपतश्च ते ।
मवांस्तु सह वैदेह्या गिरिसानुपु रस्यते ॥

अर्थात् 'मुझे आप अपना अनुचर बनाइये। आपके जागते और सोते समयमें कोई काम बाकी न रहेगा। आप जानकीजीके साथ पर्वतसानुभूमें विहार करेंगे, मैं आपके सब काम करूँगा।' सुधीवी, विभीषण आदिने भी भगवत्-शरणागतिकर भगवपरिचर्यारूपी कलको पाया, राज्यकाम तो उनके लिये गौणफल ही था।

श्रीवाल्मीकी स्वरूप ईश्वरके प्रति सर्वप्रकार परतन्त्रता और दासत्व है। इसका निरूपण श्रीकाश्मयजी और भरतजीके चरित्रादार श्रीरामायणमें दुश्मा है। भरत सर्वथा परमात्माके आकृतकारी थे, श्रीरामचन्द्रजीकी आकृतके अनुसार आकृता ही उनका मुख्य उद्देश्य था, अतएव श्रीरामचन्द्रजीको बतासे

बापस लानेके लिये जाकर भी उनकी आशाके बराबरीं होकर पादुकाको ले बापस अयोध्या पहुँचे और उनकी आज्ञानुसार राउथकार्य चलाते रहे। अन्तमें श्रीरामचन्द्रजीके सिंहासनारोहणके बाद भी उनकी आज्ञाको शिरोधार्य करते हुए युवराज बने। श्रीलक्ष्मणजी तो उनकी परिचर्वाओंको ही प्रधान मानकर यौवराज्यको उस सेवाका विरोधी समझ कर श्रीराम चन्द्रजीके हजार समझानेपर भी यौवराज्य स्वीकार करनेमें सहमत नहीं हुए। परन्तु भरतजी केवल भगवत्-परतन्त्रताको प्रधानतासे देनेवाले होनेके कारण सेवामें विरोधको जानते हुए भी श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे युवराज बने।

सर्वात्मना पर्यनुनीयमानो

यदा न सौमित्रिहृषीति योगम् ।

नियुज्यमानो भुवि यौवराज्ये

ततोऽभ्यगिब्धद्वरतं महात्मा ॥

अर्थात् भगवान् श्रीरामचन्द्रके सर्वं ग्राकारसे समझानेपर भी आज्ञापित होनेपर भी लक्षण्य जब यौवराज्य स्वीकार करनेको राजी नहीं हुए तब भरतको यौवराज्यमें अभियिक्त किया। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि श्रीलक्ष्मणजी केवल सेवानिष्ठ थे और भरतजी आज्ञाकारी थे। दोनों ही दोनों स्वरूपके पालक थे, किन्तु एक एकको मुख्य स्थान देते थे तो दूसरे दूसरेको मुख्य स्थान देते थे। श्रीलक्ष्मणजीकी सेवानिष्ठा उस समयकी घटनासे भी स्पष्ट हो जाती है, जब कि भगवान् श्रीरामचन्द्र बनवासके लिये तैयार हो रहे थे। उस समय भी भगवान् श्रीरामचन्द्रने श्रीलक्ष्मणजीको अयोध्यामें रहकर मानृपित्-शुश्रूषा करनेकी आज्ञा दी थी, किन्तु श्रीलक्ष्मणजी वनमें साथ रहकर श्रीराम-जानकीकी सेवा करना ही अपना प्रधान स्वरूप समझते हुए, बारंबार प्रार्थना करके श्रीरामचन्द्रजीकी सम्मति प्राप्त कर यथेष्ट सेवामें लग गये।

बेदान्त-शास्त्रमें अनेक अर्थोंका निरूपण होनेपर भी प्रधान तीन अर्थ माने जाते हैं। पहला परतस्य, दूसरा साधन और तीसरा फल। बेदान्तदर्शन-ग्रन्थसुत्रके चार अध्याय हैं, उनमें दो अध्याय तो ब्रह्मस्वरूप निरूपणपर हैं, एक साधन निरूपणपर है, और एक फलनिरूपणपर है। प्रथमाध्याय समन्वयाध्याय कहकाता है। उसमें किस प्रकार समस्त बेदान्त-भाग एक ब्रह्मस्वरूपका निरूपण करता है यह बात बतलायी गयी है। दूसरा अध्याय

अविरोधाध्याय कहकाता है, उसमें प्रथमाध्यायमें कही हुई बातोंपर जो विरोध उत्तराखित हुए, उनका निराकरण करते हुए उसको इदं किया गया है। जीवतस्वका निरूपण तो प्रसङ्गवश किया गया है। तीसरे साधनाध्यायमें मोक्ष-साधनोपायोंका निरूपण हुआ है। चौथे फलाध्यायमें मुक्तारमाओंके प्राप्त फलका निरूपण हुआ है।

बेदान्तशास्त्रके उत्तराध्याय श्रीरामायणमें भी उन्हीं अर्थोंको चरित्ररूपमें निरूपण किया है, मुख्य पात्रोंके अनुहानोंके द्वारा उनका स्फुटीकरण हुआ है। परतस्वका निरूपण त्रिन्तारके साथ और साधनका निरूपण भी विस्तारके साथ हुआ। फलका निरूपण संस्कृतमें हुआ। जीवस्वरूप आदिका वर्णन भी बयोंवित हुआ।

इमने श्रीरामायणके मुख्य प्रतिपाद्य अर्थोंमेंसे कुछका ही बहाँपर स्पष्टीकरण किया है। श्रीरामायणके प्रतिपाद्यार्थ अठारह माने जाते हैं। उन सबके वर्णन करनेसे नियन्त्र बहुत बढ़ा हो जाता, इसकिये छोड़ दिया है।

चौबीस हजार अन्योंवाला श्रीरामायण चौबीस अहरों-वाली सावित्री गायत्रीके आधारपर रचित हुआ है। गायत्रीके प्रथमाध्यायसे श्रीरामायणका प्रारम्भ और अन्तिम अहरसे समाप्ति हुई है। गायत्रीका प्रथम अहर 'त' है, श्रीरामायणके प्रारम्भके श्लोक 'तपस्वाध्यायनिरत्म' में तकार आधर है। गायत्रीका अन्तिम अहर 'त' है, श्रीरामायणका अन्तिम श्लोक-का अन्तिम अहर भी 'त' है। उत्तररामायणके ११० वें संगमें अन्तमें, जहाँ कि श्रीरामायणकी कथा समाप्त हो जाती है यह श्लोक है—

ततस्मागतन् सर्वान् स्थाप्य लोकगुरुर्दिवि ।

हैः प्रमुदितेऽद्वैर्जगाम त्रिदिवमहत् ॥

इसमें अन्तिम अहर 'त' है। इसके अगे जो एक संग है, वह केवल फलभुतिरूप है। प्रत्येक हजार अन्योंके अन्तमें गायत्रीके अहर क्रमसे पढ़े हुए हैं। ग्रन्थ बत्तीस अहरोंका होता है। उसी हिसाबसे देखना होगा। अतएव गायत्री-प्रतिपाद्यार्थ और रामायण-प्रतिपाद्यार्थ एक ही होना चाहिये। गायत्रीमन्त्रमें जगल्कारणभूत सविता—परमात्माके देजोमय स्वरूपकी उपासनाका वर्णन है, जो समस्त प्राणियोंकी बुद्धियोंकी प्रेरणा करते हैं, अतएव वही परमात्मा रामरूपी श्रीमद्भारत्य भगवान् ही श्रीरामायणके प्रधान प्रतिपाद्य हैं—यह स्पष्ट है।

रामायण

गीता और तुलसीदासकी रामायण के संगीत से जो स्फूर्ति और उत्सेधना मुझे मिलती है वैसी और किसीसे नहीं मिलती। हिन्दूधरमें तो यही दो प्रन्थ ऐसे हैं जिनके विषयमें यहाँ आ सकता है कि मैंने देखे हैं।

तुलसीदासजीकी अदा अद्वौकिक थी। उसकी अदा ने हिन्दू-संसारको रामायण के समान ग्रन्थरक भेट किया है। रामायण विद्वासे पूर्ण प्रन्थ है, किन्तु उसकी भक्तिके प्रभावके मुकाबिले उसकी विद्वासका कोई महत्व नहीं रहता। अदा और तुलिके बीच मिल-मिल हैं। अदा से अन्तर्ज्ञान, आत्मज्ञानकी वृद्धि होती है, इसलिये अन्तःशुद्धि तो होती ही है। तुलिके वाद्यज्ञानकी, सृष्टिके ज्ञानकी वृद्धि होती है। परन्तु उसका अन्तःशुद्धिके साथ कार्य-कारण-जैसा कोई सम्बन्ध नहीं रहता। अथवा तुलिकाकी ज्ञान अथवा अरिश्चालन भी पाये जाते हैं। मगर अदाके साथ अरिश्चालनका होना असम्भव है। इससे पाठक समझ सकते हैं कि एक वाक्क अदाकी पराकारातक पहुँच सकता है और फिर भी उसकी तुलिका मर्यादित रह सकती है। मनुष्य वह अदा कैसे प्राप्त करे? इसका उत्तर गीतामें है, रामचरितमानसमें है। भक्तिसे, सत्संगसे अदा प्राप्त होती है। जिन्हें सत्संगका प्रसाद प्राप्त हुआ है, उन्होंने—‘सत्संगतिः कथय कि न करोति पुण्यम्’ वचनाद्वृतका अनुभव अवश्य किया होगा।

मैं तुलसीदासजीके रामायणको भक्तिमार्गका सर्वोत्तम प्रन्थ मानता हूँ। (नवजीवनसे) —महात्मा गांधीजी

रामायणका नित्य पाठ करो

(महामना पं० मदनभोहनजी मालवीय)

रामायण और महाभारत हिन्दुओंकी अतुल सम्पत्ति है। मुझे इनके अध्ययनसे बहुत सुख मिलता है। रामायणमें हिन्दू-नृथयताके जिस ऊँचे आदर्शका विविहास है, वह सदा पढ़ने और भनने करने योग्य है। रामायणको काव्य कहना उसका अपमान करना है। उसमें तो भक्तिरसका प्रवाह बहता है जो जीवनको पवित्र कर देता है। रामायणमें हिन्दू-गृहस्थ-जीवनका आदर्श बतलाया गया है। मैं आहसा हूँ सब ज्ञान प्रतिदिन नियमपूर्वक रामायणका पाठ करें और उसमें बतलाये हुए मार्गपर चक्कर हिन्दू-जातिको पुनः रामराज्यके सुख भोगनेवाली बना दें।

रामायणका सन्देश

(साधु टी० पल० वसानीजी)

यथपि महाभारतके समान रामायण विश्वकोष नहीं है, तथापि वह महाभारतकी भाँति ही, एक महान् सांस्कृतिक धर्म-ग्रन्थ है। महाभारतके समान रामायण केवल विशिष्ट भारतीय साहित्य ही नहीं प्रस्तुत यह एक मानव-धर्म-शास्त्र है।

सुदूर अतीतकी एक निपाण्य कथाकी भाँति नहीं, वरं एक नूतन सम्यता, नवीन भारतके पुनर्निर्माणके लिये, एक सन्देश और एक सत्ता रखते हुए, जीवन-पथके रूपमें इसका नये सिरेसे अध्ययन करना चाहिये।

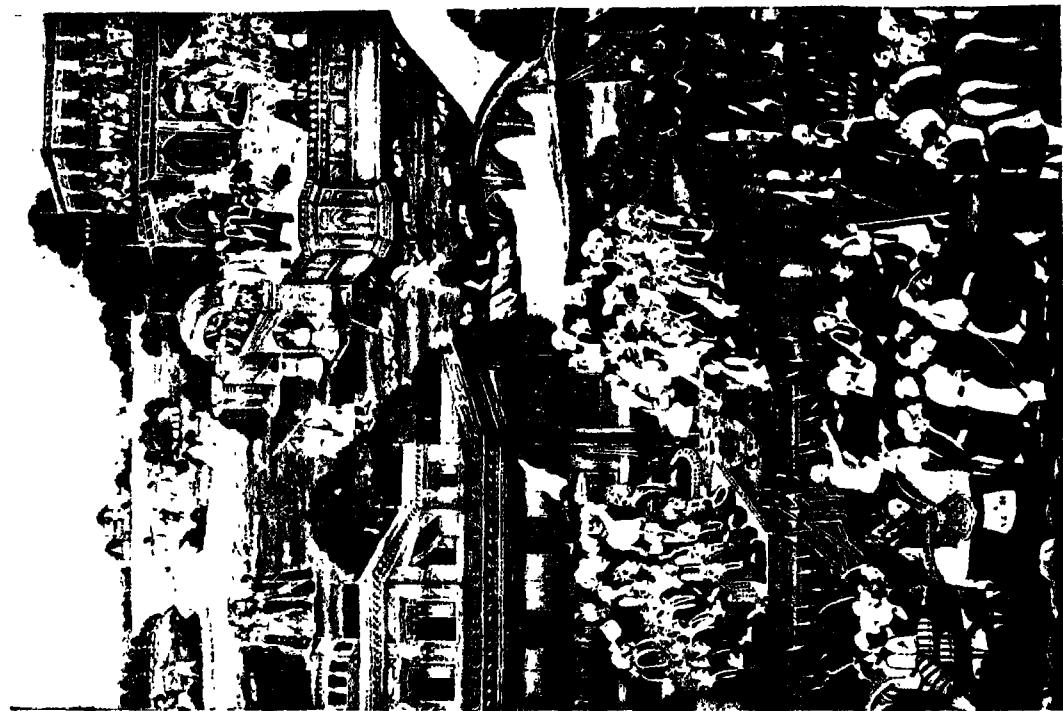
श्रीरामजी तभी अपनी प्यारी अदोध्या-अपने पर विजयी होकर लौटते हैं जब क्यों तपोवनमें अतीत करते हैं। उन्होंने तप किया और विजयी हुए। अतः इस पुरातन धर्मशास्त्रका सन्देश है—तपसः विजयम् (तपस्यासे विजय प्राप्त करो।)

वही वही कलोंमें, मशीन गनोंमें, काङ्क्षकामनामें तथा विज्ञासितामध्यी सम्बन्धिताके उपकरणोंमें नहीं, केवल तपस्याकी विज्ञात्मक शक्तिमें ही संसारके नवयुगकी आशाएँ निहित हैं।

भारत पतितावस्थामें है किन्तु तब भी मेरा उसमें विचास है। उसका अध्ययन वसी दिन हुआ जब उसने अपनी तपस्याकी आन्तरिक भावना, अपने आदर्श तथा अपने आपको विस्मृत कर दिया।

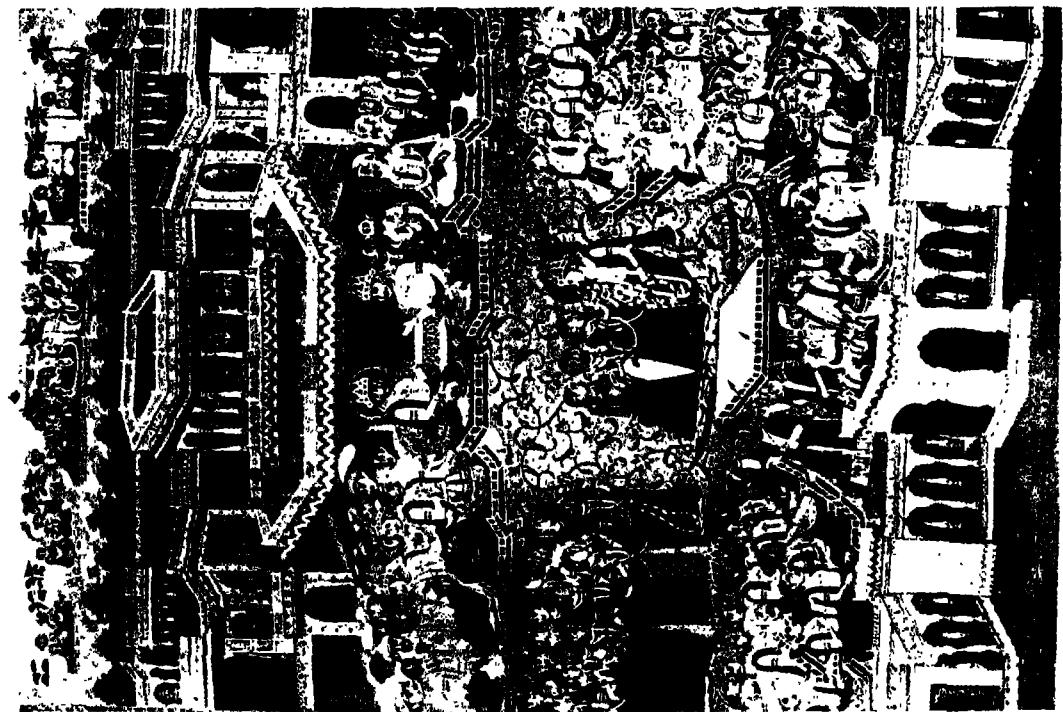
किसी पाश्चात्य राष्ट्रके अनुकायसे नहीं, किन्तु इस चेतनासे भगवान् रामकी इस चेतनासे ही इस सुक होंगे।

श्रीरामकी चेतना नहीं हुई है। अब भी इसारे इद्यमें उसकी आवाज़ सुनायी देती है—हिंसा नहीं, परापकार नहीं, केवल तपस्या ही हमें सुक करेगी!



जनकपुरमें दशरथजी ।

तृप समीप सोहिं सुन चारी । जनु धन-अर्मादिक तरु धारी ॥
सतह समेत दशरथहि देखि । मदित नगर-नगरारि विसर्णी ॥



जयमाला ।

सुनन शुगलकर माल उठाई । प्रेम निष्प पहिराइ न जाई ॥



पाइ असीस यहरि सिह नाईं । माइन्ह सहित कले रघुराई ॥

जनकपुरसे विदा ।

धनुप-भङ्ग ।

तेहि छन राम मध्य धतु तोया । मरेउ भुवन धुनि घोर करोरा ॥



श्रीरामचरितमानसपर श्रीरूपकलाजीके रचनामृत

- १-विरकि और अनुरक्ति प्राप्त किया चाहे तो श्रीरामचरितमानस पढ़े।
- २-श्रीमद्भगवद्गीताके गृह तत्त्वोंका व्यास समास समझना चाहे तो श्रीरामचरितमानस पढ़े।
- ३-श्रीविष्णुपुराणका रहस्य समझना चाहे तो श्रीरामचरितमानस पढ़े।
- ४-महर्षि मनु प्रभृतियोंका पण्डित हुआ चाहे तो श्रीरामचरितमानस पढ़े।
- ५-श्रीरामानन्द-मताव्य-भास्करका तत्त्व समझना हो तो श्रीरामचरितमानस पढ़े।

वाल्मीकीय रामायणकी विशेषता

(लेखक-विद्वार ५० श्रीवाल्मीकी मित्र)

कूजन्तं रामगमेति मधुरं मधुराक्षरम् ।
आकृष्टं कविताशास्त्रं वन्दे वाल्मीकिकोकिलम् ॥
वाल्मीकिमुनिसिंहस्य कविता वनचरिणः ।
शृण्वन् रामकथानांदं को न याति पराहृतिम् ॥

१-वाल्मीकीय रामायण आदिकाव्य है। इसकी रचना किसी अन्य काव्यकी ज्ञाना लेकर नहीं की गयी है। इससे पूर्ण लौकिक कृन्दका ही अस्तित्व नहीं था, फिर काव्यकी तो बात ही क्या है?

‘आम्रायादन्यत्र नूतनचन्दनसामवदात्’

—उत्तरचरित

२-काव्यके निर्माण करने तथा समझनेके लिये तीन बातें आवश्यक हैं,—(१) शक्ति । (कवित्वबीजसंस्कारविशेष अर्थात् जन्मसे ही इद्यमें कविता करनेका एक विशेष संस्कार होता है; यह संस्कार अथवा शक्ति अर्जित नहीं अपितु हृथकप्रदत्त होती है) (२) स्थावर-जड़मारम्भ संसारके समस्त विषयोंका बोध तथा काव्यशास्त्र इतिहासादि अन्योंके अध्ययनसे उत्पन्न हुई ‘म्युत्पत्ति’ (इसी म्युत्पत्ति अथवा आलोचनात्मक शक्तिसे काव्यके दोष-गुणका ज्ञान प्राप्त होता है) और (३) काव्यशास्त्रके नमेज्ञोंसे शिक्षा प्राप्त कर तदनुसार काव्य-रचनाका अभ्यास। इन्हीं तीन विषयोंके सम्बन्धमें अखंकारशास्त्रके उद्भव परिदृष्ट तथा काव्य-प्रकाशके रचनिता श्रीमम्मटाचार्य कहते हैं—

शक्तिर्निष्पत्ता लोककाव्यशास्त्राद्येक्षणात् ।
काव्यशिक्षणाऽभ्यास इति हेतुसदुद्भवेत् ॥

—काव्यप्रकाश

इस रखोक्तमें यह बात ज्ञान देने थोग्य है कि इसमें तीनों शक्तियोंके लिये ‘हेतुः’ शब्दका प्रयोग न करके ‘हेतुः’ शब्दका ही प्रयोग किया गया है। इस प्रकारचनान्त ‘हेतुः’ शब्दका प्रयोग दीक्षा है ज्योंकि इसका तात्पर्य तीनों शक्तियोंकी सामजिकत्वसे है। काव्य-निर्माणके लिये इन तीनों शक्तियोंकी

एक साथ ही आवश्यकता है। इसीलिये मम्मटाचार्यने लिखा है—

इति त्रयः समुदिता न तु व्यस्तास्तस्य काव्यस्योदूभवे
निमांगे समुक्तासे च हेतुः न तु हेतवः ।

—काव्यप्रकाश

किन्तु वाल्मीकीय रामायणकी रचना तो विना ही किसी प्रसिद्ध सामग्रीसे हुई है। इसकी कथा इसप्रकार है, एक समय मध्याह्न कृत्यका सम्पादन करनेके लिये तपत्वी वाल्मीकि तमसा नदीके तटपर गये थे, वहाँ हडात् उनकी दृष्टि, ज्याहारा निहत एक काममोहित कौञ्ज पर्वीके ऊपर पड़ी, उसे देख महर्षिको शोक हुआ और वही शोक अनुष्टुप्जन्मके रखोकल्पमें परिणात होकर उनके मुखकमलसे प्रकट हो गया। ज्वल्यालोकमें लिखा है—

सहनविरहकात्र क्रीम्याकन्दजनितः शोक एव झोकतया
परिणतः ।

अथोत् अपने सहचरके विदेशसे कातर कौञ्ज पर्वीके रुदनसे उत्पन्न हुआ शोक ही रखोकल्पके रूपमें परिणात हो गया। इसोक इसप्रकार है—

मा निषाद ! प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समः ।

यत् क्रीमियुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥

—वाल्मीकीय

भगवती सरस्वतीने यह वरदान दिया कि जो इस रखोक्तका सर्वप्रथम पाठ करेगा, उसे ‘सारस्वत-कवित्व’ प्राप्त होगा। यथा—

यः प्रथमेनमध्यते स सारस्वतकविः सम्पत्स्वते ।

—काव्यमोमांसा

उसी समय भगवान् चतुरानन्दने आकर आक्षा दी कि ‘हे वर ! काव्यिक ! आप शब्दामना प्रकाशमान् भगवतत्वके पूर्ण ज्ञाता हैं। यतः श्रीरामचन्द्रजीके चरितकी रचना कीलिये आपकी इहि अप्रतिहत प्रकाशसम्भव हो जायगी—

'तस्वं मत्प्रसादेन विदितं ते मविष्यति ।'

इतना कहकर व्राजी अन्तर्हित हो गये । इसके अनन्तर महर्षि वाल्मीकिने रामायणकी रचना की । अतः वह समस्त अपेक्षित गुणोंसे सर्वोच्च पदपर आरूढ़ है । इनमा भी यही थाहिये ।

३—रामायणमें जिन विषयोंका प्रतिपादन किया गया है, उनमें एक भी विषय अताधिक नहीं है । योगदृष्टिसे समस्त बस्तुओंका यथायोग्य निरीक्षण करके ही सबका वर्णन किया गया है । कहा भी है—

'वाल्मीकिर्वचनं सर्वं सत्यम् ।'

४—वाल्मीकीय रामायण परिमाणमें बहुत बड़ा ग्रन्थ है, तथापि उसमें प्रसादगुण प्रायः सर्वत्र व्याप्त है । भाषा तो अत्यन्त ही मधुर है । प्रसादगुणकी व्याख्या करते हुए साहित्यदर्शकार कहते हैं—

चित्तं व्याप्राति यः क्षिंशु गुणेन्द्रनमिवानकः ।

सः प्रसादः समस्तेषु रसेषु रचनानु च ॥

—पाहित्यदर्शन

अर्थात् जैसे सूखे इंधनमें अग्नि तत्काल व्याप्त हो जाता है वैसे ही जो गुण समस्त रसों और इच्छाओंमें अतिशीघ्र व्याप्त हो जाय उसे प्रसाद कहते हैं ।

विकायनसे बौद्धेनपर डाक्टर शीरिशन्द्र शास्त्री आई० इ० एस० कहते थे कि वाल्मीकीय रामायणको पढ़ते समय अप्रेजोंकी आँखोंसे अशुकी धारा बहने लगती है । फिर भल झोगोंकी तो बात ही क्या है ?

५—वाल्मीकि-रामायण काव्यादास प्रभृति महाकवियोंका उत्तम आदर्श है

मधुमय भण्ठीनां मार्गदर्शीं महर्षि ।

अर्थात् मधुर वचनोंके पथ-प्रदर्शक महर्षि वाल्मीकि हैं ।

इसी महाकाव्यके 'हनुमतसन्देश' नामक वर्णनाके आचारपर जैवदृष्टकी रचना हुई है । इसी किसीका अनुकरण अवश्य करता है । कहा भी है—

'कविरनुहरतच्छायाम्'

वाल्मीकिमें है—

'छायेवानुग्रहा पतिम्'

उपमेय वचनकर रसुंदरमें भी यही अर्थ लिया गया है, यथा—

'छायेव तां भूषतिरन्वगच्छत्'

वाल्मीकिमें है—

'अहिरेव अहः पादान् विज्ञानादि न संशब्दः'

ठीक इसीका प्रतिविन्द्र छेकोथलहारके सम्बन्धमें कुछ वाक्यावचन्द्रमें इसप्रकार दिया गया है—

मुजङ्ग एव जानीते मुजङ्गचरणं सखे ।

६—वाल्मीकीय रामायणमें 'गीतगोविन्द'के 'विगलित-वसनं परिहनरसनं घट्य जघनमधिषानम्' की भाँति प्रधान नायिकाका वर्णन अति विव्य है, उससे भावव्यनिमें किसी प्रकारका अवरोध नहीं होता प्रथुत भावकी पुष्टि ही होती है ।

७—प्रजा-रजन-पद्मतिका प्रतिपादन तो इसमें सीमासे भी आगे बढ़ गया है । यहाँतक कि एक अति साधारण मनुष्यके वचन मात्रपर श्रीरामने परम पतिव्रता, साध्वी तथा अप्निरीहामें उच्चोर्य हुई शुतिप्रसिद्ध जीवन्मुक्त जनक महाराजाकी अयोनिजा पुश्ती भादारानी सीताका परिव्याग कर दिया । यह क्या साधारण बात है ? मुझे तो यह इस बातका स्मरण होता है तो इदय जलने लगता है ।

गमो रामो राम इति प्रजानामभवन् कथाः ।

रामभूतं जगदभूत् रामे राज्यं प्रशासति ॥

रामायणमें असंख्य गुणोंका समावेश है, निन्नलिखित गुणोंके विवरणसे तो यह ग्रन्थ संसारके लिये परम उपकारी हो गया है ।

पिताका आङ्गा-पाङ्गन, सत्यवीक्षा, पक्षपतीव्रत, आश्रितोंकी रक्षा, प्रतिज्ञाकी पूर्ति, वर्णाक्षमकी मर्यादा के अनुसार आचरण, स्वामी, वेवता तथा गुरुजनोंकी सेवा, मधुरभाषण, अनुबन्धीय पातिव्रत, वहे भाईके समान सुख पदं तुःखका अनुभव, न्यायानुकूल मार्गका अनुसरण, प्रस्तुपक्षमतित्व, समीक्षकारिता और प्रभु-मर्कि आदि ।

८—इस रामायणको वेदरूपता भी प्रामाणिक है—

वेदः प्रांचतसादासीत् साक्षाद्वामायणात्मना ।

९—इस महाकाव्यके पठनसे महापातकनाशनम् और परम कल्याणकी प्राप्ति होती है—

'एकैकमध्यं पुसां महापातकनाशनम् ।'

'पठन् द्वित्रोवाग्मत्वमीयात्

स्पात् क्षत्रियो भूमिपतित्वमीयात् ।' इत्यादि—

—वाल्मीकीय रामायण

स्वप्नपुरावामें पुरावरकाकी सामान्य विविधी गयी है, उक्त कार्य साधनके लियित विवेच विविध विहारोंसे आयनी थाहिये ।

१०—अष्टादशपुराणोंके प्रयोग महर्षिभ्यासने भी रामायणकी बड़ी प्रशंसा की है। व्यासजी महर्षि वाल्मीकिके विचरणमें कहते हैं—

यदुकिपुद्रामुहृदर्थवीथी,
कथारसो यश्चनुलुकैश्चनुलुम्बः ।
तथाऽमृतस्यन्द च गद्यच्छासि
रामायणं तत्कवित् न्पुनाति ।
—बालभारत

वाल्मीकीय रामायणमें सर्वप्रधान ध्वनि शीररस है। अन्यान्य इसोंका भी अङ्गरूपसे वयस्यान प्रयोग किया गया है। इसकी भाषा हत्तनी भ्राज़ज है कि उसके प्रभावसे पढ़नेके साथ-ही-साथ उन इसोंकी प्रतीति होने लगती है। इस महाकाव्यके प्रधान नायक, धीरोदाता, अनुकूल, मर्यादापुरुषोत्तम, पार्थिववंशावतंस, आदर्श तथा औपनिषद् पुरुष भगवान् रामचन्द्रजी हैं।

राम एव परं ब्रह्म राम एव परन्तपः ।
राम एव परं तर्तुं श्रीरामो नद्यतारकम् ॥
—रामहस्तोपनिषद्

यो ह वै श्रीरामचन्द्रः समावानद्वैतपरमानन्दभ्रतम् ।
—रामोत्तरतार्पणं उपनिषद्

अहो प्रासादिकं रूपमनुभावश्च पावनः ।
स्थानं रामायणकविदैर्वी वाचमवीत्वृथत् ॥
—उत्तरचरित

धीरोदातके लक्षण—

महासर्वोऽतिगम्भीरः भ्रमावानविक्तयनः ।
स्थिरो निगृदाहक्षरो धीरोदातो दद्रतः ॥
—दशरथक

महान् वीर, अत्यन्त गम्भीर, भ्रमावान, आत्मश्वाससे हीन, धीर, आत्माभिमानी और दद्रती होना—ये धीरोदातके लक्षण हैं।

किसी भी स्थलपर श्रीरामचन्द्रमें आत्म-प्रशंसाका लोग भी नहीं विकल्पायी पड़ता। श्रीरामकी उक्तिको है—

‘कृतापराधस्य हिते नान्यतपश्याम्यहं श्वमम् ।
अन्तरेणाज्ञालिं बध्वा लक्षणस्य प्रसादनात् ॥’
नो चेलूष्मणमुक्तमार्गणगणच्छ्वेष्ठलच्छोषित-
च्छ्वच्छ्वज्ञादिगन्तमन्तकपुरं पुर्वैर्वृतो यस्यसि ॥
—इनुमालक

दिव्यैरिन्द्रजिदत्रिलक्षणशैरलोकान्तरं प्राप्तिः
केनाप्यत्र मृगाक्षिः । राक्षसपतेः कृतं च काष्ठाटवी ॥
—बालरामायण

हाँ, श्रीरामने जहाँ तहाँ जिन्हाके प्रसङ्गोंमें सो अपना नाम अवश्य किया है। यथा—

रामस्य बाहुसिनिर्भरगर्भस्त्रिक्त सीताविवासनपटोः कदणा कुतस्ते ।
—उत्तरचरित्र

बल तथा उमाकेतो प्रमुख उदाहरण मिलते हैं। उनके सम्बन्धमें लिखना ही अर्थ है। अब रह गयी गम्भीरता, उसका भी विवरण कराता हूँ।

आदूतस्याभिषेकाय विसृष्टस्य वनाय च ।
न मया लक्षितस्तस्य स्वत्पाऽप्याकार विभ्रमः ॥
—वाल्मीकीय रामायण

प्रतिनायकके वर्णनसे प्रधान नायकके उत्तरकी वृद्धि होती है। इसका भी सुन्दर तथा मुद्रकाशमें वही खूबीके साथ वर्णन किया गया है। यथा—

यद्यधमो न बलवान् स्थादयं राक्षसश्वरः ।
स्थादयं सुरलोकस्य स शक्षस्यापि रक्षिता ॥
—वाल्मीकीय रामायण

महाकाव्यके लक्षणके अनुसार इसमें प्रतिसर्वके अन्तमें कुन्दोंका परिवर्तन तथा विश्वलिखित विचरणोंका वही कुशाखताके साथ चित्रण किया गया है—

प्रभात, मध्याह्न, सम्ध्या, रात्रि, ऋतु, चन्द्र, सूर्य, शैत, वन, नदी, समुद्र, अचि, आश्रम, यज्ञ, नीति, युद्ध आदि। उपर्युक्त रेखाक्रित विचरणोंके सम्बन्धमें नीचे लिखी सूक्षियाँ पढ़नेसे पाठकोंको अन्ततः वर्णन-शैलीका पता तो अवश्य लग जायगा।

चञ्चचन्द्रकरपर्यहर्षोन्मीलिततारका ।
अनुरागवती सन्ध्या जहाति स्वयमस्वरम् ॥
शक्यमन्तरमाल्लु भेषसोपानपत्तिभिः ।
कुटज्जुरुनमालाभिरुक्तुं दिवाकरः ॥

वहन्ति वर्षन्ति नदन्ति भान्ति
ध्यायन्ति नृत्यन्ति समाश्वसन्ति ।

नद्यो घनामत्तगावनन्ताः
प्रियाविहीनाः शिखिनः पूव्रज्ञमाः ॥

दर्शयन्ति शरद्यदः पुलिनानि शैनैः शैनैः ।

नवसङ्गमसप्रीढा जघनानीव योवितः ॥

सारंग कि श्रीवाल्मीकीय रामायण महाकाव्यके समस्त विचरणोंमें आदृश है।

श्रीमद्रामायण

(श्री१०८ स्वामी पं० रामचंद्रमाशरणजी महाराज, श्रीजानकीघाट, श्रीअयोध्याजी)

अथर्वणवेदीय तापिनीयोपनिषद् के 'धर्मभाग चरित्रेण' इस वाक्यसे श्रीमद्रामायणमें सर्व-धर्म-समन्वय पूर्णतया अवगत है। मानव-जीवनको सार्थक बनानेके उपायोंको सुगमताके साथ जाननेके लिये रामायण ही सर्वोत्तम साधन है। इसी एक कारणसे केवल भारतीय विद्वन्मण्डली ही नहीं, किन्तु इङ्लैण्ड, जर्मनी, अमेरिका प्रभृति देशोंके समाजतस्वविद् पण्डितों तथा दार्शनिकोंनि भी मुक्तकरठ होकर इसकी महिमा गायी है। इधरके सभी आविर्भाव सर्व-कल्याणगुणपूर्ण तथा सबके निःप्रेयसार्थ ही हुए हैं, परन्तु रामायण काव्यके नायक परब्रह्म श्रीरामजीमें सर्वगुणोपलब्धिको कुछ विशेषरूपेण सबने स्वीकार किया है। एक कविकी बड़ी ही हृदयङ्गमा सृकि है—

अकर्णमकोच्छेषं विधिर्विहाण्डमङ्गधीः । गुणानाकर्ण्य रामस्य शिरः सञ्चालयेदिति ॥

अर्थात् सृष्टिरचयिता विधिने शेषजीको इसलिये विना कानके बनाया कि यदि कान रहेगे तो श्रीराम-गुण सुनकर ये शिरःचालन करेंगे, अतः ब्रह्माएँ भङ्ग हो जायगा।

राम-विरहके आँसू

बार-बार बूझत कहा ? अरे मीत ! कुसलात ।

जग-जीवन जोये बिना, जीवन बीतो जात ॥

राम-विरह-रस दूग वहें, हे नर ! अँसुआ हैं न ।

निरखि नेह करि नेह भरि, नेह त्रिवेनी नैन ॥

रहे अपावन क्यों मिलैं, जग-पावन सुख-ऐन ।

राम-दरस भावत इन्हें, नित न्हावत यों नैन ॥

सुकृत सुमन विकसित करन, राम-दरस फल लैन ।

सोंचत लता सनेहकी, निस-दिन माली नैन ॥

मुकुता भनि अँसुआ अमल, कत दरकत दिन रैन ।

हरि उर पहरावन अहो ! हार बनावत नैन ॥

हरि-दरसन-हित सब तजे, अङ्गन, रङ्गन, खैन ।

अँसुआ-कन-मुकुतानको, दान करत नित नैन ॥

विरह अगन धूनी तपै, राम-नाम सुख दैन ।

अँसुआ-कन माला लिये, जपैं जोगिया नैन ॥—श्रीअमृतबाल भाषुर

रामचन्द्र मंगल करे

(लेखक—रव० पं० माधवप्रसादजी मिश्र उद्दीपन-सम्पादक)

कौशल्याके सुत दशरथके प्राणाधिकवर,

बन्धु भरतके वीर सुमित्रा-सुतके प्रियवर ।

मुनि वशिष्ठके शिष्य जनकजाके मनभावन,

आज्जननेयके देव विभीषणके प्रभु-पावन ।

जो दश-कपालके काल हैं, सञ्चारक शुभकर्मके,

सो रामचन्द्र मंगल करे नाथ सनातन धर्मके ॥

शंकर और राम

(लेखक—श्रीब्रजनदासजी केदिया)

संकर छबीले रामहीसे रमनीय-रूप,

संकरसे राम कमनीय छबि-धाम है ।

राम अनुहार एक औढ़र-उदार इस,

इससे उदार राम पूरे सब काम है ॥

राम-नाम हेतु-उपराम सिव-नाम ही सो,

राम-नाम ही सो अभिराम सिव-नाम है ।

पोषक प्रजाके प्रान सोषक सुरारिनके,

रामके समान संभु संभु सम राम है ॥

मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीराम

(लेखक—राव बहादुर श्रीचिन्तामणि विनायक वैद्य एम० ए०, ऐल-ए-एल० बी०)



मु श्रीरामचन्द्रको मर्यादा-पुरुषोत्तम और
श्रीकृष्णको लीला-पुरुषोत्तम कहते हैं।
यह संक्षा उत्तर हिन्दुस्तानमें ही प्रसिद्ध
है, महाराष्ट्र या बंगलादेशमें कम है।
पुरुषोत्तमका अर्थ है—परमात्मा—

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ।

× × × ×

अतोऽस्मि लोके देवे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ।

(गीता)

परमात्माके अनेक अवतारोंमें प्रभु श्रीरामचन्द्रजीका चरित्र अत्यन्त सरल, नीति-धोषक और प्रत्येक बातमें मर्यादा-को लिये हुए है। श्रीकृष्णचरित्र बहुत कठिन और गूढ़ार्थ-मुक्त है। उससे बोध प्राप्त करना सामान्यकुद्धि, मनुष्यके लिये कठिन है। प्रभु श्रीकृष्णको अप्रस्थक राशसोंसे लड़ना पश्चा था, परन्तु प्रभु श्रीरामचन्द्रजी प्रस्थश राशसोंसे लड़ ये। इसीसे श्रीकृष्ण-चरित्र लीलारूप है और श्रीरामका चरित्र मर्यादारूप है। श्रीराम-चरित्रकी मर्यादा-धोषकताको मैं इस छोटेसे लेखमें व्यापमिति निवेदन करूँगा। चरित्र अग्राह है, परन्तु अपनी शक्ति-अनुसार अग्राह विषयमें भी प्रत्येक ग्राही योगा-बहुत तैरना आहता ही है।

संसारमें प्रत्येक मनुष्यको पुत्र, बन्तु, मित्र, शत्रु, पति आदि सठवन्दोंका अवतार करना पड़ता है और कुछ धन्य-पुरुषोंको राज्य भी करना पड़ता है। उत्तम पुत्र, उत्तम बन्तु-उत्तम मित्र, उत्तम शत्रु, उत्तम पति और उत्तम राजा आदि सभी बातोंमें प्रभु श्रीरामचन्द्रका चरित्र मर्यादास्वरूप है और आज हजारों वर्षोंसे वह आर्थ-आतिका आदर्श होकर हमलोगोंके आवरणोंपर योगा-बहुत प्रभाव डाँड़ा है। यही हिन्दू-समाजकी धन्यता है कि उसमें प्रभु श्रीरामचन्द्रका आदर्शभूत चरित्र वरिष्ठामकारक हुआ है। इसीलिये हिन्दू समाज इस विषयमें अन्य समाजोंकी अपेक्षा अधिक है। इस विषयपर मैं व्यापमिति कुछ वर्णन करना आहता हूँ।

प्रभु श्रीरामचन्द्र उत्तम पुत्र थे, यह तो सभी आनंदे हैं कि पिताकी आशा पालन करना पुत्रका परम धर्म है, परन्तु धर्मकी परीक्षा विपरिकालमें हुआ करती है, स्वयंकी

परीक्षा अस्तिमें होती है तो हीरेकी हथौडेकी चोटमें। कह श्रीरामकी युवराजके पदपर प्रतिष्ठा होगी। इस घोषणासे सभी उत्सवमें आनन्दमप्त थे, परन्तु प्रातःकाल ही वह आशा हुई कि श्रीरामको १५ वर्षतक बनवासो होकर रहना पड़ेगा। प्रभु श्रीरामचन्द्रने इस आशाको भी पहलीकी भाँति ही आनन्दसे स्वीकार किया। ‘पिताकी कठोर आशाका भी उहांधन नहीं करना चाहिये’ यह इसरे समाजकी मर्यादा है। यह शरीर पितासे प्राप्त हुआ है, अतः उस पिताकी आशानुसार बर्तना पुत्रका कर्तव्य है; परन्तु साधारण लोग तो पिताका धन लेना चाहते हैं, पितासे धन-स्वारपकी आशा नहीं लेना चाहते। वे धन बाँटनेके लिये अदा-अस्तमें दावा दायर करनेको तेवार हो जाते हैं। रामायणमें लक्ष्मणको कोर्धी बतलाया है। लक्ष्मण श्रीरामचन्द्रसे कहते हैं, ‘हूँ वाप कामान्य होकर सौतेंडी माके फन्देमें फैस गये हैं, आप उनको कैद करके राजगाहीपर बैठिये। भरतसे मैं निपट लूँगा।’ उत्तम और मन्यम पुत्रका यहीं भेद दिखाया गया है। प्रभु श्रीराम-चन्द्रने आईकी यह सलाह नहीं मानी बस्ति आकर माता कैकेयीसे बोले, ‘मैं आपकी आशासे ही बनवासके लिये चला जाता, आपने मेरे पिताजीको दीक्षमें क्यों ढाड़ा?’ तात्पर्य यह कि सौतेंडी माताके साथ भी प्रभु श्रीरामचन्द्रने अपना उत्तम पुत्रभाव निभाया।

भरत और श्रीरामचन्द्रके सम्भाषणसे उत्तम-ग्रन्थका आवरण सिद्ध ही है। भरतको राजा बनाते हुए या बनसे लौटाते समय प्रभु श्रीरामचन्द्रने उत्तम पुत्र और उत्तम ग्रन्थ हनु दोनों विषयोंमें आदर्श बताव किया है।

सुग्रीव और विभीषणके सठवन्दमें उत्तम मित्रका भी आदर्श आवरण दिखाया है। स्वार्थ कोदकर मित्रका कार्य करना पड़ता है और प्रतिज्ञारूपक उसको निवाहना पड़ता है। रावण अन्तसक प्रभु श्रीरामचन्द्रसे शत्रु बनकर लड़ा रहा परन्तु जब वह युद्धमें मारा गया तब प्रभु श्रीरामने विभीषणसे कहा—‘मरणान्तानि वैराणि’ ‘बस, वैर मृत्युतक ही था। अवशानुता समाप्त हो गयी। अब तो वह जितना तुमको प्रिय है उतना ही सुझको है। अतएव यथावैभव उसकी उर्जाकिया करो।’ अक्लीजके हारा घसिटाये जानेकी भाँति हैकरको लाशको तरह श्रीरामचन्द्रजीने रावणकी लाशको

साथ के साथ उत्तम सेवा करता है और अन्य लोकों के लिए भावना करता है। ऐसी व्यावर्ता और नीतिशक्ति कहाँ मिल सकती है?

अब प्रभु श्रीरामचन्द्रके उत्तम पतिके बर्तावको देखिये। संसारमें लाखों मनुष्य पति होते हैं और सभी वयाशकि नीतिके अनुसार वर्तनेका प्रयत्न करते हैं, परन्तु प्रभु श्रीरामचन्द्रका चरित्र तो परमोत्तम और अद्वितीय है। उन्होंने राजा होकर भी आजीवन एकपक्षीतत्वका पालन किया। साधारण लोग इस उत्तमता तक नहीं पहुँच सकते। बनवासकी आशा होनेपर उन्होंने सीताजीको हुःस और कट्टोंकी भीतिसे अलग रखना चाहा, परन्तु श्रीसीता-चरित्रभी प्रभु श्रीरामचन्द्रके समान ही उत्तमोत्तम वहिक उत्तमते बदल देते हैं। हिन्दू-संसारमें किसीका आचरण अन्य समाजोंकी परीक्षा अधिक प्रशंसनीय है और वह सीताजीके उदार चरित्रके आदर्शको लेकर ही है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। सीताजीने कहा—

यस्त्वया सह स स्वर्गोऽनिरयो गत्वया विना ।

(वा० २० २। ३०। १८)

'आपके साथ जिस स्थानपर रहना हो वही स्वर्ग है और आपके बिना जहाँ रहना हो वह नरक है। जब पतिके साथ राज्य-भोग भोगे हैं तब पतिके साथ बनवास कर्यों नहीं भोगना चाहिये? सीता जीको पतिके साथ सुख और हुःस दोनों ही भोगने उचित है।' यह मर्यादा सीताजीने ही स्वापित की। श्रीरामचन्द्रजीने सीताजीको साथ लिया और परिवामस्वरूप सीताहरण हुआ। श्रीरामने पतिका कर्तव्य पालनकर रावणको मार सीताजीको छुड़ाया परन्तु किसी सन्देहसे उन्होंने ग्रहण करना अस्वीकार किया। सीताजीने परीक्षा देकर अपनी शुद्धता सिद्ध की। तदनन्तर श्रीरामचन्द्र उनको साथ लेकर आनन्दसे अयोध्या जांते और सीताके साथ राज्याभिषिक्त हुए। आशुनिक सुशिक्षित विद्वान् प्राप्त: ऐसा प्रश्न किया करते हैं कि 'इसके बाद श्रीरामचन्द्रजीने सीताजीके साथ जो बर्ताव किया वह क्या उत्तम पतिके योग्य है?'

'मालोकवादश्रवणदहसीः युतस्य कि तत्सदृशं कुलस्य।'

ऐसा प्रश्न कालिदासने भी सीताके मुखसे करवाया है। अतपृथक् इस विषयमें कुछ अधिक किलना पड़ेगा। यह बात व्यानमें रखनी चाहिये कि यह बर्ताव प्रभु श्रीरामचन्द्रने राजधर्मके अनुसार किया था, पतिके सम्बन्धमें नहीं। सीताजी एक वर्षतक राजसके घरमें रही थीं। इसी बुनियादपर प्रबाद चला था और अयोध्याकी प्रजाके भ्रष्टःकर्तव्यमें राजाके

सम्बन्धमें कुछ अप्रीति फैलने लगी थी। उस समय श्रीरामचन्द्रने विचार करके यह निश्चित किया कि राजाका कर्तव्य पतिके कर्तव्यसे भी अद्युत है। राजाका कुल निष्कर्तव्य होना चाहिये। Ceasar's wife must be above suspicion. भवभूतिने इस विषयमें बहुत ही उदात्त विचारप्रकट किये हैं। प्रजाराधन राजाका परम कर्तव्य है—

'मेरे हैं दयां च प्राणं च अपि वा जानकीमपि ।

आराधनाय लोकानां मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा ॥'

'मुझे सीता प्राणोंसे भी अधिक प्रिय है परन्तु लोका-राधन उससे भी अधिक प्रिय और अधिक अद्युत कर्तव्य है। इसलिये प्राण और प्राणसे भी प्रिय जानकीका भी मैं त्याग करूँगा।' इस चरित्रसे यह राजाका मर्यादारूप कर्तव्य प्रतीत होता है अथोत् यहाँ प्रभु श्रीरामचन्द्र किस प्रकार 'उत्तम राजा' थे, यह बतलाया गया है।

'उत्तम' राजाका कर्तव्य जैसे लोकाराधन है वैसे ही 'सत्यप्रतिष्ठा' होना भी है। यह अन्य चरित्रभागसे ज्ञात होता है। श्रीरामचन्द्रजी चित्रकूटपर मुनिवृत्तिसे रहने लगे, भरतने वहाँ पहुँचकर बनवासकी प्रतिष्ठा स्थापनाकरनेके लिये उनसे अत्यन्त आग्रह किया और कहा, 'पिताजीने आपको मेरे लिये ही यह आशा दी थी परन्तु मैं राज्य नहीं चाहता, आप ही राज्य कीजिये।' प्रभु श्रीरामचन्द्रने इसको इन्कार कर दिया। उस समय वसिष्ठ आदि अनेक लोगोंने कहा कि 'जब भरत राजी है तो प्रतिष्ठा पालनेकी आवश्यकता नहीं।' तब भगवान् श्रीरामने भरतसे कहा, 'तुम मुझे राज्य करनेके लिये ले जाते हो परन्तु जो सत्यप्रतिष्ठा नहीं है वह राज्य करने योग्य भी नहीं है, क्योंकि राज्यकी प्रतिष्ठा ही सत्यपर है 'मत्य राज्यं प्रतिष्ठितम्' असत्य बोलनेवाला अच्छा राजा नहीं हो सकता।' महारानी विक्टोरियाका घोषणापत्र अनहोनी सनद है। यों कहनेवाला कर्जन हमारे रामराज्यके आवर्ण (Ideal) से कितना गिरा हुआ है। इस बातको पाठ्य सोच सकते हैं। प्रजाराधन और सत्यप्रतिष्ठत्व इन दो गुणों पर ही रामराज्य प्रतिष्ठित था फिर वह सुखी क्यों नहीं होता। यदि कभी प्रजाको हुःस हो तो उसका भी भार राजापर आता है, यह प्रभु श्रीरामचन्द्रजीकी उच्च भावना थी। तास्यर्थं, इस उदात्त राज-कर्तव्यकी कल्पना अन्य किसी भी राजा या राज्यमें विलायी नहीं देती। इसीकारण प्रभु श्रीरामचन्द्रको हम 'उत्तम राजा' कहते हैं और सुराज्यका उत्तम आवर्ण (Highest ideal) रामराज्य बताते हैं।

इस थोड़ेसे विवरण से यह मालूम होगा कि हम प्रभु श्रीरामचन्द्रको 'मर्यादापुरुषोत्तम' क्यों मानते हैं? इतिहासमें इससे सर्वथा विरुद्ध विशाका उदाहरण औरंगजेब है। अबम पुत्र, अबम बन्धु, अबम भित्र और अबम राजा आदि सभी विरोधी गुण उसमें वर्तमान थे। पिताको कैबूल, ज्येष्ठ बन्धु दाराको मार और मुरादका पहले भित्र बनके थोड़ेसे उसका बात कर, उसने राज्य किया। अनेक शाखाओंको उसने धोखेसे मारा। महाराज शिवाजीको शत्रु बनाया और उसके मरनेके बाव उसके राज्यपर आक्रमण किया।

सत्यप्रतिज्ञताका विरोध सो यहाँतक किया कि शिवाजीके साथ पहले यह प्रतिज्ञा की कि तुम्हारे बालकोंके साथ भी कभी धोखा नहीं होगा। फिर दरवारमें बुखारकर उन्हें कैद कर लिया। प्रजारञ्जनका विरोध इतना बड़ा कि हिन्दू मात्र ही पीड़ित हो गये। हिन्दुओंके परमपूज्य स्थान तोड़े गये। तात्पर्य यह है कि औरंगजेबका राज्य रामराज्यसे अत्यन्त विरुद्ध था। इस विरोधी दृष्टान्तसे पाठकोंको श्रीरामचन्द्रके 'मर्यादा पुरुषोत्तमत्व' की कुछ कल्पना होगी।

मर्यादा-पुरुषोत्तमकी मर्यादा

(लेखक—रायबहादुर राजा श्रीदुर्जनसिंहजी)



अवधेश-कुमार, कौशल्या-प्राणाधार, जागकी-जीवन, दैत्य-मितीदन, भक्त-जन-रसन, दुष्ट-निकलन, जग-हितकारी, शरणागत-भय-हारी, भगवान् श्री-रामचन्द्र महाराजके परम मङ्गलमय, श्रीजनकदुलारी-हृदय-कल्प-भृत, श्री सौमित्रि-कर-स्वरोज-लालित, पतित-पावनीश्च सुरधुनी-प्रसुति-धाम पद-पद्मोंसे जो इस देव-नुर्लभ वसुन्धराको पावन होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ, उसका मुख्य प्रयोजन मर्यादा-स्थापनद्वारा कर्तव्यकर्त्त्व-विमूढ़ संसारको पथ-प्रदर्शन करनाथा और इसी कारण श्रीभगवान् 'मर्यादा-पुरुषोत्तम' के शुभनामसे अलंकृत किये जाते हैं।

इस महरपूर्ण और शावर्ण अवतारका यह निमित्त प्रसिद्ध है और इसके मुख्य-मुख्य कल्पाणायद चरित्रोंमें भी, जो मर्यादा प्रतिष्ठार्थ उदाहरणीय समझे जाते हैं, स्थूल रूपमें गुस नहीं हैं। जैसे—साधुओंके परिवार्य और दुष्टोंके विनाशद्वारा धर्मकी संस्थापना, गुरु-भक्ति, भालू-पिलू-भक्ति, भालू-प्रेम, एक पक्षीव्रत, वर्णाश्रमधर्मपालन, राजनीति और प्रजा रक्षा, हत्यादि। परन्तु प्रत्येक चरित्रका क्या रहस्य है, और उसके भावोंकी सीमा कहाँतक है जो आदर्शरूपसे मर्यादा-प्रतिष्ठार्थ ग्रहण किये जा सकें, इसका परिचय बहुत थोड़े लोगोंको है, अतः मुख्य मुख्य चरित्रोंपर अनुक्रमसे किञ्चित् प्रकाश आवानेका प्रयत्न किया जायगा।

(१) ऐसे उदाहरणीय पावन चरित्रोंका श्रीगणेश उस खोकहितशील छीलासे होता है जिसमें उस प्रतिज्ञाकी

पूर्तिका आरम्भ हुआ है जो आपके प्रत्येक अवतारके लिये अनादि कालसे चली आ रही है। अर्थात्—
'परित्राणाय सा तूर्ना विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युग्म युग्म ॥'

इसीके साथ इससे प्रजारक्षका आदर्श भी प्रकट होगा!—

जब श्रीविश्वामिक्रजी आपने यशकी रक्षाके लिये दोनों मधुर-मूर्ति आनांदोंको साथ लिये आश्रमकी ओर यात्रा कर रहे थे, तब मार्गमें तादिका नामकी विकराल राभसी आपने घोर दौद्र-नादमें समस्त वनको सज्जादित करती हुई इनकी ओर झपटी। उस समय श्रीभगवान्के सम्मुख धर्म-संकट उत्पन्न हो गया। एक ओर आपने उपास्य सांखु महाल्मादोंका भक्षण और प्रजाकी चर्वण करनेवाली आत्मायिनी विशाखिनी-जिसके हाता देशके घौपट होनेकी कथा श्रीविश्वामिक्रजीसे अभी सुन चुके हैं—के वधका प्रसंग और दूसरी ओर छी-जातिपर हाथ उठानेके लिये दोष-प्राप्ति-का प्रतिक्रिय, जिसका आज भी पूर्ण प्रचार देखनेमें आ रहा है। किन्तु सांखु महाल्मादोंके परित्राण और प्रजाकी रक्षाके भावका उस समय भगवान्के हृदयमें इतना आवेश हुआ कि उन्होंने उसी क्षण उस दुष्टाके संहारका कर्तव्य अब्रान्त-रूपसे निश्चित कर लिया। श्रीविश्वामिक्रजी महाराजके निष्ठ-लिखित उपदेशसे भगवान्के निश्चयकी पुष्टि भी हो गयी—

नहि ते स्त्रीवधृते धृणा कार्या नरोत्तम !

चातुर्वैष्णवीहितार्थं हि कर्तव्यं राजसूभुना ॥

(वा० रा० १२५।१७)

'हे नरोत्तम ! तुम्हारो श्रीवधृ छरनेमें ग्लानि करना

उपरित महीं। राजपुत्रको चारों वर्णोंके कल्पवत्के लिये समर्थ-
पर (आत्मतिनी) खीक्षा वध भी करना चाहिये।'

नृशंसमनृशंसं वा प्रजारक्षणकारणात् ।

पतकं वा सदोपं वा कर्तव्यं रक्षता सदा ॥

(वा० रा० १२५।१८)

'प्रजा-रक्षणके लिये क्रूर, सौम्य, पातकयुक्त और दोष-
युक्त कर्म भी प्रजा-रक्षको सदा करने चाहिये।'

जब सातु महात्मा सताये जायें और प्रजा पीड़ित की
जाय तब उस सतानेवाकी और पीका देनेवाली जीका वध
भी आवश्यकीय है। पुरुष आत्माकी हो सो उसके लिये
किसी विचारकी भी आवश्यकता नहीं।

इस चरित्रमें एक और गहरा रहस्य भरा हुआ है—श्री-
भगवान्नने जो प्रथम ही जीका वध किया, इसमें उन्होंने
संसारको यही शिक्षा दी कि जो कोई भी प्राणी मनुष्य जन्म
धारण करके जगतमें वार्मिक जीवन निर्वाह करनेका
संकल्प करे, उसके लिये प्रथम और प्रधान कर्तव्य यही है कि
वह स्वरुद्धिके सञ्चयोगद्वारा यथाशक्य मायाका दमन करे,
क्योंकि मायाके जगतात्में फैलनेके बाद धर्मको वेदीपर
आपने जीवनकी आहुति दे सकना मनुष्यके लिये असम्भव-
सा है।

(२) लाक्र-धर्मका कथा रहस्य है, इसका आदर्श इस
विचित्र चरित्रमें प्रकट होगा। परम माझलिक विश्वाहोस्सवके
पारात् जब श्रीविदेहराजसे विदा लेकर श्रीकौशल-नरेश
अपने दलबलसहित अपनी राजधानी जगत्-पावनी अयोध्या-
पुरीको पवार रहे हैं तो राज्यमें कथा देखते हैं कि प्रजवलित
नेत्र और फूलके हुए होठोंवाले भयझर बीरवेकवारी ब्रह्मकुल-
विल्वात श्रीपरश्चुरामजी उग्ररूप धारण किये श्रीरामके शैव-
धनुषमंग करनेपर अपना तीव्र क्रोध प्रकट करते हुए
श्रीरामसे कहते हैं कि 'यदि तुम इस वैष्णव-धनुषमें शर
घडानेको समर्थ हो तो तुमसे मैं इन्द्रशुद करूँगा।'

यहाँ भी विकट परिस्थिति उपस्थित है। एक और तो
ऐसे पुरुषकी ओरसे—जिसने इकोस बार पृथ्वीको उत्तिर्यहीन
कर दिया था और इस समय भी वैसे ही उग्रकर्मके लिये
जिसकी प्रहृति हुई है—इस प्रकारका युद्धान्न कि जिसको
सनिक भी उत्तिर्य-देजवाला पुरुष एक चण भी सहन नहीं
कर सकता और दूसरी ओर ब्राह्मण-वैशके प्रति इव्यमें पूज्य-
भाव। अब यहाँ यदि एक भाव दूसरेको देकता है अर्थात्
यदि युद्धान्नको स्वीकार कर उससे इन्द्रशुद कर अथवा

उनपर प्रहार कर उनके प्राण लिये जाते हैं तो पूज्यभाव
नहीं होता है और यदि पूज्यभावके विचारसे युद्धान्नके
उत्तरमें उनके दृष्टियोंपर मस्तक रक्षा जाता है तो उत्तिर्य-
देजकी इीनका होती है। अतः यहाँ ऐसी विचित्र विका
होनी चाहिये जिससे दोनों भावोंका साम्य रहकर दोनों
पदोंका महत्व स्थिर रहे और एक भावका इतना आवेद न
हो जाय कि जो दूसरेको देवा दे। अतः सर्वशक्तिमान्
भीभगवान्ने इस जटिल समस्याके समाधानरूपमें कहा—

वीर्यहीनमिवाशकं क्षत्रवर्धेण भागव ।

अवजानासि मे तेजः पश्य मेऽद्य पराक्रमम् ॥

(वा० रा० १७६।३)

'हे भृगुर्वंशी ! आपने एक वीर्यहीन और लाक्र-धर्ममें
चासमर्थ मनुष्यको ताह जो मेरे तेजकी अवश्य की है इसके
लिये आज मेरा पराक्रम देलिये ।' इतना कहकर श्रीरामने
उनसे धनुष से उसी चण चढ़ा दिया । तदनन्तर क्रोधयुक्त
होकर कहा—

ब्राह्मणोऽसीति पूज्यो मे विश्वामित्रकृतेन च ।

तस्मात्तुको न ते राम माङुकं प्राणहरं शरम् ॥

इमी वा त्वद्विं गम तपोबलसमर्जितान् ।

लोकानप्रतिमान्वापि हनिष्यामिति मे मतिः ॥

(वा० रा० १७६।६,७)

'आप ब्राह्मण होनेके कारण मेरे पूज्य हैं, विश्वामित्रजीकी
बहिन सत्यवतीके पौत्र हैं, इसलिये मैं आपके प्राण हरण
करनेवाला बाण नहीं छोड़ सकता । किन्तु, मैं आपकी गतिका
अथवा तपोबलमें प्राप्त होनेवाले अनुपम खोकोंका विनाश
करूँगा ।'

इस अमित प्रभावान्वित चरित्रका मुख्य उद्देश यही है
कि जब हृदयमें दो भावोंका एक ही साय संघर्ष हो तब
दोनोंको इसप्रकारसे सम्बालनेमें ही युद्धमानी है जिसमें
एकका दूसरेके द्वारा पराभव न हो जाय, दोनोंकी रक्षा हो,
साय ही धर्मका भी नाश न होने पावे । यहाँ सामान्यतया
सब वर्णोंके लिये और विशेषतया उत्तिर्योंके लिये इस समर्थादा-
की रक्षाका उपदेश है । वह यह है कि विचार में किसने भी
उत्तिर्य उत्पन्न हों, किसनी ही क्रोधाग्नि धर्मके, किन्तु इससे,
जिनमें पूज्य था अश्रुद्विं है वह नहीं होनी चाहिये,
साय ही अपना लाक्रतेज भी बच रहना चाहिये । इस
समर्थाका अनुकरण किसी अंशमें महाभारत युद्धमें भी दुष्टा
या । यहाँ शंका उत्पन्न होती है कि राक्षण भी तो ब्राह्मण

कल्पयण



परशुराम-राम ।

जडा दृष्टे तदालंकि गमे वरवतुर्पन् । निर्विश्वं जामदन्योऽसो नामो शमसुदेशन ॥

ही था, फिर श्रीभगवान्‌ने उसको कुबलहित कर्मों द्वारा दाका ? उसने सो केवल अद्यतात्रीका ही हरण किया था, श्रीपरशुरामजीने तो हड्डीस बार सजातियोंका विनाश किया और इस समय भी वह सर्वां भगवान्‌का संहार करनेकी चुनिदिसे ही वहाँ आये थे। इन्हें युद्धका यही तो प्रयोजन था।

इस रूपकाका समाधान करनेके लिये श्रीपरशुरामजीके अरिग्रामका कुछ परिचय आवश्यक है। एक बार श्रीपरशुरामजी-के पिता अरशदसेवी ब्रह्मांनंष तपस्ती श्रीजमद्पित्रीकी सर्वस्वल्पा हविर्वानी गीको सहस्राहु अजुंन अवरदस्ती छीनकर ले गया। परशुरामजीने युद्धमें उसका वधकर अपनी गौ छुड़ा ली। तदनन्तर सहस्रार्णुनके पुत्रोंने एकान्त पाकर ज्ञानप्रिया वध कर दाका। पूर्ण पिताकी इसप्रकार हत्या होनेपर परशुरामजीकी कोशाप्ति भड़क उठी और इन्होंने हड्डीस बार पृथ्वीको निःशक्तिय करनेका संकल्प कर दिया।

परशुरामजी भी श्रीभगवान्‌के ही अवतार थे, अतएव इस कार्यको करके उन्होंने दुर्घटियोंको ही दूर कर दिया था, अतः दुर्घटि रावणके साथ इनकी तुलना नहीं हो सकती। इन दोनोंके आचरण परस्पर सर्वथा विपरीत थे। हाँ, यह अवश्य है कि श्रीपरशुरामजीका संकल्प क्रोधवेशमें सीमासे बाहर चला गया या परम्परा इस प्रकारके आवेशके निरोधकी शक्ति केवल श्रीमर्यादा-पुरुषोत्तममें ही थी, जिन्होंने किसी भी आव या आवेशको मर्यादासे बाहर नहीं जाने दिया।

(३) धर्मयुक्त युद्ध राजनीति वा है, इसका वित्र भी श्रीभगवान्‌की इस धर्मशील लीलाके हारा पूर्णरूपसे प्रकट होता है।

जब महारानी श्रीकैकेयीने कोपभवनमें प्रवेशकर श्री-दशरथ महाराजको दो वरदानरूपी वर्षोंसे छेदकर मृद्दित कर दिया, तब भगवान्‌ने वहाँ उपस्थित होकर इसका कारण पूछा, तो कैकेयीने यह सन्देह करके कि, श्रीराम इतना स्वार्थवान् सहजाहीमें कैसे रहेंगे, उन्हें कोई स्थान उक्त न देकर पहुँचे उनसे प्रतिज्ञा करवानेका प्रयत्न किया। उत्तर-में श्रीभगवान्‌ने ये सतत अरथीय आदर्श वचन कहे—

तद्ब्रह्मि वचनं देवि ! राजा गदमिकाक्षितम् ।

कर्मिष्ये प्रतिज्ञाने च रामे दिनोभिमाप्ते ॥

(वा० रा० २१८१०)

‘माता ! महाराजसे तुमने जो कुछ माँगा है सो मुझे देला दो। मैं उसे सम्पादन करनेकी प्रतिज्ञा करता हूँ।

रामका यह सिद्धान्त स्मरण रख्तो, राम दो बात नहीं कहता अर्थात् उसने जो कुछ यह दिया सो कह दिया किंतु वह उसके विस्तृत नहीं कहता।'

कैसी महस्तपूर्ण वचन-पालनकी प्रतिज्ञा है। विवाहिते, एक और अनेक भोग-विलासोंसे पूर्ण विस्तृत विशाल राज्य-के सिंहासनकी अभिरुचि और दूसरी ओर शीत, आत्म, अवश्य भागी, राजस, हिंसक पशु आदि अनेक विज्ञ-वाधाओं-से युक्त कल्पनातीत क्लेश सहन करते हुए पृष्ठाकी अरथ-सेवन। इस जटिल समस्यामें जिस राजनीतिके बलपर अनेक रथाएँ रखी गयीं और आजकल भी वहाँ उसको पालिसी (Policy) और वहाँ दिप्पामेसी (Diplomacy) कहते हैं जो केवल छलप्रधान होती है और जिसमें प्रकट कुछ और ही किया जाता है तथा भीतर कुछ और ही रहता है। यहाँ उसके हारा साम, दान, दश्व और भेदरूप चतुर्विध नीतिका प्रयोगकर युक्त और चतुराईमें काम लेनेका प्रयोजन कोई ऐसी उपाय सोच निकालना ही होता कि जिसमें सिंहासनका स्वार्थ हाथमें नहीं जाता। किन्तु श्रीरामके परम पवित्र हृष्टमें राजनीति और धर्म दो रूपमें नहीं थे ? वहाँ तो राजनीतिका अर्थ ही ‘धर्मसे अविस्तृत’ निश्चित था, धर्मकी दृष्टिये तो एक अयोध्याका तो क्या, चौदह भुवनका साम्राज्य भी सूर्य-मरीचिका ही है। इससे सिद्ध होता है कि स्वधर्मको नष्ट करके स्वार्थसाधन करना मनुष्यमात्रके लिये निषिद्ध है, जिसमें राजापर तो नराधिपति होनेके नाते उसकी सर्वप्रकारको रक्षा करनेका दायित्व है। धर्मात्मा राजा कभी स्वार्थमें लिप्त नहीं हो सकता। यथार्थ राजनीति वही है जिसमें धार्मिक सिद्धान्तोंका स्वरूपन न होकर व्यवहारकी सुकरता हो जाय। अर्थात् साम, दान, दश्व और भेदरूप नीतिके हारा ऐसी युक्ति और निपुणतामें काम लिया जाय, जिसमें व्यवहार भी न बिगड़ने पावे और धर्मकी विस्तृता भी न हो सके। छल-प्रतारव्यापि-प्रधान हुष्ट-युक्तिसे किसी व्यवहारको सिद्ध भी कर दिया तो वह वस्तुतः कूटनीतिका कार्य, पापमें परिवर्त होकर मनुष्यको नरकमें ले जाता है। इसके लिये श्रीयुष्मित्र राजाहारका उवाहन्य प्रसिद्ध है : जिनकी आजन्म एड सत्य-निष्ठा रही, उन्हें युद्धके अवसरपर दूसरोंके अनुरोधने केवल एक बार, और वह भी दूषे हुए शब्दोंमें, अन्यथा बोलनेके कारण हुःस्तप्रद नरकमां हार देलना पड़ा !

(४) आत्-प्रेमकी पराकाढा देलना चाहें सो इस कथा-सूतका पान कीजिये।

जब चित्रकूटमें वह सूचका पहुँची कि श्रीभरतजी चतुर्विज्ञी सेना लिये धूमधारसे चले आरहे हैं तब लक्ष्मणजी-ने क्रोधवेदामें भरतजीको युद्धमें पराजित करनेकी प्रतिज्ञा कर डाली। भगवान् श्रीराम तो उसको सुनते ही सज्जामें आगये। वही विक्रियता परिस्थिति है। एक और वह प्यारा सरल भाई है जो सर्वत्र स्थाग करके अनन्यभावसे सेवामें सत्पर है और इसकथा भी साक्षिघ्यमें ही उपस्थित है और दूसरी ओर वह प्रिय आता है जो समीप नहीं है और जिसकी माताकी कूरताके कारण ही आज बनवासका दास्ता हुःख सहना पव रहा है परन्तु जिससे परस्पर परम गूढ़ और अनिर्वचनीय प्रेम है। सामान्यरूपसे जगत्-प्यवहारानुकूल अपरोक्षपर ही विशेष ज्ञान दिया जाता है किन्तु श्रीभगवान्का हृदय ऐसी मुँहदेखी बातोंको कब स्पर्श कर सकता था? वहाँ तो परोक्ष और अपरोक्ष दोनों ही समान हैं। ऐसी वृश्णि में अपने प्रेमीके विरुद्ध श्रीरामको एक शब्द भी कैसे सहन हो सकता था? विरुद्ध शब्दोंके कानमें पढ़ते ही प्रेमावेशमें तत्काल उत्तेजित होकर श्रीरामने प्यारे भाई श्रीलक्ष्मणके स्विन्ह होनेकी कुछ भी परवान कर ये वचन कह ही डाले—

‘भाई लक्ष्मण! धर्म, धर्म्य, काम और पृथिवी जो कुछ भी मैं चाहता हूँ वह सब तुम्हाँ लोगोंके लिये। यह तुमसे मैं प्रतिज्ञा-पूर्वक कहता हूँ, भरतने तुम्हारा कब क्या अहित किया है जो तुम आज ऐसे भयाकूल होकर भरतपर सन्देह कर रहे हो? तुम्हों भरतके प्रति कोई अप्रिय या कूर वचन नहीं कहना चाहिये। यदि तुम भरतका अपकार करोगे तो वह मेरा हो अपकार होगा। यदि तुम राज्यके लिये ऐसा कह रहे हो तो भरतको आने दो, मैं उससे कह दूँगा कि तुम लक्ष्मणको राज्य दे दो। भरत मेरी बातको अवश्य ही मान लेंगे।’

वहाँ यह शंका नहीं करनी चाहिये कि श्रीभगवान्का श्रीलक्ष्मणजीमें उतना प्रेम नहीं था, उनको तो ग्रामीणाव्रम्म प्रेम है, फिर अपने अनन्य सेवक प्यारे कलिष्ठ आता लक्ष्मण-के लिये तो कहना ही क्या है। यहाँ जो क्षोभ हुआ है सो वास्तवमें लक्ष्मणजीपर नहीं है, उनके हृदयमें विकृति उत्पन्न हो गयी थी, उसीको निकालनेके लिये श्रीभगवान्का यह कठोर यत्न है। भगवान्के वचन सुनते ही श्रीलक्ष्मणजीका मनोविकार नाश हो गया। इस प्रकार अन्य प्रायिकोंके साथ भी किया जाता है। श्रीभगवान्को किसीसे तनिक भी द्वेष नहीं है। सबके आरम्भ होनेके कारण ये तो सबके आत्मरूप हैं। केवल अंकुरित विकृतियोंको ही वयोवित दण्डादि विकिरणेके द्वारा नष्ट किया करते हैं।

(२) अब नासिकवादको किसी प्रकार भी ये सह सकनेका एक अभ्यान्त इष्टान्त सुनिये—श्रीभरतजीने जब चित्रकूट पहुँचकर श्रीभगवान्को अवधुरी लौटाकर राज्याभिषेक करनेके अनेक यत्न किये, अनेक प्रार्थनाएँ की और श्रीविश्वामी आदि अविद्योंने भी अपनी अपनी तुष्टिके अनुसार परामर्श दिया। तब उन अविद्योंमें जावालि अधिकामत सनातनधर्मसे नितान्त विरुद्ध प्रकट हुआ। नमूनेके लिये एक श्लोक लीजिये—

तस्मान्भातापिता चेति राम सञ्जेत यो नरः ।

उन्मत्त इव स झेयो नासित कश्चिद्विकस्याचित् ॥

(वा० रा० २। १०८।४)

‘हे राम! अतएव यह माता है यह पिता है यों समझ-कर जो हृन सम्बन्धोंमें लिप्त होता है उसे उन्मत्त जानना चाहिये, क्योंकि कोई किसीका नहीं है।’ ऐसे ही और भी धर्मविश्वद्वारा बातें थीं। श्रीभगवान्के लिये यह अतिशय जटिल प्रस्तुत था। एक पहले था धोर नासिकवाद और दूसरेमें उसको प्रकट करनेवाले अपने कुलपूज्य अधिष्ठि। श्रीभगवान् बड़े ही अवश्य थे, फिर जावालि अधिष्ठि तो कुलके आदरणीय एवं उपास्य हैं ऐसे महानुभावके प्रति श्रीरामके आगाम हृदयमें विकृतभाव कब उत्पन्न हो पाते थे? परन्तु धर्मसे नितान्त विरुद्ध शब्दोंने—जिनका आशय, श्रीभगवान्को सत्यमें विचलित करनेका था—हृदयमें परिवर्तन कर दिया। श्रीभगवान् ने उस समय मर्यादाराङ्गार्थ नासिकवादका तीव्र विरोध करना ही उचित समझा और तिरस्कारपूर्वक उन्हें जो कुछ कहा, उसका एक वचन यह है—

निन्दाप्रयं हं कर्म कृते पिनुस्तदा-

स्वामगृहाणादिष्मस्थवुद्धिम् ।

बुद्धानन्दयंविधान्वन्तं

मुनास्तिकं धर्मपथादपेतम् ॥

(वा० रा० २। १००।३३.)

इसप्रकारकी तुष्टिसे आचरण करनेवाले तथा परम नासिक और धर्म-मार्गमें हटे हुए आपको जो मेरे पिताजीने याजक बनाया, मैं उनके इस कार्यकी निन्दा करता हूँ। क्योंकि आप अवैद्यक तुष्टिगंस्थित तुष्टिवाले हैं।’ आखिर जावालिके यह कहनेपर कि ‘मैं नासिक नहीं हूँ, केवल आपको लौटानेके लिये ऐसा कह रहा था’ और विश्वामीके द्वारा इसका समर्थन किये जानेपर भगवान् शान्त हुए। धर्म और सत्यके उल्लंघनवालोंके आवेशमें नासिकवादकी अवश्यकी परा-काढ़ा यहाँतक पहुँची कि पिनुभक्तिमें बैधे हुए श्रीरामने जो

पूज्य पितामह सत्यकी रक्षार्थ आज अनेक संकट सहन कर रहे हैं, उन्होंने पितामह कार्यमें भी अश्रद्धा प्रकट की। इससे जो मर्यादा सिवर की गयी, उसका प्रत्यक्ष उद्देश यही है कि मनुष्यको अन्य सब विचार स्वागत नास्तिक भावोंका उभयोग करना चाहिये।

(१) अब गुरुभक्तिके गंग-तरंगवत् पावन प्रसंगपर विचार कीजिये।

याँ तो कुल-उपास्य श्रीवशिष्ठ महाराजका महत्व स्थान स्थानपर प्रकट है। प्रत्येक धार्मिक और व्यावहारिक कार्यमें उनकी प्रशानता रही है, जो यह गुरुभक्तिका पूर्ण प्रमाण है। परन्तु देखना तो यह है कि विकट समस्या उपस्थित होनेपर अन्य उदाहरणीय चरित्रोंकी तरह गुरुभक्तिके प्रबल भावोंका ही हृदयमें साक्षात्प्र होकर उसकी अन्वन्यता किस विशेष चरित्रके द्वारा सिद्ध हो सकती है।—

खेदसे कहना पड़ता है कि श्रीवाल्मीकि-रामायण, मर्शादा-रचनाके इस एक मुख्य अंगकी पूर्तिमें असमर्थ रही। उसमें कहीं भी ऐसा प्रस्तुत नहीं है, जिसके द्वारा इसको सिद्ध किया जा सके, प्रथम चित्रकूटमें तो उपर्युक्त प्रस्तुतमें जब श्रीगुरु महाराजने बड़े प्रबल हेतुवादके द्वारा श्रीभरतजीके पश्च-समर्थनकी चेष्टा की तो दूसरोंकी भाँति उनका कथन भी भगवान्नने स्वीकार नहीं किया।

श्रीमानस-रामायणने अपनी सर्वाङ्गपूर्गता सिद्ध करते हुए चित्रकूटकी लीलामें ही इस मर्यादाकी भी यथेष्ट रक्षा की है—

श्रीवशिष्ठजी महाराज भरतजीका पक्ष खेकर भगवान् से कहते हैं—

सबके ऊर अन्तर वसहु, जानहु भाव कुभाव।

पुरजन जननी भरत हित, होइ सो करिय उपाव॥

इसपर भगवान्नने जो उत्तर दिया वह गुरुभक्तिकी पराकाढा है—

सुनि मुनि वचन कहत रघुराज। नाय तुम्हरे हि हाथ उपाऊ॥

सब कर हित रख राऊ राखे। आयसु किये मुदित फुर भासे॥

प्रथम जो आयसु मो कहै हैर्व। माये मानि करौं सिख सोई॥

विचारिये, कहाँ तो पितृभक्तिके पालनार्थ वनवासके लिये आप हृतने इक हो रहे थे कि यदि कोई उसके विलम्ब कहता या तो उसे तुरन्त उचित उत्तर दे दिया जाता था परन्तु आज गुरुदेवकी आशाके सम्मुख श्रीभगवान्नने अपना

वह संकल्प सर्वथा ढीक कर दिया। गुरुभक्तिकी इससे अधिक क्या मर्यादा हो सकती है?

(२) मातृभक्तिकी परम सीमाका यह उच उदाहरण सुननेवोन्म ही है—

पञ्चवटीमें श्रीजानकीजीसहित दोनों आता सुखपूर्वक बैठे परस्पर वार्ताकाप कर रहे हैं। जब श्रीकृष्णजीने श्रीभरतजीकी क्षाधा करते हुए कहा—

भर्ता दशरथो यस्याः सायुध भरतः सुतः।

कर्य नु साम्बा कैकेयी तादशी क्रदर्शिनी॥

(वा०२० ११६।३५)

जिसके पति श्रीदशरथजी महाराज और पुत्र साम्ब स्वभाव भरतजी हैं, वह माता कैकेयी ऐसी कूर स्वभाववाली कैसे हुई?

यहाँ भी एक और वही प्राणपत्त्यसे सेवामें तत्पर 'अलीक-वचन बोलनेवाले' कनिष्ठ आता हैं और दूसरी ओर वही विमाता जिसके कारण यह सारा उत्पात और विघ्न हुआ। परन्तु कुछ भी हो, मातृभक्तिके भावोंने हृदयमें हृतना उत्कट रूप धारण किया कि माताके विलम्ब एक भी वचन उन्हें सहन नहीं हुआ। श्रीभगवान्नने कहा—

न तेऽम्बा मध्यमा तात गर्हितव्या कदाचन।

तामेवेष्वामुनायस्य भरतस्य कथां कुरु॥

(वा०२० ११६।३७)

'हे भाई ! तुमको मैं कली माताकी निन्दा कदापि नहीं करनी चाहिये। इक्ष्वाकु-कुल-ब्रह्म भरतजीकी ही बातें कहनी चाहिये। इससे अधिक मातृभक्तिकी मर्यादा और क्या हो सकती है ?'

(३) मित्र-धर्म और स्वामिधर्म दोनोंकी पराकाढाके विचित्र चित्रका दर्शन इस एक ही भर्मस्पर्शी लीलामें हो जाता है।

भगवान्के निर्मल, विशिष्ट और मर्यादा-पूर्ण चरित्रोंमें तीन ऐसे हैं जिनमें उनके यथार्थ स्वरूपकी अनभिज्ञताके कारण अबोध मनुष्य प्राप्तः आवेप किया करते हैं। इन तीनोंमें एक बालि-धर्मकी लीला है।

अन्य पुरुषोंकी तो बाल ही क्या, स्वयं बालिने भी श्रीभगवान्को अधिकिष्ठ किया है। उसके आवेपोंके उत्तरमें अबेक प्रकारसे समाधान हुआ है किन्तु इसमें सबसे मुख्य हेतु यह है—

जिस समय सुधीवसे मित्रता कर श्रीभगवान्‌ने प्रतिशा की थी उसी समयके बचन हैं—

प्रतिशा च भया दत्ता तदा बानरसलियौ ।
प्रतिशा च कथं शश्या मद्विधेनानवेक्षितुम् ॥
(वा०रा०कि ४।१८।२८)

‘मैंने सुधीवको जो बचन दिया था, उस प्रतिशाको अब कैसे दाल सकता हूँ ?’

विचारिये, बालिने साकात् श्रीभगवान्‌का कोई अपराध नहीं किया था, किन्तु बालि अपने मित्र सुधीवका शशु या । अतः उसको अपना भी शशु समझकर उसके संहार-की तर्कल प्रतिशा की गयी । यही तो मित्र-धर्मकी पराकाहा है । मित्रका कार्य उपस्थित होनेपर अपने मित्रके हानि-खामोश सब विचार कोइ उसका कार्य जिस प्रकार भी सम्भव हो, साधना आहिये । इसीलिये मित्रके सुख-सम्पादनार्थ उसके शशुरूप आताका वध किया गया । इस बातके समझनेमें तो अधिक कठिनता नहीं है किन्तु जिस बातपर सुख आँधेर होता है वह यह है कि ‘बालिको शुद्धारान द्वारा सम्मुख होकर धर्मरूपक वर्णों नहीं मारा ?’ इस शंकाका समाधान श्रीवाल्मीकीय या मानस दोनों रामायणों-के भूलसे नहीं होता । दीक्षाओंके निर्वाय-अनुसार यथार्थ बात यह यी कि बालिको एक मुनिका वरदान या कि सम्मुख तुद करनेवालेका वज्र उसमें आ जायगा, जिसमें उसके बलकी वृद्धि हो जायगी । इस दशामें भगवान्‌के लिये एक जटिल समस्या आ लड़ी दुई । बालिको प्रतिशा-पाकार्थ अवश्य मारना है । यदि अपनी पेरवर्य शक्तिसे काम ज्ञेते हैं तो उस वरदानकी महिमा घटती है जो आपकी ही भक्तिके बलपर मुनिने किया था । और यदि वरदानकी रक्षा की जाती है तो धर्मरूपक तुद न होनेसे पापकी प्राप्ति और जगतमें विनाश होती है । इस समस्याके उपस्थित होते ही स्वामिदर्शके भावोंने इदयमें इतनी प्रबलता की कि भगवान् अपने धर्मांकमें और निष्ठासुति-के विचारको इदयसे तर्कल निकाल, अपने जनका मुख ढँचा करना ई सुख समझ उस सुधीवसे छढ़ते हुए बालिको बालसे भारकर गिरा ही तो दिया ।

इससे यही मर्दाना निश्चित हुई कि स्वामीको कोई येर्सी चेष्टा नहीं करनी आहिये जिससे अपनी स्वार्य-सिद्धिके द्वारा अपने दास या सेवकका महाव घटे । इस विषयपर सल्लाह और निष्पशुद्धिसे विचार करना आहिये कि

श्रीभगवान्‌का धर्मरूप कार्य वरदानकी महिमाको क्षीण करते हुए सम्मुख धर्मरूप करना होता या अब हुआ है जिसमें अपने निकालका विचार इदयसे निकालकर केवल अपने जनके वरकी प्रतिशा रखती गयी ?

(५) अब दारणागत-वस्तुताके महत्व निष्पत्तिका प्रस्तुत देखिये—

जिस समय विभीषणजी अपने भ्राता रावणसे तिरस्कृत होकर श्रीरामद्वारमें आये उस समय श्रीभगवान्‌ने अपने सभी समीपस्थियोंसे सम्मति की । उसमें विसीका मत विभीषणके अनुकूल नहीं हुआ । बात भी ऐसी ही थी, अकमात् आये हुए साकात् शशुके भाईका सहसा कैसे विश्वास हो ? किन्तु इन सब विचारोंको इदयमें किञ्चित् भी स्थान न दे शारणागत-वस्तुताके भावसे श्रीरामने सहसा अपना निश्चय इस बचनके द्वारा प्रकट कर दिया, जो महावाक्य समझा जाता है —

सहदेव प्रपत्याय तवास्मीति च याचते ।
अपयं सर्वमृतेभ्यो ददाम्येतद्ब्रह्मतमम् ॥

(वा. रा. ६।१८।११)

(१०) लोकमतका क्या भूल है और शालको लोक-हितको कितनी आवश्यकता है, इस प्रमुख विषयपर यह एह इदयशरीराका लोका पूर्ण प्रकाश दालेगी—इसी चरित्रसे पातिकृत जर्म और एकल्पीकृतका क्षादर्ता भी सिद्ध होगा । बालि-वज्र-सीलामें कहा गया था कि भगवान्‌की तीन जीवाङ्गोंपर कालेप होता है । उनमें दूसरी यह है । किन्तु यह कालेप ऐसे मनुष्योंके द्वारा होते हैं किन्तु इस कराक कालके काल्य पूर्ण विकृतिकाँ आ गयी हैं । इस परम संकीर्णताके युगमें ऐसे शालाओंके दर्शन तो कहाँसे होंगे जो प्रजाके आन्तरिक भाव जानेवाल यह करके उनके कह-कहेरा या अवादोंको यथाशक्य तूर करनेकी चेष्टा करें, किन्तु ऐसे भी तो नहीं हैं जो खुलेहृषसे धर्मरूपक आन्दोलनके द्वारा प्रकट होनेवाले लोकमतका भी आदर करें । भावकल तो ऐसे प्रवासोंके उल्टा दमन होता है । आवकलकी नीतिके अनुसार तो स्वायत्त पात्र वही समझा जाता है जो अपने प्रबल संगठनद्वारा राज्यको दाव ले रहे । वह, ऐसी ही चुन्नीतियोंका अनुभव कर करोग इन उदार चरित्रों पर तुरन्त कुरके करनेको सहज हो जाते हैं, और यह नहीं सोचते कि उस रामरासपर्यमें कोक्षमतके भाईरकी सीमा इतनी ढँची थी कि वह आवकलके संकीर्ण विचारकालोंको कल्पना तकमें भी नहीं आ सकती । प्रस्तुत वे तो उसमें

उस्टे दूषण कराते हैं। उस समय प्रजाके सचे हितके लिये कैसा भी कठिन साधन बचाकर नहीं रखता जाता था। इसीका एक सर्वोल्हृष्ट उदाहरण यह है। एक विषस कुछ हास्यकार पुरुष इस्त्याद्विहारा श्रीभगवान्को रिखा रहे थे। उसी प्रसङ्गमें श्रीभगवान् ने उनसे पूछा कि 'नगरमें हमारे सम्बन्धकी कथा बातें दुश्च करती हैं? उत्तरमें निवेदन किया गया कि 'सेतुबन्धन, रावणवधादि अनुहृत कार्योंकी पूर्ण प्रशंसा है किन्तु इसप्रकारकी चर्चा भी नगरमें हो रही है कि रावणने जिन श्रीसीताजीको आङ्कुरे लेकर उनका हरण किया और जिन्होंने उसके घरमें निवास किया उनको जब महाराजने स्वीकार कर लिया तो अब हम भी अपनी लियोंके देसे कार्योंको सहन करेंगे।'

श्रीभगवान्को यह सुनकर परम स्वेद दुश्चा। उन्हें अपनी आदर्श पतिव्रता सहर्षमिशीकी पूर्ण पवित्रताका अटल निश्चय था, बल्कि रावणके विषय करनेके अनन्तर उसको अपने समीप उकाने पर कठिन अभिपरीक्षा भी करा ली गयी थी और उसमें वह सबके समझ ढोकाके ढंके उत्तीर्ण दुई थी। यह सब कुछ सूर्यवत् निष्ठताका सिद्ध होने दुए भी केवल लोकमतका महस्त बदानेके लिये अपने उस प्राणप्रियाके—जिसका बनवासमें किञ्चित्-कालीन वियोग ही सर्वेषां असद्य हो गया था—परिस्थागका ही निश्चय करके अपने तीनों भाताओंके सम्मुख श्रीरामने यह बचन कहे—

'पुरुजन और देशवासियोंके द्वारा (मेरे विषयमें) यह बहुत बड़ा अपवाद है। संसारमें उत्पक्ष होनेवाले विषस किसीकी निन्दा की जाती है वह निश्चय जबतक वे अकीर्तिके शब्द कहे जाते हैं तबतक नीचे लोकोंमें गिरता है। निन्दाकी दुर्लाइ देवता भी करते हैं और कीर्तिका संसारमें आदर होता है। सब बड़े महात्माओंकी संसार व्यवहारमें कीर्तिके लिये ही प्रशंसा है। हे पुरुषभ्रेष्ठो! मैं अपने प्राण और तुम सबको भी (प्रजामें कीर्ति-रक्षाके लिये) स्वाग सकता हूँ।'

कहिये, लोकमतका इससे अधिक आदर क्या हो सकता है? और इसी कारण ऐसा स्थान किया गया कि जिससे अधिक सम्भव ही नहीं। परन्तु इसमें सुख्य तथा विचारणीय जात यह है कि यहाँ कोरे पोले लोकमतका ही आदर नहीं किया गया है, इसमें परम लोकहित भी अभिमत था, ज्योंकि संसारकी दृष्टि अन्तर्वर्ती हेतुओंके तल तक न पहुँच केवल परिषामपर रहती है। अतः जैसा श्रीजानकीजीका शुद्ध चरित्र

या, उसकी सर्वेषा उपेक्षा करके स्थूलदृष्टिके द्वारा यही प्रसिद्ध हो गया कि, जब राजाने राष्ट्रोंके वशमें प्राप्त हुई पश्चिमो अहय कर लिया तो प्रजा भी राजाका ही अनुकरण करेगी। विचारिये, यदि श्रीभगवान् अपने हृदयको पाषाणा बनाकर श्रीजानकीजीका त्यागरूप उत्तर कार्य न करते तो सदाचारको कितना भयानक धक्का पहुँचता? सभी लियाँ श्रीजानकीजीके शुल्य ऐसे कठिन प्रतिव्रतधर्ममें इद नहीं रह सकती विशेषकर अद्वितीय-सरीखे समयमें। सच पूछा जाय तो यह आदर्श आजक्षेसे समयके लिये नहीं था क्योंकि आज तो सदाचारका सर्वेषा लोप होकर संसारमें धर्मविलुप्त विचारों-की यहाँतक प्रबलता है कि लोग विवाह-संस्काररूप मुख्य संस्कारके बन्धनोंको भी छिप भिज करवानेके लिये राजासे कानून बनवा रहे हैं। इस कराल कालमें योनि-पवित्रता तो कोई वस्तु ही नहीं रही। इसके कारण देश थोड़े ही समयमें वर्णसंकर-स्थितिसे व्याप्त हो जायगा। श्रीभगवान्के इस दूर-दर्शितापूर्ण चरित्रसे पातिव्रतधर्म और एकपक्षीव्रतकी भी पूर्ण पराकाणा प्रमाणित हुई, श्रीजानकीजीकी जबतक वे श्री-भगवान्के साथ रहीं, पूर्ण अनुरक्षना प्रकट ही है और अन्तमें भी उन्होंने स्वामीकी आज्ञा पाठन करते हुए ही थोर यातना सहकर शारीर स्थान किया। साथ ही श्रीभगवान् ने भी कभी अन्य द्वीका संस्कार भी हृदयमें नहीं किया और विशेषके पश्चात् ब्रह्मचर्यमें ही अपनी लीला समाप्त की।

(११) अन्तमें एक ऐसे पवित्र चरित्रका निरूपण होगा जिससे वर्षाचाम-धर्म-रक्षा और न्यायपरायणताकी पराकाणा सिद्ध होती है।

वस्तुतः यह विषय गहन है और इसकी गहनताको न समझकर ही लोगोंकी दृष्टिमें वह अधिक आहेपयोग्य समझा गया है। यह आहेपजनक तीसरी लीला है।

एक समय एक ब्राह्मणका इकलौता बालक मर गया। उसने मृत पुत्रको लाकर राजाहारपर डाल दिया और विलाप करते हुए आकोश किया कि 'इस बालककी अकालमृत्युका कारण राजाका महान् दुःहृत है।' ज्ञानिसुनि आदिकी परिषद्-के द्वारा विचार किया गया तो योग्यतासे या विव्युद्धिसे यह निर्णीत हुआ कि कोई शद्ध अनविकार तप कर रहा है। उसीके कारण इस बालककी मृत्यु हुई। जहाँ ऐसा अनाचार होता है वहाँ लक्ष्मीका अभाव हो जाता है और वहाँका राजा नरकाशमी होता है।

यह मुनसे ही श्रीभगवान् किसी अधिकारी या कर्मचारी-

को अनुसन्धानकी आङ्गा देकर अथवा कोई गुप्तचर (सी० आई०टी०) बताकर दायित्वसे मुक्त नहीं हुए, तल्काल उपर किमानमें विराजित हो स्वयं उसकी खोजमें निकले। जब दक्षिण-दिशामें पहुँचे सो देखा कि एक उल्ल लठोर तपमें प्रवृत्त है। उससे प्रभ करनेपर उसने स्पष्ट और सत्य उत्तर देते हुए कहा कि 'मैं मिथ्या कभी नहीं बोलूँगा। मैं शम्भूक नामक शूद्र देवलोककी प्राप्तिके लिये तप कर रहा हूँ।' इतना सुनते ही श्रीभगवान् ने सहगसे उसका मस्तक छेदन कर दिया। इधर इसका वध हुआ और उधर वह बालक सजीव हो उठा।

संस्कृतप्रसे कथा इतनी ही है, किन्तु इसमें रहस्य भरा हुआ है। जो केवल ईश्वर-सृष्टिकाव्यपर ही तुले हुए हैं अर्थात् जिनकी संकुचित बुद्धि प्रत्यक्षके बाहर जाती ही नहीं उनको कैसी भी युक्ति और प्रमाणोंसे समझाया जाय, वे उस तत्त्व पर पहुँच ही नहीं सकते। इसी एक बातको ज्ञानिये कि आज जो स्थान स्थानपर इदय विदीर्घ करन-बाले इस्य देखनेमें आ रहे हैं—पिता पितामह अपने बेटे पोते सबको स्मशानभूमिके अपेक्षकर पूर्वजन्मके घोर अनिष्ट संस्कारोंको भोगते हुए अपना शेष हुःख और जीवन दिता रहे हैं। इसके विपरीत जब यह बात सुनी जाती है कि उस कालमें अकालमृत्यु ही नहीं होती थी अर्थात् प्राची अपनी पूर्ण आशु समाप्त करके ही कालको प्राप्त होते थे और ऐसा अवसर ही नहीं आता था कि पिताके सामने पुन्र मरे। तो यह बात परम आश्रयजनक प्रतीत होती है। परन्तु वास्तवमें बात ऐसी ही है। वर्तमान नयी सम्यताको चाकाचौधसे विकृत हुई दृष्टिकाले भले ही इसपर दिल्ली उड़ावें किन्तु जिनको चारों युगोंके भिन्न भिन्न धर्मोंका ज्ञान है उनको इसपर आपत्ति नहीं हो सकती। इस सम्बन्धमें सामान्य आस्तिक बुद्धिवाले मनुष्योंके हृदयमें भी जो प्रदल शंकाएँ उत्पन्न हो सकती हैं, वे ये हैं—

(क) ब्राह्मणने बालकके मृतक शरीरको राजहारपर लाकर डाला और वहाँ उसका निर्णय होकर वह राजाके न्यायमें जीवित हो गया। आज ऐसा क्यों नहीं होता? यदि ऐसी बात भी राजाके अधिकारमें हो सो आज तो राजहारों-पर मृतक शरीरोंके ढेर लग जायें और राजहारका नाम परिवर्तन होकर वह मृतकभवन ही हो जाय।

(ख) तप करना तो पवित्र काम है, उसको सदोष क्यों समझा गया? और ऐसा हो भी तो उस शूद्रके तप करनेमें

ब्राह्मण-बालककी मृत्युका क्या सम्बन्ध ? कोई मनुष्य तप करे कहीं और कोई मरे कहीं। यह बात कुछ समझने नहीं आती।

(ग) यदि दूसरी शंकाका कुछ समाधान हो भी जाय तो ऐसा उम्र दरढ वर्षों दिया गया जो अति शृंखित वा निर्देशतापूर्ण कार्य समझा जा सकता है?

आधुनिक युगमें—जब कि धर्मपर अद्वाकी पूर्ण शिथिलता हो रही है— ये शंकाएँ अनुचित नहीं समझी जा सकतीं। अब अपनी बुद्धिके अनुसार क्रमसे इनका समाधान किया जाता है।

(क) धर्मशास्त्रों (स्मृतियों) से यह बात सिद्ध है कि धर्म वस्तुतः ईश्वरार्थ साधक है—अर्थात् उसके दो विभाग हैं। एक अदृष्ट अर्थसाधक और दूसरा दृष्ट अर्थसाधक। यथापि दोनों ही धर्मानुशासनके अन्तर्गत हैं और दोनोंका ही मुख्य उद्देश्य आत्मोन्नति है पूर्व दोनोंकी रक्षाका दायित्व भी राजापर ही है किन्तु जो भाग अदृष्टार्थसाधक है उसमें प्रधानता योगदलविशिष्ट और दिव्यदृष्टिसम्पन्न महर्षि, ब्रह्मर्थि, राजर्थि आदि परमोच्च आत्माओंकी है, पर दूसरे दृष्ट-अर्थसाधक भागका—जिसका पृथक् नाम व्यवहार हो गया है—सम्मादन मनुष्य-जातिके अधिकारी कर्मचारी-गणोंके हारा भी हो सकता है और वही राजतन्त्र कहलाता है। अदृष्टार्थ भागसे ऐसे विद्यार्थीका सम्बन्ध है जिनका परिणाम प्रत्यक्षमें कुछ नहीं दीखता। इसी भागके साधनार्थ प्रकृति नियमानुसार वर्ण और आश्रमोंके नियमोंकी स्वयस्या की गयी थी। उस समय वैसी उच्च आत्माओंके विद्यमान रहनेमें दोनों भागोंका परिपूर्णतासे साधन होता था और राजहारपर केवल जनताके परस्परके विवाद ही नहीं जाते थे किन्तु दैर्घ्यां अनिष्ट घटनाओंहारा होनेवाले कटोंकी भी उकार सुनी जाती थी और उनका यथोचित न्याय किया जाता था। यही रामराज्यका महत्व था। आज वह पवित्र और दिव्य सामग्री नहीं हैं। न वैसी उच्च आत्माएँ ही हैं और न वैसे राजा ही हैं जो अदृष्ट विभागका पूर्ण नियमन कर सके। इसी कारण वर्ष और आधम-धर्मका वेगसे लोप होता चला जा रहा है। अब तो केवल इह भाग (व्यवहार) शेष रह गया है। किन्तु उसकी दशा भी स्वार्थीयोंके हाथमें आ जानेसे परम शोषणीय है। अब व्यवहारसम्बन्धी न्यायोंकी ही दुर्दशा है तो अदृष्टविभागके

झारा न्याय कहाँ सभाव है ? इसी करण अब राजद्वारपर कृतक ले जानेसे कोई अर्थ सिद्ध नहीं होता ।

(ल) तप करना पवित्र ही नहीं वह सो परमोच्च कहाका साधन है, जिसका सृष्टिके आदिमें श्रीभगवान्‌ने ब्रह्मजीको उपदेश किया था । किन्तु, इसके साधनके लिये आहिये अधिकारी । यह शूद्र अधिकारी नहीं था, क्योंकि श्रीभगवान्‌के ‘चातुर्वर्ण्यं मया सुष्टुं गुणकर्मविभागशः’ वचनानुसार प्रत्येक वर्णकी उत्पत्ति कर्म और गुणके आधारपर हुई है । तदनुकूल इस वर्णमें उच्चगुणविशिष्टता नहीं होती, जिससे उसमें उच्च कर्मकी योग्यता हो सके और यदि अहकारपूर्वक कोई उच्च कर्मका संकल्प कर ले तो वह अनधिकार चेष्टा है । उदाहरण-के लिये समझ लीजिये कि राजतन्त्रमें यदि कोई कनिष्ठ अधिकारी उच्च अधिकारीका आसन घटकर स्वयं आरूढ़ हो जाय तो किसी अनन्यस्तता होकर दृष्टार्थसाधक धर्मविभागमें अर्थात् राजतन्त्रमें हलचल भव जाय । बस, इसी-प्रकार यदि कनिष्ठ अधिकारी दृঁचे अधिकारका कर्म करने लगे तो अदृष्टार्थसाधक धर्मविभागमें भी पूर्ण हलचल भवकर उपरे परिणामभून उत्पात और विज्ञ आ उपस्थित हों । राजापर दोनोंका दायित्व है । इसलिये राजाका कर्तव्य है कि दोनों ही अनधिकार चेष्टाओंके अपराधियोंके लिये यथोचित दरडविश्वान करे । आज यथोचित दृष्टार्थसाधक धर्मविभागका नो उच्चरा जैसे तैसे दृष्ट रहा है परन्तु अदृष्टार्थ धर्मविभागके नियन्त्रणका सर्वथा अभाव है और देश वर्णसंकर-सृष्टिके कारण अनधिकार कियाओंसे व्याप्त हो रहा है । मुख्यतया इसी करण अतिवृष्टि, अनावृष्टि, दिस, आतप, शतभा, महामारी आदि उपद्रवोंका बेग पूर्णरूपमें बढ़ रहा है ।

यहाँ यह आवेदन अवश्य प्राप्त होता है कि ऐसी दशामें शूद्रके लिये आमोजति या आमोद्धार करनेका अवसर ही नहीं है । यथोपि देखनेमें यह आवेदन प्रबल दीखता है किन्तु वास्तवमें बात यह है कि ऊपर जो वर्णव्यवस्था प्रदर्शित की गयी है वह केवल प्रकृतिके नियमानुकूल है और इसके यथार्थ पालन करनेपर अवश्य क्रमशः उत्तरि होती है । इसीके झारा उसका उद्धार पूर्णतया हो जाता है । परन्तु इन सबके ऊपर सद्यःफलपदाता भक्ति और प्रेमका दूसरा मार्ग है, जहाँ सारे नियम और बन्धन अस्त हो जाते हैं । वहाँ शूद्र ही क्या, उससे भी भीचे अन्यज भी उस गतिको प्राप्त होते हैं जिसको अधिसुनिकाण तरसा करते हैं । यहाँ देखिये, जिन श्रीरामके हाथसे इस शूद्रका वध हुआ, उन्होंने ही शब्दी और निषाद-जैसे अन्यजोंसे असीम

प्रेम किया । उसीके प्रभावसे उनका यशगान आज अनेक पतितोंके उद्धारका परम साधन बना हुआ है । भगवान्ने केवल इन्हींसे प्रेम किया हो सो नहीं, पशु वानरोंके दलोंके दल आमसात कर लिये, जिनमें कई तो प्रातः-स्मरणीय हैं और एककी महिमा तो यहाँतक बड़ी हुई है कि श्रीभगवान्‌के पवित्र नामके साथ उनका भी नाम संयुक्त हो गया है । यदि ‘पवनसुत हनुमान्जीकी जय’ न बोली जाय तो ‘सियावर रामचन्द्रकी जय’ भीकी-सी लगने लगती है । आज कृताङ्कुतका प्रसंग उठाकर जो लोग वर्ण-व्यवस्थाको नष्ट अट करनेपर तुले हुए हैं, वे यदि अपनी सुधुदिको काममें लाकर श्रीभगवान्‌के इस सिद्धान्तको यथार्थ-रूपमें समझ लें तो किसी उत्पातको अवसर ही नहीं मिले ।

अब यह शंका रही कि शूद्रके तप करनेसे ब्राह्मण-बालककी मृत्युका क्या सबूत है ? इसके समाधानमें उपर्युक्त कथनानुसार अनधिकाररूपसे तप करनेपर कोई-न-कोई उत्पात होना ही था । सो वह इस ब्राह्मण बालककी मृत्युरूपमें परिणात हुआ । अब एक तो यह रहा कि तप करनेवाला कहाँ और बालक कहाँ और दूसरे यह कि असाधिके प्रहारमें ही किसीका वध हुआ करता है परन्तु बालककी मृत्युका हेतु तप क्योंकर समझा जा सकता है ? बस्तुतः तप करना और उसका इष्टनिष्ठ परिणाम होना, इन सबका अदृष्टार्थ धर्मविभागसे सम्बन्ध होनेके कारण यह लोकोत्तर सूक्ष्म जगत्का व्यवहार है । जो अवयवरहित अरूप या अदृष्ट है । यह जो विस्तार या विशालता देखनेमें आ रही है सो नोकेवल स्थूल जगत्का दृश्य है । इसके सूक्ष्मरूपका दृष्टान्त बरगदके बीजसे समझना चाहिये । अर्थात् इतना विस्तृत वृक्ष एक राई-से बीजमें समाया हुआ रहता है । अतः सूक्ष्म जगत्में वैसा अन्तर नहीं रहता जैसा स्थूलमें वैशिलता है और वध होनेमें भी जैसे स्थूल जगत्में असाधिका प्रहार नेत्रका विषय होता है वहाँ वैसा नहीं होता । वहाँ इस प्रकारकी घटनाएँ अवयवरहित गुणोंके व्यतिक्रमसे होती हैं, जो चर्मचम्भुका विषय नहीं है । आजकल विज्ञानकी इस परमोक्ततिके कालमें तो ऐसी शंकाओंका अवसर ही नहीं आना चाहिये, क्योंकि जब ‘हम भौतिक जगत्में भी विना तारके सहस्रोंकोसकी दूरीपर क्षणमात्रमें समाचार पूँछानेका सूक्ष्मशूतोंका चमत्कार देखते हैं,—जो चतु-इन्द्रियका विषय नहीं है तो अन्यात्म जगत्के चमत्कारोंपर हमें क्यों सन्देह होना चाहिये ? अब यह कि, उस बालककी ही मृत्यु क्यों हुई, अन्य उपद्रव क्यों नहीं हुए ? इसके

लिये अधिक दूर न आहये । यह बात प्रसिद्ध है कि अनेक रोगोंके कोटाणु सदैव आकाश-मध्यमें फिरा करते हैं, किन्तु न सब रोगोंकी ही उत्पत्ति एक साथ होती है और न सब मनुष्य ही किसी रोगमें एक साथ प्रस्त होते हैं । विशेष देश, काल और पात्र ही उनके आहानके हेतु होते हैं । बस, यही दशा सूक्ष्म जगत्की है । अतः ऐसी ही विशेषता आँसे उस क्षणमें वह बालक ही अनिष्ट परिणामका पात्र हुआ ।

इस उपर्युक्त परिच्छितिपर दृष्टि ढालनेसे यह प्रकट होगा कि उस समय भी श्रीभगवान्‌के सम्मुख कैसी जटिल समस्या उत्पन्न थी ! एक और जिस बाह्य-वालकका मृतक शरीर उसके मां बापने हारपर ढाल रखा है उसके लिये न्याय करनेकी उत्कृ विन्ता और दूसरी और एक पवित्र कार्यमें प्रवृत्त मनुष्यका वध, जिसका हृदयमें संकल्प आते ही इसमकारकी शंकाएं उत्पन्न हो जाती हैं, जिनका निष्पत्त उपर किया गया है किन्तु वर्णशब्दमेंकी रक्षा और न्यायपरायणताके भावोंके सम्मुख श्रीरामने अन्य किसी भी विचारको स्थान नहीं दिया । *

(ग) अब रही ऐसे उत्र ददरवाली तीसरी रक्षा, सो यह एक बात नो प्रथम ही है, आजकी न्याय-पद्धतिमें भी देखा जाना है कि किसीका वध करनेपर अपराधीको वधका ही दरढ़ दिया जाता है । इसके अतिरिक्त जिम राजाके प्रत्येक प्रान्तमें परम शान्तिका ढंका बज रहा हो और समस्त प्रजा पूर्ण सुख और आनन्दका भोग कर रही हो, वहाँ यदि किसीका उस शान्तिमें वाधक होना भिन्न हो जाय तो न्याय यही चाहता है कि उसे ऐसा उदाहरणीय दरढ़ दिया जाय कि जिससे पुनः किसीको ऐसा अपराध करनेका साहस ही न हो और उस शान्तिके साम्राज्यमें अन्तर न पड़े ।

(१२) उपर्युक्त न्याय विविध अधिकारोंसे जो मर्यादा स्थिर की गयी है उसका व्यापारिनि दिग्दर्शन कराया गया ।

अन्तमें इतनी बात और प्रदर्शित करनी आवश्यक है

* भगवान् श्रीरामने मर्यादा-रक्षाके लिये शम्बुकका वध किया परन्तु उसका सत्कामनाका फल भी उसे दे दिया । वह स्वर्ग-के लिये तप कर रहा था अतएव भगवान्‌ने उसका वध करके उसे परमोत्तम स्वर्गमें भेज दिया । अध्यात्मरामायणमें कहा गया है कि 'स्वदृस्य ददौ स्वर्गमनुक्तमम् ।' शुद्धको परम उत्तम स्वर्ग प्रदान किया । इससे मर्यादारक्षाके मार्थाही भगवान्‌की दयालुता और उसके तपकी सफलता भी प्रकट होती है । — संष्पादक

कि सामूहिकरूपसे इस लेखमें प्रतिपादित समस्त अधिकारोंसे या अन्योंसे भी, जिनका उल्लेख यहाँ नहीं हुआ है, यह परमभगवान्शील मर्यादा और निश्चित होती है कि प्रारब्ध-वयापात् कितनी भी आपलियोंके आनेपर भी मनुष्यको पुरुषार्थीन होकर ज्ञानाच्छ्रुत नहीं होना चाहिये । विचारिये, श्रीरामकी परम दशा आपसिंह राज्यसिंहासनके त्वाग या बनवासमें ही समाप्त नहीं हुई किन्तु यहाँतक पीछे पहीं कि ग्राणसे प्यारी धर्मपालीका भी वियोग हो गया और वह भी सामान्यरूपसे नहीं, एक विकट और प्रबल राज्यके इरण्डारा, परन्तु जितनी जितनी अधिक भीषण आपसियाँ आयी उतने ही उतने अधिकारिक पुरुषार्थके लिये उत्साह होता गया । अतः प्राणीमात्रके जीवनकी सफलताके लिये श्रीभगवान्‌के द्वारा यह सर्वोच्च शिक्षारूप मर्यादा स्थिर की गयी है कि जितनी अधिक आपसियाँ आवें, उतना ही अधिक पुरुषार्थ किया जाना चाहिये ।

इष्टदेव रामसे विनय !

मन मन्दिरकं इष्टदेव !

इस जीवनके आधारे !

हे मुकुर ! वर मुमन कलोक

स्नेह-नन्दा गमवां ॥

बहुत दिनोंतक घोंज-घोंजकर

हाय ! तुम्हे हम हां ।

किन्तु नहीं कुछ लगा पता

हा ! बही नयन-ज्वर-धां ॥

आज हुआ सौमाग्य प्राप्त

हम पहुँचे पाम तुम्हारे ।

हुप अहा ! कृष्ण देखकर

दोनों नयन हमारे ॥

आय हैं हम यहाँ तुम्हारे

दर्शन हेतु दुलारे !

हृदय आज यह अपेण करने

प्रेम चेटके मारे ॥

हम चातक हैं, स्तातिरुन्द तुम्

चलो हमारे द्वारे ।

करो पुण्यमय हे प्रियवर !

चल गृहको आज हमारे ॥

श्रीरामवचन द्विंशी "अरविन्द"

कल्याण



मीता-वनवास ।

अहं तु नानुशोचामि स्व शरीरं नर्यम् ।
पनि हृ देवता नायाः पनिर्य-भुः पनिर्य-रुः ।
प्राणेरपि श्रियं तस्मात् भत्तुः कार्यं विशेषतः ।

श्रीसीताके चरित्रसे आदर्श शिक्षा

(लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका)



इ कहना अस्युकि नहीं होगा कि अखिल विश्वके श्री-चरित्रोंमें श्रीरामप्रिया जगजननी जगनकी जीका चरित्र सबसे उत्कृष्ट है। रामायणके समस्त श्रीचरित्रोंमें तो सीताजीका चरित्र सर्वोत्तम, सर्वथा आदर्श और पद पद अनुकरण करने योग्य है ही। भारत-लङ्घनाओंके लिये सीताजीका चरित्र सन्मार्गपर अन्धके लिये पूर्ण मार्गदर्शक है। सीताजीके असाधारण पातिव्रत, त्वाग, शील, अभ्य, शान्ति, क्षमा, सहनशीलता, धर्म-परायणता, नवनाम, सेवा, संयम, सद्गुरुवाहर, साहस, शौर्य आदि गुण एक साथ जगनकी विरली ही महिलामें मिल सकते हैं। श्रीसीताके पवित्र जीवन और अग्रतिम पातिव्रत-धर्मके सदृश उद्धारण रामायणमें तो क्या जगत्के किसी भी इनिहानमें मिलने कठिन है। आरम्भसे लेकर अन्ततक सीताके जीवनकी सभी बातें—केवल एक प्रसङ्गको छोड़कर—पवित्र और आदर्श हैं। ऐसी कोई बात नहीं है, जिससे हमारी मा-यहिनोंको सत्तशिक्षा न मिले। संसारमें अवतक जिनी लियाँ हो जुकी हैं, श्रीसीताको पातिव्रत-धर्ममें सर्व-शिरोमणि कहा जा सकता है। किसी भी दृढ़ीसे ऊँची छीके चरित्रकी सूख्म आलोचना करनेसे ऐसी एक-न-एक बात मिल ही सकती है जो अनुकरणके योग्य न हो, परन्तु सीताका ऐसा कोई भी आचरण नहीं मिलता।

जिस एक प्रसंगको सीताके जीवनमें दोपशुक्ल समझा जाता है, वह है मायामृगको मारनेके लिये श्रीरामके चले जाने और मारीचके भरते समय 'हा सीते! हा लक्ष्मण!' की उकार करने पर सीताजीका घदकाझर लक्ष्मणके प्रति यह कहना कि 'मैं समझती हूँ कि तू सुझे पानेके लिये अपने बड़े भाईकी मृत्यु देखना चाहता है। मेरे लोभसे ही तू अपने भाईकी रक्षा करनेके नहीं जाता।' इस वर्तावके लिये सीताने आगे चलकर बहुत पश्चात्पाप किया। साधारण श्री-चरित्रमें सीताजीका यह वर्ताव कोई विशेष दोषयुक्त नहीं है। स्वामीको संकटमें पड़े हुए समझकर आतुरता और प्रेमकी बहुल्यतासे सीताजी यहाँपर भीतिका उख्तावन कर गयी थीं। श्रीराम-सीताजी अवतार मर्यादाकी रक्षाके लिये था, इसीले सीताजीकी यह एक गलती समझी गयी और इसीलिये सीताजीने पश्चात्पाप किया था।

नैहस्मे जनकपुरमें पिताके घर सीताजीका सबके साथ प्रेम-व्यवहार बड़े प्रेमका वर्ताव था छोटे बड़े सभी श्री-पुरुष सीताजीको हृदयसे चाहते थे। सीताजी आरम्भसे ही सलजा थी। लजा ही लियोंका भूख्य है। वह प्रतिदिन माता-पिताके चरणोंमें प्रखाम किया करती थी, घरके नौकर-चाकर तक उसके व्यवहारसे परम प्रसन्न थे। सीताजीके प्रेमके वर्तावका कुछ दिवसरान उस समयके बहानसे मिलता है जिस समय सीताजी समुरारके लिये विदा हो रही है—

पुनि धीरज धरि कुअंरि हँकारी । बास-बार भेटाहि महतारी ॥
पहुँचावहि फिरि मिलहि बहोरी । बढ़ी परसपर प्रीति न थोरी ॥
पुनि पुनि मिलति सखिन्ह बिलगाई । बाल बच्छ जिमि बेनु लवाई ॥

प्रेम-विवास नर-नारि सब, सखिन्ह सहित रनिवास ।
मानहुँ कीन्ह बिदेहपुर, करना-विरह-निवास ॥
सुक सारिका जनकी ज्याए । कनक पिंजरन्ह रासि पढ़ाए ॥
व्याकुल कहहि कहाँ बैदेही । सुनि धीरजु परिहरे न केही ॥
भये बिकल खगमृग एहि भैती । मनुजदसा कैसे कहि जाती ॥
बंधु संभत जनक तब आए । प्रेम उम्मेंगि लोचन जल छाए ॥
सीय बिलोकि धीरता भागी । रंग कहावत परम बिरागी ॥
लोनिह राय उर लाइ जानकी । मिटी महामरजाद म्यानकी ॥

जहाँ ज्ञानियोंके आचार्य जनकके ज्ञानकी मर्यादा मिट जानी है और पिंजरेके पलेरु तथा पशु-पक्षी भी 'सीता सीता' उकारकर ज्याकुल हो उठते हैं, वहाँ कितना प्रेम है, इस बातका अनुमान पाठक कर लें! सीताके इस चरित्रसे लियोंको यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये कि छीको नैहरमें छोटे बड़े सभीके साथ ऐसा वर्ताव करना उचित है जो सभीको प्रिय हो।

सीता अपने माता-पिताकी आज्ञा पालन करनेमें कभी नहीं चूकती थी। माता-पितासे आज्ञा पालन उसे जो कुछ शिक्षा मिलती, श्रीसीता उसपर बड़ा अमल करती थी। नियतासे विदा होते समय और चित्रकूटमें सीताजीको माता-पितासे जो कुछ शिक्षा मिली है, वह सीमात्रके लिये पालनीय है—

हेये हु संत पियहि पियारी। चिर अहिवात असीस हमारी॥
सासु-सुर-गुर-सेवा करेहू। पति-खल लखि आयसु अनुसरेहू॥

पतिसेवाके लिये श्रीरामको राज्याभिषेकके बदले यक्षायक बन-
प्रेमाग्रह वास हो गया। सीताजीने यह समाचार
सुनते ही तुरन्त अपना कर्तव्य निश्चय कर-
लिया। नैहर-ससुरार, गहने-कपड़े, राज्य-परिवार, महाकाग, दास-जासी और भोग-राग आदिये कुछ मतलब नहीं।
आशाको तरह पतिके साथ रहना ही पढ़ीका एकमात्र कर्तव्य है। इस निश्चयपर आकर्ष सीताने श्रीरामके साथ बनगमनके लिये जैसा कुछ व्यवहार किया है, वह परम उद्घवल और अनुकरणीय है। श्रीसीताजीने प्रेमपूर्ण विनय और हठसे बनगमनके लिये पूरी कोशिश की। साम, दाम,
भीति सभी वैष उपायोंका अवलम्बन किया और अन्तमें वह अपने प्रबलमें सफल हुई। उसका अध्यय या किसी भी उपायसे बननें पतिके साथ रहकर पतिकी सेवा करना। इसीको वह परम धर्म समझती थी। इसीमें उसे परम आनन्द-की प्राप्ति होती थी। वह कहती है—

मातु पिता भगिनी प्रिय भाई। प्रिय परिवार सुहृद-समुदाई॥
सास-सुर-गुर-सज्जन सहाई। सुत सुंदर सुसील सुखदाई॥
जहंलगि नाथ नेह अह नतो। प्रिय बिनु लियहि तरनिहुंते ततो॥
तन-घन-धाम-धरनि सुरराजू। पतिविहीन सब सोक-समाजू॥
भोग रोग सम, मूर्खन भारू। जम-जातना सरिस संसारू॥

वनके नाना क्षेत्रों और कुटुम्बके साथ रहनेके नाना प्रदोषभर्तोंको सुनकर भी सीता अपने निश्चयपर अद्विग्न रहती है। वह पति-सेवाके सामने सब कुछ तुच्छ समझती है। नाथ सकल मुख साथ तुम्हारे। सरद विमल विमु बदन निहारे॥

यहाँपर वह सिद्ध होता है कि सीताजीने एकवार प्राप्त हुई पति आशाको बदलाकर दूसरी बार अपने मनो-अनुकूल आशा प्राप्त करनेके लिये प्रेमाग्रह किया। यहाँतक कि, जब भगवान् श्रीराम किसी प्रकार भी नहीं माने तो हृदय विद्धीण हो जानेतकका सङ्केत कर दिया—

ऐसेत बचन कठोर मुनि, जो न हृदय बिलगान।
तौ प्रमु विषम वियोग-दुख, सहिहहि पाँवर प्रान॥

अध्यात्मरामायणके अनुसार तो श्रीसीताने यहाँतक स्वरूप कह दिया कि—

रामायणि बहुशः श्रुतानि बहुभिद्वैः।
सीतां विना वनं रामो गतः किं कुत्रिष्ठिद्वद्॥
अतस्त्वया गमिष्यामि सर्वथा त्वत्सहायिनी।
यदि गच्छति मां त्यक्त्वा प्राणांस्त्यस्यामि तेऽग्रतः॥

(अ० रा०)

‘मैंने भी आङ्गणोंके द्वारा रामायणकी अनेक कथायें सुनी हैं। कहीं भी ऐसा कहा गया हो तो बतलाइये कि किसी भी रामावतारमें श्रीराम सीताको अयोध्यामें छोड़कर बन गये हैं। इस बार ही यह नवी बात क्यों होती है? मैं आप-की सेविका बनकर साथ चलूँगी। यदि किसी तरह भी आप मुझे नहीं ले चलेंगे तो मैं आपके सामने ही प्रावा व्याग हूँगी।’ पति-सेवाकी कामनासे सीताने इसप्रकार स्वरूपसे अवतारविषयक अपनी बड़ाइके शब्द भी कह डाले।

वालमीकि-रामायणके अनुसार सीताजीके अनेक रोने, गिर्गिराने, विविध प्रार्थना करने और प्राण-व्यागपूर्वक परलोक-में पुनः मिलन होनेका निश्चय बतलानेपर भी जब श्रीराम उन्मे साथ ले जानेको राजी नहीं हुए तब, सीताको बड़ा दुःख हुआ और वह प्रेमकोपमें आँखोंसे गर्म-गर्म आँसुओंकी धारा बहाती हुई नीतिके नाते इसप्रकार कुछ कहोर बचन भी कह गयी, कि—‘हे देव! आप सररिखे आर्यपुरुष मुझ जैसी अनुरक्ष, भक्त, दीन और सुख-दुःखको समान समझनेवाली सहधर्मिणी-को अकेली छोड़कर जानेका विचार करें, यह आपको शोभा नहीं देता। मेरे पिताने आपको पराक्रमी और मेरी रक्षा करनेमें समर्थ समझकर ही अपना दामाद बनाया था।’ इस कथनसे यह भी सिद्ध होता है कि श्रीराम लालकपनसे अत्यन्त श्रेष्ठ पराक्रमी भवके जाते थे। इस प्रसङ्गमें श्री-वालमीकिजी और गो० तुलसीदामजीने सीता-रामके संवादमें जो कुछ कहा है ऐसे प्रत्येक छो-पुरुषके व्यानगर्वक पहने और मनन करने योग्य हैं।

सीताजीके प्रेमकी विजय हुई, श्रीरामने उसे साथ ले जाना स्वीकार किया। इस कथानकसे यह सिद्ध होता है कि पढ़ीको पति-सेवाके लिये प्रेमाग्रह किया—अपने सुखके लिये नहीं—पतिकी आशाको दुर्हालेका अधिकार है। वह प्रेमसे पति-सुखके लिये ऐसा कर सकती है। सीताने तो यहाँतक कह दिया था ‘यदि आप आशा नहीं देंगे तब भी मैं तो साथ चलूँगी।’ सीताजीके इस प्रेमाग्रहकी आजतक कोई भी किन्दा नहीं करता, क्योंकि सीता केवल पतिप्रेम और पति-सेवार्हीके लिये समस्त सुखोंको लियाउद्दित देख

वन जानेको तैयार हुई थी, दिसी इग्निय-सुखरूप स्वार्थः साधनके लिये नहीं ! इससे यह नहीं समझता चाहिये कि सीताका अवहार अनुचित या पतिव्रत-धर्मसे विवर्द था । जीको धर्मके लिये ही ऐसा अवहार करनेका अधिकार है । इससे पुरुषोंको भी यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये कि सहधर्मिणी पतिव्रता पकीकी बिना इच्छा उसे त्यागकर अन्यत्र जाना अनुचित है । इसीप्रकार जीको भी पति-सेवा और पति-सुखके लिये उसके साथ ही रहना चाहिये । पतिके विरोध करनेपर भी कष्ट और आपत्तिके समय पति-सेवाके लिये जीको उसके साथ रहना उचित है । अवश्य ही अवस्था देखकर कार्य करना चाहिये । सभी शिवितोंमें सबके लिये एकसी अवस्था नहीं हो सकती । सीताने भी अपनी साधुताके कारण सभी समय इस अधिकारका उपयोग नहीं किया था ।

पतिसेवामें वनमें जाकर सीता पतिसेवामें सब कुछ मूल्य-कुछ भी स्मृति नहीं होती । रामको वनमें छोड़कर लौटा हुआ सूत सीताके लिये विलाप करती हुई माता कौशल्यासे कहता है— ‘सीता निजेन वनमें घरका भाँति निर्भय होकर रहती है, वह श्रीराममें मन लगाकर उनका भ्रेम प्राप्त कर रही है । वनवाससे सीताको कुछ भी हुँख नहीं हुआ, मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि (श्रीरामके साथ) सीता वनवासके सर्वथा योग्य है । चन्द्रानना सती सीता जैसे पहले यहाँ बगीचोंमें जाकर खेलती थी, वैसे ही वहाँ निजेन वनमें भी वह श्रीरामके साथ बालिकाके समान खेलती है । सीताका मन राममें है, उसका जीवन श्रीरामके अधीन है, अतएव श्रीरामके साथ सीताके लिये वन ही अयोध्या है और श्रीरामके बिना अयोध्या ही वन है ।’ धन्य पतिव्रत ! धन्य !

सास-सेवा श्रीसीता पतिसेवाके लिये वन गयी, परन्तु उसको इस बातका बड़ा झोम रहा कि सासुओंकी सेवासे उसे अलग होना पढ़ रहा है । सीता सासके पैर छूकर सबे मनसे रोती हुई कहती है—

× × × । सुनिय माय मैं परम अभागी ॥
सेवा-समय दैव बन दीन्हा । मोर मनोरु सुफल न कीन्हा ॥
तजब छोम जनि छाँड़िअ छोड़ । करम कठिन कछु दोस न मोहू ॥

सास-पत्रगृहका यह अवहार आदर्श है । भारतीय जगत्तामें यदि आज कौशल्या और सीताका-सा अवहार

करना सीख जायें तो भारतीय गृहस्थ सब प्रकारसे सुखी हो जायें । सास अपनी बुजुओंको सुखी देखनेके लिये अंगुष्ठ रहें और बहुतें सासकी सेवाके लिये कृपटाचें सो दोनों ओर ही सुखका साक्षात्य स्थापित हो सकता है ।

सहिष्णुता सीताकी सहिष्णुताका एक उदाहरण देखिये । वन-गमनके समय जब कैकेयीजी सीताको वनवासके योग्य वज्र पहननेके लिये कहती है तब विशिष्ट-सरीखे महर्षिका मन भी क्षुब्ध हो उठता है, परन्तु सीता इस कथनको केवल चुपचाप सुन ही नहीं लेती, आशानुसार वह वज्रधारणा भी कर लेती है । इस प्रसंगसे भी यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये कि सास या उसके समान नातेमें अपनेसे वही कोई भी जी जो कुछ कहे या बताव करे, उसको सुनीके साथ सहन करना चाहिये और कभी पतिके साथ विदेश जाना पढ़े तो सच्चे हृदयसे सासुओंको प्रणाम-कर, उन्हें सन्तोष करवाकर, सेवासे विजित होनेके लिये हार्दिक प्रश्नात्मक करते हुए जाना चाहिये । इससे बुजुओंको सासुओंका आशीर्वाद आप ही प्राप्त होगा ।

सीता अपने समयमें लोकप्रसिद्ध पतिव्रता निर्भिमानता थी, उसे कोई पतिव्रतका क्या उपदेश करता ? परन्तु सीताको अपने पतिव्रतका कोई अभिमान नहीं था । अनसूयाजीके हारा किया हुआ पातिव्रतधर्मका उपदेश सीता बड़े आदरके साथ सुनती है और उनके चरणोंमें प्रणाम करती है । उसके मनमें यह भाव नहीं आता कि मैं सब कुछ जानती हूँ । बल्कि अनुसूयाजी ही उससे कहती हैं—

सुनु सीता तव नाम, सुमिरि नारि पतिव्रत करहि ।
तोहिं प्रानप्रिय राम, कहेउँ कथा संसारहित ॥

इससे यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये कि अपनेसे बड़े-बड़े जो कुछ उपदेश दें उसे अभिमान छाँड़कर आदर और सम्मानके साथ सुनना चाहिये परं यथासाम्य उसके अनुसार चलना चाहिये ।

सीताजीकी अतिथि-सेवाका भाव देखिये । अतिथि-सेवा वह अपने हारपर आये हुए अतिथि-अन्यायगत-की सेवा करनेसे कभी नहीं चूकती थी । कपटवेमें हारपर लड़े हुए रावणको भी सीताने बड़े आदरसे भिला देना चाहा था । इससे लियोंको वह सीखना चाहिये कि हारपर आये हुए अतिथिके साथ यथाशक्ति सरकार करना उचित है ।

गुरुजन-सेवा बहोंकी सेवा और मर्यादामें सीताका मन और कितना खगा रहता था, इस बातको समझनेके मर्यादा किये भगवान् जनककी चित्रकृष्ण-शाश्राके प्रसङ्गको बाद कीजिये। भरतके बन जानेपर राजाजनक भी रामसे विजयनेके किये चित्रकृष्ण पहुँचते हैं। सीताकी माता श्रीरामकी माताओंसे सीताकी, सासुओंसे विलती है और सीताको साथ लेकर अपने द्वेरेपर आती है। सीताको तपस्विनीके देवमें देखकर सबको विषाद होता है, पर भगवान् जनक अपनी पुत्रीके इस आचरणपर बड़े ही सन्तुष्ट होते हैं और कहते हैं—
पुत्रि पवित्र किये कुल दोऊ। सुजस धनु जग कह सब कोऊ॥

माता-पिता बड़े प्रेमसे हृदयसे खगाकर अनेक प्रकारकी सीख और असीख देते हैं। बात करते-करते रात अधिक हो जाती है। सीता मनमें सोचती है कि सासुओंकी सेवा छोड़कर इस अवस्थामें रातको यहाँ रहना अनुचित है, किन्तु स्वभावसे ही खाजाशीता सीता सङ्कोचयश मनकी बात मापसे कह नहीं सकती—

कहति न सीय सकुचि मन माहीं। इहाँ बसब रजनी भल नहीं॥

जहुर माता सीताके मनका भाव जान लेती है और सीताके शीता-स्वभावकी मन-ही-मन सराहना करते हुए माता-पिता सीताको कौशलयाके द्वेरेमें भेज देते हैं। इस प्रसङ्गसे भो छियोंको सेवा और मर्यादाकी शिक्षा लेना चाहिये।

निर्मयता सीताका तेज और उसकी निर्मयता देखिये। जिस हुदौन्त रावणका नाम मुनकर देखता भी काँपते थे, उसीको सीता निर्मयताके साथ कैसे कैसे वचन कहती थी। रावणके हाथोंमें पर्वी हुई सीता अति कोषसे उसका तिरस्कार करती हुई कहती है ‘अरे हुए नियापर, तेरी आयु पूरी हो गयी है, अरे मूर्ख ! तू श्रीराम-चन्द्रकी सहचर्यिकीको इत्याकर प्रज्वलित अग्निके साथ कहका बाँधकर चलना चाहता हूँ। तुझमें और रामचन्द्रमें उतना ही अन्तर है जितना सिंह और सिवायमें, समुद्र और नालोंमें, अद्वृत और काँड़ीमें, सोने और लोहमें, अन्दम और कीचदमें, हाथी और विकाबमें, गरुद और कौपेंमें तथा इंस और गीधमें होता है। मेरे अमित प्रभाववावे स्वामीके रहते तू तुझे हरण करेगा तो जैसं मक्खी बीके पीते ही मूलुके कश हो जाती है, जैसे ही तू भी कालके गालमें चढ़ा जाएगा।’ इससे वह सीखना चाहिये कि परमात्माके बलपर किसी भी अवस्थामें मनुष्यको डरना उचित नहीं। अन्यथ-

का प्रतिवाद निर्मयताके साथ करना चाहिये। परमात्माके बलका सजा भरोसा होगा सो रावणका बध करके सीताको उसके चंगुलसे छुड़ानेकी भाँति भगवान् हमें भी विपक्षिसे छुड़ा जाए।

धर्मके लिये प्राण-त्यागकी विपरिये पदकर भी कभी धर्मका त्याग नहीं करना चाहिये। इस विषयमें सीताका उदाहरण सर्वोत्तम है। खड़ाकी अहोक-तेयारी

वाटिकामें सीताका धर्मनाश करनेके किये हुए रावणकी ओरसे कम जोड़ाई नहीं हुई, राजियोंने सीताको भव और प्रलोभन दिखलाकर बहुत ही तंग किया, परन्तु सीता तो सीता ही थी। धर्मत्यागका प्रश्न तो वहाँ उठ ही नहीं सकता, सीताने तो छलसे भी अपने बाहरी बर्तावमें भी विपक्षिसे बचनेके हेतु कभी दोष नहीं आने दिया। उसके निर्मल और धर्मसे परिपूर्ण मनमें कभी जुरी सुरक्षा ही नहीं आ सकी। अपने धर्मपर अटल रहती हुई सीता हुए रावणका सदा तीव्र और नीतियुक शब्दोंमें तिरस्कर ही कहती रही। एक बार रावणके बालवाणीोंको न सह सकनेके समय और रावणके हारा भायासे श्रीराम-लक्ष्मणको मरे हुए दिखला देनेके कारण वह मरनेको तैयार हो गयी परन्तु धर्मसे दिग्नेकी भावना स्वप्नमें भी कभी उसके मनमें नहीं उठी। वह दिनरात भगवान् श्रीरामके चरणोंके व्यानमें लगी रहती थी। सीताजीने श्रीरामको हनुमानके हारा जो संदेश कहलाया, उससे पता लग सकता है कि उनकी कैसी पवित्र स्थिति थी—

नाम पाहरु दिवस निर्मि, ध्यान तुग्हार कपाट।
लोचन निज पद-जन्मिका, प्रान जाहि कंह बाट॥

इससे छियोंको यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये कि पतिके वियोगमें भीया आपसियाँ आनेपर भी पतिके चरणोंका व्यान रहे। मनमें भगवान्के बलपर पूरी बीरता, धीरता और तेज रहे। स्वधर्मके पालनमें श्रावणोंकी भी आहुति देनेको सदा तैयार रहे। धर्म जाकर प्राण रहनेमें कोई काम नहीं, परन्तु प्राण जाकर धर्म रहनेमें ही कल्पणा है ‘स्वधर्म मिथनं अयः।’

सावधानी सीताजीकी सावधानी देखिये। जब हनुमान्-जी अशोकवाटिकामें सीताके पास जाते हैं तब सीता अपने बुद्धिकौशलसे सब प्रकार उनकी परीका करती है। जबतक उसे यह विश्वास नहीं हो जाता कि हनुमान् वाटिकामें श्रीरामचन्द्रके दूत हैं और जेरी

खोजमें ही यहाँ आये हैं सबतक सुखाकर बात नहीं कहती है।

दाम्पत्य-प्रेम जब पूरा विकास हो जाता है तब पहले स्वामी और देवताकी कुशल पूछती है, फिर आँख बहाती हुई कल्पवृक्ष शब्दोंमें कहती है—‘हनुमान्! रम्भायथीका चिर तो बढ़ा ही कोमल है। कृष्ण करना सो उपचार स्वभाव ही है। फिर मुझसे वह इतनी विहुरता रथों कर रहे हैं? वह तो स्वभावसे ही सेवको सुख देनेवाले हैं, फिर कुछ उन्होंने क्यों विसार दिया है? क्या श्रीरामायणी कभी कुछ याद भी करते हैं? हे भाई! कभी उस रम्भाम-सुन्दरके कोमल मुखकमलको देखकर मेरी ये आँखें दीरब छोड़ीं? अहो! नाथने मुकुको विलुक्त भुखा दिया! इतना कहकर सीता रोने लगी, उसकी बाढ़ी रुक गयी।

बचन न आव नयन भरि बारी। अहह नाथ! मोहि निषट विसारी॥

इसके बाद हनुमान्जीने जब श्रीरामका प्रेम-सन्देश सुनाते हुए यह कहा कि माता ! श्रीरामका प्रेम तुमसे दुगुना है। उन्होंने कहतवाया है—

तत्त्व प्रेमकर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एक मन मोरा॥
सो मन सदा रहत तोहिं पाहीं। जानु प्रीतिरस एतनहिं माहीं॥

यह सुनकर सीता गङ्गाद् हो जाती है। श्रीसीता-रामका परस्पर कैसा आदर्श प्रेम है। जगत्के श्री-पुरुष यदि इस प्रेमको आदर्श बनाकर परस्पर पेमा ही प्रेम करने लगें तो गृहस्थ सुखभय बन जाय !

पर-पुरुषसे सीताजीने जयन्तकी घटना याद दिलाते हुए परहेज कहा कि, ‘हे कपिवर ! तु ही बता, मैं इस अवस्थामें कैसे जी सकती हूँ? शनुको तपानेवाले श्रीरामलक्ष्मण समर्थ होनेपर भी मेरी सुधि नहीं लेते, इससे मालूम होता है अभी मेरा दुःखभोग शेष नहीं दुआ है।’ यों कहते कहते जब सीताके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगी तब हनुमान्जे उन्हें आवासन देते हुए कहा कि ‘माता ! कुछ दिन भ्रोज रक्षो। शत्रुओंके संहार करनेवाले कृतात्मा श्रीराम और लक्ष्मण योद्धे ही समर्थमें यहाँ आकर रावणका कधक? तुम्हें अवधिपुरीमें जे जावेगे। तुम विन्नता न करो। यदि उम्हारी विसेष इच्छा हो और मुझे आज्ञा दो तो मैं भगवान् श्रीरामकी और तुम्हारी दयासे रावणका बचकर और लक्ष्मणोंको नष्टकर तुमको प्रभु श्रीरामचन्द्रके समीप ले जा सकता हूँ। अथवा हे देवि ! तुम मेरी पीठपर बैठ जाओ, मैं आकाशमार्गसे होकर महासागरको जाँच

जाऊँगा। यहाँके रास्ते मुझे नहीं पहच सकते। मैं शीघ्र ही तुम्हें प्रभु श्रीरामचन्द्रके समीप ले जाऊँगा।’ हनुमान्जे बचन सुनकर उनके बल-पराक्रमकी परीक्षा लेनेके दाद सीता कहने लगी—‘हे बानरज्ञ! पतिभक्तिका सम्बद्ध पालन करनेवाली मैं अपने स्वामी श्रीरामचन्द्रको कोइकर स्वेच्छासे किसी भी अन्य पुरुषके अंगका स्पर्श करना नहीं चाहती—

भर्तुर्भक्ति पुरस्कृत्य रामावन्यस्य वानर।
नाहं स्प्रदुं स्वतो गत्रभिष्ठेयं वानरोत्तम ॥

(बा० रा० ५। ३७। ६२)

दुष्ट रावणने बलात्कारसे हरय करनेके समय मुख्यके स्पर्श किया था, उस समय तो मैं पराधीन थी, मेरा कुछ भी बश नहीं चलता था। अब तो श्रीराम स्वयं यहाँ आये और रास्तों सहित रावणका बध करके मुझे अपने साथ ले जाएँ, तभी उनकी उल्लंघन कीर्तिकी शोभा है।’

भला विचारिये ! हनुमान्-सरीका सेवक, जो सीताजीको सचे हृदयसे मातासे बढ़कर समझता है और सीतान्नरामकी भक्ति करना ही अपने जीवनका परम ध्येय मानता है, सीता पतिग्रितघर्मंजीकी रक्षाके लिये, इतने घोर विपरिकालमें अपने स्वामीके पास जानेके लिये भी उसका स्पर्श नहीं करना चाहती ! कैसा अद्भुत धर्मका आश्रह है ! इससे यह सीखना चाहिये कि भारी आपत्तिके समय भी स्त्रीको यथासाध्य परपुरुषके अंगोंका स्पर्श नहीं करना चाहिये !

भगवान् श्रीराममें सीताका कितना प्रेम था वियोगमें और उनसे मिलनेके लिये उनके हृदयमें व्याकुलता।

कितनी अधिक व्याकुलता थी, इस बातका कुछ पता हरणके समयसे लेकर लङ्घा-विजयतकके सीताके विविध वस्त्रोंसे लगता है, उस प्रसंगको पढ़ते-पढ़ते ऐसा कौन है जिसका हृदय कल्पासे न भर जाय ? परन्तु सीताजीकी सबी व्याकुलताका सबसे बढ़कर प्रमाण तो यह है कि श्रीरुद्रायनी महाराज उसके लिये विरहव्याकुल जैव मनुष्यको भाँति विहळ होकर उन्मत्तवत् रोते और विलाप करते हुए, अधिकुमारों, सूर्य, पवन, पशु-पक्षी और जड़ वृक्षलताओंसे सीताका पता पूछते लिरते हैं—

आदित्य! मो लोककृताङ्गतश्च लोकस्य सत्यानृतकर्मसाक्षिन्।
मम प्रिया सा क गता हृता वा शंसस्व मे शोकहृतस्य सर्वम्॥
लोकेषु सर्वेषु न नास्ति किञ्चिद्यतेन नित्यं विदितं भवेत्तत्।
शंसस्व वायो। कुलशालिनीं तां मृता हृता वा पथि वर्तते वा ॥
कोकोंके कृत्याङ्गको जानेवाले हे सर्वदेव ! तू सत्य

और असत्य कर्ताओंका साक्षी है। मेरी विचारोंको कोई इर के गया है या वह कहीं चली गयी है इस बातको दूर भलीभाँति जानता है। अतएव मुझ शोकपीड़ितको सारा हाथ बताया ! हे वायुदेव ! तीनों लोकोंमें तुमसे कुछ भी विषय नहीं है, सेवी सर्वत्र गति है। इमारे कुछकी हृषि करनेवाली सीता मर गयी, हरी गयी या कहीं मार्गमें भटक रही है। जो कुछ हो सो यथार्थ कह।

हा गुनखानि जानकी सीता । रूप-सील-ब्रत-प्रेम पुनीता ॥
लछिमन समुद्धारण बहु भाँति । पूँछत चले लता अरु पती ॥
हे सम-मृग ! हे मधुकर सेनी । तुम्ह देसी सीता मृगनीनी ॥

× × ×

एहि विविचित विलपत सोजत स्वामी । मनहुँ महाबिही अतिकामी ॥

इससे यह नहीं समझता चाहिये कि भगवान् श्रीराम 'महा विही और अतिकामी' थे। सीताजीका श्रीरामके प्रति इसना प्रेम था और वह श्रीरामके लिये इतनी व्याकुल थी कि श्रीरामको भी बैसा ही बसाव करना पड़ा। भगवान् का यह प्रश्न है—

ये यथा मां प्रपदन्ते तांत्रैव भजाम्यहम् ।

श्रीरामने 'महाविरही और अतिकामी' के साथा लीका कर इस सिद्धान्तको चरितार्थ कर दिया। इससे यह शिक्षा लेनी चाहिये कि यदि हम भगवान्को पानेके लिये व्याकुल होंगे तो भगवान् भी हमारे लिये ऐसे ही व्याकुल होंगे। अतएव हम सबको परमात्माके लिये इसी प्रकार व्याकुल होना चाहिये।

अग्नि-परीक्षा रावणका वध हो गया, प्रभु श्रीरामकी आहार सीताको खान करवाकर और व्याकुलया पहनाकर विभीषण श्रीरामके पास लाते हैं। अहुत दिनोंके बाद विषयपति श्रीरामके पूर्णिमाके चन्द्रसंक्षेप मुख्यको देखकर सीताका सारा दुःख नाश हो गया और उसका मुख लिम्ब चन्द्रिमाली भाँति चमक उठा। परन्तु श्रीरामने यह स्पष्ट कह दिया। 'मैंने अपने कर्तव्यका पालन किया। रावणका वधकर तुम्हको दुष्के चंगुलसे कुदाया परन्तु तू रावणके घरमें रह जुकी है, रावणने तुम्हको दुरी नज़्रने देखा है, अतएव अब मुझे सेवी आवश्यकता नहीं। तू अपनी इच्छानुसार चाहे जहाँ चली जा। मैं तुम्हें अहव नहीं कर सकता।'

नास्ति मे त्वयमिद्द्वां यथेऽगम्यतामितः ।

(वा०ग०६।११६।२५-२६)

श्रीरामके इन अभ्युत्तरै कठोर और भवङ्गर वचनोंके सुनकर विष्वसती सीताकी जो कुछ दरा हुई उसका वर्णन नहीं हो सकता। स्वामीके वचन-वाणोंसे सीताके समल अर्थोंमें भीषण व्याप हो गये। वह फूट फूटकर रोने लगी। फिर कल्पणाको भी कल्प्यासागरमें डुबो देनेवाले शब्दोंमें उसने धीरे धीरे गदगद वाणीसे कहा—

'हे स्वामी ! आप साधारण मनुष्योंकी भाँति मुझे व्याप्त ऐसे कठोर और अनुचित शब्द कहते हैं ? मैं अपने शीलकी शरण करके कहती हूँ कि आप मुझमर विश्वास रखतें। हे प्राणलाय ! रावणने हरण करनेके समय जब मेरे शरीरका स्वर्ण किया था, तब मैं परवश थी। इसमें तो दैवका ही दोष है। यदि आपको यही करना था, तो हनुमानको जब मेरे पास भेजा था तभी मेरा त्याग कर दिया होता तो अवश्यक मैं अपने प्राण ही छोड़ देती !' सीताने बहुतसी बातें कहीं परन्तु श्रीरामने कोई जवाब नहीं दिया, तब श्रीसीताजी दीनता और चिन्तासे भरे हुए लक्ष्मणसे बोकी—'हे सौमित्रि ! ऐसे विष्वापवादसे कलहित होकर मैं जीना नहीं चाहती ! मेरे दुःखकी निष्पत्तिके लिये तुम यहीं अस्ति-विता तैयार कर दो। मेरे विष पतिने मेरे गुणोंमें अप्रसव दोकर अनसमुदायके भव्य मेरा त्याग किया है, अब मैं अस्ति-प्रवेश करके इस जीवनका अन्त करना चाहती हूँ।' बैदेही सीताके वचन सुनकर लक्ष्मणने कोपभरी लाल-जाल और्लोंसे एक बार श्रीरामचन्द्रकी ओर देखा, परन्तु रामकी रुचिके अचीन रहनेवाले लक्ष्मणने आकार और संकेतसे श्रीरामकी रुच समझकर उनकी इच्छानुसार चिंता तैयार कर दी। सीताने प्रज्ञविलित अस्ति के पास जाकर देखता और ब्राह्मणोंको प्रणाम कर दोनों हाथ जोड़कर कहा—

यथा मे हृदयं नित्यं नापसर्पति राघवात् ।

तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावकः ॥

यथा मी शुद्धवादिवां दुष्टां जानाति राघवः ।

तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावकः ॥

(वा०ग०६।११६।२५-२६)

'हे सर्वज्ञोक्त-साक्षी अस्ति-वित ! यदि मेरा मन कभी भी श्रीरामचन्द्रसे चक्षायमान न हुआ हो तो तुम मेरी रक्षा करो। मेरा चरित्र शुद्ध होनेपर भी श्रीराघव तुम्हें हुआ मानते हैं। यदि मैं वास्तवमें शुद्ध हूँ तो है देव ! तुम मेरी रक्षा करो।'

इतना कहकर अस्ति के प्रविष्टा वर सीता विश्वास

इतनसे अप्सिमें प्रवेष कर गयी । सब और हाहाकार मच गया । ब्रह्मा, शिव, कुबेर, इन्द्र, यमराज और बलग आदि देवता भाफर श्रीरामको समानाने देंगे । ब्रह्माजीने बहुत कूछ रहस्यकी बातें कहीं ।

इतनमें सर्वलोकोंके साथी भगवान् अप्सिदेव सीताको गोदमें लेकर अक्षयकाल प्रकट हो गये और वैदेहीको श्रीरामके प्रति अर्पण करते हुए बोले—

एष ते राम ! वैदेही पापमस्यां न विद्यते ॥
नैव वाचा न मनसा नैव बुद्ध्या न चक्षुषा ।
मुवृत्ता वृत्तशौरीर्थं न त्वामत्यच्छुभ्या ॥
रावणेनापनीतैऽवां वीरोदिसकेन रक्षसा ।
त्वया विरहिता दीना विवशा निर्जनाद्वनात् ॥
कुद्धा चान्तःपुरुं गुहा लविता त्वत्परायणा ।
रक्षिता राक्षसेनिश्च धोराभिर्युद्धिभिः ॥
प्रलोभ्यमाना विविधं तर्जयमाना च मैथिली ।
नाचिन्तयत तद्रक्षस्तदतेनान्तरात्मना ॥
विशुद्धभावां निष्पापां प्रतिशृङ्खणीस्व भैर्यिलीम् ।
न किञ्चिदभिधानव्या अहमाक्षापयामि ते ॥
(वा०ग०६।?।१६—११)

'राम ! इस अपनी वैदेही सीताको ग्रहण करो । इसमें कोई भी पाप नहीं है । हे चरित्राभिमानी राम ! इस शुभमालया सीताने बाणी, मन, तुदि या नेत्रोंसे कभी तुम्हारा उल्लंघन नहीं किया । निर्जन बननें बब तुम इसके पास नहीं थे तब यह बेचारी निष्पाप और विवश थी । इसीसे बलगर्वित रावण इसे बलाकारसे हर के गया था । यद्यपि इसको अन्तःपुरमें रक्षा गया था और कूरसे कूर स्वभाव-वाली राइसियाँ पहरा देती थीं । अनेक प्रकारके प्रलोभन दिये जाते थे और तिरस्कार भी किया जाता था, परन्तु तुम्हारेमें मन लगानेवाली, तुम्हारे परायण हुई सीताने तुम्हारे सिवा दूसरेका कभी मनसे विचार ही नहीं किया । इसका अन्तःकरण शुद्ध है, यह निष्पाप है, मैं तुम्हें आका देता हूँ, तुम किसी प्रकारकी भी शंका न करके इसको ग्रहण करो ।'

अप्सिदेवके बचन सुनकर मर्यादापुरोत्तम भगवान् श्रीराम बहुत प्रसन्न हुए, उनके लेन्ड्र हर्षसे भर आये और उन्होंने कहा—

'हे अप्सिदेव ! इसप्रवार सीताकी शुद्धि आवश्यक थी, मैं यों ही ग्रहण कर देता तो लोग कहते कि दशरथपुत्र

राम मूर्ख और कमी हैं । (उड़ लोग सीताके शीतापर भी सम्बेद करते जिससे उसका गौरव घटता, आज इस अप्सिमीठासे सीताका और मेरा दोनोंका मुख उम्बला हो गया है) मैं जानता हूँ कि अनन्तनिवृत्ती सीता अनन्यहृदया और सर्वदा मेरी इच्छानुसार बलनेवाली है । जैसे समुद्र अपनी मर्यादाका ल्याग नहीं कर सकता, उसीप्रकार यह भी अपने तेजसे मर्यादामें रहनेवाली है । दुष्टात्रा रावण प्रवीस अप्सिकी जालाके समान अपास इस सीताका सर्व नहीं कर सकता था । सूर्यकान्ति-सद्या-सीता मुझसे अनिष्ट है । जैसे आमवान् पुरुष कीर्तिका ल्याग नहीं कर सकता, उसी प्रकार मैं भी तीनों लोकोंमें विशुद्ध इस सीताका वासनमें कभी ल्याग नहीं कर सकता ।'

इतना कहकर भगवान् श्रीराम मिला सती सीताको ग्रहणकर आनन्दमें निमग्न हो गये । इस प्रसंगसे यह सीताना चाहिये कि छों किसी भी हालतमें पतिपर नाराज न हो और उसे सन्तोष करनेके लिये न्यायपुरक उचित चेष्टा करे ।

सीता अपने स्वामी और देवरके साथ अधोव्या गृहस्थर्थम् लौट आरी है । बड़ी बहुती लियों और सभी सासुओंके चरणोंमें प्रणाम करती है । सब और सुख वा जाता है । अब सीता अपनी सासुओंकी सेवामें लगती है और उनकी ऐसी सेवा करती है कि सबको मुख्य हो जाना पड़ता है । सीताजी गृहस्थका सारा काम सुचारूरूपसे करती हैं जिससे सभी सन्तुष्ट हैं । इससे यह शिल्प ग्रहण करनी चाहिये कि विदेशसे लौटते ही सास और सभी बड़ी लियोंको प्रणाम करना और सास आदिकी सबे बनसे सेवा करनी चाहिये, एवं गृहस्थका सारा कार्य सुचारूरूपसे करना चाहिये ।

श्रीसीताजी भरत, दशरथ और शशुभ्र समान व्यवहार इन देवरोंके साथ पुत्रवत् बर्ताव नहीं थीं, और खालपान आदिमें किसी प्रकारका भी भेद नहीं रखती थीं । स्वामी श्रीरामके लिये जैसा भोजन बनता था ठीक वैसा ही सीताजी अपने देवरोंके लिये बनाती थी । देवरोंमें यह बात बोटीसी मालूम होती है किन्तु इसी बर्तावमें दोष आजानेके कारण केवल सानेकी बसुओंमें भेद रखनेसे आज भारतमें हज़ारों सम्बिलित कुदुमोंकी तुरी दशा हो रही है । सीताजीके इस बर्तावसे लियोंको खालपानमें समान व्यवहार रख नेकी शिल्प ग्रहण करनी चाहिये ।

सीता-परित्याग यह समय भगवान् राम गुप्तवरोंके द्वारा सीताके सम्बन्धमें लोकामवाद सुनकर बहुत

ही शोक करते हुए लक्ष्मणसे कहने लगे कि 'भाई ! मैं जानता हूँ कि सीता पवित्र और वशिष्ठिनी है, बड़ामें उसने तेरे सामने जाहाजी हुई अधियोग्य प्रवेश करके अपनी परीका की थी और सर्वबोक्षसारी अशिवेषने स्वयं प्रटट होकर समस्त देवता और अधियोग्योंके सामने सीताके पाप-रहित होनेकी घोषणा की थी तथापि इस लोकापालके कारण मैंने सीताके ल्यागका निश्चय कर दिया है। इसलिये तू कल प्रातःकाल ही सुमन्त्र सारथीके रथमें बैठाकर सीताको गंगाके उस पार तमसा-नदीके तीरपर महात्मा वास्तीकिंके आधमके पास निर्जन बनमें छोड़कर चला आ। तुम्हे मेरे अरण्योंकी और जीवनकी शाप्त है, इस सम्बन्धमें तू, सुखसे कुछ भी न कहना। सीतासे भी अभी कुछ न कहना।'

लक्ष्मणने दुःखमरे हृदयसे मौन होकर आज्ञा स्वीकार की और प्रातःकाल ही सुमन्त्रसे कहकर रथ छुड़ा दिया।

सीताजीने पृथक बार मुनियोंके आभ्योगमें जानेके लिये श्रीरामसे प्रार्थना की थी अतएव लक्ष्मणके द्वारा बन जानेकी बात सुनकर सीताजीने यहाँ समझा कि स्वामीने अधियोग्योंके आभ्योगमें जानेकी आज्ञा थी है और वह अधियोग्योंको बाँदनेके लिये बहुमूल्य गहने करदे और विविध प्रकारकी वस्तुएँ लेकर बनके लिये विद्या हो गयी। मार्गमें अशकुन होते देखकर सीताने लक्ष्मणसे पूछा—'भाई ! अपने नगर और धर्म सब असह तो हैं न ?' लक्ष्मणने कहा—'सब कुशल है !' यहाँसक तो लक्ष्मणने सहन किया, परन्तु गंगाके तीरपर पूँछते ही मर्मवेदनासे लक्ष्मणका हृदय भर आया और वह दीनकी भाँति फूट फूटकर रोने लगा। संयमशील धर्मज्ञ लक्ष्मणको रोते देखकर सीता कहने लगी—'भाई ! तुम रोते क्यों हो ? इमलोग गंगातीर अधियोग्योंके आभ्योगके समीप आ गये हैं, यहाँ तो हर्ष होना चाहिये तुम उस्ता खेद कर रहे हो। तुम तो रात-दिन श्रीराम-चन्द्रजीके पास ही रहते हो, क्या दो रात्रिके विदोगमें ही शोक करने लगे ? हे पुरुषेह ! मुझको भी राम प्राक्षाचिक प्रिय हैं, पर मैं तो शोक नहीं करती, इस लाल-पनको छोड़ो और गंगाके डसपार चलकर मुझे तपस्यियोंके क्षीरन कराओ। महात्माओंको भिज भिज वस्तुएँ बाँटकर और वग्यायोग्य उनकी पूजाकर एक ही रात रह इम लोग वापस लौट आवेंगे। मेरा भन भी कमज़ोनेत्र, सिंहसद्य वह स्थलवाले, आनन्ददाताओंमें भेह श्रीरामको देखनेके लिये उतारद्दा हो रहा है।'

लक्ष्मणने इन वचनोंका कोई उत्तर नहीं दिया और सीताके साथ नौकापर सवार हो गंगाके उस पार पूँछ-कर परि उच्च स्वरसे रोना शुरू कर दिया। सीताजीके बारम्बार पूछने और आज्ञा देखेपर लक्ष्मणने सिर नीचा करके गङ्गा बाढ़ीसे लोकापालका प्रसंग बर्णन करते हुए कहा—'सीते ! तुम निर्दोष हो, किन्तु श्रीरामने मुझको त्याग दिया है। अब तुम श्रीरामको इदृशमें भारत करके परिवर्तनवर्मका पालन करती हुई बाल्मीकि मुनिके आश्रम-में रहो।'

लक्ष्मणके इन दास्तावचनोंको सुनते ही सीता मूर्खित-सी होकर गिर पड़ी। शोषी देर बाद होश आनेपर रोक विलाप करने लगी और बोली—'हे लक्ष्मण ! विधाताने मेरे शरीरको हुःख भोगनेके लिये रक्षा है। मालूम नहीं, मैंने कितनी जोदियोंको विछुदाया या जिससे जाल मैं शुद्ध आचरणवाली सती होनेपर भी धर्मात्मा प्रियपति रामके द्वारा त्यागी जाती हूँ। हे लक्ष्मण ! पूर्वकालमें जब मैं बनमें थी तब तो स्वामीकी सेवाका सौभाग्य गिरनेके कारण बनके दुःखोंमें भी सुख मानती थी, परन्तु हे सौम्य ! अब प्रियतमके विदोगमें मैं आभ्योगमें कैसे रह सकूँगी ? जन्म-हुःखिनी मैं अपना दुस़रा किसको सुनाऊँगी ? हे प्रभो ! महात्मा, अधिक, मुनि जब मुझे यह पूछेंगे कि तुम्हारो श्रीराम-नाथजीने क्यों त्याग दिया, क्या तुमने कोई तुरा कर्म किया था ? तो मैं क्या जवाब दूँगी ? हे सौमित्र ! मैं आज ही इस भागीरथीमें दूखकर अपना ग्राम दे देती, परन्तु मेरे अन्दर श्रीरामका वंश-बीज है, यदि मैं हृषि महें तो मेरे स्वामी का वंश नाश हो जायगा। इसीलिये मैं भर भी नहीं सकती हे लक्ष्मण ! तुम्हारो राजाज्ञा हैं तो तुम सुख अभागियों को यहाँ छोड़कर चले जाओ तो परन्तु मेरी कुछ बातें सुनते जाओ।

'मेरी ओरसे मेरी सारी सासुधोंका हृदय जोड़कर चरण-वन्दन करना और परि महाराजको मेरा प्रणाम कहकर कुशल पूछना। हे लक्ष्मण ! सबके सामने सिर नवाकर मेरा प्रणाम कहना और धर्ममें सदा साशज्ञान रहनेवाले महाराजसे मेरी ओरसे वह निवेदन करना—

आनासि च यथा शुद्धा सीता तत्त्वम् गच्छ !
मक्त्या च परया युक्ता हिता च तव नित्यशः ॥
अहं त्यक्ता च ते दीर अवश्ये भीक्षणा जने ।
यज्ञ ते वचनीर्ण स्यादप्याशः समुत्पदः ॥

मया च परिहर्तव्यं तं हि मे परमा गतिः ।
वक्तव्यश्वैव नुपतिर्घर्मेण सुमाहितः ॥
यथा आतृषु वर्तन्थस्तथा पौरेषु नित्यदा ।
परमो शोष धर्मस्ते तस्मात्कीर्तिरनुत्तमा ॥
मनु पौरजनं राजन् धर्मेण समवानुयान् ।
अहं तु नानुशोचामि स्वशरीरं नरर्वम् ॥
यथाऽपवादः पौराणं तथैव रथुनन्दन ।
पतिर्हि देवता नार्थाः पतिर्बन्धुः पतिर्गुरुः ॥
प्राणीरपि प्रियं तस्मात्मर्तुः कायं विशेषतः ।

(बा० रा० ७।४८।?२-१८)

‘हे राघव ! आप जिस प्रकार सुझको तत्त्वसे शुद्ध समझते हैं उसी प्रकार नित्य अपनेमें भक्तिवाली और अनुरक्षित-वाली भी समझियेगा । हे वीर ! मैं जानती हूँ कि आपने लोकापवादको दूर करने और अपने कुलको कीर्ति काथम रखनेके लिये ही सुझको त्याग दिया है परन्तु मेरे तो आप ही परमगति हैं । हे महाराज, आप जिस प्रकार अपने भाइयोंके साथ वर्ताव करते हैं, प्रजाके साथ भी वही वर्ताव कीजियेगा । हे राघव, यही आपका परम धर्म है, और इसीसे उसम कीर्ति मिलती है । हे स्वामिन् ! प्रजापर धर्मर्युक्त शासन करनेसे ही पुरुष प्राप्त होता है । अतएव ऐसा कोई वर्ताव न कीजियेगा जिससे प्रजामें अपवाद हो, हे रथुनन्दन ! सुझे अपने शरीरके लिये तनिक भी शोक नहीं है, क्योंकि खीके लिये पति ही परम देवता है, पति ही परम बन्धु है और पति ही परम गुरु है । नित्य प्राणाधिक-प्रिय पतिका प्रिय कार्य करना और उसीमें प्रसन्न रहना, खीका यह स्वाभाविक धर्म ही है ।’ क्या ही मामिक शब्द हैं ! धन्य सती सीना, धन्य धर्मप्रेम और प्रजावस्तुता ! धन्य भारतका सतीधर्म, धन्य भारतीय देवियोंका धर्मपूर्व त्याग ।’

सीताजी कहने लगी—‘हे लक्ष्मण, मेरा यह सन्देश महाराजसे यह देना । भाई ! एक बात और है, मैं इस समय गर्भवती हूँ, तुम मेरी ओर देखकर इस बातका निश्चय करते जाओ, वहीं संसारमें लोग यह आपवाद न करें कि सीता बनमें जाकर सन्तान प्रसव करती है ।’

सीताके इन वचनोंको सुनकर दीनकिंच लक्ष्मण व्याकुल हो उठे और सिर सुक्षकर सीताके पैरोंमें निर फुफकार मार-कर झोर से रोने लगे । फिर उठकर सीताजीकी प्रदेशिणी की ओर दो बढ़ीतक व्याप करनेके बाद बोले—‘माता, दे चावरहिता सीते, तुम क्या यह रही हो ? मैंने आवश्यक

तुम्हारे चरणोंका ही दर्शन किया है, कभी स्वरूप नहीं देखा । आज भगवान् रामके परोह मैं तुम्हारी ओर कैसे ताक सकता हूँ ।’ तदगत्तर प्रश्नाम करके वह रोते हुए नावपर सवार होकर लौट गये और हृष्ट तीता,—दुःखभारसे पीड़िता आदर्श परिव्रता सती तीता—अरव्यमें गला फाढ़कर रोने लगी । सीताजीके लुटनको सुनकर वाल्मीकिजी उम्हे अपने आओरमें ले गये ।

इस प्रसंगसे जो कुछ सीखा जा सकता है वही भार-तीय देवियोंका परम धर्म है । सीताजीके उपर्युक्त शब्दोंका नित्य पाठ करना चाहिये और उनके रहस्यको अपने जीवनमें उतारना चाहिये । लक्ष्मणके वर्तावसे भी हमलोगोंको यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये कि पदमें भाताके समान होनेपर भी पुरुष किसी भी खीके बड़ न देखे । इसी प्रकार जियाँ भी अपने बड़ किसीको न दिखावें । वाल्मीकिजीके आश्रम-में सीता जाचिकी आज्ञासे अन्तःपुरमें जाचिपड़ीके पास रही, इससे यह सीखना चाहिये कि यदि कभी दूसरोंके घर रहने का अवसर आये तो जियोंको अन्तःपुरमें रहना चाहिये और इसी प्रकार किसी दूसरी खीको अपने यहाँ रखना हो तो जियोंके साथ अन्तःपुरमें ही रखना चाहिये ।

जो खी अपने धर्मका प्राणपनसे पालन पालन-प्रवेश करती है, अन्तमें उसका परिशाम अच्छा ही होता है । जब भगवान् श्रीरामचन्द्र अश्वमेध यज्ञ करते हैं और लब-कुशके ह्रारा रामायणका गान सुनकर सुभव हो जाते हैं तब लब कुशकी पहचान होती है और श्रीरामकी आज्ञासे सीता वहाँ बुलायी जाती है । सीता श्रीरामका ध्यान करनी हुई सिर नीचा किये हाथ जोड़कर वाल्मीकि जाचिके पीछे-पीछे रोती हुई आ रही है । वाल्मीकि मुनि सभामें आकर जो कुछ कहते हैं उससे सारा लोकापवाद मिट जाता है और सारा देश सीतारामके जयजयकारसे ध्वनित हो उठता है । वाल्मीकिने सीताके निष्पाप होनेकी बात कहते हुए यहाँतक कह ढाला कि ‘मैंने हजारों वर्षाँतक तप किया है, मैं उस तपकी शपथ खाकर कहता हूँ कि यदि सीता दुष्ट आचरणवाली हो तो मेरे तपके सारे फल नष्ट हो जायें । मैं अपनी विज्वहरि और शानदृष्टिह्रारा विश्वास दिलाता हूँ कि सीता परम शुद्धा है ।’ वाल्मीकिजी प्रतिशाम्भु सुनकर और सीताको सभामें आयी हुई देखकर भववान श्रीराम गङ्गा हो गये और कहने लगे कि ‘हे महाभाग, मैं जानता हूँ कि जानकी शुद्धा है, लब-कुश मेरे ही उत्र हैं, मैं राजधर्म-वाल्मीकि

ही किया सीताका व्याग करनेको बाजु हुआ था । अतएव
आप मुझे बमा करें ।

उस सभामें ब्रह्मा, आदित्य, वसु, रघु, विश्वेष, वायु,
सत्य, महर्षि, नाग, सुपथ्य और विश्व आदि बैठे हुए हैं, उन
सबके सामने राम फिर यह कहते हैं कि 'इस जातिमें
बैदेही शुद्ध है और इसपर मेरा पूजा' प्रेम है— 'शुद्धायां
जगतो मध्ये बैदेहा प्रतिरक्तु मे' । इतनेमें काशयवज्र भारत
किये हुए सती सीता नीची गर्वजल श्रीरामका ध्यान करती
हुई भूमिकी और देखने लगी और बोली—

यथाऽहं राघवादन्यं मनसापि न चिन्तये ।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति ॥
मनसा कर्मणा वाचा यथा रामं समर्चये ।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति ॥
मैथेतस्त्वमुक्तं मे वेदि रामापरं न च ।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति ॥
(बा० रा० ७।९७।१५-१७)

'यदि मैंने रामको छोड़कर किसी दूसरेका कर्म
मनसे भी चिन्तन न किया हो तो हे माधवी देवी, तू मुझे
अपनेमें ले ले, हे पृथ्वी माता ! मुझे मार्ग दे । यदि मैंने मन,
कर्म और काशीसे केवल रामका ही पूजन किया हो तो हे
माधवी देवी, मुझे अपनेमें ले ले, हे पृथ्वी माता ! मुझे मार्ग
दे । यदि मैं रामके सिवा और किसीको भी न जानती होऊँ
यानी केवल रामको ही भजनेवाली हूँ यह सत्य हो तो हे
माधवी देवी, मुझे अपनेमें स्थान दे और हे पृथ्वी माता ! मुझे
मार्ग दे ।'

इन तीन शपथोंके करते ही अक्षमात् भरती फट गयी,
उसमेंसे एक उत्तम और दिव्य सिंहासन निकला, दिव्य
सिंहासनको दिव्य देह और दिव्य वज्राभूषणधारी नागोंने
अपने मस्तकपर ढढा रखा था और उसपर पृथ्वी देवी बैठी
हुई थीं । पृथ्वीदेवीने सीताका दोओं हाथोंसे आविङ्गक किया
और 'हे पुत्री तेरा वस्त्राण हो' कहकर उसे गोदमें बैठा
किया । इतनेमें सबके देखते-देखते सिंहासन रसातलमें
प्रवेश कर गया । सती सीताके जपत्रकरसे त्रिमुखम
भर गया ।

सीता-परित्यागके यहाँ यह प्रभ होता है कि 'भगवान् श्रीराम
वहे दयालु और व्यापकरी थे, उन्होंने
देतु निर्दोष जानकर भी सीताका व्याग बर्तों
किया ?' इसमें प्रथमतः निष्ठविसित थाँच करता है, इन

कालोंपर प्यान देनेसे सिद्ध हो जायगा कि रामका यह कार्य
सर्वथा उचित था—

१—रामके समीप इसप्रकारकी बात आवी थी—

अस्माकमपि दारं षु सहनीयं भविष्यति ।

मथा हि कुरुते राजा प्रजा तमनुरक्तं ॥

—कि 'रामने राजाके घरमें रहकर आवी हुई सीताको
घरमें रख किया इसलिये अब यदि हमारी किसीं भी दूसरोंके
बहाँ रह आवेगी तो हम भी इस बातको सह लेंगे, क्योंकि
राजा जो कुछ करता है प्रजा उसीका अनुसरण करती है ।'
प्रजाकी इस भावनासे भगवान् ने यह सोचा कि सीताका
निर्दोष होना मेरी कुदिसे है । साधारण लोग इस बातको
नहीं जानते । वे तो इससे यही शिक्षा लेंगे कि परमुरुचके घर
बिना बाधा की रह सकती है, पेसा होनेसे की-धर्म विलकृत
कियाय जायगा, प्रजामें धर्म सङ्करताकी कृद्धि होगी, अतएव
प्रजाके धर्मकी रक्षाके लिये प्राणादिका सीताका व्याग कर
देना चाहिये । सीताके व्यागमें रामको बद्ध तुःख था, उनका
इवय विलीण हो रहा था । उनके हृष्यकी दशाका पूरा
अनुभव तो कोई कर ही नहीं सकता, किन्तु वाल्मीकि-
रामायण और उत्तररामचरितको पढ़नेसे किञ्चित् विद्वशंन
हो सकता है । श्रीरामने यहाँ प्रजाधर्मकी रक्षाके लिये व्यक्ति
धर्मका लक्षितान कर दिया । प्रजारंजनके यज्ञानलमें आत्म-
स्वरूपा सीताकी आहुति दे दाली ! इसमें उनके प्रजाप्रेमका
पता लगता है । सीता राम है और राम सीता हैं, शक्ति और
शक्तिमान् भिलकर ही जगत्का नियन्त्रण करते हैं, अतएव
सीताके व्यागमें कोई आपत्ति नहीं । इस लोकसंप्रहके हेतुसे भी
सीताका व्याग उचित है ।

२—चाहे थोड़ी ही संख्यामें हो सीताका झटा अपवाद
करनेवाले लोग थे । यह अपवाद व्यागके बिना मिट नहीं
सकता था और यदि सीता वाल्मीकिके आश्रममें रहकर
वाल्मीकिके द्वारा प्रतिज्ञाके साथ शुद्ध न कर्ता जाती और
पृथ्वीमें न समारी तो शायद यह अपवाद मिटता भी नहीं,
समझ है और यह जाता, और सीताका नाम आज जिस भावसे
लिया जाता है शायद वैसे न लिया जाता इस हेतुसे भी
सीताका व्याग उचित है ।

३—सीता श्रीरामकी परमभक्ता थी, उनकी आविता थी,
उनकी परम प्यारी अद्वैतिकी थी, पेसी परमपुनीता सतीको
निष्ठुरताके साथ व्यागनेका दोष भगवान् श्रीरामने अपने
कपर इसलिये ले किया कि इससे सीताके गौरको हुदि
हुई, सीताका झटा शुद्ध भी मिट गया और सीता



पुराणिकामं शैवान्वयनम् ।

गङ्गा कोहविगिरेमध्यभोग समन्वने । एकालं दिव्य-भूमि भुवास्त्रात् रघुत्तमम् ॥
नीत्यार्थाणक्य-संकाशः दिव्याभरण भूगिनम् । प्रथम-वद्वने शान्तं विद्युत्पूज निषांवरम् ॥
सीता कमलपत्राभ्या भवापरापूरिता ॥

भगवान् पूर्णम् बन गयी । भगवान् अपने भक्तोंका गौरव बढ़ाने-
के लिये अपने ऊपर दोष ले लिया करते हैं और वही वहाँ-
पर भी हुआ ।

४ अवतारका लीलाकार्य प्रायः समाप्त हो चुका था,
देवतागण सीताको सहजे कर गये थे । अध्यात्म-
रामायणमें लिखा है कि 'वशाहार वर्षतक माया-मनुष्यरूप-
धारी भगवान् लिपिपूर्वक राज्य करते रहे और सब लोग उनके
चरणकमळोंको पूजते रहे । भगवान् श्रीराम राज्यिं परमपवित्र
एकपल्लीवर्ती थे और लोकसंप्रहके लिये गृहस्थके सब
धर्मोंका यथाविधि पालन करते थे । पातिग्राणा सीताजी प्रेम,
मनुकूल आचरण, नव्रता, इन्द्रियोंका दमन, खाजा और
प्रतिकूल आचरणमें भय आदि गुणोंके हारा भगवान्का भाव
सम्प्रकार उनके मनको प्रसन्न करती थी । एक समय श्रीराम
पुष्ट-वाटिकामें बैठे हुए थे और सीताजी उनके कोमल
वरणोंको देख रही थी । सीताने एकमन्त्र देखकर भगवान्से
कहा कि हे देवदेव ! आप जगत्के स्वामी, परमात्मा, सनातन,
पवित्रिदानन्दघन और आदिमध्यान्तरहित सथा सबके कारण
हैं । हे देव, उस दिन इन्द्रादि देवताओंने मेरे पास आकर
स्तुति करते हुए यह कहा कि 'हे जगन्माता, तुम भगवान्की
चित्त-शक्ति हो, तुम पहले वैकुण्ठ पवारनेकी कृपा करो तो
भगवान् राम भी वैकुण्ठ पवारकर हम लोगोंको सनात
करेंगे ।' देवताओंने जो कुछ कहा था सो मैंने निवेदन कर
दिया है । मैं कोई आशा नहीं करती आप जैसा उचित
समर्थं बैसा करें ।' उपर भोवकर भगवान्ने कहा कि—

देवि जानामि सकलं तत्रोपायं बदामि ते ।
कल्पयित्वा मिसं देवि लोकवादं त्वदाश्रयम् ॥
त्यजामि त्वं बने लोकवादद्वात् इवापः ।
भविष्यतः कुमारौ द्वौ वाल्मीकिराश्रमान्तिके ॥
इदानीं दृश्यते गर्भः पुनरागत्य मेऽन्तिकम् ।
लोकानां प्रत्ययं तं कृत्वा शपथमादरात् ॥
भूर्मिवरमात्रेण वैकुण्ठे यास्यसि द्रुतम् ।
पश्चादहं गमिष्यामि एव एव सुनिश्चयः ॥

(अध्यात्मरामायण)

'हे देवि, मैं सब कुछ जानता हूँ और तुमको एक उपाय
पतलाता हूँ । हे सीते, मैं तुम्हारे लोकापवादका बहाना रचकर
पापारण मनुष्यकी सरह लोकापवादके भयसे तुमको बनमें
स्थाग दूँगा । वही वाल्मीकिके आश्रममें तुम्हारे दो उत्र होंगे,
जिन्होंकि इस समय तुम्हारे गर्भ मैं हूँ । तदनन्तर तुम मेरे पास आ

लोगोंको विश्वास दिलानेके लिये बड़े आदरसे-शपथ ला
पूर्वीके दिवरमें प्रवेशकर तुरन्त वैकुण्ठको चली जाओगी और
पीछेसे मैं भी आ जाऊँगा । यही निश्चय है ।' यह भी
सीताके त्यागका एक कारण है ।

५-पूर्वकालमें एक समय युद्धमें देवताओंसे हारकर भागे
हुए वैष्ण भृगुजीकी छोटीके आश्रयमें चले गये और भृषि-
पवित्रीसे अभय प्राप्तकर निर्भय हो वहाँ रहने लगे थे ।
दैत्योंको भृगुपतिने आश्रय दिया ।' इस बातसे कुपित होकर
भगवान् विष्णुने उसका चालसे सिर काट डाला था । पवित्रीको
इसप्रकार मारे जाते देखकर भृगुपतिने कोथर्में हत्यान
होकर भगवान्को शाप दिया था कि 'हे जनादेव ! आपने
कुपित होकर मेरी अवश्य पवित्रीको मार डाला इसलिये आपको
मनुष्यलोकमें जन्म लेना होगा और दीर्घकालतक पवित्री-विवेद
सहभा पड़ेगा ।' भगवान्ने लोकहितके लिये इस शापको
स्वीकार किया और उसी शापको सत्य करनेके लिये अपनी
अभिज्ञ शक्ति सीताको लीलासे ही बनामें भेज दिया ।

इत्यादि अनेक कारणोंसे सीताका निर्वासन रामके लिये
उचित ही था । असली बात तो यह है कि भगवान् राम
और सीता साक्षात् नारायण और शक्ति हैं । एक ही महान्
तत्वके दो स्वप्न हैं । उनकी लीला वे ही जानें, इस लोगोंको
आलोचना करनेका क्षोई अविकार नहीं । हमें तो आविष्ये
कि उनकी दिव्य लीलाओंसे लाभ उठावें और अपने
मनुष्य-जीवनको पवित्र करें ।

मानवलीलामें श्रीसीताजी इस बातको प्रमाणित कर
गयी कि दिना दोष भी यदि स्वामी छोटीको त्याग दे तो
सीका कर्त्तव्य है कि इस विपरितमें तुःसमय जीवन विताकर
भी अपने पातिक्षतमेंकी रक्षा करे, परिणाम उसका कल्पण
ही होगा ।

सत्य और व्याय अन्यमें अवश्य ही शुभ फल
उपसंहार देंगे, सीताने अपने श्रीवनमें कठोर परीक्षायें
देकर श्रीमात्रके लिये वह मर्यादा स्थापित कर दी कि जो
की आपत्तिकालमें सीताकी भाँति धर्मका पालन करेगी उसकी
कीर्ति संसारमें सदाके लिये प्रकाशित हो जायगी । सीतामें
परिभक्ति, सीताका भरत-लक्षण और शशुभके साथ निर्दीर्घ
वास्तव्य-प्रेम, सातुराओंके प्रति सेवाभाव, सेवकोंके साथ
प्रेमका बताव, बैहर और सुखरालमें सबके साथ आदर्श
प्रीति और सबके सम्मान करनेकी चेष्टा, अविद्योंकी सेवा,
लक्ष-कृपा जैसे वीर पुत्रोंका मालूम, उनको शिक्षा देनेकी

पदुता, साहस, वैर्य, तप, वीरत्व और आदर्श धर्मपरायणता आदि सभी गुण पूर्ण विकसित और सर्वथा अनुकरणीय हैं। हमारी जो माताएँ और वहनें प्रमाण, मोह और आसानियोंको त्यागकर सीताके चरित्रका अनुकरण करेंगी उनके अपने कल्पणमें सो शङ्खा ही क्या है, वे अपने पति और पुत्रोंको भी तार सकती हैं। अधिक न्या, जिसपर उनकी दशा हो जायगी उसका भी कल्पण होना सम्भव है। ऐसी सती-शिरोमणि पतिव्रता जी दर्शन और पूजनके पोन्य है। मनुष्योंके द्वारा ही नहीं बल्कि देवताओंके द्वारा भी वह पूजनीय है और अपने चरित्रसे श्रिलोकीको पवित्र करनेवाली है।

यद्यपि श्रीसीताजी साचात् भगवती और परमात्माकी शक्ति भी तथापि उसने अपने मनुष्य जीवनमें लोकशिष्य-

के लिये जो चरित्र लिये हैं वे सब ऐसे हैं कि जिनका अनुकरण सभी लिया कर सकती हैं। संसारकी मर्यादाएँ लिये ही सीता-रामका अवलार था। अतएव उनके चरित्र और उपदेश अलौकिक न होकर ऐसे स्वावहारिक ये कि जिनको काममें साकार हमलोग लाभ उठा सकते हैं। जो जी या पुरुष यह काहकर कर्तव्यसे कूटना चाहते हैं कि 'श्रीसीता-राम साचात् शक्ति और ईश्वर ये हम उनके चरित्रोंका अनुकरण नहीं कर सकते।' वे कायर और अभक्त हैं। वे श्रीरामको ईश्वरका अवतार केवल कथनभरके लिये ही मानते हैं। सबे भक्तोंको तो श्रीरामनीताके चरित्रका व्याप्त अनुकरण ही करना चाहिये।

रामचरित-मानस

(१)

मुर और अमृगंगोंके सहरमें लीन देखि,
काकिला कल्पनिधि भौ परियाँ सुरेशकी ;
द्राक्षा रसाल मधु, मिष्ट न्यादु सर्पियादि ,
सुर-नर-नारियाँ औ बाँसुरी ब्रजेशकी ।
भारती सुकवियोंकी मनुहार दम्पतियाँ ,
सम्पति उदारचेता निपुण नरेशकी ;
करके परस्पर विमर्श उक मङ्गलीनं ,
लृट जी पियूष-भी सुमन्पदा जनेशकी ।

(२)

वारि-निधि-मन्थनके बाद यहि भाँति अहो ,
अबलोकि दयनीय दुर्दशा रंगशकी ;
भरि आर्यी अँखें करुणाकी मञ्जु मंतियोंसे ,
दयासिन्धु विद्यानिधि तुलसी दिजेशकी ।
सुधाको एकत्र करनेकी भव्य-भावनाम् -
प्रेरित हो पाकर मु-आधिस महेशकी ;
'मानस-मोर्चर' में रस बरसाने लो ,
लेकर करोंमें वर वर्षिका गणेशकी ।

(३)

कोयलकी काकली सुरीले स्वर परियोंके ,
केकीके मधुर नृत्य चन्द्रिका निशेशकी ;
बंशीके मोहन गुण सुधा नारि अधरकी ,
शारदाके सदनकी सम्पति धनेशकी ।
जननीके स्निग्ध-स्नेह दत्ताकी उदारतादि ,
सकल सकेलि अमी-मूरत विशेषकी ;
मव-निधि-येत सोई रचना है मानसकी ,
तुलसीकी कृतिपै है स्वीकृति उमेशकी ।

रामायणमें भरत

(लेखक—साहित्याचार्य पं० श्रीशालग्रामजी शासी)



मायथमें भरतका एक विशेष स्थान है। यदि यह कहा जाय कि रामायणके पात्रोंमें भरतका चारित्र सबसे अधिक उत्तम है तो कोई असुन्दर नहीं। भरतने जितनी प्रतिष्ठित परिस्थितियोंका सामना किया—और जिस घैर्य तथा साहसके साथ किया—उतना कोई दूसरा कर सकता, इसमें सन्देह ही है। जितनी परीक्षाएं भरतने दी उतनी यदि किसी दूसरे के सामने आयी होतीं तो होश मारे जाते। भरतके चारित्रका मनन करनेसे प्रतीत होता है कि वह विपर्सियोंके महासागरमें अविकल्पितरूपसे स्थिर रहनेवाले महाशैल हैं। भरतके मनको डिगानेके लिये संसारकी बड़ीसे बड़ी शक्ति बेकार सिद्ध होती है और भरतको लुभानेके लिये मायाके ढंचेसे ढंचे सम्मोहन अस्त्र निकलमे छहरते हैं। दुनियाँ एक ओर हैं और भरत एक ओर हैं। एक ओर प्रलोभनोंके विशाल गैलकी चक्रावृत्त है और दूसरी ओर विपर्सियोंका अपार सागर है। घरके सब संग्रहालयमें उनका हित सुझा रहे हैं। उनके जन्मसे ही पहले, उनकी माता कैकेयीके विवाहसे भी पूर्ण, उनके नानाने महाराज दशरथसे प्रतिज्ञा कराली थी कि कैकेयीका पुत्र ही राज्यका अधिकारी होगा। इसी शर्तपर कैकेयीका विवाह हुआ था। दशरथने अपने कामीपनके कारण यह शर्त मंजूर कर ली थी। आज उनका वह मनोरथ सफल हुआ था। मन्थराके उपदेशसे कैकेयीने इस विपरोधित मनोरथके लिये घरमें ‘महाभारत’ मचा दिया था। एक प्रकारसे भरतके मार्गके काँटे—राम—को जहाँसे उखाद फेंका था। नाना, मामा आदि सबके सब राज्यकार्यके तजुब्बेकार और भरतके हरतरहसे मध्यसागर थे। १४वर्षका समय भी कम नहीं होता। इतने समयमें भरत प्रजाको अच्छी तरह काबूमें कर सकते थे। यदि कोई अद्वितीय होती तो उनके सहायक भी कम नहीं थे। यदि कोई दोष देता तो दशरथको देता जिन्होंने अलूचित शर्तपर शादी की थी। आखिर भरतका इसमें क्या दोष था? वह अपने ‘जन्म-सिद्ध अधिकार’ को कैसे कोइदँ? फिर कैकेयीको मिले बरसाम भी तो कम न थे!

माना कि राम, लक्ष्मणको महर्षि विभामिन्नने जो

८

विष्वाज्ञ लिये थे वे भरतके पास नहीं थे। हम थोड़ी देखके लिये यह भी मान लेते हैं कि यदि राम-लक्ष्मणके साथ भरतका संग्राम छिप जाता तो शायद भरत हार जाते, परन्तु इस संघातमाला अवसर ही कैसे आ सकता था? राम लड़ते भी कैसे? भरतको राज्य देकर पिता दशरथने अपनी प्रतिज्ञा—चाहे अनिष्टापूर्वक ही सही—पूरी की थी इसीके कारण, सबके समझानेपर भी रामने राज्य छोड़कर बनका रास्ता लिया था। धर्माल्मा रामने पिताको अधरमें और असत्यसे बचानेके लिये राज्य छोड़ा था। फिर राम किस बहाने इस राज्यके लिये युद्ध छोड़ सकते थे?

शायद कोई कहे कि १४ वर्ष बनवासके अनन्तर राम अपने राज्यके लिये लाल सकते थे, परन्तु यह ठीक नहीं है। १४ वर्षके समयकी शर्त ‘राम-बनवास’ के साथ लगायी गयी थी, भरत-राज्यके साथ नहीं। कैकेयीने जो दो वरदान माँगे थे, उनमें यह नहीं था कि भरत १४ वर्ष राज्य करें और बादमें आकर राम राज्य ले लें। उसने साफ कहा था कि ‘भरतका राज्य हो—विना किसी शर्तके—और राम १४ वर्ष बनमें रहें’ यदि १४ वर्षके बाद राम चाहते तो नगरमें आ सकते थे, लेकिन राज्य वह कभी नहीं ले सकते थे। कैकेयीकी राजनीतिक गुरु मन्थरा इतनी भोली नहीं थी जो ऐसी कठोर शर्त की थी। वाल्मीकिने मन्थराकी उक्ति इसप्रकार लिखी है—

तौ च याचस्त्र भर्तीरं भरतस्याभिषेचनम् ।

प्रजाजनं च रामस्य वर्षाणि च चतुर्दशा ॥

चतुर्दशा हि वर्षाणि रामे प्रजाजिते बनम् ।

प्रजाभावगतमनेहः स्थिरः पुनो भविष्यति ॥

(वा० रा० २।९।२०-२१)

‘भरतका राज्य और रामका १४ वर्षका बनवास बरदानमें माँगो। १४ वर्षतक जब राम बनवासी रहेंगे तो इतने दिनोंमें ‘पुत्र’—भरत—प्रजाका स्नेह-भाजन हो जायगा और प्रजाके हृदयमें स्थान पा लेनेपर वह—भरत—स्थिर हो जायगा। फिर उसका राज्य किसीके हिलाये न हिलेगा।’ इससे स्पष्ट है कि १४ वर्ष बनवासकी शर्त सिर्फ इसलिये की गयी थी कि इतने समयमें भरतका राज्य

सिर हो जाय, वह प्रजाका इत्य अपने बाहमें कर सके और उनके विरोधी राम इतने समयतक प्रजाकी आँखोंके आगे-से एकदम हटा दिये जायें—जिससे लोगोंका स्नेह उनके अपरसे एकदम हट जाय। १४ वर्षके बाद रामको राज्य लौटा देनेकी न कोई बात थी, न हो ही सकती थी। इस दशामें भरतको रामसे या उनके विष्णुज्ञानोंसे कोई दर नहीं था। रामको यदि कोई करना या खबाना या सो अपने पितासे निकटते, जिन्होंने उनका अधिकार नह किया। भरतका इसमें क्या दोष था? उनसे राम किस कुनियादपर अटक सकते थे?

फलतः यह सिद्ध है कि भरतका राज्य निकल्यटक था। उनके नानाने ही इसका बीज बो रखा था। मन्यराने उसे अङ्गुरित और पश्चिमित किया था, कैकेयीने उसे पुष्प-कल-सम्पद बनाया था और भरत—केवल भरत—उसके उपभोग-के अधिकारी थे। माता उन्हें राज्य दे रही थी, पिताने उन्हें राज्य देनेकी बात कहकर ही प्राण छोड़े थे, विशिष्ट आदि समस्त ग्रन्थिगण और भन्निगण उनके राज्याभिवेककी तैयारी किये बैठे थे, तमाम सूत, माराघ, बन्दी तैयार थे। सम्पूर्ण सामन्तलोग ऊपचाप यह दृश्य देखनेको प्रस्तुत थे और सारीकी सारी आवाजवृद्धि प्रजा इसीकी आशामें थी।

यह ठीक है कि प्रजा रामको राजा देखना आहटी थी, परन्तु यह भी ठीक है कि प्रजा भरतका बहिष्कार शायद ही कर सकती जब उसे पुराने हृतिहासका पता चलता—जिसके कारण भरत-को राज्य दिला था—तब वह भरतको उतना दोषी कहापि न समझती। हाँ, दशरथको भले ही दोष देती। फिर यही तो भरतका कर्तव्य था। प्रजाका राजन ही तो राजाका धर्म है। उन्हें यहांपर अपनी प्रजाराजनामक समस्त शक्तियोंका परिचय देना था। यदि वह इतना भी न करते तो राज्य क्या चला सकते थे? इसके अतिरिक्त बहुत कुछ मार्ग तो उनकी माताने ही रामको बनवास देकर साफ कर दिया था और बाकीके लिये उनके नाना-मामा कमर कसे तैयार थे। वे सब सम्भाल लेते, यदि भरत राजगाहीपर बैठभर गये होते।

इससे स्पष्ट है कि भरतने किसी राजनीतिक कारणसे राज्यका परिवार नहीं किया। राजनीतिक कारण तो उनके राज्य लेनेके ही अनुकूल थे। अपनी हुंबलता या अबोम्यता-के कारण भी उन्होंने राज्य-त्याग नहीं किया था। किसीके दूरसे, लोकपवादके भवसे, साधियोंके विरोधसे या और किसी ऐसे ही कारणसे उन्होंने राज्य नहीं छोड़ा था। बस्तुतः

भरतके चरित्रमें राजनीतिक बातोंकी कोई करना एकप्रकार-से उनका अपमान करना है। भरत विशुद्ध भक्ति और प्रेम-के अवलाभ हैं। पवित्रताकी सीमा और निःसूहताकी जागती अपेक्षा हैं। उनका इत्य सत्यका फैला और वैर्यका आकर है, उनकी बुद्धि इतना और संयमकी खान है। भरत समुद्र-की भाँति अगाध और हिमालयकी भाँति अटल हैं। अपने पवित्र और निःसूह अस्तःकरणसे जो निष्ठय भरत एक बार कर लुके हैं, उसे उल्ट देना इच्छके भी सामर्थ्यसे बाहर है। स्वयं रामने भी असीरों शकारसे भरतको राज्य लेनेके लिये बाज किया। पिताकी आशाकी बात बताकर, अमैकी कपा चुनाकर, प्रजाके हिस्तीकी तुहाई देकर, कैकेयीके विवाहके समय की हुई प्रतिज्ञा और देवाशुर-संप्राप्तके बरदानोंकी याद विलापक, मतलब यह है कि हर तरह हिलाझुलकर स्वयं राम भी उद्योग करके थक गये, पर भरत जो एक बार राज्य छोड़नेका संकल्प कर लुके तो फिर अपनी एक प्रतिज्ञासे किसीके भी हटाये न हटे, न हटे।

भरतके रोम-रोमसे प्रेम-पीयूषकी बारा बहती है। उनके अहर अस्तरसे भक्ति-रसका प्रवाह उमड़ने लगता है। भरत-के प्रत्येक तिथासमें ‘राम-राम’की रट है। ‘मेरे तो एक राम नाम दूसरा न कोई’ इस, यही भरतका मन्त्र हो रहा है। माता छोड़ी, मातृपृष्ठ छोड़ा, प्रजा छोड़ी, राज्य छोड़ा, धन दौलत छोड़ी, सुख सम्पत्ति छोड़ी, एक रामनामके पीछे भरतने सब संसार छोड़ा, अपना पराया छोड़ा, यदि न छोड़ा तो एक रामनाम। इसीसे हम कहते हैं कि भरतके चरित्रमें राजनीतिक बातोंको छूँड़ना उनके चरित्रका अपमान करना है। पवित्र गंगाकी धारामें शेरकी माँद छूँड़ना है और गन्नेके भीतर गोसरू लडाश करना है। दशरथने कैकेयीको समझाते वर्क घुट ठीक कहा था कि ‘रामादीप हिनं मन्ये धर्मतो बलवत्तरग्’ अर्थात् ‘धर्ममें भरतको मैं रामसे भी दबकर समझता हूँ।’ रामके बिना भरत कभी राज्य स्वीकार न करेंगे इत्यादि रामके चरित्रमें राजनीति और धर्मनीतिकी गङ्गा-यमुना मिल कर बहती है, परन्तु भरतका चरित्र तो पवित्र प्रेमकी गङ्गोत्री है। भरतके चरित्रको लक्ष्य करके यदि यह कहा जाय तो कोई अल्पुक्ति नहीं कि—

मुघातः स्वादीयश्चरितमिदमातृसिपिवतां

जनानामानन्दः परिहसति निर्वाणपदवीम्

हम कह लुके हैं कि जिसी प्रतिशुद्ध परिस्थितियोंका सामना—जिस वैर्यके साथ—भरतने किया, उस सह—

उसनी सफलताके साथ—रामाचरणका कोई दूसरा पात्र कर सकता था नहीं, इसमें सन्देह ही है। कैकेयीने संसार भरका अपयोग अपने सिर कर्यों लावा ? केवल भरतके राज्यके लिये। उसने बैधव्यतकाळी परवा नहीं की। समस्त प्रजा, सम्पूर्ण^१ श्रीरामराष्ट्र, तमाम रनवास, सब सामन्त कैकेयीको शूदू करते रहे, परन्तु उसने सबकी उपेक्षा की, क्यों ? केवल भरतके लिये। सब संसारको अपना बैरी बनाया और अपने मायेपर अभियंत कलंकका टीका लगाया, किस-लिये ? सिंह इसीलिये। यदि राजनीतिक हिंसे देखा जाय तो कैकेयीके सिवा भरतका कोई हितैषी नहीं था। उनके सब पितातक उनके शाश्वत थे। छिपकर रामका राज्याभियंत करनेके लिये ही उन्होंने उस समय भरतको कपटसे उनके नामाके बहाँ भेजा था। दशरथने रामने साफ ही कहा था कि—

‘विप्रोपितश्च भरतो यावदेव पुरादितः ।
तावदेवाभिवक्त्वे प्राप्तकालो मतो मम ॥’

(वा० रा० २। ४। २५)

अर्थात् ‘जबतक भरत इस नगरसे बाहर हैं तभीतक तुम्हारा(रामका)राज्याभियंत हो जाना मैं उचित समझता हूँ।’ इससे स्पष्ट है कि दशरथने भरतके साथ घात की थी और उसी का जवाब मन्त्रया और कैकेयीका वह आचरण था। कौशल्याने रामके अभियंतकी बात सुनकर ‘हतांतं परिपन्थिनः’ कहकर भरतपक्षको रामका शाश्वत बताया था। इस दशामें भरतका हितविन्तक यदि कोई था तो कैकेयी आदि ही। परन्तु इन सबको भरतकी ओरसे क्या पुरस्कार मिला, यह आगे देखिये और किर सोचिये कि भरतके चरित्रमें कहाँ राजनीतिक गम्भ भी है, या वह विशुद्ध भार्यिक ही है ? भरत जब नामाके बहाँसे बुद्धाये गये तो सीधे कैकेयीके पास पहुँचे। नगर और राजमहलके शोकमिश्रित सजाटेको देखकर वह कुछ स्टक तो गये ही थे, जाते ही उन्होंने दशरथ, राम आदिके सम्बन्धमें पूछताछ छुरू की।

अभियेक्यति रामं तु राजा यशं नु यक्षयति ।
इहं कृतसंकल्पो हृष्टो यात्राप्रयाशिषम् ॥
तदिदं द्वन्द्याभूतं व्यवदीर्ण मनो मम ।
पितरं यो न पद्यामि नित्यं प्रियहिते रतम् ॥
यो मे आता पिता बन्धुर्गस्य दासोऽस्मि संमतः ।
तस्य मां शीघ्रमाल्याहि रामस्याङ्गिष्ठकर्मणः ॥
पिता हि भवति ज्येष्ठो वर्मर्मार्यस्य जानतः ।
तस्य पादौ ग्रहीयामि स हीदानीं गतिर्मम ॥

(वा० रा० २। ७२। २७-२८, ३२-३३)

अर्थात् मैं सो यह सोचकर चला था कि या तो राजा (दशरथ) श्रीरामका अभियंत करेंगे या कोई यज्ञ करेंगे। परन्तु यहाँ तो मैंने कुछ और ही देखा, जिससे मेरा हृष्य विदीष^२ हो गया। आज मैं अपने प्रिय और हितविन्तक पिताजीको नहीं देख रहा हूँ। जो मेरे भाई, पिता, बन्धु आदि सब कुछ हैं, जिनका मैं दास हूँ, उन श्रीरामका पता सुके शीघ्र बताओ। बड़ा भाई पिताके सदृश होता है, मैं रामके पैरों पहुँचा, आज वही मेरे लिये सब कुछ हैं।’

जब कैकेयीने कहा कि रामको बनवास दे दिया गया, तो भरत डर गये। उन्हें सन्देह हुआ कि रामसे कोई अनुचित कार्य तो नहीं हो गया जिनका यह दण्ड मिला। लेकिन कैकेयीने बताया कि ‘यह सब कुछ मैंने तुम्हारे लिये किया है। तुम अब राजनीतपर बैठो’ इत्यादि। इसके उत्तरमें भरतने जो कुछ कहा है, उसमें आप भरतके हृदयका सच्चा चित्र देख सकेंगे और भरतके पवित्र चरित्रका अविकल्प पा सकेंगे। सुनिये—

दुखी होकर भरत बोले कि ‘शोक-सम्पत्ति मेरे जैसा अभागा राज्य लेकर क्या करेगा, जो आज पितासे भी हीन है और पिन्तुल्य बड़े भाईसे भी हीन है। कैकेयी, तूने सुके हुँखपर हुँख दिया, तूने मेरे कटेपर नमक छिड़का, जो राजाको मारा और रामको बनवास दिया।

मैं समझता हूँ कि तुम्हे यह मालूम नहीं है कि मेरा रामके प्रति कैसा भाव है, इसी कारण तूने राज्यके लोभसे यह अन्नर्थ किया। मैं राम व्यक्तिगते बिना किसके बलपर राज्य करूँगा ? अच्छा, यदि बुद्धि और नीतिके बलपर मैं राजकाज चला सकता हूँ तो भी मैं तेरा मनोरथ पूरा न होने वैंगा। तू अपने पुत्रको राजा देखना चाहती है, लेकिन मैं तुम्हें यह न देखने वैंगा। यदि राम तुम्हे सदा माताके तुल्य न समझते होते तो आज तुम जैसी पापिनीका त्वाग करनेमें भी तुम्हे कोई संकोच न होता। कैकेयी, तू राज्यसे अष्ट हो, अरी दुष्टा, कूरे ! तू धर्मसे पतित है, ईश्वर करे, मैं भर आँख और तू मेरे लिये रोका करे। तू माताके रूपमें भेरी शाश्वत है। तूने राज्यके लोभसे पतिकी हृष्य की है। तू, सुप्तसे बात न कर। तू याद रख, पिता और भाईके प्रति जो तूने पाप किया है, मैं उसका पूरा प्रायश्चित्त करूँगा और अपना यश भी करूँगा। रामको राज्य देकर मैं अपना पाप घोर्झाऊ और सब अपनेको हृतहृष्य समझूँगा।’

इस बर्षणमें आप देखेंगे कि कैकेयीके हृष्यसे भरतको

मर्मान्विक वेदना हो रही है। वह अपने रात्ननीतिक हितैषी-को सीधे शानु कहकर उकार रहे हैं। उनका हृष्ण धार्मिक भावनासे परिपूर्ण है। उनको राज्य दितालेके लिये उनकी माताजी जो कार्य किया है उसे वह घोर पाप समझ रहे हैं। एवं इसके प्रायश्चित्तके लिये अपनी मूलु तथा अपनी माताके कल्पकन्दन तककी आकाङ्क्षा कर रहे हैं। धर्मसूति भरतके निष्कल्पमय हृष्णका वह सत्ता चिह्न है। हृष्णमें धर्म, प्रेम और भक्ति जैसे पवित्र भावोंके सिवा और किसी दुर्भावको स्थान ही नहीं है। भरतका निष्कल्पत प्रेम, निःस्वार्थ भक्ति और दम्भीन धर्म उनके प्रत्येक वाक्यसे प्रकट होता है। वह रामके ऊपर अपनेको न्योऽकावर कर रुके हैं। रामकी विरोधी अपनी माँ भी आज उनकी दृष्टिमें शत्रु है। उन्हें रामकी गहीपर बैठनेमें घोर दुःख और रामके चरणोंपर लोटनेमें परम आनन्द प्राप्त हो रहा है। आज वह प्रतिज्ञा कर रहे हैं कि मैं माताके पापोंका प्रायश्चित्त करके यशस्वी बनूँगा। कहना नहीं होगा कि भरतने इस प्रतिज्ञाको अपनी जानपर खेलकर पूरा किया और खूब पूरा किया।

भरतने इस अवसरपर सबका सब दोष माताके ऊपर ही रखा है। पिता दशरथके विरुद्ध उन्होंने एक शब्द भी नहीं कहा। यह भी भरतके चरित्रकी पृक विशेषता है। लक्षण और शत्रुघ्ने तो वह स्पष्ट शब्दोंमें—चाहे परेहमें ही सही—दशरथको खरी-खोंटी सुनायी हैं, परन्तु भरतके मुँहसे उनके लिये एक भी कहु शब्द नहीं निकला। यों तो रामकी भी पिन्धरकि आश्रय है। उचित अनुचित-का विचार क्षोडकर, पिताकी आज्ञाका पालन जैसा रामने किया वैसा कोई क्या करेगा! परन्तु रामके पीछे दशरथने भी सो अपने प्राणक गंवा दिये थे। अपनी प्राणाविक श्रियतमा कैकेयीको भी उन्होंने रामके पीछे ही तिलाभकि दी थी। यह बात कही जा सकती है कि दशरथ रामको प्राणोंसे भी अधिक प्यार करते थे, परन्तु भरतके सम्बन्धमें यही बात नहीं कही जा सकती। भरतके विरुद्ध दशरथने वह-यन्त्र रखा था। भरतको राज्यसे भ्रष्ट करनेके लिये उन्हें कल्पटये याहर भेजा था और उनकी अनुपस्थितिमें—उनके नाना, मामा-को सूचना तक न देते हुए—घरमें चुपके चुपके रामके राज्याभिषेक की कल्प-पूर्ण आयोजना की थी। इससे भरतका मन महीन हो सकता था। रामकी और उनकी दशामें बहुत भेद था। पिताका व्यवहार दोनोंके प्रति समान नहीं था। राम और भरतके प्रति दशरथके व्यवहारमें आकाश-पातालका अन्तर था। इस दशामें भरतका भाव भी यदि व्यक्त आता तो

कुछ आवर्य न होता। आवर्य तो यही है कि इन सब बातोंके होते हुए भी भरत रामके समान ही पिन्धरक बने रहे। इसे देखते हुए यदि यह कहा जाय कि भरत रामसे भी बढ़कर पिन्धर के तो कोई अत्युक्ति नहीं।

भरत रामके प्रेममें सराबोर थे। उनके सर्वस्व राम ही थे। रामके पसीनेकी जगह भरतका खून गिरनेको तैयार हो जाता था। रामका प्रेमी ही उनका प्रेमपात्र था और रामका विषयी उनका घोर शत्रु था। यही कारण है कि रामके प्रेममें प्राण देनेवाले पिताका कोई दोष भरतकी दृष्टिमें आया ही नहीं। उन्होंने उन सब दोषोंकी उपेक्षा कर दी, परन्तु रामका विरोध करनेवाली माँ कैकेयी उनकी आँखोंमें शूलकी तरह खटकने लगी। भरतको राज्यकी आकाङ्क्षा की थी ही नहीं। वह तो रामके प्रेमके भूले थे। नानाके यहाँसे आते हुए उन्होंने यही समझा था कि शायद रामका राज्याभिषेक होगा, उसीके लिये मुक्ते बुलाया है। वह अपनेको राज्यका अधिकारी समझते ही नहीं थे। कैकेयीके विवाहके समय की हुई दशरथकी प्रतिज्ञाका उनकी दृष्टिमें कोई मूल्य ही नहीं था। वह उपे काम-ज्वरका प्रलाप-मात्र समझते थे और वरदानके नामपर कैकेयीका राज्य माँगना उनकी नजरमें कपट-पूर्ण अवसर है। वह ज्येष्ठकी राज्य-प्राप्तिको ही धर्म समझते थे। यही उन्होंने अनेक ज्ञाह कहा है। उन्हें कभी यह ज्ञान ही नहीं था कि लोग—और खासकर उनके पिता ही—उन्हें रामका विरोधी समझेंगे और वह भी अथर्ववृक राज्य लेनेके लिये। छः छः! धर्मशास्त्रकी दृष्टिमें इसप्रकार कामावेशकी प्रतिज्ञाओंका कोई मूल्य नहीं और धर्माल्पा भरतकी दृष्टिमें भी यह प्रतिज्ञा दो कौड़ी—बलिक उससे भी कम—की थी। पिता हृष्णके लिये ऐसा ‘अकारण तालूक’ करेंगे इसकी उन्हें कोई सम्भावना ही नहीं थी। इन्हीं कारणोंसे धर्माल्पा भरतकी दृष्टिमें दशरथका कोई दोष नहीं आया और वह रामके समान ही पिन्धरक बने रहे। हाँ, रामकी विरोधिनी माताको वह शत्रु समझने लगे। मन्थराको उमीदमें धर्मीटने हुए शत्रुघ्नका क्रोध शान्त करते समय उन्होंने यहाँतक कह दाला था कि—यदि मुक्ते यह ढर न होता कि धर्माल्पा राम मानवातक समझकर मेरा त्याग कर देंगे तो मैं आज इस हुए कैकेयीका वध कर दाकता।

हन्याभिषिमां पापां कैकेयीं हुष्वारिणीम् ।

यदि मां धार्मिको रामो नासुरेन्मातृघातकम् ॥

(पा० ३० रा० २७८।२२)

इन वातोंसे स्पष्ट है कि भरतका पवित्र हृष्ण रामकी भक्तिमें लहीन और रामके प्रेममें मतभाका था। उनका यही मन्त्र था कि 'मेरे तो एक रामनाम दूसरा न कोई'।

अच्छा, अब प्रश्नत वातपर ज्ञान दीजिये। कौलेषीसे मिलनेपर जब भरतको सब बातें मालूम हुईं और भरतके आनेकी सबर कौसल्याके काननक पूँछी तो वह भी सुमित्राके साथ गोती, कलपती और कौपीनी हुईं वहीं पहुँचीं। अब यहाँसे भरतकी कठोर परीक्षाएँ आरम्भ होती हैं। भरत हन्हें इस चैर्च और फिल्मनी छपासे पार करते हैं, यह आप आगे देखेंगे—

भरतं प्रत्युवाचेदं कौसल्या भृशदुःखिता ॥
इदं ते राज्यकामस्य राज्यं प्राप्तमकण्ठम् ।
सम्प्राप्तं बत कैकेया शीघ्रं ब्रूद्धेण कर्मणा ॥
क्षिप्रं मामपि कैकेयी प्रस्थापयितुमहर्ति ॥
अथवा स्वयमेवाऽहम्
कामं वा स्वयमेवाद्य तत्र मां नेतुर्महसि ।
इदं हि तत्र विस्तीर्णं धनधान्यसमाचित्तम् ।
हस्यश्चरथस्मृणं राज्यं निर्यातितं तया ॥
इत्यादिवहुमिविष्यैः कूरैः संसर्वितोऽनयः ।
विव्यये भरतस्त्रिं त्रयं तुंद्यवं सृचिना ॥
पपात चरणौ तस्यास्तदा सम्प्रान्तचेतनः ।
विलप्य बहुवाऽसंशो लक्ष्यसंक्षिप्तदामवत् ॥

(वा० रा० २।७५)

राम-बनवासमें व्याकुल कौसल्याकी दयनीय दशा देख कर भरतका कोमल-हृष्ण तुःखसे कातर हो डडा। उनका कौपीना, कलपता और विलालना देखकर भरत घबरा गये और जब उन्होंने देखा कि कौसल्या राम-बनवासका कारण उन्हीं (भरत) को समझ रही हैं तब तो उनके तुःखका पारावार म रहा। कौसल्याके कठोर आलेषोंमें भरतका निष्क्रियता विचारित हो गया और वह मुर्दित होकर कौसल्याके चरणोंपर गिर पड़े। जब होशमें आये तो आँखेभरे नेत्र और गङ्गाद्वय करने लगे। उन्होंने कौसल्याको विभास दिखानेके लिये सैकड़ों शरणें—येसी ऐसी कहीं शरणें की जिनमें पत्थरका भी कलेजा दहल जाय—सारीं। जिसकी अनुमति या जानकारीमें रामको बनवात हुआ हो, वह रणमें भागता हुआ मारा जाय, औरसे ओर पापका फल उसे भोगना पड़े इत्यादि।

भरतकी इस दशाको देखकर कौसल्याके हृष्णपर गहरी चोट लगी। उन्होंने त्यष्ट देखा कि भरतको रामके विदोगका तुःख उनसे (कौसल्यासे) कम नहीं है और उनके अनुचित आलेषोंने भरतके निरपराव हृष्णको व्याकुल कर दिया है। इससे कौसल्या भी घबरा गयी और भरतको गोदमें बिडाकर स्वयं रोने लगी। उन्होंने कहा—

मम दुःखमिदं पुत्रं भूयः समुपजायते ।
शपथैः शपमानो हि प्राणानुपशुणिति मं ॥
दिव्या न अतितो धर्मादस्मा ते सहलक्षणः ।
वत्स सत्यप्रतिशो हि सतां लोकानवास्यसि ।
इत्युक्ता चाहुमानीय भरतं आतुवत्सलम् ।
परिव्यज्य महानाहुं श्रोदं भृशदुःखिता ॥

(वा० रा० २।७५।६०-६२)

यह भरतकी सबसे प्रथम और सबसे कठिन परीक्षा थी। यदि उनके हृष्णमें रामके प्रति अनन्त ध्रेम न होता, यदि उनके व्यवहारमें विशुद्ध धार्मिकताको छोड़कर कहीं ज्ञाना भी राजनीतिक आलेषोंकी गन्ध होती तो रामकी माता-के हृष्णको इतनी जल्दी दयाद्वय कर देना उनके लिये सम्भव ही नहीं था। भरतके चरित्रकी यह सबोंसम विजय हुई।

कुछ तो दशरथकी प्रतिश्वाके कारण और कुछ राम-बनवासके कारण भरतकी दशा अत्यन्त शोचनीय हो गयी थी। बड़ा बड़ा उन्हें सन्देहकी दृष्टिसे देखने लगा था। पद-पद्यपर लोग उन्हें रामका विपक्षी समझने लगे थे। रामके एक अनन्य भक्तको इससे बढ़कर तुःख क्या हो सकता था कि एक निषादसे लेकर बड़ेसे बड़े महर्षितक, बड़चेसे लेकर बड़तेक सभी भी-युरुष उसे शक्ताकी दृष्टिसे—रामविरोधीकी दृष्टिसे— देखने लगें।

सबसे पहले कौसल्याने उनकी परीक्षा की, उसके बाद सूत, मार्ग आदिका नम्रव आया, फिर सामन्त राजाओंकी और अनन्तर वसिष्ठ आदि शूद्रविदोंकी बारी आयी। सभी प्रहृतियों और प्रजाने भी भरतको परसा। इन लोगोंसे जब निषटे और रामको लौटानेके अभियायसे गङ्गाकिनारे पहुँचे तो निषादराज गुहने ढण्डा सम्भाला। उन्होंने व्यजा देखते ही समाप्त किया कि यह भरतकी सेना है और गङ्गाके उस पार अपने सब अनुचरोंको फैली हुक्म सुना दिया। देखिये—

गुह कहते हैं, 'देखो, यह समुद्रके समान उमड़ती हुई

सेना गङ्गाके उस पार हीख रही है । रथमें कोविषारकी ज्वला है । इससे स्पष्ट है कि दुर्विदि भरत स्वयं आया है । अपना राज्य निष्कर्षटक करनेके लिये आज वह तुष्ट रामके वधकी वृक्षासे सेनासहित इधर आ रहा है । रामके बाद यह तुष्ट हमलोगोंको या तो रस्तियोंसे बाँधेगा या भरता ही ढाकेगा । राम तो मेरे स्वामी भी हैं और सेना भी हैं । आज उनका काम आ पड़ा है । इस पुरुष-जन्ममें अपने प्राणोंकी आहुति देनेके लिये हम हमलोगोंको तैयार हो जाना चाहिये । रामके काममें प्राण देनेसे बदकर और कौनसा पुरुष होगा ? सब कैवल्य (निषाद) लोग गङ्गाके मुहानोंको रोककर ढट जाओ । पाँच सौ नवांोंसे सब मार्ग रोक लो । एक-एक नावपर सौ-सौ जावान सब शाखोंसे सुसजित होकर तैयार हो । मैं आकर भरतका मन टटोड़ता हूँ । यदि उसके मनमें कोई पाप न हुआ सब तो उसकी सेना पार उत्तर दी जायगी, अन्यथा पहले हम सब लोग यहाँ मर भिटेंगे तब फिर रामपर आंच आयेगी । हमारे जीतेजी कोई रामका बाद बाँका न कर सकेगा ।'

देखा आपने ? यह माना कि निषादराज रामके अनन्य प्रेमी और भक्त थे, परन्तु देखना तो यह है कि भरतके भावको उन्होंने कितना उल्टा समझा है ? यह ठीक है कि निषादराज रामके ऊपर अपने प्राण देनेको तैयार हैं, परन्तु सोचना तो यह है कि क्या भरत भी उनके प्राण देनेको तैयार हैं ? हमें देखना यही है कि आज परिस्थिति भरतके कितनी प्रतिकूल हो उठी है । आज उनके अनुत्तम इद्यको एक बंगली भी विषमय समझने लगा है । भरतने इसी प्रतिकूल परिस्थितिको सर्वेषां अनुकूल बनानेका थोड़ा उदाया है ।

निषादराज गुह भी बड़े अच्छे राजनीतिज्ञ थे । भरतकी जितनी स्वोद-स्वेच्छ परिशा इन्होंने की उनकी किसीने नहीं की । इनकी हर एक चालसे राजनीतिज्ञता टपकती है । अभी आप देख सुके हैं कि यह आपने अनुचरोंसे क्या कह रहे थे । आप आगे देखिये कि भरतके सामने भेट पेश करते हुए हज़रत कैसे 'भीगी विहँ' बो बैठे हैं—

आपम् भरतं प्रहो गुहो वचनमवीत् ॥
निष्कृतश्चैव देशोऽयं विजिताश्चापि ते वयम् ॥
निवेदयाम ते सर्वं स्वके दाशगृहे वस ।
अतिं मूलफलं चैतत् निषादैः स्वयमवितम् ॥

× × ×
आशसे स्वाशीता सेना वत्सत्यत्येनां विमावीम्

(वा० रा० २४४)

'भरतके पास आकर बड़ी भड़तासे 'गुह'ने कहा कि इस ज़क़रको आप आपने धर-धाँगनका अगीचा समझिये । आपने हमलोगोंको सेवा करनेसे विजित कर दिया । भला आपको यहाँ उड़नेकी क्या आवश्यकता थी ? 'दासगृह'—निषाद-स्थान—सब आपहीका तो है । वहाँ ठहरना चाहिये या । आपके दासोंका लागा हुआ कन्द, मूळ, फल सब मौजूद हैं और भी ज़क़रकी क्षेत्री बड़ी चीजें उपस्थित हैं । मैं समझता हूँ, उससे आपकी सेनाका खाना-पीना आजकी रातमें आरामसे चल सकता है' इत्यादि ।

देखा आपने ? यह एक राजनीतिज्ञकी बात-चीत है । क्या इससे पता चलता है कि इसी गुह आपने धरमें क्या इन्तजाम करके आ रहे हैं ? इसी बात-चीतमें जब भरतने कहा कि 'यह ज़क़र तो बड़ा दुर्गम मालूम होता है । गङ्गाका मुहाना भी बड़ा भयानक है । तुम यह बताओ कि इस भरद्वाज मुनिके आश्रमको किस ओरसे जायें ?' इसपर गुहने कहा कि 'इस देशसे जानकारी रखने वाले सैकड़ों निषाद तुम्हारे साथ जायेंगे । मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगा, परन्तु यह तो बताओ कि तुम्हारा हृदय सो शुद्ध है न ? कहाँ तुम हुए भावसे धर्मात्मा रामके पास तो नहीं जा रहे हो ? तुम्हारी यह इतनी बड़ी सेना देखकर मुझे सन्देह होता है । यदि तुम्हारा हृदय दोषरहित है तो योद्देसे आदमी लेकर ही रामके पास जा सकते थे । इस इतनी बड़ी फौजका वहाँ क्या काम ?'

कविज्ञ दुष्टो ब्रजासि रामास्याक्षिष्टकर्मणः ।
इयं तं महीनी सेना शङ्खां जनयतीति मे ॥
(वा० रा० ०२ । ८५ । ७)

इत्यपर —

तेवदभिमापन्तमाकाश इव निर्मलः ।
भरतः शुद्धण्या वाचा गुहं वचनमवीत् ॥
मा भूत्स कालो गत्कां न मा शङ्खितुमहसि ।
राघवः स हि मे भ्राता ज्येष्ठः पितृसमो भरतः ॥
तं निवर्तयितुं यामि कामुक्त्यं वनवासिनम् ।
बुद्धिरन्या न मे कार्या गुह सत्यं ब्रवीमि ते ॥

(वा० रा० ३ । ८५ । ८-१०)

सच्च आकाशकी तरह निर्मल—रागदेवके बादजोंसे रहित भरतने वडी शान्तिपूर्वक मधुर भाषामें—उत्तर दिया कि ‘विषादराज, वह समय न आये—मैं उस समय के लिये जीता न रहूँ—विस अनिष्टको तुम आशंका कर रहे हो। राम मेरे ज्ञेष्ठ भ्राता हैं, मैं उन्हें पिताके तुल्य समझता हूँ। उन्हें बनवाससे वापिस जानेके लिये आ रहा हूँ। मैं सत्य कहता हूँ, तुम मेरी बातको अन्यथा न समझो।’

रामके विचारोंसे अति दुखी, दीन, मलीन भरतकी बातचीतसे और उनके इक्षित-वैष्णवतसे जब गुहको निश्चय हो गया कि भरतके मनमें कोई पाप नहीं है तब वह बोले—

घन्यस्तं न त्वया तुल्यं पदमाप्नि जगतीतले ।

अयत्नादागतं राज्यं यस्तं त्यक्तुमिहेच्छसि ॥

शाश्वती खलु ते कीर्तिर्लोकाननु चरिष्यति ।

यस्तं कृच्छ्रागतं रामं प्रत्यानयितुमिच्छसि ॥

(बा० रा० २।८५। १२-१३)

‘भरत, तुम धन्य हो, तुम्हारे समान धर्मात्मा पृथ्वीपर दृसरा नहीं हैं जो विना यत्के ही मिले हुए राज्यका व्याप्त कर रहे हो। तुम्हारी यह कीर्ति संसारमें अमर रहेगी जो आज तुम बनवासी रामको कठसे छुड़ानेके लिये आ रहे हो।’

यहाँ आप देखेंगे कि निषादकी कठोर बात सुनकर भी भरत अधीर नहीं हुए। उन्हें ज़रा भी क्रोध नहीं आया। उन्होंने इस जंगलीकी घट्ठतासे अपना अपमान नहीं समझा। भला एक मामूली मझाहकी यह मजाल कि वह चक्रवर्तीके पुत्र आनन्दसल भरतपर सन्देह करे और तपाकसे पूछ बैठे कि ‘क्योंजी, तुम्हारे मनमें कोई पाप तो नहीं है?’ फिर राजकुमार इस बेहूदगीपर ज़रा भी न बिगड़े। उन्होंने इस जंगलीको ‘डैमफूल’ (Damfool) ‘नामाकूल’ आदि कुछ भी न कहा। प्रत्युत एक साधारण आदमीकी तरह गिरिगिराकर अपनी सफाई देने लगे।

भरतको सुमन्तने बता दिया था कि निषादराज रामका मित्र है। उन्होंने उसे (गुहको) ‘मम गुरोः सखे’—मेरे गुर—राम—के मित्र कहकर सम्बोधन किया था। फिर वह उसका आशर क्यों न करते? इसके अतिरिक्त भरत अपनी परिश्यति समझते थे। वह जानते थे कि एक गुह ही नहीं, बरिके ग्रामका बहाना उन्हें सच्चेहकी इष्टिसे देख रहा है। इसी प्रतिकूल भावनाको

बतानेके लिये तो उनका वह प्रयास था। क्या वह काम किसीको ‘डैमफूल नामाकूल’ कहनेसे बन सकता था?

निषादने इतनी परीक्षासे ही भरतका पीछा नहीं छोड़ा। उसने उनकी ओर भी कही आँच की। लक्षणके साथ इसी जगह जो गुहकी बातचीत हुई थी और रामको पार बतारते समय जो-जो घटनाएँ घटी थीं, उनका गुहनेपेसे मार्मिक शब्दोंमें वर्णन किया कि उसे सुनकर भरत शूष्णित हो गये। यदि भरतका प्रेम दिल्लावटी होता और उनके हृदयमें रामके प्रति ज़रा भी दुर्भाव होता तो वह निषादकी इस परीक्षामें अवश्य फेल हो जाते और चतुर राजनीतिज्ञ गुह इनकी असलियतको तुरन्त ताढ़ जाता!

इसके साथ ही गुहने इसी अवसरपर वडी कुशब्दतासे भरतको अपनी शक्तिका भी परिचय करा दिया था, उसने साफ सूचित कर दिया था कि इस ओर ज़क्कलकी चम्पा-चम्पा भर जमीन मेरी मँझाई हुई है। मैं चाँहूँ तो बड़ीसे बड़ी सेनाको इसमें भटका-भटकाके मार सकता हूँ। इत्यादि

यह सब बताने और सब तरह भरतकी परीक्षा कर लेनेके बाद भी गुहने उनका पीछा नहीं छोड़ा। उसे इस बातसे सन्तोष नहीं हुआ कि भरतको रास्ता बतानेके लिये कुछ आदमी उनके साथ कर दे या थोड़े-से आदमी लेकर स्वयं हो चला जाय। वह अपनी समस्त फौज लेकर भरतके साथ अन्तिम स्थान तक गया।

माना कि उस समय भरतका भाव ठीक था, परन्तु ये से वह कैकेयीके ही पुत्र। रामसे बातचीत होते होते ही कहीं मनसुटाव हो गया और किसी बातपर वहाँ खटक रापी तब? तब स्थान वह अपने ‘स्वामी और सखा’—राम—को अकेले ही सेनासहित भरतसे भिजने देगा? यह कैसे हो सकता है? यह जंगलका जीव अपनेको जंगलका मालिक और आशार्य समझता है। उसके घरमें उसके मित्रकी ओर भला कोई आँख उठाकर देख सकता है? पहले वह अपनी बोटी-बोटी कठवायेगा, बड़ी-से-बड़ी सेनाके छड़े छुड़ायेगा, तब कहीं रामपर आँच आयेगी। इसीलिये तो दूसरा-दूसरा-सहित निषादराज वडी सतर्कतासे भरतका पीछा कर रहे हैं। वस्तुतः निषादके चरित्रमें राजनीति-कुशलताके साथ साथ मित्र-प्रेम और स्वामी-भक्तिका सचा चित्र देखने को मिलता है। इसीसे तो हम कहते हैं कि भरतकी परीक्षा निषादने जितनी खोद-खोदके की उतनी किसीने नहीं की,

परन्तु भरतच चरित्र विताना-विताना अपि-परीक्षामें तपता गया, उतना ही उतना कुन्दनके समान दमकता गया।

और तो और, दूर ही बैठे बैठे सबके हृदयको परखनेकी तरफ रखवेताहे, अद्विसिद्धि-सम्पद, विकाशदर्शी महर्षि भरद्वाज भी बेचारे भरतपर छोट करनेसे न चूके। वह भरतसे पूछते हैं—

किमिहगमने कार्यं तव राज्यं प्रशासतः ।
पतदाचक्ष सर्वं मे नहि मे शुध्यते मनः ॥
सुषुवे यममित्राङ्गं कौसल्यानन्दवर्धनम् ।
आत्रा सह सभायोऽयं चिरं प्रवासितो वनम् ॥
नियुक्तः ऋनिमित्तेन पित्रा योऽसौ महायशाः ।
वनवासी भवेतीह समा: किल चतुर्दशा ॥
कृष्ण तस्याऽपापस्य पापं कर्तुमिहन्त्वासि ।
अकप्टकं भोकुमना राज्यं तस्यानुजस्य च ॥

(वा० रा० २१९०।११।१३)

‘तुम तो राज्यका शासन कर रहे थे, भवा तुम्हारे वहाँ आनेका क्या भरतवद ? मुझसे साफ़ साफ़ कहो। मेरा मन विश्वास नहीं करता। जिन बेचारे रामको खोके कहनेसे तुम्हारे विताने भाई और खोके साथ १४ वर्ष-का बनवास दे दिया है उन्हीं पापरहित रामके प्रति तुम अपने मनमें कुछ पाप तो नहीं रखते हो ? कहाँ निकलटक राज्य भोगनेकी इच्छासे उनका वध करनेके लिये ही तो तुम इतनी बड़ी सेना लेकर चढ़ाई नहीं कर रहे हो ?’

बड़से भी कठोर और बालकी नोकरे भी ऐसे इन शब्दोंको सुनकर आत्मसङ्क्ष भरतके कोमल मनकी क्या दशा हुई होगी, इसका अनुमान पाठक स्वयं कर दें। कैसी भवानक अवस्था है ? एक सर्वज्ञ महर्षिका पवित्रात्मा भरत-पर ऐसा अनुचित सन्देह !! पृथ्वी कट जाय, आकाश गिर पड़े, पर्वत चूर छू जायें, समस्त दिशायें जल उठें और भरत उसमें समा जायें। इससमय जो दशा भरतके हृदयकी हुई होगी उसका अन्दाज़ कौन जाना सकता है ? परन्तु अन्य, महालक्ष्मा भरत !! वह इस अति विशेषकारी विवरण-के समय भी उसीप्रकार इह रहे जैसे बड़ी-से-बड़ी आँखीको नगाधिराज हिमालय धीरेसे सह लेते हैं। उन्होंने सिर्फ़ इतना ही कहा कि—

एवमुक्तो भरद्वाजं भरतः प्रत्युवाच ह ।
पर्यनुवन्नो दुःखाद्वाचा संसज्जमानया ॥
हतोऽस्मि यदि मायेवं भगवानपि मन्यते ।

(वा० रा० २१९०।१४-१५)

भरद्वाज मुनिकी बातें सुनकर भरत दुःखसे कातर हो उठे। उनकी आँखोंमें जाँसू आ गये और गवा हँथ गवा। वह सिर्फ़ इतना कह सके कि ‘यदि ‘भगवान्’—त्रिकाल-दर्शी आप—भी मुझे ऐसा ही समझते हैं, तब तो मेरा कहाँ ठिकाना नहीं है। मैं इतनाम्य बेमौत मारा गया।’

भाजा कि भरद्वाजने उक्त बातें सब्दे हृदयसे नहीं कही थीं। उन्होंने रामके प्रेममें आकर यह पूछा था। बालमीकि-ने इसका साफ़ निर्देश दिया है, परन्तु भरतको इसकी क्या लकर थी ? जिस आसानीसे महर्षि भरतके मनको देख सकते थे उसी आसानीसे भरतके लिये महर्षिका मन परख लेना सम्भव नहीं था। इम तो समझते हैं कि भरतकी यह अति कठिन परीक्षा थी। जब वे उसमें पूरे उतरे तो महर्षि भरद्वाजने प्रसन्न होकर कहा कि—

उवाच तं भरद्वाजः प्रसादाद् भरतं वचः ।
त्वयेत्पुरुषव्याघ युक्तं गथवंशजे ।
गुरुनृतिर्दमश्चैव साधूनां चानुयायिता ॥
जाने चैतन्मनःस्थं ते ददीकरणमस्त्विति ।
अपृच्छं त्वा तवत्यर्थं कीर्ति समनिवर्धन् ॥

(वा० रा० २।१०।२०-२१)

हे भरत ! तुम रुचयन्ती हो। तुममें ऐसे सजाव होने ही चाहिये। बड़ोंकी भक्ति, इन्द्रियोंका दमन और सजानों-का अनुगमन यह सब तुममें होने ही चाहिये। मैं तुम्हारे मनकी ये सब बातें पहलेसे ही जानता था, परन्तु तुम्हारे भावोंको दृ करने और तुम्हारी कीर्ति बड़ानेके लिये मैंने तुमसे यह प्रश्न किया था।

बात ठीक है, इमारी सम्मतिमें यह परीक्षा भरतके ही योग्य थी और भरत ही इस परीक्षाके योग्य थे एवं भरद्वाज-जैसे महर्षि ही इस कठिन परीक्षाके परीक्षक होने योग्य थे। इम तो भरतके इस पवित्र चरित्रका स्वरूप करनेमें ही अपना धन्वभास्य समझते हैं।

भरद्वाजके पूँछनेपर जब भरतने अपनी सब आत्माओं-का परिचय उनको दिया और उस समय दुःखाद्वाचामें आकर कैकेयीको कुछ सख्त-सुख बहा तब महर्षिने रामवनवास-के दैवी कारबोंकी ओर भी इशारा कर दिया था। उन्होंने साफ़ कहा था—

न दोषेणावग्नतव्या कैकेयी भरत त्वया ।
रामप्रवाजनं ह्येतत्सुखोदर्कं भविष्यति ॥

(वा० रा० २।१०।२१)

हे भरत, तुम रामवनवासमें कैकेयीका दोष न समझो। रामके बन आनेसे संसारका लक्ष्यात् होगा।

भरतकी परीक्षाग्रांको वहाँ अन्त हो गया हो सो बात नहीं है। भरद्वाजके आश्रमसे जब वह सेनासहित विक्रकृट-के पास पहुँचे तो इतनी बड़ी सेनाकी लक्ष-लक्ष और आकाश-में उठी भूखो देखकर रामने लक्ष्मणसे कहा कि ज़रा देखो तो वह किसकी सेना है। लक्ष्मणने एक ढाँचे-से सावधानपर चढ़कर भरतकी सेना देखनेके बाद जो कुछ कहा उन्मे सुनिये—

शशं सेनां रामाय चक्षने चेदमवीत् ॥
अद्विनं संशमयत्वार्यः सीता च भजतां गुहाम् ॥
सर्वं कुरुष्व चापं च शरांश्च कवचं तथा ।

(वा० रा० २। १६। १३-१४)

‘आप (राम) जल्दीसे आग बुझा दीजिये। सीता-को किसी गुफामें भेज दीजिये, कवच पहन लीजिये और धनुष-बाण्य लेकर तैयार हो जाह्ये ।’ जंगलमें धुँआ उठता देखकर वहाँ रहनेवाले मनुष्योंका पता शीघ्र लग जाता है, इसीसे लक्ष्मणने आग बुझानेको कहा है।

जब रामने कहा कि ज़रा वह तो देखो कि वह सेना है किसकी, तब धधकती हुई अग्निकी तरह कोधमें भरे लक्ष्मण बोले—‘मालूम होता है कि राज्याभिषेक हो जानेके बाद अपने राज्यको निष्कर्षक बनानेके निमित्त कैकेयीका पुत्र भरत हम दोनोंको मारनेके लिये आ रहा है। स्थमें कोविदारकी धज्जा है। आज यह हमारे काबूमें आयेगा। जिस भरतके कारण इतना दुःख मिला है, उसे मैं आज समझूँगा। जिसके कारण आप अपने पैतृकराज्यसे च्युत हुए हैं वह शान्त (भरत) तो अद्वय ही वधके बोन्य है। भरतके वधमें कोई दोष नहीं है। अपने पुराने अपकारीको मारनेमें पाप नहीं लगता। राज्यकी जोभिन कैकेयी आज देखेगी कि उसका पुत्र मेरे द्वारा उसी प्रकार मरोदा जा रहा है जैसे कोई मल हाथी किसी शूष्कको तोड़-मरोदकर फेंक दे। आज पृथ्वी वडे भारी पापसे मुक्त होगी। आज सेनासहित भरतका वध करके मैं धनुषबाणसे उच्छ्व

होऊँगा।’

लक्ष्मणको ज्ञोधान्त्र देखकर रामने उनका मिलाज उद्घा किया और भरतकी एक और अग्नि-परीक्षा होते होते रह गयी। राम बोले कि ‘देखो लक्ष्मण, जब भरत स्वयं आये हैं तो किर धनुष-बाण्य और लाल-तालावारकी क्षमा आवश्य-

कता है ? जब मैं पिताके सामने राज्य छोड़नेकी प्रतिश्वाक और तुम्हा तब फिर भरतके वधसे कलजित राज्य लेकर मैं क्या कहँगा ? मैं चाहूँ तो वह समस्त पृथ्वी मुझे हुल्लेभ नहीं है, परन्तु मैं अधर्मके द्वारा इन्द्रासन भी नहीं चाहता। जो सुख मुझे तुम्हारे, (लक्ष्मणके) भरतके और शशुभ्रके बिना मिलता हो वह भक्त हो जाय। मुझे उसकी अपेक्षा नहीं।’

‘लक्ष्मण, भरत किसी दुर्भावसे नहीं आ रहे हैं। उन्होंने जब मेरे तुम्हारे और सीताके बनवासकी बात सुनी होगी तब त्स्वे और शोकपे व्याकुल हो उठे होंगे। वह हमलोगों-से मिलने आ रहे हैं, किसी तुरी नीयतसे नहीं। माता कैकेयीसे अप्रसन्न होकर पिताको प्रसन्न करके भरत सुखे राज्य देनेके विचारसे आ रहे हैं। भरतके मनमें कभी हमलोगोंकी तुराई नहीं आ सकती। क्या उन्होंने कभी तुम्हारे साथ कोई बात की है ? फिर आज तुम्हारे मनमें ऐसी शाक्षा और भय वर्त्यों उठ रहे हैं ? खबरदार, भरतके लिये कोई कट्टु-बाक्य न कहना। उनके प्रति कहा हुआ तुम्हारा अपशब्द मुझे लगेगा। यदि ये राज्यके लिये तुम ये बातें कह रहे हो तो भरतको आने दो, मैं उनसे कहकर राज्य तुम्हें दिला दूँगा। यदि मैं भरतसे कहूँ कि लक्ष्मणको राजगद्दी दे दो तो वह मिथ्य है कि वह ‘बहुत अच्छा’ के सिवा और कुछ न कहेंगे।’

रामकी इन बातोंने लक्ष्मणको पानी-पानी कर दिया। वह जाके मारे जमीनमें गड़ गये। फिर उन्होंने भरतके विश्व कभी आँख न उठारी।

उधर लक्ष्मणका तो ऐसा भाव था और इधर भरतको देखिये कि उनकी क्षमा दशा थी—

यावत् रामं द्रक्ष्यामि लक्ष्मणं वा महाबलम् ।
दैदेहीं वा महाभागां न मे शान्तिर्मविष्यति ॥

(वा० रा० २। १८। ६)

भरतको बराबर यही रट थी कि जबतक मैं राम, लक्ष्मण और सीताके दर्शन न कर लूँगा तबतक मेरे व्याकुल हृदय-को शान्ति नहीं मिल सकती। जिन भरतके सम्बन्धमें लक्ष्मण समझते थे कि वह हमें मारनेहो आ रहे हैं, छुत्र, चामर चारण करके राजा भरत हमारा वध करनेके लिये सेना लेकर वहाँ पहुँचे हैं, वही भरत जब रामके सामने पहुँचे तो उनकी क्षमा दशा थी—

जटिलं चीरवसनं प्राजाहि परितं मुवि ।
ददर्श रामो दुर्दीर्घं युगान्ते भास्करं यथा ॥
(वा० रा० २।१०।०।१)

दुःखाभितो भरतो राज्युन्मो महाबलः ।
उत्त्वायेति सहृदीनं पुनर्नोवाच किंचन ॥
(वा० रा० २।११।३)

जटावल्लब्धधारी, पर्यञ्चनयन, गद्यदक्षय, दीर्घदेह,
दीन, हीन, मलीन, दुःखसे व्याकुल भरत एक अपराधीकी
भाँति हाथ जोडे बरवाते तथा काँपते हुए रामके पास पहुँचे
और पहुँचते पहुँचते हो मूर्छित होकर उनके चरणोंपर गिर
पडे । उस समय भरतके मुँहसे 'हा आर्य' के अतिरिक्त
और कोई शब्द नहीं निकल सका ।

रामने शपटके भरतको उठाया, प्रेमपूर्वक गोकर्णमें विदाया
और इसके बाद जो जो आत्मीय हुई वह सभी जानते हैं ।
जब भरत किंती प्रकार राज्य सेनेको राजी न हुए तो
रामने इतना मंजूर किया कि—

अनेन धर्मशीलेन बनात्रत्यगतः पुनः ।
आत्रा सह भविष्यामि पृथिव्या: पतिरुत्तमः ॥
(वा० रा० २।११।३१)

'बनसे लौकक भैं धर्मात्मा भाई भरतके साथ
राज्य स्वीकार करेंगा ।' हचर अधियोंने देखा कि रामके
द्वपर धीरे धीरे भरतका रंग चढ़ रहा है । उन्हें भय नुच्छा
कि कहीं इमारा उद्देश्य ही नष्ट न हो जाय । इस कारण
इसी समय जापिकोग दीर्घमें शूद्र पडे और उन्होंने भरतसे
कहा कि 'बस हो जुका, अब और ज्यादा जिद न करो ।
यदि तुम अपने पिताको सत्यवादी बनाये रखना चाहते हो
तो रामकी बात मान लो । इन्हें १४ वर्षतक कनमें रहने
दो । बादमें तुम और यह मिलकर राज्य कर लेना ।'

तत्स्त्वविग्णाः क्षिप्रं दशाग्रीवपैषिणः ।
भरतं राजशार्दूलमित्यूचुः संगता वचः ॥
ग्राहं रामस्य वाक्यं ते पितं यद्यवेक्ष्यसे ॥
(वा० रा० २।११।२)

यदि भरतके कहनेमें आकर राम उसी समय राज्य
स्वीकार कर लेते तब तो फिर रामके हाता रावणका वध
करनेकी जो स्फीक अधियों और देवताओंने मिलकर तैयार
की थी, वह सब भूद्वामें मिल जाती । जिसके लिये विश्वामिन्-

ने वृश्चकसे राम-जास्त्रणको माँगकर सुखातु, मारीच, तालक
आदिक शिकार कराया था, दिव्य अस्त्र और वज्रा आति-
वज्रा आदि विद्याएँ सिखायी थीं, जिसके लिये जनक्षुरीमें
ही सीताको बनवासकी शिक्षा दी गयी थी, आगेके लिये भी
अगस्त्य आदि अधियों और इन्द्र आदि देवताओंने बड़ी
बड़ी पेशबन्धियाँ कर रखली थीं वे सब मंसूबे नह-भट हो
जाते, इसलिये राम-भरतके इस संबंधमें अधिकांशोग
अस्थानक फट पडे और भरतको उन्होंने रोक दिया ।

यह सब कुछ होनेपर भी भरत अपनी हृदये नहीं हटे ।
उन्होंने कहा कि मैं अकेला इतने बड़े राज्यकी रोक-जाम
नहीं कर सकता । सब प्रजा आपहीको राजा बनाना
चाहती है । आप इस राज्यको स्वीकार करके इसकी स्थापना
कर दीजिये । मैं आपके सेवककी हैसियतसे आपके बनवास-
से कौटनेतक काम चलाता रहूँगा । दूरदर्शी भरत शायद
इसी आशयसे सुदर्शन-पदुकायें तैयार कराके अपने साथ
लेते गये थे, वही उन्होंने पेश की और कहा—

अधिरोहर्यपादाम्यां पादुके हेममूषिते ।
पते हि सर्वलोकस्य योगक्षेमं विधास्यतः ॥
सोऽधिरक्षु नरव्याघः पादुके व्यवमुच्य च ।
प्रायच्छत्सुमहातेजा भरताय महात्मे ॥
(वा० रा० २।१२।२१-२२)

हे आर्य ! आप इन खड़ाउओंको पहनिये । यही आप-
की प्रतिनिधि होकर आपका राज्य सम्भालेंगी । रामने
खड़ाऊं पहनीं और फिर उतारकर भरतको दे दीं ।

स पादुके संप्रणम्य रामं वचनमत्रवीत् ।
चतुर्दशि हि चर्मणि जटाचीरधरो हाहम् ॥
फलमूलाशनो वीरं भवेयं रघुनन्दन ।
तत्वागमनमाकाङ्क्षन् वसन् वै नगराद्विः ॥
तव पादुकयोन्यस्य राज्यतन्त्रं परन्तप ।
चतुर्दशि हि सम्पूर्णं वर्णऽहनि रघूत्तम् ॥
न द्रक्ष्यामि यदि त्वांतु प्रेवक्ष्यामि हुताशनम् ।

(वा० रा० २।१२।२३-२५)

भरतने पादुकाओंको प्रणाम किया और रामसे बोले
कि 'बौद्ध वर्षतक मैं पुक बनवासी तापसके समान जटा-
चीर-धारी होकर नगरसे बाहर रहूँगा और आपके आनेकी
प्रतीकामें कह-भूद्वामें ही जीवन निर्बाह करूँगा । आपकी



श्रीरामके चरणोमि भरत ।

“जटिलं बीरवसनं प्रांजलिं पनिनं भृचि ।” “आर्येवार्षिकस्य व्याहत्ते” नाशकतदा ।”

पादुकाओंको राजसिंहसनपर स्थापित करके समस्त राज-
शासनका कार्य, हन्होंके लिये, १४ वर्षतक कहँगा । चौदह
वर्ष बीतनेके बाद पहले ही दिन यदि मुझे आपके दर्शन
न मिले तो वह निश्चय आविष्ये कि उसी दिन मैं प्रजाप्रित
अधिमं प्रेषण कहँगा । फिर आपको मेरे इस पापी शरीरके
दर्शन न हो सकेंगे ।'

चन्द्र भरत, और चन्द्र उनकी प्रतिज्ञा । भरतका
चरित संसारमें अहितीय है । इतिहासमें ऐसा दूसरा उदाहरण
ही नहीं । चन्द्र हैं राम जिन्हें भरत-जैसे भाई मिले ।
भरतका पवित्र चरित्र भरतके लिये, नहीं नहीं,—संसारके
लिये—ज्ञोतिःसम्भक्ता काम दे सकता है ।

'स पादुके ते भरतः स्वलक्ष्मे

महोद्भवले संपरिणृष्ट धर्मवित् ।

प्रदक्षिणं चैव चकार राघवं

चकार चैवोत्तमनागमूर्च्छनि ॥

(वा० रा० २ । ११२ । २९)

ततः शिरसि हृत्वा तु पादुके भरतस्तदा ।

छत्रं धारयत क्षिप्रमार्यपादाकिमौ मतौ ॥

(वा० रा० २ । ११५ ।)

राघवाय च सन्धासं दत्त्वमे वरपादुके ।

राज्य चेदमयोध्यायां धूतपादो भवाम्यहम् ॥

(वा० रा० २ । ११५ । २०)

भरतने पादुकायें ली, उन्हें अपने सिरपर रखा, राम-
की प्रदक्षिणा की और उन पादुकाओंको हाथीपर रखाया ।
खोगोंको आशा दी कि इन पादुकाओंपर छत्र धारण
कराओ । हन्हें भगवान् रामका प्रतिनिधि समझो । वह
रामकी धरोहर है । जिस दिन ये पादुकायें और अयोध्याका
राज्य—जो मेरे पास धरोहरके समान सुरक्षित रहेंगे—मैं
भगवान् श्रीरामको बापिस दूँगा उसी दिन अपनेको पापसे
मुक्त समर्ख हूँगा ।

भरतकी इन बातोंपर टीका टिप्पणी करना हम अब चरणक
समझते हैं । हम तो पहले ही कह चुके हैं कि भरतका
चरित पवित्र प्रेम और निर्मल भक्तिका प्रशान्त महासागर
है । विशुद्ध धार्मिकताज आकर है । यहाँ किसी नीतिको
स्थान नहीं । यहाँ तो सरकारा, पवित्रता और निर्मलताके
साथ पवित्र प्रेम और विशुद्ध भक्तिकी धारा बहती है । हम
इस लेखको यहाँ समाप्त करते हैं ।

लक्ष्मण और भरतकी भक्ति

(लेखक—श्री 'मजवहम')



वरय ही अति शुभ सुहृत्में श्रीगोस्वामी
तुलसीदासजीने रामचरित-पानसकी
रचना आरम्भ की थी । जान पदता है
हंसवाहिनी, वीणापाणि माँ सरस्वतीको
उस समय पूर्ण सावकाश था । माँ निश्चिन्त
थी, प्रकृहित थी, आनन्दोन्मत्त थी । कविता-कलापकी तरफ़
उनके हृदय-सरोवरमें खूब ही लहरा रही थीं । नवरसकी बाड़
हृदयमें उमड़ आयी थी । तान-तरङ्गसे वीणा भंकरित हो
रही थी । माँ आप ही गा रही थी, बजा रही थी, अलाप
रही थी । अपने परम भक्तका काल्य-रचनाकी ओर
मुकाब देख लीला-भिय, भरत-बरतल भगवान्की आशा
हुई । गोस्वामीजीके 'उर-अजिर' में आकर माँ स्वतन्त्र
स्वरूप नाचने लगी । या यों कहिये कि लीलाभय 'उनके
उर-अजिर' में शारीरों न चाने लगे ।' अब क्या या-

नानी जू के बन युग, सुबरन-कन परिमान ।
श्रीकन्ति-मुख कुरुक्षेत परि, हेत सुमेरु समान ॥

अब चला सिलसिला । सबमुच सुमेली सहित हो गयी ।
असंख्य रक्षानि उनकी रचनाके भीतर भर गयी । जिन्हें
'मरमी सज्जन सुमति कुदारी लिये' आजतक खोज रहे हैं,
और परिश्रमसे खोद खोदकर निकाल रहे हैं ।

इनकी रचनाको देखकर साहित्य-रसिक, मर्मज, कवि,
विज्ञ, कोविद चकित हो गये और हो रहे हैं । भूमध्यलक्षे
साहित्य-जगतमें इनके मानसको एक अद्वितीय स्थान प्राप्त
है । विद्वानोंका मत है कि संसारमें जितने अन्योंकी रचना
हुई है उनमें जर्मन-नाटककार 'गेट' और
गोस्वामीजीकी रामायण, ये दो ही अन्य ऐसे हैं कि इन एक
एकके पाठसे मनुष्य इतना ज्ञान लाभ कर सकता है जितना
सैकड़ों पुस्तकोंके अध्ययनसे भी कदाचित् ही प्राप्त हो सके ।
यथार्थ ही रामचरित अर्थ-भर्म-काम-मोक्ष चारों पदार्थोंका
देनेवाला है ।

कवि, काव्यी, विज्ञानी, भक्त, रसिक, जिज्ञासु सभी इसके
समीप आकर अपना अभीष्ट पाते हैं और कृतार्थ हो जाते हैं ।

श्रीगोस्वामीजीने तो इस अमूल्य गायत्रकी रचना 'स्वामः-सुखाय' की थी। किन्तु हस्तमें अथ ऐसे सफल हुए कि आज यह अन्यरक्ष, करोड़ों सन्तत सूचियोंको सुख-शान्ति दे रहा है। किंतु भूले-भटकोंको सम्मार्गपर ला रहा है। आधारकोंको हिंदि देता है। फकीरोंको उमके 'मंजिले-मक्कनूद' तक पहुँचाता है, व्यथित हृषयको शीतल करता है। गिरुओंको सम्मुख करता है। पर शर्त यह है—

जो यह कथा सनेह समेता। कहिहर्हि सुनिहर्हि समुक्ति सचेता ॥
हैहर्हि राम-चरन अनुरागी । कल्प-मूल-रहित सुमंगल भागी ॥

स्नेहके साथ पदना-सुनना और सचेत होकर समझना—फिर क्या ? जल, बेका पार है। दोनों लोक बन जायेंगे। हिन्दी भाषा-भाषियोंमें चाहे वे साधु हों या गृहस्थ, आज जो धर्म-कर्म, मजहबका ज्ञान, भक्तिका प्रधार, पूजा-पाठ देखा जाता है उन सबका उद्देश हस्त रामायणसे ही है। यदि रामायण नहीं होती तो मनासन-भर्तीकी कथा परिस्थिति होती, यह कहना कठिन है।

कल्याणकारिणी, मोहहारिणी, भ्रमनाशिणी, शान्ति-प्रदायिनी, आनन्द-वर्दिणी, भक्ति-सुक्षि-दायिनी रामायणके पठन-पाठनने जो नृस हो जाय, 'रम विशेष जाना सो नाहीं।'

इस अन्यकी एक खूबी और है। साक्षरत्मे सेकर परिषद्त तक हस्तके पदनेसे समान आनन्द पाने हैं। यह ऐसा सुधातदाग है कि अपठित खुद्र पश्चिमत कोई एक घूँट भी यी दोनेपर उतना ही आनन्दित होता है जितना अगाध परिषद्त हस्तके 'वरस परस मकान अह पान' से होता है। देश-विदेशमें किन्तु विद्वान् परिषद्त ज्ञानी ऐसे हुए हैं और हैं, जो आजन्म हस्तका परिश्रम और अद्वापूर्वक अध्ययन कर अनृस ही रह गये हैं।

यदि रामायणके विश्वयमें विचारके साथ लिखा जाय तो एक अलग पोथी तैयार हो पक्की है। गोस्वामीजीने इसे समाप्त-रूपमें लिखा है। एक एक चौपाईको सेकर विचार करने और उनका भाष्य लिखनेपर सैकड़ों पाजे रँगे जा सकते हैं, किन्तु हस्तकी व्याख्याका अन्त नहीं हो पक्का।

'कल्याण' के पाठकोंके चित्तविनोदार्थ मामलके आधारपर श्रीलक्ष्मणलालजी तथा श्रीभरतजीके भक्तिभावके सम्बन्धमें कुछ प्रकाश ढालनेका यत्न किया जाता है। श्रीगोस्वामीजीने रामायणमें एक एक भावका उल्कृष्ट उज्ज्वल उदाहरण दिया है, पृथम् उनका सविस्तर परम सुन्दर चित्रब लिया है।

परब्रह्म परमात्माके साकार तथा निराकार रूपके अनुरूप जीवात्माविशेषका उनके साथ दीन प्रकारका सम्बन्ध है। एक है दैहिक-शुद्धिके अनुसार अपने हृषदेवके साथ जीव स्वामी, पिता, ससा, मित्र आदि कोई एक भाव जोड़ कर उनके अनुकूल अपने विचार तथा आचारको हठ एवं अन्यासहारा परिमार्जित तथा संस्कृत कर परमपदको प्राप्त करना। इसके उदाहरण रामायणमें इनूमान्दी, अङ्गजी, विभीषण, केट, लक्ष्मणजी, भरतजी प्रमृति हैं। दूसरा है, जीवशुद्धिके अनुपार आचरण। जिसके अनुकूल जीवविशेष अपनेको उनका अंश मानता है। इसीको अंशांशीभाव भी कहते हैं। इसीकी व्याख्या करते हुए गोस्वामीजीने कहा है—

'ईश्वर अंस जीव अविनासी । चेतन अमल सहज सुखरासी ॥'

तीसरा है आद्यशुद्धिका सम्बन्ध। जिसमें जीव अपनेको भगवान्-परे पृथक् नहीं मानता और जानता है कि मेरे समेत 'सच्चरात्र रूपरात्रि भगवान्' हैं। जीव एवं ब्रह्मका सम्बन्ध अङ्गिक अनादि है। मायाके चहरमें पका रहनेके कारण यह भगवान्से कोई स्पर्शकर रखना नहीं चाहता। उनसे कोई जाता नहीं जोड़ता, वर्त उनके अस्तित्वहीको भूले बैठा रहता है। यदि उनका होना मानता भी है तो अपनेको उनसे अलग, दूर, स्वनन्द्र जानता है। गोस्वामीजी कहते हैं—

'सो मायावस भयउ गुसाईं । बैठ्यो कीर भरकटकी नाईं ॥
जड़ चेतन हि ग्रन्थि परि गई ॥ यदमि मृषा दृट्ट कठिनई ॥'

किन्तु परम पदको प्राप्त करनेके लिये, अपने मानव-जीवनको पार्यक बनानेके लिये यह नितान्त आवश्यक है कि जीव प्रभुके माय कोई एक सम्बन्ध जोड़कर उसीको प्रौढ़ बनानेमें दक्षिण हो जाय। मनन, चिन्तन, अनुशीलनहारा उसकी पुष्टि करे। अनेक भावोंमें स्वयं एवं दास्यभाव भी हैं। भावोंमें ये दोनों प्रधान माने जाते हैं।

श्रीलक्ष्मणलालका प्रभुके साथ स्वयम्भाव और श्रीभरत-जीवका दासमाय था। 'स्वयं' में 'ममवासौ' वे मेरे हैं और दासमें 'नन्दवाऽहं' मैं उनका हूँ, यही भावलाई बदलान रहती है। दूसरे भावोंके अनुसार सर्वभावमें भी सेवा-धर्म बना रहता है। क्योंकि भक्तिका भवान अङ्ग सेवा ही है। वह हृनमें भी या 'सेवाहै लक्ष्मन कम-मन-शानी ।' किन्तु हस्तमें माझुर्व तथा प्रेमकी प्रगाढ़ता अधिक होती है। हस्त भावमें ऐश्वर्यकी ओर भक्तका ज्ञान नहीं जाता। अतएव एकताकी

मात्रा बहुत बड़ी रहती है। वह सरकार अधिक शुद्ध एवं निष्काम है। मात्रुर्य तथा प्रेमकी मात्रा जितनी बढ़ती है त्यागकी मात्रा भी उसीके अनुरूप अधिकाधिक बढ़ती जाती है। त्याग एवं कल हस्त भावके भाविकों विचारित नहीं करते वर्त उसके आनन्दको उत्तरोत्तर बढ़ाया करते हैं। अपने उपास्यदेवके आदेशानुसार सेवामें लीन रहना, जो भिल जाय उसीमें सम्मोच करना— इस मात्रका उपासक इसीको अपना एकमात्र कर्तव्य— परम धर्म मानता है।

परमात्मा एवं जीवात्माके शुद्ध स्वरूपके विचारसे यह सत्यभाव अनादि है। श्वेताश्वतरोपनिषद्में कहा है 'दा सुपर्णा सत्युञ्जा सत्याया समानं युक्तं परिपत्वजाते' (११।४।६०) इस देहरूपी दुर्भाव पुनर्वत्त एवं विद्वान्वे दो विद्वन्म एवं साथ सत्याकी भाँति वास करते हैं यहाँ दो विद्वन्मोंसे परमात्मा तथा जीवात्माका तात्पर्य है। इससे लिद होता है कि जीव तथा ब्रह्ममें अटूट सम्बन्ध है। किन्तु प्रभुकी कृपा बिना जीवको इसका ज्ञान नहीं होता, न इस ओर हमका ज्ञान ही जाता और न प्रश्निः ही होती है।

जीव दो प्रकारके होते हैं, एक निष्प्रभुक और दूसरा साधारण। निष्प्रभुको अपने निज स्वरूपका ज्ञान सदा-सर्वदा बना रहता है। वह कभी अपने लक्ष्यसे विचलित नहीं होता। साधारणको इठ, अन्यास तथा अनुशीलनान्वारा सहजका ज्ञान होता है। तत्पत्रात् वह अपने स्वरूपमें स्थित हो जाता है, जिससे उसका दैहिक ज्ञान जाना रहता है।

श्रीलक्ष्मण तथा भरतजी प्रथम श्रेणीके जीवोंमें हैं।
अतएव—

'जो आनन्दसिन्धु मुखरासी। सीकरसे त्रयलोक सुपासी ॥
सो सुखधाम राम अस नामा। अस्ति लोकदायक विश्रामा ॥'

—जो भगवान् हैं, उनके साथ श्रीलक्ष्मणका अपना सत्य भावका अटूट सम्बन्ध बनाये रखते हैं। इनका यह सम्बन्ध अनादिकालका है। इसीसे इसके विकास होनेमें कुछ विकल्प नहीं लगा। और—

'वाराहिते निज हित पति जानी। लक्ष्मन राम चरन रति मानी ॥'

—इनका यह सम्बन्ध अन्ततक बना रहा। एक लक्षणके लिये भी आप अपने हृष्टदेवसे अलग नहीं हुए। उनकी सेवासे विचारित नहीं हुए। जिसका परिणाम यह हुआ कि उस अवलारमें द्वारीर भारत फरतेके कारण आपको कोई चिन्ता न दुइ। जिसी प्रकारका मानसिक दुःख नहीं

हुआ। सरकारके समीप रहकर उनकी हविका पालन करना ही इनके जीवनका एकमात्र सत्य रहा है। इस सत्यसे वह कभी अष्ट नहीं हुए।

शरीर भारत करनेके कारण ही प्रत्येक मनुष्यमें कोई-न-कोई दुर्बलता अवश्य ही रहती है। क्योंकि काल, कर्म, स्वभाव, युग तथा संसर्ग-बाधा जीव विचार ही काम, क्रोध, लोभ, मोह आदिके प्रकारोंमें पदा रहता है। जिसमें जिसकी मात्रा अधिक रहती है, वह उसीके अनुसार लोभी, क्रोधी, आदि विद्वयोंसे विश्वित किया जाता है। भक्तमें भी ये दुर्बलताएँ रह जाती हैं। क्योंकि यह जीवका सहज स्वभाव है। किन्तु भक्त अपनी इस दुर्बलताको भी प्रभुके ही काममें लगाता है। भक्तका भी यह सहज स्वभाव है।

श्रीलक्ष्मणजी सरोवर शेषके अंश होनेके कारण लीससे भरे रहते थे। क्रोधकी मात्रा इनमें प्रबल थी। किन्तु सारी रामायण देखनेसे ज्ञात होता है कि इन्होंने अपने लिये कभी किसीपर क्रोध नहीं किया। आदर्श भक्त होनेके कारण इन्हें प्रभुको छोड़कर निजकी कोई स्थि, लालसा, वासना थी ही नहीं और जब आप आशा-निराशाकी परिधिके बाहर ही थे तब इन्हें क्रोध ही क्यों होता, किसीपर अपने लिये लीझते ही क्यों? आप तो प्रभुकी केवल ध्यायामात्र थे, उनके प्रतिविधि-स्वरूप थे। यही भक्तका स्वरूप है।

अपने लिये तो नहीं, पर जब कहीं या कभी इन्हें ज्ञात होता या अथवा अम हो जाता था कि कोई प्रभुके प्रति अपमानसूचक कुछ कह रहा है अथवा कर रहा है तब आप उबल पड़ते थे। पात्रापात्रका विचार हनके मनसे ज्ञात रहता था। फिर किसीकी सामर्थ्य थी कि इनके सामने अपना सिर डाठ सके, इनके सम्मुख लड़ा रह सके? श्री-जनकराजके 'वां-विहान मही मैं जाना।' कहते ही आप कैसा प्रवर्ण रूप भारत करते हैं! पर अपने लिये नहीं! इन्हें ज्ञात हुआ कि इसमें मर्यादा-पुरुषोत्तमका अपमान हुआ है। कहने लगे—

'रघुंस्तिहमहं जहं कोउ होई। तेहि समाज अस कहै न कोई ॥
कही जनक जसि अनुचित बानी। विद्यमान रघुकुलमनि जानी ॥
मुनहु भानु-कुल-पंकज-भानु। कहउँ सुभाव न कलु अभिमानू ॥
जो तुम्हार अनुसासन पावौ। कन्तुक इव ब्रह्मांड उठावौ ॥
काँचे घट जिमि ढारौ फोरी। सकौ मेरु मूलक इव तोरी ॥
तव प्रताप महिमा भगवाना। का बापुरो पिनाक पुराना ॥'

नाथ जानि अस आम्हु होऊँ । कौतुक करौं विलेकिं सोऊ ॥
कमल-नाल जिमि आप चढावौं । जोजन सत प्रमाण ले धावौं ॥
तोरौं छत्रक दण्ड जिमि, तब प्रताप बल नाथ ।
जौ न करौं प्रभु-पद-सप्तम, पुनि न धरौं चनु हाय ॥
परिषाम यह हुआ कि—

'लघन सकोप बचन जव बोले । डगमगानि महि दिग्गज ढोले ॥
सकल लोक सब भूप डेराने ।'

रामायणभरमें कहीं भी हनुमी आपनी जात नहीं है । प्रभु क्या कहते हैं ? क्या चाहते हैं ? क्या करते हैं ? हनुमी जातोंकी और हनुम क्षत्रत ज्यान रहता था । हनुमी कुदि, तेज, बल, प्रताप, पौरुष, पुरुषार्थक परिषय पाठड़ोंको भलीभांति धनुर्धन्वं द्वी मिल जाता है ! वहाँ हनुमें परशुरामजीके साथ साथ उपस्थित नरेशोंपर भी आपनी पूरी धाक जमा दी तथा उन्हें हर प्रकार पराजय कर दिया ।

बनवासके समय आपनी आलौकिक भक्ति प्रगाढ़ प्रेम और शुद्ध अनुरागपूर्ण ज्यानका अहुत अमृतपूर्व परिषय दिया है । श्रीरामचन्द्रजीके बनवासका संवाद पा आप व्याकुल हो गये । मारे क्षोबके आपेसे बाहर हो गये । इह रहकर हनुमके मनमें उदय होने लगा कि बलपूर्वक अवश्यके राज्यपर आपना आधिकार कर आपने बड़े आईको सिंहासनास्थ किया जाय, और जो उनके विक्रद लकड़ हो उसे उचित दरह दिया जाय । किन्तु जब देखा कि यह जात भाईको इच्छाके प्रतिकूल पड़ेंगी तब आप निरस हो गये, खुप हो गये । पर आपने कर्त्तव्य निवित करनेमें हनुमें देर न लगी । तान लिया कि जब प्रभु नहीं चाहते तब इस स्टेप्ट-बल्लेदेमें कौन पड़े । चलें सुखसे प्रभुके साथ बनमें त्वचन्द्र विचरण करें । सांसारिक बासगांधोंसे मन हटा, माता, पिता, यहीं, राज्य, सुख, परिवार, देश, कोष सबका लकड़ छोड़, जगतसे मुँह मोड़, आपने आपने मनको प्रभुकी ओर लगाया । आपमें आगृहि आयी । ये जाग उठे । हनुमीके शब्दोंमें छीजिये—

'जानिय तबहि जीव जग जागा । जब सब विषय-विलास विरागा ॥
होइ बिकेक मोह-प्रभ मागा । तब ग्नुवीर-चरन अनुरागा ॥'

और 'सबकर ममता नाग बटोरी' आपने आपनेके प्रभुके चरणोंमें सुइ बौंध दिया ।

देखिये आगे क्या गुज लिलता है ? जब श्रीरामचन्द्र-जीने देखा कि 'देह गेह सब सन तून तोर' कर जोरे आवेशाकी

प्रतीक्षा किये आप सम्मुख लड़े हैं तब आप हनुम गाहस्यनीति, राजनीति और कान्त-धर्म सिखाने लगे । स्वर्ग-नरकका लोभ तथा भय दिखाने लगे । कहने लगे—

'जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी । सो नृप अवासि नरक अविकारी ॥'

पर वहीं तो सभी लगत थी । प्रेमके आवेशमें आप सब धर्मोंको परिषय कर प्रभुकी शरणमें आ जुके थे । हनुम पर हन बातोंका क्या असर होता ? बोले—

'नरवर धीर धरम-धुर-धारी । निगम नीति कहाँ ते अविकारी ॥
मैं सिसु प्रभु-सनेह प्रतिपाला । मंद्रु भरु कि लेहि भराला ॥
गुरु पितु मातु न जानूँ काहू । कहाँ सुभाउ नाथ पतिआहू ॥
जँह लगि जगत सनेह सगाई । प्रीति प्रतीति निगम निजु गाई ॥
मंरे सबह एक तुङ्ह स्वामी । दीनबन्धु उर-अन्तरजामी ॥

हाँ ! यहीं प्रेमाभक्ति है । सभी कुछ प्रभु ही है और कोई कुछ नहीं है । हानि-ज्ञाम, मान-अपमानका ज्यान नहीं ।

धरम नीति उपदेसिय ताही । कीरति-भूति-सुगति प्रिय जाही ॥
मन-क्रम-बचन चरनरत होई । कृपातिन्दु परिहरित कि सोई ॥

इनके 'प्रेम-पते' अटपटे बचन सुनकर प्रभु चक्करमें पड़े, इनके प्रेमके सामने मर्यादापुरुषोत्तमकी नीति तथा धर्मको हार माननी पड़ी । लालार आप श्रीलक्ष्मणको बनमें साथ दे गये । लखनलाल संकोच-क्षमा साथ नहीं जाते हैं, वर प्रफुल्ल-चित्त आहारपूर्ण हृदयसे जाते हैं । जैसे—

'बागुर विषम तोराइ, मनहुँ भाग मृग भागबम ॥'

बनमें रहकर परोक्षभावसे आपने जो सरकारकी सेवा की, उसका उहूंसे भला कभी हो सकता है ? बारह दर्शोंतक श्रीरामनसे धनुष-बाण लिये सारी रात बैठे बैठे जागकर विताना क्या सहज तपस्या थी ? ये आत्मविश्वृत, प्रेम-पूर्ण, तेजस्वी, उत्साही, संयमी, सद्ये संन्यासी थे । हनुमका स्नेह मौन रहनेके कारण अतल था । प्रभुके साथ साथ ढोकाना, उनको देखना और देख-देखकर अखदानन्द अनुभव करना यहीं हनुम काम था ।

इनमें आपा नहीं था । उसे यह पक्षदम लो बैठे थे । प्रभुकी नीद सोना, उन्हींकी नीद जगना । भक्तिकी यहीं पराकाहा भी सो है । 'जाहि न चाहिअ कबहुँ कक्ष, प्रभुसन सहज सनेह' ऐसे अल्पको तो अवश्य ही भगवान् आप भी भजते हैं । क्योंकि यह तो विनिमय है 'मुमकिन नहीं कि दर्द

इधर हो उधर न हो' और इधर आप उहरे 'स्वारथ-रहित सदा सवहीके'। अतएव चन्द्रास-कालमें राघवेन्द्र—

'सीय-लक्ष्मण जेहि विचि सुख लहहीं सोइ रघुनाथ करहिं सोइ कहही॥'

और—

'जुगताहे प्रभु सिय-अनुजहि कैसे। पलक विलोचन-गोलक जैसे॥'

चन्द्रासके कारण श्रीसरकारको ओ कट हुआ, उसका हुःख छोभ कमी हनके मनसे नहीं हडा। अपने लिये नहीं, अपने अश्रुके लिये रह-रहकर यह उच्च पढते थे। सुमन्तरके द्वारा कठ सम्बेश मेजाना, विक्रूटमें यह सन्देह होनेपर कि श्रीभरतजी अपने भाईसे वैर साधने आ रहे हैं और 'प्रभु हृदय खँभारू' लखकर आप कैसे बेताव हो जाते हैं? जमें यह निश्चय होते ही कि भरतजी "निद्रे राम जानि असहार" सोता हुआ थीर-रस जाग उठा। अब क्या था?

'बाँधि जटा सिर कसि कटि भाथा। साजि सरासन सायक हाथा॥'

आप सिंहवद नादसे कहने लगे—

'आजु राम-सेवक जस लेऊँ। भरतहि समर सिलावन देऊँ॥
राम निरादर कर फल पाइ। सोवहु समर-सेज दोउ भाइ॥
आइ बना भल सकल सपाजु। प्रगट करउं रिस पाष्ठिल आजु॥'

पहले राज-भङ्गके अवसरका खीस बना हुआ था। इनकी प्रबल प्रतिक्रिया क्या हुआ?

'सभय लोक सब लोकपति, चाहत भमरि भगान॥'

सुष्टिमें उल्लट-फेरकी नौबत आगयी। प्रलयका सामान जुट गया। किन्तु प्रभुकी सान्त्वना-सूचक काशी सुनकर आपने मुर्न्त अपनेको सम्भाल लिया।

हरी भी देखिये आप प्रभुकी ही रुचिकी और ज्यान रखते हुए उसीके अनुकूल सदा करते हुए आवेंगे। इसके द्वारा आप प्रभुके सद्वृप्त हो गवे। किन्तु क्या? पञ्चवटीकी तपस्याके बाद। इसके पहले हनके और प्रभुके बीच एक अन्तर था, श्रीमतीजीका। कैसी धूर्ण उपमा गोस्तामीजीने दी है—

'आगे राम लखन पुनि पाछे।

उभय मध्य सिय सोहति कैसी। ब्रह्म जीव विच माथा जैसी॥'

जीवकी यथार्थ अवस्था यही है। वह प्रभुसे दूर नहीं है। एक दूसरे के संप्रिक्षट ही है। वह, यही मायका आवरण देखने नहीं देता। जीवसे प्रभुको अवस्था करनेवाली यही प्रबल वैचाही मुग्धकरी, मोहिनी, माता है। सच है—

'मायालज न देखियत जैसे निर्मल ब्रह्म॥'

देखिये, पम्मा-सरोबरार मायाके दूर हो जाते ही इस जीवविशेष तथा 'पूर्ण काम राम मुखरासी' में कितनी अधिक बनिहता बढ़ गयी। दोनोंके आचार-विचारमें अन्तर ही नहीं रह गया। 'एक जान दो काजिब' की बात हो गयी।

प्रभुने अपने लीका-विलासारमें इससे पूरी सहायता ली। परिणाम यह हुआ कि आप इस अवतारमें कभी प्रभुसे जुदा नहीं हुए। इस अवतारका ज्यान इनके बिना पूरा हो ही नहीं सकता। अतएव भक्तोंने जहाँ-जहाँ सरकारसे वर मांगा है, वहाँ यही कहा है कि—

'मेरे हृदय सदन मुख दायक। बसहु लघन-सिय सह रघुनाथक॥'

'मेरे मन मनिदर बसहु, सीय सहित दोउ भ्रात॥'

अब आर्चा-विद्वाहमें भी हर स्थानपर प्रभुके साथ सख्य-भावके प्रधान भक्त श्रीलखनलालजीकी बराबर सेषा हो रही है। इसीसे कहा जाता है कि समय पाकर भक्त भगवान् बन जाता है।

सरकारके सदा साथ रहने एवं 'सहज सनेह सुधा प्रतिपालित' होनेके कारण आपमें बदलशन सदा बना रहा। बाल-सुखभ सहज सरल स्वभाव रहने और साहसी, पुरुषार्थी होनेके कारण आप निर्भीक किन्तु चक्रवर्ज-चपल थे। निरचल हृदय होनेसे आपके जीमें जब जो आता था, कह बैठते थे। किसीका भय संकोच नहीं करते थे। सरकारकी राय भी जब इन्हें पसन्द नहीं आती थी तब बेवाक अपने मन्त्रम्भों, मनोगत भावोंको कह बैठते थे। स्वावलम्बन आपमें पूरा था। सागरसे पथ माँगनेका परामर्श सुनकर आपने साक राजदोंमें कह दिया—

नाथ दैव कर कवन भरोसा। सोखिअ सिन्धु करिअ मन रोसा॥

कादर कर मन एक सहारा। दैव दैव आलसी पुकारा॥

श्रीलखनलालजीके मनसे ममता एकदम हट गयी थी। हन्द्रजीतपर विजय प्राप्तकर श्रीरामचन्द्रके सम्मुख आप उसी प्रकार उपस्थित हुए, जैसे प्रतिदिन हुशा करते थे।

श्रीलखनलालजीके सख्यभावका दिव्यदर्शन आप सज्जनोंको यायासाध्य कराया गया। अब श्रीभरतजीके अतल विस्तृत गम्भीर सख्यभावको देखिये।

इनके विषयमें योदा खिलना भी कठिन है। इन्हींका भाव तथा चरित्र लेकर श्रीगोलामीजीने सम्भूर्य अयोध्या अवसरका निर्माण किया है।

वासभाव स्वाभाविक होनेपर भी हसका पालन प्रत्यन्त कठिन है। श्रीभरतजीने स्वयं ही कहा है—

‘सबते सेवक धर्म कठोरा ।’

भरतजीकी भाव-नाम्भीरता, नव्रता, सरकारा, निरचलता, धीरता, हुदि-विचलयता, सभाचालुरी, वाक्य-पदुता, त्याग, सेवा, अमंजुरीणता देखकर हुदि चकित हो आती है। इनका वर्षन वर्णोक्त हो सकता है ?

भरत-सील-गुन-विनय-बड़ाई । भायप-भगति-भरोस-भलाई ॥
कहत सारदहुँकी मति हीचै । सागर सींपकी जाहिं उलीचै ॥

साधारण मनुष्यकी क्या बात है जब राजधिं जनकजीने इनके विषयमें कहा है—

धर्म राजनय बद्धानिचारू । इहाँ यथामति मोर प्रचारू ॥
सो मति मोर भरत महिमाही । कहाँ काह छल छुआति न छाही ॥
भरत अमित महिमा सुनु रानी । जानहिं राम न सकहि बसानी ॥

इनका चरित्र अपार है। गोस्वामीजीने सत्यही कहा है—

भरत रहनि समुझानि करतूरी । भगति विरति गुन विमल विमूरी ॥
बरनत सकल सुकवि सकुचाही । सेस गेनस गिरा गम नाही ॥

इनके भावकी अगमताके विषयमें भी श्रीजनकराजने आप ही कहा है कि—

देवि परन्तु भरत रघुबरकी । प्रीति प्रतीति जाइ नहिं तरकी ॥
भरत अवधि सनेह समताकी । जद्यपि राम सीम समताकी ॥
परमारथ स्वारथ सुख सरे । भरत न सपनहुँ मनहुँ निहरे ॥

साधन सिद्धि राम-पग-नेहू ।

ठीक है सका भक्त भी तो वही है जिसे भगवान् स्वयं अजे । इनका व्यान श्रीरामचन्द्रके हृदयसे कभी नहीं हटा—

जग जपु राम राम जपु जेही ।

परिशाम हुआ—

जड़ चेतन जग जीव घनेरे । जे चितये प्रभु जिन प्रभु हेरे ॥
ते सब भये परम पद जोगू । भरत दरस भेषज भव-रोगू ॥
यह बढ़ि बात भरतकी नहीं । सुमिरत जिनहि राम मन माहीं ॥

और मनहीमें क्यों ? हुताकर भी तो सरकारने श्री-
मुखसे कहा है—

सुनहु लक्षन भल भरत सरीता । विधि प्रपञ्च महँ सुना न दीता ॥
दृष्टन तुम्हार सपथ पितु आना । सुषि सुबन्धु नहिं भरत समाना ॥

जिन्होंने—

निज जस जगत कीन्ह उजियारी ।

सुमिरन ही क्यों आप इनकी सेवा भी तो करते थे ।
देखिये राज्याभिवेकके पूर्व—

पुनि करनानिधि भरत हँकारे । निज कर जटा राम निरवारे ॥
नहवाये प्रभु तीनिहुँ भाई । भक्तबछल कृपाल रमुराई ॥

जिसे देख गोस्वामीजी कहते हैं—

भरत भाग्य प्रभु कोमलताई । सेस कोटि-सत सकहि न गाई ॥

इधर भरतजीको भी किसी बातकी चिन्ता नहीं थी ।
उन्हें दीन-दुनियाका खलाल भी नहीं था । अपने-परायेकी
सुषि रखते हुए भी आपने अपने जीवनका एकमात्र ज्ञान
प्रभुकी प्रसन्नता ही रखा था । अवधमें जब इन्हें गही देनेकी
बात चली तब आपने कहा था—

डर न मोहि जग कहहि कि पोकू । परलोकउकर नाहिन सोकू ॥
एकड़ उर बस दुसह दवारी । मोहि लगि भे सियराम दुसारी ॥

आपनि दासन दीनता, कहड़ सबहि सिरनाइ ।

देखेविनु ग्रुणाय-पद, जियकी जगनि न जाय ॥

भरतजीके गुणोंका वर्णन किसीसे कदापि नहीं हो
सकता । कर्विकुल अगम भरत गुणगाथा । जब प्रभुके प्रापु भाई-
के प्रधान कारण ही यही माने जाते हैं तब और कहाँनक
कहा जा सकता है ?

होत न भूतल भाव भरतको । अचर मन्त्र चर अचर करत को ॥

प्रेम अमिय मन्दर विरह, भरत पर्याधि गौमीर ।

मधि प्रगंगे सुर-सायु-हित, कृपासिन्धु ग्रुणीर ॥

इनके व्यागका क्या पूछना है ? देखिये, प्रथादिमें इन-
की पहुनहैके लिये सुनिकी आङ्गा पा अद्विदि-सिद्धिने जब
'विधि-विस्तयदायक' विभव प्रसुत किया तब इन्होंने उनकी
ओर भूपात भी नहीं किया । मोगकी सामग्री पास रहते
हुए भी उसे भोग न करना ही तो सका त्याग है ।

सम्पति चकई भरत चक, मुनि आयसु खेलवार ।

तेहि निमि आश्रम पीजरा, गखा भा भिनुसार ॥

सेवा-धर्मकी ओर इनका पूर्ण व्यान बना रहा । आपका
कथन था कि—

सेवक हित साहृद सेवकाई । करै सकल सुख लोम विहाई ॥

प्रभुकी चरण-पादुका सानेपर आप पूर्ण-स्वप्नसे सन्तुष्ट हो जाते हैं और कहते हैं—

नाथ भयठ सुख साथ गयेको । लहेड़ लाभ जग जन्म भयेको ॥

‘आम, दम, नियमके आचरण’ से आप ‘पश्च-अनित विकारों’ से रहित हो गये थे । माताकी कुटिल करनीको सुन आपने अपनेको कितना सम्मानकर क्षोभको खालिसे देखा दिया । हार मानकर आपने कहा कि—

जोहसि सोहसि मुँह मसि लाई । आँख ओट उठि बैठसि जाई ॥

राम-बिरोली हृदय ते, प्रगट कीन्ह विधि मेहि ।

मो समान को पातकी, बादि कहहुँ कलु तोहि ॥

इतना भनमें आते ही आप तदस्थ हो गये । अतएव मन्त्रराजको जब शशुहनजी ‘लगे घर्साटन धरि धरि झोंटी’ तब द्वानिधि भरतने कुछा दिया । यद तो इनके छाँटे पड़ा ही नहीं था । सरकारने आप ही कहा है—

भरतहि होय न राजमद, विधि-हरि-हर पद पाय ।

भरतजीके बैराव्यका पता तो अयोध्याकाशदके अन्तमें चलता है, जहाँ गोस्वामीजीने इनके आचरणके विषयमें कहा है—

अवधराज सुरराज सिहाहीं । दसरथ धन लखि धनद लजाहीं ॥

तेहु पुर बसत भरत बिन गगा । चञ्चरीक जिमि चम्पक बागा ॥

कहा है कि—

चम्पामे गुन तीन हैं, रूप रंग अह नास ।

पर इतनोही खोट है, अमर न आवत बास ॥

और—

लक्ष्मन-राम-सिंह कानन बसहीं । भरत भवन बसि तप तनु कसहीं ॥
परम पुनीत भरत आचरनू । मधुर मंजु मृदु मंगलकरनू ॥

भरतजीका भाव अपार अगम अपूर्व है । उसका उल्लेख होना कठिन ही नहीं असम्भव है । गोस्वामीजीने ठीक ही कहा है—

सिंप-राम-प्रेम-पियूष-पूरन

होत जन्म न भरतको ।

मुनि मन अगम जम नियम

सम दम विषम ब्रत आचरत को ॥

दुख दाह दारिद दंभ दूरन

सुजस मिस अपहरत को ।

कलिकाल तुलसी से सठहि

हठि राम सनमुख करत को ॥

और गोस्वामीजी ऐसा कहे क्यों नहीं ? क्योंकि आप-का तो सिद्धान्त था ‘सेवक सेव्यमाव बिनु, भव न तरे उरगारि’ और इस भावके श्रीभरतजी आदर्श भक्त थे ।

अब देखिये, दोनों भाइयोंका प्रभुके साथ एक सम्बन्ध और आपसमें आयपका दृष्ट अन्धन रहनेपर भी अपने अपने भिन्न भिन्न भावोंके कारण दोनों महातुमावोंका दर्ताव श्रीरामचन्द्र-जीके साथ भिन्न रहा और उसकी शृदि एवं दुष्टि अपने अपने स्वभावके अनुकूल भिन्न भिन्न रीतिकी हुई । प्रभुकी रुचि-पालनमें दोनों समान थे । किन्तु श्रीरामचन्द्राल सरकारके निजकी सेवासे सन्तुष्ट रह अपनपा-अहंकुरि एक-दम गँवा बैठे थे । अपने लिये प्रभुसे उन्होंने कभी कुछ नहीं कहा—कभी कुछ नहीं जाँचा, प्रभुको छोड़ संसारमें किसीको नहीं जाना । प्रभुकी रुचि-पालन तथा सेवाके अतिरिक्त अपना निजका कोई धर्म नहीं माना । निजका सुख-दुःख, मान-अपमान इन्हें कभी विचलित नहीं कर सका । और भरतजी सरकारके नाते प्रजा, परिजन, माता, गुरु, पुरोहित, कुरुम्य, परिवार, राज्य, और कोषकी सेवामें सद्वासे प्रवृत्त रहे । किन्तु प्रेम-सरोवरमें लदा निमग्न रहते हुए भी ये सुख-दुःख, हर्ष-विषाद, संयोग-वियोगकी आँखसे सन्तास एवं शीतल होते रहे । पर दोनोंकी तपस्याका फल हुआ एक ही परमपदकी प्राप्ति, प्रभुके पादपद्ममें पूर्ण विशुद्ध प्रेम, हृदयमें अनपाशिनी भक्तिका सर्वोपरि विकास, और अस्तरदानन्दका सतत उज्ज्वास ! इन दोनोंके हृदय-सरोवरमें राम सदा कमलबद्ध विकसित रहे, उसीके बारे भीर इनका मन-भ्रमर सदा मँडराता रहा ।

सोअत जागत स्वप्रमो, रस रिसचैन कुचैन ।

सुरत स्यामधनकी सुरति विसराये विसरै न ॥

संसारमें ऐसा प्रेम, ऐसी भक्ति अलभ्य है । ये दोनों महातुमाव स्वार्थ-स्याग तथा आत्म-स्यागके आदर्श चित्र हैं । प्रेमकी बैदीपर इन दोनोंने अपना तन, मन, धन, सर्वस अपैर्ण किया किन्तु बदलेमें कुछ नहीं चाहा । इसीका नाम निष्काम धर्म है । इसीको निष्काम प्रेम कहते हैं । ऐसे ही भक्त अनन्त दिव्य आनन्दसागरमें आनन्दस्फुर होकर सदा निमग्न रहते हैं ।

महारानी कौसल्या



मात्रवद्में महारानी कौसल्याजीका चरित्र बहुत ही उत्तम और आवश्यक है। यह महाराजा दशरथकी सचसे बड़ी पक्षी और भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की अनन्ती थी। ग्रामीन क्ललमें मनु-शत्रुघ्नाने तप करके श्रीभगवान्को पुण्ड्रपते प्राप्त करनेका वरदान पाया था, वही मनु-शत्रुघ्ना पहाँ दशरथ-कौसल्या हैं और भगवान् श्रीराम ही पुण्ड्रपते उनके वर अवतरित हुए हैं। श्रीकौसल्याजीके चरित्रका प्रारम्भ अयोध्याकाशदसे होता है। भगवान् श्रीरामका राज्याभिषेक होनेवाला है। नवरात्रमें उत्सवकी तैयारियाँ हो रही हैं। आज माता कौसल्याके आनन्दका पार नहीं है, वह रामकी मङ्गल-कामनासे अनेक प्रकारके बङ्ग, दान, देवपूजन और उपवास-द्वातमें संलग्न है, श्रीसीता-रामको राज्यालिहासनपर देखनेकी निष्ठित आशासे उसका रोम-रोम स्लिंग रहा है परन्तु श्रीराम दूसरी ही लीला करना चाहते हैं। सौन्दर्यों-पासक महाराज दशरथ कैलेक्टरके साथ बचनबद्ध होकर श्रीरामको बनवास देनेके लिये बाध्य हो जाते हैं।

प्रातःकाल श्रीराम माता कैलेक्टर और पिता धर्मके लिये दशरथ महाराजसे मिलकर बनवासनका त्याग निश्चय कर लेते हैं और माता कौसल्यसे आङ्ग ज्ञानेके लिये उनके महालमें पाचाते हैं। कौसल्या उस समय आङ्गयोंके हारा अप्रिमें इच्छन करता रही है और मन-ही-नन्म सोच रही है कि 'मेरे राम इस समय कहाँ होंगे, शुभ चंप्र किस समय है?' इननेहीमें नियम प्रसादमुख और उत्साह-पूर्व इयथवाले श्रीरामचन्द्र माताके समीप जा पहुँचते हैं। रामको देखते ही माता यकायक उठकर बैसे ही सामने आती है जैसे घोड़ी बछोरेके पास आती है। राम माताको पास आयी देख उनके गले खग जाते हैं और माता भी मुझाओंसे पुत्रको आविष्कर कर उनका सिर सूँडने लगती है।

सा चिरस्यात्मजं दृष्ट्वा मातृनन्दनमाग्रस्तम् ।
अभिचक्राम संहृष्टा किशोरं बढ़वा यथा ॥
स मत्तरमुपक्रान्तामुपसंगृह्णा राघवः ।
परिष्वक्ष बहुम्यामवग्रातश्च मूर्धनि ॥

(वा० रा० २ । २० । २०-२१)

इस समय कौसल्याके हृदयमें बास्तव्य-रसकी वाह आ गया, उसके जेत्रोंसे प्रेमाभूषणोंकी धारा बहने लगी। कुछ देरतक तो वही अवस्था रही, जिर कौसल्या रामपर निष्ठावर करके बहुमूल्य बजामूल्य बैठने लगी। श्रीराम चुपचाप उसे थे। अब स्नेहमयी माँसे रहा नहीं गया। उसने हाथ पक्षवक्ष पुत्रको नन्हेसे शिशुकी भाँति गोदमें बैठा दिया और लगी ज्वार करने—

बार बार मुख चूमति भ्राता । नयन नेह जल पुलकित गता ॥

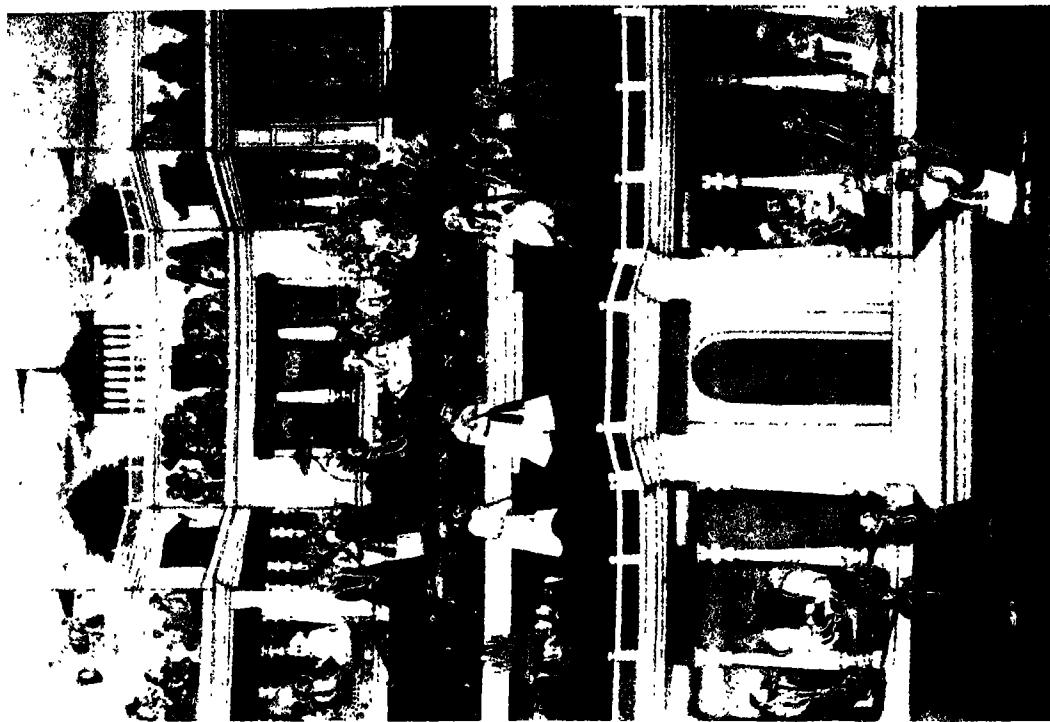
जैसे रंक कुबेरके पदको प्राप्त कर फूका नहीं समाता, आज वही दशा कौसल्याजी है। इतनेमें स्मरण आया कि दिन बहुत यह गया है, भेरे ज्वारे रामने अभी कुछ लाया भी नहीं होगा। अतएव माँ कहने लगी—

तात जाँड़ बलि बेगि अन्हाहू । जो मन भाव मधुर कलु खाहू ॥

माता सोच रही है कि 'आङ्गरमें बहुत देर होगी, मेरा राम इतनी देर भूसा कैसे रह सकेगा, कुछ निराई ही ला ले, दो-चार फल ही ले ले तो ठीक है।' उसे यह पता नहीं आ कि राम तो दूसरे ही कामसे यहाँ आवे हैं। भगवान् रामने कहा—'माता-पितामे मुझको बनका राज्य दिया है। जहाँ सभी प्रकारसे मेरा बदा कल्पयाण होगा, तुम प्रसन्न-वित्तसे मुझको बन जानेके लिये आङ्गा दे दो, औदृश साल बनमें निवासकर पिताजीके बचनोंको सत्य कर तुनः इन चरणोंके दर्शन कर्होगा। माता तुम किसी तरह दुःख न करो।'

रामके ये बचन कौसल्याके हृदयमें शुद्धकी भाँति लिय गये। हा ! कहाँ तो बाह्यर्थी साक्षात्कर्ते ऊँचे सिंहासनपर बैठनेकी जात और कहाँ अब प्रायाराम रामको बन जाना पड़ेगा। कौसल्याजीके हृदयका विचार कहा नहीं आता, वह मूर्धित हो पक्षी और घोड़ी देर बाद जग्नकर भाँति भाँति-से विलाप करने लगी।

कौसल्याके मनमें आया कि पिताजी कर्पेणा माताका स्थान ऊँचा है, बदि महाराजने रामको बनवास दिया है तो क्या हुआ, मैं नहीं आने दूँगी। परन्तु जिर सोचा कि 'बदि बहिन कैलेक्टर आङ्ग दे दी होगी तो मेरा रोक्नेका बदा अविकार है, ज्योंकि मातासे मी सौतेली माताज्ञा बर्जा ऊँचा माना गया है। इस विचारसे कौसल्या श्रीरामको रोकनेका भाव छोड़कर मानिक शब्दोंमें कहती है—



गुरु, बसिष्ठजी ।

तथा नरनाथ बसिष्ठ बोलते हैं । रामधाम सिल्व देते पढ़ते ॥



दशरथजीका दरबार ।

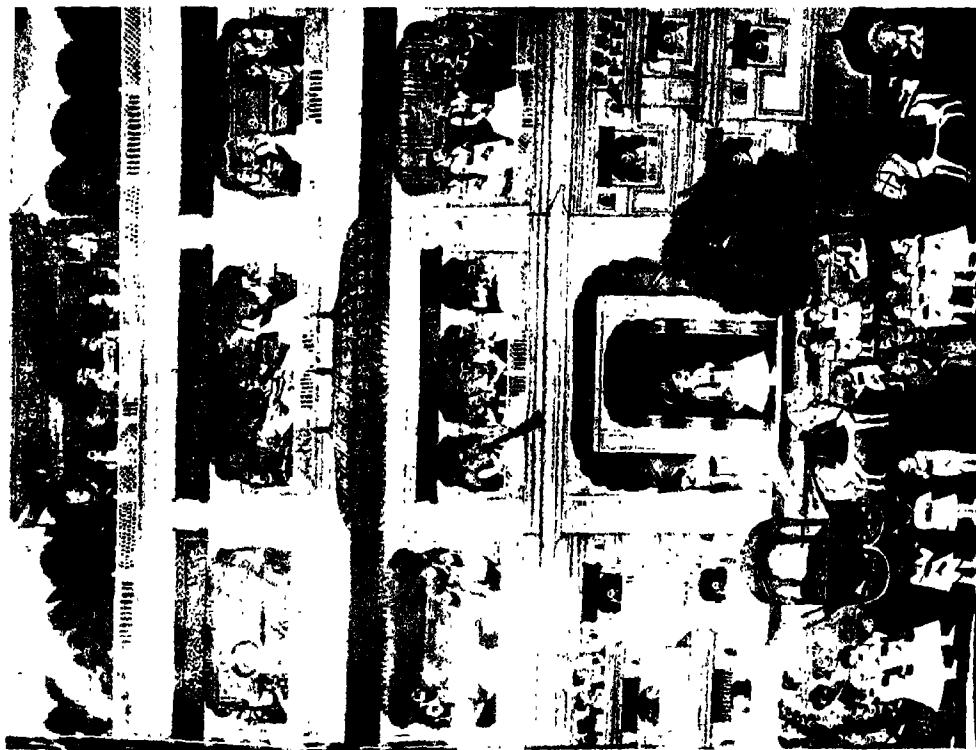
जो पत्रहि मत लाग्य नीका । करडु हरवि हिय रामहि दीका ॥

महाराष्ट्र देश के लिए बड़ी उम्मीद है।

जलवायन के लिए विभिन्न तरीकों से काम करते हैं।

महाराष्ट्र देश के लिए बड़ी उम्मीद है।

जलवायन के लिए विभिन्न तरीकों से काम करते हैं।



जो केवल पितु आयु तता । तो जनि जाहु जानि नड़ि मता ॥
जो पितु-मातु कहेउ बन जाना । तो कानन सत अवध समाना ॥

मातासे कहा गया कि 'पिता की ही नहीं, माता कैकेयी-
की भी वही सम्मति है'। इसपर कौसल्या ने वही कुदि-
मारीके साथ यह भी सोचा कि यदि मैं 'श्रीरामको हृष्णरूप
रखना चाहूँगी तो वह तो जायगा ही, साथ ही दोनों
भाइयोंमें परस्पर विवेष भी हो सकता है'।

राखड़ सुतहि करड़ अनुरोधू । धर्म जाइ अरु बन्धु विरोधू ॥

अतएव सब तरहसे सोचकर धर्मस्वरावया साज्जी कौसल्या-
ने हृष्णको कठिन करके रामसे कह दिया कि 'वेदा ! जब
पिता-माता दोनोंकी आज्ञा है और तुम भी इसको धर्म-
सम्मत समझते हो तो मैं तुम्हें रोककर धर्ममें बाजा नहीं
देना चाहती, जाओ और धर्मका पालन करते रहो । एक
अनुरोध अवश्य है—

मानि मातुके नात बहि, सुरति बिसरि जनि जाय ।

पातिक्रतधर्म कह तो दिया, परन्तु फिर हृष्णमें तूकान
आया । अब कौसल्या साथ ले जानेके
लिये आश्रह करने लगी और बोली—

कर्य हि धेनुः स्वं वत्सं गच्छन्तमनुगच्छति ।

अहं त्वानुगमिष्यामि यत्र वत्सं गमिष्यसि ॥

(वा० रा० अ० २१२४१९)

'वेदा ! ऐसे गाय अपने बछड़ेके पीछे वह जहाँ जाता
है वही जाती है वैसे ही मैं भी तुम्हारे साथ तुम जहाँ
जाओगे वहीं जाऊँगी।' इसपर भगवान् रामने माताको
अवसर आनंद पातिक्रत-धर्मका बदा ही सुन्दर उपदेश दिया,
जो श्रीमात्रके लिये अतन जरने चाहता है। भगवान् बोले—

मर्तुः पुनः परिख्यांगो नृशंसः केवलं द्वियाः ।

स भवत्या न कर्तव्यो मनसापि विगर्हितः ॥

गावच्छीवति काकुलस्यः पिता मे जपतीपति: ।

शुश्रूषा कियतां तावत्स हि धर्मः सनातनः ॥

जीवन्त्या हि द्विया भर्ता दैवतं प्रभुरेव च ।

भवत्या भम चैवाथ राजा प्रभवति प्रमुः ॥

न हृनाथा वर्य राजा लोकनायेन धीमता ।

भरतश्चापि धर्मत्या सर्वमूर्धियंवदः ॥

मवतीमनुवतेंत स हि धर्मरतः सदा ।

वथा मयि तु निकान्ते पुशशोकेन पार्थिवः ॥

श्रमं नावानुशासिकविदप्रसन्ना तथा कुश ।

दावणश्चाप्यं शोको यथैनं न विनाशयेत् ॥

राजो वृद्धस्य सततं हितं चर समाहिता ।

ब्रतोपवासनिरता या नारी परमोत्तमा ॥

मर्त्तां नानुवर्तेत् सा च पापात्मिभवेत् ।

मर्तुः शुश्रूषया नारी लम्ते स्वर्गमुत्तमम् ॥

अपि या निर्वमस्तकारा निवृत्ता देवपूजनात् ।

शुश्रूषामेव कुर्वति भर्तुः प्रियहिते रता ॥

एव धर्मः द्विया नित्यो देदे लंके भ्रुतः स्मृतः ।

(वा० रा० २।२४)

'हे माता ! पतिको परिल्याग कर देना दोके लिये
बहुत वही कूरता है, तुमको मनसे भी ऐसा सोचना नहीं
चाहिये, करना तो दूर रहा । अवतक काकुलस्यवंशी मेरे
पिताजी जीते हैं तबतक तुम्हको उनकी सेवा ही करनी
चाहिये, वही सनातन धर्म है । जीवित द्वियोंके लिये पति
ही देवता है और पति ही प्रभु है । महाराज तो तुम्हारे
और मेरे स्वामी राजा हैं और मालिक हैं । माई भरत भी
धर्मात्मा और प्राचीमात्रके साथ मिथ्या आचरण करनेवाले
हैं, वह भी तुम्हारी सेवा ही करेंगे, क्योंकि उनका धर्ममें
नित्य प्रेम है । हे माता ! मेरे जानेके बाद तुम्हको वही
साक्षातानीके साथ ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि जिससे
महाराज दुखी होकर दात्य शोकले अपने प्राचा न खाया
दें । साक्षात् होकर सर्वदा वृद्ध महाराजके हितकी ओर
ध्यान दो । प्रत, उपवासादि नियमोंमें तात्पर रहनेवाली
धर्मात्मा द्वी भी यदि अपने पतिके अनुकूल नहीं रहती है
तो वह अस्ति गतिको प्राप्त होती है, परन्तु जो देवताओंका
पूजन नमस्कर आदि विलुप्त न करके भी पतिकी सेवा
करती है उसको उसीके फलस्वरूप उसम स्वर्गकी ग्राति
होती है । अतएव पतिका हित चाहनेवाली प्रत्येक द्वीको
केवल पतिकी सेवामें ही जागे रहना चाहिये । स्त्रियोंके
लिये भ्रुति स्मृतिमें पृष्ठमात्र वही धर्म अवलोक्या गया है ।'

साज्जी कौसल्या तो पतिक्रता-शिरोमणि भी ही, उत्त-
स्नेहसे रामके साथ जानेको तैयार हो गई थी, अब उत्तके
द्वारा पातिक्रत-धर्मका महत्व सुनते ही पुनः कर्तव्यपर डट
गवी और श्रीरामको बन गयन करनेके लिये उसने आश
दे दी । कौसल्याके पातिक्रतके सम्बन्धमें निम्नालिखित

उदाहरण और भी व्याप करने योग्य है—जिस समय श्री-सीताजी स्वामी श्रीरामके साथ उन जानेको तैयार होती है उस समय कौसल्याजी उसम आचरणवाली सीताको हवयसे लगाकर और उसका सिर सूँधकर निम्नलिखित उपदेश करती है—

‘पुत्री ! जो स्त्रियाँ पतिके हारा सब प्रकारसे सम्मान पानेपर भी गरीबीकी हालतमें उनकी सेवा नहीं करती, वह असती मानी जाती हैं। जो स्त्रियाँ सती हैं वे ही शीलवती और सत्यवादिनी होती हैं, वहोंके उपदेशके अनुसार उनका बताव होता है, वे अपने कुलकी मर्यादाका कभी उल्लंघन नहीं करतीं और अपने एकमात्र पतिको ही परमपूज्य देवता मानती हैं। बेटी ! आज मेरे पुत्र रामको पिताने वनवासी बना दिया है, वह धनी हो या निर्बन्ध तेरे लिये तो वही देवता है अतः कभी उसका तिरस्कार न करना।’

यथापि परम सती सीताजीको पातिव्रतका उपदेश करना सूर्यको दीपक दिखाना है, तथापि सीताने सासके बचनोंमें कुछ भी चुरा नहीं माना या अपना अपमान नहीं समझा और उसकी बताएं धर्मार्थयुक्त समझ हाथ जोड़कर कहा—‘माता ! मैं आपके उपदेशानुभार ही कहूँगी, पतिके साथ किस प्रकारका बताव करना चाहिये, इस विषयका उपदेश माता-पिताके हारा मुझको प्राप्त हो चुका है। आप असाधी जियोंके साथ मेरी तुलना न करें—

धर्माद्विचरितं नाहमलं चन्द्रादिव प्रभा ॥
नातन्त्री वाद्यते वीणा नाचक्रो विद्यते रथः ।
नापतिः सुखमेवेत या स्याद्विष शतात्मजा ॥
स्मितं ददाति हि पिता स्मितं अना स्मितं सुतः ।
अभितस्य तु दातारं भर्तीरं का न पूजयेत् ॥

(वा० २० २०२१२८-२०)

‘मैं कहापि धर्मसे विचलित न हो सकूँगी। जिसप्रकार चन्द्रमासे चाँदनी अलग नहीं होती। जिसप्रकार विना सारके वीणा नहीं बजती, जिसप्रकार विना पाहियेके रथ नहीं चल सकता उनी प्रकार यी चाहे तौ पुत्रोंकी भी माँ जयों न हो जाय, परन्तु पति विना वह कभी सुखी नहीं हो सकती। पिता, माता, भाई और पुत्र बगैरह जो कुछ सुख देते हैं वह परिमित होता है और केवल इसी लोकके लिये होता है परन्तु पति तो मांशरूप अपरिमित सुखका दाता है, अतएव यैसी कौन दुष्ट स्त्री है जो अपने पतिकी सेवा न करे?’

जब राम उनको चढ़े जाते हैं और महाराज दशरथ तुम्हीं होकर कौसल्याके भवनमें आते हैं तब आवेशमें आकर वह उन्हें कुछ कठोर वचन कह बैठती है, इसके उत्तरमें जब तुम्हीं महाराज आत्मभावसे हाथ ओढ़कर कौसल्यासे क्षमा मार्गिते हैं, तब तो कौसल्या भवभीत होकर अपने कुस्तपर बड़ा भारी पश्चासाप करती है, उसकी आईओंसे निर्भर तरह आँख बहने लगते हैं, और वह महाराजके हाथ यक्ष उन्हें अपने मस्तकपर रख घबराहटके साथ कहती है—‘हे नाथ ! मुझसे बड़ी भूल हुई, मैं धर्मपीर सिर टेककर प्रार्थना करती हूँ। आप मुझपर प्रसन्न होइये। मैं उन्न-विद्योगसे पीड़िता हूँ, आप क्षमा कीजिये। देव, आपको जब मुझ दासीसे क्षमा मार्गिती पड़ी तो मैं आज पातिक्षत-धर्मसे भ्रष्ट हो गयी हूँ। आज मेरे शीलपर कलंक लग गया है। अब मैं क्षमाके योग्य नहीं रही, मुझे अपनी दासी जानकर उचित दण्ड दीजिये। अनेक प्रकारकी सेवाओंके हारा प्रसन्न करने योग्य तुलिमान् स्वामी जिस छोटीको प्रसन्न करनेके लिये वाच्य होता है, उस छोटे लोक-परलोक दोनों नष्ट हो जाते हैं। हे रामिन् ! मैं धर्मको जानती हूँ, आप सत्यवादी हैं, यह भी मैं जानती हूँ। मैंने जो कुछ कहा सो पुत्र-शोककी अतिशय पीड़ितसे घबराकर कहा है।’ कौसल्याके इन बचनोंसे राजा को कुछ सान्ध्यना हुई और उनकी आँख लग गयी।

उपर्युक्त अवतरणोंसे यह पता लगता है कि कौसल्या पतिव्रत-धर्मसे पालनमें बहुत ही आगे बढ़ी हुई थी। जियोंके इस प्रसन्नसे शिवा इहाय बननी चाहिये।

कर्तव्यनिष्ठा दशरथजी रामके विद्योगमें व्याकुल हैं, खान-पान कूट गया है, चूल्हुके चिह्न प्रश्नश दीस पदने लगे हैं, नगर और महलोंमें हाहाकार मचा हुआ है, ऐसी अवस्थामें धीरज धारण कर अपने हुःसको भुजा श्रीरामकी माता कौसल्या जिसका प्राणाधार पुत्र वधूसहित बनवासी हो चुका है, अपने उत्तरदायित्व और कर्तव्यको समरपती हुई महाराजसे कहती है—

नाथ समुद्दि भन करिय विचारु । रामवियोग पयोरुष अपाह ॥
करनधार तुम अवव जहाजू । चढ़ेउ सकल प्रिय परिक समाजू ॥
धीरज धरिय तो पाह्य पारु । नाहित बृद्धिहि सब परिवारु ॥
जो जिय धरिय विनय प्रिय मोरी । रामलक्ष्मनसिंग मिलहि बहोरी ॥

धन्य ! रामजननी देवी कौसल्या देवी अवस्थामें तुम्हीं येरे आदर्य वचन कह सकती हो, धन्य तुम्हारे बैरं, साहस, पातिव्रत, विश्वास और तुम्हारी आदर्य कर्तव्यनिष्ठाको !

वधु-प्रेम कौसल्याको अपनी उत्तरधू सीताके प्रति
किलावा बालसल्प-येम था, इसका विवराईं
नीचेको कुछ शब्दोंसे होता है, जब सीताजी रामके साथ
बन जाना चाहती है तब रोती हुई कौसल्या कहती है—
मैं पुनि पुश्पदू प्रिय पाई । रूपरासि गुण सील सुहाई ॥
नमन पुतरि इव प्रीति बदाई । रास्तुं प्राण जानकिहि लाई ॥
पलंग पीठ तजि गोद हिंडोरा । सिय न दीन पगु अवनि कठोरा ॥
जिवनमूरि जिमि जुगति रहेहँ । दीप बाति नहिं टारन कहेहँ ॥

जब सुमन्त श्रीसीता-राम-कृष्णाङ्को बनमें क्षोड़क
अयोध्या आता है, तो कौसल्या अनेक प्रकार विन्दा करती
हुई उत्तरधूको कुशल-समाचार पूछती है । फिर जब विश्रांतमें
सीताको देखती है तब वहाँ ही हुःख करती हुई कहती है
'बेटी ! भूपसे सूखे हुए कमलके समान, मसले हुए कुमुदके
समान, भूलसे विपटे हुए सोनेके समान और बादलोंसे छिपाये
हुए चन्द्रमाके समान सेरा यह मरिन मुख देखकर मेरे
हृदयमें जो हुःखरूपी व्यरणीसे उत्पन्न शोकाप्ति है वह सुन्दे
जला रही है ।'

यदि भाज सभी सामोंका बताव उत्तरधूओंके साथ
ऐसा हो जाय, तो धर-धरमें सुखका खोत बहने लगे ।

राम-भरतमें कौसल्या राम और भरतमें कोई अन्तर
समानभाव नहीं मानती थी । उसका हृदय विशाल था ।
और प्रजाहित जब भरतजी निनहालसे आते हैं और अनेक
प्रकारसे विलाप करते हुए एवं अपनेको शिक्षारते हुए, सारे
अन्योंका कारण अपनेको मानते हुए जब माता कौसल्याके
सामने फूट-फूटकर रोने लगते हैं, तब माता सहसा उठकर
भाँसू बहाती हुई भरतको हृदयसे लगा देती है और ऐसा
मानती है मानो राम ही लौट आये । उस समय शोक
और स्नेह उसके हृदयमें नहीं समाता, सथापि वह बेटे
भरतको धीरज बैधाती हुई कोमलकाशीसे कहती है—

अजहुं बच्छ बलि धीरज धरहू । कुसमय समुक्षि सोक परिहरहू ।
जानि मानहु हिय हानि गलानी । काल करमगति अवृटित जानी ।

× × ×

राम प्रानते प्रान तुरहारे । तुम रथुपतिहि प्रानते प्यारे ॥
निवु विष चवइ सबद हिम आणी । होइ बारिचर बारि निराणी ॥
भये व्याघ बरु भिटह न मेहू । तुम रामहि प्रतिकूल न होहू ॥
मत तुम्हार इह जो जग कहही । सो सपनेहुं सुख सुआति न लहही ॥
अस कहि मातु भरत हिय लाये । थन पथ सवहिं नमन जल छाये ॥

कैसे आदर्श वास्तव हैं रामकी माता ऐसी न हो तो
और कौन हो ?

महाराजकी वाहकियाके उपरान्त जब वसिहती और
नगरके लोग भरतको राजगारीपर बैठाना चाहते हैं और
जब भरत किसी प्रकार भी नहीं मानते तब माता कौसल्या
प्रजाके सुखके लिये धीरज धरकर कहती है—

× × × । पूत पश्य गुरु आयेसु अहई ॥
सो आदरिय करिय हित मानी । तजिथ विषाद काल-गति जानी ॥
बन रथुपति सुरपुर नरनाहू । तुम्ह यहि भाँति तात कदराहू ॥
परिजन प्रजा सचिव सब अम्बा । तुम्हाही सुत सबकहैं अवलम्बा ॥
लखि निवि बाम कानु कठिनाई । धीरजु धरहु मातु बलि जाई ॥
सिर धरि गुरु आयमु अनुसरहू । प्रजा पालि परिजन दुख हरहू ॥

प्रजाहितका इतना व्यान श्रीराम-माताको होना ही
चाहिये । माताने रामके बन जाते समय भी कहा था
'मुझे इस बातका तनिक भी हुःख नहीं है कि रामके
राज्यके बदले आज बन विज रहा है, मुझे तो इसी बातकी
चिन्ता है कि रामके विना महाराज दशरथ, उत्र भरत,
और प्रजाको महान् छेश होगा ।'

राज देन कहि दीन्ह बन, मोहि न सो दुख लेसु ।
तुम्ह बिनु भरतहि भूपतिहि, प्रजाहि प्रचण्ड कलेसु ।

पुत्र-प्रेम बनवाससे कौसल्याको प्रायान्त हेश है
परन्तु व्यारे पुत्र श्रीरामकी धर्मेश्वरके लिये कौसल्या
उन्हें रोकती नहीं, बरं कहती है—

न शक्यसे बारनींतुं गच्छदनि रथूनम ।
शीघ्रं च विनिर्वर्तस्व वर्तस्व च सतां क्रमे ॥
यं पालयसि धर्मं त्वं श्रीत्या च नियमेन च ।
स वै राघवशर्षीलं धर्मस्वामभिरक्षतु ॥

(वा० रा० २ । २५ । २-३)

बेटा ! मैं तुझे इस समय बन जानेसे रोक नहीं सकती ।
तू जा और शीघ्र ही लौटकर आ । स-सुरुहोंके मार्गका
अनुसरण करता रह । तू प्रेम और विवरमके साथ लिस धर्म-
का पालन कर रहा है वह धर्म ही तेरी रक्षा करे । इस-
प्रकार धर्मपर इह रहने और महात्माओंके सम्मानका
अनुसरण करनेकी शिक्षा देती हुई माता पुत्रकी मंगलरक्षा
करती है और कहती है—

पितु बनदेव मातु बनदेवी । स्वग-मृग चरन-सरोरह सेवी ।
अन्तहु उपित नृपहि बनवासू । वय विलोकि हिय होत हरासू ॥

कलंवपराधया धर्मराजा त्वागलूर्ति माता कौसल्या
इसप्रकार पुत्रको सहर्ष बनमें भेज देती है । विदोगके
दावानलसे हृदय दग्ध हो रहा है परन्तु पुत्रके धर्मकी टेक
और उसकी हर्ष-शोभहित सुख-नुः-स-शृण्य आनन्दमधी
मञ्जुल मूर्तिकी ओर देख-देखकर अपनेको गौरवान्वित
समझती है । यह है सचा प्रेम ! यहाँ भोइको तमिक भी
गुजाइश नहीं । भरतजीके सामने कौसल्या गौरवके साथ
प्यारे पुत्र श्रीरामकी प्रशंसा करती हुई कहती है—‘बेटा,
महाराजने तेरे बड़े भाई रामको राज्यके बदले बनवास दे
विदा परन्तु इससे रामको मुख्यपर कुछ भी स्वामता नहीं
आयी—

पितु आश्वस भूषन-बसन तात ! तंज रघुवीर ।
विसमय हरण न हृदय कछु पहिरे बलकल चीर ॥

मुख प्रसन्न मन राम न रोपू । सबकर सब विधि करि परितोपू ॥
चले विधिन सुनि सिय सँग लागी । रहइ न राम-चरन अनुरागी ॥
सुनतहि लक्ष्मन चले उठि साया । रहहि न जतन किये रघुनाथा ॥
तब रघुपति सबही सिर नाई । चले संग सिय अरु लंगु भाई ॥

यह सब होनेपर भी माताका हृदय पुत्रका भवुत मुख्या
देखनेके लिये निरन्तर व्याकुल है । औदृढ़ साक्ष वही ही
कठिनतासे श्रीरामके भव सब बचनोंकी आशापर चीतते हैं ।
सहाय विजयकर श्रीराम जब आदोखा कौटुम्ब है और जब
माताको यह समाचार मिलता है तो यह सुनते ही इसप्रकार
दौड़ती है, जैसे गाय बछड़के लिये दौड़ा करती है—

कौसल्यादि मातु सब धाई । निरसि बत्स जनु धेनु लवाई ॥
जनु धेनु बालक बत्स तजि
गृह, चरन बन परबस गई ।
दिन अन्त पुर रुख झवत धन
हुंकार करि धावति मई ॥

यहुत दिलोंके बाद पुत्रका मुख देखकर कौसल्याके प्रेम-
समुद्रकी मर्यादा दृट आती है, वह पुत्रको हृदयसे खगाकर
बार-बार सिर सूँचती है और कोमल मल्लह और मुखमस्तक
पर हाथ फेरती पूर्ण ठक्करी खगाकर देखती हुई मनमें बहुत
ही आशय करती है कि मेरे इस कलाके कोमल कमलीय जरासे
बच्चेमे रामज-जैसे प्रबल पराक्रमीको कैसे भारा होगा ।

मेरे राम-क्षमण तो बड़े ही सुकुमार हैं, ये महावरी
राजसोंसे कैसे जीते होंगे ?

कौसल्या पुनि पुनि रघुवीरहि । चितवहि कृष्णसिन्धु रनधीरहि ॥
हृदय विचारति बारहि बारा । कबन भाँति लंकापति भारा ॥
अति सुकुमार जुगुल भम बारे । निसिंधर सुभट महावल भारे ॥

माता ! क्या तुम इस बातको भूल गयी कि ये तुम्हारे
'सुकुमार बारे बालक' लीकासंकेतसे ही क्रियुवनको बनाने
विचारनेवाले हैं । इन्हींकी मायासे सब कुछ हो रहा है ।
ये तो तुम्हारे प्रेमके कारबा तुम्हारे यहाँ पुत्ररूपसे प्रकट होकर
जगत्का कल्पण करते हुए तुम्हें सुख पहुँचा रहे हैं ।
माता हुम धन्य हो !

कौसल्याको अपने धर्मपालकनका फल मिलता है, उसका
रोप जीवन मुख्य भीतता है और अन्तमें वह श्रीरामके
द्वारा सत्यकान प्राप्तकर —

रामं सदा हृदि ध्यात्वा छित्वा संसारबन्धनम् ।
अतिक्रम्य गतिस्तिसोऽप्यताप परमां गतिम् ॥

हृदयमें सर्वदा श्रीरामका ध्यान करनेसे संसार-बन्धन-
को क्षिति कर सत्त्विक, राजस, सामस तीनों गतियोंको
लांघकर परमपदको प्राप्त हो जाती है !

रामके हृदयमें कौन बसते हैं ?

तजि मदमोह कपट छल नाना ।

करौं सद्य तेहि साधु-समाना ॥

जननी जनक बंधु सुत दारा ।

तनु धन भवन सुहद परिवारा ॥

सबकै ममता-ताग बटोरी ।

मम पद मनहि बाँध बटि डोरी ॥

समदरसी इच्छा कछु नाहीं ।

हरण सोक भय नहि मन माहीं ॥

अस सज्जन मम उर बस कैसे ।

लोभी-हृदय बसे धन जैसे ॥

रानी सुमित्रा

(लेखक—पं० श्रीजीवनशहूरजी यादिक घम० ८०)



स्वामी गुलसीधाराजीने अपनी रामायण-में कहै थादर्थं चित्रोंका चित्रय कर अपनी अनुत्त प्राप्ति शरिका परिचय दिया है। महापुरुषोंके लिये चित्रपट भी विशाल होगा आहिये, इसीलिये महाकाव्यके लिया उनका गुणागान नहीं हो सकता। परन्तु कुछ प्राची रामायणमें ऐसे भी हैं लिखना प्रदर्शन बढ़ी सुझारीतिसे किया गया है। तावीजी तस्वीरोंमें चित्रकारकी अनुराह बारीकीमें होती है। कला-प्रबोच कौशल दिखानेके लिये जगना काम जान-कृतकर कठिन बना जेता है, और किंवदन्ते प्रवासमें सफलता प्राप्तकर कृतकार्य होता है। गोस्वामीजीने रानी सुमित्राका वर्णन बहुत ही संक्षेपमें किया है परन्तु उसमें कोई बात छूटने नहीं पायी। चित्रपट बहुत ही क्षोटा है, इसीलिये बड़ी बारीकीसे काम लिया गया है। अत्यन्त अल्प सामग्रीका आश्रय लेकर कौशल दिखाना साधारण कवियोंका काम नहीं है।

सुमित्रा कौसल्याकी नार्ह पटरानी नहीं है और न कैकेयी-की तरह राजा दशरथकी विवतमा है। तिसपर भी यह माननेका कोई कारण नहीं कि राजा उसके प्रति उदासीन है। रानी ही स्वभावसे भित-भाविष्यी है और सांसारिक प्रपञ्च और रम्भल्टोंसे अलग रहना परन्तु नहीं है। सारे नगरमें राम-बनवासकी बात फैल गयी, हाहाकार मच गया परन्तु उसको कैकेयीके कौतुकका हाल ही नहीं मालूम! उसको सब बातें जन्ममयाजीसे मालूम होती हैं जब ये स्वर्यं श्रीरामके साथ बन जानेकी आशा माँगने आते हैं। जन्ममयाजीसे हाल सुनकर—

गई सहमि सुनि बचन कठोरा। मृगी देसि जनु दव चहुंओरा॥

बात बहुत बड़ी थी और सुमित्राको अब पता चला। उसकी दृश्या उस हरियाली-सी हो गयी जो आरों और जंगलकी आगमें विर गयी हो और आगका पता भी खूब कैसे जानेपर जागा हो। स्वभावतः सुमित्रा कोई उपाय सोचने लगी कि कैकेयीकी जागायी हुई आगसे परिवार और पुरुषोंकी लिसी प्रकार रक्षा हो सके। आगका होकर सोचने लगी और तुरन्त ही परिस्थितिको समझ गयी और आवीका लिया उसकी आँखोंके सामने आ गया। गोस्वामीजीने सुमित्राके मनोभावों-

के उभयते समुद्रको एक ही बोहेमें कह दिया है। गांगमें सागर भर दिया है—

समुद्रि सुमित्रा राम-सिय, रूप सुसील सुभाव।

नृप सेनह लखि धुनेत सिर, पापिन कीन्ह कुदाव॥

राम-जानकीकी युगल मूर्ति बन जाने योग्य नहीं। उनकी सुकुमारता, माधुर्य और रूपराशि साधारण नहीं है। उनका सौम्यव्य देखा है—

सुन्दरता कहै सुन्दर करहीं।

इनको बन भेजना मानो कमलको भाड़में भूजना है, यह भी नहीं कि केवल रारीरकी सुकुमारता ही हो, मनकी भी कोमलता अनुज्ञानीय है। उनसे कोई अपराध गुरुजनोंके प्रति बन ही नहीं सकता। क्योंकि भावयोंमें—

चारिठ सील रूप गुनधाम। तदपि अधिक सुख-सागर राम॥

और श्रीरामजीको सभी जानते हैं कि वे हैं—

विद्या विनय निपुन गुन सीला।

तो सुमित्राके लिये यह आशा करना तो व्यर्थ ही है कि श्रीराम स्वर्यं बन जानेको मना करदें। और फिर उनका स्वभाव भी कैसा है—

जासु सुभात अरिह अनुकूला। सो किमि करहि मातु प्रतीकूला॥

और—

कृष्णमय मृदु राम सुभाऊ।

कैकेयीका ज्वरासा इशारा पावेंगे तो कौरेन बन को प्रसाद होकर चल देंगे। इस प्रकार सुमित्राने विचारकर देख लिया कि श्रीराम-जानकीका सौजन्य ही कैकेयीको सहायक हो गया है। श्रीरामजी कैकेयीसे कह चुके हैं—

सुन जननी सोइ सुत बड़ मार्गी। जो पितु-मातु बचन अनुरागी॥

फिर कौन उपाय काम दे सकता है? इसका परिणाम यह होगा कि राजा दशरथ जो बिना राम-दर्शनके जी नहीं सकते, प्राप्त छोड़ देंगे। रानियोंको वैधव्य दुःख प्राप्त होगा। यह समझकर सुमित्रा और भी आकुल हो जड़ी।

एक तदबीर सूझ गयी, यदि सुमित्रा और कौसल्या दोनों भिन्नकर श्रीरामको आज्ञा दें कि बनको नहीं जाना तो क्या होगा? श्रीरामको दोनों भिन्नकर रोक सकेंगी, कैकेयी विमाता है वैसे ही सुमित्रा विमाता है? दोनों समान हैं। यदि दशरथ बन जानेको कहते हैं और कौसल्या रोकती

है तो नीतिके अल्पासार श्रीरामके माताकी आङ्ग विशेषरूपसे पालनीय होगी। बच्च है—

पितुर्दशगुणमाता गौवेणातिरिच्यते ।
मारुदशगुणमात्या विमता धर्मभीषणा ॥

यही विचारकर कौसल्याने भी श्रीरामसे कहा था—

जो केवल पितु आपसु ताता। तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता ॥
जो पितु-मातु कहेत बन जाना। तौ कानन सत अवध समाना ॥

यदि दशरथकी आङ्ग बन जानेकी है तो कौसल्या उसका विरोध कर सकती है और दशरथ तथा कैकेयी दोनोंकी राय है तो श्रीरामका बन-गमन सर्वथा उचित है।

इसी प्रकारका भाव सुमित्राके मनमें आया कि कौसल्या और वह स्वर्य श्रीरामको जानेसे रोक दे और यह तरकीब सफल भी हो सकती थी। सुमित्राको दूसी सो सही परन्तु इसमें भी अद्वित आ पड़ी। राजपरिवार कैकेयीकी कृपासे फूला फूला है। जब कैकेयीने अपनी डंगलीसे दरथक्को सँभाला था और राजा दशरथके प्राण लबाइमें बचाये थे तो सब रानियोंके सौभाग्यकी भी उसीने रखा की थी। कैकेयीके कारण ही उनको पुक्रती होनेका समय आया था। तो फिर कैकेयीको पूर्ण अधिकार है कि उसकी कृपासे जो वहु दूसरोंको प्राप्त है उसपर अपना उन: अधिकार कर दे। सुमित्रा यह सोचकर विवश हो जाती है और समझ लेती है कि श्रीरामको बन-गमनसे रोकनेका कोई उपाय नहीं, वैद्यन्तःस अवश्यम्भावी है, राजा दशरथ आप्य छोड़ ही देंगे और उसकी अपनी दशा बास्तवमें—

मृगी देखि दव जनु चहुँ ओरा—

—की सी है। क्योंकि कैकेयी पापिनने अपनेका कोई अवसर ही नहीं छोड़ रखता। ऐसा बार किया है कि उसका जवाब ही नहीं, उसीका नाम कुदाव है जिसमें आलाकी हो और जिसका उतार न बन सके। कैकेयी अपने पृहसानका ऐसा बदूका लेरी यह बात जिसीकी कल्पनामें नहीं आ सकती थी।

सुमित्राके मनमें ये सब बातें विविधीकी तरह दौड़ गईं। अपनी बेबसीको वह भवीभाँति समझ गई। जस्तमयजीकी ओर उसका ज्यान भी अभी न जाने पाया था। परन्तु जस्तमयजी जल्दीमें थे। उनको तो विदा माँगकर श्रीरामके पास दौड़ जानेकी उम जागी हुई थी। माताकी अवाक्ष-अवस्था और मनके भावोंको वे समझ न

सके। अन्याय-पूर्ण धर्म जगाकर उसकी जिन्हाँग्रह-अवस्था-का कारण जस्तमयजी समझे—

लम्ह लखेत भा अनरथ आजू । यहि सनेह बस करब अकाजू ॥
माँगत विदा समय सकुचाही । जाइ संग विधि कहहि कि नाही ॥

धन्य है जस्तमयजी, तुम भी अपनी माताके गम्भीर स्वभावको नहीं पहचान सके और उसपर कूठा दोष भन-ही-भन जगाने लगे! 'सनेहवस' तो वह अवसर है परन्तु इस समय राम-आनन्दका ज्यान है, तुम्हारा नहीं।

सुमित्रा भीर गम्भीर चत्राची है। जब कोई उपर्य नहीं सूझा ले—

धीरज धेरउ कुअवसर जानी । सहज सुहृद बोली मुदु बानी ॥

यही धैर्य आर्यमहिलाओंकी शोभा है। जस्तमयजीने माँपर धैर्य सन्देह किया। जब श्रीरामने साथ के जगनेकी अनुमति दे दी थी तो कहा था—

माँगहु विदा मातुसन जाई । आवहु बेगि चलहु बन भाई ॥

अर्थात् जस्तमयजीके लिये बन जाना निश्चय हो ही गया था। मातासे आङ्ग जेना एक आनन्दकी कारवाई रह गयी थी। माता रोकती भी तो वे कब माननेकाले ये? परन्तु सुमित्रा जस्तमयजीसे भी अपने आदर्श विद्रियमें बढ़ गयी। जस्तमयजी तो संकोच ही करते रहे और उसने विदा माँगे उनको बन जानेकी आङ्ग दे दी और जस्तमयजीको उपदेश भी दिया।

सुमित्राका उपदेश अद्वौकिक है। नीति, धर्म, अक्षि और बासल्यभाव उसमें सभी झलक रहे हैं। एक एक शब्दमें उष्मा भावना, सहृदयता उपकरण ही है। कैकेयीके लिये एक भी अपशब्द वह नहीं कहती। 'पापिन कीन्ह कुदाव' केवल मनका भाव है। जस्तमयजीके सामने विदि कैकेयीके लिये कहु बाक्य बोलती तो उनको उपदेश करनेका अधिकार ही क्या रहता? जिसाला तो मातासे अधिक माल्य है।

सुमित्रा नीतिमें लूप निपुण है। समयपर उचित वास्तव बोकना और उचित कार्य करना उसका स्वभाव है। वह जानती है कि यदि जस्तमयजी अद्वौक्यमें रह गये और श्रीरामके साथ बनको न गये तो भरतजीके आनेपर उन्हुंने विरोध होनेकी पूर्ण सम्भावना है। जस्तमयजी तीखे हैं, उनको अद्वी कोष आ जाता है और सिवा श्रीरामके उनको कोई सहजमें दबा नहीं सकता। ऐसी अवस्थामें जस्तमयजी-

का बन जाना नीतिको दृष्टि से आवश्यक है। यह भी एक कारण है कि सुमित्रा स्वयं उनको आङ्गा दे रही है।

सुमित्राने उपदेश बड़े संचेप में किया है। उसमें राम-महिमा वर्णित है और सेवक-धर्म भी बताया है। परन्तु उसमें सुमित्राके चरित्रका जो विवरण होता है वही विशेष रीतिसे देखने योग्य है। एक एक शब्दसे सुमित्राके हृदयके भीतरी-भाव किये व्यक्त किये हैं। जो श्रीराम बन जा रहे हैं तो अपेक्षासे भी बदल रहने योग्य स्थान बन ही है।

जो पै राम सीध बन जाहीं। अवध तुम्हार काज कलु नाहीं।

और बन जाना है सो केवल राम-जानकीके लिये ही नहीं, बरिक—

—लेहु तात जग जीवन लाहू

यह अवसर तो लक्ष्मणजीको बड़े भाग्यसे प्राप्त हुआ है जो सहजमें सेवा-कार्य बन सकेगा। सुमित्राजी तो यहाँतक कहती है—

तुहरेहि भाग राम बन जाहीं। दूसर हेतु तात कलु नाहीं।

राग, रोष, हृषी, मद, मोहके व्यागनेकी शिक्षा माता देती है। अपने कल्पायके लिये नहीं, बल्कि इसलिये कि इनके रहते सेवा-धर्म ठीक नहीं निभ सकता।

सकल प्रकार विकार बिहाई। मन कम बचन करेहु सेवकाई।

लक्ष्मणके हितके लिये इससे बदल और कोई उपदेश माताकी समझमें नहीं आता।

जेहि न राम बन लहरि कलेसू। सुत सेह करेहु है उपदेसू।

यही आदिसे अन्ततक आदेश दिया। यह नहीं समझना चाहिये कि राम-भक्तिके कारण लक्ष्मणजीके प्रति सुमित्राका वाल्सल्य-भाव जाता रहा है। सुमित्राको लक्ष्मणजी-की चिन्ता क्यों होने लगी जब राम-जानकी उनके साथ हैं। वे धर्मघुरीय हैं सुमित्राको सब प्रकारसे शान्ति है। वनके कट्ठोंकी वह चर्चातक नहीं कहती, क्योंकि—

तुम कहँ बन सब माँति सुपासू। संग पितु-मातु राम-सिय जासू।

कैकेयी और सुमित्राके स्वभाव और आदर्शकी तुलना गोस्वामीजीने वही खूबसूरतीसे लहित की है, दोनोंहीमें वाल्सल्य-भाव बड़ा प्रबल है। एक श्रीरामका निर्वासन कर

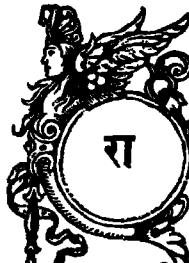
और पतिवालिनी बन कर भी अपने पुत्रको राज्य विलानेकी बेटा करती है, दूसरी अपने पुत्रको जीवन सफल करनेका अवसर पाकर स्वयं निर्वासित करती है और श्रीरामकी सेवाके लिये उसे न्यौतावर कर डाकती है, दोनों रानियाँ नीतिमें वही निपुण हैं। कैकेयीने अपना कार्य साधनेमें वही कुठिलनीति और बुद्धिमानीसे काम लिया और सुमित्रा गळभीरभावसे सोच-समझकर जो नीतिपूर्ण बात है उसके करनेमें तनिक भी नहीं शिक्षकती। एक अर्थात् निरुर है परन्तु भरत-जैसे साधुकी जननी है। दूसरी स्वयं शान्त स्वभाव है पर जन्म देती है तीखे स्वभाववाले लक्ष्मणजीको। दोनों अपनी अपनी भुनकी पढ़ी हैं। कैकेयीको कोई समझ-बुझकर अपनी बातसे डल नहीं सकता और सुमित्राको भी अपने कर्तव्य-पालनमें किसीकी अपेक्षा नहीं। उसका विश्वास इह है और कर्तव्य-पथ निर्दिष्ट है। कैकेयी अपने स्वार्थ और वाल्सल्य-भावके बेगळो रोक नहीं सकती। परिणाम कुछ भी हो, उसकी बात होकर रहे, वही उसका लक्ष्य है। सुमित्रा धर्म, नीति और भक्तिके सामने वाल्सल्य-भावको ढँचा दर्जा नहीं देती। पुत्र-प्रेमकी भर्यादा धर्म और नीति है। जिस स्नेहके कारण धर्म ढूबे, वह स्नेह नहीं। इसलिये लक्ष्मणजीको बन भेजकर सुमित्राने मानो कैकेयीके पापका ग्रायशित कर लिया।

सुमित्राके उपदेशमें एक बात श्री-समाजके लिये बड़ा और बेकर कही गयी है। और वही बात सारभूत भी है। सुमित्राका हृदय कहता है—

पुत्रवती जुवती जग सोई। रघुवर भगत जासु सुत होई।

जैसी माताएँ होंगी वैसी सन्तान और उसीके अनुसार जाति। यदि माताएँ अपनी सन्तानको वाल्यकालसे ही धर्म-की शिक्षा देती रहें तो वह आगे चलकर सहजमें धर्माचरणमें प्रवृत्त हो जाया करे। भगवान्की भक्तिमें मन लगाना कठिन न मालूम हो। पापोंसे बचना भी सुगम हो जाय। माताएँ यदि अपना यह कर्तव्य याद रखें और उसका आचरण करें तो संसारमें सुख-शान्तिकी विशेष वृद्धि हो।

सद्गुणवती कैकेयी



मायथामें महारानी कैकेयीका चरित्र सबसे अधिक बदनाम है। जिसने सारे विश्वके परमप्रिय प्राणाराम रामको बिना अपराध बनाएं मिजवानेका अपराध किया, उसका पापिनि, कलशिनि, राक्षसी, कुलधिनाशिनी कहाना कोई आश्वर्यकी बात नहीं। समस्त सद्गुणोंके आधार, अगदाधार राम जिसकी आँखोंके काटे हो गये, उसपर गालियोंकी बौद्धार न हो तो किसपर हो ? इसीसे लाजों वर्ष बीत जानेपर भी आज जगत्के नरनारी कैकेयीका नाम सुनते ही नाक-भौं सिकोइ लेते हैं और भौका पानेपर उसे दो चार ढंडेजीचे शब्द सुनानेसे बाक नहीं आते। परन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिये कि कैकेयी सर्वथा हुरुङ्गोंकी ही सानी थी, उसमें कोई सद्गुण था ही नहीं। सबी बात तो यह है कि यदि श्रीराम-बनवासमें कैकेयीके कारण होनेका प्रसंग निकाल लिया जाय तो कैकेयीका चरित्र रामायणके प्रायः सभी खी-चरित्रोंमें शायद बदकर समझा जाय। कैकेयीके राम-बनवासके कारण होनेमें भी एक बड़ा भारी रहस्य छिपा हुआ है, जिसका उद्घाटन होनेपर यह सिद्ध हो जाता है कि श्रीरामके अनन्य और अनुकूल भक्तोंमें कैकेयीजीका स्थान सर्वोच्च है। इस विषयपर आगे चलकर यथामति विचार प्रकट किये जायेंगे। पहले कैकेयीके अन्य गुणोंकी ओर दृष्टि डालिये।

कैकेयी महाराज कैक्यकी पुत्री और दशरथजीकी छोटी रानी थी। यह केवल अप्रतिम सुन्दरी ही नहीं थी, प्रथम श्रेणीकी पतिव्रता और वीराज्ञा भी थी। कुदिमता, सरलता निर्भयता, दयालुता आदि सद्गुणोंका कैकेयीके जीवनमें पूर्ण विकास था। इसने अपने प्रेम और सेवाभावसे महाराजके हृदयपर इतना अधिकार कर लिया था कि महाराज सीनों पटरानियोंमें कैकेयीको ही सबसे अधिक मानते थे। कैकेयी पति-सेवाके लिये सभी कुछ कर सकती थी। एक समय महाराज दशरथ देवताओंकी सहायताके लिये शम्भवासुर नामक राक्षससे युद्ध करने गये। उस समय कैकेयीजी भी पति के साथ रथाह्यामें गयी थी, आराम या भोग भोगनेके लिये नहीं, सेवा और शूरतासे पतिदेवको सुख पहुँचानेके लिये। कैकेयीका पतिव्रत और वीरत्व इसी-

से प्रकट है कि उसने एक समय महाराज दशरथके सारथिके भर जानेपर स्वयं बड़ी ही कुशलतासे सारथिका कार्य करके महाराजको संकटसे बचाया था। उसी युद्धमें दूसरी बार एक घटना यह हुई कि महाराज और युद्ध कर रहे थे इतनेमें उनके रथके पहियोंकी खुरी निकलकर गिर पड़ी। राजाको इस बातका पता नहीं लगा। कैकेयीने इस घटनाको देख लिया और पतिकी विजयकामनासे महाराजसे बिना कुछ कहे सुने तुरन्त खुरीकी जागह अपना हाथ डाल लिया और बड़ी धीरतासे बैठी रही। उस समय बेदनाके मारे कैकेयीके आँखोंके कोये काले पढ़ गये, परन्तु उसने अपना हाथ नहीं हटाया। इस विकट समयमें यदि कैकेयीने बुद्धिमत्ता और सहनशीलतासे काम न किया होता तो महाराजके प्राण बचने कठिन थे।

शत्रुघ्नोंका संहार करनेके बाद जब महाराजको इस घटनाका पता लगा तो उनके आश्रयका पार नहीं रहा। उनका हृदय कृतज्ञता तथा आनन्दसे भर गया। ऐसी धीरता और त्यागपूर्ण किया करनेपर भी उसके मनमें कोई अभिमान नहीं, वह पतिपर कोई एहसान नहीं करती। महाराज बरदान देना चाहते हैं तो वह कह देती है कि मुझे तो आपके प्रेमके सिवा अन्य कुछ भी नहीं चाहिये। जब महाराज किसी तरह नहीं मानते और दो वर देनेके लिये हठ करने लगते हैं तब दैवी-प्रेरणावश ‘आश्रयक होनेपर माँग-लौंगी’ कहकर अपना पिंचड छुड़ा लेती है। उसका यह अर्थ सर्वथा सराहनीय है।

भरत-शत्रुघ्न ननिहाल चले गये हैं। पीछेसे महाराजने चैत्रमासमें श्रीरामके राज्याभियेककी तैयारी की, किसी भी कारबासे हो, उस समय महाराज दशरथने इस महान् उत्सवमें भरत और शत्रुघ्नको बुजानेकी भी आवश्यकता नहीं समझी, न कैक्यराजको ही निमन्त्रण दिया गया। कहा जाता है कि कैकेयीके विवाहके समय महाराज दशरथ-ने इसीके हारा उत्पत्ति होनेवाले पुत्रको राज्यका अधिकारी मान लिया था। परन्तु रघुवंशकी प्रथा और श्रीरामके प्रति अधिक अनुराग होनेके कारण त्रुपचाप युवराजपद प्रदान करनेकी तैयारी कर ली गयी। यही कारबास था कि रानी कैकेयीके महजोंमें भी इस उत्सवके समाचार पहलेसे नहीं पहुँचे थे। रानी कैकेयी अपना त्वत्त जानती थी, उसे पता था कि भरतको मेरे पुत्रके नामे राज्याधिकार मिलना चाहिये

परन्तु कैकेयी हस बालकी कुछ भी परवा न कर राम-
राज्याभिवेककी बात सुनते ही प्रसन्न होगयी । देव-प्रेरित
कुब्जी मन्थराने आकर जब उसे यह समाचार सुनाया तब
वह आनन्दमें हृष्ट गयी । वह मन्थराको पुरस्कारमें एक दिव्य
उच्चम गहना देकर 'दिव्यमाभरणं तर्ये कुञ्जायै प्रददौ शुभम्'
कहती है—

इदं तु मन्थं रथ्यमाल्यातं परमं प्रियम् ।
पतन्मे प्रियमाल्यातं किं वा मूर्यः करोमि ते ॥
रामं वा भरते वाहं विशेषं नोपलक्ष्येऽ ।
तस्मातुष्टास्मि यद्राजा रामं राज्येऽभिवेक्ष्यति ॥
न मं परं किञ्चिदितो वरं पुनः
प्रियं प्रियाहेऽ सुवचं वचोऽसृतम् ।
तथा ह्योच्चस्त्वमतः प्रियोत्तरं
वरं परं ते प्रददामि तं वृणु ॥
(वा० रा० २। ७। ३४ से ३६)

'मन्थ ! तुमे मुझको यह बदा ही प्रिय संवाद सुनाया
है, हसके बदलेमें मैं तेरा और क्या उपकार करूँ ? (यद्यपि
भरतको राज्य देनेकी बात हुई थी) परन्तु राम और भरतमें
मैं कोई भेद नहीं देखती, मैं हस बालसे बहुत प्रसन्न हूँ कि
महाराज कल रामका राज्याभिवेक करेंगे । हे प्रियदादिनी !
रामके राज्याभिवेकका संवाद सुननेसे बदल कर मुझे अन्य
कुछ भी प्रिय नहीं है । ऐसा अनृतके समान सुखप्रद वचन
सब नहीं सुना सकते । तुमे यह वचन सुनाया है, हसके लिये
तू जो चाहे सो पुरस्कार माँग ले, मैं तुझे देती हूँ ।'

इसपर मन्थरा गहनेको फैक्कर कैकेयीको बहुत कुछ
उलटा सीधा समझती है, परन्तु फिर भी कैकेयी तो श्रीरामके
गुर्होंकी प्रशंसा करती हुई यही कहती है कि 'श्रीरामचन्द्र
धर्मज्ञ, गुणवाच, संयतेन्द्रिय, सत्यवती और पवित्र हैं,
वह राजा के ज्येष्ठ पुत्र हैं, अतपृथ (हमारी कुलप्रथाके अनुसार)
उन्हें मुवराज-पदका अधिकार है । दीर्घायु राम अपने भाइयों
और सेवकोंको पिताकी तरह पालन करेंगे । मन्थरा ! तू ऐसे
रामचन्द्रके अभिवेककी बात सुनकर क्यों हुखी हो रही है ।
यह तो अन्युत्थका समय है ऐसे समयमें तू जल क्यों रही है ?
इस भावी कल्पालमें तू क्यों हुँख कर रही है ?

यथा वै भरतो मान्यस्तथा भूयोऽपि राघवः ।
कौसल्यातोऽतिरिकं स तु शुश्रूसे हि माम् ॥

राज्यं यदि हि रामस्य भरतस्यापि तत्तदा ।
मन्थते हि यथात्मानं यथा आतृस्तु राघवः ॥

मुझे भरत जितना प्यारा है, राम उससे कहीं अधिक
प्यारे हैं, क्योंकि राम मेरी सेवा कौसल्यासे भी अधिक
करते हैं । रामको यदि राज्य मिलता है तो वह भरतको ही
मिलता है, ऐसा समझना चाहिये । क्योंकि राम सब भाइयों-
को अपने ही समान समझते हैं (वा० रा० २। ८। १४-१९)

इसपर जब मन्थरा महाराज वशरथकी निन्दाकर कैकेयी
को फिर उमाइने लगी, तब तो कैकेयीने उसको बड़ी दुरी
तरह फटकार दिया—

इदृशी यदि रामे च बुद्धिस्तव समाप्ता ।
जिहायाश्छेदनं चैव कर्तव्यं तव पापिनि ॥
पुनि अस कब्जु कहसि घरफोरी । तौ धीर जीम कढ़ावत्तं तोरी ॥

इस प्रसंगसे पता लगता है कि कैकेयी श्रीरामको कितना
अधिक प्यार करती थी और उसे रामके राज्याभिवेकमें
कितना बड़ा सुख था । इसके बाद मन्थराके पुनः कहसुनी
करनेपर कैकेयीके द्वारा जो कुछ कार्य हुआ, उसे यहाँ
लिखनेकी आवश्यकता नहीं । उसी कुक्कार्यके लिये तो कैकेयी
आज्ञातक पापिनी और अनर्थकी मूलकारणरूपा कहलाती
है । परन्तु विचार करनेकी बात है कि रामको इतना चाहने-
वाली, कुलप्रथा और कुलकी रक्षाका इसेशा फिर रखनेवाली,
परम सुशीला कैकेयीने राज्य और भरतसे ऐसा अनर्थ करों किया ?
जो थोड़ी देर पहले रामको भरतसे अधिक प्रिय वत्तलाकर
उनके राज्याभिवेकके सुसंबादपर दिव्याभरण पुरस्कार देती
थी और राम तथा वशरथकी निन्दा करनेपर, भरतको राज्य
देनेकी प्रतिज्ञा जाननेपर भी, मन्थराको 'घरफोरी' कहकर
उसकी जीभ निकलखाना चाहती थी, वही जरासी देरमें
इतनी कैसे बदल जाती है कि वह रामको चौदह सालके
लिये बनके दुख्ल सहन करनेके लिये भेज देती है और भरत-
के शीलन्स्वभावको जानती हुई भी उसके लिये राज्यका
बदान चाहती है ?

इसमें रहस्य है, वह रहस्य यह है कि कैकेयीका
जन्म भगवान् श्रीरामकी लीलामें प्रधान कार्य करनेके
लिये ही हुआ था, कैकेयी भगवान् श्रीरामको परमह
परमात्मा समझती थी और श्रीरामके लीलाकार्यमें सहायक
बननेके लिये उसने श्रीरामकी सुचिके अनुसार यह जहरकी
धूट पीछी थी । यदि कैकेयी श्रीरामको वन भिजवानेमें कारण
न होती तो श्रीरामका लीलाकार्य ही सम्भव न होता ।

न सीताका हरण होता और न राक्षसराज रावण अपनी सेनासहित मरता। रामने अवतार धारण किया था 'दुष्कृतों का विनाश करके साधुओंका परिव्राण करनेके लिये।' दुष्कृतोंके विनाशके लिये हेतुओंकी आवश्यकता थी। विना अपराध मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम किसीपर आक्रमण करने क्यों जाते? आजकलके राज्योंमें जोगोंकी भाँति वे जबरदस्ती परस्त्वापहरण करना तो चाहते ही नहीं थे। मर्यादाकी रक्षा करके ही सारा काम करना था। रावणको मारनेका कार्य भी दयाको लिये हुए था, मारकर ही उसका उद्धार करना था। दुष्कृत करनेवालोंका बध करके ही साझ और दुष्कृतोंका दोनोंका परिव्राण करना था। साधुओंका दुष्टोंसे बचाकर सदुपदेशसे और दुष्टोंका कालमूर्ति होकर मृत्युरूपसे—एक ही बारसे दो शिकार करने थे। पर इस कार्यके लिये भी कारण चाहिये, वह कारण था सीताहरण। इसके सिवा अनेक शाप-वरदानोंको भी साक्षा करना था, पहलेके हेतुओंकी मर्यादा रखनी थी, परन्तु बन गये विना सीताहरण होता कैसे? राज्याभियेक हो जाता तो बन जानेका कोई कारण नहीं रह जाता। महाराज दशरथकी मृत्युका समय समीप आ पहुँचा था, उसके लिये भी किसी निमित्तकी रचना करनी थी। अतएव इस निमित्तके लिये देवी कैकेयीका चुनाव किया गया और महाराज दशरथकी मृत्यु, एवं रावणका बध, इन दोनों कार्योंके लिये कैकेयीके द्वारा राम-वनवासकी व्यवस्था करायी गयी।

ईश्वर सर्वभूतानां हन्देऽर्दुन तिष्ठति ।
आमयन्सर्वभूतानि यन्त्रारुढानि मायया ॥

'भगवान् सबके हृदयमें स्थित हुए समस्त भूतोंको माया-से यन्त्रारुढकी तरह बुझाते हैं' इसी गीतावाक्यके अनुसार सबके जियन्ता भगवान् श्रीरामकी ही प्रेरणासे देवताओंके द्वारा प्रेरित होकर जब सरस्वती देवी कैकेयीकी बुद्धि फेर गयी क्षण और जब उसका पूरा असर हो गया, (भावीवश प्रतीति उत आई) तब भगवद्विष्णुसार बरतनेवाली कैकेयी

* देवनाओंने सरस्वतीको यह कहकर भेजा था कि—

'मन्थरां प्रविश्वादौ कैकेयी च ततः परम् ।
ततो विघ्ने समुत्पन्ने पुनरेहि दिवं शुभे ॥'

पहले मन्थराम प्रवेशकरके फिर कैकेयीकी बुद्धिमें प्रवेश करना और रामके अभियेकमें विघ्नकरके वापस लैट आना।

(अध्यात्मरामायण)

भगवान्की मायावश ऐसा कार्य कर बैठी,† जो अत्यन्त कूर होनेपर भी भगवान्की जीवाकी सम्पूर्णताके लिये आवश्यक था।

अब प्रश्न यह है कि 'जब कैकेयी भगवान्की परम भक्त थी, प्रभुको इस आन्यन्तरिक गुणलीलाके अतिरिक्त प्रकाशमें भी श्रीरामसे अत्यन्त प्यार करती थी, राज्यमें और परिवारमें उसकी बड़ी सुखाति थी, सारा कुदुम्ब कैकेयीसे खुश था, फिर भगवान्ने उसीके द्वारा यह भीषण कार्य कराकर उसे कुदुम्बियों और अवध्वासियोंके द्वारा तिरस्कृत, पुत्रद्वारा अपमानित और इतिहासमें सदाके लिये लोक-निन्दित क्यों बनाया? जब भगवान् ही सबके प्रेरक हैं, तो साज्जी सरता कैकेयीके मनमें सरस्वतीकेद्वारा ऐसी प्रेरणा ही क्यों करवायी, जिससे उसका जीवन सदाके लिये दुखी और नाम सदाके लिये बदनाम हो गया? इसीमें लो रहस्य है। भगवान् श्रीराम साक्षात् सचिवानन्द-परमात्मा थे, कैकेयी उनकी परम अनुरागिणी सेविका थी। जो सबसे गुण और कठिन कार्य होता है उसको सबके सामने न तो प्रकाशित ही किया जा सकता है, और न हर कोई उसे करनेमें ही समर्थ होता है। वह कार्य तो किसी अत्यन्त कठोरकर्मी, धनिष्ठ और परम प्रेमीके द्वारा ही करवाया जाता है। खास करके जिस कार्यमें कर्ताकी बदनामी हो, ऐसे कार्यके लिये तो उसीको चुना जाता है, जो अत्यन्त ही अन्तरंग हो। रामका लोकापवाद मिटानेके लिये श्रोसीतजी वनवास स्वीकार करती हुई सन्देशा कहलाती है कि, मैं जानती हूँ, कि मेरी शुद्धतामें आपको सन्देश नहीं है, केवल आप लोकापवादके भवसे मुझे स्थान रहे हैं। तथापि मेरे लो आप ही परमगति हैं। आपका लोकापवाद दूर हो, मुझे अपने शरीरके लिये कुछ भी शोक नहीं है।' यहाँ सीताजी 'रामकाज' के लिये कष्ट सहती हैं परन्तु

† कैकेयीके देसा करनेका एक कारण यह भी बतलाया जाता है कि 'कैकेयी जब लड़कपनमें अपने पिताके घर थी, तब वहाँ एक दिन एक कुरुप्राणियोंको आया देखकर कैकेयीन उभर्की दिल्लियों उड़ायी थी और निन्दा की थी। इनमें कुद होकर उम तपस्वी ब्राह्मणने कैकेयीको यह शाप दिया था कि 'न अपने रूपके अभिमानमें अर्धा होकर मेरे कुरुप बदनकी निन्दा करती है, इमलिये तु भी कुरुपा स्त्रीका बातेमें आकर ऐसा कर्म कर बैठेगी। जिससे जगतमें तेरी बड़ी भारी नीच निन्दा होगी !

कल्याण —



ककेयीकी क्षमा-याचना ।
क्षमस्य मम दौरात्म्यं क्षमासाराहि साधवः ।
त्वं साक्षात् विष्णुरव्यक्तः परमात्मा सनातनः ॥

उनकी बदनामी नहीं होती, प्रशंसा होती है। उनके पालितकी आजलक पूजा होती है परन्तु कैकेयीका कार्य इससे अत्यन्त महान् है। उसे तो 'रामकाज' के लिये राम-विरोधी मशहूर होना पड़ेगा। 'वावश्चन्द्रिदिकाकरौ' गालियाँ सहनी पड़ेंगी। पापिनी, कलाकृति, कुलधातिनीकी उपाधियाँ प्रहृष्ट करनी पड़ेंगी, वैधव्यका दुःख स्वीकारकर पुत्र और नगरनिवासियोंहारा तिरकृत होना पड़ेगा। तथापि 'रामकाज' जहर करना पड़ेगा! यही रामकी इच्छा है और इस 'रामकाज' के लिये रामने कैकेयीको ही प्रधान पात्र चुना है। इसीसे यह कलहका चिर टीका उसीके सिर पोता गया है। यह इसीलिये कि वह परब्रह्म श्रीरामकी परम अन्तरंग प्रेमपात्री है, वह श्रीरामकी लीलामें सहायिका है, उसे बहनामी-सुशनामीसे कोई काम नहीं, उसे तो सब कुछ सहकर भी 'रामकाज' करना है। रामरूपी सूत्रधार जो कुछ भी पार्ट दें, उनके नाटककी सांगताके लिये उनकी आशा-नुसार इसे तो वही खेल खेलना है, चाहे वह कितना ही कूर बद्यों न हो। कैकेयी अपना पार्ट बदा अच्छा खेलती है। राम अपने 'काज' के लिये सीता और लक्ष्मणको लेकर सुरी-सुशी बनके लिये बिदा होते हैं। कैकेयी इस समय पार्ट खेल रही थी, इसलिये उसको उस सूत्रधारसे—नाटकके स्वामीसे—जिसके इंगितसे जगाटकका प्रत्येक परदा पढ़ रहा है और उसमें प्रत्येक क्रिया सुचाह रूपसे हो रही है—एकान्तमें मिलनेका अवसर नहीं मिलता। इसीलिये वह भरतके साथ बन जाती है और वहाँ श्रीरामसे—नाटकके स्वामीसे—एकान्तमें मिलकर अपने पार्टके लिये पूछती है और साधारण खोकी भाँति लीलासे ही लीलामयसे उनको दुःख पहुँचानेके लिये हमा चाहती है परन्तु लीलामय भेद सोलकर साफ कह देते हैं कि 'यह तो मेरा ही कार्य था, मेरी ही इच्छासे, मेरी मायासे हुआ था, तुम तो निमित्तमात्र थी, सुखसे भजन करो और मुक्त हो जाओ।' वहाँका प्रसंग इस प्रकार है—जब भरत श्रीरामको खोटा ले जानेका बहुत आग्रह करते हैं, किसी प्रकार नहीं मानते, तब भगवान् श्रीरामका रहस्य जाननेवाले मुनि विशिष्ट श्रीरामके सझेतसे भरतको अलग ले जाकर एकान्तमें समझाते हैं—'पुत्र! भाज मैं तुमे एक गुप रहस्य सुना रहा हूँ। श्रीराम साक्षात् नारायण हैं, पूर्वकालमें ब्रह्माजीने इनसे रावण-कृष्णके लिये प्रार्थना की थी, इसीसे इन्होंने दूरथके वहाँ पुत्ररूपसे अवतार लिया है। श्रीसीताजी साक्षात् योगमाया हैं। श्रीकृष्ण शेषके अवतार हैं, जो

सदा श्रीरामके साथ उनकी सेवामें लगे रहते हैं। श्रीरामके रावणका वध करना है, इससे वे जखर बनमें रहेंगे। तेरी माताका कोई दोष नहीं है—

कैकेयावरदानादि यद्यनिष्ठुर भाषणम् ॥

सर्वं देवकृतं नोचेदेवं सा भाष्येत्कथम् ॥

तस्मात्यजाग्रहं तत रामस्य विनिवर्तते ॥

(अध्यात्म रा०)

'कैकेयीने जो वरदान माँगी और निष्ठुर वधन कहे थे, सो सब देवका कार्य था (रामकाज था) नहीं तो भला, कैकेयी कभी ऐसा कह सकती? अतएव तुम रामको अबोध्या लौटा ले चलनेका आग्रह छोड़ दो।'

रास्तेमें भरदाजसुनिने भी संकेतसे कहा था—

न दंषेणावग्नतव्या कैकेयी भरत त्वया ।

राम प्रव्राजनं ह्येतसुवोदर्कं भविष्यति ॥

देवानां दानवानां च क्रृषीणां भवितात्मनाम् ॥

हितमेव भविष्यद्दि रामप्रव्राजनादिह ॥

(वा० रा० २।९२।२९-३०)

'हे भरत, तू माता कैकेयी पर दोषारोपण भर छ। रामका बनवास समस्त देव दानव और ऋषियोंके परम हित और परम सुखका कारण होगा।' अब श्रीवसिष्ठजीसे स्पष्ट परिचय प्राप्त कर भरत समझ जाते हैं और श्रीरामकी चरण-पादुका सादर लेकर अबोध्या खोटनेकी तैयारी करते हैं। इधर कैकेयीजी एकान्तमें श्रीरामके समीप जाकर आँखोंसे आँसुओंकी धारा बहाती हुई व्याकुल इद्यसे—

प्राजाः प्राह हे राम ! तव राजविधातनम् ।

कृतं मया दुष्टिया भायामेहितचंतसा ॥

क्षमस्त मम दैरात्यं क्षमासाराहि साधवः ।

त्वं साक्षात्द्विष्णुरत्यक्तः परमात्मा सनातनः ॥

मायामानुपर्वेण मोहयस्यखिलं जगत् ।

त्वयैव प्रेरितो लोकः कुरुते साध्वसाधुवा ॥

त्वदधीनिमिदं विश्वमस्वतन्त्रं करंति किम् ।

यथा कृत्रिम नर्तकयो नृसन्ति कुहकेच्छया ॥

त्वदधीना तथा माया नर्तकी बहुरूपिणी ।

त्वयैव प्रेरिताऽहं च देवकार्यं करिष्यते ॥

पाहि विशेशराजनन्त ! जगन्नाथ नमोस्तु ते ।

लिङ्गिष्व द्वेषमयं पाशं पुत्रवित्तादिगोचरम् ॥

त्वज्ञानामलखद्वेन त्वामहं शरणं गता ॥

(अध्यात्म रा०)

—हाय जोड़कर बोली 'हे श्रीराम ! तुम्हारे राज्याभिषेकमें मैंने विज्ञ किया था । उस समय मेरी कुदि देवताओंने विगाद दी थी और मेरा वित्त तुम्हारी माया से मोहित हो गया था । अतएव मेरी इस दुष्टताको तुम क्षमा करो, क्योंकि साझे क्षमालील कुम्भा करते हैं । फिर तुम तो साधारू विष्णु हो । इन्द्रियोंसे अव्यक्त सनातन परमात्मा हो, मायासे मनुष्यरूप-धारी होकर समर्पणको मोहित कर रहे हो । तुम्हींसे प्रेरित होकर लोग साजु-आसाजु कर्म करते हैं । यह सारा विश्व तुम्हारे अधीन है, अस्तवतन्त्र है, अपनी इच्छासे कुछ भी नहीं कर सकता । मैंसे कठपुतलियाँ न चालेवालेकी इच्छाजुलार ही नाशती हैं, वैसे ही वह बहुस्वर्गारियाँ नर्तकी माया तुम्हारे ही अधीन हैं । तुम्हें देवताओंका कार्य करना था अतएव तुमने ही ऐसा करनेके लिये मुझे प्रेरणा की । हे विश्व व्यत ! हे अनन्त ! हे अगवान ! मेरी रक्षा करो । मैं तुम्हें नमस्कार करती हूँ । तुम अपनी तत्त्वज्ञानरूपी निर्मल तीक्ष्णधार तलबारसे मेरी पुत्र-वित्तादि विषयोंमें ज्ञेहरूपी फाँसीको काट दो । मैं हुम्हारे शरण हूँ ।

कैकेयीके स्पष्ट और सरल वचन सुनकर भगवान् हँसते हुए कहा—

यदाह मां महाभाग नानृतं सत्यंमव तत् ।
मर्यैव प्रेरिता वाणी तव वक्ताद् विनिर्गता ॥
देवकार्यार्थं सिद्धरथेमत्र दावः कुतस्तव ।
गच्छ त्वं हृदि मां नियं भावयन्ती दिवनिशम् ॥
सर्वत्र विगतस्त्रेहा मद्भक्त्या मोक्षसेऽचिरात् ।
अहं सर्वत्र समदक् देव्यो वा प्रिय एव वा ॥
नास्ति मे कल्पकस्येव भजतोऽनुभजाम्यहम् ।
मन्माया मोहितविषयो मामम्ब मनुजाकृतिम् ॥
सुखुःसाधनुरातं जानन्ति न तु तत्त्वतः ।
दिव्या मद्भोग्यरं ज्ञानमुत्पन्नं ते भवापहम् ॥
स्मरन्ती तिष्ठ भवने लिप्यसे न च कर्मिः ।

(अथात् ८०)

हे महाभागे ! तुम जो कुछ कहती हो सो सत्य है इसमें किञ्चित् भी विषया नहीं । देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये

मेरी ही प्रेरणासे उस समय तुम्हारे मुखसे पैसे बहन निकले थे । इसमें तुम्हारा कुछ भी दोष नहीं । (तुमने तो मेरा ही काम किया है ।) अब तुम जाओ और हृष्टमें सदा मेरा ध्यान करती रहो । तुम्हारा ज्ञेहशरण सब औरसे दूट जायगा और मेरी इस भक्तिके कारण तुम शीघ्र ही मुक्त हो जाओगी । मैं सर्वत्र समराइ हूँ । मेरे न तो कोई ह्रेष्य है और न मिथ । मुझे जो भजता है, मैं भी उसको भजता हूँ । परन्तु हे भासा ! जिनकी कुदि मेरी मायासे मोहित है वे मुझको तत्त्वसे न जानकर सुख-दुःखोंका भोक्ता साधारण मनुष्य मानते हैं । यह वहे सौभाग्यका विषय है कि तुम्हारे हृष्टमें मेरा यह भव-जाशक तत्त्वज्ञान हो गया है । अपने घरमें रहकर मेरा ध्यान करती रहो । तुम कभी क्योंसे लिस नहीं हो जोगी ।'

भगवान् के इन वचनोंसे कैकेयीके स्थितिका पता लगता है । भगवान्के कथनका सार यही है कि 'तुम महाभाग्यवती' हो, लोग चाहे तुम्हें अभागिनी मानते रहें । तुम निर्दोष हो, लोग चाहे तुम्हें दोषी समझें । तुम्हारे द्वारा तो यह कार्य मैंने ही करवाया था । जिन लोगोंकी कुदि माया-मोहित हैं, वही मुझको मामूली आदमी समझते हैं, तुम्हारे हृष्टमें तो मेरा तत्त्वज्ञान है, तुम धन्य हो !

भगवान् श्रीरामके इन वचनोंको सुनकर कैकेयी आनन्द और अशर्यर्पूर्ण हृष्टसे सैकड़ोंबार साष्टाङ्ग प्रणाम अंतर प्रदक्षिणा करके सानन्द भरतके साथ अयोध्या लौट गयी ।

उपर्युक्त स्पष्ट वर्णनसे यह भलीभाँसि सिद्ध हो जाता है कि कैकेयीने जान-दूषकर स्वार्थकुदिसे कोई अनर्थ नहीं किया था । उसने जो कुछ किया सो श्रीरामकी प्रेरणासे 'रामकाज' के लिये ! इस विवेचनसे यह प्रमाणित हो जाता है कि कैकेयी बहुत ही उच्छकोटिकी महिला थी । वह सरल, स्वार्थहीन, प्रेममय, ज्ञेहन्वासल्प-युक्त, धर्मपरायणा, कुदिमती, आदर्श पतिवता, निर्भय वीरांगना होनेके साथ ही भगवान् श्रीरामकी अनन्य भक्त थी । उसकी जो कुछ बदनामी हुई और हो रही है, सो सब श्रीरामकी अन्तर्गत प्रीतिके निवारणरूप ही है । जिस देवीने जगत्के आचार, प्रेमके समुद्र अनन्य रामभक्त भरतको जन्म दिया, वह देवी क्षदापि तिरस्कारके योग्य नहीं हो सकती, ऐसी प्रातःस्मरण्योग्या देवीके वरद्योंमें वारक्षार अनन्त प्रयाम है ।

—कैकेयी-नन्दन-पद-नन्दन

श्रीशत्रुघ्नजी



हामना श्रीशत्रुघ्नजी भगवान् श्रीरामचन्द्र, भरत, लक्ष्मण तीनोंसे छोटे थे । श्रीसुमित्रांजोंके उत्थवान् पुत्र थे । इनके सम्बन्धमें रामायणमें जो कुछ वर्णन आया है, उससे यही पता लगता है कि श्रीशत्रुघ्नजी बहुत योद्धा बोलनेवाले, अत्यन्त तेजस्वी, वीर, सेवाप्रायण, रामदासानुवास, तुपचाप काम बोलनेवाले, सच्चे सखुरुप थे । श्रीलक्ष्मण और श्रीशत्रुघ्न दोनों ही भाइयोंने अपना जीवन परम पवित्र सेवामें विताया परन्तु लक्ष्मणकी सेवासे भी शत्रुघ्नजी सेवाका महत्व एक प्रकारसे अधिक है । श्रीलक्ष्मण श्रीरामके सेवक हैं, परन्तु शत्रुघ्न तो श्रीराम-सेवक भरतजीके चरण-सेवक और साथी हैं । छानाकी भाँति उनके साथ रहते और तुपचाप आश्रामसार सेवा किया करते हैं । ये बड़े संकोची हैं, अपनी ओरसे कभी किसी कामके बीचमें नहीं बोलते । किसीपर क्रोध नहीं करते, अपनी ओरसे आगे होकर कुछ भी नहीं करते । सेवकोंके सेवकका यही तो धर्म है ।

श्रीशत्रुघ्नजीके अपनी ओरसे बोलनेके विशेष अवसर दो मिलते हैं । प्रथम, जब श्रीभरतजी निहालसे आकर माता कैफेयीसे मिलते हैं और कैफेयी पापाण-हृदया बनकर महाराज दशरथकी मृत्यु और श्रीराम-लक्ष्मणके बन जानेका विवरण सुनाती है और कहती है कि ‘बेटा ! यह सब मैंने तेरे ही लिये किया है—

तत ! बात में सकल सँवारी । भद्र मन्थरा सहाय बिचारी ॥

तब भरत शोकाकुल होकर विद्याप करते और आवेशमें आकर माताको भलाकुरा कहने लगते हैं । शत्रुघ्न भी माताकी कुटिलतापर अल्पन्त सुन्ध है, शरीरमें आग लग रही है, परन्तु उनका तो बोलनेका कुछ अधिकार है ही नहीं ।

सुनि शत्रुघ्न मातु कुटिलाई । जरहिं गत रिसि कलु न बसाई ॥

इसी समय कुबरी मन्थरा सजधजकर वहाँ आती है वह भरतको अपनी ही प्रकृतिके अनुसार स्वार्थी और राज्य-बोधी समझती है । वह समझती है कि भरतके लिये राज्यका सारा सामान मैंने ही बनाया है, वह मुझे इनाम देगा, इसीलिये बनठन कर आती है ।

ईसती-उष्णखती सजीधजी कुबरीको देखकर शत्रुघ्नजी को बड़ो नहीं समझाव सकते—

लक्षि रिसि भरेठ लक्षण लघु भाई । भरत अनल घृत आङ्गुति पाई ॥
हुमुकि लात तकि कूबर मारा । परि मुँह भरि महि करत पुकारा ॥
कूबर टूटेठ पूट कपाल । दक्षित दसन मुख रविर प्रचार ॥
पुनि रिपुहन लक्षि नक्षसिल खोटी । लगे धसीटन घरि घरि झोटी ॥

उपर्युक्त इनाम भिल गया । दयामय भरतजीने मन्थरा-को छुड़ा दिया ।

दूसरे, श्रीराम अयोध्याके सिंहासनपर आसीन हैं, तीनों भाई सेवा और धर्मयुक्त शासनमें सहायता करते हैं । एक समय तपस्वियोंने आकर श्रीरामचन्द्रसे लक्षणासुरके अव्याचारोंका वर्णन करते अपना दुखदा सुनाया और उसे मारनेके लिये प्रार्थना की । दुष्टपूर्वहारी शिवरक भगवान् श्रीरामने उनकी प्रार्थना स्वीकार की और दरबारमें पूछा कि ‘लक्षणासुरको वध करनेका श्रेय तुम खोगोंमें कौन लेना चाहते हैं ? वहाँकी समृद्धिका अधिकारी कौन होना चाहते हैं ? भरत या शत्रुघ्न ?’

श्रीभरतने कहा कि ‘मैं लक्षणासुरका वध कर सकता हूँ, इसपर शत्रुघ्नजीने प्रार्थना की कि ‘प्रभो ! श्रीभरतजी बहुत क्षम कर चुके हैं । आपके बनवासके समय इन्होंने अयोध्याका पालन किया, अनेक प्रकार दुःख सह, नन्दी-ग्राममें कुशकी शब्दायापर सोये, फल-मूलका आहार किया, जटा रक्षी, वस्त्रका पहने, सब कुछ किया । अब मेरी प्रार्थना है कि मेरे रहते इन्हें युद्धके लिये न भेजकर मुझे ही आशा दीजिये ।’

शत्रुघ्नजीके इन वचनोंको सुनकर श्रीरामने उनका प्रस्ताव स्वीकार करते हुए कहा ‘भाई, तुम्हीं जाकर दैत्य-वध करो, मैं तुम्हें मधुदैत्यके सुन्दर नगरका राजा बनाता हूँ ।’ श्रीराम जानते थे कि शत्रुघ्न दुष्ट राज्यका वध करना चाहते हैं, उन्हें राज्यका लोभ नहीं है । इसलिये एक्सेसे ही कह दिया कि ‘श्रीविश्वाश आदि अवधि मन्त्र और विधिपूर्वक तुम्हारा अभियेक करेंगे । मैं जो कुछ कहूँ सो तुम्हें स्वीकार करना चाहिये । क्योंकि बालकोंको गुह-जलोंकी आशाका पालन करना ही उचित है ।’

इसपर वीर्य-सम्पद श्रीशत्रुघ्नजी बड़े ही संकोचमें पदकर धीरेसे कहने लगे । ‘महाराज ! बड़े भाइयोंके रहते राज्य-गरीपर बैठना मैं अधर्म समझता हूँ, जब भरतजी महाराज लक्षणासुरके मारनेके लिये कह रहे थे तब मुझे बीचमें नहीं बोलना चाहिये था । मेरा बीचमें बोलना ही मेरे लिये

इस दुर्गतिका कारण हुआ। अब आपकी आशाका उस्लंघन करना भी मेरे लिये कठिन है। क्योंकि आपसे मैं यह धर्म कहूँ बार सुन सका हूँ।'

इसके बाद शत्रुघ्नी लवयासुरपर चढ़ाई करते हैं, रास्ते में श्रीवास्मीकिंजीके आधम में ठहरते हैं, उसी रातको सीताके दोनों कुमारोंका जन्म होता है, जिससे शत्रुघ्नको वहा हर्ष होता है। फिर जाकर लवया सुरका वध करके वहाँ

बाहर वर्ष रहकर श्रीराम-दर्शनार्थ लौटते हैं। आते समय पुनः श्रीवास्मीकिंजे आधममें ठहरते हैं और लवकुण्ठके द्वारा मुनिरचित रामायणका गान सुनकर आनन्दमें लोटपोट हो जाते हैं, अपोद्ध्या आकर सबसे मिलते हैं, पुनः श्रीराम-की आशासे मधुपुरी लौटकर धर्मपूर्वक शासन करते हैं।।

इनके जीवनसे भी मर्यादाकी बड़ी शिक्षा मिलती है।
—रिपुहन-दासानुदास

श्रीरामप्रेमी दशरथ महाराज



नके वहाँ भक्तिप्रेमवश साक्षात् सचिदानन्द-
चन प्रभु पुत्ररूपसे अवतीर्ण हुए। उन परम-
भान्धवान् महाराज श्रीदशरथकी भगिनीका
वर्णन कौन कर सकता है? महाराज दशरथजी
मनुके अवतार थे, जो भगवान्को पुत्ररूपसे
प्राप्तकर अपरिमित आनन्दका अनुभव
करनेके लिये ही धराधाममें पधारे थे और जिन्होंने अपने
श्रीवनका परिस्थान और मोहतकका संन्यास करके श्रीराम-प्रेम-
का आदर्श स्थापित कर दिया।

श्रीदशरथजी परम तेजस्वी भगुमहाराजकी भाँति ही
प्रजाकी रक्षा करनेवाले थे। वे देवके ज्ञाता, विशाल सेनाके
शासी, दूरदर्शी, अत्यन्त प्रतापी, नगर और देशवासियोंके
प्रिय, महान् यज्ञ करनेवाले, धर्मप्रेमी, स्वाधीन, महर्षियोंके
सदृश सद्गुणोंवाले, राजर्षि, ब्रैह्मोक्त्य-प्रसिद्ध पराक्रमी,
शत्रुघ्नशक, उत्तम मित्रोंवाले, जितेन्द्रियज्ञ, अतिरथी, धन-
धान्यके सज्जयमें कुवेर और इन्द्रके समान, सत्यप्रतिज्ञ एवं
धर्म, अर्थ तथा कामका शास्त्रानुसार पालन करनेवाले थे। (वा०
रा० १। ६। १ से ५ तक)

इनके मन्त्रिमरणकलमें महामुनि बशिष्ठ, वामदेव, सुयज्ञ,
आवालि, काश्यप, गौतम, मार्कण्डेय, कात्यायन, ईषि,

जगन्त, विजय, सुरांग, राष्ट्रवर्धन, अकोप और धर्मपाल
आदि विद्याविनयसम्पन्न, अनीतिमें लजानेवाले, कार्यकुशल,
जितेन्द्रिय, श्रीसम्बद्ध, पवित्र-हृत्य, शास्त्रज्ञ, शास्त्रज्ञ, प्रतापी,
पराक्रमी, राजनीतिविशारद, साक्षात्, राजाशाक्ष अनुसरण
करनेवाले, तेजस्वी, दमावन्, अतिर्तमान्, हँसमुख, काम-
कोध और लोभसे बचे हुएपूर्व सत्यवादी पुरुषप्रबर विद्यमान
थे। (वा० रा० १। ६। ७)

आदर्श राजा और मन्त्रिमरणकलके प्रभावसे प्रजा सब
प्रकारसे धर्मरत, मुख्ली और सम्पन्न थी। महाराज दशरथकी
सहायता देवतालोग भी चाहते थे। महाराज दशरथने
अनेक यज्ञ किये थे। अन्तमें पितृ-मातृ-भक्त श्रवणकुमारके
वधका प्रायश्चित्त करनेके लिये अभ्येष तदनन्तर यजोतिहोम,
आयुषोम, अतिरात्र, अभिजित, विश्वजित और आसोधान आदि
यज्ञ किये। इन यज्ञोंमें दशरथने अन्यान्य वस्तुओंके अतिरिक्त
दस ज्ञात दुर्घटती गायें, दस अरोड़ सोनेकी मुहरें और
चालोस करोड़ चाँदीके त्वये दान दिये थे।

इसके बाद पुत्रप्राप्तिके लिये ऋष्यशृङ्खलको ऋत्विज बनाकर
राजाने पुत्रे हि यज्ञ किया, जिसमें समस्त देवतागण अपना अपना
भाग लेनेके लिये स्वयं पधारे थे। देवता और मुनिश्चियोंकी
प्रार्थनापर भगवान् श्रीविष्णुने दशरथके यहाँ पुत्ररूपसे अवतार

* यद्यपि रामवनवासका घटनाके कारण कहाँ कहाँ दशरथजीको कामुक बतलाया गया है। परन्तु ऐसी बात नहीं थी, यदि
वे कामपरायण होकर केवलोंके वशमें होते तो यक्षपुरुषकी खीरका आधाभाग कौमल्याको और केवल अष्टमांश ही केवलोंको नहीं
देते। यद्यपि उन्होंने बहुविवाह किये थे, जो अवश्य ही आदर्श नहीं है परन्तु यह उस समयकी एक प्रथा-सी थी। भगवान्
श्रीरामने इस प्रथाको तोड़कर आदर्श सुधार किया।

† जो दसहजार धनुर्धारियोंके साथ अकेला लड़ सकता है, उसे महारथी कहते हैं और जो ऐसे दसहजार महारथियोंके
साथ अकेला लोहा लेता है, वह अतिरथी कहलाता है।

केना स्वीकार किया और यज्ञगुरुने स्वर्ण प्रकट होकर पायसाजसे भरा हुआ सुवर्णावान् देते हुए दशरथसे कहा कि 'हे राजन् ! यह सीर अत्यन्त अेष्ट आदोग्यवर्षक और प्रजाकी डल्पसि करने-वाली है, इसको आपनी कौसल्या आदि तीनों राजियोंको लिया दो ।' राजाने प्रसन्न होकर मर्यादाके अनुसार कौसल्याको बड़ी समकार उसे सीरका आदा भाग, मैमली सुमित्राको चौबाई भाग और कैकेयीको आठवाँ भाग दिया । सुमित्राजी बड़ी थीं, इससे उनको सम्मानार्थ अधिक देना उचित था, इसीलिये वहा हुआ अष्टमांश राजाने किर सुमित्राजीको दे दिया । जिससे कौसल्याके श्रीराम, सुमित्राके (दो भागोंसे) लक्षण और शत्रुघ्न पर्वं कैकेयीके भरत हुए । इसप्रकार भगवान्-ने चार रूपोंसे अवतार लिया ।

राजाको चारों ही पुत्र परमविषय थे, परन्तु इन सबमें श्रीरामपर राजाका विशेष प्रेम था । होना ही चाहिये, क्योंकि इन्हींके लिये तो जन्म-धारणकर सहस्रों वर्ष प्रतीक्षा की गयी थी ! वे रामका अपनी आँखोंसे छणभके लिये भी आशङ्क होना नहीं सह सकते थे । जब विश्वामित्रीयज्ञरक्षार्थ श्रीराम-लक्ष्मणको माँगने आये, उस समय श्रीरामकी उम्र फलद्वय वर्षसे अधिक थी, परन्तु दशरथने उनको अपने पाससे हटाकर विश्वामित्रके साथ भेजनेमें बड़ी आनंदानी की । आखिर वशिष्ठके बहुत समझानेपर वे तैयार हुए । श्रीरामपर अत्यन्त प्रेम होनेका परिचय तो इससे मिलता है कि जबतक श्रीराम सामने रहे, तब तक प्राणोंको रक्षा और आपके बचन सत्य करनेके लिये, रामके विद्युतसे ही राम-प्रेमानन्दमें अपने प्राणोंकी आहुति दे दाती ।

श्रीरामके प्रेमके कारण ही दशरथ महाराजने राजा केकथके साथ शर्त हो चुकनेपर भी भरतके बदले श्रीरामको युवराज-पदपर अभिवित करना चाहा था । अवश्य ही ज्येष्ठ-पुत्रके अभिषेककी रुचुरुलकी कुलपरम्परा एवं भरतके स्वाग, आशावाहकता, धर्मपरायणता, श्रील और रामप्रेम आदि । सद्गुरु भी राजाके इस मनोरथमें कारण और सहायक हुए थे । परन्तु परमात्माने कैकेयीकी मति फेरकर एक ही साथ कही काम करा दिये । जगत्में आदर्श मर्यादा स्थापित हो गयी, जिसके लिये श्रीभगवान्-ने अवतार लिया था । इनमें निष्पत्तिलिखित १२ आदर्श सुख्य हैं—

- (१) दशरथकी सत्यरक्षा और श्रीरामप्रेम ।
- (२) श्रीरामके बनामगद्वारा राष्ट्र-ज्वादित्प कारोंके द्वारा हुए-दखन ।

- (३) श्रीभरतका स्वाग और आदर्श आत्-प्रेम ।
- (४) श्रीकृष्णमहाजीका अवादर्श, सेवाभाव, रामपरायणता और स्वाग ।
- (५) श्रीसोलाजीका आदर्श पवित्र पातिव्रत-धर्म ।
- (६) श्रीकौसल्याजीका उत्तरप्रेम, पुत्रधृप्रेम, पातिव्रत, धर्म-प्रेम और राजनीति-कुशलता ।
- (७) श्रीसुमित्राजीका श्रीरामप्रेम, स्वाग और राजनीति-कुशलता ।
- (८) कैकेयीका बदनाम और तिरकुल होकर भी प्रिय 'राम-काज' करना ।
- (९) श्रीहनूभान्जीकी निष्पाम-प्रेमा भक्ति ।
- (१०) श्रोविभीषणजीकी शरणागति और अभय प्राप्ति ।
- (११) सुग्रीवके साथ श्रीरामकी आदर्श मित्रता ।
- (१२) रावणादि अत्याचारियोंका अन्तमें विनाश ।

यदि भगवान् श्रीरामको बनवास न होता, तो इन मर्यादाओंकी स्थापनाका अवसर ही शायद न आता । ये सभी मर्यादाएँ आदर्श और अनुकरणीय हैं ।

जो कुछ भी हो, महाराज दशरथने तो श्रीरामका विशेष होते ही अपनी जीवन-कलिया समाप्त कर प्रेमकी टेक रख ली ।
जिअन-मरन-फल दसरथ पावा । अंड अनेक अमल जस छावा ॥
जियत राम-बिषु-बदन निहारा । राम-निरह मरन सँवारी ॥

श्रीवशरथजीकी मृत्यु सुभर गयी, रामके विरहमें प्राण देकर उन्होंने आदर्श स्थापित कर दिया । दशरथके समान भाववान् कौन होगा, जिसने श्रीराम-वर्णन-लालसामें अनन्य भावसे राम-परायण हो, रामके लिये, राम-राम पुकारते हुए प्राणोंका स्वाग लिया ?

श्रीरामायणमें लक्षा-विजयके बाद पुनः दशरथके दर्शन होते हैं । श्रीमहादेवजी भगवान् श्रीरामको विमानपर बैठे हुए दशरथजीके दर्शन करते हैं । फिर तो दशरथ सामने आकर श्रीरामको गोदमें बैठा लेते हैं और आलिंगन करते हुए उनसे प्रेमालाप करते हैं । यहाँ लक्षणोंको उपरेका करते हुए महाराज दशरथ स्पष्ट कहते हैं कि 'हे सुमित्रा-सुखवर्धन लक्षण ! श्रीरामकी सेवामें लगे रहना, तेरा इससे बड़ा कल्पणा होगा । इन्द्र-

सहित सीनों लोक, सिद्धपुरुष और सभी महान् अधिक-मुक्ति
पुरुषोत्तम श्रीरामका अभियन्दन कर उनकी पूजा करते हैं—
वेदोंमें जिन अन्यक अद्वर ब्रह्मको देवताओंका हृष्ण और
गुप्त तत्त्व कहा है ये परम तपस्वी राम वही हैं।' (वा० रा०
६। ११९। २७-२०)

यहाँपर शङ्का होती है कि जब शुद्ध सचिदानन्दघन
श्रीराममें मन लगाकर 'राम-राम' कीर्तन करते हुए दशरथ-
ने प्राणोंका त्याग किया था, तब फिर उनकी मुक्ति कैसे
नहीं हुई? यदि श्रीरामनामके प्रतापसे मुक्ति नहीं होती
तो फिर यह कैसे कहा जाता है कि अन्तकालमें श्रीरामनाम
लेनेसे समस्त अन्धन कट जाते हैं और नाम लेनेवाला
परमात्माको प्राप्त होता है? और यदि राममें मन लगाकर
मरनेपर भी मुक्ति नहीं होती तो फिर गीताके उस भगवद्-
वचनकी व्यर्थता होती है जिसमें भगवान् ने यह कहा है कि—

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ।

यः प्रयतिं स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥

(८।५)

'ओ पुरुष अन्तकालमें मुक्त्वा भरण करता हुआ शरीर
छोड़कर जाता है, वह निःसन्देह ही मेरे स्वरूपको प्राप्त
होता है।'

इन प्रश्नोंका उत्तर तो गीताके इससे अगले छोकरों ही
मिल जाता है। जिस प्रकारकी भावना करता हुआ मनुष्य
ग्राम छोड़ता है, उसीप्रकारकी गतिको प्राप्त होता है।
ज्ञानमार्गी साधक अद्वैत अचर परदाहमें विश्वकी धूतियों-
को विलीन कर देह त्याग करता है तो उसकी अवश्य ही
'सायुज्य' मुक्ति होती है परन्तु ऐसा हुए बिना केवल श्री-
रामनामके जपसे 'सायुज्य' मुक्ति नहीं होती। इसमें कोई
सन्देह नहीं कि श्रीराममें मन लगाकर 'राम-राम' कीर्तन
करते हुए प्राण-त्याग करनेवाला मुक्त हो जाता है, सच
सो यह है कि बिना मन लगाये भी श्रीरामनामका अन्त-
कालमें उत्तारण हो जानेसे ही जीव मुक्तिका अधिकारी हो
जाता है, इसीसे सन्तोंने अन्तमें श्रीरामनामको दुर्लभ
बताया है—

जनम जनम मुनि जनन कराहीं। अन्त राम कहि आकत नाहीं ॥

परन्तु मुक्ति होती वैसी ही है, जैसी वह चाहता है।
'तो क्या मुक्ति भी कहूँ प्रकारकी है? यदि कहूँ प्रकारकी
मुक्ति है तो फिर मुक्तिका महर्व ही क्या रह गया?' इस

प्रश्नका उत्तर यह है कि 'तत्त्वबोधरूप' मुक्ति तो एक ही
है। परन्तु केवल तत्त्वबोध होकर 'सायुज्य' मुक्ति भी हो
सकती है, जिसमें जीवकी भिन्न सत्ता वशार्थ स्व-स्वरूप
परमात्म-सत्तामें अभिन्नरूपसे विलीन हो जाती है। और
तत्त्वका पूरा बोध होनेके साथ ही साथ सगुण साक्षात्,
सौन्दर्य और भाषुर्वक्षी पराकाशा अनूप-रूप भगवत्-
स्वरूपमें परम प्रेम होनेके कारण वह मुक्तपुरुष (सायुज्य
मुक्तिरूपी धनका स्वामी होनेपर भी) भगवान्की सामीक्षा,
साक्षोक्त्य, सार्विं और सारूप्य-मुक्तिका रसमय सुख भोगता
है। केवल तत्त्वबोधकारा प्राणोंका उद्घमण न होकर
परमात्मामें मिल जाना, यह अभेद मुक्ति, और अभेद ज्ञान-
पूर्वक साक्षात् ईश्वरकी सेवार्थ व्यवहारमें भेद रहना, यह
ज्ञायिं व भेदमुक्ति, ये दोनों बास्तवमें एक ही मुक्तिके दो
स्वरूप हैं। परन्तु शुद्ध प्रेमीत्वक इन दोनों प्रकारकी
मुक्तियोंसे भी अलग रहकर केवल भगवत्सेवामें जगा रहता
है और जैसे भगवान् नित्य, सुख, अज, अविनाशी होते हुए
भी जीवासे अवतार-शरीर भारण करके विविध कर्म करते
हैं, ऐसे ही वह भक्त भी उन्हींका अनुसरण करता हुआ
उन्हींकी माँति भगवान्की पवित्र लीलामें जीवासे ही
जगा रहता है। वह मुक्ति नहीं चाहता। अतएव जब उसे
भगवदित्यासे, भगवदर्थ, भगवदाज्ञानुसार निर्देषभावसे एक
शरीरसे दूसरे शरीरमें जाना पड़ता है तब वह भगवत्स्वरूप
और भगवान्-गुण-कीर्तन करता हुआ ही जाता है। दूसरा
काम तो उसको कोई रहता ही नहीं, क्योंकि उसकी स्थिति
हृद अनन्य विशुद्ध प्रेमभावसे प्रेममय परमात्मामें ही रहती
है। इतना होनेपर भी उपर्युक्त कारणासे ऐसे भक्तकी अभेद
मुक्ति नहीं होती। इसीलिये भगवान् शिक्षी जगत्जननी
उमासे दशरथके सम्बन्धमें कहते हैं—

ता तें उमा मोच्छ नहीं पादा। दसरथ भेद-भगति मन लावा ॥

सगुन उपासक मोच्छ न लेहीं। तिन्हकहूँ रामु भगति निज देहीं ॥

अतएव यह नहीं समझना चाहिये कि अन्तमें श्री-
रामनामका जप-कीर्तन करनेसे और श्रीराममें मन लगानेसे
मुक्ति नहीं होती और इसी कारण दशरथजीकी भी मुक्ति
नहीं हुई। समझना यह चाहिये कि दशरथजीको उस
मुक्तिकी कोई परवा नहीं थी। वे तो रामरसके रसिक थे।
इसीलिये उस रसके सामने उन्होंने भोक्षका भी जान-बूझ-
कर ही संन्यास कर दिया। ऐसे मोक्ष-संन्यासी प्रेमी भक्तों-

की चरण-सेवाके लिये मुक्ति तो पीछे पीछे घूमा करती है ।
भगवान् तो अपने श्रीमुखसे वहाँतक कह डाला है—

न पारमेष्ठं न महेन्द्रधिष्ठयं
न सर्वमौमं न रसाधिपत्यम् ।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा
मध्यर्पितात्मेष्ठति भद्रिनान्यत् ॥
न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्न शङ्करः ।
न च सङ्कृष्टेणान श्रीनैवात्मा च यथा भवान् ॥
निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समर्द्दशनम् ।
अनुब्रज्याम्यहं नित्यं पूर्येत्यद्विरेणुभिः ॥
(श्रीमद्भागवत ११।१४।१५-१६)

जिस मेरे भक्तने अपना आल्मा मुखको अर्पण कर दिया है, वह मुखको छोड़कर ब्रह्माका पद, इन्द्रका पद, अक्षयतरी राजाका पद, पातालका राज्य, योगकी सिद्धियाँ और मोक्ष भी नहीं चाहता । हे उद्धव ! मुझे आपस्वरूप शिवजी, सङ्कृष्ट्या, प्रिया लक्ष्मीजी और अपना स्वरूप भी उतने प्रिय नहीं हैं, जितने तुम-जैसे अनन्य भक्त ग्रिय हैं । ऐसे निरपेक्ष, मननशील, शान्त, निर्वैर और समर्दशी भक्तोंकी चरण-रजसे अपनेको पवित्र करनेके लिये मैं उनके पीछे पीछे लिरता हूँ । कैसी महिमा है ?

यद्यपि भक्त अपने भगवान्को पीछे पीछे फिरानेके लिये मुक्तिका तिरस्कार कर उसे नहीं भजते, उनका तो भगवान्के प्रति ऐसा अहैतुक प्रेम हो जाता है कि वे भगवान्के सिवा दूसरी ओर ताकना ही नहीं जानते । बस, यह अहैतुक प्रेम ही परम पुरुषार्थ है, यह जानकर मैं मुक्ति का निरादर कर भक्ति करते हैं ।

अस विचारि हरिभगतसयाने । मुक्ति निरादरि भगति लुभाने ॥

क्योंकि भगवान्के गुण ही ऐसे हैं—जिनको देखकर आल्माराम मुनियोंको भी उनकी अहैतुकी भक्ति करनी पड़ती है ।

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्मे ।
कुर्वन्त्यऽहैतुकीं भक्ति इत्यंभूत गुणो हरिः ॥

दशरथकुमार-पद-रज

विदेह-भक्त राजा जनक

(लेखक—श्रीकृपानारायणजी चौधरी)

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्मे ।

कुर्वन्त्यऽहैतुकीं भक्ति इत्यंभूत गुणो हरिः ॥

(श्रीमद्भागवत)

कृष्णके नक्षी माया-ग्रन्थियाँ दूट गयी हैं, ऐसे आल्मा-राम, आसक्षम, जीवन्मुक्त मुनिगण भी जि भगवान् श्रीहरिकी अहैतुकी भक्ति करते हैं, क्योंकि हरिमें ऐसे ही गुण हैं ।

विदेहराज तिरहुति-नरेश जनकजीको कौन नहीं जानता ? आप सर्वगुणसम्पन्न और सर्व सज्जावाधार, परम तत्त्वज्ञ, मर्मज्ञ, आसाधारण ज्ञानी, धर्म-धुरन्वर और नीति-कुराक्ष महान् परिदित थे । आपकी विमल कीर्ति विविध भाँतिसे गायी गयी है, परन्तु आपके प्रकृत महात्मका पता बहुत थोड़े ही लोगोंको लग सका है । श्रीगुरुसाईंजी महाराज आपको प्रणाम करते हुए करते हैं—

प्रनवां परिजन सहित विदेह । जाहि राम-पद गूढ़ सनेहू ॥
जोग मेंग महैं राखेठ गोई । राम-बिलाकंत प्रगटेड सोई ॥

पूर्णज्ञज्ञ सचिवानन्दघन, श्रीरघुनाथस्वामी महाराजके साथ श्रीजनकरायजीका जो अस्तन्त 'गूढ़ सनेह' और नित्य 'बोग' (प्रेमका अभेद सम्बन्ध) है, सो सर्वथा अनिर्बचनीय है । कहना तो दूर रहा, कोई उसे सम्बद्ध प्रकारसे जान भी नहीं सकता । उस प्रेमतस्वको तो बस आप ही दोनों जानते हैं । दूसरे बेचारे जानें भी कैसे ? आपने तो उस अकथनीय अनुपम अनन्त प्रेम-बनको पूरे लोभीकी भाँति इन्द्रिय-व्यवसायरूप प्रशংসनमें छिपा रखा है और एक धन-प्राण विषयी मनुष्यके सदृश उसी परमधनके चिन्तनमें विरन्तर निमग्न रहते हैं । लोग आल्मको यक महान् येष्वर्थपरायण राजा, नीतिकुशल प्रजाराजक नरपति समझते हैं, कुछ लोग शानियोंका आचार्य भी मानते हैं, परन्तु आपके अन्तस्तल-के निर्गूढ़ प्रेमका परिचय किसीको नहीं है ।

प्यारी-हुलारी श्रीसीताजीके स्वयम्बरकी लैयारी हुई है, देश विदेशके राजा-महाराजाओंको निमन्त्रण दिया गया है । पराक्रमकी परीक्षा देकर सीताको प्राप करनेकी खालसासे बदेबदे-रूप-गुण और बलवीर्य-सम्पन्न राजा-महाराजा मिथिला-में पचार रहे हैं ।

हसी अवसरमें गाधि-तनय मुनि विश्वामित्रजी आपने तथा अन्यान्य ऋषियोंके यज्ञकी रक्षाके लिये अवधारण महाराज दशरथजीके प्राणाधिक ग्रिय पुष्ट्रहृष्ट श्रीराम-खदग्याको माँगकर अथवामें लाये थे। यह कथा प्रसिद्ध है, यहाँ विशेष लिखनेकी आवश्यकता नहीं। श्रीविश्वामित्र मुनि भी महाराजा जनकका निमन्त्रण पाते हैं और दोनों राज-कुमारोंको साथ देखकर विशिष्टाकी ओर प्रस्थान करते हैं। इस्तेमें शापभ्रस्ता मुनि-पर्वी अहल्याका उद्धार करते हुए परम-कृपालु श्रीकौसलकिशोरजी कनिष्ठ-आतासहित गंगा-स्नान कर बनोपवनके प्राकृतिक सौन्दर्यको देखते हुए जनक-पुरीमें पहुँचते हैं और मुनिसहित नगरसे बाहर मनोरम बगीचेमें उतरते हैं।

मिथिलेश महाराज यह शुभ संवाद पाकर श्रेष्ठ-समाज सहित विश्वामित्रजीके दर्शन और स्वागतार्थ आते हैं और मुनिको सांछांग प्रणाम कर आशा पाकर बैठ जाते हैं, इतनेमें ही फुलबारी देखकर—

स्याम-नौर मृदु बयस किसोरा। लोचन-सुखद विश्व चित-चोरा॥

—श्याम-नौर वदन, किशोर क्यवाली, नेत्रोंको सुख देनेवाली अखिल विश्वके वित्तको चुरानेवाली ‘शुगल जोड़ी’ यहाँ आ पहुँची, ये थे तो बालक, परन्तु इनके आते ही ऐसा प्रभाव पड़ा कि सब ज्ञाग उठ लड़े हुए, ‘उठे सकल जब रुपाति आये।’ विश्वामित्र सबको बैठाते हैं। दोनों प्रमुशीज संकोचके साथ गुरुके चरणोंमें बैठ जाते हैं। यहाँ जनकरायजीको दबी ही विचित्र दशा होती है। उनकी प्रेमरूपी सूर्य-कान्तमणि, रामरूपी प्रस्थक्ष प्रचयद सूर्यकी रिमयोंको प्राप्तकर द्रवित होकर वह उठती है। गुप्त प्रेम-धन श्रीरामकी छुवि देखते ही सहसा प्रकट हो गया। युगोंके सञ्ज्ञित-घनका खजाना यक्षयक सुख पड़ा।

मूरति मन्दुर मनोहर देली। भयेठ विदेह विदेह विसेली॥

प्रेममग्न मन जानि नृष, करि विवेक धरि धीर।

बोलेठ मुनिपद नाह सिर, गदगद गिरा गैंधीर॥

कहहु नाथ भुन्दर दोउ बालक। मुनि-कुल-तिलक कि नृप-कुल-पालक।
ब्रह्म जो निगम नेति कीह गावा। उमथ बैव धरि की सोइ आवा॥
सहज विरागरूप मन मोरा। थकित होत जिमि चंद चकोरा।
ताते प्रमु पूछौं सतिभाऊ। कहहु नाथ जनि करहु दुराऊ॥

जनकजी कहते हैं ‘मुनिनाथ ! क्षिणाह्ये नहीं, सच

बतलाइये, वे दोनों कौन हैं ? मैं जिस ब्रह्ममें दीन रहता हूँ क्या वह बेदवान्वित ब्रह्म ही वे दो रूपोंमें प्रकट हो रहे हैं। मेरा स्वाभाविक ही बैरामी मन आज चन्द्रमाको देखकर चकोरकी भाँति थका जाता है। जनकजीकी इस वशापर विचार कीजिये।’

जनकका मन बलाकारसे रामरूपके गङ्गीर मधुर-सुधा-समुद्रमें निमग्न हो गया।

इन्हिं विलोकत अति अनुराग। बरबस ब्रह्मसुखहि मन त्याग॥

जो मन-बुद्धि अपनेसे आगोचर ब्रह्मका सुख भोगनेमें लगे हुए थे, उन्होंने आज उस आगोचरको प्रत्यक्ष नवनगोचर देखकर तुरन्त त्याग दिया। ‘गोद’का छोड़कर पेटवालेकी उभीद कौन करे ? ऐसा कौन समझदार होगा जो ‘नयन-गोचरके मिलजाने पर ‘आगोचर’के पीछे लगा रहे ? धीर-बुद्धि महाराजा जनकके लिये यही उचित था। अमेद भर्कि-निष्ठ विदेहराजकी पराभक्ति संशयरहित है।

इसीप्रकार वे बारातकी विदाईके समय जब अपने जामातासे भिलते हैं, तब भी उनका प्रेमसागर मर्यादा तोड़ बैठता है, उस समयके उनके बचनोंमें असीम प्रेमकी मनोहर झलक है—जरा उस समयकी भाँति भी देखिये। बारात विदा हो गयी। जनकजी पहुँचानेके लिये साथ-साथ जा रहे हैं। दशरथ लौटाना चाहते हैं, परन्तु प्रेमवश राजा लौटे नहीं। दशरथजीने फिर आश्र ह किया तो आप रथसे उत्तर पहुँ और नेत्रोंसे प्रेमशुद्धोंकी धारा बहाते हुए उनसे विनय करने लगे। इसके बाद मुनियोंसे सुति-प्रार्थनाएँ कीं, तदनन्सर रामके—अपने प्यारे जामाता रामके—समीप आये और कहने लगे—

राम करों केहि भाँति प्रसंसा। मुनि-महेस-मन-मानस-हंसा॥

करहि जोग जोगी जेहि लागी। कोह-मोह-ममता-मद त्यागी॥

व्यापक ब्रह्म अल्प अबिनासी। चिदानन्द मिरगुन गुनरासी॥

मन समेत जेहि जान न बानी। तरकि न सकहि सकल अनुमानी॥

महिमा निगम नेति कहि कहइ। जो तिहुँ काल एकरस रहइ॥

नयनविषय मो कहै भयेठ, सो समस्त-सुख-मूल।

सबइ लाम जग जीव कहैं, भए ईस अनुकूल॥

सबहि भाँति मोहि दीन्ह बड़ाई। निज जन जानि लीन्ह अपनाई॥

होहि सहस दस सारद सेखा। करहि कलपकोटिक भरि लेखा॥

मेर भाग्य रात्र गुनगाथा । कहि न सिराहि सुनिहु रघुनाथा ॥
मैं कलु कहौं एक बल मेरे । तुम्ह रीझहु सनेह सुठि थेरे ॥
बार बार मांगौं कर जेरे । मन परिहै चरन जनि भेरे ॥
धन्य जनकजी ! धन्य आपकी गुस्त्र प्रेमाभक्ति !
यही दशा चित्रकृष्णमें होती है ।
इससे जनकजीकी अवस्थाका पता लगता है । जनक-

जी परम ज्ञानी थे, परम्परा परमज्ञानकी अवधि तो यही है कि ज्ञानमें स्थित रहते हुए ही परम ज्ञानस्वरूप भगवान्-की मूर्तिमान् माधुरीको देखकर उसपर रीझ जाय । ज्ञानका प्रेमके पवित्र द्वचरूपमें परिशत होकर अपनी अजन्म सुधाधारासे जगत्को प्लावित कर देना ही उसकी महानता है ! जनकजीने यही प्रत्यक्ष दिखाया दिया ।

श्रीविशिष्टजीकी महत्ता

(लेखक—पण्डितवर श्रीनत्यूरामजी शर्मा, गुजरात)



दिक्षर्ता भगवान् ब्रह्मके उच्च और प्रसिद्ध
हृष्ट्वाकुंवंशके गुरु श्रीविशिष्टजी की महाराज
अपकारी मनुष्यके घोर अपकारको प्रसन्नता-
पूर्वक सहनेवाले, अपनेको शत्रु समझनेवाले
मनुष्यके भी शुभगुणोंकी प्रशंसा करनेवाले,
व्यवहार-कुशल, दैवीसम्पत्तिसे युक्त, अन्त-
रामासे अभिष्ठ ब्रह्मस्वरूपको भलीभाँसि जाननेवाले और
साधन-संपत्ति अधिकारी पुरुषोंको ब्रह्मका स्वरूप और
उसकी प्राप्तिके साधन बतलानेवाले थे ।

धर्म और सौ पुत्रोंको राजसद्वारा विना ही कारण
गुण-ग्राहकता मरवा छालनेवाले विश्वामित्रपर न तो आपके
मनमें तनिक-सा क्षोभ उपजा और न सर्वथा
समर्थ होनेपर भी शापादिवारा आपने उनका कुछ भी अनिष्ट
किया । ‘पुत्रोंकी मृत्यु उनके प्रारक्ष-कर्मोंकी समाप्ति या
कर्म-फल-प्रदाता परमेश्वरकी हृष्ट्वासे हुई है, इसमें विश्वामित्र
और राजस तो निमित्तमात्र हैं’ यों समझकर उन्होंने
मनको शान्त रखा । इतनी भयानक कुराईको कुछ भी-
प्रतिकार किये विना-आपने प्रसन्नतापूर्वक सह लिया ।
इससे उनको आदर्श सहित्युता और समाधानकी अनुपम
शक्तिका पता लगता है ।

जब विश्वामित्रने उप्र तपत्याकेद्वारा दिव्याङ्गोंको प्राप्त
कर उनसे आश्रम और शिष्योंसहित अशिष्टके विनाशके
लिये तीव्र प्रयत्न किया, तब आप शाप या अन्य फिसी भी
दिव्यादिव्य उपायसे उनका प्रतिकार करनेकी चेष्टा न कर
शान्त-विस्तसे ब्रह्मदण्ड धारय किये आपने आश्रमके सामने
खड़े हो गये और विश्वामित्र-प्रेरित समस्त दिव्यादिव्य
अঙ्गोंको आपने ब्रह्मदण्डमें लीन कर डाला । विश्वामित्रके

कुल अच्छ विशिष्टका कुछ अनिष्ट न कर ब्रह्मदण्डमें प्रवेश कर
गये । इस महान् कार्यमें उन्होंने स्त्रिय और राजर्षिके बलसे
ब्राह्मण या ब्रह्मपिंके बलकी अति श्रेष्ठता सिद्ध कर विश्वामित्रको
यह बतला दिया कि उनका जात्रबल ब्रह्मबलसे सदा ही
निम्न श्रेष्ठीका है । ऐसे विकट प्रसङ्गमें भी श्रीविशिष्टजीने
अपने हृदयको धैर्य, सतर्कता और ज्ञानसे च्युत नहीं होने
दिया । इससे उनके हृदयकी अत्यन्त उत्तम अवस्थाका पता
लगता है ।

व्यवहारमें विश्वामित्र श्रीविशिष्टजीके शत्रु हैं, तो भी
श्रीविशिष्टजीने अपनी विया साध्वी पक्षी अर्लन्डरीके सामने
बातों-ही-बातोंमें विश्वामित्रके तपकी बड़ी प्रशंसा की ।
इससे उनके हृदयकी निर्भलता, निर्वरता, शुभ गुणग्राहकता
सिद्ध होती है । ऐसी शुभ गुणग्राहकता साधारण मनुष्योंमें
कदापि सम्भव नहीं । यह तो केवल आसाधारण मतिमान्
पुरुषमें ही सम्भव है । अपने शुभगुणोंको गुप्त रखना और
दूसरोंके शुभ गुणोंको प्रकट करना बड़ी ही टेक्की खीर है ।
इस विषयमें एक प्राकृत कविने ठीक कहा है—

जो गुण गोवह अप्पना, पर्यड करइ परसु ।

तासु कलिजुगि दुलह हु, बलि किजछु सुगणसु ॥

‘जो अपने सद्गुणोंको क्षिपाकर दूसरेके सद्गुणोंको
प्रकट करता है, कलिजुगमें ऐसे हुलैभ पुरुषपर मैं बलिहारी
जाता हूँ ।’

एक दूसरे कविने भी शुभ-गुणानुरागकी खूब महिमा
गायी है—

कि बहुण मणियेण, कि तव यजेणं कि वा दणेण ।

इकं गुणाणुरायं, सीखहु सुखाण कुलभवणं ॥

‘बहुत पढ़ने, तथ करने और दान देनेसे कौन-सा महान् फल मिलता है ? सुखसमूहके स्थानरूप केवल शुभ गुणोंके प्रति अनुराग करना सीखो, इसीसे महान् फल होगा ।’

विशिष्टजी बड़े ही व्यवहार-कुशल उरुव थे, व्यवहार-कुशलता हनकी व्यवहारकुशलताके कुछ उदाहरण देखिये ! जिस समय विश्वाभिन्नजी अपने बाजीकी रक्षाके लिये महाराज दशरथके समीप श्रीरामको माँगने आते हैं उस समय पहले तो दशरथ यह प्रश्न कर लेते हैं कि आप जो मरिंगें, वही दूँगा । परन्तु अपने साथ श्रीरामको भेजनेकी बात कहनेपर दुःखके साथ दशरथ अस्वीकार कर देते हैं । विश्वाभिन्नको क्वोध होता है । उस समय श्रीविशिष्टजी दशरथ-जीको बड़ी ही कुदिमानीके साथ उचित कारण दिलाकर श्रीराम-साम्राज्यको विश्वाभिन्न मुनिके साथ भेजतादेते हैं ।

श्रीरामचन्द्रके बजासासकी भावी जानते हुए भी आप व्यवहारानुसार श्रीरामचन्द्रके युवराजपके लिये अनुमति देते हैं । निश्चित यूहूसंकी पहली रातको श्रीराम-सीतासे अनेक प्रकार पूजा-याठादि बोक्य विधि करवाते हैं, और आगे बजाकर कैकेनीको भूल-भरा रामवनबासका बरदान बापस लेनेके लिये समझाते हैं । इन प्रसङ्गोंमें आपकी व्यवहार-पटुताका खब पता लगता है । इसके अतिरिक्त श्रीराम-विषयमें शोकाभिमूत महाराज दशरथको साम्बन्धना देने और श्रीभृतजीको उसीके अनुसार समझानेमें भी आप बड़ी कुशलतासे काम लेते हैं ।

श्रद्धाज्ञान श्रीविशिष्टजीके तत्त्वज्ञानके सम्बन्धमें तो कहना ही क्या है ? गुजरातके भक्त-कवि अखालीने ‘अखेगीता’में उसकी महिमा इसप्रकार गावी है—

विधि वशिष्ट कही कथा, रघुनन्दनं जेह ।

अर्णव ब्रह्मविद्याताणं, देखाक्षो छं तेह ॥

विश्वाभिन्नजीकी प्रेरणासे श्रीविशिष्टजीने भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके प्रति ब्रह्मज्ञानका बधा ही सुन्दर उपदेश किया है, जिसका बर्णन श्रीबालमीक्षिजीने योगवाणिष्ट-महारामाप्यणमें किया है । उसके ‘वैराग्य’ नामके पहले प्रकरणमें यह विखलाया है कि श्रीरामचन्द्रजीके अन्तःकरण-में जिस विमल वैराग्यकी उत्पत्ति हुई थी वैसा ही विमल वैराग्य सुमुकुको प्राप्त करना चाहिये । तदनन्तर ‘सुमुकु’ या ‘सुमुकु व्यवहार’ नामक दूसरे प्रकरणमें सुमुकुके कर्तव्य बताये गये हैं । ‘उत्पत्ति’ नामक तीसरे प्रकरणमें ब्रह्म-

जगतकी उत्पत्तिका रहस्य और ‘स्थिति’ नामक चौथे प्रकरण-में ब्रह्ममें जगतकी स्थितिका तत्त्व समझाया गया है । उपराम नामक पाँचवें प्रकरणमें प्रतीतमान जगतको ब्रह्ममें शान्त करनेके उपायोंका और ‘निर्वाच’ नामक छठें प्रकरणमें ब्रह्म-में जगतके शान्त हो जानेके अनन्तर जीवसमूह और जगत्-की स्थितिका निस्पत्त्य किया गया है ।

ब्रह्मानीके ब्रह्मानको दूरकर उसे आमस्वरूपमें स्थित करदेना ही आमज्ञानीका कर्तव्य है । इसके सिवा उसका अन्य कोई भी कर्तव्य नहीं; यही विद्वानोंका मत है । इसीके अनुसार श्रीविशिष्टजीने अधिकारीवर्गको अपने स्वरूपके उपदेशद्वारा स्वरूपमें भलीभाँति स्थित करनेका प्रयत्न किया है । उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीके प्रति इस्य जगतमें इह वैराग्य रखने और प्राप्त व्यवहारको आसक्तिरहित होकर करनेके सम्बन्धमें जो सहुपदेश दिया है, वह भवन करने योग्य है ।

‘जैसे गीथ मांसके दुक्षेपर दृट पड़ता है, इसी प्रकार मनुष्यका मन मिथ्या आसक्तिके बहा व्यर्थकी रमणीयता मानकर भोगेपर दृट पड़ता है । (वास्तवमें ये विषय हैं ही नहीं) वाहाराद्विसे प्रतीत होनेवाला इस्य यथार्थमें नहीं है । इस शानके द्वारा जिस मनुष्यके मनसे इस्य-संसर्ग-चनित मत दूर हो गया है उसको भोवरूप उत्कृष्ट परमानन्दकी प्राप्ति होती है । इस्यकी इच्छाओंके भलीभाँति शान्त हो जानेपर आत्मप्राप्ति अवश्य ही हो जाती है । परन्तु जिसका मन सांसारिक सिद्धियोंकी प्राप्तिमें आसक्त है उसको उस आत्माकी प्राप्ति कैसे हो ? इसीविषये—

नामिवांछाम्यसम्प्राप्तं सम्प्राप्तं न त्यजाम्यहम् ।

स्वस्थ आत्मनि तिष्ठामि यन्ममात्सि तदस्तु मे ॥

इति संचिन्त्य जनको यथाप्राप्त क्रियामसौ ।

असक्तः कर्तुमुत्तस्यौ दिनं दिनपतिर्यथा ॥

राजपिं जनक विचार करते हैं—कि मैं विविद व्यापास पदार्थको पानेकी इच्छा नहीं करता और विविद व्राप वदार्थको द्वेषपूर्वक त्याग नहीं करता । मैं अपने स्वभावसे स्थित आसामें स्थिर रहता हूँ । जो मेरा मान जाता है कह भले ही मेरा होकर रहे । श्रीविशिष्टजी कहते हैं कि, यों विचारकर जैसे सूर्य, दिन उगानेकी प्राप्त-क्रियामें आसक्त-रहित होकर प्रवृत्त होता है जैसे ही राजपि जनक व्राप क्रियाको यथायोग्य आसक्तिरहित होकर करनेमें गवृत्त हुए । हे रामचन्द्रजी, तुम भी जैसे ही गवृत्त होओ ।



लाटपत्तेका क्रोध ।

उठि करजोरि ज्ञायदु मांगा । मनहुँ बोरस सोचत-जाना ॥



भरदाज आश्रम ।

घुफल सरल सुप साधन-सारू । राम तुँहिं अबलोकत आजू ॥

चित्रकृमि जनकजी ।

गिरियर दंगल जनकपति जयहां ॥ करि दत्ताम रथ ल्यानु तवहो ॥



चित्रकृमि भरत ।

मेरी रथनर मानु स्वन, करि प्रांध परितोय ।
अस्य उस आवाने जग, काहु न देख राहु ॥



भविष्यं नानुसन्धेते नातीतं चिन्तयत्यसौ ।
दर्तमान निमेपन्तु हस्तेवानुर्वते ॥

राजपि जनक भूत और भविष्यकी घटनाओंका वारम्बार स्परण न कर केवल वर्तमान समयका हँसते हुए अनुसरण करते थे । हे रामचन्द्र ! तुम भी इसी स्थितिको प्राप्त करो ।

अन्तःकरणको अखण्डकरस और निरतिशय आनन्द-रूप ब्रह्ममें स्थित कर, बाहरसे नाटकके पात्रकी भाँति प्राप-

त्यवहारको सुचारुरूपसे करनेवाले श्रीवशिष्ठजीके अन्तःकरणकी काल्पिक महत्ता तो उनके जैसे ग्राह्य ब्रह्मवेता ही भलीभाँति समझ सकते हैं । दूसरे लोगोंको तो उनकी महत्ताका साधारण-सा ज्ञान होता है । पुरोहितका कार्य करनेवाले ब्राह्मणोंको श्रीवशिष्ठजीके विचारों और वर्तावर्णोंका अनुसरण कर अपने जीवनको कृतार्थ करनेके लिये सदा प्रयत्नशील रहना चाहिये ।

श्रीहनूमान्जीके चरित्रसे शिक्षा

(लेखक—प० श्री जयरामदासजी 'दीन' रामायणी)



रामचरितमानसमें श्रीहनूमत्-चरितका आठम छिकित्त्वाकाशण्डके आदिमें 'मारुति-मिलान' प्रसंगसे हुआ है, वहाँ आप शूष्यमूक-पर्वतपर सुधीवके सचिवरूपमें दर्शन देते हैं । वस्तुतः श्रीरामावतारकी भाँति आपका भी वानर-धनु भगवान् शिवका रुद्रावतार था । गोत्स्वामीजीने दोहावलीके निन्द्रालिखित दोहरोंमें इस वातको स्पष्ट कर दिया है—

जेहि सरीर रति रामसों, सो आदरहि सुजान ।
रुद्रदेह तजि नेहबस, बानर भे हनुमान ॥
जानि राम-सेवा सरस, समुक्षि करब अनुमान ।
पुरखा ते सेवक भये, हरते भे हनुमान ॥

(दोहा १४२ । १४३)

रामायणमें इस गृह तत्त्वको मङ्गलाचरणके शोकोंमें बड़ी विचित्रताके साथ ऊँचाऊँचा है । बालकाशण्डसे अत्यन्त-काव्यकाव्यतक भगवान् शङ्करकी वन्दना पहले करके पीछे रुक्षनाथ-जीकी वन्दनाके शोक रक्षे गये हैं । परन्तु यह छिकित्त्वाकाशण्डमें स्वयं शङ्करजी हनूमानरूपसे श्रीरामकी सेवामें बवतरित हो जाते हैं, तथ वहाँसे उत्तरकाशण्डपर्यन्त श्रीराम-वन्दनाके शोकोंको प्रथम स्थान दिया गया है और दास-भावानुसार शिव-वन्दना पश्चात् की गयी है । उङ्का और उत्तर काशण्डमें तो यह बात स्पष्ट दीख पड़ती है, किन्तु सुन्दरकाशण्डमें तो शङ्करके स्थानमें श्रीहनूमान्जीकी ही वन्दना की गयी

है । इस वन्दना-क्रमके द्वारा और छिकित्त्वाकाशण्डमें श्रीराम-नामकी वन्दनान्तर्ता—

पुनि तुम राम-राम दिन राती, सादर जप्तु अनंग अरती ।

—के प्रमाणसे श्रीहनूमान्जीका शङ्करावतार होना प्रत्यक्ष सिद्ध होता है । इसके सिवा आपका बल, पराक्रम और आश्रयमयी घटनाओंसे पूर्ण चरित्र ही आपको एक ग्राह्य कपिसे सर्वथा भिज बता रहा है । अतः रामायणमें आपका चरित्र भी सर्वाङ्गसे ज्येय, शिक्षणीय तथा अनुकरणीय है । उपर्युक्त दर्शनके अनुसार श्रीहनूमान्जीका चरित्र—‘तहं रह सचिव सहित तुम्हीवा’-सुधीव-सचिवत्वसे आरम्भ होता है ।

सचिव कैसा होना चाहिये और उसे सचिव-धर्मका पालन किस भाँति करना चाहिये, इसका उत्तम उदाहरण श्रीहनूमान्जीने दिखाया है । महाबली बालिके दुरत्यय आधातके कारण सुधीवको त्रैलोक्यमें कहीं ठिक्काना नहीं रहा । ऐसे दीन, निराधय-जनका साथ देकर महाबली बालिसे बैर मोल लेना भाग्यी बात नहीं थी । ऐसी दुरवस्थामें भी आप उनके मन्त्रित्व-पदपर दृढ़ रहकर सदा सहायता करनेमें लगे रहे । यह परम साहसिकता और सबीं प्रीतिकी पहली शिक्षा है । इतना ही नहीं, अन्तमें श्रीरामचन्द्रजीसे सुधीवकी मित्रता करवा आपने उसको निर्वय कर दिया और इसप्रकार नीसिके एक उच्च सिद्धान्तको कार्यरूपमें परिणत करके दिला दिया कि राजा के सात झड़ोंमेंसे यदि एक सर्वप्रथान अङ्ग मन्त्री बचा रहे तो शेष सब नष्ट हो जानेपर भी राज्यको तुमः प्राप्त कर सकना असम्भव नहीं है । रामायणमें सुधीव और विभीषण दोनों ही दीन पात्रोंके केवल मन्त्री ही बच रहे थे,

‘तहं रह सचिव सहित सुधारा ।’—‘सचिव संग ले नमपथ गयऊ ।’ हृससे अन्तमें दोनोंके मनोरथ सफल ही हुए ।

श्रीहनूमानजी जब सुधीवके सङ्केतसे बढ़रूप धारणाकर श्रीरामचन्द्रजीसे मिलते हैं और उनसे बातचीत करते हैं, तब आपकी ज्ञान गरिमा तथा अनन्य भक्तिका बड़ा सुन्दर शिक्षणीय परिचय प्राप्त होता है । आप तपस्वीरूप भगवान् श्रीराम-खण्डमासे पूछते हैं—

को तुम्ह स्थामल गौर सरीरा । छत्रीरूप फिरहु ‘बन’ बीरा ॥
कठिन मूमि कोमलपदगमी । कवन हेतु बिचरहु ‘बन’स्वामी ॥
मृदुल मनोहर सुन्दर गाता । सहत दुसह ‘बन’ आतपबाता ॥

इन तीनों चौपाईयोंमें ‘बन’ शब्द एङ्गमें भी नहीं छूटने पाया है । बारबार ‘बन’ शब्दका मुँहसे निकलना इस बातका प्रमाण है कि आपके हृदयमें उन कोमल-चरणोंके स्वाभाविक प्रेम है और उन कोमल चरणोंका या कोमल-चरणावालेका ‘बन’ में फिरना आपके हृदयमें शूल-सा खटक रहा है । कहाँ वह ‘मृदुल मनोहर सुन्दर गात’ और कहाँ बनके ‘दुसह आतप बात’ को सहनेका कष्ट ! कैसा असामअस्थ है ? कुछ इसीप्रकार श्रीभरतजालजीके भनमें भी उन कोमल-चरणोंका ‘विनु पनहीं’ बनमें भटकना खटक था । उन्होंने भी कहा था—

राम-लक्ष्म-सिय बिनु पा पनहीं । करि मुनिबेष फिरहि ‘बन बन’हीं ।
मह दुःखदाह दहै नित छाती । भूख न बासर नींद न राती ॥

यहाँ भी ‘बन-बन’ शब्द असह दुःखका सूचक है । चरण-सेवक श्रीहनूमानजीने इस मिलनके पश्चात् भगवान्को कभी ‘बन-बन’ नहीं फिरने दिया । उन्होंने सेवक-भावका उच्च आदर्श दिखाया । लिये दोउ जन पाठ चढ़ाई । दोनों भाइयोंको आपने कल्पेषपर उठाकर सुधीवके पास ले गये । यही तो उनके प्रगाढ़ गृह प्रेमका उत्तमत प्रमाण है । प्रभुकी लङ्घकी यात्रा भी श्रीमालतिके कन्चोंपर विराजित होकर ही हुई थी ।

हनूमान सम नहिं बड़भागी । नहिं कोउ रामचरन अनुरागी ॥

उचर इसी कार्यके हारा संकेतसे सुधीवको भी भगवान्-के आपने मिश्र होनेका प्रमाण दे दिया, क्योंकि, शत्रु होते तो कल्पेषपर कैसे चढ़ाते ? दोनों प्रभुओंको पीठपर चढ़ाकर श्रीराम-चरण-निष्ठाका निर्वाह तो किया ही गया, अब आपका मणिपूरण दूसरा चमत्कार देखिये ! जब आप श्रीराम-खण्डमालकी ‘शुग्रान-जोड़ी’ से पहले मिलते हैं तो

उनका परिचय प्राप्त करनेके लिये कैसे समानार्थक विकल्पों-का प्रयोग करते हैं, ‘आप दोनों क्षत्रिय ही नहीं हैं, किन्तु क्षत्रियरूपमें आप या तो श्रिदेवोंमेंसे कोई हैं, या नरनारायण हैं, या अखिल-सुवन पति (साक्षात् परब्रह्म) हैं ।’ यदि विचार किया जाय तो हनूमानजीके तीनों अनुमान अवतार-अवतारी-भेदसे ईश्वरके सम्बन्धमें थे । तात्पर्य, श्रीरुद्रनायजी जिस परब्रह्मके अवतार हैं, उसी पर-स्वरूपके अवतार नरनारायण भी हैं । उन्हीं परब्रह्मवेद-के अंश गुणवतार त्रिदेव हैं । इस प्रकार तीनों स्वरूप परब्रह्मके ही हैं और तीनों ही पूर्य और नमस्कारके योग्य हैं । इसीलिये—पाथ नाय पूछत अस भयऊ का व्यवहार किया गया था । क्योंकि वेष बदले हुए वैभव-बान्, पुरुषको जानने-वाले तो उसके वैभवके अनुसार ही उसका सम्मान किया करते हैं । बजरङ्गबलीकी यथार्थ पहुँचसे हमें उनके परम योगी होनेको परिचय मिलता है और साथ ही यह पता लगता है कि योगियोंके अन्तःकरण सत्यकी किस तहतक पहुँच जाते हैं ! रामायणमें इस विषयके और भी उदाहरण मिलते हैं । सबे जौहरी श्रीजनकजीने भी हर्सी प्रकार इस राम-खण्डको परखा था—

ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा । उभय वेष धरि की सोइ आवा ॥

—भरताज विभीषणजीने भी श्रीमालतिजीसे ऐसा ही कहा था—

की तुम्ह हरिदासन महैं कोइं । मेरे हृदय प्रीति अति होई ॥
की तुम्ह राम दीन अनुरागी । आपेहु माहिं करन बड़भागी ॥

विभीषणजीने विष-वेश-धारी हनूमानके सम्बन्धमें दो ही अनुमान किये, कि या तो आप राम हैं या रामके दास ! अस्तु ।

श्रीहनूमानजीने भगवान् श्रीरामको उन्होंके दिये हुए तुदिवलसे ही पहचाना था । सतत प्रेमपूर्वक भजन करने-वालेको भगवान् तुदिव्योग देते हैं (गीता १०।१०) गीता-के इस सिद्धान्तको श्रीहनूमानजीने प्रत्यक्ष प्रकट कर दिया !

सबे अधिकारी भक्तके प्रह्लादोंका उत्तर देते हुए श्रीरुद्रनायजी महाराज आपने नाम, रूप और धामका निर्देश करते हुए कहते हैं—

कोसलस दसरथके जाए । हम पितु बच्चन मानि बन आए ॥
नाम राम-लक्ष्मिन दोउ मार्द । संग नारि सुकुमार सुराई ॥

इहाँ ही निसिचर बैदेही । विप्र फिरहि हम खोजत तेही ॥

इसमें ‘नाम राम लक्ष्मण दोउ मार्द’ से नाम; ‘कोसलेश

दशरथके जाप' हस्तमें भाग तथा रूप एवं 'हम पितु चनन मानि
चन जाप' और 'इहाँ हरी निसिचर वेदेही' से श्रीरामक वर्णन
किया है। लक्ष्मन्तर भगवान् भक्तवर श्रीहन्मान्त्रीसे
पूछते हैं—

आपन अरित कहा हम गई। कहु विप्र निज कथा नुकाई ॥

'हस्तमें तो अपवा हाथ सुना दिया, अब हे विष्वर !
जाप कौन हैं सो तो बताइये ?' इस मर्म-चनके उत्तरमें
श्रीहन्मान्त्रीने जो कुछ किया और कहा, उससे उनकी
सभी दीनता, वर्णार्थ शरणागति, अवृत्तिक अनुरक्षि,
असाधारण निर्भरता और गम्भीर शानका पता लगता है।
स्वामी श्रीरामको पहचानकर मात्रतिती चरवाहोंमें विष्वर
परमानन्दमें मग्न हो आते हैं। शिवली कहते हैं—सो मुख
उमा जाह नहि बरना। इसके बाद उनके व्यवहार और
चरणोंका आदर्श देखिये—

पुलकित तनु मुख आव न बचना। देखत रुचिर बेष्टके रचना ॥
पुनि धीरज धरि अस्तुति कीन्ही। हरष हृदय निज नाथहि चौन्ही॥
मोर न्याड मैं पूँछा साईं। तुम कस पूँछु नरकी नाई ॥
तव मायाबस फिरड़ मुलाना। ताते मैं नहि प्रभु पहिचाना ॥

एक मन्द मैं मोहबस, कुटिल हृदय अग्यान ।

पुनि प्रभु मोहि विसारेउ, दीनबन्धु भगवान् ॥

जदपि नाथ बहु अवगुन मेरे। सेवक प्रभुहि पैर जनि भेरे ॥
नाथ जीव तव माया मोहा। सो निस्तरै तुम्हरेहि छोहा ॥
तापर मैं रघुबीर दोहाई। जानै नहि कछु भजन उपाई ॥
सेवक-सुत पति-मातु भरोसे। रहै असोच बैन प्रभु पोसे ॥
अस कहि पेरेउ चरन अकुलाई। निज तनु प्रगटि प्रीति उर छाई ॥

इस सुनिमें श्रीहन्मान्त्रीने पाँचों स्वरूपोंका रहस्य
बड़ी विलक्षणतासे सोक दिया है। श्रीवस्त्रूप, परस्त्रूप,
विरोधस्त्रूप, उपायस्त्रूप और कलास्त्रूप—इन पाँचोंका
ही निषेद्ध इसमें आया, जो सर्व शास्त्रोंका सार-रूप है।
और विसको जानना असम्भव आवश्यक है। कहा है—

'प्राणस्य ब्रह्मणो रूपं प्राप्नुश्च प्रत्ययात्मनः ।

प्राप्त्युपायं फलप्रसिद्धि तथा प्राप्ति विरोध च ॥

वदन्ति सकला वेदा सेतिहास पुराणकाः ।

मुनयश्च महामलो वेदवेदान्त वेदितः ॥ १ ॥

समल वेद, इतिहास, पुराणादि और वेद-वेदान्तके

१३

काता शुनि महामार्गोंका लिदान्त है कि जबतक हन
पाँचोंका बोध नहीं होता तबतक जीव संसारसे पार नहीं
हो सकता। 'मोर न्याड मै पूँछ साईं' से 'जीवस्वरूप' का बोध
होता है, विसक लक्ष्मा गोस्वामीजीने 'हर्ष विचाद ग्यान
अग्याना । जीव धर्म अहमिति अमिमाना ॥' बताया है।
'तुम पूँछु कस नरकी नाई' 'तव मायाबस फिरौं भुलाना' 'सो
निस्तरै तुम्हरेहि छोहा' 'पुनि प्रभु मोहि विसारेउ दीनबन्धु
भगवान्' इत्यादिसे यहाँ 'ईश्वर स्वरूप' प्रकट होता है, जैसा
कहा है—'ग्यान अवगण एक सीतावर ।' 'बन्ध मोच्छप्रद सर्वपं
माया प्रेरक जीव ।'

'नाथ जीव तव माया मोहा !' से 'विरोधस्त्रूप' यानी,
मायाको दिलकाया, जो भक्तिमें बाबक हो रही है। 'सेवक-
सुत पति-मातु भरोसे । रहै असोच बैन प्रभु पोसे ॥' से 'उपाय-
स्त्रूप' अर्थात् दास और छोटे बच्चोंकी भाँति सब साजनों-
से रहित होकर केवल प्रपत्तिसे ही उद्धार होना बताया।
'अस कहि पेरेउ चरन अकुलाई । निज तनु प्रगटि प्रीति उर छाई ।'
से 'फलस्त्रूप'—भगवत्-चरणकी मासि तथा प्रेमाभक्ति ही
परम फल है, वह दिलकाया है। इसीप्रकार 'तापर मैं रघुवीर
दोहाई । जानौ नहि कछु भजन उपाई ॥' कहकर सबे भक्तों-
की दीनतारूप मुख्य शारणाका मर्म भी समझा दिया।
सबे भक्तोंके हृदयमें यह भाव कदापि स्वरूपमें भी नहीं आता
कि 'मैं भी कछु हूँ था मुझमें भी कछु गुण हैं ।' श्री-
भरतजी कहते हैं—

× × × मैं सठ सदा सदोस ।
आपन जानि न त्यागिहैं मोहि रघुबीर भरोस ॥

प्रेमीकर सुसीक्षणी भगवान्जने कहा है—

'भगति न विरति ग्यान मन माहीं ॥

नहि सतसंग जोग जप जागा । नहि दढ़ चरन-कमल अनुरागा ॥

एक बानि कलानिधानकी । सो प्रिय जाके गति न आनकी ॥

गोस्वामीजी तो शपथ ही खा रहे हैं कि—

कवित विवेक एक नहि भरोे। सत्य कहौं लिखि कागद कोरे ॥

सारांग यह, कि भगवान्के सबे शारणागतजन 'अहं-
म' आदि समल सम्बन्धोंको विश्रितरूपसे प्रभुकी वस्तु
समझ देते हैं। वह अपनेको भी अपना नहीं समझते।
भक्तवर श्रीपाठुगाचार्यजीने कहा है—

'प्रम नाथ बदस्ति योऽस्म्यह

सकलं तद्वि तवैव माष्म ।

नियत स्वमति प्रबुद्धधीरथना
किन्तु समर्पयामि ते ॥
(आलबन्दार)

‘हे मातृ ! हे मेरे नाथ ! मेरा जो कुछ है वह, और जो कुछ मैं हूँ तो, सब तेरा ही है। मेरी मति और प्रबुद्ध उद्दि अथवा शम्भ जो कुछ है सो सब तुम्हारे समर्पण करता हूँ।’

जब स्वामीके प्रति मन-वचन-कर्म तीनोंसे शुद्ध प्रपत्तता हो जाती है, तभी प्रभु उसे स्वीकार करते हैं—

अस कहि परेड चरन अकुलाई । निज तनु प्रगटि प्रीति उर छाई ॥

इस चौपाईमें श्रीहनूमानूजीने शुद्ध प्रपत्ति सिद्ध कर दी। ‘अस कहि’ से वचनको प्रपत्तता, ‘प्रीति उर छाई’ से मनकी प्रपत्तता, तथा ‘परेड चरन अकुलाई’ से तमकी प्रपत्तता सिद्ध हुई। हतना ही नहीं बदुनेष्ठर्षी कपटको दूरकर ‘निज तनु’ भी प्रकट कर दिया। जब तो भगवान्से नहीं रहा गया, उठाकर हृदयसे खागा लिया और प्रेमाशुभाराओंसे लगे अभिषेक करने !

‘तब रघुपति उठाइ उर लावा । निज-लोचन-जल सींचि जुडावा ॥’

श्रीहनूमानूजी कृतार्थरूप हो गये ! स्वर्य ही कृतार्थ नहीं हुए, इसके बाद सुग्रीव-विभीषण आदि जिन जिन लोगोंने आपसे सम्बन्ध रखता या किया, उन सबको भी प्रभुकी प्राप्तिहारा कृतार्थ करा दिया। यही तो सन्तोंकी महिमा है !

श्रीहनूमानूजीके संगसे उपलब्ध श्रीरामकृपासे सुग्रीवजी राज्यासनपर विराजते हैं, परन्तु जब राजमयके कारण ‘रामाविकास’में रम जाते हैं तब श्रीहनूमानूजी वही ही दूरदर्शितासे आदर्श विनयपूर्वक सुग्रीवको सब प्रकारसे सचेत कर देते हैं।

इहाँ पवनसुत हृदय बिचारा । रामकाज सुग्रीव विसारा ॥
निकट जाइ चरनहिं सिर नावा । चरिहु विवित तहि कहि समुद्दावा

इस काममें आपकी बुद्धिमत्ता, सुग्रीवके प्रति हितैषिणा और ‘रामकाज’ की चिन्ता तथा मन्त्रित्वके नाते कर्तव्य-परावर्यता और नम्रता सभी एक साथ प्रकट हो जाते हैं। आप हतना ही करके शान्त नहीं हो जाते। सुग्रीवकी अनुमति लेकर स्वर्य दूतोंको सम्मानपूर्वक बुझाते हैं और भय तथा प्रीति दिलाकर बानरोंको बुझानेके लिये उन्हें तुरन्त भेज देते हैं। यदि आपने ऐसा न किया होता तो सुग्रीवपर किसना बढ़ा कोशकमरण होता !

जब बानरशूण इहहे हो गये और श्रीसीताश्रीकी लोकमें भेजे जाने लगे तब आपका दूसरी भी विश्वासिणी-की ओर चढ़ा । उस समय सबसे पीछे आपने श्रीरघुनाथजी-के चरणोंमें शिरसा प्रणाम किया। श्रीरामजीने इनको निकट बुलाकर अपने भक्तमण्डलीरी कोमल कर-कमल इनके मस्तकपर रख दिये और अपना ही जन जानकर सहिषणके निमित्त शुद्धिका दे दी । जिन श्रीरघुनाथजी बोले—
बहु प्रकार सीताहि समुक्षायेहु । कहि बल विरह बेगि तुम्ह आयहु ॥

आज श्रीहनूमानूजीका शीखन सफल हो गया। उन्होंने सोचा कि मेरे समान बहुमार्गी कौन होगा जिसके मस्तक-पर मेरे नाथने आज पाप ताप और माया तीनोंको एक साथ मिटा देनेके कर-कमल रख दिये। कहा है—

कहुँ सो कर-सरोज रघुनायक, धरिहौ नाथ ! सीस मेरे ।

जेहि कर अभय किये जन आरत बारक विवस नाम टेरे ॥

सीतल मुखद छाँह जेहि करकी भेटति पाप ताप माया ।

निसि-नासर तेहि कर-सरोजकी चाहत तुलसीदास छाया ॥

बस्तुतः बाङ्गायामार्गमें श्रीहनूमानूजीको तीनों ही कल प्राप्त भी हो गये। तीनोंका पृथक् पृथक् विवेचन सुनिये। श्रीहनूमानूजी बाङ्गा दृष्ट जलते हैं। यहाँ चारों तरफ हाहाकार भव जाता है। आगमित जीव जलाकर भव्य हो जाते हैं। इनकी गर्जनाको सुनकर अनेक राष्ट्रस-नारियोंके गर्भपात हो जाते हैं। यह सब हुआ परन्तु आजतक किसीने स्वरममें भी ऐसी बाङ्गा नहीं की कि इनूमानूजीको ऐसा करनेमें कोई पाप जागा। करते भी कैसे ? जिसके मस्तकपर परम कालणिकका अभय इस जिर गया, उसमें पाप कहाँ ? यह तो हुई पापकी बात, अब तापकी बात सुनिये। यों तो आप स्वाभाविक ही विविध तापसे मुक्त हैं, परन्तु यहाँ उस तापके सम्बन्धमें कहना है जिससे आपने सारी बाङ्गाको तस कर दिया था। आपकी पैदामें लगायी हुई अग्नि जिस समय करोड़ों लाख-लाख बपटोंसे बाङ्गाको दब कर रही थी उस समय प्रबालाग्नि या बद्धानल भी उसके सामने तुष्ट हो ये। अग्निशिखायें आनो जाव-रसनाके साथ सबको चाट रही थीं। मूसवाघार दृष्टि भी उस समय धूताहुतियोंके सद्वा अग्निको अग्निकालिक प्रथवद कर रही थी। समुद्रका जल उबल रहा था, ऐसी विकट स्थितिमें आप सहज ही एक मन्त्रिरसे दूसरे मन्त्रिरपर उड़ा रहे हैं, सारा शरीर रोमसे आकृत है, परन्तु अग्निकी अँखेसे आपका बाल भी बांका नहीं होता । ऐसा आश्वर्य

है ! बात यह है 'गोपद मिलु अनल सितलाई'—भी प्रभुतावाले प्रभुका अभय हला जिनके रिपर इक्षा गया, उनके लिये तापकी सम्भावना ही नहीं रहती !

अब रही मायाकी बात; श्रीहनूमानन्दजीको तीनों प्रकार की गुणमत्ती मायाका सामना करना पड़ा, परन्तु आप सबका पराभव करते हुए आगे बढ़े हैं। सतोगुणी, रजोगुणी और तमोगुणी तीनों ही मायाके सामना करना पड़ा। देवलोकसे आयी हुई सुरसा सतोगुणी, धर्षोनिवासिनी सिंहिका जो उड़ते हुए पश्चिमोंको क्षायाको पकड़कर उन्हें खोच लेती थी, तमोगुणी, और मध्यस्तोक लंक-निवासिनी लक्ष्मीनी रजोगुणी थी। उच्च, मध्य और नीचस्थानोंमें रहनेवाली होनेके कारण उपनिषद्भवी गीताके सिद्धान्तानुसार इनका क्रमशः सारिकी, राजसी और तामसी होना सिद्ध है—

अध्यं गच्छन्ति सत्त्वस्थाः अध्यं तिष्ठन्ति राजसाः ।

जघन्यगुणवृत्तिस्थाः अधो गच्छन्ति तामसाः ॥

इनमें सुरसा तो देवलोकसे श्रीहनूमानन्दजीके बुद्धिवलकी परीक्षाके लिये आयी थी।

जात पत्रनसुत देवन्ह देखा । जाना चह बल-बुद्धि-निंसंसा ॥
सुरसा नाम अहिन्हकी माता । पठद्विंह आइ कही तेहि बाता ॥
आज सुरन्ह मोहि दीन्ह अहारा । सुनि हँसि बोला पवनकुमारा ॥
रामकाज करि फिरि मैं आवौ । सीताकै सुनि प्रभुहि सुनावौ ॥
तब तब बदन पैठिहौं आई । सत्य कहौं माहिं जान दे माई ॥
कवनेहुं जतन देहि नहिं जाना । अससि न मोहि कहेह हनुमाना ॥

सुरसाने कहा—आज तो देवोंने खूब योजन भेजा। इसपर श्रीहनूमानन्दजी हँसे। इस हँससुख मुझासे यह सूचित होता है कि आपको सुखाइ स्वीकार है। इसके बाद मारुतीजीने 'राम' शब्द का उत्तारण किया। क्योंकि श्रीराम-नाम सर्व विघ्न-विनाशक और शशुको भी अनुकूल करनेमें समर्थ है। यथा—

धाई धारि फिरिकै गोहारि हितकारी होति
आई भीनु मिटति रटत रामनामं ।

पर इस राम-नामसे भी सुरसाने मार्ग नहीं छोड़ा। वहाँ यह शङ्का होगी कि हनूमान् सरीसे नामगिरुका यह प्रयोग निष्कर्ष क्यों हुआ? इसका उत्तर यह है कि सुरसा तो प्रतिकूल थी ही नहीं जो अनुकूल होती। वह तो प्रारम्भसे ही अनुकूल थी, जो योग्यताकी जांचके लिये आयी थी। इसीलिये वह नहीं हटी। इसके बाद आपने

यह सूचित किया कि मैं 'राम-काज' से जा रहा हूँ। बदेका काम सुनकर मामूली लोग भय ला जाते हैं (राम रजाह सीस सवाहीके)। इसका भी कोई फल नहीं हुआ, क्योंकि अभी परीक्षाके बहुतसे विषय बाकी थे। अब हनूमानन्दजीने सोचा कि क्षीजातिकी क्षीजातिके प्रति स्वामाविक सहानुभूति होती, इससे, 'सीताकै सुचि' प्रभुको सुनानेकी बात कही। इसपर भी सुरसा नहीं हटी। तब प्रतिशा करके समय लेना उचित समझा और 'तब तब बदन पैठिहौं आई' कहा, इसपर भी जब वह नहीं आनी, तब उसे 'माता' (माई) कहकर सम्मोहन किया। क्षियोंमें अपल्य-स्लेह स्वामाविक होता है। कहीं मालूभावसे बालक समझकर ही छोड़ दे। इनूमानन्दजी किसी प्रकार भी 'रामकाज' करनेकी चिन्तामें मग्न थे, उन्हें दूसरी कोई बात सूझती ही नहीं थी। इसपर भी जब वह न आनी तब आपने कहा कि फिर ला क्यों नहीं ढालती (अससि न मोहि)। इतना सुनते ही सुरसाने एक योजनका सुँह फैलाया, श्रीहनूमानन्दजी 'रा' 'म' रूपी दो अहरोंके बलसे उससे हूने बढ़ गये। तब सुरसाने नारी प्रकृतिके अनुसार उनसे अछगुना सोलह योजनमें सुखका विस्तार किया। मारुतीजीको तो (‘प्राति प्रतीत है आखर ‘दू’ को’ ‘तुलसी हुलसै बल आखर दूं को’) दो अहरोंका ही भरोसा था हसीलिये वे फिर दूने बत्तीस यौजन बढ़े। तब तो सुरसाने किसी नियमको न मानकर सी योजनमें सुँह फैलाया। श्रीहनूमानन्दजीने सोचा कि सौ ही योजन समुद्र पार करनेकी बात थी, अबधि या पहुँची अतएव अब इसे भी पार करना ही चाहिये। तब—अति लघुरूप पवनसुत कीन्हा—छोटासा रूप बनाकर उसके सुँहमें छुस गये और चटपट बाहर निकलकर आशा माँगी—

बदन पैठि पुनि बाहर आवा । मांगी बिदा ताहि सिर नावा ॥

श्रीहनूमानन्दजीके बुद्धिवलका मर्म समझकर सन्तुष्ट हो सुरसाने आशीर्वाद दिया—

'रामकाज' सब करिहु तुम बलबुद्धि निधान ।

आसिप देह गई सो इरपि औले हनुमान ॥

श्रीहनूमानन्दजीने आपने बुद्धिकौशलसे बाधकको साप्तक बनाकर आशीर्वाद प्राप्त कर लिया। कर्तव्यपथमें विनाकरने-बालेके साथ किस प्रकार व्यवहार करना चाहिये, इस बात-की हमें इससे खूब शिक्षा मिलती है। इसके बाद क्रमशः सिंहिका और लक्ष्मीनीको स्वभावानुसार पुरस्कृत कर आप जङ्गा पहुँचे।

आज्ञायिक इहसे इस लक्ष्मा-नानाराजा अभिजाप वह है कि अब जीव भक्तिकी लोकमें परमार्थ-कथाएँ चरता है तो उसे तीन प्रकारकी गुणवत्ती माया बाधक होती है। इन तीनोंसे श्रीहन्मान्त्रीके सदा व्यवहार करना चाहिये। सतोगुणीसे विशेष विशेष न करे क्योंकि शुभमन्त्रोंकी प्रकृतिसे विशेष करना उचित नहीं और निष्ठा होनेके लिये भजनके हेतुसे उसका सङ्ग निवाहना भी असम्भव है। अतः उसके अनुकूल होते हुए भी अपनेको कोटा बनाकर उससे छुटकारा पानेका प्रयत्न करे, प्रहृष्ट न हो, क्योंकि शुभाशुभ दोनों ही प्रकारकी प्रकृतिका व्याग करना ही भगवन्-प्रेमियोंके लिये अपेक्षकर है।

तामाहि कर्म सुभासुभदायक। भजाहि मोहि सुर नर मुनि नायक॥

श्रुति कहती है—

‘न कर्मणा न प्रजया न धनेन

त्योगैनेकं अमृतस्वमानन्तः।’

इस प्रकार सतोगुणी मायासे बचे।

तमोगुणी मायाको सिंहिकाकी भाँति जानसे भार ढाले। तार्थ्य वह कि उसे निःशेष व्याग दे क्योंकि पापकर्मोंका लेश भी परमार्थके लिये दिन और रातकी तरह विशेषी है। अतः ‘भूल न देहि कुमारग पाँँ।’ तमोगुणी माया वही ही धातक और तीव्र होती है, इससे उसको जाया भी नहीं कूने देनी चाहिये, नहीं तो वह जायामात्रको पकड़कर ही हमारा जीवन नह कर देगी। इससे सदा सचेत रहना चाहिये और जहाँ किञ्चित भी सन्देह हो, वही—‘तासु कपट कपि तुरतदि चीन्हा’ के अनुसार तुरन्त पहिचान कर फटपट उसका काम तमाम कर ही डालना चाहिये। ‘रिपु रिन रंच न राखन काऊ।’

त्योगुणी मायाको अधमरी करके कोऽ दे, क्योंकि इसका सर्वथा निराकरण करनेसे शरीरवार्ष अपलब्धन-हीन हो जाना पड़ेगा। शरीरवादा भरके लिये अब वह प्रहृष्ट करना धर्म है, परन्तु उतना ही जिसना प्रारब्धाकुसार प्राप्त हो ‘यदच्छ लाभ सन्तुः।’ अतः त्योगुणी मायाको काङ्क्षिनीकी भाँति न प्रबद्ध रहने दे और न नह ही करे, बलिक कमज़ोर बना, अपने कानूने कर उससे काम निकाले, ‘नात्यनतस्तुयोगोति न चैकालामनदन्तः।’ (गीताः १६)

जिससे वह बाधक न होकर साधक ही रहेगी। इसप्रकार त्योगुणी मायासे छुटकर सीतासुपी भक्ति-माताकी लोकमें आगे बढ़ना चाहिये।

इसके बाद श्रीहन्मान्त्री अब जहाँमें आकर विभीषण जीसे विलाते हैं और उनको अन्तर-बाहरसे भक्त समझ उनके बताये हुए मार्गसे अरोक्ष्याटिकामें पहुँच माता सीताका साधारकार करते हैं।

भक्ति-माताकी लोकमें निरत साधको सङ्ग रह चाहिये। यहाँ हन्मानसुपी जीवको विभीषणरूप सद्गुरुकी भाषि हुई तदनन्तर भक्तिरूपी सीताके दर्शन हुए। इस प्रसङ्गमें वह विशेष व्याव देने थोन्य बात है कि मायासे बुटकारा पानेपर भी सन्त-समागमके लिया व्यार्थ भक्तिरूपी भाषि नहीं होती। इसके सिवा साधको लोटा-खरा भक्तीमाँति पर्यानकर ही किसीको गुरु बनाना चाहिये। इसकी विधि भी वहीं बतावा दी है। उसके बाहर श्रीराम-नाम अङ्गित और तुङ्गसीक्ष वृष देखकर ही हन्मान्त्रीने तुरन्त विश्वास नहीं कर लिया। जब विभीषण अकाल ‘राम राम’ कहने लगे, तब विश्वास किया, क्योंकि रामायणान्तर्गत प्रतापभानुकी कथासे ही वह प्रकट है कि जगत्में सापुत्रेमें घोर असाधु भी स्वार्थ-साधनके नियमित निवास करते हैं। कहा है—

तुलसी देवि सुवेष, भूलहि मूढ़, न चतुर नर।

सुन्दर केकी पोखि, बचन सुधा-सम असन अहि॥

अतः जिस प्रकार श्रीहन्मान्त्रीने विभीषणके बाहरी और भीतरी सब लक्षणोंको देखकर ही उन्हें सन्त समझा तथा उनपर विश्वास किया, सन्त-समागमके अभिजापी भक्तोंको वैसे ही परीका करके विश्वास करना चाहिये। शास्त्र-सम्पत्त सन्तोंके लड्यक व्यथात्प्रथा मिल जानेपर उस पुलक्षे कार्यहानिकी शक्ता नहीं रह जाती।

तब हनुमन्त कही सब राम-कथा निज नौम।

सुनत तुग्लन्तनु पुलक मन मगन सुमिरि गुन-ग्राम॥

दो सन्तोंका सततसङ्ग हुआ। दोनों रामाकुरागियोंका तन, मन, बचन एकाकार हो भलवान्वे गुणात्मादमें सहीन हो गया। परन्तु इस अवस्थामें भी साधारकार लिये लिया पूर्ण शान्ति नहीं। तभी तो वे बोले—देखा चाहुँ जानकी माया। किंतु विभीषणोपदिष्ट मार्गसे अरोक्ष्याटिकामें पहुँचे। भक्तराज विभीषणकी गिरावे सीताकी सक्षिप्ति प्राप्त कर आपने स्वामीकी सुदिका भाताको प्रदान की।

मुद्रिका-प्रदानमें भी एक रहस्य है। भक्तिके लिये वो कुछ साधक बैठ करता है वह बस्तु होती क्या है? केवल प्रमुखी ही हुई ही! अन्यथा बेचारा जीव प्रभु-प्रसादके आतिरिक्त किसी बद्यके वहाँसे पाता है इसीलिये तो

‘लदों वसु गोविल तुम्हेव समर्पयेद्’ का विचार है। इस प्रकार जब भक्ति के निमित्त प्रभु-प्रदत्त वसु समर्पित की जाती है और राम-यशस्वी पुण्यालयि बड़े बगती है—रामचन्द्र यज्ञ बर्णन लागा। तब तुम्हारी ही स्वयमेव आङ्गान होता है।

श्रवनामृत जैहि कथा सुनाई। कहि सो प्रगट होत किन माई॥

वहाँ बड़ा रहस्यपूर्व प्रसङ्ग है। श्रीहनूमान्त्रीके निकट आनेवर माताजी पूरी परीका लेनेका विचार कर मुझे केर बैठ गईं। किर बैठो मन विसमउ भयउ।

तदनन्तर जब हनूमान्त्रीने रामभक्त होनेके परिचयमें सहिदानी सुधिकाका वर्णन कराते और ‘कल्पणानिधान’ का नामकी सत्य सपथ करते हुए उनका दास होनेकी शपथ ढड़ाइर एण्ड रूपसे विश्वास दिलाया—

रामदूत मैं मातु जानकी। सत्य सपथ करनानिधानकी॥
यह मुद्रिका मातु मैं आनी। दीन्ह राम तुम्ह कहँ सहिदानी॥

तब उन्हें मन, कर्म, वचनसे ‘कृपासिन्धु, का दास जान परम प्रसव हुई और पुलकित होकर सन्मुष्ट मनसे आशीर्वाद प्रदान किया।

जाना मन कम बचन यह कृपासिन्धु कर दास।

हरिजन जानि प्रीति अति बाढ़ी। सजल नयन पुलकावलि ठाढ़ी॥
आसिष दीन्ह रामप्रिय जाना। हौडु तात बहु सील निधाना॥
अजर अमर गुननिधि सुत होहू। सदा करहि रघुनाथक छोहू॥

भक्तने विमल वरदान पाया। हनूमान् ग्रेममें तन-मनकी सुधि भूल गये।

करहु कृपा प्रभु अस सुनि काना। निर्भर ग्रेम मग्न हनुमाना॥

—यही निष्काम भक्तोंका परम धन है।

यहाँ श्रीहनूमान्त्रीने यह प्रमाणित कर दिया कि भगवद्-ग्रेमियोंको प्रभुकी कृपाके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं आहिये।

अब वसाहस्य भयड़ मैं माता। आसिष तब अमोघ विलयाता॥

इसके बाद बड़ासे विदा होते समय हनूमान्त्री कोई सहिदानी माँगते हैं और माता चूमाणि उतारकर देती है।

श्रीमाताजी सरकारको सदा ‘कल्पणानिधान’ राष्ट्रसे सम्बोधन करती थीं, हनूमान्त्री इस मर्मका जाता जानकर ही विश्वास किया।

सुधिकाके बड़े चूमाणि प्रदान करनेमें भी गुरु रहस्य है। भगवान्ने जो अपने हायका भूलय ‘सुधिका’ दी, इसका अभिग्राय यह है कि ‘हे सीते ! तुम कहीं भी हो, मेरे कर-कल्पकाकी ज्ञाना सदा तुम्हारे सिर पर भौंधत है, तुम अभय इसके आश्रयमें अभय हो।’ और उसके बड़ेरमें सिरका गहना चूमाणि देनेका अभिग्राय यह है कि ‘हे नाथ ! यह शीश आपके कर-कल्पकाकी ज्ञाना छोपकर दूसरा अवकाशन नहीं रखता।’ इस अभीष्ट सिद्धान्तकी शिखा ग्रास कर श्रीरामकी जल्दी बैठनेकी आशानुसार श्रीहनूमान्त्री भी माताको जैर्य दिलाकर छौट चले।

सारा काम श्रीहनूमान्त्रीके कौशलसे ही हुआ था तथापि आप सहोचतवश स्वामी श्रीरामजी और सुधिकाके पास बगवान्नसे सामने सीना करके नहीं गये, वर्त सिर लुकाये ही गये और जाकर भी थीके ही दिखे रहे। सम्भवतः यह भी खलाल रहा होगा कि स्वामीकी आज्ञा विना ही प्रसङ्गवस लड़ा-दहन और राहस-बज करना पड़ा, इसके दिखे कहाँ प्रभु अप्रसन्न तो नहीं होंगे ? तदनन्तर आपकी सारी कहानी भगवान्नको जावधवन्तने सुनायी। इतना महान् कार्य करके भी हनूमान्त्रीके हृदयमें अभिमानका अकुर न आगा। अभिमान-का अत्यन्त अभाव होनेके कारण ही आप अपना बड़ा भूले रहते थे। इससे शिखा मिलती है कि बड़ेसे बड़ा कार्य करके भी कभी अभिमान नहीं करना चाहिये। श्रीहनूमान्त्रीने यह सत्य सिद्धान्त बतला दिया—

सो सब तब प्रताप रहुराई। नाथ न कळु मोरी प्रसुताई॥

‘सारी सिद्धिर्याँ केवल प्रभु-कृपासे ही ग्रास होती है।’ साधकके लिये यह अस्यन्त शिष्याप्रद विषय है। श्रीहनूमान्त्री की नवाताका बर्णन प्रसंगका गोस्वामीजीने रावण-बाह्य-संबादके प्रकरणमें किया है। अब रावण श्रीरघुनाथजीकी सेनामें सबके बजाकी निन्दा तथा श्रीहनूमान्त्रीकी प्रशंसा करता है, तब अङ्गदी कस्तुरितिको प्रकट करते हुए कहते हैं कि—

अब जानेत पुर दहेड़ कपि, बिनु प्रभु-आयसु पाइ।

पुनि न गयेत निज नाथ पहँ, तेहि भय रहेड़ लुकाय॥

तथा—

रावन नगर अल्प कपि दहई। सुनि अस बचन सत्य को कहई॥

‘हे रावण ! अब मुझे यह रहस्य मारदूस हुआ, विना प्रभुकी आज्ञा दिखे उस बानरने लड़ा-दहन किया तभी तो

वह भगवान्‌के सामने नहीं गया, अपके मारे चिपरहा। अथवा तुम्हारी बात ही सबी नहीं है। भगा, वह नम्हा-सा सीधा साक्षा बाजर क्या इतने विश्वास नगरको जला सकता है ?' अङ्गदजीके इस कथनसे यह सिद्ध होता है कि श्रीहनुमान्‌जीकी अत्यन्त नश्तता, निरभिमानताके कारण अङ्गदने भी उनको इतना काम करनेवाला नहीं समझा था। कोई समझता भी कैसे ? श्रीहनुमान्‌जी तो अपने खुहसे अपनी बढ़ाईकी कोई बात कभी कहते ही नहीं थे, वे सो चुपचाप सेवामें जगे रहते थे। वे कपिसमाजके गर्जन-तर्जनमें कभी भाग नहीं लेते थे।

गोस्त्रामीजीने इनकी बन्दना 'महाबोर विनवी हनुमाना' 'बन्दौ पवनकुमार' इत्यादि वहे ही अच्छे शब्दोंमें की है, और इनका ऐसा स्वभाव देखकर इनके विनवानुसन्धानकी स्पष्टताके लिये एक जगह तो इनके नामके 'मान्' शब्दको हटा ही देना अच्छा समझा है। जिसने जीवन भर 'मान्' की उपेष्ठा की, उसके नामके अन्तर्गत 'मान्'का रहना गोस्त्रामीजीको कैसे नहीं सुठकता ?

उभय भाँति तोहि आनहु हँसि कह कृपानिकेत ।
जय कृष्ण कहि कपि चले अंगद 'हनू' समेत ॥

कैसा अच्छा प्रसङ्ग है ! विभीषणजी रावणसे विमुख हो भगवान्‌की शरणमें आ रहे हैं, उन्हें लिका लानेके लिये कपिसमाज जाता है। सन्त विलक्षण का शुभ अवसर है। ऐसे अवसरपर श्रीमारतीजी 'मान्' लेकर क्या करते ? यही कारण है कि श्रीतुलसीदीवासजीने 'हनु' मात्रका प्रयोग कर स्वाभाविक वर्णनकी पराकाष्ठा दिखला दी।

इसी नश्तताके कारण हनुमान्‌जी भक्ति और शक्तिके समान अधिकारी हुए, जिसके कारण अस्तमें श्रीभगवान्‌के श्रीमुखसे भी ये उड़ार निकल पड़े—

सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुर नर मुनि तनु धारी।
प्रति उपकार करौं का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा ॥
सुनु सुत तोहि उरिन मैं नहीं। देखेँ करि बिचार मन माँही ॥

इतना ही नहीं, श्रीहनुमान्‌जीने, शक्ति प्रकरणसे श्री-कपिसमाजको, विषय-सम्बद्धसे श्रीजामीजीको, और अवध-

भगवान्‌सम्बद्धसे श्रीभगवतीको तथा समस्त अदेव्याको अच्छी बात लिया। वही कारण है कि श्रीरामचन्द्रप्रपदमें आपको भी स्थान प्राप्त है।

भरत दीन्ह निज बसन डसर्दे । बैठे प्रभु सेवहि सब भार्दे ॥
मास्त-सुत तब मास्त कर्दे । पुलक बपुष लोचन जल भर्दे ॥
गिरिजा जासु प्रीति सेवकार्दे । बार बार प्रभु निजमुख गार्दे ॥

भगवान्‌स्वर्य ये से भक्तका गुणानुवाद अपने श्रीमुखसे लिये हैं कि आपका जीवन सेवा और पुरुषार्थका नमूना है और इससे यह अन्यतम शिक्षा प्राप्त होती है कि भगवान्‌जी सेवाके साथ साथ पुरुषार्थ करनेसे भगवान्‌जी कृपादृष्टि होती है और जीवन सफल हो जाता है।

बन्दौ पवनकुमार, खल-बन पादक ग्यान-घन ।

जासु हृदय-आगार बसर्हि राम सर-चापधर ॥

धन्य हनुमान्‌, तुमको और तुम्हारे लोकशब्दन चरित्रको !

* वाल्मीकीय रामायणमें भगवान्‌ श्रांरामनं हनुमान्‌जीसे कहा है—

नरिष्यनि कथा यावंदेषा लोके च मार्मिका ॥

तावसे भविता कांतिः शरोऽप्यमवस्था ।

लोका हि यावत्स्यास्यन्ति यावत्स्यास्यति मे कथा ॥

एकेकस्मेषोपकारस्य प्राणान्दास्यामि ते कपे !

श्रेष्ठस्मेषोपकाराणां भवाम क्रिणो वयम् ॥

मदंगे जीर्णतां यातु यत्वयोपकृतं कपे ।

नरः प्रत्युपकाराणामापत्न्यायाति पात्रताम् ॥

(वा०२०७। ८१। २१ से २४)

'हे हनुमान् !' इन लोकमें जबनक भेरी कथा रहेगी तबतक नेरी कांति और नेरा जीवन रहेगा। और जबनक जगत् रहेगा तबतक भेरा कथा रहेगा। हे बानर, तूने मुक्षपर बैठे बैठे उपकार किये हैं, उनमेंसे एक-एक उपकारके बदलेमें मैं अपने प्राण दें दूं तो मौं तेरा बदला नहीं चुका सकता हूं ? तेरे उपकार भेरे ही शरीरमें जीर्ण हो जायें, ऐसा अवसर ही न आवे जब तुम्हे उपकारोंका बदला पाने योग्य पात्र बनना पड़े। क्योंकि जब मनुष्यपर विषयि आती है तर्भा वह प्रत्युपकारका पात्र होता है, अतएव तुम्हपर कभी आपत्ति ही न आवे।' इन बच्चोंसे पता लगता है कि श्रीहनुमान्‌जी भगवान्‌को कितने व्यारे थे !—सम्पादक।

जायन्तकी दुष्टा ।
सीता चरन बौच हति मागा । मृहं भद्रमति कारन कागा ॥



बिराध-वध ।
तुरत्वं रचिर रूप तेहि पावा । हैवि दुखी निज धाम पठावा ॥



सीता-हरण ।

कोशवंत तब रावत लाहौं सि रघु बेठाव
बला गगनपथ आतुर मध्य हँकि न आए ॥



कापट-हुग ।
‘प्रात तजत प्रादेंसि निज नेहा कुमिरिति राम समेत सनेहा



विभीषण

(लेखक—श्रीरघुनाथप्रसादसिंहजी)



सारिक, राजनीतिक, प्राचिवारिक इति-
से विभीषणवाङ्मा चरित्र निष्पत्तीय
कहा जानेपर भी आध्यात्मिक विचार-
की हिसेविभीषण एक उच्च कोटि के
जीव हैं, क्योंकि संसारमें अन्य
चारण करनेका फल उन्हें पूरा मिल
गया। अपने जीवनको उन्होंने पूर्ण-
तया सार्वक किया। श्रीमुखके बचन हैं कि सावन-धाम,
मोक्षका द्वार नदेह बड़े भावसे मास होता है। इसे पाकर
जो परबोध नहीं संचार सकता, वह—

सो धरत्र दुख पावद, सिर धुनि धुनि पछिताय ।
कालहि कर्महि ईश्वरहि, मिथ्या दोष लगाय ॥

विभीषणने विषयोंमें मन न लगाकर भवसागरसे पार
होनेका यज्ञ किया। 'सकल सुख खानि' स्वतन्त्र भगवद्गति-
का अवलभ्यन कर इसलोक पूर्व परबोधकमें यथेष्ट सुख प्राप्त
किया।

विभीषणजीका झुकाव तो भगवान्की और पहलेसे ही
था, वह भगवत्-प्राप्तिके लिये उत्सुक जहर थे किन्तु विना
सन्त-हृषकोंके सभी भक्ति प्राप्त हो नहीं सकती, भक्तिके
रहस्यका भेद मिल नहीं सकता। पर सन्त-समागम भी
तो विना पुरुष-पुंज नहीं होता।

'पुन्य-पुंज विनु मिलहि न सन्ता। सत-संगति संसृति कर अन्ता ॥

विभीषणका पुरुष पूरा था। सखमयहसीमें रहनेपर भी
वह अपना धर्म निवाहते थे। तभी तो निशिच्छरनाथ रावण
भी राजधानीमें भी हरि मन्दिरमें राम-रामका सुमिरन करते
थए यह सजनवत् निवास करते थे। इन्हींके भावसे श्री-
रामानन्दी लंकामें गये।

प्रभुके लिये इनकी उत्करठा उत्सुकतातो इसीसे जाहिर
होती है कि यह विप्रलुप्तमें हनुमाल्कीका बचन सुनते ही
होते और पूछने लगे कि 'आप हरि हैं कि हरिदास? क्योंकि
प्रभुको देखते ही मुझे मरीति होती है कि मैं जिसकी
समाप्तिमें बैठा हूँ वह आप ही हैं।'

मङ्ग-सुखम नज़ता, दीनता और सन्तोंमें स्वेह आदि
काममें थे ही। जिस बातकी कमी भी उसकी पूर्ति भी

श्रीहन्दूनाल्कीके दर्दीन और उपदेशसे हो गयी। मास्तुनन्दन
एक आदर्श भक्त थे। इनकी दीचाके बाद भारतविज्ञास
होनेमें आवश्यक ही क्या है?

पहले तो वह रावणके मंत्री, उसके वरवारी, उसकी
प्रजा और उसके बन्धु होने और सांसारिक बासनाओंके
इदृशमें रहनेके कारण दबते थे, संकोच करते थे, पर जब
इदृश-सरोवरमें वैराघ्य-सज्जिक भर गया, मनपर अनुरागका
अनोखा रंग चढ़ गया तब फिर धर्म छोड़कर अधर्मकी
ओर जाना आपके लिये सर्वथा कठिन हो गया। जिस रावण-
के भयसे उसके सम्मुख होते भी संकोच करते थे, अबसर
पाकर उसीको सदुपदेश देनेके कारण आपने उसका पाद-
प्रहार सहन किया। अब क्या था, इस विस्तृत संसारमें
इन्हें अपने ठहरनेका कोई ढौर नहीं दीख पड़ा!

यह तो नियम ही है कि जब मनुष्यका सब बल इट
जाता है, सारे सहारे छूट जाते हैं, दुनियासे प्रतावित और
पीड़ित होने लगता है तब उसे भगवान् सूक्ष्मते हैं। श्रीसूरवास-
जीने इसीलिये 'निरबलके बल राम' गाया है।

बंकासे विभीषण अपीं होकर चले। पुरुष-पुंजने ज़ोर लिया।
मन निश्चल हो गया। भगवान् श्रीरामचन्द्रके शिविरमें पहुँचे;
युद्ध-नीतिके अनुसार दूतोंने राजस जान इन्हें पकड़ लिया,
सेनापतिके पास वह लाये गये। प्रभुको संबाद दिया गया।
दुःखी होकर संसारमें कहीं ठहरनेका ढौर न पाकर विभीषण
आया है, प्रभुने सहजमें ही इस बातको जान लिया। वास्तवमें,
उस समय बलशाली रावणके वैरीको अपने पास रखने और
रावणके क्रोधानलासे उसको बचानेकी शक्ति किसीमें नहीं थी।
इसीलिये विभीषणने श्रीरामका आश्रय ग्रहण करना चाहा
क्योंकि इस समय तक संसारमें यह राहू हो गया था कि
दूरारथ-सन्तय श्रीराम भगवान्के अवतार हैं। अतएव राहमें
विभीषण मन-ही-मन सोचता आता था—

देविहैं जाइ चरण-जल-जाता। अरुन-मृदुल सेवक सुख-दाता ॥
जे पद परसि तरी रिषि-नारी। देढ़क-कालन-पावन कारी ॥
जे पद जनक-सुता उर लाये। कण्ठ-कुरुग-संग धरि-धाये ॥
हर-उर-सर सरोज पद जेर्हे। अहो भाव्य मैं देविहूँ तेर्हे

विन्ह पायन्ह के पादुकन्ह भरत हे मन लाइ ।
ते पद आज विलोकिहड़ इन्ह नगनन्ह अब जाइ ॥

प्रभुने आन दिया कि विभीषण शरथ आया है ।
शरथागतकी रक्षा क्रम सरकार कभी भूखते नहीं । विभीषण
कुछाया आता है और प्रभुके दर्शन मात्रसे वह पवित्र हो जाता
है । वह जिसी भी दातको नहीं कियाता । निष्क्रिय भावसे
कहता है कि, 'मैं तो आपके समीप आने योग्य पात्र नहीं
हूँ क्योंकि आप सुर-आता हैं और मेरा जन्म 'निश्चिर बंश' में
है, तिस पर आपके प्रबल शानु रावणका मैं भाई हूँ ।' जिन्ह
आत यह है कि—

अबन सुजसु सुनि आयें, प्रभु भेजन भव-भीर,
त्राहि । त्राहि । आरति-हरन, सरन-सुखद रघुबीर ॥,
वही प्रभुका मम्तव्य है कि—

सरनागत कहै जे तजहि निज अनहित अनुमानि ।
ते नर पाँवर पापमय, तिन्हहि विलोकत हानि ॥
कोटि विष-बध लागहि जाहू । आप सरन तजँ नहिं ताहू ॥
सनमुख होइ जीव मोहि जबही । जनम कोटि अव नासहि तबही ॥
पापन्त कर सहज सुमाक । भजन मोर तेहि भाव न काऊ ॥
जौं पै दुष्ट हृदय सेहि होई । मोरे सनमुख आव कि सेही ॥
निरमल मन जन सो मोहि पावा । मोहि कण्ठ छल छिद्र न मावा

प्रभुकी प्रतिष्ठा है—

सङ्केदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ।
अभये सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्ब्रतं मम ॥

श्रीभगवान्ध्ये इस रहस्यके विभीषण श्रीहनूमानन्दीसे
सुन सुका था और उसीके बलपर वह आया था । प्रभुने अपने
प्रबलो रक्षा, उसकी शरथागति स्वीकृत हुए ।

वहीं लंकाका राज्य भिजा, वहीं परमपदकी प्राप्ति हुई ।
विभीषणके दोनों खोक बन गये । इसीसे कहा आता है कि
शरथमें आजानेसे पर प्रभु पक्षापात्रक विचार नहीं करते ।
शरथागत जीवको वह शरथवही अपनाते हैं । आत्म-समर्पण
कर अपनेको अपने इश्वरामय प्रेमदेवकी इश्वरा यर कोडकर
'मैपन' की सर्वथा आहुति दे देनेका नामही शरथागति है ।
प्रभुके अतिरिक्त और जिसी बस्तुकी आकांक्षा नहीं, प्रभुको
जो भावे, वही किया जाय, और उन्हींकी इश्वराको अपनी इश्वरा
समका आप वही शरथागति है । वही अकिञ्च रहस्य है ।

रावणके जीवनसे शिक्षा

(लेखक—पं० उपेन्द्रनाथजी पाठक)

जइ चेतन गुण-दोषमय, विश कीन्ह करतार ॥

 स उकिके अनुसार बहाकी सृष्टिमें मात्राकी
माँति गुण और दोष, पूर्ण रूपसे सर्वज्ञ
ज्ञात हैं । अतः जिसी बस्तुको सर्वथा सदोष
भयवा निवारें कहना बहुत कठिन है किन्तु
जिसी कल्पनाकर प्रभुने सांसारिक मनुष्यों
के हृदयमें, इस विद्यमन्त्रमय संसारके
अवगुणोंसे बचकर अमर सुख भास करनेके

निमित्त, विवेकरूपी भविष्यको प्रदीप कर महान् ऋष्यामय
किया है । इसी विवेकके द्वारा मानव समाज ऐहिक और
परलौकिक सुखोंका भोग कर परमधाम ग्रास करनेके
योग्य बन जाता है । जिस मनुष्यकी विवेकरूपी भविष्य
विषय-वासनाओंके मोहमय अन्धकारसे प्रमाहीन हो जाती
है, वह नाना प्रकारके कष्टोंका जरूर बन जाता है । उसके
हृदयसे भवे-तुरेकी पहिचान भरनेकी शक्ति नष्ट हो जाती
है और वह मनुष्य होते हुए भी मनुष्य-भक्षी बन जाता
है । यह बात उतनी ही सत्य है जितना कि दो और दो चार
अथवा दिनके बाद रातका होना है । हिन्दू-संस्कृति और
सम्बताके हृतिहासमें इस विषयके समर्थनमें प्रभुर प्रमाण
उपलब्ध होते हैं । महाभारत तथा रामायणादि हृतिहास-
ग्रन्थोंमें विवेक-भ्रष्ट राजाओंकी दुर्दशा तथा पतनका ऐसा
विशद बर्णन भिजता है कि जिसे पढ़कर आश्रयकी सीमा
नहीं रहती । उन्हीं अविवेकी राजाओंमें पुलस्थ-कुम्ह-सम्भूत
राक्षस-राज रावण भी था, जिसने उप्र तपश्चाके द्वारा भगवान्
शंकरको प्रसन्न कर देव पूर्व दानव दोनों ही से तुष्णि ग्राहक
देने तककी सेवा करवायी थी, जिसने अपने प्रबंद्ध सुजदादोंके
प्रबल प्रतापसे कालापि, इन्द्र और बल्लभों भी अपना
कीरत-दास बना रक्षा था, जिसने अपने जीवनमें परामर्शका
कभी दर्शन तक नहीं किया था, जिसकी स्वर्णमयी लंकाको
देखकर अमरेन्द्र भी अजित हो जाता था, जिसके अन्तः
पुरमें असंख्य अन्द्रमुखियाँ अपनी मुख्यनिवाको उज्ज्वल
ज्योतस्ना सदा सर्वदा विद्यकाया करती थीं, जिसकी सेवा
अक्षय, मेवनाद और कुम्भकरणके समान अद्वितीय बदलावन्
योद्धाओंसे पूर्ण थी, तथा जो सर्व भी प्रकाशद विद्वान्,
प्रबल परामर्शी, अद्वितीय रावणीरिश तथा महान् ऐश्वर्य-

शाकी था, ऐसे राक्षस-राज रावणका भी हृष्णकी विवेकमयि पर अहंकार और अविवेकका पढ़ी पद जानेसे पतन होते कुछ भी देर न जागी । विष्णोपभोग और मर्य-मांसादि अमरण्य पदार्थोंके निरन्तर सेवनसे उसकी हुदि भ्रष्ट हो गयी । अतपूर उसने भ्रमुको विस्मृत कर कामिनी और कांचनको ही संसारका सर्वोक्तुष्ट पदार्थ समझा, सुन्दरी नारियोंके अपहरणका धृष्टित कार्य उसके राज्यमें एक साधारण-सी बात समझी जाने जागी । अनेक कुत्त-कामिनियोंको उसकी अप्रतिहत काम-वासनाकी तृष्णि-के लिये विवश हो अपना सतीत नष्ट कर देना पड़ा । इस जघन्य व्यापारका व्यथ प्रजापर बड़े बड़े फर खगाकर निकाला जाने लगा । करका बोझ इतना बढ़ गया कि दिनके पास खाने तकके लिये भी ऐसे न थे, उन्हें अपना रक्त करके रूपमें देनेके लिये विवश होना पड़ा । ऐसा घोर अनाचार अधिक दिनोंतक भक्त-स्वल्प भगवान्से सहा नहीं जाता । जब रावणके पापका घड़ा जावालब भर गया, तब उस छरूप अपिरक्षसे जनक-ननिदीनी महारानी सीता-ने जन्म ग्रहण किया । समय पाकर जगजननीकी सौन्दर्य-की स्थाति चारों ओर फैल गयी । रावण तो कामिनी कांचनका दास था ही, उसने भी जनक-ननिदीनीको प्राप्त करनेकी चेष्टा की, पर सफल न हो सका । क्योंकि उस समयतक उसके पापका घड़ा एकदम भरा न था, जब उसका समय सक्षिकट आगया तब उसने जानकीको खुरा कर, परियामस्वरूप स्वयं मर्यी कंकाके साथ अपनेको भी नष्ट कर डाला । अतपूर रावणके चरित्रसे हमें जो शिक्षा मिलती है, वह बड़ी गम्भीर तथा मननीय है । रावण सर्वगुण सम्पन्न विद्वान् नृपति था फिल्तु कुसंग और अभिमानसे उसका सदाचार तथा विवेक नष्ट हो गया था । विवेकभ्रष्ट मनुष्योंका शतधा पतन होता है, अतपूर उसका भी सर्व-नाश हो गया ।

इससे यह सीखना आहिये कि सदाचार, विनय, धर्म-परायणता, ईश्वरमें अद्वा आदि गुणोंसे ही मनुष्यका अम्बुदय और परम कल्याण होता है, इसके विपरीत ऊँचेसे ऊँचे पद, ऐश्वर्य और बलको प्राप्त करनेपर भी सदाचारविहीन मनुष्यका अन्तमें सर्वनाश हो जाता है । इसलिये जमर

और दुश्मित्राको कोडकर सदैव ही वर्मणादनमें ही तत्पर रहना चाहिये ॥

* मुमाली राक्षसकी कन्या कैवल्याके गमं और पुलस्त्य-मुनि मुनिवर विश्वाके औरससे रावणका जन्म हुआ था । पिताकी आशानुसार कैकसी विवाहार्थ मुनि विश्वाके पास गयी थी । मुनिने उसके मनकी बात जानकर उससे कहा कि ‘तू पुत्रेच्छासे भेरे पास आयी है, तेरे पुत्र होंगे परन्तु तू प्रदोषके समय आयी इससे तेरे दारुण स्वभाव, दारुण स्वरूप और दारुण संगवाले क्रूर-कर्मों राक्षस पुत्र होंगे । कैकसीने ढरकर कहा कि ‘भगवन् ! मैं आपके सहृदय ब्रह्मवादके औरससे ऐसे निष्ठुर पुत्र नहीं चाहता, हृषा कीजिये ।’ इसपर मुनिने प्रसन्न होकर कहा कि ‘हे शोभने ! तेरे सबसे छोटा पुत्र भेरे वंशानुरूप धर्मात्मा होगा ।’ इसी कैकसी-के रावण, कुम्भकरण और विभीषण नामक तीन पुत्र, और विभीषण से बड़ी शृणुणवा नामक एक कन्या छुईं । रावण और कुम्भकरणने महातप करके ब्रह्माजसे मनुष्यादि प्राणियोंके सिवा पक्षी, नाग, यक्ष, दैत्य, दानव, राक्षस और देव आदि किसीके हाथसे न मरने, तथा इच्छानुसार मनमाना स्वरूप धारण कर सकनेका वरदान प्राप्त किया । तदनन्तर बलगवित रावणने देव-दानव सबको जात लिया । इसके उपद्रवों और अत्याचारोंसे पांडिता होकर अनेक सती देवियों-ने इसको भीषण शाप दिये थे । रावणने अपने सौतेले भाई कुवेरको लहूसे निकालकर उसपर अधिकार कर लिया था ।

कहा जाता है कि रावण परम विद्वान्, उद्दिमान, बली और चतुर था । वैदिक अनुष्ठान करता था और वेदोंपर उसने भाष्य भी रचे थे । भगवान्के प्रति भी मन-ही-मन बड़ी भक्ति करता था । इसीलिये श्रीगुरुसौरीजीने, खरदूपके मरनेपर सीताहरणका निश्चय करनेके पूर्व रावणके मनमें कैसे विचार आये थे और उसने किस उद्देश्यसे सीता-हरणका निश्चय किया था, इस बातको निश्चलित चौपाईयोंमें बड़ी खुबीसे व्यक्त किया है—

सुरनर असुर नाग स्वरूप माहीं । मेरे अनुचर सम कोउ नाहीं ॥
खर दूषन मोहि सम बलवंता । तिन्हिं को मारै बिनु भगवंता ॥
सुर-जंजन भंजन महि भारा । जौं जगदीस लीन्ह अवतारा ॥
तो मैं जाइ वैर हठि करड़ । प्रभु-सर प्रान तजे भव तरड़ ॥
होइहि भजन न तामस देहा । मन क्रम बचन मन्त्र दढ़ एहा ॥

—सम्पादक

गीधराज जटायुकी अलौकिक भक्ति

(लेखक—स्वौहार श्रीराजेन्द्रसिंहजी)

यदि गुरुआईजीने श्रीभरत, हनुमान् आदि
अनेक भक्तोंके प्रेमका बच्चन किया है
किन्तु गीधकी श्रीति रामायणमें अपना
एक विशिष्ट स्थान रखती है गीध रावणसे
जड़कर घावल होता है—

किरत न बारहि बार पचास्यो ।
चपरि चाँच चंगुल इय हति रथ,
खंड-खंड करि ढारयो ॥
बिरथ बिकल कियो, छीनि लीनि सिय,
घन धायनि अकुलान्यौ ।
तब असि काढि कठि पर पाँवर
कै प्रमुणिया परान्यौ ॥
राम-काज खाराज आजु लख्यो
जियत न जानकि त्यागी ।
तुलसिदास सुर सिद्ध सराहत
घन्य बिहँग बड़भागी ॥
वह सीताको न छुड़ा सकनेके कारण परकात्ताप कर रहा है,
इतनेमें ही श्रीराम-कालय बहाँ पहुँच जाते हैं—
मेरे पकौ हाय न लागी ।
गयो बपु बीति बादि कानन ज्यो
कलप-त्तरा दव दागी ॥
दसरथ सो न प्रेम प्रतिपात्यौ
हुतो जो सकल जग साखी ।
बरबस हरत निसाचरपति सो
हठि न जानकी रासी ॥
मरत न मैं रघुबीर बिलोके
तापस नेष बनाए ।
चाहत चलन प्रान पाँवर बिनु
किय-सुधि प्रमुहि सुनाप ॥
बारबार कर मीजि, सीस धुनि
गीधराज पछिताई ।
तुलसी प्रमु छपानु तेहि औसर
आइ गए, दोठ भाई ॥

श्रीरामजी भी गीधराजकी यह दशा देखकर उसे गोद-
में लेकर विलाप करने लगते हैं—

राघौ गीध गोद करि लीन्हों ।
नैन-सरोज सनेह-सलिल सुचि
मनहुँ अरघ-जल दीन्हों ।

श्रीराम कहते हैं कि मैं गीधराजके मिलनेसे पिताकी
सृष्टुके दुःखको भूल-सा गया या किन्तु विवाताको मेरा
यह सुख भी नहीं सुहाया ।

सुनहु रघन ! सग-पतिहि मिले बन
मैं पितु-मरन न जान्हौ ।
सहि न सक्यो सो कठिन विधाता
बड़ो पछु आजँहु भान्हौ ।

श्रीराम गीधके प्रेमको देखकर 'सीता-विवेग'को भी
भूल जाते हैं और कुछ दिन जीवन-धारण करनेके लिये
उससे बड़ा आग्रह करते हैं—

मेरे जान तात कलू दिन जीजै ।
देसिय आपु सुवन-सेवा-सुख
मोहि पिनुको सुख दीजै ।
दिव्य-देह, इच्छा-जीवन जग
बिधि मनाइ मँगि लोजै ॥

यहाँ श्रीरामजीने गीधराजको अपने पिताका पद प्रदान
किया जो दूसरे किलीको नहीं दिया जा सकता । उसे दिव्य
देह, इच्छा-मरण आदि सभीकुछ देनेका बचन दिया, यहाँ-
तक कह दिया कि 'अपने लिये नहीं तो संसारको कृतार्थ
करनेके लिये जीवन धारण कीजिये' किन्तु गीधने इनमेंसे
कोइसा प्रस्ताव भी स्वीकार नहीं किया । उसने सोचा कि
रामकी गोदमें भरनेके समान सुख और परमपदका साधन
और क्या हो सकता है ? इस मृत्युके सामने उसने चारों
फलोंको मुच्छ समझा ।

बोल्यो बिहँग बिहँसि 'रघुबर बलि
कहाँ सुभाव पतीजै ।
मेरे मरिबे सम न चारि फल
होहिं तौ क्यो न कहीजै ॥'

उसने कहा 'राम'

जाकर नाम मरत मुख आवा । अधम हुँ मुकुति होइ श्रुति गावा ॥
सो मन लोचन गोचर आगे । राहौं देह नाथ केहि लागे ॥

मृत्यु-समय जिसका नाम भी दुर्जन्म हो जाता है स्वयं
उसकी उपस्थितिमें, उसीके बचन सुनते हुए, उसीका नाम
लेते हुए तथा उसीका रूप सतत छाँसोंसे देखते हुए,
और उसीकी गोदमें सिर रखकर शरीर छोड़नेके समान अन्य
कथा सौभाग्य हो सकता है ?

नीके के जानत राम हियो है ।

प्रनतपाल, सेवक-कृपाल-चित

पितु पटरहिं दियौ हैं ।

क्रिजग जोनि-गत गीध जनमभरि

खाइ कुजंतु जियो हैं ॥

महाराज मुकुती-समाज सब-

ऊपर आज कियो हैं ।

स्वन बचन, मुकुती-नाम, रूप-चल

राम उठेग लियो हैं ।

तुलसी मे समान बड़भागी

को कहि सके बियो हैं ॥

गीधराजने कहा 'इस नश्वर शरीरके दीर्घजीवन या
इष्टछान्म-मरणकी आशामें पढ़कर मैं इस दुर्जन्म अवसरको
नहीं छोड़ सकता । मौत तो बहुत मिलेगी पर उस समय
तुम कहाँ मिलोगे ?

तुलसी प्रसु शूठे जीवन लगि

समय न बोलो लेहैं ।

जाको नाम मरत मुनि-दुर्लभ

तुमहिं कहाँ पुनि पैहैं ? ॥

(५० १३)

कितनी ढँची भावना है ! गुसाईंजीने अपनी प्रतिभासे
इस ग्रसंगको बहुत ही ढँचा बना दिया है ।

दोहावलीमें भी गुसाईंजीने बड़े अच्छे शब्दोंमें गीधके
स्वर्गीय प्रेम और दुर्जन्म मृत्युकी प्रशंसा की है—

विरत, करमगत, भगत, मुनि, सिद्ध, ऊँच अह नीच ।

तुलसी सकल सिहत सुनि, गीधराजकी भीच ॥

उन्होंने यहाँतक कह दिया है कि गीधराजके समान
मृत्यु संसारमें किसीको भी नहीं प्राप्त हो सकी ।

मुप, मरत, मरिहैं सकल, धरी-पहरके बीच ।

लही न काहू आज लौं गीधराजकी भीच ॥

मुप मुकुत, जीवन मुकुत, मुकुत मुकुत दू बीच ।

तुलसी सबहा ते अधिक गीधराजकी भीच ॥

(दोहा० २२४-२२५)

सचमुच यदि व्यानपूर्वक विचारा जाय तो मालूम होगा
कि आजतक किसी भी भक्तको ऐसी मौत नसीब नहीं हुई ।
आजीवन परम भक्तिमय जीवन विताकर मरनेवाले हुए हैं,
रामकालमें ही शरीरका विविदान देनेवाले हुए हैं, जन्मभर
पाप करके अन्तमें 'राम-नाम' से मुक्त होनेवाले हुए हैं, किन्तु
इसप्रकार रामके काजमें, रामका दर्शन करते हुए, रामके
बचन सुनते हुए और रामकी ही गोदमें लेटे हुए प्राण
व्यागनेवाला तो बड़भागी गीधके अतिरिक्त और कोई
नहीं हुआ ।

किर उसकी अन्धेष्ठि किया भी तो 'निजकर कीनहीं राम' ।
ऐसा सौभाग्य तो दशरथको भी नहीं बदा था ।

गुसाईंजीने जिस मृत्युकी कामना की थी, वह हैः—

समर मरन, पुनि सुरसरि तीरा । रामकाज उनमें सरीरा ॥

परहित लागि तजै जे देही । संतत संत प्रसंसत तेही ॥'

हनमेंसे एक 'सुरसरि-तीर' को छोड़कर गीधको शेष सभी
बातें मिलीं । परन्तु सुरसरिके बदलेमें वे पावन चरण मिल
गये, जिनसे सुरसरीजी प्रकट हुई थी ।

गुसाईंजीने विनय-पत्रिका, मानस आदि अन्योंमें स्थान
स्थानपर रामजीकी इस बातके लिये बड़ी प्रशंसा की है
कि उन्होंने गीध, शबरी आदि नीच पतित और अधमोंको
तार दिया ।

गीध अधम खण्ड अमिष भोगी । गति दीनहीं जेहि जाँचत जोगी ॥

पर विचारनेकी बात यह है कि क्या सचमुच गीध
अधम था ? अवश्य ही भक्तोंके लिये तो यही उचित है
कि वे अपनी मुत्तिमें राम-कृपाको ही कारण मानें और अपनी
करनीको सर्वदा तुष्ट समझें । हन्मातृजीको तो यही कहवा
दोभा देता है कि—

सो सब तब प्रताप रघुराई । नाथ न कछुक मोरि प्रभुताई ॥

किन्तु भगवान् उनकी करनीको अच्छी तरह समझते हैं और यदीकरण कहते हैं कि—

‘प्रतिउपकार करने का तोरा। सलमुख होइ न सकत मन मोरा ॥’

यही भी श्रीरामजी सबं गीधराजसे कहते हैं कि ‘तुम्हारी मुकिका कारण मेरी हृषा वाही है, इसमें कारण है जिःस्वार्थ परोपकारमें तुम्हारा सुखसे प्राप्त्याग कर देना ।

जल भरि नयन कहत रघुराई । तात करम निजते गति पाई ॥
परहित बस जिनके मन माहीं । तिनकहें जग दुरलभ कहु नाहीं ॥

महाराज रघुराजसिंहजीने तो रामकृष्ण और अपनी करनी दोनों ही को मिला दिया हैः—

कलुक दूर आगे चलि रघुपति बिकल बिहंग निहारथो ।
हृषानिधान जटायु अंग-रज निज जटानसों शारथो ॥
प्रभु-पद परसि गीव तनु त्याग्यो, निज हाथनि करि करनी ।
गीधराज कहें दई राम गति वेद-पुराननि बरनी ॥

अलोकोंको अपनी करनीको भी तो प्रभु-हृषाका ही फल मानना चाहिये !

भगवान् श्रीराम

(लेखक—भीजवालाप्रसादजी कानोडिया)

प्रजावत्सल श्रीराम

कौसल-पुर-नासी नर नारि बृद्ध अरु बाल ।
प्रानहुं तें श्रिय लागही सब कहें राम कृपाल ॥
उमा अवधारी नर नारि कृतारथ रूप ।
ब्रह्म सच्चिदानन्द घन रघुनाथक जहें भूप ॥



गलमें अनेक राजा होनुके हैं और होंगे पर रघुकुम्भशय अवधेष्य श्रीरामके समाव न कोई हुआ, न होगा । आज भी संसारमें जब कोई किसी राज्यकी प्रशंसा करता है तो सर्वोच्च प्रशंसामें वह यही कहता है कि यहाँ तो ‘रामराज्य’ है । इससे सिद्ध है श्रीरामका राज्यशासन ही आदर्श था । बालवत्में यदि कोई सब इतिहासोंका तुबनाल्पक अध्ययन करे तो उसे यही कहना होगा कि श्रीरामराज्यके सदृश सुशासन और किसीके भी राज्यकालमें नहीं हुआ । रामराज्यकी इतनी प्रशंसा क्यों है ? इस बातको यदि कोई जानना चाहते हों तो देखिये—एक समय दशरथ महाराजके हृषयमें यह इच्छा हुई कि मैं एह हो गया हूँ, श्रीराम राज्यके सर्वथा योग्य हूँ इनको युवराज पदपर प्रभितिक किया जाय । अपने इस अनोरत्यको महाराजने सभामें सबको सुनाया और सभीने सुनकर अति हृषे प्रकट किया एवं सभी महाराज दशरथसे अनुरोध करने लगे कि श्रीरामको शीघ्र ही युवराज-पद दिया जाना चाहिये । इस समय राजा दशरथ प्रजाओंका भाव

जाननेके उद्देश्यसे अवधवासी प्रजा तथा अन्यान्य राजाओं-से प्रश्न करते हैं—

‘आप लोग मेरे कहनेसे ही श्रीरामको क्यों राजा बनाना चाहते हैं ? जब मैं चर्मायुसार राज्यशासन कर रहा हूँ तब आपकोग श्रीरामको क्यों राजा देखना चाहते हैं ? मुझे सन्देह हो रहा है, इसे आप दूर कीजिये ।’ उसमें लोगोंने कहा ‘हे राजन् ! आपके उत्र श्रीराममें अनन्त गुण हैं, उन गुणोंके कारण ही हम सबज्ञोग उनपर मुख्य हैं और इसीकिये हम श्रीरामको अपना राजा देखना चाहते हैं—

‘श्रीराम सत्य व्यवहारके कारण सत्-पुरुष कहलाने हैं । शोभा-धर्म श्रीरामसे ही है, श्रीरामके विना सभी अशोभन है । जिस प्रकार चन्द्रमा सब प्राणियोंको आनन्द देनेवाला है उसी प्रकार श्रीराम सब प्रजाओंको आनन्द देनेवाले हैं । उमामें श्रीराम पृथ्वीके समान हैं । उदिद्वेषमें श्रीराम वृहस्पतिके समान हैं । वीर्यमें श्रीराम साक्षात् इन्द्रके समान हैं । श्रीराम धर्मज्ञ, सत्यप्रतिज्ञ और शीलवान् हैं । श्रीराम किसीकी निन्दा नहीं करते । श्रीराम सब प्राणियोंसे सत्य और प्रिय बोलनेवाले हैं । श्रीराम समझानेवाले, चरुर, कृतज्ञ और जितेनिन्द्रिय हैं । श्रीराम बहुश्रुत, बृद्ध-ज्ञानज्ञोंकी सेवा करनेवाले हैं । श्रीराम, देवता मनुष्य और असुरोंके सब अस्त्रोंमें निपुण हैं । श्रीरामने समस्त विद्याओंको विद्यमित व्रजार्थके साथ अध्ययन करके व्रत-स्नान किया है । श्रीराम वेदोंको अंग और उपांगों सहित अच्छी प्रकार जाननेवाले हैं । श्रीराम गन्धर्व-शास्त्रोंके जाननेवाले हैं श्रीराम कल्पालके आश्रय हैं । श्रीराम परम विनायी हैं ।

श्रीराम संग्राममें जाकर विना विजय पाये नहीं छौटते । श्रीराम संग्रामसे छौटकर सब पुरवासियोंसे अपने परिवार-के लोगोंके समान, पुत्र, स्त्री, शिष्य, भूत्य और अग्निहोत्री आदिका कुशल समाचार पूछते हैं । श्रीराम आग़वाणोंसे पूछते रहते हैं कि आपके छात्र-शिष्य आपकी सेवा तो करते हैं ? श्रीराम जब किसीपर आपत्ति देखते हैं तो दुखी होते हैं और उसको दूर करते हैं । श्रीराम कृदोंकी सेवा करनेवाले हैं । श्रीराम सत्यवादी वीरोंकी उड़ाति देखकर पिताके समान प्रसन्न होते हैं । श्रीराम धर्मका पालन करनेवाले हैं । श्रीराम मुसकराकर बोलनेवाले हैं और सदा प्रसन्न रहते हैं । श्रीरामको किसीके साथ सदाई-भगवान् करनेकी हथि नहीं होती । श्रीराम किसी भी विजयमें आसक्त नहीं हैं । श्रीराम क्षर्य कोध या हर्ष नहीं दिखाते । श्रीराम योहे भी उपकारसे प्रसन्न हो जाते हैं और अनेक अपकार करनेपर भी किसीसे द्वेष नहीं करते और श्रीराम प्रमाद-विहीन आत्मस्वरूप हैं ।

ऐसे सत्यपराक्रमी लोकपालके सदरा महान् गुणी श्रीरामको समग्र पृथ्वी अपना स्वामी बनाना चाहती है ।

बालकमें रामराज्यमें प्रजाको जितना सुख था, उतना सुख और किसीके राज्यमें नहीं हुआ । निःसन्देह यह अति सौभाग्यकी बात हो यदि श्रीरघुनाथजी-जैसे राजाकी प्राप्ति हो । श्रीरामके बाल्यावस्थाके ही स्त्रावादिक गुणोंसे प्रजा अत्यन्त सुखध थी, राज्याभियेकके पूर्वसे ही बालक श्रीरामने अवध्वासियोंके मनको चुरा लिया था । गोस्वामी-जी महाराज दिखाते हैं—

अनुज सखा संग भोजन करहीं । मातु पिता आम्या अनुसरहीं ॥
जेहि विधि सुखी हाहि पुर-लोगा । करहि कृपानिधि सोइ संजोगा ॥

महाराज दशरथके मुखसे राम-राज्याभियेककी बाल सुनकर प्रजाके हर्षका पार नहीं रहा ।

राम-राज अभियेक सुनि, हिय हरवे नर-नारि ।
लो सुमंगल सजन सब, विधि अनुकूल विचारि ॥

इधर श्रीरामके राज्याभियेककी तैयारियाँ हो रही हैं उधर प्रभुकी इच्छा कुछ और ही थी और हुआ भी चही । अवधके राज्य-शासनके स्थानमें बनका शासन और रक्षण श्रीरामको मिला । श्रीरामकी बनायात्राके समय प्रजाकी व्याकुलता देखिये—

सजि बन-साज-समाज सब, बनिता बन्धु समेत ।
बनिदि विप्र-नुस्खरन प्रभु, चले करि सबहि अचेत ॥
चढ़ि रथ सीय-सहित दोउ भाई ! चले हरषि अवधि हिं सिर नई ॥
चलत राम लखि अवध अनाथा । बिकल लोग सब लगे साथा ॥
कृपासिन्धु बहुविधि समुक्षावहि । फिरहि प्रेमबस पुनि किरि आवहि ॥
सहि न सके रघुबर विरहानी । चले लोग सब व्याकुल मारी ॥
सबहि विचार कीन्ह मनमार्ही । राम लक्ष्मि सिय विनु सुख नाहीं ॥
जहाँ राम तहँ सब सुख-साजू । बिनु रघुबीर अवध नहिं काजू ॥

बालक बृद्ध विहार गृह, लगे लोग सब साथ ॥
तमसा-तीर निवास किय, प्रथम दिवस रघुनाथ ॥

इसप्रकार सब प्रजा श्रीरघुवंशभूषणके साथ बन गमनके दिये तैयार हो गयी । पर अपनी प्रजाको सुख देनेवाले प्रजावस्तल राम सोचते हैं कि बनमें प्रजाको अनेक दुःख भोगने पड़ेंगे, वहाँ अवधके समान श्रीराम नहीं है, अतः आप प्रजाको अनेक प्रकारसे समझाते हैं—

रघुपति प्रजा प्रेमबस देखी । सदय हृदय दुख भयेड निसेद्धि ॥
कहि सप्रेम मृदु बचन सुहाए । बहुविधि राम लोग समुक्षाप ॥
किये घरम-उपदेस धनेरे । लोग प्रेमबस फिरहि न फेरे ॥

जब इसप्रकार बहुत समझानेपर भी अवधवासी प्रजा श्रीरामका संग नहीं छोड़ती, तब श्रीरामको बाध्य होकर राज्यके समय प्रजाको सोई हुई छोड़कर बन-नामन करना पड़ता है ।

तदनन्तर जब श्रीभरतजी श्रीरामसे मिलनेको जानेकी इच्छा प्रकट करते हैं । उस समय पुरवासियोंके आनन्द और उत्साहको देखिये—

भरत बचन सबकहं प्रिय लगे । राम-सनेह-सुधा जनु पागे ॥
अवसि चलिअ बन रामपहं भरत मंत्र भल कीन्ह ।

सोक-सिन्धु बृद्धत सबहि तुम अवलम्बन दीन्ह ॥
कहहि परसपर भा बड़ काजू । सकल चले कर साजहि साजू ॥
जेहि राज्यहि धर रह रखवारी । सो जानै जनु गरदनि मारी ॥
कोउ कह रहन कहिय नहिं काहू । को न चहै जग जीवन-ताहू ॥
नगर लोग सब सजि जाना । चित्रकूट कहै कीन्ह पयाना ॥

इसप्रकार सब प्रजा श्रीरामसे मिलनेको व्याकुल होकर चित्रकूट जाती है और वहाँ प्रभुके दर्शन करती है ।

जब रघुनाथजीके बनवासकी अवधि समाप्त हो गयी है और वे अवध छौटकर आते हैं, उस कालमें प्रजाकी उत्सुकता देखिये—

रहा एक दिन अवधि कर अति आरत पुरलोग ।

जहूँ तहूँ सोचहि नारि-नर कुस-तनु रामबियोग ॥

समाचार पुरबासिन्ह पोय । नर अरु नारि हरपि ठिं धाये ॥
जो जैसेहि तैसेहि उठि धावहि । बाल बृद्ध कोउ संग न लावहि ॥
एक एकसन बूझहि थाई । तुम देखे दयालु रघुराई ॥

श्रीराम इसप्रकार लोगोंके हृदयके आकर्षणके हेतु अवधनगरीमें पधारते हैं । श्रीरामका बनसे लौटकर अयोध्यामें आगा राज्यके लिये नहीं था, वह था—प्यारे भाई भरतके लिये और अवधवासी प्रजाके भ्रेमके लिये । और किर उनकी तीव्र श्रीतिके कारण ही आप राजसिंहासनपर बैठे थे ।

दयालु श्रीरामका स्वभाव था कि वे दूसरेके हुःखको सहन नहीं कर सकते थे और हसी स्वभाव-वश भाई भरत और प्रजाके हुःखको छिटानेके लिये आपने राज्यशासन स्वीकार किया था ।

अब श्रीरामके प्रजापालन-कालकी अवस्थाका कुछ वर्णन करते हैं । महामुनि बालमीकिजी कहते हैं—

श्रीरामके राज्य-शासनकालमें लियोंको वैधव्य-हुःख नहीं था । सर्प-भय और व्याधियोंका भय नहीं था । संसार दाकुओंसे शूल्य हो गया था । कोई अनर्थ नहीं करता था । बढ़ोंको अपनेसे छोटोंका प्रेतकार्य नहीं करता था अर्थात् बाल या युवा-मृत्यु कभी नहीं होती थी, सब प्राणी प्रसन्न और धर्मपरायण रहते थे । रामकी दृष्टिको देखकर कोई किसीकी हिंसा नहीं करता था, प्रजा रोग तथा शोकरहित थी, दीर्घायु भोगती और अनेक सन्ततियुक्त होती थी । सब वृक्ष पुष्प तथा फल-फूल ग्रदान करते । प्रजाको आवश्यकतानुसार वर्षाहारा जलकी ग्रासि होती । सुखदायक वायु वहती, मनुष्य अपने अपने कर्मोंमें सन्तुष्ट रह उसीमें प्रवृत्त रहते । और प्रजा सत्यपरायण रहती । सारांश यह कि प्रजा सर्व सुखकर्ण-समग्र थी । गोस्वामीजी महाराज रामराज्यका वर्णन करते हैं—

राम राज बैठे ब्रथलोका । हरपित भए गए सब सोका ॥
बैरन कर काढु सन कोई । रामप्रताप विषमता सोई ॥

बरनात्म निज निज धरम निरत बेद-पथ लोग ।

चलहि सदा पावहि सुख नहि भय सोक न रोग ॥

दैहिक दैविक मौतिक तापा । रामराज नहि काहुहि व्यापा ॥
सब नर करहि परसपर श्रीती । चलहि स्वधर्म निरत श्रुति रीती ॥

चारिहु चरन धरम जगमाही । धूरि रहा सप्नेहुँ अध नाही ॥

राम-भगति-रत नर अरु नारी । सकल परम गतिके अधिकारी ॥

अल्प-मृत्यु नहि कवनिहुँ पीरा । सब सुन्दर सब निरुज सरीरा ॥

नहि दरिद्र कोउ दुखी न दीना । नहि कोउ अनुच न लच्छनहीना ॥

सब निरंभ धर्मरत धुनी । नर अरु नारि अतुर सुभ-गुनी ॥

सब गुणरथ पंडित सब गयानी । सब कृतग्य नहि कपट सयानी ॥

प्रजावस्तल श्रीरामकी अवध और अवधवासियोंपर कितनो कृपा थी, इसका भगवानकी अपनी उत्सुकते ही पता लग जायगा । श्रीराम अयोध्या पहुँचनेपर पुष्पक-विमानमें बैठे हुए अपने भित्र विमीरण और सुग्रीवादिसे कहते हैं—

सुनु कथीस अंगद लेक्सा । पावन पुरी रुचिर यह देसा ॥

जद्यपि सब बैकुंठ बलाना । बेद-पुरान-विदित जग जाना ॥

अवध सरिस प्रिय मोहिनि स सोऊ । यह प्रसंग जानै कोउ कोऊ ॥

जनमभूमि भम पुरी सुहावनि । उत्तर दिसि बह सरजू पावनि ॥

अति प्रिय माहिं इहाँके बासी । भम धामदा पुरी सुखरासी ॥

दीनवत्सल श्रीराम

दीनको दयालु दानि दूसरो न कोउ ।

जाहि दीनता कहाँ, हाँ देखौं दीन सोऊ ॥

जगतमें दीन-दुखी और अनाथोंके सबे हितैषी और भित्र अधिक नहीं भित्रते । साधारणतः लोग धनवान्, सम्पद, सबल और सुखी लोगोंकी ओर ही दौड़ते हैं । ऐसे सद्-पुरुष कोई कोई ही मिलते हैं जो दीन और आत्मके हुःखोंसे दुर्मी होते हैं । हमारे चरित्र-नायक श्रीरामका सम्पूर्ण हृदय केवल दीन-दुखी अनाथोंके लिये ही था । इसीलिये दयालु राम आदर्श दीनवत्सल भाने जाते हैं और उनका चरित्र सद्-पुरुषोंके लिये मार्ग-प्रदर्शक समझा जाता है । बाल्यावस्थासे ही श्रीरामका हृदय स्वभावतः दयालु और पर-दुःख-कातर रहा । शास्त्रोंमें श्रीरामके हृदयको कठोरसे कठोर और कोमलसे भी कोमल बताया है—

कुलिसहुँ चाहि कठोर अति कोमल कुमुमहि चाहि ।

चित सोगस रुग्नाय कर समुक्षि परे कहु कहि ॥

जो धन-जन-बलके मदसे गर्वित हैं, उनके लिये उनका हृदय 'कश्चादपि कठोर' है, पर दीन अनाथ आतोंके लिये तो वह नवनीतसे भी अधिक कोमल है । बाल्यावस्थामें भी श्रीरामका वही स्वभाव था, वे किसी भी बालकको न सो कभी अप्रसन्न देख सकते थे और न किसीको रोने देते थे । जिस

किसी प्रकारसे सबको प्रसन्न रखते और हँसाया करते। खेलमें स्वयं स्वेच्छासे हारकर दूसरे बालकोंको जिता देते और उन्हें बच्च भूषण तथा अपना स्वाक्षिण भोजन-पदार्थ देकर प्रसन्न रखते। अवधके भान्यवान बालकोंकी भी ऐसी ही दशा थी, उनका चित भी जन-मन-मोहन श्रीरामके बिना चला भर नहीं जागता। पृथ्वीपाद गोस्वामीजी गाते हैं—

सुनि सीतापति सील सुभाष ।

मोद न मन तन पुलक नयन जल सो नर खेहर खाड ॥
सिसुपनते पिनु मानु बन्धु गुरु सेवक सचिव सखाड ।
कहत राम-बिधु-बदन रिसोहैं सुपेहुँ लख्यो न काड ॥
खेलत संग अनुज बालक नित जंगवत अनट अपाड ।
जीति हाँरि तुचुकारि दुलारत देत दिवावत दाड ॥

जानकीबहुभ श्रीरामका शीत-स्वभाव सुनकर जिस पुरुषका मन प्रसन्न नहीं होता, शरीर पुलकित नहीं होता और नेत्रोंमें प्रेमाश्रु नहीं आते, उसका इधर-उधर धूत पाँकते भटकना ही अच्छा है। बचपनसे ही पिता, माता, भाई, गुरु, दास, मन्त्री और सखा कभी किसीने श्रीरामके मुख-चब्बको स्वप्नमें भी कृपित नहीं देखा। वे सदा ही प्रसन्न-मुख रहते थे। भाई और दूसरे बालक जो उनके साथ खेलते, उनकी हार और अन्याय श्रीराम सदा देखते रहते थे। परन्तु अपनी जीतपर भी (उनको प्रसन्न करनेके लिये) हार जाते थे। उन लोगोंको पुच्छार-पुच्छारकर प्रेमसे दाँव देते और दूसरोंसे भी दिलाते थे।

दशरथनन्दन श्रीरामकी दीनवस्तुता सार्वभौम है। वह न तो केश और कालसे परिपिछड़ है और न व्यवहार और व्यक्तिसे ही। उनका सब काल, सब देश, और सभीके साथ समान वास्तव्य-भाव है। उनके शत्रु-मित्र, उच्च-नीच या धनी-दरिद्र भावसे कुछ भी व्यवहार-मेद नहीं है। आवश्यकता है केवल दीन और आर्त-भावकी।

कोसलकुमार रघुनाथजीकी दीनवस्तुताके कुछ उदाहरण पाठकोंके सम्मुख संक्षेपमें उपरिथित किये जाते हैं। देखिये—

दीनभावापन राजा जनको श्रीरामने कैसा सम्हाला। जनकने अपनी अयोधिजा कन्या श्रीसीताजीका स्वयम्भर रक्षा और निश्चय किया कि सीताको वही ग्रहण कर सकेगा जो बल-वीर्य और पराक्रमसे सम्पन्न होगा, उसपर निर्बल और अशक्तका अधिकार नहीं होगा। इस बल-वीर्य और पराक्रमकी परीक्षा होगी विशाल शस्त्र-चापकी प्रत्यक्षा

चढ़ानेसे। महाराज जनकके इस प्रकारके प्रयाकी घोषणा सुनकर जनक्षयुरमें अनेक राजा आये, परन्तु कोई भी इस परीक्षामें उत्तीर्ण नहीं हो सके, यहाँतक कि—

न शेर्कुर्षहे तस्य घनुषस्तोलनेपि वा ।

इस घनुषको कोई न तो उठा सका, और न हिला ही सका ।

तमकि तमकि तकि सिद्ध-घनु धरही। उठे न कोटि भाँति बल करही॥

जिन्हके कछु बिचार मनमाही। चाप समीप महीप न जाही॥

तमकि धरहि घनु मूढ नृप ऊँ न चलहि लजाइ ॥

मनहुँ पाइ भट-बाहु-बल अधिक अधिक गहआइ ॥

दिगे न संभु-सरासन कैसे। कासी-बचन सती मन जैसे ॥

सब नृप भप जोग उपहासी। जैसे बिनु विराग सन्यासी ॥

इस अवस्थामें मिथिलापतिकी कैसी दीन और आन्त दशा होगयी थी, तनिक उसका चित्र अवलोकन कीजिये— नृपन्ह बिलोकि जनक अकुलाने। बोले: बचन रोष जनु साने ॥ अब जनि कोठ माँझे भट मानी। बीर बिहीन मही मैं जानी ॥ तजहु आस निज निज गृह जाहू। लिखा न विधि बदेहि विआहू ॥ सुकृत जाइ जो पन परिहरऊँ। कुँआरि कुँआरि रहै का करऊँ ॥ जो जनेतँ बिनु भट महि भाई। तौ पन करि करतेड न हँसाई ॥

जनक महाराजकी ऐसी दीनताको भला दीनवत्सल कब सहन करनेवाले थे?

'सोन्च-भगन काढ्यो सही साहिब मिथिलाको ।'

तौ सिद्ध-घनु मूनालकी नाइं। तोरहि राम गनेश गोसाई ॥

इसप्रकार श्रीरामने दीन हुए जनक महाराजके शोकको दूरकर शस्त्र-चाप तोड़ सीताको वरण कर लिया।

दूसरी भाँकी देखिये! निशाद दरिद्र है, नीच जाति है, परन्तु भगवान् उसे अभिमानरहित और दीनभावयुक्त देखकर अपना सखा बना लेते हैं एवं उसका बदा ही मान तथा आदर करते हैं।

हिसारत निशाद तामस बपु पसु-समान बन-चारी ।

भट हृदय लगाइ प्रेमबस नहिं कुल जाति बिचारी ॥

श्रीरघुबीरकी यह बानि

नीचहूसों करत नेह सुप्रीति मन अनुमानि ॥

परम अधम निशाद पाँवर कौन तकी कानि ।

लियो सो उर लाइ सुत ज्यों प्रेमको पहिचानि ॥

लिपावदको अपना सखा बनाकर श्रीरामने इतना अधिक आवर दिया कि परम ज्ञानी श्रीबाणीह-सद्या मुनि भी उसको गजे लगाकर भिलने लगे—

प्रेम पुलकि केवट कहि नामू । कीन्ह दूरिते दंड प्रनामू ॥
राम-सहा रियि बरबस भेटे । जनु महि लुक्त सनेह सेमेटे ॥

मनुष्योंको अपनानेही तो बात ही झौन-सी है? श्रीराम ने पामर पशु-परिवारोंको भी अपना लिया और ऐसा अपना लिया कि जिसकी कहीं तुलना नहीं है। रामके लिये प्राचों-की बक्षि चढ़ानेवाले भक्तराज गीर्घके दर्दन कीलिये! जगत् जलनी सीताको रावण हरकर ले जा रहा है। गीर्घराज जटायु जब यह सुनते हैं तो चटपट दौड़कर सीताको रावणके हाथसे लुड़ानेके लिये मार्गमें ही उसके रथको रोक खेते हैं। रावणके साथ जटायुका युद्ध होता है। 'राम काज' लाते हुए जटायुके दोनों पंख रावण काट लालता है और इससे बायक होकर खाचार जटायु अभीनपर गिर पड़ते हैं। जटायुकी असमर्थताके अवसरमें रावण सीताजीको लेकर चला जाता है। इधर रघुकुलभूषण श्रीराम लक्ष्मण-सहित सीताजी सोज करते करते जटायुके पास पहुँचते हैं। यहाँ जटायुके साथ श्रीरामके अवहारको देखिये—

दीन मलीन दग्धालु विहंग
परयों महि सोचत खिल दुखारी ।
राघव दीन-दग्धालु कृपालुको
देख दुखी करना भद्र भारी ॥
गीर्घको गोदमें राखि कृपानिधि
नैन-सरोजनमें भरि बारी ।
वारहि वार मुघारहि पंख
जटायुकी धूरि जटानसो ज्ञारी ॥

दयालु राम गीर्घकी दीन-वशा देख दुःखित हो गये
और उसको अपने गोदमें लेकर कुछ दिन जीवन धारण
करनेके लिये प्रार्थना करने लगे।

परन्तु उसने जीना स्वीकार नहीं लिया और करता भी
कैसे? वह कहने लगा—

जाकर नाम मरत मुख आवा। अधमठ मुकुल होइ श्रुति गावा ॥
सो मम लोधनगोचर आगे। राखड़ देह नाथ। केहि लागे ॥

मरनेका इससे अधिक अस्त्रा अवसर फिर कब
मिलनेको था? अन्तमें जटायु श्रीरामकी मुनिदुर्बन्ध

सुकोमल गोदमें ही सदाके लिये रान्त हो जाते हैं।

श्रीराम कहते हैं—

परहित बस जिनके मनमाहीं। तिन्ह कहें जग दुर्लभ कलु नाहीं।
तनु तजि तात जाहु मम धामा। देउँ कहा तुम पूरनकामा ॥

इसके बाद जटायुकी लिया भगवान् स्वयं अपने हाथसे
अते है—

अविरल भगति मांगि वर गीर्घ गयेत हरिवाम ।

तेहि कै लिया जयोचित निज कर कीनही राम ॥

मितु ज्यों गीर्घ-लिया करि रघुपति

अपने धाम पठायो ।

ऐसो प्रभु बिसारि तुलसी सठ

तू चाहत सुख पायो ॥

इससे भी आगे बढ़िये, हमारे दीनवस्त्रक श्रीरामके
दरबारमें चेतन मनुष्य और पशु-पक्षी ही नहीं, जह पावाया-
को भी वही स्थान मिलता है। देखिये—

गौतम-पक्षी अहल्या पतिके शापसे पावाया होकर
गौतम-श्रावणमें स्थित है। उसमें न सेवाकी योग्यता
है और न श्रीरामको लुलानेका सामर्थ्य ही है। है केवल
दीनता और जड़ता। दयालु रामने इस जड़की उपेक्षा
नहीं की। मिथिलापुरी जाते समय मार्गमें अनशून्य
गौतम-श्रावणमें उस पावायको देखकर प्रभु श्रीरामजी
विश्वामित्र मुनिसे पूछने लगे—

बंद पढ़ै न कहुँ द्विजवृन्द

बनी यह कैसी बढ़ावत मैसी ।

मूँहे रसाल तमालनके तरु,

जान पैर कलु बाति अनैसी ॥

कृजं नहीं खग गूँजेन न भौर

लसी लसिते नहि आजु तौं रेसी ।

कौजै कृषा कहिये मुनि-नाथज्

मारग माँझ शिला यह कैसी ।

विश्वामित्र मुनि उत्तर देते हैं—

गौतमनारी श्रापवस, उपल-देह धरि धीर ।

चरन-कमल-रज चाहती, कृषा करहु रघुवीर ॥

अनाथ-नाथ दयामय दीनवस्त्र दयालके वश हो गिराया
अवसरसे हूँते हैं और उनके अवसरा स्वर्ण पाते ही अहल्या

कल्याण



श्रीराम-प्रतिकृ

निष्पत्ति हान करो मृदु उठा ह पन कान्दह ।

दसरी चतुर्थ स्वरूपको प्राप्त हो जाती है—

परस्त पद पावन सोक-नसावन
प्रगट भई तप-पुंज सही ।
देखत रघुनाथक जन-सुख-दायक
सनमुख होइ कर जोरि गही ॥

श्रीरामकी दयालुताका कहाँतक वल्लन किया आय ?
वद्वक बनमें विचरते हुए श्रीराम एक जगह हिन्दुओंका देर
देखकर मुनियोंसे पूछते हैं कि 'यह क्या' है ?—

अरिष्ट-समूह देखि रघुनाथा ॥ पूँछा मुनिन्ह लागि अति दाया ॥

मुनियोंने उत्तर दिया—

निसिचर-निकर सकल मुनि खाण । मुनि रघुनाथ नय जलन छाए ॥

मुनियोंके हुःखको देखकर स्वामी रघुनाथजीके नेत्रोंमें
जल आ गया, भगवान्ने उनके हुःख बूर करनेकी उसी चतुर्थ
प्रतिज्ञा की—

निसिचर-हीन कर्गे मही, भुज उठाय पन कीन्ह ।

सकल मुनिन्हके आश्रमन्हि, जाइ जाइ सुख दीन्ह ॥

इसप्रकार श्रीरामके प्रतिज्ञा करनेके बाद एक समय
श्रीमती सीता प्रभुको राश्रसोंके वधरूप हिंसात्मक कर्मसे
विरत करनेके उद्देश्यमें प्रभुमे कहने लगी—'स्वामिन ! इस
संसारमें कामजन्य व्यसन तीन प्रकारके होते हैं—एक
मिथ्याभाषण, दूसरा पर-स्त्री-सेवन और तीसरा शत्रुताके
विना हिंसा करना । हे शब्द ! आपने न तो कभी आजतक
मिथ्या शब्द उच्चारण किया है और न कभी भविष्यमें आप
कर ही सकते हैं । अर्थात् दायक परस्ती-नामन-रूप व्यसन भी
आपमें नहीं है । आपको स्वरमें भी पर-स्त्रीकी अभिलाषा
नहीं होती । आप पिताकी आशाका पालन करनेवाले,
धार्मिक और सत्यपरायण हैं । आपमें धर्म और सत्य पूर्ण-
रूपसे विराजमान हैं । आप हन्द्रिय-विज्ञप्ति हैं, यह बात
सभी जानते हैं—परन्तु आप शत्रुता न होनेपर भी राश्रसों-
के वधरूप हिंसा-कर्मको क्यों करना चाहते हैं ?' इसप्रकार
भगवान्के प्रति श्रीसीताजीने प्रेम और नक्षत्रसे अनेक
बातें कहीं । तब रघुकुलमणि श्रीरामने उत्तर दिया । 'हे
धर्महे जनकामजे ! तुमने सभी हितकर और प्रिय बातें
कही हैं । तुमने स्वर्य यह बात भी स्वीकार की है कि
क्षत्रियको धनुष इसीकिये धारक जरना चाहिये जिससे
किसी भी आर्तक शब्द कभी सुनायी न दे । हे सीते ! इस

१५

दद्धकारात्मवासी सीक्षण ब्रतोंके पालन करनेवाले मुनिगण
मुझे अपना राष्ट्रक मानकर मेरी शरण हो गये हैं । वे कूर कर्म
करनेवाले राश्रसोंसे उत्परिवित हो रहे हैं, अव्यन्त दुखी
हैं । यह सब बातें मुनियोंने मुक्षसे कही हैं । मैंने उनसे
पूछा 'क्या करना चाहिये'-तब मुनियोंने कहा कि 'ये
राश्रस सदा ही हम लोगोंके बह, बत, तपादि अलुडानमें
विना करते हैं और बिना ही कारण हमलोगोंको सताते हैं ।
यथपि हमबोगा तपके बजसे हून राश्रसोंको नष्ट कर सकते
हैं किन्तु ऐसा करनेसे हम अपने तप और साधनसे गिरते हैं
अतएव हे राम ! आप हमारी रक्षा कीजिये ।' हे सीते !
इसप्रकार उनके दीन वचनोंको सुनकर मैंने प्रतिज्ञा कर ली
है और अब मैं प्राण रहते कभी प्रतिज्ञाके प्रतिकूल
नहीं चल सकता । मैं चिरकालसे सत्यको अपना इष्ट
समझता हूँ ।' इसीकिये श्रीतुलसीदासजीने कहा है—

अस प्रमु दीनबन्धु हरि कारन-रहित कृपाल ॥

तुलसिदास सठ ताहि भजु छाँडु कपट-जंगाल ॥

प्रमुखी दयालुताका दूसरा उदाहरण देखिये ! सुश्रीव
अपने अषेष भ्राता वालिके द्वारा निगृहीत हो, घरसे निकल
पड़ता है और वालिके भवसे कहीं भी आश्रय न
पाकर अव्यमूक पर्वतपर आश्रय लेता है । इस पद्माङ्कपर
वालि शापके भवसे नहीं जा सकता था । वालिने सुश्रीवकी
सम्पत्ति तथा उसकी खालीको हर लिया था । ऐसी दीन दशामें
पका हुआ सुश्रीव जब भगवान् श्रीरामका आश्रय अहण
करता है, तब वे उसके हुःखोंको सुनकर प्रतिज्ञा करते हैं—

सुनु सुश्रीव मैं मारिहौं बालिहि एकहि बान ।

बद्ध-रुद्र-सरनागत गण न उबरिहि प्रान ॥

सुश्रीवके हुःखसे श्रीराम यहाँतक अथित होते हैं कि
उस दुर्दशावस्था दीनको अपना मित्र मानकर उसके सारे
दुःखोंको अपने ऊपर ले लेते हैं । मित्रधर्मका निरूपण करते
हुए आप कहते हैं—

जे न मित्र-दुस होहि दुखारी । तिन्हहि बिलोकत पातक नारी ॥

निज-दुख-गिरि-सम रज करि जाना । मित्रक दुख-रज-सम समाना ॥

देत लेत मन संक न धरइ । बल अनुमान सदा हित करइ ॥

विपतिकाल कर सतगुन नेहा । श्रुति कह संत मित्र गुन एहा ॥

सदा सोच त्यागहु बल मोरे । सब विधि करब काज मैं तोरे ॥

किसी दयालुता है ? श्रीराम बलगविंत वालिका
बब करते हैं, उसके अपराधका यथोचित दद्ध देते हैं

परन्तु जब वालि के बहु और गर्वका नाश हो जाता है, तब तुरन्त ही उसी दीन काले वालिके प्रति ऐसी दयालुता दिखाते हैं जिसकी कोई सीमा नहीं—

सुनत राम अति कोमल बानी। बालि-सीस परसेउ निज पानी॥

अचल करौं तनु रास्तु प्राना।

मिथ्रके प्रति जैसी दयालुता है, जैसी ही शत्रुके प्रति भी है। श्रीरामकी इष्टिमें कोई भी शत्रु नहीं, वे सभीके निज जन हैं। हाँ, अभिमानी, गर्वी, दुराचारीके लिये वे साक्षात् काल-सद्य हैं, परन्तु दीनके लिये तो वे परम मधुर, स्मरणीय, मनमोहन और अति धनिष्ठ आत्मीय हैं।

जगत्‌में सक्षा दीनवत्सल एक पतितपावन श्रीरामके सिवा और कौन हो सकता है? प्राकृत मनुष्य कैसा भी क्यों न हो—राजा हो या अति बलवान्, सातु हो या विद्वान्, बमाशील हो या दयावान्, कोई कितना भी दङ्का क्यों न हो, फिर भी उसकी शक्ति और सामर्थ्य परिमित ही है। कहा है—

एकै दानि सिरोमनि साँचो

जेह जाँच्यो सोइ जाँचकता-चस किरि बहु नाच न नाच्यो॥

इसके सिवा यह बात भी है कि प्राकृत जीवकी दया भी तभी ग्रास होती है, जब उसपर जगत्-पतिकी दया होती है। कहा है—

मुनि सुर नर नग असुर साहेब तौ धनरे।

पै तैलौं जैलौं रावरे न नेकु नयन फेरे॥

इसके अतिरिक्त जगत्‌में प्राकृत जनकी उदारता किसी-न-किसी स्वार्थको लेकर ही होती है। गोस्वामीजी कहते हैं—

ऐसो को उदार जग माहों।

विनु सेवा जो द्रवै दीनपर राम सरिस कोड नाहा॥

ऐसे राम दीन हितकारी।

अति कोमल करनानिधान, विनु कामन पर-उपकारी॥

एक बात और है, यदि दूसरे किसीसे भीख मिल भी गयी तो उससे सदाके लिये भिलमंगापन नहीं मिटता। उससे एक काल या कुछ कालके लिये उद्यिक सुख होता है, दुःखका आत्मनिक नाश नहीं होता। पर श्रीरामका दान तो कुछ विलम्बा ही है।

और कहि माँगिए को माँगिबो निवारै॥

अभिमत-दातार कौन दुख दरिद्र दाई॥

इन सबके अतिरिक्त एक बात और भी है, स्वामीको छोड़कर अन्य किसीके भी सामने हाथ फैजाना वहे कलहकी बात है। परन्तु अपने स्वामीसे माँगनेमें शापसि नहीं। यहाँ तो अपना वैसा ही अधिकार है जैसा पिताकी सम्पत्तिपर उत्रका और स्वामीकी सम्पत्तिपर उसीका अधिकार होता है। गोस्वामीजी महाराजने कहा है—

‘तोहि माँगि माँगनो न माँगनो कहायो।’

जे जे तैं निहल किए फूले फिरत पाए॥

यह बात अवश्य है, कि प्रभुकी कृपासे प्रभुकी ही शक्तिको ग्रासकर प्रभुके दास वाहे जैसे दयालु बन जाते हैं। उन दासोंमें उनका अपना कोई प्रभाव और बल नहीं रहता। जो कुछ है, सब प्रभुका है। प्रभु जो चाहें, वही कार्य उनसे करा सकते हैं और उनका चाहे जितना गौरव भी बड़ा सकते हैं, यह सब प्रभुकी हृच्छा है। अतएव छुल-करट त्यागकर अद्वितीय दीनवत्सल जानकीवल्लभ श्रीरामके चरणोंमें दीन होकर उपस्थित होनेसे सदाके लिये दीनताका नाश हो सकता है—

कोमलचित् अति दीनदयाला। कारन विनु रघुनाथ कृषाण॥

भक्तवत्सल श्रीराम

नान्यास्पृहा रघुपते द्वदये मददये,
सद्य वदामि च भवानखिलान्तगत्मा।

भक्ति प्रयच्छ रघुपुंगव निर्भरा मे,
कामादिदोपरहितं कुरु मानसं च॥

अखिल भुवनपति भगवान्, जब अपने भक्तोंके हृदयमें मिलनेकी उत्कट उत्कट देखते हैं, अथवा जब अपने भक्तोंको विषत्ति-ग्रस्त समझते हैं, तब भक्तोंकी प्रीति और सुखके लिये वे सद्यं इस धराधाममें पदारते हैं—

किरत धाम बैकुण्ठ तजि, भक्त-जननके काज।

जोह जाइ जन मन भावई, धारत सोइ तन साज॥

यद्यपि भगवान् श्रीगीतामें अपने अवतरणका कारण यह बतलाया है कि—

यदा यदा हि धर्मस्य म्लानिर्भवति भारत।

अम्युत्थानमधर्मस्य तदामनं मृजाम्यहम्॥

परित्राणाय सायनों विनाशाय च दुष्कृताम्।

धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

‘हे भारत ! जब जब धर्मकी हानि और अधर्मकी वृद्धि होती है, तब तब ही मैं अपने स्वप्नो प्रकट करता हूँ। साधुपुरुषोंका उद्धार करनेके लिये और वृद्धित करने करनेवालोंका नाश करनेके लिये तथा धर्मकी स्थापनाके लिये मैं युग-युगमें प्रकट होता हूँ।’ तथापि अधिक विचारनेसे भगवान्‌के अवतरणका सुख्य कारण यही प्रतीत होता है कि वे अपने प्रिय भक्तोंसे साझात् भिलनेके लिये और अपनी इमण्टीय लीलामें उन्हें सम्मिलित करके उनकी मनोकामना पूर्ण करनेके लिये ही प्रकट होते हैं। यदि कहें कि फिर अन्यान्य कारण क्यों बतलाये गये हैं ? — तो इसके उत्तरमें यह निवेदन है कि अन्यान्य कारण भी होते हैं पर वे सब गौण होते हैं। सुख्य कारण उसे समझना आहिये जिसके लिये त्वयं अवतार धारण करनेके आतिरिक्त दूसरे उपायोंसे काम ही नहीं खल सकता और गौण कारण वह है जिसमें इच्छा हो तो त्वयं भले ही पधारें अन्यथा अन्यान्य उपायोंसे भी काम चल सकता है। यदि हम ‘अधर्मको दूर करके धर्मकी स्थापना’ को ही सुख्य कारण मानें सो यह असङ्गत है, क्योंकि धर्म-स्थापनके अन्य उपाय भी हैं। भगवान् अपने भक्त और साधुओंके द्वारा भी यह कार्य करवा सकते हैं। दुष्टोंके विनाशको सुख्य कारण मानें तो यह भी ठीक नहीं क्योंकि अपने भक्तोंको शक्ति देकर सहज ही भगवान् यह कार्य भी करा सकते हैं। इस स्थितिमें इस शंकाको स्थान नहीं है कि भगवद्भक्त भगवान्‌की शक्ति पाकर उपर्युक्त कार्य नहीं कर सकेंगे, भगवत्-शक्तिवे तुच्छसे तुच्छ जीव भी महान्‌से महान् बनकर सब कुछ कर सकता है और अत्यन्त समर्थ भी तुच्छ बन जा सकता है—

जो चेतनक हूँ जड़ करै जड़हि करै चैतन्य ।
अस समरथ रघुनाथहि भजहि जीव ते धन्य ॥
ताकहूँ जग केलु अगम नहिं, जापर हरि अनुकूल ।
तिहि प्रताप बड़वानलहि, जारि सकै खल तूल ॥
मसकहिं करहिं बिरांचि सम, अजहिं मसक ते हीन ।

भगवत्-हृषणसे सब कुछ समझ है, इसमें कुछ भी आश्वर्यकी बात नहीं। यह सब होते हुए जब भक्तके हृदयमें अपने प्रभुसे मिलनेकी आह जागृत होती है और जब उस चाहका स्वरूप प्रेसा उत्पत्त बन जाता है—

देह गेहकी सुधि नहीं दृढ़ गयी जग-प्रीत ।
'नारायण' गावत फिरे प्रेम-मरे रसीत ॥

प्रेमसहित गदगद् गिरा, कढ़त न मुखसे बात ।

'नारायण' महबूब बिन और न कछू सुहात ॥

मनमें लाली चटपटी कब निरखूँ श्रीराम ।

'नारायण' भूम्यो सभी खान पान विश्राम ॥

इसप्रकारकी अवस्थामें जब वह मिलनाकांक्षी भक्त परम व्याकुल होकर हृदयेशको उकारता है, तब उसके पास किसी प्रतिनिधिको भेजनेसे काम नहीं खल सकता। इस अवस्थामें भगवान्‌को त्वयं भक्तोंके इच्छानुरूप स्वरूपमें आना पड़ता है क्योंकि अनन्य भक्तोंकी यह भी एक विविचित्रता है कि वे भगवान्‌के जिस एक रूपके उपासक होते हैं, उसके सिवा उसी भगवान्‌के अन्य रूपके दर्शनसे उन्हें तुष्टि नहीं होती, यथापि वे उनमें कोई भेद नहीं मानते। जब श्रीराम दण्डकारण्यमें पधारते हैं और सुतीक्ष्ण मुनिको पता करता है कि श्रीराम वहाँ आये हैं, तब वह उनके दर्शनार्थ व्याकुल हो उठते हैं। सुतीक्ष्णजी आवधेश-कुमारके उपासक थे और उनसे मिलनेके लिये श्रीरामको उनके आश्रममें जाना भी या परन्तु श्रीरामके आगमनकी खबर पाते ही मुनिकी क्या दशा होती है—जरा ज्ञानसे देखिये !

प्रभु आगमन श्रवण सुनि पावा। करत मनोरथ आतुर धावा ॥
हे विधि दानवन्धु रघुराया । मो-सं सठपर करिहिं दाया ॥
सहित अनुज मोहि राम गोसाँद । मिलिहिं निज संवककी नाई ॥
एक बानि करुनानिधानकी । सो प्रिय जाके गति न आनकी ॥

सुतीक्ष्ण मुनि भगवान्‌के प्रेममें इतने विहृत हो गये कि उनको अपने तन मनकी और मार्गकी भी सुख-खुश नहीं रही—

निर्भर प्रेम मगन मुनि ग्यानी । कहिन न जाइ सो दसा भवानी ॥
दिसि अह विदिसि पंथ नहिं सूक्षा । को मैं चलेउ कहाँ नहिं बूक्षा ॥
कबहुँक फिरि पाले पुनि जाई । कबहुँक नृत्य करै गुन गाई ॥

सुतीक्ष्ण मुनिकी यह दशा थी। इतनेमें ही रघुकुलभूषण श्रीरामजी वहाँ पहुँच गये और अपने प्यारे भक्तों प्रेम-दशा पेहकी ओटसे देखने लगे ।

अविरल प्रेम मगति मुनि पाई । प्रभु देखहि तरु ओट तुकाई ॥

भक्तवत्सल श्रीराम जब अपने भक्तसे दूर नहीं रह सके—

अतिसंघ श्रीति देखि रघुबीरा । प्रगटे हृदय हरन भवभीरा ॥

प्रभुको अपने भक्तके हृदयमें प्रकट होकर भी सन्तोष

नहीं हुआ, अतः भगवान् अपने भक्तों के व्याप्ति से जगाने के लिये आगे बढ़े—

मुनि मग माँस अचल होइ बैसा। पुलक शरीर फनस-फल जैसा॥
तब रघुनाथ निकट चलि आए। देखि दसा निज जन मन भाए॥

कमलज्ञोचन श्रीराम सुतीष्ठके पास आकर मुनिको
व्याप्ति से जगाने लगे।

मुनिहि राम बहु भाँति जगावा। जागन, व्याप्ति नित सुख जावा॥
भूप रूप तब राम दुरावा। हृदय चतुर्भुज रूप दिखावा॥

मुनिके हृदयसे अवधेशकुमार श्रीराम-रूपको हृदयक
आप चतुर्भुज श्रीविष्णुरूपमें प्रकट हो गये, तब—

मुनि अकुलाइ उठा तब कैसे। बिकल दीन फनि मनि बिनु जैसे॥

यहाँ श्रीरामोपासक सुतीष्ठजी विष्णुरूपसे सन्मुष्ट नहीं
हैं, यथापि श्रीराम और विष्णुमें भेद नहीं है तथापि भक्तों तो
अपने इन्स्ति रूपकी ही चाह रहती है—

सुतीष्ठ सुनिका व्याप्ति टूट जाता है और वह सामने
प्रस्तु श्रीसीतारामको देखकर प्रश्नाम करने लगते हैं—

आगे देखि राम तनु स्थामा। सीता-अनुज सहित सुखधामा॥
परेत लकुट इव चरननिह लागी। प्रेम मगन मुनिवर बड़भागी॥

यहाँ सुतीष्ठके लिये भगवान् को श्रीरामरूपसे स्वयं
आना ही पड़ता है, प्रतिनिधिकी बात तो दूर रही, अपने ही
अन्यरूपसे भी काम नहीं चलता।

यदि यह कहा जाय कि भगवान् भक्तोंको ज्ञान प्रदान-
कर ऐसी चाहसे मुक्त क्यों नहीं कर देते अथवा मुक्ति प्रदान
करके उन्हें सन्तोष क्यों नहीं करा देते?

इसका उत्तर यह है कि ऐसे रूप धाम और जीवान्के
उपासक भक्त आरम्भसे मोक्षकी चाह न रखकर ही साधन
करते हैं। उन्हें मुक्तिकी परवा ही नहीं होती वह तो केवल
अपने उपास्यको ही चाहते हैं। ऐसे भक्तोंके भावको स्वयं
भगवान् इस प्रकार बतलाते हैं—

न पारमेष्ठं न महेन्द्रविष्णं न सर्वमौमं न रसाधिपत्यम् ।

न योगसिद्धर्पुनर्भवंत्रा भयर्पितात्मेन्द्रिति मदिनाऽन्यत् ॥

मुक्तमें आत्मसमर्पण करनेवाला भक्त एक मेरे सिवा
ब्रह्माके पदको, हनुमके पदको, सार्वमौम राज्यको, पातालके
राज्यको, योगसिद्धिको, अथवा मोक्षको भी नहीं चाहता।
अन्य भक्त वे ही होते हैं जो मुक्तिमें भी स्वद्वारहित हैं—

‘ये मुक्तादपि निस्पृहः’ और जिनको भगवान् के सिवा अन्य
कोई भी अभिज्ञाता नहीं ‘अन्याभिलिप्ता शूल्यं’। भक्त तो
चाहते हैं—केवल एक अपने व्यापे प्रभुको, जो सबका आवार
और सब कुछ देनेवाला है। पर वे भक्त उससे कोई अन्य
दानको न चाहकर स्वयं दाताको ही चाहते हैं। अन्य
पश्चार्थीकी तो बात ही क्या है—

‘त्रिमुवनविभवेहतवेऽप्यकुण्ठस्मृति-
रजितात्ममुरदिभिर्विमृग्यात् ।
न चलति भगवत्पदारविन्दत्,
लवनिमिष्टद्विमपि गः स वैष्णवाऽयः ॥

(श्रीभागवत ११।२।५३)

आजे निमेषके लिये भगवत्-चिन्तन छोड़नेसे यदि
त्रिलोकीका समस्त ऐवर्य भी प्राप्त होता हो तो भी भगवत्-
चरण-कल्पोंका प्रेमी भगवत्-चिन्तनका त्याग नहीं करता।

यामस्थाय समस्त मस्तकमणि कुर्वन्ति ये स्वरों ।

इसी भक्तिका आश्रय लेकर भक्त सारे ब्रह्मापदके
शिरोमणि भगवान् को अपने वशमें कर लेते हैं।

बतलाइये, इस भावके भक्तोंको भगवान् मुक्ति या ज्ञान
देकर उनसे कैसे छूट सकते हैं? ऐसे भावुकोंकी हृष्णा-पूर्णिके
लिये ही तो उन्हें स्वयं इस मर्यालोकमें आना पड़ता है। यहाँ
प्रतिनिधिहारा काम नहीं चलता। यदि कोई कहे कि ऐसे
भक्तोंको तो कुछ भी हृष्णा नहीं रखनी चाहिये? इतनी हृष्णा
भी उनमें क्यों होती है? हाँ, ठीक है, उन्हें और कुछ भी
हृष्णा नहीं होती परन्तु वे अपनी प्रभु-सेवाकी चाह नहीं
छोड़ सकते। इसीसे ये—

‘मुक्तिं निरादर्पं भग्नां तुभानं’

अतपृथ भगवान् के अपना निय शाश्वत अनृतधामसे
आकर यहाँ अवतीर्ण होनेका मुख्य कारण भक्तोंका आनन्द-
वद्धन, उनसे प्रथम भिलन तथा उनकी सेवाप्रहरण ही होता है।
यह अवश्य है कि अवतार अहम करनेपर भगवान् ज्ञोकहितकर
उनेका कार्य करते हैं। बहुतसे जीवोंका उद्धार कर देते हैं और
शेषके लिये तथा भविष्यतमें होनेवालोंके लिये अपने धामका
मार्गं प्रशस्त कर जाते हैं।

यदि कोई यह कहे कि भगवान् अवतार न लेकर जब
जब भक्तोंकी हृष्णा हो तब तब उन्हें दूर्योग देकर अन्तर्धान
हो जानेसे भी तो काम चल सकता है। इसका उत्तर यह

है कि कहीं कहीं येला भी होता है, भक्त भ्रुवजीके लिये यही तुच्छा था । परन्तु बात यह है कि भगवान्‌के भक्तगण अनोखे और विचित्र भाववाले होते हैं । मनु-शतरूपाने उनको पुत्ररूपसे ही प्राप्त करना चाहा । भगवान्‌के साथ मनुजीका वार्तालाप सुनिये ! मनुजी कहते हैं—

दानि-सिरोमनि कृपानिधि, नाथ कहीं सतभाउ ।
चाहीं तुम्हाहिं समान सुत, प्रभुसन कवन दुराड ॥
देखि ग्रीति सुनि बचन अगाल । एवमस्तु कहनानिधि बोल ॥
आपु सरिस स्तोजाँ कहैं जाई । नृप तब तनय होव मैं आई ॥
जब भगवान् कौशल्याजीके यहाँ चतुर्भुजरूपसे प्रकट हुए, तब भी माता कौशल्या भगवान्‌से प्रार्थना करती है कि—
माता पुनि बोली सो मति ढोली तजु़ तात यह रूपा ॥
कौड़ि सिसु-लीला अति-प्रियसीला यह सुख परम अनूपा ॥
सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना है बालक सुरभूपा ॥
भक्त काक भ्रुवुचिंडजीकी चाह देखिये—
जब जब राम मनुज-तनु धरही, भक्त-हेतु लीला बहु करही ॥
तब तब अवध्रुपी मैं जाँ, बान्-चरित विलोकि हरपाँ ॥
जनम-महेत्सव देखों जाई, बाल पाँच तहैं रहीं तुम्हाई ॥
इहेंद्रव मम बालक गमा, सोमा वपुष कोटि-सन-कामा ॥
निज-प्रभु-बदन निहारि निहारी, लोचन सफल करौं उरमारी ॥
लघु बायस बपु धरि हरिसंगा, देखों बालचरित बहुरंगा ॥
लरिकाई जहैं जहैं फिरहिं, तहैं तहैं संग उडाऊँ ॥
जूठन परै अजिर महैं, सोइ उठाइ पुनि खाऊँ ॥
भरिमयी शबरीजीकी आशाका आनन्द लटिये—
जब भगवान् श्रीशबरीके आभ्रममें आये हैं, तब शबरी कहती है मेरे गुरु भगवान् ग्रहणि कह गये थे कि—
रामो दाशरथीर्जातः परमान्मा सनातनः ।
आगमिष्यति चैकाग्रध्याननिष्ठास्तिथरा भव ॥
सनातन परमात्मा दशरथके पुत्र राम यहाँ आवेंगे, तू
एकाग्र चित्तसे ध्यानपरायण होकर यहाँ स्थिर रह ।
शबरीजीको अनेक कालसे श्रीरामदर्शनकी जालसा लगी थी, वह प्रभु श्रीरामको खिलानेके लिये निष्पत्ति स्वादिष्ट फलोंका संप्रह किया करती थी—आज वही स्वादभरे सरस संग्रहीत फल श्रीरामके मेंट करती है—
कन्द मूल फल सरस अति दिए रामकहैं अनि ।
प्रेमसहित प्रभु खाए बारहिं बार बक्सानि ॥

भगवान्‌ने श्रीशबरीके लिये हुए फलोंको निःसंकोच प्रेम-से खाया और फलोंकी बदाई करते करते नहीं थके, अन्तमें शबरीने श्रीरामके सम्मुख अपने प्राण्य स्थान दिये, तब श्रीरामने अपने हाथसे माताकी भीति शबरीका अन्धेष्ठि संस्कार और उसकी तर्जे-किया की । श्रीरामकी भक्त-वस्त्रलताका कहाँतक वर्णन किया जाय ?

इसप्रकार उनके भक्त अनेक प्रकारकी आशा लगाये रहते हैं, कोई सत्य-रसके आस्तादनकी इच्छा करते हैं, तो कोई वास्त्य-रसकी । कोई माधुर्य-रसकी, तो कोई वास्तव्य-रसकी और कोई शान्त-रसकी । ऐसे सभी भक्तोंके मनोरथ एवं करनेके लिये भक्तवत्सल भगवान् श्रीरघुनाथजीका अवतार है । प्रभुके साथ सद्बन्ध केवल भक्तिहारा ही होता है, चाहे वह किसी भी भाववाली हो । भगवान् श्रीशबरीके प्रति कहते हैं—

कह रघुपति सुनु भामिनि बाता । मानउँ एक भगतिकर नाता ॥
जाति पाँति कुल धर्म बडाई । धन बल परिजन गुन चतुराई ॥
भामितीहीन नर सोहहिं कैसे । बिनु जल बारिद देखिय तैसे ॥

भक्तिहारा मनुष्य भगवान् श्रीरामका आत्मीय बन जाता है । देखिये, बनवासी पशुजाति बानरोंने अपने भक्तिवत्सल से श्रीरामके हृदयपर कैसा अधिकार कर लिया । गुरु वशिष्ठके प्रति स्वर्यं श्रीराम अपने बानर भक्तोंके लिये कहते हैं—

ये सब सक्षा सुनिय मुनि मेरे । भण समर-सागर कहैं बेरे ॥
मम हित लागि जनम इन हांरे । भरतहूँ ते मोहि अधिक पियरे ॥

पूज्यपाद गोस्वामीजी महाराजने कहा है—

प्रभु तस्तर कपि डारपर, ते किय आपु समान ।
तुलसी कहूँ न रामसों सोहेब सील-निकान ॥
जे म्यान-मान-विमत्त तव भव-हरनि भगति न आदरी ।
ते पाइ सुर-दुर्लभ-पदादपि परत हम देखत हरी ॥
बिस्वास करि सब आस परिहरि दास तब जे होइ रहे ।
जपि नाम तब बिनु श्रम तरहि भव, नाथ सोइ स्मराम हे ॥

शरणागत-वत्सल श्रीराम

श्रीरामचन्द्रचरणौ मनसा स्मरामि,
श्रीरामचन्द्रचरणौ वचसा गृणामि ।
श्रीरामचन्द्रचरणौ शिरसा नमामि,
श्रीरामचन्द्रचरणौ शरणं प्रपद्ये ॥

शरणागति समल साधनोंकी पराकाढा है, सबका फल है और हृषि शरणागतिका फल है परम व्येषकी प्राप्ति । बालवर्षमें शरणागतिका फल अवश्य नीय है । फल कहनेसे तो शरणागतिभावकी लघुता होती है । अवधेशकुमार भगवन् श्रीरामचन्द्रजीकी शरणागत-बस्तुता भुवनविक्षयत है, जिस समय रावणसे निर्गृहीत होकर विभीषण श्रीरामके शरण आता है, उस समयका श्रीरामका भाव देखिये—

विभीषण अपने चार अनुघर्टों सहित श्रीरामके शिविरमें आकाश-मार्गसे आता है और सुग्रीवादि बानरोंको अपना परिषय देकर सर्वलोक-शरण्य श्रीरामके आश्रयमें से चलनेके लिये अनुरोध करता है । वह कहता है—

निवेदयत मां क्षिं राघवाय महामने ।

सर्वलोकशरण्याय विभीषणमुपस्थितम् ॥

‘सर्व लोकोंको शरण देनेवाले महाभास्त्र श्रीरामचन्द्रजीको मेरे आनेकी सूचना आप दे दें ।’

विभीषणके बचनोंको सुन और उसको वहीं छोड़कर सुग्रीवादि बानर श्रीरुद्रायाजीको उसके आगमनकी सूचना देते हैं । श्रीराम सब बानरोंकी सम्मति चाहते हैं इसपर सुग्रीव कहता है ‘भगवन् ! शत्रुसेनासे अक्षयात् यह शत्रु विभीषण अपनी सेनामें आता है, मौका पाकर अपनी सेनाका नाश बैसे ही कर देगा जैसे उल्लू कौंकोंका नाश कर देता है । यह राक्षस शूरवीर और कपटी है, अन्तर्भान हो सकता है और हङ्कारुरुप स्वरूप धारण भी कर सकता है । इसका विश्वास नहीं करना चाहिये । यह रावणके गुरुचरूपसे हमारा भेद लेने आवा है ।—

जानि न जाइ निसाचरि माया । कामरूप कहि कारन आया ॥

भेद हेन हमार सठ आवा । राखिय बाँधि मोहि वस मावा ॥

हृषि को रावणका भेजा हुआ समझिये । हृषि विश्वास कभी नहीं करना चाहिये । यह पहले विश्वल भाव दिला कर पीछे से मौका पाकर धोखा देगा । अतः इसे मन्त्रियों समेत मार ही डाबना चाहिये ।’

अङ्गद कहता है—‘विभीषण शत्रुके वहांसे आता है, उसपर सन्देह अवश्य करना चाहिये । अवसर पाकर वह प्रहर कर सकता है । इस-अहितका विवेदन करके वह संग्रह करना चाहिये । जिसमें अधिक दोष हो, उसको न्याय आहिये और जिसमें अधिक गुण हो उसीका संग्रह

करना चाहिये । यदि आपको विभीषणमें अधिक दोष प्रतीत हों तो त्याग दें और अधिक गुण प्रतीत हों तो प्रहर करें ।’

जामवन्त कहता है—‘जब यह युद्धके समय आया है, तब अवश्य ही रावणका भेजा हुआ है ।’

मन्द बानर कहता है—‘यह रावणका छोटा भाई है । मधुर बचनोंसे इससे सब समाचार पूछने चाहिये । फिर यह सद-कुदि है या असद-कुदि, इसका भी यथोचित विचार करना चाहिये ।

पद्मकुमार श्रीहन्मानजी कहते हैं—‘हे प्रभो ! आप सब शास्त्रोंके ज्ञाता हैं, शक्तिशाली, सर्वसमर्थ हैं । आपको मैं क्या मन्त्रया दूँ ? आपके विचारके सामने साचात् वृहस्पति-की भी मन्त्रवाचा तुच्छ है; मैं स्वेच्छासे, आत्मिति सा तर्कसे कुछ भी नहीं कहता । केवल आशानुरोधसे अपना विचार आपके चरणोंमें विवेदन करता हूँ । विभीषणको यहाँ बुलाकर उससे सब वृत्तान्त जानना चाहिये । सदसा वहाँ बुलाना भी अनुचित है, पर दूस भेजकर सब बातें जानना भी ठीक नहीं ज़िंदगा । विभीषण यदि आपको रावणसे अधिक पराक्रमी और गुणवान् समझकर आया है तो उसने बड़ी कुदिमानीका काम किया है । यदि दूस भेजकर परीका की आवश्यकी तो वह राक्षका करेगा और दुखी भी होगा । उसकी बोलचालमें कोई दुष्ट भाव नहीं दीखता । उसका मुख प्रसव है इसलिये विभीषणपर सन्देह नहीं होता । यदि वह धूत होता, तो शंकाशून्य स्वस्थ-चित्तसे आपके पास नहीं आ सकता । रावणको बलगर्वित, पाप-परायण देखकर उसका नाश करनेके लिये तथा राज्यकी कामनासे वह यहाँ आया है । अतः आपको विभीषणका संग्रह करना चाहिये ।’

हन्मानके हृषि नीति, धर्म, भक्ति और रहस्ययुक्त अपने मनकेसे बचन सुनकर जानकीबलभ श्रीरामने कहा—‘मित्रो ! आप सबने मेरे हितके लिये ही परामर्श दिया । अब मेरी हङ्का सुनिये—

मित्रमांदन संप्राप्त न लेजेयं कथञ्चन ।

रंगो यद्यपि तस्य स्थान् सतामेतदगर्हितम् ॥

(ग ० रा ० ६ । १८ । ३)

विश्र-भावने आये दुए विभीषणको मैं कभी नहीं त्याग सकता । यदि कुछ दोष भी हो तो भी ऐसे आगत जबको नहीं त्यागना चाहिये । वही सखुलोंकी दुल सम्मति है ।’

तदनन्तर सुश्रीवने किर कहा—‘श्रीराम ! विभीषण दुष्ट हो या शिष्ट, पर वह राष्ट्रस तो है ही ! आपसिके समय अब उसने अपने भाईको त्याग दिया है तो किर वह किसका त्याग नहीं कर सकेगा ? जातिवाले और समीपवर्तीद्वारा ग कभी कभी शत्रुओंकी सहायता किया करते हैं, परन्तु अब आपसि आती है तब उनपर ही ग्रहात करने लगते हैं, यह भी इन्हीं सब कारणोंसे आया होगा । इसके सिवा शत्रुओंमें भी शत्रुके बलका अहय करना दोषयुक्त बतलाया है, वर्तोंकि इसमें धोखा ही होता है ।’ इसप्रकार सुश्रीवने भगवान् श्रीरामके सामने अनेक युक्तियुक्त तर्कोंको सुन, प्रसन्न हो सुश्रीवकी बड़ी प्रशंसा की, और कहा ‘मित्र ! यह राष्ट्रस दुष्ट हो या शिष्ट, मेरा कुछ भी अपकार नहीं कर सकता, क्योंकि मैं चाहूँ तो पृथ्वीपर जितने राष्ट्रस, पिशाच, दानव और यश हैं, सबका अकुलीके अग्रभागसे ही विनाश कर दूँ । जब कपोत-सरीखे पक्षीने भी शरण आये शत्रुका अपना मांस देकर सल्कार किया था, तब भला, मैं इसका कैसे त्याग कर सकता हूँ ?

बद्धाज्ञिण्युं दीनं याचनं शरणागतम् ।
न हन्यादानृशंस्यार्थमपि शत्रुं परन्तप ॥
आत्मं वा यदि वा दृष्टः परेषां शरणं गतः ।
अतः प्राणान् परित्यज्य रक्षितव्यः कृतात्मना ॥
स चेत् भयद्वा मोहादा कामाद्वापि न रक्षति ।
स्वया शक्त्या यथा न्यायं तत् पापं लोकगर्हितम् ॥
विनाशः पश्यतस्तस्य रक्षिणः शरणं गतः ।
आदाय सुकृतं तस्य सर्वं गच्छेदरक्षितः ॥
एवं दोषो महानन्दं प्रपत्नामरक्षणे ।
अस्वर्गं चायशस्य च बलनीर्थविनाशनम् ॥

(बा० रा० ६ । १८ । २७-२१)

‘हे परन्तप ! जब शत्रु दीनतासे हाय जोड़कर शरणकी आचना करता हुआ प्रश्नाम करने लगे तो वह नृरांस बुद्धिवाला होनेपर भी उसको न मारे । शत्रु दुःखमें पड़ा हो, गवर्से भरा हो तथा दूसरोंके भयसे शरणमें आया हो, तब भी कृतात्मा पुरुष श्रावणोंकी कुछ भी परवा न कर उसकी रक्षा करे । जो पुरुष अय, मोह या कामसे शरण आये हुए शत्रुकी अपनी शक्ति-के अनुसार रक्षा नहीं करता, वह पापका भागी होता है और संसारमें उसकी निन्दा होती है । रक्षा चाहनेवाला

पुरुष यदि रक्षा न पाकर रक्षकी आँखोंके सामने भारा जाता है तो रक्षके सब पुण्य भरनेवालेको मिलते हैं और वह स्वर्गको चला जाता है । इसप्रकार शरणागतकी रक्षा न करनेमें बड़ा भारी दोष है और उनकी रक्षा न करना स्वर्ग-से अह करनेवाला, अपयश देनेवाला और बलवीर्यको नह करनेवाला है ।’

सरनागत कहूँ जे तजहिं, निज अनहित अनुमानि ।

ते नर पाँवर पापमय, तिन्हहि विलोक्त हानि ॥

सद-पुरुषोंके व्यवहारको विखाकर शरणागतवस्तुल भगवान् श्रीराम अपने व्रतकी अर्थात् निष्पमको धोषका करते हैं—

सङ्केदेव प्रपत्नाय तवास्मीति च याचते ।

अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्ग्रतं मम ॥

‘यह मेरा व्रत है कि जो एक बार भी मेरी शरणमें आकर ‘मैं तुम्हारा हूँ’ ऐसा कह दुस्ते शरणकी याचना करता है, मैं उसको सर्व प्राणियोंसे निर्भय कर देता हूँ ।’

मम पन सरनागत-भय-हारी ॥

कोटि विप्र-बध लागहि जाहू । आए सरन तजौं नहिं ताहू ॥
सनमुख होइ जीव मोहि जबहों । जनम कोटि अघ नासहिं तबहीं ॥

तदनन्तर भगवान् आज्ञा देते हैं कि—‘हे सुश्रीव !

आनन्दैनं हरिश्चेष्ठ दत्तमस्पामयं मया ।

विभीषणो वा सुश्रीव यदि वा रावणः स्वयम् ॥

(बा० रा० ६ । १८ । ३४)

यह व्यक्ति विभीषण हो चाहे स्वयं रावण हो, तुम उसको लिका लाओ, मैंने उसे अभय दान दे दिया ।

जो समीत आवा सरनाई । रसिहीं ताहि प्रानकी नाई ॥

प्रभुकी इसप्रकारकी धोषणाको जो पुरुष जानता है और जो उसपर विश्वास करता है वह अन्य समस्त आधरोंको त्यागकर एकमात्र शरणागत-भय-हारी भगवान्के ही शरण चला जाता है, वह कभी इधर उधर नहीं भटकता । भगवान्की शरणागतिसे वह सद्वाके लिये निर्भय हो जाता है । भक्त भर्तुरिजी महाराज अपने चित्तको उपदेश देते हुए कहते हैं—

नायं ते समयो रहस्यमधुना निद्राति नाथो यदि,

स्थित्वा द्रक्षयति कुप्यति प्रभुरिति द्वारेषु येषां वचः ।

भेतस्तानपहाय याहि भवनं देवस्य विशेषितु-
निर्दोषारिक निर्दोषोक्त्य परमं निःसीम शर्मप्रदम् ॥

रे चित्त ! देख, यदि तू किसी साधारण राजा या धनीके दरबारमें जाता है तो उनके दरबारेपर पहुँचते ही द्वारपाल तुमसे कहता है—‘अभी मिलनेका समय नहीं है, स्वामी एकान्तमें हैं।’ फिर दूसरे समय जाता है तो कहता है कि ‘स्वामी सोते हैं। मुलाकात न होगी।’ यदि भिलुक वहीं द्वारपर बैठ रहता है तो वह कहता है ‘यहाँ मत बैठो, स्वामी देखेंगे तो नाराज होंगे।’ अतएव रे चित्त ! अब भी साधारण हो और सासारिक लोगोंके आश्रयकी आशा स्थागकर उस जगत्-पति प्रभुके दरबारकी शरण ले, जहाँ न तो द्वारपर रोकनेवाला द्वारपाल है और न कोई कठोर वचन ही मुलाकात है, प्रथुत जो उसी क्षण अनन्त आनन्दको देवेवाला है।

भगवान् श्रीरामकी आशा पाकर सुग्रीव और हनुमवादि अनुघर विभीषणको प्रभुके सम्मुख ले आते हैं और विभीषण अब भगवान्‌के सम्मुख आता है तो भगवान्‌को

रूप-माडुरी देखकर वह चित्रबद्ध हो जाता है—
बहुरि राम छवि-चाम बिलोकी । रहेठठुकि इकट्क पल रोकी ॥

और यह कहता हुआ प्रभुके चरणोंमें बिज मूल वृक्षकी भाँति गिर पड़ता है—

श्रवन सुजस सुनि आयेठँ, प्रभु भंजन भव-भीर ।
त्राहि त्राहि आरतिहरन, सरन-सुखद रघुनीर ॥

भगवान् श्रीरामकी शरणागत-वस्त्रलता अनुपमेय है ।
प्रभुपाद श्रीगोस्तामीजी कहते हैं—

नाहिन और कोऊ सरन लायक दूजो

श्रीरघुपति सम विपति निवारन ।

काको सहज स्वभाव सेवकबस

काहि प्रनतपर प्रांति अकारन ॥

जन-गुन अल्प गनत सुमेह करि

अवगुन कोटि बिलोकि विसारन ।

परम कृपालु भगत-चिन्तामनि

विरद पुनीत पतित-जन-तारन ॥

श्रीरामका प्रणत-रक्षा प्रण

भगवान् श्रीरामकी शरणागतवस्त्रलता सुप्रसिद्ध है। जब रामसराज विभीषण भगवान्‌के शरण आता है और जब सम्मति पूछे जानेपर सेनापति सुग्रीव विभीषणको बाँध रखनेकी राय देता है तब भगवान् श्रीराम, नीतिके हिसाबसे सुग्रीवकी सम्मतिका सम्मान करने हुए अपना प्रण सुनाते हैं—

सता । नीति तुम नीकि विचारी । मम पन सरणागत-भय-हारी ॥

इसके बाद विभीषण सादर श्रीरामके सामने लाया जाता है और श्रीराम उसकी सज्जी शरणागतिपर मुम्भ हो—अब हङ्का न रहनेपर भी—उसे लङ्घाधिपति बना देने हैं। केवल युहसे ही ‘लङ्घेश’ नहीं कहते परन्तु ‘मम दरसन अमोध जगमाहों’ कहकर अपने हाथसे उसके राजतिलक भी कर देते हैं। सुग्रीवको यहाँ बदा आश्रय होता है। वह सेनापतिकी हैसियतसे सोचता है कि अभी लङ्घापर विजय सो मिली ही नहीं, पहले ही विभीषणको ‘लङ्घेश’ बनाकर श्रीरामने बड़ी भारी जिम्मेवारी अपने ऊपर ले ली

है। इससे सुग्रीव राजनीतिकुशलतासे बड़े ही विनश्चभाव-से श्रीरामसे एकान्तमें पक्षता है ‘नाथ ! विभीषणको तो शरणागतिका फ़ज़ मिल गया, परन्तु हे स्वामी ! यदि कल इसीप्रकार रावण शरण आ जाय तो किर क्या होगा ? क्या लङ्घाका राज्य उसे नहीं दिया जायगा ? दिया जायगा तो स्वामीके वचन कैसे रहेंगे और यदि नहीं दिया जायगा तो रावणको सम्मोह कैसे होगा ?’ भगवान् श्रीराम सुग्रीवका आशय समझकर हँसते हुए कहते हैं, ‘मित्र ! रामका वत यही है कि वह जो कुछ एक्षबार कह देता है उसे पक्षता नहीं। लङ्घा तो विभीषणकी ही होगी, यदि रावण आवेगा तो उसके लिये अवधि तैयार है—

बात कही जो कही सो कही,

जो कही सो कही किरि केरि न आनन ।

जो दसकन्धर आन मिलें,

गढ़ लेक विभीषण, अवध दसानन ॥

मरतहि बन्धु समेत कलाप कर्णँ,

निज बास मैं हूँ गिरि-कानन ।

ये नहि जाहिं लक्ष्मास,
कहौं सतिमात्र नरेस दसनन ॥

राष्ट्र राष्ट्र नहीं आया, उसने तो श्रीरामके हाथसे
मरनेमें ही अपना सौभाग्य समझा और वही उसके लिये
उत्तित था । विभीषणको जो एक बार भगवान्‌ने अपना
लिया तो किर कभी उसको वहीं भुलाया, आप उसकी
सदा सुख लेते रहे और उसे विपक्षियोंसे बचाते रहे ।

श्रीराम-रावणका भीषण युद्ध हो रहा है, राष्ट्र बहुत
कुट्ट होकर इतने बाय छोड़ता है कि श्रीरामका रथ एक
घड़ीके लिये ऐसे ही रक जाता है जैसे कुहरेसे सूर्य । इसके
बाद राष्ट्र एक सेल विभीषणपर छोड़ता है, इस सेलके
लगते ही विभीषणका मरण निश्चित है, क्योंकि यह अमोघ
है । भगवान् श्रीराम इस रहस्यको जानते थे । शक्ति कूटने
ही श्रीरामने अपना विरुद्ध समझाका—

अवत देखि सकि अति भारी । प्रनतातर हरि विरुद्ध संमारी ॥
तुरत विभीषण पाले मंला । सनमुख राम सहेड सो सेला ॥

शरणागतकी आर्तिका नाश करनेवाले श्रीराम शरणागत
भगवान् अनिष्ट कैसे देख सकते थे ? जो सब ओरसे
ममता हटाकर श्रीरामके चरणोंको ही ममताका एकमात्र
केन्द्र बना लेता है और अपने आपको सर्वतोभावेन
उनके प्रति अपेण कर देता है, उसके रणणावेणका सारा
भार, योगजोगकी सारी जिम्मेवारी भगवान् अपने ऊपर ले
लेते हैं । इसलिये भगवान् ने तुरन्त विभीषणको पीछे कर
लिया और भीषण सेलका प्रहार सहनेके लिये छाती
सामने बढ़के स्वर्ण सदे ही गये । अन्य नाय ! ऐसे शरणा-
गतकर्त्ता श्रीरामको भूलकर जो आपात-रमणीय जोगोंमें
रमते हैं, उनके समान यथनीय और कौन होगा ?

एक घटना और सुनिये । एक समय श्रीरामको मुनियों-
के द्वारा वह समाचार मिलता है कि लक्ष्मणियति विभीषण
द्विष्ट देखने कैद है । भगवान् श्रीराम अब वहीं ठहर
सके, वे विभीषणका पता लगाने और उसे सुकानेके
लिये जिक्र पढ़े । सोलह-सोबते विश्रोष नामक गौवर्ण
पहुँचे, विभीषण वहीं कैद थे । वहाँके जोगोंने श्रीरामको
प्रियकारा कि विभीषण जमीनके अन्दर एक कोठीमें
संकोचित हो चुका पड़ा है । श्रीरामके दृढ़ग्रेह आश्रयों-
में कहा— 'राजन् ! विभीषणने भ्रातृहत्या की थी, एक अति
आर्तिक युद्ध आश्रय निर्वाच उपचारमें तर कर रहा था,

१३

विभीषणने वहाँ आकर उसे पदवित्त करके मार डाका ।
आश्रयकी यत्तु होते ही विभीषणके पैर वही रुक गये,
वह एक कठम भी आगे नहीं बढ़ सका, भ्रातृहत्याके पापसे
उसकी जाल बन्द हो गयी । हम जोगोंने इस दुष्ट राक्षस-
को बहुत भार-पीटा रखनु इस पारीके प्रातः किसी प्रकार
नहीं निकले । अब हे श्रीराम ! आप पधार गये हैं, आप
कालतीं राजराजेश्वर हैं । इस पापात्माका बच करके धर्मकी
रक्षा कीविए ।' वह सुनकर श्रीराम असमझसमें पढ़ गये ।
एक ओर विभीषणका भारी अपराध है और दूसरी ओर
विभीषण श्रीरामका ही एक गुलाम है । यहाँपर श्रीरामने
आश्रयोंसे जो कुछ कहा सो बहुत ही ध्यान देने योग्य है ।
शरणागत भक्तके लिये भगवान् कहाँतक करनेको तैयार
रहते हैं, इस बातका पता भगवान्के शब्दोंसे लग जायगा ।
भगवान् श्रीराम स्वयं अपराधीकी तरह नव्रतासे कहने
लगे—

वरं ममेव मरण मद्भूते हन्ते कथम् ।
राज्यमायुर्यादत्तं तथैव स भविष्यति ॥
मृत्युपरावे र्सवत्र स्वामिनो दण्ड इष्टते ।
रामवाक्यं द्विजः श्रुत्वा विस्मयादिदमत्रुवन् ॥
(पद्मपुराण पातालालयण्ड)

'हे द्विजवरो ! विभीषणको तो मैं अखण्ड राष्ट्र और
आयु दे चुका, वह तो मर नहीं सकता । किर उसके
मरनेकी ही क्षमा अरुत है ? वह तो मेरा भक्त है, भक्तके
लिये मैं स्वयं मर सकता हूँ । सेवकके अपराधकी जिम्मेवारी
तो वास्तवमें भालिकर ही होती है । नौकरके दोषसे स्वामी
ही दण्डका पात्र होता है, अतएव विभीषणके बदले आप
जोग मुझे दण्ड दीजिये ।' श्रीरामके मुखसे ऐसे वचन सुन-
कर आश्रणमद्दली आश्रयमें ढूब गयी । जिसको श्रीरामसे
दण्ड दिलावाना चाहते थे वह तो श्रीरामका सेवक है और
सेवकके लिये उसके स्वामी श्रीराम ही दण्ड अहय करना
चाहते हैं । अहाहा ! स्वामी हो तो ऐसा हो । अन्त मनुष्यो !
ऐसे स्वामीको विसारक अन्य किस साधनसे सुखी होना
चाहते हो ? असु !

आश्रय उसे दण्ड देना भूल गये । श्रीरामके मुखसे
ऐसे वचन सुनकर आश्रयोंको वह चिन्ता हो गयी
कि विभीषण अल्पी कूट जाय और अपने भर जा
सके तो अच्छी बात है । वे विभीषणको कोइ तो सकते

ये परन्तु छोड़नेसे क्या होता, बहाहस्याके पापसे उसकी तो गति रक्षी हुई थी। अतएव आगमोंने कहा—‘राम! इस-प्रकार बन्धनमें पढ़े रखना उचित नहीं है। आप बशिष्ठ प्रभृति मुनियोंकी रायसे इसे कुछनेका प्रयत्न कीजिये।’ अनल्लर श्रीरामने प्रधान प्रधान मुनियोंसे पूछकर विभीषणके लिये तीन सौ साठ गोदानका प्राप्तिक्रिय बताकर उसे छुका दिया। प्राप्तिक्रियारा विशुद्ध होकर जब विभीषण भगवान् श्रीरामके सामने आकर सादर प्रथाम करने लगा तब श्रीरामने उसे सभामें द्वे जाकर हँसते हुप वह शिखा

की—‘ऐसा कार्य करी नहीं करना चाहिये। जिसमें अपना हित हो, वही कार्य करना चाहिये। हे राजसत्राज! तुम मेरे सेवक हो, अतएव तुम्हें सामुद्रीज होना चाहिये, सर्वज्ञ दशानु रहना चाहिये।’ सारोंश, ऐसा कोई कार्य भक्तको नहीं करना चाहिये जिससे उसके स्वामी भगवान्-पर बाष्पकूल आये।

भगवान् श्रीराम एक बार विभीषणको सम्भालने और उसे उचित शिखा देनेके लिये फिरसे छाड़ा भी गये थे।

प्रणत-जन-शरण

श्रीरामावतारके विविध भाव और रहस्य

(लेखक-विद्वार ५० अभिगवानी-शकराजी)

उद्देश्य



रामके अवतारमें प्रधानतः दो उद्देश्य थे। प्रथम, संसार-दुःखके व्याधीय भूल कारण आधमका नाश करना और दूसरा, भर्मकी बृद्धि और रक्षाके लिये एक परम पादव चरित्रवान् आदर्श महापुरुषका नमूना संसारके सामने पेश करना। जब समस्त देवताओंने एकत्र होकर प्रेमपूर्वक अवतार धारण्यके लिये परमात्मासे सम्मिलित प्रार्थना की थी, तभी उसको परमात्माने स्वीकार किया था। इससे वह सिद्ध होता है कि सावंजनिक छोड़-हित-कर कार्यकी सिद्धिके लिये अनेक पवित्रात्मा पुरुषोंका मिलकर प्रेमके साथ एकी-आवसे सम्मिलित हो उपासना और प्रार्थना करना आवश्यक है। अधिकारीने कहा है—

हरि व्यापक सर्वत्र समान। प्रेमते प्रगट होहि मैं जान। ॥
भग-जग-मय सबरहित विरामी। प्रेमते प्रमु प्रगट जिर्मि आगी। ॥

पर-दुःखसे कातर हो पर-हितार्थ श्रीभगवान्-की सेवाके भावसे, जिस्त्वार्थ होकर सबे हृदयसे जो त्यागरूप कर्म किया जाता है, वही व्याधी भगवान्-प्रेम है। इसी प्रेमके कारण भगवान्-ने अवतार प्रहृष्ट किया। दूसरे उद्देश्यमें वह विशेषता थी कि मनुष्यके चरित्रदंडनके लिये, उसके जीवनमें ईश्वरीय दिव्य गुण, कर्म और ऐश्वर्यका अधिकारिक विकास करनेके लिये,—ओ मनुष्य-जीवनका मुक्त

जन्म है—एक ऐसे आदर्श परम पवित्र जीवनका संसारमें साचाद, प्रकट होना था, जिसको इष्ट और आदर्श मानकर समस्त मनुष्यसमाज अपना चरित्र संगठन करे और अपनेमें ईश्वरीय दिव्य गुणोंका विकास करे। इसीलिये इस पादव अवतारकी लीलाएँ मनुष्योंके हारा हो सकनेवाले कर्मोंके सदृश ही हुईं, जिससे कि प्रत्येक मनुष्य उनको आदर्श मानकर प्रहृष्ट कर सके।

जन्म

महाराज वशरथने जो श्रीराम-जन्मके लिये पूर्वजन्ममें तपस्या और इस जन्ममें पुत्रेष्टि यज्ञ किया था, उससे यही तात्पर्य समकक्षा चाहिये कि यदि कोई मुख्य जिसी विशेष आत्माको अपने यहाँ जन्म-धारण करनेके लिये आद्वान करना चाहे तो उसको उस कार्यके लिये उपयुक्त तपस्या और यज्ञ करना चाहिये।

बाल-भाव

बाल्यकालमें प्रायः बालक स्वभावसे ही परम सुन्दर, शान्त, शुद्ध, सरल, निष्कपट, सत्यवादी, समवर्णी और प्रेमी होते हैं। इसीसे बालकका पवित्र स्वरूप स्वामायिक चित्ताकर्षक हुआ करता है। पवित्र और सुन्दर-सरल बालकोंमें भगवान्-का विशेष प्रकाश विद्यमान सम्प्रकल्प पूर्ण ईश्वरभावसे उत्तम क्षामा ही कर साम दुष्टा करता है। जब साधारण बालकोंमें ऐसा होता है तब श्रीभगवान्-के बाल-भावकी उपासनाका महात्म तो जौग वज्र न कर सकता है।

श्रीरामायणीके एक मनोहर वाक्यस्वरूपकी उपासना श्रीरामस्तव राजमें बतायायी है जिसमें भगवान् अपने पिताजी को गोदमें बैठे हैं। भगवान् काकनुभुविद्यी भी वाक्यस्वरूपके ही उपासक थे। श्रीभगवान्के वाक्य-वेचमें ही उनको विश्वरूपके दर्शन हुए थे। इस रूपके उपासको विशेषकर परम शान्त, शुद्ध, सरल, निष्कट, सत्यवादी, समदशी, निर्विकार और प्रेमी होना चाहिये। इस भावका धारा श्रीअयोध्याजी है और इसमें वास्तव्यरसकी प्रधानता है।

कुमार-भाव

इस भावमें भगवान् श्रीरामके ब्रह्मचारी-वेचकी उपासना की जाती है। इसके दो भाग हैं। एक गुरु श्रीविशिष्टके हारा श्रीअयोध्यामें विद्या ज्ञान आदि की शिष्या-दीक्षा और दूसरा, गुरु श्रीविश्वामित्रके हारा प्रवास और भ्रमणमें विद्या, ज्ञान और शास्त्रादिकी शिष्या-दीक्षा।

भाता-पिता और गुरुकी कठिनसे कठिन आज्ञाका विशेषकर धर्मरक्षके लिये, सहर्ष पालन करना ब्रह्मचारीका परम धर्म है। श्रीभगवान्ने पिताजी काङ्क्षासे विश्वामित्रके साथ जाकर तथा फिर विश्वामित्र गुरुकी आज्ञासे उनके यज्ञकी रक्षा और सीता-स्वर्णवरमें धनुष भंगकर इस धर्मका भली-भाँति पालन किया। धनुषभंग करनेके पश्चात् भी श्रीभगवान् ने अपने पिताजी काङ्क्षा दिना श्रीजानकीजीका पाण्य-आहवा करना स्वीकार नहीं किया (वा० २। ११६। ८१)

मधुर मिथिला-भाव

यह परम मधुर और मनोहर भाव श्रीविद्येह-नगरमें पदार्पण करनेके समवये आरम्भ होता है। इस भावमें ब्रह्मचर्य-की पराकाषा है, जिसके कारण श्रीभगवान्का सौम्यरूप अधिकाधिक सेजोमय, विद्य, सुन्दर और रम्य हो जाता है। श्रीरामकी रूपमाझुरीको देखकर ज्ञानिश्चेष्ट उनकजी कहते हैं—

ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा। उभयं वेष धरि सोइ कि आता ॥

सहज विरागरूप मन मोरा। अकित होत जिमि चन्द अकोरा ॥

उनकसुरकी भाव्यशाखिनी नारियाँ कहती हैं—

वय किसोर सुखम-सदन, स्याम-और सुखधाम ।

अंग अंगपर बारियहि, केटि-कोटि-सत काम ॥

नगरके वाक्यकोंकी दशा देखिये—

सब सिसु एहि मिस प्रेमबस, परेस मनोहर गात ।

दनु पुलकहिं अति हरष हिय, देखि देखि दोउ आत ॥

इस भावमें सुख्य घटना पुष्पवाटिकामें श्रीगिरिजाजीके स्थान पर श्रीभगवान् और श्रीजानकीजीका परस्पर साक्षात्-कार है, जहाँ श्रीजानकीजीके अलौकिक सौन्दर्यका वजान है— जनु विरन्चि सब निज निपुनाई। विरन्चि विद्य कहै प्रगट देसाई ॥ सुंदरता कहै सुंदर करै। छविनृहृ दीप-सिला जनु वरई ॥

श्रीमतीजीको देखकर श्रीभगवान्, खङ्गमण्डीसे कहते हैं— जासु बिलोकि अलौकिक सोमा। सहज पुनीत मोर मन लोमा ॥

प्रत्येक जीवात्मा अपने इष्टका अंश होनेके कारण उनकी शक्ति है। निर्मम और निरहंकार होकर प्रेरणापूर्वक सेवा-भक्ति करनेसे ही उस इष्टका दर्शन और उसके साथ सम्बन्ध हो सकता है। यह सम्बन्ध सांसारिक सम्बन्धकी दृष्टिसे एक प्रकार विद्याहके समान है, परन्तु यह तो जीवात्मा और परमात्माका आध्यात्मिक सम्बन्ध है, शारीरिक कदायि नहीं। आर्योंका विवाह भी वर्धायें में दो जीवात्माओंका सम्बन्ध है। जिसमें वरको विद्यु उसमें कर छन्याका अपर्ण किया जाता है।

प्रत्येक उपासको अपने इष्टदेवकी प्राप्तिके लिये गायत्री शक्तिके प्रकाशके आधाय और जीवन्मुक्त सद्गुरुकी आवश्यकता है। इस रामचरित्रहूप आध्यात्मिक नाटकमें श्रीजानकीजीको परम कृपापात्री साधिका समझिये और विदेह जनकको इस आध्यात्मिक विवाहमें सम्बन्ध जोड़नेवाले सद्गुरु ! परन्तु इष्टरूप वरकी प्राप्तिके लिये विद्या-शक्तिको प्राप्त करनेकी आवश्यकता है। इसी मर्यादा-के अनुसार श्रीजानकीजीने श्रीभगवान्की प्राप्तिके लिये श्रीगिरिजाजीका आराधन कर उनसे वरकी प्राप्ति की, तभी उनका श्रीरामके साथ विवाह हुआ।

इस मधुर मिथिला भावमें श्रीभगवान्का दूल्हारूपमें और उनकी विद्य परा आनन्दमयी शक्ति श्रीजानकीजीकी दुलहिनके रूपमें युगल उपासनाकी जाती है। इस भावके उपासक भक्तकी दृष्टिमें श्रीभगवान्का यह विवाह आध्यात्मिक और रहस्यमय होनेके कारण नित्य है, अतएव यह परम मधुर 'युगल जोड़ी' सदा सर्वदा श्रीमिथिला नगरीमें रहती है। इस विवाहसेवके भावकी उपासना आयन्त्र मधुर और रहस्यमयी है। इसीसे विवाहके समय देवदोक्षमें भी परम उत्सव हुआ था। (वा० १। ६६। २६—३७)

अगतके व्यवहारमें भी विवाहोत्सवसे बड़कर आनन्दग्रद घटना दूसरी नहीं है वर्षोंकि विवाहमें दो आत्माओंका एकी-करण किया जाता है। इस भावमें श्रीभगवान् अपने प्रिय

बन्धु और सखाओंसे परिवेहित हैं परं श्रीजगदीशी अपनी ग्रिव सहवा आमीष लक्षितोंसे सेवित हैं। महाके अन्दर और बाहर दोनोंकी सेवा हो रही है। विविध गीत वाय, जाना प्रकार सुन्ति-प्रार्थना आदिकेहारा अविनिरूप इसका विवर प्रवाह बहता है। इस प्रकार इस भावमें पवित्र मधुर इसकी घयेष सामरियाँ बर्तमान हैं। जैसे बृन्दावनका रासोस्सव नित्य है, बृन्दावनमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र सर्वदा विराजमान हैं 'बृन्दावनं परित्यज्य पदमेन न गच्छति ।' ऐसेही वह मधुर मिथिला विवाहोस्सव भी नित्य है, जहाँ वह अर्पण, पुण्य और, सदा बर्तमान रहती है। इस भावका धार्म श्रीजनक नगरी है, जनक नगरी और भी धर्मिष्ठ हिन्दू राज्य नेपालमें है, जहाँ बर्तमान पार्थिव सम्प्रताकी तुराहर्षी पूजा प्रवेश जहाँ कर पायी है। श्रीमतीजीकी कृपासे उस धार्मके और उस प्रांतके निवासी और भी प्रायः सुखी और स्वस्थ हैं। श्रीरामोपासको जनकपुर और उसमें श्रीगिरिजाजीके स्थानका दर्शन भक्ति-भावसे अवश्य करना चाहिये।

इस मधुर भावके एक परम भावुक महात्माको किसीने श्रीभगवान्नकी वनवात्राका संबाद सुना दिया, जिसे सुनकर वह परम व्याकुल होकर विप्रकूट गये। वहाँ जब श्रीमती और श्रीभगवान्नने दर्शन और आशासन दिया, सभी वह वहाँसे लौटे। छुपरा जिलाके सिवानके पास रहनेवाले स्वनाम-धन्य श्रीरामाजी हसी भावके उपासक थे। वे जहाँ कोई पीतवस्त्रारी दूल्हा देखते, वहाँ भगवत्-भावसे उसका आदर और सेवा करने लगते। विवाहोत्सव तकही रामायणकी कथा कहते और मधुर विवाहोत्सव प्रायः किया करते। उनका भगवान्नमें अर्पित जीवन बहुतही विशुद्ध और गाढ़ प्रेमसे प्लावित था। वह यथार्थ ही भगवान्के सब्दे कृपापात्र थे। उनकी सत्संगतिसे अनेक लोग सुधरे और ईर्ष्यानुरागी बने।

तापस-भाव

इस भावका प्रारम्भ वनवात्रासे होता है। इसमें दया और वैराग्यकी प्रवानता है। श्रीभगवान्नको न तो राज्य-भिवेकके समाचारमें हर्ष हुआ और न वन-वासके संबादसे शोक। वह दोनोंमें ही सम रहे। समता वैराग्यसे होती है। (वा० २। १६। २५-२६)

श्रीभगवान्नके वनवात्रमें कैकेयीही कारबा भी, परन्तु भगवान् कभी कैकेयीसे नाराज नहीं हुए, बल्कि उन्होंने यही कहा कि 'माता ! मैं केवल आपकी आशासे ही वह जा-

सकता था। हुमन्न वाराणीसे बनसे और भगवान् कौसल्या के श्रीरामका सन्देश तुमाका कि 'माता ! मेरी आशासे वही प्रार्थना है कि आप राजा कृष्णकीओंके कैकेयी देवीकी ओर असुरागी बनायें' (वा० २। ८८। १४) श्रीजगदीशने भरतसे कहा कि 'आई ! माता कैकेयी मेरे बनवासमें कारबा है, इस वातकी उपेक्षा करके तुम उनकी सेवा करो।' इसी तरह पहले श्रीकृष्णमायीसे कहा था कि 'मैं माता कैकेयीकी निन्दा सहन नहीं कर सकता।' बनसे औटने पर सक्ते पहले भगवान् कैकेयीके गुहमें ही पधारे थे। इससे वह सिद्ध होता है कि अपने साथ तुराई करनेवाले पर भी भगवान्नने वही दया की !

श्रीभगवान्नका बाल्यकालमें राजभवनके सुखोंको छोड़ गुह विश्वामित्रजीकी अधीनतामें व्रहाचर्यवत्सका पालन करते हुए श्रीरातके साथ उनके वशकी रक्षा करना और इस बनवासमें मुनिव्रतधारण-पूर्वक बधरूप परमौषधसे असुरोंको भवरोग-से मुक्तकर श्रावियोंकी एवं धर्मकी रक्षा करना, इस विष्य अवतारकी त्यागहारा सम्पन्न होनेवाली परम पावनी कीर्ति है। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने भी इसी नीतिके अनुसार अपने माता-पितासे शृष्टक हो साधारण गोपवेषसे बनमें गाव चारते हुए बधरूप दयापूर्वक वियासे असुरोंका भव विनाश कर धर्मकी रक्षा की थी। इस दृष्टिसे रात्राभिवेकमें हक्कावट ढालकर माता कैकेयीने जगतका बड़ा ही कल्याण किया। इस हक्कावटमें वह तो केवल निमित्त थीं, यज्ञार्थमें तो यह कार्य देवताओंका किया हुआ था। (वा० २१६। ३०-३१) श्रीभगवान् यदि वनवासको स्वीकार न करते और श्रीसीताजी उनके विविध कष्टोंका एवं रावणके हारा हरण होनेका भीषण संकट स्वीकार न करती तो खर, दूषण, रावण, तुष्मकरण आदि महाभली राष्ट्रसोंका वज नहीं होता।

यह तो उपर कहा ही जा सका है कि इस वज-सीतासे असुर और संसार दोनोंका ही मंगल हुआ। असुर मरकर मुक्त हो गये और संसारमें असुरोंके आभावसे धर्मकी रक्षा और वृद्धि हो गयी। श्रीभगवान्, श्रीसीताजी और श्रीलक्ष्मणजी हन लीनोंका वनवासरूपी त्याग संसारके हितके लिये ही हुआ था। त्यागका परिणाम अन्तमें आनन्द और कल्याण, एवं भोगका परिणाम हुःख और बद्धन होता है। श्रीभगवान्नको वनवात्रामें विविध मनोहर ग्राहितिक दृष्टि, श्रद्धि-समागम, सरक ग्रामीणोंके विशुद्ध प्रेम और वक्ते कल-मूर्तियोंसे जो ज्ञानन्द मिला,

कृत्याणि



भूकरण रामाजी प्रभमन्न नाल राहे

वह रामगांधारमें कदापि सम्बन्ध नहीं था। (वा० २।६।१२ से १५) इसीसे भगवान्‌ने श्रीकैकेशीसे कहा था—

मुनिगण मिलनु बिसेवि बन सबहि भाँति हित मोर ।
तेहि महँ पितु आपसु बहुरि संपत जननी तोर ॥

माता कौसल्यासे भी यही कहा—

पिता दीन्ह मोहि काननराजू । जहुं सब भाँति मोर बड़ काजू ॥

श्रीभगवान्‌के अनगमनके समय उनके स्वरूपको देखकर भगव और प्रामनिवासी नरनारियोंका चित्रवत् सुन्न होना, चित्रकूटमें कोल-किरातोंका उनकी सेवा करना, नीचवर्णके गुह-निवास, वानरजातिके सुप्रीत और साहस विभीषणका हार्षिक मैत्री करना आदि उदार और सुखमयी घटनाओंसे वह सिद्ध होता है कि श्रीभगवान् सदोत्तम होनेके कारण समस्त प्राणियोंके परम प्रिय हैं और उनको भी अपना आंश होनेके कारण चराचर जीवमात्र प्रिय हैं। श्रीविष्णुजीने वनगमनके समय कैकेयीसे कहा कि 'तू अभी यह देखेगी कि श्रीरामचन्द्रके बन जाते समय पशु, पक्षी, चूहा, सर्प और स्थावर वृक्ष आदि भी उनके साथ आना चाहेंगे। (वा० २।३।७।३३) भगवान्‌के बनगमन करनेपर इस शोकका प्रभाव केवल वृक्ष, जदी, पशु, पक्षी आदि पर ही नहीं, चायु, मंगल, वृधि, वृहस्पति, शनि, चन्द्र और सूर्य आदि पर भी पड़ा। (वा० २।६।८-९ एवं २।४।१६-१७) इससे पता जागता है कि ये सबको किसने प्रिय थे।

श्रीभरतजीका चित्रकूट आकर श्रीभगवान्‌को राज्यार्थया करना और उनके बदले स्वयं बनवासी बननेकी प्रार्थना करना वैराग्यका परमोच उदाहरण है। श्रीभगवान्‌का इन दोनों प्रस्तावोंको ही अस्वीकार कर देना बहसे भी उच्च वैराग्य है। भगवान्‌के अस्वीकार करनेपर भी दूसरी तरहसे श्रीभरतजीका उपर्युक्त दोनों ही प्रस्तावोंका पालन करना अर्थात् राज्यके स्वामी श्रीभगवान्‌को मानकर स्वयं उनके दास बनकर सारा कार्य करना सथा भगवसे बाहर सुनिवेषमें विविध ब्रत-नियमोंका पालन करते हुए कठिन तपस्यमें प्रवृत्त रहना, वैराग्य और ल्यागकी उत्तरतम सीमा है—न भूतो न भविष्यति। इस प्रकार श्रीभरतजीने निष्काम कर्मयोगका परमोच उदाहरण दिखाया दिया। इससे यह शिखा ग्रहण करनी चाहिये कि प्रत्येक भावुकको अपना सर्वात्म श्रीभगवान्‌के अपेक्षाकर, ममता और अहङ्कारके लागपूर्वक केवल परमात्मा श्रीभगवान्‌को अपनी वस्तु मान, अपनेको दमक निकलम

दास समझ, प्रत्येक सांसारिक व्यवहारिक कर्म, उनके निमित्त उनकी आशानुसार ही करना उचित है। श्रीभरतजी श्रीभगवान्‌की चरण-शानुकाञ्चोंको सिंहासनपर आहूष करवा कर राज्यराजसनका सारा वृत्तान्त उनको निवेदन कर उनकी आशानुसार सब काम करते थे (वा० २।१।१।२२) इसी-प्रकार कर्मयोगीको उचित है कि वह अन्तरालमा श्रीभगवान्‌को प्रानु मान उनको निवेदन करके उनकी आशानुसार समस्त कर्म करे। योन्य भावुकको भगवान्‌की अनुमति मिलेगी। गीता कहती है कि श्रीभगवान् ऐसे भावुकके अनुमत्ता है। 'जो कर्म या साधन भगवान्‌के मनोनुदृष्ट हो और जिस कर्मके कलमें आसकि न हो तथा परिणाममें एकरस—समान भाव रहे, वही कर्म भगवदाशानुसार होता है।' ऐसा समझना चाहिये। यही निष्काम कर्मकी कस्ती है।

कियोंका परम आनन्दवा और विशेष गुण छाजा है, जो इस गुणका परिपालन कर देती है वह (सती) भी नहीं है। सूर्यशक्ताने छाजाको सर्वथा व्यापक श्रीभगवान्‌के सामने अनुचित प्रसाद किया और सीताको भवय कर ढालना चाहा था, इसीलिये श्रीभगवान्‌ने उसको विहृप करके उचित दबद दिया।

प्रेमकी परीका और उसका विशेष विकास भिन्नतमें वियोगकलमें होता है, वह संयोगमें कदापि संमव नहीं। श्रीभरतजीके प्रेमका विकसित स्वरूप श्रीरामके विषयोगसे ही विश्वमें प्रकाशित हुआ था। श्रीसीतालीका विषयोग भी इसी कारण हुआ। इसीकारण गोपियोंका भी भगवान् श्रीकृष्ण-चन्द्रसे विषयोग हुआ। श्रीराम-विषयोगसे श्रीजानकीजीकी जो अवस्था हुई थी, वही भक्तिकी पराकाढ़ा है—

नाम पाहूर दिवस निसि, ध्यान तुम्हार कपाट ।

लोकन निज पद जंत्रित, प्रान जाहि केहि बाट ॥

हृष्ट-मन्दिरके अन्दर श्रीभगवान्‌के चरण-कमलमें दिव्य आनंदरिक चतुर्थोंको छागकर उनका ध्यान करना और सतत नाम स्वरण करते रहना ही डपासनाकी परमोच अवस्था है।

श्रीभगवान्‌का अधम पक्षी जटायुका प्रेतकार्य अपने हाथों करना उदारता और अनुकूल्याका परमोत्तम उदाहरण है। इससे सिद्ध है कि श्रीभगवान्‌की इष्टिमें दैनंदी-भीच सब समान थे।

श्रीशबरीजी तापस-भावकी प्रवान और आदर्ते उपासिका थीं। जिस प्रकार शब्दरीजीने समस्त बाह्य सुखोंको त्वाग, परम तपस्त्विनी बन, अहोरात्र केवल एक श्रीभगवान्‌में ही अपना प्रेम-प्लावित-चित्त पूर्ण-रूपसे लगा दिया था और वह उन्हें अर्पण करनेके लिये प्रेमोपहार संग्रह करनेमें ही प्रवृत्त रहती थी। इसीप्रकार भादुकका चित्त भी सदा सर्वदा केवल श्रीभगवान्‌में ही संकल्प रहना चाहिये और उसके समस्त कर्मोंका लक्ष्य श्रीभगवान्‌की सेवा होना चाहिये तथा श्रीभगवान्‌की परम शुष्ठिके लिये ही उन सबका अर्पण होना चाहिये।

बानरराज बालिने अपने छोटे भाई सुग्रीवकी स्त्रीका, जो उसके कन्या-सदृश थी, बलात्कारसे सतीत्व नाश कर दिया, इसीसे वह आततायी था। आततायीका वध घर्म है। श्री भगवान्‌ने सह ही कहा था कि, सनातन घर्मकी मर्यादा-का उद्धारन करनेवाले दुष्ट प्राणियोंके संहारक श्रीमात् भरत घर्मपूर्वक शासन करते और तुम जैसे कामासक अधर्मियोंको वध देते हैं, मैंने भी उन्हींकी आशासे तुम मर्यादा-रहितको दण्ड दिया है। (वा० ४। १८। २४-२५) श्रीभगवान्-ने बालिने यह भी ठीक ही कहा था कि घर्मकी गति अत्यन्त सूक्ष्म है। जो एकके लिये कर्तव्य है वही दूसरोंके लिये अकर्तव्य है। दृढ़प्रथम अन्तरामा ही घर्मकी सूक्ष्मताको जानते हैं (वा० ४। १८। २५)। यह आततायी-दमनका आदर्त है। इतना होनेपर भी उसके प्रार्थना करनेपर वहा दिलाते हुए श्रीभगवान्—अपनी स्वाभाविक उदाहरतावश—उसे प्राय रखनेको कहते हैं। इससे बदकर क्या क्या होगी?

शत्रुके सहोदर भाई विमोचनको सबके मना करनेपर भी भगवान् आश्रय देते हैं, इतना ही नहीं, उसे मित्र बनाकर जहाँका राज्य भी दे डाकते हैं, वह श्रीभगवान्‌की उद्धतम उदारता है। इसका परियाम भी परमोक्तम होता है। यहाँपर श्रीभगवान्-ने शरवागतको अभय करनेकी ओ बोकला की है वह भक्ति-भावके महावाक्य हैं। (वा० ६। १८। २१)

श्रीभगवान्-ने समुदपर सेतु निर्माण करवा लहाँ श्री-शिवजीकी स्थापना की, इसका रहस्य यह है कि श्रीरामो-पासक या अन्य देवोपासको अपने इष्टकी प्राप्ति श्री-शिवजीकी कृपा दिना नहीं हो सकती, कर्मोंकि श्रीशिवजी अग्रद्युगुरु है। श्रीमुखके बचत हैं—

जेहि पर कृष्ण कराहि पुरारी। सोन पाव पुनि भगति हमारी ॥
होइ अकाम जो छल तजि सेहिहि। भगति मोरि तेहि संकर देहिहि ॥

अउरउ एक गुपुत भत सबहि कहहुँ कर जोरि ।
संकरमजन बिना नर भगति न पावइ मोरि ॥

इस तापस-भावमें श्रीभगवान्-ने जगत्को यह उपदेश दिया कि ‘जो उरुच घर्मकी रक्त और संसारका हित करना चाहता है उसे त्याग और कष्टोंको सहर्ष स्वीकार करना चाहिये। कर्मोंकि इनके लिया भगति कार्य कभी सम्पन्न नहीं हो सकते।’ इसमें आन्यन्तरिक त्याग ही मुख्य है, बाह्य नहीं। श्रीभगवान्-ने मुनिव्रतमें रहनेपर भी घर्म-रक्षाके लिये असुरोंका विनाश किया। इसी नीतिके अनुसार गीता-ज्ञानका भी यही परियाम हुआ कि श्रीकृष्णको युद्धमें प्रवृत्त होकर अधर्ममें रत कौरव पकड़का विनाश करना पड़ा। निष्कामभावसे कर्तव्यका पालन अवश्य करना चाहिये। श्रीजानकीजीके मना करनेपर भी श्रीभगवान्-ने असुरोंका ध्वंस करनेके संकल्पको नहीं छोड़ और खलदूषण्य-से लेकर रावणातक असुरोंका ध्वंस किया। परन्तु मुनिव्रती भगवान्-ने राष्ट्रोंके साथ आत्मरक्षाके लिये ही युद्ध किया था, उनको लूटने-खसोटनेके लिये नहीं! अपराधीपर ही अस्त्र-प्रहार किया गया था। इसीसे रावणको यह संदेश भेजा गया था कि सीताको लौटा देनेपर दोष क्षमा कर दिया जायगा, परन्तु जब उसने नहीं माना, तभी चडाई-की गयी।

इस तापस-भावमें सत्य और ब्रह्मचर्यका पालन भी प्रधान है। श्रीभगवान्-का सत्य-पालन तो अनिर्वचनीय है ही, उनका एकपक्षी-व्रत और ब्रह्मचर्य भी प्रसिद्ध है (वा० ५। ३५। १२)। शास्त्र कहता है कि ‘जो गृहस्थ केवल सन्तानार्थ अतुकालमें यज्ञकी भाँति (कामासक होकर नहीं) छी-समाप्तम बनता है वह ब्रह्मचारी ही है। श्रीभगवान्-की किसीके साथ आसक्ति नहीं थी, यह भी ब्रह्मचर्यका मुख्य कारण है।

श्रीखण्डमण्डीके ब्रह्मचर्यके तो क्या कहने हैं। प्रवाम करनेके लिये प्रतिदिन श्रीसीताजीके सामने जानेपर भी उन्होंने उनके चरणोंके सिवा अन्य किसी भी अङ्गपर दृष्टिपात नहीं किया (वा० ४। ६। २२)। बनमें सीता-स्थानके समय भी सीताके अङ्ग देखना अस्वीकार कर दिया। ब्रह्मचर्यीके इस बर्तावसे यह शिष्या प्रहव्य करनी चाहिये

कि पुरुषों को माता आदि परमें वहीं लियोंके चरणोंको क्षोभकर अन्य किसी भी पर-चीका कोई भी ज़रूर करापि नहीं देखना चाहिये ।

श्रीहनुमानजी बैठिक ब्रह्मचारी थे । उनकामें रावणके महात्म में रावणकी लियोंको विवक्षा सोती हुई देखने पर भी उनका स्वाच्छन मन रसी भर भी विवित नहीं हुआ (वा० ४।११।४२-४३) । जीके दर्शनसे मनमें विकार हो जाना भी मैथुन है । अतएव ब्रह्मचर्यकी तिदिके लिये मनका ऐसा निग्रह होना चाहिये कि कारवाचश पर-चीके दृश्यन्, स्मरण, स्पर्श या भावय आदि हो जानेपर भी उसमें करापि विकार उत्पन्न न हो । श्रीहनुमानजी इसके आदर्श थे ।

श्रीसीताजी तो परम आदर्श पवित्रता थीं । उन्होंने श्रीरामके पास जानेके लिये सेषक-श्रेष्ठ श्रीहनुमानका भी अंग स्पर्श करना नहीं चाहा ।

उनमें प्रवासित होनेपर भी श्रीसीताजी चुमित नहीं हुए, प्रस्तुत स्वामीको यह संदेश कहलाया कि आप अपने भाइयोंके सदृशही पुरवासियोंकी रक्षा करें (वा० ७। ५८। १४-१५) श्रीसीताजीने सोचा कि मेरी मिथ्या निन्दा करनेके कारण श्रीराम कहीं प्रजा पर रुद्ध न हो जायें । इस कथनसे श्रीसीताजीने अपने कहोंको कुछ भी परवा न करके मिथ्यापवादी और दुःख देनेवाले लोगोंके प्रति कृपा और पतिकी प्रतिष्ठाके लिये परम उत्सुकताके दोनों ही उत्तरवल भाव दिलखाये, जो सबैथा आदर्श और अनुकरणीय हैं ।

इस भावका मुख्य धार्म चित्रकृद है और उसका ध्यान यह है—

ध्यायेदाजानु वाहुं धृतशरथनुं बद्धपशासनस्य,
पीतं वासोवसानं नवकमलदलस्पर्धिनेत्रं प्रसन्नम् ।
वामाङ्गारुद्धं सीता मुखमलमिलङ्गोचनं नीरदामं,
नानालङ्घारदीतं दधतमरुटामण्डलं रामचन्द्रम् ॥

राज-भाव

यह श्रीराम-चतुर्थ अवयवा एवायतनका भाव है । इसमें राज्याभिषेकके बाद राज्यसिंहासन पर श्रीभगवान्,

वाममें श्रीसीताजी, दूर्ले भागमें श्रीब्रह्मण्ड और सामग्रे श्रीहनुमानजीका ध्यान है । अपवा राज्यसिंहासनपर श्रीभगवान् और वामाङ्गामें श्रीजानकीजी हैं, श्रीहनुमानजी चरण सेवा कर रहे हैं । श्रीब्रह्मण्डजी दूहिनी ओर सथा श्री-भरतजी बाईं ओर हैं, वही पञ्चायतनका ध्यान है । श्रीभरतजीके साथ बाईं ओर श्रीकृष्णजीके रहनेसे यह बहायतन हो जाता है । इस भावका स्थान श्रीध्योग्या है । इसमें सभी भावोंका समावेश है । राज्यारुद्ध होनेपर भी श्रीभगवान्का स्वभाव बावजूदोंसे भी अत्यन्य कोमल और सरल था । उन्होंने सदा ही आवश्यं गृहस्य ब्रह्मचारी-व्रतका पालन किया । इस भावमें श्रीभगवान्का सुन्दर वज्र और अङ्गारोंसे आषङ्काद्वित मनोहर रूप है, आवश्यं धर्मपत्नी श्रीजानकीजी आदर्शिनी हैं । श्रीराम अविर्योंसे बेहित, परम नद्र एवं दीनों पर अत्यन्त अनुकम्भा करनेवाले हैं, परम आज्ञाकारी तीनों भाई सेवामें रत हैं । परम सुरक्षित और पूर्ण रूपसे सन्तुष्ट प्रजाका पृष्ठापत्त्व हैं । राज्यमें आपद-विपद्का पृष्ठान्त अभाव है । अयोध्याजी परम रमणीय हैं, जहाँ परम उनीत और सौम्य सरयूजी वह रही हैं । श्रीहनुमान् आदि निष्काम दास सेवामें संलग्न हैं । ये सभी पवित्र और आदर्श सामग्रियाँ यहाँ वर्तमान हैं ।

सोकहितके लिये श्रीभगवान् तुराचारीको दद्ध देनेमें अवश्य ही कठोर थे, जिससे दुराचारीका भी हित होता था । राजाके लिये यह गुण उसकी परम शोभा है ।

लियोंके सतीत्वकी रक्षामें कभी कोई बाचा न आये, इसके लिये मिथ्यापवादपर भी आदर्श सती श्रीसीताजीका त्याग और सत्यकी रक्षाके लिये सेवा-परायण श्रीब्रह्मण्डजीके त्यागका परमोज्ज्वल उदाहरण है । ब्रह्मचर्य, त्याग और सत्यका पालन महापूर्ण है । अन्तमें श्रीभगवान्का जोकहितार्थ यज्ञ करना और तपस्वी व्रतका अवलम्बन करना दूया और वैराग्यसे परिपूर्ण है ।

भगवान् श्रीरामके आदर्श लीबनसे हम सबको जाम उठाना चाहिये ।



रामोयणका रहस्य

(लेखक—स्त्रामीजी श्रीशिवानन्दजी)



मायथका रहस्य है—मनको बहामें करके जीवन्मुक्ति प्राप्त करना। अहंकार व्यावहार रामवाके वचका सत्तर्प्त है— उस कुहृतियोंका नाश करना। ये कुहृतियाँ निम्नलिखित हैं—
१ काम, २ क्रोध, ३ लोभ, ४ मोह, ५ मद, ६ मात्सर्य, ७ दम्भ, ८ अहंकार, ९ राग और १० द्वेष।

पाठ्योंमें श्रीसीताजीको 'मन', श्रीरामको 'ब्रह्म', श्री-इग्नेयाजीको 'सत्सङ्ग' और श्रीमरतजीको 'ध्याग' समझना चाहिये।

सीताजीके अपने पति श्रीरामजीसे मिलनेका आध्यात्मिक लाभ 'मनका ब्रह्ममें ज्ञाय कर देना' है। यह उसी समय सम्भव है जब कि इस राममें एकाग्र विनष्ट होकर उनका अवकरत ज्ञान करे। वही रामायणकी गृह शिखा है।

विनष्टकी पूर्ण एकाग्रता एवं शुद्ध सात्त्विक भावनासे दो अवकराते राम (रा + म) मन्त्रका सर्वदा आप करनेसे मन बहामें होता है। तदनन्तर समाधिनिष्ठा अर्थात् सर्व-व्यापक रामके साथ तन्मयता हो जाती है। फिर विचारक तथा विचार्य, ज्ञाता तथा ध्येय, पूजक तथा पूज्य, उपासक तथा उपास्य सभी मिलकर एक हो जाते हैं। मन श्रीरामसे पूर्ण हो जाता है। यह 'अमर-कीट-न्याय' के अनुसार उदाहर, उद्घृण, तन्मय, तदीय पूर्व तत्त्वीन हो जाता है।

यह असिद्ध है कि शुद्ध जैवा विचार करनेरे वैसे ही बन जातेहों। मन जिस वस्तुपर अधिक ध्यान रखता है वह जैवा ही कर जाता है। रामके अवानसे मन रामके साथ एकीभावको प्राप्त हो जाता है। उसकी इच्छा वाहुरूपिच्छीर्णां रामकी विवेचनामें विनिन हो जाती है। उस समय जीवत्यका छोप हो जाता है। वैसे कीट अमरके साथ रहने पूर्व उपास्य स्तुति ज्ञान करनेसे अमरके रूपमें परिवर्त हो जाता है, तीक वैसे ही, मन भी सर्वदा श्रीरामका ध्यान करनेसे रामरूप बन जाता है।

यह दो आकरोंका राम-मन्त्र सब मन्त्रोंमें सर्वोकृष्ट है। इसके दो कारण हैं। राममन्त्रकी रक्षा पञ्चाशर पूर्व अहारन-मन्त्रोंके संघटनासे हुई है। 'रा' शब्द

'मं नमो नारायणाय' से तथा 'म' शब्द 'मं नमः शिवाय' से लिया गया है। अतः यह महान् शक्तिसम्पद है। मन्त्र जितना कोटा होता है उससे उतनी ही अधिक विनष्टकी एकाग्रता होती है। राम-मन्त्र बहुत कोटा है अतः इससे उपरातापूर्वक विनष्टकी महान् एकाग्रता हो सकती है। पूजा, ज्ञान आद्यवा श्रीराम-मन्त्रके आपसे मन वालनमें पूज्य बहुत श्रीरामके ही आकारका बन जाता है और अभ्यासकी शुद्धताके कारण वह शुद्ध भी हो जाता है। सतत अभ्यासके हारा मन अन्य सब वस्तुओंको क्षोडकर केवल अपने कल्प एक श्रीरामसे ही परिपूर्ण हो जाता है। वह शुद्धतामें स्थिर हो जाता है फिर कभी अशुद्धताकी ओर नहीं भटकता। जबतक मनका अस्तित्व है, तबतक उसको कोई वस्तु अवश्य चाहिये। अतः साधनाका उद्देश्य मनके समय परिव्रत वस्तुओंका उपस्थित करना है।

मन्त्र-जापके समय समरूपसे शब्दोंकी पुनरावृत्ति होने-के कारण ध्यानमें जपके अधिकात् वेवताका आगमन होता है।

संस्कारके बहसे मन्त्रोंका पुनरावृत्तिके कारण विचारक गतियाँ उत्पन्न होती हैं।

मन्त्रमें 'चमकारपूर्ण' तेज ज्ञाना शक्ति होती है। वह एक विशिष्ट विचार-धाराको प्रवाहित कर मानसिक तत्त्वमें परिवर्तन कर देता है। मन्त्र-जापसे ताजाबद्द स्फुरण अथवा कल्पनका (Rhythmic Vibrations) प्रादुर्भाव होता है और इसके हारा पञ्चकोशोंसे उत्पन्न हुआ स्फुरण नियमित होता है। यही अन्यान्य वस्तुओंकी ओर आकृष्ट होनेवाले मनकी गतिका भी अवरोध करता है। जिस समय साधनाशक्ति 'पूर्ण' अथवा कठिनाइयोंने अवश्य हो जाती है उस समय यह मन्त्र-शक्ति ही उसको बहु प्रदान करती है। जिस समय मन्त्र-जैतन्य (प्रसुस चैतन्यता) जाग्रत होता है उस समय उसके हारा अतौकिक सिद्धियोंका उदय होता है।

राम-मन्त्रका जप तीव्र प्रकारका है, (१) मानसिक (२) डपाण्ड और (३) जोरसे उपास्यपूर्वक। उपास्यकी अवैश्वा उपास्य जप हजारत्युणा तथा मानसिक जप करोदगुणा अधिक शक्तिशाली है।

इस कलियुगमें हठ एवं राज्योगका अभ्यास अत्यन्त कठिन है। केवल एक भक्तिका मार्ग ही सबके लिये सर्वथा उपयुक्त है और यही सरक्षा भी है। इसमें हठदेवतासे सहायता मिलती है। भगवन्नाम-जपका अधिकारी प्रत्येक मनुष्य है। मन्त्र-शस्त्रिके हारा साधना-शस्त्रि पुष्ट होती है। परमामाकी प्रार्थना एवं उसका गुणागत प्रत्येक मनुष्य कर सकता है। यह बहुत सुरक्षित मार्ग भी है। जिस समय भक्ति पूर्णतया परियकावस्थाको प्राप्त हो जाती है, उस समय ज्ञान अपने आप ही आ जाता है। भक्तिके हारा ही अधिकांश मनुष्योंको ज्ञानकी प्राप्ति होती है। हृदयके अन्तस्तलसे प्रार्थना कीजिये। शुद्ध भावसे राम-मन्त्रका सर्वदा जप कीजिये। राम-भक्तोंका सरसंग, रामायणका स्वाभाव्य एवं नित्य कुछ घटटे श्रीराम-संकीर्तन कीजिये। ऐसा करनेसे आपको भी श्रीरामके दर्शन होंगे, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

राम-नाम संकीर्तनका

राम राम राम राम राम राम रामने।
राम राम राम राम राम राम रामने।।
माधव गोनिन्द हरि केशव हरि नारने।
नाद-गीत वेद-मन्त्र राम राम रामने।।

यहाँपर राम-भक्तोंके संगके विषयमें कुछ कहना अप्रासंगिक न होगा। सर्संग मनुष्यके कार्यक्रमको उल्लट देता है। इसीके हारा विषय-संस्कार सास्चिक संस्कारोंके रूपमें परिवर्तित हो जाते हैं तथा मनुष्यके हृदयमें सास्चिक भावनाओं-की बुद्धिके कारण उसमें इह भक्तिका साम्राज्य हो जाता है। इसमें मनुष्यकी सांसारिक प्रवृत्तिको बदल देनेकी अद्भुत शक्ति है। गोस्वामी तुलसीदासजीने भी कहा है—
बिनु सर्संग बिवेक न होई। रामकृपा बिनु सुलभ न सोई।।

* कीर्तनकी यह खुन मद्रास-प्रान्तकी है। लेखक महोदय मद्रासी है। इससे यह लिखी गयी है। सम्पादक

श्रीरामचन्द्रजीका अश्वमेध-यज्ञ और उसका महत्व ।

(लेखक—डा० आर० शाम शास्त्रीजी एम० ए०, पी एन० डी०, मैसोर)



ज्ञान, क्षत्रिय एवं वैदिकोंके लिये जिन जिन कर्तव्योंके पालन करनेका आदेश दिया गया है उन सबमें विद्याके पश्चात् वैदिक यज्ञका महत्व सबसे अधिक है। वैदिकोंके लिये राजसूय, अश्वमेध तथा विश्वजित—इन तीनों यज्ञोंके करना सबसे अधिक महत्व रखता है। अतः ऐसा बुना जाता है कि वेदोंकी शिलामें विद्यास तथा प्राचीन राजाओंके कार्योंका अनुसरण करनेके कारण श्रीरामचन्द्रजीने भी उपर्युक्त तीन यज्ञोंमेंसे अश्वमेध यज्ञ किया था।

वहाँ यह प्रश्न उठता है कि 'श्रीरामचन्द्रजीने अश्वमेध-यज्ञका अनुष्ठान क्यों किया ? उनका उद्देश्य स्वर्गको प्राप्त कर वहाँके विश्वात् सुखोंका प्राप्त करना था या अपनी प्रजाका हित-चिन्तन अथवा साधारण मनुष्योंके लिये एक आदर्श उपस्थितिकर उन्हें कर्मपश्चपर आल्य कराना था ?

इनमें स्वर्ग-प्राप्तिका उद्देश्य तो सम्भव नहीं, क्योंकि उस समय अविगत फर्माई अपेक्षा उपनिषदोंके ज्ञानकारण-को अधिक महत्व देते थे। महर्षि भरहाज, गौतम तथा अन्य विशिष्ट साधु लोगोंके जीवनसे यह ज्ञात होता है कि वे वैदिक यज्ञोंके अनुष्ठानकी अपेक्षा तपस्यामें अधिक रत रहते थे। श्रीरामचन्द्रजीने किंचिन्ना और छंका जाते समय मार्गमें ऐसे अनेक साधुओंका संग किया था और स्वर्य भी वे उपनिषदोंकी शिलासे पूर्ण परिचित थे। उपनिषदोंकी शिला ग्रहण करनेमें असमर्थ लोगोंके सामने एक आदर्श उपस्थित कर उन्हें कर्ममें प्रवृत्त करना भी उनका उद्देश्य नहीं हो सकता। ऐसा होता तो बहुद्रव्य-साम्य अश्वमेध न करके उन्होंने अन्यान्य साधारण कर्मोंका अनुष्ठान किया होता। अतः यही सिद्ध होता है कि श्रीरामने अश्वमेध-यज्ञका अनुष्ठान अपनी स्थितिके उपर्युक्त एवं विशेषतः प्रजाके हित-साधनार्थ किया। इस अनुष्ठानके हारा आर्थिक अम्युम्यरूप प्रजाहित करना ही प्रतीत होता है। प्रजाकी उत्तिए परं सुख सहस्रः से

बातोंपर निम्न हैं—(१) अनुकूल अनु तथा (२) उपार्जन करनेके लिये आवश्यक साधन। यज्ञ करनेका विचार इन दोनों विषयोंको प्राप्त करना है। उस समय यह विश्वास किया जाता था कि साधारण वर्गीय देवताओंको सन्तुष्ट करनेसे अनुकूल अनुकूल प्राप्ति हो जाती है। इसके अतिरिक्त यहके हारा मनुष्यी, उरुवार एवं दानके रूपमें मनुष्यी, सैनिकों, ब्राह्मिणों तथा भिक्षुकोंको प्रभुर धन मिल जाता था, जिससे वे धनकी बुद्धि कर सकते थे।

उपर्युक्त विषयकी पूर्णतया उपर्युक्त उन विषयोंसे हो जाती है जो कि काम्य यज्ञोंके सम्पादनके लिये बनाये गये हैं। ये दोनों तीन प्रकारके कल्पोंका उद्धेख है। (१) नित्यकर्म—इसमें अर्थ-प्रयोगकी कोई बात नहीं है। (२) नैमित्तिक कर्म—इसमें योद्देशे धनकी आवश्यकता पड़ती है। (३) काम्य-कर्म—इसमें सोने एवं चाँदीका व्यय बहुत होता है। मनुष्यके अनुसार तीनों उच्च वर्षोंको अपने एवं अपने कुटुम्बके भरण-पोषणके नियम आवश्यक धन रखकर अपनी स्थितिके अनुसार शेष व्रतसे बहुम्बवसाय यज्ञोंका अनुष्ठान करना आवश्यक है। यदि वे लोग अपने भरण-पोषणसे बचे हुए अधिक द्रव्यको यज्ञानुष्ठान अथवा अन्य पुरुष-कर्मोंमें नहीं व्यय करते तो राजा का यह कर्तव्य समझा जाता था कि वह उनके अवशिष्ट द्रव्यको बहुत कर उन लोगोंको दे दे जो यज्ञ अथवा अन्य पुरुषकार्य करनेके दोष्य हैं। निजव्यवहारके लोगोंका सक्षित धन भी, जिसका किसी पुरुष-कर्मके नियम उपयोग नहीं होता था, अब उन लोगोंको देना यह अथवा अन्य परोपकारके पुरुषकार्यमें लगा दिया जाता था। यह नियम प्रजाके लिये ही नहीं था, बल्कि राजा भी इस नियमके बन्धनसे मुक्त नहीं समझा जाता था। राजाका यह धर्म होता था कि वह किसी अर्जनशील कर्म अथवा शत्रुओंपर विजयप्राप्तिहारा धन संग्रह करके यज्ञानुष्ठान या अन्य पुरुष-कर्मोंमें उसे लगा दे। कालिदासने रघुवंशके शृंतीय सर्गमें इस विषयका बदा ही विशद वर्णन करते हुए कहा है कि दिलीप-पुत्र महाराजा रघुने विश्वजित-यज्ञमें राजभवन-में अपने उपयोगके लिये कुछ भिट्ठीके बर्तनोंको छोड़कर शेष सोना चाँदी आदि सर्वस्व दान दे दिया था। इस दावसे जब रघु सर्वथा धनहीन हो गये तब उनके पास एक कौरस नामक विहार यज्ञावारी अपने गुरुको दिया देनेके लिये धन माँगने आये थे। कहा जाता है कि ऐसी अवस्थामें रघुने अधिकार और सको सन्तुष्ट करनेके लिये धनपति

कुबेरसे धन प्राप्त किया था। भारतीय इतिहासके विद्यार्थियोंसे यह दात छिपी नहीं है कि महाभाष्यके रचयिता महर्षि पतञ्जलिके समयमें राजा पुष्यमित्रने अथवामेघ-यज्ञ किया था जिसमें उन्होंने मनु आदि सूर्योंके नियमानुसार समक्ष अवशेष महान् धनराशिका वितरण कर दिया था।

यद्यपि देखनेमें तो यह एक धार्मिक नियम जान पड़ता है किन्तु वास्तवमें है यह आर्थिक। इस नियमका निर्माण बड़ी दुर्दिग्मत्तासे किया गया है। इसके उपयोगसे सभी लोगोंके पास बराबर बराबर धन बैट जाता है। प्रत्येक मनुष्यमें किसी विषयको सीखने एवं उपार्जन करनेके लिये आन्तरिक शक्ति भिज भिज होती है। चाहे इसका कारण पैतृक हो या पूर्व जन्मके प्रारुद्ध-कर्म हों। कुछ लोगोंमें अनुल धनराशि-उपार्जन करनेकी अद्भुत शक्ति होती है। साथ ही यह भी देखा जाता है कि दस व्यक्तियोंमें से नीं ऐसे होते हैं जिनको अपनी आवश्यकताओंकी पूर्ति न कर सकनेके कारण दार्शन हुःखोंका शिकार बनना पड़ता है। यही लोगोंका भास्य है।

प्राचीन भारतमें हमें सदाचारपूर्ण^१ मित्र-यविहारके तीन विभिन्न आदर्श मिलते हैं। भीमांसवशास्त्र कहते हैं कि सदाचारसे उपार्जन किये हुए धनद्वारा यज्ञ करनेकी आवश्यकताके सम्बन्धमें वैदिक आज्ञाका पालन करना मनुष्य-का धर्म है। उनके महानुसार आज्ञा ही धर्म कहलाता है। वैदिक कार्योंमें वैदिक आज्ञा और सामाजिक कार्योंमें सामाजिक आज्ञा या नियम ही उपयुक्त हैं। वैदिक अन्योंमें अथवा कौकिक उपदेशों एवं लेखोंमें जिस कार्यके लिये आज्ञा दी गयी हो, उसीको धर्म समझना चाहिये। इसके अनुसार जो मनुष्य वेदोक्त उपदेश अथवा अपनी जातिकी रीति-नीतिके अनुसार कार्य करता है वह जैतिक मर्यादाके भीतर ही है। इस नियमके अनुसार एक बुद्धिमान् पुरुष अनमाना धन कमाकर अपनी हृच्छानुसार धार्मिक एवं पुरुषके कार्योंमें धर्य कर सकता है। इसीलिये सूर्यतिकारोंने यह नियम बनानेकी आवश्यकता समझी कि प्रत्येक मनुष्यको अपने पास उतना ही धन रखना चाहिये जो तीन वर्षके उसके अपने एवं कुटुम्बके भरण-पोषणके लिये पर्याप्त हो। इससे अधिक रखना न्याय-विरुद्ध था। कुछ सूर्यतिकारोंमें तो तीन वर्षकी अगाह तीन भर्तीनेकी ही अवधि बतलायी है। इस नियमको अन्यविहारिक समझकर भीमन्त्रवद्वीता एवं

अन्य ऋषियोंमें निष्काम भावसे धार्मिक तथा जौकिक कार्य करनेके लिये आशा वी गयी है। मनुष्यको कर्म अवश्य करना चाहिये किन्तु करना चाहिये फलकी कामनाको स्थाग कर। सदाचारपूर्ण^४ मित्रव्ययिताकी स्पष्ट व्याख्या श्रीमद्भागवतके ७ वें एवं ८५३ अध्यायमें की गयी है। वहाँ श्रीनाराज युधिष्ठिर एवं श्रीनारदजीका संवाद है।

श्रीनारदजीने कहा है कि मैं जिस सिद्धान्त (सदाचार-पूर्ण मित्रव्ययिता) के सम्बन्धमें तुमसे कहता हूँ वह आजागर ऋषिने प्राचीन कालमें भक्त प्रह्लादको बतलाया था। संवाद इसप्रकार है—

युधिष्ठिर—हे देवर्षि ! मुझे उस पथका निर्देश कीजिये जिसको अस्ति आजागरने मेरे सहश गृहस्थके कर्तव्योंमें है। अनभिज्ञ मनुष्यको उच्चपदकी प्राप्तिके निमित्त बतलाया है।

गृहस्थ पतं पदवीं विधिना देन चाहासा ।
याति देवत्रष्णे ! ब्रूहि मादशो गृहमूढधीः ॥

(भागवत ७।१४।१)

नारद—हे राजन् ! प्रथेक गृहस्थको प्रभु नारायणकी प्रसन्नताके लिये अन्य किसी भी फलकी इच्छा न रख-कर महाविद्योंकी सेवा करनी चाहिये। धनोपार्जनके निमित्त कार्य करते हुए प्रथेक मनुष्यको समझ रखना चाहिये कि उसे उतना ही धन अपने पास रखना उचित है जितना उसकी उदर-पूर्ति के लिये पर्याप्त हो। जो इससे अधिक धन रखनेकी इच्छा करता है वह चोर है।

‘अविकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमहति ।’

इससे यह सिद्ध होता है कि प्राचीन हिन्दू समस्त जौकिक कर्म अपने स्वार्थके लिये न करके केवल समाज-हितके उद्देश्यसे ही किया करते थे।

सदाचारपूर्ण^५ मित्रव्ययिताके जाननेवाले अद्वैतवादियों-की दृष्टिसे संसार तथा सांसारिक कार्योंका संन्यास ही सबसे उल्लेख धर्म है। जैनों तथा जौहोंने भी संन्यासको ही मनुष्यका सर्वप्रधान कर्तव्य बतलाया है।

यदि किसी मनुष्यको इसप्रकारकी शिक्षा न मिली हो जिसके कारण वह कुमारीकी ओर आकर्षित हुए बिना ही अपने

मन पर्यं इन्द्रियोंके बशमें रखकर संसारका स्थाग न कर सके, तो वह चाहे राजा हो या राजा, उसे अपने कर्मोंका कर समाज-के हितार्थ उत्सर्ग कर देना चाहिये। प्राचीन भारतके राजा तथा सदृश उत्तर अपना सञ्चित धन, कर्मके इसी सिद्धान्तके अनुसार, यज्ञानुष्ठान एवं अन्यान्य पुरुष-कार्योंमें लगाया करते थे।

भगवान् रामचन्द्रजीने बाह्यसे खोटकर देखा कि सातु आता भरतके मित्रव्ययितायुक्त राजप्रबन्धसे राजकीय कोष धनसे पूर्ण^६ है, तब उन्होंने उस सञ्चित धनको अपने सुखके निमित्त सर्वं करने अथवा अन्यान्य लुटा देनेकी अपेक्षा एक वैदिक यज्ञका अनुष्ठान कर उसीमें उत्सर्ग कर देना उचित समझा। उनके यज्ञानुष्ठानका डृश्य केवल जोगोंके सामने आत्म-स्थागका एक जीता-जागता आदर्श रखना तथा निष्काम कर्मके सिद्धान्तमें अपना पूर्ण^७ विश्वास प्रकट करना था।

जोगोंकी विभिन्न कियाओंको नियमितरूपसे चलाने तथा प्रयोक्त व्यक्तियोंकी नैतिकताकी रक्षा करनेके लिये भारतवर्ष-के प्राचीन ऋषियोंने तीन नियमोंकी रखना की थी (१) वैदिक अथवा सामाजिक आश्रामके अनुसार कर्म, और (२) निष्काम भावसे किये जानेवाले कर्म, और (३) कर्म एवं संसार दोनोंका स्थाग।

इस प्रकारके सदाचारके नियम जोगोंके आर्थिक एवं राजनैतिक जीवनको ऐसे सांचेमें ढाल देते थे जिससे भनुष्य-जातियोंका कल्याण होता था। अनहृष्टारता ही इन नियमोंका तत्त्व या और किसी भी मनुष्यको अपने मानसिक एवं शारीरिक सुखोंके लिये द्रव्य-म्यय करनेकी स्वतन्त्रता नहीं थी।

अतः श्रीरामचन्द्रजीने जिस अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान किया, वह एक बहुम्यय-साध्य धार्मिक कार्य था, जिसका अनुष्ठान किसी स्वार्थके लिये नहीं अपितु सर्वं-साधारणके कल्याणार्थ किया गया था। इसीप्रकारके इन्हें निष्काम कर्मोंके प्रभावसे उन्होंने राजर्षिका पद प्राप्त किया। श्रीराम-चन्द्रजीके सामने राज्ञ, जनक तथा अन्य राजर्षियोंके उदाहरण दर्पस्थित थे। उनका जीवन देवताओं तथा मनुष्योंकी भलाईके लिये था, अपने लिये नहीं।

रामायणमें आदर्श गृहस्थ

(लेखक—महामहोपाध्याय पं० श्रीप्रमथनाथजी तर्कभूषण)

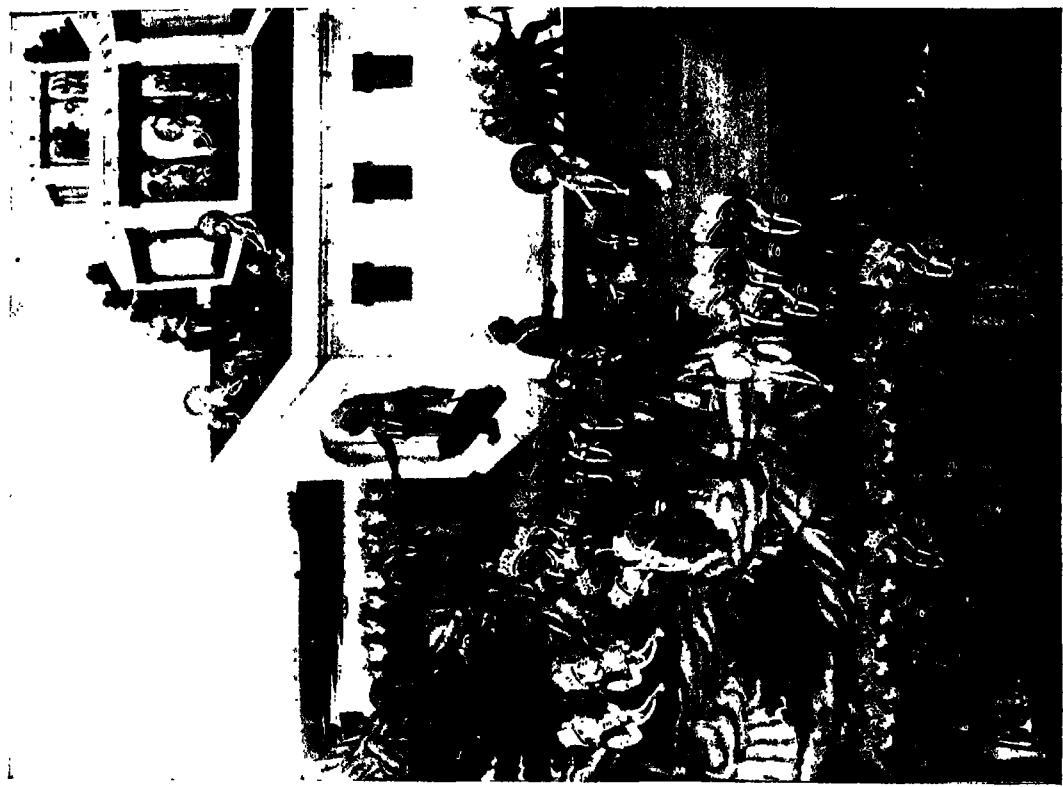


आत्म-स्वरूपकी सम्पूर्ण उपलब्धिव किये विना इस संसारमें कोई भी सामाजिक, वैतिक और आध्यात्मिक जीवनमें स्थिति और उपर्युक्त नहीं कर सकता। यह सिद्धान्त जैसे व्यक्तिके लिये असरहीनीय सत्य है, जातिके लिये भी वैसे ही अनुपेत-शीय आज्ञावस्थमान सत्य है। व्यक्ति और जातिके इस आत्म-स्वरूपकी अनुभूति आजकल भारतमें कमशः जीवादपि चीर्षतर होती चली जा रही है और इसीके परिणामस्वरूप आज हम अपनेको भुजाकर, 'हमारे आत्माका स्वरूप क्या है? हमारी जीवनी-शक्ति कहाँ है?' और हमारे जीवन-संग्राममें विजय एवं भी प्राप्त करनेका असाधारण साधन क्या है? इन बातोंकी लोजके लिये हम पश्चात्य सम्भवताका अनुकरण करनेके निमित्त व्याकुल होकर भटक रहे हैं, पद-पुरुप व्यर्थसंकल्प होकर देश विदेशमें अपमानित और लान्छित हो रहे हैं। जीवन भारतरूप हो रहा है, और मोहम्मदी आशाका भीय प्रकाश भी कमशः अन्धकारके रूपमें परिवाहत होता जा रहा है। इस सर्वतोमुखी विपरिके कलाल कलासे छूटनेका जो सर्वप्रधान साधन है उसीका नाम है 'रामायण'। सनातनधर्मों हिन्दूके आत्मस्वरूपको पहचाननेके लिये प्रत्येक हिन्दूको रामायणका पाठ करना ही होगा। वेद, औत, गृह और धर्मसूत्र, महाभारत, पुराण, तन्त्र, द्योतिष, काव्य और नाटक आदिमें जिसका विस्तार है, न्याय, वैशेषिक, सांख्य, मीमांसा और वेदान्तमें जिसकी अत्यन्त कठिनतासे समझमें आनेवाले पारिभाषिक शब्दोंके द्वारा अतोचनाकी गयी है, हिन्दू-धर्मके उसी भूमाल्य तस्वको सरक भाषामें विविध रसोंकी सहायतासे सबके मनःप्राणको प्राप्तिकर, जीवनके अनुभवोंके साथ विश्रित कर और आनन्दमय आत्मादानके थोर्य बनाकर रामायण हिन्दुओंके जातीय जीवनके संगठनका सर्वप्रधान साधन बन गयी है। यह रामायण ही हमारे विश्वकुल और उद्देश्यहीन जातीयजीवनको किसेसे संगठित करेगी। यही विश्वास और यही आशा आज भी देशके सनातनधर्मों नेताओंको उनके गन्तव्य-पथमें पूर्ण सहायता दे रही है।

मेरा इद विश्वास है कि भविष्यतमें यह विश्वास ही हमारी समस्त संगठन-शक्तियोंका केन्द्र-स्थान बनेगा।

गृहस्थ-जीवन ही जातिके इहत्रौकिक और पारलौकिक अभ्युदयका अनिवार्य साधन है। इस गृहस्थ-जीवनकी धर्मके उपर स्थापना करना और व्यक्तिगत भोग-कामना-स्थी पिशाचिनीके कराल गालसे मुक्तकर इसको ऐसा बना देना कि जिससे घर घरमें विवेक, आत्म-स्थान, प्रसाद, शान्ति और कर्तव्यपरायणताके अन्तर्य सुधासागरकी आनन्दमयी बाद आ जाय। महर्षि वाल्मीकि-प्रणीत रामायणका सूक्त उद्देश्य यही है। इस उद्देश्यके सिद्धिके लिये निष्कर्षक महात्म आदर्शकी बड़ी भारी आवश्यकता थी। मर्यादा महापुरुष भगवान् श्रीरामचन्द्र भारतीय आदर्शोंमें सर्व-शिरोमणि हैं, अतएव शादिकर्ति महर्षि वाल्मीकिने उन्हींको नायक बनाकर कवि-कल्पनाके सर्वोच्च और सर्वोत्तम कीर्ति-स्तरभूषण जिस महाकाव्य रामायणकी रचना की है, उसकी तुलना जगतमें अन्यत्र कहाँ नहीं मिल सकती। सारे हिन्दू-भारतमें अनेक युगोंसे विद्वान् सामुद्रोंका यही स्थिर सिद्धान्त है और यह अस्तीकार भी नहीं किया जा सकता कि इस सिद्धान्तकी प्रतिष्ठा अवश्य उपरांत सत्यके आधारपर दुर्बुद्ध है।

हिन्दूका गृहस्थाश्रम आनन्द, सरकाता, त्याग, परार्थ-परता और विष्णु-प्रेमका लीला-निकेतन है। इस आश्रमकी सफलतापर ही ग्राहकर्य, वानप्रस्थ और संन्यासकी पूर्णता अवबोधित है। इसके विपरीत इस आश्रमकी असफलता ही शेष तीनों आध्रमोंकी असफलताका कारण है। जिस दिनसे हिन्दूजीविने इस सत्यको भुजाना आरम्भ किया उसी दिनसे उसका अध्ययन होने लगा। इस गृहस्थाश्रम-के सर्वाङ्गसुन्दर सरस चित्रको प्रत्येक हिन्दूके घरमें सुप्रतिष्ठित करनेके लिये ही महर्षि वाल्मीकिने युग-युगान्त-व्यापिनी कठोर तपस्या की थी। उसी तपस्याके असूत फलका नाम है 'रामायण'। जिन मर्यादापुरुषोत्तमका आश्रय पाकर इस गृहस्थ-धर्मके समस्त झंग असाधारण पूर्णताको प्राप्त होकर सजीव हो उठते हैं, उसी मर्यादा-पुरुषोत्तमकी लोजमें सारा जीवन तपस्यामें विताकर भग्न-हृदयसे जीवन-सम्प्राप्त उपनीत महाकवि वाल्मीकि आत्मशक्तिमें अद्वैत होकर



क्रिक्षन्यामें लहमणजो ।

तारा सहित जाइ हनुमाना । चरन चंदि प्रभु मुजमु बखाना ॥



कृथमृक पर रामजो

विपरप यरि कपि तहं गयज । साथ नाह दृढत अस भयज ॥



सेतु-बन्धन ।

संग्रह विस्माल अग्नि कपि देहां । कोटुक इव नल ते लेहौं ॥



आशोक-वाटिकामें रावण ।

तेहि अवसर रावन तर्ह अद्या संग नारि वह किंग चनाशा ।

रोते हुए पूछ मानवताके एकनिह सेवक महर्षि नारदकी
शरण होकर उनसे पूछते हो—

कौन्तेमन्साम्रतं लोके गुणवान्कश्च वीर्यवान् ।
चारित्रेण च को मुक्तः सर्वभूतेषु को हितः ॥
आत्मवान्को जितकोषो द्युतिमान्कोऽनसूयकः ।
कस्य विभृति देवाश्च जातरोपस्य संयुगे ॥
पतदिच्छाम्यहं श्रोतुं परं कौतूहलं हि मे ।
महर्षे त्वं समर्थोऽसि शानुमवंविधं नरम् ॥

(वा० रा० १।१)

'हे महर्षे ! इस समय इस भूमवदलपर ऐसा कौन
पुरुष है जो पुरुषोंवित समस्त गुणोंका आशार हो, बल
और चरित्रसे सम्पन्न हो, प्राणीमात्रका हितकारी हो,
इन्द्रिय-विजयी, जितकोषी और सेजस्वी हो एवं जो किसी-
के प्रति असूया न करता हो तथा युद्धक्षेत्रमें जिसके रोषको
देखकर देवता भी ढरते हों । यदि ऐसे कोई महापुरुष हों
तो आप उन्हें जानते होंगे । मैं अत्यन्त कौतूहलसे उनकी
बातें सुनना चाहता हूँ ।'

मर्यादा-पुरुषोंतमके अनुसन्धानमें व्याकुल तपःकिञ्च
महर्षि वास्मीकिले इटा इस प्रकारके नवीन विध-हितकर
प्रभको सुन देवर्षि नारदने जो कुछ कहा था, सो
इत्यम्यकार है—

बहवो दुर्लभाश्चैव यं त्वया कीर्तिं गुणाः ।
मुने वश्यमयं हुं वुद्ध्वा तैर्युक्तः श्रूयतां नरः ॥
इष्वाकुंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः ।
नियतान्मा महावीरो द्युतिमान्यृतिमान् वशी ॥
बुद्धिमात्रीतिमान्वामी श्रीमान्तुनिर्बहणः ।
आजानुबाहुः सुशिरा: सुलक्षणः सुविक्रमः ॥
समः समविभक्ताहः स्तिरभवर्णः प्रतापवान् ।
पीनवक्षा विशालाक्षो लक्षीवान्त्युभलक्षणः ॥
धर्मजः सद्यसन्वश्च प्रजानां च हिते रतः ।
यशस्वी ज्ञानसम्पन्नः शुचिवैद्यः समाधिमान् ॥
प्रजापतिसमः श्रीमान्धाता रिपुनि धूदनः ।
रक्षिता जीवलोकस्य धर्मस्य परिरक्षिता ॥
रक्षिता स्वस्य धर्मस्य स्वजनस्य च रक्षिता ।
वेदवेदाङ्गतस्तत्रो धनुर्वदे च निषिद्धः ॥

सर्वेशासार्थतस्वजः स्मृतिमान्त्रिमानवान् ।

सर्वलोकप्रियः साधुरदीनात्मा विचक्षणः ॥

सर्वदभिगतः सद्द्विः समुद्र इव सिन्धुभिः ।

आर्यः सर्वगुणोपतः कौशलयानन्दवर्धनः ।

स च सर्वगुणोपतः कौशलयानन्दवर्धनः ।

समुद्र इव गमतीयं धैर्येण हिमवानिव ॥

विष्णुना सद्गुरो वीर्ये सोमवत्रियदर्शनः ।

कालाग्निसदृशः क्रोधे क्षमया पृथिवीसमः ॥

घनदेन समस्यागे सत्ये धर्म इवापरः ।

(वा० रा० १।१।७ से १०)

'हे सुने ! आपने जिन अति दुर्लभ गुणोंका नाम
किया है उन सब गुणोंसे युक्त एक पुरुष है, मैं विशेष-
रूपसे समस्तकर उनके सम्बन्धमें आपको बताता हूँ,
ज्ञान देकर सुनिये । उनकी इष्वाकुंशमें उत्पत्ति हुई है
और वे रामनामसे सबन्नें प्रसिद्ध हैं । वे महावीर होनेपर भी
जितेन्द्रिय हैं, द्युतिमान् हैं, धीर हैं और मनको वशमें
किये हुए हैं । वे बुद्धिमान्, नीतिपरायण, वक्ता, वे ही
सुन्दर और आपने शत्रुओंको परास करनेवाले हैं । उनकी
भुजाएँ जानुतक लम्बी हैं, सुन्दर सिर है, प्रशस्त लक्षाट है
और उनका पदविन्यास अत्यन्त भनोदर है । उनके सभी
अंग सुसंगठित और सुविभक्त हैं । शरीरकी कान्ति नेत्रोंको
स्तिर्यक करनेवाली है । वे ग्रतापी हैं । उनका वक्षःस्थल
विशाल है, और उनके बड़ी बड़ी हैं, वे अत्यन्त सौन्दर्यशाली
और शुभ लहण-सम्पन्न हैं, वे धर्मके इष्वायको जाननेवाले
और सत्यपरायण हैं । प्रजाका हित करना ही उनके जीवनका
प्रधान कार्य है । वे यशस्वी, पूर्ण ज्ञानी, शुद्ध और
साधुओंके बशीभूत हैं, वे समाधि-सम्पन्न, प्रजापतिकी भाँति
सदैव शुभ कार्योंके विधाता और शत्रुओंका दमन करने
वाले हैं । वे प्राणियोंके और समस्त धर्मोंके रक्षक हैं, आपने
धर्मकी और स्वजन बालवरोंकी रक्षा करनेवाले हैं । वे
समस्त वेदवेदाङ्गोंके रक्ष्यको जाननेवाले हैं और धनुर्वेदमें
भी पूर्ण प्रवीण हैं । वे सब शास्त्रोंके गृह तत्त्वको पृथक्रूपसे
जानते हैं । उन्हें किसी विषयकी विस्तृति नहीं होती । वे
धर्माधारणा प्रतिभावाले हैं । सबके प्रिय और साधु प्रकृति हैं ।
दीन नहीं हैं, साधु लोग उनसे प्यार करते हैं । वे बुद्धिमान्
हैं और सभीके सम्मान्य हैं । जिस तरह समुद्र नदियोंमें
प्रधान है उसी प्रकार वे भी सबमें प्रधान हैं । वे सबके

साथ समान भावसे अवहार करते हैं । सर्वदा प्रियवर्णन हैं । समुद्रके समान गङ्गीर और हिमालयके समान धीर हैं । साकात् विष्णुके समान पराक्रमी और चन्द्रमाके समान देखनेमें सुन्दर हैं । कोइसमें वे प्रलयकालकी अग्निके समान और उमामें पृथ्वीके समान हैं तथा स्थागमें कुबेरके समान और सत्यमें तो साकात् धर्म ही है ।

उपर्युक्त श्लोकोंमें जो कुछ कहा गया है वही समस्त रामायणका बीज है । सातों काव्योंमें इन्हीं सब कुलंभ गुरुओंसे सम्पूर्ण मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रके त्रिलोकशब्द-चरित्रोंकी विचित्र घटनाओंका वर्णन है । इस वर्णनके वैचित्र और माधुर्यसे आदिकवि महर्षि वाल्मीकिने रामायणमें जिस उत्ताल भाव-तरङ्ग-माला-संकुल अग्राव-रस समुद्रकी सृष्टि की है, उसीके तरंग-विशिष्ट कणोंके कलमनीय स्पर्शसे आज भी भारतके असंख्य नर-नारियोंके संसार-ताप-दृग्य हृषय शीतल होते हैं, नेत्रोंमें प्रेमाभुझोंकी बाद आ जाती है, शोक, ताप और वारिदृश्यसे विद्युत्य आत्मामें नवीन निःस्वाय कर्तव्यनिष्ठाका विमल प्रवाह बहने लगता है ।

आल्मीकिके बाद भी भारतमें बड़े बड़े महाकवि हो गये हैं, और श्रीरामके चरित्रका अवलम्बन कर अपनी असाधारण कवित्य-शक्ति और अलौकिक सृष्टि-निपुणताके द्वारा सहस्र समाजको आश्रयसे पुलकित कर रहे हैं । यह बात जितनी उज्ज्वल सत्य है, इसकी अपेक्षा अधिकतर जाज्वल्यमान सत्य यह है कि इन समस्त धर्मवर्ती महाकवियोंमें से किसीने श्रीरामायण-वर्णित चरित्रोंकी छायाका अनुकरण करनेके लिये कुछ भी नवीन रचना नहीं की । महाकविके

रामायणरूप नन्दन-ज्ञानमें जो अनन्त सुरभित पुर्ण-समुदाय लिये हुए हैं, उसीमेंसे तुन चुनकर कुछ कुमुमोंका संग्रह करके राजसेवर, काव्यादास, भवशूलि, जबदेव और मुरारि आदि अग्रवित मालाकाररूप महाकवियोंने एक एक सुन्दर नवीन हार गूँथ दिया है, इन हारोंमें नाना वस्त्र और नाना प्रकारके मुगनिवालोंके मुष्पोंके समावेशकी शैलीमें उद्घट तारतम्य होनेके कारण उनके काणोंकी सुन्दरतामें तारतम्य दीखता है । परन्तु यह कहा जा सकता है कि भूज चरित्रके अक्षित करनेमें इनकी कोई विशेष कृति नहीं है ।

गृहस्थके सामाजिक सुखोंके लिये जो कुछ स्वाभाविक साधन हैं, महर्षि वाल्मीकिने उन सभीको एक रामचरित्रका प्रशान्तरूपसे अवलम्बन करके, अपनी रामायणमें सुन्दर और निष्कृप्त भावसे विकसित कर दिया है । आदर्श पिता, आदर्श माता, आदर्श भ्राता, आदर्श गृहिणी, आदर्श मित्र, आदर्श सहचर, आदर्श अनुचर, आदर्श मन्त्री, आदर्श पुरोहित, आदर्श सेवक और आदर्श पड़ोसी आदि हिन्दू-गृहस्थ-जीवनका आनन्द न लेकर आज जो हिन्दू पाश्चात्य गृहस्थ-जीवनके अनुकरणमें प्रवृत्त है, इस पुरुष भारतमें उसके लिये गृहस्थाभ्यमके पालनकी चेष्टा विद्वन्नाके सिवा और क्या हो सकती है? हिन्दू जातीय-जीवनके सार-सर्वत्व रामायणका यथार्थ रस त्रिताप-तस वर्तमान हिन्दूसमाजपर विशेषरूपसे बरसानेके लिये 'कल्याण' के सज्जादाकोने 'रामायणाङ्क' निकालनेका जो यज्ञ किया है, इसके लिये वे प्रत्येक हिन्दू-हृषयसे कृतज्ञतापूर्ण धन्यवाद प्राप्त करनेके पात्र हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है ।

खड़ राम नाम है

रावण निशङ्कपर धीर रघुवीर जिमि

कौरव-कठोरन पै पार्थ बलधाम है ॥ १ ॥

काली महिषेश हंतु मीम जरासन्धपर

धोर बलशाली नाम कालीपर दशाम है ॥ २ ॥

कुम्भ जलेशपर चक्र शिशुपाल शीश

दानव विदारनके अजनी ललाम है ॥ ३ ॥

पाप तम पुर्ख सबै नासत दिनेश जिमि

त्रास यमदृतनको खड़ रामनाम है ॥ ४ ॥

गोविन्दराम अग्रवाल

हिन्दूसमाजपर रामपूजाका प्रभाव

(लेखक—स्वामीजी श्रीदयानन्दजी)



रीर, मन, और प्राणसे पूजापुरुषमें सहीन होकर कमशः तदगुण-प्राप्ति, तदाकारभाव और तदूपताकी सिद्धि ही पूजाका कल्पोद्धत सत्य है। अतः मानवको पूर्ण मानव सत्य गृहस्थको आदर्श गृहस्थ बनानेके लिये इस दुरामें श्रीराम-पूजा ही सर्वशेष पूजा है, इसमें किंतु भी सन्वेद नहीं है। ऐसा पूर्ण मनुष्य कौन है, जिसके आदर्शको देखकर प्रत्येक गृहस्थ अपने जीवनको पूर्ण जीवन बना सकता है तथा प्रत्येक उत्तिष्ठन नरपति अपने राजधर्मके पूर्णाञ्जनद्वारा जोक-परजोड़ों के कृतकृत्य हो सकता है। महाशुभि वाल्मीकिके इसप्रकार प्रश्न करनेपर देवर्पिणी नारदने श्रीभगवान् रामचन्द्रको ही ऐसे पूर्णमानवके आदर्शस्वरूपसे वर्णन किया था।

श्रीरामचन्द्र संयतात्मा, महावीर्यवान्, कान्तिमान्, धृतिमान्, जितेन्द्रिय, समुद्रतुल्य गवधीर, हिमाकायतुल्य धीर, विश्वातुल्य धीर्युक, अन्द्रतुल्य प्रियदर्शीन, क्षलाभितुल्य रथतेजयुक, पृथिवीतुल्य चामयुक, कुवेरतुल्य धनदाता, धर्मराजतुल्य सत्यव्रत, कर्तव्यपालनमें वज्रतुल्य कठोर, स्वभावतः कुसुमसे भी कोभल-इत्यादि सभी आदर्श-गुण एक ही साथ श्रीभगवान् रामचन्द्रमें प्रकट होनेके कारण ही वे पूर्ण आदर्श पुरुष माने जाते हैं और उनकी हार्दिक पूजाहारा उपासक कमशः उनमें सम्मय होकर उनकी अलौकिक गुणावलीका लाभ कर सकते हैं। यही हिन्दू-समाजपर श्रीरामपूजाका परम प्रभाव है।

अब इन अलौकिक गुणोंपर कुछ विवेचन किया जाता है। श्रीरामचन्द्र एकाकी ही पूर्णाचितार नहीं थे। चारों भाई मिलकर पूर्ण थे। यही वाल्मीकि रामायणमें प्रमाण है।

कौसल्याजनयद्रामां दिव्यलक्षणसंयुतम् ।
विष्णोर्धं महाभागं पुत्रमैवकुनन्दनम् ॥
भरतो नाम कैकेयीं जेऽसत्यपराक्रमः ।
साक्षाद्विष्णोश्चतुर्भागः सर्वैः समुदितो गुणैः ॥
अथ तक्षणशत्रुघ्नौ सुमित्राजनयत्सुतौ ।
वीरौ सर्वाङ्गकुशलौ विष्णोर्धंसमन्वितौ ॥

(वा० १।१८)

अबतार-विवेचनमें श्रीरामचन्द्र भगवान् विष्णु के अर्थांश भरत चतुर्थांश तथा लक्ष्मण और शत्रुघ्न प्रत्येक अष्टमांश थे। चारों मिलकर पूर्ण थे। गृहस्थाश्रममें सम्मिलित रहना, एकप्राणा एक-हृषय रहना ही पूर्णता तथा गाहृस्य-सुख-शान्तिका लक्ष्य है, यही सत्य आदर्श इस अबतार-रहस्यके द्वारा प्रकट हुआ है। क्या उपासक इस रहस्यको रामपूजा हारा हृषयक्रम करके गृहस्थाश्रममें आत्मेमका उच्च आदर्श स्थापन न करेंगे? 'विवारयन्ति कुलमिति द्वारा:' जी भाई भाईमें कलह कराकर कुलको फोड़काढ़ देती है, इसी लिये संकृत-भाषामें जीको 'दारा' कहा जाता है। किन्तु चारोंके मिलकर पूर्ण होनेके कारण 'दारा' शब्दकी यह अवित्तार्थता रामगृहमें कदापि नहीं हुई थी। यह सभी लोग जानते हैं कि श्रीरामचन्द्र सीताकी अपेक्षा भाई लक्ष्मणपर अधिक प्रेम करते थे। इसी कारण शति-रौल-मूर्धित लक्ष्मण-के लिये सकलत्वा विलाप करते हुए श्रीरामचन्द्रने कहा था—

शक्या सीतासमा नारी पर्त्तलोके विचिन्ता ।

न लक्षणसमो भ्राता सचिवः साम्परायिकः ॥

परित्यक्याम्यहं प्राणान् वानराणां तु पद्यताम् ।

यदि पञ्चलमाप्नः सुमित्रानन्दवर्द्धनः ।

‘संसारमें सीता-सदृशा जी मिल सकती है। किन्तु लक्ष्मण जैसा भाई नहीं मिल सकता। यदि लक्ष्मणके प्राण न रहे तो मैं भी प्राण त्याग दूँगा।’ इस बातको श्रीरामचन्द्रजीने सायंक, करके भी दिला दिया। प्रजावत्सख श्रीरामचन्द्र प्रजारभनके लिये निर्दोषा सहजर्मिणी सीताको बनवास देकर भी जीवित थे, किन्तु दैवकारणसे जब भाई लक्ष्मणको उन्हें परित्याग करना पड़ा तो फिर श्रीरामचन्द्र जीवन धारण न कर सके और लक्ष्मण-बंजनके हुक्के ही दिनों बाद आपने अपनी लीलाका संबंधण कर ली। उनके जीवनमें एकी-प्रेम, आत्मप्रेम आदि सब प्रेमोंसे धर्मप्रेम विशेष रूपसे था, इसका भी उच्चान्त प्रमाण उन्होंके इन शब्दोंसे प्राप्त होता है—

विसर्जये त्वं सौमित्रै मामूदधर्मविपर्ययः ।

‘तुम मेरे अति विषय होनेपर भी धर्मके लिये मैं तुम्हें परित्याग करता हूँ।’ क्या रामोपासक रामपूजाके हारा इस अलौकिक शिष्याका लाभ नहीं कर सकते?

भगवान् श्रीरामचन्द्र किसके मित्र नहीं थे ? वे उनके मित्र थे, बाजरके मित्र थे, देवताके मित्र थे, राजसके मित्र थे, प्रेतके मित्र थे, भीलके मित्र थे, चाहडालके मित्र थे, निषाटके मित्र थे, मङ्गाहके मित्र थे, कोलके मित्र थे और किरातके मित्र थे। सभीके मित्र होने पर भी वे अपनी पूर्ण^४ मर्यादापर पूर्ण^५ प्रतिष्ठित थे। वर्णांश्रम मर्यादाका उल्लङ्घन उरा भी नहीं करते थे। भगवद्गीताके सिद्धान्तानुसार 'आहणे गति हस्तिनी शुनि चैव रथपकेच' अभिन्न आत्माके विचारसे 'समदर्शी' थे किन्तु 'समवर्ती' नहीं थे। कठोर परशुरामके प्रति उनकी उर्कि द्वारा यह स्पष्ट प्रमाणित है।

ब्रह्मणोऽसीति पूज्यो मे विश्वमित्रकृतेन च ।
तस्माच्छक्तो न ते राम मोकुं प्राणहरं शरम् ॥

(वा० रा० १ । ७६ । ६)

'आप ब्राह्मण हैं और मैं चत्रिय हूँ, इस कारण मैं आपके ऊपर अख्यापहार नहीं कर सकता।'

अबोध पश्चाती मनुष्य श्रीरामपर शब्दरीके जृडे वेर सानेका बृथा ही दोष लगाते हैं। वाल्मीकि, तुलसीदास आदि किसीके भी प्रामाणिक ग्रन्थमें इसका प्रमाण नहीं मिलता है। अतः यह बात सर्वथा निर्मूल है। हो सकता है कि शब्दरीने एक वेर चत्वरकर देख दिया हो कि इस पैदके वेर मीठेहैं या नहीं, किन्तु सभी वेर चत्वरकर उसने श्रीभगवान्को लिकाये थे, यह सर्ग्यूण^६ मिथ्या कल्पनामात्र है।

भगवान् श्रीकृष्ण 'मदनमोहन' और श्रीभगवान् रामचन्द्र 'मदन-दहन' थे। मदन-मोहन होनेके कारण ही श्रीभगवान् कृष्णने गोपियोंकी रमण्य-दश्को दृग्य नहीं किया था, किन्तु उसी भावमें उन्हें अपनेमें तन्मय करके उनकी कामादि दृत्योंका नाश कर दिया था। उन्होंने स्वयं ही कहा है—

न मर्यादेश्वरियों कामः कामाय कल्पतं ।
वर्जिनः कथितो धानः प्रायो वीजाय नेष्ठयं ॥

'कामभावसे भी भगवान्के प्रति अनुराग करनेपर-वह काम काम नहीं रहता है, विष प्रकार भूंजा हुआ धान कल उत्पन्न नहीं कर सकता, उसी प्रकार भगवान्में अपित काम भी निर्बाज हो जाता है।' किन्तु भगवान् श्रीरामचन्द्र मर्यादा-पुरुषोत्तम होनेके कारण 'मदनमोहन' नहीं हो सकते थे। उनके किये मदनभगवान्को-

महादेवकी तरह 'मदनदहन' होना ही मर्यादानुकूल था। 'मदनदहन' होनेके कारण ही श्रीरामने काम-भिलारिणी सूर्पवासाको काम न देकर उसके नाक-कान कटवा दिये थे और संसारकी जियोंको यह शिवा प्रदान की थी कि पर-पुरुष रमणेदश्मा-ज्ञोलुप व्यभिचारिणी जियोंकी ऐसी ही दुर्बशा होनी चाहिये। 'मदनदहन' होनेके कारण ही श्रीरामचन्द्र राजाओंके लिये प्रायः अति कठोर एकपादी-न्वतका पूर्ण^७ पालन कर सके थे और राज्यके हाथसे सीताको छुड़ाकर अपिन्में उनका प्रवेश कराया था तथा केवल प्रजारञ्जनार्थ ही सीताको बनवास देकर उनसे कठोर तपस्या अंर ब्रह्मचर्यका पालन करवाया था। यह अलौकिक आदर्श प्रत्येक गृहस्थके लिये अवश्य पालनीय है।

एक-पदीन्वत सथा एक-पतिन्वतको पश्यपर चढ़ा देना गृहस्थ नर-नारीके लिये सर्वोत्तम आदर्श है और इसी आदर्शका उल्लंघन उदाहरण श्रीराम-सीताके जीवनमें मिलता है। वाकि-बधके लिये जब सुग्रीवसे श्रीरामचन्द्रको यह मालम हुआ कि एक बाणसे सप्तताल बेघ करनेवाले दीर ही बालिको मार सकते हैं, तब श्रीभगवान्ने धनुषमें बाण चढ़ा कर उसी समय यह प्रतिज्ञा की थी कि 'यदि सीताके सिवा इन्य किसी द्वीपमें मेरी कमी द्वां-कुद्धि नहीं है तो मेरा बाण सप्तताल बेघकर लौट आवेगा।' इस प्रकार प्रणापर चढ़ा हुआ एक-पदी-न्वत पूरा ही उत्तरा था। ऐसेही लंकापुरीमें जब महार्वारको दृग्य करनेके लिये उनकी पूँछपर वस्त्र लपेटकर शब्दाने आग लगवार्दी थी तब पूँछ जलनेका संवाद सुन सीतादेवीने भी एक-पतिन्वतको प्रणापर चढ़ाया था और उसीकी महिमासे उसके लिये अपि चन्द्रनवत् शीतल हो गयी थी। जिस समाजके नर-नारियोंमें यथार्थतः राम-सीताकी पूजा प्रचलित होगी, वहाँ इस अनुपम आदर्शका अवश्य अनुकरण होगा, जिसमें गृहस्थाश्रम साकात् नन्दनकाननके रूपमें परिणत हो जायगा, वहाँ प्रेमकी मधुर मन्दाकिनी सदाके लिये प्रवाहित होती रहेगी, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। इसके अतिरिक्त मानव-जीवनको मधुमय बनानेवाली-आस्तिकता, तितिशा, इन्द्र-सहिष्णुता, वैराग्य, पितृभक्ति, मातृभक्ति, आनृ-भक्तवत्सलता, शरणागत-परावर्यता, ज्ञानस्थृता, सच्चिद्रिता आदि सभी गुणावली श्रीराम-जीवनमें पूर्ण^८ परिस्फुट हुई थी, जिनका सत्य अनुकरण मह-जीवनको भी अवश्य ही मधुमय बना सकेगा, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।

‘अद्यानां लोकपालानं मात्राभिर्निर्मितो नृपः ।’

इन्द्र, कुबेर, बरुजा, चन्द्र, सूर्य, यम, अग्नि, पवन,—हम आष छोकपालोंके अंशसे राजाका निर्माण होता है, यही आवश्यकता सिद्धान्त है। इन्द्रका अंश रहनेके कारण राजामें प्रभुत्व करनेकी शक्ति आती है। कुबेरका अंश रहनेसे धन एवं गति करनेकी शक्ति और बरुजाका अंश रहनेसे आवश्यकतानुसार प्रजाको धन-दानकी शक्ति आती है। चन्द्रके अंशसे प्रजाको सुखी रखनेकी शक्ति और सूर्यके अंशसे प्रजामें कानविद्या-प्रसारकी शक्ति आती है। यमके अंशसे न्यायानुकूल विचार-शक्ति, अग्निके अंशसे पवित्रता और पवनके अंशसे गुरुचरहारा प्रजाकी कुशल जानेकी नीति राजाको प्राप्त होती है। इसप्रकारसे अष्टगुणविभूषित राजा ही वास्तवमें प्रजारञ्जक राजा हो सकते हैं। शुक्रनीतिमें लिखा है—

यो हि धर्मपरो राजा देवोशोऽन्यश्च रक्षासु ।

अंशभूतो धर्मलोपी प्रजापीडाकरो भवेत् ॥

धर्मपरायण राजामें ही उपर्युक्त आठ देवताओंके अंश होते हैं, धर्मिक राजामें असुर तथा रावसोंके अंश होते हैं, ऐसा राजा प्रजारञ्जक न होकर प्रजापीडक होता है और प्रजाका सर्वनाश करके ही अपना स्वार्थसाधन करता है। इसप्रकार प्रजापीडनका अन्तिम परिणाम क्या होता है, उसे महर्षि याज्ञवल्क्यके शब्दोंमें सुनिये—

प्रजापीडनसन्तापात् समुद्भूतो हुताशनः ।

राज्यं कुलं श्रियं प्राणान्नादगच्छा विनिवर्तते ॥

प्रजापीडनरूपी सन्तापसे उत्पन्न दावानल (विद्रोहाग्नि) राजाके राज्यको, वंशको, लक्ष्मीको और प्राणको जलाये बिना निवृत्त नहीं होती। आज समस्त भारतवर्ष इसी घोर सन्तापसे सन्ताप है। किन्तु रामराज्यमें ठीक इससे विपरीत था। श्रीभगवान् रामचन्द्र अत्यन्त प्रजावस्तु थे, प्रजारञ्जन ही उनका एकमात्र ब्रत था, प्रजाके सुखके लिये ही उनका जीवन धारण था। संसारमें ऐसा कोई कार्य नहीं था, जो केवल प्रजारञ्जनार्थ थे नहीं कर सकते थे। उनके समस्त प्राण, समस्त सुख, समस्त पुरुषार्थ प्रजारञ्जनरूपी होमाग्निमें पवित्र वृतकी तरह होमे वा तुके थे। संसारमें ऐसा कोई नरपति नहीं भिलेगा जो केवल प्रजारञ्जनके लिये पूर्ण निर्दोष, परमग्रिया, पवित्रता सीता-सी अपनी सहधर्मियोंका

भी परिस्थान कर दे। किन्तु श्रीरामचन्द्रके जीवनमें ऐसा हुआ था। उन्होंने सब घोरके कर्तव्यको तिकात्तिव देहर, यहाँतक कि अपने हृदयके शुद्ध ज्ञानका भी गला धोंटकर, पूर्ण पवित्र ज्ञानेपर भी केवल प्रजारञ्जनके लिये ही परम सती, परम प्रेमवती निर्दोषा सीताको बनवास दे दिया था। ये सब उनके अपूर्व जीवनमें अलौकिक मर्यादा-स्थापनके दृष्टान्त हैं, उन्होंने एक समय अन्य राजाओंसे भी कहा था—

मूर्मे भूयां माविनो भूमिपालाः ,

नत्वा नत्वा याचते रामचन्द्रः ।

मद्वद्वोऽयं धर्मसेतुर्नराणाम् ,

कांडं कालं पालनीयो भवद्विः ॥

श्रीरामचन्द्रने अत्यन्त विनयके साथ राजाओंसे प्राप्तेना को कि वे उनके द्वारा निर्मित धर्मसेतुकी सुरक्षा सदा करते रहें। इस धर्मसेतुकी सुरक्षाका ही प्रत्यक्ष फल एकादश-सहस्रवर्षव्यापी रामराज्यमें आवश्यको प्राप्त हुआ था, जिसकी मधुर स्तृतिको आगतक भी आयप्रजा नहीं भूल सकी है। रामायणके युद्धकायदमें कहा है—

श्रीरामचन्द्र महाराजके राज्यकालमें लियोंको वैधव्य-दुःख नहीं देखना पड़ता था और किसीको भी सर्पभय तथा रोगका भय नहीं था। चोर, वस्तु आदिका अस्याचार नहीं था, किसी प्रकारका उपद्रव नहीं था। वृद्ध माता-पिताको कभी अपने जीवनमें भृतपुत्रका आदर्कर्म नहीं करना पड़ता था। सभी लोग आनन्दपूर्ण तथा धर्मपरायण थे। श्रीरामचन्द्रके धर्मिक भावका आदर्श पाकर कोई भी परस्पर हिसामें लिस नहीं होता था। सहस्रों पुत्रोंके साथ सहस्रों वर्षों तक रोग और शोकशून्य होकर मनुष्य जीवित रहते थे। वृद्ध सदा ही फल-फूलोंसे सुशोभित रहा करते थे, इच्छामात्रसे ही मेघ जल वरसाते और शीतल, मन्द, सुगन्ध, सुखस्पर्शी वालु बहा करती थी। अपने कर्मसे तृप्त होकर प्रजा अपने कर्ममें ही तप्तर रहती थी। सभी लोग धर्मपरायण थे, कहीं भी मिथ्या व्यवहारका प्रचार नहीं था और सभी सुलभ्यासम्पन्न थे। यदि राजा-प्रजामें सबीं रामपूजा प्रचलित होगी तो पुनः भारतमें आदर्श लक्षिय नरपति और आदर्श राजभक्त प्रजा उत्पन्न हो जायगी जिससे सबको रामराज्यका विमल सुख पुनः प्राप्त हो सकेगा, इसमें जरा भी सन्देह नहीं है। यही हिन्दू-समाजपर रामपूजाके प्रभावका कथज्ञत विवरण है।

कौन बड़ा है ?

(लेखक—स्वामी श्रीकृष्णानन्दजी चक्रवर्ती)



य हम भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और भगवान् पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजीकी जीवन-घटनाओंपर इहि डालते हैं तो आनन्दकन्द्र श्रीकृष्णजी हमारे सम्मुख एक महान् योगिराज, अनुत राजनीतिश तथा धोड़श कलासे पूर्ण अजेय योद्धाके रूपमें आते हैं। और पुरुषोत्तम रामचन्द्रजी विकटसे विकट परिस्थितिमें कर्तव्य-मार्गसे अविचलित, महान् तपस्वीके रूपमें दर्शन देते हैं। भगवान् रामके जीवन रथको बड़ी बड़ी कुर्जेय और प्रतिकूल स्थितियोंमें पार होना पदता है। उनके जीवनसे मनुष्यमात्रों कठिनाइयोंका सामना करनेकी अमोद शिक्षा मिलती है। उदाहरणस्वरूप—प्रतिकूल परिस्थितियोंमें शान्तभावसे सामना करनेकी उस शक्तिकी फ़लक हम इस समय भी राम-नाम-प्रेमी, जगद्गुरु महाराम गान्धीके जीवनमें पद-पदपर देख सकते हैं। अब जोग कभी कभी यह प्रश्न करते हैं कि इन दोनोंमें बड़ा कौन है? वैसे तो जिसका वित्त जिसमें रम आय थाही उसके लिये सब कुछ होता है। हम चाहे जिस रूपमें उसे भर्ते, रूपमें देनेसे कलाकल बड़ा-छोटा नहीं हुआ करता। ऐसे भी भगवान् श्रीकृष्णको १६ कलाका अवतार मानते हैं और श्रीरामको १२ का। इसको हम चाहे यह कहें कि रूपया १६ आनेके बराबर होता है अथवा रूपया १२ मारोका होता है, बात एक ही है। व्यानसे देखनेसे मालूम होगा कि श्रीकृष्ण चन्द्रवंशी ये और श्रीराम सूर्यवंशी। चन्द्र १६ कलाओंमें पूर्ण होता है और सूर्य १२ राशियोंमें। अतः इन दोनों अवतारोंमें किसी भी प्रकार कोई छोटा बड़ा नहीं है।

—♦♦♦—

ज्ञानी-पंडित आदि कौन हैं ?

सोइ पण्डित सोइ पारखी, सोई संत सुजान ।
सोई सूर सचेत सो, सोई सुभट प्रमान ॥
सोइ ज्ञानी सोइ गुनीजन, सोई दाता ध्यानि ।
तुलसी जाके चित भई, रागद्वेषकी हानि ॥

श्रीरामायणमें मांसाहार

(लेखक—विद्यावाचस्पति पं० श्रीबाकुन्दजी शास्त्री)

यह हम तो सबैसम्मत है कि भगवान् श्रीरामचन्द्र मर्यादा-पुरुषोत्तम है और उनका चरित्र परम विशुद्ध एवं आदर्श है। जिस प्रकार संसारी पापम जीव मध्यपान तथा मांस-भजनादि जैसे धृतिश कलोंमें जाने हुए हैं, उस प्रकार ऐसे निष्ठ-कलोंमें जब भगवान्के भक्तजनोंका भी विरत होना सबैथा असम्भव है, तब सातात् भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके विषयमें उन निष्ठावरत्याकी फ़लपन करना महा अनर्थके सिवा क्या कहा जा सकता है। कुछ लोग अमवता श्रीरामके चरित्रमें मांस-भजनका आरोप करते हैं और इसके प्रमाणमें वे श्रीकालभीकी रामायणके उन क्लोकोंका आश्रय लेते हैं जिनमें अर्थाभाससे इन कलोंकी प्रसीदि होती है, पर खेद है कि वे भगवान् रामचन्द्रकी उन अटल और अलखड़ीय प्रतिशास्त्रोंपर ध्यान नहीं देते।

अच्छा, अब सबैप्रथम यह देखना चाहिये कि भगवान्की वे प्रतिशास्त्र जौन-सी हैं, जिनमें मांसादिसे विरत होनेके विषयमें कुछ कहा गया है। देखिये, बन-गमनके समय महाराजा दशरथ और महाराजा कैकेयीके प्रति भगवान् क्या कहते हैं—

चरुदेश हि वर्षणि वत्स्यामि दिजने बने ।

कन्दमूलफलज्ज्वलन् हित्वा मुनिवदमिषम ॥

(वा० रा० २ । २०१२९)

अर्थात् विजन बनमें मैं चरुदेश वर्षेशक कन्दमूल फलोंसे जीवन व्यतीत करता हुआ मुनिजनोंकी तरह मांसको त्यागकर निवास करूँगा। और भी कहा है—

फलानि मूलानि च मङ्गयन् बने

गिरीश पश्यन् सरितः सरांसि च ।

बनं प्रविशयं व विचित्रपादपं

मुखी भविष्यामि तवास्तु निर्वृतिः ॥

(वा० ३ । ३४१५९)

फिर मुनिराज भरद्वाजजीके प्रति भी भगवान्ने इसी वाक्यको कहा है—

मर्मेवाचरिष्यामस्तत्र मूलफलाशनाः ।

वे भगवान्की प्रतिज्ञाएँ हैं। इसके साथ यह भी आन देने चोल्य है कि मर्यादा-मुहूरोत्तमकी सामान्य प्रतिज्ञा अपने कथनके विषयमें कहा है—रामो हिर्नामिभाषते—रामचन्द्र दो बार नहीं कहते अर्थात् एक बार जो कुछ कह दिया सो कह दिया, उसके विपरीत वे कथायि कुछ भनसा, बाचा, कर्मणा नहीं करते।

अच्छा, अब इन प्रतिज्ञाओंके विषद् वासनीकीय रामायणके कुछ इकोंकी, जिनमें अर्थात्मास प्रतीत होता है, यथार्थ व्याख्यापर व्यान दीजिये। चित्रकूटकी पर्याप्तशालाके वासुकी-संग्रावनके लिये भगवान् श्रीरामचन्द्र ने लक्ष्मणवीको इसप्रकार आशा दी है—

ऐयं मांसमाहत्य शालं यद्यमहे वयम् ।

(वा० २ । ५६ । २२)

इसमें स्पष्टतया मांसकी प्रवृत्ति-सी प्रतीत अवश्य होती है। किन्तु बात ऐसी नहीं है। इसकी यथार्थ व्याख्या इस-प्रकार करना उचित है कि ‘ऐयं’ मृगधालापर बैठकर, ‘व’ (यो वायो इति भेदिनी) प्राणायाम करके, ‘मा’ (लोकमाता मा वत्यमरः) लक्ष्मीरूप सीताको, ‘समाहस्य’ सम्बूद्ध बैठकर, ‘वर्यं’ इम, ‘शालां यज्ञामहे’ शालाका यज्ञ करेंगे। अथवा (दूसरा अर्थ) ‘ऐ’ हे लक्ष्मण, ‘यो’ (यः पानीयकलदा इति भेदिनी) जल-कलशके समीप, ‘वं’ मरुद्वान् अर्थात् वासुदेवको, ‘मा’ दुर्गाको, ‘सं’ सर्पभारी गणेशाजीको, ‘आहस्य’ उनके मन्त्रोंसे आवाहन करके, ‘वर्यं’ इम शालाका यज्ञ करेंगे। फिर श्रीरघुनाथजीका वायन है—

मृं हत्यानय द्विप्रं लक्षणेह गुभेक्षण ।

(वा० २ । ५६ । २३)

‘मृग’ वाम यहाँ गजकन्दका है। भद्रपाल-निवारणमें कहा है—(सृगः पश्ची नुरेण गजे च इति शम्दस्तोमः ।) इस स्थानपर ‘कन्द’का लोप हो जाता है (विनापि प्रत्यं पूर्वोत्तरयोः पद्योलोपो वाच्यः—महामात्य) सात्पर्य यह है कि हे लक्ष्मण, गजकन्दको उत्ताकर शीघ्र को आओ। यहाँ ‘द्विप्र’ पदपर व्यान दीजिये। क्या वहाँ मृग वध होनेके लिये लड़े ये जो मारक शीघ्र का विये जाते। ‘गुभेक्षण’ सम्बोधन भी निरर्थक नहीं है। इसका प्रयोग श्रीकृष्णजीके गजकन्द पहचाननेके अर्थात्को लक्षणमें इकाकर किया गया है। भगवान् बार बार कहते हैं कि ‘कर्तव्यः शालमृषो हि विषयमेमनुसर’ उस समय भगवान् श्रीराम वानप्रस्थ-वर्षीय वार्ष वर रहे

हैं। शालोंमें वानप्रस्थाभ्यर्थीके लिये केवल कन्द-मृग-फलोंके ही लानेकी आशा दी गयी है। इसीलिये भगवती सीताका रावणको फल-भिजा ही देनेका वर्णन आता है। आगे लिखा है—

स लक्षणः कृष्णमृगं हत्वा मेघं प्रतापवत् ।

(वा० २ । ५६ । २६)

यहाँ भी काली व्याख्यात्वे गजकन्दके लिये ही ‘हस्तमृग’ पदका प्रयोग है। फिर इसके आगे कहा गया है—

अयं चिद्रेप सौमित्रिः समिद्धं जातवेदसि ॥

ततु एकं समाशाय निष्ठं छित्रशोणितम् ।

(वा० २ । ५६ । २६-२७)

कृष्णजीने गजकन्दको अप्रिये ढाक दिया। यहाँ ‘निष्ठ’ पदपर व्यान दीजिये। ‘निष्ठ् तस्मि’ पदमें एक बार पहलेसे ही ‘स’ के स्थानपर ‘व’ होकर ‘निष्ठ’ पद बन जाता है। वारन्कार अग्नि देनेसे ‘व’ नहीं हो सकता। भगवान् पाण्डिनिका सूत्र है—‘निष्ठस्तपतावनासेवने’ कन्द ही शीघ्र एक बारकी अप्रिये पक जाता है। मृग-मांस शीघ्र नहीं पक सकता। ‘छित्रशोणितम्’ का अर्थ है—नष्ट होता है रुधिर-विकार जिससे। गजकन्दके विषयमें वैद्यकशास्त्रमें लिखा है—‘त्वदोषादिः कुटहन्ता’ इति मदनपालः। इसके आगे यह स्लोक आता है—

‘अयं सर्वः समस्ताङ्गः श्रितः कृष्णमृगो मया ।

देवता देवसंकाशं यजस्व कुशलं इसि ॥’

‘सम्यग् भवन्ति अस्तानि अंगानि येन स समस्ताङ्गः’ अर्थात् लक्ष्मणजी कहते हैं कि सब सम्बूद्ध अच्छे हो जाते हैं अङ्ग जिससे, ऐसा यह कृष्णमृग-काली व्याख्याता गजकन्द प्रसुत है, आप यज्ञ कीजिये। यहाँ ‘मृग’ पदके अर्थमें यह भी विवेद है कि ‘समस्ताङ्ग मृग’ को अप्रिये नहीं ढाका जाता है। पुनः भगवान् विष्णुको मांस-बलि देनेका कहीं विद्यान नहीं है और यहाँ विष्णुको भी बलि देनेका वर्णन है। अच्छा, यह तो चित्रकूटस्थ पर्याशालाके विषयका उत्तेज है, किन्तु आगे चबाकर पञ्चवटीके प्रसंगमें फूलोंकी विद्या चालनेका स्पष्ट विचार प्राप्त होता है। अतः यदि चित्रकूटमें मांस-बलिका विद्यान होता तो इससे भिज पञ्चवटीमें पुष्प-बलिका विद्यान क्यों किया जाता ? फिर देखिये, भगवान्ने विषयको विदरपिण्याकाळ पिष्ठ ही अर्थव लिया है। विष्णुद्वानके समय भगवान्ने विज्ञानसे बद्ध है—

इदं भुक्ष्व महाराज श्रीतो यदराना वयम् ।
यदज्ञः पुरुषो तद्ग्रास्तस्य देवताः ॥

इससे भी स्पष्ट है कि भगवान् श्रीराम फलमूलका ही
भजण करते थे ।

रोहिमांसानि चोद्भृत्यं पशीकृत्वा महायशः ।
शकुनाय ददौ रामो रम्ये हरितशाह्वले ॥

(२० रा० ३ । ६८ । ३३)

यदि उपर्युक्त श्लोकके विषयमें यह शङ्का की जाय कि जटायुके लिये मांसपिण्ड क्यों दिया गया तो इसका उत्तर यह है कि यहाँपर इसका अर्थ मांसपिण्ड नहीं है । 'रोहि' नाम बीजका है उनका 'मांस' अर्थात् गूदा निकालकर 'पेशी' यानी गोली बनाकर थी गयी है । शूगका नाम 'रोहिणा' अकारान्त है 'रोहि' नाम शूगका कहाँ नहीं पाया जाता । यदि 'मृग' का अर्थ लिया जाय तो वहुवचनमें इसका अर्थ बहुतसे मृगोंका मांस होगा, पर वहाँ तो पिण्ड ही दिया गया है । यथापि रामाभिरामीय टीकामें रोहि शब्दका अर्थ शूगवाची ही लिखा है, पर वहाँ कोई प्रमाण नहीं दिया गया है । शब्दस्त्रोमें—'रोहिण्डो शूश्रे बाजे चेति' लिखा है । और 'मांस'का अर्थ गृदा भी है । मधुनपाल निघटदूमें 'बेर' के आगे लिखा है 'स मांसं मधुरं प्रोक्षं' मांस-सहित बेर मीठा होता है । अब 'पश्या'का प्रकरण भी देखिये—

धृतपिण्डोपमानम्यूलांस्तान् द्विजान् भक्षयिष्यथ ॥
रोहितंश्चकुप्षाश्च नलमानंश्च राधव ।
पम्पायामिषुभिर्मस्त्यांस्तत्र राम वरान्हतान् ॥
निस्त्वरु पक्षानयस्तसानकशानेकपटकान् ।
तव भक्त्या समायुक्तो लक्षणः सप्रदास्यति ॥
भृशो तान्वादतो मत्स्यान् पम्पायाः पुष्पसञ्चये ।
पद्मगनिधि शिवं वारि सुखशीतमनामयम् ॥
अंसां पुष्करपणेन लक्षणः पाययिष्यति ॥

(२० रा० ३ । ७३ । १३-१७)

यह उसी श्रीरामचन्द्रजीके प्रति कवन्नकी है । आप दोनों आता धृतपिण्डके समान कोमल म्यूल फटडख आयि फलोंके गूदेको 'तान् द्विजान्'—उन पश्या-सरोवरके आसपास वास करनेवाले पश्यियोंको भजण करवेंगे । इ राम, पश्यमें इत्युग्मिः—(इवेग्नतिकर्मणः इति निलकम्) अपनी चालोंसे, 'बेर'-सुन्दर, 'हताद्'-अर्थात् संहतान्, यहाँ 'सं'का लोप हो

गया है, उसी महाभाष्यके वार्तिकसे 'विनापि प्रत्यं पूर्वोत्तरयोः पदयोलोपो वक्तव्यः ?' इकडे हुए, त्वचापहरहित, 'मध्यलस्त्' (अय इव तस) अर्थात् लालरंगकी मङ्गलियाँ और रोहित, चक्रतुरण, नलमीनोंको भी आपकी भस्त्रिसे लक्षणाजी फलोंके गूदे ढालेंगे । 'मृशं' अत्यन्त फल डालनेपर 'मस्त्यान् खावत्' 'खादनं खादयस्तव' अर्थात् मङ्गलियोंको भोजन डालनेवाले श्रीलक्ष्मणजी आपको कमलपत्रोंके लोनोंमें जलपान करावेंगे । यहाँ 'स्थूल' पदके अर्थपर ध्यान न देनेके कारण ही टीकाकारोंने हस इहस्यको नहीं समझा है । यदि यह कहा जाय कि महर्षि वाल्मीकिजीने ऐसा संदिग्ध वर्णन क्यों किया तो श्रुति प्रमाण है—'परोक्षप्रिया देवाः प्रत्यक्षदिषः ।' देवताओंको परोक्ष ही प्रिय है, इसीके अनुसार आर्य-ग्रन्थोंको भी समझना चाहिये । सबसे बढ़कर हमारे हस लेखके प्रमाणमें 'रामो दिनोंभिरभाषते' वह भगवान् बाबू है । इस बातको लक्ष्यमें रखकर ही विचार करना चाहिये कि जब श्रीरामकी प्रतिज्ञा फल-मूल भजण करनेकी है तब उनके विषयमें मांसका व्यवहार करना किस प्रकार सम्भव हो सकता है । हमने ऊपर जिस बातकी स्पष्ट विवेचना की है यदि उसके अतिरिक्त किसी विद्वान्को और भी वाल्मीकीय रामायणके किसी प्रकरणमें इस विषयमें कुछ पूछना हो तो वे 'कल्याण' पत्रहारा ही अपनी शङ्का प्रकट करें । उसका यथावन् समाधान किया जायगा ।

रामके चार निवास-स्थान

(१)

जस तुम्हार मानस विमल हंसिनि जीहा जासु ।

मुकुताहल गुनगन चुने राम बसहु हिय तासु ॥

(२)

सब कर मँगाहिं एक फल राम-चरित-रति होउ ।

तिन्हके मन-मंदिर बसहु सिय रघुनंदन दोउ ॥

(३)

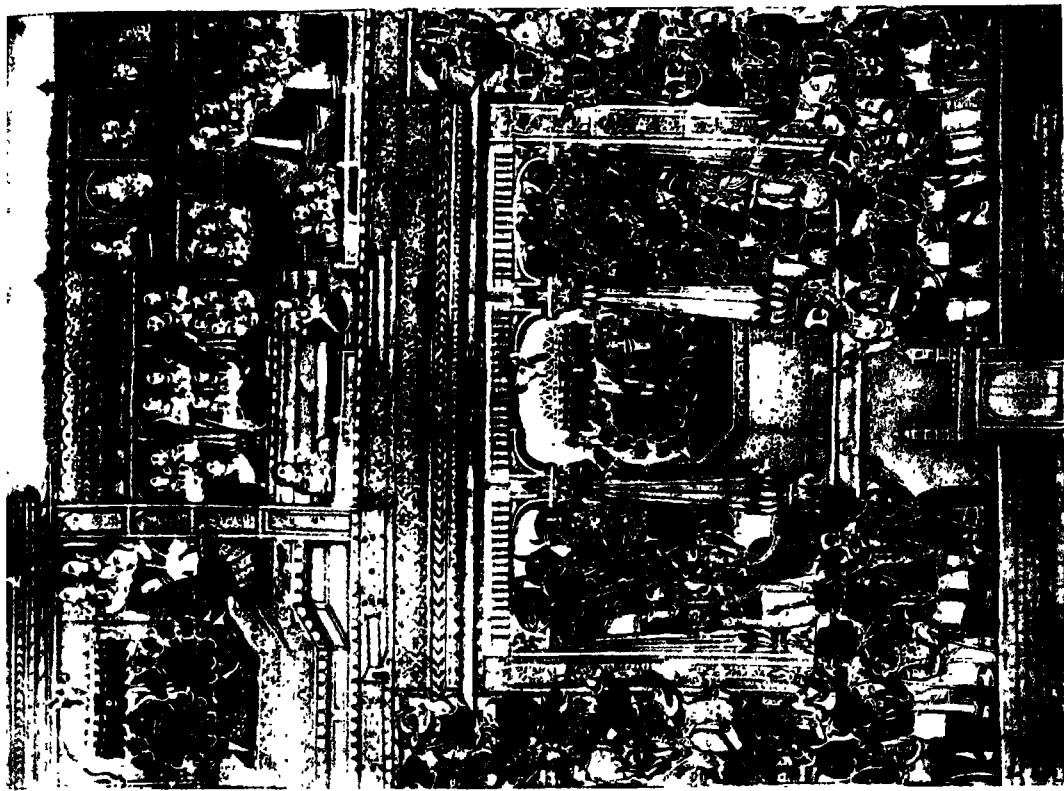
स्वामि-सत्त्वा-पितु-मातु-गुरु जिन्हके सब तुम तात ।

मनमन्दिर तिन्हके बसहु सीय-सहित दोउ भ्रात ॥

(४)

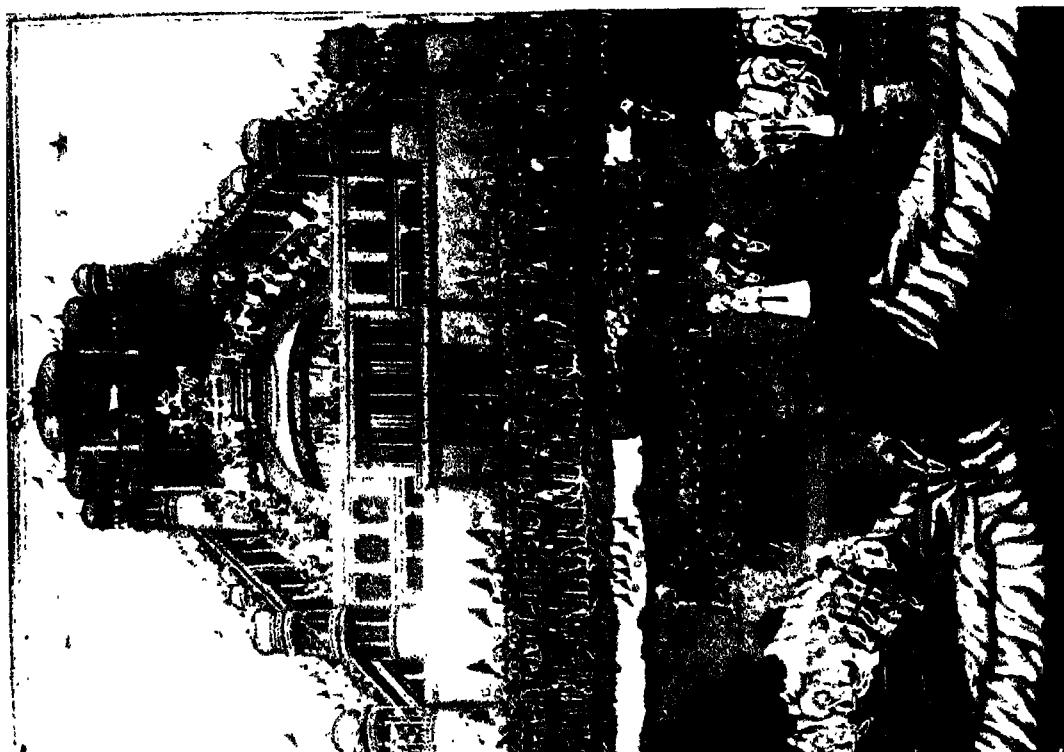
जाहि न चाहिय कबहुँ कछु तुम्हसन सहज सनेह ।

बसहु निरंतर तासु मन सो राजर निज गेह ॥



रावण-मन्दिरी ।

तारि-चक्रन सुनि चिस्त-समाना । समा गवेष उठि होत विहाना ॥



लङ्का पर चढायी ।

जानत परम्परां अनि लका । प्रभुप्रताप करि चले असंका ॥



कुम्हकर्णी-युद्ध |
नाथ भूषण-कार-सरता कुम्हकरन आवत तथीरा ॥



लाटमण-मङ्गी |
तव नगि लेज आयउ हरुमानि अनुज देवि प्रभु गनिदृग माना

श्रीसीताजीका वनवास

(लेखक—महामहोपाध्याय डा० श्रीगंगानाथजी ज्ञा, एम० ए०
डि०लिट्, बाइस चैन्सलर, प्रयाग विश्वविद्यालय)



रामचन्द्रजीके चरित्रपरीक्षकोने श्रीसीता-वनवासके प्रसंगको लेकर दोषारोपण किया है। पर ये परीक्षक इस बातको भूल जाते हैं कि रामायणमें जितने चरित्र-चित्रण हैं प्रायः सभी आदर्शरूपेण हैं। अबोच्चा आदर्श नगरी, दशरथ आदर्श पति, आदर्श पिता, श्रीराम आदि आर्तोंभाई-आदर्शपुत्र, श्रीसीता आदर्श पत्नी—यहाँतक कि रावण भी आदर्श रात्रु है। श्री-रामजीको धार्मीकिने आदर्श राजा भी बतलाया है। इसी आदर्श राजाके चित्रणमें उनको साधारण मनुष्यसे अकरणीय श्रीसीताजीका परिवागतक भी करताना पड़ा। इसका कारण यह था कि राजाको जनशुतिहारा सीताजीके प्रति जब शङ्का-का पता लगा तब उनको यह सन्देह हुआ कि इस शङ्काके उठनेपर भी यदि मैं मोहब्बत सीताको घरमें रहने देता हूँ तो इस बातका ढर है कि साधारण जनतापर इसका तुरा असर पड़े। बस, प्रजामें इस प्रकारकी उछुँझलताको शंका होते ही आदर्श राजाका जो कर्तव्य हो सकता है वही श्रीरामने किया। अपने आदर्शको उन्होंने स्वयं बतलाया है—

स्तेहं दद्यां तथा सौख्यं यदिवा जानकीमपि ।
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा ॥

यहाँ 'आराधनाय' पदसे 'प्रसन्न करके लिये' विविहित नहीं है—विविहित है 'रक्षणाय' रक्षाके लिये—'प्रति-पालनाय'—प्रतिपालनके लिये।

महापुरुषोंके चरित्र-परीक्षणमें यह सारण रखना आवश्यक है कि वे 'महापुरुष' ये। साधारण पुरुषोंमें जो नियम लागू होते हैं, वे उनमें नहीं हो सकते, न साधारण पुरुषोंमें ऐसे उच्चकोटिके चरित्रको समझनेकी शक्ति ही हो सकती है।

दुःखकी आगमें कौन नहीं जलता ?

दास रता एक नामस्रों उभय लोक सुख त्यागि ।
तुलसी न्यारे हैं रहै दहै न दुखकी आगि ॥

दास और परम-पद

(लेखक—पं० श्रीरामांकरजी मिश्र 'श्रीपति')



श्री-स्थापिनी, भुवन-मोहिनी, मनोहर-मायके रूप और लावण्यपर मुग्ध हो जानेकी मधुर लालसा किसके हृदयमें नहीं होती? सांसारिक ऐश्वर्यके सुख-भोगकी प्रबल पिपासा किसे न्याकुल नहीं बना देती? प्रिय पदार्थको प्राप्त करनेकी कामना और जीवनको सदैव आनन्दमें ध्यतीत करनेकी आकांक्षा किसे आकुल नहीं किया करती? मनुष्यमात्र जब स्वार्थ-रक्षाके लिये उत्सुक रहते हैं, सभी जन्म, सूखु, जरा और रोगके भयसे बचना चाहते हैं तब दास ही अकेला क्यों अपने अस्तित्वको मिटाकर आत्म-स्थानका अनुत आस्थान सुना करे? दासका ही अन्तःकरण क्यों अनेक सास्त्रिक भावनाओंका समारोह-स्थल बनता रहे? कुछ महानुभाव तो यहाँ तक कह डालनेके लिये तैयार हैं कि इस दास द्वारा चलाकर, स्वावलम्बन एवं स्वाधीनताके विचारोंको समूल नष्ट कर डाला है और देशको अधःपतनके मार्गपर पहुँचा दिया है।

सत्य ही दासता तुरी है, इसलिये कि उसमें और विषय-धासनामें पारस्परिक विरोध है। दासको अपना शीश देकर पराये शीशकी रक्षा करनी पड़ती है। मन, वचन और कर्मसे सदा स्वामीके अनुकूल ही अपने आचरण बनाने पड़ते हैं। यश-अपवश, मान-अपमानके भेदभावको भुला-कर घरबार, परिवारसे विरक्ष होकर, अन्यकी दासतामें ही अपनी जीवन-उद्योग्सनाको नष्ट कर देना पड़ता है। हँसते हँसते प्राणोंकी आहुति चढ़ानी होती है।

दासकी निधियाँ

'पूर्ण' सन्दोष, व्याग, चमा और उदासीनता दासकी निधियाँ हैं। रागाङ्कके स्थानपर उसके हृदयमें अद्वाकी निधि भरी होती है। चिन्ताको दूर करनेके लिये अनुरागका आस-चिन्तामणि दासके पास ही होता है। मद, मान, मस्तकी महभूमिमें उसे अपार आनन्दका कल्पमुम लहलहाता शिखतावी पड़ता है। वितापहारी फल्याणका कौसुम सो उसकी निजी सम्पत्ति है और आत्मसमर्पणका अच्छ-भयडार कुवेरके कोषसे कहाँ बढ़ा-बढ़ा आपना कमाया हुआ मूलधन है।

दास और ग्रन्थ

वज्र, तुंडि, विद्या और विवेक अहंकारकी घटियाँ हैं। विनम्रे पदकर अङ्-जीव, अङ्-पदार्थोंमें ही काल्पिक सुखक अनुभव करने लगता है। एक ही जन्म क्षयों, वरन् अनेक अन्मोत्तक यदि अपने स्वरूपको भूला हुआ वह मात्रा-मरीचियाँमें भटकता रहे तो कोई विचित्र बात नहीं। इसीलिये दद निश्चयवाले निष्काम सेवाको ही सर्वश्रेष्ठ समझ कर स्वामीकी सेवामें ही मन लगानेमें अपना परम कल्याण समझते हैं।

उमासे शंकरजी कहते हैं—

पुरुष प्रसिद्ध प्रकास निधि प्रगट परावर नाथ।

रघुकुल-मनि मम स्वामि सोइ कहि सिव नाथउ माथ।

भूतभावन भगवान् शंकर भी किसी औरको अपना स्वामी मानकर दास होनेमें गौरव समझते हैं। सत्य है, गौरवका प्रभ वहाँ कोई मूल्य नहीं रखता, क्योंकि दास बहाँपर प्रभुकी सेवामें ही सुख मानता है वहाँ प्रभु स्वयं दासकी पूजा करनेके लिये उद्धत हो जाते हैं। यथा—

हिंग थापि विधिवत करि पूजा। सिव समान त्रिय मोहि न दूजा॥

सिव द्रोही मम दास कहावा। सो नर सप्नेहुं मोहि न पावा॥

सच्चे दास, भय और शोकसे मुक्त होकर सच्चे प्रभुकी सेवा करनेके लिये अपना सर्वस्व छोड़ दैठते हैं। पवनसुतसे छंकेरवरका भाई प्रभ करता है—

तात कबहुं मोहि जानि अनाया। करिहहि कृपा भानु-कुरु-नाया॥

तामस तनु कठु साधन नाही। प्रीति न पद सरोज मनमाही॥

प्रभु येसे दासका स्वागत किस प्रकार करते हैं—

दीन बचन सुनि प्रभु भन भावा। भुज विसाल गहि हृदय लगावा॥

जो सम्पति सिव रावनहि दीनह दिये दस माय।

सोइ सम्पदा विभीकनहि सकुचि दीनह रघुनाथ॥

दास और शक्ति

दासको उक्तव्यकी उत्कृष्ट दीक्षा कौन देता है? उसमें अपरिभित शक्तिका ग्राहुभाव कहाँसे होता है? इहता, आत्मनिश्चय और परोपकार-परापरायाता कहाँसे आ जाती है? काल्पनक्षे जीवत्वका विनिमय और जीवत्वसे स्वामीके कार्य-साधनका अदृढ़ साहस कहाँसे उत्पन्न हो जाता है? क्या वह सब दास-मात्रकी यज्ञस्वाक्षंकाक भीठा कह नहीं है?

जटायु तो जट, अधम, आमिषभोजी पहो था, फिर भी दशकरठ जैसे प्रबज पराकर्मी सुभटको विरय कर दाकनेकी शक्ति उसमें आ जुकी थी। शक्तिवारी न या तो भी रावत्वको असम्ब्रह्म करनेका पर्याप्त बल उसकी चोंचमें ही भर जुका था। अनेक पीड़ियोंसे पीड़ित होनेपर दासका मन जब अधीर हो उठता है, शरीर व्यथाओंसे व्यथित हो जाता है, और कष्ट-सहिष्युता प्रयान कर जाती है तब दोनोंहितकारी, दासको वह अपूर्व शक्ति देते हैं जिसके प्रभावसे वह अव-बन्धन तोड़कर परम शान्तिको प्राप्त होता है—

करसरोज सिर परसेड कृपासिन्धु रघुनीर।

निरसि राम-चूनि-धाम-मुख विगत मई सब पीर॥

दास और तप

पुराण साड़ी हैं, अनेक तपस्वी अपने तपसे विचलित हुए, अनेक ज्ञानी मोहमें पदकर अधोगतिको प्राप्त हुए और परिष्वाम-स्वरूप उन्हें कठिनसे कठिन कष्ट और कठोरसे कठोर दशव भोगने पड़े, परन्तु दासके तपमें उसके रक्षक स्वयं भगवान् हुआ करते हैं। कैसे ही प्रलोभन क्यों न आवें, दासको विचलित होनेसे प्रभु ही बचाया करते हैं।

पद न सही, पादुकाओंकी भी सेवा दास उसी दृष्टिसे करते हैं, उन्हीमें मन लगाये हुए अपनी तपस्या पूर्ण करते हैं और मनको भोग-विलाससे कहाँ दूर रखते हुए उस पदको प्राप्त होते हैं जिसके लिये सुर, नाग, किंचन और गम्भीर सभी खालायित रहते हैं।

अवघरानु सुररानु सिहाई। दसरथ धन सुनि धनद लजाई॥

तेहि पुर बसत भरत विनु राग। चश्चरीक जिमि चम्पक बाग॥

रामविलास राम अनुरागी। तजत बमन जिमि जन बड़मागी॥

भरत रहनि समुद्धनि करतूती। मगति विरति गुन विमल विमूती॥

बरनत सकल सुकवि सकुचाही। सेस-गजेस मिरा गमु नाही॥

वह है दासकी, तपस्या विसदा वर्षान कठिन ही नहीं करन् असम्भव है। फिर उस तपस्याका वर्षान प्रभु किस शब्दोंमें कहते—

ब्रह्म भरत तुम धरम-धुरीना। लोक बेदविद ब्रेम प्रवैना॥

करम बचन मानस विमल तुम्ह समान तुम्ह तात।

गुरु समाज लघु बन्धु गुन कुसमय किमि कहि जात॥

उत्त प्रह्लादकी पूर्ण विदेही कर देते हैं—

भरत-राम-नुग-ग्राम-सनेहू । पुलकि प्रसंस्त राठ बिदेहू ॥
सेवक स्नामि मुमाट मुहाकन । नेमु त्रेमु भति पावन पावन ॥

दास और दीनबन्धु

दीनबन्धु सदा दासकी रुचि रखते हैं । ग्रामोंसे प्यारा आनन्दर हृदयसे जगाते हैं और सदा एवं बन्धुके समान मानते हैं । श्रीरामजीने नीच निवादको अपना सखा जगाया, जिसे गुह किस गर्वभरी वाणीसे बह रहा है—

कपटी कपटी कुमति कुमती । लोक बेद बाहर सब भाँती ॥
राम कीन्ह आपन जबहीते । भयड़ मुकन मूजन तबहीते ॥

ऐसे कपटी और कुमतिकाले दासको कैसा आदर निकलता है, वह इन पंक्तियोंसे प्रमाणित होता है—

राम सक्षा सुनि स्थनन्दु त्यागा । चले उतरि उमगत अनुरामा ॥
लोक बेद सब भाँतिहि नोचा । जासु छाँह छुइ लेह्य सीचा ॥
तेहि मरि अंक राम-लघु-भ्राता । मिलत पुलक परि पूरित गाता ॥
कहहि लहेड़ एहि जीवन लाहू । मेटेड रामभद्र मरि बाहू ॥

दासका ग्रन्थ

पिन्-ज्ञाय, गुह-ज्ञाय और देव-ज्ञायसे उज्ज्ञाय होना
सरद है किन्तु दासके ज्ञायसे उज्ज्ञाय होना अस्थन्त कठिन है ।
दास प्रसुपुकार या फल नहीं चाहता । वह तो प्रसुपुर और
अधिक ज्ञाय लालेनके लिये जन्म-जन्म यह-सरोज-सेवाका
ही बरदान मर्हीग करता है । उसे सेवामें ही परमानन्दकी
उपदायित पद्म सेवा करनेमें ही सबे सुखका लाभ मिलता
है । ऐसी दशामें प्रसुको यहा सझोच होता है । उस समय
दासको अपनालेने और अपना सर्वेत्व उसे सौंप देनेके
अतिरिक्त प्रसुको और कोई उपाय नहीं सूझता । पवनकुमारसे
प्रसु कहते हैं—

सुनु कपि तोहि समान उपकारी । नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी ॥
प्रतिउपकार करड़ का तोरा । सनमुख होइ न सकत मन मोरा ॥
सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं । देखें करि विचार मनमाही ॥

ऐसी दशामें स्वामीको ज्ञायसे उज्ज्ञाय करनेके लिये
दास फिर उन्हीं चरणोंकी शरण जाता है । व्याज समेत
मूलधनसे सुख कर देनेके लिये प्रसुको उन चरणोंकी याद
दिलाता है जो सहज ही पाषाणकी भी ग्रतिमाको तार
दिया करते हैं ।

बार बार प्रसु भहिं उठावा । प्रेममग्न तेहि उठनु न मावा ॥
प्रसु-कर-पंकज कपिकै सीता । सुमिरि सो दसा मग्न गौरीता ॥

दास और कर्तव्य

सेवा-धर्म ही दासका परम कर्तव्य बन जाता है ।
यह, तप, व्रत, विचानादि सभी सेवाके स्वरूपमें परिवर्तता
हो जाते हैं । स्वामीकी जब कभी जो इच्छा हुई उसे वहीं
पूर्ण करना पड़ता है । इच्छा न भी हो तो भी सेवासे मुख
मोदनेकी बहाँ गुंजाइश नहीं रहती । जग्मयाजी श्रीरामकी
सेवा किस प्रकार करते हैं—

सेवहि लघन सीध रथुबीरहि । जिमि अविवेकी पुरुष सरीरहि ॥
सेवहि लघन करम मन बानी । जाय न सील सनेहु बकानी ॥

कभी कभी प्रसुकी आज्ञा कहुई हो जाती है, उसमें
वज्रकी-सी कठोरता, विषकी-सी जलन और वाणीकी-सी
मार्मिक व्यथा भरी होती है । दासका मन तिक्तमिळा
उठता है, भस्तक धूम जाता है और कर्तव्यपरायखता कांप
जाया करती है । जिन जनक-नन्दिनीके लिये असंख्य
बानरोंको प्राण विसर्जित करने पढ़े थे, लक्ष्मणको हृदयपर
सेवा सहनी पढ़ी थी और रावणके बंशका विनाश किया गया
था, उन्होंका अपमान स्वयं मर्यादा-पुरुषोत्तम करते हैं और
अप्निमें जीवित जानाये जानेके लिये चिता जुननेका
आदेश लक्ष्मण-सरीखे सुकुमार-हृदयको देते हैं । क्या
जग्मयके हृदयमें जगत-जननीजानकीके प्रति काफी मातृ-भक्ति
न थी? यी अवश्य ! किन्तु प्रसुकी आज्ञाके सम्मुख, इच्छाके
विन्दु, दासको सिवा इच्छापूर्ण करनेके और कोई चारा
नहीं रह जाता ।

सुनि लछिमन सीताकै बानी । विरह-बिवेक-धरम-नय-सानी ॥
होचन सजल जोरि कर दोऊ प्रसु सन कहु कहि सकत न ओऊ ।
देवि रामस्व लछिमनु धाए । पावक प्रगटि काठ बहु लाए ॥

यह है दासकी सेवा और इतना है कठिन कर्तव्य !

दास और आत्मसमर्पण

यहज्ञारपूर्ण व्यक्तिवाको छोड़कर जिस समय श्रीवाल्मी
प्रसुके चरणोंमें आत्मसमर्पण कर देता है और आभ्यन्तरिक
हृदयस्थ उपास्यदेवमें जब उसका मन पर्याप्तया स्थिर होकर
खग जाया करता है, उसी समय त्रिगुण-तरङ्गमयो-मोहात्मक
प्रकृतिका आवरण बीचसे हट जाया करता है और दास
उस अस्वरूप अविनाशी शरियके लिये यह किया करते हैं,
किन्तु उनका उत्तरदायित्व दाससे उन्हों अधिक हुआ करता

है। कारण, दासका उत्तरवाचिक अधिकारीमें प्रभुगर ही
बुझा करता है और वे अपने सेवकपर श्रीति भी करते हैं—
सुनहु विमीण प्रभु कह रीती। करहि सदा सेवकपर श्रीती॥

जहाँ आत्मसमर्पय हुआ, प्रभु शत्रुको भी अपनाते हैं
और अपने भासका अधिकारी बनाते हैं। बालि दुष्ट,
दुराचारी और पतित था, किन्तु—

राम बालि निज धाम पठावा।

विराघ असुर था। श्रीरामसे युद्ध दानकर सम्मुख आया
था। उसे भी उन्होंने अपनाया—

तुरतहि रुचिर रूप तेहि पावा। देखि दुखी निज धाम पठावा॥

कहाँतक कहा जाय। अन्त समयमें भी जो प्रभुके
समीप आकर अपनेको सौंप देते हैं, वे दास परमपदके
अधिकारी बन जाते हैं।

राम सरिस को दीन हितकारी। कीन्हे मुक्त निसाचर क्षारी॥
खल-मलघाम कामरत रावन। गति पाई जो मुनिवर पावन॥

अन्तमें इतना ही अखम् होगा कि विन चरणोंकी—
जे चरन सिंद-अज-पूज्य रज सुम परसि मुनि-पक्षी तरी।

नखनीराता मुनि बनिदा त्रैलोक्य पावन सुरसरी॥
च्वज-कुलिस-अंकुस-कला-युत बन फिरत कप्टक किन लहे।
पद-कला-दंड भुकुन्द राम रमेस नित्य भजामह॥

—शरण जानेपर समस्त शाश्वती आध्यात्मिक, आधिभौतिक,
आधिदैविक दुःखोंसे मुक्त होकर परम शान्ति एवं परम-
पदको ग्रास होते हैं, उन्होंकी सेवासे, उन्होंका दास बनकर
मनुष्य सदा कर्तव्यपरायण और सफल सैनिक बन सकता
है। दासनाका दास बनकर नहीं, बरन् प्रभुका दास बनकर
ही परम-पदका अधिकारी हो सकता है।

निषादका प्रेम

(लेखक—आचार्य श्रीअनन्तलालजी गोस्वामी)

ततो निषादाधिपति दृष्टवा दूरादुर्पास्थितम्।
सह सीमितिणा रामः समागच्छद्गुहेन सह ॥

(वा० रा० २। ५०। ३५)



धुर्यमय सर्वय-प्रेममें शान्त और दास्य—दोनों
प्रकारकी—उपासनाओंकी अपेक्षा अधिक
आस्वादन है। इसके रससे अधिक मिठास
गुड या राबमें होता है। सर्वय-रसमें शान्त-
रसका आस्वादन एकनिष्ठा और दास्यका
सेवा-सुख, यह दोनों तो होते ही हैं, किन्तु
इसमें निःसङ्कोच 'प्रेम' विशेष होता है।

निषादराज विना छज्ज-कपटके सीधे-सावे शब्दोंमें
निःसङ्कोच-भावसे कहते हैं—

नहि रामाधिगतमो ममास्ते मुवि कश्चन।
(वा० रा० २। ५१। ४)

यह मनुर 'मिथितम्' शब्द प्रेमी निषादके मुँहसे ही नहीं,
इवयसे, करणसे और प्रत्येक लोम-कूपसे, बीणाके तारोंकी
तरह मङ्गकार रहा है।

बनवासी शिकारी निषादके भावोंमें कोभलता, व्यवहार-
में सरबता और श्रीराममें समरताका कारण प्रेम ही है।

सम्यद्भूषितस्वान्तो ममत्वातिशयाद्वितः।

भावः स एव सान्द्रात्मा वृद्धैः प्रेमा निगदयते ॥

(भक्तिरसाशृतसिन्धु)

जिस भावसे इवय कोमङ्ग होता है, जिससे अस्यन्त
ममता उत्पन्न होती है उसीको उच्चजन 'प्रेम' कहते हैं।

निषादराज और श्रीराम, अर्जुन और श्रीकृष्ण, गदाधर
और श्रीचैतन्य, भक्त और भगवान्‌की जोड़ी प्रशंसनीय है।

इससे उल्लट प्रेमावस्था और कौन-सी हो सकती है?
प्रेमी निषाद राजीवज्ञान श्रीरामके मुखसे जब यह सुनता
है। जिसकी आशा उसे स्वयमें भी न थी—कि,

आयास्याम्युदितं सत्यं नास्त्यं राममाधितम्।

(वा० रा० २। ६। २६)

श्रीराम, प्यारे निषादसे मिलनेकी सप्तमात्र प्रतिश्ना
कर उसे इवयसे लगा बारबार समझते हैं। निषादराज
जुप हैं, बोलें भी तो क्या? क्यठ गङ्गाव् हो गया है;
आँखोंसे मरकर प्रेमाशु डबक रहे हैं, इवयमें हाहाकार हो
रहा है।

'हा हा कदानु भवितासि पद इशोमे ।'

(हृषकर्णमृत)

प्रेमीके हृदयका भाव कौन जाने । हृदयवहभक्तो उसने सब प्रकारसे हृदयमें रक्खा, पर प्यास न मिटी । श्रुति हसीको सख्य-सख्यनष्ठ कहती है, यही परम रस है । 'रसो वै सः ।'

निषादके निष्कर्ष, निष्वार्थ प्रेमपर जिनना भी लिखा

जा सके, योका है । जो हस श्रेणीमें पहुँच जाने हैं उनके बाय धर्म-कर्म कुछ नहीं रहते । यदि मनुष्य हस उज्ज्वल प्रेममें मग्न हो जाय तो संसारसे दुष्ट विकारोंका समूल नाश हो जाय । पवित्र प्रेमाभिसंवादके हृदयमें जल उठे । ॥

दशारथके समयकी अयोध्या

यह महानगरी बारह घोड़न लम्बी थी । हसमें सुन्दर लम्बी-चौड़ी सड़कें बनी हुई थीं । नगरीकी प्रवान सड़कें तो बहुत ही लम्बी चौड़ी थीं, जिनपर रोज जलका छिकड़काढ होता था, सुगन्धित फूल विशेरे जाते थे, दोनों ओर सुन्दर बृक्ष लगे हुए थे । नगरीके अन्दर अनेक बाजार थे, सब प्रकारके यन्त्र (मशीनें) और युद्धके समान तैयार मिलते थे । बड़े बड़े कारीगर बहाँ रहते थे । अटारियोंपर ज्वलाएं फहराया करतीं थीं । नगरकी चारदीवारीपर सैकड़ों शताङ्गी (तोपें) लगी हुई थीं, बड़े भजवूत किंवाड़ लगे हुए थे । नगरके चारोंओर शालवृक्षकी दूसरी चारदीवारी थी । राजाके किलोके चारों ओर गहरी खाई थी । अनेक सामन्त, राजा और शूरवीर बहाँ रहा करते थे । ज्यापारी भी अनेक रहते थे । नगर हन्दकी पुरीके समान बड़े सुन्दर ढंगसे बसी हुई थी । उसके आठ कोने थे । बहाँ सब प्रकारके रथ थे और सात-मंजिले बड़े बड़े मकान थे । राजाके महलोंमें रथ जड़े हुए थे । बड़ी सघन बस्ती थी । नगरी समतल-भूमिपर बसी हुई थी । खूब धान होता था और अनेक प्रकारके और पदार्थ होते थे । हजारों महारथी नगरीमें रहते थे । वेदवेदाङ्कके ज्ञाता, अग्निहोत्री और गुणी पुरुषोंसे नगरी भरी हुई थी । महर्षियोंके समान अनेक महात्मा भी बहाँ रहते थे ।

उस समय उस रम्य नगरी अयोध्यामें निरन्तर आनन्द-में रहनेवाले, अनेक शास्त्रोंको अवश्य करनेवाले धर्मात्मा, सत्यादी, लोभरहित और अपने ही धनमें सन्तुष्ट रहनेवाले मनुष्य रहते थे । ऐसा एक भी गृहस्थ नहीं था जिसका धन आवश्यकतासे कम हो, जिसके पास इहलोक और परलोक के सुखोंके साधन न हों । सभी गृहस्थोंके धर गौ, घोड़े और धनधान्यसे पूर्ण थे । कामी, कृपण, कूर, मूर्ख और नास्तिक

तो हैंदे भी नहीं मिलते थे । वहाँके सभी छी-पुरुष धर्मात्मा हन्दिय-निग्रही, हर्षयुक्त, सुशील और महर्षियोंके समान पवित्र थे । सभी स्नान करते, कुण्डल-सुकूट-माला धारण करते, सुगन्धित वस्तुओंका देपन करते, उत्तम भोजन करते और दान देते थे । परन्तु वह सभी आप्यवान् थे, सभी अस्ति-होत्र और सोमयाग करनेवाले थे । खुद विचारका, जरिव्रहीन, और और क्षर्ष सङ्कर कोई नहीं था । वहाँके जितेन्द्रिय आङ्गण निरन्तर अपने नित्यकर्मोंमें लगे रहते थे । दान देते थे, विचार्यन करते थे, परन्तु निषिद्ध दान कोई नहीं लेता था । अयोध्यामें कोई भी नास्तिक, कूटा, हृथर्या करनेवाला, अशक्त और मृद नहीं था । सभी बहुश्रुत थे । ऐसा कोई न था जो बेदके छः अङ्गोंको न जानता हो, ब्रत-उपवासादि न करता हो, दीन हो, पागल हो या दुखी हो । अयोध्यामें सभी छी-पुरुष सुन्दर और धर्मात्मा राजाके भक्त थे । चाहों वर्णोंके छी-पुरुष देवता और अतिथियोंकी पूजा करनेवाले, दुखियोंको आवश्यकतानुभार देनेवाले, कृतज्ञ और शूरवीर थे । वे धर्म और सत्यका पालन करते थे । दीर्घजीवी थे और छी-पुरुष-पौत्रादिसे युक्त थे । बहाँके लक्ष्मी ब्राह्मणोंके अनुयायी, वैद्य चत्रियोंके अनुयायी और शूद्र तीनों वर्णोंके सेवारूप सुकर्मण्में लगे रहते थे । नगरी राजाके द्वारा पूर्ण रूपसे सुरक्षित थी । विद्या-बुद्धि-निषुण अग्निके समान तेजस्वी और शत्रुके अपमानको न सहनेवाले योद्धाओंसे अयोध्या उसी प्रकार भरी हुई थी जैसे गुफाएं सिंहोंमें भरी रहती हैं । अनेक प्रकारके घोड़े और बड़े बड़े मतवाले हाथियोंसे नगरी पूर्ण थी । उसका अयोध्या नाम हसीलिये एह गया था कि वहाँ कोई भी शत्रु युद्धके लिये नहीं आ सकता था ।

अब आजके भारतसे हसका मिलान कीजिये !

* निषादराजके प्रेमेक सम्बन्धमें विशेष जानना हो तो इसी अक्ष ए४ ५७ में प्रकाशित 'रामायणमें भरत' शार्पक साहित्याचार्य ५० श्रीशालभामर्जा शास्त्रोंका लेख देखिये । — सम्पादक

श्रीरामायणका महत्व

(लेखक—पं० श्रीविजयमदुन्दरजी याचिक)

यत्पूर्वं प्रमुणाङ्कते सुकविना श्रीशम्भुना दुर्गमम् ।
श्रीमद्रामपदाङ्गमकिमनिः प्राप्त्यै तु रामायणम् ॥
मत्त्वा उद्युनाथनामनिरतस्त्वान्तस्त्वमः शान्तये ।
भावाबद्धमिदं चकार तुलसीदासस्तथा भानसम् ॥१॥
पुण्यं पापहरं सदा शिवकरं विज्ञानभक्तिप्रदम् ।
मायामोहमलापहं सुविमलं प्रेमाद्वप्तुं तुम्भम् ॥
श्रीमद्रामचरित्रमानसमिदं भक्त्याऽवगाहन्ति ये ।
ते संसारपतञ्जघोरकिरौद्धान्ति नो भानवा ॥२॥

श्रीरामायणजीके महत्वपर मैं कुछ लिखने-योग्य नहीं, परन्तु नम्भवरनाथ गलडके समान ही एक तुच्छतर मच्छर भी अपनी शक्तिमर आकाशमें उड़ता है । उसकी कोई निन्दा नहीं करता, इसीके अनुसार वह तुच्छ लेखक भी श्रीरामायणजीके महत्वपर कुछ निवेदन करनेका साहस करता है ।

‘श्रीगोस्वामीजीके वचनोंसेक्ष, श्रीरामायणजी, श्रीरामतत्त्व’ है—

बालकाण्ड प्रमु पैर्यं, अयोध्या कटि मन मंहै ।
उद्दर बन्यो आरण्य, हृदय किञ्चिन्धा सोहै ॥
सुन्दर श्रीव मुखारविन्द लंका कहि गये ।
जेहि महें रावन आदि निशाचर सर्वं सभाये ॥
उत्तर मस्तक मान हरि-यहि विधि तुलसीदास भनु ।
आदि अन्त लौं देखिये-(श्री) ‘रामायण-‘श्रीरामतत्त्व’ ॥
जिस प्रकार परमात्मा श्रीरामजीका अवतार चतुर्भूह होता है—

तिनके गृह अवतरिहों जाई । रथुकुल-तिलक सुचारिहु भाई ॥

ठीक उसी तरह चतुर्भूहा श्रीभक्ति-महाराजीका उद्भव भी धाम, धाम, लीला तथा रूपके स्वरूपमें होता है । श्रीरामायण-जी—नाम धामादिमर्याद होनेसे श्रीभक्तिका भी स्वरूप हैं ।

क्षे श्रीरामायणजीके प्रेमाजनोंको इस विवासकी दृष्टामें अविचल रहना चाहिये कि पूज्यपाद श्रीगोस्वामीजीके बचन निगमानगम-सम्मत ही हैं । उनकी वाणी प्राकृतिक नहीं, किन्तु वह अलौकिक, दिव्य वाणी है (To err is human) ‘मनुष्यमें भूल हो जाती है’—इस नीतिमय वाक्यका उन्हें निज हृदय-देशमें इस जगह सम्भू बहिकार कर देना होगा ।

जब श्रीगोस्वामीजीके समयमें विद्यमान पण्डित-मण्डलके सत्राद् यतिराज श्रीमधुमद्दन-सरस्वतीजीका यह सिद्धान्त था कि श्रीगोस्वामीजीका समस्त रामायण तो निगमागम-सम्मत है ही, किन्तु उनके दूमे वचनोंको भी तथेवं मानना उचित है । तब हमलोग उनके वचनोंमें अनुदात करनेवाले कौन ?

‘भक्ति भक्त भगवन्त युरु चतुर नाम वपु एक’—प्रथम उनको श्रीराम-तत्त्व सूचित किया, अब भक्ति-स्वरूपा कहा । दोनोंका वपु एक है । श्रीरामतत्त्व कहिये अथवा श्रीभक्ति-स्वरूपा बोलिये, बोलीमें भेद है, बात-एकही एक ही है ।

श्रीरामायणजीके भक्तिरूपका अर्थात् नाम, धाम, लीला, रूपमय रूपका भी दर्शन कर लीजिये—

‘नाम’—एहमहैं रघुपति नाम उदारा । अर्थात् श्री-रामायणजीमें श्रीनाम-महाराज, सत्रमें मणिकी नार्द ओतप्रोत हैं ।

‘धाम’—श्रीरामजीका अवन (धाम) तो है ही ।

‘लीला’—श्रीरामायणजी, श्रीसरकारी-चरित्र (लीला) से तो परिपूर्ण ही हैं अतः वे लीला-मरी स्वर्यसिद्ध हैं ।

‘रूप’—‘रामायण ‘श्रीरामतत्त्व’ से रूप भी प्रकट है ।

‘रघुबरमगति प्रेम परिप्रेत-सी’

भक्ति-भगवन्त उभय कारण-कार्य भी हैं और तादात्य भी । यही दोनों लक्ष्य हैं । युरु और भक्त इनको प्राप्त कराने, करनेवाले हैं । बालवर्षमें परिकामनः चारों एक हो जाते हैं । अतः श्रीरामायणजी गुरुरूप भी है—‘सदगुर ग्यान विराग योगके’ । भक्त-रूपा भी है—‘उग हित निरपिष सामुलाग’ । इत्यादि । तात्पर्य यह कि श्रीरामायणजी वास्तविक ‘श्रीराम-तत्त्व’ हैं । ‘राम अनंत अनंत गुणान्न’—अतः उनके महत्वकी याह तीनों कालमें कोई कैसे प्राप्त कर सकेगा ?

कर्म दो प्रकारके हैं । सकाम और निष्काम । सकाम—लौकिक सुखदायक, निष्काम—पारलौकिक (निर्वाण) दाता हैं । ‘रवि-रजनी’ सम्मेलनकी भाँति सकाम और निर्वाणक संयोग भ्रस्तभव ही कहा जायगा । किन्तु

श्रीरामायणजीका अवतारात्र इस 'असम्भव' पर भी हवताक्ष पोत देता है ।

जे सकाम नर सुनहिं जे गावहि, सुख सम्पति नाना विधि पावहि ॥
सुर दुरुलम सुखकरि जगमाहो, अन्तकाल रघुपतिपुर जाहो ॥
जग-भीगल गुनग्राम रामके । दानि मुक्ति घन धर्म धामके ॥
समन पाप सन्ताप सोकके । प्रिय पालक परतोक लोकके ॥
मंत्र महामणि विव्रय व्यालके । मेटत कठिन कुञ्जक भालके ॥

हमारे कमठं भाई, कदाचित् हन शब्दोंको कविकी अतिशयोक्ति मानें और वही सम्भवताकी तेज रोशनीमें तो श्रीरामायणजीके महस्तका दर्शन शायद निष्ठ ही असम्भव हो । हमें उनसे कहने-सुननेका अवकाश नहीं । हमारा तो नम्र-निवेदन केवल श्रीरामजीके जनोंसे ही है ।

श्रीरामायणजी एक कविकी केवल कविता ही नहीं हैं, वह अलौकिक विद्य शक्तिसे परिपूरित हैं । श्रीगोस्वामीलो स्वयं कह रहे हैं—

'भणित मेरि सिव-कृष्ण विभाती ।' 'सुमिरि सिवासिव पाइ पसाऊ ।'
'तस कहिहैं हिय हरिके प्रेरे ।'

उनकी प्रश्नक फल दिखानेवाली बात भी सुन हीन्दिये—
मर्यन्ते सौंचेत माहिपर जो हर-गोरि पसाऊ ।
तौं फुर होउ जो कहुँ सब भावाभनित प्रभाऊ ॥

अतः श्रीरामायणजीको कविता न समझिये । वह वह मानस है जो मन्त्रमय सुन्दर वारिसे लक्षात्मक भरा है । इसपर एक आत्मायिका सुनिये—

एक बार श्रीसूरदासजी बादशाहके दरबारमें विराज रहे थे । उनसे पूछा गया कि 'कविता' सर्वोत्तम किसको है ? निरपेह भावसे कहताहै । उसरमें श्रीसूरदासजीने कहा— 'कविता मेरी सर्वोत्तम है ।' इसपर बादशाहको सन्तोष न दुआ, उन्होंने आश्रयान्वित होकर कहा कि—'मैं समझा नहीं । अपने अपने सुन्दर अपनी कविताको सर्वोत्तम कहे कहा ? क्या इसमें कोई रहस्य है ? गोस्वामीजीकी कविताके लिये आप क्या कहते हैं ?'

* ये महात्मा श्रीगोस्वामीजीके समकालीन थे । श्रीब्रह्मवत्ती सन्त-शिरोमणि श्रीमान् पं० रामवल्लभाशरणजीके परम कृपापत्र भक्तप्रबल श्रीरामकिशोरजी वकीलने हालमें अपनी ओरसे प्रकाशित शमिल कर दी है । अच्छा होता, यदि यह 'जीवनी' पृथक् प्रकाशित हो जाती ! निस्सन्देह श्रीगोस्वामीजीकी जीवनी इससे अधिक प्रभागिक क्या होगी, जिसमें उन्होंके समयमें स्थित एक महात्माने अपनी आँखों देखी गाते छिपी हैं । संवद १६८७ कार्तिक मुक्ता नवमीको उक्त महात्माजीने इसको लिखा था । सौभाग्यवद उसकी 'शूललिपि श्रीबकीलसाहबको मिल गयी । उसीको उन्होंने लिख-भक्ताश्रित श्रीरामायणजीमें प्रकट कर जगत्का परम उपकार किया है ।

श्रीसूरदासजीने सुखकुराक्षर कहा—'श्रीगोस्वामीजीकी कविताको आप कवितामात्र जानते हैं ! मेरी भावनामें तो वह कविता नहीं, महामन्त्र है । मैंने जो अपने काव्यकी रक्षाधा की, सो तो इसीलिये कि, उसमें 'भगवत्-यश' अंकित है ।'

सब गुनरहित कुकवि कृत जानी । राम नाम-जश अंकित जानी ॥

सादर कहहि सुनहि बुध ताही । × × ×

इतना कहकर सूरदासजीने बादशाहको श्रीगोस्वामि-पालका वास्तविक स्वरूप बतावा दिया ।

सेवकका कलेवर वह रहा है, इस भवसे यह मतिहीन भीत है । अब केवल श्रीवेणीमाधवजी क्लक्षित श्रीरामायणजी-के परत्तपर दिव्यर्थन करा देना शोष है, सो भी संवेपसे ही । चमा कीजिये !

'श्रीरामचरितमानसः' कैसे, कव, और कहाँ बना और वह किस महस्तका है ? इसका उत्तर हम श्रीवेणीमाधवजीके मूल काव्यसे ही श्रीरामकिशोरशरणजीहारा अनुवादित शब्दोंमें प्रकट किये देते हैं—

'शुभावसरमें श्रीमारहतिनन्दनने एक दिवस प्रसङ्ग होकर श्रीगोस्वामीजीसे कहा—“अब मुम यहाँसे श्रीश्वरधको जाओ और वहीं कुछ दिन यिचास करो ।”'

इष्टकी आँखा पाकर वे चले और तीर्थराज-प्रद्यामामें ठहरे । उस समय मकर-स्नानके लिये योगी-तपस्वी, संन्यासी-सत्पुरुष एवं चतुर और मूर्ख सभी श्रेणीके लोग आये हुए थे । पर्व बीत जानेपर छः दिनके बाद उन्होंने देखा कि सुन्दर अश्यवटकी सुखद-छायामें दो मुनि बैठे हुए हैं । दोनों तपके पुजा हैं और दोनोंकी मुख-कान्ति ऐसी प्रदीप्त है कि उसके सामने चन्द्रमाकी छवि भी छिप जाती है । दूरहीसे दरडवट-प्रणाम करके वहाँ हाथ जोड़कर खड़े हो गये । उनमेंसे एक मुनिने इशारेसे उन्हें बुला लिया और अपने निकट आसन दिया । उस अष्टु आसनको हटाकर उत्ताहंजी पृथ्वीपर ही बैठ गये । उन्होंने अपना परिचय दिया और उनका परिचय प्राप्त किया । उन महात्माओंके एकान्त सासंगमें उसी श्रीराम-

कथाकी चर्चा हो रही थी जिसे इसके गुरु (श्रीनरहर्षनन्दजी) ने बालपनमें शूद्र-सेतमें कर्यन किया था। आश्रय-कित होकर श्रीगोस्वामीजीने उसका गुप्त रहस्य उनसे पूछा। महर्षि याज्ञवल्यजीने उत्तरमें कहा—‘देवदेव महादेव-जीने इसकी रचना को, पीछे समय पाकर इसे भवानीको सुनाया। फिर श्रीभुद्गुणजीको इसका उपदेश किया। मैंने जाकर श्रीभुद्गुणजीसे इसे प्राप्त किया और अर्थ-भरद्वाजजीको सुनाया।’

इसप्रकार मुनिराजसे गुप्त रामचरितमानस-तत्त्वकी परम्परा सुनकर वे चरणोंमें पद गये, युगल सुनीश्वर बहुत प्रसन्न हुए। तब सावधानतापूर्वक युगल-मुनिवरोंका विमल संवाद उन्होंने अवश्य किया।

दूसरे दिन जब वे उस स्थानपर गये, तब उसे सूना पाया। न युगल मुनि थे, न वह बट छाँह और न पर्ण कुटी हीथी। वे विस्मयकी बातमें बह चले। असु।

युगल मुनिवरोंके शील-स्वभावको समरण करते हुए वे वहाँसे चले। एवन्तु भगवदिष्टासे काशीकी ओर निकल पड़े। कुछ दूर चले जानेपर उन्हें विदित हुआ कि मार्ग भूल गये। तब वह विचारने लगे कि अब क्या करें? लौट चलें या इसी मार्गका अवश्यकन करें? अन्तमें उन्होंने यही निश्चय किया कि जो हुआ सो हुआ, अब इसी मार्गसे चलें, काशीमें भगवान् संकरका दर्शन करके श्रीअवतरण जायेंगे। वह सोचकर वे आगे बढ़े और चलते-चलते गंगा-तटपर पहुँचे। फिर किनारे-किनारे चलते रहे। जहाँ सन्ध्या हो जाती वहाँ टिक जाते। तदनन्तर वे वारिपुर और दिवापुरके बीच अवस्थित श्रीसीतामढी पहुँचे। यहाँ आसन लगाते ही उनकी चित्त-बृति केन्द्र-स्थुत हो गई। न भूख, न प्यास और न निद्रा। विचित्र-की-सी दशा होगयी। साथ ही उनके पूर्वजन्मके संस्कार जागृत हो उठे। वहाँ श्रीसीतामढके नीचे तीन दिन रह गये और कुछ सुन्दर कवित (जो श्रीकवितावलीमें वर्णित हैं) बनाकर, मानसिक-उद्गार निकाल आगे बढ़े।

मार्गमें विन्द्याचल (जुनारगढ़) के राजाको बन्दीगृहसे छुकाते हुए सुनिराज (श्रीगोस्वामीजी) काशी पहुँचे। वहाँ प्रह्लाद-धाटपर एक ब्राह्मणके घर टिके। अनन्दर उनके इष्टयमें उमड़की तरंगें उमड़ीं और वे श्रीराम-चरितका वयन्न करने लगे, परन्तु दिनमें रवी हुई कविता सावधानता पूर्वक सुरचित इसनेपर भी रातको लोप हो जानी थी।

प्रतिदिन वह लोप-क्रिया होती रही। इस कारण वे अबी विन्द्यामें पड़े। क्या करना चाहिये, कुछ समझमें वहाँ आता था। आठवें दिन श्रीमहादेवजीने स्वमर्में आज्ञा दी कि—‘तुम अपनी मातृ-भावामें कान्य रचना करो।’ निद्रा भंग हुई और वे उठकर बैठ गये। मनमें वही स्वग्रहकी ज्वनि गौङ्ग ही थी। तत्त्वण भगवान् भूतनाथ भवानीजीसहित प्रकट होगये। गोसाईजीने सादाङ्ग प्रणाम किया। शिखजीने कहा—‘तुम अपनी मातृ-भावाहीमें कान्यको रचना करो। देववाणी संस्कृतके पीछे क्यों पड़े हो? जिसमें सबका कल्याण हो, वही करना चाहिये। केवल पूर्व प्रथा अथवा स्फिक्षा आवश्यक नहीं है। अब तुम श्रीअश्वोध्याजीमें आकर बास करो और वहाँ अपने कान्यकी रचना करो। मेरे प्रसादसे यह कान्य-रचना सामवेदकी भावाके समान सफल होगी।’

इस प्रकार उपदेश देकर श्रीउमा-महेश्वर अन्तर्हित हो-गये। अपने भास्यकी सराहना करते हुए गुसाईजी श्रीअश्वोध्यासुरीको चले। जिस दिन वाह्याही-दर्शावामें उदयर्पितामहको सम्मान प्राप्त हुआ, उसी दिन श्रीगोस्वामियाद श्रीअश्वोध पहुँचे।

अपराह्नमें विमल श्रीसरयू-धारामें स्नान करके सरयू-पुलिन, बन-धाटिका और वीथियोंमें विचरने लगे। एक सन्तसे भेंट हुई। वे कहने लगे—‘चलिये श्रीहनुमान-गार्डीके निकट मैं आपको एक सुरम्य स्थान दिखलाऊँ।’ वे सन्त श्रीगोस्वामीजीको वहाँ ले गये और उन्होंने वह रमणीय-स्थल दिखलाया। उस स्थानपर सुन्दर बट-बृहोंमें एक सुविशाल बट-बृह था। उसकी जड़में एक सुन्दर वेदिका बनी हुई थी। उस बेदीपर श्रमिकोंसमान तेजस्वी एक सुप्रसिद्ध मिठ-सन्त सिद्धासनसे बैठे हुए थे। उस मनोहर स्थलको देखकर गुसाईजीका मन लुभा गया। उनके मनमें वहाँ कुटीर बनाकर बसनेकी इच्छा जागृत हुई। जब वे टहलते टहलते उम सिद्ध-सन्तके निकट पहुँचे तब उन्हें आसन को बैठकर जय-जयकार किया और कहा—‘मेरे गुरुने मुझे आज्ञा दी थी और उसीके अनुसार मैंने यहाँ निवास किया था। श्रीगुरुदेवजीने इसका मर्म भी मुझे बताया था और उसे मैं आज प्रवह देख रहा हूँ। श्रीगुरु भगवान्ने कहा था कि—‘कुछ दिन बीतनेपर गोस्वामी तुलसीधासजी वहाँ आकर श्रीरामचरित

वहाँ जरेंगे । वे आदिकवि श्रीवाल्मीकिजीके अवतार होंगे और श्रीपदगङ्गमारजीकी सहायतासे वे यह महान् कार्य करेंगे । यही जानकर राजराज कुबेरने इस स्थानपर बट-बृह लगाकर इसकी सर्वोत्तम मर्यादा बांध दी है । अब तु मेरी आशा । मानकर इस स्थानको परिष्कृत करके यहीं भजन कर । जब इस स्थानपर गोस्वामीजी उस महान् कार्यके लिये आवें, तब कुटी और आसन उन्हें सौंपकर तज स्थान करके मेरे पास चले आना ।' गुरुजीका उपदेश मुझे अच्छा लगा और मेरे अनेक अन्मार्जित पुरुषका उदय हो गया । यहाँ निवास करके, यहाँके सुखका अनुभव करते हुए तपस्या-पूर्वक मैं आपके आगमनकी बाट देख रहा था । अतएव हे स्वामी ! आप यहाँ सुखपूर्वक निवास करें । अब मैं अपने गुरुके पास आता हूँ ।'

ऐसा कहकर वे सिद्ध सम्म वेदिकासे उत्तर पड़े और नमन करते हुए कुछ दूर आगे चले गये । वे वहाँ आसन लगाकर ध्यानावस्थित हो गये और योगासनिके द्वारा अपने शरीरको भस्म करके परम धारको चले गये । इस लीलाको देखकर गुसाईंजीने कहा—‘हे धनुर्धर ! तेरी बलिहारी है ।’

गुसाईंजी सुख-सुपास पाकर वहीं बस गये । इस संयमपूर्वक समय लिताने लगे । एक समय थोड़ा-सा दूध पी लिया करते थे । उन्हें केवल श्रीरघुनाथजीका भरोसा था और किसीका भी दूर नहीं था । इस तरह दो वर्ष बीत गये, परन्तु उनकी बृत्ति नहीं लिंगी और संक्षत १६३१ का आसरम हो गया ।

त्रेता-युगमें श्रीराम-जन्मकी निथिपर जो ग्रह, राशि, लग्न, योग आदि पढ़े थे, ठीक वही संबंध १६३१ की राम-नवमीको भी पढ़े । उस दिन प्रातःकाल भौमवारको

* इस सम्बन्धमें व्यंयं वकील साहबने मुझसे श्रीअवधमें यह कहा था कि—‘यथापि श्रीगोस्वामीजीके परम कृपापात्र सखा श्रीबण्णीमाधवजीका लेख संवंशा प्रामाणिक माननीय है, किन्तु किर भी इस विधयमें जब तब मेरे हृदयमें सन्देहभास हो जाता था। परमात्माको धन्यवाद है। कि अब वह निष्ठ दूर हो गया। बात यह हुई कि श्रीमान् नीलकण्ठजी (जो मेरे परम गित्र है और श्रीरामायणजीके अनन्य प्रमी है) ने स्वयं निज मुखसे मुखसे कहा, कि—‘प्रायः मेरी साध्वी लीकों मेरे एक वर्प हो चुका था। एक रात्रि मैंने स्वप्नमें उस दिव्यलोकमें देखा। वह मेरा हाथ पकड़कर अपने ल्लानमें ले गया। वहाँकी अलौकिक रचना देख मैं विरिमत और चकित हो गया। मैंने कहा तुम्हें परम दिव्यलोक प्राप्त हुआ ! यह वहे सुखकी बात हुई। किन्तु यह तो कहो वहाँ भी कुछ भजन होता है ? उसने दिव्याक्षरोंमें लिखा हुई श्रीगोस्वामीकृत श्रीरामायणजी दिव्यलयी और कहा—‘यही इमारा इष्ट है। हम सब इसकी उपासना करते हैं। श्रीगणेशजीने इस यहाँ भेजा है।’ मैं वहे ही आश्चर्य व मुखमें मझ था। मेरी लीने कहा कि ‘तुम भी यहाँ अमुक समयमें आओगे।’ इस स्वप्नको मुनकर और नीलकण्ठजीकी निर्धारित परमधाम-यात्राको देखकर हूँ। वर्कालसाइवका वह सन्देह दूर हो गया था।

श्रीहनमानजी प्रकट हुए और संसारके कल्याणके निमित्त सबसे पहले उन्होंने गोस्वामीजीको अभिविक किया । अनन्तर उमा-भैश्वर, गणेशजी, सरस्वतीजी, नारदजी, शैवजी, सूर्यभगवान्, शुक्रचार्य और बृहस्पतिजीने मंगल-मय आशीर्वाद दिये । इस विधिसे विमल रामचरितमानस-का आरम्भ हुआ । जिसके श्रवण करनेसे मद, दम्भ, कामादि समस्त विकार और सब प्रकारके संशय मिट जाते हैं ।

दो वर्ष सात महीने और छब्बीस दिनोंमें अर्थात् सं० १६३१ के मार्गशीर्ष मासमें श्रीराम-विवाहके दिन भवसागरसे पार उत्तरनेके लिये सात जहाज बनकर सैयार हो गये । पालण्ड-प्रपञ्चको दूर बहाने, पवित्र सात्त्विक धर्मके चलाने, कलिकालके पाप-कलापका नाश करने, हरिभक्तिकी छटा दिलखाने, मतमनान्तरके बादविवादको खिटाने, प्रेम-याठ पढ़ाने, सन्तोंके वित्तमें भजनकी लगान उत्पन्न करने, सज्जनोंके हृदयमें प्रमोद बढ़ाने, ‘हरि-भक्ति शिवजीके हाथमें है’—इस रहस्यको समझाने और वैदिक भक्ति-मार्गको सुझानेके लिये सप्त सोपान-युक्त दिव्य सदग्रन्थ बनाकर तैयार हो गया । भौमवारको मध्याह्नके समय ‘हुभिति’—‘हरि: ॐ तत्सत्’ लिखा गया अर्थात् ग्रन्थ समाप्त हुआ । देवताओंने जयजयकारकी इनि की और फूल बरसाये ।

वास्तवमें यह अन्य तो उसी दिन बनकर तैयार हो गया था जिस दिन इसका आरम्भ हुआ था, परन्तु मनुष्यकी निर्बल लेखनीने उसे लिखनेमें इतने दिन लगा दिये ।

श्रीगणेशजीने उसी समय हम अन्यकी पाँच प्रतियाँ दिव्य लेखनीसे लिखकर तैयार कीं और वे तत्काल सत्यलोक, कैलाश, नागलोक, शुलोक एवं दिग्पालखोकमें पहुँचक्षः

गयीं। यह हचना सबको पसन्द भागी। सबके मनमें श्रीरामचरितमानसने अपना स्थान प्राप्त कर लिया। देवताओं-सकने उसे प्रेमसे अपनाया। अमर, नर, नाग सभी सम्बद्धायके उदारवेता भगवान्मध्योने हसे शिरोधार्य लिया। सबने शुद्ध मन, चर्चन और कर्मसे श्रीगुरुसाईजीके चरण-कमलोंकी बन्दना की।

परम मधुर पावनि करनि चार पदारथ दानि ।

उल्सीकृत रुबर कथा कै सुरसरि सुखसानि ॥

अनन्तर श्रीहनुमान्जी प्रकट हुए। उन्होंने अथसे हतितक सब कथासुनी और सुन्दर वर दिया कि—‘यह कीर्ति त्रिभुवनको वश करनेवाली हो।’

तत्प्रचात् श्रीरघुनाथजीकी आङ्गासे आप काशीपुरीमें गये और उमा-महेश्वरको अपनी कृति सुनायी। पाठ समाप्त करके आपने रातको शिवलिङ्गके पास पोथी रख दी। सबेरे जब मन्दिरका पट सुला, तब वहाँ परिष्ट, मूर्त्ति, तपस्ती, सिद्ध और भगवत्-दास सभी पोथीके दर्शनके लिये आगा हुए। सबने सतृष्ण दृष्टिसे देखा कि श्रीभगवान् शंकरने पुस्तकपर ‘सही’ कर दी है और विष्वासोंमें उसपर ‘सत्य, शिव, सुन्दर’ लिखा हुआ है। साथ ही मन्दिर कुलते हो उन्हें इसी प्रकारकी दिव्य आकाशनाथी भी सुनायी पढ़ी।

इस अनुस घटनाका बृत्तान्त धर-धर फैल गया। सब नर-नारी प्रसन्न मन दौड़े हुए गुरुसाईजीके पास आये, चरण-वन्दना करके उनकी जयजयकार करने और बलीयाँ लेने लगे। परन्तु परिष्टनमयडली चिन्ताप्रस्त हो गयी। उन्होंने समझा कि अब तो हमार मान और माहात्म्य उठ जायगा और जीविकामें भी बाधा पड़ेगी, क्योंकि अब इस प्रसादमयी पोथीको लोग पढ़ेंगे तब कोई भी इसे नहीं पढ़ेगा। अस्तु, वे दल बाँधकर उसकी निन्दा करने लगे और देव-वाणीकी महिमा गाने लगे एवं प्राचीन रुदिकी दुहाई देने लगे। उन्होंने उस अन्यको चुरानेके लिये पद्यन्त्र रखा। अन्ततोगत्वा निखुआ और सिल्लुआ नामक दो चोर रातके समय पोथीको चुरानेके लिये मेजे गये। वे श्रीगुरुसाईजीके स्थानपर गये और वहाँके रहक त्रिभुवनधनीका दर्शन करके लिहाज हो गये। दूसरे दिन उन्होंने एक—‘गुरुसाईजी! आपके स्थानमें धनुष-वाह धारण लिये हुए दो रथाम-और लिहोर अवस्थावाले छैन थे, जो रात्रिभर पहरा दे रहे थे?’ यह सुनकर सज्जन-नयन-पुलकित होकर श्रीगोस्वामीजीने

कहा—‘तुम धन्य हो, जो तुम्हें डबके दर्शन हुए।’ यह कहकर आपने श्रीरामचरितमानसकी भौतिक प्रति (जिसपर श्रीरामकर भगवान्के हस्ताक्षर थे) अपने प्रेमी दोषरमलके घर बद्धपूर्वक दुरुक्षित रख दी।

श्रीगोस्वामीजीने उसकी एक दूसरी प्रति लैथार की ओर उसीसे अनेक प्रतिष्ठां लोगोंने लिखीं लिखायीं। उसका प्रचार दिनोंदिन बढ़ता गया। मूर्त्ति परिष्टतोंने मारवादी अनेक प्रयोग और प्रपञ्च रखे किन्तु वे सर्वदा असफल हुए।

जब सभी प्रथम विफल हुए तब वे अपना इल बाँधकर श्रीमधुसूदन सरस्वतीके मठपर गये, उन्होंने उक स्वामीजीसे कहा ‘महादेवजीने श्रीरामचरितमानसको प्रामाणिक अन्य माना है सही, परन्तु उन्होंने यह नहीं बतलाया कि वह किस कोटिका है। वेद, शास्त्र, पुराण, इतिहासमें से वह किसके समकक्ष है, इस बातका निष्पत्ति हो जाना चाहिये।’ इसके उत्तरमें यतिराजने कहा—‘मैं उस पुस्तकको मँगाकर यहले देख लूँ, तथ बताऊँ।’ उन्होंने उस अन्यको गुरुसाईजीसे मँगाकर पदा और परमानन्दको प्राप्त हुए। उसको छौटाते हुए स्वामीजीने निष्पत्तिस्थित स्थस्ते उसपर लिख दिया—

‘जयति सचिदानन्दः।

अनन्दकानने लृतिम् जगमस्तुलसीतरः।

कविता मजरी भाति रामभ्रमर मृगिता।।

जब परिष्ट लोग फिर आये और उन्होंने निर्णयार्थ प्रार्थना की तथ स्वामीजीने उनसे कहा कि—‘इस बातको सदाशिवजीसेही क्यों न पूँछ लीजिये।’ तब, सबके ऊपर बेद, उसके नीचे शास्त्र, फिर पुराण और सबके नीचे ‘मानस’ रसाकर मन्दिरमें शिवजीके सामने रख दिया गया।

प्रातःकाल मन्दिरका पट सुला। सबलोग देखनेके लिये दृट पढ़े। परम पुनीत वेदके ऊपर ‘मानस’ (श्रीरामायाजी) को देसाकर परिष्टतगत्वा बहुत लजित हुए। वे गोस्वामीजीके चरणोंमें गिर पड़े, अपराध रहा कराया और उनका चरबोदक लेकर आपने धर गये।

कहाँतक कहा जाय, कोई भी भौतिक वा पारमाणिक कार्य ऐसा नहीं, जो इस अन्यसे सिद्ध न हो सके। अप्ते आप तथा तत्त्वज्ञ निर्मल सज्जनोंका तो यह निश्चय है कि वैसे सत्यवुगमें श्रीबाहारी आवार्य वे और देखने सब चरणोंका विश्व देता था, तथा त्रेतामें बालभौतिकी आवार्य वे और श्रीगृहरामायाजीसे भावित व्यवहारक प्रचार

द्वेषाथा 'रामायण सत कोटि अपारा' 'चरितं रुचनाथस्य शत-
कोटि प्रविस्तरं' इत्यर्थे भगवान् कृष्णहैपाचन आचार्य थे और
पुराणोंसे धर्मकी प्रकृति होती थी। इसी तरह कलियुगमें
श्रीगोस्तामीजी आचार्य हैं और श्रीरामचरितमानस पवं
गोस्तामीजी कथित अपर सब अन्य ही भार्मिक प्रकृतिके कारणहैं।

एक बड़ा-सी बात और सुन लीजिये। श्रीरामचरित-
मानसके इस अपूर्व आश्रयमय महात्मको तो विचारिये कि
जो अन्य प्रकाश्यमें साढ़े तीनसौ वर्षकी आयुवाला ही समझा
जा रहा है, उसके भावात्म्य और नवाहिक पाठके 'अथ'
और 'इति' में श्रीमानसान्तर्गत गुलाईं जीके ही शब्दोंका
उहेस असि प्राचीन श्रीब्रह्मरामायण तथा महाकाल-
संहितामें, श्रीपांचलीजीके प्रश्न करनेपर स्वयं भगवान् शंकर-
ने इसप्रकार किया है—

वाल्मीकिस्तुलसीदासो भविष्यति कर्णयुगे ।
शिवेनात्र छो अन्यः पार्वती प्रतिबोधितुम् ॥ १ ॥
रामभक्तिप्रवाहार्थं भाषाकाव्यं करिष्यति ।
रामायणं मानसात्म्यं सर्वसिद्धिकरं नृणाम् ॥ २ ॥
भागवामायणर्थव षठनाळ्बणात्रिये ।
सद्यः पुनर्निति वै सर्वे चिरकालात्तात्यान्यतः ॥ ३ ॥

(श्रीब्रह्मरामायण)

धर्मार्थकाममोक्षाणां साधनं च तथोत्तमम् ।
श्रोतव्यं च तथा भक्तया रामायणरसामृतम् ॥ १ ॥
उर्जं मासे सिते पंक्तं चैत्रे च दिवसत्तम ।
नवाहा खलु श्रेतव्यं गमायणकथामृतम् ॥ २ ॥
अथवा मावेव विप्रं र्माणशीर्वं च श्रावणे ।
आश्विनं फालुणे चैव शुक्लपक्षे विशेषतः ॥ ३ ॥
श्रुत्वा रामायणं पुण्यं परमं पदमाप्नुयात् ।
वर्णनामिति चारम्य उवाच करुणानिषिः ॥ ४ ॥
प्रथमे दिवसे पाठं कुर्याचैव विचक्षणः ।
द्वितीये दिवसे विप्रं शतानन्दस्य वन्दनम् ॥ ५ ॥
तृतीये कृतशाचान्तं चतुर्थे वारिज्ञाणः ।
पञ्चमे रामशोलान्तं शोकस्थिति च पृष्ठके ॥ ६ ॥
सप्तमे भारतेर्वर्क्षं चन्द्रे रामस्य संस्थितिः ।
अष्टमे गुरुवार्ष्येन राज्यसंभारसंस्मृतिः ॥ ७ ॥
नवमे प्रताङ्किरजौनैव दण्डित मानवाः ।
पवं क्रमेण श्रोतव्यं नवाह नवमिः दिनैः ॥ ८ ॥

वेदा आपने श्रीरामचरितमानसका विवर—

अलौकिकल ! भाई ! अब भूलकर भी भाषा भाषा कहकर कभी
इसका अपमान न करना । जाने दो उनको जो—'बातुल
भूत विवस मतवारे' हैं इमारा निवेदन तो आपसे है, कि—
तिनकर कहा करिए नहीं करना । जिन कृत महा मोह मद पाना ॥

श्रीगोस्तामीजीके शब्दोंको अथसे इतितक नवाहिक
पाठ-क्रमसे मिलान कीजिये । उनके शब्द प्राकृतिक नहीं—विष्य
हैं, निष्य विष्य हैं !! उनकी दिव्यताकी साक्षी श्रीब्रह्म-
रामायण और महाकालसंहिता पुकार पुकारकर दे रही हैं ।

रावनारि जस धावन, गवहि सुनहि जे लोग ।

रामभगति दृढ़ पावहि, बिनु विराग जप जोग ॥

रामचरन रति जो चैह, अथवा पद निरवान ।

भावसहित सो यहि कथा, करै श्रवन पुष्टपान ॥

अभियोग

(लेखक—श्रीसिंहारामशरणजी गुप्त)

बालक चन्द्रकेतुने श्रीरामचन्द्रके पास आकर खीझके
स्वरमें कहा—‘ताड़जी, आप काकाजीसे न बोला करें !’

बालकको गोदमें उठाकर उसके सिरपर हाथ फेरते हुए
उन्होंने कहा—‘क्यों बेटा, हुआ क्या ?’

योही दूरपर जम्मण खड़े थे । दूसरी ओर सुँह करके
वे सुमुकुराये । बालकने उनकी ओर डॅगली उठाकर
कहा—‘वे और तो सबसे बोलते हैं, मुझसे ही नहीं बोलते ।
छोटे काकाजीके धोखे मैं उनकी पीठपर चढ़ गया तो उन्होंने
डकेकर सुखे पीछे हटा दिया । वे सुखे प्यार नहीं करते ।
आप उनसे न बोला करें !’

श्रीरामचन्द्र खिलालिकर हैंस पदे । बालकका सुँह
चूमकर उन्होंने कहा—‘बेटा, हैस तरह नहीं कहा जाता ।
वे तेरे पिता हैं । उनसे तो छोटे काकाजी अच्छे पिता हैं ।’

चन्द्रकेतुने सिर हिलाकर कहा—‘नहीं, ऐसे पिताकी
जरूरत नहीं है । इनसे तो छोटे काकाजी अच्छे पिता हैं ।
आप इनसे न बोला करें !’

* इस गथमें सम्मिलित कुदुम्बमें रहनेवाले ऐसे पिताका
उल्लेख है जो बड़ोंके सामने अपने पुत्रसे बोलना सम्भवावेश्वर
समझता है । हो सकता है, वहुतसे लोग इस प्रथाको ही
सम्भालके विश्वर समझे । लेखकको इस शंगड़से प्रयोगन
नहीं है । उसने तो अपने आस-पास रहनेवाले पिताओंमें श्रीराम
और लक्ष्मणको देखनेका ही प्रयास किया है ।—लेखक

रामायणमें हिन्दू-संस्कृति

(लेखक—साहित्यरत्न पं० अयोध्यासिंहजी उपाध्याय ‘हरिजौध’)



म

दरास-प्रान्तके जब्बप्रतिष्ठ विद्वान् और वका भीयुत शिवस्वामी ऐपरने एक बार अपने पक्ष प्रसिद्ध व्याख्यानमें कहा था, ‘इमारा राम्य किन जावे, ऐश्वर्य धूलमें मिले, विभव पदवलित हो, समस्त सम्पत्ति हर लो जावे, हम सर्व प्रकार निःसम्बद्ध हो जावे, सर्वस्व गंवा दें, तो भी हम निःस्व न होंगे, यदि रामायण और महाभारत-जैसे हमारे अलौकिक रब सुरक्षित रह सकें।’ इस कथनका रहस्य क्या है? वास्तवमें बात यह है कि जातिकी संस्कृति ही उसका जीवनसर्वत्व होती है। कोई जाति अपनी संस्कृति खोकर जीवित नहीं रह सकती, संस्कृति ही वह आधारशिला है, जिसके सहारे जाति-जीवनका विशाल प्राप्ताद निर्मित होता है। जिस विन यह आधारशिला स्थानस्थुत होगी, उसी दिन पुष्टे पुष्ट प्राप्ताद भी भहरा पड़ेगा। संसारमें कुछ निर्जीव जातियाँ वह भी जीवित हैं, किन्तु अपनी संस्कृतिको खोकर वे कठलगत-प्राप्त हैं, उनको मरी ही समझिये, चाहे आज मरें, चाहे कल। कारण यह है कि संस्कृति ही फिसी जातिके अस्तित्वका पता देती है, यही वह चिन्ह है, जो उसके पूर्वगैरब, महान् आदर्श, और लोकोचर कार्यकलापद्वारा संसारकी अन्य जातियोंसे उसको पृथक् करना है। जिस समय चारों ओर अन्धकार होनेके कारण वह अवनति-गत्तकी और अग्रसर होती रहती है, उस समय उसीके आलोकसे आलोकित होकर वह उचित पथ अग्रण्य करनी है, और उस सुमुक्ति सोपानपर सदने लगती है, जो उसको उत्थानके समुक्त विश्वरपर आरूढ़ कर देता है। भारतमें यवन, शक, हृष्ण आदि वही वही बजावान् जातियाँ आयीं। परम पराक्रान्त वह मुसलमान जाति आयी, जिसने जहाँ शासन किया, वहाँ अपने धर्मकी वह विजय-दुन्दुभी बजायी, जिसके द्वारा देशका देश उसके धर्ममें दीर्घित हो गया। किन्तु रामायण और महाभारत-की पवित्र संस्कृतिके बलसे हिन्दूधर्म आज भी जीवित है, जीवित ही नहीं, उसने अपनी वह अलौकिक महत्व दिखायायी है कि जिसके बजासे संसार-विजयिनी करवाल भी

दुख्ये दुख्ये हो गयी। जिस समय भारतव्यापी मुसलमान साज्जाज्य उत्तरोत्तर छुट्टि पा रहा था, और उसकी गुरु गर्वनासे भारत-बसुन्धरा कथित हो रही थी। जब यह अवगत हो रहा था, कि अब भारतीयताकी समाप्ति हो जायगी, हिन्दू-धर्म विलुप्त हो जायगा, हिन्दू-जाति नाम-शेष रह जायगी, और भारतभूमिका अपार विभव मुसलमान जातिके विशाल उद्वरमें समा जायगा। उस समय कठिपय महान् आत्माओंमें कुछ ऐसी संस्कृति जागृत हुई, जिन्होंने भारतवर्षकी काया ही नहीं पलट दी, हिन्दू-जातिका पुनरुज्जीवन भी कर दिया, यह बात इतिहास जाननेवालोंको अविदित नहीं। यह कौन संस्कृति थी? वही रामायण और महाभारतकी। उस रामायण और महाभारतकी जो हिन्दू-संस्कृतियोंके भावधार हैं। मैं समझता हूँ, अब मदरास-प्रान्तके विद्वान्के कथनका रहस्य आप लोगोंकी समझमें आ गया होगा।

भारतमें समय समयपर विभिन्न विचारके बड़े बड़े प्रवाह आये, कुछ कालतक उनके प्रबल वेगके सामने वह आत्मविसर्जन करता दिखलायी पड़ा, परन्तु उसके धैर्यका पाँच स्थानस्थुत कभी नहीं हुआ। वह मदा सैंभला, और अपनी भारतीयता-धारामें उसने सबको बिलीन कर लिया। उसकी महान् संस्कृति ही उसकी इस सफलताका कारण है। कविकुल-पुंगव वास्त्रमीकिळी महिमामयी लेखनी जिस प्रकार इन आर्य संस्कृतियोंका उज्ज्वलकर धन्व हुई है, उसी प्रकार गोस्वामी नुलसीदासकी कलामयी कवितामें भी उनका अलौकिक अमलकार दृष्टिगत होना है। गोस्वामीजीकी वर्णना सामरिकता किये हैं, इसलिये उन्हींके रामायणसे कुछ ऐसी संस्कृतियोंका वर्णन यहाँ किया जाता है जो हमारे सामाजिक जीवनकी सञ्जीवनी शक्तियाँ कही जा सकती हैं। गोस्वामीजी-की रामायण आर्यसम्पत्ता और संस्कृतिका अलौकिक कोष है, जहाँ देखिये, वहाँ उनकी लेखनी, इस विषयमें वही ही मार्मिकतासे चलती दिखलायी पड़ती है। उनकी रामायण-का गेहे गेहे, जने जने प्रवार कर्मोंहैं? इसलिये, कि हिन्दू-हृदय जिन आदर्शोंको देखकर पुकारित होता है, जिन भावोंद्वारा उद्भवित और इसलिये बनता है, उसमें उन्हीं आदर्शों और आदर्शोंका बदा ही इवयप्राही चित्रण है। गोस्वामीजीकी

कल्याण

श्रीरामाना गम



भगवन् परिवारः देव भा समां सुखदृष्टव्योः। नित्यमार्थं कारुच्यं । समानसुखदृष्टव्याम् ।

लेकरनीका उपकार वही है, कि वह शूर्तिमन्त्र आरंसंकृति है, वह शूर्तिमन्त्र कहीं भी हठनी अनोहर और सुन्दर है, हठनी प्राणक और सरस है, कि उसकी प्रार्थना नहीं हो सकती। उनकी अद्युत एवनाथोंके रहते समय कहीं कभी हठनी सम्भवता हो जाती है, कि ब्रह्मानन्द-सुखका छलुभय होने लगता है। वही कविता मन्त्रसंरिती होती है, जिसमें वे ही एव तुम्हरतासे सामने आते हैं, जिसको हम प्रायः देखते रहते, अथवा जिसका अनुभय प्रतिदिन करते रहते हैं, गोस्वामीजी हसी प्रकारकी कविताओंके आचार्य हैं। वे न तो 'क' पुण्य तोड़ते हैं, न धरान अगोचरका व्यापार करते हैं, न अधरमें प्रासाद-निर्माण ही। वे मानवचरित्रमें ही आत्माकी महत्त्वका प्रदर्शन करते हैं, और जिसके कार्य-क्रमापार्थ ही 'सत्यं शिष्यं सुन्वत्य'की कल्पना। हसीकिये वे जो कुछ कहते हैं, उनको हृष्य स्वीकार कर लेता है, कुछ हसी प्रकारकी कृतियाँ आपके सामने उपस्थित की जाती हैं।

रिकार्ड आशा दिरोधार्थ कर भगवान् श्रीरामचन्द्र बन्धानाके द्विये प्रस्तुत हैं, श्रीमती गौशालादेवीकी सेवामें उपस्थित होकर उनसे अनुभय-विचर कर रहे हैं, हसी समय व्यक्तित्वद्वया विवेह-निन्दनी वहाँ आयीं। गोस्वामीजी क्रियते हैं—

समाकार तेहि समय सुनि सीय उठी अकुलाद ।
जाह सासु-पद-कमल-युग बंदि बैठि सिरु नाह ॥

दोहेके द्वितीय भागमें कुछलबनाकी कितनी मर्यादा-गीवता अंकित हुई है, वह अधिवित नहीं। भगवती जानकी सीधे आकर भगवान् रामचन्द्रके सामने नहीं खड़ी हो गयीं, उन्होंसे कपोरकथन नहीं प्रारम्भ किया, क्यों? हसीकिये कि इससे श्रीमती गौशालादेवीका तिरस्कार होता। आर्य-जटिकी वह संकृति है, कि वहाँकी उपस्थितिमें बहुतेर जागा त्वागकर परिसे सम्भाप्य नहीं करतीं, उन्हें जोकर्ती तक नहीं। आज भी कुलीनोंमें वह परम्परा प्रचलित है। किर आदर्श गृहिणी सीतादेवी ऐसा क्यों करती? वे आयीं और सासकी चरण-बन्धना करके, सिर नीचा करके बैठ गयीं, कितना सज्ज आय है। 'बैठि सिर नाह' किसकर गोस्वामीजीओ मार्मिकता दिखायी है, वही उनकी किशोरता है। वह 'बैठि सिर नाह' जानकीजीके हृष्यकम भरित्वम है। इस कार्यद्वारा उन्होंने अपनी मर्यादागीवता, अपनी आकुलता, और अपनी अवधिताका ही महर्णन नहीं किया, तैन्य यित्तवाकर सहायताकी भित्ता भी मर्णी। सम्भव है कि आजकलकी शिक्षिता

कहनाएँ, इसके परावधीनताकी कुरितत वेदी समझें, किन्तु वह मर्यादागीवताकी वह नौरिक भावा है, जिसको आवश्यक अवेक कुल-बाकाकी अपूर्व शोभा हो सकती है। आरंसंकृतियाँ अत्यन्त उदात्त हैं, उनमें स्वार्थपरताका उतना शान नहीं, कितना सदाचारताका। वह अपने सुख-विकासमें ही जीवनकी सावेकता नहीं समझती, वह तभी कुलहृष्य होती हैं, वह गुरुजन, आत्मीयजन, अथवा अन्य उपकार-कामुक जनों-की सेवाकर आस-उस्सरा कर जाती है। वे उच्छ्रवतापारं पूर्व निर्वाचितासे मर्यादागीवताको, और संकीर्णहृष्यता पूर्व मर्यादतासे सहायताको उत्तम समझती हैं। हसीकिये शास्त्रोंमें ऐसे आवेद्य हैं, कि जिससे इसप्रकारके संस्कारोंका उद्घ द्व हो।—कुछ नीचे दिये जाते हैं—

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः ।

अत्त्वारि तस्य वर्द्धन्ते अगुरुविद्यायशोबहम् ॥

भगवान् भनु कहते हैं—

वो अभिवादनशील और नित्य वृद्धसेवा-नित्य हैं, उनकी आत्म बदती है, और उन्हें विद्या, वश और वह ग्रात होता है।

पिताहकाकरके समय सहायतीमें जी वह प्रतिज्ञा करती है—

कुदुम्बं रक्षयिष्यामि सदा ते मनुजुमाशिणी ।

दुःखे भीरा सुखे हृष्टा: द्वितीये सा ब्रवीद्वचः ॥

कुदुम्बकी रक्षा कर्हन्ती, सदा मनुरभाविष्यी रहेंगी, दुःखमें भीरा और सुखमें आनन्दित रहेंगी।

(१) गुरुदु साक्षिपु भूत्ये बन्धुवर्गं च मर्तुव्यं गतमद-माया वर्तयेत् हृष्टं यथार्हम्—

(२) मार्येकवारिणी गूढविश्रमादेववत्पतिमानुकूलयेत् वर्तेत्, तन्मतेन कुदुम्बनित्वामत्यनि सत्विवेदायेत् ।

(३) शशूश्चुरपरिचर्या तत् पारतन्त्रयमनुसरवादिता-परिमिता प्रचण्डलापकरणमनुचैरहासः तत् प्रियाप्रियेषु स्वप्रिया-प्रियेचित्र वृत्तिः । (वास्त्यायन ।)

(१) पतिसे, गुरुसे, सखियोंसे और बन्धुवर्गं पूर्व सेवकोंसे निरभिमान रहकर यथायोग्य बर्ताव करे ।

(२) भार्याको आहिये, पतिको देवता-समान जाने, उसकी इच्छाके अनुकूल जीवन अवतीत करे और उसकी सम्मतिके अनुसार उत्तमीजलकी विस्तारमें बीन रहे ।

(३) कुलवधु सास-सासुरकी सेवा करे, उनकी आज्ञा-में रहे, उनकी परतन्त्र बने, उनकी बातोंका व्याप न दे,

मिह भाष्य करे, जोरसे न हँसे । उनके लिये अभियंको
अपने प्रिय-प्रभियके समान समझे ।

लिये समय श्रीमती बनकनन्दिनी सिर नीचा करके
पर्वतोंके समीप बैठ गयी—उस समय—

दीन्ह असीस सासु मृदुबानी । अति सुकुमारि देखि अकुलानी ॥

इस पदमें वायावसर ‘मृदुबानी’ शब्दका लितना
सुन्दर प्रयोग है । यहि दोहेका ‘पद-कल्पक वैठि वैठि सिंह-
नाह’ श्रीमती आनंदीके विनय-नज्ञ हृष्यका सूखड है, तो
वह ‘मृदुबानी’ शब्द कौशल्यादेवीके कोमल वास्तव्यपूर्व
हृष्यका परिचायक । इसके उपरान्त श्रीमती कौशल्यादेवी-
के हृष्यकी क्षय अवस्था हुई, इसकी सूखना वह अद्वादी
देती है ‘अति सुकुमारि देखि अकुलानी’ लितनी रसमाविकला
है ! वे लितना शीघ्र अपनी पुत्रवृक्षके हृष्यमें प्रवेश कर गयी ।
श्रीकालकीली सासके समीप सिर नीचा करके बैठ सो गयी,
परन्तु हुई न लुडा, वे कुछ कह न सकी, कैसे अहती,
संकोचने वाय बन्द कर रखता था । यही नहीं, हृष्यमें दुःखकी
एक विविच्छ घनबोर घटा उठ रही थी, वे सोच रही थीं—

वैठि नमित मुख सोचति सीता । रूपरासि पति-प्रेम-पुरीता ॥
चलन चहत बन जीवननाथू । केहि सुकृतीसन होइहि साथू ॥
की तनु प्रान कि केवल प्रान । विविच्छ रतब कुछ जाइ न जाना ॥

आख चरन-नख लेखति चरनी ।

देखा आपने, सामयिक अवस्थाकी लितनी सुन्दर
बख़ना है ?—‘वैठि नमित मुख’ से ‘आख चरन नख लेखति
चरनी’ तक कैसे आवमय शब्द-विव्याप्त है, उनसे श्रीमती
आनंदीदेवीकी संकोचमय दशा, उनके लिंगा-नाव्य, उनके
इ लिचार, पवित्र प्रेम आविषर लितना सुन्दर प्रकाश
पढ़ता है । हृष्यमें जो घटा धूमसे उठ रही थी, नेत्रोंके
सहारे वह चरस भी पड़ी—गोश्वानीलीले लिखा—

मंजु लिलोचन मोक्षति वारी—

कौशल्यादेवी एहो ही सब समझ गयी थी, नेत्रोंके
वहाये उनको और आँखें कर दिया, इसलिये दूसरी अद्वादी
वो लिखी गयी—

लोली देहि राममहतारी ॥

‘राममहतारी’ का लितना सार्वक प्रयोग है—पुत्रपर
माताका अधिकार वो सूचित हुआ ही, साथ ही उसके
हृष्यकी महता और श्रवणकालता भी उससे लिखित हुई ।
राम-महतारी क्षय बोरी, अब उसे भी सुनिये—

तत्सुनहु सिय अतिसुकुमारी । सातु-सातु-परिजनहि लिमारी ॥

लिमा जनक भूपाल-मानि, सातुर मानु-कुल-भानु ।

पति रविकुल-कैरव लिपिन विषु-गुन-कप-लिचानु ॥

मैं पुनि पुत्रबधू प्रिय पाई । कृष्णरासि गुन सीतु सुहाई ॥
नवनपुत्रि करि प्रीति बदाई । रामें ग्रान जानकिहि काई ॥
कलपवेलि जिमि बहु विविलाली । सीचि सनेहसलिल प्रतिपाली ॥
फूलत कलत मयेड विविवामा । जानि न जाइ काह परिनामा ॥
पल्लंगीठ तजि गोद हिंदोरा । सिय न दीन्ह पगु अवानि कठोरा ॥
जिअनमूरि जिमि जोगवतरहेझ । दीपवाति नहि टारन कहेझ ॥
सोइसिय चलन चहति बन साथा । आवसु काह होइ रघुनाथा ॥
चंद-किरन रस-रसिक-चकोरी । रविरुक्त नयन सकै किमि जोरी ॥

करि, केहरि, निसिचर चरहि दुष्ट जंतु बन भूरि ।

विवाटिका कि सोइ सुत सुमग सजीवन-मूरि ॥

बनहित कोल किरात लिसोरी । रवी विरामि लिपय-सुख-मोरी ॥
पाहन कुमि जिमि कठिन सुभाऊ । तिन्हहि कलेमु न कानन काऊ ॥
कै तापसिय काननजोगू । जिन्ह तप हेतु तजा सब मोगू ॥
सिय बन बसिहि तत केहि भेती । जिश्रिलिल कपि देलि डेराती ॥
सुर-सर-सुमग बनज-बन-चारी । डावर-जोग कि हसकुमारी ॥
अस विजारि जस आयमु होई । मैं लिख देझ जानकिहि सोई ॥
जौं सिय भवन रहै कह अंबा । मोहि कहै होइ बहुत अवलंबा ॥

श्रीमती कौशल्यादेवी आवर्त माता ही नहीं, आदर्य
सास भी हैं । सासका पटोहूके प्रति वह सबा और पवित्र
लोह को गुहको स्वाम बनाता है, गाहैस्व असंको उत्तर कर
कुदुम्बको सुख-शान्तिमय कर देता है, वे उसकी मूर्ति थीं ।
मावमय शब्दमें उनके हृष्यका प्रेम लिये प्रकार अवित
हुआ है, वह बहा ही गम्भीर, डाकात पर्यंगावक है ।

‘नवनपुत्रि करि प्रीति बदाई । रामें ग्रान जानकिहि लाई ॥
कलपवेलि जिमि बहु विविलाली । सीचि सनेहसलिल प्रतिपाली ॥’
जिअनमूरि जिमि जोगवतरहेझ । दीपवाति नहि टारन कहेझ ॥

इन यंकिलोंमें लितनी ममता भरी है, इनमें लितना
आवर्तमाल और भ्याव है, लितना प्रेम और वास्तव्य है,
लितनो कम्बा और ग्रहणकालता है, वह वह कलाना
होगा ? कौन सहृदय है, जो इन आदर्योंके इनमें बहकता
न पायेगा । अब कौशल्यादेवी कहती है, ‘पल्लंगीठ तजि
गोद हिंदोरा । सिय न दीन्ह पगु अवानि कठोरा ॥ बनहित कोल

किरात किसोरी । रवी विरापि विष्व-सुख-मेरी ॥ के तापस-तिथ कानन-जोगू । जिन्ह तपहेतु तजा सब भोगू ॥ सिव बन वासिहि तात केहि भाँती । चित्रलिलित कपि देखि डेरती ।' तब जानकी देवीकी सरदारा, कोमङ्गला, उनके स्वभावका भोगापन, और उनकी भीर प्रहृति आँखोंके सामने फिर जाती है, साथ ही हळवयमें एक देसा बेदना होने जाती है, जो विश्वको विहृत कर देती है । यदि कौशल्यादेवी सांतारीका झुँह न लोहती रहती, उनके सुखसे इनमें भाव न रहती होती, तो उनके सुखसे इस तरहकी बातें न गिरतीं । इन पंक्तियोंमें उनकी व्यथा ही मूर्तिमन्त होकर विराजमान नहीं है, उनकी वह वाञ्छा भी अद्वितीय ही है, जो पुत्रवधुके साथार्थ कुँडोंको देखकर भी विचित्र होती है । 'चंदन-किरन-रस-रसिक चकोरी । रविरख नयन सकै किमि जोरी ॥ मुर-सर-सुभग बन-बन-चारी । दावर-जोग कि इंसुकुमारी ॥ विष्वाटिका कि सोह सुत मुग्रन सजीवन-मूरि ॥' किसी पुत्र-वधुके पहाँ मध्यने पुत्रसे कोई सास इससे अधिक और इससे उत्तमतासे क्या कह सकती है? इन पंक्तियोंमें एक कुल-चालाका हृष्ण लोककर उसके विष्वतमको दिखाया गया है, और साथ ही यह भी सूचित किया गया है, कि एक पति-प्राणाके विष्वोग-विजुरा बननेपर उसका जीवन कैसा संकटपन हो सकता है । इनमें कौशल्यादेवी-की गम्भीरता जितनी सुन्दरतासे स्फुटित हुई है उनकी ही उनकी भावुकता, सहवासा, और भाविकता भी । एक और वे पुत्र-वधुकी गम्भीर मनोवेदना, उनकी वन-गमनकी असर्वता आदिका आवश्यक हाती हैं, और इसरी और पुत्रकी आँखें लोकती हैं, और उसे विचित कर्तव्यके लिये साथधान करती हैं । ऐसे भवसरपर वे मध्यने उत्तरवायित्वको भी नहीं भूततीं, वे पुत्रके महान् घर्त्यों, उनके आसीम संकटों और दैत्यविराटको समझती हैं ।

अतएव यह आशा नहीं देती, कि आपनी खीको आवश्य साथ लेते आओ, केवल इतना ही कहती है—

सोह सिय चलन चहति बन साथा । आयसु काह होह रघुनाथा ॥

अस विचारि जस आयसु दोई । मैं सिल देउँ जानकिहि सोई ॥

फिर व्यथित और विरहकातरा होकर यह वह पतती हैं— गौंसिय भवन रहै कह बंदा । मोहि कहै होइ बहुत अबलंबा ॥

यह अभिमान पक्ष उनके व्यवायव आन्तरिक आवश्यक दूरक है, पुत्र जाव तो जान, किन्तु विवरणीका पुत्रवधुको

वह नहीं ल्वगना चाहती । फिर भी क्षेत्रेपर वर्षर रख-कर उन्होंने आत्मसुखको लिकाऊकि ही, और जानकी-देवीकी मर्म-व्यथाओंकी ही मरहम-पही करनेकी पूरी जेष्ठ की; वही है उनकी महता और महानुभावता, वहीं 'राम-महतारी' पदकी पूरी सार्थकता हुई । आर्यसंस्कृतिकी ही यह बदास करना है, और आर्यसंस्कृतिका ही है यह अपूर्व आवधि ।

आवश्यक सासकी वही कुस्ता हो रही है, उसे मानकी नहीं दानवी कहा जाता है । पुत्र-वधुओंका जले लो वे उनका गहा घोट दें, पर क्या करें, वह कारणोंसे विवर है । फिर भी उनके विष्व लेखनी चम्से चल रही है, अधिकारा पत्र-पत्रिकाओंमें वे वहे अच्छे शब्दोंमें आरव की जाती हैं । यह बंसेमानकार्यालय कुछ आन्दोलनोंका फल है, गुरुजनों-से सब प्रकारकी स्वतन्त्रता खाम बना ही करियर नव्य-वादियोंका भव है, उन्होंके हाथों जहाँ माला-पिताकी दीक्षा-क्लेश हो रही है, वहाँ शब्दनूरीकी भी । मेरा निवेदन है कि जितनी नवज्येतिमन्ती पुत्रवधुएँ हैं, व्या वे विलक्षण दृष्टकी झुकी, और साफ सुधरी हैं, और जितनी संसारकी क्षात्रियाँ हैं, वे सासोंके सुंदरपर ही पुली हुई हैं? क्यापि नहीं, अभी भी आर्यसंस्कृति जीवित है, भारतवर्षकी अधिकारा कुल-ज्ञानादेव आज भी उसीके शासनमें है । नगरोंमें विशेषकर आमोंमें अभी अनेक सास-पत्रोंहुएँ येसी हैं, जिनको इम मूर्तिमन्ती कौशल्या और जानकी न वह सके तो मानवी तो आवश्यक ह सकते हैं । उन्होंके पुत्रप्रतापसे आज भी भारतमाताका मुख उज्ज्वल है, मेरा विचास है, सदाही उज्ज्वल रहेगा, क्योंकि 'सत्यमेव जयते नानृतम्' । मैं यह नहीं कहता कि कुछ सासें नहीं हैं, हैं, आवश्य हैं, किन्तु जहाँ दो आज तुष्ट हैं, वहाँ दस पाँच भली भी हैं । कुस्ता फलते समय भली सासोंको व्यांगों भुजा दिया जाता है? आरव रक्षा जाव जो आज बशुएँ हैं, कल वे भी सास होंगी । मेरा विचार है कि सास भली होनेके लिये पुत्रवधुका भी भली होना आवश्यक है । बिना कारण कोई किसीको नहीं सलाता, सलानेके कारण होने चाहिये । फल भीलक्षण परिवान होता है । बिना कुर्बीज लोये कुक्कल नहीं फल सकता । तांबी दोनों हाथोंसे बलती है । परोहू सास-का आवश्यक भरती, तो कोई कारण नहीं है कि सास उद्धा डेकर सीधी हो । गृहज्ञाह वहाँ नहीं होता, किन्तु संभाल-मेसे ही सब सैंभव जाता है, बनानेसे विलक्षणी बात भी बन जाती है । सहिष्णुता और जमा वही चीज़ है,

सेवा और आप्तोसर्गसे पश्चर भी विवर जाता है। भगवान् करे, घर घर भीमती जौशाला-जैसी सास और भीमती जानकी जैसी पुत्राशुर्दि विलाकारी पड़ें, जिससे इनारे पवित्र गृहोंमें पाशाल्य क्षुवित प्रभावोंका पदार्थक न हो सके।

माताजी वातें सुनकर भगवान् श्रीरामचन्द्र विनिष्ट हुए, पहले सो विवेकमय वरन कहकर उन्होंने उनको समझाया, इसके उपरान्त जानकीजीसे कुछ कहना चाहा, परन्तु मर्यादा काढ़क हुई, माताजी संकोच कुछ, किन्तु समय देखकर उन्हें उनसे कुछ कहना ही पड़ा, गोत्सवायीजी लिखते हैं—

मातु तर्मीप कहत सकुचाही। बोले समउ समुक्षि मन माहों।

भगवान् श्रीरामचन्द्र मर्यादापुरुषोत्तम है, परन्तु प्रबल काढ़से उनकी भी न चाही। भीमती जानकीदेवीसे उन्होंने जो कहा, उसे मुनिये—

राजकुमारि विलालन सुनहू। अन भाँति जिय जनि कुछ गुनहू॥
आपन भोर नीक जो चहू। नचन हमार मानि गृह राहू॥
आयसु भोरि सास सेवकाहै। सब विवि भासिनि भवन भलाई॥
पहितं अधिक धरमनहिंदूजा। सादर सासु-सुसु-पद-पूजा॥
जब जब मातु करहि सुवि मोरी। होहि प्रेम-बिकल मतिमोरी॥
तब तब तुम्ह कहि कथा पुरानी। सुंदरि समुक्षामेहु मृदुबानी॥
कहीं सुभाष सपथ सत मोही। सुमुक्षि मातुहित राहीं तोही॥

कैसी उचित और मर्मिक वातें हैं, भगवान् रामचन्द्र जैसे विश्व-नग्न और मर्यादारीके पुरुषके मुखसे दूसरी कौन वात विकलानी? उन्होंने वह भी कहा, जो कुछ मैं कह रहा हूं, वह गुरु एवं शुति-सम्मत है, अतएव इस चर्म-कलाको, जिसे कहका जानुभव किये जाएं करना चाहिये—

गुरु श्रुति संस्त धरमफल पाइअ बिनहि क्लेस।

श्रुति कहती है—‘मानदेवोभव, पिण्डेवोभव, आचार्य-देवोभव।’

शरण कहता है—‘प्रत्यक्षदेवतामाता’ ‘जनकी जन्म-भूमिक्ष म्यगांडापिगरीयसी।’

स्त्रृति कहती है—

संयतोपकरा दक्षा: हृषी व्यवपराहमुक्षी।

कुर्वन् शशुरयोः पादवन्दनं मर्तुतपरा॥

(वाक्यवल्लभ)

उपाध्यायान् दशाचार्यं आचार्योणां शतं पिता।

सहस्रं तु पितृन्माता गौरवेणात्तिरिष्यते ॥

(मनु)

माता, पिता और आचार्य देवता हैं। माता प्रत्यक्ष देवता है। जनकी और जन्मभूमि स्वर्गसे भी आहू है। जीको संयतोपकर, दक्ष, हृषी और व्यर्थ-व्यर्थ-पराक्रमुक्षी होना चाहिये। पतिमें रत रहकर सदा सास-संसुरकी सेवा करना उसका धर्म है। उपाध्यायसे दशगुण आचार्यका, आचार्यसे शतगुण पिताका, और पितासे सहस्रगुण गौरव माताका है।

इस प्रधान धर्मकी शिक्षा देनेके बाद भगवान् श्रीरामचन्द्रने उनकी भव्यहरताओं और कहाँकी असुविचारोंका बढ़ा ही विश्व वर्षम लिया है, पाठक रामालयमें उनको देख सकते हैं। अधिकांश वर्षम बढ़ा ही भावमय और सुन्दर है, कवित्य तो उसमें कृष्ण-कृष्टकर भरा है— कुछ पंक्तियाँ देखिये—

दरपहि भीर गहन सुधि भाए। मृगलोचनि तुम्ह भीर सुभाए॥

हंसगवनि तुम्ह नहि बनजोगू। सुनि अपजसु मोहिंदेहिलोगू॥

मानस-सकिन्न-मुधा प्रतिपली। जिअइ किलवनपयोधिमराली॥

नव-रसाल-बन बिहरनसाला। सोह किंकिल बिपिन कीला॥

इन पंक्तियोंमें किलनी स्वाभाविकता और भावुकता है, सहवयजन स्वयं उसका अनुभव करें। कुछ पाशाल्य विहानोंका भ्रत है कि भीमती जनकानिदिनीकर चरित्र जिस रूपमें भावतीय कवियोंने अंकित किया है, वह कलियत है, उसमें वास्तविकताका लेश नहीं। ‘उनपर विपचिका पहाड़ दृट पड़ता है, परन्तु उस अवस्थामें भी उनको कुछ कहते नहीं देखा जाता, जात इतना है उनके मुखमें जीभ ही नहीं, या किसीमें उनके मुखपर मुहर लगा ही है। वह उहेने बढ़ा हुःस सह जोती है, परन्तु दक्ष भी नहीं करती। दक्ष दृट पड़ता है, किन्तु हिलाई, तक नहीं। ऐसी प्रसर-अतिमा हो सकती है, कोई भी-चारिकी नहीं।’ ऐसी ही ऐसी तर्कनार्थ करके, वे विजके कक्षोंके कोदते हैं, और इसप्रकारकी और किलनी ही उटपटोंग वातें कहते रहते हैं। वास्तव वात यह है कि जिस वातावरणमें उनके हृदयका विकास हुआ है, जो इस उनके लेन्ड्रोंके सामने उपस्थित होते रहते हैं, पति-पत्नीके जिस वारस्त्यरिक व्यवहारोंका उनको आनुभव है, कैसी ही उनकी विचारपरम्परा और मर्यादाकी है। योरपकी

कियोंमें आत्मपरायनता अविष्ट होती है। वे उत्तरी पति-प्रेमिका, और स्नेहमयी नहीं होतीं, जितनी पश्चिमा विशेषतः भारतकी कुछ-कलाओं होती हैं। वे पतिपरायना तभीतक रहती हैं, अबतक उनके स्वार्थोंकी पूर्ति होती रहती है, स्वार्थमें व्यावात उपस्थित होनेपर वे तत्काल उनको त्याग देती हैं, आजकल वह प्रहृष्टि बहुत ही प्रबल हो गयी है। पतिकी आशामें रहना, उनकी सेवाके लिये आत्मोस्तरी करना, उनकी इहिमें आत्मविकल्प है। विवाह-सम्बन्ध उनकी इहिमें उतना पवित्र नहीं, वे बातकी बातमें उसे तोड़ सकती हैं। उनका स्वभाव उग्र, असंयत, और प्रायः उद्धृत्खल होता है, इसप्रकारकी प्रहृष्टिको वे तेजस्विता कहती हैं। उनकी स्वनन्दनताकी कामना उत्तरी लीब होती है, कि पतिके सामने यदि घोड़ा भी झुकना पढ़े, तो वे उसे परतनन्दना मान बैठती हैं। जिस देश, जिस समाजके ऐसे आदर्श हों, उस देश और समाजमें पला, यदि सीता-देवीको अविक्षिप्त भीर, गरमीर, संयत, आप्मत्यागकी भूर्ति, और पति-प्राणा देखकर उनके विषयमें तथाकथित विचार प्रकट करे तो क्या आश्रय ! मेरे कथनका यह मतदब नहीं, कि योरपमें पतिपरायना कियाँ होती ही नहीं, ऐसा कहना, और सोचना, अन्याय होगा। मिल्टनने एक स्थानपर 'ईव'के मुखसे इन शब्दोंको कहलाया है— वे शब्द उन्होंने आहमसे कहे हैं—

"What thou bidd'st Unargued I beg, so
God ordains, God is thy law, thou mine."

'जो आपकी आशा होती है, उसे मैं बिना कुछ कहे सुने स्वीकार करती हूँ। ईंधरीय इच्छा यही है। आपके नियन्त्र हैं और मेरे आप।'

संसारमें जितनी सती साध्वी कियाँ होंगी, प्रायः सबके हृष्टका भाव ऐसा ही होगा। यदि योरपकी कियोंमें ऐसा भाव न पाया जाता, तो यिष्टनकी लेखनोंसे ऐसे शब्द निकलते ही नहीं, अभावमें भाव नहीं होता। योरपकी कियोंमें रजोगुण और तमोगुण ही होता है, सतोगुण नहीं, ऐसा अहना अस्वाभाविक होगा। वहाँ स्वभाविकताका लोप हो गया है, हृषिमता ही रोप है, वह भी नहीं कहा जा सकता। किन्तु वह पहल सत्य है कि आजकल अविकल्प स्वान स्वेच्छापरिता प्रदद्य कर रही है, इसी-किये वहाँका बायुमण्डल विशेष क्रहृष्टि हो गया है। योरपमें सती-साध्वी कियोंका अभाव नहीं, किन्तु वे

डैंगविद्योपर गिनी जा सकती हैं। वे त्रि प्रायः वैसी ही कियोंके हाथमें हैं, जिनका विद्वान् उपर दुष्टा है। अतएव उन्हींके प्रभावोंसे ज्ञोग प्रभावित हैं, और वैसे ही असंगत विचार भारतकी नुनीत सम्बन्धामें परी कियोंके विषयमें प्रकट करनेके लिये बाज्य हैं, किन्तु इसप्रकारकी नियूनता बातोंका मूल ही क्या ?

सीतादेवी भारतकी सती-साध्वी कियोंकी शिरोमणि हैं, उनको आर्यसंस्कृतिकी विद्य मूर्ति वह सकते हैं। उनके मुखमें जिहा है, किन्तु यही ही संयत। उनके युहपर युहर कभी नहीं जानी, वे समयपर बोकती हैं, किन्तु उनके शब्द तुले दुए और गम्भीर होते हैं, उन शब्दोंमें महानुभावता भरी होती है पर साय ही हृष्टकी विशाकता भी। कटु वचन कहना, उद्धत बन आना, उनके स्वभावके विलम्ब है। जैसी मर्यादाशीलता और सदाशायता उनमें दृष्टिगत होती है, अन्यत्र नहीं। और बातोंकी तरह सम्बन्धोंके भी लाल होते हैं, पहले वह उतनी उदात्त, संयत और गम्भीर नहीं होती, जितनी उक्तावस्थामें। सांसारिक अन्य पदार्थोंकी तरह उसका भी क्रमशः विकास होता है। जो जातियाँ पहले पशुओंके समान जीवन व्यतीत करती थीं, आज वे ऊंचे ऊंचे महलोंमें रहती हैं और वैज्ञानिक आविकारों-द्वारा जगत्को अकित करती हैं, यह उनकी सम्बन्धाके क्रमशः विकासका ही फल है। आर्य-सम्बन्धामें संसारकी सब सम्बन्धाओं-से प्राचीन है, और ज्ञानभग पूर्णताको पहुँच गयी है, इसलिये वह अधिकांश उदात्त गुणोंका आधार है। भगवती जानकी सतीत्वके विषयमें इसका प्रमाण है। जी-जातिके हृष्टका चरमोत्कर्ष उनमें देखा जाता है, उनकी महानुभावता, संसारकी सती साध्वी कियोंका आदर्श है। विभिन्न हायोंमें पहङ्कर विचार-वैचित्र्यके कारण कहीं कहीं उनका अतिक्र विकृत हो गया है, किन्तु उनकी महत्ता कहीं सर्व नहीं हुई। विज्ञान औद्योगिक विद्वान् या, उसने कुम्भमाला-नामक एक नाटक किला है। प्रकरण उसका 'वैदेही-कनकास' है। विधिमें पहुँचाकर ज्ञौटे समय वास्तविकी जनकनन्दिनीसे सम्बद्धकी प्रार्थना करते हैं—उस समय नाटककार उनके मुखसे वे वाक्य कहलाते हैं—

'तथा निषुरो नाम सन्दिवयत इति प्रतिहत वचनतैषा
लक्षणस्य, न सीताया अन्यतम् ।'

'अहो अविश्वसनीयत! प्रकृत निषुरभावानां पुरुष-दद्याणाम् ।'

‘ऐसे निष्ठुरके लिये मैं जो सम्बोध देना चाहती हूँ, इसमें कास्तबके वचनकी रहता है, सीताका सौभाग्य गही।’ ‘इभावहीसे निष्ठुरमावपूण् उरुष-हृषयकी अविकासनीयता विचित्र है।’ ऐसे ही एक अवसरपर भवमूर्ति कौन-सा पथ प्राप्त करते हैं, उसे भी देखिये—उत्तररामचरितमें एक स्थलपर जे अभिनती सीता देवीकी सली वासन्तीके मुखसे भगवान् श्रीरामचन्द्रके विषयमें यह वाक्य कहताते हैं—

‘अयि देव ! किं परं दारणः विल्लिम्’

‘देव ! आप सचमुच वहे निष्ठुर हैं।’

यह सुन सीतादेवी अपनी पतिप्राणताका परिचय देते हुए कथा कहती हैं, उसे भी सुनिये—

‘सहि वासन्ति ! किं त्वेवंवादिनी भवसे, पूजार्हः सर्वस्यार्थपुत्रो, विशेषतो मम प्रियस्त्वया।’

‘सली वासन्ती ! तुम देसा क्यों कहती हो, आर्यपुत्र स-के पूजनीय हैं, विशेषतः मेरी प्रिय सलीके।

दिल्लीनागकी जनकनन्दिनी, देवी नहीं मानती हैं, उनमें वैयंस्युति है, वे वैयंस्युत होकर पतिदेवको निष्ठुर कहती हैं, साय ही पुरुषाति मात्रको स्वभावहीसे निष्ठुरहृष्ट कह डालती है। इस कथनमें स्वाभाविकता है, किन्तु विचारों वह विशालता नहीं, जो मनुष्यको देवता बना देती है। विपरि ही मनुष्यकी कहाँटी है, इसपर दिल्लीनागकी सीतादेवी कसनेपर ढीक नहीं उतरती। भवमूर्तिकी सीता देवी वासनबमें देवी हैं, वे आत्मचिन्ताशूल्य हैं, सभी पतिप्राणा हैं, वे ‘विषदि वैये’ का आदर्श हैं, उन्होंने स्वाभाविकता पर विजय प्राप्त कर ली है, उनमें प्रतिर्हिसा-वृत्ति है ही नहीं, वे स्वर्य तो मगवान् श्रीरामचन्द्रको देखकर कुछ कहती ही नहीं, किन्तु सलीके कटु वचनको भी नहीं सह सकती, उनका यह वाक्य बहा ही मार्भिक है, ‘आर्यपुत्र सबके पूजनीय हैं, विशेषतः मेरी प्रिय सलीके।’ यह सीतादेवीका वास्तविक रूप है, यह रूप बुधजन ही नहीं, विदुष-जन-वन्दनीय है। उनका यही रूप आर्यसंस्कृतिका सर्वस्य है। गोत्यामीवी उनके इसी रूपके उपासक हैं। भगवान् श्रीरामचन्द्रकी बातोंको सुनकर सीतादेवीने कथा कहा, अब उसको उन्हींके शब्दोंमें सुनिये।

कौशल्यादेवीके सामने जनकनन्दिनीको सीधे पतिसे बातचीत करनेमें मर्यादा बाढ़ थी, अतएव उन्होंने उन्होंका सहारा दूँका, किन्तु इसमें उनको सफलता न हुई।

भगवान् रामचन्द्रने देसी बातें कहीं, कि उन्हें बोलनेकी नौकर आयी। इसलिये यहजे उन्होंने—

लागि सामुपय कह कर जोरी। छमविदेवि बड़ि अविनय मोरी।

इस पथमें किलनी मर्यादा-शीखता है, ‘छमवि देवि वदि अविनय मोरी।’ मैं उनके सरब और विनाश हृषयकी किलनी सुन्दर प्रतिचक्राया है। साससे शविनयकी उमा नाँगकर उन्होंने पतिदेवसे जो कुछ कहा, उसमें पति-प्रेमका प्रबाह उमड़ा पड़ता है—उसका एक एक शब्द बहा ही भावमय है— उसकी कुछ पंक्तियाँ देखिये—

मैं पुनि समुद्दिशी शीख मन माहीं। पिष-वियोग-सम दुखु जग नाहीं।

तुम बिनु रघु-कुरु-कुमुर-वियु सुरपुर नरकसमान ॥

मातु पिता भगिनी प्रिय भाई। प्रिय परिवार सुहद समुदाई ॥

सासु सपुर गुर सजन सहाई। सुत सुंदर सुसील सुखदाई ॥

जहँ लगि नाय नेह अरु नते। प्रिय बिनु तियहि तरनिहुं ते तते ॥

तनु धनु धामु धरनि सुरराजू। पतिविहीन सब सोक्तसमानू ॥

भोग रोगसम मूचन भारू। जम-जातना सरिस संसारू ॥

प्राननाय तुझ बिनु जग माही। मोक्ष हुसुद कलहुं कहु नाही ॥

जिअ बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसिअ नाय पुरुष बिनु नारी ॥

नाय सकल मुख साय तुम्हरे। सरद-विमल-वियु-बदन निहरे ॥

विचाहकालमें सहपदीके समय पहरी प्रतिज्ञा करती है—

आर्तं आर्ती भविष्यामि सुखुःसविमागिनी ।

तदाश्च पालयिष्यामि पश्चं सापदे बदेत् ॥

‘आतं होनेपर आतं हूँगी, सुख-नुःस-भागिनी हूँगी, और तुम्हारी आज्ञाका पालन करूँगी।’ कहा जा सकता है इस प्रतिज्ञाके अनुसार उनको वही करना चाहिये या, जो पतिने आज्ञा दी थी, किन्तु उन्होंने तुःस विवेदन करना प्रारम्भ किया, यथा यह अमर्यादा नहीं ? यही आत यह कि ‘आपकोल नियमो नारित’ दूसरी आत यह कि उन्होंने अप्यज्ञा करा की ? कोई आज्ञा होनेपर उनके पालन करनेमें जो आवार्दे उपस्थित होंगी, यथा उनका विवेदन करना आज्ञा न मानना है। आज्ञा माननेकी अपेक्षा पतिकी तुःस-सुखसंगिनी होता, उनके लिये जीवन उत्सर्जन करना यथा अधिक संगत नहीं ? सीतादेवीकी चेष्टा यही तो है। जीवा सर्वेव पति ही तो है, जिस वही तो प्राप्तकी आज्ञा उपस्थित है—

रासेन अदब जो अविलम्बि रहत जानिअहि प्राप्त ।

ऐसी अवस्थामें उन्होंने जो कुछ लिखेत्रहि किया, उसमें
प्रियतिरिचि क्या ? जो की-जीव है, जो शाकसंगत वात है,
वही जो वे कह रही हैं—

नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न ग्रंतं नापुषोपितम् ।
पति शुश्रूषते येन तेन स्वर्णे महीयते ॥
पाणिग्राहस्य साथ्यी स्त्री जीवतो वा मृतस्यना ।
पतिलोकमभीसन्ती नाचरतिक्षिदप्रियम् ॥

(मनु)

सा मार्या या गृहे दक्षा सा भार्या या प्रजानती ।
सा मार्या या पतिप्राणा सा मार्या या पतित्रता ॥

(व्यास)

मितं ददति जनको मितं भ्राता मितं सुतः ।
अमितस्य हि दत्तां भर्तीं पूज्येत्सदा ॥

(शिवपुराण)

‘पतिरेको गुरुद्वीणाम् । (चाणक्य)

‘खीको न तो कोई ज्ञज करनेकी आवश्यकता है, न व्रत-
उपवासकी, पतिकी सेवा करनेसे ही वह स्वर्णमें आट
होती है । पतिकोको कामना करनेवाली साथ्यी जी आहे
जीवित पति हो जाहे सृत किन्तु उसका अग्रिय कभी न
करे । भार्या वही है जो गृह-कार्यमें वज्र हो, सन्तानवाली
हो, पतिप्राणा और पतित्रता हो । पिता, आता, पुत्र
योद्धा देनेवाले हैं, सब कुछ देनेवाला पति ही है, इसलिये
वह सदा सकार-योग्य है । जियोंका गुरु पक पति ही है ।’

ओमती जानकीदेवीके लिखेदनमें हन्दी आर्य सिद्धान्तों-
की ज्ञनि छोड़ और क्या है ? हाँ, उनके इवत्के समान
उनकी उन्निवार्ता उदास अवश्य हैं । इस कथनमें कितनी
सत्यता है, ‘पिय-वियोग-सम दुख जग नाही’ इसलिये ‘तनु
चनु भासु भरने दुरराजू । पतिविहान सब सोकतमाजू’ है,
और ‘भोग दोगसम, भृष्ण भार’ है । अब ‘रुकुल-नुसुद-विषु
विना ‘मुरुर नरक-समान’ है, तो ‘जम-जातना-सरिस संकारू’
का होना क्या आवश्य ? किर वे कर्मों न कहतीं ‘प्राननाथ
तुम्ह विनु जग भार्ही । मो कर्दं सुतद कर्तुँ कङ्कु नाहीं ।’ अब वे
‘मातु पिता भगिनी, इत्यादि वहे वहे सम्बन्धित्वोंको नाम
कुन्दर लिहोचत्वोंके साथ लिगाकर, वह कहती हैं ‘जहं लगि
नाथ नेह अह नाते । पिय विनु तियहि तरनि ते ताते ॥’ तब वे
किस व्याकाकी ओर संकेत बहती हैं, क्या वह बलवाना
होणा ? विरहवाकाकी बातें कौन नहीं जानता-विरहियोंको

कौन नहीं जानता । जाहे वह उसकी मानसिक आविष्का
ही कल हो, किन्तु उसको अनुभव ऐसा ही होता है ।
उसको सुधाकर-किरदाँ भी अप्रिमधी ज्ञात होती है, और
मद्भवसमीकरण-व्याप, और अधिक व्याप कहें, उन्होंने वह
वात कितनी दूरकी कही, जिव विनु देह ‘नर्दा विनु वारी ।
तैसिंध नाथ पुरुष विनु नारो ॥ सत्य है, पुरुष, जी-देहका प्राण
है, और अविनी कल्पोजिनीका सविज, किन्तु इस वातको
सीतादेवी-सरण पतिप्राणा देवी ही समझ और कह
सकती हैं ।

इसके उपरान्त उन्होंने यह कहा—

खग मृग परिजन नगर बन बलकल विमल दुकूर ।

नौथ साथ सुर-सदन-सम परनसाल सुखमूर ॥

बनदेवी बनदेव उदारा । करिअहि सामु-सुर-सम सारा ॥

कुस-किसलय-साथरी सुहार्द । प्रभु-संग मंजु मनोजतुराहि ॥

कंद मूर फल अमिअ अहारु । अवध-सौध-सत-सरिस पहारु ॥

आवक्षण ‘लाघो, पीघो, आराम करो’ का वज्र-निर्वाच
ही सुनायी पह रहा है, ऐसी अवस्थामें सीतादेवीकी बातोंको
कौन सत्य स्वीकार करेगा ? खग-खगको परिजन, बनको
नगर, बलकलको विमल दुकूर, पण जालाको सुरसदन-
समान सुखमूर कौन मानेगा ? क्या ऐसा माना जा सकता है
वह तो विकानी-सुपरी बातें हैं । बनदेव, बनदेवी, सास-
ससुर नहीं बन सकते, कुस-किसलय साथरी, मनोजतुराहि
नहीं कही जा सकती, न तो कंदमूलफल, असूतमय आहार
हो सकते हैं और न अवधके सैकड़ों सौंधोंके समान पहार,
एवं न कोई कुदिमती जी ऐसा कह ही सकती है । हाँ, वह
कविकल्पना हो सकती है ।

इवय सबके पास है, जीव सबके मुहैम है, जो
जिसके नवमें जावे वह कह सकता है, जो जाहे सोंध
सकता है, परन्तु यह आप्रवाहः सत्य है कि जो कुछ
ओमती की देवीने कहा वह आपैवाकानाके हृदयका सच्चा
उद्घाटन है । यदि इम विवेकाकी जाँचें सोड जें, तो भारतीय
कुलवालाके मानस-इर्षणमें यह भाव बहुत ही स्पष्टरूपमें
प्रतिविमित दिखायी पड़ेगा । ओमती सीतादेवी स्वर्यं
इसके लिये प्रमाण है, जिन्होंने एक दो दिन नहीं, लगभग
चौदह वर्ष अगश्याम-ओरामचन्द्रके साथ इसी भावसे व्यतीत
किये । उनके डारारोंका प्रतिपादन निष्ठलिखित पथ वही ही
अदातसे करते हैं--

नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे । सरद-विमल-विधु-बद्रु निहारे ॥
किनु किनु श्रभु-पद कमल बिलोकी । रहिहो मुदित दिवस जिमि कोकी
मोहि मग चक्कत न होइहि हारी । किनु किनु अरन-सरोज निहारी ॥

बालाखिक सुखाका सम्बन्ध इत्यके भावोंसे है, किसी पश्चात्य अथवा बहुविशेषसे नहीं, इन पश्चोंको पढ़कर इस बालको सत्यप्रेमका पथिक भवीभौति समझ सकता है। प्रेम प्रेमके लिये होता है, सुख-उपभोगके लिये नहीं। जो प्रेम सुख-कामनापर उत्सर्गीकृत है, वह प्रेम नहीं, प्रेमका आनन्दमात्र है। सच्चे प्रेमसे कठकी अनुभूति होती ही नहीं। सीतादेवी कहती है—

बन-दुख नाथ कहे बहुतेरे । भय विपाद परिताप घनेरे ॥
प्रधु-विशेष-लव-लेस-समाना । सब मिलि होहिन फूफानीधाना ॥

सत्यप्रेममें अहं-भाव नहीं होता, उसमें सेवा-भाव ही प्रबढ़ होता है। सत्यप्रेम सूर्य है, उसके सामने अहं-भाव अन्धकार डूर ही नहीं सकता, उसको अवश्योकनकर सेवा-भाव-स्तरसिंज अवश्य विकसित होता रहता है। भगवती जानकीमें यह भाव कितना जागृत है, देखिये—

सबहि प्रौति पिय-सेवा करिहीं । मारगजित सकल स्थम हरिहीं ॥
पाय भक्षारि बैठ तकछाही । करिहीं बाठ मुदित मन माही ॥
स्व-कृत सहित स्याम तनु देले । कहैं दुख समठ प्रानपति पेंखे ॥
सम महि तृन-तरु-पहव ढासी । पाय फ्लोटिहि सब निसि दासी ॥

इन पंक्तियोंमें कितना अत्यन्विषेषता है, कितनी हितकामना और सहानुभूति है, यह निर्बन्ध-इत्यकी अवतारणा नहीं, सबका वित्तकी उदास भावमयी तुम्हर प्रकाशना है। प्रवक्तनामध्य मानसकी प्रोत्तना नहीं, 'अनस्यैकं, अनस्यैकं, कियास्यैकं' का सत्यतामयी विभावना है। स्वार्थसाक्षकी कपटभरी भावोक्तना नहीं, कर्तव्यज्ञानकी भक्तिभरी साक्षना है।

अग्रवान् श्रीरामचन्द्रने विष्णुकी भव्यकरताका बदा विशद चहूं लिया था, और वह भी कहा था—

'नर अहार रजनीचर करहीं । कपटबेष विधि कोटिक करहीं ॥

सीतादेवी इसका कितना सुन्दर और गरमीर उत्तर देती है, सुनिये—

वह वर मृदुभूति ओही । जागिहि ताति बगारि न भेही ॥
को प्रभुसंग मेहि विवरनिहारा । सिंह-वधुदि जिमि ससक शिखारा ॥

इस उत्तरमें कितना अत्यन्विषेषता और कितनी परिनिरन्तरता है, कितनी प्रीतिप्राप्तवता और तेजस्विता है, इसका अनुभव प्रत्येक सहवाप कर सकता है—

श्रीरामचन्द्रजीने यह भी कहा था, 'हंसगवानि तुम्ह नहि बनजोगृ । इसका उत्तर बदा ही इत्यग्राही, और मर्मस्पर्शी है। कहीं भी आनंदीदेवीने व्यंगसे जाम नहीं लिया था। बहुत भी-आवसे संचय उत्तर ही देती जाती गयी हैं, किन्तु इस पंक्तिका उत्तर बदा ही व्यञ्जनामय है, साथ ही उसमें इतनी स्वाभाविकता है, कि पढ़कर चित खोटपोट हो जाता है। उत्तर यह है—

'मैं सुकुमारि, नाथ बनजोगृ । तुम्हहि उचित तप, मो कहैं भोगू ॥

इस वचन-नरचनाकी बिलिहारी! इसीको कहते हैं, 'कागज-पर रख दिया है कलेजा निकालकर' कितनी मीठी झुटकी है, साथ ही कितनी प्रेमभरी।

लेख इच्छासे अधिक लम्बा हो गया। मैंने एक प्रसंग लेख लिखनेके लिये तुने थे, किन्तु एक ही प्रसंग अधिक विस्तृत हो गया, इसलिये एक प्रसंग और लिखान अब इस लेखको समाप्त करेंगा। शास्त्रोंमें जीको सहधर्मिणीकी कहा गया है, सहधर्मिणीका अर्थ है समान चर्मवाली। सर्वी गृहिणी वही है, जो परिके भावोंको समझती है और बिना कहे उसकी पूर्ति करती है। परिने जब तुम्ह सोलकर कुछ कहा, और तब जीने कोई कार्य किया, तो वह सहधर्मिणी कहाँ रही। जिस जीने परिके इत्यको नहीं पहचाना, उसके कर्तव्यको नहीं समझा, जो उसकी जीवनयात्राके अनुकूल अपनेको वहीं बना सकी, किसी स्थद-विशेषपर परिका क्या चर्चे हैं, जो इसकी मर्मांश वहीं, वह सहधर्मिणी होनेका दावा वहीं कर सकती। विवाहके समय वह कल्पासे कहता है—

मम ब्रते ते हृदयं दधामि, मम वित्तमनुचितं ते अस्तु ।

मम वाचमेकमना जुषस्त्वं, प्रजापतिष्ठाना नियुनक्तु महम् ॥

मेरे ब्रतकी और तुम्हारा इत्य लिये, मेरे वित्तके अनुकूल तुम्हारा वित्त हो, एकमना होकर मेरी वात मानो, प्रजापति तुम्हको मुक्तसे सम्बन्धित करे।

विवाहके अन्तमें कल्पाके भ्रुवल दर्ढन करता आता है, वह भ्रुवों देखकर कहती है,—'भ्रुवमसि भ्रुवं त्वा पश्यामि' 'जावि भ्रुव, तुम अचक अचक हो, मैं तुम्हें देखती हूँ।' इसका भाव वह है कि विवाहकर्त्तव्यमें विक्षे द्वारा मुक्तसे जो

प्रतिज्ञाएँ करायी गई हैं अथवा मैंने स्वयं जो प्रतिज्ञाएँ की हैं, उनपर मैं भ्रु-समान अचल अटल रहूँगी। सप्तपदी के समय वह यह भी कहती है—

यज्ञ हेमे च दानादौ भविष्यामि त्वया सह ।

धर्मर्थकामकार्येषु वधूः पठे पदे वदेत् ॥

यज्ञ, हेम और दानादौ—धर्म, अर्थ, और काममें मैं सदा तुम्हारे साथ रहूँगी। इसीलिये ‘अर्थं मायां मनुष्यस्य’ है। इसीलिये जी अर्थांगिनी है, और इसीलिये सहधर्मिणी। रामायणमें इस संस्कृतिका एक बड़ा ही उत्तम निवर्णन है। गोस्वामीजी लिखते हैं—

उत्तरि ठाढ़ भेष सुरसरि-रेता । सीय राम गुह लखन समेता ॥

केवट उत्तरि दंडवत कीन्हा । प्रभुहि सुकुच पहि नहि कलु दीन्हा ॥

पिय-हियकी सिय जाननहारी । मनि-मुंदरी मन-मुदित उत्तारी ॥

गोस्वामीजी की इस डिलिमें कि ‘प्रभुहि सकुन यहि नहि कलु दीन्हा’ बड़ा स्वारम्य है। ‘प्रभु’ शब्दका प्रयोग कितना सार्थक है, साधारण जन होते तो इस विषयमें वे कुछ लापरवाही कर भी सकते, किन्तु ‘प्रभु’का ऐसा करना बड़ा ही अनुचित था। बड़ी ही मर्यादाविलूप्त बात थी। फिर उसके साथ, जो जीभ भी नहीं हिला सकता। बड़े लोगोंके लिये दीनों अकिञ्चनोंकी सहायता करनेके लिये, इसप्रकार-के अवसर वडे ही सुन्दर होते हैं। सेवा करनेवाला बड़ोंसे बड़ी आशा रखता भी है। कमसे कम भगवान्को निचादकी मृटी अवश्य भर देनी चाहिये थी, किन्तु कहाँ, वे तो कुछ न दे सके। तापस-वेषमें उनके पास था ही क्या? फिर उनके जीको चोट क्यों न लगाती, और वे क्यों न संकुचित होते। सीतादेवी सतीशिरोमणि हैं, सबी सहधर्मिणी और अर्थांगिनी हैं, उन्होंने पतिवेवके हृदयकी बात जान ली, और तत्काल मुदित मनसे मणिजटिट झुँदरी उतार दी। गोस्वामीजीके शब्दोंकी मार्मिकता देखिये—‘पिय-हियकी-सिय जाननहारा । मनि-मुंदरी मन मुदित उत्तारा’! कैसी मुँदरी उत्तारी? मणिजटिट। कैसे उत्तारी? मुवित-मनसे। क्षियोंको गहना बड़ा प्यारा होता है, उनको उसे अलग करते बड़ी कठिनता होती है, पीड़ा भी होती है, वे आसानीसे उसे किसीको देना नहीं चाहतीं, जब करके कोई भले ही ले ले। यह साधारण गहनोंकी बात है, और मणिजटिट गहना! वह तो कलेजेमें छिपाकर रखनेकी चीज़ है, उसका तो नाम ही न लीजिये! किन्तु सीतादेवीने देसी ही चूँगढ़ी उत्तारी, और वह भी मुदित मनसे,

जरा-सा तेवर भी नहीं बदला, पेशानीपर शिक्षन तक नहीं आया। क्योंकि उनका सर्वस्व तो उनका जीवनधन है, उनका सौन्दर्य तो उनके हृदयका सौन्दर्य है। जो पति-प्रेमके आभूषणसे आभूषित है, उसको भूषणोंकी क्षमा आवश्यकता? जिसे पतिकी अनुकूलता बान्धनीय है, जो पतिमर्यादाकी भूली है, गहनोंपर उसकी लार नहीं उपकरती। यह चिरसंस्कृति आर्यसंस्कृति है, भगवती जनकनन्दिनी इसकी उच्चतम आदर्श हैं।

आत्मनिक कालमें भी इसप्रकारके आदर्शोंका अभाव नहीं, एक प्रसंग आपलोगोंको सुनाते हूँ। देशपूज्य, द्यावासागर, ईश्वरचन्द्र विद्यासागरका पवित्र नाम आपलोगोंने सुना होगा। उनकी जी बड़ी साधी थीं। विद्यासागर महोदयकी उदारता लोकविश्रुत है। एक बार एक ब्राह्मण उनकी सेवामें उपस्थित हुआ, और उसने विनय की कि ‘मैं कन्यादायसे आकुल हूँ, यदि आपने कृपा नहीं की तो मेरा निर्वाह होना कठिन है।’ उसने दो जौ सौ रुपयेकी आवश्यकता बतलायी। उस समय उनके पास कुछ नहीं था, वे चिन्तित हुए। आक्षयको बाहर बैठाया, और आप अन्दर गये। सामने उनकी सहधर्मिणी आ गयीं, उन्होंने उसके सुखकी ओर देखा, और पूछा आप चिन्तित क्यों हैं? उन्होंने कहा ‘एक ब्राह्मण कन्यादायप्रस्त है, और दो सौ रुपयेकी उसको आवश्यकता है, परन्तु इस समय तो मैं विलक्षण रित्यहस्त हूँ।’ साधीके नेत्रोंमें जल आया, उन्होंने कहा, ‘मेरे हाथके सोनेके कड़े किस काम आयेंगे।’ यह कहकर उन्होंने अपने कड़े उतारे, और पतिदेवके हाथपर उनको रख दिया। अपनी पतीकी यह उदारता देखकर उनके अशुष्यात होने लगा, वे अशुष्यिसंजन करते ही बाहर आये, और उपुष्ट हृदयसे उन्होंने कड़े आक्षयदेवको सावर देकर कहा, इन्हें मेरी जीने आपको अपेण्या किया है।

रामायणकी संस्कृतिकी दातें सुनाते सुनाते एक अन्य प्रसंग भी मैंने आपलोगोंके सामने उपस्थित कर दिया। केवल इस विचारसे कि जिसमें आपलोग आर्यसंस्कृतिकी व्यापकताका अनुभव कर सकें। आर्यसंस्कृति बहुत उदात्त है, और आज भी वह बहुत व्यापक है। हिन्दू-जातिपर तो उसका प्रभाव है ही, यहाँकी मुसलमान-जाति, और ईसाइयों पर भी उसका असर देखा जाता है, कारण इसका यह है कि उनमें अधिकांश हिन्दू-सन्तान ही हैं। चिरकालिक संस्कार-नाशहोते होते होता है, तत्काल अथवा योऽे समयमें

उसका नाश नहीं होता। वह सब है कि समरकी प्रति-
कूलताका सामना उसे करना पढ़ रहा है, पाश्चात्य विचार भी
उसे दबा रहे हैं, जिन्हुं सूर्य कवलक आश्लोमें छिपा रहेगा।
काल पाकर आदल टड़ोगे, और वह फिर वैसा ही ज्ञानगता
दिखलायी पड़ेगा। दूसरी बात यह कि आर्थसंस्कृतिके
भाव उदास और सर्वदेशी हैं, एकदेविता उनमें कम
है। इसलिये पञ्चशूलके समान ही वे उपयोगी हैं, आवश्यक-
तानुसार उनका कुछ रूप बदल सकता है, वे सर्वथा परिवर्त्त
नहीं हो सकते। रामायण और महाभारतके अनेक झंग और
अनेक उपदेश जैसे हिन्दू-जातिके उपकारक और शिष्यक हैं,
वैसे ही संसारकी अन्य जातियोंके लिये भी हैं। योरपमें भी
उनके अनुवाद आदरसे पढ़े गये हैं, और विजातीय सहवयोंने
भी उसकी दिल खोलकर प्रशंसा की है, ऐसी अवस्थामें
उनकी उपयोगिता अप्रकट नहीं। रामायणकी संस्कृतियोंका
संकलन कर बढ़ि उनपर प्रकाश ढाका जावे, और उनपर
मननपूर्वक लेख लिखे जावें तो मेरा विचार है कि वहाँमान-
कालमें उसपे बड़ा लाभ हो सकता है। अन्तमें अपनी निझ-
खिलित सर्वैवाहारा गोस्वामीजीका गुरुगान करते हुए मैं
इस लेखको समाप्त करता हूँ।

बन राम-रसायनकी रसिका रसना रसिकोंकी हुई सफला।
अदगाहन मानसमें करके जन-मानसका मरु सारा ठला ॥
बनी पावन मावकी भूमि भली हुआ मावुक मावुकताका मला ।
कविता करके तुलसी तलसे कविता लसी पा तुलसीकी कला ॥

सन्त कौन है ?

आकिंचन, इन्द्रिय दमन, रमन राम इकतार ।
तुलसी ऐसे सन्तजन बिरले या संसार ॥
अहंवाद 'मैं' 'तैं' नहीं, दुष्ट संग नहिं कोइ ।
दुख ते दुख नहिं ऊपजै, सुख ते सुख नहिं होइ ॥
सम कंचन काँचै गिनत, सदु मित्र सम दोइ ।
तुलसी या संसारमें, कहत सन्त जन सोइ ॥
बिरले बिरले पाईये, माया-न्यागी सन्त ।
तुलसी कामी कुटिल कलि, कोकी काक अनंत ॥
'मैं' 'तैं' मेट्यो मोहनगम, उगो आतमा-भानु ।
संतराज सो जानिये, तुलसी या सहिदानु ॥
कंचन काँचहि सम गनै, कामिनि काठ पथान ।
तुलसी ऐसे सन्तजन, पृथ्वी ब्रह्म समान ॥

रामचरितमानस मधु है

(लेखक—पं० श्रीरामनरेशजी त्रिपाठी)



जसे तीन सौ वर्ष पहले तुलसीदास-रूपी मधुपने संस्कृतके अनेक रामायण, पुराण, काव्य, इतिहास, नाटक, स्तुति, उपनिषद् और संहितास्त्री अत्यन्त सुन्दर फूलोंका मधुर रस एकत्र करके रामचरित-मानसरूपी जो मधु तैयार किया था, वह आजतक हिन्दुओंके घर-घरमें भौजद है, और जितना ही वह पुराना होता जाता है, उतना ही उसका स्वाद अधिक मधुर होता जाता है। जैसे मधु अनेक शारीरिक व्याधियोंको नाश करनेमें औषधियोंको सहायता पहुँचाता है, वैसे ही रामचरितमानसरूपी मधु अनेक मानसिक व्याधियोंको नाश करनेमें सहायक होता है।

केवल अयोध्याकावङ्गीकी रचनामें तुलसीदासले डेढ़ सौ से अधिक संस्कृत-ग्रन्थोंका रस ग्रहण किया है। यहाँ कुछ उदाहरण दिये जाते हैं—

आनन्द रामायण—

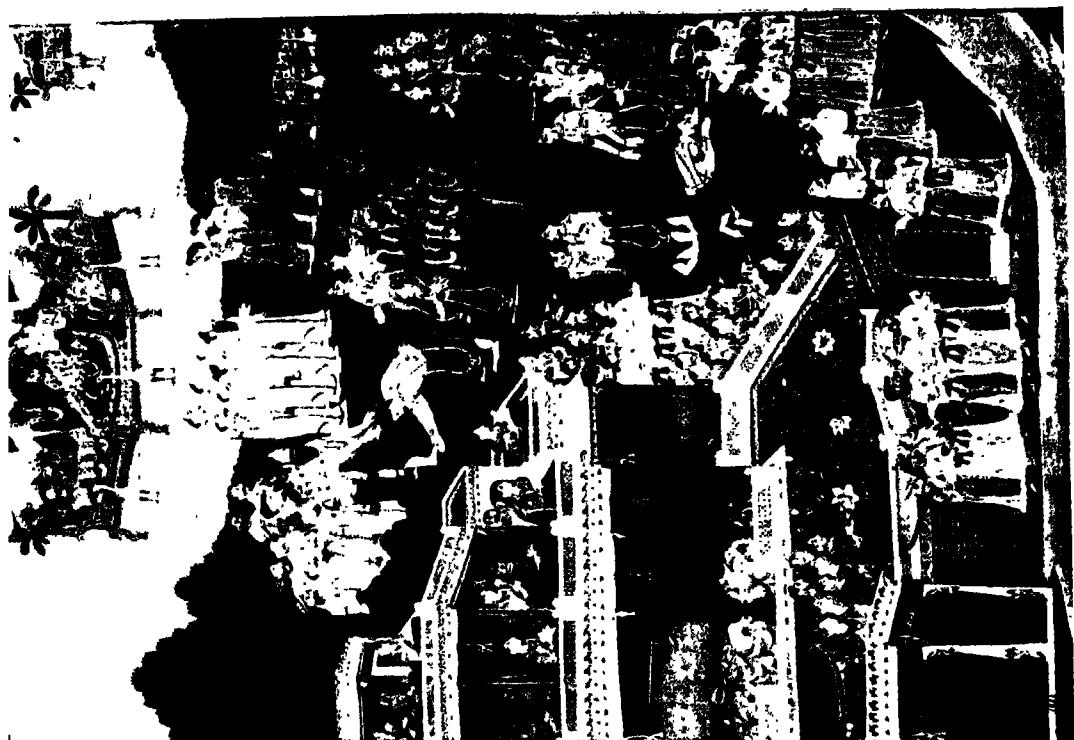
पर्वतश्रेणयो राजन् भुवनानि चतुर्दश ॥
तेषु चोत्तमकर्मणी मेथा भूत्वा स्थले स्थले ।
पूर्णानन्दपयोवृद्धिं रुद्धिं वसुधातले ॥
ऋद्धयः सिद्धयश्चापि समस्तमुखसम्पदः ।
नद्यो भूत्वा त्वयोध्यान्वित मिल्लतवधवासिनः ॥
नरा नाथश्च सम्पूर्णाः सदा मुहूर्तकारिणः ।
बहुमूल्यानि रक्षानि पवित्राणि पराणि च ॥

रामचरितमानस—

भुवन चारिदस मूधर मारी । सुखत मेघ बरघहि सुख बारी ॥
गिधि सिनि संपत्ति नदी मुहाई । उमंगि अदव अंबुधि कहै आई ॥
मुनिगन पुर-नर-नारि-मुजाती । सुधि अमोल सुंदर सब भाँती ॥

अगस्त्य रामायण—

सर्वेषां दृदये हासीदेव पव मनोरथः ।
स्वजीवने सुदयया तव शहर बुद्धिमान् ।
मुवरात्परं रजा रामचन्द्राम यच्छु ॥



राम पुनः अयोध्यामें ।
धार धरे युह-चरत-सरोरु । अनुजसहित आति-पुलक-तनोरु ॥



भरत-हनुमान मिलाप ।
दीनवंधु रथुपति कर किक्कर । सुनल भरत भेटउ आति सादर ॥

रामचरितमानस—

सबके डर अभिलाषु अस कहहि मनाह महेस ।
आपु अछत जुवराज-पद रामहि देहि नरेस ॥

बधिष्ठ रामायण—

ये धारयन्ति गुरुपादरजः स्वशीर्वे
ते कौ विमूलिमिलां वशयन्ति नूनम् ॥

रामचरितमानस—

जे गुरुचरन रेनु सिर धरहीं । ते जनु सकल विभव बस करहीं ॥

उत्तर रामचरित—

लौकिकानां हि साधूनामर्थं वाग्नुवर्तते ।
ऋषीणां पुनराद्यानां वाच्मर्थाऽनुधावति ॥

रामचरितमानस—

राजन राउर नामु जसु सब अभिमत-दत्तार ।
फल अनुगामी महिषमनि मन-अभिलाषु तुम्हार ॥

रवेतकेतु रामायण—

रामाभिषेकवृत्तान्तं श्रुत्वायोध्यापुरे शुभं ।
वाद्यानां धनवोरस्तु शब्दो जातः सुखप्रदः ॥

रामचरितमानस—

सुनत रामअभिषेक सुहावा । वाज गहागह अवध बधावा ॥

मंगल रामायण—

ग्रामदंव्याः सुराणां च शेषनागस्य पूजनम् ।
चकारामन्दयुक्ता सा कौशल्या प्राह निर्जरान् ॥
पुनर्बलि प्रदास्यामि वरक्षायं प्रदीयताम् ।
श्रीरामचन्द्रकल्याणं भवत्वं निवेदनम् ॥

रामचरितमानस—

शूली ग्रामदेवि सुर नागा । कोहउ बहोरि देन बलिमागा ॥
जेहि विधि होइ राम-कल्यानू । देहु दया करि सो बरदानू ॥

दृष्टस्य संहिता—

दासस्य भवने विद्वन् गुरोरागमनं मुने ।
मंगलानां महन्मूलं कल्पवस्त्रसं तथा ॥

रामचरितमानस—

सेवकसदन स्वामि आगमन् । मंगलमूलं धमंगल दण्डन् ॥

रघुवंश—

तं कर्णमूलमाश्रय रामं श्रीन्यस्तामिति ।
कैकेयीशंकयेवाह पलितच्छश्ना जरा ॥

रामचरितमानस—

स्वनसमीप भए सित केसा । मनहुँ जरठपनु अस उपदेसा ॥
नृप जुवराजु रामकहुँ देहू । जीवन-जनम लाहु किन लेहू ॥

यात्रावलम्ब रामायण—

कोमलं वचनं श्रुत्वा कुमतिर्जविता सती ॥
अद्रवीत् केकयी तेऽत्र माया नैव चलिष्यति ।
दीयतामथवा इत्वा नकारमयशो नृप ॥
गृहातां शीघ्रमेवाऽत्र प्रपञ्चा नैव मे प्रियाः ।
स्वभावसरलो रामो राममाता भवानपि ॥
मया परिचिताः सर्वे स्वभावसरला जनाः ।
विचारितं राममात्रा यथा मम हितं तथा ॥
प्रदास्यामि फलं तस्य सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ।

रामचरितमानस—

सुनि मृदु वचन कुमति असि जरई । मनहुँ अनल आहुति धृत परई ॥
कहदु कहै किन कोटि उपाया । इहाँ न लागिहि राउरि-माया ॥
देहु कि लेहु अजसु करि नाहीं । मोहि न बहुत प्रपञ्च सीहाहीं ॥
रामु सातु तुम्ह सातु सयाने । राममाजु भरि सब पहिचाने ॥
जस कौसिला मोर भल ताका । तस फलु उन्हाहि देउँ करि साका ॥

पुष्टस्य रामायण—

विनिर्भितः कोलकिरातकन्याः
पितामहैनैव रसैर्विहीनाः ।
कठोरशीला इव वज्रकीटा
अदुःखितः काननवासंहतोः ॥

रामचरितमानस—

बनहित कोल किरात किसारी । रची विरंचि विषय-सुख-भोरी ॥
पाहन कृमि जिमि कठिन सुभाऊ । तिन्हाहि कलेसु न कानन काऊ ॥

भरद्वाज रामायण—

तपत्विनायों द्वृथवा वनयोग्या भवन्ति हि ।
यामिस्त्यकास्तपः कर्तुं सर्वे भोगाः सुखात्मकाः ॥

रामचरितमानस—

कै तापस तिय कानन जोगू । जिन्ह तप हेतु तजा सब भोगू ॥

महारामायण—

वसिष्ठति वने सीता कथं कथय पुत्र माम् ।
या चित्रलिखितं दृष्ट्वा भीता भवति वानरम् ॥

रामचरितमानस—

सिय बन बसिहि तात केहि भाँती । चित्रलिखित कपि देखि डेराती ॥

मर्त्यवद संहिता—

मातुः समीपं गदितुं न च थमः
विचार्य चित्ते भगवानुवाच ह ।
शिक्षां मदीया शृणु राजकन्यके
न चान्यथा त्वं हृदये स्म मन्यथा: ॥

रामचरितमानस—

मातु समीप कहत सकुचाही । बाले समउ समुक्षि मन माही ॥

राजकुमारि सिखावन सुनहू । अन मैति जिय जनि कहु गुनहू ॥

कपिल संहिता—

मनोहारि वचो मिठं श्रुत्वा भर्तुः प्रियस्य च ॥
जानकया ललिते नेत्रे हातुपूर्णे बभूवतुः ।
जानकया दाहिका जाता सुशिक्षात्यन्तशीतला ॥
चक्रवाकी यथा रात्रौ शारदी चन्द्रिका तथा ।
दहसेव वियोगेन चक्रवाकस्य सुन्दरि ॥

रामचरितमानस—

सुनि मृदु बचन मनोहर पियके । लोचन ललित भरं जल सियके ॥

सीतल सिख दाहक ऐ कैसे । चकहिहि मरद चंद निसि जैसे ॥

पुरुषोत्तम संहिता—

समाद्वास्य प्रियां वार्षिमः प्रियाभी रघुनन्दनः ।
स्वमानुश्वरणौ नत्वा आश्रितं प्राप्य इर्षितः ॥
आगन्तव्यं त्वया शीत्रं प्रजातुःखक्षयाय च ।
निषुरा जननी तात विस्मर्तव्य न च त्वया ॥

रामचरितमानस—

कहि प्रियबचन प्रिया समुक्षाई । लगे मातुपद आसिए पाई ॥
बेगि प्रजादुख मेटब आई । जननी निदुर निसरि जनि जाई ॥

हुमचाटक—

पथि पाथिकवधुभिः सादरं पृच्छमाना ।
कुवलयदलनीलः कोऽयमार्ये तवेति ॥

रामचरितमानस—

सुमुखि कहहु को आहि तुम्हारे ।

अध्यात्म रामायण—

अग्रे यास्याम्यहं पश्चात् त्वमन्वेहि धनुर्धरः ॥
आवयोर्मध्यगा सीता मायेवात्मपरामनोः ॥

रामचरितमानस—

आगे राम लखन पुनि पाठे । तापस बेष विराजत आठे ॥
उभय बीच सिय सोहति कैसे । ब्रह्म जीव विच्च माया जैसे ॥

जैसिनि संहिता—

श्रीरामचन्द्र विमलं यशस्ते मानसं सरः ।
जिहा यस्य च हंसीव मुकापंक्तीर्णुणावर्णीः ॥
शात्वा भक्षति राम त्वं तस्यैव हृदये वस ।

रामचरितमानस—

जस तुम्हार मानस विमल हंसिनि जांहा जासु ।
मुकताहल गुनगन चुनै राम बसदु मन तासु ॥

आनन्द रामायण—

सीतारामप्रेमपीभूष्पूर्ण
जन्म स्थानो केकयीनन्दनम्य ।

चेत्कः कुर्याद् दुर्गमाल वै मुनीनां

योगान् राजन् भारतेऽस्मिन् परिव्रं ॥

दारिद्र्यदम्भदाहानां दुःखदूषणयोस्तथा ।

कीर्तिव्याजेन को नाशे कुर्यात्कलियुगे हठात् ॥

शठांजो कोऽपि राजेन्द्र कः कुर्याद्रामसमुद्देश ।

रामचरितमानस—

सिय-राम-प्रेम-पियूष-पूरन होत जनम न भरतको ,
मुनि-मन-अलाम यम लियम सम दम विषमत्रत आचरत को ।
दुख दाह दारिद दंम दूषन सुजस मिस अपहरत को ,
कलिकल तुलसीसे सठनिहि हडि राम सनमुख करत को ॥

सोजनेसे रामचरितमानसके सब दोहों, सोरडों, छम्दों और चौपाईयोंके मूल संस्कृत-ग्रन्थोंमें मिल जायेगे। यह देखकर महान् आश्रय होता है कि तुलसीदासजीने संस्कृत ग्रन्थोंका कैसा सूखम् अध्ययन किया था। कहीं कहीं सो एक दोहोंमें लो-दो ग्रन्थोंके क्षेत्रोंका अनुवाद मिलता है। अब यह प्रभु स्वभावतः सामने आता है कि क्या संस्कृतके

सम्पूर्ण ग्रन्थ तुलसीदासको कर्तव्य थे। हम जितने ही गहरे जाते हैं, उतना ही इस अद्वितीय रामायणकी अद्भुत प्रतिभा देखकर चकित हो जाते हैं। संस्कृत-नन्दन-काननमें विचरणकर तुलसीदासरूपी मनुष्यने समस्त फूलोंका रस लेकर जो मधु तैयार करके हिन्दू-जातिको दान किया है, उसकी तुलना संसारके किसी दानसे नहीं की जा सकती।

रामायणमें क्रोध-शान्तिका उपाय

(लेखक—प० श्रीरामदयालुर्जा मज्जमदार एम०प०, सम्पादक 'उन्सर्व')

तस्मात् यतः सदा कार्यो विद्याभ्यासे मुमुक्षुभिः ।

कामक्रोधादयस्तत्र शत्रवः शत्रुसूदनः ॥

तथापि क्रोध एवान् मोक्षविद्वाय सर्वदा ।

(अध्यात्म रा०)

सारमें जो लोग अशेष दुःखोंको नहीं देखते और जो देखकर भी उनसे मुक्त होना नहीं चाहते, उनको क्या भ्रष्ट कहना चाहिये? नहीं। यदि मुक्त होना चाहते हैं तो सदा-सर्वदा विद्याभ्यासका यत्करना चाहिये। स्मरण रहे, इधर उथरसे जो कुछ भी पढ़ लेनेका नाम विद्या नहीं है—

नाहं देहश्चिद्वितीय बुद्धिर्विद्यति भण्यते ।

'मैं देह नहीं हूँ, चैतन्य स्वरूप आत्मा हूँ' इस बुद्धिका नाम विद्या है। इस विद्याभ्यासके लिये निरन्तर यत्न करना चाहिये। काम-क्रोध और लोभादि इस विद्याके प्रबल शत्रु हैं। इनमें भी क्रोध तो मोक्ष-भार्गमें सर्वदा ही विघ्नकारी है।

श्रीलक्ष्मणजी रामचरितमानसकी बात सुनकर क्रोधके मारे तत्त्वमनकी सुविध भूल रहे हैं। भगवान् व्यास लिखते हैं—

उन्मत्तं भ्रान्तमनसं कैकेयीवशवर्तिनम् ।

बदा निहन्मि भरतं दद्न्यून् मातुलानपि ॥

(अध्यात्म रा०)

* श्रीरामचरितमानसमें किसन-किस ग्रन्थसे भाव लिये गये हैं, इसका बहुत अच्छा संग्रह वाबू श्रीरामचरितमानें, गगापर प्रेस, गयबोर्ले में छपवाकर प्रकाशित किया है। आप शाहमज्जुके ताल्लुकेदार वाबू गंगावक्षमिहंजीके आता हैं और २७ जाल्के प्रेमपूर्ण परिश्रमसे विभिन्न ग्रन्थोंको देखकर आपने यह बड़ा काम किया है। ऊपर चौपाई तथा दोहों और उनके नीने मात्रानि ग्रन्थोंके उम्मा भावके लिये लिखा गया है। हमारे पास चार काण्ठ तो आ नुके थे शेष जल्दी ही छपनेकी सुनना थी। यथापि कुछ प्रमाण छूट गये हैं तथापि आपका यह परिश्रम बहुत ही सराहनीय, सुत्त्व और संग्रह योग्य है। हमारे पास जितने काण्ड आ नुके हैं उनमें लगभग २२५ ग्रन्थोंके लिये उद्धृत हैं। रामायणपर यह बहुत मुन्द्र संग्रह करनेयोग्य दीका है।

लक्ष्मणने कहा, 'कैकेयीके वशमें हुए उन्मत्त, भ्रान्त-विस राजा दशरथको कैदकर मैं भरतको उसके मित्रों और मामाओं-समेत मार डालूँगा।'

भगवान् वाल्मीकिजीने लिखा है कि लक्ष्मणका क्रोध दूर करनेके लिये भगवान् श्रीरामने लक्ष्मणका हाथ पकड़ लिया। पर यहाँ भगवान् व्यास कहते हैं—

इति ब्रुवन्तं सौमित्रीमार्तिग्य रघुनन्दनः ।

श्रीभगवानने लक्ष्मणको पकड़कर हृदयसे लगा लिया। परम शान्त पुरुषके प्रेमालिङ्गनसे क्रोधाविष्ट शरीरके विकृत अणु-परमाणुओंका स्पन्दन भी थोड़ी देरके लिये छुन्द-सा बन जाता है। आलिङ्गनद्वारा लक्ष्मणको कुछ शान्त करके भगवान् कहने लगे—'रघुशर्दूल ! मैं जानता हूँ, कुम बीर हो। भरत मेरा प्राणप्यारा है। जब तुम भरतको भी (मेरे लिये) वध करनेको तैयार हो तो अवश्य ही तुम मेरे अवन्त द्वित-साधनमें रत हो, इसमें कोई सन्देह नहीं। भाई ! मैं तुम्हारा प्रताप खूब जानता हूँ, पर प्रताप दिलखानेका यह अवसर नहीं।' इस कथनसे क्या भगवान्-ने श्वेष किया ? हरि ! हरि ! प्रेमसे परिपूर्ण हृदयमें क्या कभी श्वेष रह सकता है ? श्वेष तो असम्यक्दर्शी हृदयके अभिमानपूर्ण दुर्गैव्युक्त उद्धार हैं। श्रीभगवान्में श्वेष रह ही नहीं सकता। श्रीवाल्मीकिमें भगवान् कहते हैं कि अभिषेकमें विश्व होना नियति है और नियतिको ईश्वरके

—सम्पादक

विद्यमङ्गो—बालनेकी शक्ति किसीमें नहीं है। भगवान् प्यास इस बातको विद्यताते हैं कि—क्रोध कहाँसे उत्पन्न होता है और किस उपायसे उसको समूल निर्मूल किया जा सकता है। केवल क्रोध ही नहीं, सारी आशान्ति और सारे दुःखोंका जो कारण है, उसका विनाश कैसे किया जा सकता है! इम भूमध्यडलमें समस्त देशोंके सभी नद-जारियोंके बयायं कल्पयात्रके लिये श्रीव्यास-वाणींत भगवान् श्रीरामका असूल्य उपदेश यहाँ उद्धृत करते हैं।

श्रीभगवान् कहने लगे, ‘भाई लक्ष्मण! यह जगत्, यह राज्य, यह देह जो तुम देख रहे हो, यदि सत्य होता तो इस देहको रिंहासनपर बैठानेके लिये तुम जो मेरे राज्य भोगोंमें विष करनेवाले छोगोंका नाश करना चाहते हो, सो तुम्हारा परिभ्रम सफल होता। किन्तु लक्ष्मण! क्या यह सब सत्य है? देखो भाई! इन्द्रिय-सुख हो या वायु-सुख, सभी सुख-भोग बालोंमें विजलीकी चमकके समान चलते हैं। अभी है और दूसरे लक्ष्यमें नहीं। जीवकी यह आयु भी, जैसे आगमें तथे हुए लोहेपर पटी हुई जलकी बूँद उसी लक्ष्य सूख जाती है वैसे ही, लग्न-स्थायी है। जिस भोगके लिये मनुष्य इतना छटपटाता है, उसको यह कब भोगेगा? सर्पने मेंढकों सुँहमें निगल लिया है, मेंढक सर्प-करड़के कोमल आंसोंको मच्छर मानकर उसे भोगनेकी इच्छा करता है, ऐसे ही काढ़ारूप कराक शर्पके गालमें पटा हुआ यह मनुष्य भी अनित्य भोगोंको छोड़ना नहीं चाहता। यह मनुष्य भोगोंकी प्राप्तिके लिये दिन-रात अत्यन्त देखेश सहता हुआ धन उपार्जन आदि लांकिक और वैदिक अनेक प्रकारके कर्मोंमें प्रवृत्त रहता है। परन्तु सोचो! यहाँ भोग कौन करता है? मनुष्य क्या एक बार भी इस बातपर विचार करता है कि इन भोगोंको शारीर भोगता है या आत्मा? देह, देहसे भिन्न पदार्थ है, देह जड़ है और देही पूर्ण आनन्दस्तर है। जो देहसे देहीको अलग देखते हैं वे तो चैतन्यमें—पुरुषमें कोई भी भोग देख नहीं पाते।

फिर इस संसारके सम्प्रदानपर भी तो विचार करो। पिता, माता, चाँ, पुत्र, भाई, ये सब विज्ञाकर संसारमें रहते हैं। यह सम्प्रदान भी बहुतन-से छोगोंके इस्तेकी विमर्शात्मामें टिके रहनेकी भाँति लक्ष्यायी है। यक्षक और प्यास मिटाकर कौन कहाँ चला जायगा, इस बातका किसको पता है? अथवा इस पारिवारिक सम्प्रदानको

नदीके प्रवाहमें बहकर आये हुए छाड़ोंके समान अति अस्त काषायका समझो। अलके प्रवाहमें कहाँ-कहाँसे आये हुए अनेक प्रकारके काठ एकत्र मिल जाते हैं और फिर देखते-ही-देखते सरङ्गोंकी ओटें सा-साकर कहीं चाटरय हो जाते हैं। पृथ ही प्रकारके कर्मको लेकर ची-पुत्र, माता-पिताका मिलना होता है और कर्मका भोग पूरा होते ही कौन कहाँ चला जाता है इस बातको कोई नहीं देख सकता।

जलसी—जल जलायकी भाँति चलता है। यौवन जल-तरङ्गकी नाई जल-भक्त है। ची-सुख स्वग-सुख-भोगके तुल्य है और मनुष्यकी आयु भी अत्यन्त अल्प है, तथापि मनुष्य अभिमानसे नहीं बचता। कहता है कि ‘मैं इस धनको, इन भोगोंको सदा भोगूँगा।’

लक्ष्मण! इस संसारमें किसने दिनोंकी स्थिति है? यह तो स्वप्नके समान है। फिर इस स्वप्नवत् अस्थायी संसारमें भी मनुष्य निरन्तर रोग, शोक और अनेक प्रकारकी ज्वालाओंसे जर्जरित रहता है। यह संसार आकाशमें गन्धर्व-नगरकी भाँति देखते-ही-देखते बिलीन हो जाता है। हाय! यह मृद गतुष्य इस अत्यन्त अस्थायी संसारको स्थायी बनानेके लिये दीवालपर दीवाल चुनाता है और तालोंपर ताले लगवाता है, न मालूम क्षण-क्षण करता है? सूर्यदेवके उदय और अस्तके साथ-साथ प्रतिदिन मनुष्यकी आयु स्थ हो रही है। किसने लोग निरन्तर बृद्धावस्थासे पीड़ित हो रहे हैं और किसने मर रहे हैं तथापि मनुष्य एक बार भी यह नहीं सोचता कि इस देहका भी नाश होगा। बनाओ, मनुष्य क्यों नहीं समझता? यिन्हें दिनों-की अपेक्षा अताले दिनोंमें जये-नये भोग मुस्को मिलते रहेंगे, मूलं मनुष्य केवल यहाँ सोचता रहता है। पूर्णकी अवस्थाको इर लेनेवाले कालके बेगड़े वह एक बार भी नहीं देखता। क्यों घड़ेके जलकी भाँति जीवन प्रति-क्षय लाया हो रहा है। बीमारियाँ बैरियोंकी भाँति देहपर सतत प्रहार कर रही हैं। बृद्धावस्था बाचिनके समान मुँह बाये सामने गरज रही है और मूल्य तो समवकी बाट देखती हुई साथ साथ धूमकर मानों यही कर रही है कि कब समय आये और कब मैं इसका संहार करूँ।

जो शारीर भरनेके बाद हो दिन भी वहा रहनेपर हृषि—कीदम्य हो जाता है। सिंह-म्याग्नादिके जानेवाले जो विद्वान् कृपये परिवार हो जाता है और वहा देखन जो

काक बन जाता है, ऐसे हुमि-विद्वा-भास्मकी संज्ञावाले इस शरीरमें 'मैं' पन का अभिमान करके लोग कहते हैं कि 'हम जगत्-प्रसिद्ध राजा हैं।' लक्, अस्थि, मांस, विद्वा, मृत्र, शुद्ध और रक्त हृष्णादि शरीरमें निरन्तर विकारको प्राप्त हो रहे हैं, समत परिणामको प्राप्त हो रहे हैं। बतायो, ऐसा विकारी और परिणामी शरीर आत्मा कैसे हो सकता है?

भाई जगत् ! जिन क्रोधादि दोषोंसे युक्त शरीरपर आस्था करके तुम त्रिलोकको दृष्टि करनेके लिये तैयार हुए हो, वे सब दोष देहभिमानसे ही तो प्रकट होते हैं। 'शरीर ही मैं हूँ' इसी बुद्धिका नाम अविद्या है; 'मैं शरीर नहीं, मैं चित् स्वरूप, ज्ञानस्वरूप आत्मा हूँ' इस बुद्धिका नाम विद्या है। अविद्या ही माया है। आत्माको अनात्मा मानना ही माया है। इसमें विषेष-माया जगत्की कल्पना करती है और आवरण-माया ज्ञानको ढक रखती है। अविद्या जन्म-मरण-रूप संसारमें हेतु है और विद्या संसार दुःखका हरण करनेवाली है। अतएव जो इस दुःखसागरसे तरना चाहते हैं उन मुमुक्षुओंको सर्वदा विद्याका अभ्यास करना चाहिये। हे शत्रुघ्न ! 'मैं शरीर नहीं चैतन्य हूँ, मैं आत्मा हूँ' जो आत्मस्य लोककर सर्वदा ऐसा अभ्यास करते हैं, उनका प्रधान कर्तव्य काम, क्रोध, लोभादि शत्रुओंका नाश करना होता है। इनमें क्रोध तो मोक्षविद्याका बड़ा ही विषम वैरी है, यह सदा-सर्वदा मोक्षके मार्गमें विप्र ढाला करता है। क्रोधके वशमें होकर ही मनुष्य पिता, भाई, सुहृद् और सखाका दृष्टि करता है। क्रोध ही मनमनापका मूल कारण है। जिस समय मनुष्यके अन्तःकरणमें क्रोधका वेग बढ़ जाता है उस समय उसको 'क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिये' इस बातका कोई विचार नहीं रहता। इसीलिये वह बदोंके प्रति दुर्बल्य कोलने लगता है और इसपर भी यदि क्रोध शान्त नहीं होता तो उन्हें मारने लगता है, परं यीड़े महान् दुःखको प्राप्त होता है। इसप्रकार-से क्रोध मनुष्यको संसारमें बाँध रखता है और धर्मका दृष्टि करता है, अतः भाई जगत् ! तुम क्रोधका स्थान कर दो ! क्रोध मनुष्यका महाशत्रु है। कारण, वह क्रोध ही मनुष्यकी भूत्युको तुला जाता है। लोग क्रोध-वश विष साकर आत्महत्या भी कर लेते हैं।

अब इत्यादि पदार्थों को जो इच्छा है, वह उत्तरोत्तर बदली रहती है इसीलिये इस तृष्णाको वैतरणी नदीकी उपमा

दी गयी है। जैसे यमराजके मार्गमें वैतरणी एक ऊपर भर्यंकर दुस्तर नदी है और पापियोंको उसे पार करना पड़ता है इसी प्रकार संसारमें वह तृष्णारूपी नदी भी तुङ्गद्वि संसारी मनुष्योंके लिये दुस्तर है। भाई ! सन्तोष ही—आद्य विषदोंकी इच्छाका स्थान ही—नन्दनवनकी नाई आनन्द-दायक है और मनकी निवृत्ति-रूप शान्ति ही कामधेनु है। कामधेनुसे हम जो वस्तु चाहते हैं, वही वस्तु वह देती है। इसीप्रकार शान्ति भी दो चार ब्राह्मणदोंकी प्राप्तिकी अपेक्षा भी अधिक सुख प्रदान करती है। जगत् ! इन सब कारणोंसे तुम इस समय यदि शान्तिकी सेवामें लग जाओ तो तुम्हारा कोई भी शत्रु नहीं रहेगा। कारण, शान्तिकी सेवा तुम्हारी इष्टि आत्माकी ओर कर देगी तब तुम देखोगे कि आत्मामें कोई विकार नहीं। फिर शत्रु उत्पत्ति ही कहाँसे होगा ? आत्मा न इन्द्रिय है, न मन है, न बुद्धि है और न प्राण है। वह ही इन सबसे पृथक् वस्तु है। आत्मा शुद्ध है, स्वर्यं-प्रकाश है, निर्विकार है और निराकार है। देह, इन्द्रिय, प्राण इत्यादि तो आत्माके विपरीत हैं, अर्थात् ये अशुद्ध हैं, परप्रकाश हैं, विकारी हैं और आकारवाले हैं। मनुष्य जबतक शरीर, इन्द्रिय, प्राणादिसे पृथक् इस आत्माको नहीं जान लेता तबतक उसे जन्म-मरणकी प्राप्ति होती है और वह संसारमें नाना प्रकारके दुःख भोगता है। अतएव तुम आत्माको सर्वदा शरीर, मन, बुद्धि, प्राण और इन्द्रियोंसे पृथक् मानो। इस तरह मानते हुए बुद्धि प्रभृतिका अवलम्बन करके बाहरसे लोकव्यवहार करो। सेव न करो। सुख-दुःख तो प्रारब्ध है, जो आये उसीको भोगते जाएं। फिर तुम कर्म करके भी कर्ममें जिस नहीं होओगे। हे राघव ! बाहरसे सर्वत्र कर्तृत्वपन दिखानेपर भी तुम भीतरसे शुद्ध-स्वभाव हो अतएव तुम कर्मफलसे निर्लिंस रहोगे।

जगत् ! यह जो तुम्हारे प्रति मैंने ज्ञानका उपदेश किया, इन सब बातोंको सदा-सर्वदा हृदयमें सोचते रहो तो फिर सारे संसारके दुःख भी तुम्हारा कुछ नहीं कर सकेंगे।'

'संसारदुःखरहितैर्बाध्यसे न कदाचन'

श्रीभगवान्से यही ग्रार्थना है कि हमलोग इस ज्ञानको कभी न भूलें।

रामायणकी विशेषता

(लेखक—कविसमाद् श्रीराम्निधनाथ ठाकुर)



मायणमें एक बड़ी विशेषता यह है कि इसमें घरकी बातोंहीको बहुत बढ़ा करके दिखाया है। पिता-पुत्रमें, भाई-भाईमें, पति-पत्नीमें जो धर्मका बन्धन और प्रीति एवं भक्तिका सम्बन्ध है, रामायणने उसे इतना महस्त्र दिया है कि वह यहुत सहजहीमें महाकाव्यके उपयुक्त हो गया है। प्रायः देश-जय, शत्रु-विनाश और दो प्रबल विरोधी पक्षोंके प्रचण्ड आवात-प्रतिवात साधारणतः महाकाव्यके वीचमें आन्दोलन और उद्दीपनाका सञ्चार करते हैं। किन्तु रामायणकी महिमाने राम-रावणके युद्धका आश्रय नहीं लिया है, इसमें विशिष्ट युद्धघटना श्रीराम-चन्द्र और सीताके दामपत्य-प्रेमको ही उज्ज्वल करके दिखानेका उपलक्ष्मात्र है। पुत्रके लिये पिताका आज्ञापालन, भाईके लिये भाईका आत्मस्थान, पत्नीका पतिव्रत, पतिका पतीव्रत और प्रजाके प्रति राजाका कर्तव्य कहाँसक हो सकता है, रामायणने यही दिखाया है। इसप्रकार व्यक्तिविशेषके घरकी बातोंका इतना विशद वर्णन करना किसी देशके महाकाव्यमें उचित नहीं समझा गया। इससे केवल कविका ही नहीं किन्तु सारे भारतवर्षका परिचय मिल जाता है। गृह और गृहधर्म भारतवर्षमें किन्तु और कैसे उच्च थे वे इससे जाने जायेंगे। हमारे देशमें गृहस्थाश्रमको भी अत्यन्त उच्च स्थान था, यह काव्य इस बातको प्रमाणित करता है। गृहस्थाश्रम हमारे निजके सुख और आरामके लिये नहीं था किन्तु गृहस्थाश्रम सारे समाजको धारण करता था और मनुष्यको यथार्थरूपसे मनुष्य बनाता था। गृहस्थाश्रमको भारतवर्षीय आर्यजातिकी नींव समझना चाहिये और रामायण उसी गृहस्थाश्रमका काव्य है। इसी गृहस्थाश्रमधर्मको रामायणने सङ्कटके समयमें—बनवासके दुःखमें डालकर उभे विशेष गाँव प्रदान किया है। कैकेयी और मन्थराके कुचकोंके कठिन आधातोंसे अयोध्याके राजागृहके नष्ट हो जानेपर भी इस गृहस्थ-धर्मकी दुर्भेद्य दृष्टाको रामायण धोयित कर रही है। रामायणने बाहुबल, विजयकी अभिलापा और राष्ट्र-गौरव इन सबका परिस्थान कर केवल शास्त्ररसास्पद गृहधर्मको ही कस्त्याके अशुल्कतोंसे अभिलिक्ष कर उसे सर्वोच्च सिंहासनपर विराजित किया है।

अद्यहीन पाठक कहेंगे कि इस प्रकारका चरित्र-वर्णन अतिशयोक्तिमें परिचय हो जाता है। इस कथनसे इस बातकी भीमांसा नहीं हो सकती कि किस जगह यथार्थ सीमाका और किस जगह कल्पनाकी सीमाका बंधन करनेसे काष्यकला अतिशयोक्तिपूर्ण हो जाती है। जिन विदेशी समालोचकोंने कहा है कि रामायणमें चरित्र-वर्णन अतिप्राकृत हो गया है, उनसे हम यही कहेंगे कि प्रकृतिके भेदसे एकके लिये जो अति-प्राकृत है, दूसरेके लिये वही प्राकृत है।

जिस जगह जो आदर्श प्रचलित है उसे यदि अतिमात्रामें अधिकृत किया जाय तो उसे बहाँके लोग अहय ही नहीं करेंगे। हम अपने कानोंमें किन्तु शब्दोंको ठीक ठीक सुन सकते हैं इसकी सीमा है, यह नहीं कि बराबर कोई कहता चला जाय और हम सुनते ही जायें। हमारे सुननेकी सीमाके बाहर कोई विश्वासकर हमारे कान ही क्यों न फाढ़ डाले किन्तु निर्दिष्ट सीमाके बाहर हमारे कान उसके शब्दोंको कभी अहय ही न करेंगे। काव्यमें चरित्र और भाषके उद्घावनके सम्बन्धमें भी यही बात धृती है।

यदि यह बात सत्य है तो यह बात सहजों वर्षोंसे मानी जा रही है कि रामायणकी कथा भारतवर्षके निकट किसी अंशमें अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं हुई है। इस रामायणसे भारतवर्षके आवाल-बृह-चनिता और ऊँच नीच सब लोगोंने केवल शिखा ही नहीं पाया है किन्तु आनन्द भी प्राप्त किया है, इसे केवल उन्होंने शिरोधार्य ही किया हो सो नहीं, इसे उन्होंने हृदयमें भी स्थान दिया है। यह उनका धर्मराज ही नहीं, काव्य भी है।

श्रीरामचन्द्रजी जो एक ही कालमें हमारे निकट देवता और मनुष्य हैं, रामायण जो एक ही कालमें हमारी भक्ति और प्रीतिभाजन हुई है, यह कभी सम्भव नहीं होता, यदि इस महाग्रन्थकी कविता भारतवर्षकी इष्टिमें केवल कवियोंकी कफोल कल्पना ही होती और वह हमारे लोक-व्यवहारके काव्यमें न आ सकती।

इसप्रकारके ग्रन्थको यदि विदेशी समालोचक अपने काव्योंके विचारके आदर्शके अनुसार अप्राकृत कहेंगे तो उनके देशके सहित तुलना करनेमें भारतवर्षकी एक और भी विशेषता प्रकट होती है। रामायणमें भारतवर्षने जो आहा वही पाया है।

(रामायणः-कथा)

रामचरितमानसके लोकप्रिय होनेका कारण

(लेखक—राधवहादुर अवधासी लाला श्रीसीतारामजी वी०५०)

**सारके जितने काम हैं सब किसी-ब-किसी
प्रयोजनसे किये जाते हैं । गोस्वामी तुकारामी-
दासजीने रामचरितमानसकी रचनाका कारण
यह किला है—**

**स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथगाया—
भाषणिन्बन्धमतिमञ्जुलमातनोति ॥**

काव्य-रचना यशके किये की जाती है, धन कलानेके किये की जाती है, अमंगल नाशके किये की जाती है और उपदेशके किये की जाती है, पर यहाँ तो प्रयोजन केवल अपने अन्तःकरणका सुख है, जिसे संस्कृतमें पर-निरूपि कहते हैं, परन्तु गोस्वामीजी आगे चक्रकर एक बात और कहते हैं—
बरनों रघुबर निसद जस सुनि कलिकलुप नसाय ।

कहनेवाले कह सकते हैं कि गोस्वामीजीने अपने ओताओंको यह जालच दिया है । पर ऐसा नहीं है, उनका मुख्य प्रयोजन तो यह है—

मेरे मन प्रबोध जेहि होई ।

क्योंकि राम-कथा ‘निज सन्देह मोह-भ्रम-हरणी’ और ‘भवसरिता तरणी’ है । आर्थ्य यह है कि गोस्वामीजीके स्वार्थसे संसारका परमार्थ कैसे सिद्ध हो गया ? हमारी समझमें यह आता है, कि उन्होंने अपने समयके सारे प्रचलित धर्म ज्यानसे देखे थे । समझ है कि पहले उनका मन भी डावाँडोल था, परन्तु उन्होंने अपने सम्बोधके लिये जो राह निकाली, वही संसारके लिये धर्म-मार्ग बन गया । ‘नानापुराणगिगमागम’ मध्यकर जो रस निकाला वह भारतवर्षके लिये रसायन बन गया । सो भी कल्पुषी दवा नहीं, भिज भिज रुचिवाले सब यह सुधारस पान करके छक गये । शैव और वैष्णव जो एक दूसरेका सिर फोड़ रहे थे, सबको यह रस अच्छा लगा । विवारकी बात है कि हस्तमें ऐसी कौन-सी बात थी ।

किसी कविकी रचनाको समझनेके लिये कविके समय-की देश-दशा जाननेकी बड़ी आवश्यकता है । वह कितनी बातें सम्भालुक्कर कह दाखता है जो तत्कालीन इतिहास आने विना समझमें नहीं आ सकती । गोस्वामीजीने कवितावशीमें किला है—

एक तो कराल कलिकाल सूल-मूल ताम्र
कोदमेकी खाज-सी सनीचरी है मीनकी ।

इसको समझनेके लिये इतिहास और अयोतिष्ठान दोनोंकी शरद लेनी पड़ती है । इस पंक्तिकी व्याख्या बड़ी रोचक है । इसके लिये इम आणके सुप्रसिद्ध विद्वान् और भाग्यसके अनुरागी सर जाऊं प्रियसरनके नोट्स (Notes) से एक अंशका अनुवाद उद्धृत करते हैं । ‘तुलसीदासजीके जीवनकालमें शानैश्वरने मीनराशिमें दो बार प्रवेश किया, पहले चैत्र सुदी १ संवत् १६४०में, जो ज्येष्ठ संवत् १६४२ तक रहा और दूसरी बार चैत्र सुदी २ सं० १६६१ में । इस बार ‘मीनकी सनीचरी’ जेष्ठ सं० १६७१ तक रही, और इसी सनीचरीमें मुसल्लमानोंका अस्थाचार बनारसमें बहुत बढ़ गया था ।

भारतवर्षमें जितने जये जये भत निकलते हैं, सब अपनेको सचा कहते और दूसरेको पालरह बताते हैं । स्वामी रामानुजका जन्म सं० १०७४ विं (१०१७ ई०) में हुआ । स्वामी रामानुज अपने गुरुसे बहुते रहे । शैवों और वैष्णवों-की लडाई और शैवोंकी हारका एक उदाहरण यह है—

तिरुपतिके एक मनिदरमें मूर्तिके विषयमें बड़ा विवाद था । शैव कहते थे कि शिवकी मूर्ति है और वैष्णव उसे विष्णुकी मूर्ति बताते थे । निर्णय करनेके लिये विष्णुके चिह्न (रंस चक्र) और शिवके चिह्न (श्रिगूल) दोनों मूर्तिके आगे रखे गये और पट बन्द कर दिया गया । सबेरे पट खुला तो मूर्तिके हाथोंमें शंख और चक्र देखे गये और श्रिगूल दूटा पड़ा था, यह सब कुछ हुआ परन्तु शैवों और वैष्णवोंका विरोध बढ़ता गया । स्वामी रामानुज-के शिष्य करेश और उनके गुरु महापूर्ण दोनोंको शैवोंकी प्रेरणासे तत्कालीन बोद्धराज्यने दुखवाया और उनकी आँखें निकलवा दाढ़ी । ये विरोध अवतरण हैं । काञ्ची (Conjeeveram) में जब भी दो भाग हैं—(१)शिवकाली (२)विष्णुकाली । कहा जाता है, शैव विष्णुकालीमें जाते या वैष्णव शिवकालीमें आते हैं तो अपनी आँखोंपर पटी बाँध लेते हैं ।

इतना लिखकर अब हम उन भिज भिज मतोंका उहेस करेंगे जो गोस्वामीके समयमें प्रचलित थे। और जिनको गोस्वामीजीने अपने मानसमें अहश किया है।

(१) शंकरस्वामीका वेदान्त-स्वामी शंकराचार्यका प्रादुर्भाव आजकलकी गवेषणाके अनुसार विकल्प संबद्धकी नवीं शताब्दीमें हुआ था। इन्होंने वेदान्त (वादवाद्य) सूत्रकी एक टीका लिखी है जो 'शंकर-भाष्य'के नामसे प्रसिद्ध है। इसके हूसरे अध्यायमें इन्होंने अपने समयके प्रचलित भवित्वोंका सर्वानन्द किया है। इस सम्बद्धायमें शिक्षकी उपासना की जाती है और ये ही शैव स्वामी रामानुजके विरोधी थे। स्वामी रामानुजने भी वेदान्त-सूत्रपर अपने मतानुसार एक टीका की है जो 'श्रीभाष्य'के नामसे प्रसिद्ध है।

स्वामी शंकराचार्यने बौद्धोंको परात्म करके भारतवर्षके बाहर लिङ्गल दिया और गया आदि प्रधान बौद्ध-नीथोंके हिन्दू-तीर्थ बना दिया था। उनकी शिक्षाका प्रभाव आजकल भी हिन्दू-धर्मपर बहुत है। गोस्वामीजीके समयमें इस मतके अनुयायी बहुत थे। इसकिये पहला धर्म, जिसकी छटा देवनेका प्रथम करना उचित समझा गया, शंकरका वेदान्त था, और रामचरित-वाणीनमें वेदान्त लानेके क्षिये शंकर-गिरजाका संचाल उसमें मिला दिया गया, या यों कहना चाहिये कि रामचरितके बस्तानेवाले श्रीरामके परमभक्त एक शंकर ही हैं। स्वामी शंकराचार्य भी शंकरके अवतार माने जाते हैं। इसी कारण शंकरके मूँहसे शंकरका वेदान्त मानसमें ढाल दिया गया। मानसके पड़नेवाले जो वेदान्तसे परिचित हैं, गिरजा-शंकरके संचालमें पद-पदपर वेदान्तके सिद्धान्त देखेंगे।

(२) रामानुज (लक्ष्मण)का श्रीवैष्णव-सम्प्रदाय—
इसरा भत जो गोस्वामीजीके समयमें धूमधारसे प्रचलित था, स्वामी रामानुजका था। स्वामी रामानुजके सम्प्रदायको श्रीसम्प्रदाय कहते हैं और उनके अनुयायी इस देशमें साधारण दीरिसे आचारी कहलाते हैं। रामचरितमानसमें इस सम्प्रदायके समर्थक श्रीखल्मणजी हैं। हम अपनी इस कल्पनाकी उठिमें मुश्शी सुखदेवलाल्लजीकी टीकासेल एक अंश उद्धृत करते हैं—

“बन्दौ लछिमन पद-जल-जाता। सीतल सुखद भक्त-सुख-दाता॥
रघुपति कीरति निमल पताका। दंड समान भयो जस जाका॥

“ता पाड़े श्रीर्मिष्ठा-पति लक्ष्मणजीके चरण-कमल
अति सीतल और सुन्दर भक्तजनोंके आनन्ददाता तिनको
मैं प्रशास करता हूँ।

‘क पूर्णगौवपुषं शशदिन्दुबक्त्रं—

पीताम्बरं सरसिजक्षमनन्तमादिम् ।

यश्चर्मिलाललित भूषणमानितांगं—

रामानुजं भज भनोभयदं निजानाम् ॥

“श्रीरामचन्द्रकी कीर्तिस्त्री उज्ज्वल पताकाको जिनका यहा दश-रूप है आर्थात् लक्ष्मणजीका सम्पूर्ण साहस केवल रामके प्रतापके उदय हेतु है, देखो यज्ञ-रक्षा और रंगभूमि और परशुराम-आगमन। ऐसे ही सब कायदोंमें जानो और चारों युगोंमें ऐसा ही है। देखो, सत्यगमें अनन्तावलार होकर अपने सहस्रमुखोंसे केवल भगवद्गुणानुवाप ही गायो और द्वापर रामावलारमें मुटिकावि दैत्योंका बध और जमुना और हस्तिनापुरका कर्णश हस्तादि केवल भगवद्-श्रीति-के निमित हैं। और कलियुगमें जब पासवद, बौद्ध, चार्वाक और कुट्टियोंकरके भगवत्कीर्तिस्त्रीपी पताका निरावरण हो गयी तब श्रीकल्मणजी यती होकर अपने सुकिदरण करके उसको उठाकर खड़ा कर दिया। जैसे पश्चपुराणमें भविष्य लिखा है।

‘पास्तें बहुले लोके कुट्टीजनसंकुले ।

कलौ वैष्णविस्त्रान्तं पुनरद्वायत यती ॥

“आर्थात् जब जैन, बौद्ध, चार्वाक, पासवद कलियुगमें फैल जायगा और कुट्टिन करके संसार भर जायगा तब वैष्णव-सिद्धान्तको फैरि यती उद्धार करेंगे।

“अनन्तं प्रथमे युगे द्वितीये लक्ष्मणं तथा ।

तृतीये कलरामक कलौ रामानुजो यती ॥

“आर्थात् जो सत्यगमें अनन्त भये औरत्रेतामें लक्ष्मण और द्वापरमें बसदेव सोईं कलियुगमें श्रीकल्मणजी यती होइंगे।”

इस अपनी ओरसे इतना और बड़ाना चाहते हैं कि स्वामी रामानुजके अनुयायियोंने कम-से-कम दक्षिण-देशमें श्रीराम-जानकीकी उपासना कैलायी और आज दिन भी भारतवर्षमें अनेक राम-जानकीके मन्दिर इसी सम्प्रदाय-वालोंके अधिकारमें हैं।

* यह टीका कलि-संवत् ४०७० में लिखा गया था और प्राचीन टीकाओंमें अत्यन्त प्रामाणिक है, इसमें बहुत नवीं बातें जानने योग्य हैं। आजकल कलि-संवत् ५०३० है।

(३) स्वामी रामानन्दका सम्प्रदाय—तीसरा भत् स्वामी रामानन्दका है। स्वामी रामानन्दका जन्म प्रयागराजमें संबत् १४०० विक्रमीमें हुआ था। आचार्यों और रामानन्दियोंका कगड़ा उठानेसे पहले इमलोग मानते थे कि, स्वामी रामानन्द भी पहले आचार्य ही थे। परन्तु अब स्वामी रामानुजसे रामानन्दीय सम्प्रदायका कोई सम्बन्ध नहीं माना जाता। स्वामी रामानुजकी शिष्याओंके देशकी दशासे कोई सम्बन्ध न था, न उनके समयमें परदेशियोंके आनेसे इस दशामें बड़े बड़े ऐसे परिवर्तन ही हो गये थे जैसे कि उनके पीछे तीन सौ वर्षमें हुए। लखनौतीके बाजारमें हजारों मनुष्योंका फाँसी लटकाया जाना, दिल्लीमें तैमूरकी आजासे नर-मुण्डोंका स्तम्भ बनाना, ऐसी घटनाएँ उस समय न थीं, जिनका असर सहज देश-सुधार करनेवालेपर न पड़ता। रामानन्दने यह भी देखा कि इमारे देशके पददलित चमार जो बड़ी रुचिके साथ गायका मांस खाते हैं, मुसलमान होकर शेख बन गये और जिन हिन्दुओंने उनसे धूपा की और उनका तिरस्कार किया था, विजेश्री जातिका बल पाकर, उन्हींको चिनानेके लिये वे गो-वध करने लगे। स्वामी रामानन्दने सोचा कि बिना दलितोद्धार किये काम नहीं चलता। इस भारतवर्षका मुख्य भोजन मांस नहीं है, यहाँ आयोंने इतने प्रकारके

अज्ञों, स्वादिष्ट कलोंका आविष्कार किया है कि मांस खाये बिना भी मनुष्य अच्छे-अच्छा भोजन करता और हृष्ट-पुष्ट रह सकता है। स्वामी रामानन्दने चमारसे कहा कि 'तुम मांस खाना छोड़ दो और करठी बाँध लो तो हम तुम्हें अपनी पंगतमें भोजन करते हैं।' उनका एक प्रधान शिष्य रैदास चमार था। इतना ही नहीं उन्होंने कबीर खुजाहोको भी अपना शिष्य बनाया। भविष्यपुराणमें लिखा है कि स्वामी रामानन्दका एक शिष्य अयोध्या पर्वुचा और वहाँ उसने अनेक मुसलमानोंको बैज्ञान बना लिया। यही आज-कलकी शुद्धि और दलितोद्धार है। उन्होंने यह सिखाया कि राम-जानकीके चरणोंमें भक्ति होनेसे आचारका काम नहीं। इस भक्तिका सबको अधिकार है, और—

जिनके प्रिय न राम बैदेही।

तजिये तिन्हें केटि दैरी सम यद्यपि परमसनेही॥

मानसमें स्वामी रामानन्दके स्थानापन्न भरत हैं। गोस्वामीजी आप रामानन्दी सम्प्रदायके हैं और अयोध्या-कारणके अन्तमें स्पष्टहपसे कहते हैं कि—

कलिकाल तुलसीसे सठानि हठि राम सन्मुख करत को।

जिसका अर्थ यह है कि स्वामी रामानन्दकी शिष्याने मुझे श्रीरघुनाथजीका भक्त बना दिया।

आहान

काम कांध लांभ लरदूषण त्रिशिर तुल्य

वासना विकल सूर्पणखा-सी सनाती है।

दश इन्द्रियोंका मोह दशमुख रात्रण है

जिससे विवश बुद्धि-सीता दुःख पाती है।

असुर-समूहोंसे व्यथित हो हृदय-भूमि

अति अकुलाती, घबराती, बिललाती है।

सोये किस ओर करुणाके धाम रामचन्द्र !

याद इस ओरकी तुम्हें क्यों न आती है ?

बलदेवप्रसाद मिश्र, एम० ए०, एल ए०० शी०, एम० आर० ए० एस०,

* इमने इस विषयपर विद्वानों और रामायणके प्रेमियोंका ध्यान अकर्षित करनेके लिये मोटी मोटी बातें लिय दी हैं। अबकाश मिलनेपर पूरी व्याख्या की जायगी।

श्रीरामकी पुनःलक्ष्मा-यात्रा और सेतु-भंग



क समय भगवान् श्रीरामको राजसराज विभीषणका स्मरण हो आया। उन्होंने सोचा कि 'विभीषण धर्मपूर्वक शासन कर रहा है कि नहीं ? देव-विदोधी व्यवहार ही राजा के विनाशका सूत्र है। मैं विभीषणको लक्ष्मा का राज्य दे आया हूँ, अब जाकर उसे सम्मानना भी कहिये। कहीं राज्यमदमें उससे अधर्माचरण तो नहीं हो रहा है। अतएव मैं स्वयं लक्ष्मा जाकर उसे देखूँगा और हितकर उपदेश दूँगा, जिससे उसका राज्य अनन्त कालतक स्थापी रहेगा।' श्रीराम यों विचार कर हो रहे थे कि भरतजी आ पहुँचे। भरतजीके नक्षत्रासे पूछनेपर श्रीरामने कहा—'भाई ! तुमसे मेरा कुछ भी गोपनीय नहीं है, तुम और यशस्वी लक्ष्मण मेरे प्राण हो। मैंने निश्चय किया है कि मैं लक्ष्मा जाकर विभीषणसे मिलूँ, उसकी राज्य-पद्धतिको देखूँ और उसे कार्त्त्यका उपदेश दूँ।' भरतने कभी लक्ष्मा नहीं देखी थी, इससे उसने भी साथ चलनेकी इच्छा प्रगट की, श्रीरामने स्वीकार कर लिया और लक्ष्मणको सारा राज्यभार सौंपकर दोनों भाई पुण्यक विमानपर चढ़ लक्ष्मा के लिये विदा हुए। पहले भरतके दोनों उत्रोंकी राजधानीमें जाकर उनसे मिले और उनके कार्यको निरीक्षण किया, तदनन्तर लक्ष्मणके उत्रोंकी राजधानीमें गये और वहाँ जू दिन ठहरकर सब कुछ देखाभावा। इसके बाद भरताज और अश्रिके आश्रमोंको गये। फिर आगे चलकर श्रीरामने चलते हुए विमानपरसे वह सब स्थान दिखलाये जहाँ श्रीसीतालीका हरख हुआ था, जटायुकी भृस्य हुई थी, कबन्धको मारा था, और बालिका दब किया था। तत्पश्चात् किञ्जिन्धारुरीमें जाकर राजा कुशीवसे मिले। सुग्रीवने राजघरानेके सब खी-युहरों, नगरीके समस्त नर-नारियोंसमेत श्रीराम और भरतका बड़ा भारी स्थागत किया। फिर सुग्रीवको साथ लेकर विमानपरसे भरतको विभिषण स्थान दिखलाते और उनकी कथा सुनाते हुए लक्ष्मा में जा पहुँचे, विभीषणको दूतोंने यह शुभ समाचार सुनाया। श्रीरामके लक्ष्मा पञ्चरनेका संवाद सुनकर विभीषणको बड़ी प्रसन्नता हुई। सारा नगर बात-की-बातमें सजाया गया और अपने मन्त्रियोंको साथ लेकर विभीषण भगवानीके लिये चला। सुमेहस्यत सूर्यकी भाँति विमानस्थ श्रीरामको देखकर

साणाक प्रबामपूर्वक विभीषणने कहा—'प्रभो ! आज मेरा अन्म सफल हो गया, आज मेरे सारे मनोरथ सिद्ध हो गये। उपोकि आज मैं जगद्वन्य अग्निन्य आप दोनों स्वामियोंके घरणा-नृशंग कर रहा हूँ। आज स्वर्गवासी देवगण भी मेरे भान्यकी लाघा कर रहे हैं। मैं आज अपनेको त्रिवशापति हनुमकी अपेक्षा भी अछ समझ रहा हूँ।' सर्वरक्षासुशोभित उत्तरवल भवनमें महोत्तम रिंहासनपर श्रीराम विराजे, विभीषण अध्यर्थदेवक द्वाय जोड़ भरत और सुग्रीवकी सुति करने लगा। लक्ष्मनिवासी प्रजाकी रामदर्शनार्थ भीड़ लग गयी। प्रजाने विभीषणको कहलाया, 'प्रभो ! इमठो उस अनोखी रूप-मात्रुरीको देखे बहुत बिन हो गये। शुद्धके समय हम सब देख भी नहीं पाये थे। आज हम दीनोंपर दयाकर हमारा हित करनेके लिये कहणामय हमारे पर पशारे हैं, अतएव शीघ्र ही हम लोगोंको उनके दर्शन कराइये।' विभीषणने श्रीरामसे पूछा और दयामयकी आङ्ग पाकर प्रजाके लिये ड्राइ लोल दिये। लक्ष्मा के नर-नारी श्रीराम-भरतकी खाँड़ी देखकर पवित्र और सुख हो गये। यों तीन दिन बीते। चौथे दिन रावण-माता कैक्षीने विभीषणको शुद्धाकर कहा, 'वेदा ! मैं भी श्रीरामके वर्णन करूँगी। उनके दर्शनसे महासुनिगण भी महापुण्यके भागी होते हैं। श्रीराम साड़ा र सनातन विष्णु हैं, वही यहाँ चार रूपोंमें अवतारी हैं। सीताजी स्वयं लक्ष्मी हैं। तेरे भाई रावणने यह राज्य नहीं जाना। तेरे पिताने कहा था कि रावणको मारनेके लिये भगवान् विष्णु रघुवंशमें दशरथके यहाँ श्राद्धभूत होंगे।' विभीषणने कहा—'माता ! आप नये वज्र पहनकर कल्पन थालमें चन्दन, मधु, अचार, दधि, वूर्वाक अध्यं सजाकर भगवान् श्रीरामके दर्शन करें। सरमा (विभीषण-पद्मी) को आगे कर और अन्धान्य देवकन्याओंको साथ लेकर आप श्रीरामके समीप जाएं। मैं पहले ही वहाँ चला जाता हूँ।'

विभीषणने श्रीरामके पास जाकर वहाँसे सब लोगोंको विलक्षण हठा दिया और श्रीरामसे कहा, 'देव ! रावणकी, कुरुभक्षणकी और मेरी माता कैक्षी आपके चरण-कमलोंके वर्णनार्थ आ रही हैं, आप हृषापूर्वक उन्हें दर्शन देकर कृतार्थ करें।' श्रीरामने कहा, 'भाई ! तुम्हारी मा तो मेरी 'मा' ही है। मैं ही उनके पास चलता हूँ, तुम जाकर उनसे कह दो।' इतना कहकर विशु श्रीराम उठकर चले और कैक्षीको

देखकर मरुकरे उसे प्रणाम किया तथा बोले—‘आप मेरी भर्त-भाला हैं, मैं आपको प्रणाम करता हूँ। अनेक उत्थ और महान् उत्थके प्रभावसे ही मनुष्यको आपके (विभीषण-सद्गुरु भक्तोंकी जलनीके) चरण-दर्शनका सौभाग्य मिलता है। आज मुझे आपके दर्शनसे बड़ी प्रसन्नता हुई। जैसे व्यक्तिशब्दजी हैं, वैसे ही मेरे लिये आप हैं।’ बदले में कैक्षीने मातृभावसे आशीर्वाद दिया और भगवान् श्रीराम-को विश्वपति जानकर उनकी स्तुति की। इसके बाद ‘सरमा’ने भगवान् की स्तुति की। भरतको सरमाका परिचय जाननेकी इच्छा हुई, उनके दृश्यरेको समझकर ‘इन्निटविद्’ श्रीरामने भरतसे कहा, ‘यह विभीषणको साक्षी भार्या है, इसका नाम सरमा है। यह महाभागा सीताकी मिथ्या सत्त्वी हैं, और इनकी सखिता बहुत दृढ़ है।’ इसके बाद सरमाको समयोचित उपदेश दिया। फिर विभीषणको विविध उपदेश देकर कहा कि ‘हे निष्पाप ! देवताओंका मिथ्या कार्य करना, उनका

अपराध कही न करना। लक्ष्मी भग्नी मनुष्य आवें तो उनका कोई राजस वष न करने पावे।’ विभीषणने आज्ञानुसार चलना स्वीकार किया।

तदनन्तर बापस बौटनेके लिये सुखीब और भरतसहित श्रीराम विमानपर चढे। तब विभीषणने कहा ‘प्रभो ! यदि लक्ष्मी उल र्षों-का-र्षों बना रहेगा तो पृथ्वीके सभी लोग यहाँ आकर हम लोगोंको तंग करेंगे, इसलिये क्या करना चाहिये ?’ भगवान् ने विभीषणकी बात सुनकर उत्तरको बीचमें से तोड़ डाला और दूर योग्यनके बीचके दुक्षेके लिए तीन दुक्षें कर दिये। तदनन्तर उस एक एक दुक्षेके लिए छोटे छोटे दुक्षें कर डाले, जिससे उल दूद गया और यों लक्ष्मीके साथ भारतका भार्गु पुनः विभिन्न हो गया ! यह कथा पश्चात्यायसे ली गयी है।

—रामकिंकर.

गोस्वामीजीकी निष्काम-भक्ति

(लेखक—पं० श्रीजगन्नाथप्रसादजी मिश्र वी० ८०, वी० ए०)

चतुर्विंश भजन्ते मां जनाः सुश्रुतिनोऽर्जुन ।

आतों जिज्ञासुरर्थार्थां ज्ञानी च भरतर्षम् ॥

(गी० ७ । १६)

दिक्षु स श्लोकमें भगवान् श्रीकृष्णने भक्तोंकी चार श्रेणियाँ बतलायी हैं। आर्त, जिज्ञासु और अर्थार्थी, ये तीन भेद सकाम भक्तोंके हैं। चौथी श्रेणी ज्ञानी अर्थात् निष्कामी भक्तोंकी है।

इनमें प्रथम तीन श्रेणीके भक्त निष्क्रेष्टीके हैं। भक्तिकी चरम सीमा निष्काम भक्ति है और इस भक्तिको ग्रास कर देनेपर भक्तोंके लिये और कुछ बाध्यनीय नहीं रह जाता। इसप्रकारकी भक्ति सर्वथा अहैतुकी होती है अर्थात् इसका कोई हेतु नहीं होता। इसमें स्वार्थका अवधेश नहीं रहता। अहैतुकी अर्थात् निष्काम भक्ति ही भक्तिकी पराकाढ़ा है और इस भक्तिसामृतका एक विन्दु भी जिसने पान कर लिया, उससे बदल बद्धागी इस संसारमें और कौन दूसरा हो सकता है ?

किन्तु, संसारमें ऐसे विलो ही भक्त हुए हैं जिनके इत्यमें निष्काम भक्ति जन्मसे ही उत्थम हुई हो। अन्य

प्रकारके भक्त प्रारम्भमें निष्क्रेष्टीके ही भक्त ये, किन्तु भक्तिका निरन्तर निवृत्त दृश्यसे अम्बाल करते जरते अन्तमें उन्होंने भी निष्काम भक्तिको प्राप्त कर लिया, जैसे कि श्रुत आवि। प्राचीन कालमें हम इसप्रकारकी अहैतुकी उक्त भक्ति बालक प्रह्लादमें पाते हैं। किसी स्वार्थ अथवा हेतुको लेकर प्रह्लादके हृष्यमें भगवन्नकि उत्पत्त नहीं हुई थी। बालक प्रह्लाद दिन-रात एकनिष्ठभावसे भगवान्नामका स्मरण एवं कीर्तन किया करते थे। उन्हें स्वयं इस बालक कुछ भी ज्ञान नहीं था कि वे क्यों और किस लिये नाम-स्मरण किया करते हैं। उनके हृष्यमानसमें भक्तिका निर्मल स्रोत अनवरतरूपमें प्रवाहित हो रहा था और उस भक्ति-भगवीर्यीमें अपने सम्पूर्ण मन, प्राण, इन्द्रियको निमित्त करनेमें उन्हें एक प्रकारका अनिवृत्तचीय आनन्द प्राप्त होता था। बस, इसके सिवा उनकी भक्तिका, उनके अहर्निश भगवान्न-स्मरणका और कोई दूसरा कारण था हेतु ही नहीं था। प्रह्लादकी भक्तिसे प्रसन्न होकर जब भगवान् उन्हें बर देना चाहते थे तो प्रह्लादने क्या ही सुन्दर उत्तर दिया है—

यस्त आशिष आशास्ते न स भूतः स वै वणिक्।
आशासानो न वै भूतः स्वामिन्याशिष आत्मनः ॥
न स्वामी भूत्यतः स्वाम्यमिच्छन्मो राति चाशिषः ॥
(भगवत् ७।१०।५०.)

अर्थात् हे भगवन् ! जो आपसे वरदान पानेकी आशासे अर्थात् किसी उहेश्य या मनोरथको लेकर आपकी भक्ति करता है वह सच्चा भक्त, सच्चा मेवक नहीं, वह तो प्रेमका बनिया है, वह तो भक्तिका सौदा करता है, और उसके बदलेमें प्रभुसे कुछ चाहता है। ऐसे ही जो स्वामी अपनी मान-प्रतिष्ठाके लिये वरदान देना चाहता है वह भी सच्चा स्वामी नहीं। फिर भी यदि मेरे मालिक मेरी सेवापर प्रसन्न होकर वर देना ही चाहते हैं, तो यही वर दें कि “कामाना हृष्टमरोहं भवतग्नु कृष्ण वरम्” मेरे हृदयमें कामनाओं-की कभी उपत्ति ही नहीं हो। अहा ! निष्काम भक्तिका कितना सुन्दर परिपाक है। धन्य है इस भक्तप्रवर बालक-की यह निष्काम भक्ति और धन्य है वह देश जिसने ऐसे भक्तशिरोमणिको पैदा किया। अपने ऐसे भक्तोंको लक्ष्य करके ही तो भगवान्ने उद्घवसे कहा है—

न किञ्चित्साधवो धीरा मत्ता द्योकान्तिनो मम ।
वाञ्छन्त्यपि मया इनं केवल्यमपुनर्भवम् ॥
(भगवत् ११।२।०।३५.)

अर्थात् मेरे जो अनन्यभक्त भक्ति करनेपर भी कैवल्य या भोजकी इच्छातक नहीं रखते, वे पवित्र और धीर भक्त ही मुझे प्यारे हैं।

अच्छा, यह तो हुई आर्द्धनकालके निष्काम भक्तोंकी बात। अब हमारे हिन्दी-कवि-कुल-कमल-दिवाकर भक्तिभास्कर गुसाई तुलसीदासजीकी निष्काम भक्तिका नमूना लीजिये और उनकी भक्ति-सुधार-रसकी चाशनी चरित्रे। आह ! तुलसीकी अनन्य निष्काम भक्तिका क्या कहना है ? वह तो पुरुष-सलिला भारीरथीकी विमल-धर्वल-धारासे भी निर्मल, स्फटिकसे भी बदकर स्वरूप एवं द्राशासिता और इच्छे से भी बदकर मधुर है। उसकी मधुरतामें जो मात्रकना है वह संसारमें अन्यथा तुलसी है। उस मात्रकनामें जो एक बार मन हो गया, तुलसीकी अनन्य-भक्तिका रसामूल जिसने पानकर लिया, उस निरङ्खल प्रेमका छलकता हुआ प्याला जिसने अपने मुँहमें आँख मूँदकर ढंडेल लिया, उससे बदकर भाव्यवान् इस संसारमें और कौन है ? तुलसीदासजीकी निष्काम भक्ति कितनी उच्च,

गम्भीर युवं सरस है, इसका अन्दाज़ा उन्हीं लोगोंको मिल सकता है जिन्होंने तुलसी-साहित्य-सरोवरमें गहरे गोते लगाये हैं। ‘विनयपत्रिका’ में अपने हृष्टदेव भगवान् रामचन्द्रके प्रति आह-निवेदन करते हुए इस महामहिम महामाने निष्काम-भक्ति-परिपूरित जो हृदयोदगार प्रकट किये हैं वह तो वास्तवमें अनुपम, अतुलनीय तथा अद्वितीय हैं। सारे विश्व-साहित्यको छूँढ़ जाइये, धार्मिक अन्यांका मन्थन कर डालिये, किर भी आपको ‘विनय’ के पद निराले ही प्रतीत होंगे और आपके मुखसे वरवस निकल पड़ेगा ‘धन्य है तुलसीदास और धन्य है उनकी निष्काम भक्ति !’ ‘विनयपत्रिका’के मंगलाचरणमें ही तुलसीदासजीने अपने इस भक्तिभावका यों परिचय दिया है—

माँगत तुलसीदास कर जोरे । बसहि राम मिय मानम मोरे ।

तुलसीदास कर जोड़ कर माँगते तो हैं, लेकिन क्या माँगते हैं ? हम संसारी जीवोंके समान धन-दौलत, मान-मर्यादा, स्वर्ग, यहांतक कि मोक्ष भी नहीं माँगते। बस, माँग इन्हीं ही हैं कि ‘वसोहं राम-भिय मानस मोरे ।’ एक ही वरदान चाहिये, हृदयमें एक ही आकांक्षा है, दिलमें एक ही चाह है और वह यही है कि—

अर्थ न भर्म न कागमचि, गर्त न चहों निर्बान ॥

जनम जनम गर्त रामपट, गर्त वरदान न आन ॥

उन्हें इसके भिन्ना और कुछ नहीं चाहिये। फिर चाहनेको और रह हीं क्या जाना है ? एक दूसरे पदमें तुलसीदासजी कहते हैं—

‘तुम तो बड़े दीनदयालु हो। तुम्हारे समान दानी भी दूसरा कोई नहीं है। तुम्हारा नाम ही गरीबनिवाज है। फिर एक बार क्यों नहीं कह देने कि ‘तुलसीदास मेरो’। बस, मैं हतनेसे ही हृतार्थ हो जाऊँगा।’ तुलसीके हृदयमें एक ही लालसा है, एक ही अभिलाषा है; वह यह है कि— ‘न्यो न्यो तुलसी ठापानु चरन-मग्न यादि ।’ चाहे जिस तरह हो तुलसीदासको कृपासागर प्रभुकी चरण-शरण मिले। और सुनिये, महाराम तुलसीदास अपना मनोभिलाष अपने मालिकमें इसप्रकार व्यक्त करते हैं:-

चहोंन मुगति मुमति संपति कहु रिखि सिखि विपुल बडाई ।
हेनु-रहत अनुगम गम-पद बढ़ो अनुदिन अधिकाई ॥

सुगति नहीं चाहिये, सुमति नहीं चाहिये, सम्पति, अद्विदि, सिद्धि, बडाई कुछ भी नहीं चाहिये। बस, यदि चाह

है तो केवल यही कि रामपदमें दिन दिन अनुराग बढ़ता जाय। और वह अनुराग भी कैसा? हेतुहित अर्थात् किसी हेतु या मतवदको लेकर नहीं, बिलकुल अहेतुक, निःस्वार्थ। वह हेतुहित अनुराग ही क्यों चाहिये? और कोई अभिवादा या लालसा क्यों नहीं? इसीलिये कि—

अब नाथहि अनुरागु जागु जड़ त्यागु दुरासा जी ते।
बुझे न काम-अग्नि तुलसी कहु विषय-भोग नहु जी ते॥

—कामनाओंका तो कोई अन्त ही नहीं। इसपर भी यदि विषय-भोगकी याचना की जाय तब तो वह कामाप्ति और भी ध्वक उठेगी। अतएव नाथमें ‘अनुराग जगे’ ऐसा उपाय अब करना चाहिये, क्योंकि नाथमें ‘जब भूनुराग जग जायगा तो फिर कामका नाम ही नहीं रहेगा।’

जहाँ राम तहौं काम नहि, जहाँ काम नहि राम।

गुसाहंजी अपने प्रभुसे कहते हैं कि यदि दान ही देना है तो तुगमिदासपर किरणा करिय नगति दान देहु आत।

—भक्तिका दान दीजिये, और किसी बस्तुका नहीं। महारामा तुलसीदासजीके इस निष्काम भक्तिभावका परिचय हम उनके अमूल्य अन्य रामायणमें अनेक स्थलोंपर पाते हैं

परमानन्द कृपायतन मन-परिपूर्ण काम।
प्रेम-भगति अनपाशनी देहु हनहि श्रीराम॥
नाथ पक बर मौगी, राम कृपा करि देहु।
जनम जनम प्रभु-पद-कमल, कबु धैर जनि नेहु॥

रामदास तुलसी अपने नाथसे, मालिकसे एक वर माँगते हैं, वह वर यदि तुलसीके मालिक देनेकी कृपा करें तो इस रूपमें दें कि अपने चरण-कमलमें जन्म-जन्म स्नेह नहीं घटने दें अर्थात् इस संग्राममें भले ही बार-बार आना-जाना पढ़े, लेकिन इस मालिकके चरण-कमलमें तुलसीका नेह घटे नहीं, बढ़ता ही रहे। सेवकसेव्यभावका किनाना सुन्दर चित्र सींचा है। बलिहारी है इस सेव्य-सेवक-भावकी! तुलसी-जैसे सेवकों पाकर कौन मालिक अपनेको धन्य नहीं मानेगा? एक दूसरे प्रसंगपर गुसाहंजी बतलाते हैं कि इस शरीरसे उन्हें इननी भमता प्रेम क्यों है? केवल इसीलिये कि—

सबकर फल रघुपतिपद भ्रेमा। तेहि बिन कोउ न पावै लेमा॥
इहि तन रामभगति मैं पाई। ताते मोहि भमता अधिकाई॥
जेहि ते कल्पु निज स्वारथ होई। तेहिपर भमता कर सब कोई॥

इस शरीरसे ही तो राम-भक्ति करनी है? तो फिर इस शरीरपर भमता क्यों न हो? लोग स्वार्थके लिये ही तो भमता करते हैं और तुलसीका भी एकमात्र स्वार्थ अपने प्रभुसी भक्ति करना है। अच्छा, अब तुलसीदासजीके हृदयकी एकमात्र लालसा क्या है सो भी उम्हीके शब्दोंमें सुन लीजिये—

दूरी त्रिविनि ईशना गाढ़ी। एक लालसा उर अति बाढ़ी॥
गमचरन बारिज जब देखीं। तब निज जनम सुपल करि लेही॥

इसमें भक्तिका चरम उकर्ह ही निष्काम भक्ति है। इस प्रकारका एक भी निष्काम भक्त जिस देशमें हो, वह देश धन्य हो जायगा, उस देशके निवासी अपने कृसार्थ हो जायेंगे। माना बसुन्धरा भी ऐसे ही भक्तों पाकर अपनेको मनाथा समझती है, जैसा कि नारद भक्तिसूत्रमें लिखा है ‘मोदनि पितरो नृत्यन्त देवताः; सनाथा चेयं भूभवति।’ ‘पितृ-गण आनन्दित हो उठने हैं। देवतागण नाथने लगने हैं और पृथ्वी मनाथा हो जाती है।’ ऐसे ही भक्तोंके देशमें भगवान् हो जाने हैं—

‘अहं भक्तपराधीनो ह्यस्तन्त्र इव द्विज।
सानुभिर्यस्तहृदयो भक्तंभक्तजनप्रिधः॥

‘मैं स्वयं स्वतन्त्र नहीं हूँ, मैं भक्तोंके अधीन हूँ। भक्तोंने मेरे हृदयको अम लिया है।’ महारामा तुलसी इसी कोटिके निष्काम भक्त थे। भगवान् रामचन्द्रमें उनकी अनन्य भक्ति, निष्काम प्रेम एवं एकनिष्ठ अनुराग था। अपने हृष्टदेव जानकी-जीवनपर बलि जानेके लिये उनका हृदय आकुल हो रहा था। ‘जानकी-जीवनकी बलि त्रैही।’ सच्चे रामदास ढहरे न? हृदयका कोई भाव छिपाया नहीं। हृदयका कणाट बिलकुल उन्मोचन कर दिया, कलेजा काढकर रख दिया, दिल खोलकर दिला दिया और दिला दीं अपने हृदयमें निरन्तर जलनेवाली वह अनुराग-आगकी ज्वालामयी लपटें, जिनमें पढ़कर सारे विषय-भोग भसीभूत हो रहे थे। गुसाहंजीकी रामायणके पढ़नेवाले इस देशमें लालों नहीं करोड़ों होंगे! किन्तु हममेंसे कितनेको उनकी-जैसी निष्काम भक्तिका शतांश भी ग्रास हो सका है? हममेंसे कितने लोग विषयभोगसे विरत होकर उनके समान रामदास बननेमें समर्थ हुए हैं? अभी तो हम कामदास ही बने हुए हैं। आज हममेंसे कितने ऐसे हैं जो तुलसीदासकी भक्ति-भगवान्नीयकी सुशीलन-धारासे अपने नीरस हृदय-सरोवरको सरसित करके उसमें शतदलपश प्रस्फुटित करनेकी

चेष्टा करते हैं। महात्मा तुलसीदास अपनी रुचिर रचनाओंके रूपमें हमारे लिये जो अमूल्य निधि छोड़ गये हैं उनका उपयोग करना भी तो हम नहीं जानते। आज जो हमारे हृदयमें अशान्ति एवं हाहाकारकी व्यनि प्रतिच्छन्नित हो रही है, भक्ति-नांगाकी पावन पुण्यमयी धारासे बच्चित होकर हमारा हृदय जो निराशा एवं निरानन्दके कारण नीरस हो रहा है उसे एक बार फिर भक्ति-सुधासूत्रसे सरसित करने और सुरक्षाये हुए प्राणोंको भक्ति-सखीवनीसे सखीवित करनेका काम यदि कोई कर सकता है तो वह हैं तुलसीदास और उनका अमर साहित्य। इसलिये हे भारतवासियो! आहुये आज हम सब मिलकर भक्तिपूर्वक गुसाईंजीके स्वरमें स्वर मिलाकर भगवान्‌से यह वरयाचना करें कि—

कामिह नारि पियारि जिमि, लोभिह प्रिय जिमि राम।
तिमि रघुनाथ निरन्तर प्रिय लाग्नु मोहि राम॥

राम-चरित-शिक्षा-सार

पुरुषोत्तम श्रीरामने, लेकर मानव-रूप।
कहकर नहि, करके हमें, शिक्षा दी बहुरूप॥
हमको रखना चाहिये, सदा उसीका ध्यान।
यदि नत्सेवक-भावका, हैं हमको अभिमान॥
पिता-बचनसे राज्य तज, करके विधिन-पद्यान।
दिखलाया पिनु-भक्तिका, शुभ आदर्श महान॥
शबरीकि आनिधिको, कर स्वीकार सहपे।
क्या न पनित-उद्घारका, दिखलाया आदर्श;
बनचर-मेना साथ ले, सद्यन शत्रु, निज जान।
दिया मङ्गाटन शक्तिका, परिचय हमें महान॥
पिपुलोदर सहदय निग्य, दिया उमं सम्मान।
राजनीति-सीजन्यका, यह आदर्श महान॥
बाह्यण-कुल-सम्भूत भी, गवणका कर धान।
‘जन-पीड़िक सब बथ्य हैं,’ बननार्थी यह चान॥
बनलाया संसारको, कर सीताका न्याग।
‘राजाका सर्वमूल है, एक प्रजा-अनुगग॥
गुरु-आज्ञासे भी नहीं, करके यनः विवाह।
एक-यत्नी-व्रतका हमें, दिखलायाँ हैं राह॥
हाय ! भूलना जा रहा, यह आदर्श समाज।
हम पद-पदपर पा रहे, अनः पगभव आज॥

नन्दकिशोर श्री ‘किंशु’ काव्यनाथ।

गुसाईंजी और सीता-वनवास

(लेखक-श्रीब्योहार राजेन्द्रमिहनी)

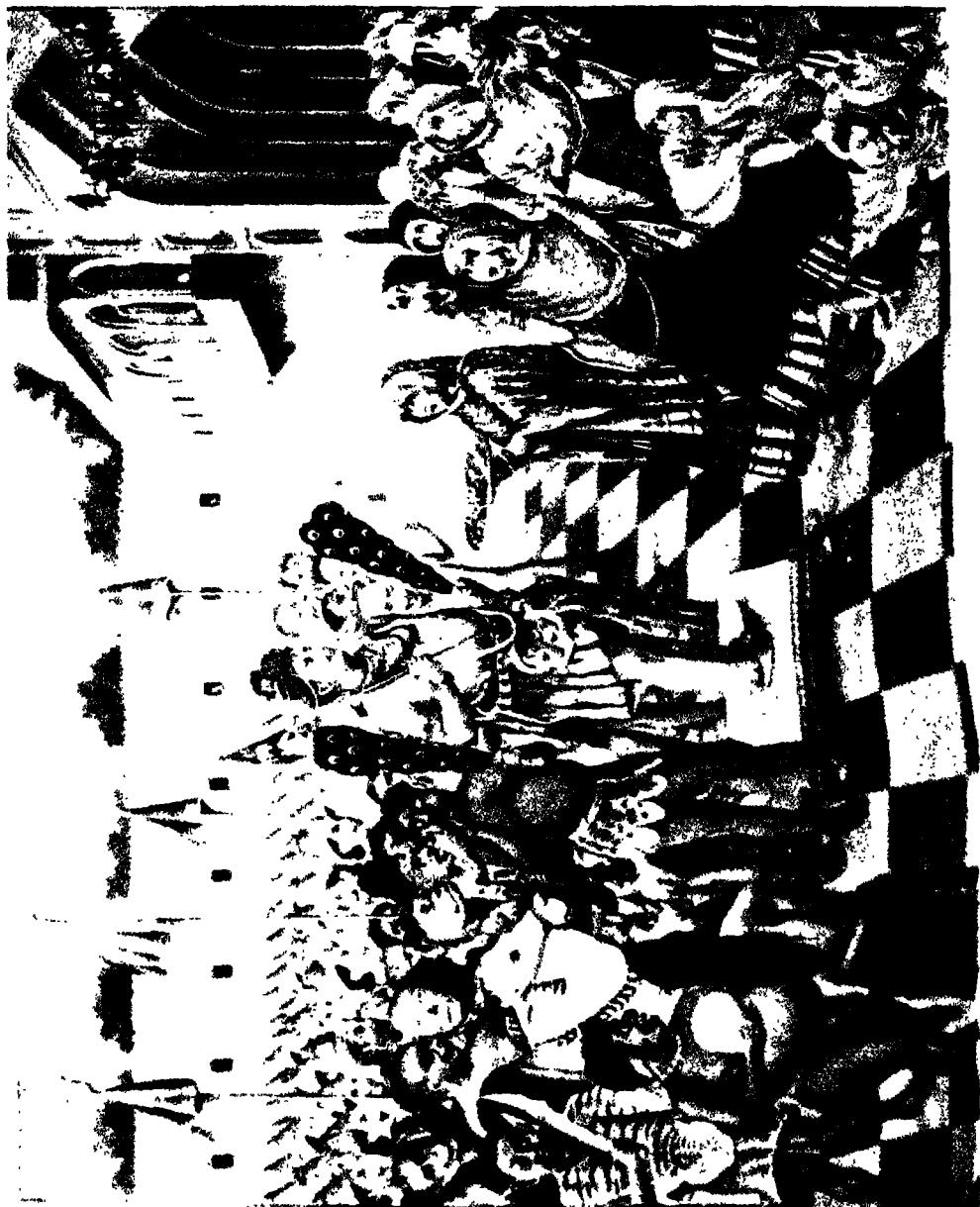


ता सरीखी सतीत्वकी जीती-जागती
मूर्तिको केवल लोकापवादके कारण
वनवास दिया जाना, और विशेषकर
श्रीराम-सदा मर्यादा-पुरुषोत्तमके हारा यह
कठोर कार्य होना-- हृदयको दहला देना
है। कुछ लोगोंका तो मत है कि यह प्रसंग ही कल्पित है।
रामजी कभी ऐसा अन्याय-कार्य कर ही नहीं सकते। कुछ लोग
इसे श्रीरामके यश-चन्द्रमें कलंकरूप मानते हैं।

यहाँ हम कार्यके न्यायान्यायपर बहस करनेसे तो
लेखके बहुत बढ़ जाने और विषयान्तर हो जानेका डर है।
इसलिये हम यहाँ केवल इसी बातपर विचार करेंगे कि
गुसाईंजीने हम प्रश्नको किम उत्तिसे देखा है, तथा इसका
केमा वर्णन किया है।

मबसे पहले यह बात अच्छी तरह समझ लेना
आवश्यक है और तुलसीदासजीके ग्रन्थोंका अध्ययन करने-
वाले हमें अच्छी तरह जानते भी हैं, कि गुसाईंजी किसी भी
कविके पांडे आँख बन्द करके नहीं चले हैं। कविता, शैली,
और चरित्र-चित्रण आदि सभी विषयोंमें उन्होंने दूसरोंका
आधार लेने हुए भी अपनेपनको कायम रखा है।
कथानकों भी उन्होंने बाल्यांकि या किसी पूर्ववनों कविके
अनुसार ज्यों-का-न्यायों नहीं रामकर अपनी विशेष स्थिता
समाजको आवश्यकनानुसार परिवर्तित, परिवर्धित या
परिवर्मितरूपमें मबके सामने रखता है। राम नों वही है
जो बाल्यांकि कालिकाय या अध्यात्मरामायणके हैं, किन्तु
नुदमीके राम वही होने हुए भी उन मबमें भिज है—वे
केवल नुदमीहोंके राम हैं। उनके चरित्रमें उन्होंने
समाजको आदर्शभूत आवश्यकनामायणका समावेश किया है।
जिसे अनुपयोगी समझा उमे छोड़ दिया, जिसे उपयोगी
समझा उमे जोड़ भी दिया है। उदाहरण देनेमें कहेंवार
बड़ जायगा। इनः हम विषयको यहाँ छोड़ने हैं।
कथानकोंके विषयमें भी उन्होंने इसी परिपाठीका आवश्यक
किया है।

सीता-वनवासकी कथा भी इसीबेसे एक है।
गुसाईंजीकी सीता, बालसीकि वा कालिकासी सीतासे



श्रावण चार्दिलुवे । गंगा समुद्रम वायडि नामा ॥
कृष्ण शर्वी अपार्वती । वायडि वायडि वायडि ॥
पूर्ण वृक्ष वायडि वायडि वायडि ॥
कृष्ण शर्वी अपार्वती । वायडि वायडि वायडि ॥
कृष्ण शर्वी अपार्वती । वायडि वायडि वायडि ॥

बिल्कुल मिज है—उसी प्रकार उनका 'सीता-वनवास' भी दोनों कवियोंसे मिज है। आगे के वर्णनसे यह बात सिद्ध हो जायगी।

वाल्मीकि तथा उनके आधारपर कालिदासका वर्णन इसप्रकार है, कि श्रीराम सीताके विषयमें जोकापवाद सुनते हैं, जिससे उन्हें दुःख होता है और वे जोकापवादके भयमें सीताके ल्याङ्कका निश्चय करते हैं। लक्ष्मणको बुलाकर सीताको गंगापार छोड़ आनेके लिये आज्ञा देते हैं। सीताने एक बार तपोवन देखनेकी रुचि भी प्रगट की थी, अतः उसीके बहाने लक्ष्मण रथपर बैठाकर सीताको वाल्मीकि-आश्रमके सभीप छोड़ आने हैं; वाल्मीकि उन्हें आश्रय देने हैं और वही लक्ष्मणका जन्म होता है। बहुत दिनों बाद अधमध-यज्ञके अवसरपर लक्ष्मण रामायण गाते हुए अयोध्यामें आने हैं। वाल्मीकिजीये सीताका भी पना लगता है, श्रीराम उन्हें प्रह्ला करना चाहते हैं, पर सीताजी अपनी पवित्रताकी माली देनेके लिये भूमिकी गोदमें स्थान चाहती है। उनके स्मर्नित्वको मिद बरनेके लिये भाना पृथ्वी प्रकट होकर अपने गोदमें स्थान देती है।

निरपराधिनी मर्नी सीताको इमप्रकार दुःख सहने तथा अन्यायसे रोदित होने देखकर मनुष्यके हृदयपर गहरी चोट पहुँचता तथा किया किमीको कोऽथ आना भी स्वाभाविक है, किन्तु गुमाईंजीने गीतावलीके बारह पदोंमें इस कथानक-का जिम प्रकार वर्णन किया है, उससे ये भाव बहुत कम हो जाते हैं। श्रीरामचन्द्र बहुत काल रात्रि बरनेके पश्चात् दृढ़के मुँहमें जोकापवाद मुनने हैं और एक ओर एक आरोग्यवर्मन तथा दृमरी ओर पर्वीवर्मनधर्म, इन दोनोंके अपमभूम्यमें पदकर विचार करते हैं। गुमाईंजीका वर्णन इमप्रकार है

पारिंव्र अनिवार ब्रत प्रियंप्रम बाल मुमाः ।
होर दिन किहि भौति निन गुविचारहि चित चाऽ ॥

प्रेमके लिये श्रीरामके मनमें कितना स्थान था और वह किम प्रकार अन्योन्य था, इसे गुमाईंजीने आगे चर्कार भलीभौति दिखलाया है

गम गुग्यत भीय मनु प्रिय मनहि प्रान प्रियः ।
परम पावन प्रेम परिमति, समुद्रि तुलसी गाः ॥

विना अनन्यता और अन्योन्यताके प्रेम कोई बहु नहीं। यदि खोका धर्म पतिव्रत है तो पतिका धर्म भी पतीव्रत है। यह सम्बन्ध प्रेमका है, अधिकारका नहीं।

२३

श्रीरामको सीताके पातिव्रत तथा गुण-शीलकी ओर देखकर उन्हें ल्यागनेमें बहुत ही असमझस होता है—

मेरे ही मुख सुखी सुख अपनो सपनदू नाहि ।
मोहिनी गुन गोहिनी गुन सुमिरि सोच समाहि ॥

मचमुच 'राम-सीता-हस्त्य'को तुल्यमीशामर्हीने अच्छा तरह समझा था। रामजीने हृदयर्हानको तरह विना कुछ करे सुने ही महसा अपने मनसे ही उनका ल्याग नहीं कर दिया, सीताकी सजाह बोकर ही उन्होंने पेसा किया—

दृत मुख मुनि लोकभुनि घर धरनि पूछी आय ।

इस पदसे यह बात स्पष्ट हो जाती है। इस प्रगाढ़ प्रेम तथा धर्मका सम्बन्ध इस प्रकार नहीं सोचा जा सकता जैसा कि अन्य कवियोंने वर्षे न किया है। श्रीराम यदि सीताजीसे सजाह नहीं लेने तो मचमुच वे बड़े भारी दोष-के पात्र समझे जाते।

फिर श्रीरामने लक्ष्मणको कंख सीता-ल्याङ्की ही आज्ञा नहीं दी, किन्तु उन्हें वाल्मीकिजीको सौंप आनेका काम भी सौंपा—

बालमीकि मुनीस आवम आइयहु पहुँचाइ ।

लक्ष्मणजी भी उन्हें कंख गंगा-नदीपर छोड़ नहीं आये, वह उन्हें वाल्मीकिजीके हाथोंमें सौंपकर आते हैं—

आय लक्षन लै सौंपी सिय नुनीमहि भानि ।

यद्यपि वाल्मीकिजे पाप छोड़ना रूप ल्याग उतना निष्ठुर नहीं तथापि ल्याग तो है ही। सीताजीको अवश्य ही बड़ा भारी आघात लगा और उन्होंने लक्ष्मणसे दीन होकर कहा—

लक्ष्मणल कृपाल ! निष्ठहि डागबी न विसरि ।

पालबी सब तापसनि ज्यो राजधरम विचारि ॥

किन्तनी गहरी मार्मिक चोट है ! पलीरूपसे न सही, राजधर्मके अनुसार एक तापसीके रूपमें तो सीता अवश्य ही पालनीय हैं, वह भी सो एक प्रजा है !

कालिदासने भी सीताके मुखसे यही कहलाया है—

नृपम्य द्वार्गाश्रमपालनं यन् ।

स एव भमो मनुना प्रणीतः ।

निर्बासितायेवमतस्त्वयाह—

तपस्व सामान्यमेवशनीया ॥

ब्रह्मव्यजी वहे ही दुखी होते हैं, वे सोचते हैं, मैं ही सीताको सदा दुःख देनेका कारण हूँ, इरण भी मैंने ही कराया और अब बनवास भी मैं ही दे रहा हूँ।

गैंगे मौन ही बारहि बार परि पाय ।
जत जनु रथ चोरकर लठिमन मरन पछिताय ॥
असन बिनु बन, बरम बिनु रन, बच्चों कठिन कुशय ।
दुसह साँसति सहनको हनुमान जयो जाय ॥
हेतु हौं सियहनको तत्र, अबुँ भयो सहाय ।
होन हिं मोहि गाहिनो दिन दैत दामन-दाय ॥
नज्यों तनु संग्राम जेहि लगि नीध जसी जटाय ।
नादि हौं पहुँचाइ कामन चत्याँ अवध मुनाय ॥
और हृदय कठोर करतब सृज्यो हौं बिभि बाय ।
दाम नुलसं जनि राहयो कृपानिधि रुदाय ॥

वाल्मीकि उन्हें सावर आश्रममें रखते हैं, जानकीके आगमनसे वनमें आवन्द छा जाता है। अब लब-कुश-जन्मका समय होता है, उसी रात शनुम भी आश्रममें पहुँचते हैं। वाल्मीकिजी लब-कुशके नामकरण आदि संस्कार करते हैं। वाल्क मुनि-वाल्कोंके साथ खेलते हैं। गुरुआईजीने सीताजीको यहीं राम-विरहमें छोड़ दिया है—

दुखी भिय पिय-बिरह तुलसी सुखी सुत सुख पाह ।
आँख पय उफनात सीचत सरिल ज्यो सकुचाइ ॥

इससे पाठकोंको स्पष्ट हो गया होगा कि तुलसीदासजी-ने इस कथानकको किस प्रकार परिवर्तित कर दिया है।

उत्तरकाल्पके अन्तिम पहोंमें एकमें कैवल्यीका पञ्चतावा तथा दूसरेमें संचेषणमें पूरे रामचरित्रका दिग्दर्शन करा गीतावदी समाप्त की गयी है।

रामायणी कथा

(लग्नः—प० श्रीविष्णुविनायन भाष्याचार्य एम० ३०, (विष्णुभाष्य, शतान्तरवन)



रामकी वस्तु होनेपर भी आन्यान्य अनेक पदार्थोंका भाँनि संस्कृत-माहिन्य भी अब केवल भारतमें हीं भीमावद नहीं हैं; अति प्राचीनकालमें इसने किनने हीं नद-नदी और पर्वत-समुद्रों-को लौंघ दूर दूरके द्वायों और देश-समृद्धोंमें जाकर अपना किनाना प्रभाव फैलाया है और आज भी फैला रहा है। कुछ समयमें इसने पाश्चान्य देशोंमें प्रवेश किया है। इसीमें आजकल केवल भारतवासी हीं संस्कृत-माहिन्यका आलोचना करने हैं, केवल वही इसको समझ सकते हैं या इसपर केवल उन्होंका एकमात्र अधिकार है, ऐसी यात्र नहीं रही है। अब नों यारे जगत्में संस्कृत माहिन्यपर आलोचना होने लगी है। इन आलोचनाका नोन अनेकमुच्ची बहने लगा है। अब इसको न नों रोका जा सकता है और न रोकना उचित ही है। नदीके प्रवाहमें कोई लकावट न होनेमें जैमें वह कभी किसी जगहको बहा ले जाना। और कहीं नयी

जर्मीन निकाल देनी है, इसीप्रकार संस्कृत-माहिन्यका वनमान आलोचनामें भी नये नये इंस-निर्माणकी लाजा चढ़ रही है। ऐसा होना भी सूक्ष्म न्यायाविक है, परन्तु समय-भ्रमयपर कोई-कोई खंस-निर्माण ना ऐसा विश्वय-कर आकार धारण कर लेना है जो कभी कल्पनामें भी नहीं लाया जा सकता। जैसे अन्नका कोई सम्बन्ध न होनेपर भी घुणके द्वितीयमें किसी किर्मीकी इष्टिमें अक्षरांकी इष्टि हो जाती है, वैसे ही माहिन्यालोचनामें भी कोई कोई समालोचक एक अद्युत स्थित रूप ढालते हैं। इधर-उधरकी अनोखी-अनोस्ती आते खंकर उनमें जोड़-माल लगा कर वे ऐसी-ऐसी नयी यात्रे गट ढालते हैं और समय-भ्रमयपर ऐसी शुकियोंका प्रयोग करते हैं, जिसमें वह यात्र वैसे ही माननेके लिये चाप्य होना पढ़ता है। मध्यभव है कि किसी-किसी व्यालपर सचमुच वह बात वैसी ही हो, यरन्तु यमी अगह वैसी ही है, यह बात कभी स्वीकार नहीं की जा सकती।

एक प्रसिद्ध लेखकने बुद्धेवकी जीवनीको सौर-जगत्-का रूपक बताया है। किसीको महाभारतभरमें अयोध्या-तत्त्वके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं दीखना। इस अण्णीके आत्मकोने रामायण भी नहीं कही है। कोई कहने है कि इसमें रूपकके द्वारा उत्तर-पथसे दक्षिण-पथमें आर्य-सम्बन्धानके प्रचारकी बात कही गयी है। कोई कहते हैं कि इसमें गृह शब्दोंमें कृषिका वर्णन किया गया है। और भी अनेक बातें हैं—‘आदिकावड पीछेमें जोका गया है, रामायण-का प्रकृत आरम्भ अयोध्याकाशदसे है, लक्ष्माकाशदमें इसकी समाप्ति हो गयी है, उत्तरकाशप्रसिद्ध है इसमें सो कोई सन्देह ही नहीं !’ सीनानिर्वामन और लक्ष्मण-वर्जन आदि कथाओंकी कल्पना पीछेसे हुई है।’

इन सब बातोंके मिश्र यह भी सुना जाता है कि ‘रामायणको मूल कथा वाल्मीकिगमायणमें नहीं है, योद्धाओंको भी रामायण है। कौन कह सकता है मूलमें उपर्युक्तोंके वाल्मीकिरामायणकी यह कथा नहीं रचा गयी है ? जैनियोंको भी रामायण है इसके अतिरिक्त रामायण स्था एक थोड़ी ही है ? अच्यामरामायण, अनुत्तरामायण इत्यादि किननी रामायण हैं। भागवती विभिन्न भावाओंमें रामायणकी कहानियोंमें किनना भेद है ! फिर जावाहीपमें भी रामायण है। कौन-सी ठीक है ? मवकी आलोचना करनेपर शायद रामायणी कथाके मूलका कहीं पता करो !’

वर्तमान आलोचना-प्रणालीमें इसप्रकार कितनी ही बातें पेंदा हुई हैं सर्वभवनः अभी और भी होंगी।

एग्ननु यह सब घोड़े से परिषट्टोंकी बातें हैं। परिषट्टोंकी आलोचना परस्पर परिषट्टोंके लिये ही है। भारतके आपामर जनसाधारणका इसमें बहुत ही अल्प सम्बन्ध है। वे इन आलोचनाओंकी कोई खोज-खदूर नहीं रखते। उनकी इन्हीं रामायणका आकार कुछ दूसरा ही है। उनके सामने रामायणका स्थान सर्वथा स्वतन्त्र है। रामायण उनके जीवनका, समाजका और धर्मका आदर्श है। सुख-दुःख और सशद-शिपदमें रामायण उनको उज्ज्वल मधुर प्रकाशसे पथ दिखाकर ले जाती है। रामायण उन्हें साम्बन्धना देती है। रामायण उनके हृदयमें अविरल आनन्द और परम शान्तिकी धारा सीचती है। जीवनके प्रतिदिनके कर्तव्यको सामने रखकर रामायण उनकी परिचालना करती है। सब तो यह है कि भारतमें एक और रामायण तथा

दूसरी और महाभारत है, इसीसे भारतके जनसाधारण मनुष्य हैं, नहीं तो वे पशु वन चुके होते। वेद-वेदान्त-दर्शनोंने भारतका इतना उपकार नहीं किया है, जितना रामायण और महाभारतने किया है। रामायण-महाभारत है, इसी-लिये भारत भारत है !

मान लिया कि रामायणमें आदिकावड पीछेसे जोका गया है, अथवा रामायणके या रामायण-र्वाणित वशरथ, राम-लक्ष्मण, भरत-सीता आदिकी कोई ऐतिहासिकता नहीं है। यह भी स्वीकारे कर लें कि रामायण वाल्मीकिजी-की रचना नहीं है। कुछ भी हो या न हो, इतना तो सत्य ही है कि ‘रामायणका आदिकावड नामक किसी पुस्तकका एक अंश है। रामायण नामक एक ग्रन्थ है, और वह किसी एक भारतीयद्वारा ही लिखित है, तथा उसमें राम-लक्ष्मण आदिका एक चित्र है, एक भाव है।’ वर्ष, इन्हें ही वह भारतके जनसाधारणकी बस्तु हो जाती है और वे उसमें जो चाहते हैं यो पा जाते हैं।

भाव और रूप दो बहुए हैं। भाव प्राण है, रूप देह है। जिस चित्रमें सिर्फ कुछ उज्ज्वल रेखाएँ लिखी हैं, पर भावका विकास नहीं हुआ है, वह चित्र चित्र ही नहीं है। जिस काल्पनिकतामें कृतिपथ सुन्दर-सुन्दर शब्दोंका समावेश है, परन्तु भावकी स्वच्छना नहीं है, वह कु-काव्य है, ठीक प्राणहीन देहकी भाँति वह सर्वथा निर्यक है। काव्यका पाठक चाहना है भाव-रस। शब्द भाव और रसके चाहन हैं, इसीलिये वह शब्दको भी चाहना है। काव्यका विपथ सभी समय ऐतिहासिक है, इसके कोई माने नहीं हैं। ऐतिहासिक दो भी मकना हैं और नहीं भी। विषय कलिपत भी हो सकता है। इससे भावके स्फुरणमें कोई बाधा नहीं होती। भावके कार्यमें कोई वति नहीं होती। भाव आनन्द-मय और शान्तिमय है, जिसके चित्रमें भावका उद्रेक होता है, उसीको वह आनन्द और शान्ति प्रदान करता है।

बड़े बड़े समालोचक और लेखक कहने हैं कि स्त्रीष नामक पुरुष कभी कोई नहीं हुए। उनकी ऐतिहासिकताका कोई प्रमाण नहीं है। मान लिया, ऐसा ही है। स्त्रीषकी कोई रूप-मूर्ति कभी थी ही नहीं, परन्तु उनकी इस भाव-मूर्तिने तो कितने हृदयोंको पवित्र और उज्ज्वल बनाकर उन्हें शान्तिमय बना दिया है। हम तो भावमूर्ति ही चाहते हैं, वही हमें मुकिकी और ले जाती है।

राम, लक्ष्मण, भरत, सीता इत्यादि हमारे लिये एक-एक भाव हैं। राम, सीता इत्यादि नाम सुनते ही हमारे

मनमें किसी रूपकी जागृति नहीं होती। एक भावका उदय होता है। वह भाव परम उच्च, परम महान् और परम पवित्र है। उसके साथ यदि इतिहासका कोई सम्बन्ध न भी रहा तो इससे कोई हानि-ज्ञान नहीं होता।

मान लिया, इस भाव-न्यतिके विक्रों कालमीकिने नहीं खोला, पर इससे क्या हानि है? हमारा सम्बन्ध है विक्रिसे, कर्ता कोई भी हों, यह कोई ऐसी बात नहीं है। इम जश रामायण पढ़कर उसके भावोंमें तन्मय हो जाते हैं, तब बालमीकिके नामकी बात किसको याद रहती है। इसीसे भारतीय जनसाधारण इसको कोई विशेष बात नहीं समझते।

आदिकाश्चके 'मा निषाद प्रतिष्ठात्वं' इत्यादि कविता प्रथम श्लोक है अर्थात् इसीसे सर्वप्रथम ऐसे श्लोकोंकी इच्छा आरम्भ हुई, यह एक प्रसिद्धि है; यह भी प्रसिद्ध है कि यही श्लोक रामायण-रचनाका सूत्र हुआ था। भारतीय संस्कृतिकी पृक् प्रधान बात है 'अहिंसा', 'मा दिम्यत मत्तान्तान्त' 'किनी भी भूतको पीड़ा मत पहुँचाओ।' हम यदि विचार करके देखें तो हमें यह दिल्लार्यां देखा कि भारतवर्षकी माधना-का मूलमन्त्र है शरोत-मन-वाणी और जानि, देखा, कालके

निर्विशेषसे 'अहिंसा', 'किसीको भी पीड़ा न पहुँचाना।' साधनाके मार्गमें निषेध और विचान दोनों ही रहते हैं, कुछ करनेका निषेध होता है तो कुछ करनेके लिये विधि होती है, परन्तु इन दोनोंमें जो निषेधका पालन नहीं कर सकता, उससे विधिका पालन भी नहीं हो सकता। एक स्थूल इष्टान्त लीजिये—जो परमीडनका त्याग नहीं करता वह पर-उपकार नहीं कर सकता। इसीसे पहले आवश्यकता होती है निषेधकी तदनन्तर विधिकी। अहिंसा एक निषेध है। यह कहा जा सका है कि समस्त माधनाद्वारोंका मूल अहिंसा है। मालूम होता है, इस अहिंसाको ही समग्र कल्याण-साधनाके पथमें प्रथम स्थान देकर आलोच्य कविताकी रचना की गयी है। इसीसे वह 'प्रथम' या 'नवीन' श्लोकके नामसे प्रसिद्ध है, अन्यथा इसमें पूर्व ऐसा छन्दोवद श्लोक था या नहीं, सो कुछ कहा नहीं जा सकता। अहिंसाके विपरीत हिंसाका क्या परिणाम होता है सो रामायण में दिखलाया गया है। इसीलिये टीकाकारागण कहते हैं कि आलोच्य श्लोकमें कान्यार्थकी सूचना की गयी है। जिम न्यायमें इस श्लोकको प्रथम श्लोक कहा जाना है, टीक उमा न्यायमें हम रामायणको भी 'आदि-काल्य' कह सकते हैं।

तुलमीकृत गमायण और उमसे मंमारका उपकार

(उपक- श्रीदेवीप्रगाढ़जी द्वारा 'कुसुम कर' वं० ००, अन्तर्म० ००)

हि
नी-न्याहिन्यमें रामायण एक अपूर्व अन्य है। उसमें अर्थके या उसके समान ही अन्य और माधवाद्वारोंमें भी कम निकलेंगे। दिन्दी-भागा-भार्या जी-पुरुषोंमें उसको वयोवित सम्मान प्राप्त है। अन्य भाषाएँ के विद्वानोंकी इष्टिमें भी, जिन्होंने गमायणका केवल अनुवादमात्र पढ़ा है, उसका स्थान बहुत ऊँचा है। भारतवर्ष-के अधिकांश भागोंमें यह अन्य प्रायः प्रत्येक घरमें विद्यमान है।

रामायणमें एक अपूर्व माथुर, भाव और जादू है। जो उसको एक बार पढ़ लेता है उसका विस्त उसको बार-बार पढ़नेके लिये लक्ष्यात्मा है। वह जिन्हीं ही बार पढ़ करता है उसका ही उसका आनन्द बढ़ना जाता है। यद्यपि कहीं कहीं ऐसे गृह भाव हैं कि जिनका वयोवित ज्ञान अनिमृतम्

इष्टिमें हो सकता है, तिसपर भी भाषा मधुर और सरल होनेमें पाठ्य उमसे अपनी बुद्धिके अनुग्राम ममक ही सेते हैं। जैर्मा बुद्धिवाला उमसको पढ़ना है उमसको वैसा ही आमन्द आता है। इसमें कविकी नाहिन्यपाण्डुर्दीना, रचना-चानुर्ग और विह्वलाका पूर्ण परिचय मिलता है।

मृद्दम विषयोंका इमप्रकार मधुर, सरल, सामग्रभिन्न एवं अपूर्व कवितामें वर्णन करना किनीं माधवाद्वा कविका काम नहीं था। यदि ऐसा होना तो इसको आज इन गमायणकी टक्करके अन्य किनने ही अन्य देवतानेको मिलते। तुलमीकृतके समान कोई अब हिन्दी-नाहिन्यमें फिर जन्म लेगा या नहीं इस बाबमें मनदेह है। अन्य है! उम महाकविको, जिनकी अमृतमर्यादी वार्या करोड़ों नग-नानियों-के हृदयमें धर्म, भक्ति और ज्ञानकी प्रवाल लहरें उठानी हुई आएँ या नहीं हैं। भवित्वमें भी जबक क हिन्दी भाषा

वर्तमान रहेगी तबतक उसके साहित्य-भवनपर तुलसीकृतकी
यशःयताका फहराती रहेगी ।

रामायण हमारे प्यारे आर्यावर्तका प्राचीन हनिहास है । उससे हमें राजनीतिकी शिला प्राप्त होती है । उसमें उपदेश भरे हुए हैं । वह एक उत्तम काल्पन है । वह पग-पगपर हमको सीधे और सचे मार्गका दिग्दर्शन कराती है ।

यदि सूक्ष्मदृष्टिये रामायणके अन्यान्य विषयोंपर विचारक प्रथेके विषयमें विमारपर्वक लिखा जाय तो एक अक्षण्य ही ग्रन्थ तैयार हो सकता है । किन्तु अधिक न लिखकर प्रथेक विषयके सम्बन्धमें हम दो-दो चार-चार बातें ही याहापर पाठकोंको सुनाने हैं ।

इतिहास

हम अन्यसे यमन भारतवर्षका परिचय मिलता है । हमसे पता लगता है कि उस समय हमारे देशमें वर्षाश्रमों-का आमन किनना ढँचा था, गृह और गार्हस्थ्य-धर्मको श्री-पुरुष किम प्रकार पहचानते थे ? तथा गजा और प्रजामें क्या सम्बन्ध था ? सभी एक दृसरेके किम प्रकार शुभेच्छु रहने थे ?

भगवान् श्रीगमचन्द्रजी कहते हैं—

जामु राज्ञिग्र प्रजा दुकारी । गो न उ अवग्नि भरक अधिकारी ॥

पाठको ! ऐसे गजा आजकल आपको किनने दिखायी देने हैं जो निष्कपट-भावमें ऐसा कह सकते हों ? श्रीगमचन्द्रजी इन शब्दोंको अपने संकटके समयमें कह रहे हैं । उनको अपने सुख-नुःव्यक्ता हतना ज्यान नहीं है जिनना कि अपनी आर्ही प्रजाका है । वे फिर भरनजीमें कहते हैं—

मो विचारि महि गंकट भारी । करु प्रजा परिवार सुवारी ॥

प्रजाकी भक्ति भी राम-चन्द्रासके समय देखने योग्य है—
गमु चक्न अति भयंड विपादृ । मुनि न जाइ पुर आगननादृ ॥

प्रजा कह रही है—

जहाँ रामु तहैं सबुइ समाजू । बिनु रामुकी अवध नहिं कातृ ॥
चलू माथ अम मंत्र ददाई । सुरदुरुलभ मुख सदन बिहाई ॥

बहुत समझानेपर भी प्रेमके कारण वे नहीं छौटते—
किए भरम-उपदेश घनते । लोग प्रेमबम फिरहि न कंगे ॥

दूसरी जगह वे कहते हैं—

अहुत गम गजा अवध मरिय माँगु सब कोय ।
रामायणमें मुख्योंकी स्थिति भी कैसी थी—

बरनास्तम निज निज धरम निरत बेदपथ लोग ।

चलहि मदा पावहि मुख नहि मय सोक न रोग ॥

देहिक देविक भौतिक नापा । गमगत नहि काहुहि व्यापा ॥

मन नर करहि परमपर प्रीती । चलहि मन्दर्भम निगत श्रुतिरीती ॥

चारिहु चरन धरम जग मार्ही । पूरि रहा मपनहु अव नार्ही ॥

× × ×

नहि दृष्टि कोट दुर्मी न दाना । नहि कोट अबुध न लच्छनहीना ॥
सब निर्देश धर्मगत पुरी । नर अम नारि चतुर सब गुरी ॥
सब गुरुगय सब पांडित ग्यारी । सब छतरय नहि कपटसयाना ॥

× × ×

एक-जारि-ब्रत-रत नर जारी । ते मन बच ब्रह्म पति-हित-कारी ॥

रामायणमें हमको उम समय जो प्रथाएँ आयोंमें प्रचलित थीं वे भी मालूम होती हैं । जैसे जन्मोस्तव, नामकरण, सुषडन, यज्ञोपवीत, स्वयंवर, विवाहकी अनेक प्रथाएँ, गज्याभियेक, वरदान, दाहिया, अनियिस्तकार, युद्धकी अनेक प्रथाएँ भर्ती होना आदि । ‘रामायणमें आयोंकी प्रथाएँ’ हमी शारीरकमें बहुत कुछ लिखा जा सकता है । किन्तु पाठक स्वयं रामायणमेंसे हन प्रथाओंको आसानीमें जान सकते हैं ।

हम अन्यमें रथभूमिका बठनाओंका भी वर्णन है—
दाहं महाप्र-सित्तम कोटिन्दृ विविध विविध गोला चले ।
पहरत जिनि पञ्चिपाव गर्जत जनु प्रत्यके बादलं ॥
मकट विकट भय तुटन कटन न टटत तन जर्ज भय ।
गहि मैर न गढगर चल नहि जहैं मैर नहि निमिच्चर हप ॥

× ×

मध्यानि धनु सर्वनिकर लोटंपि दरम जिमि डडि लागहीं ।
गहे पूरि सर धारी गगन दिसि विदिमि कहैं कपि भागहीं ॥

लंकाकाशदमें अधिकांश मार-काटका ही वर्णन है ।
रामायणमें श्रीरामचन्द्रजीके पूर्वके भी कहैं राजा-महाराजाओं और अधियों सुनिधोंका हाल मालूम होता है । जैसे विद्रोहेतु, शिवि, हरिश्चन्द्र, कर्यप, दर्यीचि, जमदग्नि आदि ।

उस समय ज्ञाति और मुनि अपने तपोबलसे क्या नहीं कर सकते थे ? श्रीरामचन्द्रजी वाल्मीकिजीसे कहते हैं—
तुम्ह विकालउत्तरसी मुनिनाया । विश्व बदर जिमि तुम्हरे हाथा ॥

भरतजी वशिष्ठजीके विषयमें कहते हैं—

गुरु विवेकसागर जग जाना । जिनहिं विस्त कर बदर समाना ॥

उस समय शकुन आदिपर भी लोगोंका पूर्ण विश्वास था । इसका उखेल रामायणमें जगह-जगह किया गया है । यथा—
 ‘राम सीय तनु सतुन जनाये : फरकहिं मंगल अंग सुहाये ॥’
 ‘सूर्पनखहिं आगे करि लौनी । अनुभ रूप तुति नाशा हीनी ॥’
 ‘जब अति नयो विरह उर दाहू फरकः जान नयन अरु बाहू ॥’
 ‘अस्कुन होन लगे विधि नाना । रंवाहि बहु मृगलु खरस्वाना ॥’

अभी खोजनेसे रामायणमें और भी कई ऐतिहासिक बातें मिल सकती हैं ।

राजनीति

यद्यपि तुलसीदासजीको राज काजकी आत्मोमें कोई ममदन्त नहीं था, वह धर्मोपदेशकमात्र थे । निमपर भी रामायणमें उनके राजनीति ममदन्ती उच्च कोटिके विचार छमको कहूँ न्यायोंमें बिजते हैं । इसीमें मालूम होता है कि उनको हाइ गज-न्यवन्यपर भी थी । नीचे इस विषयमें उनके कुछ विचार दियाये जाने हैं । वे मन्थगामे कहलवाने हैं—
 कोउ नृप हाइ इमहिं का हानी । चंगि लाडि अब होव कि रानी ॥

किसी किर्माका कहना है कि तुलसीदासजीकी इस उक्तिका प्रभान हमलोगोंपर बहुन बुरा पढ़ा है और उनको ऐसा नहीं कहलवाना चाहिये था, किन्तु ऐसा कहलवाके यह भूत्त जाने हैं कि ये शब्द एक कृठिल, दुष्ट और नीच वासीमें तुलसीदासजीने कहलवाये हैं न कि किसी बुद्धिमान और आदर्श पुरुषमें ।

अ.गे आरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीमें कहने हैं—

‘गहु करहु सबकर परिनोद् । ननक नान होइदि बड़दो ॥’
 जासु राज विद्य-प्रजा तुमारी । मो नूदु अप्पमि नाक-भयिकारी ॥
 रहहु नान अस नीरन विचारी । सुनत रानन देवगुरुन मारी ॥’

वाल्मीकिजीमें रामचन्द्रजी रहनेके लिये स्थान पूछते हुए कहने हैं—

मुनि तापम जिनने दुख नहहीं न नेम्य विनु पादक रहहीं ॥

रामचन्द्रजी मुमन्तको विदा करने हुए कहने हैं—

कहव मैंदेंग भरनक आ । नीनि न नजब राज-पद पाए ॥
 पाखु प्रजहि कर्म भन बानी । संवहु मातु सकल मम जानी ॥

आगे वशिष्ठजी कहने हैं—

सोचिय नृपति जो नीति न जाना । जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना ॥

गुह निशादको देखिये ! वह भरतजीका आगमन सुन शंका करता हुआ कहता है—

भरत न राजनीति उर आनी । तब कलंक अब जीवन हानी ॥

तुलसीदासजीने राज-मदका उखेल भी कहूँ स्थलोंपर किया है । वे जानते थे कि इस रोगसे कहूँ राजा अस्त होकर राजनीतिको भूल जाते हैं, विसका परिणाम उनके नाशका कारण होता है । यथा—

‘कहीतात तुम नानि सुहाई । सबते कठिन राज-मद भाई ॥’

‘भरतहि होइ न राज-मद, विधि हरि हर पद पाय ।

करहु कि कौंजी भीकरन्हि, ढीर-सिन्हु विनमाय ॥’

‘सहसबाहु मुरनाथ निरसंहृ । केहि न राज-मद दीन्ह कलंक ॥’

राजनीतिके अनुमार सुणायकी भहिमाका गान भी तुलसीदासजी जगह जगह कहते हैं । यथा—

‘जाइ सुराज मुंदम सुखारी । नृष्ट भगत गति नेहि अनुसारी ॥’

‘अगम बाम बन मंसर्त भाजा । मुर्खा प्रजा जनु पाद भुराजा ॥’

कोब किनतोनकके मुंहमें गुमाईजी कहलवाने हैं—

रामकृष्ण-निधानः निवाजा । परित्रन प्रजा चर्चित जम राजा ॥

चाहे कोई भी कारं हो राजा को उसे प्रस्तेक जानि और सम्प्रदायके अनुयोदोंके मनके अनुमार करना चाहिये ।

‘रुह-पद-कमन प्रनाम इति बेठे भायमु पाइ ।

विष्र भद्राजन मीचव मब उंग समामद भाइ ॥’

‘भरत विषय सादर विनिय कर्मिय विचार बहारी ।

काब्र मातुगम नोकमन नृप भग निर्म भिचंति ॥’

ये उदाहरण मिर्क छायोध्याकाशहम्मे लिये गये हैं । इसीमें अयवा अस्य कायहांसे यैकहों उदाहरण लिये जा सकते हैं ।

उपदेश

रामायणमें परा-पगापर हमको उपदेश मिलने हैं । यहाँ पर उनका योहा-मा दिग्दर्शनमात्र किया जाना है । यथा—

(१) विद्वानों और गुरुओंका आदर—

‘मुनि अगमन मुना तब राजा । मिन्दन नयेड ले विष्रसमाजा ॥’

‘रुह अगमन मुनत रुनमाजा । द्वार आइ नायड पद माया ॥’

(२) प्रतिज्ञा—

‘गु-कुल रीति मदा चरि भाई । प्रान जहु बहु बचन न जाई ॥’

(३) पिताका पुत्रपर प्यार—

सब दुख दुसह सहावहु मोही। लोचन-ओट राम जनि होही॥

(४) माता-पिता में भक्ति—

मुनु जननी सोइ सुत बड़ भागी। जो पितु-मातु-बचन-अनुरागी॥

(५) खीकी पतिपर प्रीति—

जहँ लगि नाथ नेह अद्यनां। पिय विनु तियहि तरनिहुंतं तांतं॥

तनु धनु धानु धानि पुरराजू। पति-बिहीन सब सोक-ममाजू॥

प्राननाथ कर्मनायन सुंदर मुखद सुजान।

तुम्ह विनु रघु-कुल-कुमुद-विधु सुरपुर नरक समान॥

(६) सासकी पतोहार प्रीति—

जिअनमूरि जिनि जोगवत रहेह, दीपवाति नहि दाम कहेह॥

कलपनाके जिमि बहु विधि लाही। सांचि सनेह सरिन प्रतिपारी॥

(७) सौतेली माका प्रेम—

तुम्हरेहि भागु रामु बन जाही। दूसर देनु तात कहु नाही॥

 X X X

जहि न रामु बन रहहि करंगू। मुत साइ करेहु इहै उपदेश॥

(८) संगतिका परिणाम-

रामतारक जो साँचहु काही। माँगु देहु मन नावन आही॥

 X X X

जो विधि जनम देह अरि लोहू। होहि गम-मिय पृत-पतोहू॥

ऐसा कहनेवाली केकेहा कुटिल मन्धगसे बहकारी
जानेपर कहती है—

हो। १ प्रान मुनिवय भरि जो न रामु बन जाहि।

माँगु मरनु राज-राजमु नृप समुशिष्य मन माहि॥

गुसाईजा कहते हैं—

को न कुगरनि पाय नसाहि। रहे न नीच मते गुरुआहि॥

अतिहि भुमीक केकई रानी। दुष्ट संगु ते मति बाँगानी॥

और—

सठ गुधरहि संसंगति पाए। पारस धात कुधात दुआए॥

(९) बड़े भाईपर प्रेम—

गुरु पितु मातु न जानो काहू, कहा सुभाउ नाथ पतिआहू॥

मेरे सबह एक तुम्ह स्वामी। दीनबंधु उर अंतरजामी॥

कानन करहु जनम भर बासू। इहि ते अधिक न मोर सुपासू॥

(१०) मित्रता—

जेन मित्र दुख होहि दुखारी। तिन्हहि विलोकत पातक भारी॥

(११) अधर्म—

जे अथ मातु विता गुरु मरे। गाह गोठ महि सुर-पुर जारे॥

जे अथ तिथ बालक बध कीन्हे। भीत महीपति माहुर दीन्हे॥

X X X

बेचहि वेद धरम दुर्दि लेही। पिमुन पराय-पाप कहि देही॥

कपटी कुटिल कलहप्रिय क्रोधी। बेद-विदूषक विस्वविरोधी॥

होमी लम्पट लोल लबारा; जे ताकहि पर-धन पर-द्वारा॥

X X X

जे नहि सामुंद्र अनुरागे। परमाय-पथ-विमुख अभगे॥

तजि श्रुति-पंथ बामपथ लहही। बंचक विरचि वेष जग छलही॥

(१२) नारी-धर्म—

करेहु मदा संकर-पठ पूजा। नारि-धर्म पतिदेव न दूजा॥

अमित दानि भर्ती बैदेही। अथम सो नारि जा सेव न तेही॥

बृद्ध रोगबस जड धनहीना। अंथ बधिर क्रोधी अनिदीना॥

पेसहु पतिकर किय अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना॥

एके धर्म एक ब्रत नेमा। काय बचन पन पतिपद भ्रेमा॥

पतिबंचक पर-पति-रति करहै। रौंरव नरक कलपन्त परहै॥

(१३) संघकका धर्म—

श्रीरामचन्द्रजाको अपर्नी सेवासे सन्तुष्ट करके इतुमान्जी

मांगते हैं—

नाथ भगति तव भ्रति अनपायनि। देहु दयाकरि मिव-मन-नार्यन॥

(१४) छोटे भाईपर प्रीति—

अन विचारि जिय जागु नारि निनहि न जगत सहोदर-भ्राना॥

(१५) पतिका खीकी उपदेश—

आयु मंति सामु-सवकाई। सब विधि नारिनि भवन भलाई॥

पंहि तें अधिक धरमु नहि दूजा। सादर सामु-ममुर-पठ-पूजा॥

(१६) घरकी फूटका परिणाम विभीषण
अच्छीतरह दिवाता है।

ऐसे उपदेशोंके अतिरिक्त और फुटकर उपदेश भी
बहुतायतसे मिलते हैं। उदाहरण—

‘धर्म न दूसर मत्य समाना। आगम-निगम-पुराण बसाना।’

‘दर्मनि दमकि रही धन माहो। खलकी प्रीति यथा धिर भारी।’

‘बरपहि जलद भूमि नियराये। यथा नवर्हि तुथ विद्या पाय।’

‘बुद अधात सहहि गिरि कंसे। खलके बचन सन्त सह जैसे।’

‘कुद्र नरी भरि चलि उतरहि । जस थेरे धन सकु चौराहि ।’
 ‘महानुषि चलि फूटि कियाती । जिमि स्वतंत्र होइ विगरहि नारी ।’
 ‘चक्रबाक मन दुख निसि भेली । जिमि दुर्जन पर-सम्पति देली ।’
 ‘कादर मन कहैं एक अधारा । दैव दैव आलसी पुकारा ।’
 ‘सठसन बिनय कुटिलसन प्रीती । सहज कृपनसन आसत नीती ।’
 ‘क्रेविहि सम कामिहि हरिकथा । ऊसर बीज बये फल जया ।’

‘फूले फले न बेत जदपि सुधा बरपहि जलद ।
 मूरख हृदय न चेत जो गुरु मिलहि विरोधि सम ।’

‘कौल कामबस कृपण बिमूढा । अति दिरिद्र अजसी अति बूढा ।’
 ‘सदा रोगबस सन्तत क्रोधी । राम विमुख श्रुति संत विरोधी ।’
 ‘तनुपोषक निन्दक अध्यात्मी । जीवत शब सम चौदह प्रानी ।’

उत्तम काव्य

कविता—ममंजु पुरुषोंके लिये रामायण एक बड़ा आनन्दायक ग्रन्थ है। जिस काल्यमें अलङ्कार, व्यङ्गकी प्रधानता, रस और माधुर्य होता है, वह काव्य उत्तम कहा जाता है। रामायणमें आदिसे अन्त तक ये सब भरे पड़े हैं।

अलङ्कार तीन प्रकारके होते हैं। शब्दालङ्कार, अर्थालङ्कार और उभयालङ्कार।

शब्दालङ्कारमें किसी शब्दके बदले उसी अर्थका दूसरा शब्द रख देनेसे काव्यके नियमके अनुसार शुद्ध होनेपर भी वह अमल्कार नहीं रहता। यथा—

‘तेहि कारन आवत हियहारे । कामी काक बलाक विचार ।’
 ‘शलका शलकत पाँयन कैसे । पङ्कज कोस ओसकन जैसे ।’

इसमें यदि काक या बलाक अथवा कोस या ओसके बदले यदि कोई दूसरा शब्द रख दिया जावे तो वह अमल्कार नहीं रहता। शब्दालङ्कार आठ प्रकारका माना जाता है।

अर्थालङ्कारमें शब्द पलटनेसे अमल्कारमें कोई त्रुटि नहीं आती। यथा—

‘सोहत जनु जुग जलज सनाला । मसिहि सभीत देत जयमाला ।’

इसमें यदि ‘जलज’के बदले ‘कमल’ और ‘ससिहि’के बदले ‘विदुहि’ रख दें तो अमल्कार नहीं जाता। अर्थालङ्कार-को १०० अथवा इससे भी अधिक प्रकारका मानते हैं। किन्तु कवियोंका मत है कि इन सबमें सुख उपमालङ्कार है और अन्य अलङ्कार उसीके भिन्न भिन्न रूप मानते हैं।

कालिदास उपमा देनेमें भेद भाने जाते हैं, परन्तु तुलसीदासजीकी उपमाएँ भी बड़ी ही अनूठी हैं। यथा—
 ‘अरुन-चरन-पङ्कज-नस-जोती । कमल-दलनिह बैठे जनु मोती ।’
 ‘डगह न संभु सरासन कैसे । कामी बचन सती मन जैसे ।’
 ‘मन मलीन तन सुंदर कैसे । विष-रस भरा कनक घट जैसे ।’
 ‘जनक लहेड़ सुख सोच निरहि । पैरत थके थाह जनु पाई ।’

उभयालङ्कार—एकसे अधिक अलङ्कारोंके सम्मेलनको उभयालङ्कार कहते हैं। यथा—

कर्म बचन मानस विमल, तुम्ह समान तुम्ह तात ।
 गुरु समाज लघु बन्धु गुन कुसमय किमि कहि जात ॥

इसमें अनन्य (अर्थालङ्कार) और अनुग्रास दोनों सम्मिलित हैं। कविलोग उभयालङ्कारके भी भेद और उपभेद भानते हैं।

व्यङ्गकी प्रधानता—

‘चरन-पीठ करनानिधानके । जनु तुग जामिक प्रजाप्रानके ।’
 ‘गुरु विवेकसागर जग जाना । जिनहि विस्व कर-बदर समाना ।’

रामायणसे सैकड़ों उदाहरण दिये जा सकते हैं।

रस—कविलोग इसके ६ भेद भानते हैं। कोई-कोई भक्ति और वास्तव्यको भी सम्मिलित करके ॥ ६ भेद भानते हैं। यथा—

(१) वीर—

‘सुनि सेवक दुख दीनदयाला । फरकि उठी द्वै भुजा विमाला ।’
 ‘देवि न जाय कपिनके ठटा । अनि विमाल तनु भालु सुमदा ।’
 ‘धावहि गनहि न औंघट बाटा । परबत फोरि करहि गहि बाटा ।’

(२) करुण—

‘मंजु विलोचन माचति बारी । बोली देखि राममहतारी ।’
 ‘हारवुनन्दन प्रान परिते । तुम बिनु जियत बहुत दिन बीते ।’

(३) शृङ्खाल—

‘एक बार तुनि कुसुम मुहर्ये । निजकर भूपण राम बनाये ।’

(४) हास्य—

‘देखि सिवहि सुर तिय मुसुकाही । बर लायक दुलाहिनि जग नाहं ।’

(५) भयानक—

‘लागत अवध भयानक मारी । मानहुँ काल रात अधियारी ।’

(६) अहृत—

‘रहे छाह नम सिर अह बाहू । मानहुँ अभित केतु अह राहू ।’

(७) वीमतस—

जोगिन भरि भरि खप्पर साँचहिं। मूल पिसाच विविध विचि नाचहिं॥

(८) रौद्र—

'पुनि सकोप बेले जुवराजा। गाल बजावत तोहि न लाजा ॥'

'जो सत संकर करहिं सहाई। तदपि हतौं रघुबीर तुहाई ॥'

(९) शान्त—

दीप-सिखा-सम जुवति जन मन जनि होसि पतझ ।

भजहिं राम तजि काममद करहिं सदा सतसङ्ग ॥

(१०) भक्ति—

कामिहि नारि पियारि जिमि लोभिहि जिमि प्रिय दाम ।

ऐसे हैं कब लागिहौं तुलसीके मन गम ॥

(११) वात्सल्य—

मेरे भगत राम दोड आँखी। सत्य कहौं करि संकर साही ॥

रहा माझुये, सो इसके लिये उदाहरण्यको आवश्यकता नहीं। इसका तो रामायणभरमें खोत वह रहा है।

इसप्रकार हम देखते हैं कि रामायणमें प्रतिहासिक और राजनीतिक बातें हैं। उसमें अच्छे अच्छे सारगम्भित उपरेका है और वह एक उत्तम काल्य है। इसके अतिरिक्त उसमें और भी समाज, शास्त्र, धर्म-नीति, परितोद्धार, दृष्टव्य-नीति आदि सभी विषयोंकी अनेक बातें हैं। जो उदाहरण इस लेखमें दिये गये हैं उनमें कहाँ कहाँ इनकी भी महत्व दिलायी पड़ती। सारांग यह कि इस ग्रन्थमें एक ही जगह तुलसीदासजीने हमारे लिये कई अच्छी अच्छी सामग्रियाँ एकत्र करके रख दी हैं। रामायण लिखकर उन्होंने जो संसारका उपकार किया है वह अक्षयनीय है।

बन्दौं सबहिं रामके नाते

(लेखक—श्रीमुखनेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव' बी० ८०)



शकी विविध विषयमताओंमें एक परम रहस्यकी अद्भुत जीला चरितार्थ हो रही है। जीवनके चढ़ाव और उत्तरमें एक प्रछाद प्रवाह अवाध गतिसे बहता चला जा रहा है। सुख और दुःखके मूलमें बसनेवाली अन्तर्धाराको वाल्य विषयमता स्पर्शतक नहीं कर सकती। जीवन और मृत्युको प्रेरित करनेवाली मानव-हृदयकी अन्तर्ज्ञानीतिको जगत्का निखिल अन्धकार प्रभावित नहीं कर सकता। इस विविध-रस विश्वकी तहमें 'एक-रस' ही निरन्तर प्रवाहित हो रहा है जहाँ जीवनकी जटिलता, विषमता तथा विरोध पहुँच नहीं पाते। हमारे कान्तदूरीं महर्थि कवियोंने इसी ज्ञानकी मूल-आध्यन्तरिक ज्ञोति, हृदयकी अन्तर्धारा, तथा परदेके भीतरकी एक 'अनुपम छविके आलोकपर बे-सुध होकर प्राणोंका उपहार लुटाया था। वालभीक और व्यासने, तुलसी तथा सूरने, गेटे तथा होमरने, शेशसीयर तथा शैलीने, नहीं-नहीं, विश्वके सभी आमर कवियोंने 'भीतर' पैठकर 'रस' का पान किया था और इसी आमोन्मादके व्यतिरेकमें बे-सुध हो, जीवन और मृत्युसे ऊपर उठकर आनन्दकी वंशी फूँकी थी। इस आनन्द-प्रवाहके एक घूँटसे विश्वकी आत्म पिपासा

शान्त हो गयी; इस अनुल छविकी एक भाँकीसे जगत्की लृपित आँखें जुड़ा गयीं।

विश्वके इस विराट् अभिनयका एक ही नायक है। जगत्के इन नाना नाम और रूपोंमें एक ही नाम और एक ही रूप है! दुनियाँके इन असीम स्वभावोंकी तहमें एक ही सत्य है, एक ही चिरन्तन प्रवाह है! विश्वके यावत् पदार्थ 'उसी' के स्पर्शके लिये व्याकुल हैं, जालायित हैं, और सभी वस्तु 'उसी' एक परम वस्तुके साथ सम्बन्ध चरितार्थ कर रही हैं। विश्वको असत्य, प्रवञ्चना, अविवेकादिपूर्ण मानकर इसके प्रति विरक्ति उत्पन्न करना संशयवाद (Scepticism) ही के नामसे पुकारा जायगा। परमायमाको विश्वकी विविध लीलाओंसे परे मानकर तथा इस जगत्को परमायमासे रहित मानकर ज्ञान और विवेककी शुष्क खोजमें जीवन भले ही खण्डा दिया जाय परन्तु उस शुष्कतामें मानव-हृदयको रुचिर शान्ति और अनुल आनन्द तथा उरुङ्गताका आभास भी नहीं मिल सकता! शृणा, विरक्ति तथा उदासीनता किससे करें? इस 'मिथ्या' जगत्से? अपना 'धर' छोड़ देनेपर परमायमाका धर कहाँ मिल सकता है? क्या अपने ही धरको 'उस' का धर बनाकर उसीके द्वित्य आलोकसे अपने अन्यकारपूर्ण अन्तस्तकाको आलोकित न कर सें? विश्व-नाटकके

अधिनायककी विस्तिक लीलासे आँखें भूँदकर 'उसे' हम कहाँ देख सकते हैं ?

चरचरकी सारी बहुपृष्ठ केन्द्रोन्मुख हो उसी 'एक' में जय होना चाहती हैं, अपने अन्तरमें उसी 'एक' के स्पर्शके लिये व्याकुल हैं। हमारे मनीषी, परिभूः स्वयम्भूः कवियोंने सृष्टिकी हस 'व्याकुलता', हस 'पिण्डा,' हस आनन्दिक 'शुधा' को अपने भीतर अनुभव किया और सभी बस्तुओंमें उसी एक लीलामयकी अद्वृत अपार लीला देखी। उनका जीवन साधना एवं चिन्तनकी लीलाभूमि था। वे अपने भीतर विश्वके तथा विश्वके भीतर अपनेको देखना जानते थे। हस रहस्यके मूलमें बसनेवाले सनातन-सम्बन्ध (Eternal Contact) को उन्होंने भलीभांति देखा एवं सुना और हस लीला-मानुषीपर अपनेको न्योछावर कर दिया, आत्म-विस्मृत हो निराकारमें अपने साकार स्वरूपको जय कर दिया !

जिसप्रकार हस विराट् विश्वके रंगमञ्चका नायक एक सर्वव्यापी परमात्मा है, उसी प्रकार रामायणस्पी नाटकके नायक भगवान् रामचन्द्र हैं और जिस भाँति विश्वके बावजूद पदार्थ उसी 'एक'से अपना सम्बन्ध चरितार्थ कर रहे हैं उसी भाँति रामायणमें आये हुए सभी पात्रोंका सम्बन्ध किसी-न-किसी प्रकार रामचन्द्रसे है ! 'यतो वाचो निवन्ते अप्राप्य मनसा सह—कहकर कवि या भक्तको शान्ति नहीं मिलती; वह तो मन और वचनसे अगम्य उस परमरूपको भी अपनी कल्पनासे चित्रित कर ही डालता है और विश्वको हस रूपकी सुषमामें अपार शान्ति तथा अनुल आनन्द मिलता है। विश्व अपनी सुन्दरताके कारण आकर्षक नहीं प्रस्तुत हसलिये हैं कि हसकी सुन्दरतामें एक इव्वत्परम-रूपकी सुन्दरसा प्रतिभाषित हो रही है। हसकी लक्ष्म-भक्तुरताके परदेमें अमरत्वकी मजुर कीड़ा हो रही है। एक बार परदा उठाइये—आँखें आघा जार्यगी उस छविको देखकर ! 'दूँघटका पट' खोल देने पर आकर्षणकी बास्ती किसे नहीं मोह लेती ! परदे-तरकी सुन्दरीको देख लेनेपर विश्वकी सारी शोभा फीकी मालूम होने लगती है ; जिन वस्तुओंमें 'वह छवि' वसती है वहाँसे और छवि लजित तथा कुचिलित हो सिहर-सिहर अपने बाणोंको समेटने लगती है। उस मस्तीमें, उस डन्मादमें जो आनन्द है, जो उहास है उसे दुनियाँ क्या समझ सकती है ? एक बार उस 'रस' की एक दूँट पी खेनेपर जन्म-जन्मान्तर सुमारी नहीं मिलती !

इसके बाद नीरस-जैसी कोई चीज ही नहीं रह जाती—
—एकरस, एक राग, एक तान, एक रूप—!

यह जगत् मिथ्या कैसे ? यह तो 'सिया-राम-मय' है, यह एक आर्थ-कविता है, एक अनन्त संगीत है, जिसकी मानुषी यीनेके लिये अपनेको गँवा देना होता है। हसकी कीमत देनेके लिये कितने तैयार हैं ? अपनी दुनियाँ मिटाकर, अपनी सीमामय परिधिकी रेखाको मिटाकर इस विराट्-मिलनमें जहाँ केवल 'सीताराम' ही हैं, सर्विलित होनेके लिये कितने तैयार हैं ? दद्द-बीवानी मीराने हस रसको पीया था, कबीरने, सूरने और तुलसीने पीया था ! परन्तु तुलसीका इस बहुत ही मजुर है ; सूरकी बेहोशी और भीराकी आत्मविस्तृति जनसाधारणकी पहुँचसे बाहरको है, कबीरका ब्रह्मवाद बहुत ही कठिन है, पर तुलसीकी साधना, तन्मयता तथा अनुभूतिको हस सभी थोड़ा-बहुत समझ सकते हैं और अपने जीवनको संयमके बेहुनमें हस भाँति परिचालित कर सकते हैं, हस 'राजमार्ग' पर हसनी सुगमता और सुख-से चल सकते हैं कि 'धूरस्य धारा निशिता दुर्गत्या, दुर्ग पथस्तन्कवयो वदन्ति' में सन्देह होने लगता है। मीरा और सूर हमें हस पर्यावर आधारसे बहुत शीघ्र उपर उठाकर उस परमान्म-भावमें जय कर देते हैं, जहाँ अनन्त शीतलता और अमर शान्ति है परन्तु उस डन्मादको जीवनमें उतारना जरा कठिन हैं पर तुलसीदास हमारे हृदयको धीरे-धीरे उदाद और उच्चत बनाने हुए 'रस'के उस महासागरमें हमारे चुद्ध बिन्दुको सदाके लिये जय कर देते हैं—जहाँसे लौटनेकी कोई कल्पनातक नहीं कर सकता—जहाँ हमारा 'स्वार्थ' विश्वके कण-कणमें विघ्न जाता है और सर्वत्र उसी एक रूपकी अपार शोभा देख हम आनन्द-जनित उन्मादमें गा उठने हैं—

'बन्दों सबहि रामके नामे'

रामायणसे स्वार्थपरताका नाश

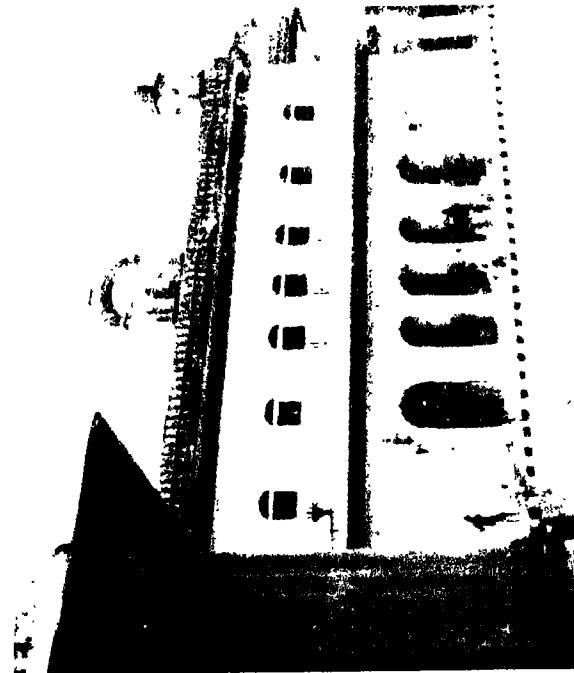
रामायणके द्वारा भारतवर्षसे स्वार्थ परताका दोष जितना कुरु हुआ है, उतना किसी भी नीतिवान्, धर्मचिद्, समाजसुधारक, राजपुरुष और राजाके द्वारा नहीं हो सका।

—विक्रमचन्द्र चट्टोपाध्याय

(श्रीअयोध्यापुरी)



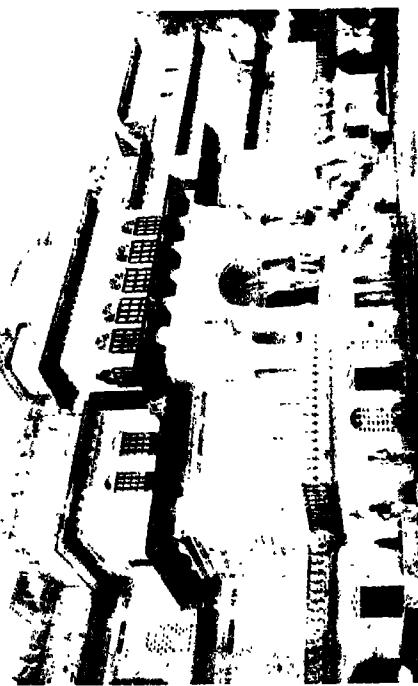
अयोध्या दृश्य (२)



महिंद्र कनकभवन भर्तारी दृश्य



अयोध्या नगर दृश्य (३)



मर्णन्दर कनक भवन (बाहरी दृश्य)

(श्रीअर्योध्यापुरी)



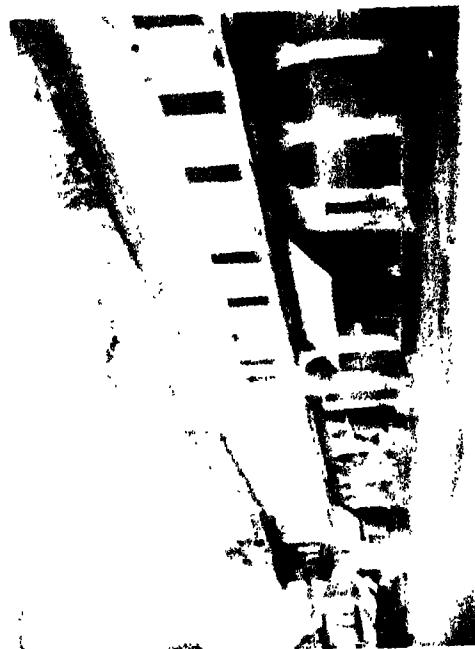
हनमान गढ़ी (?)



मन्दिर हनमान गढ़ी (?)



मन्दिर श्रीनारेश्वरनाथ



मन्दिर श्रीशमशक्ति

श्रीवाल्मीकीय सुन्दरकाण्डम्

(लेखक—श्रीहरित्वरूपजी जौहरी एम० प०,)

सुन्दरं सुन्दरं रामः सुन्दरे सुन्दरी कथा ।
सुन्दरे सुन्दरी सीता सुन्दरं किन्तु सुन्दरम् ॥



सुन्दरकाण्डकी सुन्दरता नामसे ही प्रकट है, जैसा नाम वैसा ही गुण । कथाकी सुन्दरता कविकी कवित्वशास्त्रिकी पराकाष्ठा प्रकट करती है । वैसे तो वाल्मीकिजीका वर्णन तथा उपमाएँ सभी जगह में जो आदृ भरा हैं, वह अकथमीय है । इस लेखका अभिप्राय सुन्दरका सुन्दरत्व वर्णना है ।

बहुत मनन करनेके पश्चात् सुन्दर-काण्डका अलौकिक सुन्दरत्व विशेषतः इन कारणोंसे प्रकट होता है—

(१) सुन्दरकाण्डकी कथा एक भक्त-नाथा है । इसमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके परमसेवक श्रीहनूमान्‌जीके पराक्रम-का आद्योपान्त वर्णन है, जिससे सर्वथ्र धौररसका समुद्र उमड़ रहा है ।

(२) भगवान् रामकी प्रियतमा जगजननी महारानी सीताजी की अति शोषणीय दशाका वर्णन कविने येसा अमर-स्पर्शी किया है कि पाण्डण-हृदय भी बिना आँख बहाये नहीं रह सकता । कल्पणारसका समुद्र उमड़ चला है ।

(३) श्रीमीना महारानीके पातिव्रत तथा सौन्दर्यादि गुणोंका अनुपम चित्र बड़ी ही विचित्रताके साथ चित्रित किया गया है ।

(४) महारानीजीका रावणके प्रतोभन-प्रपञ्च का खण्डन करना तथा उसको पवित्र हितकर उपदेश देना, रावण-सरीखे दुष्ट-व्यक्तिके लिये महाव शिखाप्रद है ।

(५) श्रीवाल्मीकि महाराजकी कवित्य-शक्तिका अनुपम परिचय लड़ा, चन्द्रोदय, उप्पकविमान, अशोक-बाटिका, सीता, अशोक-बाटिका-विष्णुसंवधा लड़ा-इहन आदिके वर्णन-प्रसंगोंमें विशेषरूपसे गिरता है ।

वाल्मीकीय-सुन्दरकाण्डकी कथा श्रीतुदसी-सुन्दरसे निराकी है, अतएव वाल्मीकिनामाद्यसे छानविल्ल पाठकोंके

लिये संषेपमें सुन्दरकाण्डकी कथाका रसास्वादन करा देना आवश्यक है ।

महारानी सीताकी सोज एवं लड़ा-दहनमें सफलता प्राप्त करनेके पश्चात् स्वयं श्रीहनूमान्‌जीने अङ्गदादि बानरोंको (वा० ११५६) जो आम-कथा सुनायी है । वही कथा यहाँपर संचिसरूपसे उद्धृत की जाती है—

जाव्यवान्‌के पूछनेपर श्रीहनूमान्‌जी महाराज कहने लगे—

‘आप ज्ञागोंके सामने मैं इस महेन्द्राचलके शिखरसे उड़ा । जाते ही मार्गमें एक बड़ा विष्णु उपस्थित हुआ । मैंने अपने रास्तेको रोककर लड़े हुए अथव्यन्त सुन्दर और काल्पनमय शिखरयुक्त एक पर्वतको देखा । यह देसकर मैंने अपनी पूँछसे उसके ऊपर इतने जोरसे आघात किया, जिससे उसके शिखरके हजारों ढुकड़े हो गये । इसपर वह महागिरि सुकसे बोला, ‘हे पुत्र ! मैं तुम्हारा चक्र भैनाक, श्रीरामचन्द्र-जीकी सहायता करनेके लिये उद्घत हूँ ।’ मैं उससे अपना अभिप्राय प्रकट कर, जानेकी अनुमति ले आगे बढ़ा ।

तदनन्तर मैंने नागमाता सुरस्ताको देखा, वह तो सुके स्नानेको ही उद्घत थी । मैंने कहा, ‘मैं सीताजीका पता लगाऊ तुम्हारे मुखमें चला आँईंगा,’ पर वह न मार्ना । उसने मुख बदाना शुरू किया, मैंने भी अपना शरीर बदाना आरम्भ किया, अन्तमें मैं अपने विशाल शरीरको अँगूठेके बराबर छोटा बना उसके मुखमें प्रवेशकर उसी चण बाहर निकल आया । तब वह सुम्भपर बहुत प्रसन्न हुई ।

मैं आगे बढ़ा, इतनेमें ही मेरी छायाको किसीने पकड़ लिया । तिंहिका-नाझी राहसी मुँह फैलाकर मुझे खानेको दौड़ा । पहले तो मैंने अपना शरीर खुब बढ़ाया, फिर अट छोटा बन फटपटकर उसका क्लेजा निकाल आकाशमें चला आया । राहसीका हृदय फट गया और वह भर गयी ।

तब बहुत दूर चल कर सन्ध्या-समय मैं बङ्गापुरी पहुँचा । वहाँ जङ्गा-नाझी एक राहसी मुझे भार डालनेके लिये मेरे सामने आई । उस राहसीको मैं बायें हाथके पूँछसे परालकर आगे बढ़ा ।

मैं सारी रात जानकीर्णीकी लोजमें भटकता रहा । रातभारे राहसीमें कुछ भी पता न छरा । तब मैं रोक-

सागरमें दूषने लगा, इतनेमें सुके पक अशोक-बृहोंका बगीचा दिखायी दिया। मैं कूदकर वहाँ पहुँचा और श्रीसीतामहारानीजीको बैठे देखा। वह चोर राष्ट्रसियोंसे खिरी हुई उनसे बार-बार ढाँटी-डपटी जा रही थी। उनका शरीर श्रीरामचन्द्रजीकी विद्योग-चिन्तासे कुश एवं मलिन हो गया था। मैं शिंशुपाके दृश्यपर बैठ गया। इतनेमें मैंने वहाँ महाबली रावण और उसकी खियोंको आते देखा। रावणने आकर सीताको बहुत कुछ समझाया। सीता-महारानीने अन्यन्त कुद हो रावणको निहत्तर कर दिया। इसपर वह दुष्ट उनको मारनेके लिये हाथ उठाने लगा तांग मन्दोदरी-नाम्नी खो बड़े ही कौशलसे रावणको समझा-कुफाकर ले गयी।

इसके उपरान्त सब राष्ट्रसियाँ सीताजीको क्रूर बचन कह धमकाने लगीं, किन्तु, जानकीजीने उन बचनोंकी तिनके-जितनी भी परवा नहीं की। उनका डराना-धमकाना सब अर्थ हुआ। इसके बाद वे सब लेट गयीं। सीताजी अन्यन्त चिन्तित थी। विजय-नाम्नी राष्ट्रसी अपना विद्युत्र स्वप्न सुनाकर सबसे कहने लगी कि, 'खवरदार ! अबसे सीताको डराना धमकाना और उसका चित्त दुखाना विलकूल छोड़ दो। अन्यथा हमारी कुराज नहीं है।'

अब सीताजीसे बातलाप करनेकी मेरी इच्छा बढ़ने लगी। तब मैंने इच्छाकृ-वंशियोंकी प्रशंसा करना शुरू किया। जिसे सुनकर सीताजी सुझसे नाम-धार पूछने लगी। मैंने अपना सब परिचय देकर उन्हें श्रीरामकी अँगूठी सहिदार्नारूप दे दी। किर पूछा कि, 'देवी ! मुझे क्या आज्ञा है ? कहिये तो। मैं आपको श्रीरामचन्द्रजीके पास ले चलूँ।' इसपर उनका नन्दिनी सीताजी कहने लगी, 'नहीं, मैं हम प्रकार जाना नहीं चाहती। यदि श्रीरामचन्द्रजी रावणका बचकर सुके ले जावें तो अच्छा हो।' पश्चात् उन्होंने मुझे अपनी चूहामणि सहिदानी-स्वरूप देकर कहा, 'हे हनुमान ! तुम मेरा सब हाल रामजीसे कहना और ऐसा करना, जिसमें श्रीराम-लक्ष्मण यहाँ शीघ्र आवें। मेरे जीवनकी अवधि केवल दो। मास है।'

ऐसे कर्म-वचन सुनकर मुझे बड़ा दुःख हुआ और मैंने कोधमें भर और महारानी सीतासे विद्या माँग अशोक-वाटिकाको विश्वसं करना शुरू कर दिया। इसकी सूचना रावणको मिली। अस्ती हजार विश्वनामबाटी राष्ट्रस सुके पकड़ने आये, मैंने सबको

मार डाका। जो बचकर आग गये, उन्होंने सब बृतान्त रावणसे कह सुनाया। तब अनुभाली आया, मैंने उसको भी सेनासमेत मार गिराया। मन्त्री-उत्र भी मेरे सामने आया, उसे भी मैंने मार डाला। इसके पश्चात् रावणका उत्र अचम्कुमार आया, मैंने उसको भी यमलोक भेज दिया। तब इन्द्रजित आया, वह सुके पकड़नेमें अपनी असमर्थता देखकर मुझे ब्रह्मास्त्रमें बौधकर रावणके सामने ले गया। मैंने उससे श्रीरामचन्द्रजी तथा उनकी सुग्रीवके साथ मिक्की आदि सभी बातोंको कह सुनाया और सीताजीको छोटा देनेके लिये उसे बहुत कुछ समझाया, इसपर कुद होकर उसने सुके मार डालनेकी आज्ञा दी, उसके भाई विभीषणने सुके बचानेके लिये प्रार्थना की। अन्तमें दूत-वध अनुचित समझकर मेरी पैंख जलानेकी अवस्था की गयी, पैंखमें आग लगा दी गयी और समस्त नगरके राजमार्गोंमें मुझे धुमा-धुमाकर मेरे अपराधकी घोषणा की गयी। सब देख-भालकर मैंने अपने शरीरको छोटा बना लिया और सहजहाँमें सब बन्धन तोड़ डाके। फिर मैंने नगरमें आग लगाना शुरू किया। नगर तो जला दिया पर मेरे मनमें बड़ा भय पैदा हो गया, मैंने सोचा कि कहीं मेरी इस मूर्खतासे माता सीता तो नहीं जल गयी ? इतनेमें मैंने चारणोंको कहते सुना कि जानकीजी नहीं जली। यह सुनकर मेरा मन बहुत ही प्रसन्न हुआ, मैंने उन् जाकर जानकीजीके दर्शन किये और उनसे विदा हुआ।

तदनन्तर अरिष्ट नामके पर्वतसे उड़कर अब आप लोगोंके पास आ पहुँचा है। यह सब हाल मैंने ऊपों-का-त्यों आपसे कह सुनाया। अब जो उचित आन पड़े सों कीजिये।'

इसके पश्चात् सब बानरोंने मधुबन-नामक उपवनमें पहुँच विजयोन्मादमें लृप मधु पिशा। जिसने इन्हें रोका, उसको इन्होंने खूब ठांका। इसके अनन्तर सुग्रीवको मूर्खितकर मवज्जोग उसके पास पहुँच गये और भीहनुमानजीने सब बृतान्त श्रीरामचन्द्रजीको सुनाकर चूहामणि दे दी।

इस कथाका जो आनन्द सुन्दरकाशङ्क पदनेमें ग्रास होता है वह अकथमीय है। हनुमानजीके पराक्रमका वर्णन अवश्य शेषजी भी अपने सहस्रमुखोंसे नहीं कर सकते। भक्त हनुमानजी कुदिमता, अनुपम बल, वाक्यात्मूर्त तथा अवधिसिद्धिके वर्णन करनेकी काफ़ि कालमीक्षिजीमें ही थी। विश्वा अनुभव यह है कि विलमी बार इस करणका पाठ

किया जावे उतनी ही बार उन घटनाओंका चित्र आँखोंके सामने नाचने लगता है। कहीं बीररस, कहीं बल्हाररस, कहीं शक्तररस, कहीं हास्यरस और कहीं उपमाओंके सुन्दर प्रयोगोंको देखकर पाठकज्ञ हृदय आगम्यसे गढ़द हो उठता है। इस प्रबन्धमें यहीं कुछ विरोध परिचय दिया जाता है—

सिंहिका नामी राष्ट्रसीको श्रीहनूमानूजीने कैसी चतुराईसे पापना किया। पहले उसने अपना मुख जितना बढ़ाया, उससे अधिक आपने शरीर बढ़ाया। अन्तमें अवसर पाकर बहुत क्षोटा रूप बना, उसके मुखमें प्रवेशकर अपने तेज नसोंसे उसके मरम्भस्थलको चीर-फाइ डाका। इसपर देखताओंने आपकी इन शब्दोंमें प्रशंसा की—

यस्य त्वंतानि चत्वारि वानरन्द्र यथा तत्र ।

पृतिर्दिष्टमिनिर्दिष्ट्य म कर्म्मु न सादति ॥

(वा० ५। १। २०२)

हे वानरोंके स्वामी श्रीहनूमानूजी ! धीरता, सूखमर्दि, तुमि और चतुराई, आपके समान ये चार गुण चित्तमें होते हैं, वह कभी किसी भी कामको करनेमें नहीं बबकाता।

आपकी धर्मपरायणताको देखिये—

जय लक्ष्मदेवीने आपको जारसे यष्पद मारा तो आपने 'हा येति मन्यमानन नानिक्राप्यः स्वयकृतः' उसे छो समझ-कर यहुन कोध नहीं किया। छेख एक झूसा मारकर ही उसे परास्त कर दिया और किस 'कृपां चकार तेजस्या मन्यभानः मिथ्ये तु नाग्' उसपर दया प्रकट की।

जय आपने राष्ट्राके आन्तःपुरमें रातके समय सीताकी सोज करते करते अनेक लियोंको देखा तो आप बहुत चिन्तित हुए—

जगम महतां चिन्तां धर्मसाध्वसरशक्तिः ॥

परदरावरोधस्य प्रमुखस्य निरीक्षणम् ।

(वा० ५। ११। ३८-३९)

पर लियोंको सोते देखनेसे आपके हृदयमें धर्म-नाशकी लक्ष्मा उत्पन्न हुई। आप सोचने लगे—'इं खु भु ममात्यर्थं पर्मलोपं करिष्यति।' यह मेरा कर्म अवश्य मेरे धर्मको नष्ट कर देगा। परन्तु देखिये, आप किस कुदिमत्तासे इस कहसे पार होते हैं। आप सोचने लगे—

नहि मे परदराणां दृष्टिर्विद्यरत्नी ॥

काम दृष्ट्वा ममा सर्वा विश्वता राणस्त्रियः ।

न तु मे मनसाः किञ्चिद्दृष्ट्वमुपपद्यते ॥

मनो हि हेतुः सर्वेषामिन्द्रियणां प्रवर्त्तने ।

त्रुमाशुभास्वतस्थामु तत्र मे सुव्यवस्थितम् ॥

लियो हि स्त्रीषु दृष्ट्यन्ते सदा संपरिमर्मणे ॥

तदिदं मार्गिते तावच्छुदेन मनसा मया ।

(वा० ५। ११। ४०-४६)

'आजतक मैंने कभी लियोंको तुरी दृष्टिसे नहीं देखा।

यथपि आज मैंने इन लियोंको देखा, पर मेरे मनमें तिज्ज-भर भी कुविचार उत्पन्न नहीं हुआ। मन ही तो पाप-पुरुष करनेवाली सब हन्दियोंका प्रेरक है, वह मन मेरे बशमें है।

न देखता तो करता भी क्या ? लियां तो लियोंहीमें दृढ़ी होती हैं, मैंने शुद्ध मनसे ही जानकारीको ढूँढ़ा।' इस विवेचनमें श्रीहनूमानूजीने अपने चरित्रका जितनी साक्षात्कारी साथ अवलोकन किया है वह सर्वथा अनुत्त है। यहाँपर आपने अपनेको पूर्णतया बालब्रह्मचारी चरितार्थ कर दिया।

जब बहुत सोज करनेपर भी श्रीसीताजीका पता न लगा तो आप अग्राप चिन्ता-सागरमें ढूबने लगे, परन्तु बड़े दैर्घ्य और साहससे उसे भी पार किया। इसका चित्र बालमीकीर्जीने बदं हृदयस्तरी भाषामें सौंचा है। हनूमानूजीकी प्रतिज्ञा ज्ञान देने योग्य है।

सोऽहं नैव गमिष्यामि किञ्चिक्ल्यां नगरीमितः ।

वानप्रस्थो भविष्यामि हृष्ट्वा जनकात्मजाम् ॥

चिरिं दृत्वा प्रवेश्यामि समिद्धमरणामुतम् ॥

उपविष्ट्य वा सम्यग्लिङ्गं साधायिष्यतः ।

सम्यगापः प्रवेश्यामि न चेत्पश्यामि जानकीम् ॥

नेतः प्रतिगम्यामि तामदृद्वाऽसितेष्णाम् ॥

(वा० ५। १२। ३८-४५)

'अब मैं किञ्चिक्ल्या नहीं जाऊँगा। बानप्रस्थी हो चित्तमें प्रवेश करूँगा। प्रायोपवेशनब्रत धारणकर प्राण छोड़ दूँगा। जलमें प्रवेश कर जाऊँगा, पर चिना सीताके देखे यहाँसे नहीं हद्दूँगा। इतना इस संकल्प हनूमानूजीके ही योग्य था। इसके बाद आप सोचने लगे कि प्राण देवूँ या रक्षूँ ? अन्तमें आप निश्चय करते हैं—

विनाशे बहवे दोषं जीक्ष्मद्राणि पश्यति ।

तस्मात्प्राणान्धरिष्यामि ध्रुवो जीवते सद्गमः ॥

(वा० ५। १३। ४७)

‘नाशमें बहुत दोष है। जीवित रहनेसे अनेक शुभोंकी प्राप्ति होती है अतएव प्राण धारण करना ही योग्य है, क्योंकि जीवित रहनेसे निश्चय ही इष्ट-सिद्धि होती है।’ प्राप्त देनेकी तैयारीसे आपके सङ्कल्पकी दृढ़ताका परिचय मिलता है। इसप्रकार प्राण धारण करनेका निश्चय आपके खैय तथा बुद्धिमत्ताको प्रकट करता है।

आपकी बुद्धिमत्ताका एक दूसरा वित्र आगे आता है। इस बातपर वह गृहभीरतापूर्वक विचार करते हैं कि महारानी-सीताजीसे किस प्रकार बातचीत की जाय, जिससे उनको मेरे विश्वासे सन्देह न हो। इसपर आप इच्छाकु वंशावली-का निरुपण करना प्रारम्भ करते हैं और शेषमें महाराज दशरथसे लेकर सीताजीको देसनेतककी सारी घटनाओंका बड़ी सुन्दरतापूर्वक वर्णन कर जाते हैं। ऐसी विकट परिस्थिति-में विश्वास उत्पन्न करनेका कैसा अमोघ अस्त्र आपने प्रयोग किया ! परन्तु सीताके सहज पवित्रात्माके हृदयमें धोर मायावी राहसोंकी नगारीमें एक अपरिचित पुरुषके प्रति विश्वास उत्पन्न करनेके लिये यह साधन वर्यास नहीं था। अतः सीताजीने आपकी पर्दीचा दींग, उसमें भी आप अपनी बुद्धिमत्तासे सफल हुए। सीताजीने ऐसे कठिन प्रश्न पूछ जिनका श्रीरामचन्द्रजीसे अति परिचित व्यक्तिके अतिरिक्त दूसरा कोई उत्तर दें ही नहीं सकता था। यथा—‘आपकी श्रीरामचन्द्रजीसे भेंट कहाँ हुई ? आप लक्ष्मणजीको कैसे जानते हैं ? मनुष्योंका और वानरोंका मेल कैसे हुआ ? श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजीका हुलिया कैसा है ? उनके शरीरोंकी गठन कैसी है ? श्रीरामचन्द्रजीका रूप कैसा है ? लक्ष्मणजीकी भुजाएँ कैसी हैं ?’ इन सब प्रश्नोंके उत्तर आपने ठोक-ठीक दिये, जिससे सीताजीको पूर्ण विश्वास हो गया कि वे श्रीरामजीके दूत हैं।

एवं विश्वासिता सीता हेतुनिः शोककर्तिता ।
उपकर्मिजननृत् तर्मध्यगच्छती ॥

(वा०५ । ३५ । ८४)

शोकस्त्वसा सीताजीने अनेक कारबोंका तथा श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मणजीके शारीरिक चिह्नोंका विचार करना पाकर हनूमानजीकी बातोंपर विश्वास किया और उनको श्रीरामचन्द्रजीका दूत जाना।

कोई साधारण दूत होता तो इस कठिन परीक्षामें उत्तीर्ण होना उसके लिये असम्भव ही था। अपनी वाहन-चालुरी तथा बुद्धिमत्तासे पूरा विश्वास कियाकर ही आपने

रामचन्द्रजीका दिया हुआ चिह्न महारानीजीको अपेक्षा किया—जिससे विश्वास होनेमें कुछ भी आपसि नहीं आवी। इसमें भी आपकी कितनी बुद्धिमत्ता थी। यदि चिह्न पहले विश्वास होता तो जानकीजी शायद इनको शाशु समझतीं, और वह भाव होता कि कहों यह भींगटी श्रीरामजीको मार उनसे छीन लाया होगा या सुखे भावासे मूळ विश्वास दियाकर रामचन्द्र की तरह प्रक्षेपन दे रहा होगा।

पुनः चलते समय सीताजीने एक बड़ा कठिन प्रश्न पूछा—‘हे वीर ! इस हुलाह-सागरके पार करनेकी तो शक्ति तीमहीमें है—तुम्हें, गरुड़में और पवनदेवमें। किर श्रीरामचन्द्रजी यहाँ किसप्रकार आ सकेंगे ? इस दुसराभ्य कार्यकी सफलताके लिये तुमने जो उपाय सोचा है सो बताओ ।

श्रीहनूमानन्दी महाराजने इसका जो उत्तर दिया वह बड़ा ही महावपूर्ण है !—

मद्विशिष्टाश्च तुत्याश्च सन्ति तत्र वर्णकसः ।

मत्तः प्रत्यवरः कश्चित्तास्ति सुर्यीवसज्जिधी ॥

अर्तु तावदिद्विषातः कि पुनर्स्ते महाबलः ।

न हि प्रकृष्टः प्रेष्यन्ते प्रेष्यन्ते हीतेर जनाः ॥

(वा० ५ । ३५ । ८४-८५)

‘माता ! सुर्यीवकी अर्थीनलामें सभी बानर मेरे ही जैसे और कहीं तो सुक्षमसे भी बदकर हैं। सुक्षमे निरुप बानर तो वहाँ कोई है ही नहीं। जब मैं ही वहाँ आ गया तब उन महाबलवान् बानरोंके लिये तो कहना ही क्या है ? दृत बनाकर साधारण ही व्यक्ति भेजा जाता है, प्रधान नहीं। हे देवो ! वे बानरोंके स्वामी एक ही छुलोगमें लक्ष्मणमें आ जावेंगे। श्रीराम-लक्ष्मणजी तो मेरी पीठपर सवार हो तुम्हारे पास आवेंगे और इस छापुरीको तहस-नहस कर दावेंगे।’

अब श्रीहनूमानन्दीकी धोकापर अरा ध्वान हीलिये। आपने स्वामीके नामका बड़ा वजासे युधे आप धोकित उत्तरे है—

जप्त्यतिवलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः ।

राजा जयति सुश्रीं रामवेणामिपालिदः ॥

दासोऽहं कांसलेन्द्रस्य रामस्याहिष्ठर्मणः ।

हनूमान्द्युसन्यानां निहन्ता मालतात्मजः ॥

न रामणसहस्रे युद्धे प्रतिवलं भवेत् ।

शिल्पमिथु प्रदृशतः पादपैश्च सहस्रः ॥

अद्यित्वा पुरीं लङ्घामभिवाद च मैथिलीम् ।

समृद्धयर्थो गमिष्यामि भित्तां सर्वरक्षसाम् ॥

(वा० ५ । ४२ । ३३-३६)

‘आह जानेवाले श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो ! महावर्ती लक्ष्मणकी जय हो ! श्रीरामजीहनार-पालित राजा सुश्रीवकी जय हो ! मैं अङ्गिकर्मा (घोर कर्म न करनेवाले) श्रीरामका दास हूँ, मेरा नाम हनुमान् है । मैं शशुसेनाका नाश करनेवाला एवनदेवका पुत्र हूँ । इमारे शिखाओं और बूढ़ोंके प्रदाहरके सामने एक रावण क्या सहज रावण भी नहीं ठहर सकते । मैं समन्व राष्ट्रगोंके सामने लङ्घाका अंस-कर जनक-नन्दिनीको प्रशामकर अपना काम पूरा कर जाऊँगा …’ यह पवनसुत हनूमान्जीकी घोषणा है ! अब उनकी बावटुता तथा बुद्धिमत्ताका एक बार और अवलोकन कीजिये—

रावण श्रीहनूमान्जीसे यह पूछता है, कि ‘तू कहाँसे आया है ? क्यों आया है ? अशोक वन उजाइने और राष्ट्रसेंको भयभीत करनेमें तुम्हको क्या लाभ हुआ ? मेरी इस दुर्गम पुरीमें तू कैसे आया ?’ आप उत्तर देते हैं—‘मैं बानर हूँ, मेरे हृदयमें रावणसे भेंट करनेकी अभिलाषा थी किन्तु इसका सफल होना साधारणतः कठिन था, इसीलिये मैंने अशोकवाटिकाको उजाइ दिया । राष्ट्रगोंको मैंने अपनी शरीर-रक्ताके लिये मारा । मैं आपको अपने स्वामीका सदेश सुनानेके लिये स्वेच्छामें ब्रह्माम्ब में बैठ गया । मुझे अतिपराकर्मी श्रीरामचन्द्रजीका दृन जानिये । अब मैं आपसे हितके बचन कहना हूँ, ध्यानपूर्वक सुनिये । आप भुवनविल्यात बालिके पराक्रमको भलीभांति जानने ही हैं, उसको श्रीरामने केवल एक ही बालाने मार डाला और उसके स्थानपर सुश्रीवको राजा बनाया । करोड़ों बानर सीताकी खोजमें घूम रहे हैं । मैं सौ योजन समुद्र लाँधकर आपको देखनेके लिये यहाँ आया हूँ । आप तो जर्म और अर्थको भलीभांति जानते हैं । आपने तपके प्रभावमें प्रेर्वर्य सम्पादन किया है । अतएव आपको तो यह ज्ञात ही होगा कि एराथी-सीको धरमें बन्द कर रखना अनुचित है । आप जैसे बुद्धिमान् पुरुषको पैसे भर्मविलङ्घ एवं अनर्थकारी तथा समूल नष्ट करनेवाले कार्योंमें असरक होना अनुचित है । देखिये, लक्ष्मणके क्रोध और रामके बालोंके आगे सुर या असुर कोई भी नहीं टिक सकता । अतएव मेरा कहना मान श्रीवाल्मीकीको लौटा दीजिये ।

सीताको संसारमें दैत्य अथवा देवता कोई भी नहीं पचा सकता । आप अपने तप-फलका अधर्मके हारा नाश न करें । आप यह न समझिये कि देवताओं और दैत्योंसे अवश्य होनेके कारण आप अवश्य ही रहेंगे । सोचिये, सुश्रीव न तो देवता है और न असुर है, उससे प्राणोंकी रक्षा कैसे कीजियेगा ? आहुं तो मैं अकेला सारी लङ्घाको नष्ट कर सकता हूँ, परन्तु श्रीरामजीने स्वयं ही इसके नाश करनेकी प्रतिशा की है । सीताको आप काल-रात्रि समझिये । सीताजीके तेजसे आपकी लङ्घा दृश्य हो जुकी, अब श्रीरामचन्द्रजीके कोपसे वह भस्त हो जायगी । श्रीरामचन्द्रजी लोकसंहार कर स्थिरत्वाकी शक्ति रखते हैं । ब्रह्मा, शिव, इन्द्र कोई भी श्रीरामजीका युद्धमें सामना नहीं कर सकते, आपकी तो कुछ गिनती ही नहीं ।

इस उत्तरकी गम्भीरतापर विचार कीजिये—पहला भाग आपकी बानर-प्रकृतिका घोतक है । आगे चलकर बालिका स्मरण कराना, ‘सुप्रीव न सुर है न असुर’ तथा ‘अधर्म तप-तेजज्ञा नाश करता है’—आदि बातें कितने मार्केंकी हैं ? फिर श्रीरामके पराक्रम, श्रीसीताके तेज और अपने बलका जितना ओजपूर्ण वर्णन किया गया है, वह मूलपाठके पढ़नेहीमें प्रकट हो सकता है । सच तो यह है कि सुन्दरकाण्ड आदिमे लेकर अन्ततक श्रीहनूमान्जीके पराक्रम तथा चातुर्य-त्रैर्णनसे ओतप्रोत है । सुन्दरकाण्डका नाम यदि हनूमन्काशड होता तो अनुचित न होता । बोलिये, पवनसुत हनूमान्जी जय !

अब महारानी श्रीसीताजीके अति पवित्र अनुपम चरित्रपर किञ्चित् दृष्टिपात नीजिये—संसारके इतिहासमें ऐमा अहितीय चत्त्रिप्राप्त होना असम्भव है । पति-विवेगमें आपकी क्या दशा थी ? जलमें अधिक बोझसे लदी हुई नौकाके सदृश शोकाधिकथके कारण आपकी दशा सर्वथा दयनीय हो गयी थी । पृथिवीपर गिरे हुए किसी हीण-पुरुष तारेके सदृश आप मैले-केशोंसे युक्त, शोकसे सन्तस तथा कान्तिसे विर्हान हो गयी थीं । केवल पतिप्रेमरूपी भूषण ही आपको विभूषित कर रहा था । आपकी ऐसी असहायावश्या जान पढ़ती थी मानो अपने झुरडसे छूटकर बैंधी हुई हयिनी सिहके चङ्गलमें फैस गयी हो । आपकी प्रभा वर्षाब्दतुकों अवसानमें शारदीय मेंदोंसे आदृत चन्द्रकी ज्योरस्नाके समान छिप रही थी । डबटनादि न लगनेसे, चिर अवाय-सीणाकी भौति आप मलिन हो रही थीं ।

शोकसागरमें निमग्ना, मङ्गलग्रहसे अस्तित रोहिणीकी तरह आप राहसियोंसे विरी हुई थीं। उम्मीदीन जताकी तरह शरीरमें मैल लपेटे आप शक्तरसे शून्य हो रही थीं। सुन्दर होनेपर भी आप कीषदमें सनी हुई नक्षीनीकी तरह शोभाहीन हो रही थीं। श्रीसीताजीका शरीर एक जीवं और मैले-कुचैले वज्रसे उका हुआ था। वे सूगचौनीकी तरह भवभीत हो चारों ओर देख रही थीं और उनके निःश्वासोंसे मानो आसपासके पहाड़युक्त बृह भूम दृष्ट जाते थे। उमाकी साक्षात् मूर्ति महारानी सीताको देखकर ऐसा ज्ञात होता था कि मानो शोकसागरसे हुःखरूपी जहरे उठ रही हैं। यह दशा देखकर श्रीहन्मान्द्रजीकी आँखोंसे अशुभारा बहने लगी।

राववाके सामने सीताजीकी दबनीव-दशाका दृश्यन् और भी हृदयको पिंडला देनेवाला है। श्रीसीताजी राववाको देखकर भारे ढरके केलेके पत्तेकी तरह काँपने लगीं। राववाने देखा कि सीताजी अत्यन्त हुती एवं समुद्रकी लहरोंसे कोंका खाती हुई नावकी तरह डगमगा रही है। सीताजी उस समय इङ्ग्रेज-धारणा किये—विना किसी विज्ञानेके भूमिपर बैठी, वृक्षकी कट्टी ढालके सहरा जान पड़ती थीं। सीताके आँखोंपर मैल चढ़ा हुआ था। उनके अवलोकनमें यह ज्ञात होता था कि वह मनोरथोंके संकल्प-रूपी घोड़ोंपर सवार हो प्रसिद्ध श्रीरामचन्द्रके पास जा रही थीं। श्रीरामचन्द्रजीके सारण्यमें विकल होनेके कारण उनका शरीर सूक्ष्मकर काँटा हो गया था। उनकी आँखोंसे अनवरत अशुक्ती धारा प्रवाहित हो रही थी। उनको हुःखरूपी सागरका ओर-छोर नहीं देख पड़ता था। केवल रामका ध्यान लगाये हुए थीं। उनका शरीर इम प्रकार मन्त्रगुधा-सर्पिणीकी तरह छृष्टपटा रहा था मानो रोहिणी धूमकेकुके तापसे सन्नस हो रही हो। पति-विद्योग-से व्याकुल महारानी सीता, निन्दित कीर्ति, अनाद्वित विश्वास, चौचाबुद्धि, दूटी हुई आशा, घटी हुई आमदनी, उङ्ग-धन की हुई आशा, उङ्कापातकी तरह जलनी हुई दिशाएँ, नष्ट हुई पूजाकी सामग्री, मसजी हुई कुमुदनी, नष्ट शूरोंकी सेना, अन्धकारसे ढकी हुई प्रभा, सूखी हुई नदी, अस्पृश्योंके स्पर्शद्वारा भट हुई यज्ञवेदिका, बुझी हुई आग, राहुग्रसित चन्द्रमण्डलसे युक्त पृथ्यमासीकी रात, दूटी हुई पंखविद्योंका कमल, भयभीत पर्दा, हाथीकी सूँडसे आलोहित कमलयुक्त पुष्करिणी तथा दृष्टे हुए बाँधकी नदीके तुल्य हो रही थीं। उपवास, शोक, चिन्ता

और भयके कारण सीताजीका शरीर विलुप्त दुर्बल और शीश हो रहा था। वह केवल जलमात्र पीकर शरीरको तपा रही थीं।

यह पाषाण-हृदयको भी द्रवित करनेवाला चित्र किरण दिव्य है—उपमाओंका तो समुद्र उमड़ रहा है। धन्य हैं माता सीता और धन्य हैं कवि बालमीकि जिनकी लेखनी हस पुष्प-चरित्रका चित्रण कर पुण्यमरी हो गयी।

अब पातिव्रतका एक अनुपम चित्र देखिये—राववा प्रलोभनोंका एक विशाल पर्यंत महारानीके सामने खड़ा कर देता है। उज्जीसर्वां सर्ग मानो राववाके प्रलोभनोंका सागर है। एक-एक प्रलोभन साधारण जीको लुभानेके लिये यथेष्ट हैं, यहाँ तो प्रलोभनोंका समुद्र यह रहा है। इन्मान्द्रजीने तो केवल छलांग मारकर सौ योजन सागरको पार कर दिया किन्तु श्रीसीता-महारानी तो अनन्त योजनों-के प्रलोभन-सागरको भी अपनी त्रैयो-शक्तिसे उङ्गलन करनेमें सफल हुई, यह सबसे विचित्र बात है। आप राववाके प्रलोभनोंका कैसा हितकर उत्तर देती हैं—

तिनकेकी ओट करके धमके बलपर मुस्कराती हुई सीता राववाकी उपेहा करके निर्भयता और सरलताके साथ अपने पातिव्रतका बल दिखला रही हैं—‘अरे दुष्ट, कहीं पापिष्ठ भी सिद्धि प्राप्त कर सकता है ? मैं पतिव्रता हूँ, उङ्गलकी जी हूँ, सती हूँ, तेरी जी नहीं हो सकती, तुम्हे सद्गम और सद्व्रतके अनुकूल आचरण करना चाहिये। जिसप्रकार तुम्हे अपनी प्रजाकी रक्षा करना उचित है उसी प्रकार परायी-जीकी रक्षा करनी चाहिये। अपनी ही छियोंमें रमण्य कर ! देख यदि अपनी छियोंसे सन्तुष्ट नहीं हुआ तो परायी छियाँ तुम्हे नष्ट कर देंगी। अरे राववा ! क्या बहुमं मज्जन नहीं रहते या तू सजनोंका सङ्ग ही नहीं करता। यदि तू मेरा उपदेश न सुनेगा और अनीतिपूर्ण आचरण करेगा तो तेरी रक्षोंसे पूर्ण लङ्घा नष्ट-भ्रष्ट हो जायगी। ऐ राववा ! मैं तेरे पैरेखर्य या धनके लोभमें नहीं फँस सकती। मैं सूर्यकी प्रभाकी भाँति अपने स्वामीसे अलग नहीं हो सकती। क्या लोकनाय श्रीरामचन्द्रजीकी भुजाका आश्रय लेनेवाली मैं किसी अन्य पुरुषकी भुजाका आश्रय ले सकती हूँ ? जिसप्रकार व्रष्टविद्या व्रष्टमें स्थित ब्राह्मणहीके योग्य हो सकती है, उसीप्रकार मैं श्रीरामकी ही पक्षी हो सकती हूँ। राववा ! यदि तू अपनी भाँड़ चाहता है तो मुझे श्रीरामचन्द्रजीको विनयपूर्वक

सौंप दे । यदि तु लक्ष्मीकी रक्षा करना तथा सूखुसे बचना
चाहता है तो श्रीरामचन्द्रजीसे मैत्री कर ले । देख,
श्रीरामचन्द्रजी धर्मार्था और शरणागतवत्सलके नामसे
प्रसिद्ध हैं, उनसे हमायाचना कर, मुझे दे देनेसे तेरा
कल्याण हो सकता है, अन्यथा तु निश्चय मारा जायगा,
क्योंकि तुम्हें जैसे पारीको श्रीरामचन्द्रजी जीवित नहीं
छोड़ सकते ।'

इस उत्तरका एक-एक शब्द प्रतिव्रतके बल, साहस,
सौन्दर्य तथा माता सीताके हमा-गुणका उत्तरन्त उदाहरण
है । उपर्युक्त चरित्रके पठनसे ऐसा ज्ञात होता है कि मानो
महारानी-साता अपने अगाध हमा-सागरमें रावणके
पाप-पर्वतको ढुबो देना चाहती हैं । अपने समस्त प्रयासमें
विफल होनेके कारण रावण निरुत्तर होकर बापस चला गया ।

अब मैं इस कारणके एक रहस्यमय तथ्यको उपस्थित
करना हूँ, जिसका श्रीजानकीजीसे विशेष सन्दर्भ है ।
श्रीसीताजी जगज्जननी लक्ष्मीजीका अवतार मानी गयी हैं ।
माताकी कृपा अपने दुष्ट बालकपर भी होती है ।
रावणने माताको कट देनेमें कुछ भी डडा नहीं रखा था ।
सीताजीके तेजसे दरकर और शापवश उसमें बलात्कार करनेका
सामर्थ्य नहीं था । इसीलिये वह सभका-बुझकर सीताको
अपने प्रलोभनमें फँसाना चाहता था । इन्हें भगवान्
दुष्टको भी दयामयी-माता श्रीसीताजी उसी शरणागत-
मन्त्रका उपदेश करती हैं जो श्रीबालमीकीय रामायणका
रहस्य है । वैष्णवाचार्योंका कथन है कि शरणागत-मन्त्रकी
न्याया ही श्रीमद्भागवत-रामायण है । श्रीजानकीजीका
यही उपदेश आगे चलकर लक्ष्मीकाएँ श्रीरामचन्द्रजीके
उपदेशमें सर्वथा मिलता है । माता कहती है—

विदितः सर्वधर्मज्ञः शरणागतवत्सलः ॥

तेन मैत्री भवतु ते यदि जीवितुमिच्छसि ।

प्रसावस्व त्वं चैनं शरणागतवत्सलम् ॥

(चा० ५ । २१ । १९-२०)

देख, श्रीरामचन्द्रजी धर्मार्था और शरणागत-वत्सल
हैं । यदि तुम्हे अपने ग्राहकोंका मोह है तो उनसे मिलकर
उन्हें मना लो । इसी शरणागतिपर भगवद्गीतामें श्रीकृष्ण-
भगवान् जोर विद्या है—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज ।

अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

२५

'हे पार्थ ! धर्म-धर्मज्ञको छोड़ मेरी शरणमें आओ ।
मैं सब पापोंसे लुढ़ा दूँगा । इस विषयमें शोक मत करो ।'

यही बात भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने भी विभीषणके
शरणमें आनेके समय कही थी—

सहृदेव प्रपत्नाय तवास्मीति च याचते ।

अभयं सर्वभूतेभ्यो ददायेतद्वतं मम ॥

एक बार भी ग्रन्थ होकर जो यह कहता है—'मैं
आपका हूँ', उसे मैं सब प्राणियोंसे अभय कर देता हूँ—
यह मेरा ब्रत है ।'

माता जानकीने इसी मन्त्रका उपदेश रावणको दिया
था, किन्तु उसने इससे लाभ नहीं डाया । विभीषणजीने
इस उपदेशका भवस्थ आना और परम-लाभ प्राप्त किया ।
रावणके बहाने माताका यह उपदेश सबके लिये है ।

रावणकी बातों, जानकीके उपदेश एवं हमापर ध्यान
दीजिये । महारानी सीता कहती हैं कि, 'रामसे मिलता कर ले,
वह शरणागत-वत्सल हैं, तेरे अपराधोंको क्षमा कर देंगे,
इसमें तेरा कल्याण होगा ।' धन्य है जगज्जननी माता
सीते ! यह बचन आपहीके योग्य है । यही श्रीसुन्दरकाषड़का
बीजमन्त्र है । दुखी संसारी-जीवोंके लिये यह अमोघ
उपदेश है । अतएव प्रत्येक कल्याणकामीको इसका मर्म
मममक्षर अनन्यभावसे भगवान् की शरणमें अस्त्रन्त शीघ्र
प्राप्त होना चाहिये । 'शुभस्थ शीघ्रम् ।'

रामायणमें ऐतिहासिक तथ्य

रामायण और महाभारतके क्षेत्रोंमें हम विजयी
पुरुषोंके द्वारा भारत महादेशके प्राचीन उपनिवेशोंसे सम्बन्ध
रखनेवाले बहुतसे ऐतिहासिक तथ्य प्राप्त करते हैं । × ×
× × × इनमें रचनाशैलीकी व्याख्याता, भावप्रकाशन-
की मनोहरता तथा वर्णनके प्रसारसे प्रत्येक मनुष्य यदि
कल्पनाके पर्वमें लिपे हुए संस्कृतके क्षोकोंको पढ़नेका कष्ट
उठावेगा तो तत्कालीन भारतीय ऐतिहासके तात्त्विक स्वरूपका
और तद्रूप राजनीतिक कानूनिकी व्यथा-सम्बन्ध गम्भीर और
गम्भीर अवस्थाका ज्ञान प्राप्त कर सकता है ।

दा० एन० दब्ल्य० वेलौ, सी० एस० आ०,

श्रीसीताहरण-रहस्य

(लेखक—श्रीजनकमुताशरण शीतलासहायनी सांबंत, बी०८०, ए०-ए०८० बी०, सम्पादक ‘मानस-पीयूष’)



गवानके चरित्रोंके रहस्य कौन जान सकता है ? वही कुछ जान सकता है जिसे वे कृपा करके जना दें—‘सो जानै ऐहि देहु जनाईं नहीं तो किसीका भी सामर्थ्य नहीं जो उसे जान से । जान से तो फिर वह रहस्य ही क्या हुआ ? श्रीसीताजी आदिशक्ति हैं, श्रीरामजी से उनका विशेष कभी किसी काव्यमें नहीं है, दोनों अभिन्न हैं, एक ही होते हुए भक्तोंके लिये युगलरूपसे विदाजमान है—‘गिरा अथ जल वीचि मम देवियत (कहियत) भिन्न न भिन्न ।’ माधुर्यमें पति-पत्नीभावसे श्रीरामजीको वे अतिशय प्रिय हैं । ऐसी परम-सती-शिरोमणियें इत्यामें क्या रहस्य है, यह तो यथार्थ उस नरनाथके करनेवाले ही जानें । देखिये, जिनके एक सींकके लाणसे पीछा किया जानेपर इन्द्रपुत्र जयन्त त्रैलोक्यमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र आदि किसीकी भी शरण न पा सका, क्या वे शरणको घर बैठे नहीं भार सकते थे ? अवश्य भार सकते थे । पर ऐसा होता तो आज हमको उनके चरित्र गान करके भवयार होनेका अवसर कहाँसे मिलता ? उनके दिव्य गुणों—करुणा, भक्तवस्त्रता इत्यादिको हम कैसे विश्वासपूर्वक समरण करके अपनेको कृत्यार्थ समझ सकते ?

म्मरण रहे कि यहाँ जो कुछ लिखा जा रहा है सो अधारतया धार्मिक वा भक्तिभावसे ही लिखा जा रहा है ।

यह चरित जानकीकर किया गया है । गोस्वामीजीने तो इसे स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया है और वाल्मीकि रामायणसे भी स्पष्ट है कि श्रीराम-लक्ष्मण दोनोंने जान लिया था कि यह कपट-मूर मारीच ही है—

तब रम्पुति जानत सब कागन । उंठ हरवि मुर-काज सँवारन ॥

यदि जान-मूरकर ऐसा न हुआ होता तो क्या रावण परम-यती-शिरोमणियोंकी भी मिरताज श्रीवैदेहीजीके कभी हाथ लगा सकता था ? अनुस्याजीने त्रिदेवकी न आकी, तब इनके आगे रावणकी क्या आती ? बा०८०५ । २२ में श्रीजनकीजीने रावणसे यह स्पष्ट कहा है कि तुम्हे भस्म कर देनेकी शक्ति मुझमें है तो भी मैं तुम्हे भस्म नहीं करती,

क्योंकि श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा नहीं है और देसा करनेसे मेरी तपस्या भङ्ग होगी । यथा—

असेदेशातु रामस्य तपसश्चानुपालनात् ।
न त्वं कुर्मि दशश्रीव भस्म भस्मार्हतेजसा ॥ २० ॥
नापहर्मुम्हं शक्या तस्य रामस्य धीमतः ।
विधिस्तव वधार्यथ विहितो नात्र संशयः ॥ २१ ॥

यह सीताहरण-चरित्र ही इमारी समझमें वाल्मीकि रामायणमें लिये हुए परमाम-यात्राचरितका बीज है । इसीके बदलपर ११ इजार वर्ष राज्यकरके सन्तमें श्रीसीताजीके त्यागकी जीजाकरके अवधपुरवासियोंपर अपना परम प्रियत्व दिलाया है—‘अति प्रिय मोहि इहाँ बाधा ।’ ममता जिन्दपर प्रसुहि न योगी । यह जीजा नहीं तो और क्या है कि ११००० वर्ष तक कोई चर्चा नहीं और जब परमाम-यात्राकी इच्छा हुई तब एक धोबीहारा उनके विषयमें अपवाद सुना जाता है और उसीपर उनका त्याग किया जाता है ।

हमारे परमपृथ्य महाराज श्री १०८ वर्ष ० रामवह्नभा-शरणजी (जानकीघाट, श्रीचंद्रघटाली) ने इस विषयमें दो रहस्य बताये थे जो यहाँ लिखे जाते हैं—

१—रावणने देव, यज्ञ, गन्धर्वादिको कन्याओंको जयरद्धनी ला-लाकर उनमें विवाह किया । किननी ही देवियाँ उमके यहाँ कैद थीं—अपने-अपने घरोंकी यह शोचनीय दशा देवताओंने आकर प्रभुमे बार बार कही । इन देवियोंकी दास्तण विपत्ति सुनकर कल्पणावश महारानीजीने उनके सन्तोष पूर्व सान्त्वनाके लिये स्वयं रावणके वहाँ कैद होना स्वीकार किया ।

२—मुतीच्छाजीके आश्रममें चलने समय महारानीजीने प्रसुते कहा था कि आपने दण्डकारयके अधिष्ठानोंसे उनकी रक्षाके लिये निशिचर-वधकी प्रतिश्वासी ही है और अब दण्डक दनको चल रहे हैं, मुझे वहाँका जाना अच्छा नहीं जागता, क्योंकि विना अपराधके दण्डकारयात्रित राजसोंका भारता योग्य नहीं, यह शाप है । विना अपराधके भारतेवाले बीरकी लोकमें भ्रांसा नहीं होती । यथा—

प्रतिज्ञातस्त्वया वीरं दण्डकारण्यवासिनाम् ।
ऋषीणां रक्षणार्थाय ववः संयति रक्षसाम् ॥
बुद्धिवैरं विना हनुं राक्षसान्दण्डकाप्रितान् ।
अपरावं विना हनुं लोको वीरं न कामये ॥
(वा० ३।१९।१०, २५)

तथापि प्रभुने उस समय यही उत्तर दिया कि मुझे सत्य सदा प्रिय है, पर मैं जो प्रतिज्ञा कर चुका उसे अब मैं नहीं कौंड सकता। मैं अवश्य राक्षसोंका वाच करके मुनियोंको अभय करूँगा। तथापि सीताहरणमें यह रहस्य कहा जा सकता है कि रावणको सापाराध ढहरानेके लिये वह चरित हुआ।

इम तरह लोक-वेद दोनोंसे उनका यह कार्य (रावण-वध) अनिन्द्य वा निर्दोष हो गया और इससे प्रियाका भी मान्य रहा।

ये भाव तो ऐश्वर्य और भक्तिभावमें हुए। अब एक और भाव जो एक पतिव्रताशिरोमणि (प० श्रीराजाजामकी धर्मपत्नी) ने सीताहरणके बारेमें कहा है उसे उन्होंके शब्दोंमें सुनिये—

परिपर आयु मृजने करदु अस परिणाम विचार ।
पतिदासी मृगलासहित सिय दुख मही अपार ॥

अर्थात् यह बात पतिव्रताके धर्मके प्रतिकूल है कि वह पतिको आज्ञा दे। श्रीपतिदासीजी पतिव्रताओंको सीताहरणका उदाहरण देकर उपदेश देती हैं कि पतिको कभी भूलकर आज्ञा न देना (म्वामीको आज्ञा देना बड़ा पाप है) देखो, सीताजीने अपने पतिको आज्ञा दी, हठ किया कि मृगको जैसे बने लाओ, उसीका यह फल उनको भोगना पढ़ा कि जो उनका हरण हुआ और उनको कितना कष्ट उठाना पड़ा। इस चरित्रसे छियोंको यह उपदेश हुआ।

यही भाव स्वयं श्रीसीताजीके इन शब्दोंसे ज्ञानित हो रहा है—

कामवृत्तमिदं रौद्रं लीणामसदृशं भतम् ।
वपुषा त्वस्य सत्वस्य विसम्या जनितो भम् ॥

(वा० ३।४३।२५)

अर्थात् अपनी इच्छाकी पूर्तिके लिये जो मैं आपसे यह कह रही हूँ, वह कठोर है और छियोंके लिये अनुचित है, यह मैं जानती हूँ तथापि इस मृगको वेत्तव्य सुझे बड़ा विलाय उत्पन्न हो गया है, अतः आप इसे ले आवें— आनन्देनं महाबाहो क्रीडायं नो भविष्यति ॥

और भी अनेक भाव लोगोंने कहे हैं जिनमेंसे दो एक मानसपीयूषमें उद्दृश्य किये गये हैं। यहाँ इस लेखमें उनके लिखनेकी आवश्यकता नहीं समझी जाती।

भुशुविद्जी, शिवजी आदिने मायाका हरण—मायासीताका हरण—होना स्पष्ट कहा है। यही बात गोस्वामीजी-ने भी स्पष्ट शब्दोंमें कही है—

‘पुनि मायासीता कर हरना ॥’

‘निज प्रतिविच रापि तहं सीता ॥’

श्रीबैजनाथजी लिखते हैं कि श्विकल्पा वेदवतीने प्रभुकी प्राप्तिके लिये अखण्ड तप किया। उसको देख रावणने जबरदस्ती उसे पकड़कर लड़ा ले जाना चाहा। उस समय उसने शाप दिया कि तेरा नाश मेरे हारा होगा। यह कहकर उसने अपना बह शरीर क्षोड दिया। वही यहाँ सीताजीका प्रतिविच है। उसीमें सीताजीका आवेश हुआ। वेदवतीकी कथा बालमीकीय उत्तरकाण्डमें है।

वास्तवमें हमारे मित्र प्रोफेसर श्रीरामदासजी गौडने जैसा कहा है वैसा ही है कि ‘मायामानुपस्थिणः’ दोनों भाई, मायाकी सीता, मायामृग, मायाका संन्यासी, मायाका रथ, मायाका विलाप और विरह-कथा सभी कुछ दोनों ओरसे मायाका खेल था।

इसमें महामाया और हैश्वरी-मायाके साथ राक्षसी-मायाकी लीला हो रही है, हैश्वरी अथवा दैवीमाया तामसी किंवा राक्षसी-मायासे खेल रही है। मूर्ख राक्षस सुश है कि मेरी माया चल गयी और इन मनुष्योंको मैंने मोहित करके स्त्री-हरण कर लिया; परन्तु यह नहीं जानता कि मैं स्वयं हैश्वरी-माया जालमें बेतरह फँस गया हूँ और मेरी बुद्धिका हरण कबका हो चुका है। जब लक्ष्मणजीको ही परतमकी मायाका पता नहीं है तब देव-द्वनुजादिको तो बात ही क्या है—

‘सिव विरचि कहं मोहई को है वपुरा आन ।’

अधिक लिखनेका समय नहीं है, दूसरे जो लिखा गया वह प्रायः सभी मानसपीयूषमें निकलेगा ही, इससे उसीको वहाँ भी भेजता उचित न जानकर नहीं लिखा गया। हाँ, तीन-चार दोहे श्रीपतिदासीजीके (कैकेयीजी, रामेश्वरा आदिके चरित्रोंसे जो उपदेश उन्होंने निकाले हैं उनको) उद्दृश्य करता हूँ—

कैकेयीजी—

दासी पति ते हठ किये कैकेहि दुखभार ।

विष्वापन सुतविमुखता अपमरा जगत अपार ॥

सतीजी—

सती न मानी पतिवचन राम परीक्षा हीन्ह ।
दासी सो अपराधवस, शम्भु ताहि तजि दीन्ह ॥
दासी पति-आदर बिना कहूँ न तियको मान ।
नैहरहूँ निदरी गई दक्षसुता जग जान ॥

चहल्ला—

दासी सब निदराहि सदा पतिवंचक अनुमानि ।
रामहुँ परेसठ पौंब ते गौतम-तिय जिय जानि ॥
शूर्खल्ला—
सूष्पनखा गइ रामपहुँ तजि बैधव्य विचार ।
दासी यांत नासिका काटे राजकुमार ॥

रामायण-कालीन शपथविधि

(लेखक—पं० आनन्ददेवजी शास्त्री, वेदतांथ्र)



रत्नवर्षकी अन्य रीति-नीतिकी भाँति इसकी शपथविधि भी विस्तृत होगयी है। आजकल जिस प्रकार शपथ ली जाती है अथवा आकोश किया जाता है वह सर्वथा हैव है। वैदिक-कालीन शपथविधिकी बात जाने कीजिये, उस समय शपथ लेनेका प्रकार बहुत ही सुन्दर था किन्तु रामायण अथवा महाभारतके कालतक वह सुन्दर शपथविधि अविकल्पयेण चली आती रही। जिस-जिस प्रकार भारतवर्षके साथ परचक्रका संसर्व होता गया, उस-उस प्रकार वैदिक-शपथविधिमें, आर्य-शपथविधिमें परिवर्तन होना गया और आजकलकी शपथ लेनेकी पद्धति सो सर्वथा हमारे अथःपतनकी घोषक है। जब समाजके ऊपर मर्यादाप्रवर्तक और निश्चानुग्रहप्रवर्तक दशहनीतिका यथाविधि सञ्चालक राजा नहीं रहता, तब समाजके बन्धन ठीके होकर उसकी रीति-नीति, आचार-विचार, रहन-सहन, बोल-चालकी पद्धतिमें अवश्य ही परिवर्तन होजाता है, यह अपिहार्य है।

शपथ क्यों ही जाती है? इसलिये कि हमारे ऊपर शंका करनेवाले, हमको सन्देहकी दृष्टिसे देखनेवाले व्यक्ति अथवा समुदायको यह विश्वास हो जाय कि हमने अनुचित, असम्भव, पापमय, सदाचारविरुद्ध, कुलमर्यादाके प्रतिकूल वह विशेष कार्य, अथवा कोई कार्य नहीं किया है जिससे स्वकूल, समाज और अपने कुदमशडलकी दृष्टिमें परिवर्त होना पढ़े, अथवा ग्राधिकी होना पढ़े।

शपथ भी पवित्र-से-पवित्र, प्रिय-से-प्रिय वस्तु, सम्बन्धी, हृष्मित्र अथवा धर्म-कर्म या पवित्र माननीय अन्यका नाम लेकर की जानेकी प्रथा है। यह प्रथा सब जातियोंमें, सब समाजोंमें, सब सम्प्रायोंमें, सब राष्ट्रोंमें और सब देशोंमें अनन्तकालसे चली आ रही है।

भरत जब कौसल्याके पास गया और उसको समझाना ही चाहता था—अभी प्रश्नाम करके कहनेहीवाला था कि रामका बनवास उसकी सम्पत्तिसे नहीं हुआ, हृष्मेही कौसल्या माता स्वयं बोल उठीं और कस्त्रापूर्ण-दृष्टिसे देखकर भरतको कहा—

इदं ते राज्यकामस्य राज्ये प्राप्तमकष्टकम् ।
ममप्राप्तं वत केकेया शीतं कूरणं कर्मणा ॥
प्रस्थाप्तं चारवगनं पुत्रं मे बनवामिनम् ।
केकेयी के गुणं तत्र पद्यति कूरदाशीनी ॥
तिरं मामपि केकेयी प्रस्थापयनुमर्हति ।
हिरण्यनामे यत्राम्ते मुने मे नुमहायशः ॥
शत्रया स्वयंमेवाहं ।

(वा० २१७-११०-१३.)

‘तो भरत, तुम राज-पाट चाहते थे, सो तुम्हारे लिये केकेयीने निष्कर्षक राज्य ले लिया, और मेरे रामको जटा-बलकलधारी बनाकर जंगल भेज दिया। न जाने उसने इसमें क्या भला देखा? उसे कहो कि अब मुझे भी शीघ्र वहीं भिजवा दे, जहाँ मेरा यशस्वी राम चला गया है या आकर डहरा हुआ है। रहने दो, मैं स्वयं ही सुमित्राको साथ लेकर चली जाऊँगी—

‘तो भाई, संभालो राज-पाट, उडाओ भौज, संभालो हाथी-धोड़-रथ, धन-धान्यके कोड़े, अब तो राजी हो?’

इसप्रकारके मर्मनेदी वाक्योंको सुनकर निर्दोष भरतका हृदय स्याकूल हो उठा और शपथ लेकर विश्वास दिलानेके अतिरिक्त उसके पास और कोई उपाय नहीं रह गया।

उसने माता कौसल्याके चरण पकड़कर, गिढ़गिढ़कर कहा, माता मुझ निर्दोषको क्यों कोस रही हो? मुझे तो

खबर भी नहीं कि यह सब कारण कैसे हुआ। तुम जानती ही हो कि मैं रामसे कितना प्यार करता हूँ। जिसकी सम्मतिसे राम बनको गये, उसका शास्त्राध्ययन निष्कल हो जाय, वह पापियोंका नौकर बन जाय, उसको वह पाप लगे जो कि किसीको सूर्यकी ओर सुखकर मूर्तोसर्जन या मलोसर्जन करनेसे लगता है, अथवा गौको लात मारकर उठानेमें लगता है। नौकरसे बदा मारेका काम करके जो उसको यथारीति परितोषिक नहीं देता, उसको दान-मानसे सन्तुष्ट नहीं करता, उसके स्वामीको जो पाप लगता है, जिसकी रायसे राम बनको गये, उसको वह पाप लगे। यहाँमें तपस्ती-त्रास्तायोंको दिलिशा देकर जो सुकर जाता है, नहीं देता, उसको जो पाप लगता है वह पाप जिसकी सलाहसे राम बनको गये, उसको लगे। रथाखेन्द्रमें उत्तरकर—ऐन युद्ध-प्रसङ्गपर, जो अपना कर्तव्य पालन न करे उसको जो पाप लगता है, वह पाप जिसकी रायसे राम बनको गये उसको लगे। जिस दुरात्माने ऐसी सलाह दी हो, उसका पद्मा-पद्माया वेद-शास्त्रका ज्ञान नष्ट हो जाय। आश्रितोंको छाड़कर, अकेले ही स्वादु-पदार्थ खानेवाले निष्ठुर्यु पुरुषको जो पाप लगता है, गुरुजनोंके निरस्कारमें जो पाप होता है, वह पाप जिस चारहालने यह कार्य करवाया हो उसको लगे। गौंको लात मारने या पैरसे छूनेमें, गृह-निन्दामें, मित्र-द्वोहमें, विवाह-घानमें, कृतव्रतामें जो पाप होता है, वह सब उस दुरात्माको लगे जिसकी रायसे यह काम हुआ। उस दुरात्माको अनुकूल सहधर्मिणी न मिले, उसके अपत्य मर जायें, उसकी धर्म-किया नष्ट हो जाय, वह अनपत्य ही रह जाय, स्वल्पायु होकर मर जाय, जिस दुष्टने ऐसा करवाया हो। वह पापों पागल होकर, चिथडे पहनकर, दर-दर माँगता फिरे, जिसने यह करवाया हो। शराबके थीनेमें, जूँके खेलनेमें जो पाप है, वह सब उसको लगे, जिसने यह करवाया हो। उस दुष्टका मन धर्ममें न लगे, उसका धान अपात्रमें जाय, उसका हकड़ा किया-कराया धन लुटेरोंके हाथ लग जाय जिस दुरात्माने यह सब कुछ करवाया हो। दोनों सन्ध्याक्रांतें समयमें जो सोता रहता है उसका जो पाप है वह उसको लगे जिसने यह करवाया। सत्पुरुषोंको जो लोक-लोकान्तर मिलते हैं, जो सद्गुण होती है, उनको जो कीर्ति मिलती है—वह सब कुछ उसको न मिले जिसके कहनेसे, इशारेसे, मशविरेसे यह सब कुछ हुआ है। वह

भानु-शुश्रूषासे बच्चित होकर वृथा अन्योंकी सेवामें तप्तर रहे, वह स्वल्प-धन और बहुत सृत्योंवाला, ज्वरादि-रोगयुक्त, सदा क्षेत्रान्तस होवे जिस दुरात्माने यह सब कुछ किया है। जिस पापीने यह करवाया है, वह कपटी-छुकी, चुगलसोर, तुर्भावयुक्त पुरुष राजदण्डके भयसे इधर-उधर मारा-मारा फिरे। अतुस्नाता भार्याके पास न जानेसे जो पाप होता है वह पाप उस पापीके पल्ले पढ़े जिसने यह किया-कराया। छी-झेषसे सन्तानहीन हुए उस पुरुषकी सन्तान-परम्परा नष्ट होकर कुछ नष्ट हो जाय अथवा उसके सिरपर वह पाप चढ़े जो कि अनुकूल भार्याको छोड़नेसे लगता है। आहुत्याकी पूजामें बाधा डालनेसे जो पाप होता है वह उसको लगे जिसकी रायसे राम बन भेजे गये हों। बाल-वत्स (बछड़) के हिस्मेका दूध निकालकर स्वयं पीनेमें जो पाप लगता है वह उसको लगे जिस पापीने यह सब कुछ किया कराया। अपनी सहधर्मिणीको छोड़कर जो पर-दारापर कुट्टाइ रखता है, उससे संसर्ग रखता है, जिस व्यक्तिके कारण राम बन गये हैं, उसको वह पाप लगे। पीनेके पानीको गदला करनेवालेको, विष देनेवालेको, प्यासेको पानी न देकर उसको दिक करनेवालेको जो पाप लगता है वह उसको लगे जिसने यह किया-करवाया। एक ही परापर-देवताको पृथक्-पृथक् मानकर उनपर वृथा बाद-विवाद करनेवालोंकी बातोंको जो चुपचाप सुनता है, उसको जो पाप लगता है, वह सब, अदि राम मेरी करनीसे बन गये हों तो भुम्को लगे।'

इस प्रकार शपथ लेता हुआ, आक्रोश करता हुआ, शोक-विद्वाल भरत भूमिपर गिर पड़ा। तब कौसल्या-माताने 'पति-पुत्र-विहीना कौमस्याने पुचकारकर कहा—'प्रिय भरत ! पक तो वह कुँभ था ही, अब तेरी इन शपथोंसे और भी बढ़ गया। यह सब सुनकर मेरे प्राण घट रहे हैं। तुम बड़भागी हो कि तुमने धर्म नहीं छोड़ा। तुम सत्यप्रतिज्ञ होकर अच्छे लोकोंको, अच्छी गतिको प्राप्त होओगे' ऐसा कह भरतको गोदमें बिठा, उसको पुष्पकारकर माता कौसल्या फूट-फूटकर रोने लगीं।

रामायण-कालीन समाज-स्थिति, लोकस्थिति कितनी उत्तमी ! हमारी पिण्डभक्ति, मातृभक्ति, आनृभक्ति, पतिभक्ति, पतिव्रत-धर्ममें आस्ता आदि संगठित सम्यताकी तुलनामें भला कोई देश, कोई राष्ट्र पहुँच सकता है ? आकाशवाणी हो रही है—'नहीं ! नहीं !!'

रामायण-कालमें परदा-प्रथा

(लेखक—पं० श्रीदारकाप्रसादजी चतुर्वेदी)

 निहासिक हृष्णसे संस्कृत-साहित्यके दो अन्योंकी प्रतिष्ठा सर्वोपरि है, क्योंकि इन दोनों अन्योंकी रचना प्राचीन मानी जाती है। भारतवासी ही नहीं, बिदेशी विद्वानोंने भी श्रीमद्भाग्वत-की-रामायण और कृष्णहीप्रयाण वेदव्यापरचित् महाभारतको प्राचीन रचनाएँ माना है। ये दोनों ही अन्य सामाजिक, ऐतिहासिक और राजनीतिक हृष्णसे बड़ा महात्व रखते हैं। प्राचीन-कालीन आर्य-जातिकी सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक परिस्थितिपर ये दोनों अन्य अच्छा प्रकाश ढालते हैं। रामायणकाल और महाभारतकालमें आर्य-जाति परदेको किनना महस्त देती थी, और इस प्रथाको राज्यकी कहाँतक अनुमति प्राप्त थी, इसका विवरणन कौटिल्य-अर्थशास्त्र देखनेसे अवगत हो जाता है। इस लेखमें हमें महाभारत और कौटिल्य-अर्थशास्त्रका उल्लेखमात्र कर देना है, किन्तु हमें विशदरूपसे तो आज रामायणकी ही चर्चा करनी है। क्योंकि देखा जाता है, कि परदा-के विरोधी लोग विशेषकर रामायण और महाभारतकी ही दुहाई दिया करते हैं, और इन्हींके नामपर आर्य-जातिकी प्राचीन परदा-प्रथाको उड़ाकर वर्तमान नारी-समाजको बेपर्द कर देना चाहते हैं। यद्यपि ऐसे लोगोंका आन्तरिक अभिग्राह तो आर्य-जातिको पाश्चात्य मन्यताके साँचेमें ढालना है, नथापि वे मुँहसे ऐसा नहीं कहते, किन्तु एनलम्बन्वी उनका अनिवार्य और साहस इस बातका ही घोतक है। किन्तु ऐसे लोगोंका प्राचीन अन्योंके आधारपर परदेके विरुद्ध जड़ादका फरदा लादा करना उनका दुस्साहम भाव है। यदि ऐसे लोग प्राचीन अन्योंका अच्छयन, इस बानकी जिज्ञासाके बशबही हो कर्ते तो उन्हें पता लग जायगा कि परदेकी जड़ सुदीर्घ-कालके गम्भीरे पैठी हुई है कहें तो यहाँ तक कह सकते हैं कि परदा-प्रथा सबातन है, वैमे ही सबातन है—जैसे हिन्दू-समाज। रामायणकालमें तो आर्यजातिमें परदेकी प्रथा पूर्णरीत्या प्रचलित थी, तथा अन्यान्य धार्मिक एवं सामाजिक नियमोंकी तरह इसका पालन भी अनिवार्य नियमोंके अन्तर्गत था।

जिन भगवती सीताकी बे-परदीकी बात लोग प्रायः कहा करते हैं, उन सीताके परदेके बारेमें आविक्षि भर्तुलम्हीकी उक्तियोंपर यदि पष्पात छोड़कर विचार

किया जाय, तो उस कालमें परदेकी प्रथा पूर्णरूपसे प्रचलित होनेमें तिलभर भी सन्देह नहीं रह जाता। जिस समय श्रीराम, लक्ष्मण और सती सीता खुले रथपर सवार हो बनके लिये राजभवनमें निकले, उस समय अयोध्याकी प्रजाने कातरकरण्टसे कहा था—

या न शक्या पुरा द्रष्टुं भूतरकाशंगरपि ।

तामदा सीतां पदयन्ति राजमार्गता जनाः ॥

(वा० रा० २। ३३। ८)

जिस सीताको आकाशचारी प्राणी भी नहीं देख सकते थे, उसको आज सर्वसाधारणजन राजमार्ग (आम मावक) पर जाते हुए देख रहे हैं। फिर जब रावणके मारे जानेके बाद श्रीरामचन्द्रने विर्भियणको आज्ञा दी कि यदि सीता मुझे देखनेको लालायिन हो तो उमे अभी मेरे पास लाओ। इसपर उस समय जो घटना घटी, उसका बर्णन आदि कविने इसप्रकार किया है—

तृष्णुमुत्सारणं तत्र कारग्रामास सर्वतः ॥

कञ्चुकोर्णांशिणमन्त्रं वक्त्रशङ्करपाणयः ।

उत्सारयन्तः पुरुषाः समन्तात्परिचक्रमुः ॥

क्रक्षाणां वानराणां च रक्षसाणां च सर्वशः ।

वृन्दान्युत्सार्यमाणानि दग्धमुत्सुक्षदा ॥

तेषामुत्सारैमाणानां सर्वेषां ध्वीनस्थितः ।

वायुनोदूरंभानस्य सागरस्यव निःस्वनः ॥

(वा० रा० ६। ११४। २०-२३)

जब विभियणको भगवान्ने सीताको खानेकी आज्ञा दी, सब वह सीताजीको 'आरोप्य शिविकां ठासां पराध्यांभवमंदताम्' (वा० रा० ५। ११३। २५) एक चमचमाती पालकीमें, जिसपर बदा बदिया उधार (परदा) पढ़ा हुआ था, सवार कराया। उस पालकीके आगे जामा-पगड़ी पहने, हाथोंमें बेत लिये हुए सोजे थे। वे चारों ओर धूम-धूमकर सबको हटाने लगे। सब रीछों, बानरों और राजसोंके समस्त दल वहाँसे हटाये गये और वे सब दूर जाकर लड़े हुए। उन सबको हटाने समय बैसा ही हो-हड्डा हुआ जैसा कि बायुके बेगले उत्थित समुद्रके शब्दसे होता है।

उन समस्त रीछों, बानरों और राजसोंका बजपूर्वक इटाया जाना देख, और उन सबको जुध देख, श्रीरामचन्द्र-

कल्याण



राम-शशी ।
कन्द-मूल फल सरस अनि दिये गम कहँ आनि ।
प्रेमसहित प्रभु खायहु वार्षिवार चगानि ॥

के भनमें उनके प्रति दृष्टिको सज्जार हुआ। विभीषणने यह काम श्रीरामचन्द्रजीकी आङ्ग लिये बिना ही किया था, अतएव श्रीरामचन्द्रजीको यह परसंद न आया और इसीलिये उन्होंने क्रोधमें भरकर, उक्खना देते हुए विभीषणको बर्जा और कहा—

किमर्थं मामनादत्य क्रियतेऽयं त्वया जनः ।
निवर्तयेनमुद्योगं जनोऽयं स्वजनो मम ॥
व्यसनेऽु न कृच्छ्रेषु न युद्धेषु स्वयंवरो ।
न ब्रौदी नो विवाहं च दरीनं दुष्प्रति लियाः ॥
सेषा युद्धगता चैव कृच्छ्रे च महति स्थिता ।
दर्शनेऽस्या न दोषः स्पान्तमस्मीपे विशेषतः ॥
तदानय समीपं मे शीघ्रमेनो विमीणः ।
रामस्योपानयसंतां सन्निकर्त्य विनीतवत् ॥

(वा० रा० ६। ११४)

अर्थात् तुम मेरा अनादरकर मेरे जनोंको क्यों सना रहे हो? अपने लोगोंको मना कर दो, कि वे मेरे जनोंको न सतत बैं, क्योंकि वे सब मेरे स्वजन हैं अर्थात् घरके लोगों जैसे हैं। इष्टजनोंका विद्योग होनेपर, राजविष्णवके समय, समर-भूमिमें, स्वयंवरमें, यशशालामें, विवाहमरणदमें लियोंका जनसमाजके सामने बिना परदा या बिना धूँधट काढे आना दोपावह नहीं है। अर्थात् इन खास अवसरोंको छोड़ अन्य दशाओंमें लियोंका जनसमाजके सामने आना दोपावह है। इस समय सोंता यदी विपत्तिमें पढ़ी है और यह युद्धकाल है। अतः ऐसे समय और विशेषकर मेरे सामने उपका बिना परदे आना-दोपावह नहीं है। अतएव हे विभीषण! तुम शीघ्र संताको (सुने सुंह) मेरे पास के आओ। श्रीरामचन्द्रजीके इन बचनोंको सुन विभीषण प्राचीन प्रथा भङ्ग हाते देख, सोच-विचारमें पढ़ गये, किन्तु श्रीरामजीका आङ्ग टाक भी नहीं सकते थे। अतः उसी तरह सीताको श्रीरामजीके पास ले गये।

इस प्रसङ्गमें एक बात और है, वह यह कि श्रीरामचन्द्रजी यह जानते थे कि केवल परदेसे ही लियोंका चरित्र ठीक रहेगा, ऐसा बात नहीं है, अतः उनकी आंखें फिर भी ध्यान रखा जाता था। इसीसे श्रीरामचन्द्रजीने कहा था—

न गृहणि न वस्त्राणि न प्राकारस्तिरस्क्याः ।
नेहशा राजसत्कारा वृत्तमावरणं लियः ॥

(वा० रा० ६। ११४।२७)

अर्थात् लियोंके लिये न धर, न चावदरका धूँधट, न कनात आदिकी चहारदीवारी, न चिक आदिका परदा और न इस प्रकारका राजसत्कार ही आव करनेवाला है (जैसा कि तुम कर रहे हो)।

यद्यपि श्रीरामचन्द्रजीने उस समय शास्त्रीय कारण दिखला सीताको सबके सामने झुँझमझुँझा आनंदकी आङ्ग दी तथापि श्रीरामचन्द्रजीका यह आवरण लक्षण्य, सुग्रीव, हनुमानको अथव्यन्त दुःखदायी हुआ। आदिकविने लिखा है—

तरो लक्षणसुग्रीवौ हनुमांश्च शुवङ्गमः ।

निशम्य वाक्यं रामस्य वभूर्यथिता भृशन् ॥

(वा० रा० ६। ११४।३२)

किन्तु वे कर ही क्या सकते थे! इस श्लोकसे एक बातका पता आंख भी चलता है—वह यह कि आदिकविने ‘प्लवङ्गमः’ विशेषण लगाकर यह जतलाया है कि सीताजी-का परदा त्यागकर आना बानर-जातिको भी अच्छा नहीं लगा और सुग्रीव तथा हनुमानको भी दुःख हुआ। किन्तु परदा त्यागकर सबके सामने निकलने-बैठनमें अनन्यता जानकारी उस समय क्या दृश्य थी, यह भी सुनन योग्य है। आदिकवि कहते हैं—

लजया त्वर्वीयन्ती स्वेषु गावेषु मैथिली ।

विभीषणेनानुगता भर्तीं साम्यवर्ततः ॥

स चलमंसद्मुखी लजया जनसंसदि ।

स्तोदासाद्य भर्तरमार्यपुत्रिति माषिणी ॥

(वा० रा० ६। ११४।३४-३५)

अर्थात् जानकी लोगोंके सामने आनेमें मारे लजाके अपने शरीरमें दबी जाती थी। विभीषण उसके पीछे आ रहे थे। इसप्रकार सीता अपने पतिके निकट पहुँची। उस जनसमाजमें लजावश उसने धूँधट काढ लिया था और दूसरे अपमानसे घबड़ा वह ‘हे आर्यपुत्र! कहकर रो यही। सोंताने यहाँ जो ‘हे आर्यपुत्र!’ कहा उसका भी एक गूढ़ रहस्य है अर्थात् वह श्रीरामचन्द्रजीको इशारेसे कहसी है कि आर्यपुत्र होकर मर्यादाविलक्ष कार्य क्यों कर रहे हैं?

सरांश यह कि जिन अवसरोंपर परदेकी शिथिलता-की बात श्रीरामचन्द्रजीने कही थी वह भी उस समय जन-समाजको मान्य न थी, किन्तु वहे लोगोंमें आदर्शके रूपमें उसकी चर्चामात्र की जाती थी, क्योंकि यदि यह अवसर समाज-मान्य हुंते तो प्रथम तो विभीषण ही क्यों उक्ती

हुई पालकीमें सीताको बिठा और हटो-बचो करते जाते । ह्रीतीयतः यदि भूलबश विभीषणने ऐसा कर भी दिया होता तो वे रामचन्द्रजीको आशा सुन आगा-पीछा न करते । इसपर भी यदि कोई कह बैठे कि अपने कामकी तीव्र आलोचना होनेपर अभिमानवश विभीषणने आगा-पीछा किया, तो लक्ष्मण, सुग्रीव और हनुमानादिको तो बुरा न लगना चाहिये था, किन्तु यह बात उनको भी बुरी लगी । अतः यह मानवा पढ़ेगा कि आर्यजाति रामायण-कालमें क्षियोंके लिये परदा-प्रथाको उपयोगी मानती थी । यह तो हुई आर्यजातिमें परदा-प्रथाके प्रचलित होनेकी बात । अब लीजिये हम आपको रामायणकालमें अनार्य जातियोंमें भी उसके प्रचलित होनेका प्रमाण रामायणहीमें निकालकर देते हैं । देखिये, जिस समय क्रोधमें भरे लक्ष्मण किञ्चिन्धामें गये और सुधारके अन्तःपुरमें बुसे, और लास जनानी-क्षणोंमें चले गये, तब हुँहें ऊंचे ही अन्तःपुरवासिनी ललनाथोंके नुपुरों और करधनीकी मंकार सुन पही ऊंचे ही लजित हो जहाँ-के-तहाँ खड़े रह गये । आदिकवि कहते हैं—

दृग्द्विन नूपुराणां च कार्बनां निनदं तथा ।
मन्त्रिग्रस्य ततः श्रीमान्तोमित्रिर्विर्जितोऽनवन् ॥

(वा० रा० १.३३।२५)

अर्थात् नूपुरोंकी छमाछम और करधनीकी घटियोंकी मंकार सुन सुमिक्रा-नन्दन लक्ष्मण लजित हो गये । आजकलके कुछ मनचले लोगोंके जैसे नो लक्ष्मण थे ही नहीं कि चाहे जिसके घरमें वेप्रहक धुमकर बीकीसे 'शोक-हैंड' करने लगते । वे तो बड़े उत्कृष्ट चरित्रवान् थे । इसीमें आदिकविने लिखा है—

चारिक्रेण महाबाहुरपक्षः स लक्ष्मणः ।
तस्थवेकान्तमाश्रित्य रामशोकसमन्वितः ॥

(वा० रा० १.३३।२७)

अर्थात् चरित्रमें ओलखमण्य बहुत बढ़े बढ़े थे । अतः वे आगे न बढ़े और श्रीरामचन्द्रजीके दोक्ये विकल एकान्त स्थल देख लब्दे हो गये । इननेमें नशेमें चूर तारा लक्ष्मणजीके सामने आती है । मारे नशेके डसे अपने शरीरके बल और आभूयणोंकी भी सुष-तुष नहीं है । उसके दौर अर्होंके बहाँ पड़ते हैं ।

सा प्रस्तुलन्ती मदविहानाक्षी
प्रलम्बकाशी गुणहेमसृता ।
सलक्षणा लक्ष्मणसत्त्विधाने
जगाम तारा नमिताङ्गयहि ॥

(वा० रा० १.३३।३८)

ताराको इस दशामें देख लक्ष्मणजी 'अवाइमुखो-ऽभूम्ननुरेत्रपुत्रः' अर्थात् राजकुमारने गरदन नीची कर ली ।

इस प्रसङ्गमें यह स्पष्ट है कि यदि कोई भी बेहयाई-कर उस जमानेके किसी पुरुषके सामने चली आती थी तो उस जमानेके पुरुष, आजकलके कुछ लोगोंकी तरह उनकी और ताकते तक नहीं थे और न आवाजें कहते थे, किन्तु मारे लजाके गर्दन नीची कर लिया करते थे ।

अब आइये, लहानमें भी हम आपको दिखलावंगे कि वहाँ उच्च धरानेकी क्षियोंमें कई परदा-प्रथा प्रचलित थी और यदि कोई भी परदेढ़ा अवहेलना करती थी तो उसके प्रति उसके पति किस प्रकार विगड़ते थे । जिस समय रावणके मारे जानेका दुम्संवाद रावणके रनवासमें पहुँचा उस समय रावणका अन्तःपुरावासिनी ललनाएँ आपारशोक-मारातमें निमग्न हो, पांच-प्यासे रक्षाहृष्टमें पड़ैचीं । पति के शबसे लिप्त विलाप करती हुई मन्दोदरी कहने लगी—

दृष्ट्वा न यत्वर्मि कुद्दो मार्महानवुपुण्डिनम् ।
निर्गतां नगरदागतपद्म्यामिवागता प्रनो ॥
पर्येष्टदार दागस्ते भ्रष्टवावपुण्डिनतः ।
वद्विनापितान्मन्त्रीन् कथं दप्त्वा न कर्पामि ॥

(वा० रा० ६। १११। ६१-६२)

हे स्वामी ! मैं धूंघट कादे बिना नगरके फाटकमें निकलकर पांच-प्यासे यहाँ चली आयी हूँ, तुम इसके लिये सुझाये कुद्दो क्यों नहीं होते ? देखो, मैं ही अकेही नहीं प्रस्तुन—तुम्हारी प्यासी समस्त पक्षियां लजा त्याग और धूंघट सोंज आन्दःपुरके बाहर निकल आयी हैं—इनको इस दशामें देख नुग्हें क्रोध बयों नहीं आना ?

आदिकविने इनना स्पष्ट धूंघट और परदेका विवरण दिया है । इसपर भी केवल रामायण-महाभागतका नाममात्र सुननेवाले-इन्हों दोनोंका नाम लेकर वे-परदारीका समर्थन किया करते हैं । किन्तु इन भोखे भाइयोंको यह नहीं समझता कि अयोध्यामें नो यहाँ वह परदेका आश्रह था कि

रत्नदासकी खास छोड़ीपर छियों, बालकों और बूढ़ोंको ही
पहरेपर रखा जाता था । देखिये—

प्रणन्य रामस्तान् वृद्धास्तृतीयाण् दर्दर्शसः ।
छियो बालाश्च वृद्धाश्च द्वारक्षणतपराः ॥
(वा०८० २ । २० । १२)

उन बूढ़ोंको प्रणामकर श्रीरामजीने तीसरी छोड़ी पर
छियों, बालकों और बूढ़ोंको पहरा देते हुए बेखा ।

आदिकविके लेखसे यह भी पता चलता है कि
अयोध्यापुरीमें अविवाहिता कल्प्याणोंको छोड़, विवाहिता
छियाँ वाइका आदिमें भी नहीं जाती थीं । देखिये—

नाराजके जनपदे उद्धानानि समग्रताः ।

सायद्वे क्रीडितुं गनित कुमाराण् हेमभूषितः ॥

अर्थात् अराजराज्यमें सोनेके गहनोंसे भूषित कुमारियाँ
सायंकालके समय बागोंमें कीड़ा करने वहीं जाती थीं ।

इन सब प्रमाणोंके रहते कोई भी विवेकी एवं विचारवान्
पुरुष रामायणके आश्रप्त यह नहीं कह सकता कि
उस कालमें परवा था ही नहीं । जो ऐसा कहता है, कवि
अकबरके कथनानुसार उम मर्दकी 'अङ्गपर परदा' पढ़
गया है ।

वैदेही-विलाप

१
जिसे प्राणोंसे भी, अधिक प्रिय माना शुल्क था ।
तुम्हे हाना स्वामी, विरुद्ध शृणको भी दुखद था ॥
जिसे प्रासादोंमें, व्यथित करते चित्र पट थे ।
जिसे हा । देत्योंके, सचमुच खिलाने विकट थे ॥

२
तुम्हारी बामाजी, अवनि पग जो शी न धरती ।
सदा आमोदोंमें, नित नव रही भोद भरती ॥
सरोजाजी भार्या, रघुपति । वही कष्ट सहती ।
दिल्ला ने तेजर्वी, अरुण मुपुमा बाल रवि-सी ॥

३
जिसे खोया स्नामी, गिरि बन गुफा खोजत रहे ।
लत्ताओंसे पूँछा, वहु विधिनक संकट सहे ॥
ठड़ाया नोड़ा था, धनु सहज ही जीवन दिया ।
लज्जा मूर्पोंको, मम हृदय या हर्षित किया ॥

४
बताओ लाये हो, कनक-मृग भंग यह कहाँ ।
बिठानेको कोई प्रियवर नहीं थासन गहाँ ॥
रमाये भूमी-सी, जनकतनवा योगिन बनी ।
पही है लक्ष्मी, चहुं घिर रही निरचर अनी ॥

५
तुम्हारी शोभा श्री, निरम सुख होता अनुल था ।
मुझे सेवामें ही, विभव मिल जाता विपुल था ॥
अहो अन्तर्यामी । सब प्रकट है बात मनकी ।
गिनाये व्याघात, अब अधिक क्या हाय ! तनकी ॥

रमाशङ्कर मिश्र, 'अपत्ति'

६
दगोंसे धारा-सी, अदिगुर महा उष्ण बहती ।
चितामें चिन्ताकी, विगुड सहसा आज दही ॥
तुम्हारी ही माला, विरह-व्यथिता मौन जपती ।
तुम्हारी वैदेही, अहह विधि ! यों हैं कल पती ॥

७
सुमित्रके प्यारे, लग्न तुम्हका था कटु कदा ।
उसीसे तो देखो, लग्न इतना संकट सहा ॥
कहाँ हो आओ तो, रघुपति ! सुकाया किमि कहो ।
अहित्या-सी नारी, सहज तुम तारी प्रमु अहो ॥

८
शरद्राका-स्वामी, तपन तनमें और मनमें ।
बढ़ाता ही जाता, जलन अब ऐसे विजनमें ॥
निदाय उवाला-सी, उर उठ रही हाय ! अब तो ।
प्रमो ! होने जाते, विमुख अपन आज सब तो ॥

९
पतिप्राणा सीता, प्रमु-अनुचरी लोग कहते ।
विरामी ध्यानी भी, नित युगल-जोड़ी निरखते ॥
विसारेंगे वे भी, अहह ! मुक्तको मान अबहा ।
कहायेगी स्वामी, रघुकुल-वधु क्या न सबला ॥

सतीके मरणान्त प्रायश्चित्का गुप्त कारण

(लेखक-श्रीरामचन्द्र शृणु कामत)



त्यन्तिक हेम यानी 'परम कल्पाणा' के अधिकारी 'कल्पाणा' के रसिक पाठक इस लेखक शीर्षक देसकर सम्भवतः आश्रय कहेंगे और इस रामायणाके विद्वान् लेखक भी कहेंगे कि इस विशिष्ट सुन्दर अंकके लिये सम्पादकने जिन शताधिक विषयोंकी सूची तैयार की थी, उसमें उपर्युक्त नाम नहीं है। तथापि निम्नलिखित विषय पढ़नेपर मुझे आशा है कि वे इसको सूचित विषयोंके अन्तर्गत ही मानकर इसे श्रीरामचरित्रके पूर्णाचका निर्दर्शक ही समझेंगे।

कुछ समय पूर्व एक प्रसिद्ध कानून-व्यवसायी सजनने अपने द्याव्यानमें वह प्रतिपादन किया था कि 'श्रीराम ईश्वर-के अवनार नहीं थे, वे एक महान् सद्गुणमयन्न नरपति थे।' जो लोग पाश्चात्य शिल्प-टीकाके कारब्ब अपर्णी सनातन-धर्म-संस्कृति तथा औपनिषद-विद्यासे कुछ दूर चले गये हैं, जिन्होंने 'प्राय वगान्त्रोधन' इस श्रुति-वचनानुभार शास्त्रोंका उचित रीतिसे अभ्यास नहीं किया है और जो मनमाने तौरपर अर्थ लगाकर अपनेको परिहनम्भन्य मानने हैं, उनके विचारोंका ऐसा बन जाना कोई आश्रयकी बात नहीं है, हुँस नो इतनाही है कि इन उपाधिधारी आनुनिक विद्वानोंको सर्वभावारण सर्वज्ञ और नेता मानने हैं और इनके वचनोंका अनुसरण करना चाहते हैं।

जैसे कानूनका बड़ेसे बड़ा डिप्रीप्राप्त विद्वान् रोगीका निदान नहीं कर सकता, जैसे शिल्प और अनुभवसम्बन्ध नामी डाक्टर मरीनके पुर्जे नहीं सुधार सकता और जैसे मिल घलानेवाला फृष्ट छास मेकेनिकल इंजिनियर सेन्ट्र निर्माणमें भलाइ देनेका अधिकार नहीं रखता, वैसे ही शास्त्र-ज्ञान-गृन्ध मनुष्य शास्त्रीय गुण विषयोंपर भी कुछ नहीं कह सकते। किसी भी एक विद्याविशेषमें कोइं आहे कितना ही निपुण व्यां न हो वह सभी विषयोंपर मत देनेका अधिकारी नहीं है। जो जोग किसीको सब विषयोंमें अधिकारी समझते हैं वे भूल करते हैं और अपने आपको ऐसा समझनेवाले तो शृणुभिमान और धृभका भावरक्ष करते हैं।

अतएव जिसने जिस विषयका शास्त्रोंके हारा अध्ययन किया है, उसीको उक्त विषयका प्रतिपादन करनेके लिये आगे बढ़ना चाहिये और सुविज्ञ सजनोंको भी उसी विषयमें उसका मत मानना चाहिये, अन्यथा अनर्थकी बड़ी सम्भावना है।

'श्रीराम मनुष्य है या ईश्वर' इस सव्वन्धमें कुछ समय पूर्व मैं बेलगांवके एक मराठी पत्रमें यथागति बहुत कुछ लिख चुका हूँ, इसके अतिरिक्त 'श्रीरामचरित्रहस्य' नामक मराठी पुस्तकमें भी इस विषयमें बहुत कुछ स्पष्टीकरण किया गया है। उक्त पुस्तकका हिन्दी-रूपान्तर 'कल्पाणा'के तृतीय वर्षके ११ वें अंकमें प्रकाशित हो सकता है, अतएव यहाँ दुहरानेकी आवश्यकता नहीं। अवश्य ही सारलूपमें इतना निवेदन कर देता हूँ कि भगवान्-के अवतार-का रहस्य बड़े-बड़े ज्ञानियोंके समझमें भी नहीं आता। स्वयं बहारीने मुख्यते अमदादः 'हमारे सदृश पुरुष भी मोहित हो जाते हैं' कहा है तब अन्यान्य ज्ञानियोंकी नो बात ही कौन-सी है ?

श्रीष्कनाथ महाराजने भागवतके एकादश ऋषज्ञानियोंके रूपान्धकी दीक्षामें व्याधस्तुतिके प्रमंगान्तर-ग्रन्त कहा-है प्रभो ! तुगुणानीत देहातीत रहस्य जानना होकर भी जीताये (खेद्यामे) कैमें देह कठिन है ।

धारणा करना है ? और किर उन अवतार-शरीरोंका कैमें व्याग करता है ? इन प्रश्नोंका रहस्य यहाँ आदि देवतागण भी नहीं जानते। व्याङ्गानकी प्राप्ति मुख्यपूर्वक हो सकती है परन्तु तेरे लोगों-देह धारणका सत्त्व उन बड़े-बड़े व्याङ्गानियोंके भी पूर्णरूपमें जाननेमें नहीं आता। तात्पर्य यह कि इन्द्र, ब्रह्मादि देवता जो अपरंपरा जानी हैं, वे ही जब भगवान्-के अवतार-रूपको पहचाननेमें मोहित हो गये, उनको भी जब अवतार-रूपका अन्न नहीं मिला तब अन्य व्याङ्गनियोंको तो गति ही क्या है ? श्रीकृष्णावतार-के समय हनुम और बहारीकी जो दुर्दशा हुई थी, उसको सभी जानते हैं। इसी प्रकार श्रीरामावतारमें भवानी सती देवीकी भी बड़ी दुर्दशा हुई थी, इस कथाको महाराहृ-

सम्मोने जिस प्रकार बर्णन किया है, उसीका सारांश यहीं दिया जाता है।

श्रीरामका सीता-विरह, शंकरकी अचल निष्ठा और सर्ता-मोह ।

रावणद्वारा सीताके हरे जानेपर श्रीराम सीता-वियोगसे व्याकुल हो गये। पूर्णिमाका शीतल सुधांशु उन्हें श्रीराम-मध्याहके प्रभर सूर्य-सा प्रतीत होने लगा। सुन्दर शीतल पवनके भक्तोंरे उन्हें वज्रपातका अनुभव कराने लगे। लक्ष्मणने पुष्पशश्या रथकर उन्हें उपर पुलाया, पर वह फूलोंकी कोमल पंखियाँ श्रीरामके बदनमें सूईकी तरह तुलने लगीं। वे न तो फूलोंकी सेजपर सो ही सके और न उपरसे उटकर कहीं एक स्थानमें शान्तिसे बैठ सके। एक साधारण मनुष्यकी भाँति 'हा सीते' 'हा सीते' की पुकार मचाते हुए शोकाकुल हो बनमें इधर-उधर भटकने लगे। गुसाईंजी लिखते हैं—

पूर्वकाम गम मुखरासी। मनुजचरित कर अज अविनासी॥
पर-नुख-हरन सो कस दुख ताही। भा विशार तिन्हूँ मनमाही॥
हा ! मुनखानि जानकी सीता। रूप-सील-ब्रत-नम-पुनीता॥
लक्ष्मिन समुज्जाप बहु भैर्ता। पूछत चले रहा तरु पाता॥
हे खा मृग हे मधुकरसी। तुम्ह देखी सीता मृग-मैनी॥

सीताके वियोगसे उनकी विचित्र दशा हो गयी, वियोगके कारण उनका संयोग-चिन्तन जाग उठा और अन्तःकरण सीतामय बन गया, यहाँनक कि वे 'सीता सीता' कहकर वृक्ष और पाण्डायोंको आलिङ्गन करने लगे।

श्रीरामकी यह दशा देखकर लक्ष्मणको बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने प्रभुको समझानेके लिये बहुत प्रयत्न किये, परन्तु सभी स्वर्थ हुए। आकाश-स्थित देवता प्रभुकी प्रायेक लीलाको कौतूहल-पूर्ण इष्टिसे देख रहे थे। विश्वकर्णक रावणका भगवान् श्रीराम कब सकुल संहार करेंगे, वे इसीकी प्रतीक्षा कर रहे थे। भगवान् शंकर तो अपने आराध्य श्रीरामके गुण-लीला-चिन्तनमें सर्वदा ही दूबे रहते हैं। वे प्रेमपूर्ण इष्टिसे श्रीरामके विचित्र लीलाएँ देख रहे थे। अर्धाङ्गिनी भवानी दाहायियो सती भी उसी इष्टिसे देख रही थी परन्तु उसकी अन्तर्दृष्टिमें कुछ अन्तर उत्पन्न हो गया। श्रीरामके 'माया-मनुष्य-रूप' को वह भूल गयी। उसने भगवान् शंकरसे पूछा कि 'आप जिन रामको पूर्णब्रह्म मानते हैं क्या वे यही हैं?' शंकरने कहा, 'हाँ, यही मेरे पूर्णब्रह्म राम हैं।' सती बोली—'वह तो 'सीता सीता' की

पुकार मचाते हुए व्याकुलतासे पेढ़-पत्थरोंको भी छातीसे लगा रहे हैं?' 'शिवजीने कहा' 'तथापि यह पूर्णब्रह्म है।' सतीने पूछा—'व्या आप हन्दीका व्यान करते हैं?' शिवजी बोले, 'मेरे व्यान, शान, विज्ञान सभी कुछ यह पूर्णब्रह्म राम ही हैं।' भवानीने कहा—'तब तो आप दोनों ही-भगवान् और भक्त एकसे ही विषयी और कामी दीख पड़ते हैं।' इनना कहकर वह हँस पड़ी। इसपर शिवजीने कहा, 'मेरा राम इस समय विषयी और कामीकी तरह रोता है, गिर पड़ता है, तड़पता है, परन्तु तू निश्चय समझ कि यही परब्रह्म है।'

बन्य शंकरकी निष्ठा ! किसी भी अवस्थामें जिसके मनमें प्रभुके प्रति किञ्चित् भी विकल्प नहीं पैदा होता, वही तो सच्चा निष्ठावान् है !

सतीको मोह हो गया था, उसने शंकरके सतीका कपट निश्चित बचन सुनकर उनसे कहा—'यदि मैं रामको छोड़ दूँ तो ?' शिवजी बोले, 'तब हम समझ लेंगे कि यह ब्रह्म नहीं है।' भवानी बोली—'आप कहें तो मैं ही स्वीकृत रामको छोड़ दूँ।' शंकरने कहा, 'वे पूर्ण साक्षात् हैं, तेरी इच्छा हो तो परीक्षा कर देख !' इनना सुनते ही सर्तीने सीताका रूप धारण कर लिया और वह उसी ओर गयी, जहाँ श्रीरामजी विचर रहे थे। सतीजी सीताके देखमें (हँसती हुई) श्रीरामकी अर्धाङ्गोंके सामने जाकर लड़ी हो गयी। श्रीरामने उसकी ओर चिना ही ताके मुँह फेर लिया और 'हा सीते' 'हा सीते' पुकारने लगे। 'इधर देखिये, मैं आ गयी' कहकर सती फिर सामने गयी, भगवान् उसे वहीं छोड़ दूसरी ओर फिरकर पहलेकी भाँति पेढ़-पत्थरोंको आलिङ्गन करने लगे। वह बार बार श्रीरामके सामने गयी परन्तु राम उससे विसुख होकर वैसे ही 'सीते सीते' पुकारने लगे। यह देखकर लक्ष्मणने कहा—'रघुराज, श्रीसीतादेवीके सामने आ जानेपर भी आप शोक क्यों कर रहे हैं?' यह सुनकर भगवान् लक्ष्मणपर चिराङ्गे। जब लक्ष्मणने फिर चिनती की तो राम उन्हें हँसते हुए बोले—'तौमित्र, तू भाई होकर भी मुझसे बैर क्यों कर रहा है? यहाँ कहाँ सीता आयी है? मेरा तो अन्तःकरण उसके लिये दग्ध हो रहा है।' यह सुनकर लक्ष्मणने सोचा कि 'सीताके विरहमें रामको उन्माद हो गया है, इसीलिये सीताका नाम सुनते ही मारने दौड़ते हैं, अतपूर्व मेरा मौन रहना ही उचित है। माता सीता आप ही समझा देंगी।'

इधर स्वर्गमें देवगण भी बड़ी दुष्कृतियाँ पढ़ गये और परस्पर कहने लगे कि 'रावणके यहाँसे छटकर सीता कैसे यहाँ आ गयी ?' अपियोंको भी आश्रय दुष्टा । यहाँ तक कि ब्रह्माजी भी विस्मित होकर यह कहने लगे कि 'क्या रावणको भस्म करके सीताजी यहाँ आ गयी है ?' सारांश, ब्रह्मादि देवता भी इस रहस्यको नहीं जान सके । परन्तु पूर्णग्रन्थ सर्वान्तर्वासी, सर्वज्ञ श्रीरामने यह भेद जान लिया । लक्ष्मणके मौन होनेपर 'सीते ! सीते !' पुकारते हुए श्रीरामका हाथ कृत्रिम सीताने एक लिया और कहा— 'सावधान होइये, मैं तो आपके सामने खड़ी हूँ किर व्यर्थ ही आप इधर उधर 'सीता, सीता' चिह्नाते हुए क्यों दौड़ रहे हैं ? क्या ऐसा करते आपको लज्जा नहीं आती ? आप तो सदा कहा करते थे कि मैं नित्य सावधान रहता हूँ । क्या आपका यह ज्ञान छी-वियोगमें सर्वथा जाता रहा । सगे भाई भक्त लक्ष्मणके विनय करनेपर आप उसे ढौंटते हैं । थोड़ी-सी देके लिये मेरे आँखोंसे ओक्जल होते ही आप हतने जड़ कैसे हो गये ? मैं तो बनमें छिपकर आपकी यह दशा देख रही थी, जब मैंने देखा कि आप तो पागल ही हो रहे हैं तब मैं दौँफी आयी ।'

स पष्ठितो नरप्रेषः प्राज्ञः कर्मविदो वरः ।
अप्राज्ञ इव कि राम ! मार्या हत्यार्विमुहूतं ॥

'अब आप इस मोहको छोड़कर पञ्चवर्षीमें बालिये—' बनवासको अवधिमें थोड़े ही दिन शेष रह गये हैं, उन्हें विताकर हमलोग अयोध्या लौट चलेंगे ।' सर्वीके इम बच्चनसे भगवान् श्रीरामने हँसते हुए कहा—''माता, मैं आपके चरण दूता हूँ, आप मुझे मन मनाइये, मैं तो भगवान् शङ्करका एक दीन बालक, उनका एक अनन्य लिक्कर हूँ, किर आप मेरे साथ ऐसा व्यवहार क्यों कर रही हैं ? भगवान् शङ्करको अकेले छांदकर मुझे नंग करनेके लिये सीनाका रूप धारणकर आप यहाँ क्यों आयी हैं ?'

श्रीरामके इन बच्चनोंको सुननेही सर्वी सीताके व्यरूप-को न्यागकर तुरन्त श्रीरामके चरणमें गिर पड़ी और बोली कि 'भगवान् जांकने मुझसे कह दिया था कि श्रीराम नित्य सावधान और सर्वज्ञ है, उनके सर्वाप तुम्हारा कपट नहीं चलेगा ।' अब मुझे उन बच्चनोंका निश्चय हो गया । मैं शिवजीकी शक्ति हूँ, मैंने अपनी आत्मर्थ्य मायामें सीनाका व्यरूप बना लिया था । मुझे ब्रह्मादि देवता भी नहीं पहचान सके । आपका ज्ञान अग्राध है, आप अग्राध गति

हैं, आपके सामने किसीका भी कुल-कपट नहीं चल सकता । आप ऐसे सर्वज्ञ होकर भी पागलकी भाँति ऐद-पहाड़ोंको अर्जितन करते हुए क्यों भटक रहे हैं ? आपमें सीता-विरहका कुःख और कामकी वासना रसीभर भी नहीं है । हे राम ! आप पूर्णग्रन्थ हैं । मुझे इस बातका निश्चय हो गया । किर आप विरह-वेदना न रहनेपर भी 'सीते सीते' पुकारते क्यों जंगल-जंगल घूम रहे हैं, कृष्णा मुझे इसका रहस्य समझाइये ।' यों प्रार्थना करके सतीने श्रीरामके चरण पकड़ लिये ।

ध्रोता केसा इसके उत्तरमें श्रीरामने कहा, 'देवि ! मेरी जीजा श्रीशिवजी जानते हैं, वे आप-होना चाहियें ।' कहीं कुछ कहना भी पढ़े तो पहले ध्रोताके अधिकारकी परीक्षा कर लेनी चाहिये । शुद्ध पात्र बिना रहस्यकी बात नहीं बतलायी जा सकती । ऐसे ओता छुली, बिकादी, धूर्ण, बड़क, नान्तिक, कपट-भाँपी, कुलर्की, आलसी और दग्धी नहीं होने चाहिये । शुद्ध सतो-गुणी, कामिनी-काष्ठनका त्यागी, पूर्ण परमार्थी और विवेक-सम्पद भनुम्य ही इस ज्ञानरहस्यका अधिकारी हैं । आपके मनमें ज्ञानका अभिमान है, इससे आप शिवजीके बच्चनोंका तिरस्कारकर मुझे लखने आयों, किर भला, मैं आपके सामने कोई बात कैसे कहूँ ? किसको पतिव्रतन, गुरुव्रतनपर विभास नहीं, उमे गोपन रहस्य नहीं बतलाना चाहिये ।'

ज्ञानाभिमानकं भगवान् के इन बच्चनोंको सुनकर मर्ती रक्षण । यहुन ही लक्ष्मि हुई, वह मनही-मन उक्षण ।

कहने लगा कि 'मैं गुरुरूप पतिके बच्चोंका उल्लंघनकर, शंकरकी यान नहीं सुन श्रीराष्ट्रनाथजीको छलने आर्या, आग लगे मेरे इस ज्ञानाभिमानको ।' यों कहकर वह पश्चात्तापसे रोने लगा । मात्रु मन्त्रोंके मिलनेपर उनके गुण-दोष हँडना, उनसे छल करना, उनके गुणोंमें भी दोषोंका आरोपकर 'उनका निन्दा करना, मुख्यपर कुछ और पीछेसे कुछ और ही कहना, उनपर अद्वा रखनेवालोंकी निन्दा करना, अथवा उनको मूर्ख ठहराना, ये सब ज्ञानाभिमानके लक्ष्य हैं । सर्वीने किर कहा कि 'हे राम, मैं आपके लखने आयी, मेरा कपट आपके सामने नहीं चल सका, तब भी आपने मुझपर कोई नहीं किया । इससे मेरा मन पकड़ गया है । आपके दूर्जनसे मेरा सरा

ज्ञानाभिमान अब चुका है । छल-कट नष्ट हो गया है । हे राम, मैं आपकी शपथ करके ऐसा कह रही हूँ ।'

सतीके हन अनुतापद्युत वचनोंसे श्रीरामका हृष्य पिछल गया और वह अपना गुप्त रहस्य कहने लगे—

वृक्ष-पापाण- हे देवि भवानी ! आपको वीक्षनेवाले
आङ्गिनका पह वृक्ष-पापाण पूर्वजन्ममें जापि थे ।
रहस्य । इन्होंने मेरी प्राप्तिके लिये निष्काम अनुषाम किया था । मेरी चरण-प्राप्तिमें

हनका पूरा सम्मान था, इससे ये सारा अभिमान त्याग-कर वृक्ष-पहाड़ बन गये हैं, कोई वृक्ष बनकर, कोई पहाड़ बनकर और कोई तुष्ण बनकर मेरे चरणोंके नीचे पढ़े हैं । हनकी हृष्णा पूर्ण करनेके लिये ही मैं परम प्रेमसे हनका आलिङ्गन कर रहा हूँ । ये सब मेरे निरभिमान भक्त हैं और मैं भक्तोंके भावका अर्थी हूँ । सीताके बहाने हन सबको हूँदता हुआ बन-बन भटक रहा हूँ । भक्तोंका उदार करने और उन्हें धानन्द प्रदान करनेके लिये ही मैं रोता हूँ, कहीं गिर पड़ता हूँ, कहीं लबसहाता हूँ, पहाड़ों-पर दौड़ता हूँ और बृक्षोंको हृष्य लगाता हूँ । हे सती ! आप यह निश्चय समझिये कि मैं एक कदम भी व्यर्थ नहीं रखता । भगवान् भद्राशिव हम तत्त्वको जानते हैं ।'

परमार्थका शुद्ध भावका अभिमान है, 'सब भूतोंमें भगवान् देखना ।' यही एक स्वार्थका भी स्वार्थ और प्रयान परमार्थ है । गुड़के करेके जैसे न तो कड़प होते हैं और न उनमें कांटे रहते हैं, हर्षी प्रकार ब्रह्मवृत्तिसे किया हुआ कर्म बन्धनकारक नहीं होता । चीनीके बने तूंकोंको कड़ा बतानेवाला ठगा जाता है । हर्षी प्रकार सामुद्धर्मके कर्मोंकी निन्दा करनेवालेका भी अधःपतन होता है । कर्म प्राकृतिक गुणोंसे होते हैं, परन्तु शानी प्रकृतिके गुणोंसे अतीत होनेके कारण कर्मोंसे सर्वथा निर्विष रहते हैं । 'समस्त दृश्यमात्र ही व्यर्थ है,' इस वृत्तिसे कर्म करनेके कारण उनके कर्म व्रह्मरूप ही हो जाते हैं । वह कभी मोहमें नहीं पड़ते । सन्तोंकी महिमा अग्राह है ।

* जो शानीकी निन्दा करते हैं, उनसे छल करते हैं सुर्ति पूजा और सेवा करते हैं उनको शानीका पुण्य मिलता है, (इसराज-कृत वाक्यशृणु ।)

शानीमें वास्तवमें पाप-पुण्य होते हैं । नहीं, जो उनमें पापका आरोप करता है वह पापका और जो पुण्यका आरोप वह है, वह पुण्यका भागी होता है । — समाप्तक

इन साक्षुधोंको वृक्ष-पर्वत न समझकर आप पूर्णमहा समझिये । हतना कहकर श्रीरामने हृष्ण-दृष्टिसे सतीकी ओर देखा ।

सतीकी ब्रह्म- श्रीरामके द्वारा यह उपदेश सुनते ही सती मूर्चित होकर गिर पड़ी । मैं ही एक शक्ति समाधि । हूँ, और वही एक शिव हैं, इस बातको वह भूल गयी । 'अहं' 'कोहं' 'सोहं'की भावना मिट गयी । उसका चित्त चैतन्यके साथ पूकरस हो गया, जिससे सारे भाव लुप्त हो गये । नामरूपका परदा फट गया । हृष्य-प्रदाका भेद नष्ट हो गया, सर्वत्र वृक्ष ही व्यास हो गया, निजानन्दकी लहरें उठीं और निजानन्दमें ही स्थिर हो गयीं । हसप्रकार शिव-प्रिया सतीकी समाधि लग गयी ! छलनेके लिये आशी हुई सतीकी ऐसी अनुपम अवस्था हो गयी । यही सत्संगकी महिमा है, संत आपकार करनेवालेका भी उपकार करते हैं । इसप्रकार पूर्णरूपसे समावानको प्राप्त करनेपर कुछ समयके बाद भवानीको बाढ़ जान हुआ, उसे अस्तित्व विश्व सचिदानन्दधनरूप दीखने लगा ।

यह देखकर श्रीराम बहुत सन्तुष्ट हुए और उन्होंने पूछा कि 'देवि ! मेरी एक बात सुनोगी ?' उमाने दौड़कर श्रीरामके चरणोंपर मस्तक रख दिया और गदगद बालीसे कहा । 'देव ! आपके कारण भेरा मोह नष्ट हुआ, मैं सुख-रूप हो गयी । भला, मैं आपकी आशाका उल्लंघन कैसे कर सकती हूँ ?' श्रीराम बोले, 'भाता ! मैं आपसे एक ही भी खामोंगता हूँ, हृष्ण करके सुक्षे दो, वह यह कि श्रीशंकर-के वचनोंको कभी मूढ़ न समझना, और आह्नें किसीके भी साथ छल न करना ।' इसपर भवानी बोली— 'हे राम, आपके चरण-दर्शनसे ही मेरी सारी तुष्ट वृत्तियाँ दग्ध हो गयीं, अबसे मैं कभी श्रीशंकर-आशाकी अवहेलना नहीं करूँगी । आपके वचनोंसे मेरी अविद्या भस्म हो गयी है । मैं आपकी शपथ व्याकर कहती हूँ कि मेरा सारा छल-कट नष्ट हो गया है । आपके शब्दोंमें सुमे सायुज्य-सुखकी प्राप्ति हो गयी ।' हतना कहकर भवानी श्रीरामके चरण-बन्दन कर आनन्दपूर्वक कैदात्मकी ओर चली गयी ।

वे उनके पापके हिस्सेदार होते हैं और जो एकान्त-भावसे उनका श्रुतिने इसप्रकार शानीके पाप-पुण्योंके अधिकारी बताये हैं—

श्रीलक्ष्मण इस घटनाको वेल रहे थे, सतीके चले जानेके बाद उन्होंने भगवान्‌के चरण पकड़कर कहा कि 'नाय ! मैंने तो इन्हें माता सीता समझा था, परन्तु यह तो शिवकान्ता भवानी निकली । आपने इन्हें छुब पहचाना । सच्चुमुख ही आप सर्वज्ञ और सर्वान्तर्यामी हैं । अब्दा आदि देवता भी इन्हींप्रकार उद्गत प्रकट करते हुए श्रीरामके चरणोंमें सिर नवाकर अपने अपने लोकोंको चले गये । सबका संशय दूर हो गया, श्रीलक्ष्मणको शान्ति मिली ।

श्रीएकनाथ महाराज अपने भावार्थरामायण (अथवायकाशङ्क अ० २०)में लिखते हैं—कि यह उमा-राम-संवाद शिवरामायणमें है और ज्ञानी श्रोता इसको जानते हैं ।

वाल्मीकिने शतकोंटि रामायणोंकी रचना की, जिनके तीन विभागकर शंकरने स्वर्ग, मृत्युजोक और पाताल इन तीनों लोकोंमें बैठ दिया । तीन विभाग कर देनेके बाद शेष दो अवतार 'रा' 'म' बच रहे । दो हेनेसे इनके तीन हिस्से नहीं हो सके, अतएव इनको श्रीशिवजीने अपने करणमें धारण कर लिया । श्रीएकनाथ महाराजने भावार्थ रामायणमें रामायणोंकी एक सूची दी है, उसे कल्याणके पाठकोंके लिये मूळ मराठीमें ही हम यहाँ उपस्थित करते हैं, पाठक सहज ही रामायणोंके नाम समझ लेंगे ।

शिव रामायण दीउ-रामायण । अन्न-पंचमन्त्र-रामायण ।
महा गुह्यक-रामायण । हनुमन्त-रामायण नाटक ॥
मत्स्य-कूमे वराह-रामायण । कालिकाम्बडीचं निक्षण ।
महाकार्ण-रामायण । स्कंद-रामायण प्रसिद्ध ॥
अगस्ति-पांचमी रामायण । पश्चुगार्णिचं रामायण ।
रवि-अग्नि-उक्तम् रामायण । उक्तेन अग्निं उद्गमु वक्त ॥
नंदिप्रान्ते भगव अक्षय । वंड नै भगव-गमायण ।
महाभारतीचं गदायण । वक्त भाषण अविवान ॥
क्रौचटीपीं अद्यापि जाग । वैत्ति राहुष मध्ये पुराण ।
कथा पवित्र रामायण । अति पवन अनुभ्य ॥
विर्मलणापात्रीं जल । निय कथा निक्षण ।
धर्मंडलि संग्रह आपण । भर्मं रामायण धार्मिक ॥

शेषदीर्घींचं निरूपण । शेषकेतु रामायण ।
कथा विचित्र विदान । अति पावन तीर्हीं लोकी ॥
शकर वक्ता स्वयं आपण । श्रोता भवानी सावधान ।
ते शिवभवानी रामायण । कथा विदान विचित्र ॥
सदाशिव स्वयं वक्ता । स्वयं श्रीराम निज श्रोता ।
ते शिवरामायणी कथा । श्रवणीं ऐकतां स्वानंद ॥
स्वयं श्रीराम स्वानंदे पूर्ण । आपणा प्रति वंड आपण ।
ते कथा आत्म-रामायण । गोढ निरूपण सर्वार्थी ॥
जैमीनीकृत रामायण । अपूर्व कथेचं विदान ।
अलैकिक निरूपण । आश्रयंगुक जाण चरित्र ॥

मवानीका दाढ़ायणी सती देवीने कैलास पर्वतचक्र
भनुतापसहित श्रीकांकर भगवान्‌के चरणोंमें
प्रणाम किया । भगवान् शंकर सर्वज्ञ और
केवल धर्मकी ही मूर्ति है । उन्होंने उस समय भवानीमें
कुछ भी नहीं कहा । परन्तु मनमें यह सोचा कि इसने मेरे
परम पूज्य वपास्यदेव श्रीरामके साथ छूल और उनका
आयन्त्र अपमान करके घोर पाप किया । जब इसने
श्रीसीताका—मेरे प्रभु श्रीरामकी पद्मीका हररूप धारण कर
किया तब वह मेरे जिये सीतार्दीके समान पूजनीया हो गया ।
इसके साथ मैं परीका स्वरूप कैसे रख सकता हूँ ? यह
सोचकर शिवजी बहुत ही दुखी और उद्विग्न हुए एवं सतीके
पड़ी-मावको छोड़ दिया तथा अलग रहने लगे ।

सनी कान्ह सीता का नेपा । निन उर भये : विगाद विसेण ॥
जो अब करीं सतीमन प्रतीत । निनै भर निर-गम होइ अनीनी ॥
एह तन गतिहि मेट मोहि नाहीं । सिव मंदस्तप कान्ह गममाही ॥
सन्मुख संकर आसन दीन ॥

सतीको इसमें मृत्यु-मरण दुःख हुआ । उसने दक्षयज्ञ-
को निमित्त बनाकर अपना शरीर भस्म कर किया और
किर हिमाचलके यहाँ जन्म ग्रहणकर पांचनीके नामसे
प्रसिद्ध हुई । नवीन जन्ममें युनः महान् तप करके रामराजी-
को पतिष्ठप्ते प्राप्त किया ।

इन विद्या तपो योनिर्विष्णुर्दितः ।
वामहेनर्दितो देवः श्रीयतः मे जनादनः ॥

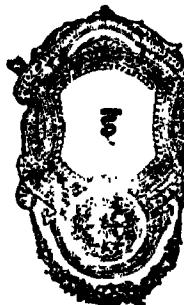
*गुहाईजने भी मनसमें इस प्रत्येकका बहा ही मून्डर उपरेका-प्रद और सोचक वर्णन विस्तारपूर्वक किया है ; सतीके सन्देहसे
लेकर हिमाचल-कन्या पांचनीके विवाहकक्ता प्रसन्न मानसके बासकाण्डमें अवश्य पदना चाहिये ।—सम्बादक

श्रीरामचरित-मानसका दार्शनिक सिद्धान्त

(लेखक—श्रीज्वालाप्रसादजी सिंहल एम० ए०)

मिरा अर्थ जल बीचि सम, कहियत भिल न मिल ।

बन्दों सीताराम-पद, जिनहिं परम प्रिय खिल ॥



वन्दना करते समय कहा है—

उद्घवस्थितिसंहारकारिणी क्षेत्रशहरीन् ।

सर्वदेवस्कर्गी भीतां ननेऽपं रामवल्लभान् ॥

यन्मायवश्वर्णं विश्वमस्तिं ब्रह्मादिदेवामुगः,

यमायवश्वर्णं भाति मकरं रजा यथाऽहेष्ठम् ।

यत्यादप्यमेकमेव हि भवामोमस्तिर्णीर्णवतां ।

वन्दने उभयोगकारणपरं रामव्यवर्णं हरिम् ॥

‘सर्वान् उत्यति, रक्षा और संहार करनेवाली, कलेश हरनेवाली, सर्व श्रेय (समर्पण कल्याण) करनेवाली श्रीरामका प्रिया भीताओं में नमस्कार करता हूँ’ ।

‘जिमकी मायाके वशमें अविल विश्व, ब्रह्मादि देवता तथा असुर हैं, जिसकी भूतामे भूतामें सौपके असकी भौति सब कुछ सम्य-सा प्रतीत होता है, जिसका चरण भवसागरमे नरनेकी हृष्टा करनेवालोंके लिये एकमात्र नौका है उस अशेष-कारण-पर, गमनागमसे प्रभिद् श्रीइरिकी में वन्दना करता हूँ’ ।

इसमें विविध यादोंका कैमा सुन्दर और स्पष्ट समन्वय किया गया है। पहले तो प्रह्लिरूप सीताजीको संसारके उद्धव, स्थिति तथा संहार करनेवाली कह दिया परन्तु फिर भगवान् (पुरुष) रूप श्रीरामजीको ‘अशेष-कारणपर’—समर्पण कारणोंका भी कारण बतायाया। इसके साथ ही श्रीरामजीके लिये वह भी कह दिया कि इन्होंकी सत्ताके

आधारसे वह आसन् संसार भी रस्तामें सर्वके भ्रमकी भाँति सत्य प्रतीत होता है।

इस विवेचनामें निर्गुण और सगुणका कैसा सुन्दर भेल है? गुसाईजीके लिये श्रीरामजी के बल मनुष्यरूप पुस्तकम राम ही नहीं हैं, वे ‘निर्गुण-स्वरूप राम’ भी हैं। यथार्थमें आपके विचारानुसार तो सगुणके यथार्थ स्वरूपको पहचानना निर्गुणमें भी कठिन है। उत्तर-काण्डमें आप स्पष्ट कहते हैं—

निर्गुण रूप मुक्तम अति मनुज न जाँने कोइ ।

मुगम अगम नाना-चरित्र मुनि मुनि-मन भ्रम होइ ॥

वह समस्या जैसे वही ही जटिल है वैसे ही सहज भी है। भगवान्के नाम और रूपके विषयमें आप कहते हैं—
नामहृष्ट दोष ईम उपासी। अकथ अनादि सो सामुद्रि सावी ॥

समाधरण कैमा अहुन ग्रन्थ है। दर्शन, योग एवं भक्तिके अनुयम इसमें भरे हैं। परन्तु वहाँ सगुणके गहस्यपर कुछ नहीं कहना है अतएव वह विषय यहीं छोड़कर केवल दार्शनिक सिद्धान्तपर ही कुछ कहा जाता है—

उपर्युक्त श्लोकमें श्रीरामजीको पुरुष तथा श्रीमीताजी-को प्रह्लिका स्वरूप मानकर, प्रह्लिको मंमारका कारण कहा है और पुनः पुरुषको भी परम कारण बतलाते हुए, मंमारको मृठ—सम्य-सा प्रतीत होनेवाला बनलाया है। यह एक पहेली है, जिसको सुलझाना आवश्यक है।

प्रह्लिति और पुरुषमें क्या भेद है? ये दोनों केवल कहनेमें भिन्न भिन्न जान पड़ने हैं, अनुनः इनमें कोई भेद नहीं है। वाणी एवं उमके अर्थ तथा जल और उसकी लहर, इसके ये दो उदाहरण हैं। वाणी और अर्थ- कोई ऐसी दो पृथक् वस्तुएँ नहीं हैं जो किसी प्रकार जोड़ दी गयी हों। जब मन अपने भावको किसीपर प्रकट करना चाहता है, तब वह जो संकेतकरता है उसमें उन भावका समावेश रहता ही है। या यां कहिये कि संकेत उस भावका बादस्वरूप है। सम्य मनुष्य जब किसी भावमें बातचीत करते हैं तो वह विशेष संकेतोंका प्रबोग करते हैं— यह ठीक है, परन्तु वे संकेत जिन अर्थोंके लिये होते हैं, वे कुछ पीछेसे जोड़े

नहीं जाते। सहस्रों वर्षोंसे कुछ निर्दिष्ट मार्कोंके लिये कुछ निर्दिष्ट संकेत अनेक बार प्रयुक्त होते-होते शब्दका रूप धारणा कर लेते हैं। जिसप्रकार वाणीके अन्तर्गत अर्थ निहित है उसी प्रकार प्रकृति या 'स्वभाव' पुरुषके अन्दर होता है, उससे पृथक् नहीं होता। पुरुषके स्वभावको ही प्रकृति कहते हैं। जैसे जल और उसकी शीतलतामें कथनमात्रका भेद है, वास्तविक नहीं है। गुण और गुणी पृथक्-पृथक् नहीं रह सकते। जैसे यिना गुणके गुणीका कोई अस्तित्व नहीं, वैसे ही गुणीके आधारके बिना गुणका रहना भी असम्भव है—दोनोंकी स्थिति एक ही साथ होगी। विचारके सुभीतेके लिये इनका इत्त भले ही मान लिया जाय, यथार्थमें सत्ता अदैत ही है।

फिर इस संसारका स्वरूप क्या है? गुसाईंजी जब और उसकी जहरका उदाहरण देते हैं। जहर ही संसार है। पुरुषके स्वभावानुसार उसमें स्पन्दन हुआ और उसमें जो स्वरूपभेदको परिणिति हुई, वही संसारका प्रकट स्वरूप है। यह स्पन्दन कैसा हुआ और स्वरूप-भेद कैसे और क्यों प्राप्त हुए? इन प्रभाँका उत्तर इन्द्रेशके नासदीय सुरु (मण्डल १० मृक १२६) में बहुत ही स्पष्ट और सुन्दरताके साथ दिया गया है। यहाँ उस विषयकी चर्चा करनेमें लेख बहुत बड़ जायगा। अन्तु, यहाँ संखेमें इतना ही कहना पर्याप्त है कि 'प्रकृति' रूप स्वभावसे उत्पन्न हुई क्रियाका परिणाम ही यह संसार है।' परिणामवादका भी तो यही सिद्धान्त है।

यह स्वभाव भगवन्-स्वभाव होनेके कारण दोर्पा नहीं कहा जा सकता इसीलिये प्रकृतिको 'हुंशाहारिणी' (हुंशोंको हग्या करनेवाली) तथा 'मवंशेयस्त्री' (मवं कल्पणा करनेवाली) कहा गया है। अरथयकाराङ्गमें भी श्रीरामचन्द्रजीने श्रीलक्ष्मणर्जीको उपदेश देते समय मायाको विद्या तथा अविद्या-भेदमें दो प्रकारका कहा है। पुरुषकी प्रकृति-विद्यारूप माया उन क्रियाओंके जानका भरण्डार है जिनके द्वारा पुरुषका रूपान्तर होता है। यही ब्रह्माके मुखमें निःसून, सरस्वतीहारा ग्राहकशिव वेदोंका ज्ञान है। यह शुद्ध माया है, इसके महारंगमें मनुष्य शरीरः शर्वः पुरुष तक पहुँच जाना है। जीव अपने जिम्मे 'अज्ञान'वश विद्याके यथार्थ स्वरूपका वर्णन नहीं कर पाता, वह अज्ञान ही मोह या अविद्यारूप हुए माया है, यह अविद्या उम परब्रह्मके

'स्वभाव' रूप विद्या (प्रकृति) से भिन्न है यह तो स्वरूप-जनित भेदसे प्राप्त जीवकी अज्ञानता है।

यथापि विद्यारूप प्रकृतिकी क्रियासे आधाररूप पुरुष (परम कारण ज्ञान) में ही रूपान्तर होता है, परन्तु जीव जब इस रूपान्तरको भी यथावत् नहीं जानता, तब इस रूपान्तरके अन्तर्गत जो पुरुष यथार्थ नित्य शान्त एकरस-स्वरूपसे विद्यमान है उसे कैसे जान सकता है? इसी कारण वह इस रूपान्तरको कुछका कुछ समझता है, यही उसका 'रसीमें सर्पका भ्रम' है। रसीरूप आधार तो है ही, परन्तु उसके यथार्थ स्वरूपको न जानकर अज्ञानताके अन्धकारमें उसे सर्व समझता है। यदि रसी सीधी रक्षी हुई है तो उसे सीधा सर्व, और यदि वह देही रक्षी है तो उसे देह सर्व प्रनीत होता है। और कदाचिन् रसीके पास ही रसीका एक छोटा-सा पिण्ड रक्षा होते हो तो उसे सर्पके पास एक ऐसा मेंढक दीखने लगेगा, भानो सर्व उसे अभी निगलना ही चाहता है। यथापि दोनोंका आधार-स्वरूप रसी एक ही है परन्तु उसके दो स्वरूप होनेमें वे एथक् दिव्यलाली देंगे और उनका यथार्थ भेद नहीं दीखेगा वरं अज्ञान जिम्मे प्रकारके भेदोंका उनमें आगेप करेगा वे ही दिव्यलाली देंगे। यदि हम रसीके पिण्ड और रसीको मेंढक और सर्व न समझें, उनके स्वरूप-भेदको यथार्थतः समझें अर्थात् विद्यारूप प्रकृतिको जानेतो हम महजमें ही रसीके यथार्थ स्वरूपका पहुँच जायेंगे। यहाँ विवेदाद-अव्याप्तिवाद आदि मिद्दान्तोंका सार है।

फिर, 'जगन् मिथ्या है, 'त्रिकालमें हुआ ही नहीं' ऐसे वास्तव्योंका क्या अर्थ है? इसका उत्तर यह है कि जगन्-को हम जिम्मे रूपमें देख रहे हैं वह मिथ्या है, वैसा त्रिकाल-में भी नहीं हुआ। इसका अर्थ यह नहीं समझना चाहिये कि कोई रूपान्तर ही नहीं हुआ; रूपान्तर तो हुआ ही। भगवन् श्रीकृष्णजी भी न्यूष कहते हैं कि 'इस अगतकी क्रिया आश्रितें अस्तक, मध्यमें अस्तक तथा अन्तमें अस्तक स्वरूपवाली है। मायाकादी भी इनना भी मानते हैं कि मायाग्रन्थ जीव ही सम्मानको अपने अज्ञानमें देखता है। यहाँ मायाग्रन्थ जीव और शुद्ध आत्मस्वरूपका स्वरूपभेद तो उपर्युक्त होता ही है अर्थात् रूपान्तर-भेद तो होता है परन्तु उस भेदको इस यथावत् महीं समझने, यह इमारा अज्ञान है।

बल और उसकी जहरको लीजिये। हमखोग जहरको जहरते देखते हैं, उन दोनोंको इम भिज वस्तु नहीं समझते, वरं जानते हैं कि जहर जलका ही स्वरूप है। यदि उसमें बर्फके टुकड़े हों तो उनको भी हम जलका ही स्वरूप मानते हैं, किन्तु जो जलमें वहता हुआ कीटाचु जहर और बर्फके टुकड़ोंका दूसरी तरह समझता है, उसे वे सब व्यापार आश्चर्यजनक प्रतीत होते हैं, और विविष्ट स्वरूपकी लहरें तथा बर्फके टुकड़े उसे भिज भिज वस्तुके रूपमें दिखायी देते हैं। उसको उनका स्वरूप अपनी ज्ञानेन्द्रियोंकी अवस्थाके अनुसार हीं व्यक्त होगा और वह उसी दृश्यको यथार्थ समझेगा। यही अवस्था मनुष्यकी है। हमें दृश्य जिम्म प्रकार दीख पढ़ते हैं हम उन्हें देखते हीं यथार्थ समझ लेते हैं—यह तो हमारी भूल है। परन्तु हमें जो भिजता दिखाया पड़ता है उसका आधार—रूपान्तर—ब्रह्मके स्वरूपमें, जलमें जहरके समान हुआ है, हमें कोई सन्देह नहीं। यही बात बाणी और अर्थके विषयमें भी घटती है। बाणीमें अनेक शब्दोंके अनेक अर्थ हैं, परन्तु कहनेवालेके अर्थों और समझनेवालेके अर्थोंमें भेद रह सकता है और कुछ-न-कुछ भेद तो अर्थस्वरूपमें रहता ही है। परन्तु यह नहीं कह सकते कि सुननेवाला जो पृथक्-पृथक् शब्दोंके पृथक् पृथक् अर्थ समझता है, वह भिजता निराधार है, वह भिजता कहनेवालेके अर्थोंका भिजताके आधारपर है। इसी प्रकार जगन्नाथ भिजता ब्रह्मके रूपान्तरके आधारपर है।

यहाँ यह शंका होती है कि 'ब्रह्ममें रूपान्तर कहनेमें तो उसमें विकार हो जाता है फिर उन्म निर्विकार कैसे कह सकते हैं?' इस सम्बन्धमें गुमाइंजोने 'विज्ञ' शब्दका प्रयोग बड़े सहजका किया है। वह कहने हैं कि सांताराम-जीको 'भिज' परम प्रिय है। भक्तिभावमें तो भगवान् दुर्जी-पर व्या करनेवाले हैं, अशरण-शरण हैं हमेलिये आपको 'भिज' प्यारे हैं परन्तु दार्ढनिक तरवर्में आप भिज अथवा विकारको धारण करनेवाले हैं। गुमाइंजी हम कठिनतासे नहीं बबूलते वरं वह हमें स्वीकार करते हैं कि ऐसे विकार तो ब्रह्मके स्वभावजनित होनेसे उनको परम प्रिय हैं। सब पृष्ठिये तो गुमाइंजी ही क्या, जो जोग ब्रह्मको सर्वथा निर्विकार कहते हैं वे भी उसमें विकार उपस्थित कर ही देते हैं। माया चाहे ब्रह्म-पर आवश्यक ढाले चाहे जीवपर, है तो विकार ही। और जहाँ ब्रह्म-ही ब्रह्म है वहाँ माया कहाँ रहेगी? वह ब्रह्ममें ही

विकाररूपसे रहेगी। उसे अनादि पूर्व अनिवैचनीय कह देनेसे तो पीछा नहीं कूट सकता। ब्रह्ममें जीव-स्वरूपका प्राप्त होना ही विकार है। यदि रूपान्तर होनेको ही विकार कहा जाय तो इसमें गुमाइंजोंको कोई संकोच नहीं। नहीं तो भला अद्वैत-सत्तारूप ब्रह्ममें जगत्का अस्तित्व ही कैसे हो सकता है?

तथापि हमका यह अर्थ नहीं है कि इस रूपान्तरसे ब्रह्मके शुद्ध स्वरूपमें कोई अन्तर पद जाता हो। जल चाहे बर्फके स्वरूपमें हो, चाहे लहरके, और चाहे भाफके—बह रहता 'H₂O' हो है। उसके परमाणुओंका स्वरूप यही है, वास्तवमें वह रहता जल ही है, इसलिये हम उन तीनों ही रूपोंको अवश्य पूरकम कहेंगे। हम इष्टिमें उसे निर्विकार कह सकते हैं, क्योंकि उसके मूल स्वरूपमें कभी कोई भेद नहीं होता। मनुष्य जब समय-समयपर भिज-भिज प्रकारके बद्ध और अलङ्कार धारण करता है तो उसमें उसके स्वभाव अथवा व्यक्तिगतमें कुछ अन्तर नहीं आता। स्वर्णोंके अनेक अलङ्कार बनते हैं पर उनके न्यूरूप-भेदमें स्वर्णमें कोई भेद नहीं होता। मिट्टीके अनेक पात्र होते हैं जो स्वरूपानुसार भिज-भिज गुणवाले होने हैं परन्तु उम भेदमें मिट्टीमें कोई भेद नहीं होता। स्वर्ण और मिट्टी जैसेके तैये रहने हैं। इसी भावमें ब्रह्म भी निर्विकार, अपरिवर्तनशील, एकत्रस आदि है।

उपर्युक्त विवेचनसे यह भी मालूम हो गया कि हम रूपान्तरका कारण परब्रह्मकी स्वाभाविक क्रियाशक्ति है। अतएव हम कह सकते हैं कि परब्रह्मके अन्दरकी क्रियाशक्ति प्रकृति या उसकी माया ही संसारका कारण है, और यह भी कह सकते हैं कि परब्रह्म, जो उस शक्तिका धारण करनेवाला मायार्थीश है, सम्पूर्ण कारणोंका कारण है। दोनों ही बातें ठीक हैं।

हम रूपान्तरमें हम शक्तिका सूक्ष्म स्वरूप कहा है? उसका विकास किस प्रकार होता है? संमार कैसे बनता है? और उसमें अज्ञान-युक्त जीव किस प्रकार प्रकट होता है? यह सब आवश्यक प्रश्न हैं और ऋग्वेदके ऋषियोंने हनका उत्तर भी दिया है। हम विश्यमें यहाँ विस्तार-भयसे अधिक नहीं कहा जा सकता। इतना तो स्पष्ट है कि इस रूपान्तरके सिद्धान्तानुसार जीव-सम्बन्धी माया वा अज्ञान यथार्थतः अनादि नहीं है और इसी कारण हमेलिये आधारी ब्रह्म-ही ब्रह्म है वहाँ माया कहाँ रहेगी? वह ब्रह्ममें ही

है वह उस रूपान्तरकी विरोधिनी कियाहारा अपने मूँज—आमस्वरूपको प्राप्त कर लेता है, तभी उसकी मुक्ति हो जाती है। अवश्य ही विद्यारूप माता अनादि और अनन्त है। परब्रह्मके साथ ही उसका स्वभाव, और उस स्वभावकी किया सदासे है और सदा रहेगी।

तब फिर यह प्रश्न होता है कि यदि यह सिद्धान्त ठीक है तो महाबुद्धयोंने पुरुषको अकर्ता क्यों कहा है? अथवा संसारको व्यावहारिक सत्ताके रूपमें सच, परन्तु पारमार्थिक सत्ताके रूपमें मिथ्या क्यों माना है? अतिके अनुपार भगवान्‌का स्वरूप ऐसा है कि जिसमें परस्पर विरोधी-गुणोंका समावेश है जो दूर और पास, सूखम् और सूख, कर्ता और अकर्ता, निर्गुण और संगुण, साकार और निराकार, तथा निर्विकार और सविकार है। वह विरोधी गुण केवल भाव-भेदसे ही कहे जाने हैं। इमने ऊपर देख लिया है कि ब्रह्मके स्वरूपको परिवर्तनशील और अपरिवर्तनशील दोनों ही कहा जा सकता है। इसी प्रकार यहाँ भी भाव-भेद उपस्थित है। पुरुषको अकर्ता, तथा संसारको पारमार्थिक रूपमें मिथ्या कहनेका प्रयोजन, मुक्तिके लिये माधवनका संकेत है। मुक्ति तभी प्राप्त होगी, जब रूपान्तरमें स्वरूप भेदको प्राप्त हुआ जीव विरोधी कियाहारा उम स्वरूप-भेदको नष्ट करके ब्रह्मरूपमें लय हो जायगा। वह विरोधी किया रूपान्तरकी ओर न जाकर एकरसता तथा सरलताकी ओर अध्यन्तर होगी—वह चित्तको चब्बल करनेवाले पथमें न जाकर चित्तवृत्तियोंका निरोध करनेवाली होगी। परन्तु हमें कौन-से स्वरूपका ध्यान करना होगा? परिवर्तनशीलका अथवा अपरिवर्तनशीलका? उम निर्विकार अपरिवर्तनशील एकरस्वरूपके ध्यानमें भिजनायुक्त जगन्‌का अनिन्द्य ही कहाँ रह जाना है? एक बार आँखें बन्दकर भगवन्मरण करके देखिये, वह जगन् किमपकर

हुस होता जाता है और ज्यों ज्यों आप परमार्थ जाभ करते जाते हैं, त्यों-ही-त्यों वह जगत् विस्मृत होता जाता है। परन्तु परमार्थसे उत्तरकर आप ज्यों ही व्यवहारमें आते हैं, त्यों ही जगत् ज्यों-का-त्यों उपस्थित हो जाता है। यही कारण है कि पुरुषको अकर्ता कहा है, क्योंकि अब्बल वित्त जीवको बदि शान्तिकी ओर ले जाना है तो उसका वचन भी शान्ति ही होना चाहिये। और परमार्थसे बात भी यही है। परब्रह्ममें जब प्रकृति अथवा स्वाभाविक किया होती है तो इससे वह नहीं समझना चाहिये कि वह परब्रह्म परिमित जीवकी भाँति हृष्ण और विचार करके किया करता है, उस पारावारहीन तत्त्वमें तो वह किया स्वाभाविक ही होती है और वह ऐसा होनेपर भी शान्त-रूपमें अटल स्थित रहता है। इस अविचल शान्ति और एकरसताकी ओर जब्द ज्ञानेके लिये पुरुषको शान्त और अकर्ता कहा है। इसीका ध्यान करनेमें मनुष्य संमानमें रहता और कार्य करता हुआ भी शान्त-जाभ कर सकता है। इसीलिये गुरुमहार्जी कहते हैं कि 'संगार-सागरमें पार होनेके लिये जिनके चरण ही नौकारूप हैं, ऐसे हरि-को मैं प्रणाम करता हूँ।' अहा! कैसी मुन्द्र शान्ति-प्रदान करनेवाली रचना है—'य-मत्य-वदावनि विद्वान्...ल' आदि में प्रथम भगवान्‌का मरण कर तुरन्त चब्बल मनके लगाम लगा दी, किर उनके निज म्बहूपकी ओर 'य-म्बा...' में संदेश कर दिया। संगार-सागरमें पार होनेके लिये इसी शान्ति-आशार-स्वरूपका ध्यान आवश्यक है। ऐसे शान्त-प्रकाशरूप हरिको प्रणाम करता हूँ। केवल उन्हींको नहीं, 'हूँ शहारिरी' 'मर्वंश्रेष्ठकी' उनको मायाको भी प्रणाम करता हूँ। इस विद्यारूप मायाकी हृषामें ही भगवत् प्राप्ति हारा यमस्त कूँ श दूर होकर परम कल्याण होता है!

संगगम-मय सब अग्र जानी, कर्ता प्रणाम संप्रेम तुच्छनी ॥

गमायण सर्वोच्च महाकाव्य है

दूसरे देशोंके महाकाव्योंकी अपेक्षा भारतका गमायण महाकाव्य सर्वोच्च है।...शाल्मीकिने इस प्रन्थमें जिन अद्भुत सद्गुणोंका वर्णन किया है, उनकी ओर इष्ट डालनेसे यह प्रतीत होता है कि अपने कालमें तो क्या, परन्तु उसके बादकी अनेक शताविंशतीं बीजनेपर भी श्रीगम संस्थापनायण नरपति किसी भी राजवंशमें उत्पन्न नहीं हुए। श्रीगम सर्वगुण-सम्पन्न और प्रजाका ऐसे सम्पादन करनेमें अद्भुत राजा थे।...वाल्मीकिका काव्य आदिकाल्यका स्थान पाने योग्य है और सब रसोंसे परिपूर्ण है।

—गोरीलियों।

कल्याण



अनुसयारं पद गान् माता मिलये वहोरि बुशील चिर्वता ।

रामायणमें आदर्श पातिव्रत-धर्म।

(लेखक—श्रीयुत मेयद कासिम अली, विशारद साहित्यालङ्कार)



मारे महान् आचार्योंने प्राचीनकालमें
जो महावृपूर्ण ग्रन्थ रखे थे उनमें रामायण
एक अभूतपूर्व ग्रन्थ है। इसकी रचना
दृष्टि-महत्वों कर्ते हों गये तथापि आज भी
भारतवर्षमें महत्वोंमें लेकर कोपदिव्यों-
तक इसकी पूजा, पाठ और आरती
होती है। यह सब इसी कारणसे है कि
इस ग्रन्थमें भाँति भाँतिके उपदेश-रचनाओंका बाहुल्य है। इसके
ग्रन्थके शब्द मनोहरताके साथ गृहार्थके भाँतिमें छाले गये हैं
और अपना अनोखा जीहर संमारणमें दिखा रहे हैं।

झी-समाजकी पवित्रता, शक्ति और महानताके विषयमें
जैमा प्रकाश इस ग्रन्थमें छाला गया है वैसा इसरे धर्म-
ग्रन्थोंमें देखनेको भी नहीं मिलता। श्रीसीताजी और
श्रीअनन्दमूर्याजीके सवादमें जो पवित्र-धर्मका वर्णन मिलता
है वह जगन्नके लिये अन्यत्व लाभदायक ही नहीं, मोह-
प्रदायक भी है। पवित्रतके लक्षण, भेद, कर्तव्य और फल-
पर रामायणमें बड़ी धारीकोंमें विचार प्रकट किये गये हैं। झी-
जातिके लिये नपन्था, योग तथा यिदिका आधार केवल
पवित्रत-धर्म ही बतलाया गया है। जो झी पवित्र-सेवामें
विमुक्त रहता है उसे 'धर्म नारि' कहकर सम्बोधन किया
और यह कहा है कि—

पांन प्राप्ति जनप जहं जाई । विभवा दंड पाठ तर्नाई ॥

'जो झी अपने पवित्र के अनुकूल नहीं बलती वह जहाँ
जाकर जन्म लेता है वहाँ जवानीमें ही विधवा हो जाती है,
और हमप्रकार उसे आजीवन भयानक कष्टप्रद परिम्तिका
सामना करना पड़ता है।' झीके लिये काय, बचन और मनमें
पवित्र-पदमें प्रेम ही एकमात्र धर्म बतलाया गया है।

एके धर्म एक ब्रत नेमा । काय बचन मन पति पद प्रेमा ॥

इन्हीं उच्च आदर्शमें युक्त शिक्षा बाहुबिल, तौरें,
कुरान प्रभृति किसी भी ग्रन्थमें नहीं पायी जाती और न उन
ग्रन्थोंमें झी-जातिके लिये इन्होंना सुन्दर सुषुद धर्म-भाग ही
स्थिर किया गया है। आजकल सभी धर्मवालम्बी विज्ञानसे
अपने धर्मकी महत्वाको सिद्धकर अपने-अपने धर्म-ग्रन्थको

इल्हामी, ईश्वरीय घोषित कर सार्वभौम धर्मकी 'ऐटेगट सील'
लगा रहे हैं। परन्तु रामायण-जैसी पवित्रत-धर्मकी शिक्षा
किसीमें नहीं है। रामायणने तो केवल शिक्षा ही नहीं दी,
बल्कि अपने पात्रोंके द्वारा इस उच्च पवित्रत-धर्मका आदर्श
भी उपस्थित कर दिखाया है। जिसमें सोनेमें सुगन्ध आ गयी
है। रामायणके द्वारा सती सीता, सती सुलोचना, सती
अनमूर्या आदिने अपना उच्चब्रत चरित्र संसारमें विरस्थावी
कर दिया है। वह धर्म और वह ग्रन्थ धर्म है जिसने
मानु-जातिके कल्याणार्थ महान् पवित्रतासे युक्त इस अमर
अलौकिक व्रतका आदर्श दिखला दिया।

मैं रामायणमें इसी नाते प्रेम करता हूँ, मैंने कहूँ
सज्जानीय विवाहोंमें कल्याणोंको रामायण दहेजमें देकर उनके
प्रति उम महानताका सङ्केत किया है जिसमें वे पवित्रत-धर्मकी
अनुगामिनी बनकर झी-जातिकी महानतामें गर्व करें। इसमें
मुझे अपने समाजने कलहित करनेका बीड़ा भी उठाया
था। पर मैंने स्पष्ट कह दिया कि रामायण हिन्दू-समाजका ही
ग्रन्थ नहीं है, वह तो सारे मानव-समाजकी सम्पत्ति है।
जब रामायण हमें इम्प्रेस्यकार पवित्रत-सरीसी गौरवान्वित
शिक्षा देती है तब हम उसकी क्यों न पूजा करें? ज़रा
विचारकर देखिये कि रामायणका पवित्रत-धर्म झीजातिका
कल्याण कर सकता है या नहीं? भलीभाँति विचार करनेसे
आप अवश्य ही इसमें शान्ति और प्रसन्नता प्राप्त करेंगे।
पुर्वविवाहमें व्यवहारमय जीवनको उत्तेजना मिलती है, परन्तु
पवित्रतमें झी-जातिमें सब्जे गहरे प्रेम और पवित्रताका सौन्दर्य
उत्कृष्ट होता है जो उन्हें इस लोकमें सुख और परलोकमें
मोहकी प्राप्ति करवाता है। उनके पवित्रतरूप तपोवलसे
महान् पर्वत भस्म हो सकते हैं, मुतक भी जीवित हो सकते हैं।

रामायणके भावोंकी व्यापकतामें तहसीन होना और
उनको कार्यान्वित करना ही उसकी सब्जी पूजा है। वर्तमान
समयमें पश्चिमीय सभ्यताने भारतीय आदर्शकी भव्यताको
मिटानेमें कुछ कसर नहीं रखती, इसमें हमारी नैतिक शक्ति,
प्रायः सभी धार्मिक कायोंके लिये लीण होती जा रही है।
तलाक, पुर्वविवाह तथा झी-स्वातन्त्र्यके आनंदोलनने
'पवित्रत-धर्म'की भावनापर कुठाराधान किया है। इसमें कुछ
भी सन्देह नहीं कि पुरुष-समाजने इस और बड़ी उदासीनता

दिखलाया है जिससे छो-समाजकी कान्तिमें पाश्चात्य सभ्यता अपना पूरा प्रभाव डाल रही है।

अन्तमें सुझे पूर्ण आशा है कि हिन्दू, सुसलमान, ईसाई आदि सभी धर्मविलम्बी हस 'पातिव्रत-धर्म' को

मननकर हसके प्रधारमें सहायक बननेके लिये अपनी विलारी हुई शस्त्रियोंको सञ्चित करेंगे, जिससे मातृ-शस्त्रियोंकी अखलवड ज्योति पुनः एक बार जगतको अपनी दीर्घिसे भमल्हत करेगी और मानव-जीवन कृतकृत्य हो जायगा!

आराध्य राम

जीवन-सागरसे चुनकर मैं थोड़े-से ये मोर्ता ।
लाया तेरे चरणोंमें, हँसकर क्या स्वाकृति होती ॥

प्रार्थना

विश्वके अग्नित रागोंमें मिले जा नेरा भी यह राग ।
झोण कृशकाय किन्तु परिपूर्ण नुहांर पद-पश्चाका राग ॥

X X X

आप्रह

तेरे मालिक ! पागलपनकी दृष्टियाँ ननेक बढ़ा दे ।
जीवनकी घटियाँ चाहे तो अपनी सभी घटा दे ॥

X X X

छत्रि

जबसे प्रिय ! आंखोंमें मेरी बमा नक्षारा वह शृंगार ।
इदय बन गया कहण कुमुक-संकानर नारांका भडार ॥

X X X

जीवन-मरण

एक-एक मुस्कान नुहारी मौ-मौं जीवन देता ।
एक-एक बंकिम भू उनको नक्षण ही हर उत्ती ॥

X X X

समृद्धि

नेंद्रा स्मृतिमें भरी हुई जो मादकता, मृदु, आम ।
कैसे उन्हें मुरांके देते बने हुए हिय-दाम ॥

X X X

अवन्य

उसी रूपकी उसी लालमामे मुझको नुस बहने दो ।
क्यों? किसनिये कहाँमें कबसे? के मतल भन उठने दो ॥

X X X

प्रेम-प्याला

उसी एक प्यालेमें नेरे जगतीकी मादकता ।
भरी हरे हैं, छिपा हुई है जीवनकी मार्यकता ॥

X X X

प्रेम-राज्य

तेरे प्रेम-राज्यमें मार्यिक ! यह कैसा विचित्र आवर्तन ।
प्रेम नस-अंगर-नृष्टि फिर मधुर अमिय रमका यह दर्शन ॥

X X X

ललक

म हु तेरा उत्तेरा जिस दिन अनुभव होगा ।
नाच उड़ेगा, इलगाउता भर्ता-संदरा होगा ॥

X X X

प्रलोभन

दुर्द रहे मुहर चिरोंमें मेरे अनहट मनको ;
ऐसा रुठिन प्रलोभन मानकर 'मुझ-मेर निवेद जनको ॥

सप गटियों हरिन भूमिपर मेरा मन न दिलाया ।
मार्यिक ! मरिय-दामना-प्यारी रह-रह नहीं दिलाये ॥

X X X

उलहना

हम हैं पानन, चिन्ह नृमंको निर्देश, प्रकहण बन जाना ।
श्रीक कहनक राम ! नुहाँ कहाँ, नृमंको यह बाना ॥

X X X

कामना

जीवनमें माधुन, मरणमें नेरे पदकी आहट ।
ओं चतुर्दिक आगोंकिस करती नेरी मुस्काहट ॥

— कृतकृत्य बलदुरा ।

तुलसी-रामायणमें भक्त-श्रेणी

(लखक—पं० ४० श्रीजीवनशङ्करजी वार्षिक एम० २०)



त-रितोभिषि गोस्वामी तुलसीदासजी
स्मार्तं वैष्णवं ये और उनकी अतौकिक
हाति राम-चरित-मानस भी एक भक्ति-
प्रधान ग्रन्थ है। जिस समय हिन्दू-जाति
बिलकुल निर्जीव होकर भगवान्सह हो चुकी
थी तब गोस्वामीजीने अपनी अद्वृतमयी वाणीसे भक्ति-
मन्त्रद्वारा ही उसको नया जीवन प्रदान किया था। ज्ञान,
विज्ञान, धैरान्य, योग, मोह आदि सभी बालोंकी चर्चा
गोस्वामीजीने रामायणमें की है परन्तु सर्वोपरि भाष्यन
उनके मतानुसार भक्ति ही है। उन्होंने स्पष्ट कहा है कि भक्ति
केवल सबसे उत्कृष्ट भाष्य ही नहीं है बरं तब साधनों-
का परम फल भी यही है—

न द पद-पंकज प्राप्ति निरंतर। सब साधन कर यात फल सुन्दर ॥

इस बातको गोस्वामीजीने अनेक बार कहा है और
यही उनका अटल विश्वामय था और यही उनकी अमूल्य
शिवाहा है। यहाँतक कि भगवान् रामचन्द्रजीके श्रीमुखमें
यही उपदेश दिलाया गया है—

धर्मते विरति जोगं ते व्याजा। व्याजं मांक-प्रद बेद वदाना ॥
जानं बेगि द्रव्यं मे भाइ। मो मम भाति भगत-सुवर्दाह ॥

यह स्पष्ट है कि किसी मार्गंपर आसेप किये बिना
गोस्वामीजी भक्तिको ही प्रधान पद देते हैं।

गोस्वामीजीने अनेक देवी-देवताओंकी सुति-वन्दना की
है, परन्तु उनके इष्टदेव रघुकुल-कमल-दिवाकर भगवान्
रामचन्द्र ही थे, जिनको वे परब्रह्मका मालान् अवतार
मानते थे। इस विश्वासको दृष्टा इसी बातसे प्रमाणित है
कि बड़ कभी भी उनको अपने इष्टदेवके गुणगानका अवमर
मिलता है, इस बातको बड़े बिना गोस्वामीजीमें रहा ही
नहीं जाता—

व्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुण विगत बिनोद ।

मो अज प्रम-भगति-बस कौसल्याके गोद ॥

निर्गुण ब्रह्म ही सगुण होकर भगवान् रामचन्द्रका
अवतार हुआ है। दोनों एक ही हैं—

व्यापक व्याप अहंक अनन्त। अखिल अमोश शक्ति भगवन्ता ॥
सोइ सच्चिदानन्दधन रामा। अज विग्यान रूप बलधाम ॥

गोस्वामीजीका यही मिद्दान्त था। उन्होंने अवश्य
ही सांख्य, वैदिक आदि मिद्दान्तोंकी बातें भी अहीं रोचक
रीतिसे कहीं हैं। और अनेक सूक्षियाँ ऐसी मिलती हैं
जिनका आश्रय लेकर भिज मनावलम्बी अपने-अपने मतों-
को पुष्ट कर सकते हैं। परं गोस्वामीजी निश्चयही सगुण-
उपासनाके पक्षपाती थे और भक्तिके सामने मोहपदको भी
तुष्णि समझते थे।

गोस्वामीजीने ग्रन्थारम्भमें ही इस बातपर इशारा कर
दिया है कि उनकी रामायण “नानापुण्यानिगमाभागम-
सम्मन” है। अपना न तो कोई उनको मत स्वापित करना
था न कोई नया सम्प्रदाय चलाना था। बास्तवमें बात भी
यही है कि उन्होंने नाना पन्थोंका सगुण-उपासनामें
समन्वय कर दिया है। जैसे श्रीमद्भगवद्गीतामें कर्म, ज्ञान
और भक्तिका सुन्दर समन्वय कर परस्परके विरोधको शान्त
किया गया है, उसी प्रकार गोस्वामीजीने भी नाना
मिद्दान्तोंका एकीकरण कर एक राजमार्ग ऐसा बता
दिया है कि सब श्रेणीके लोग उसपर चलकर परमपदकी
प्राप्तिके अधिकारी बन सकते हैं। और वह राजमार्ग है
भगवद्भक्ति, साकार भगवानकी उपासना।

श्रीमद्भगवद्गीताका अनुकरणकर गोस्वामीजीने भक्त-
श्रेणीका वर्णन किया है :

चतुर्विधा भजन्ते भां जनाः सुकृतिर्नोदर्जुन ।

आत्मो जितामुर्थ्यर्थी ज्ञानी च भरतर्वम् ॥

अर्थात् आर्थ, जिज्ञासु, अर्थर्थी और ज्ञानी—ये चार
प्रकारके लोग भगवान्को भजते हैं। गोस्वामीजीने कम
बदलकर हन्हीं चार प्रकारके भक्तोंका वर्णन किया है।
गीतामें जो सूत्ररूपसे कहा गया है, उसीको विस्तारमें
रामायणमें वर्णन किया गया है।

नाम जाह जपि जागहि जोगी। विरति विरञ्च प्रपञ्च वियागी ॥

बद्ध सुखाहि अनुभवाहि अनूपा। अकथ अनामय नाम न रूपा ॥

यह ज्ञानीभक्तका लक्षण कहा है। उसके लिये
गोस्वामीजी अष्टाङ्ग योगका साधन नहीं बताते, जिससे कि

केवल ज्ञानकी ही प्राप्ति होती है। साधन बताते हैं उच्चस्थरसे भगवान्‌का नाम जपना।

जो नहिं करइ राम-नुन-गाना। जीह सो दादुर जीह समाना॥

ज्ञानी-भक्तको ब्रह्म-सूखकी प्राप्ति होती है, परन्तु गोस्वामीजी 'केवल ज्ञान' के पक्षपानी नहीं हैं। भक्तशास्त्रक ज्ञानका ही महत्व विशेष है।

जे अस भगत-उपान परिहरहो। केनक उपान हेतु सम करहो॥
सो जड़ कामधेनु गृह तथागो। सोजत आक फिरह पथ लागो॥

इस भक्तिमय ज्ञानके साधने वे कैवल्य-पदको भी हेय समझते हैं। ज्ञान भक्तिके लिये साधन है उसका फल नहीं है। यही गोस्वामीजीका मिदान्त है। और जैसे गीतामें भगवानने कहा है:—

ज्ञानो ज्ञानो नित्यगत एकभक्तिविद्विषयतः।
प्रियोर्ह ज्ञाननाइव्यधेमह म च मम त्रिदः॥

और आगे ऐसे ही ज्ञानी भक्तको भगवानने जपना ही आनंद बताता है। वही गोस्वामीजीका भी मिदान्त है। यथा—

ग्यानो प्रणह विमेष पिण्डाम।

दृभरा भक्त है जिज्ञासु वा सुसुचु—

जाना चाहें नूह तनि जड़। नाम ज्ञाह त्रिपि ज्ञातहेनूह॥

इसके लिये भी वही उपाय और वही साधन है। नाम-जपकी शक्ति अनित्य है। अस्त्रमयकी प्राप्ति उसमें होती है तो आग्ना, जीव, प्रकृति माया इत्यादि गद्यवर्ती जितनी बातें हैं उनका गहन्य भी उच्चारणमहिन जपने ज्ञान हो जाना है। अन्यत्र जिज्ञासुके लिये जो कठिन साधन बताये गये हैं उनमें गोस्वामीजीका कुछ वास्तव नहीं। जब ब्रह्मसूखकी प्राप्ति नाम-जपमें हो गहनी है तो जिज्ञासुकी तृप्ति कौन बढ़ी जात है?

यह तो हूँ अस्त्रमयविषयकी बात। अवर्यों क्या करे? उसको तो यिद्धियाँ आदिये। भूमारमें विजयी होनेके लिये वा अपनी इच्छाओंकी पूर्तिके लिये अह यिद्धियाँ ही वह आहोना हैं। योगकी क्रियामें ये आम होती हैं और वह भी आनन्द कठिन और अविश्वल परिश्रमके द्वारा। अवर्योंके लिये गोस्वामीजीका साधन सुनिश्च—

साधक नाम जपन लय लाए। हाँडि र्मिद अनिमादिक पाए॥

वही उपाय यहाँ भी बताया गया है। सोम्यारिक सुख-सद्गुरि तो क्या सिद्धियाँ तक नाम-जपके अधीन हैं।

अमिनम भक्त है आर्त। आरत-हरणके जाममें वह शक्ति है कि—

जपाहें नाम जनु आरत मारो। मिटाहें कुसंकट होहिं सुखारी॥

इसप्रकार आर्ते भक्तोंके लिये केवल नामका ही आधार है और फिर—

कलि विसेख नहिं आन टपाऊ।

गीतामी भक्त-श्रेष्ठोंका अनुकरण करते हुए गोस्वामी-जीने भी वे ही चार प्रकारके भक्त कहे, परन्तु साधन सबके लिये एक ही बनाया है। गोस्वामीजीने नाम-माहात्म्य-वर्णनमें कोई कमर नहीं की। यहाँतक कि—

कहहें नामु बद रामने, निज विचार रनुमार।

और अन्तिम उपदेश है—

रामनाम मणि दीप धर जीह देहरी द्वार।

कुलमी भाव शादिरे नै चारमि गतियार॥

रामनामको मणि कहा है, तेल, वनी आदिका दीपक नहीं। क्योंकि जपका साधन मध्यमे मग्नस है। कुछ यन्मेहा नहीं। साधन-भृष्ट दोनोंका भी भय नहीं। 'जीह' में मंकेत उच्चारणका है। और 'भीतर' 'शादिरे' में निर्गंगा और मग्नुल दोनोंका अनुभव इस यन्ममें होना सम्भव बनाया है।

गीता और गमायणकी भक्त-श्रेष्ठोंकी समानता और उनका भेद इसप्रकार मंजुंपरमें कहा गया है। गमायणमें इसका विस्तार अधिक है और उसको माहित्यिक ग्रन्तिमें भी निरूपण किया गया है। परन्तु गमायणमें जो विवरण हैं वह एक और भक्तका बरान है जो उपर्युक्त चारोंमें बढ़कर है।

मनु रामन-हान रे राम-मरीन रम नेम।

नाम भृष्टम-पिण्ड-द्वार भनद रुम्य मन मीन॥

वे हैं—सकल कामना-हीन। ज्ञानी भी ब्रह्मसूखका ज्ञात्वा होता है, अनेक सकारी हैं। ये पूर्णांतरनिमें निर्माम-भावमें दृढ़ रहने हैं। किंतु फड़-विशेषको इनकी इच्छा नहीं। भक्ति ही जिनके लिये साध्य है और भक्ति ही साधनका परमफल है। राम-भक्तिके रममें सीन हैं और उसमें भी बद्रकर जो रामनाम है उसके अमृत-धरोवरमें महा महानीर्वा नाहूँ रहते हैं। रममें अमृतका महत्व विशेष है, सो राम-भक्तिसे भी राम-नामका अधिक माहात्म्य दिखाते

है। ऐसे समन पुलव एक वज्र भी नाम बिना जीवित नहीं रह सकते, अतएव भक्तोंके समान हैं। ये भक्त सबसे ऊँची श्रेणीके हैं और उनकी संज्ञा प्रेमीकी है। गीतामें हम इनके भक्तोंका वर्णन नहीं, और न नामका ही ऐसा महत्व कही बर्चित है।

गोस्वामीजीने भक्त-श्रेणीके बण्डनको उपमा, उदाहरण द्वारा कवितासे जो भाष्यिक रूप दिया है वह वज्र भवनाहर और विलक्षण है, अब प्रत्येक श्रेणीके भक्तोंका उदाहरण और उपमा सुनिये और गोस्वामीजीकी उकियोंपर विचार कीजिये।

लक्ष्मणजी आरामजीसे कहते हैं—

उ.पर कोक मुकुरा खग नाना। हरन सकल निसा अदाना॥
परेहि प्रभु मव मगन नुमहर। होडहाहि टुट धनुष मुखां॥

'कमल, कोक, मधुकर और खग'से चारों प्रकारके भक्त की ओर इशारा है। ज्ञानी भक्तोंका कमलके भवश कड़ा है। जाक और सन्त-समाज रामायणमें ज्ञानी भक्त बनाये गये हैं। जनकजीका वर्णन है—

जे ब्रिंच निरंतरप अथ। पद्म-पम रिंम जन जय जाए॥

जैसे जलमें कमल बिना भाँगे रहता है वैसे ही जनकजी संमारमें रहते हुए भाँ उपरके प्रपञ्चमें अलग रहते हैं। सूर्योदय पर कमल चिलते हैं। भ्रांगमके दर्शनमें साथु समाज भी वैसे ही आनन्दमें चिल उठता है—

आंदन उदय गिरं-मंचपर रुद्र धार पदम।
बक्कमनंत-मंजुर मव हरेष लोचन मृग॥

वही मुनदर उक्ति है।

आनं भक्तकी तुलना कोकने की है। रावणके अन्याचारमें देवता दुर्बा होकर घबरा गये थे। गी-रुपी धरा भी विहूल हो गयी थी। नव भगवान्ने कहा था—

जनि डरपु मुनि सिद्ध मुंमा। तुमहि नाने भाँहान नरवंसा॥
हरिहीं सकल भूमि गुरआँ। निर्मय होहु दव-सन्दर्भ॥

वे ही आर्त-भक्त—

मण विसोक कोक मुनि देवा। बरसहि गुमन जनाहहि सेवा॥
कर्योङि अब श्रीराम धनुष-भंगके लिये उद्धन हो गये हैं। सीता परिषयके बिना राजसोंका नाश कैसे होता? हसीलिये देवता प्रसन्न हुए।

मधुकर स्वार्थी है। अपने स्वार्थ-साधनकी खुनमें गुनगुनाया करता है। रस लेनेमें ही वह लाज रहता है। अर्थार्थी भक्त उसीके समान होते हैं। सुश्रीव, विभीषण और जनकपुरावासी हसी श्रेणीके भक्त हैं। पुरावासियोंकी जालसा क्या है कि सीता और रामका विवाह अपनी आँखोंसे देखें—

यह लक्ष्मा मगन मव लोगू, बर सौंचां जानकी जोगू॥

विभीषणने तो स्पष्ट फहा है—

उठ कहु प्रथम बासना रही। प्रभुपद प्रीति सर्गत सो बही॥

अर्थात् लंकाका राज्य प्राप्त करनेका हृच्छा थी। मनका भाव समझकर श्रीरामजीने बिना मार्गें ही विभीषणको राजपद दे दिया। सुश्रीव तो विभाषणसे भी अधिक स्वार्थ-परायण था। राम-सुश्रीव कथा वही रोचक है, विस्तार-भव्यमें उसका वर्णन यही नहीं किया जाता।

चौथे भक्त—जिज्ञासु वा मुमुक्षु खगके समान हैं। खगका अर्थ यहीं चातकका है। चातक-सम्बन्धी प्रवाद प्रयिद्ध ही है। वह स्वातिकी बैंद्रके लिये नृपिन हृषिसे मेघको देखता रहता है। धनुषके हृष्टनेपर सीताजीकी दशाका वर्णन गोस्वामीजीने हृष्टप्रकार किया है—

मीष मुखहि बरनिय कितहै भाँती। जनु चातकी पाय जरु स्वामी॥

हृष्टसे पहले यह दशा थी—

नृपिन बारि बिंगु जो तनु स्यागा।

लक्ष्मणजीने श्रीरामको धनुष तोडनेपर किसप्रकार देखा सो सुनिये—

गमहिं नगन बिलोकत कंम। समिं चकोर किसोरक जैसे॥

खगका अर्थ समष्टिये चातकके अतिरिक्त पक्षी भी हो सकता है। लक्ष्मणजीके लिये चकोरकी उपमा उपयुक्त है।

चारों प्रकारके भक्तोंको इस रीतिसे गोस्वामीजीने भाष्यिक रूप देकर उनकी कथाको रोचक बना दिया है। अन्तिम भक्त प्रेमी हैं। उसको गोस्वामीजीने किस प्रकार निभाया है, यही और देखना रह गया है।

प्रेमीकी तुलना मीनसे की गयी है। 'निनदु फिये भन मीन' पद डपर आ चुका है। दोहावलीमें भी गोस्वामीजीने कहा है—

मगर उरग दादुर कमठ जन जीवन जल गेह।

तुलसी एकहि मीनको है सौंचिलो सनेह॥

जलमें कितने ही जीव रहते हैं और जलसे बाहर भी कुछ कालके लिये वे जीवित रह सकते हैं, परन्तु जलसे बिछुरते ही प्राण देनेवाली तो केवल मङ्गली ही है। उसीका स्नेह सज्जा है। एक सज्जा का वियोग उसे असद्य होता है। सीताजीको यही शिकायत रही कि श्रीरामसे बिछुइते ही उनके प्राण-पखें क्यों न उड़ गये। हनुमानजीने श्रीरामजीसे सीताजीकी बकालन की और कारण बताया—

नाथ सो नयनन कर अपराह्न। निसरत प्रान कराहि हठ बाथा ॥

जो हो, सीताजीने विहारमें भी अपना शरीर रखवा। भरतजी चरणपादुका लेकर ही उमकी सेवामें तन्मय हो गये—

गम-चरन-पंकज मन जानु। इन्हं मनुप इन तर्जन पास् ॥

तो क्या स्वेहीका पद स्वाली ही रहा, जब वीताजी और भरतजी जैसे भक्त भी उस दर्जेनक न पहुँच सके? रामायणमें केवल एक ही प्रेमीका चरित्र है और वह है महाराज दशरथका: इस अव्यन्त कठिन प्रेम-परीक्षामें वे ही उनीर्ण हो सके। तुलसीदामजीने उनका चरित्र भी बड़ा निपुणानामें अद्वित किया है। जब कर्यप और अद्वितने घोर तपस्यामें भगवान्को प्रसन्नकर उनका-सा ही पुत्र मांगा तो कर्यपने वह भी वर माँगा था—

सुतविषयक तब पठ रति होऊ। मेंहै बड़ नूड़ कहं किन कें ॥
मनि बिनु फनि जिनि जर बिनु मीना; मम जीवन तिनि नुमरि भीना ॥

यही आत सत्य होकर रही और श्रीराम दशरथके पुत्र ही नहीं हृषि बल्कि प्राणाधार भी रहे। दशरथजीने उनको 'प्राण-प्रिय' कहै बार कहा है। विश्वामित्रजीमें कहते हैं—

सब सुत प्रिय भोहि प्रानदी नाड़। राम देन नहि बैन गंगाड़ ॥

जब विश्वामित्रजी श्रीराम-बस्त्रमयाको ले ही गये तो दशरथजीने प्राण क्यों नहीं आग दिये? कारण हमका वह है कि उस समय उनकी दशा 'मनि बिनु फनि' को-भी थी। सर्वकी मयिं सों जानेपर वह मरना नहीं है, मृत्युन् हो जाना है और उमको पुनः पाक घरेट हो जाना है। अनुष्ठनके बाद विवाहके समय दशरथजी जनकपुरमें श्रीरामसे मिले हैं तो गोत्यामर्जी कहते हैं—

मुत हिय लाय दुसह दुख मेट। मृत्यु सोंग प्रान जनु मेट ॥

राम-विवाहमें इतने दिनोंतक दशरथजीकी दशा 'मनि बिनु फनि' की रही थी।

जब राम-बनवासका प्रसङ्ग आया तो दशरथजीके लिये बाचित वरका वूसरा पद 'जल बिनु मीना' के सत्य होनेका अवसर आया। रामायणमें दशरथजीकी शोकातुर दशा वही मर्म-स्पर्शी है। वह प्रसङ्ग कल्पना-सका समुद्र है। जब कैकेयी अपनी बातसे नहीं टबती तो राजा दशरथ कहते हैं—जिअह मीन बह बारि-बिहीना। मनि बिनु फनिक जिअह दुखदीना ॥ कहाँ सुभाड न छल मननाही। जीवन मोर राम बिनु नाही ॥

'सुभाड' शब्दपर विवार कीजिये। किर आगे कहते हैं—

जीवन राम-दरस आधीना ।

बन जानेका तैयारी हो गयी। तीनों मूर्तियाँ दशरथसे विदा मांगने आर्या हैं। राजा शोक-विद्वाल हैं। मुखसे शब्द नहीं निकलता। विलम्ब होता देख कैकेयी श्रीरामसे कहती है—

नृपहि प्रानोत्थ तुम रथुर्बाग। मीन मनेह न दाँड़िह भारा ॥

'इसलिये उनके मुखसे जानेकी आशा मिलेगी ऐसी आशा मत करना। अपने आप ही अब चले जाओ' राजा दुखी होते हैं।

करहि न द्रान परान अभो ।

श्रीरामके चक्रे जानेपर राजा शोक करते हैं

गम चंद बन प्रभन जानु। कहि मुख लालि रहन तन माही ॥
एक्षिने कपन व्यथा बनवाना। जो दुख पाइ तिनि तनु प्राना ॥

अभी कुछ आशा थी कि श्रीराम जल्दी ही बनसे लौट आवेंगे। हर्षी आशामें मार्यादी की राह राजा देखते रहे। जब वह भी आगया और श्रीराम-जानकी न लौटे तो राजा तरफत विषम सेंदू भन मापा। राजा मनु मीनकहै व्यापा ॥

भरक्षामल राजाको कौमल्या रानी आशासन देती है

गम लान मिय मिलहि बहोगी ।

इन आशाबनक बचनोंको मुनक्कर-

प्रिया बचन मृदु मुनेन नृप चित्यथ अपसे उपार ॥

तरपत भीन मर्लन ननु मीचड सीतल बारि ॥

राजाके लिये तो अब 'गम-विहित भिग जिवन आमा' ।

उनको अवश्यकी क्या और अपने पूर्व अन्यके वरदानकी स्मृति ही आर्या।

सोतन रास्क फसब मे काहा। बेहि न फ्रेमपन मोर निवाहा ॥

बन्ध है दशरथका प्रेम कि जे अपने शतीरको खिलारते हैं,
सर्वोंकि उसको राम-विरहके प्रथम बद्यमें ही धराताथी हो
आता था । राजा दशरथका प्रथम प्राच्याधारी शतीरने असत्य
कर दिया ! प्रतिक्षा-पासन और कुल-भर्त्यादाकी रक्षाके लिये
वह शतीरामको बनवास दे दिया तो फिर दूसरी प्रतिक्षा
'सिमि जब विनु मीना' का भी तो पासन करना चाहिये ।
दशरथकी बड़ी दैंची आवासा है ।

रामजीको बन गये अभी बहुत दिन नहीं हुए परन्तु
राजा को एक यक्ष घर्षी युगके समान हो रही है :

हा रघुनन्दन प्रानपिरते । तुम विनु नियत बहुत दिन बीते ॥

और अन्तमें—

राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम ।

तनु परिहरि रघुबर-विरह रात गयउ मुरधाम ॥

मधुकीकी तरह तदप-तदपकर प्राण देना हसीको कहते
हैं । और प्रेमीकी सर्वोंक दशा भी यही है । गोस्वामीजी
कहते हैं—

त्रिभन-मरन-कु दमरथ पावा । अप्छ अनेक अमल जसु छावा ॥
जियत राम-विधु-बदनु निहाग । रामविरह करि मरनु सर्वा ॥

जीना उमीका सफल है जिसको मरना आता है । विरह-
बेदनमें भी एक प्रकारका आनन्द होता है । वज्ञानोपिकाओं-
की विश्व-स्थिता उसके अनेक भाव-छनुभाव राजा दशरथके
भाग्यमें नहीं लिखे थे । वे 'सुरधाम' को सिधारे । मरते समय
'राम राम' मुखसे एक बार भी निकल जाय तो मुक्ति हो
आय और दशरथ 'राम राम' रटते मर गये और फिर भी
केवल सुरधामके अधिकारी हुए ! इस बातमें भी भक्तिका एक
रहस्य है । राजा दशरथको राम-दर्थम-ज्ञानसा अभी बनी

हुई है और वह पूरी होगी । रावण-वध हो जानेपर उनको
दर्शनसे सुसि होगी ।

गोस्वामीजीने इसप्रकार राजा दशरथका चरित्र एक
आदर्श प्रेमीका दिखाया है और इसी भावनासे उनकी
बन्धना की है—

बंदी अवध-मुआल सत्य प्रेम जेहि राम-पद ।

विद्वुन दीनदयपत्ति प्रिय तनु तृन इन परिहरेन ॥

इससे तुलना करने योग्य और कोई चरित्र रामायणमें
नहीं है ।

संसार तो दुःखमय सदा रहेगा । मनुष्यमें कहाँ सामर्थ्य
है कि घटना-चक्की गतिको जान ले वा उसको रोक सके ।
एक ही उपाय है जिससे मनुष्य सुखपूर्वक संसारमें रह
सकता है और त्रिविव तापसे अपनी रक्षा कर सकता है ।
वह अमोघ उपाय भगवत्-शशांगति है—

मुक्ति मीन जहं नीर अगावा । जिमि हरि-सगन न एको बाचा ॥

शशांगतिके भावके साथ निरन्तर नाम-जप मुख्य
साधन है । साधारण सांसारिक मनुष्योंके ही लिये जहाँ, वरं—

जीवनमुक्त महामुनि जेऊ । हरि-गुन सुनहि निरन्तर तेज ॥

बन्ध है वह पुनीत देश, जहाँके निवासियोंको पतित-
पावन भगवान्को भक्तिका उपदेश प्राप्त हो । इसके हारा निर्गुण
प्रकारों भी सगुण बनकर प्रकट होनेके लिये बाध्य होना पड़ता
है । जिनको धर्मका यह अमूल्य उपदेश प्राप्त हो उनसे
बहुमारी संसारमें और कौन हो सकता है ?

हिन्दूजातिको गोस्वामी तुलसीदासजीने ऐसा मार्ग
दिखाया है जिसपर चबकर देव-दुर्लभ पद भी अनायास
हो प्राप्त हो सकता है ।

रामनाम

लेनेसे जिस रामनामके पाप-पञ्च होते हैं छार ।

जन्म-मृत्युसे रहित जीव हो जाता है भवसागर पार ।

जिसका उलटा नाम सदा जप व्याघा हुआ महामुनि भक्त ।

जिसके मधुर रूपका चिन्तन करते सदा शैलजासक्त ॥

सर्व-शिरोमणि उसी नामका अमृतरूपी प्याला ।

रे मन ! व्यर्थ भटकता है क्यों, पीकर बन मतवाला ॥

—गोतीलाल ओमरे

श्रीशुकदेवजी और रामायण

(लेखक—जी पी० एन० शहरनारायण अव्याख्या० प०, शी०प०)

१—आपकी आज्ञानुसार, श्रीमद्भागवतमें श्रीशुकदेव-कथित रामायणके कुछ ऐसे प्रसङ्गोंका वर्णन करेंगा जो मुझे बहुत प्रिय हैं तथा जिनसे मेरे आचरण सुधर गये हैं। ‘कर्माण्यकर्तुं ग्रहणाय पुंसाम्’ प्रभुकी लीलाएँ मनुष्योंको शिष्या देनेके लिये होती हैं। भगवान् के उत्तरणे हमें कैसा सुसंस्कृत तथा जागृत किया है, इस बातको अब हम अच्छ करने लगते हैं तो हमें अनुभव होने लगता है कि श्रीराम आभी विद्यमान हैं और हमें निष्पक्ष्यात्मकों मार्ग दिखाता रहे हैं। वर्तमान दशामें भारतको श्रीरामके नेतृत्वकी महान् आवश्यकता है।

२—श्रीशुकदेवजीने श्रीरामके मुख्य संदेशका निचोद इसप्रकार बतलाया है—

स्मरतः हृदि विन्यस्य विद्वं दण्डकपृष्ठः ।

स्वपादपृष्ठं राम आत्मज्ञोत्तिरगात्तः ॥

(भागवत २.११.१५)

श्रीरामचन्द्रजी दशडकारवर्णके कवटकोंसे विद्व अपने चरण-कमळोंको भक्तोंके हृदयमें स्थापितकर परमधारको पवार गये। मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रके वे रक्षाक चरण प्राप्तः मेरी आँखोंके सामने उपस्थित हो जाते हैं और मुझे पांचित प्राणियोंमें धूम-धूमकर उनकी संवा करनेके लिये प्रेरित करते हैं। अब कहीं मैं बंगे पैर अबती घूमें धूमता हूँ तो प्राप्तः यह सोचकर कि श्रीरामचन्द्र और श्रीसीताजी भी मनुष्योंके प्रेमकरा काँटोंमें विचरण करते थे, मेरा हृदय अस्तित उत्साह और उड़ासदे भर जाता है और मैं सारे अमको भूल जाता हूँ।

एक बार तीर्थयात्रामें मुझे आर्द्धरातके समय बचके बीच होकर जाना पड़ा। पहले तो मेरे मनमें कुछ भय-सा दुःख परन्तु तुरन्त ही मुझे यह लोक याद आ गया—

अग्रतः पृष्ठत्रैव पार्श्वनश्च महावर्णै ।

आर्कण्यपूर्णश्वन्वानौ रक्षेतां रानहक्षमणौ ॥

‘आगे, पीछे तथा दोनों ओर महावर्णी भगवान् राम और अस्त्र-शर-सम्भान लिये मेरी रक्षा करें।’ मेरे मनमें यह जिक्र हो गया कि अब मी एक्करी वाक्यियोंकी रक्षाके लिये दोनों राजकुमार उपर हैं, मेरे नेत्रोंमें आँखू भर आये

और मेरा हृदय हर्षसे पूर्ण हो गया। मैंने सारे शस्ते उनको अपने साथ समझा सथा मैं आनन्दमें मझ हो गया और मुझे मार्गमें किसी भी अमर्त्य अनुभव नहीं हुआ। श्रीरामके पावन चरण और उनका उपर्युक्त उत्तम सहवास इसी प्रकार देशके सब मनुष्योंको प्रेरित करे, जिससे वे भी श्रीरामके समान ही दुःखाकान्त मनुष्योंमें धूमें और उत्साहसे उनकी सेवा करें।

मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि राष्ट्र-लिङ्गास दशडकारवर्ण पृथ्वीपरसे नहीं होकर जनसमुदायके हृदयोंमें बस गया है, जिससे सारा राष्ट्र भागवत-धर्मसे विमुक्त हो जाता है। कुछ लोगोंके हृदय तो अर्थं शिष्या, अत्यन्त स्वार्थपरसा तथा आत्मजनोंके प्रति उपेक्षा और उद्धिक सहानुभवित्वे भर गये हैं, और कुछ लोगोंके हृदयोंमें भजान, धन्यविद्यास, दरिद्रता तथा पुरुषार्थको नष्ट कर देनेवाले दुःखसमूह भरे हुए हैं। धर्मका स्थान अवधिविद्यामने ले रखा है और कर्मके स्थानमें केवल जन्मी-जौदी बातें कर ली जाती हैं। इसी कारण भारतभूमिके रुपक मनु और सप्तरिंशोंने प्रजाको सन्त्रस्त करनेके लिये मानों दुःख और दामन्त्रको हुक्की आज्ञा दे दी है। मैं समझता हूँ कि वर्तमान दुःख और बन्धन राष्ट्रको उस भागवत-धर्मकी ओर खौट आनेके लिये चेनावनीस्वरूप है जो यज्ञकी-स्वार्थ-स्वार्थी-भावना तथा सबकी प्रेमपूर्ण भेदामें परिपूर्ण है। इसी यज्ञस्वरूप भागवत-धर्मको भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें राष्ट्रके अस्तुदय और सुखका प्रधान साधन बतलाया है।

श्रीमद्भागवतमें भी इसी यज्ञभावनाका वर्णन करने हुए भगवान् श्रीकृष्णने यसुनाकं तीरपर स्थित दैत्ये हृष्टोंको दिलासाकर अपने मित्रोंसे कहा है—

पश्यनेनान्महामानपरार्थं कान्तिर्वितान् ।

वनवर्गं तपति मान्महन्तो वायन्ति नः ॥

पतनवर्गम् मानव्यं देविनामिह देविः ।

प्राणीर्गर्भर्विष्णु वाया ग्रेय एवाचरत्सम्भा ॥

(भागवत १०.२२.३२-३४)

‘हे मित्रो ! इन सब महाभाग हृष्टोंको देखो ! इनका लोक देवता एवं पक्षीरक्षकहेही लिये है। सब यं वायु, वर्षा,

धाम और हिमके प्रकोपको सहज, वे उससे हमारी रक्षा करते हैं। उम्हीका जीवन सफ़ल है जो अपने प्राण, भूमि, दुरि और वाणीसे सदा परोपकारमें रहते हैं। जगते अव्यायमें भगवान्ने वह विश्वाया है कि जिन्होंने यज्ञको संस्कार-विशेष बताया है वे भगवान् और सत्यसे दूर रहे गये हैं और वे उनको पा नहीं सकते। इसके बाद बाह्य-सिद्धियोंको वापस लौटाकर उन्होंने वह दर्शाया है कि जीवनकी उचाति उच्च सफ़लता भगवान्के प्रत्यक्ष शारीरके समीप रहनेमें ही नहीं है, वरं दुखी प्राणियोंके अन्दर भगवान्के प्रेम और प्रकाशको फैलानेमें है। प्राणीमात्रकी प्रेमपूर्वक निःस्वार्थ सेवा ही राष्ट्रीय समृद्धिकी कुञ्जी है और इसीको भागवत-धर्म भी कहते हैं। भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने बड़ी ही उत्तमतासे ज्ञाने सर्वपूर्वी जीवनमें इसीका विश्वास बताया है। परि भारतीय नेता आज केवल इसी भावको जागृतकर जगतामें काम करें और राष्ट्रके हृष्यमें आत्मनिर्भरता, समन्वय तथा नूमरोंकी प्रेमपूर्वक सेवाके भाव भर दें सो केवल इसीसे देशमें सुख-समृद्धि हो जाय। प्रत्येक मनुष्य जबतक यथार्थ संयम नहीं करता, यज्ञकी भावनासे स्वधर्ममें स्थित नहीं होता और श्रीरामके कर्यक्रमविद्व चरणोंको अपने हृष्यमें पथ-प्रदीपकी भाँति प्रतिष्ठित नहीं करता, सबतक वास्तविक स्वरात्यकी प्राप्ति कैसे हो सकती है?

५-श्रीशुकदेवजीके रामायणका एक दूसरा अंश अन्यन्त ही आकर्षक और चरित्र-निर्माणमें सहायक है। उसमें रावणकी मृत्युके अनन्तर लक्ष्मी की यातुधानियोंहारा किये हुए प्रलापका वर्णन आता है। वे इमप्रकारके महत्व-पूर्ण शब्दोंहारा उसके परनपर प्रकाप करती हैं—

हा हातः स्म वं नाय ! लोकरावण रावण ।
कं यथाच्छरणं लक्ष्मा त्वदिहीना परार्दिता ॥
नेवं वेद महामाय ! मवान् कामवशं गतः ।
तेजोऽनुमादः सीताया येन नीतो दशामिमाम् ॥
इतेषा विषवा लक्ष्मा वयं च कुलनन्दन ।
देहः इतोऽनं गृष्णाणामात्मा नरकहेतवे ॥
(भागवत ९।१०।२६-२८)

'हे नाय ! हे संसारको खालेवाले रावण ! इमारा सर्वेनाश हो गया ! आह ! तुमसे विहीन हो दूसरोंके हारा पदवकित वह यज्ञ किसकी रारण होती ? हे महाभाग ! तुम क्षमान्व हो सीताके परिवर्तके तेज और प्रवक्त्र प्रभावको

नहीं आन सके। इसीसे आज तुम्हारी यह दशा हुई। हे कुलको आनन्दित करनेवाले, इसी कारण तुम्हारी यज्ञ नगरी और हम तुम्हारी रानियाँ विषवा हो गयीं, और तुम्हारा शरीर गृष्णोंका भोजन बना तथा तुम्हारी आमा नारकी हो गयीं।' काम-बासनाके विश्व इनसे बदजर ओषधी, यथार्थ क्षवापूर्ण, सुन्दर गवमीर भाव सुन्दर अन्यत्र कर्ती नहीं मिले।

६-श्रीशुकदेवजीके रामचरित-विश्वका तीसरा और अस्त्वत आकर्षक भाग वह है जहाँ श्रीरामचन्द्रजीके यज्ञोंका वर्णन किया गया है। वहाँ उन्होंने सच्चे ब्राह्मण, राजा और राज्यसम्बन्धी आदर्शोंकी विश्व व्याख्या की है।

भगवानात्मनात्मानं राम उत्तमकल्पकः ।
संवेदवमयं देवमीज आचार्यवान्महैः ॥
हेत्रेऽददाहिङ्गं प्राचीं ऋतिजे दक्षिणं प्रमु ।
अध्वर्यवे प्रतीचीं च उदीचीं सामग्राय सः ॥
आचार्याय ददौ देवां यावती भूस्तदन्तरा ।
मन्यमान इदं कृत्स्नं ब्राह्मणोऽहिति निःस्पृहः ॥
इत्ययं तदलक्ष्मारवामोभ्यामवशोपितः ।
तथा राघवपि वैदेही सौमज्जल्यावशोपिता ॥
ते तु ब्रह्मण्यदेवस्य वात्सल्यं वीक्ष्य संस्तुतम् ।
प्रीताः किञ्चिद्विष्टस्मै प्रत्यर्थं वभाविरे ॥
अप्रत्तं नस्त्वया किन्तु भगवन् मुदनेश्वर ।
यज्ञोऽन्तर्हृदयं दिश्य तमो हैसि स्वरोचिता ॥
नमो ब्रह्मण्यदेवाय रामायाकुण्ठमेधसे ।
उत्तमस्त्रोऽधुर्याय न्यस्तदण्डापिताप्रयं ॥

(भागवत ९।११।।१-७)

तदनन्तर सर्वदेवमय परमदेव भगवान् रामचन्द्रजीने आचार्यहारा बतायाए हुई विचिसे परमात्माकी पूजाके निमिस बहुतसे यज्ञोंका अनुहान किया। होताको पूर्व-विश्वाका राज्य, शत्रुघ्निको दक्षिणका राज्य, अर्जुन्युको पश्चिमका राज्य और उद्ग्राताको उत्तरका राज्य दक्षिणमें दे किया। बीचमें बचो हुई पृथ्वी भी आचार्यको हे डाली। श्रीरामने सोचा कि केवल इच्छारहित ब्राह्मण ही वास्तवमें समस्त राज्यके अधिकारी होने योग्य हैं, क्योंकि स्वार्थहीन ब्राह्मण जाता-सा अंश भी अपने उपयोगमें न लाकर सच्चे दूसीकी भाँति सबकी भक्षाईमें ही उसका प्रयोग करेंगे। अतः भगवान् रामचन्द्रजीने अपने शरीरके

दक्षाकहारोंके अतिरिक्त सभी वस्तुओंका जान कर दिया । इसी प्रकार महाराजी सीताने भी सब कुछ देखा था । उनके शत्रुघ्नपर केवल मंगल-सूत्र बच गया । श्रीरामचन्द्रजीको ऐसा वास्तव्य और उत्तरभाव देखकर ब्राह्मणका अत्यन्त प्रसन्न हुए । उनका हृष्ट व्यक्ति हो गया । अमुख्य नेत्रोऽंगारा वे समल पृथ्वी श्रीरामजीको छौटाते हुए कहने लगे, 'हे पृथ्वीपति भगवन् ! जब आपने हमारे हृदयमें प्रवेश करके अपने प्रकाशते हमारा अशानाल्पकार हर जिया है तब ऐसी कौनसी वस्तु है जिसे आपने हम लोगोंको भर्ही दिया है ? हमें सब कुछ भिज गया है । हमलोग ऐसे महामुखके सामने सिर कुकाते हैं जो इच्छारहित निःसूह ब्राह्मणोंको देखता समझता है । हे स्थितप्रह ! आप शुभकीर्तियुक्त पुरुषोंमें अप्रमाण्य हैं । आप वह महामुख हैं जिनके चरण-कमल उन्होंके हृदयमें रहते हैं जो दूसरोंको हुःख देना चाहे चुके हैं ।'

इससे पता लगता है कि राजाओं और सबे ब्राह्मणोंमें कितनी उच्चकोटिकी निःस्वार्थता, निष्कामता तथा प्रेमकी भावना होनी चाहिये, तथा जिस प्रकार दोनोंको सबके कल्याणके लिये इत्यर्थोंकी भाँति परस्पर सहयोग करना चाहिये । ऐसे राजा और ब्राह्मणोंको अपनी सम्पत्ति नो केवल ज्ञान, प्रकाश और भगवन्मित्तन ही है । यदि भारत इनी दूराको पुनः प्राप्त हो जाय तो वह कैसा सुखी देश हो आयगा ? मैं समझना हूँ कि भूमिदेव होनेके कारण ब्राह्मणोंका यह प्रथम कर्तव्य है कि वे इस पथमें अप्रसर हों । यदि वे अपने हृदयमें श्रीरामचन्द्रजीके चरण तथा उनके चरणार्थ ब्राह्मण-प्रेमको धारण कर मार्गमें अप्रसर होंगे तो अब भी चर्मराज्य—रामराज्यको पुनः स्थापित कर सकेंगे । महाराज पृथुने श्रीमद्भागवतपुराणके लिये स्वन्देशके इडीसर्वे चर्चायमें स्वयं समझा दिया है कि राजवर्षालिका उत्तर और विनाश प्रजार्थी चर्मनिहायर अवतरित है । हम स्वयं अपने भावके विचारा है ।

४—अहा ! देशकी उस समय कैसी लियति होगी जब श्रीरामचन्द्रजी अमं या स्वयाचरणद्वारा इस देशपर राज्य करते होंगे ? इस विषयका एक सुन्दर वित्र श्रीशुक्रदेवजीने कीचा है—

रामे राजनि चर्मं र्द्युतसुक्षमवह ॥
बनानि नयो निरयो वर्णं प्रीतिनिवदः ।
स्वं कामुद्वा अस्तु ग्रजानि मरतर्वम् ॥

नविव्याधिजराम्लनिर्दुःखशोकभयहमाः ।
मृग्युद्वानिष्ठतानासीद्रामे राज्यव्योम्प्राप्नोते ॥

(भागवत १।१०।५२-५४)

जब श्रीरामचन्द्रजी कुछ प्रश्न करनेवाले अमंशु श्रीरामचन्द्रजी राज्य करते थे, उस समय वन, नदी, पहाड़, देश, हीप और समुद्र सभी प्रेमपूर्वक प्रजाको मनवाही वस्तु देते थे । आधि, व्याधि, बारा, भय, ग्रामी, व्येश, हुःख और शोक विकृत नहीं थे, यहाँतक कि वस्तु भी प्रजाके पास उनकी इच्छाके विवद नहीं आती थी । जब भगवान् रामचन्द्रजी शासन करते थे तब देशकी ऐसी अवस्था थी, वह बात मृदमतिके समझमें नहीं आ सकती ।

जब प्रत्येक मनुष्य आस्म-सम्मुद्र हो दूसरोंके कल्याणमें रत रहता है, तब देशभरमें वज्रकी भावनाका आधिकार्य हो जाता है, तथा सभी जगह समन्वय और स्वेच्छापूर्वक सहचर सहकारिता तथा प्रेमका प्रसार हो उठता है । वस्तुतः यह भावना ही देशको आदर्श बनानेका भारतीय मार्ग है । श्रीशुक्रदेवजी, शहर, रामानुज, गौराङ्क, क्षवीर और अन्यान्य महामुख्य देशभक्तिहीन नहीं थे, यद्यपि उनकी शिकामें हाड़-भीतिक हटि कहसानेवाली कोई वस्तु नहीं है । वे सत्त्व-दर्शी और सबे देशमत्त थे और उन्होंने वज्रकी भावना—प्राणीमात्रकी प्रेमपूर्वक सेवा—का अनेक प्रकारसे प्रचार किया, और वही एक मार्ग है जिसके हारा भारत और संसारकी सर्वी उन्मत्ति हो सकती है ।

यह हमारे हाथकी बात है कि इम आहे वज्रकी भावनासे उन्मत्ति बढ़े या विपरीत पथ अवलम्बनकर अराजितमय अधिन चितावं । किसी प्रकारके अहममन्दनाके मार्गसे इस स्वार्थपरता, कषट और पारस्परिक द्वोहमें फँस जायेंगे, और वह मार्ग भारतीय नहीं होगा । इससे इमपर भगवान्की हृषा नहीं होगी । किन्तु यदि इम वज्रकी सर्वी भावनामें स्थित होकर निःस्वार्थ सेवाके हारा सबका कल्याण करनेवाले खेड़ा करेंगे तो यज और धर्मके ज्ञाना भगवान्का इस देशमें राज्य हो जायगा और वज्रिं अपने सारे उपकरणोंके साथ ज्ञान हो जायगा । विनुप और अशानितके अवसार 'कृषि'को महाराज पर्वीचितने जो कहा था, उसे सुनिष्ठे—

न वर्तितव्य तदधर्मवन्दो घर्मेज स्वेदन च वर्तितव्ये ।
ब्रह्मावते यत्र यज्ञित यज्ञः यज्ञश्वरं यज्ञवित्तमविज्ञः ॥
यस्मिन्द्विर्बंगदानिज्यमानः ईउवामिर्बंजतां शान्तजोति ।
कामन्मोग्यन् स्विरज्जमानो अन्तर्वैहिर्वायुरिदैष आस्या ॥

(भा० १।३०।३१-३२)

हे अधर्मके बन्धु ! तू हस ब्रह्मावर्तमें नहीं रह सकता, क्योंकि वहाँकी प्रजा भवे और सत्य (श्रीहृष्ण भगवान् ने ११ में स्वर्णमें जिसे समदर्शन कहा है) पर अचलरूपसे आरु है । भूतमात्रकी निःस्वार्थ सेवामें अपनेको मुक्ता देनेवाले सेवापदु खोग हसप्रकारकी सेवाओंसे समस्त सेवाके स्वामीकी पूजा करते हैं । हस ब्रह्मावर्तमें स्वयं भगवान्, जिनका एकमात्र कार्य जीवोंके कष्टोंको हरण करना है और जो तम्भयतायुक्त सेवाके प्राण हैं, अपने उन यज्ञद्विषया-द्वारा आप्यविस्मृत होकर अब उन्हेवाले सेवकोंका

कर्त्तव्य करते हैं और समस्त चराचरकी कामनाओंको पूर्ण करते हैं, क्योंकि वे बायुके सहश सबके प्राण हैं और सबके बाहर-भीतर समानरूपसे प्यास हैं ।

अथः भगवान् रामचन्द्रजीकी जीवनी सबके प्रति पश्चलपी भूतसेवाकी सच्ची भावनाको हमारे हृदयमें जाग्रत करे जिससे हस पवित्र भूमिपर पुनः प्रभुका साम्राज्य हो । तभी भारतवर्ष अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और समृद्धिकी कुम्भी संसारको प्रदान कर अपने मिशनको पूरा करेगा ।

श्रीरामजीका शूर्पणस्काके साथ व्यवहार

(लेखकः—प० कृष्णदत्तजी भारद्वाज शास्त्री, आचार्य, वी००७०)



रामचरितके इससे अनभिज्ञ क्षतिपृथ्य पुरुष रामचन्द्रजीकी लोलाओंमें दोष दिलाया करते हैं । शास्त्रीय सिद्धान्तोंके अविवित होनेसे ही ऐसे आप्त पुरुषोंको शूर्पणस्काके साप भगवान्के व्यवहारमें अनौचित्य दिलायी देता है । वे कहते हैं कि श्रीरामको शूर्पणस्काकी प्रार्थना स्वीकार कर लेनी चाहिये यी क्योंकि रावण विश्वविजयी था, उसके साथ सम्बन्ध हो जानेसे उनको बहुत कुछ लाभ सम्भव था । सीताजीकी विषयमानतामें भी शूर्पणस्काके साथ वैशाहिक-वनवनमें बहु होनेमें कोई हानि नहीं थी, क्योंकि बहुविवाह शास्त्रानुमोदित है । जियांको जो 'भवतीनां काम विहन्ता पातकी स्वाद' वरदान इन्द्रसे भिना है उसके अनुसार भी श्रीरामजीको शूर्पणस्काके साथ प्रेम करनेमें कोई बाचा न थी और यदि उन्हें ऐसा न भी करना था तो भी उस वैशारीकी वैसी दुर्दंशा करना ठीक नहीं था, क्योंकि नाक-कान कटना निन्दित तथा सम्बन्धाके विषद् है ।

ऐसी-ऐसी अनेक दाँड़ाएँ हैं जो तमोगुणप्रधान पाशास्त्र सम्बन्धाके समर्थकोंकी विहापर विराजमान रहती हैं । भारतीय आदर्श क्या है ? हस बातको नहीं जाननेके कारण ही वे ऐसी दाँड़ाएँ उठाते हैं । असु,

रामजीने शूर्पणस्काके साथ जो व्यवहार किया वह युक्त था, हस बातको लिह करनेके लिये नीचे कुछ परिचार्या लिखी आती है ।

रामजीके लिये शूर्पणस्का परस्ती थी । परपरिनियोंके साथ वर्तावं करनेके विषयमें शास्त्रसम्मति है 'मानुवत्परदरेषु' अर्थात् अपनी घरेपत्नीके अतिरिक्त जितनी भी कियाँ हैं सबको मालाके समान समझो । इसी प्रकारकी एक दूसरी उक्ति है—

मानुवत् स्वमृतवैव तथा दुहितृवै ये ।
परदरेषु वर्तने ते नराः स्वर्गगामिनः ॥

अर्थात् 'सज्जन पुरुष अपनेसे बड़ी वयवाली परिज्ञियोंको मालाके समान, समान वयवाली जियोंको बहिनके समान और कम वयकी जियोंको पुत्रीके समान समझते हैं ।' अतएव भगवान् परपत्नीके साथ विवाह कैसे कर सकते ये ?

शूर्पणस्का ब्राह्मण-वंशकी भी और उसपर भी विवाहिता थी । ब्राह्मणीके साथ विवियका विवाह करना सर्वथा अनुचित है । अतएव रामजीने उसकी अवैष श्राव्यनाको स्वीकार नहीं किया । यदि वह अविवाहिता तथा सवर्णा भी होती तथापि श्रीरामचन्द्रजी उससे विवाह न करते, क्योंकि वे तो संसारमें एक-पत्नीविवाहकी मर्यादाको स्थापित करना चाहते थे ।

श्रीरामको शवपदके द्वारा देश-प्रासिके समान किसी लाभकी क्षम्पना उपहासास्पद है क्योंकि रामजीके लिये ऐसी कोई बस्तु नहीं जो उन्हें प्राप्त न हो तथा जिसके प्राप्त करनेकी आवश्यकता हो । वे तो पूर्णकाम हैं । श्रीरामचन्द्रजी संसारमें धार्मिक आदर्श स्थापित करनेके लिये मनुष्यरूपसे अवतीर्ण हुए थे । उनको रावणके साथ सम्बन्ध हो जानेके

अवस्थर हो, आर, दस, बीस देशोंकी प्राप्ति अभीष्ट कैसे हो सकती है ? जिनकी आज्ञासे अनन्त आकाशमें नहरावली अग्रमसहस्रसे यथास्थान आहरिणा भूम रही हो, उनको किसी कामनाके बशीभूत होकर राष्ट्र-जैसे हुए पुरुषोंके साथ सम्बन्धके भाव दिखाना कैसे स्वीकार्य हो सकता था ?

इन्हने लियोंको वरदान दिया था कि 'भवतीनां काम विहन्ता पातकी रथात्' परन्तु यह स्वपत्नीको लक्ष्यकरके ही कहा गया था अतएव श्रीरामचन्द्रजीपर ऐसा कोई दोष आरोपित करनेका अवसर भी नहीं है ।

शूर्पेश्वरामे सीताबीको मारकर, रामजीसे बालाकर अपनी चात मनवानेका अब विचार किया तभी रामजीने आदर्श नृपत्वका परिचय दिया था । शूर्पेश्वरा बालाण-कुल-दूषण थी और श्रीरामजी ये उत्त्रियकुलभूषण । वह शास्त्र-विश्वद प्रातिक्रिया विवाहकी अभिभाविकी थी, और प्रातिक्रिया सीमंश्वर्णमें न्यायानुसार पुरुषको सूखुदृष्ट किया था और यदि तीव्र पर-पुरुष-संश्वरणके लिये उपर्युक्त हो तो राजा उसके नाम कान काट दे । ऐसी महर्षि आश्रवलक्ष्मीजीकी स्वरुप आज्ञा है—

सजातानुक्तमो दण्ड आनुलोम्ये त् भृष्ममः ।
प्राप्तिक्रिये वधः पुंसो नार्याः कर्णादिकर्त्तनम् ॥

अतएव श्रीरामजीने शूर्पेश्वरीहारा जो उस उम्मार्ण-गमिनीको दण्ड दिलवाया, सो शास्त्रम्भवत ही था ।

माता, पिता, स्नातक आदिको छोड़कर सभी पापात्मी राजाके लिये दण्डनीव हैं । जो राजा दण्ड देने योग्य पुरुषको दण्ड देना है, उसको अनेक बड़ोंका कठ प्राप्त होता है । कहा है—

रघुवीरजीके सबै सेवक कौन है ?

मौह कमान संधान सुडान जे नारि-विलोकनि बाज में आई ।
कोप-कृसानु शुभान-अर्थां घट उर्यों जिमके मन अंग न अच्छे ॥
लोभ सबै नटके बल हु कपि उर्यों जगमें बहु नाज न आई ।
नीके हैं साधु सबै मुलसीं पं तेरै रघुवीरके सेवक माँझे ॥

१—'नाइटर्डयो नाम राहोऽस्मि धर्मोहिर्चार्मत्, स्वकान्' (याजकम्)

स्वरूप मातापित्रादिव्यनिरेकेतु । तथा च गृह्यतारम्— अदण्डयो मातापित्रोत्तमानकुरोहितपरिज्ञा बहवानप्रस्था; मुतक्षीकशीचाचारवन्तः (विताष्टुर)

यो दण्डयान्दण्डयेद्राजा सम्यग् वध्योऽप्त धारयेत् ।

इं स्यात्क्रतुभिस्तेन समाप्तवरदक्षिणैः ॥

इसी प्रकार दूसरा वचन है—

कुलानि जातीः श्रेणीश्च गणाजानपदानपि ।

स्ववर्माचलितान् राजा विनीय स्थापयेत् परिषि ॥

अर्थात् श्रावणादि कुलोंको, सूर्यविसिंह आदि जातियोंको, ताम्बूलिक आदि अंशियोंको, देवाकुल (अश्वम्यवहारी) आदि गणोंको काल्क आदि जानपदोंको, घर्मसे अह हुए लोगोंको राजा विविष्टक दण्ड देकर सम्मानगमे चकावे ।

नारदजीके महानुभार दण्ड हो प्रफारका होता है । शारीरिक दण्ड और आर्थिक दण्ड । जहाँ जैसा दण्ड शास्त्र-वेतान्माने निर्धारित किया हो, वहाँ वैसा ही दण्ड देना चाहिये । शूर्पेश्वराने जो साहस (घोर-कृत्य) किया था उसके लिये उसे शारीरिक दण्ड ही भिन्ना धर्मशास्त्रसे विहित था, ऐसी दुर्बलित्रिको यदि इसप्रकारका दण्ड दिया जाता है तो भविष्यमें उससे किसी देसे पाप बन पड़नेकी संभावना नहीं रह जाती है और वह समृद्धिहस्य बनकर श्रीकृष्णतीर्थ करती है ।

तुः देवताओंको भवमीत करनेवाले, लोकोंसे संदर्भ करनेवाले रावणके उद्धारके लिमित भगवान्को कुछ बहाना भी चाहिये था । विष्णुनुस्त्री बहिनकी देवा देव्यकर ही रावणने श्रीरामचन्द्रजीके साथ पुरुषका विचार किया था ।

अतः इसमें सन्देह नहीं रह जाता कि शूर्पेश्वराके साथ येरा प्यवहार करनेमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने आदर्श सम्बन्ध तथा आदर्श नृपत्वको ही प्रदर्शित किया है ।

रामायणमें सत्याग्रह ।

(लेखक—श्रीबुत यादवशङ्करजी बामदार, रिटायर्ड सचिवज)



ज सारे भारतवर्षमें सत्याग्रहकी उमड़ वडे जौरसे ढठी दुर्ह है । आवाकवृद्ध इससे परिचित है । देशके जोने कोनेमें आज इसकी घनि गौँज रही है । अतः ऐसे सार्वजनिक विषयका वैतिक तथा ऐतिहासिक विवाद—अर्थात् उसके तत्त्व, समय, आचार इत्यादिका विचार करना अधिकाधिक आवश्यक होता जा रहा है । सत्याग्रहके विषयमें सामान्यतः जोगोंकी आरणा है कि 'इसका प्रारम्भ सर्वप्रथम, इसी शताब्दिमें दक्षिण अफ्रिकामें हुआ है और इसके अन्तानामा महात्मा मोहनदास कर्मचान्द गान्धी ही है । आपने ही सत्याग्रहका बीज दक्षिण अफ्रिकासे लाकर भारतवर्षमें वयन किया है । अभी यह सत्याग्रहका पौधा नवीन होनेके कारण सुकुमार-न्यायमें है, परन्तु भारतके सौभाग्यसे वह अपने जन्मवाताके तत्त्वावधानमें है ।' इस कथनमें हम केवल अन्तिम अंशको स्वीकार करते हैं, अर्थात् भारतके सौभाग्यसे ही सत्याग्रहिका नेतृत्व महात्मा गान्धीको प्राप्त हुआ है । अवशिष्ट अंशमें हम सहमत नहीं । क्योंकि हमारे विचारसे नो सत्याग्रहकी आदि कल्पना भारतमें बहुत पुरानी है और वह सनातनसे चर्ची आ रही है । हाँ, इतना अवश्य है कि उसका समय-समयपर आविर्भाव, तिरोभाव और कुछ-कुछ रूपान्तर होता रहा है । आज जो हमें सत्याग्रहकी कल्पना अनूठी दीख पड़ती है इसका एकमात्र आवश्य यही है कि हमने अतिकालसे उमे व्यवहारमें जाना छोड़ दिया, अतएव हम उससे अपरिचित हो गये हैं । कली-कभी यह रांका हुआ करती है कि भारतभूमि सत्याग्रहीजके लिये उपयुक्त है या नहीं, इसका समाधान इतनेहीमें हो जाता है कि जब सदासे यह भूमि उस बीजके अनुकूल रही है तो आज विपरीत क्यों होगी? इसके लिये यह सत्याग्रह कोई नयी बीज नहीं है । अब मैं रामायणमें सत्याग्रहोंका कुछ विवरण करना चाहता हूँ ।

‘रामायण’ शब्दका अर्थ सब जगह रामचरित ही माना

* आप अन्य भाषाभाषी होते हुए भी रामायणके बड़े प्रेमी हैं । आपने ‘मानस’का मराठीमें अनुवाद किया है और ‘मानसहंस’ नामक एक सुन्दर पुस्तक किया है । —सत्यादक

जाता है और न्युयर्सिके अनुसार वही ठीक है । अतः इसमें विस्तारकी कुछ आवश्यकता नहीं रह जाती । ‘सत्याग्रह’ सामाजिक शब्द है; इसका विषय दो प्रकारसे होता है—
(१) सत्यका आश्रह; (२) सत्यका आग्रह जिस किंवामें हो वह किया । यदि ‘सत्य’ और ‘आश्रह’ दोनों शब्दोंके अर्थ सह हो जायें तो और भी अच्छा हो । सत्यका अर्थ प्रायः सभी अनुभव जानते हैं किन्तु शब्दार्थका यथार्थ जानने होनेके कारण वह जानना न जाननेके बराबर ही है । क्योंकि जो ज्ञान आनुभाविक और अभिनिवेश (साइक्लर) होता है, वह शुद्ध नहीं होता । अन्वभिनवेश (निरहंकार) तथा अनुभवसे ही किञ्चित् अर्थ-ज्ञानकी प्राप्ति होती है । जो तत्त्वरहि और अनुभवसे प्रमाणित हो वही यथार्थ सत्य है, मुक्ते सत्यका यही अर्थ अनिवेत है ।

रहा ‘आश्रह’ शब्दका अर्थ । आश्रहकी न्युयर्सि होती है—
(आ = अन्यी तरह; ग्रह = पकड़ना) अन्यी तरह पकड़ना । अब यह प्रभ उठ सकता है कि पकड़ना किम वसुको—अपनेको या अन्यको? उत्तर यह है कि ‘आश्रह’ शब्दमें इन दोनोंका ही समावेश हो जाता है । अतः इस प्रकारकी विचारप्रणालीसे यह निष्कर्ष निकलता है कि स्वयं तात्त्विक सत्यको पकड़कर उसमें दूसरेको मी गाँड़ना सत्याग्रह है । शास्त्रीय परिभाषामें इसका यह रूप बतलाया जा सकता है—‘स्वयं तात्त्विक सत्यपर स्थित होकर दूसरोंको (प्रसत्यपर आस्त उपर्योगोंको) उसी सत्यपर स्थिर करनेकी चेष्टाका नाम सत्याग्रह है ।’

यहाँ प्रभ उठ सकता है कि तात्त्विक दृष्टिसे बहि किसीको सत्यका अनुभव नहीं हुआ तो उसका सत्याग्रहमें प्रहृत होना कहाँसंक न्यायसङ्गत हो सकता है? इसका उत्तर यह है कि सबको उस सत्यका सहज ही अनुभव हो जाना साधारण बात नहीं है, इसके लिये बड़ी तपस्या चाहिये । अतः जिन सोगोंने उस सत्यको यथार्थरूपेण प्राप्त कर लिया है, उन महात्माओंके शब्दोंको कार्यमें परिणयत करनेकी सम्यक्

‘तेषा चरनी चाहिये, उनकी आशावुसार सत्याग्रहमें यत्कु इतना उचित ही है। सत्याग्रहकी सामाज्य समीक्षा करनेके परमात् भव हम अपने मुख्य विषयपर आते हैं। रामायणमें सत्याग्रह कहे जाने पोन्य प्रसंग चिन्मतिष्ठित है।

सत्याग्रह				रामायणमें परिणाम			
क्रमांक	किसने किया	किसके विरुद्ध किया	किस उद्देश्यसे किया	बालमीकि०८०	चाच्चारम०१०	तुलसी० रा०	
१	विश्वामित्रजी	... राजा दशरथ	... मस्तका	सफल	सफल	सफल	
२	सीताजी	... श्रीरामजी	... बन-सहगमन	आपसमें विपटारा	आपसमें विपटारा	आपसमें विपटारा	
३	बालमीकी	... श्रीरामजी	... बन सहगमन	“	सफल	सफल	
४	केवट	... श्रीरामजी	... पर्वत पक्षारन	“	सफल	सफल	
५	भरतजी	... श्रीरामजी	... श्रीरामजीको बनसे छाँटाना	विफल	विफल	आपसमें विपटारा	
६	रामचन्द्रजी	... दशरथ समुद्र	... सागरोहन	सफल	सफल	सफल	
७	शम्भु	... वैदिक धर्म	... देवता प्राप्ति	विफल	विफल	X	

अब इनका कुछ सुनासा सुनिये—इसमें संचित इतिहासके साथ सत्याग्रहांकी विरोधताएँ और उनके अधिष्ठान दिखाये जार्यने।

१-श्रीविश्वामित्रका सत्याग्रह—

राजा होनेके कारण श्रीदशरथजीका यह कर्तव्य था कि वे ऐसी व्यवस्था करें जिससे मुनियांको अपनी तपस्यामें छिसी प्रकारका विष न उत्पन्न हो। परन्तु कृष्ण होनेके कारण श्रीदशरथजीमें इन्हीं शक्ति न थी कि वे ताङ्का, सुबाहु आदि बलशाली राजसोंको मारकर विश्वामित्रजीके यज्ञकी रक्षा कर सकें। इस बानको योगबद्धसे विश्वामित्रजी आनसे थे, इसीलिये उन्होंने राजा दशरथकी उपेष्ठा करके राम-काल्यको उस कार्यके लिये से जानेका संकल्प किया। राजा इस मर्मको नहीं जानने थे, इसलिये आनाकानी करने लगे। इसपर विश्वामित्रजीने दोषमें पहुँचर दशरथजीके हृदयमें कर्तव्य-भावनाको आगृह किया, तब वहीं दशरथजी राम-काल्यको विश्वामित्रके लिये देनेको नीत्यार दुः। इस सत्याग्रहका दौरेव्य राजनीतिक कर्तव्यका आगृह करना था, अतः इसका अधिष्ठान राजनीति था।

२-श्रीसीताजी तथा श्रीलक्ष्मणजीका सत्याग्रह—

इनके सत्याग्रहकी कथाएँ प्रसिद्ध ही हैं; इनके सत्याग्रहका अवसर रामचन्द्रजीका वक्षासके लिये उचित होनेका समय है। ये सत्याग्रह प्रेमपर अधिष्ठित हुए जान पड़ते हैं, किन्तु बहुत: ऐसी ही बात नहीं है। विचारनेसे मालूम होता है कि इस प्रेमका भूत सेव्य-सेवक-भावमें है। अतः सेव्य-सेवक-भाव ही इसका अधिष्ठान है।

३-केवटका सत्याग्रह—

प्राच: सभी रामायणके ग्रन्थोंमें इस सत्याग्रहका प्रसङ्ग समान ही छक्कितमार्गोंसे बुत्तजित किया गया है। गुसाईंजीने उसमें—‘मोहि राम रातर आनि दमरव सप्त’ इत्यादि पूरक अंश देकर इस वर्णनको विवरस्वरूप प्रदान किया है। इससे तुलसीदासजीकी पात्र-निरीक्षणता तथा भर्तगावचाम-की प्रवृत्तिनाम स्पष्ट दीख पड़ती है। इस प्रसङ्गमें चमलकार सूर्य ही भरा गया है तथा उससे सत्याग्रहका स्वरूप बढ़ा ही विलक्षण हो गया है। केवटके सत्याग्रहका अधिष्ठान क्या है? क्या गुसाईंजीका उपर्युक्त पूरक न होनेपर इसे प्रेमका अधिष्ठान न मिलता ?

इस दुविधामें महाकवि भद्रभूतिजीके निघ इक्षोङ्कोंदे पूरी सहायता मिल मजहबी है—

व्यतिप्रति पदार्थनन्दन: कोपि हेतु:

न झनु बहिरुपाधीन प्रीतयः संशयन्ते ॥

अर्थात् ‘प्रेम वाल उपाधियोंकी महावताओं अपेक्षा नहीं रहता। एक आन्तरिक शक्ति वस्तुओंको संघटनके बाब बरती जा रही है।’ अतः आन्तर इहिसे विचार करनेपर केवटके इस सत्याग्रहका अधिष्ठान इस अन्यतम प्रेम ही समझेंगे।

४-भरतजीका सत्याग्रह—

भरतजीके सत्याग्रहका अन्याय, वालमीकीय तथा अन्य रामायणोंमें वैसा गहर नहीं है जैसा गुसाईंजीके रामचरितमालसमें है। इसी कारण उनका तद्रिप्यक भाव-प्रस्तुत ऐसा किया और मनोहर दुधा है।

विश्वामित्रकी राम-भिक्षा ।
यदि ते यमोलमं तु यशस्व परमं भुवि ।
स्थिरमिच्छिस राजेन्द्र रामं से दातुमहसि ॥



कि जिसकी समस्ता अन्यत्र कहीं नहीं पायी जाती । इस कथनकी सत्यता इसीसे हो जाती है कि अन्य सभी रामायणोंके रामजी 'दिनंभिमाप्ते' के समान हैं, पर रामचरितमानसके रामजी भरतके प्रेम-वश 'दिशामिमाप्ते' बन गये हैं और ऐसा होनेपर भी अर्थोंकेस्तों, विष्णु बदलत लोक-प्रिय और आदरणीय बुप्त हैं ।

भरतजीके सत्याग्रहका अधिष्ठान क्या है ? इसका निर्णय करना बहुत ही कठिन है, क्योंकि गुलार्हजीके भरत-भावमें स्वामि-सेवक, रिता-नुग्रह, दृष्ट-एवज्ञ इत्यादि अनेक भावोंका बहुत ही सुन्दर संगम पाया जाता है । इसप्रकारके भावोंके विवरणका उदाहरण इमें श्रीशुद्धदेवजीकी श्रीमद्भागवतमें मिलता है । वहाँ भावके परस्परानुप्रवेशका नाम श्रीशुद्धदेवजीने 'भृत्य-भाव' रखा है, और वह है भी अत्यन्त मार्मिक । तदनुसार इम भी इस सत्याग्रहका अधिष्ठान 'भृत्य-भाव' (न कि भक्ति-भाव)निश्चित करते हैं ।

५-श्रीरामचन्द्रजीका सत्याग्रह—

श्रीरामचन्द्रजीने दिविण समुद्रके विरोधमें वह सत्याग्रह किया था और वहाँ इस सत्याग्रहके दो पारबं परस्पर विरोधावस्थामें बन गये थे, रामचन्द्रजीके सत्याग्रहके विरोधमें समुद्रने भी सत्याग्रह किया था, अतः उस सत्याग्रहका दृष्टिय भाग भगवान् रामचन्द्रका था और वाम भाग समुद्रका । अन्तमें श्रीरामचन्द्रजीने उसे चौदहवाँ रथ दिखलाकर अपना सत्याग्रह सफल किया । इसका तात्पर्य यह है कि वहाँ अद्वितीय और समद्वितीय अविरोध है वहाँ साम—प्रेमसे काम न चलनेपर दगड़का उपयोग करना अनुचित नहीं है । यह प्रसङ्ग पूर्वोदार अधिक जटिल है अतः इसके अधिष्ठानके निर्धारणमें इमें यहाँ विस्तारकी आवश्यकता है, पाठक इसा करें ।

रामायण या रामायणीय कथा-प्रबन्ध श्रीरामजी और रावणमें जिस प्रकार भेद विवेश करते हैं उसका सार सभीकरणके रूपमें इसप्रकार दिखलाया जा सकता है—

$$\therefore \text{स्वदेश} + \text{स्वातन्त्र्य} + \text{स्वराज} = \text{रावण} ।$$

$$\therefore \text{स्वदेश} + \text{स्वातन्त्र्य} + \text{स्वराज} + \text{लोकहित} = \text{श्रीरामजी}$$

इसलिये निर्कर्त्ता—

(१) रावण + लोकहित = श्रीरामजी(यही सभी ग्रन्थोंके रामजी हैं)

२६

(२) श्रीरामजी-लोकहित = रावण (यही सब ग्रन्थोंका रावण है)

(३) श्रीरामजी—रावण = लोकहित (यही रामजीका साध्य है)

सभीकरण (१) और (२) से स्पष्ट है कि दो विभिन्न ग्रन्थोंके समान रामजी और रावणकी मनोरवना परस्पर विरोधिनी थीं । इससे यह निश्चित होता है कि यदि दोनों एक ही समय पृथ्वीपर रहें तो लोकहितका नाश हो जायगा—

$$\text{रामजी} + \text{रावण} = (\text{रावण} + \text{लोकहित}) + (\text{रामजी} - \text{लोकहित})$$

इस सभीकरणके अनुसार लोक-हितका सर्वथा नभाव हो जाता है । अतएव सभीकरण ३ में निश्चित किया गया कि रावणका नाश केवल लोकहितके लिये अनिवार्य था । इसप्रकार सिद्ध हो गया कि श्रीरामचन्द्रजीके सत्याग्रहका अधिष्ठान केवल 'लोकसेवा' थी ।

यदि योका-सा विचार विश्वामित्रजी और श्रीरामजीके सत्याग्रहका भेद समझनेके लिये किया जाय तो अप्रासङ्गिक न होगा । विश्वामित्रजीके माँगनेपर यदि राजा दशरथ श्रीराम और लक्ष्मणको न देने, जैसा कि समुद्रने रामचन्द्रजी-के साथ किया, तो विश्वामित्रजी भी 'शरादपि' नहीं तो 'शाशादपि' का प्रयोग अवश्य करते । इसप्रकार दोनों सत्याग्रहोंका रूप पक्ष-सा हो जाता, परन्तु अधिष्ठानमें श्रीरामचन्द्रजीके सत्याग्रहका महत्व विश्वामित्रजीके सत्याग्रहमें बहुत आगे बढ़ जाता है ।

इस सत्याग्रहको लेकर एक महस्तका प्रभ और उठाया जा सकता है, कि श्रीरामचन्द्रजीका समुद्रके कर्जेपर (बहवानल-पर) हाथ ढालनेको तैयार हो जाना अत्याचार क्यों नहीं कहला सकता ? सामान्य बुद्धिसे तो इसे सत्याग्रहका रूप न देकर अत्याचार ही कहना उपयुक्त समझा जायगा, परन्तु विशेष विचारकर देखनेसे इस समझकी आमकता स्पष्ट हो जाती है—'प्रवृत्तिमें आचार उसे ही कहते हैं जो लोक-संग्राहक हो' इसी विचारको सम्मुख रखकर 'योऽस्मान् द्वैष्टि तं च वयं द्विष्टः' 'ये यथा मां प्रपश्यते तांस्तथैव भजाम्यहम्' 'आतायिनमायानं हन्यादेवाविचारयत्' इत्यादि आचार बताये गये हैं । इन आचारोंका उल्लङ्घन अत्याचार हो जाता है । प्रकृतस्थलमें रामचन्द्रजीने समुद्रसे सामनीतिका बर्ताव किया, उसे भी उनके साथ वैसा ही

करना उचित था किंतु उसने उबटे उनकी उपेक्षा की, जिससे उसका कार्य आचारको अतिक्रमण किया हुआ अत्याचार ही सिद्ध होता है। ऐसी अवस्थामें यह शक्ता ही नहीं रह जाती कि रामचन्द्रजीका कार्य आचारका था या अत्याचारका। शारण भी स्पष्ट कहते हैं—

क्षमा शत्रुपु मित्रेषु यतीनां सैव भूषणम् ।
क्षमा शत्रुपु मित्रेषु राजां सैव दूषणम् ॥

७-शम्भूकका सत्याग्रहः

इस सत्याग्रहका वर्णन केवल वाल्मीकिजीने किया है। महाकवि भवभूतिने उसे इसप्रकार कहा है—

रे हस्त दक्षिण मृतस्य शिशोदिष्टस्य ।
जीवतं विमृज शूद्रमुनौ कृपणम् ॥

तान्पर्य यह कि ब्राह्मण-पुत्रके जीवनके निमित्त, यद्य होकर मुनियोंका आचार करनेवाले अत्याचारीकी हत्या करना उचित है। इस प्रसङ्गमें रामचन्द्रजीका अभीष्ट केवल कर्मकारणीय संस्थान्नांकी रक्षा करना था। अतः 'शम्भूकका सत्याग्रहका अधिष्ठान अधर्म था', पेसा स्पष्ट हो जाता है।

सारांश तथा निष्कर्ष

उपर्युक्त सत्याग्रहोंके अधिष्ठान और इनका निष्कर्ष इसप्रकार समझना चाहिये—

सत्याग्रही

- १-विश्वामित्र
- २-माता भीमा
- ३-लक्ष्मणजी
- ४-केवट
- ५-भरतजी
- ६-श्रीरामजी
- ७-शम्भूक

इस विवरणका निष्कर्ष इसप्रकार निकला जा सकता है—

अधिष्ठान

- राजनीति ।
- संख्य-सेवक-भाव ।
- मेंस्य-सेवक-भाव ।
- अनन्य प्रेम ।
- भूत्यभाव ।
- जोड़-सेवा ।
- अधर्म ।

* शम्भूक केवलकी प्राप्तिके लिये तप करता था, यही उसका सत्याग्रह था, परन्तु या स्थानादारहित—धर्मविषय, इससे उसको अगवान् श्रीरामने मार दिया। परन्तु इसमें उसका देवन-प्राप्तिकप उद्देश्य नो मिछ हो भी गया। भगवान्नने मारकर 'शूद्रस्य ददौ स्वर्गमनुलमन्' शूद्रको उत्तम स्वर्ग प्रदान किया। इसमें यह मिछ हुआ कि शम्भूक अपने प्राण देकर भी सत्याग्रहमें सफल हुआ। इसका 'अध्यात्मरामायण' (७।८।२६) में स्पष्ट वर्णन है। अवश्य ही अधर्मयुक्त होनेमें यह अदृढ़ नहीं माना जा सकता। उत्तर रामचरितमें भी श्रीरामने शम्भूकको उग्रतपस्याके फलकृप 'वैराज' नामक लेशोमय अविनश्वर युण्य कोक्षें जानेको कहा है। —सम्पादक

१-केवल राजनीतिमें ही नहीं प्रयुत अन्य परिस्थितियोंमें भी सत्याग्रह किये जा सकते हैं।

२- सत्याग्रह वैशिष्टिक तथा सामूहिक दोनों रूपमें हो सकता है।

३-सत्याग्रह न्याय तथा सदाचारमूलक होना चाहिये।

४-सत्याग्रह असूचा (Revenge) आदि दोनोंसे किन्तु भी विस न होना चाहिये।

५-सत्याग्रहका लाप्य अत्याचारीका सुधार होना चाहिये।

६-प्रेमसे प्रेम और वैरसे विरोध, यही सत्याग्रहके सम्बन्धमें प्रधान निवन्ध है।

७-सत्याग्रहकी परमार्थि 'कार्य वा साधेत देहं वा पातयेत्' है। इतना आग्रह तो सत्याग्रहीमें होना ही चाहिये।

शङ्काएँः—

(१) सत्याग्रहके लैंबं, अत्याचारोंके अत्याचारोंकी उपेक्षाकी अन्तिम मर्यादा कौन-सी है?

(२) सत्याग्रह आरम्भ करनेके बाद, अत्याचारोंकी उपेक्षाकी अन्तिम सीमा कौन-सी है?

(३) 'शठ प्रति शाष्टयन्', 'कण्ठकनैव वृष्ट्यकम्' इत्यादि वाक्योंके अबलम्बन तथा प्रचार करनेका अधिकार सत्याग्रहीको है या नहीं? है तो क्य? यदि नहीं तो क्यों नहीं?

साग्रह अनुरोध है कि विशेषज्ञ सज्जन उपर्युक्त शूद्राद्यों-के समाचारहारा खेलकूदों उपकृत करें।

जाँचना हो तो रामको ही जाँचो।

जग जाँचियं कोउन्, जैंचियं जैंतिय जाँचिय जनकी-जानहिं ।

जहि जाँचत जाँचकना जरि जाह, जो जारनि जरि जगानहि है ॥

गनि देसु विचारि विदीर्घनकी, अह आनु हिये इनुमानहि है ।

तुग्मी भजु दारिद्र-दोष-दबानह, संकट-कंदि कृपानहि है ॥

श्रीमद्भामायणका महत्त्व

(लेखक—श्रीबालकराम विनायकजी, कनकमवन, अयोध्या)

धन्य धन्य वह भूमि जहाँ जन्मे रघुराई ।
बाह्यमयी मूरति सुधारि अतुलित छनि छाई ॥
हुलसी-सुत-सुषि-मति हुलास प्रकंट सुखरासी ।
विश्ववास भगवान् सदा निजतंत्र विलासी ॥
शिव मन मानस हंस माली प्रानहुँ प्रियतम ।
गायत्रिलिङ्ग मुनि हेय ध्येय बायस परमोत्तम ॥
धन्य सां तुलसी-चटविसाल थनि आश्रम सुन्दर ।
'नन्दलाल' सो धन्य घड़ी निये नखत सुवासर ॥

— स्वामी नन्दलालजी

का व्यक्ते धन्य प्रत्येक आपाकी शोभा बढ़ासे हैं
और भगवान्का भी सभी समुच्चत आपाओंमें
मौजूद है, परन्तु आपात्मिक काम्य दुर्लभ
वहाँ है, इरोकि काम्य-कला और आपात्म-
सम्पदवाली, शासका स्वाभाविक सम्मिश्रण ही प्रकृत
आपात्मिक काम्यकी विवरणता है। जो
काम्य वास्तवमें आपात्मिक ठंगके नहीं हैं,
उनके अन्दर काम्य और आपात्मवालका जो
सम्मिश्रण होता है, वह निरा दिलाऊ और कृतिम होता
है। स्वाभाविक सम्मिश्रण वहीं होता है जहाँ आपात्म-
सम्पदवाली विचारोंका भीतरी उमड़से प्राहुर्भाव होता है।
विचारके आपात्मवाले सत्यको सोज निकालनेके लिये कवित्यका
जोश ज़रूरी है।

भयउ हृदय आनन्द उठाहू । उमरोउ प्रेम प्रमोद प्रबाहू ॥
चला सुभग कविता सरितास्ती । राम विमल जस जल भरितास्ती ॥

किसी आपात्मिक सिद्धान्तके लिये वाह अलहारके
रूपमें कविताके वेषकी अपेक्षा नहीं है। भीतरी प्रेरणासे
ही उसे काम्यके रूपमें प्रस्फुटित होना चाहिये। यह तभी
हो सकता है जब आपात्मिक विचार उलटी आखसे चलकर
उस सीमातक पहुँच जाते हैं, जहाँ विरकेचक्षात्मक तुष्टिके
हारा प्रत्येक कारणके कारण हँडेनेका काम बन्द हो जाता है
और जहाँ सत्य, यद आपात्मवेदनके उपासम शिखरसे
सहज ज्ञानके रूपमें सत्यं प्रकाशित हो जाता है। इस आवर्ण-
के आपात्मिक काम्य विश्व-साहित्यमें केवल दो हैं—

श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीरामचरितमानस । एक संस्कृत वाक्यमयका समुख्यता रख है और दूसरा हिन्दी साहित्यका सुकृतमयि । एक स्वयं भगवान्‌का श्रीमुख-वचनामृत है और दूसरा भगवान् शंकरके हृदयमें अवतरित श्रीराम-वरितामृत है। एक भगवस्त्वरूप वेदव्यासजीहारा सङ्कलित और सम्पादित होकर जगतमें प्रसिद्ध हुआ और दूसरा महर्षि वालमीकिके साकार अवतार श्रीमद्भास्वामी तुलसीदासजीहारा निर्मित होकर लोकमें प्रकाशत हुआ । एकको जन्मस्थली उमरेत्रु कुहड़ेत्रकी रथभूमि है और दूसरेकी अपराजिता अपोव्यापुरीमें अवस्थित श्रीतुलसी-पौरा । एकको जन्म-तिथि मार्गीशीर्षकी मुक्तिदा एकादशी है और दूसरेकी श्रीराम-वरमी । दोनों साकार भगवत्-स्वरूप हैं। दोनों सत्थतः भी एक ही हैं। इसको वैदिक भक्ति-मार्गके जिस गहन सिद्धान्त-(आर्यान् ज्ञान-कर्म तथा अव्यक्त-व्यक्तके समुच्चय एवं हृत्यवरमय विश्वको समझते हुए, विरागपूर्वं कर्म करते हुए निर्देशकी प्राप्ति)की व्याख्या गीताने की है, वही मानसमें भी श्रीरामचन्द्रजी, श्रीभरतजी एवं श्रीबिदेहराज जनक आदिके विचारोंहारा प्रकट किया गया है। व्यक्त और अव्यक्तके एकीकरणको 'नाम-भावात्म्य' में भक्तीभावाति दिखाया गया है और सामु-समाजहारा ज्ञान-कर्म-भक्तिका समुच्चय भी प्रकट किया गया है। महर्षि वारिहाविके कल्पोंहारा ज्ञान-कर्मका एकत्र भी दर्शाया गया है तथा यथास्थान कर्म-समर्पणका भाव भी दिखाया गया है। इसके अतिरिक्त मानसमें त्रिविध चतुर्का वर्णन भी किया गया है जैसा कि गीताने किया है और जो त्रिविध मानव-अशिष्याँ गीतामें रक्खी गयी हैं वे ही (त्रिविध मानव-अशिष्याँ) विषयी, साधक और सिद्ध श्रीरामचरितमानस में भी रखली गयी है। इन त्रिविध देव अशिष्योंके अतिरिक्त आसुर-अशेषीका वर्णन भी जिसप्रकार उपनिषद् और गीतामें है उसी प्रकार श्रीरामचरितमानसमें भी है। जिस प्रकार हिविध माया और उससे परे आत्माका वर्णन गीताने किया है उसी प्रकार मानसने भी किया है। मनुष्य-रूपमें हृत्यवर-मूलाका प्रचार प्रत्यक्षरूपसे गीताने ही किया है। यथपि वेदोंमें भी इसकी लक्षक पायी जाती है, परन्तु मानसमें एक विशेषता यह प्रकट की गयी है कि पुत्र, ससा,

भाई, यत्रु, पिता आदि किसी भी भावमें मनुष्यरूपधारी भगवान्की पूजा की जा सकती है और उससे आत्मनिक सुखकी प्राप्ति भी हो सकती है। मानसमें एक विशेषता और है। गीताने बिलने आदर्श रखते हैं वे सभी वैयक्तिक हैं परन्तु मानसमें श्रीरामचन्द्रजीका आदर्श पारिवारिक है जिसके कारण वह मन्य लोगोंको और भी ख्रिय हो गया है।

भगवान् वेदम्बासजीके बनाये हुए सर्वोत्तम मेंबे श्रीमद्भागवतके साथ मानसकी तुलना करते हुए राय बहादुर कुमार श्रीकोशलेन्द्र प्रताप साहि कहते हैं—‘भक्तोंके लिये विशेष ज्ञानधार्यक अन्य श्रीमद्भागवत और तुलसीकृत रामायण हैं। जिज्ञासुके लिये इन्हीं दो उत्तरकोमें सब कुछ भरा है। सृष्टिका पूरा भेद, ज्ञान, विज्ञान और भक्तिके सभी अङ्ग, परब्रह्म परमात्माकी अपूर्व स्तुतियाँ इत्यादि सभी कुछ सारमय वाक्य और इत्युक्त ईरवरीय लीखाएँ, जो मनुष्य बाणीहारा प्रकट कर सकता है, इन उक्तकोमें हैं, परब्रह्म श्रीमद्भागवत उच्च झेणीके मननरीति उल्लंघनके लिये ही ज्ञानधार्यक है। श्रीरामचरितमानस शिविति, अशिविति, अपद, सुपद दोनोंका हाथ धार्ये हुए हैं, वह दोनोंको सन्मार्गपर खे चलकर मनुष्यजीवनके लक्ष्यतक पहुँचानेका दावा रखता है। विशुद्ध प्रेमरस, सभी दीनता और काल्पके चमत्कारसे वह ‘मुख्यसुकोमल मंत्र’ हो रहा है। भक्त-हिन्दुओंके जीवनमें रामचरितमानस दृष्टमें चाँचलीकी तरह मुख्यकर व्याप्त हो गया है। रामचरितमानसके रूपमें हिन्दू जातिकी सरस्वतीका जागरण हुआ है। अपने-अपने बुद्धियुत्के अनुमार सब श्रेष्ठोंके भक्त उसके मनोहर पदोंका मर्म समझते और उससे आनन्द-विहृत होते हैं। जनसाधारणको आदर्श जीवनकी परम उदार शिक्षा सरलतासे देनेमें मानस अद्वितीय है। यह हिन्दी-भाषाका गौरव और हिन्दूके कलाकारी शोभा है। यह कथा-कुहरमें अमृतकी वर्ण करता है और मानस-जगत्में सौन्दर्यका विकास करता है। यह बुद्धिके लिये मुगम और दृष्टयके लिये परम रोकक है। स्त्री-युवती किसी भी दशामें इस सिद्ध तथा भक्तिपरावर्य महाकाल्यमें ज्ञान उठा रहे हैं। सद्गुर श्रीहनमान्दीका कृपामें मानस महात्म महिमाका मन्दिर हो गया है।’

सुप्रसिद्ध साधु श्री टी०ए०ब०बालानीजी कहते हैं—‘काल्प-कलामें श्रीगुरुजीवासजी शोकमपियरसे कहम नहीं है और उस अद्वाव प्रकारके लक्ष्यनेमें जो राम-कृष्णादि नामोंसे विस्तार हैं, आपने उनसे बाज़ी मार ली है, इस विवेचनामें वे

उबसे बढ़े-बढ़े हैं। ये जनताके जीवनके एक अंश हो गये हैं। कविकी सजीवताके प्रमाणमें वह एक उच्च कोटिकी पूजा-मेंट कही जायगी, शोकमपियर परिषद-जग्नके कवि हैं, परिषद्मी, दुःखपीड़ित, अभिज्ञापूर्ण’ उससाही जनताके नहीं। अपने जिती जीवन-ज्ञानहारमें वा काल्प-विचारमें वह प्रजा-प्रकाशी नहीं है। तुलसीदासजीने अपने जीवन और भजनमें दीन-नुस्खों और गमे-गुरारोंकी आच्छात्मिक उन्नतिमें सहानुभूति दिखायाई है।’

जिस समय मानसका आविभाव हुआ था, उस समयके तत्त्ववेत्ताओं और भगवान्नोंने मानस एवं मानसकारके प्रति जो विचार प्रकट किये थे उसका थोका-सा विवरण भी करा देना उचित समझता है, क्योंकि रामायणके इतने प्रकारका कारण बही है। सर्वप्रथम महाभागवत भगवान् भूतनाथकी सम्मति जीविये। जिस समय काशीपुरीमें, श्रीविश्वनाथजीके मन्दिरमें, गतिके समय अन्यकारद्वारा मानसकी प्रति इक्षी गयी थी, प्रानःकाल मन्दिर-पट सुलभे परपुलकपर दिव्यावरोंमें विला हुआ था वाक्य लोगोंने देखा था—‘सर्वं शिवं सुन्दरम्।’ मन्दिरमें उस समय यही अनि भी सुनायी पड़ी थी। मूल गुराई चरितमें विला है—

पार्या पाठ समाप्त कैके धंत, शिवलिङ्ग दिग रतमे ।

मूरख पष्पिद दिद्व तापस जुरे जब पट मुहेड प्रातम ॥

दीक्षिन तिरपिन दृष्टिं सद जने, कीन्ही सही शकरम् ।

दिव्याक्षर संस्कृते पटे शुनि मुने समय शिवं सुन्दरम् ॥

इस अद्वैतिक घटनाका प्रभाव जनताके हृदयपर किसी उड़ा हांगा, इसका अनुमान भी हम आज नहीं कर सकते। इसमें सन्देह नहीं कि उसी समवसं लोग मानसको बेदके समान स्वतःप्रमाणभूत सबकले लगे, लैकड़ों प्रति-विशिष्यों घड़ाधड़ उतारी गयी और देशभरमें अदा-भक्तिकी बाह-सी आ गयी।

गोस्वामीजीके विद्या-गृह-बन्धु श्रीमन्दशासजीकी वाली है—

श्रीमन्दशास स्वरूप-भ्राना पद बन्दे ।

शेष सनातन विपुल शान जिन पाह अनन्दे ॥

गमचरित जिन कीन्ह तापत्रय-कलिमलहारी ।

करि पार्यापर मही आदरेड आपु पुरारी ॥

राजी जिनकी टेक मदन-मोहन अनुजारी ।

बद्मीकि अवतार कहत अहि सन्त प्रचारी ॥

नन्ददासंक इदय-नयनके लोलेठ सोई ।
उज्ज्वल रस टपकाय दियो जानत सब कोई ॥

आचार्य श्रीस्वामी हितहरिवंशजीका घट्पय है—
आतक माव अनन्य एक रति गति पहिचानी ।
हटकि देवघुनि वरि टेक स्वती पै ठानी ॥
गज तज धनश्याम सहै सब पंख मुलाये ।
अनुपम साहस विसद प्रेमपन सिद्धि दिलाये ।
कदि कोकिल पूरब हते ब्रेता जे हरिवंसहित ।
हीरनाम स्वाति कलिमाई तैह तुलसिदास चातक उदित ॥

गोस्वामीजीके प्रेमी श्रीशङ्कुरुंहीम खानखाना (रहीम कवि) कहते हैं—

रामचरितमानस विमल सन्तन जीवन प्रान ।
हिन्दुआनको बंद सम जमनहि प्रगट कुरान ।

महाकवि महाकामा सूरदासजी लिखते हैं—

वन्य भाग मम सन्त-सिरोमनि चरनकमल तकि आयड़ ।
बदन प्रसाद सदन टां-भरि लखि मुख-सन्दाह समापठ ॥
दयार्थिते मम दिसि हेरेठ तत्त्व-स्वरूप लखायो ।
कर्म उपासन ज्ञान जनित भ्रम संशय भूल नसायो ॥
हरिलीला गायो तेहि सुनि तनु पुलकित मानसधीर ।
सुचासमान बचन कहि पोषेठ सुमिरित सिय-रघुवीर ॥
श्रीतुलसी सुचि संत-समागम अद्भुत अमल अनूप ।
सूरदास जीवन-फल पायो दरसन जुगल स्वरूप ॥

वास्तव्यभाव-भूषित श्रीकृपाल्लव स्वामी कहते हैं—

कृतयुग सिंधु निकंप तहाँ विधि वाक्य एक नवि ।
श्रेता उपज्यो फेन तहाँ कवि आदि पोतरवि ॥
द्वाषप्र विषम कराल लहरि रोगादि भ्रमर सत ।
व्यास अदि मुनिर्धुग तहाँ तेहि काल उबारत ।

काल पाप मूल करक्त कलुष विषम लहरि निसिद्धि भरत ।
श्रीतुलसिदास वानी विमल छाडि जहाज नर भव तरत ॥

परम रसिक रसखानजी (जिनको स्वामी नन्ददासजी संकीर्णेवाक्षेत्रे यमुनातटपर तीन वर्षातक श्रीरामचरितमानसकी कथा सुनायी थी) कहते हैं—

सुर तदु लतान चरि फल है फलित किंधौं
कामधेनु धारा सम नेह उपजावनी ।
किंधौं चिन्तामनिनकी भाल भर सोभित
विसाल कंठमें धंर हैं जयेति झलकावनी ॥
प्रमुकी कहानी ते गोसाईकी मधुर वानी
मुक्त-सुखदानी 'रससानि' मनमावनी ।
खाँड़की लिजावनी-सी कंदकी कुडावनी-सी
सिताको सतावनी-सी मुधा सकुचावनी ॥
अब गोस्वामीजीके पीछेके महानुभावोंकी सम्मतियाँ
नीचे बाँचिये । स्वामी श्रीमतुसूदन सरस्वती और भक्तमालाकार
गोस्वामी नाभाजीकी डकियाँ अति प्रविद हैं, इसकिये
उनका उद्देश नहीं किया गया ।

श्रवोज्ञाजी बड़े स्थानके आचार्य श्रीस्वामी रामप्रसादजी
दीनबन्धु कहते हैं—

चतुरक-त्रृति सो सत्त्विक रूप
मनो नभ निमंल कर्तिकहीको ।
पातक-पुञ्ज सिराहि विलोकत
शीदथाहु विद्य-रस फैको ॥
पूजामें अंग प्रसंग मौं कान सों
ध्यान धरे रघुनन्दन-सीको ।
क्षु मौं रूप धरे हरि पश्च
प्रतक्ष सरूप गोसाईजीको ॥
बंदको विधान लिये पूरन पुरान मत
मानत प्रमान साधु-संत सब ठाईके ।
प्रेम-रस भीने पद परम नवीने कहि
दोने हैं अखेद कवि भेद जहं ताईके ॥
दया दरसावै सरसावै प्रेम पुर जल
हियो हुलसावै जैन पाहनके नाईके ।
स्वामीको चरित और बापुरा बहाने कौन
वृत्ति यह बैटे परी तुलसी गोसाईके ॥
काशीजीके सुप्रसिद्ध प्रकाशद विद्वान् श्रीदेवतीर्थ
(काष-जिह्वा) स्वामीजी लिखते हैं—
बालमीकि, नारद, कपिल औ अगस्तदेव
कहौं बहु भेव पै समुक्षमें न आई है ।
महिरस आखो आहै बूझे बिन सूझे काहा
निष्ठ अबूसेको निकट दरसाई है ॥

दास आस पूरे करै संसय सब दूरे करै
प्रभु पद कूरे करै सुजन सोहाई है ।
चारि षट् दस वसु उदधि अगाध मथि
सुधासेनिकासे मूल तुलसी गोसाई है ॥

असरन-सरन एक तुलसीके चरन हैं ।
राम-भक्ति दायक औ ज्ञान-ग्नान-हरन हैं ॥
माधामे रामचरित कियो ललित बरन है ।
अगम अर्थ सुगम कियो पढ़त बरन-बरन है ॥
बात्माकि व्यास वाच्य गदपि फलित फरन है ।
इतनो रस तहाँ कहाँ चुवत परन-पठन है ॥
देव ऋषि कि आदिकवि कि वेदहृष परन है ।
जाके बस सीय-राम-तुलन तरन-तरन है ॥

धर्माचार्योंकी सम्मतियाँ उत्तर संक्षेपतः दे दी गयीं । अब
कुछ हिन्दीके पुराने कवियोंकी उक्तियाँ सुनिये । सुकृति
'प्रधान' जी कहते हैं—

जली कृषा करी महावीरजू गोसाई त्रु पं
तेती न दुलारा राम त्रृहू सग भाईका ।
सर्वे निज तत्त्व राम-ज्ञानकीको तत्त्व साग
एके बार सौंपि दीन्हीं सर्वे सो कमाईका ।
केते कवि भये केते अहे केते होनेवारे
कोई न 'प्रधान' येमी पाई प्रनुताईका ।
बेद औं पुरानको मान राख तैला लेग
जैसो न प्रमान भाँई तुलसी चापाईका ॥

तुलसी गोसाईजीकी कविति न गाँड जात
नवो स्पष्ट ज्ञनदृष्टिप तम्भूसी न नाई है ।
भाष्ट 'प्रधान' सत दूरप औं मूरुको
सर्वे सुखदाई जाकी येमी कविताई है ।
मधुर चिकासी कह फौसी नमगर्म है
कामना प्रदाती मर्सी सातु नन पाई है ।
अल-सी, मयूर-सी पंयूप-मी पूरन-मी
देवनकी लखन-मी भूकन-सी भाई है ॥

सोक भविता है इहलोक दक्षिता है
परलोक रक्षिता है सिद्धिता है सब ठाईका ।

प्रीतिकी पिता है अनरीतिकी भिता है
परतीति संचिता है चर्चिता है काळ खाईकी ।
भाष्ट 'प्रधान' दिल-दोष दरिता है
रसरूप भरिता है सरिता है शम्भु साईकी ।
मुकि गर्विता है राममकि भविता है
विश्वेष्टु सविता है कविता है या गोसाईकी ॥

कविवर 'किंकर-गोविन्द' जूही उक्ति देखिये :—
सरि जात सवित असवित विसरि जात
करि जात भोग भव-बन्धन करतरि जात ।
तरि जात काम सरि बरि जात कोष करि
कमं कलिकाल तीनि कष्टक भवति जात ।
भरि जात भाग्य भाल 'किंकर-गोविन्द' त्वोही
ज्योही तुलसीकी कविताई पै नजरि जात ।

जारि जात टम्भ, दोष-दूषण दररि जात
दुरि जात दारिद दुकालहू निसरि जात ॥

भक्तिका प्रमूतिका है मुकिहूकी दूतिका है
मवकी दिमूतिका है सुदृ डकिका है जू ।
सर्वा रम्भामेनका है हिमबन्त-कन्यका है
कामयेनुका है कंयों मातु रेणुका है जू ।
अर्मा-मूरिका है मोहन्तम-दूरिका है
हरिपद-धूरिका है कंदो काम पूरिका है जू ।
मु-भरता है के विद्युद चारिता है कंदो
'किंकर-गोविन्द' तुलसीकी कविता है जू ॥

इमी तरह कविवर 'तोष' भव्य भावनासे भावित
होकर लिखने हैं—

यह खान चतुष्कलकी सुखदानि
अनुपम आनि हिंदे तुलसी ।
पुरान सन्नभेद मन-भृगनको
अति बंजुल माल लसी तुलसी ।
अक मानवके तारबे कहै 'तोष'
मई भवसागरके पुलसी ।
सब कामन-द्रावक काम-दुहा
सब रामकथा बरनी तुलसी ॥

देखिये, कविवर 'महाराज'के कवयमें कितनी
कालविकला है—

अबहों सब नेम, घर्ष, संगम सिराय जाते
माता-पिता बालकको वेद न पढ़ावते ।
आमिष-अहारी व्यभिचारी होते भारी कोग
कोज रुचनाथजूकी चर्चा न चलावते ।
दूट जाते नेम-घर्ष आश्रमके चारों वर्ण
ऐसे कलिकलमे कराइ दुःख पावते ।
होते सब कुचाली सो सुचाली मने 'महाराज'
जाँप कवि तुलसीदास भाषा न बनावते ॥
'डेनी' कविकी डकिं भी इसी प्रकारकी है—
वेदमत सोषि सोषि सोषिकै पुरान सबै
सन्त औं असन्तनको भेद को बतावतो ।
कषटी कुराही कूर कलिके कुचाली जीव
कौन रामनामहूकी चर्चा चलावतो ।
'बेनी' कवि कहै मानो-मानो हो प्रतीति यह
पाहन-हयेमें कौन प्रेम उपजावतो ।
भारी भवसागर उत्तरतो कवन पार
जाँप यह रामायण तुलसी न गावतो ॥
भक्त कवि 'ठाकुर' की डकिं अनेक दृष्टियोंसे
विचारणीय है—
वेद-मत-सम्मत पुरान अरु शाखानको
प्रेमको विशास ईनहास परसति है ।
सो मा सौलभयी प्रातिमर्या गितिमर्या भीति
बड़ोई प्रमान सो प्रतन्द्र दरसति है ॥
'ठाकुर' कहत बहनि तुलसी तिहारी बानी
अकह बहानी रससानी सपसति है ।
चन्द-सी, चमेली-सी गिरा-सी गंगधारहू-सी
मधा मेपमर्यी रामयथा बरसति है ॥
श्रीपरभानन्दजी कुछ और चढ़-बढ़कर कहते हैं—
कैधों सिद्धि सार बगराने देस-देसनिमे
कैधों गणरायजूकी तुझि सरसाई है ।
कैधों सुरसरिता निहारि निज चौधोपन
दौन हेतु पाय नव रूप दरसाई है ॥
कैधों मुकिरानी वियरानी भौन-भौनिमे
कैधों परमानन्द तुलसी-कविताई है ।
कैधों रघुनाथकी दयालुता प्रतच्छ हैकै
पतित उचितिवेको रूप धरि आई है ॥

राज्यि श्रीरघुगज्जिसहज देव (रीवीं नरेश) कह
गये हैं—
कविनकी नीकी अति जीकी भावतीकी उकि
फीकी परी धार जो अमीकी-सी लगत की ।
भारतीके दन्तनकी भीसी-सी रचि हैं रचि
ब्रह्मगीकी ही की जम भी की जोड़ सतकी ॥
रघुराज श्रुति विमलीकी लीक टीकी लोक
विरतिकी लंकी भगतिमें भगतकी ।
प्रमकी नदीकी दर्दी देमकी हृदीकी भरी
वानी श्रीगंगामाईजीकी जीवन जगतकी ॥
बंदिक प्रमान जाको बेदको बदत त्यों
पुरानिक प्रमानमें प्रमान जासु गाँव है ।
देश-देश-नासी निज निज अक्षरन माहि
लियो है उतारि वृद्ध-बालक पढ़ावै है ॥
कहाँकों कहाँ मैं जांत जमलों तुड़ाय जात
पेसो को न जाको चैपाई चारि आँवै है ।
तुलसी-रचित : म-चरितको रघुराज
साचत बदत राम उर धसि जावै है ॥
राम-पद-निति विरजंत निकासिकै बेगि
ब्रह्म, रुद्र, मसू शृणि सीसैपै सोहाई है ।
बालमीरि मुख्मेमन्नाथ कै महीको मंडि
चहुँ दिसि रसिक महोदधिको धाई है ॥
सभर-युवन जग-जीवन तरन-हेतु
भंग-प्रताद हिमगिरि प्रगराई है ।
रघुराज राम-कथा भरतखंड भूमं भलि
भागीरथी तुलसी भगीरथ बहाई है ॥
बोधों चिरि बीज रघुनाथ जस कामतरु
कुम्भज वसिष्ठ सासा पट्टव लगायो है ।
व्यास तुकदेव आदि किसकै कुमुम कीन्हे
बालमीकि सुफल अमल दरसायो है ॥
माधव धुरीणाचार्य रामानुजाचार्य आदि
बीनि-बीनि फल ग्रन्थ पथमें धरायो है ।
रघुराज तुलसी सनेहसों परोसे पानि
सीतापति सेवक निवत ऋषि आयो है ॥

असिद्ध रामत्यरो पं० श्रीरामगुलाम हिंदौरीली विस
गये हैं—

जय जय श्रीनुलसीकी बानी ।

विसद विचित्र चित्र पद मंडित भुकि भुकि बरदानी ॥
लीन्हो वेद-पुरान-शास्त्र-पत मुनिजन ललित कहानी ॥
ज्ञान, विराग, ब्रह्म-सुख-जननी करम भरम नय सानी ॥
उदित भई जा दिनतं जगें तबते बुधन बहानी ॥
अखिल अवनिमंडल परि पूरित को अस जो नहि जानी ॥
प्रथी राम-चरन-रति जहं तह भूरि विसुखता बानी ॥
राम-गुलाम सुनत गावत हिय आवत सारंगपानी ॥
राम-भीकि रमाको भ्रगट पथ पारावर
सदगुन अगरको नगनाधिराज है ।
महामुनि हसनीकी मानस महेश भन
देख विशु विप्रवत मोह सग बाज है ॥
वेद अवतार औं सिंगार भारतीको भव्य
भाष्यको भंडार जग-जलधि जहाज है ।
बदत गुलाम नाम धर्मको धरत धाम
रामायन नाम नव ग्रन्थ सिरताज है ॥

साहित्याचार्य पं० श्रीश्विकादत्त व्यामर्जीने कहा ही
अच्छा कहा है—

अंग्रेजी, फारसी, फरसी, बरमर्डीहुमें
राम-लहिमनकी कहानी दरमात है ।
सब पाठसालनमें सालनके बालनमें
पोथीके अठालनमें रामही दिवाल है ॥
राम-दरबारन दुकान अन्मारनमें
बागदी बहानमें हेत सोई जात है ।
मृग चपाटद्वारे गमके गिरायो नाम
तुलसी गुसाई यह नेंगी करमान है ॥
गुहे कलंदी कलि कपड़ी कुचाली मूढ़
भाग-भागु नलो गहि परकि पठारेंगो ।
तुलसी गोसाई तूके काव्यके किना सोकाढ़ि
दोहरा दुनाई-सी बन्दूकनमो मारेंगो ॥

कवि अम्बादत्त सोरडके सैफ साफ करि
छंदनके छर्टासों गरब गहि गारोंगो ।
चारु चउपाइनके चोखे-चोखे चाकू लेह
आज तोहि टूक-टूक काटि-काटि डारोंगो ॥

इनि गये पानीमें मरन्द अरबिन्द संग
फूटिये अनार दास देह सिकुराई है ।
सूख गये ऊख गरि गये नवनीत भीत
बीनी हू हठीली गाँव-गाँव लात खर्दि है ॥
तून गहो मिसरी बतासे भयं हलकेसे
अम्बादत्त कवि मुरक्काई त्यो मर्लाई है ।
लखिंके गुसाई तूके काव्यकी भमुरक्काई
मुझाहू लजाई सुखलाको सिखाई है ॥

हैं हैं रसरासिनको सत्त तिन्हें घेरि-घोरि
जगुति मथनियाँ सो मथि-मथि डारिये ।
काढिंके मधुरताकी मालनकी गोली तामो
मध्युरता मिसरी है सुभग सँवारिये ॥
कहै कवि अम्बादत्त गुन अलंकारनके
मेवा डारि ताको पुनि अधिक सुधारिये ।
तुलसी गुसाई तूके मानस गमायनके
एक-एक आखदारी सोङ वरि इरिये ।
मोह-ममताकी मदन्मध्यरकी मन्डनाकी
मूटनाकी मीचहर्की मारनी-सी दरमें ।
पूना पिमाचौं प्रेन पंगतको पाजिनको
बूत बच्छ राज्यसकी जुग्म जहांसी ॥
कवि अम्बादत्त कहै तुलसी गुसाई तूकी
कविता अपुरब अप्रीकी धार बरसा ।
परम दच्छानो पक्षिनिके मंडलको
मुकि जुर्तीको अहे मन्त्र बस्किर-मं ॥
हगार-हगार अह नगर-नगरमाँहि
कहनि पमारी रामचरित अवनिकी ।
कहै कवि अम्बादत्त रमहीकी लौगन मो
भरि दीनी भीर संबं चहलि-पहलिकी ॥
मूदनते बाल्हण लो मूरकते पण्डित लो
रसना तुलाई भैं जैं वहि बहिं बहिं की ।
बयको भगाय पाष-पुष्करको नसाय आज
तुलसी गोसाई नाक कट लीनी कलिकी ॥

इवोध्याजीके प्रसिद्ध सिद्ध सम्म वाचा वनादासजी
लिखते हैं—

बन्दो पद तुलसी गोसाई महाराजजूँको
कलिराज उदधि जहाज अवतार है।
जीवनरै दाया रघुनाथ निर्मान किये
जाकी मृति चंड भवसागरते भार है॥
गमि लीनो सकल पुरान श्रुति शास्त्रीज
ना तो बृहि जान भरजाद माँझभार है।
ऐमी रिति रहस भग्नन तीन काल नाही।
बनादास बदत प्रचारि बार-बार है॥

भारती भाषाके प्रस्तुत इवि, 'केकालिकि' के कर्ता श्रीमोरोपन्न 'मयूर कवि' ने एक 'श्रीतुलगीदासस्त्र' लिखा है, उनकी जीवे उद्युत की गयी कुछ आर्योंसे जात होगा कि मयूरजीके अन्तःकरणमें गोस्वामीजीके विचारमें कितना आदर था—

श्रीराम-पदाञ्ज-अगि तुलसीदास हा सदा गावा ॥ १ ॥
श्रीविल्मीर्क च शाला श्रीतुलगीदास, रामयश गाया,
नरिचं प्रेम रामच माणी वाणी तगीच वशगा या ॥ २ ॥
पाचं मुण्डम-मवन करन निवितं सदा गुचा सगमे।
हं जो जो सेवावं तो तो सेव्याचि गमे, सुना-सरसे ॥ ६ ॥

आर्यान् तुलसीदासजी मानो श्रीरामचन्द्रजीके चरण-कम्बका रस चूसनेवाले अमर हैं। इमें उनकी निरन्तर सुति करनी चाहिये। राम-भश-गान करनेमें श्रीतुलगीदास-जी मानो सूर्तिमान् श्रीवाल्मीकि ही हो गये हैं। इसीलिये उनकी वार्यी, जो प्रेमरसकी खानि थी, महाकवि वाल्मीकि की वार्याके ही सदाय उनके बाहरें थी। उनका काल्य मानो उत्तम प्रेम-मन्दिर है, जो ज्ञानियों और पवित्रताओंको निरन्तर अपनी सरसतासे शोभा और सुन्दरतासे तृप्त करता है। यद्योंकि उद्यों-उद्यों इस अन्दिरका भोग किया जाय—उद्यों-उद्यों इसके प्रेम-भक्ति-पूर्ण काल्य-रसका भोग किया जाय—त्वां-त्वां वह असूतकी तरह सेव्य जात होता है अर्थात् शीकूष-शानका-सा आनन्द निकलता है।

इसी कारण श्रीनाभाजीके शक्तिमें कहना पहता है—

'कलि कुटिल जीव निसार हित वास्त्रीकि तुलसी मयो ।'

'गीताके बाद शवि किसी अन्यने देखेद्वारक समुचित मार्ग दिखाया है तो इस गोस्वामीजीकी रामायग्नी ने।

इसमें भगवन्नकि और सांसारिक सदाचारकी इतनी उत्तम शिक्षा दी गयी है कि वह और किसी अन्यमें नहीं पायी जानी।'

अन्यमें विदेशी विद्वान् द्वाकार विष्वसेनकी सम्मति सुन लीजिये—

'भारतवर्षके इतिहासमें तुलसीदासजीका गुरुत्व अमूल्य है। उनके अन्यके पाविदत्यको अवश्य रहने दीजिये, उनकी सर्वत्साधारण आहकतापर ही दृष्टि कीजिये, जिसका पंजाबसे भागवतपुर और हिमालयसे नमंदा पर्यावर बारों वर्षावाले आहर करते हैं, सो वास्तविक ज्ञान देने योग्य है। सारे हिन्दू-समाजमें राजा, राज्ञ, उच्च, नीच, बाल, युवा, हृद सबके द्वारा यह रामायण सुनायी देती है और सबमें सम्मानसे पढ़ी, सुनी और आदरणीय समझी जाती है। तीन सौ वर्षसे अधिक हुए यह रामायण आर्य भारतवासियोंके जीवन, व्यवहार और बोलचालमें सर्वथा मिलजुल गयी है। ऐसा न सोचना चाहिये कि लोग इसे केवल काल्य-रसके प्रेमसे अथवा आश्रयताके कारण ही देखते अथवा पढ़ते हैं। इसे तो धर्मशास्त्रके सदृश पवित्र और प्रामाणिक मानते हैं। जैसे यूरेपके 'बाइबिल' को आदरणीय समझते हैं वैसे ही आर्य लोग इसकी मर्यादा मानते हैं। यह कलोडों मनुष्योंका शास्त्र हो रहा है। पवित्रत आहे वेद और उपनिषदोंका अन्यास करें और योद्दे वहुत अन्य व्यक्ति पुराणोंपर अपना विश्वास बसावें, परन्तु अन्यदेशके पठित अथा अपठित दोनों श्रेष्ठियोंके मनुष्योंका असंक्षय समुदाय इसी तुलसीकृत रामायणको अपना मुख्य जीवनसर्वत्व समझता है। निस्सन्देह अन्यदेशके लिये इसे सौभाग्यका बदा कारण समझना चाहिये कि जिसने शैव-सम्प्रदायके लान्त्रिक व्यवहारसे इस देशका रचना किया। इस देशके मूल रक्षक स्वामी रामानन्दजी हुए। जिस पतित व्यवहारसे एक देश भ्रष्ट गिना गया उससे उन्होंने इस देशको बदा किया। किन्तु तुलसीदासजी ऐसे उस धर्मके राजा हुए कि पूर्णसे प्रशिम (और उत्तरसे इच्छिय) तक स्वामी रामानन्दजीके उस सद्गुरुओंको फैलाकर उसपर लोगोंका दूर्घटनापर सेव्य करा दिया।

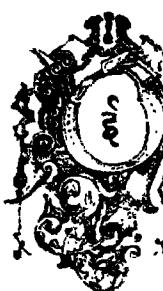
'वास्त्रीकिंजीने भरतजीकी धर्मपरायणता, जप्तमयजीका आत्-स्नेह और सीताजीके पातिकृत धर्मकी प्रशंसा की है, परन्तु गुसाई तुलसीदासजीने उन्हें उदाहरण बनाकर दिखाया है। कालिदासजीने अपनी मनोहारिणी कविताके केवल आवारके लिये श्रीरामचन्द्रजीको निरूपण किया है

परन्तु याका तुलसीदासजीने अपने मानवीय ईरवदके चरणों-पर अति नम्रतापूर्वक विरत्याजी सुगन्धित पुष्पोंकी माला पिरोक्त अपेक्षा की है। यहाँ एक बात और वर्णन करने बोध्य है जिसपर कदाचित् किसी आर्य पाठकने भ्यान भी न दिया होगा। वह यह है कि वे ही सर्वश्रद्धम भारतीय महाकवि हैं जिन्होंने अपने पूर्वभूत कवियोंकी उपमा न लेकर प्रकृतिरूपी पुस्तकसे अपनी सब उपमाओंको लिया है। वे इतने भारी सत्थवेता ये कि उनके वयार्थ और सरल-सरल पद भी बड़े-बड़े दीक्षाकारोंकी समझमें न आये।'

हालके द्विवेदी, चतुर्वेदी, गुरु, मिश्र-बन्धु,
गुप्त, दीन, रामहित, खेती, रकाकरजू।
रंग औ अंगम, रसरंगमणि, पाठकजू,
नवलविहारी, शर्मीजू, नवनागरजू ॥
इन्दु, श्री विन्दु, अरविन्द, नेहलता, गांधी,
गदा-पद्म-लेखक मरिन्द, शक्ति, आमरजू।
निज-निज मावसों गोसाई गुन-गान कीन्हे,
ठिंपे नहीं उपे पवित्रकान बीच सादरजू ॥

रामायणसे राजनीतिक उत्थानमें सहायता।

(लेखक—राव नवादुर भरदव राघवराव विनायक किंवे एम० ए०, एम० आर० ए० एम०, डि० प्राइम बिनिश्टर, होल्कर स्टैट)



साक्षी १६ वीं शताब्दीके अन्तसे १७ वीं शताब्दीतक महाराष्ट्रमें जितने भी सन्त-कवि हुए, उनमें जिन्होंने धर्म-रक्षण-हारा परतन्त्रताका मूलोच्छेद करनेमें जो कुछ प्रयत्न किया था उसकी उत्थापनामें रामायणकी कथाओंका बहुत कुछ उपयोग किया गया है। इन्होंने सुसल्लमान और पोन्नुंगीज आदि यूरोपियन लोगोंको राष्ट्रसंघोंकी और महाराष्ट्र वीरोंको भगवान् रामचन्द्रजीके सैनिकोंकी उपमा दी थी। उस समय प्रायः सभी सन्त-कवियोंने रामायणकी कथाओंका भरणीमें वर्णन करना प्रारम्भ कर दिया था। इस उपक्रमका प्रारम्भ म्वसे पहले श्रीपूर्णानाथ महाराजने किया। यथापि उनका प्रधान उत्तरव आव्यायरामायण-वर्णित तत्त्वज्ञानका ही जनतामें प्रचार करना था सथापि श्रीरामचन्द्रजीके पुराण चरित्रकी मुख्य-मुख्य बातें उन्होंने बड़े अच्छे रंगसे वर्णन की हैं।

राजनीतिक उत्थानमें रामायणका सबसे अधिक उपयोग क्षत्रपति शिवाजी महाराजके गुरु समर्थ श्रीरामदास स्वामीने पृथ्वीस्पसे किया, उन्होंने बड़े जोरदार शब्दोंमें बड़ी ही सुन्दर शैलीमें इस कथाका ग्रनावांत्यादक वर्णन किया है कि यथापि रावण अथवान्त शत्रियाजी, ऐश्वर्यसम्पद और विहान् था परन्तु दुराकारी होनेके कारण उसका विनाश श्रीरामचन्द्रजीने बानरोंकी महायतासे कर दिया। इसीके साथ-साथ स्वामी रामदासजीने अपने विभिन्न मर्गोंके

हारा श्रीरामचन्द्रजीके परम अनन्द भक्त बल-बीर्य-निधान श्रीहनुमानजीकी भक्तिका भी जनतामें खूब प्रचार करवाया। यहाँतक कि उन्होंने अपने उपरेक्षाओंसे जनताको इस बातके लिये बाल्य किया कि वह भी श्रीहनुमानजी-सी शक्ति प्राप्त करे। इनुमानजीके ग्राहकर्यका गौरव मिहू जरते हुए उसका भी सर्वसाधारणमें प्रचार किया। आपने अपने क्लेशोंमें उपर्युक्त दोनों बातोंपर बढ़ा जार दिया है। इसीके साथ श्रीरामचन्द्रजीके सत्यवादिता, एकजीवी-ब्रह्म आदि आदर्श और पवित्र गुणोंका गौरव-गान करते हुए आपने लोगोंको यह शिक्षा दी कि मनुष्यपर किसना भी सङ्कट क्षणों न आ जाव परन्तु वह अपने शीखका परित्याग कहापि न करे।

स्वामीजी श्रीरामदासजीने अपने 'दासबोध'नामक ग्रन्थ-में क्षत्रपति शिवाजीके सम्बन्धमें स्थान-स्थानपर जो कुछ उल्लेख किया है उसका मननपूर्वक विचार करनेसे यह ज्ञान होता है कि आपका आभिप्राय यह बतलाना था कि क्षत्रपति शिवाजी भगवान् श्रीरामचन्द्रका ही अनुज्ञय करते हैं। उदाहरणार्थ, जैसे श्रीरामचन्द्रजीने विजयलाभके लिये जिसप्रकार देवीकी उपासना की थी, उसी प्रकार क्षत्रपति भी तुलजा भवानीको ग्रस्त करनेके लिये प्रार्थना की। सुप्रसिद्ध चित्तोद्वगदमें श्रीतुलजा भवानीका मन्दिर है, इसमें स्वरूप श्रीतुलजा होता है कि जिस कुछमें क्षत्रपति उत्थाप हुए, उस सुर्यवंश—सीसौदिवा-कुलकी कुलदेवी

भवानी भाता ही थी। श्रीरामदास स्वामीने अपने स्कूट प्रकरणोंमें इसका स्पष्ट उल्लेख किया है।

श्रीरामदासजीने स्वरचित् कविताओंमें यह दिखलाया है कि जिसप्रकार रावणका देवर्षी आत्माधार पूर्ण था उसी प्रकार 'श्रीरामवा पारी' का है, और जैसे श्रीरामजीने बुद्ध वानरोंकी संघरणिमे सहायता प्राप्तकर उनका समूज संहारकर धर्मरक्षा की थी, वैसे ही छत्रपतिने भी अपने शत्रुओंको प्राप्तकर धर्मकी रक्षा की और समस्त भीरुद्ग्रेवोंको निर्भय कर दिया। इस बातका बर्णन उन्होंने अपने उस पत्रमें बड़ी ही उत्तमतासे किया है जो छत्रपति शिवाजी-के पश्चात् छत्रपति शंखाजीके नाम भेजा गया था। उनका 'आनन्द-बन-भुवन' नामक काव्य 'देश-प्रेम'के बर्णनमें सुप्रभिद् 'बन्दे मातरम्' से किसी प्रकार भी कम नहीं है, प्रत्युत देशकी स्थिति बतानेमें उससे कहीं बढ़कर है।

राजनीतिक उथानमें रामायणसे जो शिवा ग्रास हो सकती है, महारामा गौचीजीके कथनानुसार वह यही है कि किसी भी हालतमें सत्यको हृष्यमे नहीं हटाना चाहिये। श्रीरामचन्द्र इस सिद्धान्तके सर्वोच्च आदर्श हैं। पिताके वशनका पालन करनेके लिये उन्होंने प्रसन्नतासे राज्यका स्वागतर बनके कह सहना पमन्द किया। उनको सत्य-प्रियाके प्रभावये ही उन्हें जंगली वानर-जातिकी अभूत-पूर्व महायता ग्रास हुई। सङ्कटमें धर्मपालन उनका आदर्श गुण था। उन्होंने एक-एकी-ब्रत प्रदद्य किया था और सीता-देवीकी अनुपस्थितिमें भी उस बनको बड़ी ही उत्तमतासे

निभाया तथा किसी भी परिस्थितिमें उसका स्वाग नहीं किया। संघरणिमों बदाया, वानरोंके जो भेद ये अर्थात् जन्मूक, सुशीव और वाकि आदिमें जो परस्पर झगड़े थे, उन्हें बड़ी ही तुदिमानीसे निपटाकर उन सबको एक सूत्रमें बाँध दिया और फलतः उनकी सहायतासे महान् ब्रह्म-सम्पन्न दुर्धर्ष रावणका विनाश कर दिया। सहकारसे कितना बड़ा काम हो सकता है यह बात समुद्रपर सेतुकी रचनाकर आपने जनताको प्रत्यक्ष दिखला दी। चरित्रका प्रभाव कैसा पहता है यह तो श्रीरामचन्द्रजीके चरित्रसे भलीभाँति इष्टोचर होता ही है। प्रजाके सन्तोषके लिये श्रीरामचन्द्रजीने सीता-देवीरूप सर्वस्वका परित्याग कर दिया। सारांश, कि जोकाप्राप्तवर्यमें जो गुण होने चाहिये, श्रीरामचन्द्रजीने अपने बर्तावसे उन सबको मूर्तिमान करके दिखला दिया।

रामायणमें वर्णित चरित्रोंका मनन करनेसे सत्य, संघरणिक, चरित्रबल, भावना-जागृति, ध्येय पालन आदि गुणोंका देशके राजनीतिक उथानमें कितना महत्व है और इनको कौन-सा स्थान ग्रास है—यह बात भलीभाँति जानी जा सकती है। जिसप्रकार १६ वीं या १७वीं शताब्दीमें उपर्युक्त वातोंको ध्यानमें रखकर साहित्यकी रचना की गयी थी, आज भी देशोदारके लिये वैसे ही साहित्यके निर्माण करनेकी अस्थावश्यकता है। साथ ही उपर्युक्त इष्टमें रामायणके अन्यवन करनेकी भी बहुत बड़ी आवश्यकता है, इससे भी खूब साम हो सकता है।

रामायणसे उच्च भावोंका प्रादुर्भाव

जगत्में अनेक काव्य-ग्रन्थ हैं परन्तु आचार और काव्यको कोई भी कवि इसप्रकारकी दृढ़ता, मनोहरता और रसिकतासे नहीं बाँध सका। ऐसे प्रभावशाली ढंगसे धर्मका सजीव उपदेश देना एक रामायणका ही काम है। यही एक काव्य है जो हमारे हृदयोंमें सत्यके प्रेमको ऐसी उत्तमतासे उत्पन्न कर देता है, कि हम रामायणको पढ़कर कुछ-से-कुछ बन जाते हैं। हममें ऊँचे ऊँचे भाव उत्पन्न हो जाते हैं, और वे सब गुण जो मनुष्यकी उत्कृष्टताके आभूतण हैं, हमारे सामने आकर खड़े हो जाते हैं। सत्याचरण, पितृभक्ति, पातिज्ञत-धर्म, पति-धर्म, पिता-माताका स्नेह, विनय, धैर्य, दयालुता आदि मानवगुणोंका ऐसा कौन सा चित्र है जिसके यथार्थ स्वरूपको कविने इस ग्रन्थमें अपनी जादू-भरी लेखनीसे निचित नहीं किया हो। रामायणके देखनेसे प्रतीत होता है कि इसकी उत्पत्ति भारतके प्राचीनतम एवं आन्तरिक भावोंसे हुई है। अतः इनसे अधिपतित अवस्थामें पड़े हुए सभी लोगोंको पुनर्जीवन प्राप्त होता है।

—ग्रीकिय (रामायणके अनुवादक)

मानसमें ज्ञान और भक्ति

(लेखक—पं० श्रीकृष्णभीरुजी पाठक)



कि और ज्ञानमें कौन अह है वह बताना सरल नहीं है। मायामें लिपि, परमार्थ-चिन्तनमें विसुल, हम अखण्ड मनुष्योंकी तो बात ही कौन-सी है? कृत-माया-दासी, संसार-स्थानी, परम मेषार्ची अविसुनि-आकाशगंगा भी इस विषयके विद्वान्तोंमें एकमत नहीं है। कोई कहते हैं ज्ञान अह है तो कोई कहते हैं भक्ति अह है। शास्त्र, पुराण एवं वदे-बदे ग्रन्थोंमें इस विषयके प्रचुर विवेचन मिलते हैं पर उनसे एक निश्चित मिद्दान्तपर पहुँचना कठिन है। ही, इतना तो अवश्य ही सभीको स्वीकार करना पड़ेगा कि भक्ति और ज्ञान दोनों ही धर्योंसे परम पुरुषार्थकी प्राप्ति हो सकती है—अनेकरूप परमामार्थ की प्राप्ति हो सकती है।

यद्यपि उपर्युक्त 'भक्ति और ज्ञान'का विवेचन कठिन है तथापि इस विषयमें गोम्यामी तुलमीद्वासजीके मनको लेखकने जैवा समझा है, उमेर कुछ युक्तियों सहित उपर्युक्त उनके प्रधान किया जाता है। आशा है महाद्य यात्रकाना इतना जमा करेंगे।

भक्त-शिरोमणि गोम्यामी तुलमीद्वासजीने अपने प्रधान ग्रन्थ शीर्गम-चरित-मानसमें हमका एक अत्यन्त सुन्दर विवेचन किया है। इस विवेचनमें उन्होंने स्पष्ट और उपर्युक्त द्वारा प्रयोग हुए होनों—'भक्ति और ज्ञान'—में अन्तर दिखलाया है। यह प्रकार उक्त ग्रन्थके उत्तरकालहमें 'ज्ञान-दीपक'के नाममें प्रनिहित है। युरा प्रकार यात्रकोंको उक्त ग्रन्थका देखना चाहिये। यहाँपर उक्त कुछ अंश उद्धृत किये जाने हैं—

उपर्युक्त भगवान्ति नहि करु नदा। उपर्युक्ति भव समवेषदा॥
ग्रन्थ विवाग द्वारा विवेचन। ये मनुष्य मनुष्य हारिजन॥

× × ×

युरा ल्यागि सक जारि कहै ते विगत मनि गैर।
न तु कानी ते विवेचन बस विसुल ते पद रामुदार॥
मो मुनि ज्ञान-निवान, मृगनदर्शी विनु मुख निर्विक।
विकल होहि हरिजन, नारि विष्णु माया प्रगट॥

× × ×

माह न नरि नारिके स्परा। पत्रगारि यह नेति अनुपा॥
माया भगवि मनुष्य प्रनु दोऽङ। नारि बर्ग जाने सब कोऽङ॥

मुनि रमुचीरहि भगति पियारी। माया लानु नर्तकी विचारी॥
भगति हि सानुकूल रमुराया। तसे तेहि डरपति अति माया॥

ज्ञान और भक्तिमें (इनके उत्तर) अन्तर नहीं है; यदोंकि दोनों ही संसारसे मुक्त बनते हैं; किन्तु उनके स्वरूपमें कुछ अन्तर है। ज्ञान-विवाग आदि पुरुष हैं, तथा माया और भक्ति भी हैं। पुरुष प्रवक्ता होने और भी अवक्ता-वक्तव्यीना होती है। इतना होनेपर भी विषयोंमें एक देसी शक्ति है जिसने वे बदे-बदे बड़ी एवं जानी उल्लेखोंको भी विकल कर सकती है। परन्तु विषयोंपर उनका कोई और नहीं चक्रता, ज्ञान-विवाग आदि रूपी पुरुष-जातियों नो मायारूपी ज्ञानीसे भय है किन्तु (जो होनेके कारण) भक्तियों उनसे कोई भय नहीं। भक्ति भगवान्की व्याही है, पर माया नो वेचारी ननंकीमाय है, वह नो भगवान्को इच्छानुसार नाचनेवाली है। इसके विषय एक बात यह भी है कि भक्तिपर भगवान् पदा अनुकूल रहने हैं, इसलिये भी माया भक्तिये दरमी है।

नदनन्तर ज्ञानको 'दीप' की उपमा भी गाई है, यह उपमा है भी यथार्थ। यदोंकि दीपकी उपरोक्तिया केवल मन वस्तुओंको देखनेमें ही है; भयीन जैसे अन्धकारमें विहीन यथाभावमित्यन मन एवायोंको हम दीपके प्रकाशमें ही देख सकते हैं, उसी प्रकार मायाके अन्धकारमें विलीन पश्चायी (नत, चंच आदि) को हम जानके हांगा ही अनुभव कर सकते हैं, उनका बोध कर सकते हैं। किन्तु जैसे दीपके प्रमुख उनमें धून, कापांम, अग्नि इत्यादि उनके मायप्रियोंकी आवश्यकता है उसी प्रकार ज्ञानके मायनमें भी गीतोंके देवी यमतिके गुहाओंकी और अस्त्र उनके सामिक्ष मायमोंकी आवश्यकता है, जिनको यहाँ उपर्युक्त हांगा विस्तारात्मा गथा है। नदनन्तर जैसे दीपके प्रमुख होनेपर भी उनके आपसियों हैं, उसी प्रकार (गार्हीषी) ज्ञान याम होनेपर भी ज्ञानीके जिये कहै प्रकारके भय हैं। गोम्यामीर्ती हम स्वरूपमें उन यवका रथ विवक्ताका उत्तमें उपने विद्वान्तप्रवक्ता वास्तव हृष्यकार रहते हैं—

रथनके पन्थ कृपापांक चार।। परत करेश न असहि चार।।
जो निर्विघ पन्थ निर्वहत।। भो रेत्य एवं पद लहै।।

ज्ञानके सम्बन्धमें ऐसा किनकर भिर भक्तिके विषयमें आप बहते हैं—

कहैठं ग्याल मिद्दान्त दुष्टाई। मुनहु भगवि भवित्वी श्रमुताई॥

कल्याण

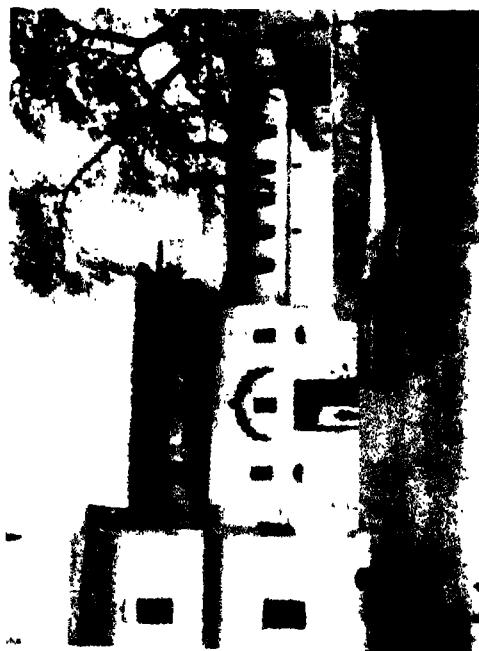


श्रीराम जन्म (प्रार्चान नित्र)

(अयोध्यापुरी)



जन्म स्थान, कर्मांटीका सम्मा



प्रार्चान जन्मस्थान



उत्तम स्थान

कल्याण

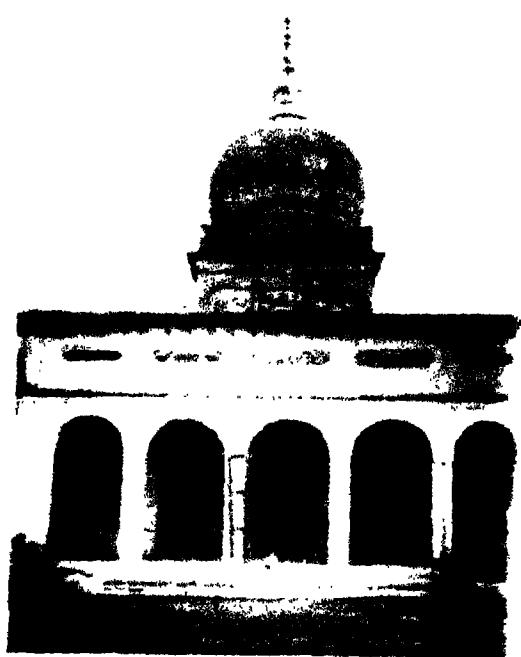


लक्ष्मणजीका मन्दिर — लक्ष्मण शाह (वाहरमें)

(अयोध्यापुरी)



लक्ष्मणजीके मानवरक्ती भाँकी (भानवरमें)



लक्ष्मण किला सामनेका हृग्ग



लक्ष्मण किला (गिरजाहाथ्र)

भक्तिही उपरा 'भक्ति' से दी गयी है। भवित्वों प्रकाश करनेके लिये दीपकी आति इन हथादि उपचरबोंकी आवश्यकता नहीं होती और न इसमें दीपकी आति आपतियोंका ही कोई माप है।

परम्परा वह मणि प्राप्त कैसे होगी? वहा सुखम उपाय है—भक्ति होनेपर भी इनकी प्राप्ति दीपकी अपेक्षा सुखम है—

सुखम उपाय पाइंदे केरे। नर हत्याग्य देत भट भंडे॥

'देव भट भंडे' आर्यान् व्यर्थ ही सर फोडते हैं। क्या उपाय है? सुनिये—

पावन पर्वत बड़ पुराता। गम-कर्या कांचराकर नाना॥

मर्मी सजन सुर्पात कुदारी। व्यान दिग्गंग नयन उत्तरारी॥

भावमहिन लाँद जो प्राना, पाव भर्गात पर्णि सब सुखमानी॥

ज्ञानरूपी नेत्रोंकी आवश्यकता है, अर्यान् ज्ञानकी आवश्यकता तो है परम्पुरे प्रस्तुपदे—दीपस्तुपदे नहीं। बहम्, चलिये, दीपके उपर्युक्त सब माध्यमों-संस्कृतोंमें कृप्त जाने हैं। ऐसा कहनेका यह भाव नहीं है कि भक्तिमें दीपी मध्यस्थिके गुणों और अन्यान्य मासिक साधनोंको नियान्त्रण अनावश्यक समझकर उनकी अवधेताका की जाय।

इस प्रश्नामें यह नियर्कर्त्ता है कि ज्ञानकी उपरोक्ताना भक्तिके लिये ही है, अन्यथा केवल ज्ञान-ज्ञानस्ये हितिकर्त्तव्यता नहीं हो जानी। इनको वो भी समझ सकते हैं कि बागमें जाकर फल-फूलोंके गुणोंकी अवधी, ज्ञानि, आवश्यकतेव, संस्कृता इत्यादिका केवल पूर्ण ज्ञान करना और दूसरी ओर इन सबोंपर विना व्यान दिये ही दरम पक्ष-फूलोंका गन्धास्वादन भोग करना। इसमें अकेला नो दूसरा प्रकार ही अभीष्ट हो सकता है, और पहले प्रकार की उपरोक्तिमें दूसरे प्रकारका होना भी अपेक्षित है। गोस्तामीरी इनीको स्वप्न करने हैं—

अ अस भगवत् जानि परिहर्णी। केवल व्यान हेतु श्रम करहो॥

ते जड़ कामवंदन् गृह त्यागी। खोजन आक फिरहि पर्य तागी॥

मुनु कंगस हरिभगति विहारि। जे मुख चाहहि आन उपर्दि॥

ते सद महासिन्धि दिनु तरनी। परि पात चाहत जड़ करनी॥

क्या ही सुन्दर विद्यान्त-वाच्य है? केवल गोस्तामीरी ही नहीं, अभिनु वेदके व्याख्याता, अद्वादश-सुशाश-प्रयोगा, द्वैतव-विश्वासि, व्यर्थ महापि व्यासजीने भी वही कहा है—

अव-स्वति भक्तिमुदस्य ते विभो

किरवन्ति वे केवलवोपलब्धये।

तेजामसौं हेतुल पद तिष्ठेत

नान्यद्यथा स्थूलनुवावदातिनाम ॥

(भागवत १०। १४। ४)

यहाँपर 'केवलबोपलब्धये' बहुत ही महस्तके शब्द हैं—अर्थात् केवल ज्ञान ज्ञान करनेके लिये ही जो कह दठाते हैं अथवा यों कह सकते हैं कि जो केवल ज्ञान-ज्ञान कर देनेमें ही अपनी हनिकर्त्तव्यता समझते हैं उनके पास भूमी कृठनेवालोंकी आंति केवल क्षेत्र ही रोप रह जाता है।

मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रजी भी इसी मिद्दान्त-वाच्यपर अपनी स्त्रीहनिको सुहर छागा देते हैं—

व्यान अगम प्रलग्न अनेका। सावन कठिन न मनमहैं टेका॥

करत कह बहु पावह कोऊ। भगवि-हाँन त्रियमोहि न सोऊ॥

भगवि स्वतन्त्र सकल गुनसानी।

सारांश यह कि 'ज्ञान-प्राप्ति' करनेका काल 'भक्ति' है 'ज्ञान' विवि साधन है तो 'भक्ति' काल है।

बपर कहा है—

जो निर्वापन पन्थ निरबहूं। सो कवल्य परम-पद लहै॥

यही विवि कौनसे हैं?

सुनिये?

यह सब मायाकृत परिवारा, महा सुभट को बरन पारा॥

मिव चन्द्रानन देवि डराहीं। अप जीव कहि लेस माही॥

'अपर जीव'में(शास्त्र)ज्ञानी भी आ जाने हैं। इसीलिये कहा है—

दुँड़ कहे काम कोन रिपु अर्हा।

और इसमें बचनेका उपाय भक्तिहारा 'भगवच्छरणागति' ही है।

ज्ञानकी अवश्यानक शत्रुओंका वरम भय है, भक्तिकी अवश्यमें कोई भय नहीं, ज्ञानियोंको तो अपने बल-का भरोसा रहना है परम्परा भक्त अपने सर्वशक्तिमान् प्रभुके भरोसेपर निर्भय और निर्भित रहते हैं, भगवान् श्रीरामचन्द्रजी इन दोनोंकी स्वरूप-परिस्थितिका उत्तम चित्र दिखाते हैं—

मोरे शैँड तनय मम व्यानी। बालक जूत सन दस अमानी॥

इसीलिये भगवान्ने कहा है—

तेवं नित्यामियुक्तानां योगाङ्केम वहाम्यहम् ॥

(गीता १। २२)

मुसलमान रामभक्त

[सिद्ध फ़कीर शाह जलाल-उदीन वसाली]

(लेखक — श्री जमुनाप्रसादजी श्रीवास्तव)

(१)



व्यक्ति जीने-जी परमात्मा में मिल जाता है उसे 'वसाली' कहते हैं। यह शब्द फ़ारसी भाषाका है। इसकी व्याख्या कवि बलीरामजीने अत्यन्त सरल और सरस भाषामें हस्तप्रकार की है—

डेरा डाल दीजे उठि राह लौजे
जिस राहमें पीवको पाइये जू ।
'हम-तुम' से न्यारे हो रहिये
नित हँसिये, खेलिये, गाइये जू ॥
मुए मुक्त भीतकी चाह कंसी
जो पै जीवते पीव न पाइये जू ।
वहीं अन्त समय जहँ जावना है
तहं जीवते क्यों नहीं जाइये जू ॥

खुशानके शाह जलाल-उदीन वसाली 'सूफी हुशन-परस्त' अर्थात् 'श्रीगार-निष्ठा'के भक्त थे। श्रीरामचन्द्रजींके उपासक होनेके अतिरिक्त वे उनकी अलौकिक मधुर छविपर मोहित भी थे। उनका विश्वास था कि श्रीरामचन्द्रजी अत्यन्त सुन्दर, स्वरूपवान और सुकुमार हैं। उनकी भक्ति करने तथा उनका नाम जपनेसे निश्चय ही मुक्ति मिलती है। जैसा कि कवि 'खुशतर' ने उद्दर-रामायणमें कहा है—

कर बरदे ज़बूं जो कोई यह 'नाम' ।
गुलस्ताने जहाँमें पाय आराम ॥
नज़ोत हर बशर इस 'नाम'में है,
कि आकिर काम गीताराम से है ॥
इबादतका नहीं है आजकल काम,
फ़क्त काफ़ी है 'सीताराम'का नाम ॥

महामा 'वसाली' भ्रमण करते हुए पंजाबप्रान्तके मुख्तान-नगरमें जा निकले थे। उसी नगरमें परिषट टेकचन्द्रजी कथा-बाचक रहते थे। वे बड़े विद्वान् और

सुयोग्य वक्ता थे। प्रतिदिन सन्ध्या समय समझै भाईके चबूतरेपर रामायणकी कथा बाँचते थे। उनका स्वर अत्यन्त कोमल और मधुर था। श्रोताओंको वह खूब रिकाते थे। पद-पदार्थोंकी व्याख्या सुन्दर सरल और सरस शब्दोंमें करते थे, जिससे श्रियाँ और छोटे छोटे भी आसानीसे समझ लते थे। जिससे रसका वे वर्णन करते उसका तो वित्र ही सीधे देते थे। इन सब सामग्रियोंसे उनकी कथा खूब जमती थी। दूर-दूरसे लोग आते और कई सहज श्रोता इकट्ठे होकर कथा सुना करते थे।

(२)

राजा जलकक्षी पुलवारीका प्रसंग था। मिथिलावासी श्रीरामचन्द्रजीकी अद्भुत छविपर मुश्वर थे। परिषटजीने उनकी अलौकिक छविका वर्णन इतनी सुन्दर और सरस भाषामें किया कि श्रोतागता सुनकर गद्दद हो गये और बैहृत्यार उनकी ज़िवानसे निकल गया—

किमीकी औंसमें जाढ़ तंड़ तंबैं है ।

कुछ रात्रि बीमे कथा समाप्त हुई। श्रोतागण आरती खेकर अपने-अपने घर जाने लगे। परिषटजीने अपनी पुन्नक बाँधना आरम्भ किया। इसी बाँधमें शाह-साहेबने आकर कहा—

"परिषटजी ! आपकी पद-पदार्थकी व्याख्या मुनकर में अत्यन्त प्रसन्न हो गया हूँ। कृपा करके यह बतलाइये कि यह कौन-सी बहुधर्थ-गौरवान्वित पुस्तक है और हस्तमें किस यूसुफके समान सुन्दर व्यक्तिके सौन्दर्य और लाकण्य-का वर्णन है।"

"शाहसाहेब ! हिमालयसे कुछ दूरीपर एक विशाल नगर बसा है। उसका नाम अयोध्या है। वह सूबे अवधकी राजधानी है। वहाँ महाराजा वशरथ राज्य करते थे। वे बड़े प्रतारी और धर्मात्मा थे। महाप्रभु रामचन्द्रजी उन्हींके सुपुत्र थे। वे अत्यन्त सुन्दर, शूद्रवीर और तुदिमान् थे—

गुणसामर नगर बरबीरा। सुन्दर स्पामल गौर सरीरा ॥

वह रामायण है। इसमें उन्हींकी मंगलसमय श्रीखाका वर्णन है। कहिये ! आपको उनकी कथा अच्छी तो कहती है ?"

“परिषदतजी ! मैं कोई दिग्ंोंसे यहाँ रोज़ आकर कथा सुनता हूँ, वहा आनन्द आता है। मैं तो शाहजादे अवधका आशिक हो गया हूँ। दीन व दुनियासे मुँह मोड़ उन्होंके कृचर्मे मुक्तीम हूँ।”

“शाहसाहेब ! आप कथाके बड़े प्रेमी हैं। कृपा करके प्रतिदिन आया कीजिये। मैं अपने पास ही बैठा लिया करूँगा।”

“हाँ ! हाँ ! मैं तो रोज़ सबसे पहले आता हूँ और सबसे पीछे आता हूँ। लेकिन मुझे यहाँ कोई बैठने नहीं देता। सब-सब सुन लेता हूँ। अच्छा, अब जाता हूँ। कल फिर आऊँगा।”

(३)

शाहसाहेबकी इस प्रेमवार्ताकी चर्चा मुसल्मानोंके कानोंमें पहुँची। वे अरथन्त कोचित हुए। सबने सलाह करके मौलवी अब्दुल्लाहके मकानपर मजलिस जोड़ी। मन्दपशै मुसल्मानोंको खुलाया और शाहसाहेबको भी पकड़ता रहा। मौलवी शाहबने बाज़ दी, इस्लाम धर्मकी व्याख्या तथा तरीकत और शरीयतकी तलकीन की। सब लोग ध्यान देकर सुनने रहे। शाहसाहेब एक किनारे बैठे थे। उन्होंने ध्यानतक नहीं दिया। प्रेमके उमझमें वे यह गाते रहे—

कार्यान्वय इकम मुसल्मानी

मरा दग्कार नेस्त।

अर्थान् मैं प्रेम-पथका पथिक हूँ। मुझे मुसल्मानीकी ज़रूरत नहीं है।

और अन्तमें यह कहकर—

हशरत मरी यह है, मरा अरमान है यही,
आजाय तू नज़र तां तुझे देखता रहूँ।

कुपकेसे कथामें चले आये।

बाज़ हो जानेपर शाहसाहेबकी खोज हुई, परन्तु वे ये ही नहीं, मिले तो कैसे मिलें। जोग उन्हें हूँते हुए कथामें आये। वहाँ वे परिषदतजीके पास बैठे बड़े प्रेमसे कथा सुन रहे थे। नेत्रोंसे अशुषात हो रहा था। तन-मनकी सुधि नहीं थी। उनकी यह दशा देखकर मुसल्मानोंको सन्देह हुआ कि हो न हो, परिषदतजीने ही शाहसाहेबको शुमराह करके मुसल्मानसे काफिर करा लिया है। सब

जोग उनके ऊपर चिंगार पड़े। मौलवी साहेबने घमका-कर कहा—

“परिषदतजी ! जो कुछ हुआ सो हुआ। कलसे कथा मत बाँचो। अपना पोथी-पत्रा यहाँसे डाल ले जाओ, वरना…………”

परिषदतजी बैचारे सीधे-साढ़े ये और मौलवी साहेब-को अच्छी तरह जानते थे, दोबे—

“अच्छा ! कससे मैं कथा नहीं बाँचूँगा। आप इत्तीनान रखें।”

(४)

दूसरे दिन कथा बन्द हो गयी। बालकारण समाप्त हो चुका था। परिषदतजीने प्रातःकाल हवन करके दूसरे शहरका मार्ग पकड़ा। रास्तेमें शाह साहेब मिले, उन्होंने पहचानकर कहा—

“कहाँ चले जा रहे हो ? परिषदतजी ! ज़रा उस दिलदारका पता तो देते जाऊँ।”

परिषदतजीने अभ्युपर्ण नेत्रोंसे कहा—

“शाहसाहेब ! इस समय तो जान लेकर भागा जा रहा हूँ। ठहरनेसे पकड़े जानेका डर है वरना मैं आपको प्यारे प्रभुका चरित्र अवश्य सुनाता ।”

शाह साहेब सिद्ध कर्त्ता थे, उन्होंने कहा—

“परिषदतजी ! डरो मत ! मैं तुम्हें यह असा (छड़ी) देता हूँ। पृथ्वीपर पटक देनेसे वह अज़दहा हो जायगा और सब लोग डरकर भाग जायेंगे। धूलमें डाल दोगे तो वह अपनी असली सूरतमें आ जायगा, उसे हाथमें लिये फिरना, तुम तो मेरे दिलदारकी हिकायत सुनाते हो तुम्हें डर किस बातका है ?”

अहेले दुनिया काफिरने मुतलकन्द,

रोज शवदोदर ज़क ज़को दरवक बङ्कन्द।

अर्थान्—

महाजाल जंजाल भयङ्कर मव मैं जैन फँसेर।

महामूढ बेमतलब जक करते साँझ सेवेर।।

“अच्छा ! ज़रा फिर तो समझा दो कि शाहजादे अवध कैसे हसीन हैं।”

बैचारे परिषदतजी कथा करते। पोथी खोलकर बैठ गये। रघुनाथजीकी अपार शोभाका बर्णन करने लगे। जनकपुर-

की कियाँ किसप्रकार भोहित होकर निष्ठावर हुई थी और धनुषयज्ञके समय देश के राजा और महाराजा किस-प्रकार उनकी अतुलित छविपर देवाम बिक गये थे । इन्हीं सब बातोंका सवित्तर वर्णन करते रहे और आनन्दमें मग्न होकर यह गाने लगे—

धरणीका भार हरने, यही राम अब बने हैं ।
पापोंका धन उड़ाने धनशयाम अब बने हैं ॥
विष्णु ! यही विश्वमर ! यही नीलकण्ठवारी ।
यही पारबद्ध ईश्वर ! यही राम हैं मुरारी ॥

शाह साहेब भल्ला हो गये, उन्होंने अपनी सिद्धियोंसे प्यारेकी कथा सुनानेवालेकी कुछ सेवा करना चाहा । और कोले—‘वाह ! परिषदतजी ! वाह वाह, खूब सुनाया ।

‘अच्छा ! माँगो क्या माँगते हो ?’

परिषदतजीने खूब सोच विचारकर तीन चीज़ें माँगी—
(१) मैं पुत्रहीन हूं, मेरे एक पुत्र हो जाय ।
(२) मेरी मृत्यु अनायास हो । और
(३) श्रीरामजीके चरणोंमें प्रीति हो ।

“अच्छा लो, दो वरदान अभी देता हूं । तीसरा जब किर मिलोगे और विजयदारकी बातें सुनाओगे तब दूँगा ।”

यही तो असली चीज़ थी । परिषदतजी अपनी भूलपर पड़ताते हुए कि मैंने पहले यही क्यों न माँगा, उनसे कहा, “फिर मैं आपको कहाँ पाऊंगा ?”

“आपके कूचेमें । मेरा यार सुम्हें सीचकर मेरे पास पहुँचा देगा । अच्छा, अब जाओ ।”

परिषद टेक्कचन्द्र बिदा हुए । शाह साहेब कृपते-कृपते निजलिलित भलाना गीत गाते हुए याके कूचेकी तरफ चले—

दिलदार यार प्यारे गलियोंमें मेरी आ जा ।
आँखें तंग रही हैं सूरत मुझ दिला जा ॥

(५)

पाँचवें महीने शाह साहेब अवध-भास्ममें पहुँचे और बाबरकी भस्त्रियदमें डनरे । इतने विनकी प्रबल उत्तरणठाके बाद इष्टाममें पहुँचनेपर उन्हें जो असीम आनन्द प्राप्त हुआ उसका बर्णन कौन कर सकता है ? वे उसी अपार आनन्दमें मग्न होकर इष्टदेव प्यारे श्रीरामकी आरामदानें

लग गये । इतनेमें एक सजान बहाँसे निकले । उन्होंने शाह साहेबको अकेला देखकर कहा—

“शाह साहेब ! अकेले कैसे बैठे हो ?”

महाराजा वसालीका ध्यान भंग हो गया । उन्होंने विसी प्रकार अपनी विरह-तेजसाको रोक और कोधको शास्त कर कहा—

“अभीतक तो अकेला नहीं था, अपने दिलदारके साथ मज़े उठा रहा था । हाँ, तुम्हारे आ जानेसे अकालसा ध्यान दूट गया और मैं अकेला हो गया ।”

यह उपदेश-भरे बचन सुनकर वह अस्त्वं लजित हुआ । हाय जोड़कर बमा मांगने लगा और प्रश्नामकर चाहा गया ।

(६)

अनन्तर महाराजा वसालीने इष्टामकी परिकल्पना करनेका विचार किया । भगवत्-भक्तोंको यह कार्य कितना सुखकर होता है, सो तो कोई भक्त ही जानता है । आजकलके शौकीनोंको इसका क्या पता ? मौखिया रूप साहेबने फरमाया है—

न मन बहुदा गिरदे कूच, वा बाज़ार मी गरदम ।
मज़के आश्रकी दारम् पंय दीदार मी गरदम ।

अर्थात् मैं यों ही असम्भवी भाँति गलियों और बाज़ारोंमें नहीं घूमता, सुके प्रेमका चसका लग गया है, मैं भियतम प्रभुको सोजता फिरता हूं ।

एक दूसरे सन्तका कथन है—

ओं जमीन कि निशान केफ़ पाये नू कुअद ।
सालहा सिज़दप सांब नज़रा सुआहिद बृद ॥

अर्थात्—

परम सुहावन तब पद अंकित भूमि ।
सदा रहेंगे मजन प्रेमी चूमि ॥

(शरणजी)

अर्थात् प्रभुपद-अंकित भूमिकी मदिमाका कथा कहना है ! वह तो भगवत्-भक्तोंकी सदा बन्दनीया है ।

यही सब सोचते और यह कहते हुए—

नह—मेरोवरम बैसिके कढ़िबो हंसि हेल नहीं है ।

—आनन्दशूर्वक आयोज्याजीकी गलियोंमें विचरने जागे । उन दिनों आयोज्याजीमें अग्निदर थोड़े ही से परन्तु उनके भीतर

इनका प्रबोश होना एक असम्भव चाहत थी। इधर प्रियतमके दीपारकी जालसा, उधर पुजारियोंकी कुतकार। इन दोनों प्रतिहन्दी स्थितियोंके संचरणमें विरही महाल्याजीके हृदयमें दर्शन-जाभकी छाँड़ा और भी ज़ोरसे खड़क ढठी। उन्हें बढ़ा दुःख हुआ, परन्तु नियम है जो जिसकी बाद करता है वह भी उसकी बाद करता है। कहा भी है—

तुलसी कमलन जल बसे, रवि शांति बसे अकाश।
जो जाके मनमें बसे, सो ताहीके पास ॥

और भी—

जिसको हम चाहें न चाहे कथा मज़ाल।
दिलसे लेकिन उसको चाहा चाहिये ॥

और भी—

असर है ज़ज़ब-उल्फतमें तो लिचकर आही जावेंगे।
हमें परवाह नहो, इसकी, अगर वह तनके बेठे हैं ॥

अन्तमें जब उनकी बेईनी बहुत बढ़ गयी तब वह आकाशवाणी हुई—

‘ऐ बसाली, जल्द आ ! मैं तुझसे मिलनेके लिये तबप रहा हूँ ।’

इस आकाशवाणीके सुनते ही महाल्या बसालीका शरीर पुलकित हो गया। आनन्दके भारे उनके नेत्रोंसे आँखूँ छुलक पड़े। उनकी ज़बानसे बरबास निकल पड़ा—
ऐ कि दर हेच जानदारी जा तुल अजब माँदअम कि हरजाई ॥

सर्व रहित सब उर पुर बासी।

(७)

अनन्तर महाल्या बसाली भीसरयूजीके किनारे गये। विमल वर शारिको देखकर प्रेमसे परिपूर्ण हो गये। जल और थलकी उन्हें सुधि नहीं रही। गुरली पहने हुए ही बीच धारामें कूद पड़े। धाटपर जोग स्नान-ज्यान कर रहे थे, वह देख उन्हें आश्रय हुआ। सबोंने जाना कि शाह साहेब हृदय गये। कहे मनुष्य भट्टपट कूद पड़े। स्वर्णद्वारधाट खड़मनथाट आदि सब छान डाले परन्तु उनका पता न लगा। आवाजका महीना था। सरयूजी बड़े बेगसे बह रही थीं। सब जोग निराश होकर बैठ रहे। अन्तमें एक पहरके पश्चात् वे गुहारधाटपर निकले। उनका सरण्यूर्ण शरीर भीगा था, परन्तु गुदकी सूखी थी—

गर वदरिया रवदव बङ्दप इक़ ।

रितप दलक़शां न गरदद् नम ॥

अर्थात्

प्रेम पगा जो बूँदैं सरिता माँहि ।

एकहु ताग गुदडिको भीजे नैहि ॥

—विनायक

शाह साहेब किनारे खड़े होकर इधर-उधर देखने लगे। उन्होंने उस समयके इश्यका वर्णन इसप्रकार किया है—

दोश रफ़तम वसूय हमामे ।

दीदम आँजा इके दिलारामे ॥

चानुके दिलवरे व बेबाके ।

नाजुके महरुखे गुल अन्दामे ॥

सरो कृद या समन बूए ।

सरकेश मैं खुरे वखुद कामे ॥

तुन्द खेये व मरदुम आजारे ।

मस्त चदमे व सागिरे आशामे ॥

गाह दर वहस हीला परदाज़े ।

गाह दर इस्म इश्वा अल्लामे ॥

आशिकाँरा हमी नमूद अयाँ ।

ऊ रुँजा जुल्फ तुफ्लो इस्लामे ॥

कूँ मरा दीद रुप लूद तलबीद ।

तानवर्जद ज़रूर अन्यामे ॥

मुत्तहैयर चुना शुदम किन माँद ।

बमन अज़ देश दरगहे नाम ॥

मी नदानम कि अन्दराँ हरत ।

व ‘बसाली’ क दाद पैगामे ॥

कि बचदमाने दिल मुवी जुज़ दोस्त ।

हर जे बीनी बदौं कि मज़हर ओस्त ॥

अर्थात्

गयड़े काल्ह मैं सरिता तीर। देखड़े सुखद एक मति धीर ॥

चतुर मनोहर वीर निशंक। शशि-मुख कोमल सारंग अंक ॥

सुधर उठानि मुवासित गाना। वयकिशोर गति गज सुखदाज़ ॥

चितवत चोत मृकुट बर बाँके। नयन भरित मद मधुरस लाके ॥

कबहुँ छियुत भाव जनावै। कबहुँ कटाक्ष कला दरसावै ॥

प्रेमिन कहं अस पैर लखाई। मुख छवि वैदिक धर्म सुहाई ॥

मेचक कच्च कुचित घुघुरारे। जनु इसलाम धर्म घुति धरे ॥

मम दिवि लक्षि भू बंक सैंमोरउ। छवि मसाद जनु देन हँकोरउ॥
अकित थकित चित भगड़ अचेता। सुष बुध विसरी वर्मक-खेता॥
नहिं जानो तिहि छिन मोहि जोही। को संदेश जतायउ मोही॥
प्रियतम प्रभु तजि आन, जानि देखिय हिमकी चहनि।

जो देखिय मतिमान, तासु प्रकाशहि जानिये॥

महात्मा बसाली कुछ दिन स्वर्गांश और मयि-वर्षत
पर रहे। फिर वे प्रमोद-बनको खड़े आये और वहाँ रहने लगे।

(=)

परिषद टेकचन्द्री शाह साहेबको खोजते हुए
अयोध्याजीमें आये, परन्तु वे नहीं मिले। तब उन्होंने इस
अभियाससे कि क्याति होते ही जहाँ होंगे, आ जायेंगे,
रामायणकी कथा बाँचना आरम्भ कर दिया। कथा स्थूल जमती
थी। सहजों मनुष्य इकट्ठे होते थे। एक दिन जब कथा
समाप्ति हो चुकी और इच्छा द्वारा उपरान्त पूजा चढ़ चुकी,
तब परिषदजीने उदास होकर कहा—

‘रंग पीले पड़ गये जिनके लिये।

वे शाहजी आये न दम भर के लिये॥’

इसी बीचमें शाहसाहेब भी आ पहुँचे। व्यासासन
हूँ जानेके भयसे उन्होंने दूरसेही पाँच दाने बकके पुस्कर-
पर फौंक दिये। दाने चमक्यार थे। पाश्वर्वतियोंने शीनकर
परिषदजीको दिये। यथार्थमें वे सोनेके थे। यह देखकर
खोग दंग रह गये। परिषदजीने व्यासासनसे उत्सर्कर
अभियादन किया और अपने आनेका कारण कह मुनाया।
शाहसाहेबने कहा—

“अच्छा ! यहाँसे निपटकर प्रमोद-बनमें बेरके बृहके
बीचे आओ !”

यह कहकर शाह साहेब चढ़े गये। परिषदजीने पोथी-
पद्मा बाँध, ओताओंसे विदा हो प्रमोद-बनकी राह ली। कुछ
ओताओंने पीछा किया परन्तु उन्होंने यह कहकर कि, उनके
साथ रहनेसे शाहसाहेबके दर्शन नहीं मिलेंगे, उन्हें लौटा
किया, इसपर भी एक व्यक्ति चुपके-चुपके पीछे चला ही गया।
परिषदजीने प्रमोदबनमें पहुँच, बेरके बृहके नीचे खोज की,
परन्तु शाहसाहेब नहीं मिले तब वे वहाँ ढहर गये परन्तु
दूसरा व्यक्ति जो पीछे-पीछे आया था, गिराश होकर लौट गया।
उसके जाते ही शाहसाहेब बेरके बृहके नीचे प्रकट हुए।
परिषदजीने हाथ जोड़कर बिनती की और कहा—

“शाहसाहेब ! आपकी कृपासे पुत्र-रन तो मिल
गया, अब मेरा इच्छित तीसरा बरवान दीजिये।”

“अच्छा ! जो कुछ कल कथामें पाया है, उसे दान
करके रातको इसी स्थानपर आ जाओ परन्तु आजकी
तरह किसी औरको अपने साथमें भर लाना।”

(१)

परिषदजीने उसी दिन सब कुछ दान कर दिया। सौंफ
होते ही भिलारी बनकर शाहसाहेबके आधममें पहुँचे और
बिनती की—

“मैं आपका सेवक हाजिर हूँ।”

महात्मा बसाली उस समय नेत्र मूँदे हुए भगवान्
श्रीरामचन्द्रजीकी अनूप रूपराशिका असीम आनन्द लूट रहे
थे। उनकी उस समयकी अवस्थाका वर्णन करते हुए किसी
कविने कहा है—

तुश्मे फ़ना हूँ और तुझीमे फ़ना रहूँ।

आजाय तूं नज़र तो तुझे देखता रहूँ॥

महात्माजीने आँखे मूँदे ही मूँदे कहा--

“हाँ ! आ गये ? अच्छा, कहो ?”

मासुकीमाने क्य दिल दरेम।

मूँ व दुनिया वदी नमी अरेम॥

बुल बुलानेम क़ज़ क़ज़ा व क़दर।

ओ़तादा तुदा तु गुलज़रेम॥

मुर्ग शाले दरग़त नाहूं तेम।

गोहर दुर्दे गंज इसरारेम॥

शाहसाहेब कहते जाते थे और परिषदजी दुहराने
जाते थे। अन्तमें शाह साहेबने कहा—

“अच्छा ! अब बली अल्पाह हो जा।”

परिषदजीने कहा—

“मैं आपका सेवक टेकचन्द्र हूँ।”

“हाँ ! हाँ ! अच्छा, बलीराम हो जा।”

अब परिषद टेकचन्द्री भी उन्होंकी तरह मस्त हो गये।
उनका नाम ‘बलीराम’ पड़ा। मासुकीमां ‘को तीन शैरें पदकर
वे फारसी और अरबीके बड़े विहान हो गये। उनका बनाया हुआ
'दीवाने-बलीराम' अब भी आदरकी इष्टिसे देखा जाता है।

महात्मा बसाली प्रमोदबनमें रहते थे और परिषद
बलीरामजी मयिकूटपर विचरते थे। रात्रिको अब इसी

दोनों मिल जाते थे तब 'खूब बन आती जो मिल वैठते शीवाने दो' वाली कहावत चरितार्थ होती थी।

कुछ दिन पश्चात् महात्मा बसालीने जीवनशाश्रा समाप्त कर साकेतवास किया, उनकी समाधि उसी वेरके नीचे अवतक मौजूद है।

(१०)

'मामुकीमा' नामकी प्रसिद्ध पुस्तिका महात्मा बसाली-हीकी निर्माण की हुई है। आधीरात्रिके समय यह कविता आनावास ही उनके मुँहसे निकल गयी थी। दूसरे ही दिन खालनडके कीलकालकी भज़िलिसमें पीरज़ाका नक्कीशाहने इसे गाकर सुनाया। लोगोंने बहुत पसन्द किया। सब जगह प्रबार हो गया, यहाँतक कि वह मक्कतबोंमें जारी हो गयी और पाठशालाओंमें अब भी पढ़ायी जाती है।

एक दिन मौलाना नज़ीर, शाह साहेबसे मिलने आये। उन्होंने बड़े प्रेमसे वह कविता सुनायी। शाह-साहेबने कहा, मैंने तो किसीको इसे लिखाया तक नहीं! आपको कैमे प्राप्त हुई? मौलाना साहेबने खालनड कीलकालकी भज़िलिसमें सुनकर याद कर लेनेका सम्बूद्ध वृत्तान्त कह सुनाया, शाह साहेबको बड़ा आश्चर्य हुआ। आपने प्रियतमका रहस्य समझकर वे चुप हो रहे।

एक दिन जनकपुरमें स्वामी आनन्दीवरशरणजीके मुखसे अनायास ही यह पद निकल गये थे—

चित ने गयो तुराय जुलामें लला ॥
हम जानी वे कृपसिन्धु हैं,
तब उनसे मई प्रीति भला ॥
विरही जनको दुख उपजावत
करत नये नये अजब कला ॥
प्रीतिनता ! प्रीतम बेदरदी
ठाँड़ि हमें कित गयो कला ॥

उन्होंने यह पद किसीको लिखाया भी नहीं था। परन्तु अब वे अयोध्याजीमें आये तो वहाँ भी यही पद लोगोंको गाते सुना। उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ।

श्रीमाधवेन्द्रपुरीजी जगन्नाथजीसे लौटते समय मार्गमें गोपीनाथजीके मन्दिरमें ठहर गये। प्रसादमें सीर भी मिली थी। उसे पाकर वे अत्यन्त प्रसन्न हुए। जो आहा कि कुछ और मिलती तो पाते परन्तु संक्षेपके कारण माँग नहीं

सके। रात्रिको श्रीगोपीनाथजी। स्वयं भगदारेसे सीर देकर उनके पास लाये। वे अत्यन्त उज्जित हुए। अपनी जिहाको चिकार देने लगे। अनन्तर हाथ जोकर प्रार्थना की—

"जीवनधन ! इतना कष्ट क्यों उठाया ?"

भगवान्ने कहा, "क्या तुमने वहाँ सुना है भगवान् श्रीकृष्णजीने अर्जुनले क्या कहा था—

हम भक्तनके ! भक्त हमारे !

सुन अर्जुन ! प्रतिज्ञा मोरी

यह ब्रत ट्रत न ठोर ।

हम भक्तनके ! भक्त हमारे !

इतना कह वे अन्तर्धान हो गये ।

माधवेन्द्रपुरीजी प्रतिष्ठाके भवसे रात्रिहीको वहाँसे भाग लाए हुए। भोर होते ही वे दस कोसपर निकल आये। वहाँ गाँवबालोंको यह कहते सुना कि गोपीनाथजीने रातको सीर जुराकर माधवेन्द्रपुरीजीको पवाई। इन्हें बड़ा आश्रय हुआ। बंगालियोंमें कहावत है—

प्रतिष्ठार भयं पुरी जाय पालाइया ।

पुरी प्रतिष्ठा आगे जाय गोङाइया ॥

अर्थात् जिस प्रतिष्ठाके भवसे माधवेन्द्रपुरीजी भागे वह प्रतिष्ठा उनके आगे आगे दौड़ी।

प्रातःकाल मन्दिर सुला। भगवान्के बड़ोंपर सीर देखकर सबको आश्रय हुआ। भगवान्ने सीरकी चोरी और उस चोरीका कारण प्रकट कर दिया। उसी समयसे उनका 'सीरचोर' नाम पड़ा।

महात्माओंके चित्रमें ऐसी ही विचित्रिताएँ होती हैं। प्रियतम प्रभुके इन रहस्योंको वही समझ सकता है जो इन रहस्योंकी बातें जानता है।

धन्य है महात्मा बसाली, आपको और आपके अलौकिक प्रेमको! उस यवनकालमें भी आपने भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी विमल भक्तिका आस्वादन करके हिन्दुओंकी आँखें सोल दीं। बात् इरिशन्द्रजीने ठीक ही कहा है—

इन मुसलमान हरिजनन पर

कोटिन हिन्दुन वारिए ॥

बोलो भक्त और उनके प्यारे भगवान् सियावर रामचन्द्रजीकी जय ।

श्रीरामचरितमानस-महिमा

(केषक—भौलोचनप्रसादजी पाण्डे)

१

जय 'रामचरितमानस' पवित्र ,
जय शान्ति-सखा, जय धर्म-मित्र ।
जय कलिमें अनुपम मुक्ति-पथ ,
नव कोटि जनोंका एक ग्रन्थ ॥

२

जय नीति-निलय, जय पुरुषपथ .
जय सत्य-सिन्धु जय शील सदा ।
जय भव्य भक्ति-साधन-विवेक .
नव कोटि जनोंका ग्रन्थ एक ॥

३

जय जय अति उच्च समाज-नीति .
जय जय जग-वन्दित राज-नीति ।
जय विश्वप्रेम-रत धर्म-नीति .
जय दुष्ट-द्लन-व्रत कर्म-नीति ॥

४

जय स्वाभिमान स्वाधीन नीति ,
जय पूर्व स्थाति प्राचीन-नीति ।
जय जयति स्वतन्त्र स्वराज नीति ,
जय प्रजा-तन्त्र-विधि राज-नीति ॥

५

जय जय स्वदेश अनुराग-नीति .
जय सत्य हेतु तन-स्याग-नीति ।
जय विषय-विकार-विवाग नीति ,
जय चारों वर्ण विभाग नीति ॥

६

जय पितृ-भक्ति आदर्श नीति ,
जय त्याग-शक्ति-उत्कर्ष नीति ।
जय भ्रातृ-प्रेम वर हर्ष नीति ,
जय पात्रन भरतवर्ष नीति ॥

७

जय प्रजा प्रेम सुख शान्ति नीति ,
जय राज-भक्ति शुचि दान्ति नीति ।
जय ब्रह्मचर्य बल-कान्ति नीति ,
जय हरण मूर्खता-भान्ति नीति ॥

८

जय पत्नीव्रत सत्कार्य-नीति ,
जय जय पातिव्रत आर्य-नीति ।
जय शुभ शिक्षा आचार्य नीति ,
गो-द्विज-सेवा अनिवार्य नीति ॥

९

जय दुराचार संहार-शक्ति ,
जय सदाचार उद्धार शक्ति ।
जय एर-पीड़न-उच्छेद शक्ति ,
जय हिंसक-रिपु-रण-भेद-शक्ति ॥

१०

जय जय स्वदेश-लक्ष्मी-ममत्व ,
आत्माभिमान रक्षा समत्व ।
जय सल प्रचण्ड-बल-नाश तत्व ,
जय स्वाधीनता 'सुराज' सत्व ॥

११

कविन्कुल-गुरु तुलसीदास धन्य ,
नव-रसमय वाक्य विलास धन्य ।
धर धर वर पुण्य प्रकाश धन्य ,
भय रोग शोक अघनाश धन्य ॥

१२

हिन्दी कवि-कविता-कीर्ति-केतु ,
जय सत्य-शील-सद्वर्म-सेतु ।
जय भारत प्रतिभा मूर्ति-मान ,
जय आर्य धर्म-प्रतिमा प्रधान ॥

जय सरल सुवोध सुपाठ्य काव्य . जय देश देश विल्यात काव्य ,
जय हिन्दू धर्म अकाट्य काव्य । जय द्वीपान्तर प्रक्ष्यात काव्य ।
जय प्रेम-पुण्य शुचि-ऐक्य यज्ञ , जय विश्वप्रेम-प्रियता-प्रथमा ,
नव कोटि जनोंका ग्रन्थ-रत्न ॥ नव कोटि जनोंका ग्रन्थ-रत्न ॥

१३

जय रामराज्य महिमा महान ,
जातीय उच्चताका विधान ।
जय आर्य भूमिका दिव्य गान ,
जय आर्य-विजय-हर्षभिमान ॥

१४

जय जय रामायण गुण ललाम ,
जय भ्रान्त हृदय विश्राम धाम ।
जय भाषा-भूषण सुधा-भाण्ड ,
जय राम कथामृत सप्त काण्ड ॥

१५

जय पूज्य गुसाई यशोदैह .
जय रामचरण-रत दिव्य नेह ।
जय महाधीर पूजा प्रमान ,
जय जाति देश गौरव महान ॥

१६

रचते जिसका पूजा-विधान ,
नर नारि वृद्ध बालक सुजान ।
पाते नैतिक शिक्षा पवित्र ,
उभ्रत करते हैं निज चरित्र ॥

१७

अति शुभकर है जिसका प्रभाव ,
मिटते जिससे सब भेद-भाव ।
गाते जिसमें एकतादर्श ,
बाईस कोटि हिन्दू सहर्ष ॥

१८

पावन होता जिससे स्वभाव ,
रहता न सौख्यका फिर अभाव ।
कहते जय जय श्रीरामराज ,
बाईस कोटि हिन्दू समाज ॥

तुलसीदाससे

(लेखक—श्रीमोहनलालजी महतो 'वियोगी')

हुआ अवतरित सनेह तुम्हारा

तूने छुआ बना अनन्तका मानस-रूप-किनारा ।

अव्यापक-सा व्यापक मन है जिसके निकट बेचारा ।

जिसकी नेक मुस्कराहटपर थिरके रवि, शाशि, तारा ॥

जिसने कई तुच्छ ढेगोंसे नाप दिया जग सारा ।

'स्वयंप्रकाशः स्वयंब्रह्म' कह श्रुतिने जिसे पुकारा ॥

जिसे खोजने जाकर इस मनने अपनापन हारा ।

उस निर्गुनपर तूने जाकर अपना तन-मन चारा ॥

है तुलसी, तेरे मानसका शासक तेरा प्यारा ।

सबरी, गीध खोजता चलता बन-बन राम हमारा ॥

हुआ अवतरित सनेह तुम्हारा ॥

रामावतारका भहत्व

(लेखक—स्व.मीजी श्रीविवेकानन्दजी)



घटन-घटना-पटीयसी अतर्क्ष-नाटक-नटी
ब्रह्मशक्ति महामायाके विलासस्वरूप
अनन्तकोटि ब्रह्माशब्दोंमेंसे एक ब्रह्माशब्दके
मर्यालोकमें कर्म करनेकी स्वाधीनता-
प्राप्त मनुष्य जब उस प्रकृति-माताके
उत्तर्णगतिशील प्रवाहके प्रतिकूल अर्थात्
धर्मके प्रतिकूल कर्म करने लगते हैं, तब धर्मकी गतानि हो
जाती है और अधर्मका अभ्युत्थान हो उठता है । ऐसी
अवस्थामें सत्पुरुषोंकी रक्षा, पापियोंके विनाश और धर्मकी
स्थापना करनेके लिये भगवद्वतारकी सथवा अन्य शब्दोंमें
जगजननी भगवतीके अवतारकी आवश्यकता होती है ।
भगवान् और भगवतीमें अमेद है । मायोपहित चैतन्य-
भगवान् और ब्रह्मयो जगद्भा भगवती हैं । अपने बनाये
हुए जगतमें कर्म करनेके लिये स्वाधीनता-प्राप्त जीवोंके
कार्योंसे जब असामअस्य दर्शक होता है, तब उसको दूर

करनेके लिये किसी केन्द्रविशेषमें जगद्भाका प्रादुर्भाव ही
भगवद्वतार-नामसे अभिहित होता है । चेतन निराकार
है, जगद्भाके आश्रय विना साकार-मूर्तिमें भगवद्वाविर्भाव
असम्भव है । सहिस्थिति-प्रदाय करनेका स्वभाव जगद्भाका
ही है । चेतनके आश्रय विना माया कुछ कार्य नहीं
कर सकती । इसीकारण मायाके कार्यका आरोप चेतनमें
करके शास्त्रोंमें भगवान्का माहात्म्य वर्णन किया गया है,
सो युक्तियुक्त ही है । जगद्भाके ब्रह्ममयी नाममें इन
दोनों भावोंका समावेश हो जाता है । शक्ति-उपासक जो
भगवद्वतारोंके साथ काली-तारा आदि शक्तियोंका सम्बन्ध
बताते हैं उसका सामरस्य भी इसी सिद्धान्तसे हो जाता
है । हमारे शास्त्रोंमें कहाँ मतभेद नहीं है, जो मतभेद
प्रतीत होता है, वह दार्शनिक-ज्ञानके अभावका ही
कुफल है ।

मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामका प्रादुर्भाव अन्य

सकल अवतारोंकी अपेक्षा अनेक विशेष महात्म रखता है। इस लेखमें श्रीरामके गुणात्मक रूपसे हम उन महस्योंका किञ्चित् प्रतिपादन करनेकी चेष्टा करेंगे।

आदर्श सामने होनेसे मनुष्योंकी शिक्षामें अस्त्वर्थ सुभीता होता है। श्रीरामको सदादर्शोंका लक्ष्याना कहा जाय तो भी अत्युक्ति नहीं होगी। उनके चरित्रसे मनुष्य सब तरहकी सत्-शिक्षा प्राप्त कर सकता है। मनुष्योंकी सद् शिक्षाके लिये जितना गुरु-पदका कार्य श्रीरामचरित्र कर सकता है, उतना अन्य किसीका चरित्र नहीं कर सकता। श्रीरामका मर्यादा-पुरुषोत्तम नाम इसी कारणसे पड़ा है।

श्रीरामकी बालकीदा और विद्याभ्यास अनुद्धनीय और बालकोंके लिये अनुकरणीय है। उनकी गुरुभक्ति आदर्श गुरु-भक्ति थी, जिसके प्रतापसे वे सब विद्याभ्रोंमें निरुद्ध हो सके थे। विश्वामित्रजीके साथ जाकर उनकी सेवारूप गुरु-शुश्रूषासे ही वे बला और अतिबला विद्याको प्राप्त करके धनुर्विद्या और अस्त्र शस्त्रकी विद्यामें पारङ्गत हो सके थे। विश्वामित्रजीसे उन्होंने गुरु-भक्तिके कारणही धर्मशास्त्रकी शिक्षा पौराणिक-कथाके रूपमें प्राप्त की थी और धर्म-सङ्कृटके समय कर्तव्य-कार्योंकी शिक्षा धी-वधुरूप तात्काल-वधुके रूपसे प्राप्त कर धार्मिकभावके लिये एक आदर्श स्थापन कर दिया है। उक्तिय बालकोंके लिये बालकपदसे ही निर्भीकता, वीरता और पापियोंको समुचित दबद देनेकी प्रकृति होना आवश्यक है; इसको श्रीरामने विश्वामित्रजीके साथ जाकर, वीरतापूर्वक दुर्बलोंको मारकर और मारीचको दबद देकर कार्यतः बतला दिया है।

योगवासिष्ठकी कथाके आधारपर कहा जा सकता है कि आदर्श गुरुभक्त और आदर्श वैराग्यसम्पन्न श्रीरामने उस प्रारम्भिक-अवस्थामें ही ज्ञानकी प्राप्ति करके जीवन्मुक्त-पदको प्राप्त करते हुए अपने अवतारके सकल कार्योंको किया था। प्रथेक मनुष्यको इसीप्रकार गृहस्थाभ्यमनसे पूर्वी ही यथाविकार और यथासम्भव सब प्रकारका ज्ञान प्राप्त करके कर्तव्य-कर्मरूपसे गृहस्थादि आधमोंके कर्म करते रहना चाहिये। मनुष्यके लिये यही एक राजमार्ग है, जिससे वह अन्तमें आवागमन-पदकसे कूटकर सुरक्ष हो सकता है। यथार्थ ज्ञानकी प्राप्तिसे गृहस्थाभ्रम छूट जाता है अथवा गृहस्थाभ्रम धारण करनेकी प्रवृत्ति नहीं होती, यह विभीषिकामात्र है। यथार्थ ज्ञानकी प्राप्तिसे मनुष्यका मार्ग सरल हो जाता है और कर्तव्य-कर्मरूपसे सब क्षमोंको करते हुए कर्म-व्यापकी प्रसूतिकी

आवश्यकता ही नहीं होती। इस अवस्थाके प्रधान उदाहरण विशेष उनक हैं।

जनकपुरकी फुलबारीमें जिस समय सीताजीको श्रीरामके वर्णन हुए थे, उस समय श्रीरामने कहा था कि ‘जिसने सपनेमें भी पर-जीको प्रेमपर्षिसे नहीं देखा, उसकी सीतापर इष्ट पदते ही उसका मन मर्यों आकर्षित हुआ।’ इस कथनसे यह सिद्ध होता है कि श्रीरामने ‘मातृवद परदारेषु’ का अभ्यास बाबकपनसे ही कर रखा था। इस आदर्शको अहत करनेमें किस मनुष्यका मतभेद हो सकता है? यह तो सर्ववादिसम्मत सिद्धान्त है।

पिता दशरथकी प्रतिज्ञाको सत्य करनेके लिये श्रीरामने केवल राज्य-श्रीका ही व्याग नहीं किया, अपितु बनवासका कठिन घत पालन करके जगत्को पिण्डभक्तिकी पराकाढ़ा बतला दी थी। यदि ऐसा नहीं करते तो पिताके सत्यकी पूर्ण रक्षा नहीं हो सकती। श्रीरामने माता कौसल्यामें कहा था, कि ‘पिता-माताकी परस्पर विस्तृ आज्ञाओंके पालन करते समय पिताकी आङ्गा ही पुत्रके लिये शिरोधार्य हुआ करती है।’ ऐसे धर्म-सङ्कृटके समय अपने कर्तव्यका नियन्त्रकर उसको कार्यमें परिणत करते हुए श्रीरामने देवकी अपेक्षा वीजका ही प्राधान्य सिद्ध कर दिया है। मर्योंकी पुत्र-सन्तानमें वीर्य-प्राधान्य होनेके कारण पुरुष-यात्रिकी ही अर्थात् पिताजी ही प्रशानता हुआ करती है।

श्रीरामने आदर्श आत्म-प्रेम अपने तीनों भाइयोंके साथ सारी रामायणमें जहाँ-जहाँ बतखाया है, एक अनुत आदर्श है। सब अवसरोंमें यह आदर्श आत्म-प्रेम अनुवाय रहा है।

सहधर्मिणीके साथ पतिका कथा कर्तव्य है सो सीताके साथ लिये हुए श्रीरामके व्यवहारोंसे सबपर प्रकृत ही है। बनवास आते समय सब प्रकारकी बनवासकी यातनाओंको समझाते हुए श्रीरामने सत्पतिका ही आदर्श दिखाया था और बनवासमें अपनी सहधर्मिणीकी सब प्रकारसे रक्षा करते हुए आदर्श गृहस्थके धर्मोंकी पराकाढ़ा बतला दी थी। विप्रकृटमें हन्द्रुत अवन्तको दबद दिया, शूरपालाके काम-नाक अभ्याससे कटाये, स-सैन्य सरदूषण त्रिशिराको अकेले ही मारा और अन्तमें अपनी सहधर्मिणीके उद्धारके लिये ही रात्रक-कुद्रका विज्वंस किया। आदर्श गृहस्थर्थमंको कार्यतः गिरूपत्र करनेके लिये जंगमें सीताजी अभिपरीक्षा की थी और आदर्श प्रजा-वस्तवता, जो राजा के लिये मुख्य धर्मस्वरूप है, उसका संसारमें प्रचार करनेके लिये ही

श्रीरामने सीताका अयोध्यामें परिस्थाग कर दिया। अधिक क्या कहा जाय, श्रीराम एक आदर्श मानव-रूपसे अवतारीय हुए थे।

मित्रकूटमें भरतके आनेपर दशरथके मन्त्रियोंकी सभामेंके एक मन्त्रीको धमकाते हुए श्रीरामने जैसा राजधर्मका आदर्श प्रतिपादन किया और उसके अनुसार कार्य किया, वह एक अपूर्व दर्शय था। ऐसे धर्मसङ्कृतके समय इस प्रकार निर्णय करना एक आदर्श नरपतिका ही कार्य था, जिसको श्रीरामने अनुसृत रीतिसे निभाया।

पश्चवटीमें सीताको रावणसे छुड़ानेकी घेटा करते हुए सूत-दशरथके मित्र जटायुका दाह-संस्कार श्रीरामने स्वयं किया। यह कार्य ईश्वरावतार श्रीरामके महस्त्रको अधिक उत्तमता बनानेवाला है। प्रत्येक मनुष्यको महान्‌रूपे महान्‌ होनेपर भी ऐसी ही दयालुताकी वृत्ति रखनी चाहिये, इससे उसका भगवत् ही बढ़ता है।

ऋग्यमूक-पर्वत पर सुश्रीवसे सत्य करके श्रीरामने अपने सत्यस्त्वको अन्तिम समर्थक कैसा निभाया सो तो एक दिव्य दर्श है। श्रीराम सुश्रीवके प्रेममें उन्मत्त नहीं थे। वे स्वयं भी मैत्री-धर्मका पालन करते थे और सुश्रीवसे भी मैत्री-धर्म पालन करनेमें त्रुटि नहीं करते थे। सीताकी सबर जानेके आयोजन करनेमें जब सुश्रीवने कुछ विलम्ब किया, तब उच्चमणिको उसके पास भेजकर अपने कहलवाया था—

समये तिष्ठ राजेन्द्र। मा बलिष्यमन्वगः।

न स सङ्कुचितः पन्था येन बाली हतो गतः॥

हे राजेन्द्र सुश्रीव ! अपनी प्रतिज्ञापर एह रहो, बालिके मार्गका अवलम्बन न करो, वह मार्ग तुम्हारे लिये सङ्कुचित नहीं है जिस मार्गसे बालि मारा जाकर गया है।

समुद्र-तटपर विभीषणके आनेपर राजधर्म और युद्ध-धर्मके बशवर्ती होकर किसीने भी उसको आश्रय देनेकी समस्ति नहीं दी; परन्तु श्रीरामने शाकुष भ्राता होनेपर भी अपना यह परम प्रसिद्ध ब्रत बतलाते हुए उसको आश्रय देकर शरणशरगत-बत्सवताकी पराकाष्ठा बतला दी थी कि 'अचानक अशाक्त जो मेरे शरण होता है और 'मैं अपकाही हूँ' ऐसा कहता है उसको मैं सकृद्ध प्राणीमात्रसे निर्भय कर देता हूँ, यह मेरा ब्रत है।'

अनेक धर्मोंका सङ्कट उपस्थित होनेपर ढीक ढीक निर्णय करना ही आदर्श मानवका स्वरूप है। श्रीरामके चरित्रमें वहीं भी उस स्वरूपसे उनकी चुनौति नहीं हुई है। रामायणके पठनेसे पद्म-पदपर यह दृश्य प्रत्येक विचारवान् व्यक्ति देख सकता है।

मानव-चरित्रको बतलानेके उपस्थितसे श्रीरामके चरित्रमें कहाँ जगह अधीरता पायी जाती है, जैसे सीताके विरहमें रोना आदि, परन्तु बालवर्षमें वह अधीरता नहीं है क्योंकि उस अधीरतासे उन्होंने कोई अपैयंका कार्य नहीं किया था। इससे मनुष्योंको शिक्षा लेनी चाहिये कि कैसे भी कष्टका समय आवे, अन्तर्दृष्टिको कभी न छोड़े। वह अन्तर्दृष्टि ही धर्मका निर्णय कर जाएगी।

बालसीकीय-रामायणके उत्तरकाण्डमें कथा है कि एक दिन श्रीराम किसीसे एकान्तमें बातचीत कर रहे थे। कोई आवे नहीं, इसके लिये लक्ष्मणको पहरेदारके रूपमें खड़ा कर दिया था और कहा था कि जबतक मेरी आज्ञा न हो कोई न आवे, यदि आवा तो दयड़ दिया जायगा। इसी बीचमें दुर्वासाने आकर लक्ष्मणसे कहा कि, 'अन्दर जाकर श्रीरामको मेरे आनेकी सूचना दे दो।' लक्ष्मणने अपने दयड़की परवा न करके दुर्वासाके शापसे राज्यको द्वाचानेके लिये श्रीरामको इसिला कर दी। उसने सोचा कि दुर्वासाकी अप्रसन्नताकी अपेक्षा श्रीरामकी अप्रसन्नता विशेष भयानक नहीं होगी। श्रीरामने आज्ञा उल्लङ्घन करनेके अपराधमें लक्ष्मणको आयोध्यासे चले जानेको कहा। राजधर्मके अनुसार वाहे राजपुत्र ही क्यों न हो, अपराध करनेपर वह दयड़नीय होता है। राजधर्मके सामने प्रावृप्तिम भाई लक्ष्मणकी श्रीरामने कुछ भी परवा नहीं की। इस कथानकसे श्रीरामका आदर्श राजधर्म-प्रतिपादन करना सिद्ध होता है।

इस ख्लेसमें श्रीरामके साधारण व्यवहारोंकी ही समालोचना की गयी है। उनकी अवतारविषयक महत्त्वांको नहीं लिखा गया। इस प्रकार जितना भी विचार किया जायगा, विचारवान् व्यक्ति समझ सकेंगे कि श्रीरामावतारकी महत्ता अनुबन्धीय है और उनसे मनुष्यत्वकी शिक्षा बहुज्ञ प्रमाणमें मिल सकती है।

बोलो मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामकी जय !

रामचरितमानसके निर्देष शृङ्गारकी विशेषता

(लेखक—सेठ श्रीकन्हेयालालजी पोद्धार)



साईंजीकी काव्य-प्रतिभाका चमत्कार भरि,
ज्ञान और वैराग्यविषयक वर्णनमें महत्त्व-
पूर्ण होनेपर भी ताहता महाकाव्यका कारण नहीं
कहा जा सकता, वर्योकि वह उनका सर्वाङ्गीका
अनुभूत और वर्णनीय प्रधान विषय
था। किन्तु उनकी सर्वतोवाही सरस्वतीका
वर्णनातीत महत्त्व तो यह है कि उनका शृङ्गार-रस-प्रधान वर्णन
भी बड़ा ही मर्यादापूर्ण और विस्तारक है। गोसाईंजीका
जैसा सेव्य-सेवक-भाव अपने उपास्य भगवान् रघुनाथजीमें था
उसीके अनुरूप उनके हारा अपने उपास्य देवका शृङ्गारामक
वर्णन मर्यादेवित किया जानेपर भी वह अत्यन्त मनोमोहक
और हृदयप्राही है। इनके शृङ्गारामक वर्णनकी तुलनाके
जिये यदि संस्कृत-साहित्यके किसी उत्कृष्ट कवियोंकी गवेषणा की
जाय तो उनकी श्रेणीके महाकवि कालिदास ही उपलब्ध हो
सकते हैं। जिसप्रकार कालिदास संस्कृतके प्रसिद्ध कवियोंमें
श्रग्रामण हैं, उसी प्रकार हिन्दूके प्रसिद्ध कवियोंमें हमारे
पूज्यपाद गोसाईंजी महाराज मर्यादप्रधान हैं। गोसाईंजी
श्रीरामोपासक और अनन्य राम-भक्त और रामचरित-
निष्ठात हैं। महाकवि कालिदास-तात्त्व रामोपासक और
अनन्य भक्त न होनेपर भी रामचरित-निष्ठात अवश्य हैं। कालिदासके काव्योंको मनन करनेवाले विद्वानोंसे यह
बात अज्ञात नहीं है कि महर्षि वाल्मीकिजीकी सुकिसुधाका
निरन्तर आस्वादन करनेवाले कवि-शेखर कालिदासके ग्रन्थोंमें
कहीं शब्दका और कहीं अर्थका सादृश्य स्पष्ट दृष्टिगत होता
है, पर यह स्वतन्त्र विषय है, इसकी स्पष्टता यहीं अप्राप्तिकी
है। अस्तु।

कालिदासके शृङ्गार-वर्णनकी शैली बड़ी ही हृदयहारिणी
और खोकोपरा हैं। उन्होंने शृङ्गार-रसके अलौकिक
विभावादिका साक्षात् प्रदर्शन करनेमें कुछ्युमी त्रुटि नहीं रखती
है। पर वे शृङ्गारी कवि थे, शृङ्गार-रस ही उनके वर्णनका
प्रधान विषय था। उनके काव्योंमें ऐसे वर्णनमें चमत्कारकी
पराकाढा न होना ही आश्रयका कारण था। वे वे
काव्य-भार्मिकोंका कथन है कि कालिदास केवल शृङ्गारामक
वर्णनमें ही सिद्धइत्तम् थे, वे शृङ्गारातिरिक्त रसोंके वर्णनमें
तात्त्व सफलता उपलब्ध नहीं कर सके। कालिदास ही क्यों-

संस्कृत-साहित्यके अन्य प्रसिद्ध कवियोंके विषयमें भी यही
बात चरितार्थ है। महाकवि भवभूति भी कल्याणसके वर्णन-
हीमें प्रधानता प्राप्त कर सके हैं। इसी प्रकार वीररसके
वर्णनमें महाकवि भास अग्रगण्य समझे जाते हैं। निष्कर्ष
यह है कि जिस कविका जो रस विशेष अभीष्ट या
उसीके वर्णनमें उसको वर्येष सफलता प्राप्त हो सकी
है। किन्तु महारामा तुलसीदास-विरक्त तुलसीदास-
अनन्य रामभक्त-तुलसीदास-भव प्रपञ्चसे अतीत तुलसीदास
जिनके वर्णनका एकमात्र प्रधान विषय भक्तिरस ही
था, उनके हारा शृङ्गार-रसका अपूर्व वर्णन किया जाना,
वह भी अपने हृषि श्रीरघुनाथजीका और उसमें आशातीत
सफलता प्राप्त करना। जिस्सन्देह आश्रय ही नहीं, वहे महत्त्वका
विषय है। महाकवि कालिदासने भी अपने हृषि उमा-मदेश्वरका
'कुमारसंभव' में चरित्र-चित्रण किया है। जहाँ उसे खुन्दर
विद्वानोंने साहित्याकाशको अपनी अलौकिक प्रभासे चमत्कृत
करनेवाला सुर्यांशु-पीथूपस्यनिन्दी कलाविशिष्ट चन्द्रमा
माना है, वहाँ उन विद्वानोंसे भी कहों बढ़कर समालोचकोंने
उस 'सुर्यांशु' में आकाशस्थित सुर्योरुके समान स्पष्टही
कल्प आरोपण भी किया है। यात् यह है कि कालिदासने
अपने उपास्य श्रीठमामहेश्वरका शृङ्गारामक वर्णन मर्यादातीत
कर दाला है, इसीसे 'काव्य-प्रकाश' प्रयोग काव्यके प्रधानाचार्य
मम्मटने उसे दृष्टित शृङ्गारके वर्णनकी कहामें रख
दिया है। हमारे गोसाईंजीने अपने परमेष्ठ भगवान्
श्रीरामचन्द्र और जगजननीका शृङ्गारामक वर्णन किया है,
वह भी साधारण नहीं, फुलवारीके नृङ्गारावह प्रकरणके
पूर्वानुगममें छोकोत्तर विभावादिकी अलौकिकताका
प्रयोग अनुभव करा दिया है। उस प्रसंगकी एक एक घोषाईके
अर्थानुभव में जो आनन्द उपलब्ध होता है, वह अवश्य नीय
है। जिस प्रकार द्रष्टव्यानी जनोंको द्रष्टानन्द देवता
समाधिगम्य है, इन्द्रिय, मन, वायीसे अगंधर है, उसी
प्रकार यह आनन्द भी केवल सर्वीय भक्त-जनोंके ही अनुभव-
गम्य है। इतना होनेपर भी रामचरितमानसमें वर्णित
शृङ्गरमें यही विशेषता है कि वह सर्वथा निर्देष है उसमें
कहीं सीमोल्लङ्घनकी गत्त्वतः नहीं गिर सकती। उस
प्रकरणके कुछ उदाहरण देवत दिग्दर्शन करानेसे ही हमारे
इस कथनकी यथार्थताका अनुभव हो सकता है।

कल्याण



वरण-पादुका-पूजन ।

Lakshmis Press, Ltd., Calcutta.

प्रारम्भमें ही देखिये, गोसाईंबी श्रीरघुनाथजीके शक्तिवालीके साथ और श्रीजनकलनिवारीको सत्तियोंके साथ महाराजा अनकली पुष्पवाटिकामें भेजते हैं। पर स्वतन्त्रतासे—स्वेच्छाकारितासे सौर करनेके लिये जहाँ, किन्तु—‘समय जानि गुरु आयथु पारं’—शुभनाथजीको अपने गुरुवर्य महर्षि विश्वामित्रकी आज्ञा हारा उनके उपासना कर्मके लिये पुण्य जानेको, और जानकीजीको—‘गिरिजा पूजन जननि पठाइं’—अपनी मातुदीजीकी आज्ञानुसार श्रीगिरिजाजी पूजाके लिये। देखिये तो कैसा मर्यादापूर्वक दोनोंके एकत्र गम तका सुधारसर उपरियत किया गया है। यहाँपर कविको शृङ्खार-सका उदीयन विभाव-वर्णन करना अभीष्ट है क्योंकि अनकपुर समृद्धिशाळी नगर है, वहाँ अनेक पुष्पवाटिकाएँ हैं, पर रघुनाथजी महाराज-कुमार हैं, पर महाराज अनकले सम्मान्य अतिथि हैं, वे अन्यत्र व्यर्थों जाने लगे, उनके थोग्य तो राजकीय पुष्पोदान ही है। अतः गोस्वामीजी उस पुष्पोदानका उदीयनात्मक वर्णन इस प्रकार करते हैं—

मूप बाहु वर देखेत जाइ। जहाँ बसंत रितु रही लोभाइ ॥

श्रीरघुनाथजी जाकर पुष्पोदानको देखते हैं, कैसे पुष्पोदानको? जहाँ अखिल विश्वको प्रलृप्त अनेकांशी वसन्त अतु स्वयं प्रकोभित हो रही है। कविदासजी ‘कुमारसम्भव’ में पुष्पबन्ना कामदेवको श्रीशङ्करको तुभानेके लिये भेजते हैं। और—

तस्मिन् वने संयमिनं मुनीनां तपः समाधेः प्रतिकूलवर्ती ।

मङ्गलपयोनेरभिमानमृतमात्मानमात्राय मधुविजृम्भे ।

इस पथसे वे वसन्तके उदीयनका बड़ा ही उल्कर्षक वर्णन प्रारम्भ करते हैं, परन्तु शृङ्खारी कावि काविदास-हारा वहाँ वसन्तके प्रभावसे ही प्रभावित प्राकृतिक वन-शोभा विश्वमोहिनी बनायी गयी है। पर वहाँ महारामा तुलसीदासजीने ‘जहाँ बसंत रितु रही लोभाइ’ कहकर उस वर्णनको सचमुच शिखित बना दिया है। जहाँ वसन्त अतु स्वयं प्रकोभित हो रही है उसकी उल्कर्षता अधिक हो सकती है, या जहाँ वसन्त अतु हारा उल्कर्ष किया जाता है उसकी?

* ‘बाग-तड़ाग’ के सम्बन्धमें रामायणके प्रसिद्ध अनेषणकारी रायवहादुर लाला मीतारामजी अपने एक लेखमें लिखते हैं—

‘साधारण पाठकगण इसका अर्थ यह करते हैं कि उस स्थानपर एक बाग और एक तड़ाग (तलाव) था। परन्तु उस स्थानका नाम ही यह है और तुलसीदासजीने उसके दर्शन किये थे। इसीसे उसी नामसे उसका उल्लेख करते हैं। यह स्थान जनकपुरसे दस मील है और दरमांगा जिलेके बेनी पट्टी शानेमें फुलहड़के नामसे प्रसिद्ध है। वहाँ वह बाग था जिसमें जनकके पुजारी पूजा करनेके लिये फूल तोड़ा करते थे। वहाँ तालके किनारे गिरिजाका एक मन्दिर बना दुआ है और कहा जाता है कि विवाहसे पहले तीसीताजीने गिरिजाकी वहाँ पूजा की थी, मन्दिर पुराना है और इसके भीतर तीन फूट ऊंची गिरिजाकी पाषाण-मूर्ति है।’—सम्पादक

इसका अनुभव विज्ञ पाठक स्वर्य कर सकते हैं। कविदासजीके वर्णनमें उपर्युक्त पथके आगे वसन्तसे प्रभावित पशु-पशी आदि तककी शृङ्खार-सेहार्थोंका बहाँन किया जानेसे रसाभास माना गया है पर रामचरितमानसमें उपर्युक्त शौशाईके आगे वह ब'यान है—

लगे विष्ट पनोहर नाना। बरन बरन वर बेलि विताना ॥
नव पछु फल-सुमन सुहाप। निज संपति सुर-स्वस लजाए ॥
चातक कोकिल कीर चकोरा। कूजत निहंग नटत कल मोरा ॥
मध्य बाग सरु सोह सुहावा। मनिसोपान विचित्र बनावा ॥
बिमल सलिल सरसिज बहुरंग। जल-स्वग कूजत गूंजत झृंगा ॥

जिस पुष्पोदानमें नवीन पहव, फल और फूलोंसे सुशोभित अनेक प्रकारके मनोहर वृष्ट लगे हैं, उनपर विसानहृपसे अतिकाएँ छायी हुई हैं। चातक-चकोर, कीर-कोकिल आदि पशीगण अपने चेतोहारी शब्दोंसे डसे मुखरित कर रहे हैं। मधूरगण मनहरण नृत्यमें निमझ हैं। बागके मध्यभागमें मणियोंके सोपानवाला यिमेल सजिलसे परिपूर्ण सरोवर है, उसपर नाना रंगके प्रकृत्त क्षमता, अब-पश्चियोंकी मधुर-ज्वनि और शृङ्ख-पुजाओंका मत गुआर हो रहा है। आहा! चरम श्वेतीकी परम रमणीयताका कैसा पवित्र वर्णन है। पर गोसाईंबीको अपने लिये हुए इस वर्णनसे भी सन्तोष नहीं हुआ। वे अपनी असमर्थता विद्वाते हुए संक्षिप्तमें—

बाग-तड़ागकु लिलोकि प्रसु हरमे बन्धुसमेत ।

परम रंग आराम पह जो रामहि सुख देत ॥

— यही कहते हैं। पर इसमें सभी कुछ कह दिया है। जिस बागको देखनेसे लोकाभिराम श्रीरामको—अखिल विश्वके स्वयं सुखनिधान श्रीरामको सुख ग्रास हो, उसकी परम रम्यताका यही पर्याप्त वर्णन है। श्रीरघुनाथजी

अख्छा, अब देखिये, आज्ञानवन-विभाव-वर्णनमें जिस आतुर्वंदे श्रीराम-सीताका काक्षताक्षीय एकत्र होना और परस्पर पूर्वानुराग प्रदर्शित कराया गया है। श्रीरघुनाथजी

पुष्पोदानमें—बहाँ एक जलाशय है—फूल बीन रहे हैं। पेसे समयमें श्रीसीताजी उसी पुष्पोदानमें एक तूसरेक्षणजलाशयपर — जिसके निकट ही श्रीगिरिजाका मन्दिर है—पचारती है। और—

संग सखी सब सुमग सथानी। गावहि गीत मनोहर बानी॥

उनके साथ सुन्दर और चतुर सखी हैं, वे मधुर गीत गा रही हैं—कैसे गीत? 'मनोहर बाणी'—बाणी सरसतीजीकी भी मन हरण करनेवाले। उनमेंसे छो-स्वभाव सुखभुक्ताशी देखनेके लिये गयी हुई एक सखी वहाँ श्रीराम-जन्मस्थानको देखकर, उनकी रूप-माधुरीपर मनोमुग्ध होकर प्रेम-विवश सीताजीके निकट आती है। उनको तादृश प्रेम-विहङ्ग-दशा देखकर सखियों द्वारा कारण पूछा जानेपर वह कहती है—

देखन बाग मुअं दोउ आप। बय किसोर सब भीति सुहाए॥
स्याम गौर किमि कहाँ बवानी। गिरा अनयन नयन बिनु बानी॥

अहा! सखीने कुछ अधिक न कहकर भी जो कुछ कहने योग्य था, इतनेहोमें सभी कुछ कह दिया। अधिक कहनेके लिये समय वहाँ, शह्ना तो वह थी कि राजकुमार वहाँसे जले न जाए, ऐसा न हो कि जनकजन्मनी उनके पर्यान-सुखसे बहित रह जाए। सखीने यह वास्तव कहकर जब सीताके हृष्टमें अस्तुक्षण उड़ावित देखी तो उनके मुखसे कुछ कहे जानेके पर्व ही एक अतरंग सखी सर्व ही वहाँ चलनेके लिये प्रारंभना करती है—

अदासि देखिये देखन जागु।

यह सुनकर उसी सखीको आगे कहके उक्षित सीताजी अपूर्व सुन्दरताको देखनेके लिये जाती। और—

चकित चिरंकत सकल दिसि जनु सिदु-मृगी समीत।

सब दिशाओंकी ओर चकित होकर सभीत मुग्धा मुग्धानाकी तरह देखने लगी। और उधर सम्मुख आनी

* जिसके निकट श्रीरघुनाथजी फूल बीन रहे थे, उम मठोबरमें यह सरोवर भिन्न है, क्योंकि पुराणोंके आवागमनके स्थानपर ज्ञान-ताजीका सखियोंके साथ गान और स्नान आदि विहार भव्यता नहीं। इसका प्रमाण अगम-वर्माइनमें मिलता है—

वैदेहोपवनस्यान्तर्दिव्येशान्ये मनोहरम्। विशालं सरस्तीरो गो/मन्दिरमुत्तमम्॥

वैदेही वाटिका तत्र नाना पुण्य-मुग्धिपता। रक्षिता मार्चिक-वर्यामस्तं दर्तु मुकुदा दुभा॥

प्रभोत प्रग्न्यहं तत्र गत्वा स्नात्वाऽप्यिमिस्तह। मैरीम पूजयत्माता मात्रादासा मुमहितः॥

आगे रामचरितमानसके—

एक सखी निय संग विदाइ। गई रहा देखन फुरशई॥

इस कथनमें भी इसका अध्ययन हो सकता है।

हुई सीताजीके ढंगवा, किंकिनी और नुपुरोंकी मधुर-ज्वनि सुनकर उनकी ओर, चोदश-कलापद्म^१ चन्द्रमाको जिस प्रकार उकोर देखता है, उसी प्रकार श्रीरामचन्द्र अनिमेष दहिसे देखने लगे। कैसे रामचन्द्र?

जिन्ह निज रूप-मोहनी डारी। कीन्हें स्ववस नगर-नर-नारी॥

जिन्होंने अपने विश्व-विमोहनरूपसे सारे जनकपुरके सभी नर-नारियोंको मुग्ध कर दिया था, वह रामचन्द्र भी सीताजीके अलौकिक महा व्यावयपर भोहित होकर उन्हें रियर-दहिसे देखने लगे। इस अवज्ञा दहिके कारण गोसाइंजीने—

मनहुं सकुचि निमि तंत्र द्वंचल।

इस उप्रेक्षामें वही ही समयोचित कल्पना की है। इसमें श्रीजनकनिष्ठनीका अनुयम आवश्य, उनपर श्रीरामचन्द्रजीका अभूतपूर्व ग्रेम और मर्यादा इत्यादि अनेक भाव गर्भित हैं। फिर सीताजीके उस सौन्दर्यका श्रीरामचन्द्र अपने हृष्टस्थलपर कैसा विवित्र चित्र अकृत करते हैं, देखिये—जनु विराचि सब निज निपुनाई। विरचि विस्त्र कहं प्रगटि देखाई॥

इस अधोक्षणमें और क्षमित्रासखीके—

सर्वोपमा द्रव्यसमुच्चयेन यथाप्रदेश विनिर्दिशतेन।

ममर्पिता विश्वमृजा प्रयत्नादेकम्यसौन्दर्यदिव्यमेव॥

(कुमारनभव दर्श १। ८५.)

इस पथके भावमें वर्णित श्रीपांचलीजीके सौन्दर्यमें बहुत कुछ समानता है। पथमें कथि स्वयं पांचलीजोके सौन्दर्यका वर्णन करता है, किन्तु जौलाइमें भगवान् रामचन्द्र जो स्वयं सौन्दर्यविज्ञान ये, वे—

देखि सीय-मोमा मुख पाना। हृदय सराहत बचन न आदा॥

मीताजीके अकथनीय सौन्दर्यका वर्णनमें असमर्थ

होकर हवनमें केवल उसका अनुभवमात्र ही कर सके हैं। परमे सुहिक्षतां ब्रह्माजीहारा संसारकी सारी उपमाओंमें सुन्दर सामग्रियोंको एकत्र देखनेके लिये—यह जाँच करनेके लिये कि मेरेहारा रवित संसारकी सारी सुन्दरता एकत्र होनेपर कैसी होगी, पार्वतीजीके प्रकट करनेकी उपेक्षा की गयी है। किन्तु चौपाईमें सीताजीको प्रकट करनेकी उपेक्षा में ब्रह्माजी-हारा अपनी सारी रथनाका चारुर्य विश्वको एकत्र विलाना है। निष्कर्ष यह कि कालिदासकी उपेक्षामें एकत्र सौन्दर्यकी जाँच करनेके लिये प्रथम प्रयास है, और गोसाइंजीकी उपेक्षामें उसी एकत्र सौन्दर्यकी परिवाह-अवस्थाका ब्रह्माजी-हारा विश्वमें विलाना है। शिलपकारके प्रथम प्रयासकी रथनामें और अभ्यस्त होजानेपर सिद्ध-हस्तकी रथनामें जो भेद रहता है, वही वहाँ इन दोनों उपेक्षाओंमें है। अच्छा, आगे देखिये—

मुंदरना करें मुंदर कराई : छबिगृह दीपसिंहा जनु बरई ॥

इसमें सीताजीको सुन्दरतारूपी घरकी दीप-शिला—दीपकी ऊंतिकी उपमा दी गयी है कालिदासजीमें भी रथवंशमें इन्दुमनिके स्वयंवर-प्रसङ्गमें दीप-शिलाकी उपमा बर्णन की है—

संचारिणा दीपशिलेव रात्री यं व्यतीयाय पर्तिवरा सा ।

नंगन्द्रमार्गोदृष्ट इव प्रपंदे विर्वर्णभावं स म नृमिपालः ॥

इसका भाव यह है कि स्वयंवरा इन्दुमति जिस जिस राजाके सम्मुख होकर फिर उसे कोडकर आगे बढ़ती थी, उस उस राजाकी ठीक वह अवस्था होती जाती थी, जिस प्रकार चलनी हुई दीप-शिला—हाथमें ली हुई लालटेनकी रोशनी, आगे बढ़नेसे राजमार्ग—बाजारकी पीछे छोड़ी हुई दूकानें प्रकाश-रहित-गनप्रमा होती जाती हैं। इस दीप-शिलाकी उपमाके वर्णनहारा संस्कृत-साहित्यमें कालिदासका हृतना गौरव है कि कालिदास-मामके अन्य कवियोंसे विभक्त करनेके लिये रथवंशादि प्रणेताको 'दीपशिला कालिदास'के नामसे प्रसिद्धि प्राप्त है। वस्तुतः उपमाकी कल्पना वही ही विभिन्न और मनोहारी है, तथापि जब हम इसके साथ गोसाइंजीहारा दी गयी 'दीप-शिला' की उपमाकी हुतना करते हैं तो विवरतया कहनेको बाल्य होना पड़ता है कि कालिदासकी 'दीप-शिला' सुवर्ण है तो गोसाइंजीकी 'दीप-शिला' अवश्य ही कुम्भन है। कालिदासजीने इन्दुमतिको दीप-शिलाकी समता केवल उसकेहारा त्यक्त-राजाओंके गत-प्रग होनेमात्रके लिये दी है। किन्तु

गोसाइंजीने सीताजीको विषयकी सुन्दरतारूप वस्तुका स्पष्ट प्रदर्शन करानेवाली दीप-शिलाकी उपमा दी है। अर्थात् संसारमें वहाँ कहीं भी सुन्दरता कही जानी है वह अन्धकाराहृत होनेके कारण केवल कथनमात्र है—वस्तुतः नहीं, यदि अन्धकारमें कोई वस्तु उपलब्ध हो सकती हो तो सुन्दरता भी अन्यत्र उपलब्ध हो सकती है। देवीप्यमान अखिल सुन्दरताका साक्षात् इर्षान तो श्रीसीताजीमें ही उपलब्ध हो सकता है। श्रीरघुनाथजी भगवती सीताके अक्षयनीय विभिन्न लावण्यपर मनोमुग्ध होकर उनकी उपमाके लिये खोज करने लगे, पर जब बहुत लोज करनेपर भी उनके साक्षय थोथ्य उपमा कहीं नहीं मिल सकी तो उन्हें विवशतया यही कहना पड़ा कि—

केहि पटरौः विदेहकुमारी । सब उपमा किंव रहे तुझरी ॥

उपमा देने-योग्य जितनी सुन्दर वस्तुएँ हैं, उनको कवियोंने साधारण भी जर्नोंको देकर, जूँड़ी कर दिया है। फिर वे निर्माल्य उपमाएँ विदेह-कुमारीके योग्य किस प्रकार हो सकती हैं? इससे अधिक कहनेके लिये वहाँ समय ही कहाँ था, पर आगे अवसर मिलनेपर जब रंगभूमिमें सीताजी पदार्पण करती हैं, तो गोसाइंजीने अपनी उक्लिये इमड़ी—

निरा मुखर तनुअरघ भवानी। रति अति दुखित अतनु पति जानी ॥

विष बालुनी बंधु प्रियजंही। कहिथ रमासम किमि बैदेही ॥

—इस वर्णनसे और भी स्पष्टता कर दी है। सुन्दरतामें सर्वोपरि विश्वविश्वात सरस्वती, पार्वती, रति और श्रीलक्ष्मी हैं, फिर भी सीताजीके साथ इनकी तुलना नहीं दी जा सकती। सरस्वतीजी मुखरा है—अधिक बोलती हैं, सीताजी परिमितभावियी हैं, जो कुलाक्ननाओंके लिये केवल शोभा-प्रद ही नहीं, परमावश्यक भी है। पार्वतीजीमें अद्वैती सुन्दरता है, आधा अङ्ग भगवान् शङ्करका और आधा गिरिजाका है। कामाक्षना रति तो बेचारी अपने पति के अनङ्ग—अङ्गरहित होनेके सम्पादने दुःखिनी है और सद्भीजी भी अपने प्रिय अङ्गु विष और वाल्यकी सहोदरा हैं, अवश्य ही उनके निवासस्थानमें प्रमत्ता होनेका यही कारण है। यही नहीं—

जौ छवि सुधा-पयोनिवि होई । परम-रूप-प्रय कच्छप सोई ॥

सोभा रञ्जु मंदरु सिंगारु । मथइ पानि-पंकज निज मारु ॥

ऐहि विचि उपजै लच्छि जब सुन्दरता-सुख-मूल ।

तदपि सकोचसमेत कवि कहहिं सीय सम तूल ॥

देखि रूप लोचन ललत्ताने । हरये जनु निवि पहिचाने ॥
थके नयन रघुपति-कवि देखे । पलकान्हंडू धरिहरे निमेषे ॥
अधिक संनह देह मह मोरी । सरद-ससिहि जनु चितद चकोरी ॥
लोचनभग रामहि उर आली । दंक्षे पलक-कपाट सयानी ॥
जब सिय सखिन्ह प्रेमबस जानीकाहे न सकहि कठु मन मुसुकानी॥

लताभवनते प्रगट भयं तेहि अवसर दोढ माइ ।

निकसे जनु उग बिमल बिन्धु जलद-पटल बिलगाइ ॥

इस मधुर वर्षा'नमें देखिये, कैसा मर्यादोचित शङ्कर
वर्षा'न किया गया है। इसके प्रथम रात्र्यमें वह ही माझुर्य-पृथ्यं
भाव गर्भित है। वही बहों, इसके आगे श्रीरघुनाथजीकी
रूप-माझुरीपर लीलाबीकी प्रेम-विहङ्ग अवस्थाका भी बहा
आङ्गूष्ठ और चमत्कारिक वर्णन है। लेके हैं कि विकार-भयमें
इम उसकी स्पष्टता करनेमें असमर्थ हैं। सीताबीकी
तादरा दूरा देखकर —

परबस सखिन्ह लखी जब संता । यए गहरु सब कहाहि समीता ॥

सखिन्ह परस्पर कहने लगीं, बड़ी देर हो गयी । सभीत
इसलिये कि मालाबी विकारका कारण पूँछेंगी तो हम क्या
कहेंगी । पर इसपर भी जब सीताबीकी प्रेम-समाधि नहों
कृत सकी तो —

पुनि आठब पहि विरियाँ काली । अस कहि मन बिहङ्गी एक आली ॥

गङ्ग मिरा सुनि सिय सकुचानी । भयेड बिन्दु भातु भय माली ॥

धरि बढ़ि चीर राम उर आने । किरी अपनायौ चिनुबस जाने ॥

एक सखी जब यह कहकर कि 'कह इमी समय फिर
आँखेंगी' मन-ही-मन हँसी, तब सीताबी सखीकी इस
गृह बाबीको व्यङ्ग्योक्तिको मुक्तकर लजित हो गयीं। सखीकी
इस व्यङ्ग्योक्तिके वाच्यायमें तो एक साधारण धरिहास है,
किन्तु व्यङ्ग्यायमें 'नुबहारी इस प्रेम-विवरा दशाको मैं
भद्रीप्रकार समझ रही हूँ, पर जब विकार बरना उचित
नहों और मैंने धरने वह बाल्य 'पुनि आउब पहि विरियाँ काली'
राजकुमारको सुनाते हुए इसलिये कहे हैं कि वे भी कह इसी
समय आयें। 'यह बोवार्य-वैशिष्ठ्य व्यङ्ग्य है ज्योंकि यहाँ बोवार्य
(विदके प्रति कहा जाय) सीताबी हैं। और श्रीरघुनाथजी—
जो यह बाल्य सुन रहे हैं, उनके प्रति सखीके इस बाल्यमें यह
व्यङ्ग्य सूचन है कि 'इस अपनी सखी श्रीसीताके साथ कह
कि इसी समय वहाँ आँखेंगी, जाए भी आगेकी कृपा
करें'। इसलिये यह अन्य-सतिभि-वैशिष्ठ्य व्यङ्ग्य भी वहाँ
है। और सीताबीके लजित होनेका वही कारण है।

लजित सीताबी सखीकी इस गृहोक्तिको मुक्तकर अगस्ता
बौद्धी अवश्य, पर केवल देहमात्रसे, मनसे नहीं। हसी भावको
कहि बदौन करते हैं —

इसन मिस मृग विहग तक फिरइ बहोरि बहोरि ।

निरसि निरसि रघुबारछवि बाढ़ प्रांति न थोरि ॥

अहा ! कैसी मधुर कोमल और कान्त-पदावलीहारा
वह भाव अन्त किया गया है। कालिदास भी शकुन्तलाकी
कीक इसी अवस्थाका वर्णन करते हैं —

दर्भाद्युक्तं चरणः क्षत इत्काञ्जे

तन्वा स्तिथा करिष्यन्देव पदानि गत्वा ।

आसीद्विवृतवदना च विमोचयन्ती

शक्षासु बल्कलमसकमर्पि तुमाणम् ॥

(ब० शकुन्तल द्व०)

यह वर्षा'न भी बहा इसावह है। पर शङ्कारी कवि
कालिदास शकुन्तलाकी इम खेड़का वर्षा'न उसपर अनुरक्त
राजा तुष्यन्तहारा कराते हैं। किन्तु गोसाईजी सीताबीके
विषयमें स्वयंवरके प्रथम श्रीरघुनाथजीहारा ऐसा वर्षा'न
कराना उचित नहीं समझकर कविकी हैसियतसे स्वयं ही
करते हैं, वही उनके शङ्कार-वर्षा'नकी विशेषता है।

किय याठक ! रामचरितमालके शङ्कार-वर्षा'नकी
विशेषताका यह विवरणमात्र है। इसप्रकारके विशेषताओंतक
और भी बहुतसे ददाइरख हैं और उनकी स्पष्टताके लिये इस
दृष्ट खेलकक्षी खेलनी बड़ी लाजायित है—वह इस सुधा-ओतसे
विहरत होना नहीं आहती, और न आप ही श्रीरामचरितमालमें
नृषु हो सकते हैं और न यह प्रसङ्ग ही समाप्त हो
सका है, जो कुछ किया गया है, उसका विवेचन भी अस्यन्त
संचिप्त किया गया है—अपर्याप्त है, किन्तु 'कल्पाणी' के
विशेषाङ्ककी लज्जी विषय-सूची और उनपर लेखोंका बाहुद्द्यु
व्याप्तमें रखकर इस लेखको अगस्ता वहाँ समाप्त किया
जाता है।

रामायणमें रस

होमरके काव्यमें जो रस है, रामायणमें उससे
कहीं विदेष है। — वेदर

रामचरितमानसकी कतिपय विशेषताएँ

(लेखक—पं० आंजगांध्रप्रभाद्यजी चतुर्वेदी 'आन्त' और श्रीमुरलोधरजी दीक्षित 'आन्त')

आनन्द-कानने हास्मिन् तुलसीजडमस्तरः ।
कविता-मजारी यस्य राम-भ्रमर-मूर्किता ॥



त्वामी तुलसीदासजीका रामचरितमानस
अपने दिव्य और अजौकिक गुणोंके
कारण मानव-समाजके मानस-मन्दिरोंमें
मन-मोहनी मञ्जु-मूर्तिकी भाँति पूजा
जा रहा है और अनन्त कालतक इसी
प्रकार भक्ति-पुण्यालिं पाता रहेगा ।
इस अजौकिक धृष्टि महासागरमें अनेक
प्रकाशमान गुब्बा-रक्ष भरे पढ़े हैं जिन्हें
प्रेमी पाठक अपनी अपनी शक्तिके कल्पनार दृष्टिकी लगावर
लिखात लेते हैं । इश्वरकी कृपा और विद्वानोंके सम्मानसे हमें
भी कतिपय गुब्बा-रक्ष प्राप्त हुए हैं । उनमें कुछ इस 'कल्पावा'

के प्रेमी पाठकोंके मनोविनोदार्थ भेट करते हैं ।

(१)

सोणाल आरम्भ—

गोस्वामीजीने यह सोणानोंका आरम्भ दोहे या सोरडेसे
किया है; पर सुन्दर-काशका प्रारम्भ चौपाईसे ही कर दिया
है । अथ—

बाल-कारडः—

ओह सुमिरत मिथि है अननायक करि-बग-बदन ।
कौं अनुग्रह सोइ बुद्धिरासि युम-युन-सदन ॥ (सो०)

अशोध्या-कारडः—

श्रीगुह-बरन-सोज-रव निड-मन-मुकुरु मुखारि ।
बरनौ रघुबर-विमल-जस जो दायक फल चारि ॥ (सो०)

अरहय-कारडः—

उमा रामगुन गूढ़ फैदित मुनि पातहि दिरति ।
पातहि माह बिमूढ़ ते हरि-विमुख न धरमरति ॥ (सो०)

किञ्चिकधा-कारडः—

मुकि-जन्म महि जानि व्यानवानि अधहनिकर ।
जहैं बस संमु-मदानि सो कासी सेहज छस न ॥ (सो०)

सुन्दर-कारडः—

आमबत के बचन सुहाप । सुनि हनुमत हृदय अति भाष ॥ (चौ०)

लङ्घा-कारडः—

लव निमेष परमान जुग बरप कल्प सर चंद ।

भग्नसि न मन तेहि राम कहैं काल जामु कोदंड ॥ (दो०)

उत्तर कारडः—

रहा एक दिन अवधि कर अति आरत पुरलोग ।

जहैं तहैं सोचहि नारि नर इसतनु रामवियोग ॥ (दो०)

पाठक, सुन्दर-काशका चौपाईसे ही प्रारम्भ कर्यों किया
गया ? विचार करनेसे ज्ञात होता है कि मालम-गत
सोपानोंके आरम्भ और अप्य यसी व्यक्तियोंमें लिखे हुए हों-हों-
सोरटे विचारके लिये हैं । सुन्दर-काशक आरम्भ करनेके
पहले विचारम लेना उचित प्रतीत नहीं होता क्योंकि
गोस्वामी जैसे परम भक्त अपने इष्ट-देव श्रीरामचन्द्रजीको
धर्म-शीर्षा, पति-प्राणा सीतादेवीके विरहमें व्याकुल
चोबकर विचारम नहीं ले सकते । इस बातकी उठिमें वे स्वयं
कहते हैं । 'गमकात कहैं रिना मोहि कहैं विचार ?'
(इन्द्रानीजीका कथन)

कोई कोई विनोदी पाठक चौपाईसे आरम्भ करनेका
यह कारण बतलाते हैं कि सुन्दर-काशकमें श्रीरामचन्द्रजीका
सारा कार्य चौपायों (रीत बानरों)ने जी किया है; अतएव
चौपायोंके कारण यह कारण चौपाईसे ही प्रारम्भ करका
उचित है ।

(२)

दन्वनाम—

'बदौं गुर-पद-कंज इपासि तु भरकप हरि ॥'

'बदौं मुनि-पद-कंज रामायन जहिं निरमंड ॥'

'पुनि मन बदन कर्म गुणावक । चरन-कपरुं बदौं सब लायक ॥'

'अनकमुता जगजननि जानकी । अतिमय द्रिय इच्छानिधानकी ॥'

'ताके जुग-पद-कमल, मनार्दौं । जामु कृषा निरमल भरि पावौं ॥'

'बदौं लक्ष्मण-पद-जन्मजाता । सीताल मुभग भगत-सुख-दत्ता ॥'

'रिपु-सूदन-पद-कमल नमामी । सूर सूरील भरत अनुशामी ॥'

‘रथुपति-चरन-उपासक जेते । ऊग मृग मुर नर असुर संमेत ॥
 बदौ पदस्तोत्र सब केते । जे विनु काम रामके चेते ॥’
 ‘प्रनवों प्रथम भरतके चरना । जासु नेम ब्रत जाइ न बरना ॥’
 ‘बदौ विधि-पद-रेतु । भवसागर जेहि कीहि जहें ॥’

उपर्युक्त पंक्तियोंमें बन्दना चरते समय गोस्तामीजी सबके चरणोंको कमलकी उपमा देते हैं, परन्तु भरतकी बन्दनामें ‘प्रनवों प्रथम भरतके चरना’ और विधाताजी के बन्दनामें ‘बदौ विधि-पद-रेतु’ विवरक ही रह जाते हैं। आत्-भक्त बेचारे भरत और वयोवृद्ध बहाने गोस्तामीजीका कथा अपराध किया या जो उन्होंने उनके चरणोंको कमलकी उपमासे विवित रखा ? पाठको ! इसमें एक रहस्य है । बात यह है कि ‘प्रनवों प्रथम भरतके चरना । जासु नेम-ब्रत जाइ न बरना ॥’ इसके आगे गोस्तामीजीने लिखा है ‘राम-चरन-पंकज मन जासु । कुरुप मधुप इव तजइ न पासु ॥’ अर्थात् विसका मन जोभी मधुपके समान रामके चरण-कमलोंका पास नहीं छोड़ता । जोभी मधुपके सदश रामके चरणारविन्दोंमें भरतकी यह अनुरक्ति ही उन्हें कमलकी उपमासे विवित रखनेका कारण है । यदि भरतके चरणोंको कमलकी उपमा दे दी जाती तो उनका भवरूपी भाँता कदाचित् उनके ही चरण-कमलोंमें लुभ हो जाता, क्योंकि अमरकों तो कमल चाहिये : जब उन्हे अपने पास ही कमल भिजा जाता तब वह दूरस्थ रामके चरण-कमलोंमें भटकने क्यों जाता ? इस तरह कवितामें दूषण उत्पन्न हो जाता ।

विधाताके चरणोंको कमलकी उपमासे विवित रखनेका कारण यह है कि बहाती कमलसे उत्पन्न है अर्थात् कमल उनका जनक है । अतएव उनके चरणोंको कमल (उनके पिता) से उपमा देना कितना असंगत ज्ञात होता ? घन्य है, गोस्तामीजी आपको इस सूक्ष्म-दर्शिताको !

(३)

महात्माजीकी उपमाएँ भी बही भजेवार हैं । आएने अर्दामचन्द्रजीको चकोर बनाया है ।

अस कहि फिरि चितपरतेहि ओरा । सिय-मुख-ससि भण नयनचकोरा ॥

जब रामकी चकोर हुए तब उनका विवाह भी चकोरीसे होना उचित है, अतएव गोस्तामीजी सीताजीके विषयमें लिखते हैं—

अधिक सनेह देह मह मोरी, सरद-ससिहि जनु चितय चकोरी ।

चकोर-चकोरी के विवाहमें समझी भी चकोर होना चाहिये । दीजिये वे भी चकोर बने रहेहैं—

बरारथधीः—

जानिसि मोर स्वमाव बरोक । मन तव आनन-चन्द्र चकोर ॥

अनकोरी—

सहज विराग रूप मन मोरा । थकित हेत जिर्म चन्द्र-चकोरा ॥

दुखहा-दुखहिन चकोर-चकोरी, समझी भी चकोर, तब क्या दुखहारीके विर-चन्द्रगामी लम्पदकी चकोर नहीं होंगे ? क्यों नहीं, वे भी चकोर हैं—

रामहि लक्षण बिलोकहिं कैसे ? ससिहि चकोर-किसोरक जैसे ॥

सब तो चकोर हो गये फिर बराती ही क्यों रहे ? दीजिये—

राम-चन्द्र-मुख-चन्द्र-छवि लोचन चाह चकोर ।

करत पान सादर सकल प्रेम-प्रसोद न थेर ॥

विवाहका योग मिलानेकाले राज्ञीवि विवाहितवी भी चकोर-पदमें विवित नहीं रहे । देखिये—

नक्ष-सिंह निरख रामके सोमा । जनु चकोर पूरनसमि लोमा ॥

बदिहारी है, इस चकोर-विवाहकी ! निःसन्देह इस चकोर-विवाहमें आनन्द-सिन्धु उमड़ पदा होगा ! सच्चे अक्त प्रेमी पाठक तो इस प्रसंगमें अब भी चकोर बन जाते हैं ।

बनमें जाते हुए चकोर-चकोरी—राम-सीता—तथा चकोर बन्धु लम्पदजीको देखकर दर्शक भी ताकात चकोर बन गये । लम्पदजीमें मुनि-मण्डली भी चकोर बन गयी !

मुनि-समृह महै बैठे, सनमुख सबकी ओर ।

साद-इन्दु तनु चितवत, मानहु निकर चकोर ॥

मार्गमें नह-नारी गण भी चकोर हो गये—

मुदित नारिनर देखहिं सोमा । रूप अनूप नयन मन लोमा ॥

एकटक सब सोहहिं चहुँ ओरा । रामचंद्र मुख-चन्द्र-चकोरा ॥

(४)

गोस्तामीजीने सभी उपमाज्ञाओंका प्रयोग बड़े विचारसे किया है । कहीं एक उपमा, कहीं दो, कहीं तीन और कहीं चार-चार उपमाज्ञाओंका ज्यगठ है ; इसमें कार्यालयिक उपमाएँ देनेका कथा कारण है ? क्या ! उपमाज्ञाओंकी

मूलाधिकातपर विकार करते ही इवय मुग्ध हो जाता है—
क्षविकी छेत्रकी चूम खेनेको दित चक्रवत् हो उठता है।
उदाहरण स्वरूप, उपमाओंके दो-चार ग्रन्थे देखिये।

[क]

सुनि मृदुबचन भूपहिय सोकू। ससिकर कुअत विकल जिमि कोकू॥
गयेऽ सहमि नहि कहु कहि आवा। जनु सचान बन झपटेउ लावा॥
विवरन भयेऽ निपट नरपातू। दामिनि हनेऽ मनहुं तक तालू॥

उपर्युक्त पंक्तियोंमें वशरथजीकी वशाका चित्रण तीन
उपमाओंद्वारा किया गया है। क्या एक उपमासे काम
नहीं चक्र सकता था? यहीं तीन उपमाएँ देनेका क्या
कारण है? गोस्वामीजी तीन प्रकारका शोक विश्वामाण आहते
हैं, इसेकिये तीन उपमाएँ वी गयी हैं। पहली—

सुनि मृदुबचन भूपहिय सोकू। ससिकर कुअत विकल जिमि कोकू॥

इसमें मानसिक शोक वशाया है। दूसरी—
गयेऽ सहमि नहि कहु कहि आवा। जनु सचान बन झपटेउ लावा॥

इससे वाचनिक शोक प्रकट होता है। तीसरी—
विवरन भयेऽ निपट नरपातू। दामिनि हनेऽ मनहुं तक तालू॥

इससे शारीरिक वेष्वान व्यक्त होती है।

शोककी संख्याके अनुसार उपमाओंकी संख्या तो है
ही, विशेषता यह है कि महाराज वशरथजीको शोक उपच
हुआ है कैफेवीकी वाणीद्वारा (झुनि मृदुबचन) और
वाणीका तत्त्व है आकाश, इसकिये उपमाएँ भी आकाशस्थ
ही हैं। यथा—प्रथम पंक्तिये शशिकल, हिन्दीय पंक्तिये सचान
(बाल) और दूसीय पंक्तिये दामिनि।

शोककी व्यापकता जब, घब्ब और आकाशमें वशाकानेके
—किये गोस्वामीजीने वशरथजीके उपमान ब्रह्म-चर, पञ्च-चर
और नम-चर ही दिये हैं। यथा—(१) कोष्ट-ब्रह्मचर
(२) आकाश—नमचर (३) तत्त्वात्—पञ्चचर—पञ्चात्
कैफेवीकी वाणीसे जब, स्वयं और आकाश सभी शोक-
पूर्व हो गया या। क्षमात् है!

[च]

चित्रकूटाशममें भरतको ससीन्य आते हुए देख
वशरथजीका हृषय और-नससे उड़ाने जाता है और वह
रामचन्द्रीसे कहते हैं—

जिमि करिनिकर दैत्य मृगराजू। लैह लपेटि लवा जिमि बाजू॥

तैसहि भरतहि सेनसमेता। सानुज निदरि निपातौं खेता॥

उपर्युक्त वर्णनमें दो उपमाएँ वी हैं। (१) करिनिकर
दैत्य मृगराजू (२) लवा जिमि बाजू।

दोनों उपमाओंमें पहली उपमा भरत तथा दूसरी शशिकल
किये हैं। करि (हाथी) से शुग-राज (सिंह) छोटा होता है,
इसी प्रकार भरतसे वशरथ भी छोटे थे। इससे प्रथम उपमाकी
सार्थकता सिद्ध होती है। दूसरी उपमामें वह विश्वामाण
गया है कि जिसप्रकार लवासे बाजू बदा होता है उसी प्रकार
शशिकले वशरथ भी बड़े थे। अतः दूसरी उपमाका भी उचित
प्रयोग किया गया है। दूसरी यह कि पहली उपमामें करि-निकर
(हाथियोंके समूह) के समान भरत भी 'सेन-समेता' थे।
दूसरी उपमामें अकेला लवा है, इसेकि शशिकले साथ
भी किसी सहायक शब्दका उल्लेख नहीं है।

भरतको करि (हाथी) की उपमा देना सर्वथा उपर्युक्त
है, क्योंकि इस प्रसंगमें वशरथजी भरतको राज-मह-मरा
समझ रहे हैं और हाथी भरतका होता ही है। शशिकलको
उनकी अनुसारके कारण लवा की उपमा देना भी सर्वथा
उचित है।

[ग]

गिरा अरथ जर बीचि सम कर्दिक्षन मिन्न न मिन्न।

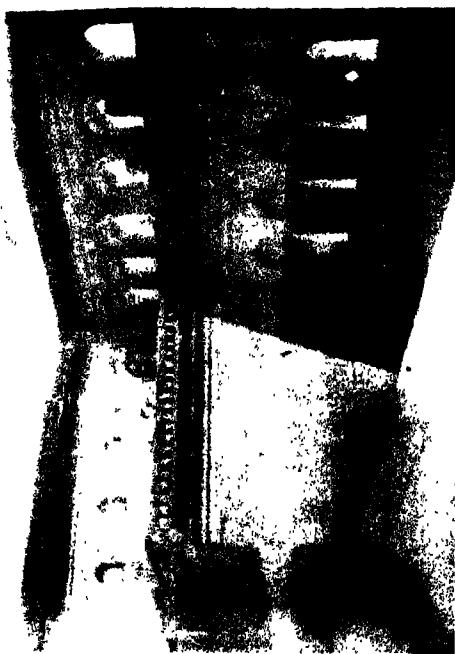
बंदी सीतामपद जिन्हाहि परम प्रिय लिन्न॥

इस दोहेमें श्रीसीता-रामजीकी अभिज्ञता को उपमाओंके
द्वारा प्रदर्शित की गयी है। अभिज्ञता तो एक
उपमासे भी प्रकट हो सकती थी। किंतु दो उपमाएँ
देनेका क्या कारण है? विचार करने पर इसे तो किम्ब-
किलित कारण जान पड़ा है।

पहली उपमा 'गिरा-अरथ' में गोस्वामीजीने एहो
सीतादेवीका और उनके पत्नान् श्रीरामचन्द्रजीका आम
उपमानके रूपमें लिया है। अतएव उपमाओंके इस क्षमके
अनुसार उपमेवेंका क्षम सीता-राम हुआ। रामचन्द्रजीका
नाम पीछे होनेसे वही वह रह न हो आई दूसरिये
दूसरी उपमामें गोस्वामीजीने उपमाओंका क्षम वहह दिया
अर्थात् एहो श्रीरामजीका पत्नान् सीतादेवीके आमका
उपमानके रूपमें उल्लेख किया। यथा—'बहा-बीचि'। इस
प्रकार दूसरी उपमा ऐसा गोस्वामीजी केरल इस दोहे से ही

कल्याण

(अयोध्यापुरी)



मन्दिर कृष्ण - जनाना चार



मन्दिर कृष्ण



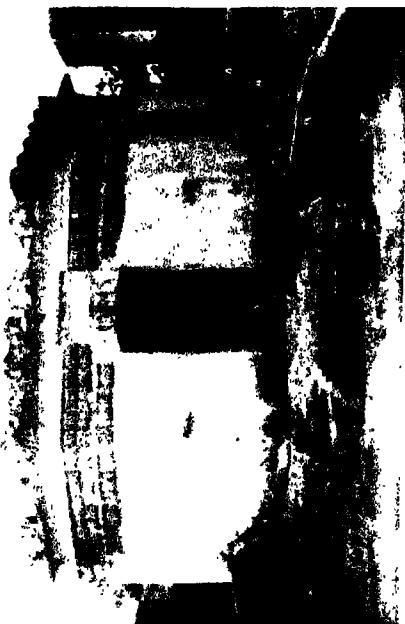
मन्दिर कृष्ण



मन्दिर कृष्ण

कल्याण

(अयोध्यापुरा)



गोस्त्यामी तुलसीदामजीका कुटी



मनस जनन



तुलसी चौंग



मर्गा पञ्चन

नहीं बच गये प्रथुत उन्होंने अपने शुगल आराघोंकी एकरूपता और भी प्रदर्शित कर दी। अन्य भक्तपत्र !

इसके अतिरिक्त इन उपमाओंमें एक विशेषता और भी है। वह यह कि दोनों उपमाओंमें सीतारेवीके उपमान श्रीलिंग तथा श्रीरामजीके पुर्लिंग हैं। उपमाओंमें परस्पर जैसा अभिन्न प्रेम है उससे वे श्रीसीता-रामजीके उपमान बननेके सर्वथा योग्य हैं।

(५)

मानसके कतिपय प्रेमी पाठकोंने कदाचित् इस बातपर ध्यान न दिया होगा कि बन-वासके आरम्भ, मध्य और अन्तमें मिलनेवाले महर्षियोंसे श्रीरामचन्द्रजीने कौन-कौनसे प्रश्न किये और उनमें उन्हीं विशेष प्रश्नोंके करनेका क्या कारण है ? यथा—

बन-वासके आरम्भमें महर्षि भरद्वाजसे मिलनेपर भगवान् कहते हैं—

राम मेरेम कहेत मुनि-पाहीं। नाथ कहिय हम केहि मग जाहीं॥

पाठक ! उक्त ऋषि-वरमें मार्ग ही पूछनेका क्या कारण है ? हनमें अन्य प्रश्न क्यों नहीं किया ?

हनमें दो कारण हैं—

(१) भरद्वाज-ऋषिके आश्रमसे ही श्रीरामजी बनमें प्रवेश करते हैं; अनेक प्रवेश करनेके पहले ही मार्ग जान लेना आवश्यक है।

(२) जो जिस विषयका ज्ञाना होता है, उससे वही बात पूछी जाती है। भरद्वाजजीके विषयमें गोस्वामीजी बालकारणमें लिख आये हैं—

भरद्वात मुनि बसति प्रयाणा। तिनहिं राम-पद अति अनुरागा॥
तापस सम-दम-रूप-निवाना। परमारथ-पथ-परम-मुजाना॥

यहाँ चौथे चरणपर ध्यान रखिये। इससे स्वप्न है कि भरद्वाजजी परमार्थ-पथके अर्द्धे ज्ञाता थे और परमार्थके लिये ही भगवान् अवतार धारण किया था। यथा—

जब जब होइ भरम के हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥
तब तब धरि प्रभु मनुज सरीरा। हरहिं कृष्णनिधि सज्जन पीरा॥

सारांश यह कि श्रीरामजी राजसोंका बच करने अर्थात् परमार्थके पथपर बलनेहीके लिये अवतीर्ण हुए

थे। 'अतएव परमारथ-पथ-परम मुजाना' होनेके कारण ही उन्होंने भरद्वाजजीसे उपर्युक्त प्रश्न किया।

बनवासके मध्यमें आदिकवि वालमीकिजीसे भेट हुई है और उनसे श्रीरामजीने निम्नलिखित प्रश्न किया है—
अस जिय जान कहिय सोइ ठाँक। सिय सौमित्र-सहित जहं जाऊँ॥
तहं रचि रचिर परन-तृन-साला। बास करौं कलु काल कृपाला॥

पाठक इन महर्षिजीसे निवास-स्थान पूछनेका कारण भी बड़ा गूढ़ और मनोसुधकारी है। बात यह है कि महर्षि वालमीकि श्रीरामचन्द्रजीके निवास-स्थानके निर्माण करनेमें सबसे अधिक कुशल शिल्पी समझे गये हैं। गोस्वामीजीने वन्दनामें कहा है—

बंदौं मुनि-पद-कंज 'रामायण' जिन निरमयेतु ।'

रामायणका अर्थ (राम+अयण) रामजीका निवास-स्थान है। वालमीकिजीसे श्रीरामजीका निवास-सम्बन्धी इस प्रश्नके करनेका अभिप्राय कितना गूढ़ रहस्यमय और युक्ति-युक्त है।

बनवासके अन्तमें अगस्त्य ऋषिसे भेट हुई। उनसे श्रीरामजी कहते हैं—

अब सो मंत्र देहु प्रभु मोही। जेहि प्रकार मार्ग 'मुनि द्रोही'॥

अगस्त्यजीसे राजसोंके मारनेकी युक्ति क्यों पूछी ?

एक बार दण्डकारणमें दो राजस-बन्धुओंने बड़ा उपद्रव मचाया था, उनमेंसे एक वाक्षण-वेष धारण कर ऋषियोंको निमन्त्रण दे आता और अपने छोटे भाईका मांस यकाकर निमन्त्रित ऋषियोंको खिला देता था। भोजनोपरान्त उयों ही वह अपने भाईको पुकारता त्यों ही वह ऋषियोंका पेट फाढ़कर निकल आता। इसप्रकार पृक ही विनमें अनेक ऋषि मारे जाते। निदान एक दिन अगस्त्यऋषिको भी निमन्त्रण दिया गया। भोजनोपरान्त सदाकी भाँति उस राजसने अपने भाईको पुकारा। महर्षि अगस्त्य उसका छल समझ गये और डकार लेकर पेटपर हाथ फेरते हुए बोले—'तुम्हारा भाई हमारे पेटसे सदेह नहीं निकल सकता, हज़म होकर ही निकलेगा।' इसप्रकार उस 'मुनि-द्रोही' मायावी राजसका नाश कर अगस्त्यजीने अनेक ऋषियोंको शृत्युसे बचा लिया। (वालमीकीय रामायण आरथ्यकारण)

उपर्युक्त कथाके समान ही श्रीरामजीके सामने भी स्थिति उपस्थित है। उन्हें भी 'मुनि-द्रोहियोंका' बच करना

है और 'मुनि-द्वोही' वधका आगस्त्यजीको पूर्ण अनुभव है अतएव उनसे 'अब सो मंत्र देहु प्रभु मोहा। जिहि प्रकार मारौ मुनि-द्वोही ॥' यह प्रश्न करना सर्वथा उचित है।

(६)

गोस्वामीजीने भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके नेत्रोंकी, कहीं नील कमलसे, कहीं लाल कमलसे और कहीं केवल कमलसे उपमाएँ दी हैं। एक ही उपमेष्टसे पृथक्-पृथक् रंगके उपमानोंका विकान क्यों किया गया?

थोड़ा ध्यान देनेसे इसमें एक बहुत बड़ी विशेषता दिखायी देती है, और हृदय आनन्दसे ओत-प्रोत हो जाता है।

पाठक ! पहले नील कमलकी उपमापर विचार कीजिये। गोस्वामीजीने नील कमलकी उपमा केवल दो स्थानोंपर दी है। इन्हीं दो स्थानोंमें श्रीरामचन्द्रजीके लाल-रूपका वर्णन है। इससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि लाल-नेत्रों और नील कमलोंमें कुछ साझरय है और यह ऐक भी है। कमल-युक्त ऊँसें नील कमलके समान ही तो होती हैं।

लालकाशडान्तरंगत लाल-रूप-वर्णन करते हुए गोस्वामीजी लिखते हैं—

नीरुकमलदोठ नयन विसाला। विकट भ्रुहटि उटकन वर भाला ॥

उत्तरकाशडमें श्रीकाशभुशुरिडजी, भगवान्‌के लालरूपका वर्णन करते हुए कहते हैं—

नील कंज-लोचन भद्र-मोचन। भ्रात्रत भाल निश्चक गोरोचन ॥

इन दो स्थानोंके अतिरिक्त मानसमें और कहीं भी नील कमल, नेत्रोंके उपमान नहीं बने। बन कैसे सकते थे? इन दो स्थानोंके अतिरिक्त लालरूपका वर्णन भी तो और कहीं नहीं है।

लाल कमलसे गोस्वामीजीने उन्हों-उन्हों स्थानोंमें उपमाएँ दी हैं, जहाँ भगवान् शशु-वध करनेके हेतु प्रस्तुत हुए हैं। शशुके सम्मुख लाल नेत्र होना ही चाहिये। पाठक, देखिये—ताइका-सुशाङ्क आदिके वध करनेके लिये भगवान्, अधिवर कौशिकके साथ प्रस्थान करने हैं। किसा है—

अरुण नयन ठर बाहु विसाला। नीरुक्त तनु स्याम तमाला ॥

यथापि यहाँ लाल कमल उपमान नहीं है, तथापि लाल नेत्रोंका वर्णन किया गया है।

'मुनि-द्वोही-वध'की प्रतिक्षाकर कार्यात्मके लिये प्रस्तुत, अगस्त्याभासमें श्रीरामचन्द्रजीके स्वरूपका वर्णन करते हुए गोस्वामीजी लिखते हैं—

अरुण नयन राजीव सुवेसं। सीता नैन-चकोर निसेसं ॥

लाल-वधके समय—

स्याम गात सिर जटा बनाए। अरुण नयन, सर-चाप चढ़ाए॥

लाल नेत्रोंका वर्णन है।

लाल-वधके लिये आये हुए भगवान् श्रीरामचन्द्रजीको विभीषणने देखा—

मुज प्रलंब कम्जाहण लोचन। स्यामरुगात प्रणत भय-मोचन ॥

लाल-वधके समय—

अरुण नयन बारिद तनु स्याम। अखिल गोक लोचन अमिरामा ॥

लाल-वधोपरान्त तुरन्त ही देखता सुनि करते हैं—

सर चाप मनोहर तृष्ण धरं। जग्जामण-लोचन भूप वरं ॥

इन स्थानोंके अतिरिक्त लाल नेत्रोंका वर्णन अथवा नेत्रोंका लाल कमलोंसे विकान और कहीं नहीं किया गया। शशु-वधके स्थान भी तो यही है। सभी जगह शशु-वध नहीं हुआ, अतएव सभी जगह लाल कमलोंसे उपमाएँ भी नहीं दी गयीं। ही, एक स्थानपर पाठक आवेद करेंगे। वह कौन-सा? बन्दनामें गोस्वामीजीने लिखा है—

नीरुक्त रसोरुह-स्याम, तमण अरुण बारित नयन ॥

यहाँ किस शब्दका वध किया गया? पाठक, थोड़ा विचार कीजिये और 'नीरुक्त रसोरुह-स्याम, तमण अरुण बारित नयन' के उपरान्त लिखी हुई एक शंका देखिये। क्या लिखा है?

'करहु सो मम ठर धाम, सदा क्षीर-सागर-सयन ॥'

भक्त भगवान्‌को अपने हृदयमें स्थापित करना चाहता है। किसकिये? काम, क्रोध, लोभ, मोहादि जैः प्रबल शशुओंको समूल निरत करनेके लिये। देह-धारी राजस शशुओंसे ये जैः शशु प्रबल हैं; अतएव 'अरुण-बारित नयन' ही नहीं किन्तु 'तरुण अरुण बारित नयन'की आवश्यकता है। घन्य है!

आनन्दके अवसरोंपर गोस्वामीजीने नेत्रोंके उपमानभूत कमलोंको रंग-रहित लिखा है और उनकी आवश्यकता भी है। क्योंकि आनन्दके समय नेत्र अपनी स्वाभाविक दशाको प्राप्त हो जाते हैं—आनन्दस्वप्न बने रहने हैं अतएव उन्हें लाल रंगसे रंगार रंगमें भंग क्यों बाला जाय?

जनकपुरमें दोनों भाई अमर्य कर रहे हैं। आरों और
आनन्द जा रहा है। यहाँ लिखा है—

सुभग श्रवण सरसीरह लोचन।

केवल कमल है, रंग नहीं।

जनकपुरकी लियाँ परस्पर भगवान्‌के रूपका वर्णन
कर रहे हैं—‘श्याम गात, कल कंज-बिलोचन।।’

रंग-भूमिमें दोनों भाई आ गये, आनन्द-ही-आनन्द
है ! गोस्वामीजी लिखते हैं—

सरद चंद निन्दक मुद नौके। नीरज नयन भावते जीके।।

विवाह हो रहा है—

सरद चिमल चिषु-बदन मुहबवन। नयन नवल राजीव लगावन।।

अवस्था नवी है, अतएव राजीव भी नवे ही लजित
हो रहे हैं।

ससुराजमें जहाँ आनन्दका समुद्र ही हिलोरें मार रहा
है, गोस्वामीजी लिखते हैं—

नयन कमल, कल चुंडल नाना। बदन सकल सौन्दर्य-निधान।।

पथिक-वेश-धारी सीता, राम, सप्तमण मार्गमें जा रहे
हैं। मार्गमें स्थित पुर-नर-नारी उन्हें देखकर आनन्दमें मध
हो रहे हैं—

स्यामल गैर किसोर वर, सुंदर सुखमा ऐन।

सरद संबंधि-नाथ मुल, सरद सरोरह-नैन।।

चौदह वर्षकी अवधि समाप्तकर भगवान् अयोध्या-
पुरीको लौट आये। अहा ! इस आनन्दकी तो कोई सीमा
ही नहीं है। विशाल समुद्रमें भी इसकी तुलना नहीं की
जा सकती। अयोध्या आनन्दमें परिष्ठावित है। साख
भरतजी भगवान्‌से मिल रहे हैं ! अहा !

परे भूमि नहिं उठत उठाप। बल कर कृष्ण-सिंह उर लाए।।

स्यामल गात रोम भये ठाढे। नव राजीव नयन जल बाढे।।

(७)

गोस्वामीजीने कहाँ कोई शब्द लिख दिया है तो
उसका पूरा पूरा निर्वाह भी किया है। उनके शब्द साधारण
कवियोंकी भाँति वाक्य, तुकान्त या मात्रा-पूर्ति के लिये
नहीं हैं। वे सर्वथा सार्थक हैं। यथा—

(क) भरतजी कहते हैं—

आपनि दारूण दीनता, सबहि कहो समुक्षाय।
विन देखे रघुबीर-पद, जियकी जरनि न जाय।।

पाठक, ‘जियकी जरनि’ पर ध्यान दीजिये। भरतजी
कहते हैं—‘श्रीरघुबीर-पद’ विना देखे ‘जियकी जरनि’ न
जायगी।

चित्रकूटाश्रममें श्रीरामजीको दूरसे भरतने देखा।
देखकर तो ‘जियकी जरनि’ आवी ही आहिये। जीजिये
गोस्वामीजी वहाँ लिखते हैं—

कर कमल बनु-सायक फेरत। जियकी जरनि हरत हँसि हेरत।।

‘जियकी जरनि न जाय’ यह एवं पहले लिखकर
गोस्वामीजीने इसका कितना ध्यान रखता है। मानसकी
समझ रखना इसी प्रकार है। ध्यान-पूर्वक देखनेसे स्थिर्या
मज़बूत आती है और मन सुग्रथ हो जाता है !

(ख) राजपि विश्वामित्र श्रीराम-सक्षमणको दशरथजीसे
मौरगकर अपने साथ लेकर चलने लगे। यहाँ गोस्वामीजीने
निम्नलिखित सोरका कहा है—

पुरुष-सिंह दोउ बीर, हरपि जले मुनि-भय-हरण।

कृष्ण-सिंहु मति-बीर अक्षिल विस्व-कारण-करण।।

पाठक, साधारण दृष्टिसे इस सोरकेमें बहुतसे शब्द
केवल वाक्य-पूर्ति के अर्थ लिखे हुए-से जान पढ़ते हैं। एवं
नहीं, पृष्ठ-पूर्व शब्दपर ध्यान देनेसे सभी शब्द सार्थक
ज्ञात होंगे। विश्वाम-भयसे हम केवल ‘पुरुष-सिंह’, ‘हरपि जले’
‘मुनि-भय-हरण’, ‘कृष्ण-सिंहु’, और ‘मति-बीर’, इन्हों
शब्दोंकी सार्थकता सिद्ध करते हैं।

(१) पुरुष-सिंह—आगे चलकर श्रीरामचन्द्रजी
ताड़ा, सुबाहु आदिका वध करेंगे, इसी आशयसे यहाँ इस
शब्दका प्रयोग किया गया है। इस ‘पुरुष-सिंह’ का निर्वाह
भी गोस्वामीजीने कितनी सुन्दरताके साथ किया है ! ध्यान
दीजिये, सोरकेसे विदित होता है कि श्रीराम-सक्षमण
पुरुष-सिंह बनकर घरसे निकले हैं। इसके अनन्तर अथ
जनकके भेजे हुए दूतोंके मुखसे इन ‘पुरुष-सिंह’ के रूपमें
निकलनेवाले वीरोंका समाचार सुनिये।

दशरथजीके यह पूछनेपर कि—

मैया कहहु कुसल दोउ बारे। तुम नीके निज नयन निहारे।।

दूत उत्तर देते हैं—

पूछन जोग न तनय तुम्हारे। पुरुष-सिंह तिहुँ पुर अजियरे।।

‘पुरुष-सिंह’ बनकर घरसे निकले, अतएव समाचार भी ‘पुरुष-सिंह’ बने रहनेका मिलना चाहिये। गोस्वामीजीको अपने पहले लिखे हुए ‘पुरुष-सिंह’ का कितना प्यान रहा और आगे अलक्षकर उन्होंने उसको किस लौहीसे दुहराया, विचार करते ही मन मुग्ध हो जाता है! क्या यह ठीक होता कि जबते तो सिंह बनकर और समाचार मिलता शगालका? कहापि नहीं।

(२) मुनि-भय-हरण—स्थष्ट ही है कि आगे ताढ़का, सुबाहु, मारीचादिसे मुनियोंको निर्भय किया है। क्या मुनियोंको उनसे भय लगता था? हाँ, गोस्वामीजी पहले लिख कुके हैं—

तहं जप-जग्य-जोग मुनि करहीं। अति मारीच सुबाहुहिं डरहीं।
देखत जग्य निसाचर धावहीं। करहि उपद्रव मुनि भय पावही॥

(३) कृपा-सिन्धु—इस शब्दका प्रयोग इसलिये किया गया है कि उन्होंने आगे अहल्याका उद्धार किया है। एक पतितपर इसप्रकारकी कृपा, कृपा-सिन्धुके अतिरिक्त और कौन कर सकता है? अहल्या स्वयं कहती है—

अहि पद सुर-सरिता परम पुनीता
प्रगट भई सिव सीस घरी।
सोई पद-पंकज जेहि पूजित अज,
पम सिर धरेड कृपायु हरी॥

(४) मति-धीर—धनुष-यज्ञमें धनुष तोड़ना है और बिना ‘धीर-मति’के उसका टूटना असम्भव है। इस बातका गोस्वामीजीने स्वयं समर्थन किया है। राजाओंसे धनुष कथों न दूढ़ा? क्योंकि वे ‘परिवर्त बोध उठ अकुलाइ’ अकुलाकर उठे, ‘धीर-मति’से नहीं। श्रीरामजीसे धनुष कथों दृढ़ गया? क्योंकि वे ‘ठाइ भये उठि सहज मुभाये’! अकुलाकर नहीं उठे और ‘सहजहि चले सकल जग-स्वामी॥’ चले भी सहज ही, ‘मति-धीर’ होकर। राजा ज्ञोग कैसे जले थे? वे ‘चले इष देवन्ह सिरु-नाई॥’ अपने-अपने इष्टदेवोंके सिर उन्होंने पहले ही जीते कर दिये। सफलता मिले तो कैसे मिले? *

इसप्रकार भगवान् जो जो कार्य विश्वामित्रजीके साथ रहकर किये, उन सब कार्योंके करनेकी शक्ति तो गोस्वामीजीने प्रस्थानके समय ही प्रदर्शित कर दी है।

* यहांपर प्रतीत होता है कि यह अर्थ मनोविनोदार्थ किया गया है। —सम्पादक

(५) हरषि चले—यहांपर केवल ‘चले’ ही लिख देना पर्याप्त था। ‘हरषि चले’ लिखनेकी क्या आवश्यकता थी? क्या हरषि मात्रा-पूरक है? नहीं, वह बहुत ही ठीक लिखा गया है। पाठक, विचार कीजिये। प्रस्थान-कालका हर्ष, कार्य-सफलताका शोक है। इस बातका समर्थन गोस्वामीजीने स्वयं किया है। सुन्दरकाण्डमें महादीरजी बानरोंसे कहते हैं—

तब लगि मोहि परिखयहु माई। सहि दुख कंद-मूरु-फल खाई॥।
जब लगि आवौं सीतहि देली। होइ काज मन हरप विसेखी॥।

कार्य होगा; क्योंकि मनमें विशेष हर्ष है। प्रस्थान भी महादीर किस तरह करते हैं—

अस कहि नाय सबनह कहं माया। चलेउ हर्ष हिय धरि रघुनाथ॥।

एक तो हर्ष दूसरे हृषयमें रघुनाथजी, कार्य-सिद्धि न हो तो क्या हो?

अतएव, जहाँ-जहाँ श्रीरामजीने सफलता प्राप्त करनेके देतु प्रस्थान किया है, वहाँ वहाँ गोस्वामीजीने ‘चले’के पहले ‘हरषि’ का प्रयोग अवश्य कर दिया है। देखिये—

उपर्युक्त सोराठेमें ही ‘हरषि चले’। अतएव ‘मुनि-मख रथा’ में उन्हें सफलता मिली।

इसके उपरान्त धनुष-यज्ञकी खबर पाकर वहाँ सफलता-प्राप्ति की आशामें भगवान् प्रस्थान करते हैं और सफल भी होते हैं। अतएव गोस्वामीजी लिखते हैं—

धनुष-जग्य मुनि रघुकुल-नाथा। अर्पि चले मुनिवरके माया॥।

आरथ्यकाण्डमें अगस्त्यजीसे ‘मुनि-द्वोहा’ राजसोंके वधको युक्ति पूछकर श्रीरामचन्द्रजीने राजसोंको वध करना आरम्भ कर दिया और सफल भी हुए। अतएव अगस्त्याध्यमें श्रीराम-शारामनके पूर्व ही गोस्वामीजीने लिख दिया है—
एवमस्तु कहि रमा-निवासा। दर्षि चले कुंभज ऋषि पासा॥।

क्योंकि आगे वह खर-वृष्ण आदिमे युद्धकर सफल हुए हैं।

सुन्दरकाण्डमें सीतादेवीकी सुधि पाकर भगवान् रामचन्द्र, रावणको मारनेके लिये प्रस्थान करते हैं। युद्धमें सफलता भी मिलती है अतएव गोस्वामीजी लिखते हैं—

गया है, राजाओंवा असफलताका कारण व्यक्तं प्रदर्शित किया

हरपि राम तब कीन्ह पयाना । भये सकुन सुंदर सुम नाना ॥

बुद्धमें रावणको सफलता नहीं मिली; अतएव उसके प्रश्नानमें गोस्वामीजीने केवल 'चक्र' ही शब्दका प्रयोग किया है—

'चक्र वीर सब अतुलित बली ।'

'चली निसाचर-सैन अपारा ॥'

'चले भत्त गज-जूथ धनरे ॥' आदि ।

(८)

गोस्वामीजीने अपनी इच्छामें जहाँ तहाँ 'रुचिर' शब्दका विशेषणके रूपमें प्रयोग किया है। इसका क्या कारण है? विचार करनेसे ज्ञात होता है कि इस शब्दका प्रयोग गोस्वामीजीने श्रीरामचन्द्रजीके अंगों, आभरणों और ढनसे ही समवन्ध रखनेवाले पदार्थोंकी विशेषता बढ़ानेके लिये किया है, चाहे जहाँ नहीं, इससे सिद्ध होता है कि गोस्वामीजीके विचारमें श्रीरामजीको 'रुचिर' विशेष रुचिकर या। जो वरतु हृष्टदेवको रुचिकर हो, उसे उसका परम भक्त क्यों न समर्पण करे?

पाठक, 'रुचिर' का प्रयोग देखिये। कितना सुन्दर और हृदयहारी है।

नव राजीव असन मृदु चरना । पद्म रुचिर नव ससि द्युति हरना ॥
रेखा रुचिर केनु कल ग्रीवा । जनु त्रिमुखन सुखमाकी संवाद ॥

रेखा व्रय सुंदर उदर नामि रुचिर गंगीर ।

उर आयत आजत विविध बाल त्रिभूषण चौर ॥

केहरि केघर बाहु बिसाला । उर अति रुचिर नाम-मनि माला ॥
सुंदर अमुटि भनोहर नासा । भाल तिलक रुचिरता निवासा ॥
मामभिरक्षय रुकुल-नायक । धृत वर चाप रुचिर कर सायक ॥

रुचिर चौतनी सुभग सिर मेचक कुंचित केस ।

नव मिसि सुंदर देखु दोउ सोभा सकल सुदेस ॥

ठर-श्रीबत्स रुचिर बनमाला । पदिकहार भूपन मनि-जाला ॥

रुचिर-प्रेमी भगवानकी शम्भा भी रुचिर ही होनी चाहिये। लीजिये—

सेज रुचिर रचि राम उठाये । प्रेम-समेत पलेंग पौँडाये ॥

वास-स्थान भी रुचिर ही है—

तहुँ रुचि रुचिर परन-तुन साला । वास करो कछु काल कृपाला ॥

'रुचिर'से ऐसा प्रेम इच्छनेवाले भगवान् रामचन्द्रजीकी जन्मभूमि अयोध्यापुरी क्या रुचिर न होगी? अवश्य होगी। देखिये—

अवधपुरी अति रुचिर बनाई । देवन सुमन-वृष्टि झर काई ॥

धन्य है!

बाल्यकालहीसे 'रुचिर' प्रेमी शिशु-रूप रामका 'प्ले-आउटर' भी कैसा रुचिर है?

बरनि न जाप रुचिर अगनाई । जहै खेलहि नित चारों भाई ॥

धनुष तोडनेवाले रुचिर-प्रेमी हैं, अतएव धनुष-वेदिका भी पहलेसे ही 'रुचिर' रच दी गयी

अति विस्तार चारुगच ढारी । बिमल वेदिका रुचिर सँवारी ॥

क्या कहते हैं?

रुचिरानुरक्तजी कहीं नाराज न हो जायें, अतएव—
रच रुचिर वर बंदनवारे । मनहु मनोभव-फद सँवारे ॥

इसके अतिरिक्त बारातमें जानेके लिये सवारी भी रुचिर ही हो तो ठीक है। लीजिये बारातकी तैयारीमें—

दोउ रथ रुचिर मूपपहँ आने ।

और—

तेहि रथ रुचिर बसिष्ठ कहैं हरपि चढ़ाय नंरस ॥

महर्षि वशिष्ठको 'रुचिर' रथमें बैठाना उचित ही है क्योंकि वह पुरोहित ठहरे।

'रुचिर'से दूलहका इतना प्रेम देख जेवनारके समय जनकजीने भी कैसी चतुराई की—

छ रस रुचिर व्यंजन बहु जाती । एक एक रस अगनित भाँती—

परसवा दिये ।

क्यों न हो?

जिसका 'रुचिर' में इतना गहरा अनुराग है, जिसके अंग और आभरणादि भी साहात् रुचिररूप हैं, जो रुचिर पदार्थोंका ही उपयोग करता और करना चाहता है, उस रुचिररूप प्रभुका जब चरित भी रुचिर हो तब गोस्वामीजीका काव्य-कौशल सफल समझा जावे। हाँ, चरित भी रुचिर है। देखिये—

यह सब रुचिर चीरत में भास्ता । अब सो सुनहु जो बीचहिं राखा ॥

अपने आराज्य-देवकी 'रुचिर'से इतनी प्रीति देखकर

ही कलाचित् परमभक्त कागमुषुषिङ्गी 'सचिर' पर्वतपर
निषास करते हैं ।

तेहि गिरि सचिर वसै खग सोई । तातु नास कल्पान्त न होई ॥
घन्य हैं !

शायद, शूर्यकलाको श्रीरामका 'सचिर-प्रेम' मालूम
हो गया था, इसीलिये वह इन्हें रिभानेके लिये—

सचिर रूप धर प्रभुपहँ आई । बोली मधुर बचन मुसकाई ॥
खेद है ! उसका मनोरथ सफल न हो सका ।

अपर जिन कलिपथ विशेषताओंका विग्रहान कराया गया

है, उनसे यह भलीभांति ज्ञात हो जावेगा कि गोस्वामीजीने
रामचरित-मानसमें कैसी-कैसी अनेक अखौकिकताएँ भरकर
अपनी अपर्यं प्रतिभा, दिव्य काळ-चातुर्य और प्रकाशद
परिषद्यका पूरा परिचय दिया है । इस छुट्टी खेलनीसे आपकी
प्रशंसा कैसे की जाय ? हम तो मुश्व होकर ही रह जाते हैं !

लवि मानस, मानस-मुकुर क्यों न हुलसि हरणाहि ?

तुलसी-बुधि-प्रति-विघ्न वर प्रतिविम्बित जेहि माहि ॥

हरत हृष्म-अशान-तम रचना-सचिर प्रकास ।

काव्य-कौमुदी इंदुवर धनि धनि तुलसीदास ॥

श्रीरामायणोपदेश

(लेखक—श्रीयुक्त चौधरी रमेशनन्दनप्रसादसिंहजी)

[समाज और देशहित]



रामावतारसे यह उपदेश मिलता है कि
देशका यथार्थ हित भर्मने प्रसारमें ही
है । सब लोगोंको एकमत होकर
इसी महान् कार्यमें खग जाना
चाहिये । असुरोंके असदाचारसे देशकी
परम हानि होते देखकर उनका
दमन करना ही देशहितका प्रधान
कार्य समझा गया था और इसीलिये भगवान् का श्रीरामावतार
हुआ था । भगवान् श्रीरामचन्द्रने विशामित्रलीके यज्ञकी रक्षाके
लिये उनके साथ जाते समय स्थान ही कहा था—

गोत्राण्डाणहितार्थाय देशस्य च हिताय च ।
तत्र चैवाप्रेमयस्य दचनं करुमुद्यतः ॥

(वा० गा० २ । २६ । ५)

गो, गोत्राण्ड और देशके हितके लिये आप-वैसे
अभ्यान्तकी आशानुसार मैं सावधानीसे देश-शत्रुओंका
वध करूँगा । इसप्रकार भगवान् श्रीरामका शब्द धारण
केरल भर्मकी रक्षा और भर्मनके विनाशके लिये ही था । इस
देशहितकर आयोजनकी सिद्धिके लिये देव, मनुष्य और
वनवासी रीढ़-वानरादि तकने एकमत होकर प्रयत्न किया ।
शास्त्रके अनुसार, केरल मनुष्य ही समाजके अन्तर्भुक्त नहीं
हैं, पशु-पक्षी और वृक्षादि स्थावरोंका भी उसमें स्थान है ।
मनुष्यसमाजमें सभी वर्षोंके लोग यह यथानु उस समय

आदरशीय थे । कोई भी भीष नहीं समझा जाता था ।
श्रीरामायणाभिषेकके समय लोगोंको निमन्त्रण देनेके
सम्बन्धमें आदेश देते हुए महर्षि वशिष्ठने सुमन्त्रसे कहा था ।

ग्राहणान्तक्रियान्वयन् शूद्रांशैव सहस्रः ।

समनयस्त सत्त्वस्य सर्वदेशेषु मानवान् ॥

(वा० गा० २ । १३ । । २१)

'सभी देशोंके हजारों ग्राहण, वैत्रिय, वैश्य और शूद्रों-
को सम्मानके साथ बुलाओ ।' प्राचीनकालमें लोगोंमें इनना
अधिक प्रेमभाव था कि परस्पर भिन्ननेके समय जह
वृक्षादिके सम्बन्धमें भी कुशल-प्रस धूमे जाते थे । इससे
सिद्ध होता है कि उन स्थावर जीवोंको भी समाजमें स्थान
प्राप्त था । भगवान् विशामित्र भगवान् तेजस्वी वशिष्ठसे
कृष्णोंकी कुशल पूजे हैं—

विश्वामित्रो महातेजा उनस्तनिगणं तदा ।

मर्वत्र कुशलं प्राह वशिष्ठो राजसत्तमः ॥

इसी प्रकार श्रीवशिष्ठ और भरतने महर्षि अगस्त्यसे
शरीर और शिष्योंके साथ ही अप्रिय एवं पशु-पक्षी सभा
वृक्षोंकी भी कुशल पूजी थी ।

वशिष्ठो भरतश्चेनं प्रपञ्चतुरनमयम् ।

शरीरेऽप्तिषु शिष्येषु वृक्षेषु मृगपक्षिषु ॥

रामावतारमें रघुवंशके गुणोंका पूर्ण चिकाश।
रघुवंशमें कहा गया है—

लगाय संभूतार्थानि सत्याय मितभिषिणाम्।
यशसे निजी धूणां प्रजाये गृहमेधिनाम्॥
शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां योनं विष्वैषिणाम्।
बर्द्धक्ये मुनिनृतीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम्॥

अर्थात् 'रघुवंशी त्याग या परोपकारके लिये ही ऐश्वर्य रखते थे। सत्यकी रक्षाके लिये कम बोलते थे। कमनीय कीर्तिके लिये ही विजयकी आङ्ग करते थे। सन्तानिके लिये ही गृहस्थाभम्भमें प्रवेश करते थे। बाल्यकालमें विद्याज्यवद छरते थे। केवल बौद्धनावस्थामें ही धर्मसे अविरुद्ध विषयोंका सेवन करते थे। वृद्ध होनेपर मुनिवत धारण करते और अन्तमें योगके द्वारा शरीरका परित्याग कर देते थे।' भगवान् श्रीराममें हन रिव्यु गुणोंका पूरा विकास था। इसीका कुछ दिग्दर्शन नीचे कराया जाता है।

त्याग

महाराज दशरथके द्वारा श्रीरामराज्याभिषेकका निश्चय किये जानेपर सम्पूर्ण अयोध्यामें परमोत्सव हो रहा है। आनन्दभागवतकी उत्तान तरफ़ोंकी तुमुल ध्वनि पूर्णिमाके सागर-तरफ़-गर्जनके तुल्य है। घर-वर मङ्गल-वधार्याँ झैंड रही हैं। नभी लोग अभियेकका उत्सव देखनेके लिये उम्माहित हैं। ऐसी स्थितिमें वहाँ एक ही भवन ऐसा है जहाँ शान्तिका साक्षात्य द्वाया है, किसी प्रकारका व्यर्थ कोलाहल नहीं है, उपवासवत-सहित स्तुतिपाठ और जप जारी है। यह वह आलय है जहाँ राजकुमार श्रीरामचन्द्रजी राजकुमारीजी श्रीजनकनन्दिनीजीके साथ दैत्य-भावसे कठिन राज्य-शासनके गुरुतर भारको ग्रहण करनेकी शक्ति प्राप्त करनेके लिये प्रार्थनामें प्रवृत्त हैं। इसी अवसरमें माता कैकेयीके प्राप्तादसे तुलाहट आती है और श्रीराम तत्काल वहाँ उपस्थित होकर अपने पूजनीय धर्मार्था पिताको शोक-विकल स्थितिमें भूमिपर पढ़े देखते हैं और विनश्चताके साथ माता कैकेयीसे पिताके शोकका कारण पूछते हैं। कैकेयी इष्ट कह देती है कि 'महाराजने पूर्वकालमें मुझे दो वरदान देनेके लिये प्रतिज्ञा की थी, आज मैंने उसकी पूर्तिके लिये एक वरसे तुम्हारे राज्याभिषेकके लिये संगृहीत सामग्रियोंके द्वारा भरतका रकावक्षार-विभूषित होकर राज्यसिंहासनालद होना और दूसरेसे तुम्हारा श्रीर-वस्त्रज्ञ-जटा-धारवापूर्वक

मुगिन्द्रसे औदृढ वर्षके लिये बनमें वास करना माँगा है। मैंने महाराजसे ये दोनों वरदान स्वीकृत करवा लिये हैं और उनकी यही आङ्ग है।'

एक राज्यसुलभाभिवापी विविध आशाओंसे युक्त अधिकारप्राप्त उत्तरके लिये यह आङ्ग महान् भयानक दर्शन-सदृश है परन्तु श्रीभगवान् रामचन्द्रका परम शान्त स्थिर और सुसमाद्वित बदल-कलमपर जिसको राज्याभिषेकके भावी सुखकी आशा हर्षोत्सुख नहीं कर सकी थी, इस आङ्गको मुनकर भी किञ्चित् भी छोड़, शोक और डहेगकी दिलावटी रेखा भी नहीं सिंची। श्रीभगवान्ने परम प्रसन्नभावसे समता और धीरताके साथ अनायास ही कहा कि 'माता, सहर्ष आङ्गका पालन किया जायगा।'

बाल्यकालमें ब्रह्मचर्यवत् पालनके समय श्रीभगवान् ने गुरु विशिष्टके द्वारा नामरूपात्मक ग्राहकीकृत संसारकी असारता और चक्रभंगुरता एवं आरमाकी ही सचिदानन्द-स्वपता रूप दिव्यज्ञानको प्राप्त कर लिया था। वे वैराग्य और आलयकी उत्तम सीमापर पहुँचे हुए थे कि आज राज्यसिंहासनके बदले बनवासकी आकस्मिक आङ्ग, राज्यभोगके स्थानमें भिद्धाटनको विवर्ति उनके निष्पत्ति प्रशान्त और प्रसन्न चित्तको तनिक भी विचक्षित और हुँसित नहीं कर सकी। भगवान् ने 'समर्तं योग उच्यते' को चरितार्थ कर दिलाया। इस समाचका मानसमें क्या ही यथार्थ वर्णन हैं !

प्रफुल्तां यो न गताऽभिपक्तः।

तथा न मम्लं बनवासदुःखः।

मुक्षाम्बुजं श्रीरघुनन्दनस्य

सदासु मे मञ्जुलमञ्जुलप्रदम्॥

सत्य

श्रीभगवान् आदर्श मातृ-पितृ-भक्त तो थे ही, साथ ही आप आदर्श सत्यवादी थे, आपने हँसी-मजाकमें भी कभी असत्य भावण नहीं किया। 'रमोदिनांभिभापते' की उक्ति लोकप्रसिद्ध है। असत्य तो दूर रहा, भगवान् ने कभी कुभाय भी नहीं किया—

न वेति रामः परुषाणि भाषितुम्।

सत्यके सम्बन्धमें भगवान् ने स्वयं कहा है कि 'हे सीता ! मैं मुनियोंके समीप जो प्रतिज्ञा कर लुका हूँ उसे जीते-जी कभी भंग नहीं कर सकता, क्योंकि सदासे सत्य ही मेरा हृष्ट है। मैं तुम्हारा, खण्डमध्यका और श्रावणोंका भी परित्याग

कर सकता हूँ किन्तु अपनी सत्य प्रतिज्ञाका परिवारग नहीं
कर सकता । (वा० रा० २।११।७-८)

क्षमा और तेज

जब राजा विश्वमित्रने अन्यायपूर्वक महर्षि वशिष्ठसे
युद्ध करना चाहा तब वशिष्ठजीने युद्धको आवाय-धर्मके
विश्वद समझ अपने सामने पक ब्रह्मदण्ड गाढ़ किया, जिससे
टक्का-टक्काकर विश्वमित्रजीके ब्रह्माच र्यवन्त सभी शब्द
व्यर्थ हो गये । इसपर उन्होंने चात्रवलको विकारते हुए
और ब्रह्मतेजके बलको सराहते हुए कहा था—

विवलं क्षत्रियबलं ब्रह्मतेजो बलं बलम् ।
एकेन ब्रह्मदण्डन सर्वाक्षाणि हतानि भं ॥

यह ब्रह्मदण्ड व्यथार्थमें स्माका ही नाम है, जो इस
समाके दण्डको धारण करता है उपर परिणाममें शत्रुके
समस्त आघात व्यर्थ होते हैं । जिम समय आवायकुलोत्पन्न
श्रीपरशुरामजीने अन्यायके वशवर्ती हो धनुष-भंगके लिये
भगवान्के प्रति व्यर्थ कोध प्रकट किया था और जब
भगवान्ने उसके उत्तरमें बड़ी नम्रताके साथ स्माका वर्ताव
किया था उस समय वह उच्च ब्रह्मतेज विनश्च चात्रतेजसे निरन्तर
हो गया और उसने अन्याय और कोधके कारण परशुरामजीका
परिवारग कर दिया । इससे यह सिद्ध होता है कि
सत्य, व्याय और समा ही व्यथार्थ बल है । आवाय, क्षत्रिय,
वैश्य या शूद्र कोई भी क्षर्णों न हो जिसके अन्दर ये गुण
हैं वही व्यथार्थ बलवान् है । दण्डकारायणके अधियोंने
भगवान्से कहा था कि हमलोगांमें शापके हारा हायारे
राखसोंके विनाश करनेका शक्ति है पर हमलोग उनके हारा
भड़क किये जानेपर भी उनका नाश इसीलिये नहीं करते
कि कोध करनेसे हमारे तपकी हानि होगी जो हम किसी
प्रकार नहीं चाहते—

वहुविश्वं तपो नित्यं दुश्चरश्वं ग्रन्थ ।
तेन शापं न मुच्यामा मध्यमानश्च राक्षसः ॥

ब्रह्मन्तर्य

स्त्रियोंमें मर्वप्रथम अहल्याने ही गौतम-बेण्यारी इन्द्रके
साथ जान-बूझकर व्यभिचार किया, जिससे इमप्रकारके
दुष्कर्मके प्रचार-भयये ही महर्षि गौतमने शाप देते हुए
कहा—

अयन्तु मातो दुर्बुद्धे ! यस्त्वयेद् प्रवर्तितः ।
मानुषेष्वपि नेत्रेणु गमिष्यनि न संशयः ॥

‘हे दुर्बुद्धे ! तुमने इस लोकमें जो यह गहिरभाव
प्रवर्तित किया, तुम्हारे इस दोषके कारण मनुष्यलोकमें
इस दुर्भावका विस्तार हो जायगा इसमें कुछ संशय नहीं ।’
इससे यह सिद्ध होता है कि प्रत्येक व्यक्तिके गुण-दोषका
प्रभाव समाजपर पड़ता है । एकके दुष्कर्मको देखकर अनेक
लोग दुष्कर्म करने लगते हैं और सुकर्मको देखकर सुकर्ममें
प्रवृत्त होते हैं ।

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी आदर्श गृहस्थ ब्रह्मचारी और एक-
पक्षीवत्तमें रहते थे, इन्होंकी भाँति सीताजी भी आदर्श पतिव्रता
थीं, इन दोनोंके समान कोई न हुआ न होगा । इसी कारण
श्रीभगवान्के हारा अहल्याका शाप-मोचन हुआ ।

अनुक्रम्या

श्रीभगवान्का समूर्धं जीवन दयामय और परहित-
सम्पादनसे पूर्ण है । आपने अपने ऊपर अनेक कष्ट सहकर
दूसरोंका हित किया । अधियोंकी यज्ञ-रक्षा, श्रीसीताजीके
लिये गुरकी आज्ञासे धनुष-भंग, सत्यकी रक्षाके लिये दन-
गमन और लचमण-स्थाग, धर्मकी रक्षाके निमित्त राजस-वध,
पानिवन्न-धर्मकी रक्षाके लिये सीता-स्थाग, वार्षक्यमें सुनि-
वास ग्रहण और अन्तमें समल नगरवासियोंको साथ लेकर
परमधारमें प्रयाण आदि सभी कार्य त्यागमूलक परोपकार
हैं । श्रीभरतजीने यथार्थ ही कहा था—

दुष्क्रिकामो हि लोकस्य सर्वमृतान्मुक्तपः ।
मतः प्रियतरो लोके पर्जन्य इव वृष्टिमान् ॥
(वा० रा० २।१।३६)

मेरे राम सब लोगोंकी हित-कामना करनेवाले हैं ।
मेरकी भाँति चारों ओर दयाकी वृद्धि करके वे मेरी आपेक्षा
भी लोगोंके अधिक प्रियतम बन गये हैं ।

इष्टदेवोंकी प्रकल्पा

श्रीभगवान्ने स्वयं साक्षात् विश्वं होकर भी मसुद्रके
सेतुपर श्रीशिवजीकी रथायना कर यह सिद्ध कर दिया कि
सभी इष्टदेव यथार्थमें एक ही हैं, भिन्न नहीं । अतएव किसी
भी इष्टदेवकी निन्दा, अनादर एवं अब्द्या करना प्राप्त है ।
श्रीभरतजीने अपनेको श्रीरामके बनकास भेजनेमें कारण
होनेके दोषसे मुक्त सिद्ध करनेके लिये श्रीकौमल्याजीके
सामने शापय की थी—

मवत्या विवदमनेषु मार्गमात्रियं पदमतः ।
तेन पापेन युज्येत यस्यार्थेऽनुमते गतः ॥
(वा० रा० २।७।५५०)

अपने हृष्टदेवकी भर्तिके कारण जो अन्य हृष्टदेवके अनुयायीके साथ विशाद करते हैं और उनको निहृष्ट बतलाते हैं ऐसे जोगोंको जो पाप लगता है वही पाप मुझको हो, यदि मैं आर्य श्रीरामके बनवासका कारब होऊँ ।

राम-राज्य

आखीकि रामायणके बालकारण और रामचरित-मानसके उत्तरकारणमें राम-राज्यके सुशशक्ति विस्तृत वर्णन है । वही कहा गया है कि सब जोग परम सुखी थे । रोग, शोक, आतङ्क, अकालदृश्य, विषसि आदि बाचार्ये छिसीको नहीं होती थीं । सब अपने अपने घरमें इस थे, 'यथा राजा तथा प्रजा ।'

यही इस राम-राज्यकी उत्कृष्टताका कारण था । यिद्यान्त यह है कि अधिपति अथवा नायकके आचरण और भावोंका उत्तम अथवा दुष्ट प्रभाव आभितोंपर अवश्य पड़ता है । अतएव देशके स्वामी, ग्रामके अधिपति, धरके मालिक, भूर्खोंके प्रभु, समाजके नेता, घरमें आचार्य, बालकोंके शिक्षक, ग्रामके पुरोहित और न्यायालयके शासक आविके उत्तम आचरण और व्यवहारसे उनके आभित और सम्बन्धों उत्तम तथा निहृष्ट आचरण और व्यवहारसे निहृष्ट होंगे । समाजके हानि-कामके क्षिये इनपर बहुत बड़ा दायित्व है । भगवान् श्रीरामचन्द्र इस दायित्व सम्पादनके परम आदर्श हैं । अतएव इस सबको श्रीराम-राज्यका आदर्श अपने सामने रखना चाहिये ॥

सबसे बड़ा राम-नाम

(लेखक—श्रीयुत के० बार अन्ना)

इस पदार्थोंमें भूमयदल सबसे बड़ी वस्तु है, परन्तु हिन्दूधर्मशास्त्रके अनुसार शेषनाम इससे भी बड़े हैं क्योंकि उन्होंने इसको अपने फलांपर उड़ा रखना है ।

शेषनामजीसे बड़े शंकर हैं क्योंकि वह शेषजीको अपने हाथ था गजोंमें कङ्कण या हाररूपसे भारत किये रहते हैं ।

शंकरजीसे भी बड़ा कैलास पहाड़ है क्योंकि शिवजी उत्तर निवास करते हैं ।

कैलाससे बड़ा रावण है, क्योंकि उसने दिव्यज्ञयके समय महान् कैलासको अपने बाहुबलसे लुढ़ा दिया था ।

रावणसे बड़े बालि हैं क्योंकि उसके पुत्र अंगदने शिशु अवस्थामें ही रावणको खिलौनेकी भाँति पलनमें बाँध

रखा था, और स्वयं बाली उसे पूँछमें लटकाये बूमा करते थे । दूसरी कथामें यह भी कहा है कि रावणको बालिने महीनों अपनी काँचामें रखा था ।

बालिसे अधिक प्रतापी रामका वह वाया है, जिसने बालिका संहार किया ।

बालासे बड़े महाराजा राम हैं, जो उस बायको आरण करते हैं ।

रामसे भी अधिक शक्तिमान् प्रतापी और महान् श्रीराम-नाम हैं क्योंकि उसके बरामें राम हैं जो भक्त नियम और निष्ठापूर्वक श्रीराम-नामका जप करते हैं, उनके हृदयमें भगवान् श्रीराम सदा सेवककी भाँति निवास करते हैं । इसीसे श्रीराम-नामका महत्व समझ लीजिये ।

रामायण

चार घाट भव-ताप-हरण, निर्मल-जल सर है ?

लिये अमृत-भण्डार, कहो क्या अजर अमर है ?

भरा चिन्तुमें सिन्धु, भक्ति क्या हरिको प्यारी ?

विविध ज्ञानका स्रोत, कृष्णकी गीता प्यारी ?

जग-जीव-मात्र-कल्याण-रत, पञ्च सुरुचि 'कल्याण' कृत ?

नहि भक्ति-अमर-गीता प्रभृति, रामायण तुलसी-रचित ॥

रामपल्टसिंह 'मधुर' पम० ५०, पम०आर० ५० पस०

* पण्डित श्रीभवानीशंकरजीकी आवा और उपदेशानुसार लिखित ।

राजनीतिज्ञ वाल्मीकि

(लेखक—‘महाराष्ट्रीय’ ४)



हर्षि वाल्मीकि आदिकविके नामसे प्रसिद्ध हैं, राजनीतिज्ञके नामसे नहीं। इसलिये ‘राजनीतिज्ञ वाल्मीकि’ शीर्षक देखकर पाठक चकित हो जायेंगे और समझेंगे कि वाल्मीकिके नामपर हम कोई कल्पित बात लिख रहे हैं। बस्तुतः उनके नामपर विकलेवादी व्याख्यात्से अधिक होनेकी कथा निराधार होनेपर भी लोगोंको उसपर अदा है और उनकी कियातिका राजनीति साधार होनेपर भी लोगोंमें उसकी कोई कल्पना भी नहीं है— यह वह आश्रयकी बात है ! पर इसका दोष लोगोंपर ही क्यों छराया जाय ? उनकी राजनीतिक कियातारा इतनी गुप रीतिसे बढ़ी है कि यह कार्य उन्होंने किया था इसके बे साधार ये, इसकी कल्पना उनके समयमें भी किसीको नहीं हुई थी, तब वीक्षेसे कोई इस भेदको कैसे बानता ? रामायणमें इस राजनीतिका उहेका स्पष्ट शब्दोंमें कहीं नहीं मिलता, अतः सरसरी तौरपर पदनेवाले पाठकोंके व्यानमें यह बात नहीं आती। किन्तु सूक्ष्म इटिसे अध्ययन करनेपर इसका अनुभव हो जाता है। महर्षिने यह कार्य किसीनी सतर्कतासे किया, इस बातकी व्याध्य कल्पना होनेपर उनके काव्य-रचना-कौशलकी अपेक्षा उनकी राजनीति-कुशलतापर विशेष आदर उत्पन्न हुए बिना नहीं रहता।

महर्षि वाल्मीकि रामायणकी रचना करनेमें क्यों प्रवृत्त हुए, इसका संचित वृत्तान्त रामायणके ग्राममें दिया गया है। बस्तुतः राजनीतिक इटिसे ही उन्होंने इस काव्यकी रचना की—यह बात, उन्होंने जिस समय इस काव्यकी रचना की थी उस समयपर इटिपात करनेसे, समझमें आ जाती है। यह कथा तो प्रसिद्ध ही है कि ओरामने अब खोकायादके कारण अपनी पत्नी सीताकी लागा कर दिया, तब वह महर्षि वाल्मीकिके आश्रममें रहने लगी, तथा वही उसने दो पुत्र प्रसव किये, रामायणकी रचना करनेपर महर्षिने उसे उन दोनों पुत्रोंको यकाया। यक्षयासुरके

बधके द्विये मधुपुरकी ओर आते समय शबूत भारतमें महर्षिके आश्रममें जिस दिन डहरे, उसी दिन रातको सीताके दो पुत्र हुए (७। ६६। ३)। इसके ढीक बारह वर्ष बाद जब वहाँसे औटरोंसे समय शबूत पुनः आश्रममें डहरे तब उन्होंने खब-कुशके द्वारा रामायणका गान अवश्य किया (७। ७१। १-१६)। इससे पता जगता है कि रामायणकी रचना महर्षिने हसीके बीचके समयमें को थी। सीताको रामने स्वाग दिया, वह वाल्मीकिके आश्रममें आकर उन्हें जानी और वाल्मीकिने उपरे अपने आश्रममें आश्रय दिया, तभीसे वाल्मीकिके राजनीतिक कार्यका ग्रामम हुआ। क्योंकि सीताके सर्वथा निर्दोष होनेका लोगोंको विश्वास दिखाकर उसके दिव्यत्व सिद्धिका संयोग लगानेके लिये उन्होंने जो सफल कार्यवाही की, उससे यह स्पष्ट है कि उन्होंने अपने भवमें इस कार्यका भार अपने उपर समझ किया था। सीता एक राजत्वका भी है इस बातके आवनेपर भी महर्षिका उसे आश्रय देना निःमन्देह वह ही चैर्य और साहस्रका कार्य है, परन्तु उनका अगला कार्य इससे कहीं अधिक महत्वका है। महर्षिको यदि इस महान् कार्यकी जिम्मेदारीका भान न होता तो रामायण-रचनाका योग आता या नहीं, इसमें सन्वेद है। सीताके आश्रयके सम्बन्धमें लोगोंमें जो अम फैल चुका है उसे किसी भी तरह दूर करना होगा—इस समय महर्षिके सामने वही एक विकल समस्या उपस्थित थी। यह अम कितना प्रबल था इसकी कल्पना महर्षिके उन उद्गारोंसे की आ सज्जी है जो उनके मुखसे, सीताको आश्रमवासिनी अविधियांके हाथ सीपते समय निकले थे। महर्षि कहते हैं—

स्नुका दशरथस्यैषा जनकस्य मुता सती ।

अपापा पनिना लक्षा परिपाल्या ममा सदा ॥

इमं भवत्यः पश्यन्तु मन्देहन परमेण हि ।

गौरवान्ममवाक्यात् पृज्या वोऽस्तु विशेषतः ॥

(वा० रा० ७। ४९। १८०-१९)

१ आपने मठाईमें ‘रामायण समालोचना’ नामक बहुत हा उपयोगी और नव्यपूर्ण ग्रन्थ लिखा है। आचार्य प० महावीर-प्रसादत्रा द्विवेदीने इस अन्यकी बहुत प्रशंसा की है।—सम्पादक

कल्याण



रामायण-शिक्षा ।

पावन आश्रम वीत्र विगजे शालमीकि मुनि ज्ञान निधान ।
सिखलाने हैं ल्य-कुशको मुर-ताल सहित रामायण-गान ॥

Lakshminibhas Press Ltd., Cal

बहीपर महर्षिके सीताके विष्णुप दोनेकी बात कहकर 'मेरे शब्दोंको मानकर' अर्थात् यैं कहता हूँ इसलिये इससे स्मृत्युवाच रख्लो-ऐसा कहा है। सीताके विषयमें वहाँ यदि किसीको कुछ शंका थी तो महर्षिने उसको अपनी जिम्मेशारी-पर विश्वास दिकाया। आश्रमवासी जी-पुरुषोंका महर्षिके वचनोंपर विश्वास होना स्वाभाविक ही है, इसलिये उन्होंने मान किया। परन्तु अयोध्या या राम-राघवकी समस्त प्रजाके विश्वास सम्बद्ध करनेका क्या उपाय था? सीताके सम्बन्धमें शंका उपस्थित करना अन्यथा था, अपराजित था और ऐसा करनेवालेको श्रीराम दण्ड दे सकते थे परन्तु उन्होंने दूरवर्षितासे अपने अधिकारका उपयोग नहीं किया। महर्षिके हाथमें तो यह अधिकार होना सम्भव नहीं था। सुतरां सीताकी सव्वरित्रताका खोगोंको विश्वास दिलानेके लिये उनके अरित्र-प्रसार करनेका विचार ही महर्षिके मनमें आया। महर्षिका उद्देश्य सीताकी सव्वरित्रता बतलाना था परन्तु सीताका चरित्र रामपर अवलम्बित था और रामने सीताका स्वाग कर दिया था। महर्षिके मनमें रामके प्रति अर्थन्त आदर था। अतः उन्हें कुछ कात्तक रामचरित्रका ही व्याप लगा रहा। वेदोंकी छन्दोरचना उनकी इष्टिमें थी अतएव उन्होंने वैसी ही रचना करके श्रीरामचरित्र-वर्णनका विचार किया। महर्षिकी ये बातें रामायणमें या अच्युतकी अन्यमें स्पष्ट-रूपमें नहीं लिखी हैं परन्तु ये इतनी सहज हैं कि कोई भी अनुमानसे इनकी सत्यताकां मान लेगा। इसप्रकार जब महर्षि रामचरित्र-वर्णनके विचारमें रत थे, तब एक दिन नारदमुनि उनके आश्रममें आ पहुँचे। महर्षिने उनसे पूछा—

कौन्त्सिमन् सामप्रतं लोके गुणवान् कश्च वीर्यवान् ।

(वा० रा० १।१२)

महर्षि-वर्णित गुणोंका संग्रह तो बहुत बड़ा है। इस समय हमें उससे कोई प्रयोगन नहीं है। महर्षिके दूसरेका तात्पर्य यह है कि असुक-असुक गुणोंसे युक्त पुरुष इस समय पृथ्वी-पर कौन है? प्रभ अस्यहै। उन्होंने इस प्रश्नमें न तो कहीं रामका नाम लिया है और न उसका कुछ अस्पष्टरूपसे ही उल्लेख किया है। इस प्रश्नके उत्तरमें नारदने संचेपमें रामचरित्र सुनाया। नारदके चले आनेपर महर्षि स्नान करनेके लिये तमसा-सीरपर गये। उसी समय क्लौञ्च-वधकी घटना हुई और महर्षिके मुखसे शापके लियित शोकमयी वाणी निकली। कहना नहीं होगा कि रामचरित्रमें मन लगा

रहनेके कारण ही महर्षिने नारदबीसे उपर्युक्त प्रस किया था। महर्षिके मनमें रामचरित्रके छन्दोरच उनके कल्पना थी, हमने यह अनुमान क्लौञ्च-वधके लिये व्यापको दिये गये छन्दोरच शापसे किया है। सीताकी दयनीय दशा देखकर महर्षिका अस्तःकल्प जैसे ब्रवित हो रहा था, उनकी वैसी ही दशा क्लौञ्च-वधपर शोक करती हुई क्लौञ्चीको देखकर हुई। हमने उपर्युक्त शोकसे ही उनके मनमें छन्दोरचनाके लिये संकल्प होना अनुमान किया है। यद्यपि रामचरित्रमें यही कहा गया है कि यह शोक उनके मुखसे सहज ही निकल गया था और ऐसा होना वस्तु-स्थितिके अनुसार सम्भव ही है। परन्तु यह भूलना नहीं चाहिये कि छन्दोरचनाकी ओर उनकी जो प्रवृत्ति वह रही थी, वह उसीका परिणाम था, यह बात भी उतनी ही सम्भव है।

इसके बाद महर्षिने बालकायणके पांचवें सर्गसे युद्ध-काचडासक रामायणकी रचनाकर यह काम्य लव-कुशको पदाया। बालकायणके प्रस्तावनारूपमें प्रारम्भके बो चार सर्ग हैं वे महर्षिने ग्रन्थ-पूर्तिके समय लिखे थे, यह स्पष्ट है। पांचवें बहुतसे स्थानोंपर पीछेसे लिखाया हुआ प्रसिद्ध भाग है, उसका विवेदन इस 'रामायण-समालोचना' नामक मराठी ग्रन्थके एक स्वतन्त्र प्रकल्पमें कर चुके हैं। कहनेका मतलब यह कि जो मूल काम्य था वही महर्षिने लव-कुशको पदाया। इसके बाद यह प्रभ सामने आया कि इस काम्यका प्रचार कैसे हो? लववासुरको मारनेके बाद जब बारह वर्षके उपरान्त, शशुद्धजी शौटकर अयोध्या जाते समय पुनः महर्षिके आधारमें ढहरे, तब उन्होंने लव-कुशके हारा अपने सैनिकों सहित रामायणका गान सुना, जिससे उन सबको बड़ा ही आनन्द हुआ। दूसरे शब्दोंमें हम यों कह सकते हैं कि इसप्रकार यहाँ महर्षिके काम्यकी प्रथमावृत्ति एक ही साथ विक गयी और उन्हें दूसरी आवृत्ति निकालनेके लिये अधिक उत्साह मिला।

सीताके निष्पाप आचरणकी कथा लोगोंमें उसके अरित्र-प्रचार हारा विस्तृत करनेके उद्देश्यसे ही महर्षिने रामायणकी रचना की थी, हमारे इस अनुमानकी स्थिता रामायणकी रचनापर सूझ दृष्टिसे विचार करनेवालोंके ज्ञानमें तुरन्त या जायगी। रामचरित्रपर विशेष प्रकाश दालनेवाला भाग है अयोध्याकायण। रामके पराक्रमका वर्णन युद्धकायणमें है। सीताके वयार्थ अरित्रका सीता-हरयासे ही प्रारम्भ होता है और यह कथा अरथकायणमें है। यह कथा महर्षिने पूरे

विस्तारके साथ कथन की है। इस कथाका विस्तार सुन्दर-काव्यमें सीता-हनुमान्-भेट और सीता रावणके सम्बन्धव्य दोनों ही अवसरोंपर अत्यन्त स्पष्ट दीख पड़ता है। सीताके उच्च चरित्रको व्यक्त करनेवाली प्रत्येक वातिका महर्षिने उल्लेख किया है, यहाँतक कि सीताने रावणसे बातचीत करते समय तिनकेकी ओट कर ली थी ‘रुणमन्तरतः कृत्स्ना’ (३।५६।१ तथा ५।२।१२), सामान्य समझ करके महर्षि इसप्रकारकी घटना तकका वर्णन करना भी नहीं भूले। यह सत्य है कि रामायणमें श्रीराम और सीता ही प्रधान पात्र थे अतः उनके चरित्रका विस्तारसे वर्णन करना उनके लिये आवश्यक था, तथापि श्रीगाम-चरित्रका चित्रण करनेमें महर्षिने अपनी कृतिमें उनके समस्त गुणोंपर जैसा प्रकाश ढाला है वैसा सीताके चरित्र-चित्रणमें नहीं किया। सीताके चरित्र-कथनमें सो केवल उन्हीं बातोंपर अधिक प्रकाश ढाला है जिनमें सीताके लोकापवादके मिथ्या होनेमें लोगोंका विश्वास हो जाय। नायक-नायिकाके चरित्र-निरूपणमें इस विवेककी ओर इहि ढालनेपर पाठक इस बातको समझके जिना नहीं रहेगे कि रामायणकी रचनाके सम्बन्धमें इसने महर्षिके जिस हार्दिक उद्देश्यका अनुमान किया था, वह सुकियुक और ठीक है।

सीताके मिथ्या कलहको मिटानेके लिये महर्षिको प्रधानतः उसके होनोंपुरोंसे सहायता खोनी थी और वह जी भी गयी। सहायता पानेकी बोजना महर्षिने अपने मनमें किय प्रकार की, इसबातके जाननेका कोई उपाय नहीं है। किन्तु लब-कुशके कुछ समझने लगने ही यह बोजना की गयी थी, इसमें अन्देर नहीं। कहाविन् यह कल्पना महर्षिके मनमें पीछेसे आयी हो तथापि उस समय लब-कुशको अपने अधिकारोंका, और गमये उनका पिना-पुत्रका सम्बन्ध है इस बातका पना न लगाने देनेके लिये महर्षिने बड़ी सन्तर्कानासे काम लिया, वही आगे चलकर उनके लिये बड़ी उपयोगी हुई, यह स्पष्ट है। दोनों राजकुमारोंके साथ बनवासी शिष्योंके सहयोगव्याहार करके महर्षिने जो क्षुरता विवरणी, उसीमें उनकी शब्दनीनिहता भरी है।

यह सो स्पष्ट ही है कि देवी सीताकी धीरता असीम है। महर्षिको अपनी नहीं बोजनाके सफल करनेमें सीताकी सहायता यूर्हरूपसे प्राप्त है। इस बातको मिद करनेके लिये प्रगाणोंकी आवश्यकता नहीं है। रामायण-रचनाके अवसर महर्षि उसके प्रचारक कीर्ति द्वारा रहे थे।

श्रीरामके अथमेघकी बोजनासे महर्षिकी बहुत दिनोंकी मलोकामना सफल होनेका अवसर अनायास ही आ गया। यज्ञ-समारूपके लिये विविध देशोंके भर-परिषदों और अधिकारियोंको निमन्त्रण भेजा गया। तदलुसार महर्षिको भी निमन्त्रण मिला और वे अपने शिष्योंको साथ से अपोद्या पहुँचे। अपोद्याके बाहर ही कहीं देरा ढालकर महर्षिने लब-कुशको कार्यसिद्धिके लिये अपोद्यामें जाकर धर-वर रामायण गान सुनाने हुए फिरमेही आज्ञा दी। आज्ञा देते हुए महर्षि कहते हैं—

अविवटेऽपुण्येष ब्रह्मणावसर्येषु ॥

रूपामु राजमार्गेषु पर्यन्तानां गृहेषु ॥

रामस्य भवनद्वारि यत्र कर्म च कुर्वते ॥

ऋत्विजामप्रतश्चेव तत्र गंयं विशेषतः ॥

(वा० रा० ७। ९३। १-७)

‘हे पुत्रो! अवियोंके पवित्र स्थानोंमें, आश्वासीकी बसीते गलियोंमें, मदकोंपर, राजमहलोंमें, अश्वेदिकार्थोंके द्वारपर और अवियोंके समीप विशेषरूपसे इस रामायणका गान करो!’

गमायण-रचनामें महर्षिका उद्देश्य ढेवल राजाको प्रमन्त्र करना होता तो वे लब-कुशको लीपे यज्ञ-महापरमें जाकर श्रीरामके सामने रामायण-गान करनेकी आज्ञा देते। यज्ञमें आद्विक-हृष्णके उपरान्त, भोजनोकर तथा इवमसे पूर्व पुरुष-गाथा सुननेकी विधि है। इसीके अनुमान उम समय यदि लब-कुशको भेजनेकी बोजना महर्षिने की हो। नी नो भजहीमें कार्य हो जाता। रामको सन्तुष्ट करके एवंतु धन लाभ करनेका यह निष्कर्ष और मरज मार्ग था परन्तु महर्षि धनके भव्य वर्षीय, उन्हें तो इस बातकी चिन्ता लग रही थी कि कौसे भीताका मिथ्यापवाद नह दो तथा सर्वसाधारणके हृष्णमें उसके प्रति आवश्यक भाव उत्पन्न हो जाय और उसके पुत्रोंको राज्यकी भासि हो। इसीलिये उन्होंने लब-कुशको रामायण गानेके लिये भगवत्ते भेजते समय जिन स्थानोंका विवरण कराया, उनमें गली, सड़क, अधियोंके आसप, आङ्गन और राजाओंके निवासस्थान आदिका ही निर्देश है। मारोहा यह कि महर्षिये वह बोजना रामायणके प्रचारकी ही इहिसे की थी। कल्पना-प्रसारके लिये ऐसी व्यवस्था बिशेष सुविभावनक हुआ भी करती है, इसमें हृष्णके फलकी प्राप्ति शीघ्र होती है। इसप्रकारके अनुभवोंका हृतिहासोंमें प्रचुर उल्लेख है और आज्ञा भी

यही अनुभव है। शिवाजी महाराजके समय समर्थ रामदास-स्वामीने महाराष्ट्रमें जो आगृति उत्पत्त की थी, उसका अधिक भेद स्वामीजीके उस शिष्य-सम्प्रदायको है जो 'मनका शोक' गाते हुए भावोंका प्रचार करते थे। इतिहासक हिसातको जानते हैं। उन्होंने अथवा उनके पहले और पीछे के महाराष्ट्रीय वारकरी-सम्प्रदायने इसप्रकार घूम-घूमकर भजन गाते हुए लोगोंमें धर्मजागृतिका कार्य वही उत्तमतासे किया। इस समय भी हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि गोरख-प्रशारक गण वाजारोंमें घूम घूमकर भजन गाते हुए जागृतिका कार्य करते हैं। महर्षिकी योजना भी इसी प्रकारकी थी। उस समय ऐसे लोग भी थे, जिन्होंने श्रीरामका चरित्र अँखों देखा था और रामके प्रति उन लोगोंके मनोंमें प्रेम तथा आदरका भाव भी पूर्णरूपते था। अयोध्याकाशडका गान सुनते ही इस प्रेम और आदरका दूना वह जाना कौन बड़ी बात है?

अयोध्याकाशडका वह कथाभाग क्रमके हिसाबसे प्रारम्भमें आया है और लब-कुशके मुखसे श्रोताओंको सबसे पहले वही सुननेको मिलता था। अँखों देखी बात वैसी की बैसी सुननेके कारण लोगोंके हृष्योंमें यह विश्वास जगना स्वाभाविक है कि कायदी कथामें कहीं भी सम्भवा अपताप नहीं किया गया है। यह विश्वास आगेके कथाभागपर सत्यता और विश्वसनीयताकी छाप लगानेमें विशेष उपर्योगी होता है, इसका अनुभव उस समय हो सकता है जब कि मधुपुरोंसे लौटते समय शत्रुघ्न मार्गमें महर्षिके आश्रममें ठहरे थे। शत्रुघ्न अपने साथी सैनिकों सहित लब-कुशके मुखसे रामायणका गान सुना, शत्रुघ्न केवल एक ही रात वहीं ठहरे, इनने अँदे समयमें लब-कुशने उन्हें कुछ ही सर्व सुनाये होंगे। परन्तु गान सुनते ही शत्रुघ्नके नेत्रोंसे अँसू उहने लगे और शरीरकी सुषिजाती रही। (वा० ७। ७३। १०) इससे सहज ही पता लगता है कि लब-कुशके हारा गाया जानेवाला कथाभाग अयोध्याकाशडका ही था। इस गानके मुखनेपर सैनिकोंकी जो उत्ता हुई थी, उसका कर्त्त्व उहनेपर अयोध्याकाशड-सम्बन्धी हमारा अनुमान और भी दूरतर हो जाता है। यह बर्थन इसप्रकार है—

पदानुग्रह ये राजस्ता श्रुता गीतिसम्पदम् ॥
अवाङ्मुखाश दीनाश द्वार्ष्यर्पिति आनुवन् ।
परस्परं च ये तत्र सैनिकः संबमापिरे ॥

किमिदं क च बर्तमः किमेतत्स्वप्रदर्शनम् ।

अयो यो नः पुरा दृष्टसमाश्रमपदं पुनः ॥

शृणुमः किमिदं स्वप्नो गीतबन्धमनुत्तमम् ।

(वा० रा० ७।७३।१८-२१)

'शत्रुघ्नके साथी लोग गान सुनते ही सिर मुकाबल दीनसे बन गये और 'आश्र्य-आश्र्य' पुकारने हुए परस्पर कहने लगे कि 'आरे यह क्या है? इमलोग कहाँ हैं, स्वप्न तो नहीं देख रहे हैं? जो बात हमने पहले आँखों देखी थी वही सुन रहे हैं। क्या यह स्वप्नमें तो नहीं सुन रहे हैं?' रामायणान सुननेपर उस समय साधारण जनताकी कैसी दशा होती थी, इसकी कल्पना करनेके लिये यहाँ पूरे शोक उद्भृत किये गये हैं। अन्तिम लोकोंमें सैनिकोंका यह उड़ार कि 'हमने जो बातें अपनी आँखों देखी थी टीक वही आज सुननेको मिल रही है' वहे ही महस्तका है। रामायणी-कथाका वह भाग जिसमें रामवन-गमनसे लोक अद्योत्ता लौट आनेतकका वर्णन है अर्थात् आरायकाशडसे युद्धकाशड-तकका वर्णन, अयोध्याके नागरिकोंमें किसीकी आँखों देखी घटना ग्राहः नहीं है। उनका देखा हुआ कथाभाग तो बाल और अयोध्याकाशडमें ही है। इससे भी यह स्पष्ट है कि लब-कुशने जो गान किया था उसका अयोध्याकाशड होना ही अधिक सम्भव है।

इसी प्रकार अयोध्यामें भी लब-कुशने अयोध्याकाशडका गान किया होगा और उसे सुनकर लोगोंकी ऐसी ही दशा हुई होगी। राम-बन-वासके बादकी कथाएँ लोगोंको बीच-बीचमें इवह-उधरसे सुनायी पढ़ती थीं। अयोध्याकाशडकी कथा लोगोंकी जानी हुई थी। जब लोगोंने उसे टीक सिलसिलेकार सुना तब उनका, आगेको कथाके लिये भी इसी प्रकार ऐसा अनुमान होना कि वह भी ऐसी ही सत्य और सुन्दर होगी, और उसके जाननेके लिये जिज्ञासा बढ़ना स्वाभाविक था। अतएव किसीने क्या सुननेके लिये, किसीने सत्यान्वेषणके लिये और किसीने सीताका कथाभाव निमित्त लब-कुशको बहुत ही तंग किया होगा। किसीने कहा होगा कि 'जब रावण सीताके पास आया तब वह क्या करती थी?' 'वह उसे कैसे ले गया? इमें वह क्या सुनाओ?' दूसरने कहा होगा-'रावणने सीताको कहाँ रखा था?' 'उसमें और सीतामें क्या बातें हुईं? यह सुनाओ?' मतदब यह कि, उस समय ऐसे कितने प्रभ पूछे गये होंगे और गानके लिये

कितना आश्रह किया गया होगा, हसकी कल्पना सभी कर सकते हैं। इसप्रकार गान करने हुए बालक लब-कुशको यदि मूल लग जाय तो उसके निवारणके लिये महर्षिने उन्हें पहुँचे ही फल दे रखे थे तथा सर्वथा निस्तृह-भावसे प्रधार करनेके लिये आशा दी थी। प्रधारके लिये भेजते समय महर्षिने स्पष्ट ही कहा था—

तोमश्चापि न कर्तव्यः स्वल्पोऽपि घनवस्तुया ।
कि धनेनाप्रमस्थानां फलमूलाग्निनां सदा ॥
(वा० रा० ७।९।३।११)

‘युधो ! अनके लिये तनिक-सा भी लालच नहीं करना क्योंकि इम फल-मूलापर रहनेवाले आश्रमवासियोंको अन लेकर क्या करना है ?

गान सुनकर कोई धन देने लगे सो नहीं लोना, वहाँ महर्षिने यही कहा। निष्ठाम-प्रधारकी इहिये यही उचित था, पर साथ ही यह भी अवश्य रखना चाहिये कि निष्ठामताकी आवश्यकता महर्षिने कार्य-सिद्धार्थ नहीं बतायी है। हमलोग फल-मूलादि लालकर रहनेवाले आश्रमवासी हैं, अपनेको धनसे क्या करना है। उन्होंने अपनी निरपेक्षताका हेतु यही शराया है।

इससे क्या यह सिद्ध नहीं होता कि महर्षिने इस समय-तक उनसे हसी माननामे बरताव किया होगा। इसपर भी यदि महर्षिके सम्बन्धमें हमने जो अनुमान किये हैं, उनसे कोई सहमत न हों तो वह आगे के लोक देखें। इसप्रकार रामायण-गानका प्रधार होते रहनेमें लब-कुशकी कीर्ति श्रीराम-तक पहुँच आयगी और जिर दरवारमें रामायण-गानका सुप्रवर्त आवेगा, महर्षिका ऐसा अनुमान था और यही वह आहते थे। राजाके हारा दी हुई कोई भी वस्तु न लेनेके सम्बन्धमें उन्हें जिससे समझानेकी कोई आवश्यकता न थी परन्तु इस निस्तृहस्ताके कारण लब-कुशक हड्डी विषयहीन होकर रामकी अवश्य न कर दें। इसी शंकासे महर्षिने उन्हें सतर्क करते हुए कहा—

आदिग्रन्थि गेयं रथालभावशाय पार्विवम् ।

पिता हि सर्वभूतानां राजा मवति धर्मतः ॥

(वा० रा० ७।९।३।१५)

इसमें राजासे नज़राका बरताव करनेका उपदेश देते हुए उसका जो कारण महर्षि बताते हैं वह कितनी चतुरताका है। महर्षि कहते हैं—‘महाराजाका तनिक भी अपमान न करना क्योंकि राजा सब प्राणियोंका धर्मतः पिता है।’

श्रीराम लब-कुशके साक्षात् पिता हैं परन्तु महर्षि सीधी बात न कहकर उन्हें समझाते हैं कि राजा सब प्राणियोंके पिता हैं अतः वह तुल्हारे भी पिता है। इस प्रकारान्तरसे रामका पितृत्व समझानेमें मुनिने जिस युक्तिसे काम लिया, उसपर विचारकर इस कह सकते हैं कि इस विषयमें महर्षि कितने सावधान थे और लब-कुशको असली बातका पता न लगने देकर उन्हें किस प्रकारसे पाला था।

महर्षिकी योजनानुसार सभी संघोग एकत्र हो गये। यज्ञ-मरणहपरमें श्रीरामके सम्मुख लब-कुशका गान हुआ। नाना देशोंके नरपति, श्रावि तथा जनताने उसको सुना। इसप्रकार महर्षिने बड़ी चतुराईसे सीता-अपनावको समूल नष्ट कर दिया ! दोनों कुमारोंको आश्रममें पिताका पता नहीं लगने दिया और वहाँ उनकी सारी व्यवस्था साश्रारक विद्यार्थियोंकी भाँति की गयी। इसका कारण यह है महर्षिको इस बासकी शहदा थी कि इन तेजस्वी कुमारोंको इस बासका पता लग जाने पर कि निर्वोपा मानाको पिताने आग विद्या है, कोध अना सम्भव है। यह कौन कह सकता है कि यह शंका निराशार थी ?

बासमीकिकी योजनाके अनुसार सभी बातें हुईं, परन्तु मीकादेवी तुनः शरदपक्षे समय जो एक बार रामके सामने प्रगट हुई। बस, वह अन्तिम बारके लिये ही हुई। इसका कोई उपाय नहीं था, महर्षिने जिस कार्यको उठाया था वह सिद्ध होकर भी सुख-प्रवर्धनार्थी नहीं हुआ सथापि उन्होंने एक चतुर कल्पी पुरुषकी भाँति राजनीतिका यह एक दाव विद्याया था। इस विषयमें तो किसीका मतभेद नहीं होगा चाहिये।

रामायणसे परस्पर सहानुभूतिकी धृति

रामायण के बाहर हिन्दुओंका ही राष्ट्रीय महाकाव्य ही नहीं है, किन्तु उसमें यह विशेष गुण भी है कि वह अपने देशवासियोंके विचास तथा चरित्रका विचार अत्यन्त सत्प्रसापूर्वक विचासकर्त्तृहृष्में जाँचती है, इसका कह यह होता है कि उसके अनुशीलनसे यूरोपनिवासियोंके बहुतसे मिथ्या विचास और दुर्भाव जो इस सम्बन्धमें हैं, दूर होते हैं और दोनों जातियोंमें परस्पर सहानुभूतिकी हृदि होती है। —गीत्य

रामायण-पञ्चदशी

(च०—श्रीरघुनन्दनप्रसादिसहजी)

कर्म-प्रधान—

कर्म-प्रधान विस्व करि राखा ।
जो जस कर सो तस फल चाला ॥

अहिंसा—

परम धरम शुतिविदित अहिंसा ।
पर-निन्दा-सम अघ न गिरिंसा ॥

सत्य—

धरम न दूसर सत्य समाना ।
आगम निगम पुरान बखाना ॥

अस्तेय-ब्रह्मचर्य—

जननी-सम जानहिँ पर-नारी ।
धन पराय विष्टे विष भारी ॥

सन्तोष—

सरल सुभाव न मन कुटिलाई ।
जयालाभ संतोष सदाई ॥

भक्त-मूरुख्य-लक्षण परोपकार—

रामभगत परहितनिरत परदुख दुखी दयाल ।
भगत सिरोमनि भरततें जनि डरपहु सुरपाल ॥
परहित बस जिन्हके मनमाही ।
तिन्हकहुं जग दुर्लभ कछु नाहीं ॥

जीवात्मा-स्वरूप—

ईश्वर-अंस जीव अविनासी ।
चेतन अगल सहज सुखरासी ॥

नाम-माहात्म्य—

सोइ भव-तर कछु संसय नाहीं ।
नाम-प्रताप प्रगट कलिमाहीं ॥

सर्वार्पण और निष्काम भजन—

बचन करम मन मोरिगति भजन करहिं निःकाम ।
तिन्हके हृदय-क्षमलमहं करउं सदा विश्वाम ॥

शरणागत भक्तकी श्रेष्ठता—

सुनु मुनि तोहि कहउं सहरोसा ।
भजहि जे मोहि तजि सकल भरोसा ॥
करउं सदा तिन्हकै रखवारी ।
जिमि बालकहिं राख महतारी ॥

सतत-स्मरण—

कह हनुमत विष्टि प्रभु सोइ ।
जब तब सुमिरन भजन न होई ॥

संसार-भगवन्मय—

सीयराममय सब जग जानी ।
करौं प्रनाम जोरि जुग पानी ॥
सो अनन्य जाके असि मति न टरे हनुमन्त ।
मैं सेवक सचराचर छप-रासि भगवन्त ॥

निर्वाण-त्याग—

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउं निरवान
जनम जनम रति रामपद यह बरदानु न आन ॥

सन्तके लक्षण

विषय अलंपट सीलगुनाकर । परदुख दुख सुख देखे पर ॥
सम अमूलिरि पु बिमद विरापी । लोभमरण हरण भय लगी ॥
कोपलचित दीनपर दाया । मन बच क्रम भय भगति अमाया ॥
सबहि मानप्रद आपु अमानी । भरत प्रानसम मम ते प्रानी ॥
विगतकाम मम नामपरायन । सांति विरति विनाई मुदितायन ॥

सीतलता सरलता मही । द्विज-प्रद-प्रीति भरमजनयिती ॥
जे सब लच्छन बसहि जासु उर । जानहु तात संत संतत कुर ॥
सम दम नियम नीति नहि ढोलहि । परुष बचन कबहुं नहि बोलहि ॥
निन्दा अस्तुति उभय सम ममता मम पदकंज ।
ते सजन मम प्रानप्रिय गुनमंदिर सुखपुंज ॥

ज्ञान-दीपका स्पष्टीकरण*

(लेखक—साहित्यराजन पं० श्रीविजयानन्दजी विपाठी)

[ज्ञानदीप रूपक]

मूल

सुनहु तात यह अकथ कहानी । समुझत बने न जात बपानी ॥
ईश्वर अंश जीव अविनासी । चेतन अमल सहज सुखरासी ॥
सो मायावस भयउ गोसाई । बैध्यो कीर मरकटकी नाई ॥
जड़ चेतनहि ग्रन्थि परि गई । जदपि मृषा छूट कठिनहि ॥
तबते जीव भयउ संसारी । छूट न ग्रन्थि न होइ सुधारी ॥
श्रुति पुरान बहु कहेड उपाई । छूट न अविक अधिक अरुसाई ॥
जीव हृदय तम मोह निसेधी । ग्रन्थि छूट किमि पैरे न दंपी ॥
अस संजाग ईस नव करई । तबहुँ कदाचित सो निरुआरई ॥

टीका

१—सुनहु तात यह अकथ कहानी ।

समुझत बने न जात बपानी ॥

अर्थ—हे तात, यह अकथ कहानी, जो कहने और समझते नहीं बनती, उसे सुनो ।

सुनहु—इससे शिष्य (गालजी) का प्रश्न सूचित किया। ‘भयानिहि भक्तिहि अन्तर केना । सकल कहु प्रसु फालिकेता ॥’

तात—से भुग्याचिह्नजीने शिष्यपर प्रेम दिखायाया ।

यह अकथ—से भक्तिके साधनका सुकथ होना दर्शाया ।

वया—

‘भगतिके साधन कहीं बकानी । मुगम पंथ मोहि पावें प्रानी ॥

कहानी—से ‘अजातकाव’ दिखायाया कि हम जो कुछ कहते हैं सो कहानी है । कहानी सत्य नहीं होती, अतः यह भी पारमार्थिक न सत्य नहीं है । सत्य तो एकमात्र निविरोप प्राप्तको रिति है । जिसप्रकार शशके कभी शश नहीं हुआ, आकाशमें कुसुम नहीं हुआ, बन्धाको पुत्र नहीं हुआ, उसी प्रकार यह सब कुछ भी कभी हुआ ही नहीं, फिर

* सम्मान्य विपाठीजीने श्रीमाननके ‘ज्ञानदीपक-रूपक’ पर ‘मावप्रकाशार्थ’ नामक मुन्द्र टीका विस्यात गमायणी पं० श्री भूमिका अनुरोधसे लिखी है, उसका यह एक अंश है, इसमें पहली ८ चौपाईयोंकी टीका है, अगला भाग ‘कल्याण’ में कल्पा: प्रकाशित होगा । भूमिका और विपाठीजी-लिंगित परिचयात्मक दोहाष्टक पुस्तकरूपमें प्रकाशित होनेके समय छप सकेंगे । —सम्पादक

† सत्य दो प्रकारका होता है—(१)पारमार्थिक और (२) व्यावहारिक । पारमार्थिक विभ्या ही व्यावहारिक सत्य है ।

किसका बन्ध और किसका मोह ? जो विजापी पहला है सो अम है । उस अममें अंश-अंशी भेद न है और न हो सकता है । माया और उसके प्रपञ्चका उसमें स्पर्श भी नहीं है । यथा—

(१) ‘अनघ अद्वेत अनवद्य अज्यक अज अमित अविकार आनन्दसिधो ॥

(विनय प०)

(२) राम सविदानन्द दिनेमा । नहि तहौं मोह निसा लवलेसा ॥

सहज प्रकासरूप भगवाना । नहितहौं उनि विग्यान विहाना ॥

हृष प्रियाद उपान भगवाना । जीव धर्म अद्विति अभिमाना ॥

(३) यथ द्विरि तत्र नहि मंद माया ।

(विनय प०)

(४) जग नम बाटिका रही है फल फूलिरे ।

भ्रां ईसो धीरहर देलि तृ न भृलि ते ॥

(विनय प०)

शिष्यको संसार और बन्धकी प्रतीति होती है । उसे इस प्रपञ्चके समझने और इससे मुक्ति जाग करनेके लिये जिज्ञासा है, अतएव यह उसकी इहिके अनुसार, उसके समझनेके लिये निद्वपञ्चमें पहले प्रपञ्चका अध्यारोप करते हैं और फिर प्रपञ्चका अपवाद करके यथार्थ स्वरूपका उपदेश करते हैं, अतएव यह अध्यारोप-अपवादका उपदेश भी मिथ्या है । जिज्ञासाके पूर्वके साधनस्तुष्ट सब मिथ्या ही हैं । अतएव इस मिथ्या कथाको कहानी कहा । परन्तु इस कहानी सुननेवालेको सिद्धान्त-ज्ञान होता है, ज्योंकि कहानीकी समाप्तिपर कहेंगे कि ‘कहो ज्ञान-सिद्धान्त तुमाई’ । अतः साधनस्तुष्टसे ममता-ममके नहि होनेपर ही इस कहानीके कहनेका भी विचान है, यह कहानी यदि

'ममतारत'से कही जायगी, तो उसरमें बीज बोलेकी भाँति
व्यर्थ होगी, यथा—

'ममतारत सन ग्यान कहानी।'
'उसर बीज वपु फल गया।'

समुक्षत बनै न—समझते नहीं बनता। भाव यह कि
निर्गुण ब्रह्म और गुणमयी मायाके संयोग-वियोगका इसमें
बदलन है। निर्गुण ब्रह्म व्यवहार नहीं है, जाना वही जा सकता है
जो चेतन हो, स्वयं द्रष्टा कैसे जाना जाय? और द्रष्टा ही
ब्रह्म है, अतएव वह नहीं जाना जा सकता, यथा—

जगेपहन तुम देखनहोरे। विधि-हरि संभु नचावनहोरे॥
तेठ न जानहि मर्म तुम्हारा। और तुमहि को जाननिहारा॥

माया भी नहीं जानी जा सकती। वह तो अष्टन-
षट्नापटीयसी है, जो हो न सके उसीको कर दिलाना
मायाका काम है। यथा—

जो माया सब जगहि नचावा। जासु चरित लखि काढु न पावा॥

और संयोग-वियोग ब्रह्ममें बनता नहीं, यथा—'सपनेहु
योग-वियोग न जोके' अतएव यदि समझते बने तभी
आश्रय है।

न जात बहानी—बहानने भी नहीं बनता। भाव यह
कि उसको कहनेके लिये उपयुक्त शब्द ही नहीं मिलते, यथा—

केसब कहि न जाय का कहिये।

देखत तब रचना विचित्र अति समुक्ष मनहि मन रहिये॥
सून्य भीतपर चित्र रंग नहि बिनु कर लिखा चितरे।
धोप मिट्ठ न मरइ भीत दुख पाइय यह तन हेरे॥
कोउ कह सत्य झूठ कह कोऊ युगल प्रबल करि मानै।
तुलसिदास परिहरै तीनि अम तब आपन पहिचानै॥

(विनय०प०)

परन्तु वेदान्तके वाक्योंको गुरु-मुख्यारा सुनते-सुनते
अनुभव हो सकता है, यथा—

'बिनु गुरु होइ कि ग्यान।'
'अनुभवगम्य भजहि जेहि सन्ता।'

इस चौपाईसे 'नित्यानित्य-वस्तु विवेक' ह्यौं प्रथम
सांख्य बतखावा गया।

३५

२-ईश्वर अंस जीव अविनासी।

चेतन अमल सहज सुखराशि जीव

अर्थ—चेतन अमल सहज सुखराशि जीव
ईश्वरका अंश है।

ईश्वर—ईश्वर और ब्रह्ममें आवस्थामेदमात्र है, वस्तुभेद
नहीं है। ब्रह्मकी कोई आवस्था न होनेके कारण, जाग्रत्,
स्वप्न और सुशुप्तिकी अपेक्षा उसे तुरीय (चौथा) कहते हैं,
और उस अपेक्षाको भी छोड़कर उसे तुरीयातीत या केवल
तुरीय कहते हैं। यथा—'तुरीयमेव केवलम्' वही ब्रह्म जब
जगन्तके प्रकाशकृप्य अर्थात् मायापतिके रूपसे देखे जाते हैं,
ईश्वर कहताते हैं। यथा—

जगत् प्रकास्य प्रकासक राम्। मायाधीस ग्यानगुनवाम्॥

अस—उस मायापति ईश्वरका अंश। कहनेका भाव यह
कि ब्रह्म और मायाको छोड़ ही सब अपेक्षा है। पूर्ण ब्रह्मका
खण्ड नहीं होता। यथा—'यद्यपि एक अखण्ड अनन्ता।'
फिर भी मतिन-सत्त्वा-माया (ब्रह्मान) द्वारा उसके अंशकी
कृत्यना होती है, जिसे कृत्य या साक्षी कहते हैं। साक्षी
कृत्य भी ब्रह्म ही है, यथा—'प्रकृतिपार प्रभु सब उरवासी'
परन्तु जैसे महाकाश और घटाकाशमें कल्पित भेद है,
वैसे ही यही भी कल्पित भेद है। यथा—'मुमा भेद जयपि
कृतमाया।' अभिप्राय यह कि तूला-विद्याका आश्रय साक्षी
कृत्य है, और मूला-विद्याका आश्रय साक्षी ब्रह्म है।
प्रत्येक व्यक्तिमें तूला-विद्या मिल भिज है, और समष्टि-
भूता मूला-विद्या एक ही है। तूला-विद्याके भेदसे उसके
साक्षी-कृत्यमें भेद माना जाता है। इसीलिये गोस्वामीजीने
'राम' से ब्रह्म, ईश्वर और कृत्य तीनोंका ग्रहण किया
है, क्योंकि एक ही तीन भाँतिसे प्रकाशित होता है।

जीव—मतिन-सत्त्वा-मायामें जब ब्रह्मका प्रतिविम्ब
पड़ता है, तो सत्त्वके मात्रिक्यसे अनन्त प्रतिविम्ब हो जाते
हैं, और उन प्रतिविम्बोंकी वह मतिन-सत्त्वा-माया ही देह
हो जाती हैं। वही देह कारब्धशरीर कहलाते हैं और
उनके अभिमानी जीव प्राण कहलाते हैं। मतिन-सत्त्वा-
माया, तूला-विद्या, अज्ञान, अहंकार, कारणशरीर और
नामरूपात्मिका ये सब पर्यायवाची शब्द हैं। गोस्वामीजीने
जीवकी मैले पातीसे उपमा दी है। यथा—

मूर्मि परत माडावर पानी। जिमि जीवहि माया लपटानी॥
परबस जीव स्वबस भगवन्ता। जीव अनेक एक श्रीकन्ता॥

अविनासी—अर्थात् जिस भाँति हँसर सद्गुप अविनाशी है, उसी भाँति जीव भी अविनाशी है, सदृप है। यथा—‘जीव निल (तैं केहि लगि रोवा)’

ज्ञेतन—अर्थात् अहंसे सम्बन्ध होनेपर भी प्रश्नान्वयन है, यथा—निज सहज अनुभवरूप (तब खल भूलि थौं आयो कहाँ)

अमल—यानी निर्मल कहनेसे वह दिक्षालाया कि अभी-तक (सुशुसितक) जीव ममतारूपी मलसे रहित है। गोस्वामीजीने ममताको मल माना है, यथा—‘ममतामल जरि जाय ।’

सहजमुखरासी—अर्थात् कारणशरीराभिमानी होनेपर भी आनन्दभोक्ता है। इसीसे कारणशरीरको आनन्दमय कोष कहते हैं। उसकी अवस्था सुशुसि है, यथा—‘अन मुख सोवत सोच नहि ।’

३—सो मायावस भयेउ गोसाई ।

बैध्यो कीर मर्कटकी नाई ॥

अर्थ—वह प्रभु मायाके वश हो गया, और शुक (सुरगे) तथा बन्द्रकी भाँति बैध्य गया।

सो गोसाई—वह प्रभु। प्रभुके अर्थमें ‘गोस्वामी, शब्द रामचरितमानसमें व्यवहृत है, यथा—

स्वामि गोसाईहि सरिस गोसाई। मोहि समान में स्वामि दोहाई॥

सो गोसाई जेहि विकिपति टेकी। इत्यादि—

प्रभु (कर्मकर्तुमन्यथाकर्तुमर्थः) है पर इस दशाको प्राप्त हो गया। यथा—

‘निष्काज राज विहाय नृप इव स्वप्र-करागृह परम्यै ।

(वि० ५०)

हँसरने तो केवल अगतको उत्पन्न किया, वह उसका भोक्ता नहीं है। भोक्ता तो जीव है, इसलिये जीवको प्रभु कहा। भोगकी कल्पना जीवकी है। उसीने जाग्रत्से लेकर मोक्षतक संसारकी कल्पना की है।

माया—सत्त रज और तमकी साम्यावस्थाको ग्रहणि कहते हैं, यही हँसरकी शक्ति माया कहलाती है, यथा—‘तो हरि माया मन गुनकानी ।’ व्रहासे पृथक् मायाकी सत्त है नहीं, इसलिये उसे सत् नहीं कह सकते, परन्तु उससे पृथक् मायाका कार्य दीर्घोचर होता है, इसलिये उसे सत्त भी नहीं कह सकते, अतएव माया अनिवार्यनीया है।

जहासे वह सर्वथा विकल्प है। जहा सचिवानन्द है, और माया मिथ्या, जह एवं दुःखरूपा है। मिथ्या, यथा—‘समुद्रे मिथ्या सोपि जड़’ यथा—‘जातु सत्यतासे जड माया।’ दुःखरूपा, यथा—‘एक दुष्ट अतिसय दुखरूपा।’ जिस प्रकार व्यवहारमें सत्यसे मिथ्या विलक्षण होते हुए भी, सत्यके आधारपर स्थिर रहता है, सत्यके बदलसे प्रकाशित रहता है और सत्यके शानसे बाधित होता है, वैसे ही पारमार्थिक मिथ्या (माया) भी पारमार्थिक सत्य (जह) के आधित, जहासे प्रकाशित तथा, जहासे विलक्षण है और जहाज्ञानसे ही उसका बाध होता है यथा—

दूष्टु सत्य जाहि बिनु जाने। जिमि भुजड़ बिनु रजु पहिचाने ॥।

जेहि जाने जग जाइ हेराई। जागे यथा सपन भ्रम जाई ॥।

तीनों गुणोंका वह स्वभाव है कि वे एक दूसरेको छोड़कर भी नहीं रह सकते, और एक दूसरेको दबाया भी करते हैं। अतः गुणोंके तारतम्यसे मायाके भी अनेक भेद हैं, जिनमें दो प्रधान हैं। शुद्ध-सत्त्वा-माया,—जिसमें रज और तमका ज्वेशमात्र है, विद्या कहलाती है, जगत्की रथनामें यही समर्थ है और मधिन-सत्त्वा-माया, अविद्या कहलाने-वाली जीवके बन्धनका कारण है। यथा—

तेहिकर भद्र मुनौ तुम दोऊ। विद्या अपर अविद्या दोऊ ॥।

एक दुष्ट अतिसय दुखरूपा। जेहि बस जीव परा मवकूपा ॥।

एक रचइ जग गुन बस जाऊ। प्रभु ब्रेरित नहि निज बह तांके ॥।

बस भेड़—मायाके वरामें हो गया। अघटन-घटना-पटीयसी मायाकी वह करामात है कि वह ज्ञायाङ्गारा विम्बको वशीभूत कर लेती है। यथा—

‘करि माया नमके लग गहरै ।’

‘गहै छाँइ सक सो न उडाई ॥’

अतः कृत्य, तूका-माया, और प्रतिविम्ब तीनों विद्य-कर जीव हुए, अब माया जो-जो और जैसा-जैसा नाम नाचती है, जीव वह और वैसा ही नाम नाचता है। यथा—

‘देका जीव नाचै जाई ।’

‘नाचत ही निमि दिनस भरयै ।

तबहीते न मयो यिर अबेत जीवन नाम भरयै ।’

बैध्यी—अर्थात् कृत्य प्रतिविम्बहारा मायासे बैध्य गया, जैसे जटाकारा जटाकाशाङ्गारा जलसे बैध जाता है। जिसप्रकार प्रतिविम्ब जटाके द्वारोंसे दूषित होता है, अब उसेंसे वज्रज होता है, उड़ानेसे उड़ाता है, गिरनेसे

गिरता है, दौड़नेसे दौड़ता है जिवान जलसे बैंध आता है। उसी प्रकार जीव भी मायासे बैंध-ना गया। परन्तु अकाल दबाहरण देनेसे किसीको जीवके प्रति अकाल सन्देह न हो तथा यह शक्षा न हो कि अज्ञान तो कोई रस्ती नहीं है जिससे कोई बाँधा जा सके, इसलिये कहा है कि—

'बैंध्यौ कीर मर्कटकी नाई'

कीरकी नाई—सुमोकी भाँति बैंध गया। मात्र यह कि बहेकिया दो तिहायाँ गाड़कर उनके सिरेपर एक तीसरी तिहायाँ बाँसकी नसी पहिना देता है, और उस तीसरी तिहायाँ बाँसकी नसी पहिना देता है, नीचे दाने रख देता है। सुमोको स्वभाव ऊँचेर बैठनेका होता है। अतएव वह वह वस्त्रेपर बैठकर दाना लेनेके लिये चुकता है, नसी धूम आती है, सुमा उड़ता लटकने लगता है। अज्ञानसे भयवश उसे कोइसा नहीं, अन्तमें बहेकिया आकर उसे पकड़ लेता है। विचार करनेसे यहाँ सुमोको अज्ञानके सिवा कोई दूसरा बन्धन नहीं है।

किसी महात्माने सुमोकी यह हुरेशा देखकर एक सुमा पाका और उसे लगे पड़ाने—'देखो ! सुमा ! दानोंका बोझ करके नलीपर न बैठना, और यदि बैठना तो उसके धूमनेपर निढ़र होकर उसे छोड़ देना।' जब सुमा पदकर परिषद्व हो गया तो उसे छोड़ दिया। उस सुमोका वाय सुनकर दूसरे सुमो भी बैसे ही बोझने लगे। महात्मा बड़े प्रसन्न हुए कि सभी सुमोको भय निवृत्त हो गया। परन्तु उनके आश्रयका कोई ठिकाना नहीं रहा, जब कि उन्होंने एक सुमोको उसीप्रकार उड़ता लटके हुए यह पढ़ते पाया कि 'देखो सुमा ! दानोंका बोझ न करना' इत्यादि। प्यवहार-कालमें (वाचक ज्ञानी) परिषद्तोंकी भी स्थिति मूलों-सी देखी जाती है। अतएव परिषद्तोंका अज्ञान-बन्धन यिसलानेके लिये 'कीरकी नाई' कहा।

मर्कटकी नाई—जानर भी ऐसे ही बैंधता है, उसके हाथ जानेलायक बेदवाजी कुशिहया दानोंसे भरकर जमीनमें गाढ़ दी जाती है। जानर उसमें हाथ डाककर मूढ़ीमें दाने पकड़ लेता है। जब मूढ़ी उसमेंसे नहीं निकलती तब बैंध आता है। छोभसे, अज्ञानसे मूढ़ी नहीं छोड़ता। अतः वह भी अज्ञानसे ही बैंधा है। यह मूर्ख होनेसे 'सुमा परिषद्'की भाँति मोष-शास्त्रका पाठ करते हुए वह नहीं है। मूर्खका बन्धन दिक्कानेके लिये 'मर्कटकी नाई' कहा।

इसी तरह जीव अज्ञान-बन्धनसे बैंधा हुआ है, हजार प्रथम करनेपर भी नहीं छूटता।

४—जड़ चेतनहिं ग्रन्थि परि गई।

जदपि मृषा छूटत कठिनहै ॥

अर्थ—जड़ चेतनमें गाँठ पड़ गयी, वह यद्यपि छूटी है पर छूटना कठिन है।

जड़ चेतनहिं—जड़-चेतन दोनों विल्द स्वभावाले पदार्थ हैं। एक अन्धकार है, तो दूसरा प्रकाश है। एक विषय है, तो दूसरा विषय है। एक मिथ्या है, तो दूसरा सत्य है। इन दोनोंमेंसे एकजा दूसरेमें अज्ञास (अम) होना, अथवा एकके धर्मका दूसरेमें अज्ञास होना मिथ्या है। यथा—

छिति जल पावक गगन समीरा। पंचरवित यह अथम सरीरा ॥

प्रगट सोतनु तब आगे सोआ। जीव नित्य तैं केहि लगि रोआ ॥

ग्रन्थि परि गई—गाँठ पड़ गयी अर्थात् तावाल्य हो गया। जड़में चेतनका अज्ञास होने लगा और चेतनमें जड़का। इस गाँठको किसीने बैंधा नहीं है। अनाविकालमें एकी हुई है। शिष्यको समझानेमें सुभीतेके लिये 'पड़ गयी' कहा। कारण्याशरीरमें जो चेतनका अज्ञास हुआ वही प्रतिविम्ब है, वही गाँठ है। यथा—

रजत सीप महँ भास जिमि, जशा भानुकर बरि ।

जदपि मृषा तिहुँ कारुमहँ, अम न सकइ कोउ टारि ॥

एहि विधि जग इरि आक्रित रहदै ॥

जदपि मृषा—यद्यपि गाँठ छूटी है, अममात्र है। मायाके साथ असंग छूटस्थका सम्बन्ध कैसा ? बटाकाशका जलसे सम्बन्ध केवल अमसे सिद्ध है। यथा—

जदपि असत्य देत दुख अहै ।

छूटत कठिनहै—छूटना कठिन है। किसीका हटाया यह अज्ञास नहीं हटता। क्या लोकका क्या बेकका, सब प्यवहार इसी अज्ञासपर टिका है। यथा—

'कर्म कि होइ सरूपहिं चीन्हे ॥'

५—तबते जीव भयउ संसारी ।

ग्रन्थि न छूट न होइ सुपारी ॥

अर्थ—जबसे जीव संसारी हो गया, तबसे न तो गाँठ छूटती है और न यह सुखी ही होता है।

तबसे—अर्थात् काकाका कोई निषम नहीं है, अनावि अन्धपरम्परासे। अनाविकालसे संसार ऐसा ही चला आता है। इसीको अविद्या-निशा कहते हैं। इसीमें स्वरूपाङ्गान अर्थात् सुखुमि होती है। हस अवस्थाके विभु ईश्वर हैं। अपरिच्छिक तथा असङ्ग होनेसे विभुमें अहङ्कारकी गाँठ नहीं होती, परिच्छिक और सङ्गी होनेसे जीवमें अहङ्कारकी गाँठ है। इसी गाँठमें आवश्य और विचेचरणी निशा है। इसी निशामें पढ़ा हुआ जीव अनेक प्रकारके स्वयं देखा करता है। यथा—

मोह निसा सब सोनवनिहारा। देखाहि सपन अनेक प्रकारा ॥
आकर चारि लाल औरासी। जोनिन अमत जीव अविनासी ॥
फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म सुभव गुन धेरा ॥

इसी सुखुमिसे भ्रतोंकी उत्थस्ति, स्थिति और जय होता है। कारणादेह-प्राप्त ईश्वरांशके भोगके लिये ईश्वरेच्छासे तमःप्रधान प्रकृतिमें (१) आकाश (२) वायु (३) तेज (४) जल और (५) पृथ्वीतत्व उत्पन्न हुए, जिनके संस्थानसे क्रमशः पञ्च-ज्ञानेन्द्रियाँ और मिळकर अस्तःकरण तथा द्वांशसे क्रमशः पञ्च-कर्मेन्द्रियाँ और मिळकर प्राण उत्पन्न हुए। यथा—

गगन सभीर अनल जल धरना। इनकर नाय सहज जड़ करनी ॥
तब प्रेरित माया उपजाये। सृष्टि हेतु सब ग्रन्थनि गये ॥

विषय करन सुर जंव समेता ॥

इन पाँचों तत्त्वोंमें जो शरीर बना, वही लिङ्गदेह है। यहाँसे संसार अद्भुत हो गया, जोकि स्थूलावस्थामें पहलवित और पुष्पित होगा। हस लिङ्गदेहाभिमानीका नाम तैजस है और इसके विभु हित्यगर्भ हैं। हस तैजसके भोगके लिये भगवान्ने पञ्चतत्त्वोंका पञ्चीकरण करके स्थूल शरीर तथा हस प्रक्षालन-भुवनकी रक्षा की, यथा—

जड़ पंच मिलै जिन देह करी करनी बहुधा घानीधरकी ।

(कविन०)

सोबह आनेमें आठ आने एक तसविहोणको लेकर उसमें दो-दो आने देव चार तत्त्वोंको मिलाकर, उस तत्त्व-विशेषको स्थूलरूप दिया। यही पञ्चीकरण है। जब नैवस स्थूल देहका अभिमानी होता है तब उसे विश्व कहते हैं। हसकी आवद अवस्था है और विराद् विभु है। यथा—
अनु जीव उर आठिं अवस्था विमुक्त सहित विरानही।

प्रतिविम्ब आहे किसी अवस्थाको पहुँचे, पर विम्बसे उसका साथ नहीं हृटता। यथा—‘जय जीव हव सहज सँघाती।’ अवस्थाभेदके सम्बन्धसे विद्वामें भी भेदकी कल्पना होती है। सुखुमि, स्वप्न और आप्नादेह भेदसे जीव क्रमसे प्राज्ञ, तैजस और विश्व हुआ। उसी भाँति तुरीय ग्रह भी ईश्वर, हिरण्यगर्भ और विराद् कहाये। ऐसा संसारका रूप अनाविकालसे चला आता है, केवल समझानेके लिये ‘तबसे’ कहते हैं। यथा—

‘विविध प्रपञ्च अस अचल अनादी।’

जीव भयेड संसारी—जीव अपने सहज स्वभाव सविदानन्द-रूपको छोड़कर ईश्वरांशके पेशर्यको लोकर संसारी हुआ, देहवाला हुआ। अब (१) लिङ्गदेह (२) लिङ्गदेहमें स्थित चित्तावादा और (३) अधिष्ठान चैतन्य, तीनों मिलकर जीव कहाये। हसप्रकार तीन प्रकारके जीव हुए। (१) पारमार्थिक (२) प्रातिभासिक और (३) ध्यावहारिक। पारमार्थिक जीव कूटस्थ है और प्रातिभासिक जीव चित्त-जड़की प्रत्यवाला प्रतिविम्ब है और ध्यावहारिक जीवलिङ्ग-देहवाला है। इसी तीनसरेको संसारी कहा। इसीका लोक-परिक्षेपमें आनन्दाना लगा रहता है। स्थूल-शरीर हृटता रहता है, पर यह लिङ्गशरीर नहीं हृटता। यथा—

कौन जोनि जनमेड जहै नाही। मैं लोगस भ्रमि अभि जग माँही ॥

अनिय न हृट न होय सुपारी—न जड़-चेतनवाली अज्ञान-की गाँठ हृटती है और न जीव सुखी होता है। अज्ञान-वाली गाँठ हृटे दिना सहज-स्वरूपकी प्रातिका दूसरा कोई उपाय नहीं है। किसी प्रकार जड़ चेतनकी गाँठ हृटती चाहिये। यथा—

‘नुलसिदास मैं। मोरः गये विनु जिव सुप कबहुँ कि पाँव ।’

तीनों औपाइयोंमें सर्वप्रथम साधन मुमुक्षुवका वज्रन किया।

६—श्रुति पुराण बहु कहेत उपाई ।

छृट न अधिक अधिक अरुद्धाई ॥

अर्थ-बेद-पुराणोंनि बहुतसे उपाय बतलाये हैं, पर गाँठ उल्फती ही जाती है, हृटती नहीं।

श्रुति पुराण—अर्थात् बेद-पुराणसे बड़कर कोई प्रमाण नहीं, यथा—(मालत्वास) निगम निज बानी। उथापि वे भी

ब्रह्म-वेतनके अच्यास-पूर्वक ही प्रवृत्त होते हैं। अतप्त अविद्यावाचे ही हैं, पर ग्रन्थमेवका उपाय बतलानेमें भी वही समर्थ हैं।

‘तस पूजा चाहिय जस देवता।’

बहु कहेठ उपार्द—बहुत-से उपाय वेद-पुराणोंने बतलाये हैं। अप, राप, व्रत, यज्ञ, वानादि, अनेक साधन जो बतलाये गये हैं, वे सब जीवके कल्पवाचके लिये ही हैं। यथा—

तप तीरथ उपवास दान मध जो जेहि स्वं करो सो ।

पांगहि पर जानिबो करम फल भीर भरि वेद परोसो ॥

आगम विधि जप जाग करत नर सरत न काज खरोसो ॥

अधिक अधिक अहसार्द—अधिक-अधिक उत्तमनेका कारण यह है कि—

अज अँदून अगुन हृदयंसा ।

अकल अनीह अनाम अरुपा। अनुमद-गम्य अखण्ड अनूपा ॥
—का कर्मकाशडमें उपदोग नहीं है। और वाहूधर्म-देहधर्म, इन्द्रियधर्म और अन्तःकरण-धर्म सम्बन्धी विधि-निषेध कहकर ही कर्मकथाका उपदेश है।

(१) वाहूधर्म, यथा—

‘पूजहु ग्रामदेव सुर नामा । कहो बहोरिदेन बलि भागा ॥’

(२) देहधर्म, यथा—

‘करहु जाह तप सैलकुमारी’

(३) इन्द्रियधर्म, यथा—

काटिय तासु जीह जो बसार्दे । अवण मूँदि ननु चलिय परार्दे ।’

(४) अन्तःकरणधर्म, यथा—

‘मनहु न आनिय अमरपीति रघुपति भगत अकाज ।’

इन विधियोंके पालनमें धर्म है स्वर्ग है, पर कर्म-सम्बन्धि बदलती ही जाती है। बिना अच्यासकी हृता बहाये कोई धर्म नहीं हो सकता! अतः वाहू पवार्थ, देह, इन्द्रिय और अन्तःकरणमें अध्यासोंकी उत्तमन बदलती ही जाती है, यथा—मल को जाहिं मलर्हके धोये।

दूट न—विशज्जद-प्रथिय नहीं कूटती। कारण यह कि साधन-चतुर्थ विना तत्त्व-विवेकका अधिकार नहीं होता। अतः जिसने साधन नहीं किया उसे शास्त्रके पारिवर्त्यसे भी ज्ञान नहीं होता, यथा—

ब्रह्म ग्यान अत्यन्त निपुण भवपार कि पावै कोई ।

निसि धन भौंस दीपके बातन्ह तम निवृत्त नहि होई ॥

(पिन्य०प०)

(१) नित्यानित्य-वस्तु विवेक (२) इहलोक और परलोकके विवेकभोगसे विराग (३) षट्-साधन-सम्पत्ति और (४) मुमुक्षुत्व ये चार साधन हैं और शम, दम, उपरति, तितिष्ठा, अद्वा और समाधान ये षट् सम्पत्तियाँ हैं, इन सबका वर्णन यथास्थान किया जायगा।

इसप्रकार साधन-चतुर्थ-सम्पत्ति अधिकारी जब गुरु-वेदान्त-वाक्य-अन्य ज्ञानसे ग्रन्थ-भेद करना चाहे तभी समझ है। नहीं तो—

सुनिय मुनिय समुक्षिय समुक्षादय दसा हृदय नहि अंव ।

जेहि अनुमव बिनु मांह जनित दारूण भव विपति सतवै ॥

केवल शास्त्रचर्चां या यों कहिये कि अनधिकार चर्चासे गाँठ नहीं कूटती।

७—जीव हृदय तम मोह विसेषी ।

ग्रन्थि कूट किमि परं न देषी ॥

अर्थ—जीवके हृदयमें विशेष मोहान्धकार है, इससे दिल्लायी ही नहीं पड़ता फिर गाँठ तो कैसे कूटे?

जाव हृदय—यहाँ हृदय कहनेसे स्थूल-देहकी प्राप्ति दिल्लायी; जीवके स्थूल-योहमें हृदय ही राज-प्राप्ताद है, यथा—

‘अस प्रमु हृदय अछत अविकारी ।’

तम मोह विसेषी—मोह अविवेकको कहते हैं, उसीको तम अर्थात् अन्धकार कहा गया है। इसीके कारण अच्यास होता है, और वही अध्यासको बदाता है। यथा—

मोह न अन्ध कीन्ह केहि केही ॥

अविद्या-रात्रिमें मोह-तमकी प्रबलता होती है। जीव-हृदयपर अविद्याका अधिकार है, क्योंकि वहीं जड़-चेतन-ग्रन्थि पक्षी हुई है। अन्धकार तो संसारी होनेके पहले ग्रन्थिमात्रसे ही था, परन्तु अब संसारी होनेसे अधिक हो गया। यथा—

मम हृदय-भवन प्रभु तोरा । तहँ बस आइ बहु ओरा ॥

अति कठिन करहि बरजोरा । मानहि नहिं बिनय निहोरा ॥

तम मोह लोभ अहंकारा । भद्र कोष बोष रिषु मारा ॥

अति करहि उपद्रव नाया । भद्रहि मोहि जानि अनाया ॥

मै पक, अभित बटपारा । केड सुनह न मोर पुकारा ॥

भासेठ नहि नाथ उबारा । रघुनायक करहु संभारा ॥

कह तुलसिदास सुनु रामा । तस्कर लूहि तव धामा ॥
चिता मोहि नाथ अपामा । अपजस जनि होइ तुम्हामा ॥

ग्रन्थ लूट किमि—गाँड़ कैसे छुटे ? कृष्णा तभी सम्भव
है, जब प्रकाशमें यह दिखलायी पढ़े कि गाँड़ कही है और
कैसी है । नहीं तो बिना देखे ही टटोलकर ममताके
सूतोंको इधर-उधर सोंचनेसे बन्धन ही इह होता है ।
कृष्णकी कहाँ समझावना है ?

पैर न देही—अविद्या-रात्रिमें मोहान्मकार लाया हुआ
है । हृदयके भीतर और भी बना अन्धकार है । अह-चेतनकी
गाँड़ दिखायी ही नहीं पड़ती । अतएव दोपक जलाना
चाहिये ।

C-अस संजोग ईस जौ करई ।
तबहु कदाचित सो निरुअरई ॥

अर्थ—यदि ईश्वर ऐसा संयोग बना दे, तो
कदाचित् वह गाँड़ सुलभ जाय ।

अस संजोग—भाव यह कि ऐसा होना किया-साम्य नहीं
है । संयोग आन पड़े तो हो जाय; संयोग बहाके हाथकी बात
है, मनुष्यके सामर्थ्यसे सर्वथा परे है । यथा—‘जो विषयम
अन बनै संजोग् ।’ ‘ऐसा कहनेका भाव यह कि संयोगोंका
सिखसिला बैध जाय । अर्थात् गौ भी मिल जाय, चारा भी
मिले, दूहनेवाला, औटनेवाला, दूष उठा करनेवाला,
दही मथनेवाला इत्यादि यथेप्सिन मिलते ही चले जाय’ ।

ईस जौ करई—अर्थात् ईश्वर यदि करें । भाव यह कि
ऐसा संयोग विधि भी नहीं कर सकते, वे तो समझके विमु
हैं, कारणपर उनका अधिकार नहीं है, कल्प शुभाशुभ दिया
करते हैं, यथा—‘कनं नुभासुभ डेह दिखाना ।’ और ईश्वर
सुयुसिके विभु हैं । कारणपर भी उनका अधिकार है, कल्पकी
अरंदा न करके भी संयोग कर सकते हैं । अथवा आख
जिनका अंश है, जिन्होंने कल्पा करके उसे नरदेह दिया है,
वही चाहे तो कल्पा करके ऐसा संयोग भी कर दें, यथा—
‘कबहु करि कल्पा नरदही । देत ईस विनु हेत सनही ।’

और वह ईश्वर किया हुआ संयोग इसप्रकार हो कि
सासिको अदा ईरिकी कृपासे हृदयमें बसे, और
उस अदाहारा खूब धर्माचरण हो, जिसमें अदा परिपुण
होती जाय और धर्मके सामग्रे इत और तमके अभिभूत होनेसे
सासिक भाव उत्पन्न हो । तब अदा हड्डीभूत होती है,

अर्थात् अदा सासिक परिशाम अहिंसा-दशा-भावमें प्रकट
होता है । तब बदीभूत निर्मल मनको अदाके बर्ताओंमें
लगा दे, और इह विशास करके अहिंसामें प्रतिष्ठित हो
जाय, प्रणिमाक्रो अभयदान है । अबतक अर्मवतधारीके
हृदयमें दधाका प्रादुर्भाव नहीं होता, तबतक समझना
चाहिये कि परम धर्मका उदय नहीं हुआ । अहिंसामें प्रतिष्ठित
होनेपर निष्कामतासे अहिंसागत कामनाके रूपको दूर करे ।
कामनाके अंशको दूर करनेसे जो ताप होता है उसे चमाइरा
तोषसे दूर करे । अब शीतल निष्काम दयाभाव हो जाय
तो उसे उत्तिसे ढोस करे । तब उस शीतल ढोस निष्काम
दयाभावका दमपूर्वक गुरु-शास्त्रोपदेशानुसार विचारसे मन्थन
करे । (दमपूर्वक इसलिये कहा कि हृदय-दौर्बल्यको स्थान
न मिले, जैसे कामपीडित व्यक्तिको लृप्ति आदि शास्त्रविस्त
विद्यका द्वारामें समावेश न हो), विचार करे कि संसार
दुःखमय है । इम जीव इसमें पड़े हुए हृषे उठा रहे हैं,
इस दुःखकी अत्यन्त निष्पत्ति कैसे हो, इत्यादि । इन
विचारोंसे साधक जिस निश्चयपर पहुँचेगा, वही वैराग्य है ।
उस निश्चयका यह रूप होगा कि ‘ये विषय अनियत हैं,
दुःखकी योनि हैं, जाहे ये इस खोकके हों जाहे परलोकके।’
और फिर उनसे आपसे आप जी होगा । अब चित्तमें
विचार आ जायगा तब वह विषयोंको छोड़ सकेगा, और
तब उसे योगका अधिकार होगा ।

विचारका निरोध योग है । वैराग्यसे विचारका
निरोधकी बोधता ग्रास होती है, परन्तु शुभाशुभ कल्पमें
सम्बन्ध त्याग किये जिना निरोध नहीं हो सकता । तुदि-
हारा शुभाशुभ कल्प-सम्बन्ध त्यागते ही विचार निष्कर होता
है । समता नष्ट होती है, तब सत् बस्तुमें विचार एकाय
होता है । ‘तत्’ पदका ज्ञान अर्थात् परोक्षज्ञान होता है ।
तब विज्ञानरूपिकी (उपनिषद्-ज्ञाय) तुदि उस
अपरोक्ष-ज्ञानको विचारमें ज्ञानकर समतामें स्थापन करती
है । अब ‘तत्’ पदार्थका शोधन रोष है । अतः इसप्रकारका
परोक्ष-ज्ञानी ज्ञानमें स्थित होकर अपनेको स्थूल, सूक्ष्म,
आख तीनों शरीरोंसे पृथक् भावना करके, अर्थात् ‘तत्’
पदार्थका शोधन करके तुरीयावस्थाको प्राप्त होता है । फिर
तुरीयावस्थाके संस्कारोंको एकीभूत करके परोक्ष-ज्ञानमें
मिला देता है । यह ‘असि’ पद है । और तब शम्भानुविद्
समाधिमें स्थित होनेसे आत्मानुभव प्रकाश उत्पन्न होता है,
और उह ‘सोहमसि’ हृतिवादा अपरोक्ष होता है । यह

मोहान्धकारको मिटा देता है। परन्तु असी चिद-चृष्ण-ग्रन्थि वनी हुई है। विज्ञानरूपियी तुदि इस प्रकार ग्रन्थि-मेघन कर सकती है। यदि ग्रन्थि-मेघन हो गया तो अव्यास सदाके लिये भिट गया, और सहजस्वरूप कैबल्यकी ग्राति हुई। यही परमपद है। इसी बातको दीपकके रूपकमें सुखभताके लिये विशावरूपमें वर्णन किया जायगा।

तबहु कदाचित्—भाव यह कि ईशके ऐसा संयोग कर देनेपर भी कार्य-सिद्धिमें बहुत सन्देह है। क्योंकि साधन बहुत कठिन है और संलग्नी जीव रोगी हैं। रोगीकी क्या सामर्थ्य जो कठिन साधनका सामना कर सके। यथा—

मोह सकल व्याधिनकर मूल। तेहिते पुनि उपजै नहु सूला ॥
पहि नियि सकल जीव जग रोगी। सोक हृषभय प्रीति वियोगी ॥

एक व्याधिवस नर मरइ, ए असाध्य बहु व्याधि ।

सन्तात पीडिहि जीव कहै, सो किमि लहइ समाधि ॥

और दूसरी बात यह है कि 'अहूतोपास्ति-ज्ञान' विसमें भक्तिकी सहायता नहीं है, सिव्व नहीं होता, यथा—
ज व्यानमान विमत तव भयहरणि भगति न आदरी ।
तं पाद सुर दुर्लभ पदार्दिप परत हम देखत हरी ॥
सो—वह चित्र (अस्ति, भाति, प्रिय) और जब (नामस्वरूप) की गाँठ ।

निरभरई—अर्थात् वह गाँठ सुखके। अस्ति (सत्) भाति (चित्) और प्रिय (आनन्द) ये तीन अंश व्याप्तके और नाम और रूप, दो अंश मायाके, इन्हीं पाँचोंने उखाफ़-कर प्रपञ्चकी गाँठ बना रखती है, और इन्हींके उखाफ़नपर उखाफ़न पढ़नेसे संसार बना हुआ है, सो सुखक जाय। अर्थात् तीन अंश व्याप्तके पृथक् और (नाम-स्वरूप) दो अंश मायाके पृथक् हो जायें। गाँठके अंधेरेमें होनेके कारण प्रकाशके लिये दीपक संकल्प हुआ। दीपके साधनमें, छहरनेमें, ऐसा विष बाहुल्य है कि संयोग अनुकूल होनेपर भी कहना पक्षा कि कदाचित् ही वह सुखभ सके। यथा—

माधव मोह-पास क्यों दूँ ?
बाहिर केटि उपाय करिय अमिअन्तर अनिथ न हूटै ॥
धृत-पूरण कराह अन्तरगत ससि प्रतिविम्ब दिखावै ।
ईचन अग्नि लगाइ कटपसत औटे नास न पावै ॥
तरहोटरमैह बसि बिहंग तरु काटे मरै न जैस ।
माधव करि अविचार कराहि मन सुद्ध दोइ कहु कैसे ?
अन्तर मलिन विषय मन अति तनु पादन करी हमारे ।
मरइ न उरग अनेक जनन बलमीक विविध विधि मारै ॥
तुलसिदास हरि-गुरु-करुना विनु विमल विवेक न होई ।
विनु विवेक संसार-धोर-नियि पार कि पावै कैरहि ॥

रघुवर भजो

भजहु मन रघुवर दीनदयाल ॥टेका॥

जौलौं चरण-सरोज न भजिहौ .

जीसमुकुट शोभित श्रुति कुण्डल

फिरिहौं भ्रमत विहाल ।

धनुधर दशमुख काल ॥

सुमिरत हौं शुभ नाम खगाधिप

वर वामांग जनक-तनया-छवि

नशिहैं भव-दुख-व्याल ॥१॥

नयनन्ह करत निहाल ॥३॥

भक्त-शिखिन्ह सुखदायक धनवत्

वैर करत निशिचर गन तारथो

स्यामल गात रसाल ॥

को अस निजपन पाल ॥

पीत वसन वर विज्जु-विनिदित

“श्रीमन” जाहि भजे भय भाजत

चन्दन भाल विशाल ॥२॥

दुखदायक जग-जाल ॥४॥

—श्रीनारायणचार्य शास्त्री वेदान्तभूषण

रामायण-संकीर्तन-माला

बालकाण्डम्			
१-शुद्धब्रह्म परतपर	राम	३६-दुष्ट-विराघ-विनाशन	राम
२-कालात्मक परमेश्वर	राम	३७-शरभङ्ग-सुतीक्ष्ण-अर्चित	राम
३-दोषतल्प-सुखनिद्वित	राम	३८-अगस्त्यानुग्रह-वर्थित	राम
४-ब्रह्माद्यमरप्रार्थित	राम	३९-शृधाधिप-संसेवित	राम
५-चरणकिरण-कुलमरण्डन	राम	४०-पञ्चवटी-तट-सुस्थित	राम
६-श्रीमद्वशरथनन्दन	राम	४१-शूर्पणकार्त्ति-विश्रायक	राम
७-कौशल्या-सुखवर्जन	राम	४२-खर-दूषण-मुख-सूदक	राम
८-विश्वामित्र-प्रियधन	राम	४३-सीताप्रिय-हरिणानुग	राम
९-घोर-ताटका-घातक	राम	४४-मारीचार्तिक्षदाशुग	राम
१०-मारीचादि निपातक	राम	४५-विनष्टसीताल्वेषक	राम
११-कौशिक-मख-संरक्षक	राम	४६-गृह्याधिपगतिदायक	राम
१२-श्रीमद्वह्योद्वारक	राम	४७-शबरी-दृच-फलाशन	राम
१३-नौतम-मुनि-संपंजित	राम	४८-कवन्धवाहुच्छेदन	राम
१४-सुरमुनिवरगण-संस्तुत	राम	किञ्जिन्दाकाण्डम्	
१५-नाविक-धावित-मृदुपद	राम	४९-हनुमत्सेवित-निजपद	राम
१६-मिथिलापुर-जन-पोहक	राम	५०-नत-सुरीवाभीष्ट	राम
१७-विदेह-मानस-रज्जक	राम	५१-गर्वित-बालि-संहारक	राम
१८-च्यवक-कार्युक-भज्जक	राम	५२-वानर-दूत-प्रेषक	राम
१९-सीतार्पित-वरमालिक	राम	५३-हितकर-लक्ष्मण-संयुत	राम
२०-कृत-वैवाहिक-कौतुक	राम	सुन्दरकाण्डम्	
२१-भार्गव-दर्प-विनाशक	राम	५४-कपिवर-सन्तत-संस्मृत	राम
२२-श्रीमद्योद्या-पालक	राम	५५-तद्रुति-विघ्नवंसक	राम
अयोध्याकाण्डम्		५६-सीता-प्राणाधारक	राम
२३-अगणित-गुणगण-भयित	राम	५७-दुष्ट-दशानन-दूषित	राम
२४-अवनी-तनया-कार्मित	राम	५८-शिष्ठ-हनुमद्भूषित	राम
२५-राकावन्द्र-समानन	राम	५९-सीता-शोध-परायण	राम
२६-पितृवाक्याश्रित-कानन	राम	६०-कृत-चूडामणि-दर्शन	राम
२७-प्रिय गुह-विनिवेदित-पद	राम	६१-कपिवर-चन्द्राश्वासित	राम
२८-तत्कालित निज-मृदुपद	राम	अथ युद्धकाण्डम्	
२९-भरद्वाजमुखङ्गनन्दक	राम	६२-रावण-निधन-प्रस्थित	राम
३०-विव्रक्षाद्विनिकेन	राम	६३-वानर-सेन्य-समावृत	राम
३१-दशरथ-सन्तत-विनित	राम	६४-शोपित-सरिदीशार्थित	राम
३२-कैकेयी-तनयार्थित	राम	६५-विभीषणाभयदायक	राम
३३-विरचित-निजपितृकर्मक	राम	६६-पर्वतसेनु-निबन्धक	राम
३४-भरतार्पित-निजपातुक	राम	६७-कुम्भकर्णशिर-छेदक	राम
अरप्यकाण्डम्		६८-राक्षस-संघ-विमर्दक	राम
३५-दरडकवन-जन-पाथन	राम	६९-अहिमहि-रावण-चारण	राम
		७०-संहृत-दशमुख-रावण	राम
		७१-विधिमवसुखसुरसंस्तुत	राम
		७२-स्वस्थित-दशरथ-वीक्षित	राम
		७३-सीता-दर्शन-भोदित	राम
		७४-अभिप्रिक-विभीषण-नत	राम
		७५-पुष्पक-यानारोहण	राम
		७६-भरद्वाजाभिनिवेदण	राम
		७७-भरत-प्राण-प्रियकर	राम
		७८-साकेत-पुरिभूषण	राम
		७९-सकल-स्वीय-समानत	राम
		८०-रक्ष-लसतीठार्सित	राम
		८१-पट्टमिषेकालंकृत	राम
		८२-पर्यवकुल-सम्मानित	राम
		८३-विभीषणार्पितरंगक	राम
		८४-कीशकुलानुग्रहकर	राम
		८५-सकल-जीव-संरक्षक	राम
		८६-समस्तलोकाधारक	राम
उत्तरकाण्डम्			
		८७-आगत-मुनिगण-संस्तुत	राम
		८८-विश्रुतदश-कण्ठोद्दृश	राम
		८९-सीतालिङ्गननिर्वृत	राम
		९०-नीति-सुरक्षित-जनपद	राम
		९१-विष्णवत्याजित-जनकज	राम
		९२-कारित-लवणा-सुर-वध	राम
		९३-व्यर्गत-शम्भुक-संस्तुत	राम
		९४-स्वतन्त्रय कुशलव-नन्दित	राम
		९५-अश्वमेष-कृतु-वीक्षित	राम
		९६-कालाधीदित-सुरपद	राम
		९७-आयोध्यक-जन-मुक्तिद	राम
		९८-विधिमुख-विद्युत्तानन्दक	राम
		९९-तेजोमय-निजस्पृष्ट	राम
		१००-संसृति-बन्ध-विमोचक	राम
		१०१-धर्मस्थापन-तत्पर	राम
		१०२-भक्तिपरायण-मुक्तिद	राम
		१०३-सर्वचराचर-पालक	राम
		१०४-सर्वभवामय-वारक	राम
		१०५-वैकुण्ठालय-संस्थित	राम
		१०६-नित्यानन्द-पदस्थित	राम
		१०७-राम राम जय राजा	राम
		१०८-राम राम जय सीता	राम

कल्याण



सदाप्रसन्न राम ।

प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवास दुःखतः ।
मुखाघुञ्जश्चोरघुनन्दनस्य मे सदाऽस्तु सा मञ्जुलभङ्गलप्रदा ॥

संक्षिप्त रामचरित माला

बालकाण्डम्

- १-श्रीभद्रवि-कुल-शीणक। राम
- २-ध्रितजन-कल्यक-सीता-राम
- ३-राक्षस-कुल-चल-शिखक राम
- ४-भक्तावन-सुविचक्षण राम
- ५-प्रायातीत-गुणाञ्जित राम
- ६-सतैकगुणाधिष्ठित राम
- ७-यक्षेश्वरहित-यजित राम
- ८-कर-धृतधर्मविराजित राम
- ९-नरसुरवर-दत्ताभय राम
- १०-वाचातीत-गुणोज्जवल राम
- ११-धृत-मानवरूपाञ्जित राम
- १२-नन-विधि-शङ्कर-माधव राम
- १३-कोसलवावर-नन्दन राम
- १४-दशरथनोपण-कारण राम
- १५-कौशिकलध्याविलशर राम
- १६-शोरासुरयोशान्तक राम
- १७-विश्वामित्र-सहायक राम
- १८-मारग्वस्मयवारक राम
- १९-चैतन्यद-गदु-पद-नव राम
- २०-गौतम-हृदयानन्दन राम
- २१-जनक-नपःफल-रुपक राम
- २२-खण्डन-भर्ग-शरासन राम
- २३-क्षोणी-तनया-संगत राम
- २४-निर्जित-भार्गव-कुलमणिराम
- २५-साकेतपुर्ण-भूषण राम
- २६-सीता-हृत्पञ्चर-शुक राम
अयोध्याकाण्डम्
- २७-केकय-तनया-वञ्जित राम
- २८-पित्राक्षा-परिपालक राम
- २९-सीता-लक्ष्मण-सेवित राम
- ३०-धृत-तापस-वेषाञ्जित राम
- ३१-परम-सुहद-गुह-पूजित राम
- ३२-भारद्वाज-भुदावह राम
- ३३-चित्रकृष्टट-निवासित राम
- ३४-कैकेयीतनयार्थित राम
- ३५-अचलसमीकृत-पातुक राम
- ३६-हृत-पैतृक-मख-राघव राम

अरण्यकाण्डम्

- ३७-भीषण-कानन-विहरण राम
- ३८-कर-विराध-विदारक राम
- ३९-मुनि-जनगण-दत्ताभय राम
- ४०-राकाचन्द्र-निभानन राम
- ४१-दिव्य-भहामुनि-संसुत राम
- ४२-कुम्भज-दत्तमहायुध राम
- ४३-पुण्य-सुतीक्ष्णाम्यर्चित राम
- ४४-परिवित-गृध्रकुलाधिप राम
- ४५-यज्ञवटीतट-संस्थित राम
- ४६-हृत-शूर्णगसा-नासिक राम
- ४७-हृत-सरदूषण-दानव राम
- ४८-माया-हरिणोदाङ्जित राम
- ४९-दारित-भारीचासुर राम
- ५०-दैत्येश्वर-हृत-भूसुत राम
- ५१-दागान्वेषण-तत्पर राम
- ५२-गृध्राधिप-संवेधित राम
- ५३-गन्धक-बन्धोन्मन्थक राम
- ५४-शबरी-दत्त-फलाशन राम
- ५५-पंगलोकन-दुःखित राम
- ५६-पवनात्मज-संपूजित राम
किञ्जिन्वाकाण्डम्
- ५७-रविज-निवेदित-निज-कथराम
- ५८-प्रामावनिजा-भूषण राम
- ५९-लीलोत्किमा-सुरतनु राम
- ६०-खण्डित-सप्तभाषीह राम
- ६१-एकाशुग्नि-हतेन्द्रज राम
- ६२-अभियक्ताकंतनुभव राम
- ६३-गिरिधर्यन्तर-संस्थित राम
- ६४-चानर-सेना-परिवृत राम
- ६५-सीतालोकन-तत्पर राम
- ६६-प्रेषित-चानर-नायक राम
- ६७-गृध्र-सुबोधित-घानर राम
सुन्दरकाण्डम्
- ६८-जलनिधि-लक्ष्मणपद्म-भट्टराम
- ६९-लक्ष्मान्तक-समुपासित राम
- ७०-सीतानन्दकराचित राम
- ७१-मारुतसुत-दत्तोर्मिक राम
उत्तरकाण्डम्
- ७२-विश्वावित-निजामक राम
- ७३-दूषित-रावण-विक्रम राम
- ७४-भस्मीकृत-लक्ष्मणपुर राम
- ७५-ग्रास-सती-चूडामणि राम
- ७६-जलनिधि-बेला-वासक राम
युद्धकाण्डम्
- ७७-शरणाकान्त-विभीषण राम
- ७८-शयनीकृत-दर्मोत्कर राम
- ७९-जलनिधि-गर्व-निवारकराम
- ८०-वारिधि-बन्धन-कौशल राम
- ८१-चिकोटक-परितोषक राम
- ८२-विपुल-सुवेलाचलगत राम
- ८३-अहिपाशोत्कर-यीडित राम
- ८४-घटकर्णासुर-विदलन राम
- ८५-नाशित-मल-बलोत्कर राम
- ८६-रावण-कण्ठ-विलुण्ठक राम
- ८७-अभियक्ताहित-सोदर राम
- ८८-सीतालोकन-कौतुक राम
- ८९-शुचि-परिशोधित-सीताराम
- ९०-श्रेष्ठ-न्द्रादि-समीडित राम
- ९१-दशरथ-दर्शन-मोदित राम
- ९२-मत-चानर-संजीवक राम
- ९३-पुष्पक-यानाधिष्ठित राम
- ९४-प्रकटित-पाप-विमोचक राम
- ९५-विरचित-पशुपति-पूजनराम
- ९६-भारद्वाजाच्चितपद राम
- ९७-भरतोत्करण-पूरक राम
- ९८-जनयनी-हृष्प्रद राम
- ९९-नरवानर-द्वितजावृत राम
- १०१-अभियेकोत्सव-हर्षित राम
- १०२-करुणामुद्रितवीक्षण राम
उत्तरकाण्डम्
- १०३-संजीवित-विग्रामक राम
- १०४-स्मरणैक-सु-तुष्टात्मक राम
- १०५-अपवाद-भयैकादित राम
- १०६-आजड-मोक्षप्रद-पदु राम
- १०७-एक-शिलानगरालय राम
- १०८-योगीन्द्रेणसुपूजित राम

राज्य

(लेखक—श्रीमोहिलोराणजी गुप्त)

कहा वैदेहीने—“हे नाथ,
अभी तक चारों मार्ग साथ
भोगते थे तुम सम-सुख-भोग,
व्यवस्था भेट रही वह योग।

बड़ेके लिए बड़ा ही दण्ड,
प्रजाकी याती सदा अलण्ड।
तदपि निश्चिन्त रहो तुम नित्य,
यहाँ राहित्य नहाँ, साहित्य।

रहेगा साधु भरतका मन्त्र,
यशस्वी लक्ष्मणका बल-नन्द।
तुम्हारे लघु देवरका धाम,
मारु वायित्व-हेतु है राम।”

मिळ-सा करके, तुमको आज,
राज्य देते हैं कोसलराज।
तुम्हें रुचता है यह अधिकार?”
“प्रिये, पर राज्य भोग या भार?

“नाथ, यह राज-विधान पुनीत,
किन्तु लघु देवरकी ही जीत!
हुआ जिनके अधीन नृप-नोह-
सचिव-सेनापति युत सस्नेह!!”

विवाहके समय सीताकी अवस्था

(लेखक—पण्डित श्रीराजेन्द्रनाथ विद्याभूषण)

१—बब आनेके समय अद्योत्तमें रहकर लास-ससुराली
सेवा करने और राजा भरतकी आज्ञामें रहनेके लिये
श्रीरामचन्द्रजी जब सीताको समझा रहे थे तब सीताने रामकी
इन आतोंपर कुछ भी व्याप न दे उनसे स्पष्ट कहा था कि
स्वामीके प्रति मेरा व्यक्ति कर्तव्य है इस बातको पहलेसे ही
मैं खूब जानती हूँ। आएके साथ मुझे किस प्रकारका
प्याहार करना चाहिये, कैसे बताना चाहिये—इस बातकी
शिक्षा मुझे अपने माता-पितासे पर्याप्त मिल जुकी है॥

२—श्रीराम जब किसी प्रकार भी सीताको साथ ले आनेके
लिये राज्यी नहीं हुए तब सीताने और भी जोरसे कहा
कि मैं अपने नैहरमें ब्राह्मणोंके द्वारा इस बातको पहलेसे
ही सुन जुकी हूँ कि मेरे भाव्यमें बनवास लिखा है। जिस
दिन मैंने दून सब विद्वानोंसे यह बात सुनी थी उसी दिनसे

मेरा भी मन बनवासके लिये उपराहित हो रहा है॥

उपर्युक्त दोनों अवतरणोंमेंसे एकसे यह पना जगता है
कि विचाहमे पूर्व ही सीताके माता-पितासे उसको पहलीका
कर्तव्य भक्तीभौति सिखा दिया था और दूसरेमें विवाहके
पूर्व ही उपोतिष्ठियोंके द्वारा सीता अपने भाव्यमें बनवास
होना सुन जुकी थी। बनवास अवश्य होगा इसके लिये
सीताने अपने मनको भक्तीभौति नैवार कर रखा था।
विवाहके बाद न सो सीता कर्मी नैहर गयी और न सीताको
पालनेवाली माता ही अद्योत्तमा आयी। अतएव यह
स्वीकार करना वडेगा कि सीताको माता-पिताके द्वारा
पहाँके कर्तव्यकी शिक्षा नैहरमें ही मिल जुकी थी।

† ‘अथापि च महाप्राप्त भ्रातृणां भया अतम्।

पुरा पिन्दूग्रहे भृत्यं बसन्त्यं किल मे बने॥

लक्ष्मणस्यो द्विनातिभ्यः भ्रुत्वाद बनन् गृहे॥

बनवासकृतोसाहो नित्यमेव महावल॥’

(बा० २। २७। १०)

* ‘अनुर्दिष्टात्मि भ्रात्रा च रित्रा च विविधाभयम्।

मार्त्संप्रति वक्तव्यो वर्तितव्यं यथा मया ॥’

ज्ञोतिषियोंके द्वारा जनकास-सचमुच्ची अविष्वदाशी भी विवाहके पहले ही हुई थी। 'पुरा पितृग्रहे' की उकि ही एह प्रमाण है। अब रामायणकी कुछ और उक्तियाँ देखिये—

१—राम बचमलको लेकर विश्वमित्रजी जनकपुरीमें पहुँचे, उस समय दोनों आद्योंके अनुपम रूप-द्वादशर्य और यौवनसे उद्भवित, सुखंगठित शरीरको देखकर जनकने आश्रवके साथ मुनिसे पूछा—'हे मुनिवर! ये दोनों नवयुवक कुमार—जिनको आज हाथी और सिंहके समान, जिनका बड़ा देवताओंके समान और जिनका रूप अरिवनीकुमारके सदर है—किसके सुउत्र हैं?

यहाँ राजा जनक श्रीराम-जनकमलको 'समुपस्थित यौवन' अर्थात् नवयुवक कहते हैं, सुतरा विवाहके समय इन दोनों आद्योंके बब और शारीरिक बदलका भी यथेष्ट पता लग जाता है। जनककी यह उकि धनुष-भङ्गके पर्वकी ही है।

२—यहाँमें विश्व करनेवाले रावणके अनुचर मारीच और सुवाहु नामक छड़ोर गाहसोंका बध करनेके लिये जब विश्वमित्र श्रीराम-जनकमलको लेने दशारथके यहाँ आते हैं, तो रावणके नामने ही भयभीत होकर दशारथ कहते हैं—'मेरे इस कमलनयन रामकी अवस्था अभी केवल पन्द्रह वर्षकी ही है, इस उद्घाटने यह राहसोंके साथ कैसे युद्ध करेंगे?' इस प्रस्तावसे यह पता लगता है कि इस समय रामकी अवस्था पन्द्रह वर्षकी थी। अनेक जगह पूर्णने और राहसोंसे युद्ध करनेके बाद श्रीराम जनकपुरमें जाते हैं और शिव धनुषको तोड़कर बब जनककीका पाणिप्रह्लय करते हैं, तब राम-जनकमण्डल अवस्था ही यौवन-सम्पन्न हैं।

३—विश्वमित्र जनकसे कहते हैं कि ये दोनों राजकुमार आपके यहाँ सुप्रसिद्ध धनुषको देखना चाहते हैं। इसके उत्तरमें जनकजी बहुत-सी बातें कहनेके बाद धनुषकी प्राप्ति,

१ 'पुनस्त परिप्रस्तु प्राप्तिः प्रयत्नः नृपः ।
रमौ कुमारौ भद्रं ते देवतुल्यपराक्रमौ ॥
गजसिंहगतौ वीरो शारूढ़-वृषभोपमौ ॥
अभिलादिव रूपेण ममुपस्थित यौवनौ ॥
..... कर्य पुत्री महामुने ! ॥
(वा० १ । ५० । १७-१९)

२ 'अन्न-योद्धशब्दों मे रामो राजीवलोचनः ।
न युद्ध योग्यतामस्य पश्यामि सह राक्षसैः ॥'
(वा० १ । २० । २)

सीताकी उपरिति, सीताके व्याहके लिये धनुष-संग्रहका प्रथम प्रभृति अनेक प्रकारकी वर्चों करते हुए कहते हैं 'इसप्रकार बब मेरी यौवनिजा कम्या सीता 'बद्माना' प्राप्तयौवना हुई तब बहुतसे राजा इसका पाणिप्रह्लय करनेकी आशासे आये, पर सबको धनुषका होना पड़ा। कारब, शिव-धनुषको कोई भी झड़ा नहीं सका।'

मूल श्लोकमें 'बद्माना' शब्द है, दीकाकारोंमेंसे किसीने इसका अर्थ 'यौवनसम्पन्ना' किया है तो किसीने 'प्राप्तयौवना'। इससे वह पता लगता है कि विवाहसे एवं सीता ॥ १ ॥ रीतमें यौवनका सूत्रपात्र हो गया था। अतएव 'समुपस्थित यौवन' रामके साथ बब सीताका विवाह हुआ तब वह भी 'बद्माना' अर्थात् 'प्राप्तयौवना' थी।

३—राम, जनक, भरत और शत्रुघ्नके साथ क्रमसे सीता, उमिला, मारुष्ठरी और शुतिकीतिंका विवाह हो गया। महाराज दशारथ पुत्र और पुन्न-धनुषोंके साथ अयोध्या लौट आये। राजमहलोंमें महोस्तव हो रहा है। अनेक प्रकारके श्वी-आशार, मार्गलिङ्क कर्योंके बाद सीता आदि चारों बहिनें अपने-अपने पतियोंके साथ निर्जनमें मुदित मनसे आमोद-प्रमोद करती हैं।

४—मूल श्लोकमें 'रेमिरे' शब्द है, इसका अर्थ रमण करना होता है। इससे सीता आदि चारों बहिनोंकी अवस्थाका लहज ही अनुमान किया जा सकता है। राम-जनकमण्डल तो 'प्राप्तयौवन' थे ही, यह बात जनकजी कह ही चुके हैं।

५—बनवासके समय अश्रिके आजममें अगस्त्याशीके साथ सीताकी पातिष्ठत-धर्मकी बातें हो रही थीं, तब सीताजी कहती है कि—'विवाहके समय मेरी माताजे अग्निके सम्मुख मुक्तो जो उपदेश दिया था, उसे मैं किञ्चित भूली नहीं हूँ। उन

६ 'भूतलादुर्घात्यां तां तु बद्मानां ममात्मजाम् ।

बरयामासुरागत्य राजानो मुनिपुण्ड्रव !

तेवां विश्वासमानानां शैवं धनुरुपाहृतम् ।

न शेषुप्राप्ते तस्य धनुरुपस्तोलनेऽपि वा ॥

प्रत्याख्याता नृपतयः × × × ।

(वा० १ । ६६ । १५, १८, १९, २०)

७ 'अभिवाधामित्राद्यांश्च सर्वा राजसुतासदा ।

रेमिरे मुदिताः सर्वा भर्तृमिः सहिता रहः ॥'

(वा० १।७७।१३-१४)

उपदेशोंको मैंने अपने हृष्णमें रख कोड़ा है, माताने कहा था कि स्त्रीके लिये पति-सेवासे बढ़कर और कोई भी सप्त नहीं हैं।'

पिति के प्रति पत्नीका कथा कर्तव्य है, इसके सम्बन्धमें सीताकी माताने उसे विवाहके समय अग्निके सामने उपदेश दिया था। अतएव यह अस्तीकार नहीं किया जा सकता कि उस समय सीताजीकी उम्र इसप्रकारका उपदेश ग्रहण करने-योग्य अवस्था हो गयी थी।

८- बातों-ही-बातोंमें सीताने अनुसूयासे कहा कि 'पिति ने अभी मेरी 'पति-संयोग-सुलभ' अवस्था देखी तो उनको बड़ी चिन्ता हुई। जैसे दरिद्रको धन-नाश होनेपर विषाद होता है मेरे पिताको भी बैसा ही हुआ।'

इस प्रसङ्गमें 'पति-संयोग सुलभ' शब्द आता है, किंतु किसी टीकाकारने इस पदकी व्याख्यामें 'विवाह-योग्य-वर्षस्य' लिखकर अपना पियल छुड़ाया है किंतु सीताने इसके बाद जो कुछ कहा है उससे यह पता लगता है कि सीताके लिये कन्या-दाय-पीडित अपनेको बहुत ही दुखी और अपमानित समझते थे। सीता मानो उस समय अत्यन्त अरुदण्डीया सी हो गयी थी।

यहाँपर 'पति-संयोग-सुलभ' पदका यथार्थ अर्थ करनेके लिये रामायणका ही आश्रय लेना होगा। 'ऐसिरे' रहा- 'वे पतियोंके साथ निज़ीनमें आमोद-प्रमोद करने लगीं' यह प्रसंग विवाहके ठीक बादका है और विवाहके पूर्वकी अवस्था 'पति-संयोग-सुलभ' थी, जिसको देखकर पिता के चिन्ताकी सीमा नहीं रही। अतएव इसका अर्थ सहज ही यह होता है कि, 'वर्द्धमाना' पत्नीके साथ 'प्राप्तयौवन' पतिका मिलाप हुआ।

इस तरह 'प्राप्तयौवन' राम जब 'वर्द्धमाना' सीताके साथ विवाह करते हैं, उस समय उनकी अवस्था प्राप्त सोखह वर्षकी है। परन्तु सीताजीकी कथा अवस्था है ?

१ पाणिप्रदानकाले च यद् पुरा त्वनिसन्निधो ।

अनश्चिंत बनन्या मे बाक्यं तदपि मे भृतम् ॥

'पतिसुश्रूषणाकार्यान्तपो नान्यदिधीयते ॥

(वा० ३।११।१८-९)

२ 'पति-संयोग-सुलभ' वयोऽवैष्य पिता भम् ।

चिन्तामन्यगमर्हीनो वित्तनाशादिवाधनः ॥

(वा० २।११।३५)

उपर्युक्त माडों स्थलोंका सरल सीधा अर्थ करनेसे तो यही प्रतीत होता है कि विवाहके समय सीताकी अवस्था रामसे सम्भवतः दो एक वर्ष कोटी होगी। ऐसा नहीं मानते हैं तो रामायणके उपर्युक्त स्थलोंकी व्याख्या करना कठिन हो जाता है। यह तो हुई विवाहके समय सीताके उद्धरणीय बात, किंतु रामायणमें ही इसरे स्थलपर सीता अपने ही मुँहसे अपनी उम्र कुछ और ही बढ़लाती है, उसे माननेपर यह स्वीकार करना पड़ता है कि विवाहके समय वह छः वर्षकी दुष्कुरुंही बच्ची थी।

परिवाजकके रूपमें जब राष्ट्रण सीताका हरण करने आता है तब सीता संसार-त्यागी ब्राह्मण अतिथि, बात न करनेसे शायद कुछ होकर शाप दे देगा, इस आशङ्कासे अपना परिचय देती हुई कहती है कि 'मैं मिथिलाविषयति जनककी कन्या, श्रीरामचन्द्रजीकी धर्मपक्षी सीता हूँ। मैंने बारह वर्षतक इष्टवाकु-वंशी श्रीरामके घरमें निवासकर मनुष्यके उपयुक्त सभी सुख भोग लिये हैं, जब मेरे कोई भी बासना शेष नहीं है। मेरे महातेजस्ती स्वामी रामकी अवस्था उस समय पचीस वर्षकी और मेरी आठारहकी थी।'

बारह वर्षतक सुसुरालमें रहनेके बाद तेरहवें वर्षके लगते ही रामके राज्याभिषेकका प्रस्ताव हुआ और तब राम सुझको और लक्ष्मणको साथ लेकर बनमें आ गये। (वा० ४। ४७। ५-७)

इस वर्णनसे यही पता लगता है कि जब सीता बनमें आयी थी उम्र समय उसकी उम्र आठारह वर्षकी थी, विवाहके बाद बारह वर्ष वह सुसुरालमें रही, तब वह रहने हैं छः वर्ष। पर क्या सीताका विवाह छः वर्षकी उद्धरण हुआ था ? क्या छः वर्षकी अवधि बालिकाको विवाहके समय माँ-बापने पर्नीके कर्तव्यका उपदेश दिया था और उम्र उपदेशमालाको सीताने अपने इवयमें गौंथ रखा था ? क्या इस छः वर्षकी शिशु बालिकाको ही

१-ग्रामणशातिविक्षेप अनुत्तो दि शपत मीम् ।

इति ध्यात्वा मुदृतं तु संता वचनमवीर्ग ॥

दुःहता जनकस्याहं मेधिलभ्य महात्मनः ।

संता नामास्मि भद्रं ते रामस्य महिषीप्रिया ॥

उपित्रा दाद्रशा समा इष्टवाकूणं निवेशने ।

भुञ्जाना मनुषान् भोगान् संवकामसृष्टिनी ॥

मय मर्ता महातेजा वयसा पश्चाद्विशकः ।

अद्यादशहि वर्षोणि मम जन्मनि गण्यते ॥

(वा० ३। ४७। २, ३, ४, १०)

‘बद्धमाना’ या ‘प्राह्लौवना’ मानकर राजचिं अनक विवाहकी चिन्तासे ब्याकुल हो अपने चारों ओर और भैंसेरा देखने लगे थे ? क्या छः वर्षको लालडीके लिये ही उसका ‘पति-संबोग-सुलभ’ समय समझकर पिता सीरख्ज उसके विवाहके लिये ब्याकुल हो उठे थे ? और फिर क्या यही अबोध बालिकाएँ ससुराल पहुँचकर अपने-अपने पतियोंके साथ निजंतरमें आमोद-प्रमोद करने लगी थीं। इन सबका क्या उत्तर है ?

एक विवाद और है। रामने सोलह वर्षकी 'प्राप्त-यौवन' अवस्था में सीतासे विवाह किया। यह बात उपर कही जा सकती है, इसके बाद जब राम वन जाते हैं तो सीता उनकी उड़ पचोस वर्ष बसतासी है। यह शब्द भी रामायण के ही हैं। किसी किसी प्रन्थमें रावणके प्रति कहे हुए सीताके शब्दोंमें 'भर्ता मदातेजा वयसा पञ्चविंशकः' की जगह 'सप्तविंशकः' पाठान्तर है। वन-ग्रामनके समय कौसल्याने रोते-रोते रामसे कहा है 'हे रघुनन्दन, दसवें वर्षमें मुहङ्गारा उपजयन हुआ था, तबसे मैंने सतरह वर्ष हस्ती आशामें बिताये थे।' इससे भी रामकी अवस्था उम समय पूरे सत्ताइंस वर्षकी सिद्ध होती है।

इस वर्षानसे पाठक कुछ अनुमान कर सकेंगे कि विवाहके समय सीताकी अवस्था कितनी थी? उपर्युक्त स्थलोंके अतिरिक्त रामायणमें छोटी-मोटी ऐसी कहाँ बातें और मिलती हैं जिनसे यह भलीभांति प्रमाणित होता है कि अच्छी तरह शान-पौद्वन-सम्पत्ति होनेपर ही सीताका विवाह हुआ था। अन्य रामायणोंमें देखिये—

अस्यामभरामायद्वके आदिकाव्यद्वके छठे अस्यायमें
कहा है कि मिथिलाकी राजसभामें श्रीरामचन्द्रने हँसते
हुए शिव-पञ्चवको तोक डाला । राजा जमक और सारा
रनवास आनन्दने विहँसा हो गया । सीता सोनेकी माला
हाथमें लिये मुस्कुराती हुई धीरे-धीरे रामके समीप आयी
और रामके गतेमें माला पहनाकर मानो वह एकदम
प्रेमसागरमें डूब गयीं । प्रबल वर्णनका इसस्तर देखिये—

सीता स्वर्णमयी मालां गहान्त्रा दक्षिणं करे ।

स्मितवृत्त्या स्वर्णवर्णा सर्वासुराणा संखिता ॥

महाराजैः राष्ट्रादैः राष्ट्रकिन्तुपराः ।

दक्षलसपि संवीता वसाल्या जितस्त्रां ॥

ग्रामस्थोपरि लिखिष्य स्वयम्भावा महं गमौ।

वहाँ 'सितबनका' और 'स्यमाना मुरं यो' इन दोनों विदेशीसे सीताकी चिह्नां-जालीक अवस्था क प्रयास आभास गिरता है। इन पर्यंती चालिकाके लिये ऐसी

उक्तियाँ कभी नहीं कही जा सकतीं। फिर यदि इनको भी छोड़ दिया जाय अथवा कानूनके दावरें उसे इनका बूझता अर्थ करनेकी व्यर्थ चेष्टा की जाय तो 'विकान्तरव्यञ्जितसनानी' विशेषणके हारा तो सभीको यह मानना होगा कि विवाहके समय सीता 'प्राप्तवौद्वानी' थी और उसकी अवस्था बालमीकिरामायणके अनुसार अवश्य ही 'पति-संर्योग-सुखभ' हो चुकी थी, इस प्रसंगको पढ़कर कोई भी संस्कृतका विद्वान् यह नहीं कह सकता कि उस समय सीताकी अवस्था क्या वर्णकी थी।

और देखिये, श्रीराम प्रभृति चारों भाई अपनी अपनी पवित्रियोंके साथ अयोध्या लौट आये। राजमहलमें बड़ी धूमधाम है। सबके साथ मिलने-जुलनेके बाद 'देवप्रतिम राम-लक्ष्मण-भरत-शत्रुघ्न अपने-अपने महलोंमें अपनी-अपनी पवित्रियोंके साथ आमोद-प्रमोद करने लगे। जैसे वैदुकुष्ठलमें लक्ष्मीके साथ विष्णुका समय सुखसे बीतता है वैसे ही माता-पिताके आदरसे श्रीरामसीताका समय भी बड़े आनन्दसे बीतने लगा।' अब्दालमरामायणमें व्यासजीकी यह उक्ति वाल्मीकिजीकी उक्तिसे विवरक भिलती-जुलती है हाँ, अव्यालम्बरामायणमें सीताको विवाहसे पूर्व ही 'वस्त्रान्तर व्यजितस्ती' बतलाया गया है अतएव यहाँ 'रेमिरे' शब्दका अर्थ खेल-झूठ करके सीताको जबरदस्ती छः वर्षके बना देनेकी कोई गुआहाश ही नहीं रही। वाल्मीकिरामायणमें अवरथही ऐसा कोई विशेषण नहीं दिया गया है, तथापि 'रेमिरे मुद्रिता रहः' पूर्व 'पति संयोग-सुरभ वयः' हन सब यस्तियोंसे सीताका वय यौवनोऽसित ही सिद्ध होता है।

कल्पि-पुराण नृतीयांशके तीसरे अध्यायमें लिखा है कि मिथिलाके स्वयंवर-नस्मारोहमें जब भगवान् श्रीरामचन्द्र धनुष तोड़नेको लड़े हुए, तब उनके प्रति आदर विस्खाया और जानकीनेमी आँखोंसे उनकी पूजा की—

स भय परिपूजितो जनकं जंक्षितैर्वच्चितः ।

करालकठिनं धनः करसरोद्धें संहितम् ॥

यही यह देखा जाता है कि रामका उत्साह बढ़ाने के लिये सीताने कनाक-पात किया, इससे सीताकी उत्तमता पूरा पता न लगनेपर भी यह तो समझा ही जा सकता है

१ रामलक्ष्मणशत्रुघ्नभरता देवसत्त्वितः ।

स्वां स्वां भार्यमुपादाय रेमिरे स्व-स्व-मन्दिरे ॥

मातृपितृभ्यां संहृष्टो रामः सीतासमन्वितः ।

रेमे वैकुण्ठभवने मिया सह यथा हरि: ॥

(अ० रामायण १।७।५२-५४)

कि उस समय उसकी उड़ छः वर्षकी कदापि नहीं थी । छः वर्षको दुष्टुं ही भावी भावी मिथुनमें प्रति कठाह करे, वह किसी भी नियमसे अनुमोदित नहीं है ।

देवीमागवत तीसरे स्कन्धके अठारहवें अध्यायमें कहा है—‘जब यतीके भेषमें रावण सीताको हरनेके लिये आया, तब सीताके पूछनेपर उसने कहा कि ‘मैं वास्तवमें यती नहीं, मैं लंकेश रावण हूँ, तुम्हारे लिये मैंने वह वेष चारण किया है, तुम मुझे बरण करो, मैंने तुम्हारे पितासे पहले भी तुमको माँगा था परन्तु शिव-चनुष-भगवान्की बात सुनकर मैं लड़-चापके अथसे स्वयंवरमें नहीं गया, उसी समयसे मेरा मन तुममें खगा है और मैं तुम्हारे लिये विरहातुर हो रहा हूँ । आज तुम्हारा यहाँ बनमें रहना आनंदर पूर्णजुरागासे प्रेरित हो तुम्हारे समीप आया हूँ, तुम मेरे परिभ्रमको सफल करो ।’

छः वर्षकी कल्पाको देखकर लक्ष्मेश्वर रामायण को मोहित हो जाना और उसके लिये विरहातुर होना युक्तियुक्त नहीं कहा जा सकता ।

पश्चपुराव वाताक्ष स्वरूपके २१ वें अध्यायमें एक बड़ा ही कौतूहल-पूर्व उपाख्यान है । एक दिन मिथिलाके बगीचेमें सखियोंके साथ घूमती हुई सीताने पेड़पर लैटे हुए शुक-दम्पतिको मीठी बातें सुनी । शुक और शुकी रामायणके सम्बन्धमें ही बातचीत कर रहे थे । वे कुछ समय तक बालमीकिके तपोबनमें थे और वहाँ उन्होंने भावी रामायणका गान सुना था । आज वे उसी गानके सम्बन्धमें परस्पर आनंदसे बाठांखाप कर रहे थे । कुछ समयतक शुपचाप सुनते रहनेपर सीताने यह समझा कि शुकमिथुन जिस सीताका नाम ले रहे हैं वह मैं ही हूँ और मिथिलामें श्रीरामके द्वारा चनुष-भगवान्की कथा भी मेरे ही विवाह-सम्बन्धी है । तदनन्तर सीताने सखियोंके द्वारा वही बालकीसे

१ लक्ष्मेश्वरं मरालाक्ष ! × × !!

त्वलकृत तु कृतं रूपं भयेवं शोभनाकृते ! !!

× × × × ×

पिता ते याचितः पूर्वं मया दै त्वल्लोऽवलो ।

जनको भासुदाचेष्टं पणवन्नो मया कृतः ॥

श्रद्ध-चापं भवाकृतं सम्प्राप्तम् त्वयंवरे ।

मनो मे संखितां तावर्जिमङ्गं विरहातुरम् ॥

वनेऽन्नं संखितां भुत्वा पूर्वानुरागमोहितः ।

आगतोऽस्म्यमितापाञ्जि ! सकलं कुरु मे भयम् ॥

(५३।५७-५९)

उन दोनोंको पकड़वा लिया और वह उनसे रामके सम्बन्धमें बहुत-सी बातें पूछने लगी । सीताके हात राम-सम्बन्धी प्रश्नोंको सुनकर पक्षियोंने सम्बद्धमें भर सीतासे पूछा—

तें का वा कि सु-नामात्र तव मुन्दरी यनु माम् ।

परि पृष्ठसि वैद्रघ्याद् रामकर्त्तनमादरात् ॥

‘हे सुन्दरी ! तुम कौन हो, तुम्हारा क्या नाम है ? तो तुम वहे ही आदर और चानुर्यके साथ चारवार श्रीरामके सम्बन्धमें पूछ रही हो ? तुम जानकी तो नहीं हो ? सीताने कहा—

या त्वया जानकी प्रोक्त साऽऽहं जनकपुत्रिका ।

स रामो माम् यदगत्य प्राप्त्यते सुमनोहरः ॥

तदा वा मोक्षयामयद्वा नान्यथा वास्यमोहिता ।

लीलया च सुलेनास्तां मदशृंगं मधुरादकौ ।

‘तुम जिस जानकीकी बात कहते हो, वह जनकमन्दिनी जानकी मैं ही हूँ । जब मनोहर मूर्ति राम पवारकर मुझे ग्रहण करेंगे ।’ तब मैं तुम कोर्गोंको छोड़ दूँगी, तुम लोगोंने मीठी बाणी सुनकर मुझे प्रक्षेपित कर दिया है । इन बीचमें तुम मेरे वहाँ रहकर सुखसे लालो-सेलो ।’

यदि सीताका विवाह छः वर्षकी उम्रमें हुआ था तो उपर्युक्त घटना तो उससे बहुत पहले की बाती तीन चार वर्षकी उम्रमें होनी आहिये । परन्तु क्या इस अवस्थामें कोई लड़की ‘वैद्रघ्यान्’ और ‘आदरात्’ (पायिदत्य और समादरके साथ) भावी पतिके सम्बन्धमें कुछ पूछ सकती है ? इसप्रकार संस्कृत साहित्यके संवर्पणान महाकाव्य आदि-कविकृत रामायण, पुराण, उपस्थिति और इतिहासोंमें सीताकी विवाहकालीन अवस्थाके विषयमें बहुतमें प्रभाव विलगते हैं । इन सब प्रमाणोंकी पर्याप्तता करनेपर जिसी तरह भी वह नहीं जाना जा सकता कि विवाहके अवसर-पर सीताकी अवस्था छः वर्षकी थी ।

रही सीताकी उस उकिकी बात, जो उसने रामके प्रति कही है कि विवाहके बाद चाहइ वर्षतक मैं समुत्तरमें रही । बलमें आई तब मेरी उम्र भठारह वर्षकी थी । इस उकिके अनुमार विवाहके समय सीताकी उड़ छः वर्षकी मालकी पकड़ी है, परन्तु ऐसा मानवेसे उपर्युक्त उद्धृत क्षोडोंके साथ कुछ भी मेल नहीं लाता, अतएव वहाँ पाठक स्वयं विवाह करके निष्पत्त करें कि रामायणके इन परस्परविरोधी स्थलोंमें कौनसा आदा और कौनसा त्वात्व है !

श्रीरामचरितमानस-पात्र-परिचय

(लेखक—श्रीज्ञालाप्रसादजी कानोकिया)

अकम्भन—राष्ट्रवाका मामा और उसका सेनापति था, बहाके युद्धमें महावीर हनूमानजीहारा मारा गया था। इसके प्रहृत और धूमार दो भाई थे, पिताका नाम सुमारी और माताका नाम केतुमारी था। दो बहनें थीं—राष्ट्रवाकी माता केलसी और दूसरी कुम्हीनसी।

अगस्त्य—महर्षि भित्रावस्थाके पुत्र थे, इनका पहला नाम मान था। विन्ध्यपर्वतके अधङ्कारको चूर्यं करनेके कारण इनका नाम अगस्त्य पड़ा। महर्षि वश्व आदित्यके यहाँमें एक बार निमन्त्रित होकर गये थे, वहाँ उर्वशीको देखकर उनका रेतःपात दो गया था, उस रेतका जो भाग कुम्भमें पड़ा, उससे इनकी उत्पत्ति हुई, इसीलिये इन्हें कुम्भज भी कहते हैं। दृष्टासुरके मरनेके पश्चात् कालकेथादि राष्ट्रस समुद्रमें जा लिये और वहाँसे निकलकर सुनियोंको भ्राता देने जागे। इन्होंने देवताओंके आश्रासे समुद्र पानकर उन राष्ट्रसोंका नाश करा दिया था। आपने ही राजा नकुलको राष्ट्र देकर इन्द्रजलसे छ्युत करके सर्प-योनियोंमें भेज दिया था। इनकी पतिव्रता पतीका नाम ज्वोपासुदा था। भगवान् राम बनवासके समय इनके आश्रममें गये थे।

अङ्गद—बानरराज बालिके पुत्र थे। श्रीरामचन्द्रजीने बालिको भारकर सुग्रीवको राजगद्दीपर बैठाया और अङ्गदको युवराज बनाया था। अङ्गदकी माताका नाम तारा था। आप रामचन्द्रजीके दूस बनकर राष्ट्रवाकी सभामें गये थे और वहाँ अपना पद रोपा था, जिसे कोइ नहीं हटा सका था। सुग्रीवकी सेनाके साथ लड़ाकों जाकर, इन्होंने अपनी वीरताका परिचय दिया था। एक दिन युद्धमें अङ्गदने इन्द्रजीसको भी हराया था।

अज—अयोध्याके सुर्यवंशी राजा रघुके पुत्र थे। विदर्भ राजकी कल्पा इन्दुमतीने स्वयंवर-प्रथाके अनुसार अजको अपना पति बनाया था। विवाहोपरान्त अब इन्दुमतीको लेकर वे जा रहे थे तो राहमें स्वयंवरमें विकलमलोरथ राजाओंने बलपूर्वक इन्दुमतीको छीनगा चाहा। युद्ध होने जागा और अन्तमें सभाको सम्मोहन-मन्त्रसे अचेतकर आप इन्दुमतीको लेकर जायेंगा गये।

अधृयकुमार—मन्दोदीरीके गर्भसे राष्ट्रवाका पुत्र था। वह मेघवालाद्वै डोटा था। श्रीसीताजीके लोकनेके लिये वह हनूमानजी लड़ा गये थे और राष्ट्रवाके प्रमोद-ननका नाश करना प्रारम्भ किया था। उसी अवसरपर राष्ट्रवाके अङ्गदकुमारको हनूमानको पकड़नेके लिये भेजा था। वहीं पह हनूमानजीके हारा मारा गया था।

अजनी—केसरी बानरराजकी पती थी। इसीके गर्भसे श्रीहनूमानजीका जन्म हुआ था। एवं जन्ममें वह पश्चिमस्थान नामी अप्सरा थी। शापवश बानरी होकर सुमेरु पर्वतपर रहती थी।

अत्रि—ब्रह्माके मानस पुत्र हैं। सप्तर्षियोंमें इनकी भी गलता होती है, कर्दम प्रजापतिकी कल्पा अनसूया इनकी भी थी। श्रीदत्तात्रेय, महर्षि हुर्मुसा और चन्द्रमा इनके पुत्र हैं। वे दूस प्रजापतियोंमें एक प्रजापति भी माने जाते हैं। वे चर्मशास्त्र-प्रवर्तक हुए हैं, इनका बनाया धर्मशास्त्र अत्रिसंहिताके नामसे प्रचलित है। भगवान् रामचन्द्रजी इनके आश्रममें गये थे।

अनसूया—कर्दम प्रजापतिकी कल्पा और महर्षि अत्रिकी सती साज्जी पती थीं। इनकी माताका नाम प्रसूति था। अत्रि-अत्रिके आश्रममें जब बनवासके अवसरपर श्रीरामचन्द्रजी गये थे तो अनसूयाने श्रीसीताजीको पातिव्रत-धर्मकी महस्तापर उपदेश दिया था।

अरुणधती—कर्दम प्रजापतिकी कल्पा थी और विश्व मुनिको व्याही गयी थी।

अहूल्या—महर्षि गौतमकी पती थीं। इनके पिताका नाम वृद्धार्थ था। वे अस्त्वन्त रूपवती थीं इसीलिये देवराज इन्द्रने गौतम अर्चिका रूप भारणकर इनका धर्म नह किया था। गौतमने शाप देकर अहूल्याको पापाद्य बना दिया था। श्रीरामचन्द्रजीके चरण-स्पर्शसे अहूल्याकी पापाद्यत्वसे मुक्ति हुई थी।

उर्मिला—सीराज्ञा उनकी कल्पा थी, इनका विवाह अन्तर्वाचीके साथ हुआ था।

कपिल— कर्वन-वाचिके उन्न थे । इसकी माता देवदुर्गी थीं । वे सांख्य-शास्त्रके प्रवर्तीक हैं । इन्होंके शापसे सरार राजा के साथ हजार उन्न भय हो गये थे ।

कर्वन्द— कर्वन्द और उनकी स्त्री द्वारा इसकी उत्पत्ति हुई थी, यह पूर्वजन्ममें गन्धवे था । एक बार स्थूलिशर आवि इसके गानपर अप्रसन्न हुए, तब इसने हँस दिया था । इसोंसे आविने इसे राजस होनेका शाप दे दिया । ब्रह्माकी तपस्या कर इसने दीर्घांतु होनेका बर ग्रास किया था । वरके गर्वसे यह सदा इन्द्रका अपमान किया करता था, इन्द्रने कुछ होनकर इसके ऊपर वज्रप्रहार किया और इसके ढर, मुख और सत्तकको तोड़ दिया, पुनः इसके विनय करनेपर इसकी भुजाओंको योजनपरिमित दीर्घ कर दिया और इसके पेटके अन्दर तीरभ्यां दौत्सुक थुंड बना दिया था, तबसे यह दण्डकारशयमें रहने लगा और सिंह व्याघ्राविको पकड़-पकड़कर खाने लगा । अब श्रीरामचन्द्रजी दण्डकारशयमें आये तो इसकी भुजाओंको काटकर इसे मुक्त कर दिया । विनय करनेपर स्थूलिशराने ही यह बरहान भी दे दिया था कि श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा वाहें काठी जानेपर तुम सुक हो जाओगे ।

कदम्प— ऋषिके मानस-पुत्र हैं । यह एक प्रसिद्ध ऋषि हो गये हैं । दक्षप्रजापतिकी तेरह कल्पाएँ इन्हें ज्याही गयी थीं, जिनसे सब जगत्की उत्पत्ति मानी जाती है

काक मुशुपिण्ड— राम-भक्त वायस थे । इनके पिता अश्वमहायेवीके बाहर चन्द्र नाम काक और माता इन्सिनी थी । काकमुशुपिण्डजी इन्हींसे भाई थे, जिनमें सभी मर गये, केवल यही चिरजीवी हुए । एक बार शङ्कुरकी पूजा करते समय इनके गुरु ज्ञा गये और इन्होंने उनका सत्कार नहीं किया अतः वे शिव-शापसे सर्व हो गये, पुनः शिव तथा गुरुकी हृषासे समुद्ररूप रामके उपासक वाल्मीकि हुए, तत्पर चार द्वाम-ऋषिके शापसे इन्हें काक-बोनि प्राप्त हुई ।

कालनेत्रि— यह रावणका चचा एक राष्ट्रस था । मेघनाथके शक्तिमालसे ब्रह्मवर्णीके मूर्धित होनेपर श्रीहनूमान्‌जी वह सवीनन-मूल जानेके लिये गये थे, उसी समय रावणने भी कालनेत्रिको सिंहाकर भेजा था कि वह इन्द्रान्‌जीको रात्सेहीमें सूर्योदयसक रोक रखे । यह कल्प-मुक्तिके बेष्टमें सुन्दर ब्रह्माशय और वाटिकासे युक्त मात्राका आळम बना कर बैठ गया । इन्द्रान्‌जी जहा पीछे जखानपरमें गये और

वही महरी-चप्पराके द्वारा सब भेद जानकर कालनेत्रिको बैंकमें बापेटकर पृथ्वीपर पटक दिया । इसप्रकार कालनेत्रिकी दूर हुई ।

कुम्भकर्ण— महारोही, महाकाश, राजस रावणका छोटा भाई था । इसके पिता विश्वा मुनि और माता कैकसी थी । इसकी स्त्री (ब्रह्मिकी दौहित्री) बृक्षज्ञाता थी । इसने अति उच्च तप ऊर्जे क्रान्तिकी प्रसन्नता से वर माँगते समय छुः मास सोनेके लिये और एक दिन भोजनके लिये जगानेका बर माँगा था । यह महा पराक्रमी था, युद्धमें श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा मारा गया ।

कुवेर— धौथे द्वोकपाल हैं । धूमके देवताहैं । अक्षयपुरी हनकी राजधानी है । यह रावणके सौतेले भाई हैं, पहचे लंकामें रहते थे । इनके एक भाँज, तीन वैर और आठ दाँत होनेके कारण कुवेर नाम पड़ा । इनके पिता विश्वा मुनि और माता भरद्वाजकी कल्पा देवदुर्धिनी थी । वे वश-जातिके अध्यक्ष हैं ।

कुश— श्रीरामचन्द्रजीके ज्येष्ठ उन्न थे । इनकी माता जानकीजीने इन्हें श्रीवाल्मीकि-मुनिके आभ्रमें प्रसव किया था, वही इनका पालन-बोवण और शिक्षा-दीक्षा हुई थी । श्रीरामजीके अश्वमेष-वज्रके अवसरपर कुश और इनके छोटे भाई जावने वाल्मीकीय रामायणका गानकर सारी सभाको मन्त्र-मुन्द्र कर दिया था । इन्हें कुशावती नगरीका राज्य दिया गया था । श्रीरामचन्द्रजीके बैकुण्ठ जानेपर अदोभावी अधिष्ठात्री देवी कुशके शयनागारमें उपस्थित हुई थी और अपोर्याकी दुर्वेशा कहकर इनसे कुशावती छोड़कर अपोर्या जानेका निवेदन किया था, अतः वह अपोर्या जले आये और वहीं राज्य करने लगे ।

केसरी— वानरराज थे, इनकी स्त्री अजनाके गर्भसे हनुमान्‌जीका जन्म हुआ था ।

कहारी— एक वानर था ।

केकसी— रावण, कुम्भकर्ण और विभीषणकी माता थी । इसके पिता सुमादी और माता केतुमादी पाताकमें रहते थे, कुवेरको लंकामें देवतकर हृष्णोदय इन्होंने आपनी कल्पा कैकसीको विश्वा-मुक्तिके प्रति इस उद्देश्यसे अर्पण किया था कि उससे कुवेरसे भी अविक पराक्रमी उन उत्तर दो ।

कैक्षी— कैक्षी-देवके राजाकी कन्या अत्यन्त सुन्दरी और बुद्धिमती थी। राजा दशरथको ज्याही गर्भी थी। भरतवी इसीके पुत्र थे। इसने एक बार राजाकी बुद्धि में राजक द्वे वर माप लिये थे उन्हीं द्वारोंसे इसने अपनी शासी मन्त्रियों की सुन्दरियोंको बनवास और भरतको राज्याभिषेक राजासे माँगा था।

कौसल्या— कौसल्या को सल्कराजकी कन्या थी। राजा दशरथकी सबसे बड़ी राजी थी। इन्हींके गर्भसे विष्णुभगवान्, रामचन्द्रके रूपमें अवतरित हुए थे। जब रावणको मालूम हुआ कि कौसल्याके गर्भसे उपर्युक्त होनेवाले रामसे मैं भारता जाऊँगा तब उसने बालिका कौसल्याको हरण करके एक सन्दूँझे बन्धकर वह सन्दूँक राघव नामक मञ्जुषीको दे दी। अवित्यकी रूपाके लिये जग्नाने रावणका रूप चारणकर उस मञ्जुषीसे सन्दूँक माँगकर बनगे कोइ दी, वह सुप्रसन्नको मिली और उसने कौसल्याको राजा दशरथके अर्पण किया।

खर— रावणका सौतेला भाई था। सुमारी राहसकी कन्या राखा इसको माता थी, पिता विश्वा मुनि थे। रावणने हृते जनस्थानका प्रान्ताधीश बनाया था। इसके साथ चौदह हजार सेना थी। लक्ष्मणजीने जब शूरपंचालके नाक कान काट लिये थे तब इसने श्रीराम-चंद्रमसे युद्ध किया था और रामजी द्वारा मारा गया था।

गणेश— (गणपतिर्वी) श्रीमहादेवके पुत्र हैं, इनकी माता पार्वती हैं। विष्णुके वरसे इनकी अप्रपूजा होती है। वे श्रीरामनामकी भद्रिमार्ति जाननेवाले और श्रीरामचरितमालको लिपिबद्ध करनेवाले हैं।

गद— पिता करवर और माता विजयासे आपका नाम हुआ। आप परिवर्त देते हैं। विष्णु भगवान्के बाहन हैं। श्रीरामचन्द्रजी जब मेघनादके हारा जागपाशसे बचे गये थे, तो गदने ही उन्हें दस पाशसे झुक किया था।

गालन— विश्वामित्रके गिर शिष्य थे। स्वर्ण एक प्रसिद्ध ऋषि हुए हैं। इन्होंने अपने गुरुको विश्वामित्र से नेके लिये बदा आग्रह किया था। विश्वामित्रजीने रह हो ८०० दशम-कर्त्त्व दोषे इससे मर्मिणे, लिहे प्राप्त करनेमें इनको दास्तव कह सहना पड़ा था किन्तु अन्तमें वे विश्वा तुक गुरु-दशमसे झुक हुए।

गुहक— विश्वामित्र, श्रुतेशुरका अनार्य राजा था। राजा दशरथसे इसकी मित्रता थी, वह रामका भक्त था। इसने बनवासमें श्रीरामकी बहुत सेवा की थी। एवं अन्यमें वह व्याप था। यहरकी छपासे इसे रामसेवाका अवसर माप दुआ था।

गैन्द— श्रीरामचन्द्रजीका सेवक पक बदा वानर था।

गौतम— एक ऋषि थे, इन्हींकी पत्नी अदृश्या थी। इनका व्यायदर्शन प्रसिद्ध है, वे शान्तिविहीन विद्याके प्रधम प्रवर्तक माने जाते हैं। इन्होंने अपने व्यायदर्शनमें प्रमाण-प्रमेय आदि सोखाह पदार्थोंके तत्त्वज्ञानसे मुक्तिकी प्राप्ति बतायाथी है। इन्होंने केवल दश ही दिनोंमें इस दर्शनका प्रणयन किया था।

जटायु— सूर्यके सारथी अरुण और माता श्रेणीके गर्भसे जटायु दत्पत्त हुआ था। वह गृह पत्नी था। राजा दशरथका परम मित्र था। सीतादर्श करके वे जाते समय रावणको इसने रोका था और बृद्ध होनेपर भी उससे युद्ध किया था, अन्तमें रावणके अज्ञानात्मे बायक हो गिर पड़ा था, जब श्रीरामचन्द्र भी सीताकी सोन्दर्भमें बद्धमयको साथ लिये हुए आये और जटायुको इस क्षामामें देखा तो बहुत व्याकुल हुए। श्रीरामजीकी गोदमें सिर रखके हुए जटायु परमधारको प्राप्त हुआ।

जमदग्नि— महर्षि शृंखलीके पुत्र थे। राजा प्रसेवजितकी पुत्री रेणुकाके साथ इनका विवाह हुआ था, इनके पाँच पुत्र हुए, सबसे क्षोटे परशुराम थे।

जयन्त— देवराज हनुमका पुत्र था। इसने काकस्त्र धारयकर अपनी चाँचसे श्रीलालकीजीको बायक कर दिया था और जब श्रीरामचन्द्रजीने इसके उपर बाय बलाया था तब वह सीनों लोकोंमें प्राण बचानेके लिये आगा किन्तु किसीने इसे आल्प नहीं दिया। अन्तमें हारकर श्रीरामजीके बायमें गया, रामचन्द्रजीने इसके प्राण तो नहीं लिये पर एक आँख कोइ दी।

जामदग्नि— व्राजाराज थे, व्राजाके पुत्र थे। वह महाबली थे और सुशीलके सेनापति होकर इन्होंने श्रीरामचन्द्रकी सहायता की थी। राम-भक्तोंमें इनकी भी खासी प्रसिद्धि है।

ताड़का— सुकेतु नामक यजकी उत्तीर्णी थी। (मरुद और कठपदेशके राजा) सुन्दरो ज्याही गर्भी थी। आरीच और सुवाहु इसके पुत्र थे। जब आगस्त-मुनिके ग्रापसे सुन्द मारा

गया तो वह कुद होकर अस्तियोंको सताने लगी, इसपर मुनिने शाप दिया, जिससे वह राहसी हो गयी। तबसे वह तभी भूमिमें रहकर अस्तियोंके वश अट करने लगी, जिसमित्रोंके भूम-राहार्थ आवे हुए श्रीरामजीके हारा वह मारी गयी।

तारा—सुधेवा बानरकी कन्या थी, कपिराज बालिको ध्याई गयी थी। अंगद इसका पुत्र था।

विटा—रावणके अन्तःपुरमें रहनेवाली एक राहसी थी, वह श्रीरामचन्द्रजीकी भक्ति करती थी। रावणकी ओरसे सीताजीकी सेवामें अशोक-वाटिकामें रहती थी। अन्य राष्ट्रसिव्योंकी भीति सीताजीके प्रति कूर व्यवहार न करके प्रेमका चर्तार और उन्हें सान्त्वना देती थी।

दक्ष—इष्टप्रजापति ब्रह्माके मानस पुत्र थे, इन्हें प्रजासुष्ठिका अधिकार मिला था। इनके मनुकन्या प्रसुतिसे १६ कन्याएँ उत्पन्न हुईं। १३ कन्याएँ धर्मको, एक चन्द्रको, एक कर्त्यपको और सती नामकी सबसे व्यारी कन्या शिवको व्याही गयी थी। इष्टके शिवरहित यज्ञमें सतीने देह स्वान किया था।

दशरथ—सूर्यवंशी महाराजा और विद्वराजकी कन्या इन्दुमतीसे इनकी उत्पत्ति हुई थी। इनके कौसल्या, कैकेयी और सुमित्रा तीन पटरानियाँ, और तीन सौ साड़ अन्य रानियाँ थीं। पटरानियोंसे राम, भरत, लक्ष्मण और शशुभ्र चार पुत्र हुए थे। इनके पहले शान्ता नामकी एक कन्या थी जिसको इन्होंने अपने मित्र अङ्गदेशाधिपति रोमपादको दृष्टकरूपसे दे दिया था और उन्होंने उसे अङ्ग-सुष्ठुपीको प्रदान किया था। महाराज वशरथने एक बार आखें खेलते समय अन्धमुनिके पुत्र अवश्यको हाथीके अंडसे शब्दमेही बायसे मार डाला, जब अन्धमुनिको यह बात मालूम हुई तो वे बढ़े ही बेचैन हुए और राजाको शाप दिया कि हमें जिसप्रकार पुत्रवियोगमें व्याकुल होकर मरना पड़ता है वैसे ही तू भी पुत्रवियोगमें तड़प-तड़पकर मर जायगा। इसी शापके परिणाम-स्वरूप कैकेयीने जब राम-चन्द्रासका बरदान मांगा और रामचन्द्रजी अयोध्या छोड़कर बन गये तो राजा दशरथ उनके वियोगको न सह सके और उन्होंने अपने प्राण त्याग दिये।

दिलीप—सूर्यवंशी राजा थे, इनकी द्वी पुत्रियोंने शरण दिलीपके विषयमें एक कथा है कि एक बार स्वर्णसे

आते समय इन्हें मार्गमें कामधेनु मिली, उसका दिलीपने अभिवादन नहीं किया, अतः उसने शाप दे दिया कि मेरी दुश्मी नन्दिनीकी सेवा किये बिना हुम्हारे पुत्र नहीं होगा। बहुत दिनोंतक राजाको कोई सन्तान नहीं हुई। अन्तमें वे शनीको साथ ले बशिष्ठजीके आश्रममें गये और वहाँ नन्दिनीकी सेवाकर उसके आशीर्वादसे रुकुको पुत्रल्पेण प्राप्त किया।

द्विदि—सुधीवका मित्र एक बानर था, इसमें एक हजार हाथीका बछ था।

दुन्दुभि—यह महियाकार दानव था। बालिहारा मारा गया था। इसकी अस्थियोंको रघुनाथजीने अपने बायें चरणके प्रहारसे बह कर दिया था। इसके सिरको बालिने अङ्गमूक-पर्वतपर फेंक दिया था, जहाँ मतक अधिक रहते थे। वहाँ रुदिंयकी धारा प्रवाहित होते देख अस्थियोंके शाप दिया था कि यदि वह उस पर्वतपर जायगा तो भस्म हो जायगा।

दुर्मुख—रामकी सेनाका एक बानर था।

दूषण—खरका भाई और रावणका सेनापति था। इसके अधीन पांच हजार सेनाथी थीं। यह दृष्टकारणमें रहता था और रामहारा मारा गया था।

नल-नील—ये दोनों बानर क्रमसे विश्वकर्मा और अग्निके पुत्र थे। श्रीरामकी सेनामें रहते थे। इन्होंने समुद्रके ऊपर पाषाणाका सेतु बांधा था। इनके विषयमें एक कथा प्रसिद्ध है कि जब वे छोटे बालक थे तब समुद्रके किनारे खेलते खेलते अङ्ग-सुष्ठुपीके आश्रमसे शालग्राम आदि पाषाणाकी मूर्तियाँ बालक समुद्रमें डाल देते थे। इसप्रकार मूर्तियोंके खो जानेपर मुनि जोग नल-नीलको बालक आन कोचित नहीं होते और न दृष्ट ही देते थे। हाँ, एक दिन एक मुनिने इतना कह दिया कि ‘आओ, तुम जोगोंके हाथसे स्वर्ण किया हुआ पाषाण जलमें नहीं ढूँगेगा।’ मुनियोंने इसप्रकार अपने उपास्य मूर्तिकी रक्षा की और उनके आशीर्वादसे नल-नीलने सेतु बांध अपने उपास्य-देवकी सेवा की।

नारद—देवर्णि नारद ब्रह्माके मानस-पुत्र थे। इष्टप्रजापतिके पुत्रोंको इन्होंने जगत्से जाप कर दिया था, इस कारण उन्होंने इनको शापसे छाट कर दिया। पुनः ब्रह्माके निवेदन करनेपर उन्होंने करवपको एक कन्या प्रवान की, जिससे मारव उत्पन्न हुए। इनके विषयमें आगवतमें कहा गया है

कि पूर्वजन्ममें वह वासीपुत्र थे, इनकी माता अधिष्ठोंकी सेवा करती थी, वाल्यकादसे ही इन्हें जूषि-उपदेश और प्रसाद प्राप्त होता रहा। जब इनकी माता सर्व-वंशसे भर गई तो इन्होंने अधिष्ठोंको आज्ञा के तपत्वा की और उरीर स्वाम करनेके बाद ब्रह्माके मानस पुत्र और महान् भगवत्तक हुए।

पनस—(१)रामदल्लका एक बानर। (२) विश्विषणके बार मन्त्रिष्ठोंमेंसे पृष्ठ।

परशुराम—पिता जमदग्नि और माता रेणुकासे इनकी उत्पत्ति हुई थी। विष्णुके दश अवतारोंमें एक वह भी है। राजा कार्तवीर्य सहजार्जुन एक बार जमदग्निके आश्रममें आये थे, वहाँ कामधेनुको देख प्रश्नुव्व थोड़े हरणकर ले गये। तब परशुरामजी कामधेनुको लानेगये और कार्तवीर्य-को युद्धमें मार डासे छोड़ लाये। इसके प्रतिकारमें कार्तवीर्य-के पुत्रोंने जमदग्निको मार डाला तब परशुरामजीने २१बार पृथ्वीको निःखत्रिय कर दिया। धनुष-यज्ञके अवसरपर जनक-पुरमें इन्होंने श्रीरामचन्द्रजीको विष्णुका धनुष चढ़ानेके लिये दिया और उसके चढ़ाते ही आप अत्यन्त विस्मित हो श्रीरामकी सुनिकर बचमें तप करने लगे गये।

पार्वती—पिता हिमालय और माता मैनासे पार्वतीका जन्म हुआ, इनका विवाह शिवजीसे हुआ। इनकी शिवजीके प्रति अनन्यता आदर्श है। गणेश और स्वामि कार्तिकेय इनके दो पुत्र थे।

प्रहस्त—रावणका सेनापति था। यह रावणके सामने अपनी बीरताकी डींग हाँका करता था। युद्धमें मारा गया।

पुलस्त्य—ब्रह्माके मानस-पुत्र थे। रावणके पितामह थे। इनकी गणना सहिष्ठोंमें होती है।

बालि—यह देवराज इन्द्र, और ब्रह्माके अस्तुमे उत्पन्न एक बानरीसे उत्पन्न हुआ था। यह किञ्चित्काला राजा था इसको ब्रह्माका बरदान था कि युद्धमें प्रतिझट्टीका आचा बल हर लेगा। सुग्रीव इसका सहोदर भाई था, उसके साथ अनीति करनेके कारण रामजीहारा मारा गया।

भरद्वाज—भरद्वाज-जूषिके पिता बृहस्पति, माता ममता थी। प्रवागमें इनका आधम था, तुष्यन्त-पुत्र राजा भरतने इन्हें पाका था।

भरत—क्षत्रियके पुत्र थे, इनकी माता कैकेयी और मामा शुभाजित थे, इनकी पत्नी मायदी थी। इनकी राम-अक्षिभक्तोंके लिये एक वर्ष आदर्श है।

भानुप्रताप—काशमीरके विकट केक्ष-देशका राजा था। इनका पिता सत्य नेतु, भाई भरिमदेव और ममती धर्मशिथि था। इन्होंने राजा काशकेतुका राज्य हरण किया था। प्रतिहिंसाके विचारसे कालकेतु छुल करके राजाके वहाँ रहा और छुलसे ब्राह्मणोंको नरमांस भोजन कराया, तब ब्राह्मणोंने प्रतापभानुको शाप दिया कि तू राष्ट्र-योनिमें जन्म ले। इसी कारण वह रावण होकर उत्पन्न हुआ।

भृगु—इनकी उत्पत्ति ब्रह्मासे हुई थी। यह महादेवके उत्तरपुत्र थे। इन्होंने परीक्षाये विष्णु भगवान्के हृष्टमें ज्ञात मरी थी।

मत्तह—जूष्यमूक-पर्वतपर रहनेवाले एक जूषि थे, शबरीको भक्तिका उपदेश इन्होंसे प्राप्त हुआ था।

मनु—महाके पुत्र और मनुष्य-जातिके आदि पुरुष हैं, इनकी सी शतरूपा है, यही दशरथ हुए थे।

मन्थरा—महारानी कैकेयीकी दासी थी, इसीकी सम्मतिसे कैकेयीने रामके लिये बनवासका बरदान माँगा था। मन्थरा कैकेयीके साथ केक्ष-देशसे आयी थी।

मन्दोदरी—पिता मयदानव और माता हैमा अप्सरासे मन्दोदरीका जन्म हुआ था। यह रावणकी धर्मशीका फली थी। मेघनाद और अक्षयकुमार इसके दो पुत्र थे। यह प्रसिद्ध पतिवता है।

माण्डवी—राजा अनकके भाई कुशकेतुकी कन्या-भरतको व्याही थी, इसके लघ और पुक्कर दो पुत्र थे।

मारीच—तालका राष्ट्रसीका पुत्र था। इसका पिता सुन्द यह था। विश्वामित्रकी यज्ञरक्षाके समय रामजीके वाल्यसे यह समुद्रके फिनारे जा गिरा था, पुनः रावणकी प्रेरणासे कपटदुग्धका रूप धारणकर सीताद्वारणका कारण बना और श्रीरामजीहारा मारा गया।

मेघनाद—(इन्द्रजीत)—रावणका पुत्र था, इसकी माता मन्दोदरी थी। साथी सुकोचना इसकी सी थी। एक समय इन्होंने युद्धमें रावणको बाँध लिया था, फिर मेघनादने इन्होंसे युद्धकर पिताको कुशाया और इन्होंको बाँधकर लाया था। इसको बर था कि वह बाहू अवृत्तक निष्ठा, नारीको त्यागकर केवल फल अशन करनेवालोंके हाथसे मारा जायगा। अतः इसको युद्धमें जामन्यजीने मार डाला।

मैनावती—हिमवान्की पत्नी और पार्वतीकी माता थी।

रम—रामदल्लका एक बानर था।

रघु—अयोध्याके प्रसिद्ध सूर्यवंशी राजा थे । इन्होंके नामसे रघुवंश चला । ये बड़े प्रतापी और शूरवीर थे, इन्होंने इन्होंको हराया था, इनके पिता विष्णुप और पुत्र अजये ।

राम—शत्रिय ग्रहारथके स्वामी कौसल्याके गर्भसे जब वहमें अवतारीय हुए थे । आपके पिता दशरथ, पुत्र लक्ष्मण, कुश, भाई भरत, अस्त्रय और शत्रुघ्न तथा पर्णी जनक-मन्दिनी श्रीसीताजी थीं ।

रावण—विष्णवा मुनिका पुत्र था । इसकी माता कैकसी, जी मन्दोदरी थी । इसने उत्कट तपस्याके बालसे ग्रहा और शिवसे अनेक वरदान प्राप्त किये थे । एक वरदानके हारा इसकी मृत्यु गर और बालरके अतिरिक्त किसीसे भी नहीं हो सकती थी । रामजीने इसको मारा । पूर्व जन्ममें यह जय नामक विष्णुका हारपात्र था, दूसरे जन्ममें भानुप्रताप राजा भी यही था । कुवेरके पुष्टक-विमानपर बैठकर रावण अब आकाशमार्गसे जाता हुआ कैलाशके निकट आया तब नन्दीधरने इसे कैलाश पार करनेसे मना किया । नन्दीधरकी बानर जैसी-मुखाहृति देखकर यह हँस दिया । इसपर उसने शाप दिया कि जाओ, बानरोंके हारा ही तुम्हारा नाश होगा ।

रेणुका—यह राजा प्रसेवितकी कल्पा थी । अमदिविकी पत्नी थी । परशुरामावतार हन्दोंके गर्भसे हुआ ।

लक्ष्मण—श्रीरामके छोटे पुत्र थे । इसकी माता सीता थीं । बालमीकिके आश्रममें इनका अन्म हुआ था, ये उत्तर कोटस्कके अन्तर्गत आवस्थीपुरीके राजा थे ।

लक्ष्मणसुर—मधुराहस और रावणकी भौती कुँभीनसीके गर्भसे इसकी उत्पत्ति हुई थी । पितृप्रदत्त शूद्रके प्रभावसे, यह दानव, देव और मनुष्य सबसे अजेय था । इसने राजा आनन्दाताको मारा था । वह अधिविदोंपर बड़ा अत्याचार करता था । श्रीरामचन्द्रजीने शत्रुघ्नको भेजकर इसका विभाश कराया ।

लक्ष्मण—श्रीरामके भाई लक्ष्मण शेषके अवतार थे । इनके पिता दशरथ, माता सुमित्रा, पर्णी डॉमिला, पुत्र अङ्गद और विश्रवेतु थे । श्रीरामकी सेवामें इन्होंने दनके साथ बन-नामन किया था । ये अनन्य राम-सेवक थे ।

लोमश—एक प्रव्यात अमर ऋषि हैं । आप काक-मुख्यदीयोंके गुरु हैं ।

लंकिनी—भूतोक्त्वासिनी राजसी लंकामें रहती थी । हनूमानजी सीताको लोकने अब लंकामें छुसे थे तब इस राजसीने उन्हें रोका था और हनूमानजीने इसे एक घूसा मारा था ।

वशिष्ठ—ब्रह्माके भाससे उत्पन्न हुए थे, कदम-ऋषिकी कल्पा अरुष्वतीसे इनका विवाह हुआ था । ये सर्वविद्योंमें एक हैं, रघुवंशके कुलगुरु हैं । प्रसिद्ध पाराशर ऋषि, इनकी पुत्रवधु अदृश्य-पत्नीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे ।

वाल्मीकि—आदिवासि थे । इन्होंने रामावतारके पूर्ण ही विद्य दृष्टिसे रामायणकी रचना की थी । अब श्रीरामजीने सीताको निर्वासित किया था तो उसे इन्होंके आश्रममें आश्रय मिला था । यह पहले वस्तु थे, भगवद्गर्भोंकी कृपा तथा राम-नाम जपके प्रभावसे परमभक्त हो गये ।

विमीपण—रावणका भाई था, इसके पिता विष्णवा, माता कैकसी, पत्नी (शैलुष-गन्धवंशी कल्पा) सरमा थी, यह श्रीरामका शरणागत भक्त था । रावणके मरनेके बाद लक्ष्मा राजा हुआ ।

विराध—एक विद्याधर था, जो दुर्वासाके शाससे राजस-योनिको प्राप्त होकर विश्रवेतुके दिविण वनमें रहता था, श्रीरामके हाथ मारा गया था ।

विश्रादा—रावणादि तीनों भाई, खर, शूर्पश्वला और कुवेरका पिता था, यह पुरुषस्यका पुत्र था, इसकी माता दृष्टकल्पा वृष्टी, जी देवर्यिनी, कैकसी, राजा और मालिनी थीं ।

विश्रामित्र—(कौशिक-गाधिष्ठनमय) कान्यकुब्जके पुरुषवंश-के गाधि राजाके पुत्र थे । इन्होंने सत्रियवंशमें उत्पन्न होकर भी अपने उपोक्तव्यसे ब्राह्मणत्वको प्राप्त किया था । इनकी उत्पत्तिके विषयमें ऐसा वर्णन है कि गाधिराजकी कल्पा सत्यवती श्रावीक-श्राविको व्याही थी, गाधिराज और श्रावीकके कोई सन्तान न थी इसलिये श्रावीकने ब्राह्मणवश चरके दो भाग किये । एकके साथ ब्राह्मण-सन्तानका और दूसरेके साथ चत्रिय-सन्तानका आशीर्वाद था । दोनों चर श्रावीकने अपनी पत्नीको देकर ब्राह्मणवाला चर उसे सानेके लिये तथा दूसरा चर गाधिराजकी जीको सानेके लिये कहा । गाधिराजकी जीने सोचा कि क्षायित् सत्यवतीका चर अधिक अंद्र होगा क्योंकि उसके स्वामीने

सैयार किया है, इसकिये छाक्से उसने उसके चलको अपने किये हो किया और अपना उसे हे दिया। फलस्वरूप गाधिराज-पत्नीके विशामित्र (जो आगे बदलकर आहाय हुए) और सत्यवतीके अमदगिल हुए, जो आहाय होते हुए भी चात्र-गुद्यसे शुक्ष थे।

शतरूपा—अद्वाके बायें हाथसे उत्पन्न हुई थी। स्वामीमुख मनुषी पत्नी थी। श्रीमारायणको पुत्रस्वरूपसे प्राप्त करनेके किये इसने बड़ी तपस्या की थी और वही कौतुकस्वरूपमें अवतरित हुई थी।

शत्रुघ्न—श्रीकाश्यवदाजीके छोटे भाई थे, इनके पिता दशरथ, माता सुमित्रा, जी श्रुतिकीर्ति, पुत्र सुवाहु और भूपकेतु थे। यह श्रीभरतजीके अनन्य भक्त थे। मधु नामक राष्ट्रसको मारकर मधुराषुरीको इन्होंने ही बसाया था।

शरम—राम-सेनाका एक थूपयति वानर था।

शरमंग—एक ऋषि थे। दक्षिणारथमें रहते थे, श्रीरामके परम भक्त थे। इन्होंने श्रीरामका बद्धनकर अपना शरीर व्याप किया था।

शबरी—एक भीज-कन्या (या एक तपस्तिनी) थी। मतङ्ग-ऋषिसे इसने ज्ञानोपदेश प्राप्त किया था। यह तपस्तिनी भगवान् रामके दर्शनार्थ घरमें तपस्या करती थी, इसने श्रीरामके आनेपर उनकी यथोचित सेवा की और उन्हें बन-कहा भोजन कराया था।

शान्ता—राजा दशरथकी कन्या थी। इसको राजाने अपने भिज अक्षयिराज छोमपादको पोत्युत्रिकाके रूपमें दिया था। पीछे यह महर्षि अत्यधिके साथ व्याही गयी थी।

शुक—रावणका एक दूत था।

शृङ्खी—श्रावशक्ति प्रसिद्ध तपस्वी थे। शमोक अथवा विभागदक ऋषिके पुत्र थे, इनकी जी शान्ता थी। राजा वृश्णुथने पुत्रेष्व-यज्ञका सम्पादन करनेके किये इनको अयोध्या भुक्ताया था। इनके आदीवांशसे राजा को चार पुत्र हुए।

श्रुतिकीर्ति—साक्षरूपके राजा कुरुभ्रजकी कन्या थी। शत्रुघ्नको व्याही गयी थी, इसके सुवाहु और भूपकेतु दो पुत्र थे।

सगर—सूर्यवंशी राजा आहुक्षे पुत्र थे। इनके दो राजिनीयों—सुमिति और केशिनी। केशिनीसे असमाजस, और

सुमितिसे साठ हजार पुत्र उत्पन्न हुए। सगर बड़े प्रतापी राजा हुए हैं, इन्होंने अनेक यज्ञ किये। एक बार हनुद्वैष्णवरा इनके यज्ञाथको बुद्धाकर कपिल-मुनिके आश्रममें वाँच आये। सगरके साठ हजार पुत्र उस अथवा खोजते हुए कपिलके आश्रममें पहुँचे और दोर समझकर उनके लाल मारी। मुनिका ज्यान भड़ कुप्ता और उन्होंने शाप देकर सबको भस्म कर दिया। पीछे इसी बंशमें भगवीरथ उत्पन्न हुए जो तपस्या करके गंगाजीको लाये और उनका उद्धार किया।

सती—दह प्रजापतिकी कन्या शिवको व्याही गयी थी। किसी समय शिवजीसे दह प्रजापतिकी अनवन हो गयी, इसकिये उन्होंने अपने यज्ञमें शिवको आमन्त्रित नहीं किया। सती शिवकी आङ्गा विना ही उस यज्ञमें गयी और वहाँ दहके मुँहसे शिवकी निन्दा सुनकर कोथित हो योगाप्तिसे देहको भस्म कर दिया। जब यह समाचार शिवको मिला तो उन्होंने जोरसे अपनी जटा पृथ्वीपर पटकी जिससे बीरभद्र उत्पन्न हुआ, उसके साथ अन्य शिवगणोंने जाकर दहके यज्ञको विच्छंस कर दिया और दहका सिर काटकर हवन कर दिया।

सम्पाती—जटायुका बड़ा भाई था। इसके पिता अल्प थे। दोनों भाई एक बार सूर्यको जीतनेकी इच्छासे उड़े। सूर्यके तेजसे जटायुके पंख जलने लगे। उस समय सम्पातीने अपने पंखोंसे उसकी रक्षा की। इसप्रकार अपने छोटे भाईकी सहायता करते वह स्वयं विन्द्य-पर्वतपर आ गिरा और निशाकर मुनिने इसकी शुश्रूषा की। जब सीताको खोजनेके किये बानर दक्षिण-समुद्रकी ओर जा रहे थे तब उनकी इससे मेंट हुई थी और इसने अपनी दूरदृष्टिसे सीताका पता बतलाया था।

सहस्राबहु—(सहजार्जुन, हैह्यराज या कार्तवीर्य) इसके पिता कृतवीर्य, माता एकावली थी। इसकी सी सत्यासे इसे १००० पुत्र हुए, जिनमें ६६५ को परशुरामजीने मार डाला। यह नर्मदा-नदीके तीर हैह्य-देशका राजा था। माहिमती इसकी राजाजीनी थी, एक बार लक्ष्मीधर रावणको हराकर इसने बन्दी कर दिया था। जिसे पुत्रस्वरूप मुनिने लुहाया। अमदभिमुनिको मारनेके अपराधमें यह परशुरामजीहारा मारा गया।

सारण—रावणका एक मन्त्री था, जो रामचन्द्रजीकी सेवामें एक बार मेह खेले गया था।

स्वयंप्रभा—विष्णु गन्धर्वोंकी कल्पा तथा हैमारी सही थी । विष्णु भगवान्‌के दर्शनार्थ गुफामें रहकर तपस्या करती थी । हनुमान्‌जीको सीताकी खोजमें जाते समय घ्यास लगी, तब जब पीनेके लिये वे इसकी गुफामें गये थे और इसमें डबकी भेट हुई थी ।

सीता—(जानकी, उर्बिजा, जनकनन्दिनी, भूमिजा) इनके पिता जनक थे । मिथिलामें एक बार अकाल पड़ा था तब राजाने खुशिके लिये स्वयं हल चलाया था, उस समय भूमिसे जानकी उत्पन्न हुई । इनके स्वामी श्रीरामचन्द्रजी प्रसिद्ध ही हैं । वे साहात् जगजननी माया थीं, इन्होंने अपने आचरणोंसे प्रतिक्रिया का महान् आदर्श दिखलाया है ।

सुकेन्दु—ताङ्का राजसीका पिता था ।

सिंहिका—राहुकी माता थी, यह पातालबासिनी राजसी समुद्रमें रहती थी । उइसे जीवोंकी परछाईसे ही उन्हें पकड़ लेनेकी शक्ति रखती थी । छङ्का जाते समय हनुमान्‌जीने इसे मारा था ।

सुतीक्ष्ण—आगस्त-मुखिके शिष्य थे । वह प्रसिद्ध रामों-पासक थे । इनकी प्रेमाभिकी आदर्शी थी ।

सुश्रीद—इनके पिता सूर्य थे और माता ब्रह्माके आँखेले उत्पन्न एक बानरी थी । श्रीरामचन्द्रजीके मित्र थे । बालिके मारे जानेपर किंचिन्धारके राजा बनाये गये थे ।

सुबाहु—ताङ्काके साथ रहनेवाला एक राजस था, कोई इसे ताङ्काका पुत्र बताते हैं । विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षा करते समय श्रीरामजीने इसे मारा था ।

सुमन्त—महाराजा दशरथके मन्त्री थे ।

सुरसा—स्वर्णलोकवासिनी एक राजसी थी । हनुमान्‌जी-को छङ्का जाते समय परीकाके लिये इसने उनको रोका था । अन्तमें प्रसव हो हनुमान्‌जीको आशीर्वाद दिया था ।

सुलोचना—वासुकी पुत्री और मेघनावकी पत्नी थी, वह बड़ी प्रतिक्रिया थी ।

सुवेण—एक वैद्य बानर था । इसने लक्ष्मणजीकी मूर्छा दूर करनेमें सहायता की थी ।

शूर्णजसा—रावणकी छोटी बहन थी । इसके पिता विश्वा के बालमीकिके अनुसार वह रावण कुम्भकरणसे छोटी और विमीक्ष्यसे बड़ी थी, कैकसीकी पुत्री थी, कोई कहते हैं कि इसकी माता राक्षा है और सहोदर भाई हर । विष्णुजिह्वे

व्याहो गयी थी, इसके पतिको रावणने भूलसे मार डाला था, विजया होनेपर इसने पञ्चवटीमें श्रीराम लक्ष्मणसे व्याहका प्रसाद किया था । फलस्वरूप इसके नाक और कान काट लिये गये थे ।

हनूमान्—इनके पिता केशी और माता अजना थी । यह एवनके पुत्र प्रसिद्ध हैं । प्रसिद्ध रामभक्त हैं । सुश्रीवके मित्र और मन्त्री थे । यह महावीर थे । श्रीरामके गाढ़े अवसरों-पर इन्होंने उनकी सेवा की थी । इनके पुत्रका नाम मकरध्वज था । यह शंकरके अवतार माने जाते हैं । ये बड़े बीर, व्याकरणके पवित्र और वेदज्ञ हैं ।

हरिश्चन्द्र—सूर्यवंशी राजा सत्यवतके पुत्र थे । इनकी शैष्या और पुत्र रोहिताध था । विश्वामित्रने इनके सत्यकी परीक्षा ली थी । सत्यपालनके लिये इन्होंने अपना सर्वस्व विश्वामित्रको दे दिया था और स्वयं रानी सहित विक गये तथा अनेक कष्ट सहे, परन्तु सत्यका पालन किया । इनका-सा सत्यवादी विरक्ता ही मिलता है ।

हैमा—विश्वकर्माकी कल्पा थी । विश्वाके दिव्य नगरमें रहती थी । वह मन्दोदीरीकी माता थी ।

रामायणकी ओर अधिक आकर्षण

रामायणमें गंगाकी उपत्यकासे दक्षिण ओर विस्तृत राक्षसोंके प्रदेशमें हिन्दू-धर्मके प्रसारका वर्णन पाया जाता है । महाभारतके उपदेश आश्रापालन तथा कर्त्तव्यपथका निर्देश करते हैं और उनकी पृति के निमित्त सब प्रकारके आत्म-बलिदान अथवा त्यागपर ज़ोर देते हैं । परन्तु उनकी अपेक्षा रामायणमें कहाँ अधिक सहानुभूति तथा सहदयतासे कौटुम्बिक जीवनके आनन्द सुदृढ़ होते दीखते हैं । पुत्र-प्रेम, स्त्रात्-प्रेम, दाम्पत्य-प्रेम तथा अपने सम्बन्धियों और पढ़ोसियोंके प्रति शुद्ध निःस्वार्थ प्रेमके ऊपर उसमें अधिक ज़ोर दिया गया है । तुलसीदास प्रभृति अन्य हिन्दू-कवियोंके द्वारा रामायणका सजीव चित्रण होनेके कारण जनता उसकी ओर अधिकाधिक आकर्षित हुई है ।

—नेष्टन (विश्वकोपरचिता)

आदि कवि वाल्मीकि

(लेखक—पं० भीरामचरितजी उपाध्याय)

(१)

सत्काव्य-संस्कृतिके चतुर .
अन्तर्तुर्ददन विधि आप हैं।
रस-रूपमें नवरक्षके ,
वसुधा-सुधानिधि आप हैं॥

(२)

सत्काव्य-कल्पद्रुम-गहनके ,
आप अनुपम मूल हैं।
सत्काव्य-रस-मकरन्दकेतो ,
आप विकसित पूल हैं॥

(३)

प्रत्यक्ष वसुधारी प्रणव हैं .
आप काव्यास्त्रायके।
हैं आप गौतमरूप ही .
सत्काव्यरूपी न्यायके॥

(४)

व्यामादि चेले आपके हैं .
आपके शुद्ध आप ही।
जगका जनक जगदीश है ,
ईश्वर-जनक ईश्वर वही॥

(५)

हैं कौन-सी ऐसी प्रभा ,
जिसमें न रविका द्योत है।
हैं कौन कृति जिसमें न प्रभुकी ,
उकि ओत-प्रोत है॥

(६)

उच्छिष्ट जो हरका गरल .
उससे हुए विष्वर सभी।
जो भाव जूठे आपके ,
उनसे हुए कविवर सभी॥

(०)

जो आपसे प्रतिभा-प्रभावित ,
भाव हो पाया नहीं।
वह दूसरे कविके हृदयमें ,
आज तक आया नहीं॥

(८)

नृपके चरितका वित्र चित्रित ,
आपने जैसा किया।
ब्रैलोक्यमें किस दूसरेने—
आज तक बैसा किया ?

(९)

जब आपने पुस्तक लिखी ,
तब राम प्रकटित थे नहीं।
येसा चरित-लेखक अपर ,
भूपर हुआ है क्या कहीं ?

(१०)

अमराचनीसे भी प्रयत्न .
साकेतको किसने किया ?
यह आपहीका काम था ,
राक्षस बना दिजको दिया॥

(११)

श्रीराम-चरिताचलि मुने!
यदि आप लिख देते नहीं।
सन्देह है , तो रामके यों .
नाम हम लेते नहीं॥

(१२)

प्रतिपल बदलता जो सदा .
विधिने रचा उस लोकको।
पर आपने कैसा बनाया ,
धन्य अव्यय श्लोकको॥

(१३)

सत्पात्र-गुणको कवि लिखे ,
यह आपका आदैश है।
शिल्पी वहाँ जाता नहीं ,
जो बनचरोंका देश है॥

(१३)

पथके प्रदर्शक आप यदि ,
संसारमें आते नहीं।
तो काव्य-काननके पथिक ,
हम बन कभी पाते नहीं॥

(१४)

है ईशां भी कवि किन्तु उससे ,
अत्यधिक तुम बढ़ गये।
वह आदिकविके मञ्चतक—
पहुँचा नहीं, तुम बढ़ गये॥

(१५)

कवि आप ही हैं, अन्य भी अब—
काव्यको करते रहें।
नर्तक गिरिश हैं, नाच करके—
भूत भी मरते रहें॥

(१६)

काव्याभिधार दृढ़ सेतु बाँधा ,
आपने ही पथमय।
अब पार करते हैं उसे ,
बलहीन भी होकर अभय॥

(१७)

कविवृन्द वन्दित आज भी है ,
आपके ही कृत्यसे।
समता न कर सकता यदपि वह ,
आपके लघुभृत्यसे॥

(१८)

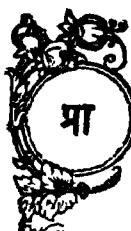
है रामसे ही आपका यश ,
राम-यश भी आपसे।
निर्मुक दोनोंने किया ,
संसारको चयतापसे॥

(२०)

उसको श्रिदिव्यमें भी सुधा—
मिल जायगी जाकर कभी।
जिसने सुधा पाई, तुम्हारे—
काव्यको पाकर कभी॥

भगवान् श्रीरामकी रावणपर दया

(लेखक—मेहता पं० श्रीलज्जारामजी शर्मा)



तःस्मरथीय गोस्वामी तुलसीदासजीका जगद्वन्द्य ‘रामायणमानस’ परम उल्लङ्घ ग्रन्थ होनेपर भी वह इतिहासकी गतजाग्रत्ता में आने चोन्ह नहीं है। वह वास्तवमें एक महाकाव्य है। उसमें बिना ठंगसे यथार्थव्य समय और स्थानोंपर सभी इसोंका समावेश किया आनेपर भी वह भक्तिरसग्राहन है। मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रको अवतार-अवतारी ही नहीं, परब्रह्म, परमात्मा, सर्वेश्वर मानकर उसकी अयसे इतिहास रचना की गयी है। कहावत प्रसिद्ध है कि एक बार महात्मा सूरदासजीने गोस्वामीजीसे कहा कि—‘आप जिन भगवान् श्रीरामचन्द्रकी उपासना करते हैं वे तो भगवान् के अशावितार हैं किन्तु मेरे आराध्य देव भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द्र अवतारी हैं।’ वास्तवमें गीतगोविन्दमें कवि-कुल-कमल-दिवाकर जयदेवकी और श्रीमद्भागवतमें वेदव्याख्याता भगवान् वेदव्यासकी गवाही भी उनके इस कथनका प्रतिपादन करती है। जो कुछ भी हो, गोस्वामीजी आश्रयक्षकित होकर कहने लगे—‘हैं, मेरे इष्टदेव भगवान् श्रीरामचन्द्र विच्छुके अवतार हैं? मैं तो अवतार राजा दशरथके ज्येष्ठ पुत्र समझकर ही उनकी आराधना करता था। अब—जब कि आप उन्हें अवतार मानते हैं तो उससे द्विगुण चतुर्गुण रूपसे उनकी उपासना करूँगा।’ यह गोस्वामीजीकी अनन्य भक्तिका हार्दिक उद्गार मान्न है किन्तु ‘रामायण-मानस’ के राम हैं तो वैसे ही जैसे उपर कहे गये हैं।

जिस तरह उक्त कहावत प्रसिद्ध है उसी ग्रन्थका कहा जाता है कि—एक बार सन्नाद अकबरने इन दोनों महात्माओंकी करामातके परीक्षणकी इच्छासे जहाँपर ये दपतित थे, वहाँ एक भन्त हाथी छुड़वा दिया। हाथीके चरणोंका शब्द सुनते ही महात्मा सूरदासजी वहाँसे भगे, किन्तु गोस्वामीजी अचल हिमाचलकी भाँति टप्ससे मस भी न हुए। बादशाहने सूरदासजीको झुखाकर इसका कारबा पूछा। वह कहने लगे—‘मेरा इष्टदेव व्याख्येका छोड़कर सात वर्षका बालक है। विशालकाय हाथीको देखकर कहीं उठ न जाय। अतः मैं, उसे लेकर भाग

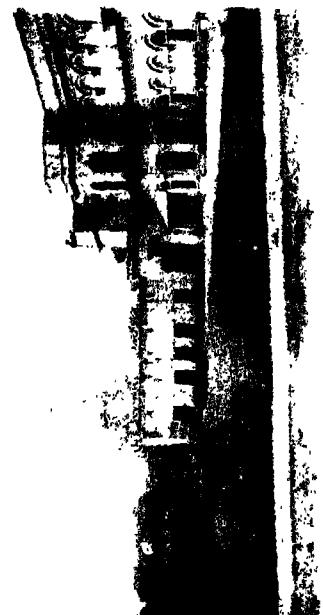
निकला।’ सब बादशाह बोले—‘फिर तुलसीदासजी क्यों नहीं भागे?’ उसमें महात्माजीने कहा—‘वह भगवान् मर्यादापुरुषोत्तम रामचन्द्रके उपासक हैं। उस समय ‘मानस’ में भेदनाव-वधकी रचना कर रहे थे। भागते भी तो कैसे भागते?’ दोनोंका भाव दोनोंके इव्यक्तिका उद्गार है। दोनों कहावतें और महात्मा सूरदासजीके शब्द दंकेकी ओट प्रकाशित कर रहे हैं कि गोस्वामीजीके विषयमें उनकी कैसी पूज्यतुदि थी।

इस उत्थापनांसे सिद्ध होता है कि गोस्वामीजीकी रचना इतिहास नहीं। इस दशामें जो सज्जन ‘मानस’ को इतिहास मानकर विविध तर्क करते हैं वे भूलते हैं। गोस्वामीजीने ‘रामायण-मानस’ की रचना वास्त्रीकीय रामायण, इन्द्रमधाटक, अनन्य-राघव प्रभृति अनेक इतिहास पुराण और काव्य-अन्योंके आधारपर की है। उसमें कथा-भाग विशेषकर वास्त्रीकीय रामायणसे किया हुआ है, अन्य भाग प्रायः भागवतके हैं। ‘मानस’ में किञ्चिन्द्याकायका अनुवर्णन भागवतके दशमस्कन्धके अनुवर्णनकी छाया है और उत्तरकायड़का कविधर्म भागवतके कविधर्मका ऊर्ध्व-का-त्वों भागवतके है। राजसराज विभीषण उषेष-बन्धु रावणसे तिरस्कृत होकर वाल्मीकिके अनुसार अवश्य ही भगवान्से लक्ष्मीका राज्य पानेकी लाक्षसाले गया था। वहाँ भक्तिके नामसे उसके मुखसे एक भी शब्द नहीं कहाया गया। गोस्वामीजीने अक्षरके ब्रजगमनके प्रसङ्गको भागवतसे लेकर विभीषणके हृदयमें प्रवेश करा दिया और इस तरह गोस्वामीजीकी कृपासे रामव्याप्ति विभीषण भक्तराज विभीषण बना दिया गया। इतना ही क्यों, भागवतसे कंसवधकी रचनाके आधारपर राजाके असाधेमें जो दृश्य दिखाया गया था, वही थोड़े बहुत हेत-फेरके साथ मानसकी अनन्दसमाँ में अनुष्ठानके समय आ विराजा है। उन्होंने जितना अंग भागवतसे किया है, वही खूबीके साथ किया है और कहीं कहीं तो ‘मानस’ में वह भगवान् वेदव्यासजीसे भी बाजी मार ले गये हैं। वही कंसके असाधेमें भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन करते समय वेदव्यासजीने ‘ओणां सरो गृतेनान्’ इस पदका उड्डेल कर राज-सभामें उपस्थित श्रीकृष्णकी माता, नानी, दादी, चाची

कल्याण



(अयोध्यापुरी)



नवगढ़ार घाट



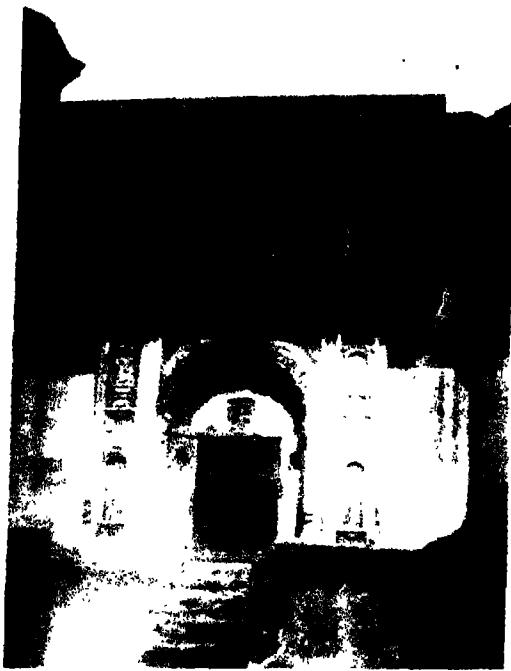
फांकी नदिगुहामठन



मन्दिर गाजडार

दुधा राजमहल—पीरो मन्दिर श्रीदेवी नेश्वर नाथ

कल्याण

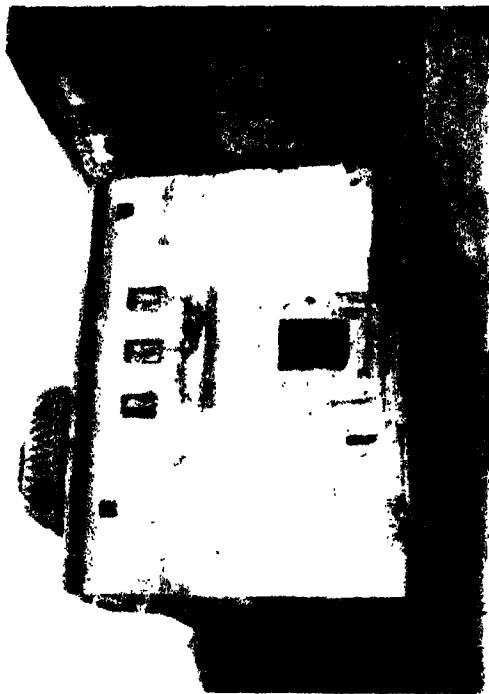


मन्दिर दशरथ-यज्ञ-भवन

(अयोध्यापुरी)



धर्म हरि



बैताक आकृत



गज शंखेश्वर

हृषीकेदिको जानो पञ्चशायकका शिक्षार बना दिया था । गोस्त्वामीजीको हृतना संचेप-हृतना अवर्यं परमन्द न आया, उन्होंने इसीलिये जनक-समामें बैठी हुई महिलाओंके विषयमें—‘जाको रही भावना जैसी । प्रभु भूत देखो तिन तैसीं।’ इस घौपाईके हृतार उन रमणीरत्नोंका हार्दिक भाव विस्तार कर केवल उनके साथ न्याय ही नहीं किया बल्कि उनको जोकापवासुसे भी चक्षा दिया । भगवतमें ही क्यों, संक्षुकके यावत् पुराणोंमें काल्योंमें किसी महिलाके नख-सिखका वर्णन करते हुए उसके सभी अंगोंका दृश्य से किया गया है । परन्तु गोस्त्वामीजीको जगज्जननी जानकीके विषयमें या किसी भी रमणीके विषयमें ऐसा विस्तार जगज्जननी भर्याद्विस्तृ भ्रातूम हुआ । उन्होंने जहाँ-जहाँ भगवतीके नख-सिखका वर्णन करनेकी आवश्यकता समझी, वहाँ-वहाँ नये-नये उंगले और ऐसे ढंगसे काम किया जिसका उनके पूर्ववती किसी कविने कभी स्वप्नमें भी ख्याल न किया होगा । यहाँ तक कि ‘सीता वरन चोच हरति भागा’ का उङ्गले उसके करते हुए उस अङ्गको स्पष्ट बचा दिया, जिसका प्रयोग बालमीकिलीने सुने शब्दोंमें किया था ।

इस अगह इन उदाहरणोंहृता यही विस्तार देना हृष्ट है कि काल्य और इतिहासमें बहुत भारी अन्तर हुआ करता है । ‘रामायण-मानस’ जैसे ऐतिहासिक काव्य अवश्य ही इतिहासोंके आधारपर लिखे गये हैं, किन्तु इतिहास-सेक्षनमें जहाँ व्यक्तिका—समाजका याथात्म्य—हृव्यु चित्र चक्षा किया जाता है वहाँ काल्यमें उसके प्रधान यात्रा, अथवा पात्रोंका चित्र सुधारकर विस्ताराया जाता है । चक्षके दोरोंको किपाना और गुणोंको प्रकट करना ही कविका कहेश्य है । परिणाम यह होता है कि प्रायः इतिहासमें प्रधान यात्रका जो उत्कृष्ट गुण है वही काल्यमें कहाँ कहाँ दोषकी झंझिलमें जाया जा सकता है । भगवान् रामचन्द्रजीके युद्ध चरित्रका एक उत्कृष्ट गुण यात्रा इसी सिद्धान्तके काल्य गोस्त्वामीजीकी सेक्षनीहृता ‘मानस’ में स्थान पड़ेका अविकारी नहीं समझा गया । उटना राम-रावण-सम्बन्धकी है ।

प्राण-प्रिय-बन्धु लक्ष्मणके भेदनाशकी शक्तिसे मूर्छित होनेपर केवल नरसीका दिलानेके लिये मर्यादा-पुरुषोत्तम रामचन्द्र प्रहृत मनुष्यकी तरह घटकाकर अवश्य रोये और पछुताये थे । अवश्य ही उन्होंने हृषकी तुरंजकाल विहङ्गानेमें कमाल कर दिया था किन्तु जब वही लक्ष्मण

३८

रावणके बायोंसे बेहोश हुए तब भगवान् मर्यादा-पुरुषोत्तमने एक सद्य आह तक न भरी । इसकर एक कारण था । उस समय रोने, बदवाने और पछुतानेका अवकाश था, इसलिये रोये-ओये, किन्तु इस समयकी दशा विलुप्त निराकी थी । इस समय परम पराक्रमी, विश्विलभी राष्ट्रसराज रावण भीसों हाथोंसे एक साथ सैकड़ोंकी संख्यामें बाय चक्षा-चक्राकर बानरी सेनाका संहार कर रहा था । इतना ही नहीं, इस भूम-धामसे आक्रमण करते हुए भगवान् रामचन्द्रकी और वह वह चक्षा आ रहा था । अपने आश्रित बानरोंकी—उन बानरोंकी जिन्होंने भगवानकी सेवामें आत्मविकाश करनेका इह संकल्प किया था—घोर विपत्तिके समय रक्षा करनेसे मन हटाकर यदि वह एक मिनटके लिये भी डूरते, भाईकी सेवा-शुश्रूपा अथवा चिकित्साका प्रबन्ध करनेमें लग जाते तो उनके विमल चरित्रमें कर्तव्यगूण्यताका काला टीका जगाकर उन्हें स्वार्थीपनका शिक्षार बनानेमें इतिहास-सेक्षन कहाँपि आना-कानी—रियायत न करते । हजर रावणकी शक्तिसे लक्ष्मण मूर्छित हुए थे और उधर बीरकेशरी हनुमानकी लातसे राष्ट्रसराज रावण । रावणको सचेत और युद्धके लिये सज्जद देखकर हनुमानजी-के परामर्शसे उन्हींके कन्धेपर सवार हो रामचन्द्रजी रावणका युक्ताला करनेके लिये आगे बढ़े । इस तरह आशूर्चे हकी उपेक्षा भले ही कहलाके परन्तु भगवान्ने अपने कर्तव्यका पालन करनेके लिये प्राणप्रिय भाईको—‘विष्णोर्भागममी-मांस्यमात्मानं प्रत्यनुस्मरन्’-के आधारपर छोड़ दिया । उनको एक बार कर्तव्यके अनुरोधसे अवश्यज तपस्वी शम्भूका वध करना पड़ा था, दूसरी बार प्राणप्रिया—हृदयेश्वरी जानकीका स्वाग करना पड़ा था और तीसरी बार अपने आश्रित भाईको मूर्छित अवस्थामें मृत्यु-अथवा किंकट छोड़ना पड़ा ।

इस तरह अवश्य ही वह कलेजेपर पथर रसकर परम प्रतापी शशुसे युद्धमें भुठमेह करनेको सज्जद हुए, परन्तु इसप्रकारका कर्तव्य पालन करते समय यदि वह भाईको भूल जाते तो एक ओरसे हटकर कर्तव्य-शून्यता उनपर दूसरी ओरसे आ चढ़ती । उन्होंने उक्त वाक्यहृता अपने प्रिय बन्धुको उनके अवतार होनेकी वाद दिलायी । उन्होंने भाईकी सेवा-शुश्रूपाका, उनकी रक्षा-चिकित्साका भार जग्तराज जग्तवान्, बानरराज सुश्रीव और राष्ट्रसराज विभीषणपर छोड़ा । इसप्रकारसे सब तरह तैयार होकर

भगवान् ने अपने शत्रुको खलकारा । वह कहने लगे—
 ‘तूने मेरा अधिय करनेमें कमी नहीं की है । यदि आज तू
 हथ्या, भास्कर, ब्रह्मा, वैशानर वा शङ्करकी शरणमें भी
 आता आय, यदि आज दर्शों दिशाओंमें भाग्यकर बचना
 चाहे तो भी मेरे हाथसे बचाकर नहीं निकल सकता । आज
 बेशक अपनी शक्तिये तूने बधमण्यको तावित किया है
 किन्तु मैं इस दुःखकी शान्तिके लिये तुम्हें पुत्रों और
 पीछोंसहित आरे बिका न छोड़ूँगा । जिन बाणोंसे मैंने
 अनस्थानमें औदृश सहज राजसोंका संहार किया था
 उन्हींसे तुम्हें मारूँगा ।’ इसके अवन्तर राम और रावणका
 घोर संग्राम हुआ । वही युद्ध, जिसके लिये वहाँ आता है—
 ‘रामरावणयोरुद्धं रामरावणयोरिव ।’ तात्पर्य यह कि इनको
 भिन्नत एक निराकर ढंगकी थी । वह ऐसा संग्राम या ऐसा
 संसारके इतिहासमें दूसरा—‘न भूतो न भविष्यति ।’ इस
 भीषण संग्राममें रावण घबड़ा उठा । वही रावण विचकित
 हो उठा जो सचमुच विश्विजयी कहलानेकी उमता रखता
 था । रामके बाणोंकी मारसे व्याकुल रावणका भुत्तुष हाथसे
 गिर पड़ा । उसका सूर्यप्रतिम किरीट खगड़-खगड़
 हो गया ।

आजकलकी कूटनीतिके अनुसार ऐसे घबड़ाये हुए
 शत्रुको यदि भगवान् रामचन्द्र उसी समय दबोच लेते तो
 कोई भी उन्हें बुरा कहनेवाला न था । समझ है कि
 घबड़ाये हुए शत्रुपर दया दिलानेवाले अंशुमण्डर आजके युद्धपटु
 वीर काव्यरता या बुद्धिमत्ताका कल्प लगावें किन्तु
 उनके उदार हृदयमें यदि इसप्रकारकी कूटनीतिको स्थान होता
 तो वह कदापि भर्यादा-पुरुषोत्तम कहलानेके अधिकारी न
 होते । वे बाक्षवमें भगवान्के अवतार थे । उन्हें अवतार
 केर संसारके इतिहासमें सर्वोत्तम आदर्श, नह-नका एक
 उद्धृष्ट आदर्श लाभ करना अभीष्ट था । वे आइते थे कि
 उनको उपमाके वही उपमेय हों । बस, उन्होंने वही कार्य
 किया जो उनके सदृश महात्मयको करना आहिये था ।
 उन्होंने घबड़ाये हुए कर्त्तव्यशून्य और अपनी प्राकृतिकाको
 उनकी अनुपस्थितिमें बलपूर्वक चुरा ले जानेवाले नीच
 शत्रुको समाधासम देते हुए सम्बोधन किया—‘यद्यपि
 तूने आज बड़ा भीम करके मुझे आत्मीन कर
 दिया है, तू मेरी अनुपस्थितिमें मेरी गृहिणीको बलपूर्वक
 पकड़ लाया था, इसलिये मैंने आज ही प्रतिज्ञा की थी कि
 मैं आज तेवा बध करके तुम्हें सदाके लिये भराशायी
 कर डालूँगा । किन्तु तू मेरे बाणोंकी मारसे व्याकुल है, तू

घबड़ते-घबड़ते थक गया है इसलिये अब तुम्हर प्रहार करना
 मैं उपरित नहीं समझता । आ, बाझामें आता जा । फिर अब
 तू तैयार होकर मुझसे युद्ध करनेके लिये सामने आवेगा,
 तब देखूँगा कि तुम्हें कितना शौच है ।’

प्रबल रामसे इस तरह उदारताका—दयाका व्यवहार पालकर
 रावण भागा हुआ बाझामें पहुँचा और तब इच्छर भगवान्
 रामचन्द्रको प्रियबन्धु बधमण्यकी विकिस्ता कराने—उन्हें
 आरोप्यता प्रदान करनेका अवसर मिला ।

रामवाणोंके भयसे पीड़ित और अधित रावणने यथापि
 बाझामें आकर शदृश ली, तथापि उसकी दशा उस समय बैसी
 ही थी जैसी पराकर्मी शर्दूलका तमाजा स्वाक्षर भूत मत्तंगकी
 अथवा गलवके पर्जोंसे हूटे हुए सर्पकी होती है । वह बारम्बार
 बहालके सहश असोच राम-शरोंकी मारको अवश्यकर व्याकुल
 हो रहता था । वह राजसोंकी सभामें सुवर्ण-सिंहासनपर
 आसीन होकर सोचने लगा । सभास्थल बढ़ी, सिंहासन बढ़ी,
 किन्तु विश्विजयी रावण आज पराजित, व्याकुल और
 भयभीत था । उसे आज वह राजसभा, वह ठाट,
 वह बैमध—सब ज्ञानेको दौड़ते थे । इस समय उसे यदि
 इसके बदले फूटकी झोपड़ी मिलती तो बनीमत थी ।
 सचमुच ही उसे माता पृथ्वी मार्ग दे देती तो उसमें
 समा जानेमें ही सन्तोष था । वह जिन रामका, एक समय
 मनुष्य समझकर निरादर करता था, जिन्हें एक समय
 तुच्छातितुच्छ मानकर उनकी प्रिय पत्नीको इर लाया था,
 हार पर हार और राजसोंका विनाश पर विनाश होनेपर
 जिनके लिये उसने—‘निज मुज बल मैं देर बढ़ावा । नैहाँ
 उतर जो रिपु नदि आवा ॥’ का प्रयोग किया उन्हीं रामके
 आगे आज उसे हार लानी वही । उनकी कृपासे-केवल
 उन्हींकी दधासे ग्राण बचाकर समर-भूमिमेंसे भाग आना
 पड़ा । राष्ट्र-सश्च अभिमानीके लिये इससे बदकर जजाकी
 कौन-सी बात हो सकती है ? भगवान् रामकी उस दधाको
 यदि वह बन्धवादपूर्वक बापस करनेकी उमता रखता
 तो अवश्य ही उसे सन्तोष होता । उसने अपनी करनीपर
 पकड़ताते हुए कहा—‘मैंने माताका, गृहिणीका, और भाईका
 उपदेश न मानकर बहुत बुरा किया । मैंने अङ्ग-सरीखे
 बसीठीको पालकर रामके प्रसादको दुकराया । मैंने उग्र तप
 करके बदेसे बड़ा बरदान पाया । उस बरदानके भरोसे मैं
 सुरेन्द्रतक्को तुष्णि समझता था । हाय ! हाय ! मैंने वर
 माँगते समय मनुष्य-आतिको तुष्णि समझकर वही भारी

भूत की । कथा अच्छा होता जो उस समय में मनुष्य-जातिसे भी अपनी अवश्यता माँग लेता । आज राजा अनन्तरथका कथन सत्य हुआ । वास्तवमें तपस्विनी वेदवती, पार्वती, बन्दीधर, रमा और वश्य-कन्याके शाप सब्दे हो गये । निश्चय, अब निश्चय हो गया कि वही वेदवती महाभागा सीताके रूपमें मेरा नाश करनेको अवतरित हुई है । जिस रावणके आगे हनुमादि देवता काँपते हैं, जिसका नाम लेसे ही त्रिलोकी सिहर उठती है उसी रावणको आज एक तुष्ण मनुष्यके आगेसे, उससे प्राण-मिथा प्रासकर भाग आना पड़ा । वाल्मीकीय रामायणमें हस विषयमें जो कुछ लिखा है वह उसका अविकल आपान्तर नहीं है । भाव उसके हैं और भावा मेरी है ।

इसप्रकार विलाप करते हुए रावणने भगवान्-रामचन्द्रके आमोघ वाश्योंका शिकार बननेके लिये भाई कुम्भकर्णको जगाया । इसके बाद जो कुछ घटनाएँ हुई उनका उल्लेख गोस्वामीजीके 'रामायण-मानस' में है, किन्तु सहस्रा समझमें नहीं आता कि वह ऐसे आवश्यक प्रसङ्गको—जिसका उल्लेख करनेमें शनुपर दया दिखानेमें उनके हृषदेवकी कीर्ति होती थी—क्यों क्षोड गये । अवश्य ही उन्होंने औरीस इजार वाल्मीकीय रामायणको मानस-जैसी क्षोटी पुस्तिकामें उल्लक्ष गागरमें सागर भरनेका सराहनीय उपक्रम किया है और हसलिये अनेक स्थलोंकी अन्यान्य कथाएँ अन्यत्र भी कहीं घटा देनी और कहीं विलकृत क्षोड देनी पड़ी हैं, किन्तु प्रभ यह उठता है कि भगवान्-रामचन्द्रके अधिक्रतीके उल्लिप्ता वर्द्धन करनेवाली यह कथा क्यों क्षोड दी गयी ? 'भावुरी' की पूर्ण संख्या २१में 'रावणका पश्चात्पाप' शीर्षक नोट देते समय भी इसका कारण मेरे ज्ञानमें नहीं आया था । किन्तु आय निश्चय हो गया कि जो कारण अधमेध-यज्ञका प्रसङ्ग क्षोड देनेमें था, जो कारण शम्भूके वधकी कथाका उल्लेख न करनेका था, वही कारण इस समय आ उपस्थित हुआ । अवश्य ही अधमेध-यज्ञका उल्लेख न करनेमें इतिहासका एक आवश्यक अंश हुट गया किन्तु मैं पहले ही कह चुका हूँ कि 'मानस' काव्य है इतिहास नहीं और काव्यके लिये आवश्यक होता है कि उसके प्रधान पात्र समलू दोषोंसे बचाये जायें । अधमेध-यज्ञका वर्णन करनेसे पूर्ण जगजननी सीताका स्वाग दिखाना पड़ता था, जब-कुछके हाथसे राम-सेनाका परावित होना दिखाना पड़ता था और ऐसा करना उन्हें अप्रिय था । उन्हें पसन्द न था । इसी तरह शम्भू-वध शुग्रमेंके अनुसार वर्णांशमध्यमेंकी रक्षाके लिये

अनन्तके भगवोरभवार्ण-उसकी हृष्टाको देखकर किया गया था किन्तु 'मानस' जिस समयकी रचना है उस समय वह बात पसन्द की जाने योग्य न थी । ऐसा ही कारण इस समय आ उपस्थित हुआ, अवश्य ही इस प्रसङ्गका उल्लेख न करनेसे भगवान्-रामचन्द्रजीकी विमल और आदर्श कीर्तिका आवश्यक अंश हूँट गया किन्तु हसे 'मानस' में उसकर गोस्वामीजीने उस आरोपसे अपने इष्टदेवको बचा लिया जो मूर्च्छातावस्थामें प्राण-प्रिय भाईको, अपने आश्रित भाईको, ज्वेष्ट बन्धुके लिये आपना सर्वस्व त्याग-कर साथ बचे आनेवाले भाईको दिसकते हुए छोड़कर युद्धमें प्रहृत होनेपर किया जाता । उन्हें भगवान्-श्रीरामकी नीति-निषुणता दिखानेकी अपेक्षा अनुरूप आत्मनेह दिखाना है था । किन्तु इतिहासकी इष्टिये, चरित्रकी आदर्शताका विदर्शन करते हुए ये तीनों ही घटनाएँ भगवान्के उल्लिप्त प्रजारञ्जन, नीति-परायतयता और कर्तव्य-पालनके ज्वलन्त उदाहरण हैं । ये ऐसे आदर्श हैं जैसे संसारके इतिहासमें दूसरे नहीं मिल सकते ।

रामायण नैसर्गिक काव्य है

रामायण केवल एक साधारण कहानी नहीं है । यह हृदय-तलसे विनिर्गत हुआ एक नैसर्गिक काव्य है, जिसकी प्रत्येक घटनाको अधिकांश भारतीय सत्य मानते हैं तथा उसमें उनका पूर्ण विश्वास है । यद्यपि इसकी रचना हुए अहुत काल बीत गया तथापि आर्योवर्तके सन्तानमें वह उसी रूपसे वर्तमान है, जैसा कि पचास पीढ़ी पूर्व उसके पूर्वजोंके हृदयमें उसे स्थान प्राप्त था । श्रीरामचन्द्रजीने अपने जन्मस्थानसे लेकर लङ्घातक, विजयपूर्ण प्रस्थानके समय जिन-जिन मार्गोंसे होकर झ्रमण किया था उनका अब भी धार्मिक यात्री पदवशः अनुसरण करते हैं । करोड़ों मनुष्योंका यह हृदय विश्वास है कि केवल श्रीरामचन्द्रजीका नाम लेनेसे ही आत्म-रक्षा तथा मुक्तिकी प्राप्ति हो सकती है । अतः जिन्हें भारतीय जनताके विषयमें पूर्ण जानकारी प्राप्त करनेकी अभिलाषा है, उनके लिये यह ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी है ।

—ओमन ('इष्टियन दपिकत'के रचयिता)

गोस्वामीजी और महिला-समाज

(लेखक—पं० श्रीजगद्गाथप्रसादजी चतुर्भेदी)



धर कुछ दिनोंसे लोग गोस्वामी तुलसीदासजीपर वह आचेप करने लगे हैं कि वह महिला-समाजके नियन्त्रक है और उसके लिये विष डगला करते थे । गोस्वामीजीको जीवभरमें कभी जीका मुख प्राप्त नहीं हुआ, इसीसे वह लियोंके विरोधी बन उन्हें जीकी-कटी सुनाने लगे । मासिकप्रत्योंमें इस विषयके लम्बे-बौद्धे लेख भी निकल चुके हैं । उनमें श्रीरामचरितमानसकी कुछ पंक्तियाँ उद्घृत कर वह सिद्ध करनेका प्रयत्न किया गया है कि गोस्वामीजी लियोंके शत्रु थे । पर मेरी समझते ऐसी बात नहीं है ।

यों तो जिसने भक्त और स्त्राणी हुए हैं श्रावः सबने ही कामिनी-काङ्कशको सब हुःसोंका मूल बताया और उनके इयाका उपरेका किया है । फिर केवल गोस्वामीजीपर ही वह आचेप क्यों ? इसके सिवा ‘रामचरितमानस’ की जिन पंक्तियोंके सहारे उनपर आचेप किया जाता है कि वह भी युक्तिसंगत नहीं है । क्योंकि वे पंक्तियाँ गोस्वामीजीकी बनायी होनेपर भी दूसरोंके मुँहमें कहलायी गयी हैं । इसलिये वह उनकी उक्ति नहीं हो सकती । किंतु उक्तियाँ-सिद्धान्त वही हो सकता है जो वह स्वयं कहता है । जैसे—

रामनाम मनि दीप धर, जीह देही द्वार ।
तुलसी भीतर बाहिरो, जो जाह्नवि उजिगार ॥
कामिह नारि पियारि जिमि, नेमिह प्रिय जिमि दाम ।
तिमि रघुनाथ निरन्तर, प्रिय लालहु मोहे राम ॥
रामनाम भवेष्वज, हरन बोर क्रम मूल ।
सो दधालु मोहि तोहिपर, रहे सदा अनुकूल ॥

जो वह दूसरोंके मुँहसे कहलाता है वह उसकी उक्ति नहीं हो सकती । जो पात्र जैसा होता है उसके मुँहसे वैसी ही उक्ति कहायी जाती है । अन्यथा होनेसे किंविकी निष्ठा होती है, पर आचेप करनेवाले यह बातें क्यों सोचने लगे ? उन्हें जो गोस्वामीजीपर आचेपकर पादिकर्त्तव्य किया गया है, फिर उनपर आचेप क्यों ?

‘मानसरामाधरण’ की जिन पंक्तियोंके कारण गोस्वामीजीपर आचेप होता है अब एक-एक कर उनपर ही विषयार करता हूँ । आशा है कि पाठक गोस्वामीजीके पढ़में ही निर्णय करेंगे । सुनिये—

कबने अवसर का भयठ, गथें नारि-विस्वास ।

बोग सिद्ध फूल समय जिमि, जतिहि श्रद्धाना नास ॥

‘गयें नारि विस्वास’ बस यही इसमें आचेपका कारण है पर इससे गोस्वामीजीपर आचेप नहीं हो सकता क्योंकि यह महाराजा दशरथकी उक्ति है और उस समयकी है जब कैकेयीने कहा था—

सुनहु प्रानपति भावत जीका । देहु एक बर भरतहि टीका ॥

माँगड़ दूसर बर कर बोरे । पुरबहु नाय मनोरथ मोरे ॥

तापस बैष विशेष उदासी । चौदह वर्ष राम बनवासी ॥

‘चौदह वर्ष राम बनवासी’ बाक्य राजा दशरथको बाब्सा बना, इसपर वह प्रकाशाप कर कहते हैं ‘गयें नारि विस्वास’ अर्थात् इस नानी कैकेयीका विश्वासकर मैं कैस गया । इसका संकेत कैकेयीकी ओर है, सारे नारी-समाजकी ओर नहीं, क्योंकि वह कैकेयीका ही विश्वास करके कैसे ये और किसीका नहीं । इसलिये गोस्वामीजीपर आचेप व्यर्थ है ।

अब दूसरा दोहा जीजिये—

काह न पावक जरि सर्क, का न समुद्र समाय ।

का न करं अवाग प्रबल, केहि जग काल न साय ॥

यही भी वही हाज है । श्रीरामचन्द्रजी जब वह आनेको नैवाह हो गये तब अयोध्याबासी आपसमें दुखी हो बातचीत करने हैं । कोई कैकेयीको सब अन्योंका मूल बताकर गालियाँ देता है, कोई भाष्यको दोष देता है । मनसाक यह कि सब ही अपनी-अपनी समझके अनुमार कुछ-न-कुछ कहते हैं । उन्हीं तुलसी दयोध्याचासियोंकी उक्ति है कि—‘का न करं अवला प्रबल’ अर्थात् लियाँ क्या नहीं कर मरती हैं, मरताक, सब कुछ कर सकती हैं । तुलसीदासजीने तो अयोध्याकी जनताका आब प्रदर्शित किया है, फिर उनपर आचेप क्यों ?

इतीश्वार—

सत्य कहहि कवि नारि स्वभाऊ । सब विधि अगम अगाव दुगाऊ ॥
निज प्रतिविम्ब बदक गहि जाई । जानि न जाइ नारि-भाति माई ॥

यह भी जनताकी उक्ति है, गोस्वामीजीकी नहीं ।

विधिहु न नारि-हृदय गति जानी । सकल कपट अथ अवगुन सानी ॥

यह भरतजीकी उक्ति है । नविहालसे आनेपर जब उन्होंने पिनाका भरण और राम, खण्डमण्य, सीताका वन-गमन सुना तब वह शोकसे व्याकुल हो गये । जब मालूम हुआ कि इन अन्योंकी जड़ शानी कैकेयी ही है, तब तो वह हतकुदि हो भाताको फटकारने लगे । भाताको फटकारते-फटकारते नारी-समाजनको फटकार ढाला । क्रोधमें लेना होता ही है । आजकल भी किसीसे 'जड़हाई होती है तो पृक्के अपराधपर उसके सारे खानदान और जातिभरको गालियाँ सुनगी पड़ती हैं । दो विधियाँ जातिके लोगोंमें फ़राड़ा होनेपर दोनों एक दूसरेकी जातिको

भी निहृष्ट बता देते हैं । इसी तरह भरतजीने मातापर गुस्ता होनेके कारण सारी छियोंको कपटिन, पापिन और अवगुणोंकी खानितक कह दिया । इस स्वाभाविक वर्णनके हेतु गोस्वामीजीपर आचेप न कर उचकी प्रशंसा करनी चाहिये ।

दोल गवाँर सूर षसु नारी । सकल ताड़नाके अधिकारी ॥

यह उक्ति भी समुद्रकी है । श्रीरामचन्द्रजीने जब धनुष चक्राया तब समुद्र 'विप रूप आयो तजि माना' उसी समयकी यह उक्ति है । गोस्वामीजी यहाँ भी बच गये ।

विस्तार-भयसे और अधिक न लिख यह लेख यहाँ समाप्त करता है । पर इतना और भी निवेदन करता है कि यदि तुलसीदासजी छियोंके निन्दक होते तो कौसल्या, सुमित्रा, सीता, अनसूया, तारा, मन्दोदरी आदिसे अच्छी अच्छी उपदेशमय बातें न कहजाते । मेरी समझसे गोस्वामीजी महिला-समाजका जितना आदर करते थे, उतना शायद आचेप करनेवाले भी न करते होंगे ।

कैसे आँ द्वार

बताओ कैसे आँ द्वार ?

१
भक्ति-दीप टिम टिम उदोत है ,
मन बैठा अज्ञान-योत है .
शवरी-सा न प्रेम स्रोत है ,
शंकाका व्यापार ;
हृदय-देशमें मचा वासनाओका हाहाकार ।
बताओ कैसे आँ द्वार ?

२
लिपटा विषम मोहमें यह तन .
कहता हूँ कुछ करना कुछ मन .
तुम्हीं बताओ रघुकुल-नन्दन !
कैसे हाथ पसार
गहूँ चरण, मागूँ किस मुखसे क्षमा-भीत कर्तार !
बताओ कैसे आँ द्वार ?

३
न हनुमत-सी स्वामि-भक्ति है ,
न लक्ष्मण-सी त्याग-शक्ति है ,
सात्त्विक तुलसी-सम न भक्ति है .
कह दो कौन प्रकार ;
गिरूँ, चरण-रजमें कर डालूँ जन्म सफल भर्तार !
बताओ कैसे आँ द्वार ?

भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके वनवासकी दिनचर्या

(लेखक—भीयुत बी० एच० वाडेर, बी० ए० इ० एल० बी०)

श्रीरामायण-प्रेमियोंके अवलोकनार्थं भगवान् के वनवासकी दिनचर्या अग्निवेश्यरामायण और लोमशरामचन्द्रके आधारपर उपस्थित की जाती है।

(१) विवाहके समय भगवान् रामकी अवस्था पन्द्रह वर्ष तथा महारानी सीताकी केवल छः वर्षकी थी। (अग्नि०रा०)

(२) वनवासके लिये प्रस्थान करते समय भगवान् सतीर्हेस वर्षके तथा भगवती सीता इक्षीस वर्षकी थीं। क्ष (लो०रा०)

वन-वास

वर्ष	दिन	घटना	वर्ष	दिन	घटना
प्रथम	३ रात्रिं	ज्वलाहार।	चतुर्दश	पौष कृष्ण ७	भगवान् रामको श्रीसीताकीके शुद्ध होनेका संबाद मिलना।
"	चतुर्थ रात्रि	फलाहार।	"	पौष कृष्ण ८	श्रीरामचन्द्रजीका सेनासहित शुद्धके लिये प्रस्थान।
"	पञ्चम रात्रि	चित्रकूटकी यात्रा।	"	उत्तराफलकृष्णी विजय-	
त्रयोदश	शूरपंचलाका अपमान तथा नाक-कान काटना।	"	सुहृत्त मध्याह्न	
"	माघ शुक्ल शुक्ल	रावणहारा सीता-हरण।	"	पौष कृष्ण ३०	श्रीरामचन्द्रजीका सेनासहित समुद्रसदपर ढहरना।
	शुहृत्त।		"	पौष शुक्ल ४	विभीषणका श्रीरामचन्द्रजीके शरव आना।
चतुर्दश	मार्गशीर्ष शुक्ल	सम्पातीने रामसे कहा कि सीता रावणके हीपमें हैं।	"	,, १० से १३ तक	सेतु-निर्माण।
"	मार्गशीर्ष शुक्ल	श्रीहनूमान्‌जीका कल्यान्कुमारीके समीपवर्ती महेन्द्र पर्वतसे छाँगांग मारकर लहरमें पहुँचना। यह स्थान महास-प्रान्तके तिन्नेवेली (Tinnevelli) लियेमें है।	"	,, १४	सेनाओंका सुखेल-पर्वतके उपर समतल भागका मार्ग दिखाना।
"	मार्गशीर्ष शुक्ल	बृचपर बैठे हुए श्रीहनूमान्‌जीका जीका श्रीसीताकीसे बारातीकाप।	"	पौष शुक्ल १५ से	सेनाओंका समुद्र पारकर लहरा पहुँचना।
"	मार्गशीर्ष शुक्ल	श्रीहनूमान्‌जीहारा अहय-कुमार आदि रावहसोंका वर्ष तथा अशोकवाटिका-विघ्नस।	"	माघ कृष्ण २	सेनाओंका कहे बड़ोंमें विभक्त किया जाना।
"	मार्गशीर्ष शुक्ल	इन्द्रजिनहारा श्रीहनूमान्‌जीका वशपात्रमें बंधना और हनूमान्‌जीहारा लकड़ाका बजाया जाना।	"	माघ कृष्ण ३ से	शुक्ल-साहस्रका सेनामें आ मिलना।
"	मार्गशीर्ष शुक्ल	श्रीहनूमान्‌जीका महेन्द्र-पर्वत पर लौटना।	"	१० तक	श्रीरामका स्व-सैन्य-निरीक्षण।
"	पौष कृष्ण ६	वानरोंहारा मधुवनका भाश।	"	माघ कृष्ण ११	रावणका स्व-सैन्य-निरीक्षण
			"	,, १२	तथा उनके उत्साहवर्द्धक शुद्ध-कला-प्रदर्शनका अवक्षोङ्क।
			"	माघ कृष्ण १३	अङ्गदजीका सम्बिन्दी शर्ते लोकर रावणके पास आना। (अङ्गद-शिष्टाच्छाव्य)।
				से १० तक	

* उपर्युक्त दोनों वर्षनोंमें भी सीन-की अवस्थामें मल नहीं होता, प्रथमके अनुसार सीता श्रीरामसे ९ वर्ष छाठी थीं तो दूसरेके अनुसार उनका ६ वर्ष छोटी होना लिख दे। भैरो समझसे सीताका बय विवाहके समय १२ वर्षसे कम किसी प्रकार नहीं था, इस सम्बन्धमें अन्यत्र प्रकारांशत 'विवाहके समय सीताजीकी अवस्था' शीर्षक लेख ध्यानपूर्वक पढ़ना चाहिये। —सम्पादक

वर्ष	दिन	घटना	वर्ष	दिन	घटना
चतुर्दश	माघ शुक्र २ से ८ तक	बानरों तथा राजसोंमें युद्ध- आरंभ ।	चतुर्दश	चैत्र कृष्ण १४	एक दिन युद्ध बन्द, तथा रावणका रण-दीवा ग्रहण करना अर्थात् स्वयं सैन्य सज्जाकरन करना ।
"	माघ शुक्र ५	रातके समय मेघनादहारा श्रीराम-कुम्भकर्णका नागपाशमें बाँधा जाना ।	"	" १०	रावणका युद्धके लिये राजचानीसे प्रस्थान ।
"	" १०	गलवहारा नागपाश काटा जाना ।	"	चैत्र शुक्र १ से ५	रावणके मन्त्रियोंका वध ।
"	" १०-११	दो दिन युद्ध बन्द ।	"	" ६ से ८	माहापाशवर्का वध ।
"	" १२	श्रीहनूमान्ती द्वारा घूमाहका वध ।	"	" ९	श्रीकुम्भकर्णजीके शक्तिशालित हो जाना ।
"	" १३	श्रीहनुमान्ती द्वारा कुम्भकर्णका वध ।	"	" १०	एक दिनके लिये युद्ध बन्द ।
"	माघ शुक्र १४ से फाल्गुन कृष्ण १	गोलहारा प्रहसनका वध ।	"	" ११	एक दिनके लिये युद्ध बन्द । मातलिका श्रीरामचन्द्रजीकी सेवामें युद्ध-रथ लेकर उपस्थित होना ।
"	फाल्गुन कृष्ण १	श्रीरामहारा रावणका रण- भूमिसे भगाया जाना ।	"	चैत्र शुक्र १२ से	लगातार अठारह दिनों तक
"	" २ से ४	चार दिनतक युद्ध बन्द, कुम्भकर्णका निद्रा-न्याग ।	"	वैशाख शुक्र १४	राम-रावण-युद्ध और अन्तमें रामहारा रावण-वध । युद्ध- समाप्ति ।
"	फाल्गुन कृष्ण ४ से ८	श्रीरामचन्द्रजीद्वारा कुम्भकर्णका वध ।	"	वैशाख कृ ०३०	रावणका धीरोचित अन्तिम- संस्कार ।
"	" ८ से १४	कुम्भकर्णके मृत्युशोकमें एक दिनके लिये युद्ध बन्द ।	"	वैशाख शुक्र १	श्रीरामका सुवेल पर्वतपर लौट जाना तथा युद्ध-त्रयमें टिकना ।
"	फाल्गुन शुक्र १ से ४	नरानन्दक पर्वं चार अन्य राजसोंका वध ।	"	" २	छांकमें विमीषणका रातगा- मिखेक ।
"	फाल्गुन शुक्र ४ से ७	असिक्कायका वध ।	"	" ३	श्रीसीताजीकी शुद्धि और श्रीराम-सीता मिलन ।
"	फाल्गुन शुक्र ८ से १२ तक	कुम्भ तथा निकुम्भका वध ।	"	" ४	श्रीरामका पुण्यक विमानपर चढ़कर उत्तर दिशाकी ओर जाना ।
"	फाल्गुन शुक्र १२ से चैत्र कृष्ण १	मकराहका वध ।	"	" ५	श्रीरामचन्द्रजीका भारद्वाजके आश्रममें इहरना । वनवासके चौथी वर्षोंकी समाप्ति ।
"	चैत्र कृष्ण २	मेघनादका बानर-सेनापर विजय ।	"	वैशाख शुक्र ६	नन्दीश्वरमें श्रीराम-भरतका मिलाप ।
"	चैत्र कृष्ण ३ से ७	५ दिनतक युद्ध बन्द तथा बानरोंका वैष्णव ओषधियोंतथा वनस्पतियोंका जाना ।	वर्ष	"	अयोध्यामें श्रीरामचन्द्रजीका राज्याभियेक ।
"	" ८ से १३	श्रीकुम्भकर्णजीद्वारा मेघनादवध ।			

अब्दरामायणके अनुसार रामायणका तिथिपत्र

(लेखक—श्रीयुत वी० एच० गाडेर वी०, प०, एल.एल.वी०)

श्रीगिरिधर-कृत एक छोटी-सी 'अब्दरामायण' है। इसमें भगवान् रामचन्द्रजीके शीघ्रतमी घनेक रोचक घटनाओंका वर्णन है। पता नहीं गिरिधरने इन घटनाओंका कहाँसे संकलन किया है ! तिथिपत्रके लिये निष्क्रियित सूची देखिये—

वर्ष	दिन	घटना	वर्ष	दिन	घटना
४ वर्ष	वैश शुक्र ६, आनन्द नाम संवत्सर मध्याह्न कालमे	श्रीरामचन्द्रजीका अवताररूपसे प्रकट होना।	(वनवास-का १३ वां वर्ष)	फाल्गुनसे अयोष शुक्र १	श्रीरामचन्द्रजीका पम्पा नदीके तटपर पहुँचकर तीन मास तक तपस्या करना।
५ वर्ष	विद्यारथभ।	(वनवास-का १४ वां वर्ष)	श्रीहनूमान्जीका पम्पासर (हम्प)के तटपर श्रीरामचन्द्रजी-से मिलाप।
११ वर्ष	व्रतवन्ध	”	”	श्रीराम-सुद्धीव-भेट।
१२ वर्ष	श्रीरामचन्द्रजीका, विरकामित्रके साथ उनके आश्रमको जाना।	”	”	श्रीरामद्वारा बालि-वध।
१४ वर्ष	स्वयंवरमें श्रीरामचन्द्रजीहारा शिव-धनुष-भंग और श्रीसीता-पाणि-ग्रहण।	”	”	सुग्रीवका किञ्चित्कामे राज्याभियेक।
१५ वर्ष	अयोध्या निवास।	”	”	श्रीरामचन्द्रजीका भाल्यवान् पर्वतपर जाकर वर्षाक्षतुभर एक गुफामें निवास करना।
२७ वर्ष		”	आवण	जिगाचंन।
तक ।		”	आश्विन कृष्ण	श्रीरामचन्द्रजीका पितृगत्या तथा पिताके सम्मानार्थ महाबल आद करना।
२० वर्ष	श्रीरामचन्द्रजीका वनगमन।	”	पौष	श्रीरामचन्द्रजीका गुफा स्थागकर आगे प्रस्थान करना।
२० वर्ष	१४ वर्षका वनवास।	”	आश्विन शुक्र १०	सुश्रीष्ठका सेना एकत्र करना।
४१ वर्ष		”	कार्तिक शुक्र १०	श्रीहनूमान्जीका श्रीसीताजीकी सोजामें प्रस्थान।
(वनवास-का प्रथम वर्ष)	वैशाख शुक्र १	वनवासका प्रथम दिवस।	”	मार्गशीर्ष कृष्ण ७	श्रीहनूमान्जीका समुद्रक्षेत्रन।
	वैशाख शुक्र २	श्रीरामचन्द्रजीका चित्रकूट पहुँचना।	”	मार्गशीर्ष शुक्र १०	श्रीरामचन्द्रजीका गुफा स्थागकर आगे प्रस्थान करना।
	वैशाख शुक्र ६	श्रीभरतजीका श्रीरामचन्द्रजीसे मिलाप। तदनन्दसर भगवान् का अनुमान १२ वर्ष ६ महीने पर्यन्त पञ्चवटीमें निवास।	”	मार्गशीर्ष शुक्र	श्रीहनूमान्जीका श्रीसीताजीकी सोजामें प्रस्थान।
(वनवास-का तेरह-वर्ष वर्ष)	कार्तिक कृष्ण ३०	शूरपंचासाके जाह-कान काटना।	”	१०	श्रीहनूमान्जीका अशोक-वाटिकामें सीताजीसे मिलाप।
	माघ शुक्र १४	श्रीसीताजीका अन्तर्दर्शन होना।	”	१२	श्रीहनूमान्जीका अपने दुलबल-सहित श्रीरामचन्द्रजीके पास आना।
	फाल्गुन कृष्ण ७	रावणद्वारा(माया) सीताहरण।	”	पौष कृष्ण ७	सेनासहित श्रीरामचन्द्रजीका समुद्र-तटपर पदाव कालना।

कल्याण



भगवान श्रीराम और काकभुसंडि ।
‘चलउ भागि तव पूप देखावहि’ ।

वर्ष	दिन	घटना	वर्ष	दिन	घटना
बनवासका			बनवासका		
१४वाँ			१४ वाँ	फाल्गुण कृष्ण ४	लिये समझाना ।
अथवा			वर्ष		श्रीरामका रावणके मुकुटोंको नीचे गिरा देना ।
भगवान्‌जी			"	फाल्गुन कृष्ण	कुडमकर्णका युद्धके लिये आना
आयुका	पौष शुक्र ४	श्रीविभीषणजीका श्रीरामजीसे मिलाप ।	"	६ से १४ तक	और उसका श्रीरामचन्द्रजी- द्वारा वध ।
४ १५वाँ			"	फाल्गुण शुक्र ४	महोदर, त्रिशिरा तथा अन्य रावणके सेनापतियोंका युद्धमें मारा जाना ।
वर्ष	पौष शुक्र ८ से	सेनानीर्माण ।	"	तक	अतिकाय वध ।
	१२ तक		"	फाल्गुण शुक्र ८ से	कुम्भ, निकुम्भ, जह तथा अन्य राजसोंका वध ।
"	पौष शुक्र १४	सेनासहित श्रीरामचन्द्रजीका समुद्र पार करना ।	"	७ तक	मकर, अस तथा अन्य योद्धाओंका वध ।
"	माघ कृष्ण	लक्ष्मीजीका वेरा जाना ।	"	फाल्गुण १३ से	मेघनाथका युद्धके लिये आना ।
	३ से १० तक		"	बैत्री कृष्ण १३ तक	श्रीहन्मान्‌जीका द्वोषागिरि लाना और धायल वानरोंका आराम होना ।
	माघ कृष्ण ११	रावणके शुक्र एवं सारथा नामक दूर्तोंका श्रीरामचन्द्रजीके पास आना ।	"	बैत्री कृष्ण २	६ दिनोंतक घनघोर युद्ध ।
"	माघ कृष्ण १२	लक्ष्मीके मुख्य-द्वारका अवरोधकर सेनाका स्थापित कर देना ।	"	बैत्री कृष्ण १३ से	माततिका युद्ध-रथ लेकर श्री- रामचन्द्रजीकी सेवामें उपस्थित होना ।
"	माघ कृष्ण ३०	श्रीरामका माया-मस्तक रक्षकर रावणद्वारा भगवती सीताको धोखा देनेका प्रयत्न ।	"	बैत्री कृष्ण १३	१८ दिनोंतक श्रीराम रावणका घोर युद्ध ।
"	माघ शुक्र १	सन्धि (शिष्टाई)के लिये अङ्गदका रावणके पास जाना ।	"	बैत्री कृष्ण १३	रावणका वध ।
"	७ - ८	घनधोर युद्ध ।	"	बैत्री कृष्ण १३	श्रीसीता-राम-मिलाप ।
"	९	अङ्गदपनका वध ।			
"	१३	श्रीगद्वारा वज्रवैद्युतका वध ।			
"	१५	नीलद्वारा प्रहसनका वध ।			
"	फाल्गुण कृष्ण २	मन्दोदरीका रावणको, श्री- रामचन्द्रजीके साथ सन्धि करनेके			

तुलसी

तुलसीकृत राम-कथा जगमे, नर-नारिन तारनकूं पुल-सी ।

पुलसी भवसागर पारन कूं, पाढ़ि कै मन गाँठ गई खुल-सी ॥

खुल-सी गठरी गई पापनकी, धुल-सी गई औ जनता हुलसी ।

हुलसी जनता, हुलसी वसुधा, हुलसी हुलसी, जानिकै तुलसी ॥

श्रीअवन्तविहारी माथुर 'अन्त'

वनगमन और रावणवधकी तिथियाँ

(लेखक—पं० श्रीरामचन्द्रजी मिश्र)

(१) श्रीरामचन्द्रजीकी वनवास-यात्रा किस दिन आरम्भ होती है ?

(२) रावणका बघ किस मासकी किस तिथिको हुआ ?

(३) श्रीरामचन्द्रजी किस मासकी किस तिथिको वनवाससे अयोध्यामें जाए ?

(४) उनके वनवासके चौदह वर्षों पूर्ति किस भाँति हुई ?

उपर्युक्त विचारोंमें परस्पर बहुत मतभेद है, इस सम्बन्धमें हम अपने विचार करना : प्रकट करते हैं।

(१) भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी वनवास-यात्रा किस दिन आरम्भ हुई ?

यह सब जानते हैं कि विस दिन रामचन्द्रजीका राज्याभियेक उत्सव था, उसी दिन उनको चौदह वर्षके लिये वनवास-यात्रा करनी पड़ी। इसलिये अभियेक-तिथिके निर्णय-के साथ ही उनकी वन-यात्रा-तिथिका भी निर्णय हो जाता है। अब देखना चाहिये कि उनका अभियेक किस दिन था ? वाल्मीकीय रामायणमें अभियेकके मास और नक्षत्रका तो उल्लेख है, पर पहला और तिथिका कुछ निर्देश नहीं। न हो, किन्तु मास और नक्षत्र ही पहला और तिथिका पता देते हैं। महाराज दशरथ अभियेकसे पहले दिन रामचन्द्रजीको कुवाकर कह रहे हैं कि—

‘इस समय चैत्रका सुन्दर और पुण्य मास है, जिसमें सब वन जंगल फूल गये हैं। आज पुण्यसे पहले नक्षत्र उनर्वन्सुपर चन्द्रमा आया है। योतिथी लोग कहते हैं कि कल निश्चय पुण्य (नक्षत्रके साथ चन्द्रमाका) योग है, तुम पुण्यनक्षत्रमें कल अपना अभियेक करा लो। मेरा अनन्दकरण मानो मुझसे शीघ्रता करा रहा है।’ (वा० रा० २। ३। ४ पं० ३। ४। २१-२२)

महाराज दशरथके कथनसे स्पष्ट हो गया कि चैत्र-मासके पुण्य-नक्षत्रमें अभियेक होनेवाला था, इससे पहला और तिथिका

* श्रीरामके वन जाने और लक्ष्मीविजयक पश्चात् पुनः अयोध्या लौटनेकी तिथियोंके सम्बन्धमें कन्याणमें पहले श्रद्धेय मिथिका एक विचारपूर्ण लेख प्रकाशित हो चुका है। तिथिपत्र सम्बन्धी दो अन्य लेख इस अंकमें छपे हैं अतएव पाठकोंके अवलोकनार्थं उम्म लेखका आवश्यक अंदा यहाँ उद्धृत किया जाता है। —सम्पादक

भी निश्चय आपसे आप होजाता है, क्योंकि योतिथीकी गणनाके अनुसार पुण्य-नक्षत्र चैत्र-मासके शुक्लपक्षमें ही आता है, सो भी केवल नवमी दशमी और एकादशी इन तीन तिथियोंके भीतर ही। नवमी रिक्ता होनेसे राज्याभियेकके लिये बर्जित है। एकादशी नवातिथि होनेसे राज्याभियेकके लिये कुछ विशेषता नहीं रखती इसलिये अर्थोपति-प्रमाणासे यह सिद्ध हो जाता है कि चैत्र-मासके शुक्ल-पक्षमें पुण्यशुक्ल पूर्णातिथि दशमी राज्याभियेकके लिये नियत हुई थी। किन्तु कैफेंचीकी इच्छासे राज्याभियेक रुक गया और श्रीरामको उसी दिन वन जाना पड़ा। यथापि चैत्र-मास राज्याभियेकके लिये अप्राप्य है जैसा कि मुहूर्तशास्त्रमें लिखा है—

नाभियेकः गुमो वाप्यो नृपे चैत्रादिमासके ।

न मूसुते प्रसुते च विष्णौ रिक्तामु रात्रिमु ॥

(चण्डश्चरः)

उत्तरात्रय मैत्रेन्द्र-धातृ-चन्द्र-करोदुपु ।

सशुद्धश्चीज्य-पौष्णेषु कुर्याद्राज्याभियेकनम् ॥

(कदम्प)

अर्थात् ‘देवशब्दनके समय, चैत्रमास, अधिक मास, रिक्ता तिथि और मंगलवारमें किसीके मतमें, कुछवारमें भी राजा का अभियेक अशुभ कहा गया है। तीनों उत्तरा, अनुराधा, उषेष्ठा, रोहिणी, मृगरीषी, इस्त, अवशा, अश्विनी, पुण्य, और रेती इन नक्षत्रोंमें राजा का अभियेक करना चाहिये’ किंतु भी महाराज दशरथने बर्जित चैत्रमासमें ही रामाभियेक कर डालनेके लिये शीघ्रता की। इहनी शीघ्रता की कि ‘कोसल-साम्राज्यकी भवित्व युवराजीके पिता मिथिकाधिपति नृपति सीराज्ञ घनकक्षो और प्रभाव-शक्तिनी तस्वीरानी कैफेंचीके सेवर्षी पिता प्रबल सम्बन्धी केवल राजाको भी बुझा नहीं सके। और कह दिया कि कोई बात नहीं, अभियेकके ग्रिष्म संवादको वे पीछे सुन लेंगे (वा० रा० २। १। ४८) ।

वयपि राजा की मृत्यु आदि राजनैतिक संकटके समय अभियेकके मुहूर्तके लिये राष्ट्रश विवेचनकी आवश्यकता नहीं होती, परन्तु महाराज वशरथने मुहूर्तके लियोष आज्ञोचनकी उपेक्षा कर इनकी स्वरा क्यों की? इसका उत्तर रामायणमें स्वयं वे ही श्रीरामचन्द्रजीके सामने इसमकार दे रहे हैं—

‘हे उत्तर राष्ट्र! और भी एक बात है कि आज मैंने (बड़े) अशुभ स्वाम देखे हैं। (आकाशमें) निर्वात शब्द हो रहे हैं और वहाँसे महानाद करती हुई उलझाएँ पढ़ रही हैं दैवज्ञ बता रहे हैं कि मेरे नक्षत्रपर हे राम! शुक्र, मङ्गल और राहु दास्य प्राह आये हुए हैं। ऐसे निर्मितों (उत्पातों) के प्रादुर्भाव होनेपर प्रायः राजा की मृत्यु होती है और (कोई) घोर विपद् आती है। अतः जबतक किसी तरह मेरा चित्त मोहित नहीं होता है, उससे पहले ही (तुम अपना) अभियेक करा लो क्योंकि मनुष्योंकी हुड़ि स्थिर नहीं रहती। इस तरहके कार्योंमें बहुत विज्ञ आ पड़ते हैं, जबतक भरत राजधानीसे बाहर हैं, तबतक ही मेरी सम्मतिमें तुम्हारे अभियेकके लिये (अद्वा) आवसर है। यह ठीक है कि तुम्हारे भाई भरत (जबतक) सत्-पुरुषोंके आचरणमें स्थिर हैं। किन्तु मेरी सम्मतिमें मनुष्योंके चित्त सदा एकरस नहीं रहते। (वा० रा० अ०)

यह हो सकता है कि रामायण-नुगाके किसी मुहूर्त-शास्त्रमें राज्याभियेकके लिये शाश्वत चैत्र-मास चर्चित न हो और यह भी ठीक है कि श्रीराम-राज्याभियेकका मुहूर्त वाहं दुर्बल दैवतातिके सामने पराजित हो गया, तो भी उपरके अवतरणसे यह तो मानना ही पड़ेगा कि कोशलेश्वरने राज्याभियेकके सब अङ्गोंपर सन्तोष-जलक रीतिसे विचार नहीं किया और न करना चाहा। श्रीरामचन्द्रजीके समझ सर्वक-हृषय कुछ जृष्टिने जो हृदयका उद्धार प्रकट किया और जो आवेग दिलाया, उससे तो यही प्रतीत होता है कि उन्हें बहिया मुहूर्तकी आवश्यकता नहीं थी, अभियेकके लिये बहुत भारी तैयारीकी लालसा भी नहीं थी। लालसा थी तो एकमात्र यही कि किसी तरहसे भी जल्दी-से-जल्दी वे एक बार लोकनयनाभिराम श्रीरामको सूर्योदयके प्रधान और विप्रतिष्ठित राजसिंहासनपर अभिविक्ष देखकर नेत्रोंको सफल कर लें। वे इतने अधीर क्यों हुए? भास्त्रम होता है कि अयोध्याके साम्राज्य पर जो विषयि आनेवाली थी, उसके विषावकी छापाने उनके हृषयको बेर लिया था। उससे समुद्रगढ़ीर वे

राजपि इसने विहूल कौर चञ्चल हो गये हि आकाशकी तरह निष्ठलंक लोकपावन महात्यागी राजकुमार भरतजी पर भी अस्त्र सन्देह कर बैठे। शेक्सपीयरद्वारा कल्पित कलिनायक हैमलेटका शाश्वत-गर्भ उन्माद और किंवा लीयरका परिणामावृक्ष शाश्वत पागलपन भी पड़ा है, पर अत्यायुगके अधिप्रशंसित देव-वन्दित उस पुरुष-श्लोक अमर नरपतिके अनकी प्रकृत अनवस्थाका किंव्र बहा ही अमैस्यर्णी है। जो हो, ऐसी वशामें जो कुछ होना था वह हो गया। भगवत्-संकेतसे घटनाचक घूम गया। अभियेक-दिन निर्वासन दिनमें परिष्कृत हो गया। अयोध्यावासियोंके आनन्दका सूर्य उदय होते ही अस्त हो गया। वह दिन श्रीरामचरितके आमोहोनमें ऐसा उच्च रेकर्ड है जिसके एक तरफ रामाभियेकके आनन्दकी भैरवीका आलाप पूर्ण होनेसे पहले ही दूसरी ओर रामवन-शाश्वती सोहनीका शोक-संगीत शुरू हो जाता है। जो हो, आर्यजातिके इतिहास-प्रांगणमें आज भी वह दिन एक ऐसे उच्च गोपुरकी तरह दरकायमान है, जिसकी एक विशापर ‘सत्यसंघ वशरथ और रामाभियेक’ और दूसरीपर ‘पितृभक्त श्रीराम और उनकी बन-यात्रा’ अद्वित है एवम् मस्तकपर दिखा है—

‘चैत्र शुक्ल १० पूर्णनक्षत्र’

श्रीरामचन्द्रजीके बन-गमनकी तिथिका निर्णय हो गया। इसके बाद यह निश्चय करना है कि—

(२) रावणका वध किस मासकी किस तिथिको हुआ?

रावणवधक भगवान्‌की जीलाओंके समय या तिथिका क्रम इसप्रकार है—

चित्रकूट
१— यात्रा-दिनसे छठे दिन, अर्थात् चैत्र-
शुक्ल १५ को रामचन्द्रजी चित्रकूट पहुँचे।

अत्रि, शरभंग,
सुतीष्म आदि
ऋषियोंके आश्रम
अथवामें रामचन्द्रजी दश वर्षतक
रहे और यह सारा समय उनका सुखसे
बीत गया, विराधका वध वे बनवासके
आरम्भमें ही कर चुके थे।

तत्र संवत्सरस्तस्य मुनीनामाश्रमेषु वै।

रमतश्चानुकूल्येन यगुः संवत्सरा दश ॥

(रा० ३।१।२६)

सुतीक्ष्ण-आश्रममें
पुनर्गमन ३—बनवासके न्यारहवें वर्षके आरम्भमें
श्रीरामचन्द्रजी सुतीक्ष्ण सुनिके आश्रममें
दूसरी बार आये और वहाँपर अनुमान
वश मासतक अर्थात् वर्षाकालकी समाप्ति तक रहे ।

सुतीक्ष्णस्थाप्रमपदं पुनरेवाङ्गाम इ ।
तत्रापि न्यवसद्रामः किञ्चित्कालमिन्दमः ॥

(रा० ३।११।२८-२९)

अगस्त्याश्रम ४—न्यारहवें वर्षके न्यारहवें महीनेमें
कार्तिक मासमें श्रीरामचन्द्रजी अगस्त्य
सुनिके आश्रममें पहुँचे ।

पश्चिन्यो विविवास्त्र प्रसन्नस्तिलाशयाः ।
इंसकारण्डवाकीणीश्वकवाकोपशेषिभितः ॥

(रा० ३।११।४०)

पञ्चवटी और ५—बाहरवें वर्षकी वर्षां अनुके आरम्भमें
सीताहरण भगवान् श्रीराम पञ्चवटीमें आये,
जटायुसे मिले ।

'मयूरनादिता रस्याः' 'दश्यन्ते गिरयः सौम्याः' ।
(रा० ३।१५।१३।१४)

वह वर्ष उनका वहींपर समाप्त हो गया । तेरहवें
वर्षके मार्गशीर्ष मासतकका समय भी वहींपर विविज्ञातासे
खलीत हो गया ।

वस्तस्तस्य तु सुखं रावस्य महात्मनः ।
शरद्व्ययाये हेमन्तऋनुरिद्दः प्रवर्ततः ॥

(रा० ३।१६।१)

शूर्पशासके कण्ठ-नासिका-छेदनके अनन्तर अन-
स्थानके छौदह महान् राहस्योंका वज हो लेनेपर तेरहवें
वर्षके तीसरे महीने अर्थात् शिशिर अनुके अन्तिम मास
फाल्गुनके आधपक्षमें रावणने भीतार्जिका अपहरण किया ।

कुम्भापचयव्ययाः पादपानस्यवर्ततः ।
कर्णिकारात्मशोकांश्च चूतांश्च मदिरेक्षणाः ॥

(रा० ३।४२।३०।३१)

पम्पासरोवर और ६—सीतान्वेषणके समय क्लब्ध-वध
ऋष्यमूक पर्वत और शबरी-उद्भारके बाद अनुमान तेरहवें
वर्षके पौष्टिवें (वसन्त अनुके वैशाख)
मासमें भगवान् क्रमशः पम्पासरोवर और
ऋष्यमूक पर्वतपर पहुँच राज्यस्थुत सुप्रीवसे मिले ।

गन्धवान् सुरभिमीसो जातपुष्पफलद्रुमः ।

(रा० ४।१।१०)

बालिबध और ७—तेरहवें वर्षके सातवें (आषाढ़)
प्रसवण पर्वत मासमें वालिका वध हुआ । पश्चात्
आवणसे लेकर पौष्टि कृष्णा ए अर्थात्
चौदहवें वर्षके आरम्भतक श्रीरामचन्द्रजी
प्रसवण या भाल्यवान् पर्वतपर रहे ।

पूर्वोऽयं वार्षिको मासः श्रावणः सलिलागमः ।

प्रवृत्ताः सौम्य चत्वारो मासा वार्षिकसंक्षिताः ॥

कात्तिकि समनुप्राप्ते त्वं रावणवधे यतः ।

(रा० ४।२६।१३-१५)

८—चौदहवें वर्षके प्रथम मास मार्गशीर्ष-
की शुक्ल ११को महादीर हनूमान् लंकामें
धुसे । अगले दिन द्वादशीको उनका
श्रीजानकीजीसे संवाद हुआ ।

हिमव्यपायेन च शीतरविमरम्युत्यितो नैकसहस्रदिमः ।

(रा० ५।५।१)

सेना-प्रयाण ९—पौष्टि कृष्ण अष्टमी उत्तराकाल्युनी-
नहव्रतमें भव्याहके समय ।

अस्मिन् मुहूर्ते सुग्रीव प्रगाणमभिरोचये ।
युको मुहूर्ते विजये प्राप्तो मध्यं दिवाकरः ॥

उत्तराकाल्युनी हुआ

(रा० ५।४।३६)

सुवेल शिखापाण १०—पौष्टि शुक्ल चतुर्वेदी या पौर्णमासी-
आरोहण को सेनाके अप्रभागको त्रिकूट पर्वतपर
पहुँचा व्यतीन् सुवेल पर्वतपर चढे ।

ततोऽस्तमगमत् सूर्यः सन्ध्यया प्रतिरंजितः ।

पूर्णचन्द्रप्रदीपा च निशा समिवर्तत ॥

(रा० ६।३८।१८)

श्रीरामचन्द्रजीकी समस्त सेना एक मासमें नक्ष-सेतुद्वारा
खंकातक पहुँच सकी ।

(म० भा० ३।२८२।५०)

सेना-निवेश और ११—इन दोनों छातोंमें माघ कृष्ण १
दूत-सम्प्रेषण से भगवास्यातकके १२ दिन धर्तीत
हो गये ।

वानर-राक्षसोंके सुद युद्ध सेना-मनिशोंसे आत्मस राक्षसोंकी साधारण सेनाके सुद होते रहे।	१२—चतुर्दश वर्षके चतुर्थमास (माघ) की शुक्ल प्रतिपदासे भाग्रपदकी अमावस्यातक, चंकासे बाहर वानर और सेना-मनिशोंसे आत्मस राक्षसोंकी साधारण सेनाके सुद होते रहे।	(२५) नरान्तर-वध (२६) महोदार-वध (२७) महापार्श्व-वध (२८) मेषनावङ्गत ब्रह्माच-प्रयोग (२९) संजवनी आनन्द (३०) कुम्भ-निकुञ्ज-वध	आश्विन कृ० ५, " २, " ६, " ७, " ८, " ९, " १०, दिवली { रात्रिके समय (३१) मकराच } (३२) माया सीता (३३) मेषनाव वध (३४) मूर्ज सेना-वध (३५) रावण-निर्याण—आरिवन कृष्णा अमावस्या।
	अयनते सुमहान् कारु शयानस्य महावल । सुषुप्तस्त्वं न जानेते मम राम-कृतं भयम् ॥ (रा०६ । ६२ । १३)		अभ्युत्थानं त्वमद्वैत छणपक्ष-चतुर्दशीम् । कृता निर्याह्यमावस्यां दिजयाय बैर्वृतः ॥ (रा०६ । ९२ । ६४)
	उक्त युद्धोंमें प्रमुख योद्धा और सेनापतियोंने भाग नहीं लिया। आगे हन लोगोंके जो युद्ध हुए उनके विवरण नीचे दिये जाते हैं।		(३६) रावण-वध—आरिवन शुक्ल नवमी । व्यतीते सप्तमे रात्रे नवम्या रावणं ततः । रामेण धातयामास महामाया जगन्मयी ॥ (कालिकापुराण)
सेनाका संकुल-युद्ध तथा प्रमुख वीरोंका द्वन्द्युद्ध युद्ध हुआ।	१३—भाद्र शुक्ल प्रतिपदाको स्वर्यं रावणहारा प्रेपित प्रधान सेनाका वानरोंके साथ संकुल युद्ध हुआ, इसी दिन दोनों ओरके प्रमुख वीरोंका सबसे बड़ा द्वन्द्युद्ध हुआ।		(३७) विजयोत्तम—आरिवन शुक्ल दशमी । ततस्तु श्रवणेनाऽथ दशम्या चौपंडकां शुभाम् । विसृज्य अक्षे शान्त्यर्थं बल-नीराजनं हरिः ॥ (कालिकापुराण)
	निर्याणं सर्वसैन्यानां दुनमक्षापयत्तया । (रा०६ । ४२ । ३२)		
रक्षसी वानराणां च द्वन्द्युद्धवर्तम् । (रा०६ । ४३ । ४३)			
मेषनादका नामगाया	१४—भाग्रपद शुक्ल प्रतिपदाकी रात्रिके समय।		श्रीरामचरित्रके साधारण और असाधारण सैंतीस अंशोंकी सूची और उनका यथावध समय प्राप्त: श्रीवाल्मीकीय रामायणके आधारपर ऊपर दिया गया है। कहीं केवल छतुका, कहीं छतु और मास दोनोंका और कहींपर नक्षत्रके आश्रयसे पक्ष और तिथिका भी निश्चय हो गया है। किन्तु रामावतारकी प्रधान घटना रावण-वधके समयका स्थृतया उल्लेख रामायणमें कहीं नहीं किया गया। अतः उनके निर्यायके लिये महाभारत और पुराणोंकी ही ओर अन्येषककी दृष्टि दौड़ती है, क्योंकि पुरेतिहासके सबसे बड़े कोश यहीं हैं। रावण-वधके उक्त अन्यकाराच्छृङ्खलांशको 'कालिकापुराण' प्रकाशित कर देता है कि आश्विन शुक्ल ६ को भगवान् रामचन्द्रजीने रावणका वध किया और उगले दिन देवताओंने सेनामें रोशनी की। सङ्भवतः नवमीको रावण देरसे मरा और शेष समय भगवती दुर्गाकी महती पूजामें व्यतीत हो गया, इससे दशमीके दिन देवी-
(१५) ध्रुवाच-वध	भाद्र शुक्ल २,		
(१६) वज्रदंष्ट्र-वध	" .. ३,		
(१७) अक्षयन-वध	" .. ४,		
(१८) प्रहस्त-वध	" .. ५,		
(१९) रावणका परायन तथा पक्षायन	" .. ६,		
(२०) कुम्भकर्णप्रबोधन	" .. ८,		
(२१) कुम्भकर्ण-वध	" .. १५,		
(२२) आतिकाय-वध	आरिवन कृष्ण—१,		
(२३) निशिरा-वध	" .. २,		
(२४) देवान्सक-वध	" .. ३,		

विसर्जनके अनन्तर देवताओंने विजयोत्सव मनाया । वही कारण है कि नवमी तिथि दुर्गा-पूजाकी प्रधान तिथि मानी गयी और दशमीका नाम 'विजया' हो गया । पथ्यपि रावणका वध आश्चिन्द्र शुद्धा ६ को पुष्पा, परन्तु विजयोत्सव दशमीके दिन मनाये जानेसे अनसाधारणने रावण-वधका वही दिन मान किया और आज भी सारे हिन्दुस्थानकी लोहारी रामलीलाओंमें दशहोरे के दिवस ही रावण-वध होता है । रावण-वधके दिन रामचन्द्रजीके बनवासके बाहर दिन शेष रह गये थे ।

अब देखना चाहिये—

(४) श्रीरामचन्द्रजी किस मासकी किस तिथिको बनवाससे अयोध्यामें लौटे !

रामावध्यामें लिखा है कि—

पूर्णे चतुर्दशे वर्षे पञ्चम्यां उषमणाग्रजः ।

भरद्वाजाश्रमं प्राप्य वनन्दे निघतो मुनिम् ॥

(ग० ६ । १२४ । ?)

अर्थात् 'निष्पमपरायण रामचन्द्रजीने चौदहवाँ वर्ष पूरा होते ही एषमीके दिन भरद्वाज-आश्रममें पहुँचकर मुनि (भरद्वाज) को प्रशाम किया' यद्यपि केवल तिथिका ही निर्देश है, मास और पवका नहीं । पर जब यह सिद्ध हो गया कि आश्चिन्द्र शुद्धा १०को रावणका निधन हो चुका था, तब साय ही यह भी निश्चय हो गया कि रामचन्द्रजी विस पञ्चमीको भरद्वाज मुनिके आश्रममें पहुँचे वह कार्तिक कृष्ण ८ ही थी । कार्तिक कृष्ण ६ को बनवासके चौदह वर्ष पूरे होते थे, इसलिये उस दिन आत्-मन्त्र भरतजीके पास रामचन्द्रजीका पहुँच आना अतीव आवश्यक था ।

उनके निश्चित समयपर वहाँ वर्णन नहीं देनेसे महान् अनयंकी आशंका थी क्योंकि इवत भरतजी विक्रहटमें रामचन्द्रजीसे कह कुके थे कि—

चतुर्दशे हि सप्तपूर्णे वर्षेऽहनि रघूतम् ॥

न द्रष्ट्यामि यदि त्वानु प्रवेक्यामि द्रुताशनम् ।

(ग० ३ । ११२ । ३५-२६)

अर्थात् 'हे रघुवंश ! जिस दिन चौदह वर्ष पूरे होंगे उस दिन यदि आपको नहीं देख पाऊंगा तो मैं अस्तिमें प्रवेश कर जाऊंगा' । इसी तीव्र प्रतिज्ञाके प्रभावसे कार्तिक कृष्ण ६को महावीरजीने राम-मेघके चातक महात्मा भरतके पास उपस्थित होकर राहा कि—

'अविज्ञं पुष्पयोगेन इवो रामं द्रशुमर्हसि ।'

'कहु पुष्प नक्षत्रके समय विना वाजाके आप रामचन्द्रजीको देख सकोगे' इस सम्बोधके अनुसार कार्तिक कृष्ण ६ को पुष्प नक्षत्रके घोरमें भगवान् रामचन्द्रजीका भरतजीसे मिलाप हुआ और उसी दिन सब भाइयोंने समारोहके साथ अयोध्यामें प्रवेश किया । कार्तिक कृष्ण सप्तमीको मन्द्याहुक्तलक्ष्मी पुष्प नक्षत्रमें ही चौदह वर्षके सुदीर्घ कालके पश्चात् स्वयंत्र श्रीराम-राज्याभिषेक पुनः सुसम्पन्न हुआ । यह विषय प्यान देनेका है कि रामचन्द्रजीका अभिषेक पहले भी पुष्प नक्षत्रमें ही होनेवाला था और अब दूसरी बार भी उसी नक्षत्रमें हुआ । मालूम होता है कि कार्तिक कृष्ण ६ को मन्द्याहुक्तर और कार्तिक कृष्ण ७ को पूर्वाह्नमें पुष्प नक्षत्र था । तभी यह हो सका कि भरत-मिलाप और अभिषेक जैसे महत्वपूर्ण दोनों कार्य एक ही नक्षत्रमें हो सके । श्रीरामाभिषेकके उससवाक्षणिक बहुत दिनोंतक रहा, जिसमें लाख घोड़े, उतनी ही धेनु, सौ वृष और तीस करोड़ सुवर्णमुद्राएं तथा कितने ही बहुमूल्य वस्त्र-आभरण आयालोंको बाजामें दिये गये । (ग० ० रा० ६ । १३० । ७३-७५) चारों ओरके तपोधन अयि और प्रथित राजा आशीर्वाद, यथार्ह एवं भेट देनेके लिये उसमें सम्मिलित हुए । सुशील, विर्भाषण आदि सुहृदगण तो प्रेम-प्रवरण हो कालगुन माससक राम-राजाधानी अयोध्यामें अभिषेक-आतिथ्यका रसास्वादन करते रहे । अभिषेकके उपस्थितमें रोशनी भी अवश्य हुई, पर किलनी हुई और किलने दिन रही । इस विषयका स्पष्टीकरण महर्षि वाल्मीकिजीने अयोध्याकाव्यके अन्तिम सर्गमें नहीं किया । कारण, संखेके लिये वहाँपर नव्वे क्षेत्रोंमें ही भरत-मिलाप और अभिषेकोस्मवका वर्णन समाप्त कर दिया गया है । ही, अयोध्याकाव्यमें रामाभिषेकके आयोजनका वर्णन करते समय आदिकवि लिखते हैं कि—

प्रकाशीकरणार्थं च निशागमनशक्या ।

दीपनृक्षांस्तथा चकुरनुरथ्यासु सर्वशः ॥

(ग० ३ । ६ । १८)

'रात्रिके आनेसे एहजे रोशनीके लिये अयोध्याके सब गली-कुर्चोंमें दीप-बृक्ष (फाल) बनाये गये । परन्तु दैव-

* ततः प्रभाने विमले मुहूर्तेऽभिजिति प्रसुः ।

वसिष्ठः पुष्पयोगेन आङ्गीः परिवारितः ॥

तुष्टिवासे उस दिनकी तैयारी ज्यों-की-त्यों रह गई ! रोशनीके जड़-दीपकोंको कौन पूछे, जब अशोभाकासियोंके आश-मन्दिरके दीपक ही बनमें लगे गये । जो हो, श्रीरामाभिषेकके प्रथम द्वृहृतंपर भरपेट रोशनी करनेका काम अशोभाकासियोंके मनमें ही रह गया । अभिषेकके दूसरे द्वृहृतंपर उन लोगोंने रोशनी करनेमें पहली बारकी कठर भी निकाल डाढ़ी होगी, इसमें सन्देह नहीं । उपवासके पारणपर वही पुरुष किसने जोरसे झोजन करता है ? अवस्थ जल बाँध दृटनेपर कैसे बेगसे बहता है ? जब देवताकी प्रतीक-पूजाके उपचारमें भी किसने ही दीपक अञ्चलित किये जाते हैं, तब प्रकृति-पुरुषके परमाराज्य साक्षात् देव और संसारविजयी रावणके विजेता प्रभु रामचन्द्रके विषय-शोभित अभिषेकके प्रथम सप्ताहमें प्रकाश—रोशनीका जो प्रकाश आयोजन हुआ होगा, उसका अनुमान लगाना कठिन है और यह प्रत्यक्ष है कि वर्तमान दीपावलिमें उसीका प्रतिविम्ब है ।

कार्तिक कृष्ण चतुर्थीके दिन श्रीरामचन्द्रजीका अशोभाप्रवेश मान लेनेपर यह सन्देह उपस्थित होता है कि जब चैत्र शुक्ल दशमीको बनवासका आरम्भ हुआ तो कार्तिक कृष्णा पट्टीको बनवासके चतुर्दश वर्षकी पूर्ति किस तरह हुई ? चौदह वर्षमें पाँच महीने और उच्चीस दिनकी न्यूनता न रह जाती है ? विस्तरन्देह, उक्त सन्देहके शौचित्र्यमें कोई आपसि नहीं हो सकती । पायद्वांकी बनवात्रा और अज्ञातचर्याके विषयमें भी यही समस्या सामने आयी थी । विराट-नगरके गो-अपहरण-युद्धमें कृष्णज्ञा वेशवारी सत्यसन्धि अर्जुनको पहचान लेनेपर कौवराज दुर्योधनने हो-इहा मचाया था कि पायद्वांके तेरह वर्षोंकी पूर्तिमें आभी पाँच महीने और कहूँ दिनकी चुटि हैं, इसलिये प्रतिज्ञात समयसे पहले प्रकट हो जानेके कारण इन्हें फिर बनवारी और अज्ञातवासकी आवृत्ति करनी पड़ेगी, उस समय परम धर्मज्ञ पितामह श्रीमद्भजीने यह व्यवस्था दी थी कि—

पञ्चमे पञ्चमे वर्षे द्वौ मासावुपचीयतः ।
पष्ठमप्यधिका मासाः पञ्च च द्वादशाष्टपाः ॥
नवोदशानां वर्षणाभिति मे धीयते मतिः ।

* * * *

सर्वे यथावचरितं यद्यदोमिः प्रतिश्रुतम् ।
सर्वे चैत्र महात्मानः सर्वे वर्षार्थकोनिदाः ।
येषां युधिष्ठिरो राजा कथं धर्मेऽपराज्युः ॥
(महाभारत ४ । ४२ । ३-६)

‘अर्थात् इह पाँचवें वर्षमें दो महीने बहते हैं । (इस हिसाबसे) इन पायद्वांकोंके (सेरह वर्षोंमें तो आजतक) पाँच मास बारह दिन अधिक हो जाए । मेरी यह सम्भाति है कि इन्होंने जो जो प्रतिज्ञाएँ की थीं, वे सब यथावत् पूरी कर दीं । सभी (पायद्वां) महात्मा हैं और सभी धर्म तथा अर्थशालके बेसा हैं । जिनका युधिष्ठिर (जैसा सत्यवादी) राजा है, वे धर्म (विषय) में कैसे अपराधी हो सकते हैं ?

श्रीमद्भजीकी उक्त उद्योगित्पश्चात्कृज्ञ व्यवस्थासे यह सिद्ध है कि प्रतादश विषयोंमें ३-५४ दिनके लियेकद चान्द्र वर्षोंका ही उपयोग होता है और ३-६६ दिनवाले सौर वर्षोंके अधिक मास मिलाकर उनकी पूर्ति की जाती है । अतः चान्द्र-वर्षोंकी पूर्तिके लिये सौर वर्षके अधिक मासकी गणना न्यायसंगत है और उससे धर्मकी कोई हानि भी नहीं होती । ऐसी दशमें मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अधिक भासगणनाकी उपेता कैसे कर सकते थे ? और न्यायनिष्ठ रामदर्शनोत्सुक रामगत-प्राण भरतजी भी अधिक मासोंको गिने बिना क्षोंकर रह सकते थे ? अवश्य ही दोनों ओरसे समय-संगतिपर पूर्ण विवेचना की गयी है । चौदह वर्षमें पाँच मास और उच्चीस दिन अधिक मासोंकी गणनासे बढ़ जाते हैं—यही सोचकर श्रीरामचन्द्रजी कार्तिक कृष्ण पट्टीको ही दर्शनोत्सुक और प्रतीक्षमाण भरतसे जा मिले । कार्तिक कृष्ण चतुर्थीमें पाँच मास और उच्चीस दिन जोड़ देनेसे बनवासके चौदह वर्षोंकी यथावत् पूर्ति हो जाती है । गणित-शास्त्रका जो अपरिहाय लिद्वान्त कुरुतात्र दुर्योधन जैसे हठी राज्य-कामुकने बिना आपसिके स्वीकार कर लिया, उसे न्याय और त्यागके प्रथम शिष्यक कौसल-राजकुमार महोदार भगवान् रामचन्द्र और भरत किस भाँति त्याग सकते थे ?

उक्त सिद्धान्तसे चतुर्दश वर्षकी पूर्तिका समाधान हो गया । साथ ही यह भी निर्णीत हो गया कि दशहरा श्रीराम-विजयका स्मृति-दिवस है और कार्तिक मासमें ही विषय-वैज्ञानी-परिवर्त युष्मक-विमानारूद श्रीराम आशेष्य-में जौटे थे । इसीलिये दीपावलिका उत्सव मनाया जाता है ।

राम-नाम

(लेखक—पं० श्रीबलदेवप्रसादजी मिथ एम० ए०, एल-एल०वी०, एम० आर० ए० एस०)

कल्याणानं निधानं कलिमलमथनं पावनं पावनानं,
पायेयं यन्मुमुक्षोः सपदि परिपदंप्राप्तये प्रस्तिथतस्य ।
विश्रामस्थानमेकं कविवरचत्सां जीवनं सञ्जनानं
बीजं धर्मदुप्रस्य प्रमवतु भवतां भूतये रामनाम ॥
(इन्द्रियाटक)

राम नाम मणि दीप धर, जीह देही द्वार ।
तुलसी भीतर बहिरो, जो चाहसि उजियार ॥
—तुलसी

राम राम कहते रहो जब लग धर्मे प्राप ।
—कवीर

कथा है कि एक बार एक सज्जन सरथु अथवा गङ्गापार करके गोस्वामी तुलसीदासजीके पास उपदेश सुनने आये । औटसे समय देर हो गयी, नदीमें पूर आ गया और पासमें नाव भी न थी । उस सज्जनने कुछ व्यभ्रता दिखायी । इसपर गोस्वामीजीने कहा—‘भाई ! जो भवसागर पार करा देते हैं उनके लिये यह नदी पार करा देना कौन बड़ी बात है ? तुम उन्हों रामजीका नाम छोकर नहींको यों ही पैदल पार कर आओ ।’ उन सज्जनने बैसा ही किया और नहींके पानीमें उत्तरकर आगे बढ़ने लगे । कुछ दूर जानेपर जब वह गोते खाने लगे तो उन्होंने गोस्वामीजीको अपनी सहायताके लिये पुकारना शुरू किया । यह देख गोस्वामीजीने विचार कहा—‘भाई कहो कि तुलसीदासके राम हमें पार करे और ऐसा कहते हुए पार हो जाओ ।’ उन्होंने बैसा ही किया और वह सचमुच ही पार हो गये ।

क्या उन सज्जनके राम और ये और गोस्वामीजीके और ? अवश्य, बात ऐसी ही है । प्रत्येक मनुष्यके राम अवग अलग हैं । अयोध्याके ऐतिहासिक राजा रामचन्द्रजी समझ हैं एक ही व्यक्ति रहे हों परन्तु उनका वर्णन सबने एक-सा नहीं किया है । बालमीकीय रामायणमें वे मरांहा-पुरुषोसम कहे गये हैं तो अय्यामरामायणमें विच्छुके अवतार । भवभूतिने उन्हें लोकोपर पुरुष माना है तो तुलसीदामजीने सालान परवाह परमामा । ऐसी

विभिन्नताका कारण स्वह है । ये महापुरुष कोरा इतिहास तो विस्तरे बैठे ही नहीं थे । इनका उद्देश्य तो एक आदर्श चरित अथवा भगवत्-चरितका वर्णन करना था । इतिहासकी अधेरी कोठरीमें दूँड़ते दूँड़ते उन्हें श्रीरामचरितमण्डी भूमिका मिल गयी । किर क्या था, जिसकी जहाँसक पहुँच हुई उसने वहाँसक इस चरितहारा भगवत्तावकी अभिव्यक्तिका प्रयत्न किया । कुछ लोग इस चरितमें सद्व्यक्तिमनुष्यकी ही कल्पना कर पाये, कुछ लोकोपर पुरुषतक वह गये, किसी-किसीने मरांहा-पुरुषोसमकी सीमा हूँ ली, किसीने विच्छु अवतारकी झाँकी देख ली और गोस्वामी तुलसीदासजीके समान कुछ महामार्गोंने इस चरितमें परवाह परमामाहीका अधिर्भाव देखा । ऐसी स्थितिमें कैसे कहा जा सकता है कि सबके राम एक ही समान थे और सबने ‘राम’ शब्दका अर्थ एक-सा ही समझा था ।

नहीं पार करनेवाले सज्जन रामका और अर्थ समझते थे, उससे कहूँ दूँजे बढ़कर अर्थ तुलसीदासजीके राममें था । यदि वह सज्जन रामसे बेक्ष अयोध्यावासी राम अथवा साकेतलोकवासी रामका ही अर्थ लेते होंगे तो तुलसीदासजीके रामका अर्थ था—रोम-रोममें और परमामु-परमामुमें रमा हुआ अखण्ड चैतन्य, जो विश्वामा होकर भी विश्व-निवन्ता है । एक ही रव शाक-विष्णुहारा चार पैसेका, सामान्य जाहीरीहारा चाह सौ का और सबंधार्ली-हारा चार अरब या इसमें भी अधिक दामोंका छहराया जा सकता है । ठीक यहीहाल इस ‘राम-नाम’ का है । कोई इससे अयोध्यावासी रामका अर्थ ले सकते हैं, कोई विच्छु अवतारका अर्थ ले सकते हैं और कोई इसे एकदम परवाह परमामाका ही नाम मान सकते हैं । इसके अर्थमें जो जितना गहरा गोता खागावेगा वह उतना ही अधिक फल पावेगा ।

वैष्णवज्ञोग ‘राम’का अर्थ शरीरी अथवा अवतारी राम समझते हैं । कवीर नानक सरीखे सज्ज रामका अर्थ अशरीरी परमामा ही मानते हैं । यह अपनी अपनी समझकी बात है । नाम को एक ही है । जिस मनुष्यके मनमें परवाहकी भावना जैसी-जैसी विशाल और परिपक होसी आयगी, वह मनुष्य

रामके अर्थकी विश्वासता भी दैसे-ही-दैसे अनुभव करता चला जायगा । नामी (नामके अर्थ) बदलते गये परन्तु नाम उपों-का त्वयों रहा । इसीलिये नामकी महिमा बहुत बड़ी-बड़ी है ।

सामान्य अन्तमें इम रूपकी (बस्तुकी) प्रधानता पाते हैं, नामकी नहीं । प्यास बुकानेके लिये हमें तो वह सरल पदार्थ बल ही आहिये । उसका नाम रटते रहनेसे प्यास नहीं बुझ सकती । महस्त तो नामधारी व्यक्तिका देख पढ़ता है न कि उसके नामका । परन्तु अध्यात्म-अगत्ये कुछ उड़ाता ही लेज है । बात यह है कि अध्यात्म-अगत्ये के पदार्थोंका (ब्रह्म, आत्मा, शक्ति आदिका) इम वशीन तो कर नहीं पाते, वे प्रथम विषय तो है ही नहीं, इसलिये उन्हें अहय करनेमें हमें नामका सहारा देना पढ़ता है और इसी कारण उस लेन्ड्रमें नामकी प्रधानता हो जाती है । अध्यात्म-अगत्ये के बस्तुओंके लिये नामका सहारा बदा प्रबल होता है । शब्द और अर्थका बदा ही घनिष्ठ सम्बन्ध है । यदि एक मिला तो दूसरा भी मिला हो समझिये । वह नाम कैसा है जो रूपको न रोक रखे और वह रूप कैसा है जो किसी नामसे ब्रह्म कि किया जा सके !

जिस नाममें रूपका (अर्थका) जितना अधिक समावेश होगा, वह उतना ही महस्तपूर्ण होगा । सामान्य नामोंसे भगवान्के नाम अधिक महस्त-पूर्ण हैं और भगवान्के सहस्र (या असंख्य) नामोंमें भी यह राम-नाम इसी कारण अधिक महस्तपूर्ण है । शहरजीका 'सहस्रनाम तत्त्वल्प' बाला बाल्य प्रायः प्रत्येक नाम-प्रेमीको विदित होगा । इसी इष्टसे विचार करनेपर यह भी विदित हो जायगा कि नवी पार करनेवाले उस सज्जनके रामनाममें और मुलसीदासजीके रामनाममें क्या अन्तर था !

इस राम-नाममें ऐसी कौन-सी विशेषता है जिसके कारण यह दूसरे नामोंसे अधिक महस्त-पूर्ण और अधिक अर्थ गान्धीर्वबाला भाना जाता है ? इसका उत्तर कहीं प्रकारसे दिया जा सकता है । पहली बात तो यह है कि यह 'ॐ' से मिलता-जुलता नाम है और अहीं 'ॐ' केरल निरुद्ध अथवा अधिक-से-अधिक निराकार ब्रह्मका घोतक माना गया है वहाँ राम शब्द निरुद्ध और सगुण तथा निराकार और साकार दोनोंका प्रकाशक है । दूसरी बात यह है कि इस नाममें रमणीयता (रम् धातुबाली) घोतप्रोत भरी हुई है इसलिये भक्तोंको यह नाम विशेष खिल है । रमा

और रामा-दोनों ही दीर्घ स्वरान्त शब्द हैं, क्योंकि दोनोंकी रमणीयता विकारशीला है । केवल राम शब्द ही ऐसा है जिसमें प्रथमके विकार अन्तमें आकर जय हो जाते हैं । तीसरी और सबसे महस्तपूर्ण बात यह है कि जो अचर अपने शरीरके पट्ट्यकमें विद्यमान है और जो बास्तवमें अचर और अमिट शक्तिशाली बने हुए हैं उनमें 'रं' अग्री-बीज भाना गया है । जो आगकी तासीर है वही इस बीज-मन्त्रकी है । अप्रि केवल भस्म करनेवाली ही नहीं है, उच्च-शक्ति प्रकट करनेवाली भी है । इसी प्रकार यह बीजमन्त्र न केवल पापोंको भस्म करता है वर्त निर्बलोंमें प्रबल आत्मबद्धका सज्जार भी करता है । बीजमन्त्रका सम्बद्ध जप करनेसे तकिहित शक्तिका आविभाव हो जाना अवश्यमन्मायी है । इसी तरह रामनामका ठीक-ठीक जप करते रहनेसे यह हो नहीं सकता कि यह नाम अपना फज न विलावे ।

मुँहसे २.मनाम कह देना ही उस मन्त्रका सम्बद्ध जप नहीं है । यह तो वैखरी वार्षीका जप हुआ । जपकी वार्षी जितनी गहराईसे ढंगेगी, उसका फल भी उतना ही उत्तम होगा । वैखरीसे मध्यमा वार्षी श्रेष्ठ है, उससे भी पश्यन्ती वार्षी श्रेष्ठ है और पश्यन्तीसे भी बदकर परावार्षी है—जो मूलाधारमें गौंजा करती है । उस वार्षीसे अदि इस नामका जप हो तो फिर क्या कहना है ! यह तो हुई पहली बात । अब दूसरी बात यह है कि यदि नाम-जपके समय अर्थकी ओर कुछ लक्ष्य ही न रखा गया तो फिर तोते अथवा आमोफोनकी तरह नाम-रटसे बालविक लाभकी आशा कैसे की जा सकती है ? माला झँगुलियोंपर धूमे, जीम सुखमें धूमे और मन दशों दिशाश्चामें धूमे; इसे असली जप नहीं कह सकते ।

भक्त-भावना

[राम-नामकी महस्ता]

मूर्योंके प्रमुखका प्रभाव क्या पड़ेगा, जब
मनमें समाई प्रभुता है सुख-धामकी,
'रसिकेन्द्र' दाम, दंड, भेद, की विसात क्या है,
प्राप्त है अंडें सिद्धि जब सत्य 'साम'की ।
कोष कर लेगा प्रतिशोध क्या विरोध,—जब
प्रिय है परीक्षा पूर्ण-प्रेम-परिणामकी ।
सत्ता पातकोंकी क्यों न पत्ता-सी उड़ेगी, जब
ध्यानमें हमारे है महता रामनामकी ।
—श्री-'रसिकेन्द्र'

रामलीलामें सुधार

(लेखक—श्रीयुत राजवहादुरजी कमगोडा, एम० ध०, पल-पल० वी०)



न महाशब्दोंने स्वर्गीय कालाजीकृत 'दुखी भारत' (Unhappy India) नामी पुस्तक का अभ्यासन किया है, उन्हें ज्ञात होना कि 'मदर-इण्डिया' (Mother India) की बदनाम रचनित्री मिस मेरो (Miss Mayo) का हमारे प्रति एक आलेप यह भी है कि भारतीय अनताका साहित्यिक रूपित्वे कोई सम्बन्ध नहीं है। इस अनन्यता का आलेपका उत्तर देते हुए आचार्य थामसन (Thomson) ने जो इंग्लैण्डके किसी विश्वविद्यालयमें बंगभाषाके अध्यापक हैं, यह कहा है कि 'न जाने मिस महोदयाका भारतके किस भागसे परिचय है।' आचार्य महोदयने यह भी कहा है कि प्रथेक शीत-कालके आरम्भमें उत्तरीय भारतमें दो सप्ताहों तक 'रामलीला' का उत्सव ऐसे समारोहके साथ मनाया जाता है कि आम-ग्राममें शुश्रीकी लहर-सी दीप जाती है। ईर्नेट-वुड (Earnest Wood) साहेबने भी 'मदर-इण्डिया' का उत्तर देते हुए तुलसीकृत रामायणका उल्लेख कर यह कहा है कि लैटिन (Latin) और ग्रीक (Greek) महाकाव्योंके साथ तुलनामें भी रामायण (Compared more than favourably) का पक्ष भारी रहता है। सर जार्ज ग्रियर्सन (Sir George Grierson)ने साथ ही कहा है 'यदि उस प्रभावपर विचार किया जावे जो महाकवि तुलसीदासने स्वरचित रामायण-झारा उत्पन्न किया है, तो निःसन्देह वह पृथिव्या महाद्वापके उन कुँनों हुए प्रसिद्ध रचनिताओंमेंसे पक्ष मिल होने हैं जिनका प्रभाव कोणदोंसे ज्ञेय शाही महजोंतक पक्ष-सा है।'

यूनान Greece में भी नाटकीय सेल अनताके शिष्य-का एक विशेष साधन समझा जाता था। सम्प्रति इंग्लैण्ड-के सबसे बड़े दार्शनिक बर्नार्ड-शा (Bernard Shaw) का भी कथन है कि कहानी और विशेषतः नाटक सार्वजनिक शिष्यके दो बहुत बड़े साधन हैं, अन्यथा जो लोग सूखम दार्शनिक जातें समझनेकी योग्यता नहीं रखते, उनके जिसे मूर्ति-पूजा और कहानियोंके अतिरिक्त कोई दूसरा साधन रोक ही नहीं रहता।

अब देखना यह है कि आलेप सुशिक्षित भारतीयोंकी

क्या दशा है? हमारा अभिप्राय विशेषतः सुशिक्षित हिन्दुओं-से है। उनका एक अङ्ग तो अपनी मस्तिष्कात् दार्शनिकताके अभिमानमें रामलीला और तत्सम्बन्धी दृश्योंको दृश्याकी दृष्टिसे देखता है। दूसरा अङ्ग कृत्रिम सहानुभूतिसे कुछ चन्द्रा इत्यादि दे देता है, पर उत्सवमें इससे अधिक भाग लेना उचित नहीं समझता। उसका विचार है कि यह अन्यवस्था ही जनताके लिये पर्याप्त है। उसे यह ज्ञान नहीं है कि जब बर्नार्ड-शा प्रमुख दिग्गज लेखक वर्तमान शताब्दिके विचारारुत्सार नाटकोंकी रचनामें संकेत हैं और जब तुलसीकृत रामायणके त्रिशतवर्षीय नाटकीय स्लेटोंके प्रभावसे हिन्दू लोग अब भी जेम्स (James) जैसे विद्वान्-की रायमें The Sober (गम्भीर) की उपाधि पानेके अधिकारी हैं तो कोई कारण नहीं दीखता कि हम घोड़ा-सा ज्ञान उत्तर न दें और इस शिष्य-विषयको अधिकाधिक उपयोगी बनानेका प्रयत्न न करें।

हमारी उपेक्षाका प्रभाव बहुत बुरा पड़ रहा है। जहाँ सुशिक्षितोंका यह कर्तव्य है कि नाटकों उसके उचित आदर्शपर सुस्थिर रखनेका प्रबल करें वहाँ हमने वह कार्य प्राप्त: अर्थशिक्षित लोगोंके हाथोंमें ही दे रखा है।

परिणाम क्या हुआ है?

(१) मूर्तियोंके शङ्कारमें समय और स्थानका कोई स्पष्टता नहीं होता। श्रीरामचन्द्रजीहैं तो वनवासकी दशामें, पर पौर्वोंमें दुःखर, शिरपर जगमगाना हुआ सुनुट, नाकमें छटकन इत्यादि वरावर दीख पढ़ते हैं। भगवान् अपने इस स्पष्टको देखकर हमारी भूर्लंतापर अवश्य ही हँसते होंगे। इस शङ्कारसे याग और वैरायका रूपाल तो भूलकर भी नहीं आता। समरभूमिमें रावणसे युद्ध करते हुए जहाँ महाकवि तुलसीदासने खूनके धब्बोंसे श्रीरामचन्द्रजीके शरीरको अलकृत किया है, वहाँ आज रामलीलाओंके रामके शङ्कारमें अनेक विलायती रंगोंकी ही भरमार रहती है! ऐसी दशामें दर्शकोंपर वीर-संसका प्रभाव कैसे पड़ सकता है? होना सो यह चाहिये कि वनवासकी दशामें महाराजाकी देव-भूषा मुग्नियोंकी-सी हो, मुखपर उज्जासित गवसीर प्रसक्ततासे जितेन्द्रियसाके भावोंका प्रस्फुरण हो, उमके

प्रत्येक गति एवं सङ्केतसे त्वाग सथा वैराग्य इसग्रन्थार प्रकट होते हों कि इम सभों प्रभावित होकर सत्यपर अपना सम-मन-धन निष्ठावर करनेके लिये प्रस्तुत हो जायें। फिर पुद्दल्पत्तके श्वार एवं दृश्य तं। ऐसे होने चाहिये कि वीर-रस मूर्तिमात्र होकर दर्शकोंके सामने जावने जागे और अपने प्रभावद्वारा उनके नस-समें बीरत्वका सज्जार कर दे।

(२) तुलसीदासकी पवित्र पद्धावलियों अथवा राजा रम्यराजसिंह या लक्ष्मित जैसे कवियोंकी सुन्दर रचनाओंमें नौटंकी या अन्य बाजारु पदोंकी मिलावट होती जा रही है।

एक बार मैंने एक ऐसा गान सुना, जिसमें यह बात थी कि महारानी उर्मिला चिक्की आदसे हाथोंके हिलावट लक्ष्मणजीको श्रीरामके साथ बन जानेसे मना कर रही थीं। आह, यह किसने क्रियोरेपनकी बात है, पर लालारी है। प्रत्येक कवि या तुकड़में तो इतनी योग्यता नहीं हो सकती कि वह पुनीत भावनाओंको पूर्णतः घटा कर सके। आपको नौटंकी पसन्द है तो आप कृपया अपनी इस पसन्दको दूसरे अवसरके लिये रख लें। रामलीलाके पवित्र शिल्पप्रद अवसरपर रामायणके साथ ऐसे गानोंकी मिलावट तो जनताके लिये बिष नहीं है। अस्तु !

गत वर्षकी घटना है कि जब मेरे घरके बच्चे रामलीलाके बहुत दिनों बाद अपनी बालोचित रीतिसे धनुषवज्रका खेल खेलते थे तो चाहे और बात ये भले ही भूल जावें पर उस 'टिली-की-ली' शब्दको कभी नहीं भूलते थे जिसे किसी अद्यत तुकड़ने परशुरामजीके प्रति लक्ष्मणजीके मुखसे कहलाया था, कारण यह कि बुरी बातोंका अनुकरण सुनन्त ही होता है। कहीं रामायणमें परशुराम और लक्ष्मणका वह रोचक संवाद, जिसे पठकर शेन्सपियरके 'जूलियस सीज़र' (Julius Ceasor) वाली कैसिचस (Cassius) और ब्रूटस (Brutus) की पारस्परिक बालंड छाँकेका खेल जान पड़ती है और कहाँ वह 'टिली-की-ली' की बेहूदी बात ! यदि ऐसा ही होता रहा तो किसी दिन लक्ष्मण-जैसे बोद्धाकी दशा गरी-झूँकोंमें जिरनेवाले बालकोंसी हुए चिना न रहेंगी।

(३) गति, लक्ष्मित तथा बालांकाप पर भी कुछ ध्वन नहीं दिया जाता। बहुत तो बालकोंको अपना पार्ट (Part) भी नहीं बाद होता जो एक सुखी हुई कापीसे पका जाता है, जो बहुत भया प्रतीत होता है।

अतः सुरिपित देश-मेमियोंसे मेरी विनीत प्रार्थना है कि वे तमिक इस भोर भी ध्वन देनेकी कृपा करें। चाहे वह रामको 'अवतार' मानें अथवा 'मर्यादापुरुषोत्तम', पर सब मिलावट यह कोशिश अवश्य करें कि वह पुनीत पाठ, जिसने हमें शतांजित्योंसे टीक-टीक मार्गपर काथम कर रखा है, विस्मृत न हो जाय, अन्यथा कुछ दिनों बाद किसी दूसरी मिस मेयोके आक्षेपोंके उत्तरके लिये भी इमारे पास कुछ बाकी न रहेगा।

तुम्हारी बात ज़मानेके रूबरु रह जाय।

जो गैर हैं उन्हें हँसनेकी आरज़ू रह जाय ॥

(चक्रवत्)

देखिये, असी २७ मार्च सन् ३० के 'लीडर' में, १४ वें पृष्ठपर 'राष्ट्रीय नाटक' शीर्षक एक लेख छपा है। बाट लिटनके समाप्तित्वमें कोई सभा हुई थी। उसमें ब्रिटेन (Britain) के जगत्-विद्यात नाटककार बर्नोड-शा महोदयने नाटकके प्रति राज्यके कर्तव्यपर ज़ोर देते हुए यों कहा था—

On the continent the theatre is recognised as an instrument of culture which the Government must provide, yet in this country official recognition should not be obtained without strict regard for commercial considerations, it is to do the best work in the best way—it must not go in for the horrible policy of giving to the public what the public likes.....that national theatre should have a very liberal endowment.....People would go to the national theatre as they go to the church. अर्थात् 'राष्ट्रीय महाद्वीपमें नाटक एक शिल्पका साधन माना गया है जिसका प्रबन्ध राज्यकी ओरसे होना चाहिये। परन्तु इस देशमें उसे सरकारी स्वीकृति नहीं मिल सकी।..... अपारजन्य लाभका कुछ भी खलाज न करते हुए इस सर्वोत्तम कार्यको सर्वोत्तम रीतिसे ही करना चाहिये, उस भविष्य नीतिको कलापि न अपनाना चाहिये कि सार्वजनिक रुचिके अनुकूल ही वस्तु-प्रदानकी योजना हो, उस राष्ट्रीय नाटकमें बहुत बड़ी अर्पित निधि होनी चाहिये।.....खोग उस नाटकमें उसी (पवित्र) भावनासे जार्जे जैसे वे गिरजेमें जाते हैं।'

वही मिस लीना-ऐश्वेल (Miss Lena Ashwell) ने भी कहा है कि—The function of the national theatre should be to satisfy the hunger of our people for the poetry and beauty of our language. अर्थात् 'राष्ट्रीय नाटक का कर्तव्य, हमारे देशवासियोंकी भाषाके काव्य एवं सौन्दर्यसे सब्बन्ध रखनेवाली दुश्को निवृत्त करना है।' हम यही अपनी ओरसे केवल इसना ही कहेंगे कि हमारे पूर्वजोंने रामलीलाको प्रचलित करनेमें इन्हीं सब शारोंपर

भ्यान दिया था। उसी विषयपर हमारा भी भ्यान आकर्षित होना चाहिये। अस्तु !

मेरी विशेष प्रार्थना है कि जो सज्जन हस लेलको पढ़ें वह कम-से-कम हसे ऐसे लोगोंतक अवश्य पहुँचा दें जो रामलीलाके कार्यकर्ता हों। 'आचारः प्रथमो धर्मः' की उत्तिर विचार करते हुए यह प्रभ हमारे जीवन और मरणका प्रभ है, अतः उपेशा और उदासीनता छोड़कर हमें हस प्रभको हस करना ही होगा।

रामायणमें संगुण ईश्वर

"रामचरित-मानस (रामचरितका सरोवर) तुलसीकृत रामायणके नामसे अधिक प्रसिद्ध है। कविकी सर्वश्रेष्ठ कृति यही प्रन्थ है और समयके अनुसार यही पहला प्रन्थ है जो सन् १५७४ई०में जब कविकी अघस्था धृष्ट वर्षकी थी, आरम्भ हुआ था। इसीपर कविकी रूपाति निर्भर है। इसे नौ करोड़ मनुष्योंका बाह्यिल कहते हैं और वस्तुतः उत्तरीभारतके प्रत्येक हिन्दूको इसका जितना हान है उतना मध्य कक्षाके अंगरेज किसानको बाह्यिलका भी नहीं है। भारतका एक भी हिन्दू, राजा या कुन्ती निवासी ऐसा न होगा जो इसके प्रचलित दोहोंको न जानता हो या जिसकी बातचीतमें इसका रंग न हो। भारतीय मुसलमानोंकी भाषामें भी इसकी उपमाएँ घुस गयी हैं और उनके बहुतसे मामूली मुहावरोंका, यद्यपि वे यह नहीं जानते, पहले पहल इसी प्रन्थमें प्रयोग हुआ है।

परमेश्वरके अवतार रूपमें रामचन्द्रका चरित हस प्रन्थमें दर्शित है। इसका विषय वही है जो वाल्मीकिके प्रसिद्ध रामायणका है। एवं तुलसीदासका प्रन्थ उसका किसी प्रकार अनुवाद नहीं है। उसी घटनापर नयी कथा रची गयी है एवं घटनाओंके चर्णन तथा महत्वके विवरणमें भिन्नता है। प्रन्थकर्ता स्वयं लिखते हैं कि उन्होंने यह चरित अनेक प्रन्थोंसे लिया है। उनमेंसे वाल्मीकिकी कृतिको छोड़कर मुख्य मुख्य प्रन्थ 'अध्यात्म रामायण' (ब्रह्मारण्ड पुराणका एक खण्ड) 'भुसुरिङ्ग रामायण' 'वसिष्ठ संहिता' और 'जयदेवकृत' 'प्रसञ्जराघव' हैं।"

X

X

X

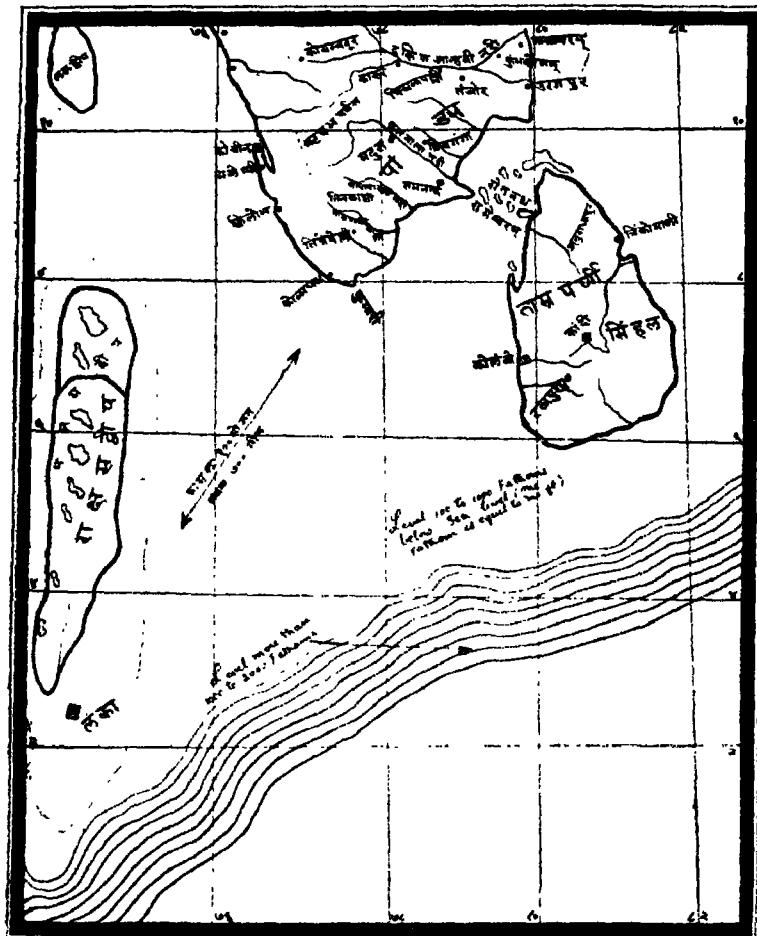
X

"तुलसीदासने यह भी क्षित्सा ही है कि ईश्वर शरीरश्चारी है। उपनिषद्के निर्गुण ब्रह्मको मानते हुए जो सभी गुणोंसे हीन है तथा जिसके बारेमें केवल यही कहा जा सकता है कि वह 'यह नहीं है, वह नहीं है'। इन्होंने यही निष्ठय किया कि ऐसे पुरुषका विचार मनुष्योंके मजित्पक्षकी शक्तिके बाहर है और केवल उसी ईश्वरका पूजन हो सकता है जो निर्गुणसे संगुण हो गया हो।"

—३०० सर जारी विवरण

कल्याण

रामायणकालीन लङ्का



मानन्त्रिकार श्री वी.पै.वडेर ।

रावणकी लङ्घा कहाँ थी ?

(लेखक—श्री बी० पच० वाडेर, बी० ए०, एल-एल० बी०, एम० आर० ए० एस०)



न् १९२५ ई० में अधिक भारतीय शोरियरश्टल कान्क्षों सके महात्म्यमें होनेवाले उत्तीर्ण अधिवेशनके अवसरपर सरदार माओवराव किये महाशयने एक निष्पत्ति पदा था, जिसमें उन्होंने यह दिलखाया था कि बालमीकीय रामायणमें विशित रावणकी लङ्घा अमरकथाके पदावपर स्थित थी जो विष्वाचारकी एक शास्त्र है और जहाँसे भारत महादेशको उत्तर और दक्षिण दो भागोंमें विभक्त करनेवाली नर्मदा नदी प्रवाहित होती है। बान-नगरके प्रोफेसर जैकोबीने स्टीकर किया है कि रामायणीय कथाका जैन रूपान्तर 'उडमचरित्र' का सठगान करते समय जो उन्होंने लङ्घाकी स्थिति कहीं आसाममें बतायी थी उससे किये महाशयका सिद्धान्त कहीं अष्ट है। यह ग्रन्थ बहुत प्राचीन नहीं है, और वैसे ही बौद्ध-रूपान्तर 'क्षमायजातक' भी बहुत प्राचीन ग्रन्थ नहीं, जिसको प्रमाण कोटिमें रखा जा सके। सन् १९१६ में प्रथम शोरियरश्टल कान्क्षोंमें पूनामें भी सरदार साहेबने इसी विष्वापर एक लेख पढ़ा था, परन्तु तीसरे अधिवेशनके विष्वपर के उपसंहारमें उन्होंने बताया कि 'उपलब्ध स्थानीय ज्ञानके अनुसार अब कुछ सन्देह नहीं रह जाता कि रावणकी लङ्घा मध्यभारतमें थी।'

आसाम और मध्यभारत-सम्बन्धी उपर्युक्त दोनों सिद्धान्तोंके असिरिक सीसरा एक प्रसिद्ध सिद्धान्त और है, जिसके अनुयार (आत्मनिक) सीलोन ही लङ्घा और लङ्घा ही सीलोन माना जाता है। बहुन-से प्राप्यविद् इसे भ्रुव सत्य मानते हैं। उथापि हम पाठकोंके सामने लङ्घाकी स्थितिके विषयमें एक नवीन सिद्धान्त उपस्थित कर रहे हैं, जिसका समर्थन इमारे प्राचीन संस्कृत-साहित्य और विशेषकर बालमीकीय रामायणसे उद्भूत विशेष महावृक्ष तथा विश्वसनीय प्रमाणोंहारा होता है। यह चौका सिद्धान्त सारकृपमें हस्प्रकार रखा जा सकता है—

‘लङ्घा दक्षिण-महासागरमें स्थित राक्षस-झीप नामक एक विशाल झीपकी राजधानी थी।

यह लङ्घा भूमध्यरेखा (Equator)पर या पृथ्वीके मध्यभागमें स्थित थी। भारतवर्षके दक्षिणतटसे राक्षसद्वीप अथवा लङ्घाकी दूरी १०० योजन अर्थात् लगभग ७०० मील थी।’

सीलोन और लङ्घा एक नहीं हैं।

पहले हम आस-प्रमाणोंहारा यह दिलखाना चाहते हैं कि सीलोन और लङ्घा दोनों भिन्न भिन्न स्थान थे और लङ्घनगरीका अस्तित्व सीलोन (सिंहलझीप) में नहीं था।

(१) महाभारत—सभापर्वमें सिंहलझीपका उल्लेख है। आसमुक विशिष्यी शब्दोंपर विजय ग्रास करनेवाले पाशद्व वीर सहवेषके बाबत कहा गया है कि 'उन्होंने 'ताम्रझीप' तथा 'रामक' वर्वतको विजय किया था तदनन्तर तत्कालीन 'लङ्घा' के राजा पौलस्य विभीषणके समीप कर प्राप्त करनेके लिये दूत भेजे थे*। इस पृथक् पृथक् वज्र नसे सिद्ध होता है कि ताम्रझीप और विभीषणकी लङ्घा एक नहीं थे। ताम्रझीप निश्चय ही सिद्धका प्राचीन नाम है। यूनानी लेखकोंने सीलोनका साप्रोबन (Taprobane=ताम्रपत्र) के नामसे उल्लेख किया है।

(२) महाभारत—दण्डपर्वके २१३ अध्यायमें वर्णन है कि पाशद्व-वनवासके समय भगवान् श्रीकृष्ण उनसे भिन्न जाते हैं और उनकी दृश्यनीय दशा देख कौरवोंके प्रति कुरु होकर धर्मराजके सामने उपने हुए द्वारा हस्प्रकार ग्रहण करते हैं—

‘राजसूय-यज्ञके समय तुम्हारी इननी महती विभूति थी कि पृथ्वीके सभी देशोंके राजा अपनी स्थिति और सम्मानको भूलकर क्षेट्र-से-क्षेट्रे काशीहारा तुम्हारी सेवामें लगे रहते थे, वे तुम्हारे शब्द और तेजसे घबराये हुए, चंग, चंग, पौण्ड, उद्ध, चोल, ग्रीष्म, अन्ध, समुद्र-सीरस्य बद्धमय देश, समुद्रके समीपस्थ देश, 'रिहन', वर्वत, स्वेच्छ, 'लङ्घा' आदि देशोंके राजा तुम्हारे यहीं विमनित अस्तित्वोंको

* द्वीपं ताम्राङ्गयञ्च वर्वतं रामकं तथा।

तिमिक्कलञ्च स नृं वशे कृत्वा महामतिः ॥ (म०समा० ३ १६९)

भोजनके समय परोसनेका कार्य कर रहे थे, आज तुझारी
यह दशा है………।”

महाभारतकार महर्षि व्यासके इन अवतारोंसे ‘सिंहल’
और ‘लक्ष्मा’ दो भिज्ञ-मित्र राज्य सिद्ध होते हैं।

३-भारकरडेय पुराण-कृमविभागमें दक्षिण-भारतके
देशोंकी सूची इसप्रकार लिखती है:-

‘लक्ष्मा’ कालाजिनांबैव शौलिका निकटात्था ।

दक्षिणः कौसल्ये च ऋषिकास्तापसाश्रमः ॥

ऋग्भाः ‘सिंहला’ श्वेत तथा कार्ष्णनिवासिनः ।

(४५।२७)

इन देशोंके सम्बन्धमें कहा जाता है कि ये कृष्णसे
दक्षिण विश्वमें अवस्थित हैं। इस सूचीसे भी स्पष्ट ज्ञात
होता है कि ‘लक्ष्मा’ और ‘सिंहल’ दो भिज्ञ भिज्ञ देश हैं।

४-श्रीमद्भागवत-पौराणे स्कन्धमें अन्यूपीपके आठों
उपहीरोंके नाम इसप्रकार दिये गये हैं।

जम्बूदीपस्य च रजन् उपदीपनां उपदिशान्ति । तद्यथा-
स्वर्णप्रस्त्रश्चन्द्रशुक्र आवर्तनो रमणको मंदरहरिणः पात्रजन्यः
‘सिंहलो’ ‘लक्ष्मी’ ॥ (४।१०।२९-३०)

हे राजन् ! अन्यूपीपके आठ उपहीर हैं, उनके नाम—
स्वर्णप्रस्त्र, अन्द्रशुक्र, आवर्तन, रमणक, मंदरहरिण,
पात्रजन्य, ‘सिंहल’ और ‘लक्ष्मा’ हैं। यहाँ यह स्पष्ट है कि
सातवाँ उपहीर ‘सिंहल’ और आठवाँ ‘लक्ष्मा’ था।

(५) महान् ज्योतिशो वराहमिहिराचार्यकृत वृहस्पतिः
कृमविभागमें दक्षिण-भारतके देशोंके नामोंका इसप्रकार
वर्णन पाया जाता है—

लक्ष्माकालाजिनः सौरिकोणः काशीमरुचीपद्मन-चेर्यर्थिं
सिंहला लक्ष्मीः । (अ० १४। ११)

कृ प्रथामात्स रजिन्द्र पौत्रस्त्वाय महान्मने ।

विभासण्यः य धर्मांत्सा प्रातिपूर्वमर्दमः ॥ (अ० समा ० ३। १०४)

यत्रसर्वं न् महीपालान् शशतेजो भयोदितान् ।

सवज्ञाकान् तस्मैष्टो द्रुन् सचोल द्राविडान्धकान् ॥

मागरानूपकाश्चेत् ये च प्रान्तनिवासिनः ।

सिंहलान्वर्णान् स्वेच्छान् ये च लक्ष्मानिवासिनः ॥

(म० वन० ५१। २२-२३)

इस प्रसंगमें यह बतलाया गया है कि इन नामोंकी
गणना कायेसे लाहिने और होनी लाहिने । अतः सिंहल
और लक्ष्मा दो द्वीप एक दूसरेसे दूर पृथक्-पृथक् ये और
शरम-देश इनके मध्यमें था ।

(६) उपर्युक्त उद्धरणोंके अस्तिरिक्त संस्कृत-नाटकों
और काव्योंमें भी ऐसे बहुत स्थल मिलते हैं, जहाँ ‘सिंहल’
(सीलोन) और ‘लक्ष्मा’को सर्वथा भिज्ञ-भिज्ञ देश बतलाया
है । कम-से-कम इतना तो निवितरूपसे कहा जा सकता
है कि अवतार संस्कृत-ग्रन्थोंमेंसे ऐसा एक भी प्रमाण येता
नहीं किया गया है कि जिससे यह सिद्ध होता हो कि वर्तमान
सीलोन ही प्राचीन लक्ष्मा है । और यह भी खूब सद्भव है
कि शायद ऐसा प्रमाण संस्कृत-ग्रन्थोंमें भिज्ञ ही नहीं सके ।
इस अपने सिद्धान्तके समर्थनमें यहाँ कवि राजशेखरकृत
बालरामायण नामक संस्कृत-नाटकका एक साल उद्भूत करते
हैं । राजशेखर कवि हीसाकी नवीं शताब्दीमें हुए हैं । कहा
जाता है कि उन्होंने समस्त भारतका भ्रमण किया था, अतः
भौगोलिक वर्णनमें जो कुछ उन्होंने लिखा है उसपर विश्वास
करता सर्वथा निरापद है । उनके बालरामायणके नीमरे
अङ्कमें लक्ष्मेश्वर रावणके विनोदार्थं ‘सीता-स्वयंवर’ नामक
अभिनयका विवरण प्राप्त होता है । सीताके पाणिप्रह्लादकी
हत्यासे एक ग्रित अव्याधि राजाओंके साथ सिंहलाधिपति
राजशेखर भी उस अविनयमें एक पात्र है । रावण उसे
भासनपूर्ण शब्दोंमें कह रहा है—

रावण—‘सिंहलप्ते किमिदं संदिहानं ? न च सन्देहेदहो
वीर-व्रत-निर्वाहः ।’

इस आव्याधिसे स्पष्ट हो जाता है कि सिंहलेश्वर
राजशेखर और लक्ष्माधिपति रावण दो व्यक्ति ये तथा ‘लक्ष्मा’
और ‘सिंहल’ विवरण ही दो भिज्ञ देश थे ।

पुनः इसी बालरामायणके दशवें अङ्कमें लक्ष्मा से उपर्युक्त
विमानशर अव्योध्या जाते समय भगवान् श्रीराम श्रीसीता-
जीको पढ़ते ‘लक्ष्मा’ और युद्धमिका पूर्ण परिचय देते हैं
और आगे बढ़नेके बाद सीताजीके ऐसा पूछनेपर कि यह
धरुवके समान जौन-सा भूखर दृष्टिशर हो रहा है, पास
बैठे हुए विशीषणने ‘सिंहल’का वर्णन किया है । यथा—

सीता—‘अद्विदासुष्ठुल कोदण्डमण्डलप्रतिकृपः करतः
पुनरेव उद्देशः ?

विभीषण—

पद्मस्यग्रे जलविषरिं मण्डलं 'सिंहलनाम्' ।
चित्रोत्तंसं मणिमयमुका रोहणेनाचलेन ॥
दूर्नाकाण्डच्छविषु अतुरं मण्डनं यद्यभूनाम् ।
गावक्षाम्भो मवति गतिं रक्तां शुकिंगम्भ ॥

यह ध्यान देने योग्य बात है कि यहाँ विभीषणने 'सिंहल' के विषयमें वर्णन करते हुए लङ्काका कहाँ नाम भी नहीं लिया। वास्तवमें लङ्काको तो वे सब पीछे छोड़ आये हैं और उसका परिचय भी श्रीसीताजीको पहले दिया जा सका है।

उपर्युक्त खोजोंसे यह भी स्पष्ट होता है कि 'सिंहल' उपर्युक्त 'लङ्का' से छोटा था और कविने अपना अभिभाव प्रकृत किया है कि लङ्का सिंहलसे दक्षिण-पश्चिम (नैऋत्य) में स्थित थी।

लङ्का कहाँ थी ?

यहाँ तक तो यह बतलाया गया कि 'सीलोन' और 'लङ्का'के एक होनेकी धारणा गिरावधार है। अब यह निश्चय करना है कि लङ्काकी वास्तविक स्थिति कहाँ थी ? यह पहले कहा जा सका है कि भारतकी दक्षिणी सीमासे लक्ष्मी १०० (सौ) योजनकी दूरीपर थी। इस द्वीपकी लम्बाई सौ योजन और चौदहाँ चालीस योजन थी। यह परिमाण सिंहलद्वीपके लिये कभी जागृ नहीं हो सकता। 'भारतवर्षीय भूवर्णन' के रचयिता प्रां० एस० बी० दीक्षित महोदयका कथन है कि 'सीलोन ही लङ्का है।' परन्तु रामायण-वर्णित सौ योजनकी दूरीका प्रथम सम्मुख आते ही दीक्षित महोदय भी चालूमें पढ़ जाते हैं और इस तरह उनका निर्णय भी सन्दिग्ध ही रह जाता है।

श्रीहन्मानजी सीताकी खोजमें लङ्का जाते समय जिस मार्गसे गये थे उसपर विचार करनेसे पूर्व यह देखना है कि सीलोन और लङ्काकी दूरीको सिद्ध करनेवाला अन्य कोई प्रमाण उपलब्ध होता है या नहीं ?

लङ्का भूमध्यरेखा पर अवस्थित थी ।

१. आयुपुराणके भुवनविन्यासप्रकरणके अद्वालीसबै अध्यायमें जम्बूद्वीपके चारों ओर कैले हुए, घास, यम, मलय, शंख, कुश और बराह हन द्वीपोंका वर्णन आता है। इसी अध्यायके २० से ३० खोजमें भवतके वर्णनमें कहा गया

है कि 'इस द्वीपमें सुवर्णोंकी अनेक लाने हैं और यहाँके वासी विभिन्न प्रकारके न्योछु हैं। यहाँ मलय नामका एक विशाल पर्वत है जिसमें चाँदीकी भी लाने हैं। इस पर्वत-पर प्रत्येक पर्वतके अवसरपर स्वर्णीय आनन्द प्राप्त होता है। इसी द्वीपमें प्रस्तात त्रिकूट पर्वत भी है। यह पर्वत बहुत विस्तृत है और इसमें अनेक अत्यन्त रमणीय उपस्थिताएँ तथा मनोहर शिखर हैं, इसी पर्वतके डासंगमें लङ्काकी विशाल पुरी बसी हुई है। इस पुरीमें इच्छिन रूपवारी, बलगर्वित, देवशत्रु महायमा राजस रहते हैं। इस द्वीपकी लम्बाई सौ योजन और चौदहाँ तीस योजन है। और इसके पूर्वमें गोकर्ण नामक पवित्र स्थानमें एक विशाल शिव मन्दिर है।'

इस वृत्तान्तसे यह सिद्ध होता है कि जम्बूद्वीप इन उपर्युक्तोंमें से तीसरे अर्थात् मलयद्वीपमें त्रिकूट-पर्वतपर लङ्का नगरी बसी थी। यह मलयद्वीप भारतीय महासागरमें स्थित आधुनिक 'मालदिव'हीपुराण (Maldives Islands) के अस्तिरिक्त कोई अन्य नहीं है। यह 'मालदिव' द्वीपपुराण भूमध्यरेखापर अवस्थित है। यह स्मरण रखना चाहिये कि गोकर्ण नामक पर्वतका जो यहाँ उल्लेख आया है वह भारतवर्षके पश्चिमीघाटपर करवार जिलेमें स्थित परिष्ठ स्थान आधुनिक गोकर्णनामपरे भिज है।

* नर्येव मलयद्वीपमवमेव सुसंवृतम् ।

मणिरत्नाकरं रक्षात्माकरं कनकात्य च ॥

आकरं चन्दनानाम् समुद्राणां तथाकरम् ।

नानाम्लच्छगणाकांणं नदीपर्वतमण्डितम् ॥

× × ×

तथा त्रिकूटनिलये नानाधारुविभूषिते ।

× × ×

तस्य कूटनं रम्ये हेमप्राकारलोरणा ।

निर्यूहवलमीर्चित्रा हर्ष्यप्रासादमालिनी ॥

शतयोजनविस्तीर्णा त्रिशदायामयोजना ।

निलप्रसुदिता स्फीता लङ्का नाम महापुरा ॥

सा वामस्त्रपिणी स्थाने राक्षसाना महात्मनाम् ।

आवासो बलदृष्टानां तद्विद्वादेविद्विषाम् ॥

मानुषणामसम्बाधा द्यगम्या सा महापुरा ।

तस्य द्वीपस्य वै पूर्वे तोरे नदनदीपतेः ।

गोकर्णनामपेयस्य शंकरस्यालयं महत् ॥

(आयुपुराण ४८।१०-१०)

२. गोलाभ्याय—कर्णटक-प्रदेशके इतिहास-स्थानके निवासी प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् तथा गणितज्ञ भास्कराचार्यके वर्णनसे जो लक्ष्मीकी स्थितिके विषयमें ज्ञान शास्त्र होता है उससे उक्त सिद्धान्तका पूर्णरूपसे समर्थन होता है। श्रीभास्कराचार्यका जन्म १०३७ शकाब्द या सन् ११२५० में हुआ था। उन्होंने गोलाभ्यायके भूवनकोषमें किला है—

लक्ष्मी कुम्भे यमकोटिरस्या
प्राक् पश्चिमे रोमकपद्मन च ।
अधस्ततः सिद्धपुरुषं सुमेहः
सौम्येऽथ यम्ये बहवानलक्ष्मी ॥

इस स्तोकसे यह स्पष्ट हो जाता है कि लक्ष्मी भूमध्यरेखापर (कुम्भे) स्थित थी। भूमध्यरेखाको ज्योतिष-शास्त्रमें निरक्षण्यांतर० शून्य अर्थात् कहते हैं इसी अच्यायके ४३-४४ वें श्लोकमें पुनः वर्णन आता है कि लक्ष्मी भूमध्यरेखापर है और लक्ष्मी तथा अवन्तीके (उज्जैनी) देशान्तरमें (Longitude) बहुत कम अन्तर दिखाया गया है। इस मतमें तो श्रीभास्कराचार्यका यह इड विशास था। अवन्तीका देशान्तर ७०°, ७२° पूर्व बताया गया है।

३. अब हमें यह देखना है कि लक्ष्मीके सम्बन्धमें तामाचारमें जो वर्णन आये हैं उनसे भास्कराचार्यके उपर्युक्त मतकी युटि होती है या नहीं। समस्त भारतका अमरण करनेवाले श्रीसुद्धीकर्ता कावेरी नदीके दक्षिण देशांको विस्तृत वर्णन कहते हुए कहते हैं कि 'जैसे कोई नवयुवती रमणी पतिके पास जाती है, इसीप्रकार समुद्रकी ओर जाती हुई महानदी ताङ्गपर्णीको पार करनेके बाद तुम्हें पाश्वद्य-देशका सुवर्णरम्य प्रवेशहार (कवाटं पाण्ड्यानाम्) मिलेगा। इसके बाद समुद्र छाँचना पड़ेगा।' * सदनन्तर कहते हैं कि वहाँ एक सार्व यी जिसके कारण समुद्रमें जानेवालोंको वही असुविधा होती थी। अतएव अगस्त्य मुनिने विवित्र शिखर महेन्द्र पर्वतका स्थापन कर उस लाईको भर दिया। इस पर्वतका बहुत-सा भाग अभी समुद्रमें है, यह महेन्द्र पर्वत सर्वथा सोनेका है।

*ताम्रणः ग्राहजुटां तरिष्यम् महानदांग् ।
कान्तेव त्रुतीकान्तं ममुद्रमवगाइते ॥
ततो हेममयं ।
कवाटं पाण्ड्यानाम् ।
ततः समुद्रमासाय मंप्रधार्यांवनिश्चयम् ॥
(वा०रा०४१४१)

अगस्त्येनान्तरे तत्र सागरं विनिवेशितः ॥

चित्रसानुनगः श्रीमान्महेन्द्रः पर्वतोत्तमः ।

जातकपमयः श्रीमानवगाढो महार्णवः ॥

(वा०रा०४१४१२०-२१)

इन स्लोकोंसे यह ज्ञात होता है कि महेन्द्र-पर्वत किङ्ग देशस्य महेन्द्र-पर्वतसे भिन्न है। और इसका एक भाग-दक्षिणकी ओर बहकर समुद्रमें दृढ़ हुआ है। इसके अनन्तर २४वें स्लोकमें लक्ष्मीके विषयमें कहा है—

द्वीपस्तस्यापरे परे शतयोजनविस्तृतः ॥

स हि देशस्तु वध्यस्य रावणस्य दुरामनः ॥

राशसाधिष्ठेवांसः सहस्राक्षं समुद्रतः ॥

(वा०रा०४१४१२४-२५)

'इस पर्वतके पश्चिमकी ओर एक द्वीप है जिसका विस्तार सौ योजन है जहाँ इन्द्रके समान कान्तिमान, वध करने योग्य, दुष्टात्मा राजसराज रावण निवास करता है।' इससे अधिक स्पष्ट ग्रामण रावणके निवासके सम्बन्धमें और क्या हो सकता है? अब यह अनुमान सहज ही किया जा सकता है कि राजसहीप नामक रावणका देश या और लक्ष्मी उसकी राजधानी थी। वह भारतके दक्षिणांतरम तट पाश्वद्य-देशके प्रवेशहार (पाश्वद्य क्वाट) से पश्चिम दिशामें था। सिंहल अथवा सीकोनके लिये यह वर्णन कवायि लागू नहीं हो सकता। और 'दक्षिण भारतीय इतिहासका प्रारम्भकाल' (Beginnings of South Indian History) नामक ग्रन्थमें अन्यकर्ता मद्रासके प्रसिद्ध प्राच्यविद् द्वा० एस० फे० आयंगर महाशयने बड़ी बुद्धिमत्ताके साथ यह किया है कि 'पाण्ड्यानां कवाटम्' तामिल-भास्तका प्रसिद्ध कवाटपुरम् या कवाटपुरम् ही है। चाण्डीकर्णके अर्थशास्त्रमें भी ताङ्गपर्णी नदी और पाश्वद्य कवाटका वर्णन आता है। अर्थशास्त्रके टीकाकार ओशाम शास्त्रीजीने पाश्वद्य कवाटको पाश्वद्य-देशस्य अल्पकोटि पर्वत बताया है, परन्तु यह सर्वथा सन्देहात्मक है क्योंकि पर्वतपर मोती आदि सामुद्रिक बस्तुओंकी उपलब्धि नहीं हो सकती। आयंगर महाशयने इसपर व्याख्या करते हुए 'कवाटं-पाश्वद्यानाम्'को पाश्वद्यदेशके प्रवेशहार बताया है। यह अधिक युक्ति-सङ्केत प्रतीत होता है। टीकाकारने जिसको भास्त्रकोटि बताया है वह वही उद्घास्त्रमि है जहाँ पश्चिमी बाट समुद्रमें निमग्न हो गया है। इस पाश्वद्यदेशके प्रवेशहारसम्बन्धी उपर्युक्त विवरकासे स्पष्ट हो

आता है कि भारतका दिव्यीय कल्पाकुमारी अस्तरीय ही वह स्थान है, जबोकि इसीके सभीप महेन्द्र-पर्वत समुद्रमें अन्तर्हित हुआ है और सुधीवने लो दिव्य-भारतके भूगोलका निवासन कराया है उससे भी वह पठा चलता है कि रावणका निवासस्थान राष्ट्रसहीप इस पर्वत ओंगीसे पश्चिम था।

लंकाका स्थान ।

इस कथनके समर्थनमें कुछ ऐसे प्रमाण पेश किये जा सकते हैं जिनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि वह लंका समुद्रमें विलीन हो गयी थी। जिस स्थानपर इस समय मालदिव द्वीप-समूह है। प्राचीन कालमें यही राष्ट्रसहीप था। इसका विस्तार भूमध्यरेखासे ५° उत्तर अशांश तथा ३° दिव्य-अशांश के तथा ५° से ८° के पूर्व देशान्तर बीच विस्तृत था। वह सम्भव है कि जिस समय यह द्वीप कल्पना: ब्रह्मगर्व हो रहा होगा, उस समय वहाँके निवासी भागकर प्राचीन तान्त्रीय (तान्त्रिक) में

आकर बस गये होंगे, इसी प्रवेशका नाम पीछे से सिंहलझीप अथवा सीकोन पड़ गया होगा।

भूगोलविद् परिदृष्टोंकी यह धारया है कि इसाके चार द्वारा वर्ष पूर्व भारतीय महासागरमें लेमोरिया (Lemuria) नामक एक महाद्वीप था। यह भारतवर्षकी दिशामें अफ्रिकाके दिव्य भागसे खेड़र पूर्वकी ओर दिव्य अमेरिका तक विस्तृत था। कावगतिसे यह महाद्वीप ब्रह्मगर्व हो गया और बत्तमान समयके मालदिव (Maldives), सायचेलिस (Sychellis), रोड्रिग्स (Rodrigues), शैगोस (Shagos), मारिशियस, (Mauritius) मैडागास्कर (Madagascar), जावा, सुमात्रा, बोर्नियो (Borneo), एसेन्शन (Ascension), फाल्कलैण्ड (Falkland), ग्राहम (Graham), और पश्चिमी अटार्टिका (West Antartica) प्रश्वति उसी प्राचीन विशाज महाद्वीपके पवंत-शिखर तथा उच्चभूमि भाग मात्र हैं। मलयझीप अथवा मालदिव ही आज उस स्थानपर बत्तमान है जहाँ प्राचीनकालमें रावणका राष्ट्रसहीप था, जिसकी राजधानी लंका थी। ४

तुलसी-चन्दना

जयति जयति तुलसिदास हिन्दी हितकारी ।

प्रगटं भुवि भार हरन , विमल राम चरित रचन ।

धनि धनि संसार सरन , असरन दुःख टारी ॥

कविता नभके दिनेश , भाषा-कैरव निशेश ,
कवि-सुरगनमें गनेश , ललित कलाधारी ॥

रामायण अति प्रधान , नवल कमल दल समान ,
धर्म अर्थ भक्ति ज्ञान , मोक्ष दैनहारी ॥

विद्या पीयूष खान , कोविद-जन करत पान ,
पाप पुञ्जको कृशान , त्रिविध तापहारी ॥

धनि धनि श्रीतुलसिदास , मेटो भव फन्द न्रास ।
मधुप नारण गहत आस , भक्त सुखकारी ॥

—योगेन्द्रनाथ शर्मा

* लेखक इस सम्बन्धमें सन् १९२६ में 'The Mythic Society's Journal' में और 'The Indian Historical Quarterly' नामक पत्रोंमें अपने विचार प्रगट कर चुके हैं।

इसी विषयमें कलकत्तेसे प्रकाशित बंगला मासिकपत्र 'भारतवर्ष' की फाल्गुन १३३६ और ज्येष्ठ १३३७ की संख्याओंमें पं० राजेन्द्रनाथ विद्याभूषणके दो लेख प्रकाशित हुए हैं। उनमें भी प्रायः इसी मतका समर्वेन किया गया है। सम्पादक

रामायणके रचयिता

कौन देता जन्म इस साहित्यको ?
 नद बहाता कौन काव्यानन्दका ?
 मानता जिसको सभी संसार है—
 लघु-सहोदर पूर्ण-ब्रह्मनन्दका ॥ १ ॥
 सृष्टि आती दृष्टिमें कुछ और ही—
 आदि-कवि वाल्मीकि जो होते नहीं ।
 प्राकृतिक-सौन्दर्यमें वाचालता—
 —बीजको जो बे भला बोते नहीं ॥ २ ॥
 लेखिये अहुत महसा-सत्यता—
 सन्तजन-उपदेश-बलकी, भक्तिकी ।
 और महिमा देखिये फिर रामके—
 ठीक उलटे नामकी भी शक्तिकी ॥ ३ ॥
 व्याधसे वाल्मीकिने ब्रह्मिं बन—
 रम्य-रामायण-सुधाकी सृष्टि की—
 मानवोंके चिरसे जिसने महा—
 शान्तिकी, आनन्दकी है सृष्टि की ॥ ४ ॥
 पापियोंका और कुटिलोंका कभी—
 रोग आवागमनका मिटता नहीं ।
 कर कृपा, कलिकालमें आते न तो—
 भक्त 'तुलसी' रूपमें बे जो कहीं ॥ ५ ॥
 देववाणी-सम बनाता कौन जन—
 मातृभाषा-नागरीको, यज्ञसे ?
 जो न होते प्रगट 'तुलसी'खानसे—
 दिव्य, 'तुलसीदास' जैसे, रखसे ॥ ६ ॥
 कान्त-कविता-कामिनीके कान्त हैं,
 जो सभी साहित्यके मर्मज्ञ हैं ।
 विज्ञ हैं परिपूर्ण जो नृपनीतिके—
 और जो बेदज्ञ हैं, धर्मज्ञ हैं ॥ ७ ॥
 श्रेष्ठ-रामायण-सहृदा संसारमें—
 राजपथकी है न कोई दर्शनी ।
 ज्ञानकी, हरि-भक्तिकी, शुभ-कर्मकी—
 दूसरी ऐसी न कोई वर्षीणी ॥ ८ ॥
 नीतिका यह दिव्य-आदि निधान है,
 गेह है यह ईश-गुण-गण-नीतिका ।
 ज्ञोत चेता-रीतिका भी है यही—
 और है यह काल भवकी भीतिका ॥ ९ ॥

मानता संसार यह सारा इसे—
 सत्यता-शुचिता-भहसागर है ।
 श्रेष्ठतम्-उपदेश-शिक्षाका इसे—
 और वह कहता महा-भण्डार है ॥ १० ॥
 चारु-चिन्तामणि यही कलिकालमें,
 करनिवासी कल्पतरु यह अन्य है ।
 श्रेष्ठ धर्मशाल है पहला यही—
 सब पुराणोंका यही मूर्धन्य है ॥ ११ ॥
 प्रेमसे जो नित्य इसका पाठ कर—
 मानता उपदेश भी है सर्वथा—
 आपही मिट जायगी उसकी महा—
 दुःखदा-आद्यागमन-जाता व्यथा ॥ १२ ॥
 भक्त-कुल-रूपी कुमुद-विधुकी यही—
 चाँदनीकी है अनोखी सम्पदा—
 जो सिलाकर मञ्जु मानस-कमलकी—
 जानती घटना न, पर बढ़ना सदा ॥ १३ ॥
 काल-वैरीको महा-कलिकालमें—
 जालमें यह डालनेका दाव है ।
 और यह संसाररूपी सिन्धुके—
 पार पानेको अनश्वर-नाव है ॥ १४ ॥
 हार है यह परिष्टोंके कण्ठका,
 सर्व-लौकिक-धर्मका यह सार है ।
 कष्ट-पातक नष्ट करने हेतु यह—
 एक, मानवमात्रका, हथियार है ॥ १५ ॥
 जो पुरातन-पुरुष ही साक्षात् है—
 श्रेष्ठ मर्यादापुरुषके रूपमें—
 है उन्हींका चारु-जीवनचरित यह—
 सुगमतम्-सोपान-सम भवकूपमें ॥ १६ ॥
 देहधारी-मुक्ति है जड़म यही—
 जानकीपति-भक्तिकी यह मूर्चि है ।
 शक्ति है मनमोहिनी यह काव्यकी—
 और 'तुलसी'की अलौकिक-स्फूर्ति है ॥ १७ ॥
 धन्य है कविराज ! तुमको धन्य है,
 और कविता भी तुम्हारी धन्य है ।
 'द्रोण' हो तुम, शिव्य मैं दूँ 'एकलव्य'—
 काव्यगुरु मेरा न कोई अन्य है ॥ १८ ॥
 —कृ० प्रतापनारायण 'कविराज'

श्रीरामनामकी महिमा

(लेखक—आचार्य श्रीमदनगोहनजी गोस्वामी दै० दर्शनतीर्थ भागवतरल)

बंदौं रामनाम रथुनरके । हेतु कृसानु भानु हिमकरके ॥

श्रीराम-नामकी महिमाके सम्बन्धमें गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीके उपर्युक्त वचन हैं । चौपाईका अचराय है कि 'कृसानु (अभि) भानु (सूर्य) हिमकर (चन्द्रमा) इन तीनोंका हेतुरूप जो 'राम' नाम है—ठसकी मैं बन्दना करता हूँ ।' भातुकोंके सत्संगसे इसका जो कुछ अर्थ सुन्ने जात हुआ है उसे मैं प्रेमी पाठकोंकी सेवामें उपस्थित करता हूँ ।

प्रथम अर्थ तो यह है कि, 'राम' इस पदमें तीन अचरोंका समावेश देखनेमें आता है । जैसे र-अ-म, ये तीनों अचर कमसे चौपाईमें कथित—कृसानु-भानु-हिमकर—तीनों देवताओंके बीजहैं । सुतरां 'राम' नाम तीनों देवताओंका कारण है यदि उक्त तीनों शब्दोंका अर्थ न करके केवल कृसानु आदि शब्दोंका ही व्यवहार किया जाय तथापि उक्त शब्दोंमें कमपूर्वक र-अ-म अचरोंका शाकरण दीखता है । यहाँ कोई ऐसा सन्देह कर सकते हैं कि, कृ—में क्ष आती है र नहीं आता है, इसके उत्तरमें व्याकरणका सिद्धान्त कह देना ही पर्याप्त होगा । व्याकरणमें—अ—र—का एक ही स्थान माना है अतः क्ष—के स्थानमें—र—कह देनेसे कोई दोषापत्ति नहीं होती । सुतरां यह नियम होता है कि, र—अ—म—तीनों वर्णोंके एकत्रित होनेपर 'राम' शब्द हो जाता है और हसी नामके कारण तीनों शब्दोंकी प्रधानता भी हो जाती है । अत्यथा कृसानु-भानु-हिमकर तीनों निरर्थक हो जायेंगे । सुतरां 'राम' नाम ही कृसानु आदि शब्दोंकी उत्पत्तिका हेतु समझा गया ।

दूसरा अर्थ यह भी होता है कि, 'अभि' पाचकूलपसे भोजनोंको परिपक्व करता हुआ प्राणियोंके शरीरका पोषण करता है । सूर्यके प्रकाश और तापसे हुख और आरोग्यताका सज्जार होता है । 'चन्द्रमा' वनस्पतियोंका पोषण करता हुआ प्राणियोंको सहायता पहुँचाता है, सुतरां प्राणिमात्रके जीवनस्वरूप ये तीन देवता ही सिद्ध होते हैं । परन्तु इन तीनों देवताओंको शक्ति देनेवाला इनका जीवनस्वरूप—

'राम' नाम है, रामरूप वज्रके प्रकाशसे ही ये तीनों प्रकाशित हैं । अति कहती है—

'तमेव मान्तप्नु भाति सर्वं तस्य भाषा सर्वमिदं विभाति'

इसी प्रकार गीतामें भगवान् के वचन है ।—

यदादित्यगतं तेजो जगद्वासयतेऽस्तिलम् ।

यच्छ्रद्धमसि यथाग्नी तत्तेजो विद्धि मामकम् ।

(गीता १५ । १२)

अर्थात् सूर्य, चन्द्र, अभिमें स्थित जो तेज सम्पूर्ण अगत्यको प्रकाशित कर रहा है, श्रीभगवान् कहते हैं कि वह सब मेरा ही तेज है ।

तीसरा अर्थ यह है कि, अभि, सूर्य, चन्द्रमा इन तीनोंका प्रधान कारणरूप जो 'राम' नाम है यह तीन कुलोंको उत्कर्ष करनेवाला है । देखिये, अप्सिर्वशमें श्रीपरशुराम प्रकट हुए । सूर्यवंशमें दशरथकुमार श्रीश्रीरामचन्द्रजी प्रकट हुए । चन्द्रवंशमें श्रीबलरामजी प्रकट हुए । सुतरा तीनों कुलोंकी श्रीरामनामसे ही प्रसिद्धि हुई ।

चौथा अर्थ यह है कि, व्यवहारमें भी शरीरमें देखा जाता है कि, अभि, सूर्य, चन्द्रमासे ही स्वास्थ्य अच्छा रहता है । मनुष्य-शरीरमें हुडा, पिंगला, सुषुप्ता अर्थात् चन्द्र, सूर्य, अभि, ये तीन नाडियाँ हैं, इन तीनों नाडियोंसे जब सब प्राणवायुका सज्जार होता रहता है तभी तक मनुष्य जीता है और तभी तक उसका स्वास्थ्य ठीक रहता है । जिस समय इनकी शक्तिका अभाव हो जायगा, स्वास्थ्यमें खराबी उत्पन्न हो जायगी । स्वास्थ्यकी खराबीसे शरीर दुर्बल हो जाता है, उस समय लोग कहते हैं कि, इसके शरीरका 'राम' निकल गया । सुतरां सिद्धान्त यह है कि, राम नामको भूल गया, इसीसे दुर्बल हो गया, यदि राम-नामको न भूलता तो शक्तिहीन न होता, अतः राम-नाम ही सब समयमें सत्य है । देखिये मृत्युके बाद भी 'राम-नाम ही सत्य' रहता है । इसकिये मनुष्य-देह-जारीमात्रको निरन्तर रामका नाम कीर्तन करना उचित है ।

‘र’ और ‘म’ की रमणीयता ।

(लेखक पं० श्रीसुखरामजी चौके 'गुणाकर')

एक छत्र, इक मुकटमणि, सब बरननपै जोय।
 'तुलसी' रघवर नामके बरन विराजत दोय ॥

स्तवमें ये दोनों वर्ण वर्णमालामें उत्कृष्ट हैं।
यही कारण है कि ये वर्ण जिन शब्दोंके
मस्तकपर रेफ या अनुस्वाररूपमें विशेषमान
हो जाते हैं, वे शब्द अपने धर्मका विशेष मूल्य
कूटने लगते हैं और एक अभोखी छठा
छिटका देते हैं। अपने इस कथनको विशेष
स्पष्ट करनेके लिये हम यहाँ कतिपय उदाहरण
देकर पाठ्यक्रमोंका मनोरंजन करनेका प्रयत्न करते हैं। यथा सागर,
आगर, नागर, कर्मी, गर्मी, भर्मीधर्म आदिसे यदि 'र' वर्ण
निकाल दिया जाय तो शेष साग, आग, नाग, कर्मी, गर्मी,
और धर्माधर्म शब्द बनकर दुर्गतिमें पड़ जाते हैं। इसी प्रकार
यदि कामना, मक्खी, मसाला, मुकुन्द, मुल्लू, आदि शब्दोंसे
रामजीका 'म' निकल जाय तो काना, छक्की, साला, कुन्द
और उल्लू आदि हो—शब्दार्थ प्राय हास्यास्पदकी गतिको
प्राप्त हो जाते हैं। और यदि 'र' और 'म' दोनों किसी
शब्दमेंसे निकल जायें तो फिर कहना ही क्या? जैसे
'विभास' मेंसे 'राम' जब पृथक् हो जाते हैं तो जो शब्द
बच रहता है वह 'विष' ही रह जाता है। रसोइमें यदि
'रामरस' न हो तो 'रसोइ' का स्वाद बेस्वाद ही है; ऐसे
ही इस नह-स्वरमें 'रामरस' न रहे तो वह नर-स्तन नितान्त
निरर्थक है। 'रसना' रामरस न रहनेसे रस-हीन ही है; नयन
नय-हीन हैं यदि वे अन्तर्मुख होकर अपने 'राम' की कृषि
नहीं निरखते; ओत—ओत नहीं जो शुस्ति-कथा सुनकर
'राम' मर्याद नहीं हो जाते— वे कान 'कान' नहीं कहे जा
सकते जो 'कान्ह'-कथाके इच्छुक-मिच्छुक नहीं हैं। एक
'अज्ञात' कविने भी 'र' 'म' की महानवा प्रवर्णित करते
हए कहा है—

कोऊ बनावत ऊच अटा, धनधोर धटा लगि तम्बु कराते ।
तामसी कोउ तमाम रई, बहु भूषण गौन समाकी जमरते ॥
बन्द मृषा भवको यह ख्वाल, महाविकराल घनी उत्पाते ।
एक 'म' कार 'म' कार विना म धिकार सबै संसारकी बाते ॥

इस यहाँ 'र' 'म' वर्णोंका केवल शाढ़िदूक घमत्कार

ही नहीं प्रकट कर रहे हैं। विशिष्ट वर्णोंके उचारणका सो अमेरिका, यूरोप, आदिके वैज्ञानिकोंने शारीरके अवयवोंके कष्ट तूर करनेका भी आविष्कार किया है। उन वैज्ञानिकोंका कहना है कि कुछ वर्ष या शब्द पेसे हैं जिनके Vibrations (कल्पन) से शारीरके विशिष्ट भीतरी भागोंपर धक्का पहुँचता है और परिवास: उस भागकी अस्वस्थता क्रमशः दूर हो जाती है। एक अमेरिकन पत्रमें एक रोगीने अपना अनुभव प्रकाशित कराया है। उसका कहना है कि मैं कहे वर्षोंसे मन्दाग्नि (Dyspepsia) आदि उद्दर-सम्बन्धी रोगोंसे पीड़ित था। अनेक औषधोपचार किये, पर विशेष लाभ नहीं हुआ। एक विन मैंने एक बच्चेको पलनेपर 'आ' 'म' शब्द बार-बार चिह्नाते सुना। उसी उत्तर मैंने ध्यानसे देखा सो जिस समय बालक इन वर्णोंका उचारण करता था, उस समय उसके पेटके उपरका पदां संकुचित होता और फैलता था, बस, मैं समझ गया कि इन वर्णोंके उचारणसे अवश्य पेटके भीतरी अवयवोंपर प्रभाव पड़ेगा। तदनुसार मैंने नित्य उपर्युक्त वर्णोंको जपनेकी किया की, जिसका परिणाम यह हुआ कि मेरे स्वास्थ्यमें क्रमशः परिवर्तन स्वरूप दिखायी पड़ने लगा। औंधके राजा-साहेबने 'सूर्यनमस्कार' पर एक उत्तम पुस्तक लिखी है, उसमें भी उन्होंने बेद-भ्रान्तोंके वैज्ञानिक प्रभावोंकी विशद व्याख्या की है। उनके भीशिवदत्तजी शर्माने 'ओंकार-जप-विधि' नामक पुस्तकमें भी 'ओ॒इ॑श्' शब्दके जाप करने-वालोंके अनुभवोंका उल्लेख करते हुए कहा है कि 'ओ॑' शब्द-के नियमित जाप करनेसे कई मनुष्योंका शारीरिक और नैतिक उचारण हुआ। अतः यदि भारतीय वैज्ञानिक 'शम' शब्दके Vibrations 'कल्पन' का वैज्ञानिक विश्लेषण करें तो निःसन्देह उनपर इमारे प्राचीन ऋषि-मुनियोंके उपदेशोंका रहस्य प्रकट हो जायगा।

अब हम स्वयं 'राम'-जापके अपने अनुभवोंको बताते हैं। पृष्ठ चत्रिय जो कल्पकी बीमारीसे धीरित थे, जब कई औषधोपचारसे नीरोग नहीं हुए तब वैष्णव उनके काममें अद्वृतव्यनि, किरणान और कृपय लिखमें प्राप्तः राम, कर्मण और महावीरीके युद्धका वर्णन था, अच्छे स्वरमें सुनाये जिसका परिणाम यह हुआ कि उनका

काठ-खद कास बाहर लिकल पड़ा और वे स्वस्य हो गये। दूसरे महाशय जो 'राम' शब्द से चिना करते थे, एक बार उदर-शब्द से अस्पन्त बेचैन हो गये। वैद्योपचार असफल होनेपर एक भजनानन्दीने उन्हें सलाह दी कि वे ब्रोसे 'राम राम' कहें, उन्होंने विनोद-वश ऐसा ही किया, जिसका परिणाम यह हुआ कि उनका शूल न जाने कहाँ कू हो गया कि। अब यहाँ एक खासिक रहिते जप करनेमें हमें जो अनुभव हुआ वह भी सुनिये—

एक बार हम जबलपुर जिलान्तरगत सिहोरा ग्राममें थे। एक दिन राम-जप करनेकी इतनी खुन समाई कि हमें आत्मविस्मृति-सी हो गयी। उस दिन यात्रा भी करनी पड़ी; परन्तु 'राम-जप' कई व्यवधान पक्केपर भी ऊर्ध्वों-का-त्वयों जारी रहा। सन्ध्याको घर लौटेपर क्या दिलायी पड़ा कि श्रीरामजी महाराज अपने प्रिय बन्धुओं और गुरु-जन सहित हमारे द्वारपर ही खड़े हैं। हमारे शरीरमें उस समय रोमाञ्च हो आया। तदनन्तर हमने सावधान होकर सोत्साह दृष्टवत् की और अपने अहोभास्य माने। जो प्रसन्नता हमें उस दिन हुई, कठाचित् ही वह जीवनमें अब

सम्भव हो। यथार्थ जात यह थी कि हमारे गृहके प्रमुखने राम-जीवाके शाश्वतोंको साथर आमन्त्रित किया था, जिसका हमें स्वप्नमें भी भान नहीं था। तो भी हमारे लिये उन पात्रोंके दृश्यमें ही अपने 'राम' की प्रतिमूर्ति कलाक डठी, जिसे हमने केवल अपने राम-जापका ही प्रतिफल समझा।

विकारोंके तीव्रतम उल्कर्षमें राम-जप हमें अस्पन्त शान्ति-प्रद होता है। इसकी कई आवसरोंपर परीका कर ली गयी है। अतएव जिनपर 'राम' नामकी महत्ता प्रकट हो जाती है, ऐसे भजनानन्दी अपने बातावरणको ही 'राममत्त' बना दाता है। अपने स्वजन-परिवारके नाम भी 'राम' से रहित नहीं रखते। कई व्यापारी 'राम' नामको फलदायक समझकर वस्तुओंको तौलते समय 'राम एक' 'राम दो' कहकर गिनती लगाते हैं। यहाँतक कि धोबी जब कपड़े धोने लगता है तो यकान आदि मिटानेके लिये 'राम-सियाराम' कहता है। उपर्युक्त विवरणसे स्पष्ट है कि 'राम' शब्दके जापमें अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष सबकी प्राप्ति सरजतासे ही हो जाती है। गोस्वामी तुलसीदासजी सच कह गये हैं:—
नहि कलि-कर्म न भगति-विवेक्। राम-नाम अबलम्बन एक्॥

तुलसी-स्मृति

कितनी उज्ज्वल विमल विभा है, गोस्वामीजीकी अस्तान—

शुक्रपक्षके ध्वन गगनमें , सतत दीखती वह धुतिमान ।
परम ज्योतिसे बिछुड़ पड़े थे कभी , यहाँ पर वे मतिमान ,

भूल जगतके तुमुल तिमिरमें भटक रहे थे उनके प्रान ;
मायाकी अज्ञान-निशामें जब स्वरूपका रहा न ध्यान--

प्रकट हुई तब कालनागिनी-मायासे मणि-ज्योति महान ।
अहो सुल गये वहीं अचानक, हियके दिव्य नयन , दो कान—

निखिल सृष्टिमें उन्हें हो गया , सियारामकी छाँचिका ज्ञान ।
उसी अतुल छाँचिके कर्त्तिनमें विश्वप्रेमके गाकर गान—

अपना पिँड़ा छोड़ हुए वे सियाराममें अन्तर्ज्ञान ।
× × × ×

पिंडमें यह सुग्ना भी तो रटता है नित सीताराम—

फिर भी तो हा इसे न मिलती-शान्ति, मुक्ति औ पावन धाम ।
खोलो, खोलो, अन्तर्यामिन् ! मेरे भी ये रुद्र कपाट—

शुक्रपक्षकी उज्ज्वलतामें मैं भी देखूँ रूप विराट ।

—श्रीशान्तिप्रिय द्विवेदी

* एकवार प्रसिद्ध रामभक्त गायनाचार्य पं० विष्णुदिग्म्बरजी पलुस्करने मुझसे कहा था कि जोर-जोरसे उन्हें सुरसे राम-नाम उच्चारण करनेसे जब चला जाता है। उनका ऐसा अनुभव है। —सम्पादक

रामायण और उसकी शास्त्रार्थ

(लेखक—प्रो० श्रीललितमोहन कार यम० ४०, वी० एल०, काव्यतार्थ)



दोंके पश्चात् रामायण ही सर्वोक्तुष्ट भारतीय अन्य है। भारतवर्षकी सभी सुख-सुख्य भाषाओंमें इसका अनुवाद हो गया है। इन अनुवाद ग्रन्थोंमें मूल ग्रन्थके मुख्य विषयसे साम्य होते हुए भी कथा-भागमें कुछ परिवर्तन पाया जाता है। जहाँ-जहाँ भारतीय लोगोंने प्रवास किया है वहाँपर वे अपने साथ कम-से-कम तुलसीकृत रामायण-जैसे सर्वप्रिय ग्रन्थको अवश्य ही लेते गये हैं। सुख्य सुख्य व्यापारिक केन्द्रोंमें भारतीय, आङ्गिक कार्योंकी समाप्तिके बाद तथा विभ्रामके पूर्व बहुधा तुलसीकृत रामायणके पदोंको गा-गाकर पाठ किया करते हैं जिससे दिनका कोलाहलपूर्ण वातुग्रस्तक मध्यरात्रिके समय पवित्र हो जाता है। भारतीय गुहाओंमें इसे बच्चे अपनी बड़ी सम्पत्ति समझते हैं और जिस समय मासाएँ अथवा दावियाँ भोजन बनाने, सूत कातने अथवा अन्य गृहकार्योंमें लगी रहती हैं उस समय वे उसे पढ़कर उन्हें छुनते हैं। रेखागादियोंमें प्रायः वह देखनेमें आता है कि दक्षिण भारतके नियासी लड़ाकोंके समान काठके दो ढुक्कों (करताल) को बजाते हुए द्वाविकी भाषामें श्रीरामकथाका गान करते हैं। अन्य तीर्थस्थानोंकी भाँति पुरीमें अगवाथजीके मणिदरमें भी नित्य सन्ध्याके समय रामायणका पाठ नियमितरूपसे होता है। रामलीलाके द्वारा भी रामायणके दर्शकोंका वर्षमें एक बार साक्षात्कार हो जाता है। रावणके पुत्रोंके द्वाह, तथा श्रीरामके सहायकोंकी सेनाका सज्जालन उसी प्राचीन रावण और विजयी श्रीरामकी सबी स्मृतिको जागृत कर देते हैं। भरतमित्राप—जहाँ एक वास्तविक राजा एक दूसरेको राज्यका भार सींपता है—सदा स्मरण इतनेयोग्य आधम्यागका एक अपूर्व दर्श उपस्थित करता है, और इसप्रकार यह भरतमित्राप प्रतिवर्ष जीवित किया जाता है।

रामायणके प्रति सजीव प्रेमका स्पष्ट परिचय इस देशके अन्य प्रान्तोंमें सार्वजनिक कथाके रूपमें सिवता है। सर्वसाधारणको समझानेके लिये इस कथाको नाटकीय स्वरूप दिया जाता है, जहाँपर कथाकाचक सभी पात्रोंका अभिनय करता है। अभिनय इतनी कुशलताके साथ किया जाता है कि (एक रामायणी कविके शब्दोंमें) कल्पशाप्ती

स्थलोंपर पथर भी पिछा जाते हैं। इसप्रकार वीते हुए दिनोंकी भावनाएँ जागृत रखी जाती हैं। महार्षि वाल्मीकि—जिनकी आयु अधिक बतलायी जाती है—वाल्मीकि विजीवी हो गये हैं और तबतक न मरेंगे, जबतक संस्कृत भाषा और हिन्दू-धर्मका अस्तित्व इस वसुधापर रहेगा।

रामायणके अतिरिक्त देशी भाषाके अन्य ग्रन्थोंके लगभग आधे से अधिक विचार वालमीकीय रामायणसे लिये गये हैं। इसमें अन्युक्त नहीं कि जो मनुष्य रामायणसे परिचित नहीं है उसे भारतकी विभिन्न भाषाओंके बहुत-से प्रसङ्ग समझमें नहीं आयेंगे। लक्ष्मण, मन्थरा, विभीषण तथा कनक-मूरा आदि पैसे शब्द हैं जिनके समझनेके लिये किसी कोषकी सहायता नहीं ली जा सकती। भारतके गृहस्थ-जीवनमें रामायणके आदर्शोंका बड़ा अनुत्त प्रभाव है। आज भी भारतीय नारियोंको महारानी सीताकी भाँति परिव्रता, श्रीरामके तुल्य पति, श्रीदशरथके समान भस्तुर और माता कौसल्याके समान सास पानेके लिये आशीर्वाद दिया जाता है। बहुत-से प्रान्तोंमें विवाहके अवसरपर आज भी छियां भगवान् राम एवं महारानी सीताके आदर्श विवाहसम्बन्धी गीत गाती हैं।

रामायणके अनेक अनुवाद पाये जाते हैं और प्रत्येक ग्रन्थमें सम्मादक अथवा अनुवादकने कुछ-न-कुछ अपनी ओरसे जोड़नेका प्रयत्न किया है। पाली ग्रन्थोंमें भी इस कथाका असंस्कृत रूप 'दशरथ जातक'के नामसे पाया जाता है। कविकुलशिरोमणि कालिदासन्ये लेकर कविराज पवित्रत प्रभृति-संस्कृत कवियोंने रामायणके आधारपर जिन-जिन ग्रन्थोंकी रचना की है उनमें घटनाकी इष्टिसे बहुत कुछ अन्तर पाया जाता है। कालिदासकृत 'रघुवंश', भषीकृत 'भट्टकाम्ब', राजशेखरकृत 'वालरामायण' तथा अन्तिम किन्तु भुर्नधर विद्वान् कविराज पवित्रकृत 'रघव पारदीव्यम्' आदि संस्कृतके ग्रन्थ रामायणके आधारपर रखे गये हैं। इनमें 'रघवपारदीव्यम्' एक अपूर्व ग्रन्थ है। इसके प्रत्येक श्लोक साथ-साथ रामायण और महाभारत दोनों ग्रन्थोंकी कथाओंका वर्णन करते हैं। इस अनुत्त प्रन्थके अवलोकनसे संस्कृत भाषाकी प्रभृत प्रतिभाष्म परिचय मिलता है। रामायणके

आशुनिक प्रम्योंमें कालमीकीय रामायणसे बहुत कुछ अन्तर पाया जाता है। महारामा तुदसीवासजी तथा श्रीकीर्तिवासजीने रामायणकी घटनाओंका उल्लेख भक्ति और प्यानसे प्रेरित होकर किया है, जिसका प्रभाव अन्य धर्मावलम्बी मनुष्योंपर भी पड़ता है। इसका परिणाम यह हुआ है कि कुछ मुसलमान-कवियोंने भी रामायणपर रचना की है।

अतः भिक्षुभिक्षु कवियोंद्वारा रामायणमें बहुत रूपान्तर हो गया है। सर्वग्रथम् इमें इस कथाका उल्लेख 'बौद्धजातक'में मिलता है। इस ग्रन्थके अनुसार, राजा दशरथ काशीके (अयोध्याके नहीं) राजा हैं। उनके रामपरिवर्त और लक्ष्मणकुमार दो लड़के तथा सीता नामकी एक कन्या है। इन बच्चोंको माताके मरनेपर राजा दशरथ एक विश्वविद्य सुन्दरीका पाणियहण कहते हैं, जिसके गर्भसे भरतकुमार जन्म लेते हैं। प्रसङ्गत एक दिन वह रानी अपने पुत्रको शुबराज बनानेके लिये राजासे कहती है, राजा सुनते ही क्रोधित हो उठते हैं और कहते हैं-'ऐ हुष्टा खो ! तुम्हे ऐसा कहनेका साहस कैसे हुआ जब मेरे अन्य दो लड़के अप्रिस्कन्धकी भाँति दीप्यमान हो रहे हैं।' अन्तमें राजा अर्थान्त दुखी होकर दोनों बड़े लड़कोंको कूटागारमें भुजाते हैं और उनसे कहते हैं कि 'हे पुत्रो ! तुमकोग इस राम्यको छोड़ दो, नहीं तो तुम्हारी हृष्वालु माता तुम्हारा वध कर डालेगी।' एव्वात् दोनों राजकुमार और राज-कुमारी उत्तर दिशामें हिमालयकी ओर दस वर्षकी अवधि धृतीत करने लगे जाते हैं क्योंकि ज्योतिषियोंके कथनानुसार राजाकी मृत्युके देवल दस वर्ष ही बच रहे हैं। किन्तु पुत्र-विष्योगके कारण राजा दो ही वर्षमें मर जाते हैं और नगरके सब निवासी भरतकुमारके साथ, उनकी अहिन तथा भाव्योंके लौटानेके लिये जाते हैं। राजाकी मृत्युका समाचार जैसे ही उनसे कहा जाता है, रामपरिवर्त तो धीरपुरुष होनेके कारण नहीं रोते हैं, किन्तु लक्ष्मणकुमार और सीता अर्थान्त अधीर हो उठते हैं। अब रामपरिवर्त किसी प्रकार भी राजधानीमें जाना नहीं आहते और प्रतिनिधिस्वरूप अपनी कुश निर्मित चरणपातुकाको भेज देते हैं। सब लोग निराश होकर लौट जाते हैं और गहोपर रामपरिवर्तकी आशुपातुकाको रक्ष देते हैं। ये

चरणपातुका चेतन है और अवतरक कार्यं न्यायपूर्वक सम्पादित होता है—कुप वैदी रहती हैं, किन्तु अन्याय होते ही वे एक दूसरेपर आघात करने लगती हैं। बनवासका समय बीतमें पर रामपरिवर्त राजा बनाये जाते हैं और जनकहुहिता (सीता) के साथ विवाह कर लेते हैं।

उपर्युक्त कथाके औचित्यपर अपनी सम्मति बदलन करनेका भार में पाठकोंके उपर ही छोड़ देता हूँ किन्तु बौद्धजनश्रुतिके अनुसार इस कहानीको स्वयं कुछ भगवान्में कहा था और उन्होंने यह भी कहा था कि पूर्वजन्ममें विषदमें भी प्रशान्तचेता रामपरिवर्त में ही था।

कवि काव्यिकासहत रघुवंशमें भी रामायणके सद्श आदिसे अन्तरक रघुकुलके आचार और धर्मोंके विकासका वर्णन मिलता है और उनको पराकाष्ठा श्रीरामके जीवनमें हो जाती है। रामचन्द्रके उपास्यानसे पूर्व रघुवंशमें एक महान् राज्यनिर्माणका क्रम दिखायी देता है और एकादशानेवाले राजाओंके वर्णनमें उसी राजकी अस्तम्यस्त दशका विवरण हो जाता है। कविने सबसे अधिक स्थान अर्थात् २६ राजाओंके बृत्तान्तसे पूर्ण रघुवंशका जगभग एक तिहाई भाग श्रीरामके चरित-चित्रणमें ही समाप्त कर डाला है। यहाँ तक कि महाराजा रघु जिनके नामसे काम्यका नामकरण हुआ है, उन्हें भी उत्तना स्थान नहीं दिया है। महाराजी सीताके चरित्र-चित्रणमें कविकी कला पराकाष्ठाको पहुँच जाती है। श्रीलक्ष्मणजीसे उस अज्ञात स्थानमें बनवासकी बात सुन सीताजी भूकिंत हो जाती है और चेतना लाभ करनेपर कहती है कि 'जब पति स्वयं राजगाहीपर विराजमान हो उस समय उसके सन्तानकी माताके लिये क्या भिज्जुकीका जीवन बिताना उचित है ? मेरी अभिप-परीक्षाके पश्चात् भी मेरा स्वाग करना क्या ठीक है ? अथवा कदाचित् यह मेरा हुर्भाग्य है ? फिर भी, शिशुपालन आदि भावत्वसे अवसर पानेही मैं पञ्चामि ग्रहणकर अति कठिन तपस्या करूँगी जिससे जन्मान्तरमें उन्हें पतिके रूपमें प्राप्त करूँ और मेरा तथा उनका फिर कभी वियोग न हो !'

साहं तपः सूर्यनिविष्टदृष्टि-
रुद्धं प्रसूतेश्चरितुं यतिष्ठे ।

● इस कथामें प्रतीत होता है कि या तो इसका लेखक श्रीबालवीकिरामायणसे अपरिचित था, अथवा तो जानवृहकर उसने इसप्रकारकी असम्भव और अनर्गल कल्पना की है। पाठकोंको इससे यह मालूम हो जायगा कि इसारे गौरवमव शतिहासको किस प्रकारसे लोगोंने विकृतरूपसे जनताके सामने रखा है।— सम्पादक.

भूयः पदेव जनमात्मेषु
त्वमेव मर्त्ता न च विक्रयोगः ॥

महाकवि भवमूर्ति जिन्होंने पूर्णरूपेय काव्यादासको वायामहस्ते लिखा दिया है, अपने पूर्व लेखकोंसे आगे बढ़ना चाहते हैं, जो महारानी सीताके चरित्रको और भी सुन्दर बनानेके लिये भगवान् रामको और कुछ उपेक्षाकी दृष्टिसे देखते हैं और उन्हें कम सम्मान प्रदान करते हैं, क्योंकि उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीके मुखसे सीताकीके विषयमें 'अथि स्वदेहात्' इत्यादि वचन कहलाये हैं । किन्तु भवमूर्ति उन्हें उत्कर्ष प्रदान करते हैं और उनके मुखसे—

'वत्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि'

—कहला देते हैं । यदि वास्तवमें देखा जाय तो भवमूर्ति-कृत 'उत्तर रामचरित' केवल एकाङ्ग अभिनय है । इसके प्रथमाङ्क-

में ही उपक्रम और अवसान उपस्थित कर दिये गये हैं । क्योंकि श्रीरामचन्द्रजी अभी-अभी अपनेको सीतासे अभिन्न समझ रहे हैं और तत्पर सीता-विषयोगका ग्रसङ्ग उपस्थित हो जाता है । उत्तर-रामचरितके अन्य आङ्क इसी कथाकी पूर्ति तथा पुनः संबोधगां सम्बादन करते हैं क्योंकि संस्कृत-साहित्यमें दुःखान्त नाटकका स्थान नहीं है । इससे ज्ञात हो जाता है कि भवमूर्तिने काव्यकी एकतापर व्याय नहीं दिया है, जिसका संस्कृतके अन्य नाटकोंमें पूरा निर्वाह किया गया है । उत्तररामचरितके द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ उपक्रम यथा वह अङ्कोंमें जिन-जिन घटनाओंका उल्लेख आता है वे एक ही दिन घटित होती हैं और सातवें आङ्ककी घटना कुछ दिन बाद होती है किन्तु प्रथम एवं द्वितीय आङ्कके मध्य बारह वर्षका अन्तर पड़ जाता है ।

अपर-काव्य

प्रत्येक मनुष्यके दो रूप होते हैं—पहले रूपमें सन्तों और योगियोंके गुण होते हैं और दूसरेमें ऐसी वृत्तियाँ होती हैं जो मनुष्यको धृष्टित और दूषित बनाती हैं । श्रीरामचन्द्रजी प्रथम स्वरूपके अधितार थे और रावण दूसरे स्वरूपका था । इससे शिक्षा मिलती है कि हम लोग सभी इच्छानुसार अपने जीवनको दैवी या आसुरी बना सकते हैं । हम स्वर्य ही अपने भविष्यके लिमिता हैं । साधारणतः लोगोंमें सदृश्वृत्तियोंकी अपेक्षा असदृश्वृत्तियाँ ही अधिक प्रकट हुआ करती हैं । अर्जुनने इस बातका अनुभव करके श्रीकृष्ण भगवान्से वह उपाय बतलानेके लिये प्रार्थना की थी जिसके द्वारा कामना और आसक्तिसे विक्षिप्त-चित्त पुरुष योगकी स्थितिको प्राप्त हो सकता है । भगवान् कृष्णने वहे ही मनोहर श्लोकोंमें ऐसे चिभिन्न साधन बतलाये हैं, जिनसे मन वशीभूत किया जा सकता है—‘मुक्तमें मनवुद्धि लगाकर सब काम करते रहो—‘मर्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धि निवेशय’। ऐसा न कर सको तो मेरे कर्मोंमें लगे रहो, जो कुछ करो सो मेरे लिये करो ‘मत्कर्मपरमो भव’ मर्द्यमपि कर्माणि ।’ यह न हो सके सो कर्मफलकी आशा छोड़ दो ‘सर्वकर्म फलत्यागं कुरु ।’ इस तरह अनेक प्रकारसे अहङ्कारपर विजय प्राप्त करने तथा योगियोंकी परमावस्थातक पहुँचनेका रहस्य भगवान्ने समझाया ।

यह उपदेश श्रीरामचन्द्रजीके आचरण और उपदेशका प्रतिफलरूप है । × × × ×

हम कह सकते हैं कि जैसी भावप्रकाशनकी सरल और चमत्कृत शैली, उच्च विचार तथा दिल फड़कानेवाली घटनाओंसे युक्त रचना वालीकिकी है उससे बढ़कर रचना साहित्य शास्त्रमें हो ही नहीं सकती । यही कारण है कि यह काव्य वृद्ध-युवा, सज्जन-दुर्जन, आस्तिक-नास्तिक सबके मनको मोह लेता है । ब्रह्माने ठीक ही कहा था कि जबतक चन्द्र-सूर्य चमकते रहेंगे और जबतक ससागरा पृथ्वीका अस्तित्व रहेगा तबतक यह काव्य जीवित रहेगा । —स्वर्गीय अद्वितीयोंवाली शोशणिरि अव्यर ।

कल्याण



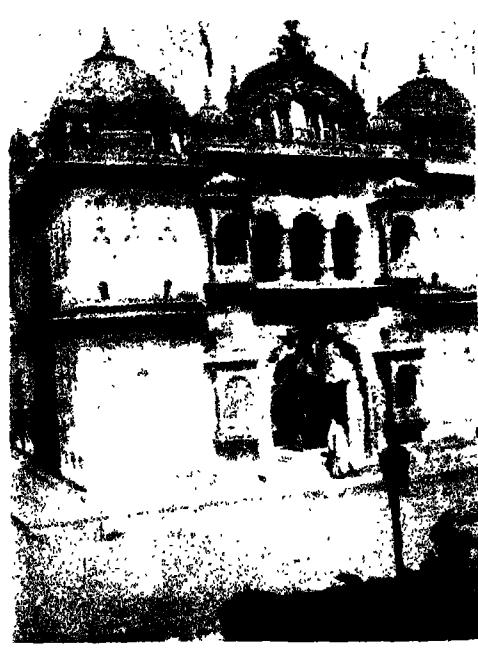
(श्रीजनकपुर धाम)



श्रीजानकीर्जीका नौलग्वा मन्दिर



श्रीजानकीर्जीके मन्दिरमें जानकीर्जीका सिंहासन



श्रीजानकी मन्दिरके भीतर जगमोहनजीके मन्दिरका पूर्वी दर्श

कल्याण



(श्रीजनकपुर धाम)



श्रीरामज्ञाने मन्दिरमें पाचान मूर्तियाँ



यन्तु श्रे. वसं श्रीरामज्ञाने मन्दिरका सामग्रेका (पूर्ण) दृश्य



श्रीरामज्ञाने मन्दिरका पश्चिमा दृश्य

प्रतिक्रिया संसद

राम-नाम-महात्म्य

(लेखक—स्त्रामीजी श्रीब्रह्मतिर्मयानन्दजी पुरी)



गवतावि भक्ति-प्रव्योगमें नवजा
भक्तिके विषयमें विशेषरूपसे बड़े न
किया गया है। उनमें स्मरण-भक्ति
एक अन्यतम है। इस स्मरण-भक्तिका
विषय प्रभुका नाम-स्मरण है। प्रभु
अनन्त अपार हैं। इसकिये उनके नाम
भी अनन्त अपार हैं। उन अनन्त अपार नामोंके प्रत्येक नाम
ही प्रभुका वाचक और जापको किये अभीष्ट सिद्धिवायक
है। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। परन्तु उनमें राम-नामकी
कुछ और ही महिमा है। भगवान् रामचन्द्र और उनके नामकी
यथार्थ महिमा सामान्य मनुष्योंकी तो बात ही क्या
है, देवतागण भी अच्छी तरह नहीं जानते। स्वयं श्रुति
माता भगवान् रामचन्द्रजीके और उनके पावन नामके
विषयमें कहती है:—

राम एव परं ब्रह्म राम एव परं तपः ।
राम एव परं तदेव श्रीरामो ब्रह्मतारकम् ॥
(रामरहस्योपनिषद्)

भगवान् रामचन्द्रजी परमब्रह्मस्वरूप हैं, रामचन्द्रजी
परम तपस्वरूप हैं, रामचन्द्रजी श्रेष्ठ तपव हैं और रामचन्द्रजी
साक्षात् तारक ब्रह्म हैं।

रमन्ते योगिनेऽनन्ते नित्यानन्दे चिदात्मनि ।
इति रामपदेनासौ परं ब्रह्मामिद्धियते ॥
(रामतापिण्डिप्रश्न)

जिस अनन्त नित्यानन्द चिदात्म परब्रह्ममें योगी लोग
सदा रमण करते हैं वही परब्रह्म रामायणादि प्रथमोंमें
रामनामसे कथन किये गये हैं।

महारामायण और अग्रस्वसंहितामें भगवान् शिवजीने
रामनामकी विशेषतः बतलाते हुए कहा है—हे देवी पार्वति !
समस्त वेद, शास्त्र, मुनि और श्रेष्ठ देवता भी अति महान्
नामका प्रभाव नहीं जानते हैं, असुर राम-नामका अर्थ
भगवान् श्रीरामचन्द्र ही सम्यक् रूपसे जानते हैं और उन्हींकी
कृपासे मैं भी किञ्चित जानता हूँ। हे पार्वति ! समस्त
वेदराठ और समस्त मन्त्रोंका अप करनेसे जो उत्थ जाभ

होता है उससे कोटिशु अधिक पुरुष-जाभ केवलमात्र
रामनामसे होता है।

अब प्रश्न यह है कि वेदोंमें 'ॐ' मन्त्रकी बहुत ही
प्रशंसा की गयी है, वहाँ कहा गया है कि 'ॐ' साक्षात् पर-
प्रकाशरूप है और वही मन्त्रोंका राजा है।'

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी भी गीतामें 'ॐ' के विषयमें
कहते हैं—

ॐ इत्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ।

यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥

(११३)

इसीप्रकार भगवान् पतञ्जलिने भी योगसूत्रमें 'तथ्य
बाचकः प्रणवः' कहकर इसकी महिमा गयी है।

उपर्युक्त श्रुति, स्मृति तथा अन्य अनेकानेक प्रमाणोंसे
यह सिद्ध होता है कि 'ॐ' से अधिक महस्वरूप मन्त्र समस्त
मन्त्रशास्त्रोंमें दूसरा नहीं है, किंतु राम-नाम सब मन्त्रोंसे
विशेषतः 'ॐ' से भी बढ़कर किस प्रकार हुआ ?

इसका उत्तर यह है कि बस्तुतः 'ॐ' और 'रामनाम'में
फलकी दृष्टिसे कुछ भी भेद नहीं है। दोनों ही परमात्माके
नाम हैं और दोनोंका ही फल समान है। परन्तु एक प्रकारसे
रामनामकी ही अङ्कारसे अधिक विशेषता बतलावी जा
सकती है, वह यह है कि—

अङ्कारके उत्तरारणका अधिकार आपामर सर्वैसाधारणको
नहीं है किन्तु रामनामका उत्तरारण उत्त-नीच, विद्वान्-अविद्वान्,
साधु-असाधु, छोटे-बड़े, छो-पुरुष, पारी-पुरुषात्मा सभी
मनुष्य, सब समय समान-भावसे कर सकते हैं। इस
बातको इम एक दृष्टान्तके द्वारा समझाते हैं—

किसी देशके एक स्वामी हैं, उनका नाम नटवर्णसिंहजी
है। वे उस देशके राजा हैं अतः उनके नामके साथ 'महाराजा'
भी जोड़ा जाता है। उनके पूर्वजोंकी उपाधि महाराणा थी
इसलिये उन्हें बहादुर भी कहा जाता है। वे वह शूरवीर हैं,
इसलिये उन्हें बहादुर भी कहा जाता है। सरकारसे उनको
केंसी०पैस०आई०की पदबी प्राप्त हुई है अतः उनके नामके
साथ वह भी जोड़ देनी आहिये। अब उनका पूरा नाम पैसा

हुआ ‘महाराजा महाराजा भीमदबरसिंहजी साहेब बहादुर के० सी० पू० आई०’ इस नाममें उनका सम्पूर्ण ऐश्वर्य, और महात्मा भरा रहनेसे भी जो बिज्ञान है, जो उच्चकोटिके मनुष्य हैं वे ही इसका उचारण कर सकते हैं। परन्तु जो अविद्यान हैं, साधारण ग्रामीण अनपढ़ हैं, या भूत्य-अशेषीके ज्ञाते हैं वे उस नामका न तो अर्थ जानते हैं और न उचारण ही कर सकते हैं। वे ज्ञाते हो केवल ‘महाराजा साहेब’ इतने सहजसाध्य—सहजबोध्य शब्दसे ही अपना काम चलाते हैं और महाराजा साहेब भी उनकी सरबतापर प्रसन्न रहते हैं।

इसी प्रकार ‘ॐ’ परमात्माका महान् महस्तपूर्ण एवं ऐश्वर्यपूर्ण नाम होनेपर भी साधारण अशेषीके मनुष्य उसका ज तो भावह समझते हैं और न ठीक-ठीक उचारण ही कर सकते हैं। इसीलिये शास्त्रकारोंने उस ‘ॐ’ के ही सारभूत अर्थ ‘राम’ हन दो अवधारोंसे परमात्माको सम्बोधित किया है, जिससे सर्वसाधारण उसको उपयोगमें ले सकें। ‘राम’ शब्दका अर्थ ‘रमन्ते योगिनो यसेन्’ योगीज्ञोग जिसमें रमण करते, पेसा परमात्मा परमात्मा है।

(१) एक हिंसाबासे ‘राम’ ॐ से भी सम्मान्य है क्योंकि ‘राम’ हन दोनों अवधारोंको अँकार सदा अपने महान् पर धारण किये रखता है। अँकारके उच्चभागमें जो अर्चचन्द्राकार चिह्न है सो ‘रक्षार’ का ही चिह्न है। वह उपर कैसे गया? ‘जलतुभिनकान्यायेन रेफसोध्वगमनम्’ इसी संस्कृत कहावतके अनुसार। और जो अँकारके ऊपर बिन्दु है सो ‘मकार’ का चिह्न है। ‘मोऽनुस्तारः’ इस यात्यनीथ सूत्रके अनुसार ‘मकार’ का रूप अनुस्तार हुआ है। अब यदि आप पूछें कि ‘राम’ शब्दमें जो आकार या वह कहाँ गया? इसका उत्तर यह है कि ‘आकार’ अकार का ही एक भेद है ‘अकारस्याद्वद्रा भेदाः।’ राममें जो आकार है वह केवल उचारणके किये ही है, इसके अविविक्त उससे कोइ विशेष प्रयोगन नहीं है, पायिनि महाराजने कहा ही है कि ‘अकार उचारणार्थः’ इति।

(२) ‘राम’ इस मन्त्रमें अँकारका सार आनेसे जिस वर्णके साथ राम यह महामन्त्र अर्थात् ८ नाम बिन्दु लग जाता है वही वर्ण एक अहूत मन्त्र-शक्तिवादा बन जाता है। इस विषयमें तुलसीदासजी कहते हैं—

एक छत्र इक मुकुटमनि सद वर्णनपर जोय।
तुलसी रघुबर नामके वर्ण विराजत दोय॥

इसी रीतिसे लौं (पृष्ठीबीज), हैं (अप्तिबीज), वैं (वस्त्रबीज), यैं (वायुबीज), हैं (आकाशबीज), इत्यादि जिस-जिस वर्णके ऊपर ‘राम’ ये दो अक्षर विवाजमान हुए हैं, वही वर्ण महान् शक्तिवादी वीजमन्त्र बन गया है और उन वीज मन्त्रोंके जप करनेसे उन मन्त्रोंके देवता श्रीग्र भ्रसन्न हो जाते हैं।

प्राणीमात्रके नाममें ‘राम’ यह दो अक्षर मालामें सूत्रकी तरह प्रोत है।

‘राम’ शब्द प्राणीमात्रके नामका भी हेतु है, अर्थात् जीवमात्रके नामोंमें ये दो अक्षर ‘राम’ पाये जाते हैं। किसी भी व्यक्तिका, किसी भी बदा नाम क्यों न हो, अन्तमें उसमें दो ही अक्षर वाकी रह जाते हैं, ये एवं सब अक्षर उड़ जाते हैं। इस विषयको गणितकी सहायतासे स्पष्ट किया जाता है। प्रत्येक पुरुषको संसारमें धर्म, धर्य, काम और मोह ये चार प्रकारके पुरुषार्थ-साधन करने पड़ते हैं, इसलिये प्रत्येक नामके अवधारोंको पहले चार गुणा करना होगा, ये पुरुषार्थ पञ्चमूर्तोंकी सहायतासे होते हैं इसलिये उस गुणाफलके साथ पांच और जोड़ देना चाहिये। अब प्रत्येक पुरुषको पुरुषार्थ-साधन करते हुए शीतोष्णा, सुख-दुःख, चृत्यिपासा आदि हन्द भी सहन करने पड़ते हैं इसलिये उस योगफलको फिर दोसे गुणा करना चाहिये। अब उस गुणाफल-को भगवत् वाक्यानुसार अष्टष्ठा-प्रकृति ‘भूमिरायोऽनलो वायुः खं मनोऽुक्तिरेव च। अहंकार इत्यां मे भिन्न प्रकृतिरष्ट्वा’ द्वारा विभाग करनेसे अवश्य ही चेतनस्वरूप ‘राम’ ये दो अवधारामक पुरुष ही अवशेष रहेगा। उदाहरणार्थ किसी पुरुषका नाम ‘देवदत्त’ है, इस नाममें ४ अक्षर हैं, इसको ४ से गुणा करनेसे १६ होते हैं, उसके साथ ५ जोड़ देनेसे २१ होते हैं, २१ को हुगुणा करनेसे ४२ होते हैं, फिर उस ४२ को ८ से विभाग करनेसे वाकी २ रहते हैं और ये दो अक्षर ही ‘राम’ शब्द हैं। इसप्रकार सम्पूर्ण नामोंका आधार ‘राम’ को ही समझना चाहिये—

जीव सर्वदा ‘राम’ ये दो अक्षर जपता रहता है-

जीव जो शास-प्रकाश लेता है वह अविजित भावसे ‘राम’ नामका ही जप करता है, पेसा समझना चाहिये।

राकारेण वहिर्याति मकारेण विशेषं पुनः।

राम रामेति सच्छब्दो जीवो जपति सर्वदा॥

राकार उचारण करता हुआ जीव प्राण-वायुको छोड़ता

है और मकार उचारण करता हुआ प्राणको अन्दर प्रवेश करता है। इसप्रकार जीव अहिंसा 'राम' द्वारा दोनों अपरोक्षोंको ही जपता रहता है।

रामसे रामनामका महत्व अधिक है।

एक कविने कहा है—

राम त्वतोऽधिक नाम इति मन्यामहे नयम् ।
त्वैका तातिरोऽयोग्या नाम्नातु मुवनव्रयम् ॥

हे राम! आपके नामकी महिमा अधिक सालूम पहली है, क्योंकि आपने तो केवल एक अपोज्याका ही उद्धार किया है और आपका नाम तो स्वर्ग, मर्यादा और पानाल हृन तीनों भुवनोंका उद्धार कर रहा है।

राम नाम सर्व पापनाशक है।

माहात्म्यं परमं तदैव महतो हे राम नामःस्तीतै,
राकां बदलो जनस्य सकलं निर्यति पापं हृदः ।
भूयस्तद्विशतीति रोचनविद्वास्तं मकास्ततो,
जिह्वाप्रे तत्र राम नाम वसतु श्रीरामभूयस्य मे ॥

हे रामचन्द्रजी! पृथ्वीमें आपके भग्नान् नामका वदा भारी महात्म्य है, 'रा' कहते ही मनुष्यके हृशस्त्रियत समल पाप निकल जाते हैं, फिर वे अन्दर प्रवेश नहीं जाने पाते, क्योंकि 'म' कहता हुआ मुख बन्द हो जाता है। ऐसा पवित्र नाम मुझ श्रीरामचन्द्रजीके द्वासकी जिह्वापर सदा निवास करे।

देननिदनन्तु दुरितं पक्षमासन्तुर्वर्जम् ।
सर्वं दहति निःशेषं तूलाचलमिवानलः ॥

कहैके पहाड़को भी जैसे अग्नि विलुक्त फूँक देती है, वैसे ही रामनाम भी दिन, रात, मास, वर्ष और वर्ष आदिके समल पापोंको निःशेषतया नाश कर देता है।

कलिमें रामनाम ही एकमात्र आश्रय है

रामेति वर्णद्वयमदरेण सदा स्मरन्मुक्तिमुपैति जन्तुः ।
कलौयुगे कलमध्यमानसानामन्यत्रवर्षे खलु नाधिकारः ॥

राम हृन दोनों वर्षोंको आदरसे सरण करता हुआ प्राणी मुक्तिको प्राप्त होता है। कलियुगमें इस रामनामके अरथके अतिरिक्त और किसी भी साधनमें शापात्मा मनुष्योंका अधिकार ही नहीं है।

कहौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्मया ।

कलिमें रामनामसे अतिरिक्त गति नहीं है।

रामनाम सर्व भय तथा सन्तापहारी है

भक्तराज प्रह्लाद विता हिरण्यकशिंगुके प्रति कहते हैं—

रामनाम जपतां कुतो भयं सर्वतापशमनैकमेवजम् ।

पद्य तात मम गात्रसज्जिधी पावकोऽपि सतिलापतेऽधुना ॥

रामनाम जपनेवालोंको भय कहाँ? सर्व-ताप रामन कलनेवाला एकमात्र शौष्ठवि राम नाम है। हे पिता! देखो, मेरे शरीरके सभीप अग्नि भी अब जल-सी शीतल हो गयी है।

रामनाम उद्घटा जपनेसे भी मुक्ति

उद्घटा नाम जपत जग जाना। बालमीकि भयं ब्रह्मसमाना ॥

घोर पाणी दस्तु रत्नाकर महर्षियोंकी कृपा प्राप्त करके भी जब उनके दिये हुए रामनामका उचारण करनेमें असमर्थ हो गया, तब महर्षियोंने एक छृत वृषकी ओर हृशारा करके उससे कहा कि 'देख रत्नाकर! वह सामने जो वृष दीखता है वह कैसा है?' रत्नाकरने कहा—'मरा' है, तब महर्षियोंने कहा, 'अच्छा! तुम बराबर हस्ती शब्दका जप किया करो!' रत्नाकर उस उलटे 'राम' शब्दका उचारण करते करते जगपूर्य कवि बालमीकि तथा सालान् ब्रह्मस्तरूप बन गये। यह रामनामकी महिमा है।

रामनामका प्रभाव

एक समय ब्रह्माजी सब देवताओंसे बोले कि पहले किसकी पूजा होनी चाहिये। यह सुनकर सब देवता आपसमें जाह्नवे लगे। सब ब्रह्माजीने कहा कि 'आप लोगोंमेंसे जो सबसे पहले सारी पृथ्वीकी प्रदक्षिणा करके मेरे पास आवेंगे वही प्रथम-पूज्य होंगे। यह सुन सब देवता आपने अपने बाह्लोपर चढ़ पृथ्वी-प्रदक्षिणाके लिये निकले, इनमें गणेशजी सबसे पीछे रह गये, एक तो उनका शरीर स्थूल और दूसरे बाह्न भी चूहा। वह आपना पराजय सोचकर बहुत व्याकुल हो गये। इतनेमें नारदजी आ गये और उनकी यह दृश्य देखकर बोले—'गणेशजी! आप व्याकुल ही मैं आपको एक उपाय बतला देता हूँ। आप पृथ्वीपर 'राम' नाम लिखकर उसकी प्रदक्षिणा करके ब्रह्माजीके पास जाले जाइये, आपकी आवश्य जय होगी और आप सबसे पहले पूजित होंगे।' गणेशजीने वैसा ही किया और ब्रह्माजीने रामनामका माहात्म्य विचारकर गणेशजीको

ही सर्व-प्रथम पूज्य उहराचा । इसीसे गो० तुलसीदासजी कहते हैं—

महिमा जातु जान गनराज । प्रथम पूजियत नाम-प्रभाऊ ॥

(२) समुद्र-भन्धनके समय कालकूट नामक अहर निकला जिससे सब देव-दानव जलने लगे, तब सब मिलकर भगवान् शंकरकी शरण गये और कहते—‘हे भगवन् ! इम सब भस्म हुए जा रहे हैं, कृष्ण करके इस भयानक विषसे हमें बचाइये ।’ दयालु शंकरजी राम-नामका उच्चारणकर उस भयंकर कालकूट विषको पी गये और राम-नामके प्रभावसे वह विष असृत हो गया, जिससे शिवजी सदाके लिये अमर हो गये । इसीलिये तुलसीदासजीने कहा है—

नाम प्रभाव जान रिव नीके । कालकूट फल दीन्ह अगोके ॥

(३) एक समय शंकर भगवान् ने पार्वतीजीको भोजनका समय हो जानेसे भोजनके लिये तुलाया, पार्वतीजी कहने लगी कि मैंने अभी तक विष्णुसहस्रनामका पाठ नहीं किया है, आप भोजन कीजिये, मैं पाठ करके भोजन करलूँगी । तब शिवजीने कहा—

राम गोमति रामति रमे रामे मनोरमे ।

सहस्रनाम तनुत्यं राम नाम बरानने ॥

राम-नामके माहात्म्यको मुनकर पार्वतीने रामका नाम लेकर भोजन कर लिया ।

(४) सेतु-बन्धनके समय बानर लीकने राम-नामकी शक्तिसे पर्यरोंको बोडकर सेतु-बन्धन किया था और समुद्र-पर पथर तैराये थे और इसी नामकी महिमाको कृष्णमें सुनकर श्वासिनी यसुनान्पार हो गयी थी । राम-नामकी

महिमा गायी जाय तो कृष्णकर्म में भी पूरी बही होगी । संचेपसे योद्धे-से शब्द और विवरकर ग्रन्थ समाप्त करता है ।

तुलसीदासजी कहते हैं—

भाव कुमाव अनख आलसहू । नाम जपत मंगल दिसि दसहू ॥

इसीलिये पुहर आपसमें मिलनेपर कहते हैं ‘राम राम’ । जिसी भी आपसमें मिलनेपर कहती है ‘राम राम’ । जिसीका कोई वह सुना जाय तो सुँ हसे निकलता है ‘राम राम’ । वीभ विनार कहसे उकारती है ‘राम राम’ । मुद्देंके पीछे कहते हैं ‘राम राम’ । लघुमाला तन्मने एक स्लोक है—

शिवे शब्दे न सकारो भवत् प्रेतस्य कस्यचित् ।

अहस्तदाहपर्यन्ते रामनाम जपो वरम् ॥

मुद्देमें कोई प्रेत युस न जाय, इसलिये रामनाम जप करना चाहिये । प्रेतसाधन-तन्मने भी कहा है—

‘शब्दसाधनवेलायां रामनाम विवर्जयेत् ।’

शब्दसाधन करनेके समय रामनाम नहीं लिखा जाता है । यदोंकि इस नामको सुनकर प्रेत, भूत, विशाख, डाकिनी, शाकिनी, ब्रह्मराक्षस आदि भग जाने हैं । निहृत योनिज जीव भग जाने हैं, इसी कारण लोड शब्दको ऐ जाते अधिक दाह करते समय ‘राम नाम सत्य है’ ऐसा बोलते हैं । इसी संसर्ग-दोषसे विदाह आदि शुभ कार्योंमें ‘राम नाम सत्य है’ अमरात्म-सूचक माना जाता है परन्तु बास्तवमें राम-नाम सदा सत्य एवं पवित्र है, इसमें कोई भी सन्देह नहीं है । भगवान् के नाममें जो कोई विवेच या आवेदन करेगा उसको अवश्यमेव नरककी प्राप्ति होगी ।

रामकथा सुरलोक नसैनी

दीन दुर्सीन अनाधनको कलपद्रुम है कलिमें सुख दीनी ।

पापम-पुञ्ज पत्तारनको वर-वारि प्रवाह अथाह त्रिवेनी ॥

काय मदादिक काननको जनु जारि उजारत पावक धैरी ।

‘ओत्रिय’ सोच बृथा सच है, जब रामकथा सुरलोक नसैनी ॥

बालिवधका औचित्य

(लेखक— श्रीजनकमुताशरण शीतलासहायजी साक्षत् वा०५०, ए०-ए०१०, सम्पादक 'मानसपिण्ड')

घर्मदेहु अवतरेहु गोसाई। मारेहु मोहिं व्याधकी नाई॥

हिवधके विषयमें उपर्युक्त चौपाईको लेखर कुछ बातें बोलते हैं। समाजोबकोने हृषे आवोचनाका विषय बना लिया है और परम्भ परमात्मा मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके चरित्रमें हृषको एक धन्वा माना है।

इस विषयमें तीन प्रकारसे विचार किया जाना आवश्यक है। (१) भगवान् रामचन्द्रजीको निर्मुख निराकार आदि विशेषज्ञातुक परम्भ परमात्मा मर्यादापुरुषोत्तम मानकर; वर्णोंकि रामायणके सभी रचयिताओंने उनको अवतार मानकर ही चरित्र-विचार किया है। (२) राजनीतिकी दृष्टिसे, जिसमें अवतारसे कोई सम्बन्ध नहीं भी इस सफलते हैं और (३) शरणागत-वस्त्रालापा एवं सत्यसंध्यालाली दृष्टिसे। उपासक ज्ञोग तो श्रीभगवान्‌के 'विटप ओट' होनेमें शरणागत-वस्त्रालापोंही मुख्य कारण मानते हैं और यह दास भी उन्हींके विचारोंसे सहानुभूति रखता है। इसीसे इसको सबके अन्तमें रखता है।

अब प्रथम दृष्टिसे विचार प्रकट किया जाता है। जो ज्ञोग भगवान् श्रीरामचन्द्रजीको अवतार मानते हैं (उनकी विषयना करते हों या नहीं, इससे हमें सरोकार नहीं) उनसे मेरा यह प्रश्न है कि 'क्या आप भगवान्‌के सारे कार्योंमें दख्क रखते हैं, क्या भगवान्‌के जिसने चमत्कार विद्या-उत्पत्ति प्रकट होते हैं और जो पूर्णसे ही विश्वायी दे रहे हैं, आपने उन सबको समझ लिया है ? क्या पञ्चतस्वसे वनी हुई यह चुद्र तुदि उप सर्वशक्तिमान्‌के कार्योंके कारण समझने-सोचनेमें समर्थ हुई है ? गर्भमें वसा कर्त्तों उलटा रहता है ? यह संसार कर्त्तों इसी गया ? असुक दृष्टके पर्वोंमें ऐसे किन्तु कर्त्तों हैं और असुकमें दूसरे आकार कर्त्तों हैं ? तारागत किसने है, कहाँतक है ? यहके हृष कुमा या बीज ? इत्यादि इत्यादि जिसकी असृत करती है, जो—

विनु पद चलइ सुनइ विनु काना। विनु कर कर्म करइ विधि नाना
अस सब भौति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहि बरनी॥

यह उपसको समझनेमें आप आपनेको समर्थ पाते हैं ? यह आपने पूर्वोक्त प्रश्नोंके उल्लङ्घण कर्त्तों सोचे और कुछ

नियम किया है ? आज जो एक Theory लिखती है कुछ वर्ण बाद वह पक्षपात आती है, जिसे ज्ञोग आज एक जातका ठीक उत्तर समझते हैं उसीको कुछ दिन बाद वे ही ज्ञोग गृहत मानते हैं। यह यह बात ठीक नहीं है ? ऐसी हालतमें ज्ञातकी चुद्र-तुदिमें तो यही जाता है कि भगवान्‌के कार्यमें सन्देह करना उचित नहीं। उनके कार्य समझानुकूल और बहुत ही ठीक होते हैं, वे सदा अच्छा ही जैते हैं। उनके सब कार्य यदि इमारी समझमें आ जायें तो उनका सर्वशक्तिमान् गुण ही कहाँ रह गया ? अन्य मतावधानियोंने भी यही अत प्रकट किया है—

हरकि अमद इमारत नौ सालत।

रप्तो मंजिल बदीगरे परदालत ॥

अर्थात् जो आया, उसने एक नवी इमारत लड़ी की, पर जला गया और मंजिल दूसरोंके लिये लाली कर गया। तात्पर्य कि जो जाता है अपनी अज्ञल लड़ाता है और जला जाता है, कोई पार न पा सका।

वही ईसामसीहका शूलीपर जलना, जिसको ईसाई कुछ वर्ष पूर्व कमज़ोरी और अपने अतपर एक धन्वा समझते थे, आज अपने लिये एक वडे भारी गौरव और वज्र यानी मुक्ति (Salvation) का कारण समझते हैं।

अब भगवान् श्रीरामचन्द्रजी सालाद परमेश्वर और मर्यादा पुरुषोत्तम अवतार हैं, तब उनके चरितपर सन्देह कैसा ? उनका कोई भी चरित ऐसा नहीं हो सकता जो मर्यादा-पुरुषोत्तमपर धन्वा ढाल सके।

अब यहाँ कुछ महानुभावोंके विचार उद्दृत किये जाते हैं कि जिन्होंने इस चरितको धन्वा मानकर उसकी विधायता बतायी है, अपना ज्ञोगोंकी इस रूपाकाका समाधान किया है—

१० रामचन्द्र शुक्र (लेखकार हिन्दू-विश्वविद्यालय)
कहते हैं—‘रामके चरितकी इस उत्तरवाताके बीच एक धन्वा भी विश्वायी देता है। वह है बादिको छिपकर मारना। बादिकी और तुलसीदासजी दोनोंने इस धन्वेपर कुछ सफेद इंग पोतनेका प्रयत्न किया है। पर इमारे देलनेमें तो वह धन्वा ही समूर्ख रामचरितको उत्त आवर्णके

अनुस्पृष्ट एक वाल्पनिकामात्र समझे जानेसे बचाता है। यदि एक यह घब्बा न होता तो रामकी कोई बात मनुष्यकी-सी न आगती और वे मनुष्योंके बीच अवलाभ खेकर भी मनुष्योंके कामके न होते। उनका वरित भी उपदेशक महात्माओंकी केवल महावृत्तक फुटकर बातोंका संग्रह होता, वह मानव-जीवनकी विशद अभिव्यक्ति सूचित करने-वाले संबंध कान्पका विषय न होता। वह घब्बा भी सूचित करता है कि ईश्वरावलार राम इमारे बीच इमारे भाई-बन्धु बनकर आये थे और हमारे ही समान चुस्तुःस भोगकर जले गये। वे ईश्वरता विस्तारे नहीं आये थे। भूल-चूक या त्रुटिसे सर्वथा रहित मनुष्यता कहीं हो सकती है? इसी एक घड़बेळे कारण हम उन्हें मानव-जीवनसे तटस्थ नहीं समझते— तटस्थ क्या, कुछ भी हटे हुए नहीं समझते।'

आशेषवशक्रूर जामदारजी कहते हैं—‘वाक्यिवच इस काव्यकी एक और विशेषता है। विशेषता कहनेका कारण यह है कि वाक्यिवचके सम्बन्धमें श्रीरामजीपर कपटका दोष लगाया जाता है। आजकल तो विचारकी यह एक परिषाटी-सी हो गयी है। उसके मुख्यमें ‘विद्य घोट’ और ‘व्यापकी नाई’ ये पद आधारभूत विश्वलाभेये जाते हैं। आजेप ठीक है या नहीं, इसका अब थोड़ा विचार करें।

‘कपटका दोष सबसे प्रथम वाक्यिवे ही लगाया था और वह उस समय लगाया था जब वह पूरा पराल और मरणोन्मुख होनेके कारण विलक्ष्ण ही क्रोधमें भरा था। यहाँ मुख्य देखना यह है कि वाक्य भरना जाता था तो भी उसका अहंकार रूपों-का-रूपों जीता ही जाता था। इसका प्रमाण इम वाक्य-निश्चन-बर्णनके पहले क्षम्यमें ‘मोहि जानि आनि अभिमानवन’ इन वाक्यिके ही शब्दोंसे लेते हैं। इस अभिमानके बाय होकर ही ‘धर्मदु अवतोरु गोमां’ मोहि मोहि व्यापकी नाई ॥’ वाक्यिवे यह प्रथा किया।

‘अभिमानी प्रहृतिकी ‘युगा: पदं न कुर्वन्ति ततो निन्दा प्रवर्तते ।’ यह स्वभावसिद् प्रहृति रहती है। क्या हमारे लिये भी वार्जिकी रहिये देखना ठीक होगा?

‘आजेपाई दो पदोंमेंसे एक ‘तक्षोट’ है। सभी संहिताएँ एक भूतसे यही प्रतिपादन करती हैं। इसलिये इसके सम्बन्धमें किसीको भी ऊरक करनेका एक नहीं, पर ऐसका

एक इसी बातपर विलक्ष्ण निमंत्र रहकर कपटका दोष आरोपित करना सुविचारका लक्ष्य नहीं कहा जा सकता।

दूसरा पद—‘व्यापकी नाई’ है। व्यापकमें वह पद निर्वृत्तताका दर्शक है। ज्ञानोंकि व्यापकमें अवश्य ही निर्वृत्तताका होता है। पर वह नहीं कहा जा सकता कि वह सभा कपटसे ही भरा रहता है। इसलिये व्यापक शब्दसे दयालूप्रवृत्त लेना होगा।

आजेप करनेवाले एक्षे लोग व्यापक शब्दसे कपटभाव लिया करते हैं। हमारे मतसे जिस अवश्यकरके सम्बन्धमें जिस विषयका प्रकाश न करना अवश्यकर रहता है, उस अवश्यकरके सम्बन्धमें उस विषयका आच्छादन अब किसीसे जान वृक्षकर किया जाता है, तभी वह किया कपट कहताती है।

‘इस व्यापकानुसार, अपनेको जानकूमकर छिपाकर, यदि रामजीने वाक्यिव बाल लगाया होता, तो उनपर कपटका अपराध अवश्य ही प्रमाणित हो सकता। परन्तु मूल ग्रन्थ ही स्पष्ट कहता है कि वर्णपि वाकि मैदानमें इटा हुआ प्रवृत्त सामने लगा था तो भी रामजीने ‘एकरूप तुम्ह आता दोऊँ । तेहि भद्रमें नहि भरेऽ मोऊँ ॥’ ऐसा कहकर तुरन्त ही ‘कर परमा मृद्युव मरीरः ।’ और ‘मेनी कठ सुमनक माला । पठवा पुनि बल दृढ विमाला ॥’ इस प्रकारसे सुर्योदयको किये भेजा। इस वर्णनमें यह सोपत्तिक मिल होता है कि अपनेको छिपाना तो दूर ही रहा, उलटे और वाक्यिकी ही रहि अपनी ओर स्वीकृतेका निःशंक-प्रयत्न रामजीने आन-कूपकर किया; अरव रहे कि मैं ‘पहचान नहीं सका’ यह केवल औरकारिक निमित्त बतसाते हुए प्रवृत्त पहचान उत्थानेके लिये और वाक्यिकी रहि उस तरफ स्वीकृतेके लिये श्रीरामजीने सुर्योदयको पुष्पमाला उठानायी थी।

‘आजेप करनेवालोंका अब ऐसा भी दर्शनेका प्रबल होगा कि वाक्यिवे रामजीके किसी भी कार्यकी ओर,—सुर्योदयके गहराई कान्कशी ओर भी— उहित्रेप न किया। पर एक तो यह कहना ही संयुक्त नहीं है, ज्ञानोंकि वाकि कुछ आँखें मूँदकर बींद अपवा समाधिमें तो उब ही नहीं रहा था और दूसरे बींद वाक्यिवे देखा ही नहीं था देखनेकी वारपा न थी, सो यह किसका दोष है? साक्षात् उसीका दोष है।

इन सब बातोंका इसप्रकार विचार करनेपर रामजीके कपर बगाया जानेवाला क्षणटक आचेप हमारे मतसे अनुपर्याप्ति सिद्ध होता है ।

राजनीतिकी दृष्टिसे विचार

किसी बातकी ढीक समाजोचना और जाँच तभी हो सकती है जब समाजोचक अपनेको उस समयमें पहुँचा दे जिस समयकी वह घटना है, जो समाजोचनाका विषय है । वही समाज-सुखार-सख्ती बातें जो एक शाताव्यिके पूर्व शूलासे देखी जाती थीं, आज उचित समझी जाती हैं । वही मनुष्योंका बेचना, गुबाम बनाना, बालविधाह आदि जो पहले अच्छे समझे जाते थे आज तुरे समझे जाते हैं । ऐसे ही आज संसारमें आपके सामने अनेक उदाहरण हैं, समझ लीजिये । जो बात पहलेके समयमें नीतियुक्त समझी जाती थी, उसीको आज अनीति कहा जाता है । इस स्थितिमें क्या हम अपनेको सब्जे समाजोचक कह सकते हैं यदि हम उस समयकी घटनाका व्याख्याता वह मान करकी नीतिसे जाँचें ? मेरी समझमें तो कहुआपि नहीं ।

इसको वालिवधपर आद्वोचना करनेके लिये श्रेत्रायुगीकी नीतिका अवलम्बन करना पड़ेगा । उस समयकी नीति अच्छास्त्र, बालमीकि आदिमें भी इस प्रसंगपर दी हुई है और मनुस्मृतिका प्रमाण भी किया गया है । यथा बालमीकीये किं० स० १—

तदेतत्कारणं पश्य यदयं त्वं मया दृतः ।
आतुर्वर्तीसि मार्थायां त्वयत्वा धर्मं सनतनम् ॥
अस्य त्वं धरमाणस्य सुग्रीवस्य महात्मनः ।
रमायां वर्तसे कामात्सुशायां पापकर्मकृत् ॥
न च ते मर्तये पापं क्षत्रियोऽहं कुलोद्रुतः ।
औरसा॒ मर्गिनी॑ वापि भार्या॒ वाप्नुजस्य यः ॥
प्रचरेत् नरः कामात्स्य दण्डो वचः स्मृतः ।
मरतस्तु मर्दीपस्तो वर्यं त्वादेशवर्तिनः ॥

(१०-१९ । २२-२३)

‘मुझने धर्मका त्वाग किया, छोटे भाईके जीतेजी उसकी जीको अपनी ली बना किया । इसके लिये प्रायदर्ढ ही विधेय है..... । वही बात गोस्वामीजीने भी कही है—

अनुजदधू मर्गिनी मुरवनारी । मुन सठ कल्या सम ए आरी ॥
इन्हाँहि कुदिष्ठि बिलोके जोई । ताहि बचे कमु पाप न होई ॥

वालिको श्रीरामचन्द्रजीका ईचरावतार होना अवश्य है । वह जावता है कि सुग्रीवसे उनकी मित्रता हो गयी है और वे उसकी रक्षामें तथ्य हैं । ताराने वालिको समझाया है और प्रायंता की कि सुग्रीवसे मेज कर लो, वेर कांडकर उसे उचाराय बना दो, अन्यथा तुड़हारी रक्षाका दूसरा उपाय नहीं है—“नान्या गतिरिहासि ते” (वा०रा०४।१३।२८) । पर उसने अभिमानवश उसका कहा न भाला और यही कहा कि वे धर्मज्ञ हैं, पाप क्षणों करते, वा (मानसके कथनादुसार) वे समदर्शी हैं एवं ‘जो कदाचिं मोहि मारिहाहि तो पुनि होउँ सनाय । प्रसुने वालिको पहली बार नहीं मारा । उसको बहुत मौका दिया कि वह सैमझ जाय, सुग्रीवसे शत्रुभाव छोड़ दे, इससे मेज कर ले, पर वह नहीं मानता । दूसरी बार अपना चिह्न देकर फिर भी भगवान्ने उसे द्वैशियार किया कि सुग्रीव मेरे आश्रित हो जा चुका है वह आनंदर भी— मम भुव बल आभित तेहि जानी— उसने श्रीरामचन्द्रजीके पुरुषार्थकी अवहेलना की, उसका अत्यन्त अपमान किया, उनके मित्रके प्राय लंगेपर तुक गया, तब उन्होंने मित्रको शत्रुपाशसे बचानेके लिये उसे मारा । इसमें ‘किटप ओट’से मारनेमें क्या दोष हुआ ?

यदि इसमें अन्याय होता तो रानकी क्षमापि यह न कह सकते कि किंपकर मारनेके विषयमें न मुझे पश्चासाप है न किसी प्रकारका दुःख—

न मे तत्र मनस्तापे न मन्युईरिपुंगव ।

(वा०रा०४।१८।३६)

जो श्रीरामजीसे इसका उसका उत्तर माँग रहा है कि ‘धर्मे हेतु भवनरेतु गोताई । माँडु मोहि व्याधकी नाई ॥’ वह उत्तर पाकर स्वयं कहता है कि मैं नै विहतर हो गया, आपने अधर्म नहीं किया, यथा—

न देवं राधे दध्यौ धर्मेऽधिगतनिश्चयः ॥

प्रत्युत्ताच ततो रामं प्राज्ञालिर्दानरेश्वरः ।

यत्त्वमात्थ नरश्रेष्ठ तत्त्वैव न संशयः ॥

(वा०रा०४।१८।४४-४५)

अथात उत्तर मुरवनकर उसने धर्मको निश्चय जानकर राघवको दोष नहीं दिया और हाथ जोडकर बोला कि आपने जो कहा वह कीक है इसमें सन्देह नहीं ।

जब स्वयं वालि ही यों कह रहा है तब, इसको आज श्रीरामके चरितपर दोषारोपण करनेका क्या इक है ?

अच्छा यह आजकलकी नीति भी चीखिये । क्या जो राजा जिसी राजासे मिलता है वह उसकी सहायता को देता है ? क्या आज साईं (Trenches) आविमें आन-बूक्सर किपक्सर शत्रुपर एवं रात-बिरात छिपक्सर अकालक घोसा देकर, छाक्सपटके ध्वनिहार जड़ाईमें आवज नहीं माने जा रहे हैं ? शत्रुको जिस तरह हो सके मारना यही आजकलकी नीति है । इस नीतिके सामने तो रामजी उत्तरदायित्वसे सर्वथा मुक्त हैं । आजकल तो जड़ाईमें घरमें और अधमेंका कहीं विचार ही नहीं है ।

यथापि मेरी समझमें तो जब वाकि स्वयं अपनेको निलक्षत मानता है तब हमको उसके उत्तरके अनुसन्धानकी कोई आवश्यकता नहीं रह जाती ? तथापि जोगोंके शहुआओंके समाजान और तरह भी हो सकते हैं—

१—श्रीरामचन्द्रजी सत्यप्रतिज्ञ है । यह बैबोक्य जानता है कि 'राम' दो बचन कभी नहीं कहते, जो बचन उनके मुखसे एकबार विकला, वह कहापि असत्य नहीं किया जा सकता । वे मित्र सुप्रीवक्ष कुँत सुनकर प्रतिज्ञा कर चुके हैं कि 'मुनु सुप्रीव मारिही गालिहि एकहिवान ।' और यह भी कि 'सत्ता बचन मम दृष्टा न होइ । व्याघ भयसे नहीं छिपता ।' मुक्त कारण यह होता है कि कहीं शिकार उसे देखकर हाथसे जाता न रहे । यहाँ 'विटप-ओट' से इसकिये मारा कि—यदि कहीं वाकि हमको देखकर मारा गया अथवा छिप गया, (अथवा, शरणमें आ चढ़ा—यह बात आगे खिली गयी है) तो प्रतिज्ञा भंग हो आयी । सुप्रीवको जी और राज्य कैसे मिलेगा ? पुनः, यदि सामने आकर जड़े होते तो बहुत सम्भव या कि वह सेना आदिको सहायताके लिये आता । तो यह आपसि आती कि मारना तो एक वाकिको ही या, पर, उसके साथ मारी जाती सारी सेना भी । खरब रहे कि यहाँ छिपनेमें कठपटक लेना नहीं कर्त्तव्यक्ष यदि येसा होता तो प्रतिज्ञा पूर्ण होनेके बाद वाकिके शरणागत होने—पर श्रीराम यह कैसे कहते कि 'अन्त करी नन राम्भु प्राना ।'

२—वाकि जीसे चाहता था कि मेरा वह भगवान्के हाथसे हो, यथा—'त्वत्सोऽह वधमाकाहन्वायमाणोऽपि नारया' वही बात मानसमेंके 'जौ कदाचि मोहि मार्गिहि तौ पुनि होड़ सनाव' से भी लिखित होती है । सामने आनेपर भक्त उसकी यह अविकाश कैसे पूछ होती ? भगवान् अन्तर्दीमी है उन्होंने उसकी अविकाशा इसप्रकार पूर्व की ।

३—यथापि भगवान् सब कुछ करनेमें सक्त हैं, उनकी हजारमें कोई वर या शाय वाधक नहीं हो सकता । तथापि यह उनका मर्यादापुरुषोत्तम अवतार है । 'मामस-मण्डु'कार एवं और भी कुछ सज्जनोंका मत है कि वाकिको जिसीका वरण या कि जो तेरे सम्मुख लड़नेको आवेगा उसका आज्ञा वज्र तुम्हको मिल जायगा । प्रभु सबकी मर्यादा रखते हैं, इसीसे तो रावणवधके लिये गर-जारीर आरजा किया, नहीं तो जो काशक भी काश है क्या वह जिना अवतार किये ही रावणको मार नहीं सकता या ? अवश्य मार सकता या—पर देवताओंकी मर्यादा, उनकी प्रतिज्ञा जाती रहती । उनके वर और शाय कोई चीज़ न रह जाते । इसीकिये तो श्रीरामदूतने भी ब्रह्माका मान रखता और अपनेको नागपाशसे बंधवा किया—

जै न ब्रह्मसर मानिहौं महिमा मिटे अपार ।

अतएव ओटसे मारकर वरकी मर्यादा रखती ।

४—प० यिवरक शुद्ध जिखते हैं कि 'हृषकी आइसे मारनेका कारण वाकिको अकेला पाना या । अर्थात् विषय स्थलके उस अंशमें वाकि सुप्रीवसे युद्ध करके छौटा और फिर बेगके साथ सुप्रीवकी ओर दौड़सा या । अतएव उसी स्थानका कारण हृषकी ओटसे किया गया या कि जिसमें नूडलसे भी सुप्रीवके बाय न जरो; क्योंकि उस स्थानपर वाकि अकेला या । यही कारण हृषकी ओटमें लड़े होनेका है । जोग कहते हैं कि वाकि सम्मुख युद्ध करनेवाले वीर दोदाक्ष आज्ञा वज्र इह खेता या; पर रामचन्द्रजीके साथ वह ऐसा नहीं कर सकता या । क्योंकि समुद्रका लारा जब जैसे एक घड़में भरा नहीं आ सकता या; वैसे ही वाकिकी शक्ति रूपी पात्रमें भुवनेश्वरका अद्विद भी नहीं समा सकता । अस्तु' यह शक्ता निम्नक है ।

श्रुत्यागत-न्तस्तुता एवं सत्यसन्धता

श्रीरामचन्द्रजीके चरित्रमें उनका एक देखर्य और परावर्त्तन सबसे अधिक उनके शरणागत-कस्तुता गुणसे प्रकट होता है । इसी गुणने भलोंको रिया रखता है ; प्रायः संक्षेप भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने अपने ऐश्वर्यको कियाया है । पर विभीषणजीकी शरणागतिके समय वज्र एक जीहन्मान्दी-को छोड़ सुप्रीव, आमवान, अङ्ग आदि सभीमें उनको शरणमें न रखनेका अत विषय, तब सुप्रीवको प्रभुने अवेक प्रकारसे समझवा और अन्तरोगत्वा उन्हें वह कहता है ।

पदा कि 'तुम मेरे प्रभावको नहीं जानते, मैं चेंगुलीके अप्रभागके इशारे से त्रैलोक्यका नाश कर सकता हूँ, योद्धेसे राजस तो क्या चोज़ है ? पर मैं शरणागतको नहीं छोड़ सकता, जाहे मेरा सर्वत्व नाश क्यों न हो जाय ।' वालिकि आदि रामायणोंमें शरणागतिपर प्रभुके बहुत कुछ वचन हैं। प्रसुने यहाँतक कहा कि 'यह क्या, यदि वह राजव्य भी हो और मेरी शरण (कपटवेष) आया हो तो भी मैं उसे अभय देता हूँ तुम उसे किंवा जाओ ।' देखिये, श्रीलक्ष्मणजीके शक्ति जारी, पर ऐसे दारुण शोकके समय भी उन्हें सीताजी या और किसीकी चिन्ता नहीं है; लक्ष्मणजीका भी शोक है तो इसी कारण कि विभीषण हमारी शरण आया हुआ है, अब इम उसका भनोरथ कैसे पूरा करेंगे। गीतावलिमें श्रीराम कहते हैं—

मेरो सब पुरुषारथ थाको ।

विषति वैटादन बंधु बाहु दिनु कर्त्ता भरोसो काको ॥
मुनु मुग्रीव सौचू भोसन केरयो बदन विवाता ।
ऐसे समय समर संकट हों तज्यो लघन सो भ्राता ॥
गिरि कानन जैहै शालामृग हों पुनि अनुज संघाती ।
हैहै कहा विमीषनकी गति रही सेत्व भरि छाती ॥
यहाँपर शरणागतिपर जैमा प्रबल और इह भगवद्-वचनामृत है, वैसा शायद ही और कहीं मिले—
केटि विप्र-बध लागहि जाहु । आए सरन तज्ज नहि ताहु ॥
मनमुख होइ जीव मोहि जबहीं जनम केटि अप नासहि तबहीं ॥
जो सभीत आवा सरनाहै । रखिहड़ तहि प्रानकी नाहै ॥

सहृद प्रपञ्चम तवास्मीति च याचते ।
अभयं सर्वभूतभ्यो ददाभ्येतद्ब्रतं मम ॥
मिवभावन संप्राप्तं न लज्यं कथश्चन ।
दोषा वदापि तस्य स्पात् सतामंतदग्नितम् ॥
इसी तरह भगवान् जे अपने श्रीकृष्णावतारमें भी कहा है—
सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज ।
अहं त्वा सर्वपापभ्यो मोक्षयिष्यथामि मा गुचः ॥
अथ चतुरुषाचारो भजते मामनन्यभाक् ।
सामुरेव स मन्तव्यः सम्यग्यवसितो हि सः ॥

यही वाक्य आज भगवद्गतोंकी अनेक समाजों, पर्यावरणों, मतवादियोंसे रक्षा कर रहे हैं। इसी जगह आकर अन्य मतवादी हिन्दू भाई दाँतके नीचे ढँगवी दशा लेते हैं, जहीं

४३

तो अवतार-स्थान तो वे करते ही रहे और करते भी हैं ।

सुग्रीव वालिसे बहुत कमज़ोर है। वह स्वयं कहता है कि— ताके मय रघुवीर कृपाता । सकल भुदन में किरेड़ विहाला ॥

यही कारण है कि श्रीसीताजीकी खोजमें जब उसने बानरोंको भेजा तब आरों दिशाओंकी अन्तिम सीमावक्तके नाम उसने बानरोंसे बताये। वालिसे संसारभरमें उसका कोई रक्त न हुआ ।

बालि त्रास व्याकुल दिन राती । तन बहु ब्रन चिन्ता जर छाती ॥

ऐसा सुग्रीव जब प्रभुकी शरण हुआ, उससे प्रसुने मिश्रता की और उसका दुःख सुनकर एवं यह जानकर कि वालिने उसका सर्वत्व एवं जीको हर लिया, उनसे न रहा गया, वालिके अधर्मको वे न सह सके। यथापि वालिने उनका कोई अपराध नहीं किया था तो भी 'जेवक वेर भेर अधिकारी' मिश्रका शत्रु अपना ही शत्रु है। यह सोचकर उन्होंने तुरन्त प्रतिज्ञा की कि 'सुनु सुग्रीव मारिहौं वालिद एकहि बान ।'

प्रसुका बाना है गरीबनिवाज, दीनदयालु, प्रवातपाल ! इसीसे उन्होंने दीन, गरीब और शरणागत सुग्रीवकी रक्षा उसके अति प्रबल शत्रुसे की ।

भगवान् ने 'विटप-प्लोट' से वालिको मारनेका चरित वस्तुतः क्यों किया, इसमें क्या रहस्य है—यह तो श्रीराम ही जाने, या वे जानें जिन्हें श्रीराम जना दें। पर श्रीधरवधमें जो महामात्रोंसे सुना है, वह यह है—

वालि जानता है कि रावणवधके लिये प्रसुने अवतार लिया है, ताराने भी जब उससे कहा कि—

सुनु पति जिन्ह हिं मिलेऽ सुग्रीवाँ । ते दोउ नंधु-तेज बल-सीताँ ॥
कौसलेस-गुत लक्ष्मन रामा । कालहु जीति सकहि संग्रामा ॥

तब उसने यही कहा कि—

समदरसी रघुनाथाजो कदाचि मोहि मरिहैं तौ पुनि होड़ सनाथ ॥

और मारे जानेपर जब प्रसु समीप आये तब वह एक बारगी उठ बैठा और कहने लगा कि—

'धर्महेतु अवतरेऽ गोसाई । मारेहु मोहि व्याधकी नाई ॥'

इससे स्पष्ट है कि वह जानता था कि वे परब्रह्म-परमात्मा हैं।

यदि प्रसु सामने आते तो किञ्चित् सञ्चेह नहीं कि वह दर्शन पाते ही अवश्य चरणोंपर गिर पड़ना। इसका प्रमाण है—

परा विकल महि सरके हांगे । पुनि उठि बैठ देखि प्रभु आगे ॥
 × × × । सुफल जनम माना प्रभु चीन्हा ॥

तब श्रीराम बालिको कैसे मारते ? और न मारते तो मिश्रका काम कैसे होता ? एवं सत्यसन्धता कहाँ रह जाती ? शरणमें आये हुए सुश्रीवको छोड़ देते सो ब्रह्मदयममें आज उनकी शरणमें कौन विशास करता ? जीव उनकी शरणमात्र लेनेसे अपने ब्रह्मदयको विशास और निश्चय कब कर सकता ? सामने आनेपर वे शीख कैसे छोड़ते ? इसीलिये उसे 'विटप-घोट'से मारा ।

इसपर यह कहा जा सकता है कि बालि भक्त था तो पहले ही शरणमें क्यों न आया, जब तारामे उसको समझाया था ? इसका कारण यह ज्ञात होता है कि सुश्रीवे जाकर उसे लक्षकरा था । भला ऐसा कौन ब्रह्मदय पराक्रमी घोड़ा होगा जो शत्रुकी लक्षकरपर उलटे उसके सामने हाथ जोड़े ?—‘बाली रिपुवत सहै न पारा ।’

छिपकर भी मिश्रके शत्रुको मारनेमें कोई दोष नहीं । मान भी लिया जाय, तो भी वह कानून ही और है और शरणागत-वस्तुतातका कानून उन सारे सांसारिक कानूनोंसे निगला है । यह तो नियमका अपवाह (Exception to the Rule) है यह तो भगवान्का नियमका कानून है । अपने भक्तोंकी रक्षाके लिये प्रभु ब्रह्मदयदेवत्व आदि गुणोंको भी ताक्षर रख देते हैं, उनको यह भी परवा नहीं कि इसको कोई कुरा कहेगा । इसीपर गोस्वामीजीने विनयमें कहा है

ऐसे राम दीन हितकारी ।

नियविरही मुश्रीव सक्षा लक्षि हथ्यो बालि सहि गारी ।

और दोहावलीमें भी कहने हैं—

कहा विभीषण नै भिलेठ कहा विगारी बालि ।
 तुलसी प्रभु मरनागतहि सब दिन आये पालि ॥
 बालि कहि ब्रह्मसारि दलि सबा कीन्ह कपिराज ।
 तुलसी रामकृष्णलको विद्य गरीबनिवाज ॥
 चंद्र-बृहत कहि कियो बचन निरुत्तर बालि ।
 तुलसी प्रभु सुश्रीवकी चितह न कहू कुचालि ॥

*अप 'मानसरीयू' नायक श्रीरामचरितमानमको एक बहुत ठीका निकालनका बहा हो मराहनीय और मवंधा भूत्य कायं कर रहे हैं । अन्तक 'मानस' पर जितनी ठीकायें निकले हैं प्राणः उन सबका मार और अप्रकाशित ठीकाओंका रसायनादन करना हो तो इस ग्रन्थको जहर पदना चाहिये । इसमें कार्यान्वयामी प्रसिद्ध रामायणः सा० प० रामकृष्णं प्राप्तु पूरी ठीका दी जा रही है, इसके सिवा श्रीबन्दन पाठकजी, महाराज श्रीरामचरणदामजी, पाण्डेय गददत्तजी, संतसिंहजी जानी दंजार्बा, काषगिरा

इसी विषयमें बा० आ० सा० १० भी प्रमाणमें दिया जा सकता है । वहाँ जब महारानीजीने आपसे प्रार्थना की कि आपने राष्ट्रसंघके बधकी प्रतिज्ञा की है, पर मेरी प्रार्थना है कि आप विना अपराधके उनका बध न करें, उस समय प्रभुने वह उत्तर दिया—

रक्षकस्त्वं सह भ्रात्रा तत्त्वात्मा हि वयं कने ।

मया चैतदृच्चः श्रुत्वा कास्त्व्येन परिपालनम् ॥

ऋषीणां दण्डकारण्ये संशुद्य जनकात्मजे ।

संशुल च न शक्यामि जीवसानः प्रतिश्रवनम् ॥

मुनीनामन्यथाकुरु सत्यमिदं हि मं सदा ।

अप्यहं जीवितं जहाँत्वां वा सीते सत्तदमणाम् ॥

न तु प्रनिज्ञां संशुद्य ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः ।

तदवश्यं मया कार्यमूर्धीणां परिपालनम् ॥

(१६-१९)

अर्थात् 'दण्डकारण्यके अधि भेरी शरण आकर मुझसे बोले कि आप ही हमारे नाथ हैं, आप ही हमारे एकमात्र रक्षक हैं । यह सुनकर मैंने राष्ट्रस-बधकी प्रतिज्ञा की । अब उम प्रतिज्ञाको मैं नहीं छोड़ सकता, मत्य मुझे सदा प्रिय है । मैं प्राण छोड़ सकता हूँ, तुमको पूँ लक्ष्मणको छोड़ सकता हूँ पर प्रतिज्ञा नहीं छोड़ सकता ।' ऐसा ही प्रभुने सुन्दरकालमें सुश्रीवसे कहा है—'मम पन मरनागत भय हःरो ।'

तार्यकि कि सत्यसन्धता, प्रतिज्ञाराजा, सापुषगिराव तथा दुष्टमंहारके तत्त्व और भगवान्की शरणागत-क्षमताताको जो नहीं जानने वे ही प्रभुपर अन्याथका जानकून जागायेंगे । किंके शठवांमें ईश्वरवत्तार-चरित्रोंपर विचार करनेका कठ ठाक्या करें, तभी उसके रहस्य उनकी समझमें आ सकते हैं ।

जह मोहहि नृथ दोहिं मुमारी ।

आपुनिक भगाजोचकोंको जाहिये कि वे महावता और सज्जावनामें ही ईश्वरवत्तार-चरित्रोंपर विचार करनेका कठ ठाक्या करें, तभी उसके रहस्य उनकी समझमें आ सकते हैं ।

पतितोद्धारक तुलसी

आखर अमोघ अन्न अतुल अनोखे चोखे ,
 छन्द के प्रबन्ध आछे अछत बिचारे हैं ।
 दीवि काज मेल राव-रंकन के अंकनपे ,
 लेखद्वाद करिके गुसाईंजू उचारे हैं ॥

 जन्महू हैं मन्महू हैं आगम निगमहू हैं ,
 कलिकी कराल चाल नासिबे दुधारे हैं ।
 गय 'प्रेम' मानसकौं अधम उधारे जेते ,
 तुलसीनि तारे तेते नभमेन न तारे हैं ॥१॥

 पापी व्यभिचारी भारी कपटी कुचाली मूढ़ ,
 औंगुनकी खान , पढ़ि साँची गति धारे हैं ।
 चुगुल चवाइ चोर चपल चलाक चित्त ,
 चाव चौगुनेसों राम-नामाहि उचारे हैं ॥

 जेते गंगे चले बढ़ि मानस-सोपानपर ,
 धोय मल मानस को बुझिहि सुधारे हैं ।
 धन्य तेरी कृति 'प्रेम' तुलसी गुसाईंइन ,
 नेने जीवि तारे जेने नभमेन तारे हैं ॥२॥

—प्रमनाशयण विपाटा 'प्रेम'

त्वार्योजी, बाबा हरिहरप्रभारी, प०० शिवललजी पाठक, प०० गणपति उपाध्यायजी, रणवहादुरसिंहजी, केलासजी, बाबा हरिदासजी, बाबा रघुनाथजी आदिकी टीकाओंसे तथा ना० प्रचारिणी सभाकी अन्यावलीसे, विनायकों टीका, दीर्घ काविजी मालवीयकृत टीका, बाबू दयामसुन्दरदासजीकी टीका, प०० सुधाकरजी द्वितीयों, प०० सूर्यप्रसाद मिथ, 'तुलसी' 'माधुरी' आदिसे जहाँ जो सुन्दरभाव मिलता है, उनका मेघद रहता है । इनके मिवा प०० प०० श्रीरामवलभाशरणजी महाराज, रामायणी बाबा आर० रामवलभादासजी, बाबा श्रीजानकीदासजी रामायणी हत्यादिकी कथाएँ सुनकर लेखकने कई बष्टौतक जो नोट लिल लिये थे वे भी रहते हैं । यथावदयक शब्दोंके अर्थ और उनकी व्युत्पत्ति देकर फिर सरल अक्षरार्थ किया जाता है । प्रमाणसहित कथाएँ दी जाती हैं । श्रीरामदासजी गौड़ और लाला भगवानदीनर्जुके विचार भी रहते हैं । कठिन समस्याओंकी मीमांसा की जाती है । मिलानके लिये अन्योंके भेदों जो चौपाईयोंसे मिलते हैं, दिये जाते हैं । जहाँ तहाँ विवादास्पद चौपाईयोंका सुलासा किया जाता है । प्रान्तीन पाठान्तरोंपर विचार रहता है । इन टीकामें प्रायः रूपयेमें चौदह आना भाग अपकाशित टीकाओंका रहता है ।

अवतक चार काण्ड समाप्त हो जुके हैं, बालकाण्डके लगभग २२७५ और अद्योध्या काण्डके १५२५ पृष्ठ हैं । रामायण-प्रेमियोंको सावन्तजीसे सम्पादक 'मानस-पीयूष' अद्योध्याके पंसे पत्र-अध्यवहार कर प्रकाशित पुस्तकें खरीदनी चाहिये और प्रकाशित होनेवाले भागोंके लिये आइक बन जाना चाहिये ।

बाबू शीतानासहायजी अपने सब कार्योंको छोड़कर केवल इसी पवित्र रामसेवामें रुग रहे हैं । मेरी समझसे इन्हें इस कार्यमें बहुत कष्ट उठाना पड़ता है, और घाटा हो रहा है, जो पुस्तकें विकलेसे ही कम हो सकता है, रामायण-प्रेमियोंको यह परम उपयोगी अन्य खरीदकर राम-सेवामें सहयोग देना चाहिये । —सम्पादक

तुलसीकृत रामायणकी समीक्षा

(लेखक—रैवरेण्ड एडविन ग्रीब्स, मेलबर्न, संगलैण्ड)



हि

न्दी-भाषाके महाकवियोंकी रचनाओं-पर समाजोचनात्मक दृष्टिसे कुछ लिखना एक विदेशीके लिये दुस्साहस-मात्र होगा। किन्तु मेरे जैसे व्यक्तिका जिसने हिन्दी-भाषाके सर्वोक्तृष्ट महाकवि गुसाई तुलसीदासजीकी रामायणका सौभाग्यवश वर्णों अध्ययन किया है, उनके चरणोंमें अद्वा भवि उपस्थित करना कदाचित् जम्य हो सकता है।

तुलसीदासजीने बहुतसे ग्रन्थ लिखे हैं और उनमें कोई ऐसा नहीं है जो सामान्य दृष्टिसे देखा जा सके। किन्तु हिन्दीके विद्वान् गुसाई जीके नामसे प्रसिद्ध, सभी ग्रन्थोंको उनकी कृति नहीं मानते। समझ है कि कुछ निम्नश्रेणीकी रचनाएँ जिनमें गुसाई जीका नाम है, वस्तुतः उनकी कृति न हो, अतएव महाकविके दोष दिखानेके विचारमें उनको प्रमाणरूपसे उपस्थित नहीं किया जा सकता।

उनके समस्त ग्रन्थोंमें रामायण या रामचरितमानसका स्थान सबसे ऊँचा है। मुखे सरण है कि हिन्दीके एक विद्वान् इस निश्चयको स्वीकार करनेमें आनाकानी करते थे ज्योंकि उनके विचारमें वह स्थान विनयपत्रिकाको प्रदान किया जाना चाहिये। निम्नन्देह विनयपत्रिकामें कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जो गमचरितमानमें उननी नहीं पायी जानी, किन्तु विनयपत्रिका केवल योग्य-संस्कृत पुस्तकोंके लिये ही पवित्र घरोंहर बनी रह जानी है। रामायणको और रामायणके गुणोंको समझनेवाले ऐसे बहुतेरे यउग्नि मिलनेगे जो विनयपत्रिकाके विवाद-ग्रन्थ पदोंका विवेचन नो तूर रहा उनको यमझनेवालकी भी जमना नहीं इच्छते।

श्रीरामचरितमानसकी एक मध्यसे बढ़ो विशेषता यह है कि वह सब अंतियोंके लोगोंको—यहाँतक कि जो लोग पदना नहीं जानते, केवल सुन मक्कने हैं, उनको भी समान रूपसे प्रिय है। इससे एक भोजाभोजा आभीष्म जितना आनन्दित होता है, विद्वान् भी उसना ही आनन्द पाता है। रामायणकी कथा वही ही सुन्दरताके साथ कही गयी है,

जिससे पाठकका मन आदिसे अन्तरक कहीं नहीं उठता। अमलकारकी अधिकता, कल्पनाकी प्रचुरता, भाषाकी सजीवता, मधुर ध्वनि तथा भाव प्रकाशनकी सुन्दरता और उपादेयताके कारण वह सबको मन्त्रमुग्ध कर देती है। सबभव है कि इसकी उत्तमता सब जगह एक-सी नहीं हो, परन्तु लेखकको हम कहीं विषयात्मकरूपमें जाते नहीं देखते (जैसा कि कुछ वास्तविक सुकृति कोंठमें आकर कर बैठते हैं)। तथापि यह ग्रन्थ सर्वाङ्गसुन्दररूपमें हमारे सामने उपस्थित है। अब समझतः यह प्रश्न उठता है कि तुलसीदासकृत रामायणमें कौन-से ऐसे गुण हैं जिनसे उसने हिन्दी-माहित्यमें सर्वोच्च पद प्राप्त किया है?

लेखक सङ्कोचके साथ हम प्रश्नका संविस उत्तर देनेको चेहा करता है।

(१) महाकविका मन प्रतिपाद्य विषयमें तन्मय है, उसने अपने आपको भुला दिया है। उसका प्रयत्न अपनी प्रवीणता प्रदर्शित करना नहीं है, वह श्रीरामचन्द्रजीकी महानता और सातुताकी ओर ही पाठकोंका व्यान आकर्षित करता है। श्रीरामके प्रति उसकी भक्ति (अथवा उसकी रामभक्ति) उसके समस्त पदोंमें स्वभावसे ही परिप्रावित है। उम्मीद राचनाएँ अपने प्रभु और भगवान्के अनन्य प्रेमसे परिपूर्ण हैं। वह कीर्ति कमानेके लिये रचना नहीं करता, उम्मा प्रक्षमात्र लघ्य श्रीसीता-रामकी विमल कीर्तिकी स्थापना करता है।

(२) हम लक्ष्यको मम्मुख रखकर कवि प्रधानरूपसे हम आपर इष्ट रखता है, जिसमें उम्मीद भाषा सरल और सबके समझने योग्य हो। वह अपनी विद्वता, प्रबीणता और रचना-कौशलकी प्रशंसाके लिये पाठकोंको विवर करनेकी इच्छा नहीं करता, वह तो पाठकोंको अपनी चात समझाना चाहता है। निम्नलिखित पद वहा ही मनोहर है जिसमें कविने हम विषयकी विवेचना की है और जिसमें साधारण 'भाषा' शब्दका प्रयोग कर अपनी अभिवाचना व्यक्त की है—

माता भनित मोर मति भोगी । हैंसिंवे जोग हैंसे नहि खोगी ॥
प्रभु एवं ग्रीति न सामुक्षि नीकी। तिनहिं कथा मुनि लागिहि फीकी॥
हरि-हर-एव रसि मति न कुतरकी। तिनह कहै मधुर कथा रघुवरकी॥

कल्याण



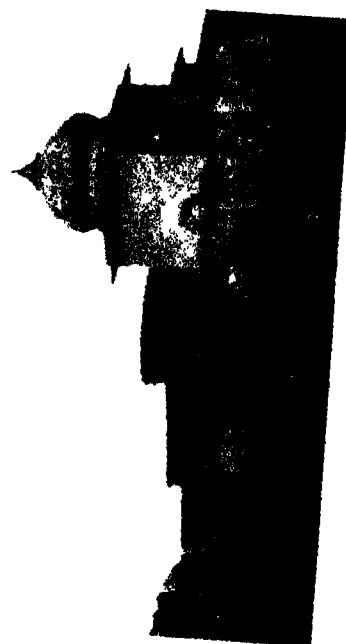
गोस्वामी तुलसीदामजी

कल्याण



(शृङ्खले पुर)

श्रीगृहि भ्रष्टिको घमाण्ड



श्रीगणेशाल्ला पाठशाला

शान्ता देवीका मन्दिर



श्रीरामचन्द्रजीके स्मानेका लाल (राम चौरामे)

निस्सम्बद्ध रामचरितमालामें बहुतसे ऐसे स्थल हैं जिनके समझनेमें विदेशी पाठकों कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है, पर समझतः उनमें कुछ स्थल ऐसे भी हैं जो प्रत्येक भारतीय पाठकके लिये भी सुगम नहीं हैं, किन्तु इस किट्टताका कारण केवल विश्वकी गङ्गामीरता है। कविने इस प्रकारकी रचना अपना पाशिष्ठत्य और गङ्गामीर्य विलक्षणेके लिये नहीं की है। इस काम्यकी एक बड़ी विशेषता आचारकी सरजता है। कवि अपनी रचना साधारण बनताके समझने योग्य बनाना चाहता है। उसका उद्देश्य तुलसी-दासको विश्वात् करना नहीं है, वह तो अपने रामको जोक्षिय बनाना चाहता है।

(३) एक विशेषता यह है कि इसमें बिना वाचा विभिन्न वृत्तान्तोंका समावेश है। कुन्त्योजना भी बहुत ही सुन्दर है। यथापि कहीं कहीं चौपाइयों और दोहोंके कममें कुछ भेद है परन्तु अधिकांशमें चार चौपाइयोंके बाद एक दोहोंका क्रम रखा गया है, बीच-बीचमें सोरठोंका प्रयोग करके क्रममें परिवर्तन किया गया है, जिससे रचना और भी रुचिकर हो गयी है। पाठकोंके मनोभवार्थ अनेक प्रकारके छन्दोंका भी समावेश किया गया है, जिससे काम्यका सौन्दर्य विशेष बढ़ गया है। कहीं कहीं तो विषय और भाषाकी उल्कृष्टताके कारण ये बहुत ही प्रभावोत्पादक हो गये हैं। उदाहरणार्थ इस कुन्त्योंके विस्तृये, जिसका आरम्भ इसप्रकार है—

जय-जय सुरनायक जन-सुख-दायक प्रनतपाल भगवंत।

यह बालकायदमें है। अन्यान्य स्थलोंपर ये कुन्त्य सुदूरकी भीपणता और भयानक योद्धाओंके खुल्योन्मुख संश्लमके भैरव-निनादमें परिपूर्ण हो रहे हैं। जङ्गाकारडमें इसके उदाहरण अधिक मिलते हैं।

गुसाईंजीने रामायणके पदोंकी पूर्तिके लिये आवश्यकता-नुसार शब्दोंके स्वरूपोंको बदलकर, बहुत-से अन्यान्य शब्दोंको अपनाकर रचनामें एक और नवीनता बढ़ दी है। शब्दोंको उपसुक्ष्म स्थानपर रखने, उनको घटाने-घटाने सथा काटने-छाँटनेकी गोस्वामीजीमें ऐसी विचित्र शक्ति थी कि उनके ऐसा करनेपर भी प्रयुक्त शब्द सरजतासे पहचाने जा सकते हैं। मैंने एक 'ऐसा' शब्दके रामायणमें ११ भिन्न रूप देखे हैं। इसी प्रकारकी विभिन्नता सर्वताम, शब्द और अन्यान्य पदोंमें भी पारी जाती है। स्थान-स्थानपर

अनुप्रासोंकी छटा दीख पड़ती है। कदाचित् उपर्युक्त कुन्त्यमें वह एक पंक्ति अनुप्रासका सर्वोच्चम उदाहरण है—

जो भव-मय-मंजन जन-मन-रंजन गंजन विपति बरुआ।

कवि शब्दों और पदोंके प्रयोगमें, विषय-प्रतिपादनके लिये कुन्दोंकी गतिमें अपनी विशेष रुचिका प्रदर्शन करता है और भाव तथा रसोंके द्वारा अत्यधिक विभिन्नताकी छटा दिखाता है। रामायणमें उद्दिष्ट विषयों तथा उनके प्रकाशनके लिये प्रयोग किये गये रसोंकी सूची बना लेना प्रायः असम्भव है। पाठ्रोंके चरित्र-चित्रणकी शैली नाटकोंकी भाँति है। यह सत्य है कि पाश्चात्य मनोवृत्तिके लिये रामायणके बहुत-से स्थब्द कुछ दुर्बोध या क्लिंट प्रतीत होते हैं तथा जिस भाषा और रसके द्वारा उनकी अभिव्यक्ति की गयी है उसमें कुछ अतिमात्रा दीख पड़ती है, परन्तु इससे रामायणके भिन्न-भिन्न पाठ्रोंके सर्वीष चरित्र-चित्रणके प्रति पाठकोंकी अद्वा कम नहीं हो सकती।

गुसाईं तुलसीदासजीने सरल शान्त वर्णनमें, गाहरस्य सुख-नुःखोंके चित्रणमें (हा ! दीना कैकेयी), युद्धके आवात-प्रतिशातके वर्णनमें, सन्तान और माता-पिताके, भाई-भाई और पति-पत्नीके पारस्परिक भूदुल सम्बन्धके अंकित बनतेमें एक-सी कुशब्दता दिखायी है। सुदीर्घ बनवासकी यात्रासे पूर्व राम-सीताका जो वार्तालाप है वह तो कदाचित् सम्पूर्ण रामायणमें अत्यन्त उल्कृष्ट प्रसंग है। जिस शूरतासे राम-चन्द्रजी बनके कष्टमय जीवनका चित्र सींचकर सीताको दुःखोंसे बचने और धरपर सबकी देखभालमें सुख-पूर्वक रहनेका उद्देश बनते हैं, उसी वीरताके साथ सीताजी भी प्रत्येक दशामें पतिके साथ रहकर उसके बड़े-से-बड़े कष्टोंमें समान रूपसे भागीदार बनना चाहती है। वह यह नहीं दिखलाना चाहती कि कठिन कार्योंका विनय-पूर्वक करना केवल कर्तव्य या भक्तिवश है, वह तो अपना दावा इससे कहीं भावपूर्ण शब्दोंमें पेश करती है, वह कहती है कि प्रभुके साथ बनकी कठिनाइयाँ भोगना मेरे लिये स्वर्ग-सदृश है और उनके अवलग रहनेमें यह राजप्रासाद भी नरक-नुल्य है।

(४) तुलसीदासजीके हास्य-विनोदपर तो एक स्वतन्त्र लेख लिखा जा सकता है। साहित्य तथा जीवन दोनोंमें विनोदकी बड़ी आवश्यकता है। जीवनके किसी विज्ञानमें विनोदका अभाव एक बड़ा दोष समझा जाता है। प्रायः हास्योत्पादक पथ तत्काल मनमें जाग उठते हैं, उदाहरणार्थ,

परदुरामको गर्वना तथा उनके क्रोधके उत्तरमें शशमधवा
विनोदपूर्ण उत्तर । अथवा शूरपवासाकी लभमस्को वरण
करनेकी चेष्टा और उनके उत्तरमें जकमणका रवेष्पूर्ण हास्य
देखने योग्य है । लक्ष्मामें राजप्रासादमें इन्सान और उनकी
पौङ्कोंकी कथा हास्यरससे परिपूर्ण है । इसीप्रकार बालकाशहदमें
शिवके बहुसंख्यक विचित्र गयाँका वर्णन है । लक्ष्माकाशहदसे
भी ऐसे बहुतेरे अंश उद्भृत किये जा सकते हैं जिनमें विष्ट
तथा ग्रीष्म हास्यरसका समावेश है । कहाँ-कहाँ तो यह
हास्य-विनोद मर्मस्पर्शी—व्यङ्ग-गमित हो गया है । कथा मैं
निझलिखित पथ इसके एक स्पष्ट विक्रके रूपमें रस सकता है ?

समरथ कहूँ नहि दोष गोसाई ।

यथपि कुछ सज्जन इसमें व्यङ्ग न मानकर इसका
शब्दशः आनुवाद करना ही उचित समझते हैं ।

अन्य विषयोंकी भाविति काव्यमें भी जोगाँकी अभिलिखि
भिष्ठ-भिष्ठ हुआ करती है । कुछ पाठकोंको कवि विहारीजातको
रचना विशेष प्रिय मालूम होती है । शब्दयोजनामें
वे अवश्य हीं वहे प्रबोध हैं, किन्तु उनकी सत्तसहैमें इसके
अतिरिक्त कौन-से गुण रह जाते हैं ? कुछ दूसरे जोगाँको
शूद्रासकी कविता वही मनोहर प्रतीत होती है । निश्चय
हीं न तो कोई भी मनुष्य उनकी साहित्य-सुन्दरता तथा
मनोरमताको लघुना प्रदान कर सकता है और न उनके
पदोंके मानुष्यमें ही सन्देह कर सकता है । इस विषयपर
इमें 'मेकाँड' की निर्दोष अंग्रेजोंके उत्तर जालाँइवाके बे उद्धार

स्मरण हो आते हैं—‘हे क्लिंटमरी सरिते ! बहती जाओ’
(Flow on thou shining river) । शूद्रास विचित्र
फूलों और कल्पोंसे भरपूर एक ढंगे पठारपर स्थित है, पर
कथा नीचेकी समतल भूमि उनकी अभिरामता नहीं रख
सकती । यथपि उनका स्थान बहुत ढँचा है तथापि डालों और
शूलोंमें भी मनोहरता होती है । महाराजा कवीरजीमें अपने
हंगकी एक महारता है । सम्भवतः कोई भी कवि इतने
कम शब्दोंमें इतने ढंगे भाव नहीं भर सकता । संक्षिप्त
कथनकी शक्ति तथा रूपे औरापूर्ण पदोंके प्रयोगमें उनकी
कोई समानता नहीं कर सकता । उनके पदोंमें बहुत-से
व्यावहारिक सिद्धान्त कृट-कृट कर भरे हैं । किन्तु तुलसीदास-
जी और कवीरजीमें इतनी समानता नहीं कि उनकी तुलना
की जा सके ।

हिन्दी-साहित्यको अनेक कवियोंने समृद्धिशाली बनाया
है, किन्तु तुलसीदासका स्थान निश्चय हीं उन सबमें ढँचा
है । अन्य कवियोंमें तुलसीदासजीकी अपेक्षा कोई विशेष
गुण ज्ञात ही हो परन्तु तुलसीदासजीमें तो अनेक उच्च और
महान् गुणोंका सम्बन्ध है । उनकी रामायणमें कैसे वीरत्व
और विनवपूर्ण भावोंका प्रवाह दीख पड़ता है ! वह हमारे
केवल प्रशंसाके ही पात्र नहीं, प्रेमके भी हैं और वह प्रेम
उन्हें प्राप्त भी हुआ है, इसका अवलम्बन उदाहरण यही है
कि समस्त हिन्दी-साहित्यमें पेरी कोई भी पुलक नहीं
जिसका राजप्रासादसे लेकर एक निर्धनकी कृतियातक
इतना अधिक प्रसार हो ।

राम

गमहीं चराचरोंमें व्याप्त हैं अस्पष्ट ब्रह्म ।

रामका गुणानुवाद, पुष्पका आगार है ।

रामसे मर्मी महान हैं सुखी जहान बीच ,

रामके लिये सदा प्रणाम बार बार है ॥

रामसं जुदा कभी हुआ नहीं किसीका चिन ,

रामकी कथा सुधा-त्रिवेणिकाकी धार है ।

गममें रमे मुनी, मुनीस्वरोंके मानसोंमें ,

राम 'विष्णु' सर्वथा त्रिलोकका आधार है ॥

गंगाविष्णु पाण्डेय, विशामूर्त्ति 'विष्णु'

रामायण संसारका सर्वोत्कृष्ट महाकाव्य है

(लेखक—डॉक्टर श्री पच० डब्ल्य० बी० मोरेनो, पम० ४०, पी-पच० ३०, प्रेसिडेंट 'ऐंगलो इण्डियन लॉग')



स बातको सभी मानते हैं कि रामायण संसारमें सबसे पुराना महाकाव्य है; किन्तु वह सर्वोत्कृष्ट और आदिकाव्य है—इसे बहुत कम ज्ञोग जानते हैं। ऐतिहासिक कालके अस्त्विष्यमें रवे जानेपर भी यह अन्य सर्वेषां अद्वितीय हुआ है। यथापि यूनान, रोम, इटली, इङ्गलैण्ड, फारस तथा अन्य देशोंमें भी महाकाव्योंके विळानेवाले समय समयपर आविर्भूत होते रहे हैं किन्तु सांस्कृतिक सौन्दर्य तथा सर्वाङ्गीण पूर्ण होनेके कारण रामायणको वह गौरव-मुख महान् पद सदा प्राप्त रहेगा जिसका अतिक्रमण अथवा प्रतिस्पदा कोई नहीं कर सकता।

रामायणमें महाकाव्यके लिये आवश्यक सभी नियमोंका पालन किया गया है। यथापि यूरोप महाकवियोंने भी उन नियमोंकी अवहेलना नहीं की है तथापि हिमायस्थ उष्ण शिखरकी भाँति यह उन सबसे आगे बढ़ा हुआ है। जो रामायणकी भहन्ताको हृदयक्रम करना चाहते हैं उन पुरुषोंके लिये महाकाव्यके नियमोंका विश्लेषण अधिक उपादेय होगा।

नाटकके समान महाकाव्यमें भी तीन महान् नियमों (सिद्धान्तों) का समावेश होना आवश्यक है—(१) विषयकी महानता—अर्थात् इतिहास तथा पुराणोंके महान् चरित्र-विकास, (२) सर्वाङ्गीण चमत्कारपूर्ण क्रियाएँ, (३) मायाकी उत्कृष्टता। अब देखना है कि रामायण कहाँ तक इन नियमोंको पूरा करता है। भगवान् राम स्वयं एक महान् संज्ञादृष्टि, उनका जन्म एक ऐसे महान् राजवंशमें होता है जिसकी सीमा देखताओं तक पहुँची हुई है। मनुष्य उन्हें ईश्वरका अवतार मानते हैं। उनकी पतिव्रता श्री महारानी सीताजी उसी प्रकारके दूसरे महान् राजवंशमें जन्म लेती है और अपनी उष्ण स्थितिके अनुरूप, अनुकरणीय गुणोंसे विशृण्यत इस महाकाव्यकी नायिका है। भगवान् श्रीरामके आता जन्मस्थानमें भी वे सारे सुन्दर गुण वर्तमान हैं जो एक राजकुमारके लिये आवश्यक हैं। दक्षिणके आदि निवासी वानरोंके आकारवाले पुरुष, श्रीहनुमानजी देखताओंके अवतार हैं जो एक बार अतुल शक्तिके अधीन

मारुतिके नामसे प्रसिद्ध थे और (रामायणमें) दक्षिणदेशके शासक हैं। महारानी सीताका अपहरण करनेवाला रावण बहुका शक्तिशाली राजा है। यथापि उसकी सरी कामनाएँ पाशांकित हैं तथापि राज्य-वैभवमें वह किसी भी भारतीय नरेशसे कम नहीं है।

इस महाकाव्यका कथानक सर्वतोभावेन हृदयग्राही है। अंग्रेजी भाषाका प्रसिद्ध कवि पोप पेसा नहीं कर सका है, उसके हास्य-बीर-रस-पूर्ण काव्य 'दि रेप आव् दि लॉक' (The rape of the lock) में सुन्दरी वेलियडाके एक देशपासके ऊपर ही सारा बखेदा भवता है। रामायणमें ज्ञानमय तथा महारानी सीताके सहित श्रीरामजीका भारतके दक्षिणी प्रदेशमें पर्यटन, मार्गमें ऐतिहासिक विभूतियोंसे मिलाप, भयानक लक्ष्मणविराजका पराभव, विजय प्राप्त कर अपने राज्यमें खौटना और वहाँ स्वतन्त्रतापूर्वक कुछ काल तक राज्य करना आदि घटनाओंका वर्णन है।

रामायणकी भाषा चमत्कार-पूर्ण है तथा संस्कृतके श्लोक-प्रवाहके कारण इस काव्यकी महत्ता और भी बढ़ जाती है। महाकवि वर्जिल (Virgil) के एनिडकी (Aenid) भाँति ग्रीक अथवा लैटिन महाकाव्योंमें चमत्कारपूर्ण वर्णनके लिये षट्पदी (Hexameter) का उपयोग किया जाता है। मिल्टन (Milton) भी सीमित पञ्चपदीका (Pentameter) प्रयोग किया है किन्तु रामायणमें इनसे कहीं अधिक चमत्कारिक छन्दोंका प्रयोग है। इसीलिये इसमें कुछ भी आश्रय नहीं कि आज भी श्रीतुलसीदासजीके रामायणको भी जिसमें बालमीकीय रामायणकी भाषाकी छावा बर्तमान है, गाँवोंमें ज्ञोग शान्तभावसे ज्ञागतार कितनी रातों सुनते हैं और महायपके नीचे आसनपर बैठे हुए विद्वान् परिषदत श्रीरामके परामर्पण कायोंका सुन्दर वर्णन करते रहते हैं।

अरसूके काव्य-सिद्धान्तके अनुसार किसी ग्रन्थको महाकाव्यकी अणीमें जानेके लिये तीन और नियमोंका पालन आवश्यक है। वे हैं—काल, स्थान तथा क्रियाकी एकता, महाकाव्यकी क्रियाओंका सम्पादन एक ही कालमें होना चाहिये। इतिहासकी भाँति इसका विस्तार एक कालमें

दूसरे कालतक नहीं जा सकता। उदाहरणार्थ रोमका आगस्तन तथा इफ्लैशबका विक्टोरियन-काल है। रामायणमें, श्रीरामजीके बनवास तथा केवल उसी अवधिमें किये गये पराक्रमके थोड़े-से समयको चुनकर कालकी एकताका अध्यक्ष निर्वाह हुआ है। शेष्टांपत्रके अर्थेको 'Othello' नामक नाटकमें भी कालकी एकताकी रचा हुई है, ठीक ऐनेशियन लोगोंके साहप्रस इनपर आक्रमण करनेके पूर्व-अर्थेको (Othello) अपनी मेनाके साथ प्रस्थान करनेके लिये विचार करते समय ही मलिनहृदय आइगोकी (Iago) धूरताका शिकार बन जाता है। ग्रीक नाटकमें भी कालकी एकतापर बहुत अधिक ध्यान दिया गया है। अर्थात् जितने समयमें वास्तविक शोकपर्ववसायी कार्योंकी (Tragedy) समाप्ति होती है उनने ही समयमें नाटकका अभिनय भी समाप्त होता है। सचाट् हेनरी पञ्चम (King Henry V.) नामक नाटकमें काल पूर्व स्थानकी एकनाका अतिक्रमण हो जाता है और यही कारण है कि शोकपर्वकाल तथा स्थानकी एकताकी कमीको पूरा करनेके लिये सामृहिक-गान (Chorus) उपरिथित करता है। रामायणमें स्थानकी एकनाका अवधी तरह हिरोइय किया गया है। इस महाकाव्यकी सारी लीलाएँ भारतवर्ष तथा लङ्घके मैदानोंमें होती हैं। सचाट् हेनरी पञ्चम नाटकमें स्थान, हंगलैशबने क्रान्त तथा क्रान्तसे इंगलैशब परिवर्तित होना रहता है, किन्तु डैम उपर कहा गया है— सामृहिक गानसे वह सौढ़य बन जाना है। रामायणमें कियाकी एकताका भी पालन होता है, समझ कियाओंका सम्बन्ध केवल श्रीरामचन्द्रजीके बनवाय नया उनके लौटनेके लिया और किसी यात्रमें नहीं है। लौटनेके बाद श्रीरामचन्द्रजी और महारानी मीताकी कथा दशा हुई? बनमें कियप्रकार महर्षि वाल्मीकिने जय और कुरा—इन दोनों कुमारोंका पालन-पोषण किया? कियप्रकार वे अपने राज्यमें पुनः लौटकर आये? इन सब विषयोंका वर्णन रामायणमें है। महाकवि होमर इच्छित महाकाव्य इलियड (Iliad) की समाप्ति, वाट्रोक्लस्ट (Vatroclaus) के हत्यारे हेकटरके (Hector) मारनेके कारण प्रतिज्ञके क्रांत-शमनमें, हो जाती है। इसप्रकार वह दुखान्त हरय पूर्ण हो जाता है, वर्योंकि प्रतिज्ञके कोषसे निकलकर दुखके अनन्त लोत पूट पहले हैं और वह उन्हींके गीत गाता है और कुछ नहीं कहता, नथा भूतक पाट्रोक्लसके सम्मानार्थ मृतक-किया-सम्मानी खेल (Funeral games) की समाप्तिमें महाकाव्यका अवसाम होता है। पनिहांमें विषयस्थानकथिन लकड़ीके थोड़े-की कहानी,

द्रावनगरका पतन तथा दाह, इनियास (Aeneas) द्वारा एंचिसेज (Anchises) को सहायता देना तथा उनके गृह-देवताओंकी रक्षा-घटनाएँ यूनानी सूक्षकथाओंसे भी गवी हैं।

संसारके महाकाव्योंके साथ तुलना करनेमें रामायण वर्षी सुन्दरताके साथ उपरिथित किया जा सकता है। महानताके विचारसे 'इलियड' को रामायणके सामने रख सकते हैं। परन्तु बहुतसे स्थानोंपर वह प्रतिभावीन हो जाता है, जहाँ रचनालैसी तथा विचारोंकी मनोहरताके कारण रामायणकी विजय होती है। इन दोनों महाकाव्योंमें उपर्युक्त तीनों एकताओंका अनुसरण किया गया है और दोनों इस विषयमें अपना विशेष चमकार रखते हैं, किन्तु रामायण विशद दीक्षी तथा सुन्दर दर्शानेके विचारोंके कारण एक अनुपम स्थान प्राप्त करता है। स्वयं महाकवि वर्जिल स्वीकार करता है कि एनिह केवल इलियडकी प्रतिव्याया है। किन्तु इसमें इलियडके समान भाषा और भाव विकसित नहीं हो सके हैं, क्योंकि इसमें पेसी कोई बात नहीं, जिसे होमरकी उन उपमाओंके सामने रख सकें जो संसारमें अत्यन्त सम्मानित हो सकी हैं। महाकवि दायटे (Dante) के काव्योंमें विचार तथा वर्षीनकी रमर्याइसाका व्यापार नहीं है। उसके बनाए हुए इनफनों (Inferno) परगोटोरियो (Purgatorio) तथा पेरेडाइज (Paradise) नामक अन्योंमें ऐसा सुन्दर विचार है कि विषयकी प्रतिक्लिपि आधुनिक कलाकृति उपस्थित नहीं कर सकता। किन्तु कमी-कमी इलटेके विचारोंपर पहपातका परदा पह जाता है, यही कारण है कि वह अगलमें जिन अमांधवोंसे शूला करता है उन्हें नरकमें पहुंचा देता है किन्तु इनफनोंमें रिमिनीको Rime di Francesca एक सुन्दर उपायानके निमित्त वह किसे ही विद्रोहायमक भाषाओंकी शृणि करता है। अमर्कालिक वर्णनके लिये सभी उपायानके 'पैरेडाइज लाइ' में हैं, किन्तु शीतानका वर्णन करते समय वह उसीको लगभग वास्तविक नायकके रूपमें ला देता है। इस काव्यके निर्दिष्ट नायक, मनुष्यके पुत्रका अवलिङ्ग अस्ति और निष्प्रभ हो जाता है किसे हम हेमाई-धर्म-ग्रन्थकी कथाके कारण अदाकी दृष्टिसे देखते हैं, जिसकी रचनाके कारण नहीं। मनुष्यकी प्रथम अवज्ञाका गीत गानेवाले नेत्रहीन प्योरिटन (Puritan) महाकवि मिलटनके भाव-प्रकाशनकी पेशालता, छन्द-प्रवाह तथा कल्पनाओं प्रचुरतामें थोड़े कमी नहीं आती। किसी दौसीके शाहमामायें फारसके राजाओंका इतिहास है—किसमें वास्तिराजी कल्पनका विशेष वर्णन है, किन्तु वह कारण केवल कथा और

उपकथा तथा पुढ़ और सन्धिये के विवरणोंसे भरा हुआ है, जिनके पड़नेसे मन उब आता है। परि भी इनके मध्यमें सोहरावकी एक आश्रयमयी कहानी है। रुसमाना अजवेजान (Azerbaijan) देशनियासिनी अपनी पत्नी ताहमीना (Taheminah) के साथ केवल एक रात्रिके लिये शवन करना, तदनाम्नर उसकी अझानतामें सोहरावका अन्ध खोना तथा उसी सोहरावका संघोगवश अपने पितामे हारा मरा जाना आदि रोमाञ्चकारी घटनाओंसे भरी हुई इस कथ्य कहानीको पढ़कर ऐसा कोई न होगा किसकी आँखें सजाव न हो उठें। बास्तवमें, जैसा कि स्वयं कवि किरदौसी कहता है कि यदि शाहनामा-जैसे महाकाव्यकी रचना न हुई होती तो रुसम एक आमीण थीर ही रह जाता और उसके पराक्रमकी गाथा केवल आमीण भाटोंकी जिहाफर रह जानी। किरदौसीने केवल इस पूर्णीय देशके महान् थीरके चरित्रको ही अद्वित नहीं किया बल्कि दिलको हिला देनेवाला। सोहरावकी कहानीको हमारे लिये रख छोड़ा, जो आज भी फारसके प्रासाद परं अन्तःपुरमें रहनेवालेके हृदयको प्रसन्नतित करती है।

मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी, महारानी सीता, श्रीकृष्णमयी, महावीर इन्द्रमालाजी तथा रावणका चरित्र भी सुदूर भविष्यमें समयके अनाम प्रकाहमें सर्वदा सर्वीशस्तप्ते बर्तमान रहेगा। इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दूजनशुतिमें सावित्री, शकुन्तला तथा दमयन्ती-जैसी पतिव्रता किर्णी आ जाती है किन्तु अर्द्धप्राणा सीताके सामने सभी निष्प्रभ हो जाती है; जिसे देखता भी प्रकाम करते हैं और अपनी अद्वाजकि अर्पित करते हैं। सत्यप्रतिष्ठ मुर्धिष्ठि, भीष्म तथा प्रह्लादके चरित्र भी प्राप्त होते हैं किन्तु श्रीरामचन्द्रजीके विशुद्ध तथा कवचहीन जीवन, एवं राजकीय गुण और शीलके साथ उनकी तुलना नहीं हो सकती।

रामायणका सार क्या है? पैरेवाह्य ज्ञानस्तके द्वारा उपदेश एवं इतियह काव्यमें वर्णित साधारण चरित्रोंकी अपेक्षा उसकी महता किस प्रकार सार्थक होती है? श्रीकृष्णनियोंमें वर्णित बीराम्यगवय एथिलीज़ तो केवल मनेवास (Manelaus) वन्दी कल्पाके लिये ही अपने शिविरमें किया जाता है; कूसी और ओडसे (Odyssens) एक अत्यन्त कामी पुरुष है जो आजकल सभन् पुरुषोंके सम्मुख केवल शृणाका पात्र छहरता है। अजाप्स भी (Ajax)

केवल शक्तिमें भीमके समान है, इसके लिया उसमें और कोई गुण नहीं है। इसके विपरीत श्रीरामचन्द्रजी उस मूल सिद्धान्तको सिद्धान्ताते हैं जो चराचरका आधार है क्योंकि परमात्माका प्रथम विधान 'शुद्धारात्म' है। यदि आज सीताजी होती तो उनके सामने इमारी बहनें—जाहे दे प्राप्त देखाकी हों या पाश्चात्य देखाकी हों, बजासे नतशिर हो जातीं। श्रीकृष्णमयी धर्म और भक्तिसे जोसंग्रोत हैं, उनके बाद उस प्रकारके बहुत ही कम भाई हमारे देसनेमें आते हैं। तुलनात्मक दृष्टिसे केवल सरक और सर्वविद्य जोनेयन (Jonathan) और डेविड (David) की अमर कहानी कुछ अधिक ज़ंबर्ती है।

कुछ देसे छोग भी हैं जिन्हें रामायणमें और भी महत्व-पूर्ण विषय ग्रास होते हैं। कुछ भाष्यकारोंका विचार है कि सीता-शब्दका अर्थ हसके द्वारा बनायी गयी गहरी रेखा है। इसी आधारपर ये कहते हैं कि रामायणमें आख़द्वारिक ढंगसे आदोंकी विभिन्न किलाओंका बर्णन है। उदाहरणार्थ किसप्रकार आदोंने घूमने-फिरनेवाली ज़ंगली आतिथोंको लेती करना सिललाया तथा शाश्वानुकूज जीवनके खाम बतखाये, जिनका उन्होंने अपने आदि स्थान अर्थ एशियामें प्रयोग किया था। यदि इस महाकाव्यका यह महान् अर्थ हो तो भी उसकी उपादेयता बढ़ जाती है। इसकी बास्तविक कथाकी गम्भीरता और मनोहर वर्णनके अतिरिक्त इसमें और भी अधिक गृह ताव भरा है जो विहानपूर्ण अन्वेषणके लिये बहुत ही विस्तृत चेत्र उपस्थित करता है।

बालमीकि भजे ही ढाकू रहे हों किन्तु वह दुर्गोत्तक चमकनेवाले उस रक्षकी भाँति हैं, जिसके समीप पहुँचना समझ है किन्तु जिसकी समका तथा अतिकम्लय करना असम्भव है। रामायणकी कथा उन कृतान्तोंसे भरी है जिसका जावू राजमहलसे लेकर गाँवों और जंगलोंकी मोपियोंतक एक-सा फैला हुआ है। यथापि महाभारतकी भाँति इसमें कहानियोंका तीता नहीं दीख पहता और इसमें श्रीमन्मत्तगवद्वीताकी भाँति केवल तत्त्वपूर्ण अर्थ भी नहीं है तथापि महाकाव्यकी दृष्टिसे यह सर्वदाके लिये सर्वोत्कृष्ट और आदिकाव्य है। यथापि रामायणको श्रीग़लेशजीने नहीं लिखा और न महार्चि व्यासकी लिखाय तुलिसे इसका प्रकाश हुआ तथापि इस धरामें कितने ही बंश आर्योंगे और ज्ञाते जार्योंगे किन्तु रामायण ज्यों-की-रखों ही अवस्थित रहेगी।

‘रामचरितमानस कवि तुलसी’

अबव-मधुरिपु-नाभिसरमे जो स्त्रिला अरविन्द ।
मकिरसका है मरा जिसमे मधुर मकरन्द ॥
भाव-सौरम पुज जिसका ढड़ रहा सब और ।
हो रहा अलिनृन्द रसिकोंका जहाँ सु-बटोर ॥१.१॥

कल्पितमोभय कालको जिसने किया सुप्रभात ।
वह सु-रामचरितमानस है जादिरूपत ॥
कामरिपुके दिव्य-अनुमव-सिद्ध फलका रूप ।
साखु तुलसीदासका है तप-प्रभाव अनूप ॥२॥

दिव्य-हृदय उदार भावोंसे मरा भरपूर ।
मुग्धता-सुविदग्धता-सह मरज रचना रूप ॥
सफल मन्त्र-समान कोमल-कान्त-पद-संयुक्त ।
गुणातीत-उदात्त-चिन्मय भक्ति-रससे सुकृ ॥३॥

नर-हृदयका दिव्य और पवित्रतर उदार ।
आमुरिकताका तथा भी बीज और विकार ॥
सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म मानस-वृत्तिकी भी बात ।
दृढ़ और विश्वद भावोंका परस्पर घात ॥४॥

श्रीकृ-वन-निहार-नदी-नागीश-चन्द्रलोक ।
प्राप्त कमल-विकास सायम् कोक-दम्पति शोक ॥
आमके कृपित्वेत हैं त्याँ कहाँ नगर-गुहाए ।
कहाँ बल्कलकी छठा है कहो गज-मुठाट ॥५॥

शुद्ध सूनूनवादिताका है अपूर्व विकास ।
व्यास और समासका भी देखिप सुप्रयाम ॥
पूर्वमें उत्तर कथाकी सूचनाका ढड़ ।
आनुपूर्वी भाव महतियुक्त विविध प्रभव ॥६॥

दिव्य-दम्पति-प्रेमका शुद्धत्व और महत्व ।
है कहो आदृत्व त्याँ ही है कहो भूनन्द ॥
राममकि अनन्यता रेष्टतनसे तुकृ ।
अह देवोंकी तथा आगामन संयुक्त ॥७॥

ब्रह्मकी अद्वैतता औं जगन्मायावाद ।
फिर विशिष्टाद्वैत पवन द्वैतका संबाद ॥
तज विरोधी भाव हो समशील शीतल गान्त ।
सम्मिलित सह प्रेम चलते हैं सभी सिद्धान्त ॥८॥

विविध क्रृष्णोंके विविध अनुमव तथा मत-पंथ ।
साक्षवेद सुकान्त-दर्शन और भी सद्ग्रंथ ॥
दिव्य प्रज्ञा सर्वगामे र्हन्ति सबका तरव ।
कर दिया कविगतने उनका र्हचर एकत्व ॥९॥

रामतस्व अतवर्य और अविन्त्य दिव्य उदार ।
ज्यों अनन्ताकाश और अपार पारावार ॥
मनो-मति-वाचा परे है वह विषित्र अनूप ।
भावके सत्पात्रमें ढलता है उसका रूप ॥१०॥

निज सुकान्त-विविदासके अनुकूल है वह ध्येय ।
वस्तुतः वह तत्व क्या है यह नहीं-सा ध्येय ॥
तज दुराग्रह-द्वेष अपने भावके अनुसार ।
ईशापदको पूजिये मत कीजिये तकरार ॥११॥

यह जगत् सब रामही है, रामहीका लेल ।
प्रत्येक अणु प्रतिरेणुमें त्यों है उसीकी भेल ॥
है समस्त सु-नाम-रूपोंमें उसीकी रूपाति ।
हैं वही जो कुछ कि है सब अस्ति पदम् भाति ॥१२॥

यह विमल मत हो गया जिनसे प्रचारित मित्र ।
स्वामि तुलसीदास है वे लोक पुण्य-चत्विंश ।
शुद्ध शाश्वत-धर्मका जिनने किया उदार ।
क्षीण आर्य-शरीरमें सजीवनी स-वार ॥१३॥

आन-रविद्धी ज्योतिमें कर प्रेम-अमृत-मुख्याग ।
दिव्य चन्द्र उगा दिया है, धन्य कवि-उदार ।
निर्विकल्प मुक्तपनायुत कलित काव्य मुकान्त ।
आनगरिमामय विशद है उपनिषद् वेदान्त ॥१४॥

हो रहा है, फिर, कहोपरा विकि-निषेध-विधान ।
है कही त्यों नीतियोंका रुचिरतर व्याख्यान ॥
यह सु-रामचरितमानस है सुप्रानस-शास्त्र ।
हो रहे जिसके अस्ति हैं तद्वज्ञानी छाव ॥१५॥

तर गंगे नालों हैं जिसका पाठ यारके सद ।
स्वतः-सिद्ध सुमन्त्र है जिस अन्यका प्रतिपत्ति ॥
हो गंगे किंतने निरधार पढ़ जिस विदान ।
सुवृत्सं कर्ति और कविसे सन्त-क्राम महान् ॥१६॥

रहस्ये हो गव किंतने हों गंगे श्रीमान् ।
पा चुंक हैं लोकमें शुभ हीर्ति औ सम्मान ॥
विविध मनकी कल्पनाओं, कामनाएं शार ।
पूर्ण करनेके लिये है कल्पद्रुत उदार ॥१७॥

आविदैविक-आधिमौतिक अदि हैं जो कह ।
वे प्रयोग-विधानसे होते हैं इसके नष्ट ॥
पाठमें मानसके मानसमें उपज्ञती भक्ति ।
पूर्ण दीवी ज्योतिसे हंता सुवाचक व्यक्ति ॥१८॥

वृत्तियों मुरही हुई करती हैं सुन्दर हास ।
उनमें होता है विशद स्वर्णीय-भाव-विकास ॥
किन सु-शब्दोंमें करें उस काव्यका गुण-गान ।
उन महाकविका करें किस मौति हम समान ॥१९॥

गुद सम्बन्धानग्रथ वे सूर्य थे निर्वार ।
दिव्य अन्तर्करणमें था प्रेम-नारि अपार ॥
हस्तगत ब्रह्माप्त हृदिगत ब्रह्म था साकार ।
कौन पा सकता है उनके विमल यशका पार ॥२०॥

शारदकं पद बन्दि निर्ति कविको पद 'बिन्दु' उमाहि चहैं ।
शब्द अमत्कृत अर्थ अलंकृत त्यों रस-रीति निबाहि रहैं ॥
भूत प्रसूत मंय होइहैं अजहूं सरि बागबगाहि अहैं ।
केते कवी कविताहि कहैं तुलसीसीं तुलै कवि ताहि कहैं ॥

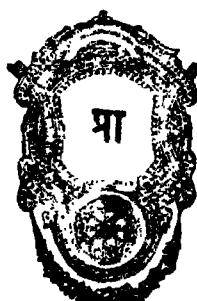
महाकवि मुनिराज थे, थे मक्कराज महान् ।
सदय परउपकारत गतमान वे विद्वान् ॥
कलि-उद्दधिमें विकल भारत-पंतंक आधार ।
हरि-अनुग्रह-विग्रही परमार्थके अवतार ॥२१॥

रम्य रामचरित्रमानस रचित कर अमिराम ।
स्वामि तुलसीदासजीने कर दिशा वह काम ॥
सकल विघ्से जो हमारा हांगया हित-हेतु ।
सोकेतका सोपान त्यों संसार-सागर-सेनु ॥२२॥

—‘आविन्दु’ ब्रह्मचारी

रामायणके कुछ राजनीतिक सिद्धान्त और शासन-संस्थाएँ

(लेखक—श्री युक्त वीरोद्धर रामचन्द्र दीक्षितार एम०ए०)



चीन हिन्दूशासनके भावों और शासन-संस्थाओंके उनर्निर्माणके लिये महाकाव्य महाभारतके समान रामायण भी शासनव्य विषयोंकी एक लान है। पथापि इस दृष्टिसे रामायणका अध्ययन स्वतन्त्ररूपसे किया जाना आवश्यक था तथापि अवतरक इस विषयमें, इधर-उधर कुछ भावोंके और संस्थाओंके साधारण संकेत किये जानेके अतिरिक्त, किसीने क्लोइ विशेष प्रयत्न नहीं किया। प्रोफेसर जैकोबी तथा प्रो० पृ० स० जैकोबी-सद्गा प्रसिद्ध विद्वानोंने रामायणपर दो उत्तम निबन्ध लिखे हैं, जिनका उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा। जैकोबी महायान Das Ramayana (Bon-1893) और जैकोबी महायान Pour L'histoire du Ramayana (Journal Asiatique, 1918), इन होनोंने निबन्धोंमें भी रामायणकावीय राजनीतिक तथा शासन-संवर्धनी विधानोंके विषयमें कुछ भी प्रकाश नहीं ढाला गया है। जैकोबी महायानको पुस्तक-प्रकाशन करते समय जो कुछ सामग्री भिल सकी, उससे उन्होंने बर्तमान रामायणका निकटतम काल निर्णय किया है। उन्होंने

रामायणका काल अधिक-से-अधिक ईसासे पूर्व पाँचवीं शताब्दी और कम-से-कम ईसासे पूर्व दूसरी शताब्दी निर्धारित किया है। प्रो० प० प० य० मैकडोनेलकी सम्मतिमें रामायणका मुख्य भाग ईसासे पूर्व पाँचवीं शताब्दीके पूर्व प्रयोग हो चुका था। 'दशरथज्ञातक' नामक औद्यग्न्यमें यह स्पष्ट हो जाता है कि रामायणीय कथाके कुछ भागसे जातकका लेखक परिचित था। वेवरकी यह धारणा कि, इस कथामें यूनानी संस्कृतका प्रभाव है, बिल्कुल गिर्मूल है। ऐसी दशामें यह कल्पना युक्तिसंगत है कि जातकोंकी रचनाके पूर्व भी भारतीय जनता इस महाकाव्यके अधिकांश भागोंसे परिचित थी। यह तो सर्वसम्मत है कि रामायणका सङ्कलन भी ईसासे दूसरी शताब्दीके लगभग या उसके पूर्व ही हो चुका था। यदि इस धारणाको भी स्वीकार कर लें तो रामायण ईस्ती सन्देके बहुत ही पहलेकी रचना सिद्ध होती है। अतः इसमें वर्णित विचान प्राचीन हैं इसलिये वे प्राच्य विद्या-विशारदोंके लिये अत्यन्त उपयोगी हैं। रामायण धर्म, धर्थ और काम इस विवरणकी प्राप्तिका उपदेश देती है। (बा०रा०६ द३३।३२-३६) इसमें सामाजिक पद्धति वर्णात्मध्यमेंके अनुसार स्वीकृत की गयी है। इस पद्धतिका सार स्वधर्म पर स्थिर रहना है और

यही सभी प्राचीन ग्रन्थोंका प्रधान विषय रहा है। सत्यमर्तका अभिप्राय है कि प्रत्येक पुरुष-जी अपने कर्तव्यका पालन करें। वरपि महाभारतने राजधर्मको सब धर्मोंमें ओह बतलाया है, किन्तु रामायण इसपर उतना और यहीं देती। वह धर्म और धर्मका भेद निभित करती है—

स्वयं श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं—

राजधर्मं अहं वक्ष्ये अवर्मं धर्मसंहितम्

(वा० रा० २। १०९। २०)

इससे वह स्पष्ट हो जाता है कि रामायणके प्रबोला राजधर्मके भौतिक सिद्धान्तको माननेके लिये तैयार हैं, पर वे इसीको प्रधान धर्मके रूपमें नहीं मानते। रामायणमें राजधर्म वही बतलाया गया है जिसका राजधर्म ज्ञोग लालन करते हैं। इस दृष्टिसे रामायणमें एक महान् नैतिक और सदाचार-सम्बन्धी सिद्धान्त निहित है।

रामायणमें वर्णित राजनीतिक परिस्थितियोंसे वह स्पष्ट जान पड़ता है कि उस समय बस्तुतः सन्धूर्ण भारत अयोध्या-साम्राज्यके आधिकर्त्त्वमें था। श्रीरामचन्द्रजीकी गति दृष्टिकोणमें कल्पाकुमारीतक निर्वाचित थी। दूसरे राज्योंके शासक और सामन्तराज्य या तो इक्ष्वाकुवंशीय राजाके महाकारी ये या उनके अर्धीनस्य थे। दृष्टिकारक्यमें वहीं कहीं रामचन्द्रजी गये, वहीं उनका स्वागत किया गया। उनका आतिथ्य करते हुए अगस्त्य ऋषि कहते हैं—

राजा सर्वस्य लोकस्य धर्मकारी महारथः ।

पूजनीयश्च मन्यश्च मवन्प्राप्तः प्रियतिथिः ॥

पुनः जब श्रीरामचन्द्रजीने सुधीवन्मे मैत्री करके उसके भाई वालिका वध किया, और जब वालिने उनके कम्पको अन्यायपूर्व बतलाया, तब रामचन्द्रजी घट्टमें बोक ढठे—

इक्ष्वाकुनां इयं सूमि संसैल्वनकानना ।

(वा० रा० ४। १८। ६)

'किञ्चित्कामयेदा, इक्ष्वाकु साक्षात्कार एक भाग है और उस साक्षात्कारके एक प्रतिनिधिकी हैसियतमें मुक्ते दुराकारियों और अर्थमियोंके नाश करनेके अधिकार प्राप्त है।' इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि दृष्टिय भारतका मारा प्रवेश अयोध्या-साम्राज्यके अर्धीन था।

शासनप्रबोधीका स्वरूप एक राजतन्त्र (Monarchy) था। शासनतन्त्रके प्रति प्रजायें पैतृक-भावगताका प्रसार था।

अर्थात् राजा प्रजाओं का सम्मान मानकर अवधार करता और ज्ञोक्षिय होता था, परं इसके बदलेमें प्रजा भी 'पूर्व' राजभक्त होती थी। इतना होनेपर भी राजप्रबोधी निरक्षुश नहीं थी, वह निष्पन्नित राजतन्त्रालयक प्रबोधी थी। जिसका 'मन्त्रपरिषद्' के हारा होता था, जिसका प्रधान सदस्य उरोहित होता था। साथ ही 'पौर' और 'आनपद' आदि अन्यान्य समितियाँ भी होती थीं। इन सबसे बड़कर कुछ ऐसे ज्ञौक्षिक लिप्यम थे, जिनका सल्कार करना राजाका धर्म समझा जाता था।

तत्कालीन राजनीतिक सिद्धान्तके अनुसार नियम-भ्रष्ट किये जानेपर राजाको अराजपत्ता (Anarchy) और विझ्वव (Revolution) का सामना करना पड़ता था। 'ज्ञेयी' और 'नैगम' सदृश कुछ अद्वैराजनीतिक संस्थाएँ भी थीं, जिनके प्रतिनिधि देशके शासनमें मुख्य भाग खेते थे (वा० रा० २। १२७। १५) श्रीरामचन्द्रजीके दुराकारपदकी ज्ञोक्षणके समय ये सब प्रतिनिधि उपस्थित थे। उनका दशरथके देहावस्थानके उपरान्त जब भरतजी रामचन्द्रजीमें उनकी प्रतिज्ञापर पुनर्विचार करनेके लिये अर्थात् उन्हें ज्ञौटा लानेके लिये प्रार्थना करने कित्रकृष्ट गये थे, उस समय भी वे उपस्थित थे (वा० रा० २। ८। १२। ८। १०)। दशरथ-जीकी मृत्युके अनन्तर उरोहित महर्षि वशिष्ठजीने ही भरतको राजधानीमें शीघ्र बुझानेके लिये दून भेजे थे। रामायणमें आदिसे अनन्तक उरोहितका स्थान वह महस्तका है और वह ज्ञौक्षिके दूसरे कथनको स्पष्ट प्रमाणित करता है कि ओ राज्य एक योग्य उरोहितके अनुभवद्वारा रक्षित होता है वह सदा उड़त होता है, उसकी कभी अवनति नहीं होती। युवराज-निर्वाचनके प्रकार विचार स्थिर करने-वाले ज्ञोगोंमें 'पौर' और 'आनपद'के प्रतिनिधि भी सम्मिलित थे। (वा० रा० २। २। १६-२०) इसप्रकार इन संस्थाओंको महस्तके अधिकार प्राप्त थे और वे राजनीतिक कार्य किया करती थीं।

एक राजतन्त्र-शासन प्राप्तः पैतृकाधिकारके रूपमें था। युवराज पुत्र ही पिताका उत्तराधिकारी होता था। अभियेकोपसंह-में राजकुमारको मुखराजकी पदस्थी की जाती थी। (वा० रा० २। १। १) राजकुमारोंको प्रान्तीय शासक (Provincial Governors) बनाकर भेजनेकी प्रथा थी। भरतजीके दो पुत्र वशिष्ठा और उपकाशतीके शासक बनाये गये थे। शानुद्धके दो पुत्र अमुरा और विद्याके शासक बने थे तथा

कल्याण



मुंबई पवन पर थ्रीराम का फोटो

राज्यालयके दोनों उत्तरोंको उत्तर और दक्षिण को सखल पर रासनका अधिकार प्राप्त था (वा० रा० ३।१०।१।११; १०।८।१।११; १०२।१; १०७।१०)। यहाँ हमें प्राचीन रासनप्रवालोका पता मिलता है, प्राचीन रासनप्रवालोका हेतु यही था कि श्रीरामचन्द्रजीका साम्राज्य बहुत दूरसक फैका हुआ था।

राज्यिति-राजाओंद्वारा किये जानेवाले राजसूय और अशमेष आदि वज्रोंका बृत्तान्त भी रामायणमें हैं। राजा दशरथने पुत्रजाग्रत्के लिये और रामचन्द्रजीने विश्व-विजयके लिये अशमेषका अनुहान किया था (वा० रा० ०। ८। १। २)। रामायणमें प्रसिद्ध सर्वभिर्य 'कलित् सर्ग' के अन्यथनसे हमें तत्कालीन प्रचलित राजनीतिक सिद्धान्तोंका पता लगता है (वा० रा० २। १००)। दो छोड़ोंमें आय और व्यवहके बदले बदलनेके समवयमें उड़ेव निलता है। व्यवहकी सूचीमें मन्दिर, संस्कार, ब्राह्मण, योग्य अतिथि, योद्धा तथा विद्रावि-सम्बन्धी व्यवहका समावेश पाया जाता है।

रामायणमें सैनिक संगठन और रासन-सम्बन्धी प्रचुर सामग्री प्राप्त होती है। उस समय एक विशेष राजमन्त्री (War Minister) होता था जिसका काम अपने और शत्रुके बलावलका झान रखना तथा तदनुसार राजा को सम्मति प्रदान करना होता था (६। १। ४। २२)। रथ-परिषदें (War Councils) भी होती थीं जो युद्ध किनारेके एवं

बुद्धार्थी जाती थीं, जिनमें कांचेलम बनाये जाते थे। राज्यालय सुना कि रामचन्द्रजी समुद्र पार कर लड़ा आ गये हैं तब उसने अपने 'रथ-परिषद्'की सभा बुद्धार्थी थी। राजदूतोंका संघ (Institution of Ambassadors) सैनिक नीतिका एक प्रधान अङ्ग था। धर्मशास्त्रका विधान इन सबमें प्रधान दीखता है। राज्यालयसे कहा जाता है कि दूतका वध नहीं किया जा सकता, इस बातसे पता लगता है कि सदाचार ही सब कार्योंका आधार था (वा० १। ०८। ८। २। १३-१४)। रथ, हाथी, घोड़े और पैदलोंकी चनुरंगियाँ लेना होती थीं। सैन्य-सञ्चालन तथा विविरस्थापन वैद्यनिक ढंगसे होते थे। यहाँ रथ, घोड़ोंके प्रयोग तथा रथ-नीतिके विवरमें विचार नहीं करना है। एक उड़े सनीव बात यह होती थी कि शत्रुपर विजय प्राप्त करनेके बाद उसीको बहाँके सिंहासनपर करव राजा के रूपमें प्रतिष्ठित कर देते थे। और यदि शत्रु-राजा युद्धमें मारा जाता तो उसी प्रकार उसके यथार्थ उत्तराधिकारीको सिंहासनारूप किया जाता था। उदाहरणार्थ लड़ाविजयके पश्चात् विभीषणको राजतिक्रम दिया गया था। रामायणमें राजनीतिक संस्थाओंका जो बहाँन मिलता है, उसका यह संदिग्ध सार है। आशा है कि कोई विद्वान् सञ्जन रामायणका विशेष और विस्तृत अन्यथनकर तदृत उपचारी सामग्रियोंको प्रकाशमें खानेका प्रयत्न करेंगे।

सुबेल पहाड़पर श्रीरामजीकी भाँकी

सैल सुंग एक सुन्दर देखी ।

दुहुँ कर कमल सुधारन बाना ।

अति उतंग सम सुभ्र विसेखी ॥

कहैं लेकेस मंत्र लगि काना ॥

तहुँ तरु-किसलय-सुमन सुहाये ।

बड़भागी अंगद हनुमाना ।

लछिमन रचि निज हाथ डसाये ॥

चरन-कमल चाँपत विधि नाना ॥

तापर रुचिर मृदुल मृगछाला ।

प्रभु पाछे लछिमन चीरासन ।

तेहि आसन आसीन कृपाला ॥

कटि निषंग कर बान सरासन ॥

प्रभु छत ससि कपीस उछंगा ।

एहिजिधि करुनासील गुनधाम राम आसीन ।

चाम दहिन दिसि चाप-निषंगा ॥

ते नर धन्य जे ध्यान एहि, रहत सदा लवलीन ॥

* इस निबन्धमें जो उद्धरण दिये गये हैं वे रामायणके कुंभकोणम् संस्करणसे लिये गये हैं। —केलक

यूरोपके सामान्य पाठकोंके लिये रामायणका स्वरूप ।

(लेखक—श्रीयुत एच० जी० डॉ० टनबुल, एम० ए०, बेंगलुरु, इंडिया)



ह कहा जा सकता है कि इस अवधान-प्रधान युगमें, जहाँ उच्च रिक्षाके लिये श्रीकृष्ण अच्छयन भी अपरिहार्य नहीं समझा जाता, वहाँ रामायणको—सो भी अनुवादके रूपमें—पढ़नेके लिये कहाँ अच्छसर है ? जहाँ आज बहुत थोड़े-से श्रीकृष्ण इक्षियट और ओडिसेका अच्छयन करते हैं वहाँ संस्कृतके परिचर्तों तथा पौराणिक पाठकोंके अतिरिक्त रामायण पढ़नेका सज्जा शौक किसे होगा ?

उपर्युक्त आवासि उठायी जा सकती है परन्तु बल्लस्थितिपर विचार करनेसे प्रकट होता है कि भारतके ग्रामीन महाकाव्यकी कथाओंके अच्छयनके लिये यूरोपमें कुछ सार्वजनिक सुचि बर्तमान है। यथोपहारमें श्रीफिय और दूसरे महाशायके वार्षीय-रामायणके तथा ग्रीष्म महाशायकृत तुलसीकृत रामायणके अनुवादको बहुत कम देखने हैं, किन्तु बहुत-सी दूसरी ऐसी पुस्तकें हैं जो कुछ-म-कुछ सार्वजनिक सुचिके अनुकूल हैं और जिनके हारा श्रीराम-सीताके आक्षणनसे अधिकांश पाठक परिचित हो गये हैं और कुछ देखेंगे तथा गर्भित भावों और आदर्शोंका भी कुछ ज्ञान प्राप्त किया है। उन अन्योंमेंसे उदाहरणके लिये इम भगिनी निवेदिता और ए० के० कुमार त्वामीकृत 'भीमस आफ दी हिन्दूज ऐरह तुदिव्यस' (Myths of the Hindus and Buddhists) का उल्लेख करेंगे जिनको अवनीन्द्रनाथ ठाकुरने बहुत ही मनोहर चित्रोंसे सुशोभित कर दिया है।

यथापि एक यूरोपियनसे उस नैसर्गिक और सरल अद्वायुक्त दृष्टिसे रामायणको देखनेकी आशा नहीं की जा सकती, जिससे उसे एक हिन्दू देखना है। दूसरे शब्दोंमें हस्तीको यों कह सकते हैं—जैसे हिन्दू याहूवादी नदीनिधियोंको वास्तवमें उस दृष्टिसे भी नहीं देख सकता, जिस दृष्टिसे उन्हें एक स्वतन्त्र विचारका यूरोपियन देखता है, जैसे ही यूरोपियन द्वारोंके भाव रामायणके प्रति हो सकते हैं। तथापि समझदार यूरोपियन रामायणीय कथाको अतिरिक्त अद्वायुक्त देखेंगे, जिसकी महाभारतकी भाँति वह भी

तो आर्योंके उसी शौर्यप्रधान तुलना आमतौर है, जिस युगमें यूरोपमें इक्षियट और ओडिसेकी सुधि हुई थी। मानव-मस्तिष्क अब भी असंख्य और अचिन्त्य प्रतिमापूर्व अन्योंका प्रश्नयन कर सकता है, परन्तु आदित्युगकी उन चमत्कारी रचनाओंकी समानता इनसे वहीं हो सकती। अतएव जो मनुष्य विश्व-संस्कृति या संसारकी सर्वोत्तम भावनाओं और क्रियाओंको सम्बन्ध प्रकारसे जानना चाहता है, उसे रामायणसे परिचय अदरश्य प्राप्त करना होगा।

रामायणका अच्छयन कभी निष्कद नहीं होगा। उसको पढ़नेवाले उसमें आजकलके दैनिक कार्य-शृङ्खलामें आबद्ध पुरुषोंके मस्तिष्कसे कहों अधिक स्वतन्त्र और अनियन्त्रित रूपसे प्रवाहित आथयुगकी कल्पनाओंको पाठेंगे और साथ ही उन महान् एवं निश्चल शौर्यपूर्व कार्योंको देखेंगे जो केवल अहं-भाव-शून्य लगानमें ही सम्भव हैं। इन कार्योंमें निस्सन्देह, श्रीराम और सीताका चरित मुकुटमणि है और केवल उनको जाननेके लिये ही रामायणका अच्छयन उपायेव हो जाता है।

किन्तु हमारे सामान्य पाठक इससे अन्यान्य विभिन्न लचियट बस्तु भी प्राप्त कर सकते हैं। तुलनात्मक साहित्यके विद्यार्थी, जो होमरसे अभिज्ञ हैं, रामायण पढ़ते समय उसकी तुलना होमरके इक्षियटके साथ करेंगे और उनके प्रतिपाद विषय तथा काम्यरचनाकी अभीज्ञ करेंगे। पहले तो वे इस भारतीय महाकाव्यके आकार-प्रकारको देखकर संभवतः चकित हो जायेंगे, क्योंकि ऐसी प्रकृत ज्ञानीसे पुक दृष्ट ग्रन्थ यूरोपकी अपेक्षा भारतमें ही अधिक पाये जाते हैं। फिर वे रामायणके उन रचनाएँ, काव्य तथा कथाओंते-सम्बन्धीय अनेक मनोरम प्रश्नोंका वर्णन देखेंगे, जिनकी तुलना उस सरस प्रसादवर्णीसे की जा सकती है जो 'Homeric Problem' के नामसे प्रसिद्ध है।

इसके अतिरिक्त आतीय मनोविज्ञानके विद्यार्थीको श्रीकृष्ण और भारतके इन महाकाव्योंमें विभिन्न कल्पनाओंके विभिन्न स्वरूपोंकी तुलनामें बड़ा रस मिलेगा। उसे अद्वितीय होगा कि इन दोनोंमें यहि एक समकटिवन्धनीय जलवायुसे प्रभावित है तो दूसरा कान्तिमवद्वास्थित जलवायुसे,—

जहाँ प्रहृति समृद्ध और अपना है। अपरय ही इस वर्णन-प्रापुर्वक कुछ भाग उसे अलिशयोकि या अलुचिके रूपमें आभासित होगा क्योंकि उसकी रचि प्राचीन ग्रीक मर्यादा-वस्त्रनिष्ठ यूरोपीय अवश्यिके द्वारा निर्मित हुई है। किन्तु रामायणमें कल्पना-समृद्धि और सरसता पाठकोंको अचिन्त कर देती क्योंकि यूरोपके उच्चतम साहित्यमें इसकी उपमा उसे प्राप्त नहीं हो सकती। वह अपने प्राचुरिक और प्रतिविनके जीवनसे होमरकी कथा-भूमिको जितना दूर पाता है उससे कहाँ अधिक दूर वह चेत्र, उन्हें दीख पड़ेगा, जिसमें

रामायणकी कथा प्रवाहित होती है। किन्तु इस दशामें भी उसे विशिष्ट विद्या प्राप्त होगा।

अब हम सहज ही इस निष्ठव्यपर पहुँच सकते हैं कि सहानुभूति तथा आन्तर्दृष्टिसे अध्ययन करनेवाले समझदार यूरोपियन पाठकें जिये, वाहे वह हिन्दी या संस्कृत न भी जानता हो, रामायणमें नैतिक और बौद्धिक दोनों प्रकारकी सरस और बहुमूल्य सामग्री है। हजारों वर्ष पूर्व रचित किसी विशिष्ट साहित्यके विषयमें और क्या कहा जा सकता है?

महाकाव्योंमें राज्ञस

(लेखक -श्रीयुत प्रस० एन० ताडपत्रीकर प्रम० ०५०, प्राच्यविद्यालङ्घार)



स्थकालसे ही हमारे हृदयमें राज्ञसका एक भयानक चित्र रिंचा हुआ है— विशाल शरीर, अस्तिके सदृश बड़ी-बड़ी आँखें, भयानक ढाँड़े, तथा ऐसे ही वूसरे भय-उत्तरक करनेवाले उपादानसे युक्त एक प्राणी मानो भनुष्यको स्थाने-के जिये ही बपक रहा है। रामायण तथा महाभारत दोनों महाकाव्योंमें राज्ञसोंके उदाहरण भिजते हैं। ऐद यही है कि रामायणमें राज्ञसोंके आवाद और शासित प्रदेश भिजते हैं किन्तु महाभारतमें कहाँ-कहाँ प्रसङ्गवश राज्ञसोंका उत्स्तेव आ जाता है।

रामायणमें सबसे पहले हमें ताइकाका वर्णन भिजता है, जो एक यजकी कल्पा थी और सुन्दरसे द्याही गयी थी, मारीच उसका युत्र था। ताइका, मारीच, सुकादू और हसी प्रकारके अन्य राज्ञसोंको भगवान् रामचन्द्रजी अपने वालोंसे भार लाकरते हैं। यहीं हमें राज्ञसोंकी मायाका वर्णन भिजता है। हमारे विश्वत साहित्यमें राज्ञसोंकी उस मायाशक्तिका उल्लेख है जिसके द्वारा वे सुन्दर-से-सुन्दर तथा विहृत-से-विहृत मानवरूप, एवं अन्य प्राणियोंके रूप भी भारण कर सकते थे, और उनमें स्वेच्छानुसार अदृश्य होनेकी शक्ति भी थी। एक उल्लेखनीय बात यह है कि वे यज्ञानुषानके बड़े विरोधी थे और यज्ञभूमिको अग्नद रक्ष और अस्तित्व बरसाकर अपविन्न और अह फर देते थे।

आगे चतुर्वर अरवद्यकायद्वयमें भी इन जल-जलोंका उल्लेख है। शूलधारी विराज राज्ञस, जिसने दोनों भाइयोंको, राम-जनकमयाको लेकर भाग जानेकी बेष्टी की थी, मारा जाता है। उसके दोनों हाथ तजवारसे काट जिये जाते हैं और वह एक गर्तमें गाढ़ दिया जाता है। उसके विषयमें वह वर्णन भिजता है कि वह भनुष्य-भक्षी या और सिंह, वाघ, भेषिया तथा हरियोंका शिकारकर उन्हें अपने शूलमें ढाँग लेता था।

इसके बाद पञ्चवटीके आधममें शूरेण्यसाका उपाल्यान भिजता है जहाँ भीरामचन्द्रजी राज्ञस खर, उसके सेनापति दूषण तथा राज्ञसोंकी चीदह सहत्वकी शक्ति-शाजिनी सेनाका नाशकर विजय प्राप्त करते हैं। वह सेना सब प्रकारके अजांसे सुसजित थी। सरका रथ सूर्यके तुल्य कान्तिमय था और उसमें नाना प्रकारके धनुष, वाण, तजवार तथा शक्तियाँ वर्तमान थीं। यहाँ एक ही स्थबपर बहुत-से विभिन्न शक्तियोंका वर्णन है। पुनरावृत्तिसे बदनेके जिये निझ श्वोकोंका उद्धृत करना उचित प्रतीत होता है।

मुद्रैः परिधैः शूः सुतीक्ष्णैश्च परश्वधैः ।
खड्डैश्चके रथस्वैश्च भ्रात्मानैः सतोभैः ॥
शक्तिभिः परिधैवोरैरतिमात्रैश्च कामुकैः ।
गदासिमुसैल्वं ब्रह्मैर्हैर्भीमदर्शनैः ॥

(बा० रा० ३। २३। १८-१९)

अर्यांशु, मुहूर, पट्टिश, तीक्ष्ण यज्ञ, वरदी, तकाकार, चक्र, चमकीले तोमर रथपर रखके थे । शक्ति, भयानक परिच, अनेक अनुष्ठान, गवा, भूसज्ज और बड़ोंको जो देखनेमें अव्याहन के, राष्ट्रस लिये हुए थे ।

शरको प्रारम्भीमें अपराधकुन होने लगे किन्तु उसने उनकी उपेक्षा की और रथाक्षयमें पहुँचकर अपनी समस्त सेनाके साथ श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर आक्रमण कर दिया । अधिपि भगवान् अकेले ही लड़ रहे थे, तथापि अन्तमें उन्होंने उसकी सारी महत्ती सेनाको मारकर विजय प्राप्त की ।

उपर्युक्त वर्णनसे कोई देसी वात नहीं जात होती जिसके द्वारा यह अनुमान किया जा सके कि राष्ट्रसदोग युद्धकलामें किसी प्रकार पिछड़े हुए थे और सम्पूर्ण रामायण पढ़नेपर भी हम इसी परिकामपर पहुँचते हैं । वानरोंके उस प्रकेशको छोड़कर जिनमें हमें कमशः (आशुनिक धारकाके अनुसार) किसी प्रकारको सम्बन्धिता कियाजान नहीं मिलता, हमें आगे बढ़कर किर राष्ट्रसोंके महान् प्रदेश और उनके नियम-के क्षमोंका परिचय मिलता है । राजधानी लंकाकी स्थिति तथा उसके चारों ओरकी किलेबन्दीको देख हमें आरचर्यसे बहित हो जाना पड़ता है । पश्चात् जब श्रीहनुमानजी भगवान् चन्द्र-ज्योत्स्नासे पूर्ण बहामें प्रवेश करते हैं और प्रसुत बहान-नगरीको देखते हैं, उस समयका जैसा दर्शन है वैसा उस समयके किसी भी अत्यन्त सम्य नगरके लिये सज्जन हो सकता है । और किर हमें वही सभी भोग-विकासकी सामग्रियोंसे पूर्ण उप अन्तःपुरक वर्णन मिलता है । युद्धकालके अध्ययन करनेसे राष्ट्रसोंकी उदिकी प्रश्नरत्नाका परिचय मिलता है; वे 'युद्ध-परिचय'में वाद-विवादके कालाव युद्ध-विचारक प्रभोंका निर्वयकर व्यूहरचना करके युद्ध करते थे । अन्ततः हमें यह सोचकर बड़ा ही आवार्य होता है कि ऐसी सर्वतोभावेन उच्चत जाति वानरोंके किया और तृष्णोंके आक्रमणसे कैसे परायित हुई?

महाभारतकी ओर देखनेमें हमें ज्ञात होता है कि राष्ट्रसदोग उस समय ग्रान्तिक शासनसे बच्चित हो गये थे और संत्रस्त होकर बच्च-तच्च दीवान व्यतीत करते थे । हिन्दू तथा किमिर जड़ोंमें रहते थे । केवल वक्ष्यासुरके जातीन ही एक समस्त नगर था । प्राच: हृषि सभी राष्ट्रसोंको भीमने अपने पराष्ट्रमसे मार डाका था । इसप्रकार वह विदित होता है कि महाभारतकालके राष्ट्रसोंमें

रामायणकालीन राष्ट्रसोंकी सम्बन्धिता का हास हो जुका था । अस्तुतः उनकी जाति नहियाप हो जुकी थी, कुछ जोग जो बचे थे, वे सब प्रकारकी विपरियोंसे ब्राह्म पानेके लिये संघर बनामें लिये रहते थे ।

जब हम इसी वातको सामने रखकर बेद तथा वैदिक साहित्यकी ओर देखते हैं तो हमें राष्ट्रसोंकी व्यावर्य सत्ता नहीं मिलती, वहाँ उन्हें पौराणिक प्राची माना है । उनको वहाँ शानु समझा गया है और मायाद्वारा विभिन्न शारीर धारण करनेकी उनकी शक्ति भी स्वीकार की गयी है । मनुष्य उन राष्ट्रसोंसे युद्ध करनेकी जमता नहीं रखते, क्योंकि वे पार्थिव शरीरमें जाते ही नहीं हैं । अन्येदम् १०४ में राष्ट्रसोंके उपचाव तथा उनके शमनके लिये देवताओंके आवाहनका उल्लेख मिलता है । क्रमशः उन्हें वहाँमें भाग भी मिलने लगा, और इसीके अनुसार मैत्रेयी संहितामें (३-१४, १५, २१) निश्चांति और राष्ट्रसोंके सम्मानार्थ कुछ वज्रोंके विधान मिलते हैं । तदनन्दन गृह-सूत्रोंमें भी प्राचीन वैदिक प्रमाणका अनुसरण किया गया है और गृहस्थोंको हृषि प्रतिकूल शक्तियों (Hostile influences) (राष्ट्रसों) के शमनके लिये भाँति-भाँतिकी किया जी गयी है ।

ओमज्ञगद्वीताये, जो महाभारतका एक भाग है, राष्ट्रसोंकी उपासनाका राष्ट्रसरूप माना है । रामायणमें (३-३०। १२) भी रामचन्द्रजी कहते हैं कि मुनिवरोंने भी लर राष्ट्रमें उत्तर उसके सम्मानार्थ एक वज्र किया था ।

उपर्युक्त विवेचनका सारांश यह है कि रामायणकालमें राष्ट्रसदोग एक समुद्रत थे और वज्रमें सम्मानपूर्वक स्थान प्राप्त करनेके लिये उन्होंने पुराहितोंको नीचा दिलाया था । अनन्तर पृथ्वीसे इस जातिके उठ जानेके बाद महाभारत-कालमें हृषि तुष्टोंका वज्र तत्र उल्लेख मिलता है । वैदिक साहित्य राष्ट्रसोंकी व्यावर्य सत्ताके विषयमें कुछ नहीं कहता; उन्हें केवल पौराणिक प्राची मानता है ।

किन्तु यदि यह सिद्धान्त स्वीकृत किया जाए तो वहाँ और महाकालोंके सारेष्व ज्ञातगवानाके प्रश्नपर हमें पुनः विचार करना चाहेगा । वहाँपर वेदव ग्राण्डविद्या-विद्यारदांशी गवेषणाके निमित्त यह विषय प्रस्तुत किया गया है ।

आदर्श पुरुष श्रीराम

(लेखक—श्री आई० जी० एस० तारापुरवाला वी०ए०, पी०ए० डी०, बार-एट-ला)



मायथ्यमें मुक्ते सबसे अधिक प्रभावोत्पादक श्रीरामजीका तत्त्वपूर्ण मनुष्यत्व मालूम होता है। यथापि उन्हें कठोरों मनुष्य मानवरूपमें अवतरित साक्षात् भगवान् मानते हैं तथापि मनुष्यरूपमें वे जैसे प्रतिभासित हुए हैं जैसे ईश्वररूपमें नहीं।

परशुराम, श्रीकृष्ण, बुद्ध प्रमुख अन्यान्य मानव चरितारोंको देखिये। पहले दोमें ईश्वरीय तत्त्वकी प्रतिष्ठा है। बुद्ध निवान्त मनुष्य हैं पर उनके अनुयायियोंने उन्हें ईश्वर अथवा उनसे भी कुछ बढ़कर बना दिया है।

किन्तु वाल्मीकिके राम पूर्ण मानव हैं। सम्पूर्ण इतिहासमें हम उन्हें कहीं भी मनुष्यतेर रूपमें नहीं देखते। यही रहस्य है कि वे हिन्दू-अहिन्दू सभीके हृषयोंको आकर्षित करते हैं। हम शिशुरूपमें, बालकरूपमें, प्रेमी-रूपमें, वीररूपमें, और प्रजाका शासन करते हुए नरपति-रूपमें—प्रत्येक दशामें उनकी उज्ज्वल आदर्श मानवताकी जगमगाती ज्योति देख पाते हैं। वे प्रत्येक हृषयों आदर्श हैं किन्तु हैं सभी जगह हमी जोगोंमें से एक। हम जितने कई आदर्श मनुष्यकी कल्पना कर सकते हैं उन्हें वैसा ही पाते हैं। सम्पूर्ण कथामें हमें वे कहीं भी देवता या ईश्वरके रूपमें नहीं दीखते और कहीं भी वे अपने सभी जीवोंसे पृथक् नहीं होते। वे मनुष्योंमें एक मनुष्य हैं और मनुष्यकी तरह ही काम करते हैं, बोलते हैं और अनुभव करते हैं। अवश्य ही उनका कर्मस्रोत हमलोगोंके कर्मस्रोतसे सर्वथा पृथक् है, पर दोनोंके कर्म हैं एक ही प्रकारके। उनके भाव कई हैं, उनके शब्द प्रेमपूर्ण हैं, उनके कर्म किसी भी मनुष्यसे अधिक व्यागमय हैं। पर जीवनभर वे इसी भूमध्यरक्षसे सम्बन्ध रखते हैं, जिससे हमें अनुभव होता है कि वे हमारे ही निब-जन थे। और हम भी जाहें तो उन्हेंके समान अनुभव कर सकते हैं, बोल सकते हैं और कर सकते हैं।

वह एक प्रेमी मनुष्यकी भाँति प्रेम करते हैं और सीतालीके सामने अपने हृषयके अत्यन्त गम्भीर भावोंको खोल कर रख देते हैं। यह युगल-जोड़ी हमारे लिये आदर्श

है। हसप्रकार नितान्त मनुष्य होते हुए वे यथार्थ आर्य और हिन्दू हैं। यथापि भवभूतिने उत्तररामचरितमें इन दोनोंके आदर्श मनुष्यत्वका गुण-नाम बड़ी सहजताके साथ लिया है परन्तु वह कथा निःसन्देह वाल्मीकिसे ही ली गयी है। वाल्मीकि या तुलसीदासकी रामायणमें इमें जैसी मनोहर प्रेम-कथा पढ़नेको मिलती है वैसी संसारमें कहीं नहीं मिलती। इनमें भावोंका चमत्कारिक उद्गम, कर्कशता तथा नाटकीय वाय चमक-शक्ति नहीं है। यहाँ इम प्रेमके प्रवाहको बहुत ही विस्तृत और गम्भीर देखते हैं। वह इतना गम्भीर है कि धरातलपर कहीं उसका एक तरंग-विछेप भी दृष्टिगोचर नहीं होता। प्रथमकी हमारी यह प्राचीन विचित्र इमें सिखाती है कि यथापि प्रेम प्रथम दर्शनसे ही उत्पन्न होता है तथापि विवाह हो जानेके बाद भी अनुरागनका अवसान नहीं हो जाता। वस्तुतः वह वहीसे आरम्भ होता है। श्रीसीता-रामकी कथामें इमें वाय्य-प्रेमका बड़ा ही उत्तर प्रकाश दीख पड़ता है। और ज्यों-ज्यों समय बीतता है त्यों-त्यों वह अलौकिक प्रेमभाव गम्भीरतर होता जाता है। इम इन दोनोंमें सर्वत्र ही पारस्परिक समाझरका भाव पाते हैं और वह केवल वाय प्रदर्शन नहीं। उनका प्रेम इतना गम्भीर और पवित्र है कि सार्वजनिक प्रदर्शनमें वह कभी आ ही नहीं सकता, हसीलिये वह समझ 'मारी-आतिका सर्वस्त्व' हो रहा है और उसमें उनके जीवनका अधिकांश भाग ओत-प्रोत है।

इम वर्तमान युगके जीव आश्रयान्वित होकर कहते हैं कि इसप्रकारके महान् प्रेमका अन्त ऐसा शोकपर्यवसायी नहीं होना चाहिये था। जीवों शताब्दीकी सङ्कुचित दृष्टिके कारण ही हम श्रीरामको सीताके बनवास या आश्रि-परीक्षाके लिये दोषी ढहराते हैं। यदि श्रीराम राजा न होते और अपनी प्रजाको सन्तानवत् न समझते तो उनकी प्रेम-कथा दूसरे ही प्रकारसे लिखी जाती। सीताका जीवन तो केवल प्रेमके लिये ही था, उनके जीवन-धारणमें अन्य कोई हेतु ही नहीं था, परन्तु श्रीरामको दूसरे भी कर्म करने थे, उन्हें केवल सीताकी ही नहीं सारी प्रजाकी चिन्ता थी। शासक और राजा होनेके कारण वह तुच्छ-से-तुच्छ अपवाहसे भी बचना चाहते थे। यथापि उनका हृदय-

सब विजित हो रहा था सत्यापि उन्होंने अपने पवित्र कर्तव्यका पालन किया। प्रजाके प्रति उनका वही कर्तव्य था कि विससे वे अपने राज्यपरिवारकी परमोऽजयक अतिको अपादकी इवासे तनिक भी दूषित न होने दें। इसीसे उन्होंने अपनी आत्माको ही नहीं बरं उससे भी प्रिय—आत्माकी भी आत्मा—सीताको त्याग किया। इसमें उनको कैसी असीम गर्ववेदना हुई होगी, हम उसका अनुमान ही नहीं कर सकते। जैसे उनका प्रेम अवश्यक है उसी प्रकार उनकी यह मर्म-प्रथा भी इतनी पवित्र है कि विसका इत्य सबै साधारणके सामने नहीं रखता जा सकता। इसीलिये उनका वादा किंत्र अत्यन्त शान्त और प्राप्तः उपरामतायुक्त विवित किया गया है। अवश्य ही वहाँ भवभूतिने श्रीरामके हृदयस्थ भावोंका वयार्थ विचार किया है। उनके उत्तररामचरित्रमें हम केवल नाय दृश्योंको देखते हैं, परं उनसे पता लगता है कि सीता त्यागके कारण प्रेममय भगवान् रामके हृदयमें कितने गहरे बाप वे और उनसे कैसे लूँ वह रहा था !

श्रीरामचन्द्र अपने अन्यान्य विभिन्न कार्योंके हारा भी हमें मनुष्यरूपमें ही प्रभावित करते हैं। हमने वहाँ केवल उनकी 'प्रेम-कौँकी' देखनेका ही प्रयास किया है। वे प्रेमी हैं किन्तु अन्यथेमी नहीं। वे सदा-सर्वदा एक सर्वोच्च कर्तव्य-निष्ठ पुरुषके रूपमें दर्शन देते हैं। परिवाम कुछ भी हो, वे सर्वदा कर्तव्यका अनुसरण करते हैं। केवल परमात्मा हमें इसप्रकार प्रभावित नहीं करता। क्योंकि हम जानते हैं कि वह मानव-जीवके गुण-दोषसे परे है। वह श्रीराम-सीताकी कथा निष्ठ नहीं रहनेवाली है क्योंकि वे दोनों मानवरूपमें अवतरित हैं। हम उनके समान ही अनुमत कर सकते हैं, प्रेम कर सकते हैं किन्तु उनके समान त्याग नहीं कर सकते। इसीलिये हम उनका सम्मान करते हैं। श्रीरामके सदृश त्यागी ईश्वर केवल हैशर हो सकता है किन्तु श्रीरामचन्द्रजी मानव-रूपमें हमारे अन्तलालमें आवर आस करते हैं और वे हमारे सामने एक परम आदर्य पुरुषके रूपमें अवस्थित हैं।

रामायणके रात्मस

(लेखक—पं० श्रीगोविन्द शास्त्रीजी दुग्धेकर)



राम-कथा प्राप्तः सब पुराणोंमें विस्तीर्णी हारी है और केवल रामकथामध्ये 'शतकोटि-प्रविश्टर'स्वतन्त्र रामायणोंमेंसे कर्तिप्रथ उपलब्ध भी है। इन सभी राम-कथाओंका आधार आविष्कृत महार्वि वाल्मीकि-रचित रामायण महाकाव्य है, इसमें कोई सन्देह कर ही नहीं सकता। शोरोंका विवाह से वहाँतक है कि, श्रीराम प्रभुके अन्म-प्राणसे पूर्व ही यह महाकाव्य रचा गया था। अतः रामायण-सम्बन्धी किसी विकल्पकी आखोंबदा हस्ती प्रन्थके आधार-पर करना युक्तियुक्त होगा। विस्तारभवसे हम केवल अधिकांश शूल शोरोंके अवतरण न केवल केवल उनका अनुकाद अथवा सारांश ही दे दिया है। शूल शोरोंके विन्दे देखने हों, उनके सुखीतेके लिये काशक, सरी और शोरोंकी संस्का विक दी गई है।

प्रथम हम यह देखते हैं कि, रामायणके रात्मसोंके रूप, गुण, व्यवहार आदि कैसे ये और मनुष्योंके साथ उनकी कुछ तुलना की जा सकती है या नहीं। रात्मसोंके रूपोंका पुराणोंमें वहा भी भयानक वर्णन किया गया है। काम्य होनेपर भी वाल्मीकीय रामायणमें उत्तरी भयानकता नहीं वीस पदसी। रात्मसराज रावणका रूप विक्रातरों और कवियोंने अत्यन्त विकाल अंकित किया है। रामायणमें भी एक स्थानपर लिखा है—

र्यश्च नानाविघ्नारम्भपर्याप्तान्तर्मुगाध्वरन्तैः।

मूर्त्मृतो माति विवृत्तनंत्रेवाऽस्मि सुराणामपि दर्पहन्ता ॥।

'वही रावण है, जो देवताओंके भी गर्वको सबै करने-वाला है और जो नाना प्रकारके भयानक रूपों तथा बाप, डॉर, हाथी, हरिन और बोरेके मुखोंसे पुक है तथा भूतोंसे चिरा दुष्टा शोभा या रहा है।'

वहाँ पक्षमुखी और वही-कहीं दशमुखी रावणका उड़ेता है। परन्तु ऐसे स्वयं रामायणमें बहुत कम है।

पुरुषों और दो हाथवाले रावणका वर्णन प्रायः सर्वत्र है। हनुमान्तरी जब रावणके राजभवनमें राजिके समय बिपक्ष पहुँचे, तब उन्होंने उसे सोया हुआ पाया। उसके दोनों हाथोंमें सोनेके आमूरत थे। दोनों कृष्णोंपर इन्द्रके वज्र-प्रहरके चिह्न थे। पाँच कदोंके साँपोंकी तरह उसके दोनों हाथ सुध बिछौनेपर पढ़े थे, इत्यादि, (१।१०।१५-२२)। इसी तरह गच्छपर बैठे हुए रावणपर सुशीलवे जब आङ्गमव किया, तब 'रावण उठा और उसने अपने दोनों हाथोंसे उसे उठाकर एक्षीपर दे मारा। किंतु सुशीलने भी गेंधकी तरह उठाकर रावणको दोनों हाथोंसे उठाकर पटक दिया (१।४०।१३)। रावणके मर जानेपर शोकाकुल विभीतस उसका वर्णन करता है—'पहुँची आदि भूखोंसे तुक्त मुझारे दोनों सम्मे हाथ भूमिपर निश्चेष्ट पढ़े हुए हैं' (१।१०।१३)। इससे स्पष्ट है कि, रावणके दो ही हाथ थे।

इन्द्रजितका जब होनेपर रावणके क्रोधका हस्तप्रकार वर्णन किया गया है—'हृत्रासुरके मुखसे जिसप्रकार अग्नि और भुज्यां बाहर निकलता था, उसी प्रकार जँभाई देते हुए रावणके मुखसे (वक्त्रान्) जपटे और भुज्यां निकल रहा था। उसकी दोनों लाल आँखें (नेत्रे) अधिक लाल हो गयीं और उन आँखोंसे (नेत्रान्व्याम्) दीपकके जलते हुए तेजकी हूँडोंकी तरह आँख झरने लगे, (६। १२। १८-२२)। कुद्र सीता रावणसे कहती है—

'हे अनार्य रावण ! मुझे देखते हुए तेरे थे कूर और बिहाराल दोनों नेत्र (नयने) क्यों नहीं पृथ्वीपर निर पढ़ते ? उस धर्मांगमा (राम) की पक्षी और दशरथकी उत्तरवधुके साथ हस्तप्रकारकी बातें करते हुए तेरी चिह्न (एक ही चिह्न) क्यों नहीं गल जाती ?' (१।२।२।१८-१९)। 'सीताकी बातें सुनकर रावणाचिरपति रावण दोनों आँखें (नयने) फ़ाइकर उसकी ओर देखने लगा। उसके दो हाथ मल्लराज्ञके दो उड़ात शिकरोंकी तरह तीख पढ़ते थे। बाल-सूर्यके समान दो मुख्य कुरुदण्ड उसके कानोंमें थे और पुष्पित दो अशोक-हृष्ट विस्तप्रकार पर्वतपर शोभा पाते हैं। उसी प्रकार वे

* रावणके जन्मसमयके वर्णनमें कहा है कि 'दशशीवः प्रस्तोऽयं दशशीबो भविष्यति' जर्णात् दश मस्तकवाला होनेसे उसका नाम दशशीव रखा गया। जब शूरपंच के पास गयी है उस समयके वर्णनमें यह स्पष्ट कहा गया है—'विशद्गुञ्ज दशशीवं दर्शनायपरिक्षदम्।' अर्थात् रावणके चीस मुजा और दश मस्तक थे। इसीप्रकार बालमीकीय रामायणके अन्यान्य स्थानोंमें भी रावणके दश मस्तक और चीस हाथ होनेका खुले शब्दोंमें वर्णन आता है। असलमें कितने मुख और हाथ थे, सो भगवान् जानें। —सन्धाक

(कृष्णव) सुखोमित हो रहे थे (१।२।२।२४-२८)।¹ रावणको अपसकुन जान पढ़ने लगे, उस समयके वर्णनमें लिखा है—'उसकी बाईं आँख (एक ही) और बाईं मुजा (एक ही) फ़दने लगी। उसका चेहरा (एक ही) उतर गवा और स्वर धीमा हो गया (१।६।२।४६)।¹

रावण जब युद्धके लिये उपस्थित होता है तब राम उससे कहते हैं—'तेजस्ती कुप्यदलोंसे युद्ध तेरा सिर (शिरः) मेरे बालोंसे उड़ जाय और उस धूळ-धूसरित सिरको रावणगव घसीफकर ले जाय (१।१०।३।२०)'। रावणको अशुभ चिह्न दीख पढ़ने लगे, उसका वर्णन हस्तप्रकार है—'रावणका मुख देखकर मुखसे आग उगड़ते और अशुभ शब्द करते हुए सियार भाग रहे थे (१।१०।६।२८)'। रावणके हत होनेपर उसकी चिर्याँ चिलाप करने लगीं। 'एकको तो उसका शब्द देखते ही मूर्खा आ गयी। दूसरीने उसका सिर गोदमें डाल दिया। तीसरी कहती है, राजन् ! आपका मुखकम्बल (एक ही) सुकुमार था, भौंहें सुन्दर थीं, नामिका उत्तम थी, मुखकी कान्ति चन्द्रमाके समान थी। तेज सूर्यके समान था। दोनों होठ लाल थे और दोनों नेत्र चमकते थे। नाना प्रकारकी माढ़ाओंसे आपका मुख (वक्त्रं) असंकृत हो रहा था और उसीसे हँस-हँसकर आप बातें कहते थे। वह मुख हस्त समय रामके बालोंसे बिहू-भिहू हो गया है। उसकी वह शोभा नहीं रही। घूर उड़नेसे तो मुख बहुत रुक हो गया है और उससे मेद-मजा वह रही है।' (१।१०।६-१०; १।११।१।४८-४८)। इन अवतरणोंसे स्पष्ट हो जाता है कि, सोते, आगते, कुद्र होते, युद्ध करते और सृत अवस्थामें भी रावणके एक ही मुख, दो आँखें, दो कान और दो ही हाथ थे।* इसमें सन्देह नहीं कि, वह बड़ा बलपान्, हँस-हँस और अस्तन्त काका था। इन्द्रान्तरीने उसकी सुसाधन्यताके वर्णनमें कहा है कि,—'गोशाक्षामें उत्तम गौओंके शीत लैसे मोदा-ताला साँई सोया हो, वैसे ही अनेक मुन्द्री जियोंके शीत, वह पदा हुआ था' (१।१।१।१)।

¹ प्रस्तोऽयं दशशीबो भविष्यति' जर्णात् दश मस्तकवाला होनेसे उसका नाम दशशीव रखा गया। जब शूरपंच के पास गयी है उस समयके वर्णनमें यह स्पष्ट कहा गया है—

रावणकी तरह कुम्भकर्णका भी रामायणमें पक्षाध स्थानमें विचित्र विकराल वर्णन किया गया है। किला है—

वनुःशतपरीणाहः स वट्शतसमुच्चितः ।
रौद्रः शक्टक्राक्षो महापर्वतस्त्रिमः ॥
(६।४८।४७)

अर्थात् 'कुम्भकर्ण' सौ धनुष छोड़ा और कृ: सौ धनुष लम्बा था। उसकी आँखें गाढ़ीके पहियेके समान थीं। वह महापर्वतके सदृश और उभयथा।' अतिकाय नामक राष्ट्रसका भी इसी तरहका रूप बताया गया है। उसे देखकर 'सब बन्दर डर गये और यह जानकर कि, यही कुम्भकर्ण' है, आपसमें चिपकने लगे (६।७०।७)।^१ इसी तरह एक बार 'काले पहाड़के समान विभीषणको देखकर और उसे हन्द्रजित जानकर बन्दर डर गये और भागने लगे थे (६।४८।४२)।^२

इस विवेचनसे पता चल सकता है कि, राष्ट्रसोंके मन्द्रबन्धमें लोगोंकी यही धारणा थी कि, वे वहे विकराल और उभय होते थे। अब भी वही धारणा है और कवि तथा चित्रकार उनके स्वरूपका इसी भावनाके अनुसार चित्रण करते हैं। परन्तु बात पैदी नहीं है। राष्ट्रस भी भनुव्योंकी तरह हुआ करते थे। स्वयं श्रीरामचन्द्रजीने युद्धके समय बानरोंको आँख़ी दी थी कि,—'कोई बावर मनुष्यके रूपमें युद्ध न करे। अपनी सेनामें केवल मैं, ब्रह्मण, विभीषण और उसके अनज, अनिज, हर और सम्पाति नामक बावर मन्त्री—जो मालीनामक राष्ट्रसके पुत्र हैं,—ये सात ही मनुष्यरूपमें रहें। इस स्वयंस्थासे ज्ञात हो सकेगा कि, अपने दलके कौन है और शत्रु दूरके कौन?' (६।७०।३३-३५, ७।४८।४८)

सोती हुई मन्दोदरीका हनुमानने वर्णन किया है कि, 'उसका वर्ण गौर या श्वार उसने बहुत-से अकाङ्क्षार धारण कर रखते थे।' (६।७०।४१) उसे देखकर हनुमानको सन्देह हुआ कि, ये ही तो सीता माता नहीं है (६।७०।४३)।^३ अन्ततः मन्दोदरी राष्ट्रसी होनेपर भी उसका स्वरूप आनुवीक्षा ही था। अशोक-चन्द्रमें सीताको डगाने जो राष्ट्रसियाँ आयी थीं, उनका यहा भीक्षण वर्णन है। (कोउ मुख्दीन विपुल मुख कोऊ)। ऐसा वर्णन तो है दी, किन्तु यह भी बताया गया है कि, उसमेंसे किसी-किसीके सुख आय, भैंस, बक्की, सिक्कार, कुत्ता, हाथी, ऊँट, छोड़ा आदि जानवरों सदृश थे (६।७०; ८।३२)। आठिका (३।२८।१२) अयोमुक्ती

(३।६।१२-१३) और शूर्पवाला (३।७।१८-१९) के विचित्र तथा भयोत्पादक वर्णन से यूक्त अन्यमें ही देखने योग्य हैं। परन्तु ये वर्णन आदिकविकी रस-निष्पत्तिकी प्रतिभामात्र हैं।

राष्ट्रसोंके रूपकी उपर कल्पना लोगोंने उनके नामों और कृतियोंसे ही कर ली है। रावण (गर्जना करनेवाला), कुम्भकर्ण (जिसके कान घड़ेके समान हों), विभीषण (भयकर), त्रिशिरा (तीन मस्तकवाला), लर (गवहा), दृष्ट्य (दृष्टि) आदि नाम भयालक हैं। परन्तु नामोंसे ही डर जानेका कोई कारण नहीं है।

विद्याधरो यथा मूर्खो जन्मान्धश दिवाकरः ।
तक्षमीधरो दरिद्रश त्रयंते नाम धारकः ॥

यह सुभाषित प्रसिद्ध ही है। स्वयं रावणने सीतासे अपने नामकी ल्युरपति कही है कि-'मेरे नामका अर्थ है—शत्रुघ्नोंसे हाहाकार करनेवाला। यद्यपि मेरा नाम रावण है, तथापि मुझे पराक्रमी दशाश्रीव कहते हैं (३।४८।२; ४।२३।८)'। राष्ट्रसोंकी कृतियाँ वही भयानक हीं। आठिका मनुष्य-भक्षण करती थी (१।२८।१४)। मारीच दशदकारवर्यमें तपस्वी ब्राह्मणोंको मार ल्याता था (३।३।८।३)। नरमांस रावणका आहार था (३।७।२।२३), दूसरोंकी छिपांको दरक्षकर उनका सतीत्व लाश करना, रावणने राष्ट्रसोंका स्वधर्म कहा है (४।२०।१२)। वो भी राष्ट्रसमें कुछ नीतिज्ञ भी थे। यह बात मारीच, शूर्पवाला, कबन्ध, विभीषण, मन्दोदरी आदिके नीति-वचनोंसे स्पष्ट हो जाती है। राष्ट्रस उम्मल, हिंसक, आप्याकारी और अविचारी होते थे, इसीसे लोगोंने उनके रूपोंकी उपर कल्पना कर ली है।

राष्ट्रस नर-प्राण-मक्षक और हित ये सही, किन्तु उनमें भी आत्मवर्द्धन ल्यवस्था थी। 'रावणकी माता कैकसी सुमादी नामक राष्ट्रसकी कल्पना थी। उसका विवाह पुष्पस्थपुत्र विभवा अविष्टे हुआ था। इसी जोड़ीसे रावणादि सीमा पुत्र उत्पन्न हुए, जो ब्राह्मण थे (३।६।२३)'। हनुमानने इन्द्रजितसे उसकी भर्तव्याना करते हुए कहा था,—'नृवासिके कुङ्कमें राष्ट्रसलोकिमें सत्यम् हुआ है (६।८।११।८)'। इससे सिद्ध है कि, राष्ट्रसोंमें वर्णव्यवस्था थी, परन्तु ये आत्मीय प्रकृतिके ठोगेके कारण राष्ट्रस-विविते जाते था वर्णकी लीये विवाह कर लेने थे। हनुमानने रावणके अन्तःपुरमें रावणकी जो छिपाँ देखी, वे राजर्षि, ब्राह्मण, देवता, गणधर्म और राष्ट्रसोंकी कल्पार्थी थीं (६।८।६८-६९)। अन्ततः राष्ट्रसोंका मनुष्योंसे शारीर-सम्बन्ध भी होता था।

राष्ट्र स तपस्यी और विद्वान् भी हुआ करते थे। रावणका शिवभक्त होना प्रतिक्ष दी है। वह अभिहोत्री और वेदपाठी भी था। चारों वेदोंका पद्मचेद उसीने किया था। जब वह मरा, तो उसकी वितामें अभिहोत्रके पात्र रखे गये थे। इसका उल्लेख युद्धकालमें है। रावणके अतिरिक्त आग्ने राष्ट्र स भी वेदपाठ करते थे। हनुमानने उत्तररात्रिमें रावणके प्रासादमें विद्वान्हसोंका चड़ा वेदपाठ सुना था (४।१।१२)। विमीण्य रावणसे मिलने गया, तब उसने देला कि, अपने भाईकी विजयकामनासे राष्ट्र-गण पुण्याद्याचन कर रहे हैं। (६।१।८) निर्झुभिक्षा देवी रावणकी कुल-देवी थी। उसके उद्देश्यसे मण लाने और इच्छन करनेका उल्लेख रामायणमें है (४।२।४।४७)। राहसों के मध्यप होनेका हमसे पता चलता है। वे उप्र तपस्या करने थे। विराघ (३।१।६) और रावणने (६।६।२।२६) घोर तपस्या की थी। परन्तु उनकी तपस्या ब्राह्मणोचित निष्काम नहीं, सकाम हुआ करती थी।

उनके संस्कार वेदोक्त होने थे। विमीण्यका राज्याभिषेक वेदोक्त ही हुआ था (६।१।१।१४-१५)। राष्ट्र अनेक विद्या-कलाओंमें विद्युत, राजनीति-चनूर, युद्ध-विद्या-विश्वारद और रसिक होने थे। रावण तो बड़ा अच्छा गायक था (६।२।४।४६-४७)। राहसोंके वैभवकी सीमा नहीं थी और उनकी मायाका तो कहना ही क्या है? उनकी

अन्तिम किंवा भी मनुष्योंकी तरह की जाती थी। वे जलाये जाते और गाढ़ भी दिये जाते थे (३।४।२२-२३)। कल्पने तो अन्त समयमें कहा कि, मुझे पहले गाढ़ दो और फिर जला दो (३।७।३।३)। राष्ट्र मनुष्य-जैसे ही थे, इसका विस्तृत वर्णन अयोध्याकालमें अनेक स्थानोंमें पाया जाता है।

रामायण-सागरका मन्त्रन कर राष्ट्रसोंके सम्बन्धमें बहुत कुछ ऐसे प्रमाण दिये जा सकते हैं, जिनसे यह सिद्ध हो जायगा कि, राष्ट्र कोई कल्पनातीत प्राणी नहीं थे। मनुष्यों-जैसे ही थे। किन्तु क्षूर प्रकृतिके होनेके कारण उन्हें राज्य पद्धति प्राप्त हुई थी। हमारे समाजमें वर्तमान समयमें भी राष्ट्रसोंकी कमी नहीं है। परन्तु उनके स्वरूप उम-आप-जैसे ही हैं।

इसरे अन्तःकरणमें दिनमें किन्ती ही बार राष्ट्री प्रवृत्तियोंका उदय हुआ करता है और कभी-कभी उनके बशीभूत होकर हम राष्ट्री कर्म भी कर बैठते हैं। परन्तु हमें उनका विचार नहीं रहता। इन प्रवृत्तियोंको एकानेका एकमात्र उपाय मर्दाना-पुरुषोत्तम श्रीभगवान् रामचन्द्रजीके पावन पञ्च-कूजोंकी शरणागति हो है। इसीसे हम चीय-कल्पन होकर अन्त समयमें वालिकी तरह श्रीभगवान्से अभिमानपूर्वक पूछ सकेंगे कि, प्रभो!—

अजड़ौं का मैं पातकी अन्तकार गति तोरः

श्रीरामचरितमानसकी नवधा भक्ति

प्रथम भगति संतन्ह कर संगा। दूसरि रति मम कथा-प्रसंगा।

द्व०—गुरु-पद-पंकज-सेवा तीसरि भगति अमान ।

चौथि भगति मम गुनगन करै कपट तजि गान ॥

मंत्र जाप मम हूढ़ विस्वासा। पंचम भजनु सो वेद प्रकासा।
छठ दम सील विरति बहु कर्म। निरत निरंतर सज्जन धर्म।
सातवें सम भोहि मय जग देखा। मो तें संत अधिक करि लेखा।
आठवें जयालाल संतोषा। सपनेहु नहिं देखै परदोषा।
नवम सरल सब सन छलहीना। ममभरोस हिय हरय न दीना।

रामायणके वानर-ऋग्ग

महिं वास्मीकि रचित रामायण का अध्ययन करने-
पर यह स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि रामायण-
वर्णित ऋष-जानन आजकल से-से पशु बन्दर-रीढ़
कदापि नहीं थे । वे अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष
वारोंके अधिकारी थे । विद्या, तुल्दि, जान, कठा,
देशर्थ, सम्पत्ति, राज्य, भोग, बल, चातुर्थ, राजनीति
आदि उपरोक्त किसी भी मानव-जाति से कम नहीं थे ।
श्रीरामके प्रति भक्तवत् श्रीहनूमानवीके ये वाक्य विश्वात
ही हैं—

देहदृष्ट्यात् दासोऽहं जीवदृष्ट्या तदंशकम् ।

बस्तूतस्तु तदेवाहं इति मे निश्चिता मतिः ॥

‘शरीर-दृष्टिसे मैं आपका दास हूँ, जीव-दृष्टिसे आपका
अंश हूँ और वास्तवमें मेरे एवं आपके स्वस्पदमें कोई अल्पर
नहीं है, यह मेरा निश्चित मत है।’ क्या पश्च बन्दर-जातिका
कोई प्राणी इसप्रकारके विचार कर सकता है कि वाणी
बोल सकता है? संक्षिप्तरूपसे वानर-बाहु-जातिके कुछ
गुणोंका विवरण न कराया जाता है—

विद्या

जब श्रीहनूमान्जी महाराज अप्यमृक-पर्वतसे उत्तरकर
नापस-वेदमें भगवान् श्रीरामके समीप आकर अपने अर्थ-
गम्भीर मधुर मनोहर शब्दोंसे रामको प्रसन्न कर लेते हैं तब
श्रीराम—सर्वविद्यानिष्ठात् राम—साक्षात् सचिदानन्दवन
राम—अपने भाई रामण्यसे कहते हैं—‘सौमित्रि! तुम सुश्रीशके
मन्त्री हनूमान्जसे स्वेहुकुल सभावन करो, यह हनूमान्
वास्तके रहस्यको जाननेवाला चतुर और महाबली है। यह
शत्रुघ्नीका दमन करनेमें समर्थ है। इसके भाषणसे मालूम
होता है इसने वेदोंका पूर्ण अन्वास किया है वर्णोंकि वद्ध,
यजु और सामवेदको न जाननेवाला कोइं भी देसा वर्तम
और रष्ट भाषण नहीं कर सकता। इसके अतिरिक्त यह
व्याकरणका भी पूरा परिदृष्ट प्रतीत होता है, वर्णोंकि हनुने
जन्मे भाषणमें इसके मुँहसे न लो एक भी अशुद्ध शब्द
निकला और न शब्दोंके उच्चारणमें कहीं इसके अङ्गमें ही
कोई विकार आया।’……(वा० रा० ४ । ४) हनूमान्जीका
सीता और रावणसे जो वार्ताकाप हुआ, उसमें भी उक्तके
पूर्व शिवित और वेदश्च होनेका पता खाला है। कहा

आता है श्रीहनुमान्की संगीत-कलामें भी वहे नियुत्त थे ।
पुरुषोंकी तो बात ही क्षया, वानर-स्त्रियाँ भी पूर्व विदुती थीं ।
वालिके मरनेपर विद्याप करती हुई तारा श्रीरामसे शुति-
स्तृतिके प्रभाय देहर जीका परिसे अभेषत्व सिद्ध करती है ।
(बा० रा० ३ । २४ । ३७-३८)

धर्म व्याख्या

प्राणधातक राम-नाम से भरणा सज्ज धालि अब श्रीराम को
उलाहना देता है, तब श्रीराम धर्म-स्थागके कारण वधका
घोषित सिद्ध करते हुए कहते हैं—‘हे वाकि ! तू अपने
निवृद्धि चरित्रके कारण विपरीतगामी हो गया है । तूने
राजधर्मका स्पाया कर दिया है, जो पुरुष अपनी पुत्री, इहिन,
या बोटे भाईकी ओके साथ कामवश होकर व्यभिचार
करता है वह वध करने योग्य ही है । मैंने महाराज भरतके
धर्मशासनकी नीतिके अनुसार तुम्हे मारकर अच्छा ही किया
है, अन्यथा तुम्हे अपने पांडोंके लिये धर्मशास्त्रके अनुसार
प्रायश्चित्त करना पड़ता ।’ इसके बाद श्रीरामजी मनुस्मृतिके
खोकोंका प्रमाण देने वाले हैं । इससे यह सिद्ध है कि बानर-जातिके
लोग धर्मशास्त्रसे परिचित ये और धर्म-पालनके लिये बाध्य
थे, तथा धर्म-विश्वद्वारा यह करनेपर दरडके पात्र समझे जाते
थे । पश्च-अन्वरोंके लिये श्रीराम कभी ऐसा नहीं कह सकते !

धार्मिक-संस्कार

वानर-जातिमें सभी संस्कार वैदिक विधिके अनुसार होते थे । दयाहरणार्थ वालिकी मृत्युके अनन्तर उसके औच्चित्रिक संस्कारका विवरण पढ़िये—

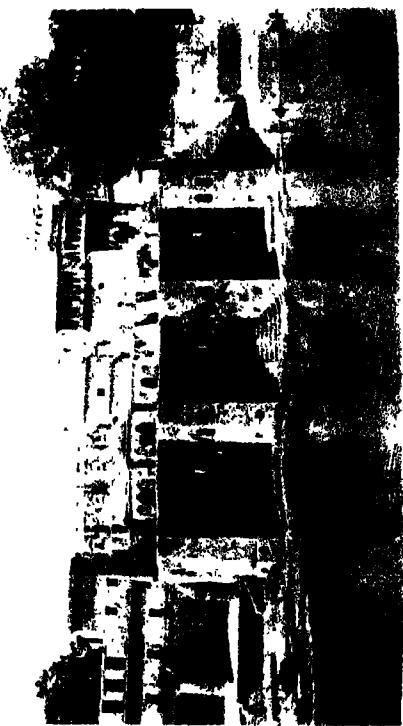
सुभ्रीव और अंगद एक सुन्दर पालकीपर वालिके शब्दोंको
रखकर इमशानमें ले जाते हैं, शब्दपर रखोंकी वर्षीयों को जा
हरी है, नदीके तीरपर शिविका उतारी जाती है, सूखे काठकी
चिता बनाकर उसपर शब्द रखला जाता है,फिर शोकाङ्गुल अंगद
पिताकी चिताके अथसव्य प्रदर्शिणा करता है, तत्पश्चात
शास्त्रविधिके अनुसार अग्नि-संस्कार किया जाता है। इसके
अनन्तर बाहर पवित्र नदीतटपर स्नान करते हैं और सुभ्रीव
तारा तथा अंगद बालिकों अज्ञातविधि प्रदान करते हैं।
इस पश्च बन्धुरोंमें ऐसी क्रिया सञ्चालित है ? और देखिये—

भगवान् श्रीरामकी आशासे सुग्रीव राज्याभिषेक के दिये विश्वनाथ-नगरी में प्रवेश करता है, उस समयका पर्वान

(३) राष्ट्रपत्याग (संगम) (४) पर्णकुटी नं० १



(५) मन्दा जेल्ड-मन्दिर,(गाथन-प्रयाग)



(२) मन्दाकिनी ग्राम



(२) परिक्षमा में तुलसीदासजीका मन्दिर



(३) वार्षिक तंत्र



(४) जानकी कुण्ड (५) तुलसीदासजीका मन्दिर रामगढ़ के पास



है—सुग्रीवके राज्याभिषेकके लिये वानरोंने शीघ्रतासे ये वस्तुएँ मङ्गवारी थीं, सुवर्णाक्षित रवेत कुञ्ज, सोनेके ढाँडीबाले दो चर्चेर, सब प्रकारके रक्ष, सकल प्रकारके बीज और शौश्रविद्या, सहीर बृहोंके प्रोटोइ, सुगन्धित पुण्य, सोकेत कुर्वे, रवेत चन्दन, सुगन्धयुक्त कमल, अनेक प्रकारके सुगन्धित-नृत्य आहत, सुखवां, गोहृ, मधु, शृत, दही, न्याप्रचर्म, बहुमूल्य जूतेकी ओढ़ी। इसके बाद राजाके शरीरमें देष्टन करनेके लिये गोरोधनादि सुगन्धित पदार्थोंको लेकर सोडाह रूपसी कुमारिकाएँ आयीं। उत्तम ब्राह्मणोंको भोजन कराया गया और उन्हें रक्ष तथा वक्ष देकर प्रसन्न किया गया। फिर मन्त्रज्ञता शूलियोंने कुरुद्वारमें आश्रितीकी विधिवत् स्थापना कर इच्छा किया, तदनन्तर सुन्दर सुवर्ण-सिंहासनपर बैठाकर चारों दिशाओंके तीर्थोंके तथा विधिवत् समुद्रोंके निर्मल जलसे सुवर्णपात्रोंहारा सुग्रीवका आभिषेक किया गया। यहों विधिपूर्वक धूंगड़को भी सुवराज-पद दिया गया। (वा० रा० ४२६) क्या ऐसी विधि पशु-बन्धरोंमें कभी सम्भव है ?

ऐश्वर्य-विलास

किञ्चिन्नवा-नगरीकी अवस्थाका किञ्चित् वर्णन पदन्ते पर वानरोंके ऐश्वर्यका कुञ्ज अनुमान लग जाता है। जिस समय सुग्रीवको चेतावनी देनेके लिये श्रीकरमणजी सुग्रीवकी नगरीमें गये, उस समय उन्होंने देखा—

अनेक रक्षोंसे छायी हुई उस दिव्य नगरीमें बगह-जगह पुरित वृक्ष लग रहे थे। दंडी-दंडी छतोंवाले रखजारित विशाल भवनोंसे नगरी लखाखच भरी थी, प्रत्येक घरके साथ बगीचा था, जिसमें फल-पुण्य-समन्वित वृक्ष लगे थे। विन्याशच और सुप्रेरु-जैसे दंडे दंडे महालोंसे नगरी शोभित हो रही थी। आगे चलकर श्रीकरमणजीने युवराज अङ्गद, मैन्द, द्विविद, गवय, गवाच, गज, विशु-न्माकी, सूर्याच, हनुमान, सुदाहु, नज, नील, जाम्बवान् आदि अष्ट उद्दिमान् वानरोंके रमणीय और सुन्दर महल देखे। ये सब महल सफेद बावजू-जैसे, सुगन्धित पदार्थों और पुण्यमालाओंसे सजाये हुए, धन धान्यादि ऐश्वर्य और रमणी-रक्षोंसे सुशोभित थे। वानराज सुग्रीवका राजमहल तो रवेत स्फटिक-मयिकी बड़ी-बड़ी शिखाओंका बना हुआ था, सामने दिव्य पुण्य फल और शीतल धूमावाला बरीचा था, दिव्य पुण्य और सोनेके तोरबोंसे महल सजाया हुआ था। अत्यन्त बहुवाजे वानर राज धारण किये उत्तरावेपर पहरा दे रहे थे। श्रीकरमणजीने

महलके अन्दर बाकर युद्धे बाद एक सात उपोदिती पार की, वहाँ उन्होंने भाँसि-भाँसिके रथ और विमान आदि सवारियाँ और विकाने योग्य बहुमूल्य आसनोंका डेर देखा। अन्तःपुरमें सोने और चाँदीके बहुत-से बहे-बहे पलंगोंपर अमूल्य विछौने दिखे थे। अन्दर सुन्दर स्वरमें गामा-बजाना हो रहा था, अन्तःपुरमें सुन्दर आङ्गूतिवाली उत्तम कुरुमें उत्पन्न अनेक जियाँ थीं जो उत्तम वस्त्राभूषणोंसे सजी हुई सुगन्धित फूलोंके हार पूँछ रही थीं। इसके बाद उन्होंने सुग्रीवके उत्तम गहनों-कलाओंसे सजे हुए अग्रणित नौकरोंको अनेक प्रकारके कार्योंमें लगे देखा ! (वा० रा० ३३३) इससे वानरोंके ऐश्वर्य और विद्वासका अन्वाजा लगाइये !

कला-कौशल

वानर जाति कलाकौशलमें खूब बड़ी-बड़ी थी। विशेष प्रमाण न देकर दो एक प्रमाण ही दिये जाते हैं। देखिये—

वाकिका शब्द रमशाल दे जानेके समय जिस पालकी-पर रक्षा गया था, उसका वर्णन इसप्रकार है—‘विद्य रथ-जैसी पालकी अत्यन्त शोभायमान थी, उसके मध्यभागमें उत्तम भद्रासन बनाया हुआ था। चारों ओर अनेक प्रकारके पदी और बृहोंके प्राङ्गुतिक चित्र विश्रित थे। पालकीके अन्दर जानेके दृष्टान्ते बहुत ही सुखरूप थे, हवाके जाने-जानेके लिये सुन्दर जाकियाँ रखी हुई थीं। निपुण शिल्पकारोंहारा निर्मित वह सुन्दर शिविका बहुत ही बड़ी और मजबूत थी, देखनेमें देवताओंके विमान-जैसी थी। उसके अन्दर नानाप्रकारके काठके पहाड़ बनाये हुए थे। इसके अतिरिक्त अन्य बहुत-सी कारीगरी की गयी थी। वह पालको उत्तम सोनेके हारों, रंगविरंगे पुष्पों और बाल चन्दनसे सजायी हुई थी। शिविकापर भाँसि-भाँसिके सुगन्धित फूल बिलराथे हुए थे और प्रमातकालीन सूर्य-सदृश कान्तिवाली कमलकी मालाओंसे वह शोभित हो रही थी। (वा० रा० ३१२५)

यह तो सुरेंको उठानेकी पालकीका वर्णन है। अन्य वस्तुओंकी कारीगरीका भी इसीसे अनुमान कर सकिये।

इसके अतिरिक्त नक्की अव्यवस्थामें वानरोंहारा समुद्रपर सौ बोझनमें विशाल पुष्प बनाना लो प्रसिद्ध ही है। वालसीहीय रामायणसे पता लगता है कि पुष्प बाँधनेमें वानरोंने यन्त्रों (मशीनों) द्वारा भी काम किया था,

किला है कि हाथी-जैसी बड़ी-बड़ी शिखाओं और पर्वत-शिखरोंको बानरलोग उपाधकर बनवहारा समुद्रतङ्ग लाते थे । सेतु कहीं बाँका टेका ज हो जाय इसकिये बानरगाड़ सूतसे नाप-नापकर पत्थर रखते थे । इसकिये कहे बानर हाथोंमें ढोरी किये जावे रहते थे + । इससे रामायणमें 'कबा-कौशल' का भी पता जगता है ।

इसके अतिरिक्त, सुश्रीकवि विशाल भीगालिक जान उस समय प्रकट होता है जब वह सीताकी लोकमें जानेवाले बानरोंके सामने भूगोलका विस्तृत वर्णन करता है । रथमें बानरोंकी शूरता और युद्ध-शिखरता तो प्रसिद्ध ही है । सुश्रीकवि राजनीति और राजनीति-पठुताका यही एक प्रमाण है कि श्रीरामने उसे अपना मन्त्री और सेनापति बनाया था । भगवद्गीता और परमार्थज्ञानके विषयमें श्रीहनुमान् परम प्रसिद्ध है ही । ऋषराज जाम्बवानकी राजनीति, शुद्धिकृत्यवाना, जिसने हनुमानर्जुनोंको बदला करका कराया था, सभीपर विदित है ।

इन योगेमें उदाहरणोंमें पता जगता है कि रामायणके अह-बानर साधारण पशु रीढ़-बन्दर नहीं थे । यह कोई विशेष कुद्दि-सम्पद अनार्थ मानक-जाति भी । जो आज नह या कहीं रूपान्तरित हो गयी है । मन्मह इसके पूँछ रही हो, क्योंकि रामायणमें पूँछका बर्णन प्रायः मिलता है । पूँछके द्वारा श्रीहनुमानर्जुनोंका लड़ा-दहन प्रसिद्ध है । यह भी हो सकता है कि ये उम सम्पदका अपनी जातिको सम्बन्धाके अनुसार कर्वनेकी पूँछ-मी बनाये रखने हों । कुछ मुसलमान-जातियोंमें और गजपृष्ठानेमें बाल थी, और कहीं कहीं अब भी है, कि खिर्दी अपनी जोटीको ऊनको आटमें गूँथकर इतनी खम्बी बना जंती थी जो पीठमें ऐरोंटक छटकती रहती थी । अबपुरुदे जागे पूँछ-मी बनाये रखने हैं । इस सम्बन्धमें कुछ विशेष कहा नहीं जा सकता, परन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि वेशाव्ययन, यज्ञ-याग, दान-पूज्य, ज्ञान-विज्ञान, हंसवर-महि, राज्य-सम्बन्धन, गायन-वादन, कबा-कौशल आदि जातियोंको बदलेवाली जाति पशु-जाति नहीं हो सकती । मन्मह इस मानव-

* इमिमात्रान्महाकायाः पापानांश्च महावकाः ।

पर्वतश्च समुत्पाद्य यन्मः परिवहन्ति च ॥

(वा०रा० ६ : २३। ५९)

+ द्वाष्टाण्यन्ये प्रगृहन्ति (वा०रा० ६ : २२। ११)

जातिका नाम 'बानर' रहा हो । बानर पशु भी होते हैं, इस-किये जोग इन्हें पशु मानने जाने हों । या वह भी हो सकता है कि इसके रूप-रक्षमें बन्द-जातिसे कुछ समानता पायी जाती हो, इसमेंसे कुछ जोगोंकी शक्तें बन्दोंकी-सी भवावनी और कुरुप हों, यथापि इसके देवोपम सुन्दर होनेका भी उल्लेख मिलता है । श्रीरामकी सेवामें रहने-वाले बानर देवताओंकी सम्मान है । इनकी उत्पत्तिके प्रकरणमें किला है कि जिस देवताका जैसा रूप, वेश और वह या उसके अंशसे ही बैसे ही रूप, वेश और बदलावे पुच उपम्य हुए, तथापि कुछ जोग बदसूरत होंगे, आज-कह भी तो मनुष्योंमें ऐसे बहुत-से भवावनी शक्तिके व्यक्ति देखे जाते हैं जिनके बेहरेकी ओर देखते ही वह जगता है । बानरी कियोंके तो सुन्दरी होनेका स्वरूप उल्लेख मिलता है । सम्भव है यह जाति कृष्ण-कौरबने और बनमें रहनेवाली होनेके कारण कृष्ण-मूर्ति लानेमें सम्बन्ध होनेसे वह-वहे शाहरोंके जोग मजाकसे इन्हें बहदर कहने लगे हों, जैसे कुछ दिनों पहले कृष्ण-कौरबमें विपुल पीतबहे आपानियोंको रूपी जाग 'पीत-बन्दूर' (Yellow Monkeys) कह-कर पुकारा करते थे । रूसी-भालू (Russian Bear) और ब्रिटिश-लिंग (British Lion) नाम आज भी प्रचलित है । भारतकी अग्नितिं जनता अङ्गरेजोंको अब भी बन्दर कहती है । पर इन लानोंमें कोई भी जाति पशु नहीं है । राजपूतानेके भगवद्वालोंमें एक जातिका 'भूत' कहते हैं । इसीप्रकार इसके किये भी मन्मह है । ऐसे ही 'बन्दूरान्' * पर्वतपर निवास करनेके कारण, एक जाति कृष्ण कहाने लगी, जिसमें जाम्बवान् थे ।

इस विवरणसे पाठक अनुमान कर सकेंगे कि रामायणमें बांसुर बानर-बन्दूर पशु नहीं थे । अह-बान्य और झान-विज्ञान-सम्पद मानव-जातिके ही जोग थे, जिनके रहन-महन और आचार-विधानमें आतंजातिसे कई बालोंमें बन्दर था और जिनके बर्षाकार भी आर्यजातिमें पृथक् थे, जैसे आज भी चांती और आपानियोंका कृष्ण दोषा और मुँह चिपटा होता है ।

स्त्रि वे भायवान् अह-बानर तो सब देवताओंके अंश हैं जो मणिकान्मध्यन भगवान् श्रीगम्भीर्योवामें समितिन होनेके किये अवसीक्षे हुए थे । उनकी उत्पत्तिका संहित विवरण विकल्प लेने समाप्त करता है ।

* अन्य बन्दूरान्: प्रश्न-नुपत्तम्: भद्रमहा ॥

(वा०रा० १। १०१।)

महाराजीके कहनेसे देवताओंने अप्सराओं, गन्धियों, वज्रकल्पाओं, नागकल्पाओं, वरदकल्पाओं, विश्वधरियों, किलरियों और वानरियोंके हात सब प्रकारकी माया आगनेवाले, शूरवीर, वायु सदृश गतिकाले, नीतिष्ठ, तुदिमान, पराकर्मी, शशुदिग्यों, साम-वानान्दि, नीतिचिपुष्य, इश्वरीरी, शशाङ्क-प्रयोगमें पटु, साक्षात् देव-सदृश उत्तर उपर्युक्त किये। महाराजीसे 'आमवान्', इन्द्रसे 'वालि', सूर्यसे 'सुग्रीव', शूहस्यतिसे 'तार', कुबेरसे 'गन्धमादन', विश्वकर्मासे 'नक्ष',

अग्निसे 'नील', अरिहनीकुमारोंसे 'मैन्द' और 'हिंदिन', वस्त्रासे 'सुरेश', पर्वतसे 'शरम' और वायुसे 'हनुमान' हुए, तथा अन्यान्य देवताओं, महर्षियों, गरुड़ों, वर्षों, किल्पुष्यों, सिद्धों, विश्वधरों और नागोंने भी हजारों पुत्र उत्पन्न किये। देवोंके टाट-वारणोंने भी सैकड़ों पुत्र उत्पन्न किये। इन सबकी उत्पत्ति मुख्यतः अप्सरा, विश्वधरी और नागकल्पाओंसे हुई छ! (वा० ग० ११७)

—रामायण-प्रभी

रामायण और महाभारत

एक तुलना

(लेखक—दा० नीमहलदेवजी शाळी, एम० ८०, ड०० फिल०)



रामायण संस्कृतके इतिहासमें साहित्यिक दृष्टिमें 'इतिहास' और 'पुराण' का महात्व किसी दूसरे प्रस्तुत्यसे कम नहीं है। इतर कुछ दिनोंसे अनेक पाञ्चाल्य विद्वानोंकी देखा-देखी तथा अन्य कारणोंसे 'इतिहास' और 'पुराण' कुछ देवेशोंकी इहिसे देखे जाने लगे थे। परन्तु यह व्रस्तताकी बात है कि अब न केवल भारतीय किन्तु पाञ्चाल्य विद्वानोंके भी इन विचारोंमें परिवर्तन हो रहा है। अब वेदिक साहित्यकी तरह इनको और भी विद्वानोंका ध्यान जाने लगा है। इमारे भारतवर्षमें तो अति प्राचीन काव्यसे ही इनका गौरव समझा जाता था। यही तरह कि इतिहासको 'पञ्चम वेद' माना जाता था— इतिहासः पञ्चमो वेदान्व वेदः ।' कौटिल्यने अपने 'धर्मशास्त्र' में कहा है—'सामक्षं पञ्चमुर्वदामध्यमध्यदा । अथवं इतिहासदी न वेदः ।' अर्थात् सामवेद, अग्नवेद, यजुर्वेद यह ग्रन्थ और अथर्ववेद तथा इतिहासवेद थे वेद हैं। ग्रन्थाश्वर्णाओंमें अनेक वर्णह इतिहास और पुराणका वर्णन है। पात्रअख-महाभाष्यमें

* यह लेख तकनीकी दृष्टिसे लिखा गया है। वास्तवमें क्या बात थी, सो भगवान् ही जाने। जब साक्षात् आइनूमान्जी महाराजको प्रेरणा और सहायतासे लिखित रामचरितमानसने अंग रामके साथी वानर-कक्षोंको बन्दर-भालु बतलाया है तब मुझ सरीखे शुद्ध प्राणोंका कुछ भी लिखना छूटता ही है, वास्तवमें भगवान्को राज्ञि अनन्त और असर्वशं है। बन्दर-भालु तो चैतन्य प्राणी है, वे नहीं तो जह वृक्ष-पाण्याओंको बढ़ासे आरिक विद्वान्, कालसे भी अधिक बलराती, इन्द्रसे भी अधिक एवं यस्त्रश, वृहरपतिसे भी अधिक तुदिमान् और विश्वकर्मासे भी अधिक कलाकुशल बना सकते हैं।—देवक

कहा है—'वत्सरो वेदः... इतिहासः पुराणम्... !' चतुर्थश विद्वानोंमें भी 'पुराण' को गिनाया गया है। इसप्रकार भारतवर्षमें अध्ययनाच्चापनकी प्रत्येक प्रणालीमें इतिहास और पुराणका समावेश था।

इतिहास और पुराणके साहित्यमें रामायण और महाभारतका—जिनका समावेश प्रायः इतिहासमें ही किया जाता है—स्थान बहुत ढंचा है। इन दोनों अन्योंके आरेकिक निर्माणकालके विषयमें अनेक मत हैं। यहाँ इम उम्म भगवान्में न पक्कर इन दोनोंकी संस्कृतमें पक्क-दो राष्ट्रियोंसे तुलना करना चाहते हैं। साधारणतया यही समझा जाता है कि दोनों ग्रन्थ विलक्षण पक्क ही प्रकार तथा कांटिके हैं। परन्तु यहाँ इम इन दोनोंकी तुलनामें कुछ उन्हीं वातोंको विलक्षणा चाहते हैं जिनमें इन दोनोंका भेद है।

(१) रामायण और महाभारतमें एक मौजिक भेद, जिसकी ओर प्रायः बहुत कम ध्यान जाता है, यह है कि महाभारतको 'वैद्यानिकी संहिता' कहा जाता है। उदाहरणार्थ, इसके पर्वोंके अन्तमें समाप्तिसूचक वाक्यमें यह लिखा

रहता है—‘इति श्रीमन्महाभारते शतसाहस्रिकाणां संहितायां वैयासिन्देवाणीयाणां’। परन्तु वाल्मीकीय रामायणके काव्योंमें अन्तमें इसको ‘संहिता’ न कहकर केवल ‘वाल्मीकीय आदिकाव्य’ कहता है। यदि व्याख्यानसे विचार किया जाय तो प्रतीत होगा कि इन दो शब्दोंमें सूत्ररूपसे दोनों प्रन्थोंका सारा भेदभाव भर दिया है। ‘संहिता’ शब्दका अर्थ है ‘एकत्रीकृत’ अथात् इकट्ठा या संग्रह किया हुआ। प्रारम्भमें ‘संहिता’ शब्दका प्रयोग विज्ञ-जिज्ञ अन्थोंके लिये किया जाता था वे सब इसी प्रकारके थे कि उनको प्रादः साक्षयेन प्राप्ताणां सामग्रीसे ही संग्रहीत किया गया था। उनकी स्वतन्त्र रचना नहीं की गयी थी। वैदिक संहिताओंके विषयमें यह बात प्रादः निर्विकार रूपसे सब भावते हैं। वाल्मीकीय महाभारत भी ऐसी ही संहिता है। अथात् असामियनि इसके बनानेवाले न होकर केवल संग्रहीता ही थे।

इसके विस्तृत वाल्मीकीय रामायण ‘वाल्मीकीय आदिकाव्य’ है। अथात् वाल्मीकि मुनिने इस प्रन्थकी रचना स्वयं शत्रुघ्नपन्ने की। कथा प्राचीन ही हो तो भी यह रचना वाल्मीकियीकी ही है। इसप्रकार वहाँ रामायण एक व्यक्तिकी हृति है, वहाँ महाभारतके विषयमें ऐसी पक्षता नहीं है। इसी काव्यसे वहाँ एक और रामायणमें भाव, भाषा तथा रचनारौपीकी पृष्ठरूपता प्राप्तः समग्र प्रन्थमें देख पड़ती है वहाँ महाभारतमें यह बात वही देखी जाती। नीचे यह भेद कुछ स्पष्ट हो जायगा।

(२) रामायण और महाभारतकी तुलना करनेसे प्रतीत होगा कि दोनोंकी भाषा और रचना-रौपीयमें काफी अन्तर है। इसके साथ वहीं प्रादः समग्र रामायणकी भाषा और रचना-रौपीयर एक व्यक्तिकी ज्ञाय प्रतीत होती है, वहाँ महाभारतके निष्ठ-निष्ठ अन्थों और भागोंमें ही भाषा और रचनारौपीका भेद स्पष्ट दीखता है। इस भेदसे यहीं प्रतीत होता है कि वे निष्ठ-निष्ठ अन्थ न हों एक व्यक्तिकी ही और न एक समयकी रचना है। वहीं इसका विचार करनेवाला असहर नहीं है। केवल दोनोंके अन्दरोंकी रचनाके भेदको विचारकर ही हम सम्मोष कर सकेंगे।

संस्कृत-भाषाये वैदिक और ऊर्ध्वविद्युत अन्थोंका एक मुख्य भेद यह है कि वैदिक अन्थोंमें प्रादः अवरोंकी संख्या ही विवर होती है। परन्तु उन सब अवरोंमें कौन गुह होगा और कौन जन्म, यह प्रादः विवर नहीं होता। एक ही वादमें

केवल दो तीन अवरोंको छोड़कर दोष अवरोंको गुह या जन्म करनेवाली स्वतन्त्रता होती है। परन्तु ऊर्ध्वविद्युत अन्थोंमें भावान्वयन्दोंको छोड़कर यह बात नहीं है यहाँ पादरे प्रत्येक अवरका गुहव और जन्म विवर होता है। अवरोंके काव्यसे काव्यिकासके समयतक आवेदनमें निष्ठ-निष्ठ अन्थोंमें अन्थोंविषय उपर्युक्त प्रश्नियोंका प्रतिक्रिया विकास देखा जाता है। प्राचीन अन्थोंमें प्रथम प्रश्नति और विष्वक्षे प्रन्थोंमें द्वितीय प्रश्नति देखी जाती है।

उपर्युक्त इस्तेवदि हम रामायण और महाभारतके अन्थोंकी तुलना करें तो रामायणके इन्द्र विजितासके अन्थोंके साथ प्रतीत होंगे और महाभारतमें अवरोंवाले अन्द्र उपनिषदोंकी तरहके मिलेंगे। द्वितीय प्रकारके इन्द्र रामायणमें प्रादः विस्तृत नहीं पाये जावेंगे। नीचे कुछ उदाहरण दिये जाते हैं। उनके पढ़नेसे ही दोनों प्रकारके अन्थोंका भेद स्पष्ट हो जायगा। साथ ही उनके गुह और जन्म अवरोंका भी तथा उनके विवर होने वा न होनेवाली भी विचार कर सका जाएगे।

प्रथम रामायणको लीजिये। सुन्दरकाव्य ४१।१—

न साम रक्षः सु गुणाय कल्पते

न दानमार्योपशितुं शुभ्यते।

न ग्रन्थसाध्या बद्धार्पता वनाः।

पराक्रमस्वेषं प्रभेद गोचरते॥

सुन्दरकाव्य ४०।४—

स ग्रन्थपुत्रा प्रतिबेदताव्यः

कपि: कृतर्यः परिदृष्टेतः।

तदरपशेषं प्रसीदीय काये

दिशं शुद्धीर्यो मनसा जगाम॥

इन लोकोंके साथ महाभारतके निष्ठविलिम्न लोकोंकी तुलना कीजिये। मध्यापर्व २८।४—

तं वै राजा सद्गुरुत्संहार्या

अवारुपुर्विदुर वयवत्।

पूजापूर्वं प्रतिगृहाजमीठम्

ततोऽप्युच्छद्भूतरायं मपुत्रम्॥

आविष्यक २०।१—

यदाऽवसां नन्दने कामहर्षी

संदनसराणाप्रयुत शतानाम्।

किं कारणं कलंपुग्रामान्।

हिता च तं दमुचामन्पर्वः॥

वे इसोक स्वरूपा उपनिषद्वारिके कल्पोंसे मिलते-
शुकते हैं। उनमें नीचे किस्मे इसोक महाभारतके ही होकर
रामायणके जैसे ही हैं—

आदिपर्व १८६ । २—

कृष्ण दीर्घेण कुलेन चैव
शीलेन वित्तेन च यौवनेन ।
समिद्धर्षा मदवेगमिन्ना
मत्ता यथा ईमवताग्नेन्द्राः ॥

आदिपर्व १८६ । १२—

तैयैव पार्थः पृथुवाहस्ते
वीरो यस्मै चैव महानुभावो ।
तो द्रौपदीं प्रियं तदा स्म सर्वे
कन्दर्दर्शकाणामिद्वात् बभूवः ॥

(३) रामायण और महाभारतमें वहा भारी भेद भावोंको
इटिसे है। इस इटिसे विचार करनेमें सबसे पहली बात जो
मनमें आती है यह है कि वहाँ गमायण आदर्शकी इटि
(Idealistic point of view) से लिखी गई है, वहाँ
महाभारत वास्तविक उत्तराधिक इटि (Realistic point
of view) से लिखी गई प्रतीत होती है। इस भेदका
कारण कुछ ही रहा हो, इमारा उससे वहाँ कोई सम्बन्ध
नहीं है। इसमें यहाँ यही विवादाज्ञा है कि पह भेद दोनों
ग्रन्थोंमें वर्तमान है। उहले रामायणको जीजिये। रामायण-
की सारी कथायें उसके मुख्य पात्रोंका चरित्र आदर्शकी
इटिसे ही लिखा गया है। वालि-वध जैसी एक दो घटनाओं-
को छोड़कर, जो कुछ-कुछ मनमें लटकती है, प्रायः सारे
ग्रन्थमें यही प्रथम वरावर किया गया है कि उसके नायक-
के पहको सर्वथा निर्देश विलक्षणा काबे और उसके विपक्षको
सर्वथा सद्गोप ।

महाभारतमें यह बात नहीं है। उसकी कथा ऐसी
नहीं दीखती जैसी आने किसी भर्मेशालको सामने रखकर
लिखी गयी हो। उसके कौरव और पात्रवत दोनों वर्णोंमें भल्के
और तुरे पात्र हैं, रामायणमें आहु-प्रेमको आदर्श रखता है,
तो महाभारतका सारा आधार आत्मदोषपर है। द्रौपदीके
पाँच पति, कुल्लीको छोड़कर अवस्थामें कर्वकी उत्पत्ति, स्वयं
युधिष्ठिर, धृतराष्ट्र आदिकी नियोगसे डलति, द्रोघ, भीम
और कर्णका अन्याय या छलसे वज्र,—हृत्युदि अनेकानेक

बातें हमारी इटिकी पुष्टि करती हैं। द्रौपदीके बीचहरकी
ही बात जीजिये। भीम, द्रोघ-जैसे धीर और धर्मात्मा एक
सीके प्रति भरी सभामें किये गये घोर अपमानको कुपचाप सह
जेते हैं। यावद् यावद्वदका एक साधारण सत्याग्रही भी
ऐसा नहीं कर सकता। वह अपने जीवन-द्वानसे भी एक
जीकी रक्षा करेगा।

इस भेदके मूलमें भी बास्तवमें उपर्युक्त पहला भेद ही
है। रामायण वास्तवमें राम+धर्म है। वह एक व्यक्तिके
ही गुणगत करनेके लिये किसी शर्ती ही नहीं है। रामको द्वादश
इसके और पात्रोंमें उठनी सजीवता तथा व्यक्तिगत रोचकता
नहीं है। और तो और, असमय-जैसे विशिष्ट पात्रके
विषयमें ही अधिक सजीवता नहीं दिखायी देती। उनके
जीवनकी घटनाएँ, उनका व्यक्तिगत जीवन सब कुछ
अनश्वकारमें किया है। उमिका-जैसी जी-रक या सुमिका-
जैसी माता मानों कभी मुखसे बोलती ही नहीं।

इसके विषद् महाभारत किसी एक व्यक्तिकी गुणगता
नहीं है। उसमें वह कहना भी सुरिकत हो जाता है कि
उसका सर्वप्रथम पात्र कौन है। उसके अनेकानेक पात्र,
भीम, कुल्ली, गान्धारी, व्यास, कृष्ण, युधिष्ठिर, दुर्योधन,
कर्ण आदि विश्वकूल सजीव मातृम होते हैं। इम उनके
जीवनकी घटनाओंके साथ-साथ उनके भवके भावोंको भी
स्थान-स्थानपर प्रत्यक्ष देखते हैं। वहाँतक कि उन सबका
पृथक् पृथक् जीववर्चरित लिखा जा सकता है।

(४) रामायण और महाभारतमें एक भेद यह भी है।
संस्कृतके प्राचीन प्रथमोंमें महाभारतके पात्रोंका विस्तार
उत्तरोत्तर मिलता है उसना रामायणके पात्रोंका नहीं।
वैदिक-संहिताओं तथा वाङ्मयोत्तरमें विचित्रवीर्यके पुत्र
धतराष्ट्र या परीचितके पुत्र अनमेष्य आदिका वर्णन मिलता है।
रामायणके विशिष्ट पात्रोंका उत्तरोत्तर ऐसे प्राचीन
प्रथमोंमें कहाँ नहीं मिलता। पाणिनिकी अष्टाच्यायीको ही
जीजिये; उसमें वासुदेव, अर्जुन, युधिष्ठिर आदि
महाभारतीय नामोंका तो उत्तरोत्तर है, पर रामायणीय पात्रका
कोई उत्तरोत्तर नहीं मिलता।

पर ऐसा गलत होता है कि सभीके गुणवत्तेके साथ-
साथ महाभारतके मुख्यवत्तेमें रामायणका भाव जागता

गया। उसों-ज्यों हम आगे बढ़ते हैं रामायणका प्रभाव तथा प्रचार बढ़ता हुआ दीखता है और महाभारतका बढ़ता हुआ।

जहाँ प्राचीन समयमें वैष्णव-धर्ममें कृष्णका प्राचाल्य दिखलायी देता है वहाँ विष्णुके समयमें रामका। विष्णुके

समयमें संस्कृत नाटक आदि वित्तने महाभारतीय कथाओं-को सेक्टर लिखे गये उससे कहाँ अधिक रामायणके आवार-पर। आजकल भी जितना प्रचार तुलसी-रामायणका है उसना सूरसागरका नहीं। शब्द यहाँ भी इस भेदका कारण यही है कि रामायण आदर्शवादको सेक्टर लिखी गयी है।

रामायणकी प्राचीनता



जल्ल कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि रामायणकी रचना महाभारतके बादकी है, यद्यपि निरपेहतापूर्वक ग्रन्थोंका अध्ययन करनेपर इस सम्यतामें इडके अमिरिक अन्य कोई भी आवार नहीं ठहरता। जिमप्रकार भगवान् रामका काल कौरव-कालमें लात्में वर्ष पहलेका है उसी प्रकार रामायणकी रचना भी है। रामायणमें जिस मर्यादापूर्ण सत्त्वमयी सम्यताका वर्णन है, महाभारतमें ऐसा नहीं है, इसीसे पता जगता है कि रामायण-कालसे महाभारत-कालकी सम्यताका आवर्ण बहुत नीचा था। गुरुकृत कांगड़ोंके प्रमिद् अध्ययनशील औरुत रामदेवजीने लिखा है—‘धर्मय एवं आत्मिक तथा प्राकृतिक सब प्रकारकी उच्छितियोंसे परिपूर्ण रामायणके संक्षिप्त इतिहासको वर्णनकर तथा उसके पांचोंके एक शीर्षकातके इतिहासको छोड़कर शोकमय दृश्यके साथ महाभारतके समयका यत्क्रियित् इतिहास लिखना पदता है। श्रीरामचन्द्रजीके पवित्र आचरणके प्रतिकृत युधिष्ठिरके जूँड़ा खेलने आदि कर्मोंका, ज्ञानप्रवाद भरतादिके आनु-स्नेहके प्रतिकृत युधिष्ठिरके प्रति भीमके अपमानसूचक शब्दोंका, महाराज दशरथको प्रजाके सम्मुख सांताको कैकेयीहारा उपदित्तनीके बाल देनेपर प्रजाका एक साथ चिह्न डाना ‘यिक् त्वः दशः यमः तथा एतरात्रूकी राजसभामें द्वौपदीकी दुर्दया होनेपर भी भीम, द्वोक्षादि शब्दोंका कुछ भी न कर सकना, कुटिला दाती मन्त्रयरण की अपमान भरतके लिये अमङ्ग और महाराजी द्वौपदीकी दुर्दशामें दुर्योधन-कर्त्तादिकी प्रमङ्गता, सनी साधी सीताका पतिव्रत और श्रीरामचन्द्रजीका पतीव्रत, उमके प्रतिकृत सत्त्वकी और कुन्तीके कानीन उत्त्रोंकी उपस्थिति और पारदादादि-

के बहुविकास, श्रीरामचन्द्रजीके बनकी ओर चक्रनेपर आदोप्यावान्मियोंका उनके साथ वनगमनके लिये प्रवद और युधिष्ठिरके दो बार हस्तिनापुरसे निकाले जानेपर सिवा योहेसे नगर-निवासियोंके पारदर्शकोंके दुःखके साथ बुहाम-सुहा दुःख प्रकट करनेमें अन्योंका और तोंके भवसे मौनावलभवन, श्रीराम और भरतका महाद् राज्य-जैसे पदार्थको धर्मयाजनके सम्मुख तुष्ट समझना और उसे एकका दूसरेके हाथमें कैफना और दुर्योधनका यह कहना कि ‘मृत्यु नैव दस्यति दिनं दुर्दन केगत’ युद्धसेव्ये रावणके बायक हो जानेपर श्रीरामचन्द्रजीका यह कहना कि धायकाका वध करना धर्मविद्व त्रै और राज्य जौहे दृष्ट भीम और द्वोक्षका वध, रथमें उसरे दृष्ट वर्षका वध, सामें दृष्ट एष्ट्यु, शिखंडी और द्वौपदीके पाँचोंके उत्त्रोंका आह्वाकुबोगच वीरनाभिमानी अवधामाहारा वध। कहाँ-तक गिनायें। यह सब घटनाएँ हैं जो स्पष्टरूपसे रामायण और महाभारतके समयकी अवस्थाओंको प्रकट करती हैं। यद्यपि महाभारतके समय रामायणके समयकी भौति ही अथवा उससे भी अधिक आयांवर्तनमें यद्यपि भर्ती हुई भी और रामायणके समयके बारोंकी भौति भीम, द्वोक्ष, अनुनादि कतिपय योद्धा आयथाका, पाण्डुपताका, वास्तवाका, अन्तर्जनाका, भगवादादि आप्नेवाङ्कोंकी विद्या भी आनते थे, अचरती नाम अग्नि-वाम वज्रपर बहता था, आर्द्धवर्नका दृष्टवा सारी पूर्वीपर बहा हुआ था; परन्तु रामायणके समयकी अपेक्षा इस समय धर्मका बहुत हाल था।……।

इस अवतारकमें यह लिखा हो आता है कि श्रीरामका और रामायणका काल बहुत ही प्राचीन, शिखाप्रद तथा गीरकमय है। एक रामायण-प्रेमी

मानसकी महत्ता

(लेठे विद्यार्थी श्रीमदेशप्रसादजी मित्र 'इस्मिकर')

वह वीरता और कौरताकी कलोलिनी माँहि बहा चुके थे ।
करिके करतव्य-पिताकर वह अधोंकी नदीमें नहा चुके थे ॥

न रच्यो हुतो 'मानस' जी 'तुलसी' तो ही पापने धर्म गहा चुके थे ।
कुलकी मरजाद मिटा चुके थे अह कूर कपूत कहा चुके थे ॥१॥

हरि-भक्ति-पर्योगिभि भक्तमण्डली कैसेके आजुलों हाँ बहती ।
रहती उफनानी सुमायपकी सरि कैसेके लोकनमें महनी ॥

पति-प्रेमकी माधवी-मञ्जु-लता केहिये कही आकृथकी लहती ।
न भयो हुतो जी 'तुलसी' तो कहा 'हुलसी' हुलसी-हुलसी रहनी ॥२॥

तुम स्किल्से सुखनाय लियो खुति-सास्त्र-सर्टोरहके बनकौ ।
तुम कालके गालते वारि लियो ध्रुव-धर्मके कर्मके मीननकौ ॥

इतते उतने चुनि 'मानस' में तुम राम चरित्रकनूकन कौ ।
'तुलसी' तुम झाँझरी नैयामें आइबो दीनी नहाँ जलकौ-तनकौ ॥३॥

जब आर्यताकी तरनी कौ चहो जु अनार्यता-अमृथि लीलिखेकौ ।
हरिकी हरिता कौ रहीम-रहीमता चाहयो पतालमें कीलिखेकौ ॥

कलमाकी भुजगिनि ओडम-जरा पर चाहो गरबु उगीलिखेकौ ।
रच्यो ता छनमै 'तुलसी' तुमने यह 'चक्र' मिचिलिखे-खीलिखेकौ ॥४॥

चहकाय दियो 'तुलसी' तुमने चिरी-आत्माकी-तपतारतकी ।
उफनाय दियो 'तुलसी' तुमने रसकी नदी धोर-तृष्णारतकी ॥

चिकसाय दियो 'तुलसी' तुमने उरकी कलिका इस-आरतकी ।
पनपाय दियो 'तुलसी' तुमने सुचि-सम्यता-बहुरी भारतकी ॥५॥

कुहुकाय दियो रमनीयताकी पिकी 'मानस'की सुरभीमैंह प्यारी ।
प्रगटायके 'मानस'की नभसी उमडाय दियो रस निर्झरी-न्यारी ॥

निज 'मानस' की रथि-रस्मिन ते विगसाय दियो भली-भाव कियारी ।
करि 'मानस' की सुशा-दृष्टि-धनी लहराय दियो कविता-कुलवारी ॥६॥

लहि 'सूर'की ओप-अनोखी कियो स्वविकास-प्रकासकी 'चन्द' नै न्यारे ।
उननै निज जोतिकी जालिनते बगरायो हजारन हाँपै 'सितारे' ॥

'पटबीजन'-जीगनोंकी न रही गनना तिनते जो भयो अधिकारे ।
पर धन्य ही 'मानस' के 'तुलसी' तुम 'सूर' की आँखिकी खोलनिहारे ॥७॥

कियो धोर मरस्थलमैं 'तुलसी' तुम नन्दन-कानन केर विकास ।
कियो धोर प्रलेकी विभावरीमैं 'तुलसी' तुम पूनोकी चम्द-प्रकास ॥

कियो चिंथकी छासीपै त् 'तुलसी' निज मानसकेर अनोखी मिठास ।
कियो सागर गागरमैं 'तुलसी' कियो राममैं रावनकेर उजास ॥८॥

'बलमीकि' नै बीज बयो जेहिकी तेहिमैं कियो अंकुर 'कालियदास' ।
'भद्रमूति' विभूति-मई करिके कवि 'सूर' कौं सौंपि चल्यो हरि-पास ॥

उननै तेहि सौंचि कियो दल-भषित परित पुष्पनते अनयास ।
कविताकी लताकी प्रफुल्ल कियो 'तुलसी' तुमनै ही जु परो विकास ॥९॥

वाल्मीकीय रामायणसे अवतारवादकी सिद्धि

(०२ उद्दरण और २४० श्लोक)

(लेखक—साहित्याचार्य पं० शीरुद्वारा मिट्टुलाळजी शासी, काल्य-बेदान्त-तीर्थ, शासी, एम०प०, एम०ओ०एल०)

नमोऽस्तु रामाय सलक्षणाय देव्यै च तस्यै जनकात्मजायै ।

नमोऽस्तु लेन्द्रयमानलेभ्यो नमोऽस्तु चन्द्रकेमक्षुद्रांगम्यः ॥

(मुद्रकाण्ड सर्ग १३ भंक ५७)

जिन छोरोंने आविक्षि शीरालमीक्षित रामायणको
नहीं पढ़ा है उनमें आविक्षित ऐसे हैं जिनकी कुदिमें यह
बात बैठा दी गयी है कि वाल्मीकिजी न तो शीरामचन्द्रजी-
को विष्णुका अवतार मानते हैं और न अवतार-वादके
अनुयायी ही हैं । ऐसे भूले-भटके छोरोंके हितार्थ तथा शीराम-
वाल्मीकि-मुनि-प्रशीत शीरामवर्षातिरिमें शीरामवतारके
भक्तोंकी अदाके संरक्षणार्थ, एवं तद्वारा स्वर्णीय
अन्तःकरणकी शुद्धिके प्रयोगसे यह लेख लिखा जाता है ।
इसमें यह सिद्ध किया जावेगा कि वा० रामायणके रचयिताने
अवतारवादको अत्यन्त स्पष्टरूपसे माना है और उनकी
दृष्टिमें राम साहान् विष्णुके अवतार ही थे ।

अवतारवादका लिङ्गान्तर शीराम्यमगवान्के लिङ्गोद्धरण
गीतोक्त वचनोंपर विर्यंतर है—

यदा यदा हि चर्मस्य म्लानिर्वन्ति भारत ।

अन्युत्यानमवर्मस्य तदाऽऽन्मानं शूद्राभ्यहन ॥

परिव्राणाय मातृना विनाशाय च दुष्कृताम् ।

चर्मसंस्थापनार्थाय संमवानि युगे युगे ॥

(शीराम्यमगवान्का, अन्याय ४ भंक ३-१)

—कि 'जब-जब प्राणिदंडे अन्युदय और निःखेदम्बके
साथ वर्णांशमाविकृप्त चर्मकी हानि और अधमेका डायान
होता है तब-तब मैं यामवारा अपने आपको डायान करता हूँ
और सम्मानगंगे लियत जनोंके परिवहण तथा पापकारियोंके
उन्मूलन एवं चर्मके सम्बन्ध स्थापनके प्रयोगोंसे मैं प्रयेक
युगमें प्रकट होता हूँ ।'

इस लिङ्गान्तरके अनुसार आर्यजाति प्रथीमकावसे यह
मानती जहाँ आ रही है कि यामवारा परिवाहन करनेवाले
सरकुमुखालक विष्णु भगवान् आयुरी सम्पत्तिका उच्छ्रेद और
दैवी सम्पत्तिका प्रसार करनेके लिये तद्वारुण समय उपलिप्त

होनेपर स्वयं तदुपयुक्त यामवारा अवतार होते हैं । ऐसे
अवतारोंकी संख्या बहु बहु, और वासिया असंख्य जाती रहती है ।

प्रस्तुत लेखमें यामन, कल्वप (कमठ), बराह, इरिय
इत्यादि अवतारोंका स्वयं उत्तरेत था । रामायणके शोकों-
द्वारा करके शीरामावतारका विशाय वर्णन करनेवाले शोकोंका
संग्रह किया जावेगा ।

विविध अवतारोंका प्राप्तस्त्रिक वर्णन

(१) यामनावतार—

अथ विष्णुमहेत्रा अदित्या समजायत ।

यामन रूपमास्थाय विरोचनिमुपागमत ॥१५॥

श्रीन पदानधि भैश्वर्या प्रविष्टा च नदिनीम ।

आत्रेय लोकोऽहोकामा मर्त्योऽकहित गत ॥१६॥

महेन्द्राय पुनः प्रादतिशय वर्तन्तेऽप्यसा ।

विनेवय स यज्ञेन्द्रायेन शक्तश्च पुनः ॥१७॥

तेनेव पूर्वप्राकान्त्र आश्रमः भग्नाश्रमः ।

मयापि भक्त्या तस्मैव वामनस्योपयुक्तये ॥१८॥

(वाल्मीकीय सर्ग ३-१)

[लाटकावध और मिथिकागमनकी कथाओंके मध्यमें
लिङ्गाभ्यमवर्णन की कथा है जिसमें विभासित्रिवी रामजीसे
जहते हैं कि] तब (अयोद्धे लेखकार्यमें नियुक्त होनेके पश्चात्)
महातेजस्ती विष्णु आवितिमें उपस्थुपे और यामवरूप धारण
करके विरोचन-पुत्र (इरिय)के पास आये ॥१५॥ तत्प्रवाल तीव्र
पद (श्रियवी) मार्गकर और [ममस] वृथिर्वाको प्रतिश्रु
(वान) रूपसे प्राप्त करके, [ठन तीन पदोंमें सब] शोकोंको
आकान्त करके, सब शोकोंके हितमें रम्य करनेवाले
शोकान्ता महातेजस्ती [यामवरूपवारा विष्णुभगवान्] वे
[अपने] वज्रमें विभिन्न विषमन (वर्णवन) करके, महेन्द्रको
पुनः दे दावा , [एवं] वृक्षोक्तको पुनर्वार इन्द्रके वज्रमें
पद लिया ॥१५-१६॥ इन्हीं (यामनभगवान्) से [वह] अमरों
दूर करनेवाला आश्रम पहले आकान्त (प्रतिश्रुत) था ।
उन्हीं यामनके भक्तिसे मैं भी (हमरका) [उपभोग] करता
हूँ ॥१७॥

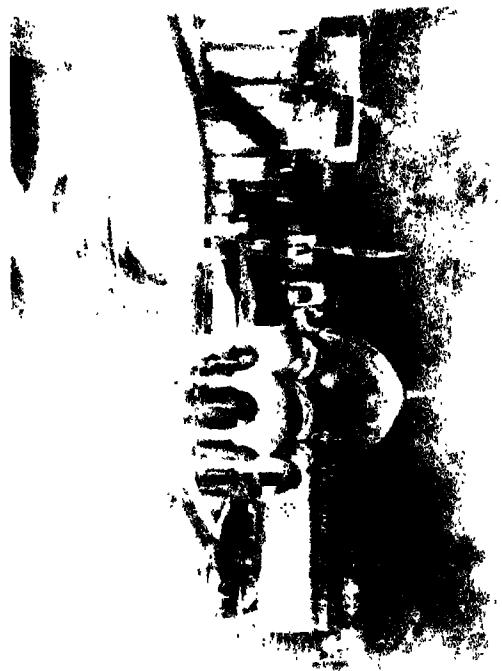
(३) फटिक-शिलाके सामनेका हथय (अ) कामतानाथ



(१) फटिक-शिला (२) जालकी दुण्ड (मन्दाकिनीका हथय)



(१) राम-लक्ष्मी (पूर्णवामी) (२) राम-दत्तात्रेय
उपर देवा हुमा मालन्



(३) लक्ष्मी-राम (४) लक्ष्मी-राम



आकर 'हु' कर (शब्द) किया। तब उन अप्रभेद (अर्थात् मन, वाची इत्यादि इन्द्रियोंसे परे एवं प्रत्यक्षादि प्रमाणोंके अविद्य) करिक महात्मा (अर्थात् परमात्मा) के हारा सभी सगरसुत रास्के देर (अर्थात् भस्म) कर दिये गये ॥ २६-३० ॥

३—कमठ (कछुपा)वतार[बालकारण सर्ग ४५]

[विजामिन्न मुनि रामजीसे गङ्गावतरण और सागरपूरण-की कथा कहकर गङ्गा पार करके उत्तरतीरस्थित विशाला-नगरीके राजवंशके सम्बन्धमें पूर्व-हृत्तान्त वर्णन करते हैं]—

पूर्व छतयुगे राम दिते: पुत्रः महाबलः ।
अदितेश्च महाभागा वीर्यवन्तः: मुच्चार्दिकाः ॥१५॥
ततस्तेऽनं नरव्यध बुद्धिरसीन्महात्मनाम् ।
अमरा विजयांश्च वर्थन स्यामां निरापदाः ॥१६॥

पहले हृत (सत्य) युगमें महाबली दैत्यों और परम धार्मिक देवताओंने सोचा कि हम किस प्रकार से ब्रह्म-मरण-रहित हों ॥ १५-१६ ॥

तेऽनं चिन्तयतां तत्र बुद्धिरासीद्विषयिताम् ।
भीरुदेवमयनं हृत्वा रस प्राप्त्याप तत्र वै ॥१७॥
ततो निश्चित्य मयनं योक्त्वं हृत्वा च वासुकिम् ।
मन्यानं मन्दरं हृत्वा मन्दनुरभितीत्वः ॥१८॥

उन्होंने विचारते हुए यह मत स्थिर किया कि हम समुद्र मयकर उसमें [से] रसको प्राप्त करेंगे ॥ १७ ॥ तब [समुद्रके] मयनेका निश्चय करके, और वासुकि (नारा) की मन्यनरम्भ (जिसे भाषामें डेविटा वा गेल्डी कहते हैं) पूर्व मन्दर (पर्वत) को मयानी बनाकर उन अपारिमित बदलावोंने [समुद्रको] मया ॥ १८ ॥

[तब वासुकि सर्वके शिर महाविद्यको डगडगने लगे, जिसमें सब जगत् दृष्ट होने लगा। तब तो देवताओंग शंख महादेवजीके पास शरणकी हस्तासे आकर 'आहि-आहि' पुक्करे और सुनि करने लगे। देवताओंकी सुनिको सुनकर देवदेवकर प्रभु (महादेवजी) प्रकट हो गये तब शङ्ख-पङ्क-धर हरि (विष्णु भगवान्)ने शूद्रवाणी लहरमें मुस्तकाकर कहा कि देवताओंके मयनेपर जो बहु यहले प्राप्त हुईं वह हे सुरभेद, आपका [भाग] है, अतः आप इस विद्यको अप्रत्यारूपने प्रहव रहें। यह कहकर भगवान् अन्तर्हित हो गये और शिवजीने देवताओंका भय देखकर

और शार्ङ्गधर भगवान्ना वास्त्र सुनकर देर हासाहव विष्णुको असृतके समान प्रहव किया। देवताओंको छोड़कर शिवजी भी चक्षते बने। देवासुरोंने फिर मयना प्रारम्भ किया। तब तो मयनीरूप मन्दराचक्र पातालमें प्रविष्ट हो गया अतः देवोंने गन्धवीं समेत पर्वतके उदारवके लिये मधुसूदन (भगवान् विष्णु) की सुनि की। (१९-२१)

इति श्रुता हृषीकेशः कामठं रूपवास्थितः ॥२०॥

पर्वतं पृष्ठतः हृत्वा शिवं तत्रोदधौ हरिः ।

पर्वतांग्रं तु लोकात्मा हस्तेनाकम्बु केशवः ॥२०॥

देवानां मध्यतः स्थित्वा ममन्यं पुरुषोत्तमः ॥२१॥

वह [स्तुति] सुनकर हृषीकेश हरि (विष्णु भगवान्) ने कछुपका रूप धारण किया और पर्वतके पीठपर छरके वही समुद्रमें शब्दन किया। फिर पर्वतके अप्रभागको लोकात्मा पुरुषोत्तम केशवने हाथसे यामकर देवोंके मन्यमें स्थित होकर मयना प्रारम्भ किया ॥ २६-३१ ॥ सहज वर्णके पश्चात् [इस समुद्रमन्थनसे] धन्वन्तरि (वैष्ण) ६०करों अप्सराएँ और उनकी असंख्य परिवारिकाएँ, बहसकी कल्पा (सुरा), उर्च्चवान्ना: नामक हय, कौस्तुभ रथ और असृत निकले (३१—३४) ॥

(४)—विष्णुका 'मोहिनी' (मायातनु) को धारण करना—

[बालकारण सर्ग ४२—(कोड४०-४१) इस असृतके लिये देवताओंने देवताओंसे श्रिलोकाओंको कैपानेवाला महाघोर दुष्ट किया। सभी असूर राजसोंसे मिलकर एक (जोर) हो गये ।]

यदा श्रीं भूं मर्दं तदा विष्णुपर्वतः ।

अमृते संडहरत् तृणं मायामास्याय मोहिनीम् ॥४२॥

यं गताभिनुक्तं विष्णुपश्चां पुरुषोत्तमम् ।

संपिण्डास्ते तदा युद्धं विष्णुना प्रभविष्णुना ॥४३॥

वह सब कुछ वयको प्राप्त हो गया तब से महावशवान् विष्णु (भगवान्) मोहिनी (अर्थात् काम और मोहको उत्पत्त करनेवाली) माया [के शरीर]को धारण करके शीघ्र ही उम असृतको खे गये ॥ ४२ ॥ जो कोहै [सुर वा असूर] अविद्याती पुरुषोत्तम विष्णुके सामने [असृतप्रहवकी इच्छासे] गये वे सब महासामर्थ्यवान् विष्णुके हारा युद्धमें एस ढाके गये ॥ ४३ ॥

[देवताओंने दैत्योंको दुरी मार मारा । इसप्रकारसे इन्ह, दैत्योंका नाश करके, राज्य पाकर सुवित हो, अपि- चारणों समेत जोकोंका शासन करने लगे (४४-४५)]

५—एशुरामावतार [बालकाण्ड सर्ग ७६ श्लोक १६—२४]—रामावतारके प्रसङ्गमें देखिये ।

६—वराहावतार [अयोध्याकाण्ड सर्ग १०]—
स वराहरतनो भूत्वा प्रोजहार वसुन्धराम् ॥ ३ ॥
तब उस [विमूर्ति विराट्‌के विष्ववामक अंश] ने वराह होकर वसुन्धरा (एषीयी) का उडार किया ॥ ३ ॥
[अरण्य ३। २४ श्रीरामावतारके प्रसङ्गमें एवं युद्धकाण्ड ११७। १३ आर्यस्तवमें देखिये ।]

७—कृष्णावतार [बाल ४०। २, अरण्य ०३। २३]—कपिल और रामके अवतारोंके प्रसङ्गमें तथा युद्धकाण्ड ११७। १५] आर्यस्तवमें देखिये ।

८—विष्णुका हयग्रीव-हनन—
तत्र पञ्चजने हत्या हयग्रीवं च दानवम् ।
आजहार ततश्चकं शदूयं च पुण्योत्तमः ॥ (४४२।२६)
वहाँ [अर्थात् उस चक्रवान् नामक पर्वतमें] पञ्चजन और हयग्रीव दानवको भारकर पुण्योत्तम (विष्णु भगवान्) ने यहाँसे [विश्वकर्मा-निर्मित सहस्रारोंवाला] चक्र और शङ्ख के लिया ॥ २६॥

९—श्रीरामावतारका विशद वर्णन—
अब हम श्रीरामावतारके सूचक और विविध स्थलोंसे संगृहीत प्रायः समस्त रामायण-वाक्योंका समावेश यहाँ पूर्णपरके क्रमसे करते हैं ।

१—(बालकाण्ड सर्ग १५)—
तो देवाः सगन्धानः सिद्धांश्च परमर्थयः ।
भावप्रतिप्रहार्थं वै समेवता यथाविधिः ॥ ५ ॥
ताः समेत यथान्याथं तस्मिन्सदसि देवताः ।
अब्रुद्वैत्योकर्त्तरं ग्रहणं वचनं महत् ॥ ५ ॥
भगवंस्तवप्रसादेन रावणो नाम राक्षसः ।
सर्वान् नो बाधते वीर्यच्छासितुं तं न शक्नुः ॥ ६ ॥
ऋषीन् वक्षान् सगन्धान् ब्राह्मणान् सुरास्तदा ।
अतिकामति दुर्धर्षो वरदानेन मोहितः ॥ ७ ॥

तन्महतो भयं तस्माद् राक्षसाद् धारदर्शनात् ।
वधार्थं तस्य भगवन्नुपायं कर्तुमहसि ॥ १७ ॥
एवमुक्तः सुरैः सर्वश्चिन्तयित्वा ततोऽन्तवीत् ।
इन्तायं विदितस्तस्य वचोपायो दुरात्मनः ॥ १८ ॥
तेन गन्धवेयक्षाणां देवतानां च रक्षसाम् ।
अवध्योऽस्मीति वागुका तथेत्युक्तं च तन्मया ॥ १९ ॥
नाऽकीर्तयदवशानात् तद्रक्षो मानुषांस्तदा ।
तस्मात्स मानुषाद्वद्यो मृत्युर्नाऽन्योऽस्य विद्यते ॥ २० ॥
पतञ्जल्या प्रियं वान्यं ब्रह्मणा समुदाहतम् ।
देवा महर्षयः सर्वे प्रह्लादेऽभवस्तदा ॥ २१ ॥
पतस्मिन्नन्तरे विष्णुरूपयातो महाश्रुतिः ।
शङ्खचक्रगदापाणिः पीतवासा जगत्पतिः ॥ २२ ॥
वैनतेयं समाख्य भास्करस्तोयदं यथा ।
तस्माटकंग्रूरो वन्द्यमानः सुरोत्तमैः ॥ २३ ॥
ब्रह्मणा च समागत्य तत्र तस्यौ समाहितः ।
तमनुवन् सुराः सर्वे समभिष्ठूय संनताः ॥ २४ ॥
त्वा नियोक्याश्वहं विष्णो लोकानां हितकाम्यथा ।
राजो दशात्यस्य त्वमयोध्याविष्टोर्विभो ॥ २५ ॥
घर्षजस्य वदान्यस्य महर्षिसमतेजसः ।
अस्य भार्यातु निनृषु हीश्रीकीर्त्युपमातु च ॥ २० ॥
विष्णो पुत्रत्वमागच्छ छत्राऽप्तमाने चतुर्विघ्नम् ।
तत्र त्वं मानुषो भूत्वा प्रदृढं लोककण्टकम् ॥ २१ ॥
अवध्यं देवतैर्विष्णों समरे जहि रावणम् ।
स हि देवान् सगन्धान् सिद्धांश्च ऋग्विष्टमान् ॥ २२ ॥
राज्ञासो रावणो मूर्खो वीर्योद्रिकेण बाधते ।
ऋषयश्च ततस्तेन गन्धविष्टसरसस्तथा ॥ २३ ॥
क्रीडन्तो नन्दनवने रैद्रेण विनिपातिताः ।
वधार्थं वयमावतास्तस्य वै मुनिभिः सह ॥ २४ ॥
सिद्धगन्धवेयक्षाश्च ततस्त्वां शरणं गताः ।
त्वं गतिः परमा देव सर्वेषां नः परंतप ॥ २५ ॥
वधाय देवशत्रूणां नृणां लोके मनः कुरु ।
एवं स्तुतस्तु देवेशो विष्णुखिदशपुणवः ॥ २६ ॥
पितामहपुरोगांस्तान् सर्वलोकनमस्तुतः ।
अत्रवीत् विदशान् सर्वान् समेतान् वर्षसंहितान् ॥ २७ ॥
भयं त्यजत भद्रं वौ हितार्थं युधि रावणम् ।
सपुत्रैषीत्रं सामागत्यं समन्वितावान्धकम् ॥ २८ ॥

हता कूरं दुराधरं देवर्णिणं भयावहम् ।
दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ॥२९॥
बत्स्यामि भानुषे लोके पालयन् पृथिवीमिमाम् ।
पतं दत्ता वरं देवो देवानां विष्णुरात्मवान् ॥ ३० ॥
भानुषे चिन्तयामास जन्मभूमिमयात्मनः ।
ततः पश्चपलाशाक्षः इत्याऽऽत्मानं चतुर्विषम् ॥ ३१ ॥
पितरं रोचयामास तदा दशरथं नृपम् ॥
ततो देवर्णिणवर्णाः सल्लाः साम्सरोगणाः ।
स्तुतिर्निर्दिव्यरूपामित्युद्गुर्मुखसुन्दनम् ॥ ३२ ॥
दमुद्दतं रावणमुप्रतेजसं
प्रवृद्धदर्पं त्रिदशेश्वरदिष्म् ।
विरावणं साधुतपत्विकष्टकं
तपत्विनामुद्धरं तं भयावहम् ॥ ३३ ॥
तमेव हत्या सबलं सबन्धवं
विरावणं रावणमुप्रौढम् ।
स्वलोकमागच्छ गतज्वरश्चिरं
सुरेन्द्रगुप्तं गतदोषकलमपम् ॥ ३४ ॥

[चतुर्वर्षमहारा दशरथकी पुत्रेषि प्रारम्भ हो गयी ।]
वहाँ गन्धवर्णों समेत देव, सिद्ध और परमर्ष लोग भाव-
आहूके विभिन्न विविश्वास एकत्रित होकर लोकलक्ष्मा
ब्रह्माजीसे [निष्ठविहित] महस्वपूर्वे बधन बोले ॥२॥ हे
भगवन् ! आपके प्रसाद (वरदान) से [प्राप्त] बधासे राष्ट्रण
वामक राष्ट्रस हम सबको लीकित कर रहा है, उसका शासन
करनेके लिये [हम] समर्थ नहीं हैं ॥३॥वरदानसे
मोहित हुआ [वह] महावली, अचिर्यों, गन्धवर्णों समेत
वर्षों, भाष्यवर्णों [और] अतुर्दोषोंको अतिक्रमण कर रहा है ॥४॥
.....अतः उस घोरदर्शन राक्षससे हमें बड़ा भय है । हे
भगवन् ! उसके वर्षोंके लिये आपको दृष्टाय करना चाहिए ॥५॥

तब सब देवताओंसे इसप्रकार निवेदित [ब्रह्माजी]
विचार करके बोले कि वह को उस दुराध्माके बधका उपाय
विदित हो गया ॥६॥ उसने वह बात कही थी (अर्थात्
वर माँगा था) कि मैं गन्धवर्णों, वर्षों, देवताओं और
राहस्योंके अध्यक्ष हूँ (अर्थात् इससे न मारा जाऊँ) । मैंने
[मी] तब कह दिया था कि ये सा ही हो ॥ ७ ॥
उस राहस्ये उस समय तुरं जानकर ममुष्योंका नाम नहीं

बिला था । इसलिये वह मनुष्यसे मारा जा सकता है,
अन्य उसका खलुजनक नहीं है ॥८ ॥ ब्रह्माजीके कहे हुए
इस प्रिय वाक्यको सुनकर उस समय वे सब देव [और]
महर्षि वहे प्रसन्न हुए ॥९॥

इसी अवसरसे अत्यन्त प्रकारात्मक ज्ञानपति विष्णु
[भगवान्] शङ्ख, चक्र, गदा हाथमें लिये, पीताम्बर और
तपे हुए सुवर्णोंके केश (बालवन्द) धारण किये हुए तथा
ओह देवताओंसे नमस्कृत होते हुए गल्वपर चढ़कर आये
जैसे सूर्य (भगवान्) मेघपर ॥१०-११॥ और वहाँ ब्रह्माजीसे
मिळाकर (अथवा ब्रह्माजीसे भी नमस्कृत होते हुए
वहाँ आकर) एकाग्र-चित्त [हो] लैठ गये । प्रणाम करते
हुए सब देवताओंने सम्बद्ध स्तुति करके उनसे कहा ॥१२॥

हे विष्णो ! लोकोंकी हितकामनासे [अवतार लेनेके
लिये] इम सुर्वे नियुक्त करेंगे । हे भ्याषक विष्णो ! तुम इस
धर्मज्ञ, महावानी, महर्षियोंके समान तेजस्वी और
अद्योत्त्वाके अधिष्ठित दशरथकी ही (लज्जा) श्री (लक्ष्मी)
[और] कीर्ति (रक्षात्) के सदृश तीन भार्याओंमें,
अपनेको चार प्रकारका करके, पुत्ररूपसे अवतार लो ।
हे विष्णो ! वहाँ तुम मनुष्य होकर देवताओंसे अवध्य
विशाल लोककर्पकरूप रावणको युद्धमें मारो । लक्ष्मीकि
वह मूर्त्त राहस रावण बधकी अधिकतामें गन्धवर्णों समेत
देवों, सिद्धों और ओह अधियोंको पीदित कर रहा है । इस
(वज्राचिक्षयके) कारणमें उस रोद्ध (अर्थात् भर्ते-जुरंके
विचारसे रहित रावण) ने अधियोंको तथा [स्वर्गस्थ]
नन्दनशब्दमें क्रीड़ा करने हुए गन्धवर्णों और अप्सराओंको
विनिपातित किया है । निवाय उसके बध [के निमित्त
प्रायंना करने] के लिये [ही] इमलोग मुनियोंके साथ
आये हैं ॥ १२-२४ ॥ और इसीसे सिद्ध गन्धवर्ण [तथा]
वह तुग्हारे रावणको प्राप्त हुए हैं । हे शकुं के तपानेवाले
देव ! तुम इम सबकी परम-नगति हो (अर्थात् इमारी *
अन्तिम दौर तुम्हाँ तक है) ॥२५॥ [अतः] देवताओंके
शमुष्योंके बधके लिये मनुष्योंके लोकमें [अवतार लेनेका]
मन (अर्थात् संकल्प) करो । देवताओंमें ओह और
सर्वलोकोंमें नमस्कार किये गये देवेश विष्णु इसप्रकारसे
स्तुति किये जानेपर ब्रह्माप्रसुत एकत्रित हुए धर्मसहित
सब देवताओंसे लोके ॥ २६-२७ ॥ तुम लोग अद्यको
प्याग दो, मुम्हारा मङ्गल हो, तुग्हारे दितके लिये मैं देवों
और अधियोंके भयवायक महावली कूर रावणको पुर्वों,

पौत्रों, अमात्यों, मन्त्रियों और शाहै-बन्धुओंके समेत शुद्धमें मारकर व्यारह सहज वर्चोंतक हस पृथिवीको पालन करता हुआ मनुष्योंको जिवास कर्हेगा ॥ २८-३० ॥

इसप्रकार शास्त्रान् विष्णुदेवने देवोंको वर देकर मनुष्योंको अपनी [घोग्य] जन्मभूमिका विचार किया । तदनन्तर [उन] कमलपत्र-जैसे नवनोंकाले [विष्णु भगवान्] ने अपने आपको जार प्रकारका करके राजा दशरथको उस समय [अपना] पिता [बनाना] चाहा । तब रुद्र और अस्तराखोंके गणों समेत देवों, ऋचियों और गन्धोंवने दिव्यरूप सुतियोंसे भ्रुसूदन (भगवान् विष्णु) को प्रसन्न किया ॥ ३०-३२ ॥ —

उस उद्भूत, उम्र तेजवाले, महाभिमानी, हनुमान्, [त्रिलोकीको] रुक्मानेवाले, तपस्त्वियोंके भयवायक, साधुओं और तपस्त्वियोंके उस प्रसिद्ध रावणरूप कण्टकको [समूल] उन्मूलन करो ॥ ३३ ॥ हे देवधैर्य (उपेन्द्र), उस [त्रिलोकीको] रुक्मानेवाले, उम्र पौरुषवाले रावणको सेना और वाह्यशों समेत मारकर ही चिरकालके लिये मन्त्रापरहित [होते हुए तुम अपने हारा] राजा किये गये अपने [वैकुण्ठनामक] स्वर्गज्ञोंको [जो रागादि] दोष [रूप] कर्मणों (मलों) से रहित [है] आओ ॥ ३४ ॥
२—(बालकाण्ड संग्रह ६) —

तनो नारायणो विष्णुर्नियुक्तः सुरसत्तमैः ।
जानक्षपि सुरानेवं स्तरणं वचनमवैत् ॥ १ ॥
उपायः को वधे तस्य राक्षसाधिपतेः सुरः ।
यमहं तं समास्थाय निहन्यामृषिकप्टकम् ॥ २ ॥
एवमुक्तः सुराः सर्वे प्रत्यूचुर्विष्णुमव्ययम् ।
मानुषं रूपमस्थाय रावण जाहे संयुगे ॥ ३ ॥
स हि तेषै तपस्तीव्रं दीर्घकालमरिन्दमः ।
येन तुष्टेभवद्वच्छा लोकहस्तोकपूर्वजः ॥ ४ ॥
संतुष्टः प्रददौ तस्मै राक्षसाय वरं प्रसुः ।
नानाविधेभ्यो मूतेभ्यो भयं नान्यत्र मानुषात् ॥ ५ ॥
अवशातः पुरा तेन वरदाने हि मानवाः ।
एवं पितामहात् तस्माद् वरदानेन गर्वितः ॥ ६ ॥
अस्तादयति लोकांस्तीन् द्विवद्वच्छाम्युपकर्त्ति ।
तस्मात् तस्य वदो दृष्टे मानुषेभ्यः परतप ॥ ७ ॥
इतेदद्वच्छनं श्रुत्वा सुराणां विष्णुरात्मवान् ।
पितरं रोक्ष्यमास तदा दशरथं नृपम् ॥ ८ ॥

स वाष्पित्रुते नृपतितस्मिन् काळे महावृत्तिः ।
अयजत् पुत्रियामिषि पुत्रेसुररिसूदनः ॥ ९ ॥
स हृत्वा निश्चयं विष्णुरामन्त्र च पितामहम् ।
अन्तर्धीनं गतो देवैः पूज्यमानो महार्विषि ॥ १० ॥

ततो वै यजमानस्य पावकादुलप्रभम् ।
प्रादुर्भूतं महद्भूतं महावीर्यं महावलम् ॥ ११ ॥
दिव्यपायसंपूर्णा पात्री पक्षीमिव त्रियाम् ।
प्रगृह विपुलं दोम्यां स्वयं मायामयीमिव ॥ १२ ॥
समवेश्यात्रनीद्वाक्यमिदं दशरथं नृपम् ।
प्राजापत्यं नरं विद्धि मायिहाम्यागतं नृप ॥ १३ ॥

इदं तु नृपशार्दूलं पायसं देवनिर्मितम् ।
प्रजापतं गृहण त्वं कन्यमारोग्यवर्धनम् ॥ १४ ॥
भायाणामनुरूपाणामदनतिते प्रथच्छ वै ।
तासु त्वं लस्यसे पुत्रान् यदर्थं गजसे नृप ॥ १५ ॥
सोऽन्तःपुरं प्रविश्यैव कौसल्यामिदमज्ञवीत् ।
पायसं प्रतिगृहीत्वा पुत्रीयं त्विदमात्मनः ॥ १६ ॥
कौसल्यायै नरपतिः पायसार्वं ददौ तदा ।
वर्धादर्थं ददौ चापि सुमित्रायै नराधिकः ॥ १७ ॥
कैकेयै चाऽवशिष्टार्थं ददौ पुत्रार्थकारणात् ।
प्रददौ चाऽवशिष्टार्थं पायसस्यामृतोमम् ॥ १८ ॥
अनुचिन्त्य सुमित्रायै पुनरेव महामतिः ।
एवं तासां ददौ राजा भायाणां पायसं पृथक् ॥ १९ ॥
ततस्तु ताः प्रादय तमुत्तमाखियो
महीपतेरुत्तमपायसं पृथक् ।
हुताशनादित्यसमानतेजसो-

५चिरेण गर्भान् प्रतिरोदिरे तदा ॥ २१ ॥

तब धेष्ठ देवोंसे निषुक्त (प्रार्थित वा आश्रस) हुए नारायण विष्णु (भगवान्) [रावणके वधके उपायको] जानते हुए भी देवताओंसे [उनके अविनीतपन और वज्ञा शुद्धानेके अभिग्राहसे, अज्ञकी नाई] इसप्रकार मधुर वचन बोले ॥ १ ॥ हे देवताओं, उस राष्ट्रसोंके अधिष्ठितेके वधमें कौनसा उपाय है जिसका आश्रय लेकर मैं उस अस्तियोंके कण्टकको मारूँ ॥ २ ॥

ऐसे कहे गये सब देवता दोगोने अविनाशी (अविज्ञारी) विष्णु (भगवान्) को उत्तर दिया कि तुम मानवरूपको वारक वधके शुद्धमें रावणको मारो ॥ ३ ॥ क्योंकि

उस शत्रु-दमनकारी [रावण] ने दोवेंकालतक कठिन तप किया था जिससे लोकोंके पूर्वज [तथा] ज्ञोक्तसदा ब्रह्माजी ग्रसल हुए ॥५॥ सन्तुष्ट [होकर] प्रभु (ब्रह्माजी) ने उस राष्ट्रसको भनुप्पसे भिन्न अन्य नामा प्रकारके प्राणियोंसे भय न होनेका बर दिया ॥६॥ क्योंकि वरदानमें उसने पहले ही मनुष्योंको तुच्छ कहा था । इसप्रकार उन पितामह (ब्रह्माजी) से [पाये हुए] वरदानसे गर्वित [हुआ बह] तीन लोकोंको पीड़ित कर रहा है और जिन्होंको भी उठाना चेता है । इस कारबासे हे शत्रुको तपानेवाले (भगवन्), उसका बध भनुप्पोंसे [होना] निश्चित है ॥६-७॥

आत्मवान् विष्णुने देवोंके इस वचनको सुनकर राजा दशरथको उस समय रिता [बनाना] आदा ॥८॥ उस समय (जब भगवान्की अवतार लेनेकी इच्छा हुई तब) उन भगवान्का शत्रुओंका नाश करनेवाले अप्रत्र राजा (दशरथ) ने भी पुत्र-प्राप्तिकी इच्छा करते हुए पुत्रेष्टिका यजन किया ॥९॥ वह विष्णु (भगवान्) [अवतारविषयक] निश्चय करके और रितामह (ब्रह्माजी) को आमन्त्रितकर (अर्थात् मैं अचला हूँ ऐसा कहकर) देवों [और] महर्षियोंसे पूजित होते हुए अन्तर्धान हो गये ॥१०॥

तब (अर्थात् विष्णुके अन्तर्धानके अनन्तर ही) वज्रमान (दशरथ) के [यज्ञसम्बन्धी] अग्निसे अतुल प्रभावाता (अर्थात् विजली इत्यादिके समान जिसके तेजके सामने आँखें न ठहर सके ऐसा जाग्रत्यामान) महाबल-बीर्यादा विशाक्त प्राणी प्रकट हुआ [यह विशाक्त प्राणी 'एको विष्णुमहद्भूतम्' के अनुसार स्वयं विष्णु ही ये जो अनन्तर्हित होकर अपने तेजसे सम्पूर्ण पायसको जिये हुए होमाग्निसे प्रकट हुए, क्योंकि भगवान्का तेज धारण करनेकी शक्ति अन्यमें नहीं है—टीकाकार श्रीरामकृत तिक्तकव्याख्या] ॥११॥..... दिव्य पायस (दीर्घ) से पूर्ण विशाक्त मायामयी पाणीको, मानो प्रिया पनीको, दोनों बाहुओंसे स्वयं ग्रहण करके ॥१२॥ राजा दशरथको देसकर यह बास्तव बोला कि हे राजन्, तुम सुझे यहाँ आया हुआ प्रजापतिका [भेजा हुआ—प्रजापति (प्रजापतक) विष्णुसे डन्याल हुआ—अर्थात् विष्णुरूप] पुरुष जानो ॥१३॥ इ राजासिंह, तुम इस धन्य (प्रश्न) [और] आरोग्य-बद्धक [तथा] देव (प्रजापति) हारा निश्चित [पूर्व] प्रजा (सन्तान) के देवेवाले पायसको ग्रहण करो ॥१४॥ [और अपनी] अनुरूप (योग्य) भार्याओंको दे दो कि वे

ला दें । उनमें तुम उत्रोंको प्राप करोगे जिसके लिये हे राजन् ! यह कर रहे हो ॥२०॥

वह (राजा) अन्तःपुरमें जाकर कौसल्यासे ही यह बोले कि यह अपनेको पुत्र देनेवाला पायस लो ॥२१॥ तदनन्तर राजाने आधा पायस कौसल्याको दे दिया । और सुमित्राको भी राजाने [शोष] आधेमेंसे आधा (अर्थात् पूर्व पायसका अनुरूपंश) दे दिया और कैकेयीको अवशिष्ट (अनुरूपंश) का आधा (अर्थात् सबका अनुरूपंश) पुत्र-प्रयोजनके कारबासे दिया और उनः महापति (राजा) ने सुमित्राको [कैकेयीकी इपेका बढ़ी होने (?) और कौसल्याकी अपेका छोटी होनेका] विचार करके पायसका असूततुल्य अवशिष्टार्थ (अन्य अनुरूपंशका कैकेयीसे बचा हुआ अर्ध अर्थात् समस्तका अष्टमांश जो बच रहा था) दे दाता । इसप्रकार राजाने उन भार्याओंको पृथक् पृथक् [विभाग करके] पायस दे दिया । [कालिदास (रघुवंश सर्ग १० श्लोक २४-२७) इत्यादि अन्य लोगोंके मतानुमार चक्रविभाग इसप्रकार हुआ कि कौसल्याको जो आधा भाग दिया, उसीके आधेका आधा सुमित्राको विलाया अर्थात् समस्त चरके आठ भागोंमेंसे प्रथम चार भागोंका अनुरूपंश वा समस्तका अष्टमांश सुमित्राको दिलानेपर कौशल्याके पास आधेका तीन चाँथाई वा समस्तका $\frac{3}{8}$ रहा । इसी प्रकार कैकेयीको दूसरा आधा दिया जिसमेंसे (आधेका) आधा उनः सुमित्राको दिलानेपर कैकेयीके पास भी समस्त चरका $\frac{3}{8}$ रहा । इस-प्रकार सुमित्राके दोनों पुत्र प्रत्येक अष्टमांश ये और राम तथा भरत प्रत्येक $\frac{3}{8}$ ॥ २७ २८ ॥ तब राजाकी [अग्नि और आदित्यके समान तेजवाली] उन उसम जिन्होंने उत्तम पायसको पृथक् पृथक् साकर शीघ्र ही अग्नि और आदित्यके समान तेजवाले गर्भोंको भारण किया ॥१५॥

३ (बालकारण सर्ग १७)—

पुत्रतं तु गते विष्णो गङ्गमस्य भहरमनः ।
उवाच देवताः सर्वाः स्वयंभूर्भगवनिदम् ॥ १ ॥
सत्यसन्धस्य वीरस्य सर्वेषां नो हितैविष्णः ।
विष्णोः सहायान् विलिनः मृज्यं कामकृष्णः ॥ २ ॥
मायाविद्य शूरांश वायुवेगसमावज्वे ।
नयशान् नुदिसाप्नान् विष्णुतुल्यपरमकमान् ॥ ३ ॥

अप्सरःसु च मुख्यासु गन्धर्वाणां तनूनु च ।
यश्चप्रवाक्न्यासु ऋक्षविद्यावरीषु च ॥ ५ ॥
किंतरीणां च गावेषु वानरीणां तनूनु च ॥
सृजधं हरिरुपेण पुत्रांसुल्यपरक्रमात् ॥ ६ ॥
ते तथोक्ता भगवता तत्पतिश्रुत्य शासनम् ।
जनयामासुरेण ते पुत्रान् वानररूपिणः ॥ ८ ॥
ऋषयश्च महात्मानः सिद्धविद्यावरोगाः ।
चारणाश्च सुतान् वीरान् ससृजुर्वन्धनारिणः ॥ ९ ॥
ते सृष्टा बहुसाहस्रा दशग्रीवबोधाताः ॥ १० ॥
अप्रमेयबला वीरा विक्रान्ताः कामस्वपिणः ।
ते गजाच्छत्संकाशा वपुप्मनो महाबलाः ॥ ११ ॥
ऋक्षवानरगोपुच्छाः क्षिप्रमेवभिजहिरे ।
यस्य देवस्य यदूपं क्षेत्रे यश्च पराक्रमः ॥ १२ ॥
अजायत समं तेन तस्य तस्य पृथक् पृथक् ॥

विष्णुके उस महात्मा राजाका पुत्रव आप करनेपर
स्वयम्भू भगवान् (ब्रह्माजी) सब देवताओंसे यह बोधे
॥ १ ॥ [हे देवो ! तुम लोग] सत्य प्रतिज्ञावाले, वीर और
इस सबका द्वित चाहनेवाले विष्णु (भगवान्) के—बड़ी,
इच्छानुभाव रूप धारण करनेवाले, मायाके जाननेवाले, शूर,
वेगमें वायुके समान वेगवाले, नीति जाननेवाले, बुद्धिशाली
और विष्णुसदृश पराक्रमी—सहायकोंको उत्पन्न करो ॥ २-३ ॥
.....मुख्य अप्सराओंमें, गल्धर्व-स्त्रियोंके शरीरोंमें, यहों
और भागोंकी कन्याओंमें, जहाँ और विष्णुरोंकी लियोंमें,
और किन्नरियोंके शरीरोंमें तथा वानरियोंके शरीरोंमें [तुम
लोग अपने अपने] समान पराक्रमवाले पुत्रोंको वानररूपसे
.....उत्पन्न करो ॥ ४-६ ॥ भगवान् (ब्रह्माजी) से
ऐसा कहे गये उन [देव] लोगोंने उस शासन (आशा) को
अक्षीकार करके इस (आगे कहे हुए) प्रकारसे वानररूपी
पुत्रोंको उत्पन्न किया ॥ ८ ॥ ऋषियों, महात्माओं, सिद्धों,
विद्यावरों, नारों और चारणोंने बनमें विचरनेवाले वीर
पुत्रोंको उत्पन्न किया ॥ ९ ॥ऐसे अनेकों सहज
[वानर] सुने गये [जो] रावणके बधमें उत्थान [होंगे]
॥ १० ॥ वे अनित बद्धवाले, वीर, विक्रमशाली, इच्छानुसार
रूप धारण करनेवाले, हस्ती तथा पर्वतके सदृश [आकार-
वाले], सुन्दर, महाबली, शूर, वानर और गोपुरक
(गोवाहूङ्ग-आतिके बन्दर) शीघ्र ही उत्पन्न हुए । जिस
[जिस] देवेका जो रूप, वेष और जो पराक्रम है उसीके
तुल्य पृथक् पृथक् उस उस [के उत्तर] का [भी रूपादि]
उत्पन्न हुआ ॥ १८-२० ॥

४—(वालकाण्ड सर्ग १८)—
ततो यज्ञे समाप्ते तु क्रतूनां षट् समत्ययुः ।
ततश्च द्वादशो मासे चैत्रे नवमिके तिथौ ॥ १ ॥
नक्षत्रेऽदितिदैवतये स्तोत्रसंस्थेषु पञ्चसु ।
ग्रेहु एक्टे लग्ने वाक्पताविन्दुना सद् ॥ २ ॥
प्रोष्टमाने जगत्तां र्सवलोकनमस्तृतम् ।
कौसल्याऽजनयद्रामं दिव्यलक्षणसंयुतम् ॥ ३ ॥
विष्णोर्धं महाभागं पुत्रैकवाक्नन्दनम् ।
लोहितांश्च महाबाहुं रक्षां दुन्दुर्मिस्वनम् ॥ ४ ॥
कौसल्या शुश्रुते तेन पुत्रेणाऽभिर्तेजसा ।
यथा दरेण देवानामदितिर्वृपाणिना ॥ ५ ॥
भरतो नाम कैकेय्यां जज्ञे सत्यपराक्रमः ।
साक्षाद्विष्णोश्चतुर्भागः सर्वे समुदितोगुणः ॥ ६ ॥
अथ लक्षणशत्रुघ्नीं सुमित्राऽजनयत् सुतौ ।
वीरौ सर्वांखुशाहां विष्णोर्धसमन्वितौ ॥ ७ ॥
पुष्पे जातसु भरतो मीनलघ्नं प्रसन्नवीः ।
सांपं जातौ तु सांमित्री कुलीरेऽन्मुदिते रवौ ॥ ८ ॥

न व यज्ञके समाप्त होनेपर कः अनु अतीत हो गये ।
उस समय बारहवें मासमें, चैत्र [शुक्र] नवमी तिथिको,
अदिति देवतावाले (पुनर्वसु) नक्षत्रमें, पाँच ग्रहों (सूर्य, मंगल,
शनि, शूद्रस्ति और शुक्र) के ऊँची राशियों (क्रमशः भेष,
मकर, तुला, एक और भीन) में स्थित होनेपर, तथा
चन्द्रमासहित शूद्रस्तिके कर्कंट लग्नोदयमें वरतमान होते
हुए—कौसल्याने दिव्य लक्षणोंसे संयुक्त, जगत्के नाथ,
सब लोकोंसे नमस्तृत (अथवा—सर्वज्ञोकरूप अर्थात्
विराट्-रूप और नमस्कार किये गये—हस्तसे यह सूचित होता
है कि रामके प्रकट होनेके समय माताने उनके विराट्-रूपका
दर्शन किया और उससे विस्मित होकर नमस्कार किया
था जिससे तकाल ही भगवान् वालकका रूप धारण
कर किया—तिज्जन्मास्या । इसी भावको गोस्वामी
तुलसीदासजीने—

“मप ग्रग्ट कृपाला दीनदयाला कौसल्यहितकारी ,
हर्षित महातारी मुनिमनहारी अद्भुतरूप निहारी ॥”
“कह दुँहुकर जोरी अस्तुति तोरी केहि बिधि कर्हौं अनन्ता ॥”
“सुनि दचन सुजाना रोदन ठाना हुइ बालक सुरभूषा ॥”
—इत्यादि छन्दोंमें दर्शाया है ।), विष्णुके अर्चांशं, राजा औरों-

वाले, दुन्धुमिके समान शब्दवाले, इच्छाकुर्बंशको आनन्दित करनेवाले पुत्र रामको जना ॥ ८-११ ॥ उस अभित तेजवाले पुत्रसे कौसल्या ऐसी शोभित हुई जैसे देवताओंमें अह इन्द्रसे अद्विति ॥ १२ ॥ सत्य पराक्रमवाला और साकार विष्णुके सब गुणोंसे युक्त चतुर्थंश भरत नाम [पुत्र] कैकेयीमें उपज हुआ ॥ १३ ॥ तदनन्तर सुमित्राने विष्णुके अर्थांशसे संयुक्त, वीर और सब अच्छोंमें कुशल लक्ष्मण और शत्रुघ्न [नामक दो] पुत्रोंको जना ॥ १४ ॥ निर्मल बुद्धिवाले भरत पुष्ट (नवज) और मीन लग्नमें उपज हुए । तथा सुमित्राके दोनों (यमज) पुत्र सार्व (अर्थात् अर्थलेपा नहन्त्र) में तथा कर्क-लग्नमें सूर्य (की उच्च स्थिति) के समय उपज हुए ॥ १५ ॥

[इसप्रकार वाल्मीकि-रामायणमें जन्म-पत्रका विशद वर्णन होना इस बातका सूचक है कि उस प्राचीनकालमें भी कलित ज्योतिषका माहात्म्य ऐसा ही सत्य माना जाता था जैसा वर्तमान कालमें है । तिळकन्यास्यकार श्रीराम वर्माने 'विष्णोरधर्मः'का अर्थ यह किया है कि विष्णु भगवान् तो शत्रु, वक्त और अनन्तसे विशिष्ट है परन्तु राममें शत्रु-चक्रविका अभाव होनेसे विष्णुके कुछ कम आधे राम थे, (पहले भी अन्योंके मतसे तिळककार कौसल्याके भागमें आये हुए पावसको $\frac{3}{4}$ बता चुके हैं)। इसीप्रकार भरतके सन्दर्भमें 'चतुर्भागः' का अर्थ आधे पायसके चतुर्थंश न्यून अर्थान् समस्त चर्ले $\frac{3}{4}$ के अनुसार 'चतुर्भागे भागश्चतुर्भागः' किया है । तथा सुमित्राके पुत्रोंके सन्दर्भमें 'विष्णोरधर्मसमन्वितः' का अर्थ 'रामके एक भागसे युक्त' करते हुए होनेमेंसे प्रत्येकके 'पायसका अटमांश' होनेका समर्थन किया है । परन्तु विश्वामी-तानीके हारा ही राम और भरत विष्णुके $\frac{3}{4}$, $\frac{3}{4}$ तथा लक्ष्मण और शत्रुघ्न $\frac{1}{4}$, $\frac{1}{4}$ अंशवालार सिद्ध किये जा सकते हैं—तो इसकी अपेक्षा अधिक सरसतासे पूर्व कथनानुसार राम तो $\frac{3}{4}$ और लक्ष्मण $\frac{1}{4}$ तथा भरत, शत्रुघ्न प्रत्येक $\frac{1}{4}$ अंशवालार यहाँ भी मिल होते हैं । यथा 'विष्णोरधर्मः' का अर्थ रामके सन्दर्भमें स्पष्ट $\frac{1}{2}$ अंश है । भरतके सन्दर्भमें 'साक्षाद्विष्णोशतुर्भागः' का अर्थ होगा साक्षाद्विष्णु (अर्थात् राम,^१) का चतुर्थांश (अर्थात् $\frac{1}{4}$) । पूर्व लक्ष्मण और शत्रुघ्नके सन्दर्भमें 'विष्णोरधर्मसमन्वितः' के अर्थमें 'अर्धे' शब्दकी आवृत्ति करके विष्णु (राम) के आधे (अर्थात् समस्तके $\frac{1}{2}$) लक्ष्मण और 'तदुर्धे' (उसके

आधे अर्थात् समस्तके $\frac{1}{2}$) शत्रुघ्न । सर्वथा वाल्मीकि रामायणसे सिद्ध है कि वारों भाई विष्णुके (न्यूनाधिक और रूपोंमें) अवतार थे ।]

५—(बालकाण्ड सर्ग २६)—

[इस लेखमें सर्वप्रथम बामनावतारके सन्दर्भमें इसी सर्गके जो श्लोक (२-६ और १६-२२) उद्धृत किये जा चुके हैं उनके अन्तमें विश्वामित्रजी रामसे कह चुके हैं कि इस सिद्धांशमें पहले बामनावतारधारी विष्णु तपस्या करके सिद्ध हो चुके थे उसीमें आजकल मैं रहता हूँ । अर्थात् वह सिद्धांशम प्रथम किलगु भगवान् (बामन) का और अनन्तर उनकी भक्तिमे मेरा है । उसीके आगे कहते हैं—]

एनमाश्रममायान्ति राघसा विश्वकारिणः ।
अत्र ते पुरुषव्याप्र हन्तव्या दुष्टचारिणः ॥२३॥
अद्य गच्छामहे राम सिद्धाश्रममनुत्तमम् ।
तदाश्रमपदं तत तवाऽग्नेतद् यथा मम ॥२४॥

इस आधममें [यज्ञ-] विश्वकारी राघस आते हैं । हे पुरुषोत्तम ! यहाँ उन दुराचारियोंको मारना चाहिये ॥२३॥ [कारण यह है कि] हे राम ! आज हम उस मर्वसुग्रद आधम-को चल रहे हैं, वह आधम जैसे भेरा है वैसे ही हे तात ! तुम्हारा भी है ॥ २४ ॥

[इसपर तिळककारने भी उक्तिही लिखा है कि 'हे तात, तदेतद अशपद यथा मम स्वरूपं तदा तवाः । विष्ववनारत्वाऽर्थं ग्रन्दाऽभिमन्विषः ।' अर्थात् हे तात ! इस आधम श्याममें जैसी ममता मेरी है वैसे ही तुम्हारी भी है; क्योंकि हुम उन्हीं विष्णुके अवतार हो जिन्होंने बामनरूपसे इस आधमको अपनाया था—यह गूढार्थ है ।]

[यदि यह कहा जाय कि अदोष्याके राज्यके अन्तर्गत होनेसे ही विश्वाश्रममें रामकी भी ममता विश्वामित्रको इष्ट थी विससे उसे अपवित्र करनेवाले राज्यसोंका विजया करना राज्यके किये आवश्यक था । तो उत्तर यह है कि अन्यती द्वारा होनेसे दशरथ भवे ही इस सुदूरवर्ती सिद्धांशमें भी स्वामी हो सकते हों परन्तु राम जो अन्नीतक लक्ष्मण भी नहीं हुए थे और जो बनवासकी अवस्थामें वाक्यवच्च इत्यादि समस्त अवसरोंपर सदा यही कहा करते थे कि राम और पृथिवी भरतकी है और मैं केवल उनके आदेशमें वर्तमान

होकर दुर्दौँका शासन और शिष्टोंका रखा करता हूँ, वे किसी
युक्तिसे अभीतक सिद्धाध्यमके 'स्वामी' नहीं उहर सकते। अतः
विष्ववतारके ही सम्बन्धसे विश्वामित्रके वास्त्वकी सङ्कलि-
तग सकती है, आवश्या नहीं।]

[यह कथा असङ्गत वा प्रकृति भी नहीं हो सकती,
क्योंकि यह पिछले सर्ग २८ के निम्नलिखित प्रश्नका
उत्तरमात्र है—

सर्व मे शेस मगवन् कस्याप्रमपर्द त्विदम् ।

समप्राप्ता यत्र ते पापा ब्रह्माणा दुष्टचारिणः ॥२०॥

हे भगवन्! मुझसे सब कहो कि यह आधमस्थान किसका
है (और वह कौन स्थल है) जहाँ वे देवदिवानाशक
दुराचारी पापी जाते हैं ॥२०॥]

६—(वाल्काण्ड सर्ग ७६)—

तेजोर्भित्वैर्यत्वाज्जामदग्न्यो जटीकृतः ।

रामं कमलपत्राक्षं मन्दमन्दमुवाच ह ॥१२॥

अक्षयं मधुहन्तारं जानामि त्वां सुरेश्वरम् ।

घनुषोऽस्य परामर्शात् स्वस्ति तेऽस्तु परन्तप ॥१३॥

पते सुरगणाः सर्वे निरीक्षन्ते समागताः ।

त्वामप्रतिमकर्णांगमप्रतिद्वन्द्वमहवे ॥१४॥

न चेय तव काकुत्स्य त्रीडा भवितुमर्हति ।

त्वया त्रैलोक्यनाथेन यदहं विमुक्षीकृतः ॥१५॥

रामं दाशरथिं रामो जामदग्न्यः प्रपूजितः ।

ततः प्रदक्षिणीकृत्य जगामात्मगतिं प्रभुः ॥१६॥

[अग्रने वैष्णव] तेजों [के राममें जाकर प्रविष्ट होने] के
कारण बौर्यरहित हो जानेसे जदसमान हुए अमदग्नि-पुत्र
(परशुराम), कमलपत्र-सदृश नेत्रोंवाले रामसे धोरे-धोरे बोले
॥१२॥……… हे शत्रुओंको तपानेवाले (विष्णुरूप राम),
इस धनुषके परामर्श (अर्थ, आकर्षण, इत्यादि) के
कारणसे तुम्हें, यथ न हो सकनेवाले, (आदि और अन्तसे
रहित), तथा मधु (नामक राज्ञ) को मारनेवाले, पूर्व
देवोंके परम स्वामी (अर्थात् साक्षात् विष्णु भगवान् ही)
जान गया हूँ। तुम्हें स्वति (मङ्गलकी प्राप्ति) हो ॥१३॥
अनुपम कर्म करनेवाले, एवं युद्धमें प्रतियोद्धारहित
तुम्हों ये सब आये हुए देवताय देख रहे हैं ॥१४॥
हे कङ्कलस्थवरोद्धव (राम), और जो त्रिकोकीके नाथ
होते हुए तुमने मुझे आकर्ष कर दिया, वह तुम्हारे द्विष्टे

कोई जाजाकी बात नहीं होनी चाहिये [तिक्काकारकी व्याक्याके
अनुसार—इससे परशुरामने अपनेको भगवान्का अंश होना
और रामजीका पूर्ण भगवद्वतार होना सूचित किया। भाव
यह है कि अपनेसे भिन्न द्वारा अशक्त किये जानेमें जज्ञा
होती है न कि अपने आप मात्राके द्वारा वैसा हो जानेमें।
इस व्यवहारका प्रयोग यह प्रतीत होता है कि दूरा करके
दशरथादिके प्रति स्वरूपका बोधन हो तथा राममें पूर्ण
तेज आ आये। क्योंकि यदि विष्णुका तेज किसी अंशमें
भी अन्यत्र (विश्वरा) रहता तो राज्ञका वज्र दुष्कर होता।
इसीकिये (मूलमें) पूर्ण ही कहा जा चुका है कि राज्ञका
वज्र जाहनेवाले देव-नामधारीय लोग देखने आये थे] ॥१५॥
……… तब जमदग्नि-सुत [परशुरा] राम प्रभु [स्वयं भी]
प्रशूचित होते हुए दशरथ-पुत्र रामकी प्रदक्षिणा करके अपने
स्थानको छले गये ॥१६॥

[यहाँ इलोक १६ में यदि रामके विष्णु होने और
परशुरामके भगवदंश होने, और इसी कारणसे परशुराम
(रूप भगवान्के अंश) का पराजय पूर्ण भगवान्की
जज्ञा का हेतु होनेमें रामायणकारका अभिप्राय न माना
जावेगा तो यह बाक्य ही असंगत हो जावेगा क्योंकि दूसरेके
कारण दूसरेको जज्ञा होना विलक्षण डलटी बात है।
अतः इलोक १६ के अभिप्रायसे और इलोक २४ में आये
हुए 'प्रभु' पदसे परशुरामका अंशवतार होना सूचित
होता है। और परशुराम विष्णु होकर भी उक्तिय रामकी
प्रदक्षिणा करते हैं इससे भी श्रीरामजी विष्णुके अवसार
सिद्ध होते हैं ।]

७—(अयोध्याकाण्ड सर्ग १)—

सर्व एव तु त्सेष्टाश्वतारः पुरुषर्वमाः ।

स्वशरीराद्विनिर्वृताश्वतार इव बाहवः ॥१५॥

तेषामपि महातेजा रामो रतिकरः पितुः ।

स्वयम्भूरिव भूतानी वभूव गुणवत्तरः ॥१६॥

स हि देवैरुदीर्घस्य रावणस्य वधार्थीमः ।

अर्थितो मानुषे लोके जज्ञे विष्णुः सनातनः ॥१७॥

[श्रीरामके यौवराज्याभिषेककी भूमिकासे अयोध्याकाण्ड-
का प्रारम्भ करते हुए, और तासम्बन्धमें भरत और शत्रुघ्नके
अपने मातुज (मामा) अश्वपतिके यहाँ जाकर तृष्ण विताका
स्मरण करने, और विताके मुओंका स्मरण करनेकी सूचना
देकर, श्रीरामायणकार लिखते हैं कि—]

उन (राजा दशरथ) को पुरुषोंमें श्रेष्ठ सब चारों ही [उत्तर] ऐसे प्रिय थे जैसे [विल्लुको] अपने शरीरसे निकली हुई चारों भुजाएँ ॥४॥ उन (चारों) में भी महातेजस्वी राम पिताको [विरोध] आनन्ददायक (अत्यन्त अभिमत) और [सब] प्राणियोंके मन्त्रमें स्वयम् (ब्रह्माची) के समान अधिक गुणवान् थे ॥५॥ क्योंकि वे दर्पणर्ण रावणका वध चाहनेवाले देवोंसे प्रार्थित हुए सनातन विष्णु [ये जो] मनुष्यलोकमें जन्मे थे ॥६॥

८-(अयोध्याकाण्ड सर्ग ५४)

विरस्य खलु काकुस्त्य पदयाम्यहमुपागतम् ।

कुंतं तव मया चैव विवासनमकारणम् ॥२७॥

[प्रयागमें भरद्वाज मुनि रामसे कहते हैं कि—] दे काकुस्त्य ! मैं निश्चयहीं तुम्हें बहुत कालके पश्चात् [मेरे] समीप आया हुआ देख रहा हूं और मैं तुम्हारे अकारण विवासन (धरसे निकाल दिये जानेकी वार्ता) को सुन चुका हूं ॥२१॥

[तिक्ककारने 'बहुत कालके पश्चात् आया हुआ देखने'के दो अर्थ निकाले हैं (१) कदाचित् राम पहले भी प्रयागमें भरद्वाजका दर्शन कर चुके थे (२) अथवा पूर्वकल्पके रामावतारमें उनका प्रयागागमन मनमें रखते हुए भरद्वाजने ऐसा कहा हो । हमारी इहमें वार्षीकि रामायणकारको रामका इस जन्ममें कभी पहले प्रयाग आकर भरद्वाजमुनिके दर्शन करना अभीष्ट नहीं हो सकता, क्योंकि रामायण वा किसी अन्य प्रन्थमें ऐसे पूर्व प्रयागमनका कोई प्रयोगन अथवा सहेतमात्र भी नहीं लिख रहा है । अतः रामायण-कारने 'मर्यादन्तमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्' के सिद्धान्तानुसार पूर्वकल्पसंबन्धी रामावतारके प्रयागागमनको चिरजीवी भरद्वाजमुनिके मुखसे स्वीकार कराया है यही पहले शेष रह जाता है । अतः यह प्रसङ्ग भी रामायणकारके माने हुए अवतारवादका पोषक है ।]

९-(अयोध्याकाण्ड सर्ग १०) -

इतां लोकसमुत्पत्तिं लोकनाथं निरोधमे ॥२॥

[जागलिके वचनोंसे रामको कुद हुआ जानकर वसिष्ठ-जी रामको समझते हैं—] हे लोकोंके नाथ ! इस जगदुपरिस्ति-को मुझसे समझो [यहाँ 'लोकनाथ' का अर्थ 'प्रजा-जनोंके स्वामी' वा 'राजा' नहीं हो सकता क्योंकि (१) दशरथके भर जानेपर पिता-माताके आदेशानुसार राजा तो भरत होते, न कि राम, (२) 'लोक-समुत्पत्तिम्' पदमें 'लोक' का अर्थ 'भूमुद्वःस्वरादि' है वही 'लोकनाथ' में भी इस

लिखे होना चाहिये कि जो 'लोकोंका नाथ है उसे लोकों-की उत्पत्ति जाननी चाहिये' (३) तिक्ककल्पाक्याकारने भी लिखा है—'लोकनायेत्यनेन लोकनायावतारत्वं ध्वनयति' कि 'लोकनाथ' पदसे जगतपति (विष्णु) का अवतार होना सूचित करते हैं] ॥२॥

१०—(अरण्यकाण्ड सर्ग २७) —

सरसिंहशिरसा तेन मृत्युलोभात् प्रसादितः ॥६॥

[सर रामसे जड़ने आ रहा था । परन्तु त्रिशिराने जो विभीषणके समान ही राजसोंके स्वभावसे विपरीत भगवद्गुरु या आकर सरसे कहा कि तुम न जाओ किन्तु मुझे भेजो । यदि मुझसे राम मारे गये तो हर्षपूर्वक अनस्थान (पञ्चवटी) को लौट जाना, परन्तु यदि मैं मारा गया तो तब तुम रामसे जड़ने जाना । इस प्रकार] —

उस त्रिशिराने [अन्तकालमें भगवत्तत्वको पहचानकर उन्हींके हाथसे] मृत्यु पानेके लोभसे सरको प्रसन्न कर लिया [और सरसे आशा पाकर घोड़ोंवाले सुन्दर रथपर त्रिशिरा यद्यमें श्रीरामजीके अभिमुख गया] ॥६-७॥ [इसी सर्गके छोड़ १० में रामके लिये 'अप्रमेयात्मा' विरोधक भी दिया गया है ।]

११—(अरण्यकाण्ड सर्ग ३१) —

[अक्षयन नामक राजसने लक्ष्मीमें जाकर रावणसे जनस्थानस्थित सरादि राजसोंके रामद्वारा मारे जाने और अपने वध आनेकी वार्ता कही जिसपर रावणने जनस्थानमें जाकर राम-लक्ष्मणको मार ढालनेका निश्चय किया । अक्षयनने निश्चिलित शब्दोंमें यह वात असम्भव बतलायी और रामके मृत्युका एकमात्र उपाय सीताहरण और लक्ष्मीगुप्त व बतलाकर रावणको सीतापाशरणके लिये प्रेरित किया—]

असाध्यः कुपितो रामो विक्रमण महायशः ।

आपगायास्तु पूर्णाया वेंगं परिहंस्यते ॥२३॥

सताराप्रहनक्षयं न भद्रचाप्यवसादयत् ।

असौ रामस्तु संदर्न्ती श्रीमानभृद्दंस्महीम् ॥२४॥

मित्रा वेंगं समुद्रस्य लोकानामावयंद्विभुः ।

वेंगं वापि समुद्रस्य वायुं वा विधमेष्टरैः ॥२५॥

संहयं वा पुनर्लोकान् निक्रमेण महायशः ।

शकः श्रेष्ठः स पुरुषः स्तु तु पुनरपि प्रजाः ॥२६॥

न हि रामो दशग्रीव शश्ये जेतुं रणे त्वया ।

रक्षसां वापि लोकेन स्वर्गः पापज्ञैरिन ॥२७॥

कल्याण

[चित्रकृत]



सीनाकर्ण रथोई



हनमान-धारा (२)



भगत मणिदेव



कल्याण



अद्वृतम् (चित्रकूट)



सप्तसन्तानम् भगवत् २ (चित्रकूट)



गुरुद्वारा आदर्शम् (प्रयाग)

न तं वधमह मन्ये सैवेनासुरैरपि ।
अयं तस्य वचोपायस्तन्मैकमनः श्रुणु ॥२८॥

महावशवाले राम कुपित होनेपर [यमके समान संहारमें प्रदृढ़ होते हुए किसीके भी] विकल्पसे [व्रजादि-हारा भी] रोके नहीं जा सकते । किन्तु वे वाच-वर्णा करके पूर्ण नवीका बेग रोक सकते हैं [इससे कृष्ण-वज्रभद्रके अवतारको सूचित किया] ॥२३॥ यह श्री-संस्कृत राम ताराओं, प्रहाँ और नक्षत्रों समेत आकाशको भी अवसर (शून्य) कर सकते हैं [जैसा त्रिविक्रम (बामन) अवतारमें किया था, तथा जबमें हृदयनेसे] कष्टावस्थाको प्राप्त होती हुई पृथ्वीका भी उद्धरण कर सकते हैं [जैसा यशवराहा-वतारमें किया था] ॥२४॥ विमु (व्यापक भगवन् राम) समुद्रकी वेता (मर्यादा) को तोड़फोड़कर [सब] खोकों-को दुबो सकते हैं [जैसा प्रलयकालमें करते हैं] अथवा अपने वायोंसे समुद्रके वेगको [इससे समुद्रपर सेतु बाँधनेका सामर्थ्य विस्तार है] वा वायु [इत्यादि पञ्चभूतों] को उड़ा सकते हैं ॥२५॥ अथवा महावशवाले वह ऐष्ट पुरुष अपने विकल्पसे लोकोंका संहार करके फिरसे प्रजाओंका सुखन करनेको भी समर्थ है [यहाँ-'युनः' और 'अपि'— 'फिर भी'—इन शब्दोंसे सर्वमृष्टि और संहारके व्यापार उन्हींके अधीन बतलाये हैं । इससे यह व्यङ्ग्य होता है कि वे जगन्को स्थिति और संहारके कर्ता हैं । अकल्पन राष्ट्रसको भी ऐसा ज्ञान भगवन्हीकी कृपासे था] ॥२६॥ हे वशीर्ण ! तुम वा राष्ट्रसोंका समूह भी रामको रथमें नहीं जीत सकते जैसे पारी लोग स्वर्गको नहीं [पा सकते] ॥२७॥ सब देवासुर [मिथ्कर] भी उनका वध नहीं कर सकते [पेता] मैं मानता हूँ [अर्थात् तुम्हारे पुत्रहारा जीते हुए इन्हें भी यदि तुम्हारा साहाय्य करें तो भी राम-को नहीं जीत सकते] उनके वधका [केवल] यह (आगे कहा हुआ) उपाय है इसलिये मेरे [मुख] से [तुम] प्रकाशन होकर सुनो ॥२८॥

१२—(अरण्यकारण सर्ग ६४)—

[जैसा आशय अकल्पन राष्ट्रसके वाक्य (सर्ग ३१ श्लोक २३-२६) का है जैसे स्वयं श्रीरामजी अपने विषयमें कहते हैं—]

यथा जरा यथा मृत्युर्यथा कालो यथा विद्धिः ।
नित्यं न प्रतिहन्यन्ते सर्वमूत्रेषु लक्षण ॥
तथाऽहं क्रोधसंयुक्तो न निवार्योऽस्म्यसंशयम् ॥ ७५ ॥

४८

पुरं भे चाकृतीमनिन्दितां
दिवान्ति सीतां यदि नाद्य मैथिलाम् ।

स-देव-गन्वर्द्ध-मनुष्य-पत्रं
बगत् सशैलं परिवर्त्याम्यहम् ॥७६॥

हे वास्तव ! जैसे जरा (बुद्धारा), वृत्तु, काल, विद्धि (भाग्य), सभी प्राणियोंमें कभी रोके नहीं जा सकते वैसे ही मैं भी क्रोधसंयुक्त हुआ निःसन्देह रोका नहीं जा सकता ॥७७॥ यदि मैथिली सीताको पहले जैसी सुन्दर नहीं लौटाते हैं तो मैं देवों, गन्धर्वों, मनुष्यों, नागों और पर्वतों-मध्यमें जगन्को नाश करनेको तैयार हूँ [यह मानुषदेह भरके बीजामात्र क्रोधका प्रकाशन है सही, किन्तु अपने विषयमें असम्मत बात बोलनेकी आशा रामसे नहीं की जा सकती । अतः जगन्को नाश करनेके सामर्थ्यसे वे अथवा भगवद्वतार करके ही रामायणकारको हृष्ट हैं] ॥७८॥

१३—(अरण्यकारण सर्ग ६६)—

[सीताहरणपर शोकाकुल हुए रामको प्रजायामिके समान लोकोंके विनाशके लिये उच्छ्रुत, और जैसे कभी पहले नहीं देखे गये ये वैसे संकुच होकर, युगान्तकालमें शिवजीके समान, सर्व जगत्को भयम करनेके लिये सक्षम देखकर लक्षणका तो लोकविनाशके भयसे मुख सूखने जगा । लक्षणने विनयपूर्वक रामसे प्रकृतिस्थ होनेकी प्रार्थना करने और बहुत कुछ समझानेके पश्चात् यह निवेदन किया कि पहले हमलोग सर्व लोकोंको तबतक ढूँढ़े जबतक सीताऽपहारीका पता न जगे । किर भी यदि साम (शान्त उपाय) से देवता लोग सीताको न फेरेंगे तो समयानुसार लोकनाशके लिये शरसन्धान कीजियेगा (सर्ग ६५) । (सर्ग ६६) इतनेपर भी जब राम प्रकृतिस्थ न हुए तब बहुत बहुत समझाते हुए लक्षणजी अन्तमें बोले—]

मांसंवं हि परा वीर त्वमेव बहुशोकवान् ।
अनुशिष्यादि को नुत्तमापि साक्षाद् बृहस्पतिः ॥१७॥

तुदिश्च ते महाप्राप्त देवैरपि दुरन्वया ।
शोकनाभिरसुष्टु ते ज्ञानं संबोधयाम्यहम् ॥१८॥

दिव्यं च मानुषं वैद्वतमनश्च पराक्रमम् ।
इक्षाकुरुषमाऽवेष्य यतस्त द्विषतां वचे ॥१९॥

किं ते सर्वविनाशेन कृतेन पुरुषं विद्धिम् ।
तमेव तु रिपुं पापं विजायोदर्तुमर्हसि ॥२०॥

हे वीर ! मुझको ही तुमने पहले बहुत कुछ समझाया है । तुम्हें भवा कौन शिव्य केगा, साक्षात् बृहस्पति भी

[नहीं सिला सकता, तब अन्यको कौन गिनती है] ॥ १७ ॥
 हे महाप्राण, और तुम्हारी बुद्धिको तो देखता भी नहीं पहुँच
 सकते [इससे ईश्वरता सूचित की । तब मैं तो केवल]
 कालके कारण सोबे हुए तुम्हारे [ही] जागको [मानो]
 जगा रहा हूँ ॥ १८ ॥ हे इक्षाकुकुक्षेष, और अपने दिव्य
 सथा मानवी (दोनों ही प्रकारके) पराक्रमको देखते हुए
 [अर्थात् दिव्य पराक्रमके लिये यह उपशुक्त समझ नहीं है
 इसका विचार करते हुए केवल मानवी-पराक्रमका उपयोग
 करके] शक्तिशम्भवे प्रयत्न करो ॥ १९ ॥ हे पुरुषोत्तम ! तुम्हें सर्व
 [दोनों] का विनाश करनेसे क्या [जाग होगा] ? किन्तु
 हृष्टकर केवल उसी पारीका उम्मूलन करना चाहिए ॥ २० ॥

[सर्व जोकोंके विनाशका सामर्थ्य और दिव्य पराक्रम
 मनुष्यमात्रमें होना असम्भव है । इससे रामजी अवश्य
 विवेचनतार ही थे ।]

१४—(किञ्जिक्षधाकाण्ड सर्ग १८)—

[सर्ग १६ में रामके हारा वालविद् होनेपर सर्ग १७ में
 वालीने रामपर अनेक कठु आइये किये थे और उनके
 सीरागढ़ चुप हो गया था । सर्ग १८ में जब श्रीरामजीने सब
 आदेषोंका समुचित उत्तर दे दिया तब (सोक ४४) वालिको
 श्रीरामजीपर मिथ्या अभियोग लगानेके कारण वह पश्चात्य
 उत्पत्ति हुआ और अमंविषयमें निश्चय हो जानेसे अब
 उसके मनमें रामका एक भी दोष न रहा तब वह हाथ जोड़-
 कर रामसे बोला—]

ततोऽहं वधमाकाङ्क्षन् वार्यमाणोऽपि तारया ॥ १५ ॥
 सुश्रीवेण सह आत्रा दृद्युद्युपापातः ॥ १५ ॥

श्रावितहेन विवेनसा मया
 प्रभावितम्त्वं यद्जानता विमो ।

इति महेन्द्रोपमर्मत्वित्रम्
 प्रसादितस्त्वं द्वाम मे हरीश्वर ॥ १६ ॥

तुमसे [अपना] वध चाहमा हुआ मैं ताराके हारा
 रोका जाता हुआ भी [अपने] भ्राता मुर्गाकसे इन्द्रयुद
 [ज्ञाने] आया ॥ १६ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ हे महेन्द्रके समान भयानक
 विक्रमवाले, हे सर्वमात्रक, हे हरीश्वर (देवताज इन्द्रके
 भी स्वामी भगवन् विष्णु), वायसे पीवित और विचिप-
 चित्त होसे हुए अज्ञानवश (अर्थात् आप भगवान् हैं इन
 वातको भूखड़) मैंने आपको जो कुछ कह डाला, प्रसङ्ग
 होकर आप मेरा वह [दुर्बल] हमा करो ॥ १६ ॥

१५—(किञ्जिक्षधाकाण्ड सर्ग २४)—

[तारा वालिवधसे अत्यन्त आतं होकर, इन्द्रसदृश
 और तुरासदृश एवं विद्युदसदृशावे महामुभाव श्रीरामजीके
 समीप जाकर बोली—]

त्वमप्रमेण्य	तुरासदृश
जितेन्द्रियश्चोत्तमधर्मकश्च	।
अद्वैतांकार्तश्च विचक्षणश्च ,	
क्षितिक्षमवान् भृतजोपमाक्षः ॥ २५ ॥	

तुम अप्रमेय (अर्थात् देश और कालके परिष्केयसे
 रहित तथा गुणोंकी इयता करके दुर्जेय) और तुरासदृ
 श (अर्थात् योगियोंको भी प्राप्त होनेके लिये अशक्य) और
 जितेन्द्रिय (अर्थात् हरीकेश वा इन्द्रियातीत) [यहाँ तक
 रामका निर्गुण वह होना प्रतिषादिन करके आगे उनके
 सगुण रूपकी सुति करती है] और उत्तम (अर्थात् पुरुषोत्तम
 विष्णु भगवान्) के खमों [को धारण करने] वाले हो । तुम्हारी
 कीर्ति [सदा] अर्दीय [वही रहती है अर्थात् किसी ऐसे
 कर्मसे भी, जो पापके समान आभासमान हो, कभी छीण
 नहीं होती] है और [तुम] विचक्षण (विशेष ज्ञानवान्),
 पृथिवीके सदृश चमाकाव् तथा रक्षेत्रोंवाले हो ॥ २५ ॥

मारुति (हनूमान्जी) ने रामको क्या पाना है—

१६—(सुन्दरकाण्ड सर्ग १३)—

[सांसान्वेषणके लिये लड्ढामें पहुँचे हुए हनूमान् अशोक-
 अनिकामें मनसे भी पहुँचनेके पूर्व हृष्टेवतादिको प्रणाम
 करते हैं—]

नमोऽस्तु रामाय सलभमणाय

दद्यै च तर्यं जनकामग्राय ।

नमोऽस्तु रुद्रन्दयमानतेभ्यः

नमोऽस्तु चन्द्रार्कमरुदगणेभ्यः ॥ १६ ॥

स नेत्यम्नु नमस्त्वा मुश्रीवाय च मारुतिः ॥ १६ ॥

[यहाँ हनूमान्जी लड्ढादि देवताओंसे भी पूर्व राम,
 लक्ष्मण और सीताको नमस्कार करते हैं, जिससे स्वयं है
 कि वे हनुमो लड्ढादि देवोंके भी ऊपर (अर्थात् साकाश विष्णु
 और कर्मसीके अवतार) होनेसे अपना हृष्टेवत मानते हैं ।
 और क्रम भी हस्ती वातका सूचक है क्योंकि सबसे प्रथम
 [राम-कर्मसम्बरूप] भगवान् और उनकी माथाको, फिर

उनसे छोटे अन्यान्य देवताओंको, फिर उनसे भी छोटे अपने राजा (स्वामी) सुग्रीवको नमस्कार किया । यदि वे राममें मनुष्यत्व-नुद्दि रखते होते तो देवताओंके पश्चात् उन्हें नमस्कार करते । यह बात भी विशेष व्यान देनेके बोध है कि उक्त देवताओंमें कहीं विष्णुका नाम नहीं लिया—यथापि रामायणके मतानुसार विष्णु ही इन्द्र-रघादि सबसे बड़े गिने जाने चाहिए थे । यदि रामको नमस्कार करनेसे ही विष्णुके लिये भी नमस्कार गतार्थ न होता तो सुख दो-तीन देवताओंकी भी गतानामें विष्णुका नाम न छोड़ा जा सकता ।]

७—(सुन्दरकाण्ड सर्ग ३०)—

यथा तस्याऽप्रमेयस्य सर्वसत्त्वदयवतः ॥६॥

[यहाँ भी हनुमानजी रामके लिये 'अप्रमेय' शब्दका (अर्थात् जिनका स्वरूप और गुण देख-काढ वा इयत्तासे परिच्छेद नहीं है) प्रयोग करके रामका साजाद् ब्रह्म होना सूचित करते हैं ।]

८—(सुन्दरकाण्ड सर्ग ५१)—

[तथापि यदि सन्देह हो तो हनुमानजीके रामविषयक वर्णनमें जो उन्होंने रावणके समझ किया था रामजी स्वर्य ही जगत्के स्थिति-उपस्थि-संहार-कर्ता और सर्वलोकोंके ईश्वर मिल होते हैं—]

सद्यं गङ्गासराजेन्द्रं शृणुप्व वचनं मम ।

रामदासस्य दूतस्य वानरस्य विशेषतः ॥३८॥

सर्वांलोकान् मुसंहस्तं सभूतान् सच्चाचरन् ।

पुनरेव तथा सर्वं शक्ता रामो महायशः ॥३९॥

मर्कलोकेश्वरस्यहं इत्वा विद्विष्मीदशम् ।

रामस्य गत्तासिंहस्य दुर्लभं तत्र वीक्षितम् ॥४०॥

देवाश्च देवाश्च निशाचरन्द्र

गन्धर्वविद्याधरनागयक्षाः ।

रामस्य लोकत्रयनायकस्य

स्थातुं न शक्तः समरेषु सर्वे ॥४३॥

ब्रह्मा स्वयम्भूत्युत्तराननो वा

यद्रस्तिनेत्रविष्णुपुरान्तको वा ।

इन्द्रो महेन्द्रः सुरनाथको वा

स्थातुं न शक्ता युधि रथवस्य ॥४४॥

हे राजसराजोंके राजा (रावण त्र.) मुफ रामजीके दास

[यह विशेषण इस कारणसे दिया है कि समीप रहनेके

कारण दासको अपने स्वामीकी महिमाका ठीक-ठीक ज्ञान होता है अतएव उसकी बात विशेषतके योग्य है] विशेषतः दूत [इस विशेषणसे यह सूचित किया कि दूतका अधिकार हितके उपदेशमें होता है और वह विपक्षीकी बातको ल्यों-काल्यों बुझता है जिससे उसके कहे हुए समाचारमें शङ्खा करनेका अवकाश नहीं] (और एक) वानरके [इस विशेषणसे यह सूचित किया कि मैं न तो रामकी (मनुष्य) आतिका और न बुझारी (राहस) आतिका हूँ किन्तु एक तीसरी जातिका होनेसे परपातरहित होकर न्यायकी बात कहूँगा । तीनों विशेषणोंसे अपना सत्यवक्ता होना प्रमाणित किया है] सर्व वचनको सुन ॥३८॥ महायशवाले राम [समल] चराचर भूतों (अर्थात् सब जातियोंके प्राणियों) सहित सब लोकोंको सम्यक् संहार करके फिरसे उसी प्रकार सुनेनेको समर्थ है [इससे अगलकी स्थिति, उत्पत्ति और संहारका कर्ता होना बताया] ॥३९॥……………॥ 'सभी लोकोंके ईश्वर' एवं राजशेष रामका इस लोकमें ऐसा अपकार करके तेवा जीवन [वचन] असम्भव है ॥४२॥ दे निशाचरोंके राजा (रावण), देव, देव्य, गन्धर्व, विद्याधर, नाग, यह सभी लोग 'तीनों लोकोंके नियन्ता' श्रीरामजी-के समझ युद्धमें नहीं ढहर सकते हैं ॥४३॥ ब्रह्माजी [जो] स्वर्यं उत्पत्ति होनेवाले (सर्वादि हिरण्यगर्भ) [तथा] चार मुख्योंवाले (अर्थात् सर्वज्ञ) [हैं], अथवा रुद्र (शिवजी) [जो] तीन नेत्रोंवाले (अर्थात् तीसरे ज्ञानरूपी नेत्रसे अज्ञानजनित कामादिको भस्म करनेवाले) [तथा] विषुका अन्त करनेवाले [हैं], अथवा इन्द्र [जो] महायेष्वरवाले [तथा] देवताओंके नायक [हैं] (अर्थात् जगत्की उत्पत्ति तथा संहार करनेमें समर्थ और महाबली देवता भी कोई) रामजीके [आगे] युद्धमें नहीं ढहर सकते ॥४४॥

[इनुमानजीने जैसे यहाँ रावणके सामने अपनेको 'तीनों लोकोंके ईश्वर भगवान् राम' का 'दास' कहा है वैसे ही (सीताजीके सामने सुन्दरकाण्ड सर्ग २६ श्लोक २०, इत्यादि) अन्य स्थलोंमें भी अपनेको उन्होंका दास कहा है । परन्तु लौकिक इष्टिसे तो हनुमानजी अपनेको सुग्रीवका ही दास कह सकते थे । रामके दास तो उनमें अवतारहित रखनेके इसी कारण अर्थात् परम वैष्णव होनेके ही कारण थे । इस उद्घारणमें भी ब्रह्मा, रुद्र और इन्द्रका तो नाम है परन्तु विष्णुका नाम केवल इसीलिये नहीं है कि राम स्वर्यं ही विष्णुके अवतार थे ।]

युद्धकाण्डके प्रमाण

१६—(युद्धकाण्ड सर्ग १७) —

[रावणका पश्च छोड़कर आया हुआ विभीषण अपने आनेका समाचार रामके पास पहुँचानेके लिये कहता है—]

सोऽहं पश्चित्तत्त्वेन दासवच्चावमानितः ।

त्यक्त्वा पुत्रांश्च दारांश्च राघवं शरणं गतः ॥१६॥

निवेदयत मां क्षिप्रं राघवाय महात्मने ।

सर्वलोकशरण्याय विभीषणमुपस्थितम् ॥१७॥

[मेरी बात न माननेवाले] उस (रावण) से कठोर बचन कहा हुआ और वासके समान अपमानित हुआ मैं वह (विभीषण आव) पुत्रों और भी [सब] को छोड़कर श्रीरामजीके शरण आया हूँ [इससे विभीषणने एक सर्वे वैचाहके समान 'आरम्भिकेदन' को दर्शाया है] ॥१६॥ सब लोकोंके शरणय [तथा जगन्नके] महान् आत्मा रामसे शीघ्र मुक्त विभीषणको उपस्थित हुआ निवेदित करो ['महात्मने' और 'सर्वलोकशरण्याय' पर निलकण्याश्रयाकारने लिखा है कि विभीषणके हारा कैकसीको दिये गये—'मम वंशानुरूपश (पः स) धर्मात्मा च भविष्यति (व न संशयः)']—इत्यादि (उत्तरकाण्ड सर्ग ६ श्लोक २७) वरदानके अनुसार 'सारिवक' होनेके कारण और ब्रह्माजीसे भी उसी प्रकारका वर पाये होनेके कारण विभीषण रामके विषयमें यह जानता था कि वे सर्वलोकलक्ष्मा और सर्वलोकाङ्गर्वामी भगवान्‌का अवतार हैं यद्यं सब लोकोंके शरणय और महान् आत्मा हैं] ॥१७॥

वहाँ 'महात्मने' का अर्थ—

२०—किमान्मानं महात्मानं भान्मानं नावकुञ्जयसे ॥

(वा० य० का० । ८३ । ४३)

अर्थात् [मायामयी सीताको वालविक सीता जानकर हन्दूजित्से अग्रहत हुई देखकर हन्दमानने जब वह संवाद रामसे निवेदित किया तब वे शोकमें अस्थिर्व्यवहार कियहुए हो गये। उन्हें समझते हुए लक्ष्मणजीने कहा कि हे दीर्घ-भुजाओंवाले और राजस व्यक्ति व्रत-धारण-करनेवाले नरशेष (राम) डडो] क्या तुम अपनेको महान् आत्मा (अर्थात् 'परमात्मा')—तिक्ष्ण-व्याख्या नहीं जानते [जो देसा शोक करते हो]—इस स्थलके समान 'परमात्मा' ही जेना होगा। तथापि यदि कोई हन्दवा न माने, तो 'सर्वलोकशरण्याय' का अन्य अर्थ नहीं लिया जा सकता क्योंकि इमारे प्रदर्शित अनेक स्थलोंमें 'लोक' का अर्थ 'दृष्टिव्यादि' लिया गया है

ज कि 'प्रजाजन ।' अतः हन विशेषणोंसे ये स्थलोंमें रामायणकारको रामवी भगवद्वतार करके ही हृष्ट है ।

२१—(युद्धकाण्ड सर्ग १७) —

[विभीषणके भावकी परीक्षाके सम्बन्धमें वानर लोग रामसे कहते हैं—

अजातं नास्ति ते किञ्चित् त्रिषु लोकेषु राघव ।

आत्मानं पूजयन् राम पृच्छस्यस्मान् सुहृत्तया ॥३५॥

हे राम, तुमको तीनों लोकोंमें कुछ भी अज्ञात नहीं है (अर्थात् तुम 'सर्वज्ञ' भगवान् हो) तथापि हे राम ! तुम अपने आपको ही बड़ा बनाते हुए (अर्थात् अपने ही व्यवस्थन-के कारणसे) इमें सुहृत्तावसे पूछते हो ॥३५॥

२२—(युद्धकाण्ड सर्ग १८) —

[विभीषणके विषयमें जब सुप्रीवने कहा कि वह कुटिल राजस रावणका आता है और इसकिये आया है कि आप या लक्ष्मण या मैं जब इसकी ओरसे विश्वक हो जावें तो वह इमपर प्रहार करे, तब रामने इसपर विचार करके शुभ्रतर उत्तर दिया—]

स दुष्टं वाष्पुष्टो वा किमेष रजनीचरः ।

सूक्ष्ममप्यहितं कर्तुं मम शकः कर्यन्वन ॥२२॥

पिशाचान् दानवान् यद्यान् पृथिव्यां चैव राक्षसान् ।

अद्युत्येण तान् हन्यमिच्छन् हरिगणेश्वर ॥२३॥

मङ्गेव प्रपत्नाय तवाऽम्भीनि च याचते ।

अभयं सर्वभूतम्यो ददान्तेद्वनं मम ॥२३॥

वह चाहे हुए हो अथवा अदुष्ट, [परन्तु] क्या वह राजस किसी प्रकारसे मेरा अगुमाव भी अदित कर सकता है ? ॥२२॥ [क्योंकि] हे वानरराज [यदि मैं] चाहूँ [तो सभी] पिशाचों, दानवों, पक्षों और पृथिवीभरके उन (रावणादि समल) राक्षसोंको [केवल] अकूलोंके अग्रभागने ही आर डालूँ [इससे राम भगवान्ने अपने विषयमें 'महाल्पसिद्धि'रूप ईश्वरसाका चिह्न दर्शाया है । यथापि मुक्ते अपने अस्तिरिक्त किल्सी दूसरे सहायकी अवश्यकता नहीं है तथापि मेरे अवतारका प्रयोगन मनुष्योंको संसारकी मर्यादा सिलाना ही है अतपि मैं मानुषमर्यादामें स्थित होकर तुम-जैसे सहायकी ग्रासि इत्यादि स्वयंवारकी अपेक्षा रखता हूँ—वह तिक्ष्णव्याख्या-कारक आशय है] ॥२३॥……………॥ मेरा यह अत है कि जो एक ही (स्वात्मकपा अनन्य) हृषिके

मुझे प्राप्त होता है अथवा (औपचिक भेदक अवलोकन करके सेवक-स्वामी, शिष्य-गुरु, रक्षय-रक्षक इत्यादि भावसे उपासना करता हुआ) मैं तुम्हारा हूँ इसग्राहक याचना करता है उसे सब प्राप्तिवर्ती ओरसे अभ्यर्थ प्रदाता हूँ [इसपर भी व्याख्याकारने आसुतम विस्तृत व्याख्यान किया है जिससे रामके भगवदवतार होनेमें कोई सन्देह नहीं रह जाता है] ॥३॥

२३—(युद्धकारण सर्ग १६)—

[विभीषण चार राष्ट्रों समेत आकर रामके चरणोंमें प्रधान करके स्वयं आप्यानिवेदन करता है—]

अनुजो रावणस्याहं तेन चास्यवमानितः ॥५॥

मदन्तं सर्वमूतानां शरण्यं शरणं गतः ।

परित्पक्ता मया लङ्घा मित्राणि च धनाणि च ॥६॥

भवद्रतं हि मे राज्यं जीवितं च मुखानि च ॥७॥

मैं रावणका छोटा भाई और उससे अपमानित हुआ आपके शरण आदा हूँ क्योंकि आप सब भूतोंके शरणके स्थान हैं । [यहाँ 'लोक' शब्दके स्थानमें 'भूतों' अर्थात् 'प्राणियों' का नाम देनेसे अधिकतर स्पष्टरूपने रामका भगवदवतार होना सूचित किया है ।] मैंने लङ्घा और मित्रों और धन [सभी] को [आपके लिये] छोड़ दिया है ॥५-७॥ क्योंकि मेरा राज्य, जीवन, और [सभी] मुख आपहोके अधीन हैं [इससे सर्वज्ञ भगवान् राम अवश्य रावणका वध करेंगे वह निश्चय व्यक्त है] ॥८॥

२४—(युद्धकारण सर्ग ३४)—

[रावणकी जननी और हृष्ट मन्त्रीकी रावणसे कही हुई वातको उन्हीं शब्दोंमें सरमा सीतासे कहती है कि (श्लो० २१) सैथिली (सीताजी) को सत्कारपूर्वक रामके समर्पण करो क्योंकि जनस्थानमें उनका जो अनुत (असौकिक) कर्म देखा गया है वही उनके पराक्रमका पर्याप्त निर्दर्शन (नमूना) है]

लङ्घनं च समुद्रस्य दर्शनं च इनूमतः ।

वचं च रक्षां युद्धकः कुर्यान्मातुषो युवि ॥२१॥

[विश्वकरमका एक अनुचर अकेका हनुमान् ही सब राष्ट्रोंको जीत सकता है वथा] हनुमान्का समुद्रको जाँघना, [सीताको] देखना, और [रामका लालादि] राष्ट्रोंको युद्धमें मारना, वह सब युद्धमें कौन मनुष्य कर सकता है ?

[इसिये न हो हनुमान् बानर है और न राम मनुष्य है, किन्तु सब देवावतार हैं—(तिथक्ष्यारथा)] ॥२२॥

२५—(युद्धकारण सर्ग ४०)—

[न केवल हनुमान् ही किन्तु सुग्रीव भी रामको 'लोकनाथ' और अपनेको रामकी ओरके भावानुसार 'मित्र' होता हुआ भी अपनी ओरके भावानुसार 'रामका दास' मानता या जैसा उसने रावणको जलकारते हुए कहा है—]

लोकनाथस्य रामस्य ससा दासोऽस्मि राक्षस ।

न मया मोहस्येऽप्य त्वं पार्थिविन्द्रस्य तेजसा ॥१०॥

हे राक्षस ! मैं 'लोकोंके नाथ' रामका सक्षा और दास हूँ । मैं राजाओंके राजा (राम) के तेजसे (अनुगृहीत हुआ) आज मुझे न होड़ूँगा ॥१०॥

२६—(युद्धकारण सर्ग ५०)—

[राम और वरदमण्डको शरविहत तथा मोहापञ्च देखकर जब विभीषण निराश होकर विजाप करने लगा तब सुग्रीवने कहा कि हे धर्मज्ञ विभीषण ! लङ्घामें सुप्रत रावणका मनोरथ पूरा होनेका नहीं है वलिक तू ही लङ्घाका राजा होगा और—]

गरुदाधितिवेनानुर्मी गथवलक्ष्मणी ।

त्यक्त्वा मोहं विध्येते सगां गवणं रण ॥२२॥

गरुदसे अधिति हुए ये दोनों, राम और लक्ष्मण, मोह छोडकर रक्षमें अनुयायियों समेत रावणको मारेंगे [विभीषणको सान्त्वना देनेवाले इस वाक्यसे सुग्रीवने आठना, रामजी के सद्बन्धमें भगवदवतार होनेका, ज्ञान सूचित किया] ॥२२॥

[श्लो० १६] तब एक युद्धतंके पक्षात् वानरोंने विजताके पुत्र महावली गरुदको प्रज्ञवन्त अग्निके सहर देला और (श्लो० ३७) गरुदको आदा देलकर वे नाग जिन्होंने शर बनकर राम-लक्ष्मणको बांध रखा या भाग लदे हुए । (श्लो० ३८-३९) तब गरुदके हत्तस्पर्शसे उनके सब बाद (बाय) भर गये और (श्लो० ४०) उनका रूप, बलादि पहलेसे दूरा जिखर आया । (श्लो० ४४-४५) रामके पृथग्नेपर गरुदने अपना परिचय इसप्रकार दिया—

अहं सखाते काकुस्य त्रियः प्राणो बहिश्चरः ।

गरुदानिहं संप्राप्तो युवयोः साक्षाकारणात् ॥४६॥

मैं तुम्हारा बाहिर सज्जरथ करनेवाला प्राप्त एवं प्रिय
सिद्ध गलत तुम दोनोंकी सहायताके हेतु यहाँ आया हूँ
[वहिःसज्जारी 'प्राप्त' कहनेसे गलतने विष्ववस्तार राम-
सक्षमताके साथ विष्वामुहाइनके रूपसे अपना घनिष्ठ सम्बन्ध
प्रदर्शित किया है । अन्यथा शब्दोक्तके पूर्वार्द्धका अर्थ
असंगत होगा] ॥४६॥

२७—(युद्धकाण्ड सर्ग ५६) —

[रावणाने लक्ष्मणके शक्तिवाण्य खगनेपर, इस भयसे
कि पूर्वसदृश कहीं फिर भी न बी ढडे, रामको असहाय
कर देनेके अभिप्राप्तसे, लक्ष्मणको समुद्रमें फेंक देनेके लिये
ठाठाना चाहा । परन्तु —]

हिमवान् मन्दरो मेन्स्क्लेसेपं वा सहामरैः ।

शक्यं भुजाभ्यामुद्दत्तु न शशो भरतानुजः ॥१०९॥

शक्त्या ब्राह्म्या तु सैमित्रिस्ताडितोऽपि स्तनान्तरे ।

विष्णोर्भीमांस्यभागमात्मानं प्रत्यनुमरत् ॥११०॥

ततो दानवदर्पनं सौमित्रि देवकपटकः ।

तं चीडयित्वा बाहुभ्यां न प्रमुर्लङ्घनेऽभवत् ॥१११॥

हनूमानय तेजस्वी लक्ष्मणं गवणादिनम् ॥११२॥

आनयद्राघवाभ्यादां बाहुभ्यां परिगृह्य तम् ।

वायुमूनोः सुहृत्वेन मक्ष्या परमया च सः ।

शत्रृणामप्रकल्प्योऽपि लघुरुमगमत् कपे ॥११३॥

आश्वस्तश्च विश्लेष्यक्ष लक्ष्मणः शत्रुमृदनः ।

विष्णोर्भीगमीमांस्यमात्मानं प्रत्यनुमरत् ॥११४॥

मिरा गम्भीरया गमो राक्षसेन्द्रमुवाच ह ॥११५॥

तिष्ठ तिष्ठ मम त्वं हि इत्वा विश्रियमीदशम् ।

क नु राक्षमशादूक् गवा मोक्षमवाप्यसि ॥११६॥

यदीन्द्रैवस्तवभास्तरान् वा

स्वयम्भु-ैवेत्वानर-शङ्खरान् वा ।

गमिष्यसि त्वं दशधा दिशो वा

तथापि मे नाद्य गतो विमाश्यसे ॥११८॥

रायवस्य वचः श्रुत्वा राक्षसेन्द्रो महाबलः ।

वायुपुत्रं महावंगं वहन्ते रायवं रणे ॥११९॥

रोषेण महातऽविष्टः पूर्ववैरमनुस्परन् ।

आज्ञायान् शैरदीप्तैः कामानन्दगिरोपमैः ॥१२०॥

[विस रायवके लिये] हिमालय, मन्दर, मेर (ये
पर्वत) अथवा देवताओं सहित तीव्रों छोकका (दो)

सुजाओंसे उठा लेना सहज था [यह] भरतके छोटे भाई
(खरमण) को न डारा सका ॥१०१॥ [वर्षोंकि] सुमित्राके
पुत्र (लक्ष्मण) ने वह स्थलके मध्यमें ब्राह्मी शक्तिहारा
आहत होते हुए भी, अपने आपको, विःसंशय विष्वयुके अंश
होनेका (अथवा चिन्तन न किया जा सकनेवाला विष्वयुका
भाग अपने प्रति) अनुसारण किया [तिकाहम्बाल्या—
अपनी ही बलु अपने आप (अर्थात् स्वामी) को नहीं
मारती है इस आशयसे लक्ष्मणने विष्वयुके आपसिसे
अपना रक्षण करनेके लिये 'मैं भगवान्के तेजका अंश ही
हूँ' ऐसा ध्यान किया । माया-मातुष-रारी-धारीका ऐसा
ध्यान करना औरोंकी इक प्रतीतिके लिये है, परन्तु सर्वदा
नहीं होता । इसप्रकार लक्ष्मणने 'मैं ब्रह्म हूँ' ऐसी
मावनाके द्वारा अपने शरीरको भारी कर दिया था, यह
स्पष्ट है] ॥११०॥ तब (अर्थात् लक्ष्मणके अपनी महिमाका
अनुसन्धान करनेपर) देवोंका करटक (रावण) दानवोंके
दर्पका हनन करनेवाले सुमित्रापुत्र (लक्ष्मण) को (दो)
बाहुओंमें दबाकर हिलाने-डुकानेमें भी समर्थ न हो सका
[तब डारा लेनेमें तो क्या समर्थ होता] ॥१११॥

.....॥ तदनन्तर रावणसे वीक्षित उन लक्ष्मणजीको
तेजस्वी हनूमान् अपनी भुजाओंसे परिग्रह्य करके रामके
समीप ले आये । वह (लक्ष्मणजी) शत्रुओं (अर्थात्
रावण तथा उसके सहाय्यभूत अनुचरों) के लिये अप्रकृत्य
(हिलाने-डुकानेको अशक्य) होते हुए भी वायुपुत्र वानर
(हनूमान्) के लिये मित्राव और परमभक्तिके कारण
बहु (इकके) हो गये [भगवान् वा भगवदवतारोंका यह
केवल भक्तोंके सहज बश होना न्यायालिक ही है] ॥११६-
११७॥॥ शत्रुविनाशक लक्ष्मण अपने विषयमें
विष्वयुके लिःसंशय वा अविष्ट्य अंश [होने] का अनुसारण
करते हुए आरवन (शान्तियुक्त) और विश्लेष्य (वाच-
रहित अर्थात् सब गात्रोंमें नीरोग) [हो गये] ॥१२०॥
.....॥ [क्रुद हुए] राम गम्भीर धार्यासे राष्ट्रसोंके
राजा (रावण) से बोले ॥१२१॥ हे राष्ट्रसंसाह, ठहर ठहर,
तु मेरा ही येता अपकार करके भक्ता कहाँ आकर छुटकारा
पावेगा ? ॥१२२॥ यदि तु इष्ट, यम और सूर्यके अथवा
स्वयम्भु (ब्रह्मजी), अपि और शहर (शिवजी) के
शरण वा दश प्रकारकी दिशाओं [के अन्तर्में] में भी आवेगा
तो भी [वहाँ] गया हुआ [भी] आज मुझसे नहीं छूट
सकता (अर्थात् आज मैं तुझे न छोड़ूँगा) [वहाँ भी

महा, शङ्करादि देवोंके साथ विष्णुका नाम नहीं है क्योंकि राम स्वयं ही विष्णु थे] ॥२८॥ रामका वचन सुनकर महावकाशान् राजसराज (रावण) ने महारोष (अतिक्रोध) से आविष्ट होते हुए और 'पूर्व वैरका अनुसरण करते हुए,' महावेगवाले वायुसुत (इन्द्रमान्) को [जो] रथमें रामको [अपने ऊपर] चढ़ाये हुए [थे], प्रबलपकालकी अग्निज्वालाओं सरीखे दीप शरणोंसे मारा [यहाँ रावणका 'पूर्ववैर' या तो इन्द्रमानसे या रामसे होना चाहिये । वर्तमान शरीरोंमें दोनोंसे उसका वैर नबीन ही था जो 'पूर्व' नहीं कहा जा सकता । इन्द्रमानदीके वर्तमान शरीरसे पूर्व रावणका वैर उनसे तो कुछ नहीं था किन्तु उनके पिता वायुसे इसलिये था कि वे भी उसके शवु देवोंमेंसे एक थे । परन्तु यह वैर भी कुछ विशेष तीव्र नहीं हो सकता । अतः रावणके अपने हिरण्यकशिषु आदि पूर्वजन्मोंमें जो वैर नृसिंहायवतारधारी विष्णुसे था उसीसे यहाँ रामायणकारका अभिप्राय प्रसीत होता है] ॥१३॥-१४॥

२८—(युद्धकाण्ड सर्ग १०८)—

[इन्द्रके भेजे हुए रथके सारथि (मातिलि) ने राम और रावणके युद्धको रात-दिन सुहृत्त-चण कभी न रुकने-वाला देखा, और रामके जयको अवतक न देखा]

अथ संस्मरयामास मानली रथवं तदा ।
अजाननिव किं वीर त्वमेवमनुवर्तते ॥१॥
विमृजाऽस्मै वधाय त्वमस्तु पंतामहं प्रभां ।
विनशकालः कथितो यः सुरैः साऽद्य वर्तते ॥२॥
ततः संस्मारितो रामस्तेन वाक्यंन मातलः ।
जग्राह स शरं दीपं निःद्वसन्तमिवोरसगम् ॥३॥

तब तो मातिलिने उसी समय रामको सरव दिलाया कि हे वीर ! तुम क्यों ऐसा ध्यवहार कर रहे हो, मानो जानते हो न हो ॥१॥ [इसे] मारनेके लिये 'हे प्रभो' तुम पितामहका (ब्राह्म) अच इसकी ओर चलाओ । देवताओंने [इसके] विनाशका जो समय कहा था वह अब चालू है ॥२॥ तब मातिलि उस वाक्यसे सरण दिलाये हुए उन (विष्णवतार) रामने निःश्वास लेते हुए सर्पके समान दीप शर (ब्राह्म) को ग्रहण किया ॥३॥

[यहाँ देवेन्द्रका सारथि देवलोकनिर्णीत वातोंका 'सरव' रामको विष्णवतार होनेके कारण ही विला सकता है । मनुष्यमात्र होकर राम मातिलि कहनेपर भौतक-से

देखते रह जाते और मातिलि सरण दिलाना भी विलुप्त असक्त होता ।]

२९—(युद्धकाण्ड सर्ग १११)—

[रावणकी ब्येषु पनी मन्दोदारी पतिको रामके हाथसे मरा हुआ देखकर विलाप करने वाली (श्लोक १-२) । उसे विश्वास न हुआ कि देवादि सर्व अगलको दुखानेवाले रावणको मानुषमात्र रामने बर्योंकर मारा (श्लोक ३-८) ! अथवा स्वयं यमराज रामस्वयसे मायाका प्रयोग करके आये होंगे (श्लोक ६) । अथवा हन्दने (रामस्वय वारण्य करके) तुम्हें मारा होगा, परन्तु तुम-जैसे महावकीके सामने युद्धमें खड़े होनेकी भी शक्ति तो देखारे हन्दमें नहीं है (श्लोक १०-११) । अतः—]

व्यक्तमेव महायोगी परमात्मा सनातनः ॥१॥

अनादिमध्यनिवले महतः परमो महान् ।

तमसः परमो धाता शङ्कचक्रगदाधरः ॥२॥

श्रीवत्सवक्षा नित्यक्षीरजय्यः शाश्वतो भ्रुवः ।

मानुं रूपमास्थाय विष्णुः सत्यपराक्रमः ॥३॥

सर्वैः परिवृतो देवर्वानरत्वमुपागतैः ।

सर्वलोकेश्वरः श्रीमैल्लोकानां हितकाम्यया ॥४॥

सराक्षसपरीकारं देवशत्रुं भयानहम् ।

इन्द्रियाणि पुरा जित्वा जितं त्रिभुवनं त्वया ॥५॥

स्मरद्विरिव तद्वैरमिद्येव निर्जितः ।

यदैव हि जनस्थाने राक्षसैर्बहुमिर्दृतः ॥६॥

स्वरस्तु निहतो भ्राता तदा रामो न मानुषः ।

यदैव नगरी लङ्घां दुष्प्रवेशां सुैररपि ॥७॥

प्रविष्टो हनुमान् वीर्यतदैव व्यथिता वयम् ।

क्रिमतमिवीरोधश्च राघवेणेति यन्मया ॥८॥

उच्यमाने न गृहासि तस्येयं व्युषिरागता ॥९॥

पतित्रातायास्तपसा नूनं दग्धोऽसि मं प्रभो ॥२३॥

यह (राम) प्रकटरूपसे (सच्चमुच ही) महायोगी (अर्थात् स्वाभाविक सर्वशक्तिशुल्क भगवान् योगेश्वर) सनातन (सदा रहनेवाले) परमात्मा (अर्थात् सर्व आत्माओं-के भी अन्तर्भागी आत्मरूप हैश्वर) ॥१॥ आदि (जन्म) मध्य (वृद्धि) और निधन (नाश) से रहित, महत्से भी परम महान् ['महतो महीयान्' श्रुतिके अनुसार], तमः (अश्वान) से परे ['तमसः परस्तात्' श्रुतिके अनुसार], धाता (सर्व भूतोंके सज्जनेवाले) ['यतो वा इमानि भूतानि

आयन्ते' भुतिके अनुसार], [अब उनके विप्रहुणोंको कहती है] शङ्ख, चक्र और गदाके धारण करनेवाले ॥१२॥ इव्यमें श्रीकर्ष [का चिह्न धारण करने] बाबे, जिनसे ज्ञानी कभी पृथक् नहीं होती, जो जीते नहीं जा सकते, याथात् (अपचय नामक भावविकारसे रहित), श्रुत (परिवामरहित) [यहाँतक भगवान्को ज्ञानों भावविकारों-से रहित बतलाया], मनुष्यका रूप धारण किये हुए और सत्य पशाकमवाले विष्णु ही हैं ॥१३॥ [जो] बानरस्तको प्राप्त हुए सब देवोंसे विरे हैं (अर्थात् ऐसे देवोंको अपना सहाय बनाये हुए हैं । जोकोंकी हितकामनासे [ऐसे] श्रीमान् सर्वज्ञोक्तेरने देवोंके भयानक शत्रु [रूप तुमको] राक्षसपरिचारसमेत मारा है । तुमने पहले इन्द्रियोंको [कठिन तपस्याहारा] जीतकर [तब] त्रिलोकीको जीता था । मानो उसी वैरका स्मरण करते हुए इन्द्रियोंने तुम्हें जीत रखा था [जिससे तुम सीताअप्यहरणमें प्रहृष्ट हुए और अन्तमें मारे गये] । ठीक उसी समय जब अनस्यान (पञ्चवटी) में बहुत-से राहसोंसे संयुक्त आता थर मारा गया था [यह सिद्ध हो चुका था कि] राम मनुष्य नहीं (किन्तु साक्षात् हैश्वर) हैं । ठीक उसी समय जब देवताओं-को भी अगम्य ब्रह्मानगरीमें हनुमान् छुस आए थे [उनके] बालसे इमलोंग व्यथित हो चुके थे । मेरी कही हुई इस बातको कि रामसे सन्धिं कर लो जो तुमने अहम् नहीं किया उसीका यह फल प्राप्त हुआ है ॥१४—१५॥ ॥ हे ! मेरे स्वामी तुम निश्चय पतिव्रता (सीता) के शापसे ब्रह्म हुए हो ॥१६॥

३०—(युद्धकाण्ड मणि ११७) —

[(श्लोक १—२) सीताके अधिश्वेशके समय जब राम लिङ्गवित्त हुए तब कुबेर, यम, विष्णु, १००० नेत्रों-वाले इन्द्र, अलेश्वर वरद, त्रिनेत्र वृद्धभज याह्यदेवती, सर्वज्ञोक्तर्ता ब्रह्माजी, इन सब देवोंने विमानोहारा ब्रह्ममें रामके समीप आकर कहा—]

कर्ता सर्वस्य लोकस्य श्रेष्ठो ज्ञानविदां विमुः ।
..... ।
कथं देवगणश्चेहमात्मानं नावनुदृष्ट्यसे ॥१६॥
ऋतधामा बसुः पूर्वं वसूनां च प्रजापतिः ।
व्रयाणामपि लोकनामादिकर्ता स्वयंप्रसुः ॥१७॥
रुद्राणामष्टो रुद्रः साध्यानामपि पश्चमः ।
अशिंशी जापि कर्णीं ते मूर्याचन्द्रमसी इश्वा ॥१८॥

अन्ते चादौ च मध्ये च इव्यसे च परंतप ।
उपेक्षसे च दैदेही मानुषः प्राकृतो यथा ॥१९॥
इत्युक्तो लोकपालत्तैः स्वामी लोकस्य राघवः ।
अव्रतीत् विदशेषेऽन् रामो चर्मसृतां वरः ॥२०॥
आत्मानं मनुषं मन्यं रामं दशरथात्मजम् ।
सोऽहं यद्य यत्क्षाहं मगवास्तद् ब्रवीतु मे ॥२१॥
इति ब्रुवाणं काकुत्स्य ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः ।
अब्रदीप्तदृशु मे ब्रह्मं सत्यं सत्यपराक्रम ॥२२॥

(आर्ष-स्तव)

भवाजारामणां देवः श्रीमांश्चकायुधः प्रसुः ।
पक्षशूलो बराहस्तं भूतमव्यसपक्षाजित् ॥२३॥
अधरं ब्रह्म सत्यं च मध्ये चान्ते च राघव ।
लोकानां त्वं परो धर्मो विष्वसेनश्चतुर्मुखः ॥२४॥
शार्हस्थन्वा हर्षकेशः पुरुषः पुरुषोत्तमः ।
अजितः लक्ष्मीनृगिविष्णुः कृष्णश्चैव वृद्धकः ॥२५॥
सेनानीर्ग्रामणीः सर्वं त्वं बुद्धिस्वं क्षमा दमः ।
प्रमवशाऽव्यव्यक्तं त्वामुपन्डो मधुमूदनः ॥२६॥
इन्द्रकर्मा महेन्द्रस्तं वपनामो रणान्तकृत् ।
शरण्यं शरणं च त्वामादुर्दिव्या महर्षिः ॥२७॥
सहस्रशूलो वेदामा शतशीर्णे महर्षमः ।
त्वं त्रयाणां हि लोकानामादिकर्ता स्वयंप्रसुः ॥२८॥
सिद्धानामपि साध्यानामाद्रयश्चासि पूर्वजः ।
त्वं यज्ञस्तं वषट्कारस्त्वमोऽक्षरः परापरः ॥२९॥
प्रमवं निधनं जापि नो विदुः को भवानिति ।
इव्यसे सर्वमूर्तयु गंपु च ब्राह्मण्यु च ॥२०॥
दिष्टु शर्वामु गमने पर्वतेषु नदीषु च ।
सहस्रचरणः श्रीमान् शतशीर्णः सहस्रकृ ॥२१॥
त्वं धारयसि मूतानि पृथिवीं सर्वपर्वतान् ।
अन्ते पृथिव्याः सलिले इव्यसे त्वं महोगः ॥२२॥
श्रीलोकानन्दारयन्नराम देवगन्धर्वदानवान् ।
अहं ते इव्यं राम विद्वा देवी सरस्ती ॥२३॥
देवा रोमाणि गात्रेषु ब्रह्मणा निर्मिताः प्रभो ।
निमेषस्ते स्मृता राविरुद्धमेषो दिवसस्तथा ॥२४॥
संस्कारास्त्वमन्वेदा नैतदस्ति त्वया विना ।
जगत्सर्वं ते स्वैर्यं ते ब्रह्मतत्त्वम् ॥२५॥

अग्निः कोपः प्रसादस्ते सोमः श्रीनेतसलक्षणः ।
तवा लोकाभ्यः कान्त्वा: पुरा स्वैर्विकमैत्तिभिः ॥ २६ ॥
महेन्द्रश्च कृतो राजा बलि बद्ध्या सुदारुणम् ।
सीता लक्ष्मीभंवान्विण्णुदेवः कृष्णः प्रजापतिः ॥ २७ ॥
वधार्थं रावणस्येह प्रविष्टो मानुर्मी तनुम् ।
तदिदं नस्त्वया कार्यं कृतं धर्ममृतां वर ॥ २८ ॥
निहतो रावणो राम प्रहृष्टो दिवमाक्रम ।
अमोघं देवं वीर्यं ते न ते मोघाः पराक्रमाः ॥ २९ ॥
अमोघं दर्शनं राम अमोघस्तवं संस्तवः ।
अमोघात्मे भविष्यन्ति भक्तिमन्तो नरा मुवि ॥ ३० ॥
ये त्वां देवं ध्रुवं भक्ताः पुराणं पुरुषोत्तमम् ।
प्राप्नुवन्ति तथा कामानिह लोके परत्र च ॥ ३१ ॥
इममार्थस्तवं दिव्यमितिहासं पुरातनम् ।
ये नराः कीर्तयिष्यन्ति नात्मि तेषां परामवः ॥ ३२ ॥

[यहाँ सर्वप्रथम यह समझ लेना चाहिये कि उक्त देवोंके साथ विष्णुके आनेका कोई प्रसङ्ग इसीबिंदे नहीं है कि राम स्वयं ही विष्णु हैं ।] (तुम) सब लोकके कर्ता [रामके मनुष्य शरीरके विषयमें सर्वलोककर्ता इत्यादि विशेषण उनके मूल (विष्णु) स्वरूपके अभिप्रायसे ही हिंदे गये हैं तिक्काव्याख्या ।] शानिवरोंमें श्रेष्ठ, और विमु (सर्वव्यापक) [होते हुए भी] कर्त्तोंकर आपने आपको [इन्द्रादि] देवताओंमें श्रेष्ठ नहीं समझते [कर्त्तोंकि 'विष्णु-मुखा वै देवाः' वह भूति भी विष्णुको (अर्थात् तुम्हें) ही सब देवोंमें प्रमुख बताती है] ॥६॥ [कर्तकव्याख्यामें 'ऋतधामा' इत्यादि सीने श्लोक (७—८) स्वीकार नहीं किये गये हैं । तीर्थव्याख्यामें इनका व्याख्यान अविषेकित प्रकारसे किया गया है—] पूर्व (अर्थात् पूर्वकल्पमें अथवा सृष्टिसे पूर्व तुम) वसुधारों [के मध्य] में ऋतधामा नामक वसु और ऋजापति [हुए थे तथा] तीनों ही लोकोंके भाविकर्ता (अर्थात् अचल और अवशाधिपतिरूप आदि-सृष्टिके कर्ता, एवं) स्वयंप्रभु (अर्थात् सबके नियन्ता होते हुए स्वयं किसीसे नियमित न होनेवाले) हो ॥७॥ रुद्रोंमें आठवें रुद्र (अर्थात् महादेवजी) और सात्थोंमें पाँचवें (अर्थात् पौर्यवान् नामक) भी [तुम्हीं हो] । [विशद्-रूपका वर्णन करते हैं—] दोनों अविदीकुमार तुम्हारे (दोनों) कान हैं, सूर्य और चन्द्रमा [तुम्हारी दोनों] आँखें हैं ॥८॥ हे वसुधारोंको तपानेवाले (मगवन् विष्णो)

[तुम्हीं तुम] अस्त, आदि और मध्यमें दिक्षादी पढ़ते हो [इससे यह सुनित किया कि सर्वभूततत्त्व तुम्हीं हो] । और [अधिप्रेशाके समय] सीताजी उपेशा साधारण मनुष्यकी भाँति कर रहे हो ॥९॥

[इनक्से लेकर व्रातार्थवन्त] उन (पूर्वोक्त) लोकयात्रों-द्वारा ऐसा कहे गये जोक्सामी रघुकुलोत्पत्त धर्मवारियोंमें श्रेष्ठ राम श्रेष्ठ देवोंसे बोले— ॥१० ॥ मैं अपने आपको मनुष्य (एवं) दशारथका उत्तर राम मानता हूँ । ऐसा (मनुष्यशरीरमें अहंकुरिकाता) मैं जो (परमार्थस्वरूप) और जहाँसे (जिस कारणसे) हूँ उसे आप (भगवान् व्राताजी) मुझको बतावें [वही, शिष्यकी विज्ञासा होनेपर गुरुद्वारा व्रातविद्याका उपदेश दिया जानेका, मार्ग सर्वत्र श्रुति-स्मृतियोंमें प्रसिद्ध है । इसी कारणसे रामने अपने भक्तोंको अपना स्वरूप बोधन करानेके लिये अहं शिष्यकी भाँति विज्ञासु बनकर सर्वज्ञ गुरु व्राताजीसे प्रश्न किया— निकलव्याक्षय] ॥ ११ ॥ व्राताजीनियोंमें श्रेष्ठ व्राताजीने ऐसा पूछते हुए काङ्क्ष्य (राम) से कहा, हे सत्य पराक्रमवाले (विष्णो) मेरे सत्य वाक्यको मुझो ॥ १२ ॥

[व्राताजीने रामके प्रभके उत्तरमें श्लोक १३ से १२ तकका 'आर्पत्व' नामक विड्यु उत्तरतन इतिहास सुनाया । इसमें रामको—नारायणदेव, चक्रायुध, एकशङ्खराह, अक्षरव्रक्ष, विश्वस्त्रेन, चतुर्मुख, शार्ङ्गधन्वा, हृषीकेश, पुरुषोत्तम पुरुष, विष्णु, कृष्ण, सुहि-प्रलय [-कारण], उपेन्द्र, मधुसूदन, पश्चनाभ, तीनों लोकोंका आदिकर्ता, स्वयंप्रभु, वश, वषट्कार, ओङ्कार, दिवान्तमें पृथ्वीके जलपर महोरण (अनन्त वा शेषनाग) के ऊपर सोनेवाला, (२१-२६) विश्वस्त्रलूप, श्रीवरसवृष्टया, बामनावतारमें तीन डगोंसे तीनों लोक नापकर और बलिको बाँधकर महेन्द्रको राजा बनानेवाला—बताकर (श्लोक २७-२९में) स्पष्ट कहा गया है कि—]

सीता [साक्षात्] जाती हैं और आप विष्णुदेव एवं कृष्ण (अथवा इयामवर्य) प्रजापति हैं ॥२७॥ रावणके वधके लिये इसलोकमें मनुष्यशरीरमें आये हैं । हे धर्मवारियोंमें श्रेष्ठ! तुम इमारा वही कार्य कर चुके हो ॥ २८ ॥ रावण मारा गया, [अब] तुम [कुछ कावतक महाराजपदसे] प्रसन्न होते हुए व्राताजोको [लौट] चलो…… ॥ २९ ॥

[रामके व्रातविद्या प्रतिपादन बननेवाले इस व्राताजीको गोदमें

किये चितासे निकल आये और सुरुपवती सीताको रामके अर्पण करके बोले कि यह तुम्हारी सीता है जिसमें कोई पाप नहीं है (सर्ग ११८ छो० १-५) । इसे अहय करो (१०) । रामने ऐसा ही किया । इसके अनन्तर सर्ग १११ में महेश्वरने रामसे कहा है कि हर्ष है कि तुम यह कर्म कर चुके (छो० २) अब अपनी माताघों, भाइयों तथा सुहानोंको आनन्दित करके, अयोध्याका राज्य पाकर एवं वंश स्थापन करके तथा अश्वेष-यज्ञ करके ब्रह्मकोकको जागा आहिये (४-६) । देखो तुम्हारे द्वारा तारित हुए यह राजा दशरथ जिन्हें हनुमलोक प्राप्त हुआ है विमानपर विराजमान है, तुम और लक्ष्मण इन्हें प्रणाम करो (७-८) । प्रभुने वैसा ही किया और चितासे देखा (८-१०) । विमानस्थ राजा दशरथने अत्यन्त हर्षित होते हुए रामको गोदमें विठाकर और गलेसे जगा कर कहा (११-१२) । तुम्हारे वनगमनके विरहसे स्वर्ण भी सुखे अच्छा न लगा, किन्तु कैफेयीकी बातें मेरे हृदयमें गवर्ती रहीं (१३-१४) । आज तुम्हें और लक्ष्मणको सकुशल देख और छातीसे लगाकर मैं दुःखसे ऐसा छूट गया हूँ जैसे कुहरेसे सूर्य (१५) हे पुत्र ! तुम-जैसे महात्मा सुपुत्रने सुखे सार दिया जैसे अष्टावक्रने धर्मात्मा कहोक्ष ब्राह्मणको (१६)]

३१—(युद्धकाण्ड सर्ग ११६)—

इदानीं च विजानामि यथा सौम्य सुरेदवरैः ।

वचार्थं रावणस्येह पिहितं पुरुषोत्तमम् ॥१.७॥

पते सेन्द्राञ्जयो लोकाः सिद्धाश्च परमर्थयः ।

अभिवाद्य महात्मानमर्जन्ति पुरुषोत्तमम् ॥२७॥

पतत् तदुक्तमव्यक्तमक्षरं ब्रह्मसंर्भितम् ।

देवानां हृदयं सौम्य गुह्यं रामः परंतपः ॥३०॥

और हे सौम्य ! अब मैंने जाना है कि जिसप्रकार रावणके वयके किये सुरेश्वरों (देवों) से [प्रार्थित] पुरुषोत्तम (अगवान् विष्णुरूप तुम) यहाँ [मेरे पुत्रके शरीर-में] छिपे थे ॥ १० ॥ [अनन्तर राजा ने लक्ष्मणको रामकी शृंखलामें ही परम-कल्पाणीकी-प्रासिका उपरेश करते हुए समझाया और कहा —] ये इन्द्रसहित तीनों लोक तथा सिद्ध और परमर्थियोग [इन] महात्मा (परमात्मा) पुरुषोत्तम (विष्णुरूप राम) का प्रणाम करके अर्चन कर रहे हैं ॥ २६ ॥ हे सौम्य (वरस लक्ष्मण) शत्रुघ्नोंको तपानेवाके राम [रूप तत्व ही] वह (प्रसिद्ध) ब्रह्मसंर्भित (वेदप्रतिपादित) अव्यक्त अचर है जो देवोंका

हृदय और गुण ['देवानां हृदयं त्रष्णाऽन्विन्दत्' तथा 'पतौ महोपनिषदं देवानां गुणम्' इत्यादि अुतिवाक्योंमें] कहा गया है ॥ ३० ॥

३२—(युद्धकाण्ड अन्तिम सर्ग १२८)—

[अनन्तमें समस्त रामायणके अववा वा पाठ करनेवालोंको सदा जो फल मिला करता है उसके प्रसङ्गमें कहा गया है कि—]

प्रीयते सततं रामः स हि विष्णुः सनातनः ।

आदिदेवो महाबाहुर्हरिनारायणः प्रभुः ॥ १.१.७ ॥

पवमेतपुरावृत्तमास्यनं मद्रमस्तु वः ।

प्रव्याहरत विश्वनं बलं विष्णोः प्रवर्द्धताम् ॥ १.१.८ ॥

राम मिरन्तर प्रसङ्ग होते हैं [और] निष्पत्य करके वे [ही] सनातन विष्णु आदिदेव महाबाहु हरि नारायण प्रभु हैं ॥ ११७ ॥ इसप्रकार हस ऐतिहासिक आक्यानको निःशङ्क उचारण किया करो, तुम्हारा [सदा] कल्प्याण हो, और विष्णुका बल बढ़े ॥ ११८ ॥

सूर्यमेडिकासे तथा व्यास्याकारोंके अभिप्रायात्मुसार, विज्ञालिखित रामायण-वाक्योंमें तथा ये से ही अनेक अनुदृश्यत स्थलोंमें भी अवसार-वादका संहेत मिलेगा जिनका अधिक विस्तार यहाँ लेखवृद्धिके भयसे नहीं किया जा सकता—

३३-ठत्तोत्तरयुक्तौ च वक्ता वाचस्पतीर्यथा ।

सुश्रुतायतताज्ञाक्षः साक्षाद्विष्णुरिव स्वयम् ॥ (२.२१.४)

३४-हतोऽहं पुरुषव्याप्र शक्तुत्पवेन वै ।

मया तु पूर्वे त्वं मांदाच्च ज्ञातः पुरुषव्यम् ॥

कौसल्या सुप्रजास्तात रामस्त्वं विदितो मया ।

वदेहो च महात्मा लक्ष्मणश्च महायशाः ॥ (३.४१.४ १.५)

३५-अहमेवाहरिष्यामि सर्वलैऽकान्महामने ।

आवासं त्वहमिच्छामि प्रदिष्टमिह कानने ॥ (३.५४.३)

३६-त्वमिष्वाकुकुलस्यास्य पृथिव्याश्च महारथः ।

प्रधानश्चापि नाथश्च देवानां मधवानिव ॥ (३.६४.८)

३७-अहमेवाहरिष्यामि स्वयं लोकान् महामुने ।

आवासं त्वहमिच्छामि प्रदिष्टमिह कानने ॥ (३.७१.१४)

३८-सर्वे तु विदितं तुम्हं त्रैलोक्यमपि तत्वतः ॥ (३.९१.३२)

३९-तानहं समतिकान्ता राम त्वाऽपूर्वदर्शनात् ।

समुपेतास्मि भावेन भर्तारं पुरुषोत्तमम् ॥ (३.१७.२३)

बालमीकिहृत हस्तोकमें जो खनि है कदाचित् उसीसे
प्रेरित होकर कालिदासको भी ऐसी रचनाकी सूक्ष्मी थी—
राममन्मथशरेण ताङिता दुःसहृष्णु हृष्णे निशाचरी ।
गल्वदुविरचन्दनोक्षिता जीवितेशवसर्ते जगाम सा ॥
(रघुवंश ११ । २०)

परन्तु कालिदासके पदमें 'अमत-परार्थता' नामक
वाक्य-दोष है जिसकी अपेक्षा आदिकविका श्लोक नितान्त
निर्दोष है ।

४०-इति राजवंशः सिद्धाः सगणाश्च द्विर्जप्तमाः ।
जातकौतूहलास्तस्युविमानस्थाश्च देवताः ॥
नविष्टं तेजसा रामं संग्रामशिरसि स्थितम् ।
दृष्ट्वा सर्वाणि भूतानि भयाद्विघ्यर्थे तदा ॥
(३।२४।२४-२५)

४१-अहो बत महर्कर्म रामस्य विदितात्मनः ।
अहो वीर्यमहो दाक्षं विष्णोरिव हि दृश्यते ॥
पतदधं महतेजा महेन्द्रः पाकशासनः ॥
शशमहाश्रमं पुण्यमजगाम पुरुन्दरः ॥
आनीतस्त्वमिमं देशमुपायेन महाविमिः ।
पर्णं वाचायं गत्वाणां रक्षसां पापकर्मणाम् ॥
तदिदं नः कृते कार्यं त्वया दशरथात्मज ॥
रामं चैवाऽव्ययं दृष्ट्वा तुतोष जनकामजा ॥
(३।३०।३२,३४,३५,३६,४०)

४२-इह त्वं भव संनदो यन्त्रितो रक्ष मैथिलीम् ।
अस्यामायतमस्माकं यन्त्रस्य रमुनन्दन ॥
(३।४३।४६-४७)

४३-तत्किंविनतं चापमादायाऽऽत्मविशूलणम् । (३।४४।१२)

४४-असकृत् संयुगे येन निहता दैत्यदानवाः ॥
न चिराचीरवासास्त्वां रामो युवि वचिष्यते ॥ (३।५०।२४)

४५-प्रवितायां वैदेशां बभूव सचरा चरम् ।
बगतसर्वमसर्वदं तमसाऽन्वेन संवृतम् ॥
न वाति मायतस्तत्र निष्ठभोदभुद्विकरः ।
दृष्ट्वा सीता परामृष्टां देवो दिव्येन चकुपा ॥
कृते कार्यमिति श्रीमान् व्याजहार पितामहः ।
प्रहृष्टा व्यथिताश्वासन् सर्वे ते परमर्वयः ॥
दृष्ट्वा सीतां परामृष्टां दण्डकारण्यवासिनः ।
रावणस्य विनाशं च प्राप्तं बुद्ध्वा यद्गच्छया ॥
(३।५२।९-१३)

४६-इति रामं महात्मानं विलपन्तमनाथवत् ।
उवाच लक्षणो भ्राता वचनं युक्तमव्ययम् ॥
(४।१।१३४,१३५)

लज्जयां कामवृत्तत्वं शोकं संन्यस्य पृष्ठतः ।
महात्मानं कृतात्मानभ्रात्मानं नावनुदध्यते ॥

४७-जगतिपते: प्रमदामवेक्षमाणः । (५।३०।४४)
कुछ व्याख्याकारोंकी दृष्टिसे रावण भी बालि, त्रिशिरादि
भगवद्गतोंके समान रामके हाथसे मृत्यु आहता था । परन्तु
तिलक्ष्याक्ष्यामें (अरण्य ० ५४ । ६ इत्यादि स्थलोंमें)
इस भत्तका युक्तियुक्त खण्डन किया गया है । अतः इस
विषयके प्रमाणोंका समावेश प्रस्तुत लेखमें नहीं किया गया
है । तथापि अन्योंके भत्तसे योद्धे ऐसे प्रमाण भी अवतार-
वादके योक्तक होनेसे यहाँ अन्तमें विवरणरूपसे उल्लू
किये जाते हैं—

४८-प्रसहृ तस्या हरणे दृढं मनो
समर्थयामास वचाय रावणः ॥ (३।४६।४७)

४९-क्रेशन्तीं रामरमेति रामेण रहिती वने ।
जीवितान्ताय केशेषु जग्राहन्तकर्सनिमः ॥ (३।५।३८)
५०-ता जहार सुसंहङ्गे रावणो मृत्युमात्मनः ॥ (३।५।४९)
५१-तदेषा सुस्थिरा बुद्धिमृत्युलोभादुपस्थिता ।
भयान्त शक्तस्वां मोक्तुमनिरस्तः संसयुगे ॥ (३।३।४।२५)

५२-वचाय सीता सानीता दशश्रीवेण रक्षसा ॥ (३।९।४।१२)
युद्धकारणमें सर्वं ३५ के अन्तिम श्लोकसे पूर्व—
रामं मन्यामेह विल्लु मानुषं रूपमास्थितम् ।
न हि मानुषमात्रोऽसी राघवो दण्डविक्रमः ॥
येन बद्धः समुद्रे च सेतुः स परमाद्भुतः ।
कुरुष्व नरराजेन सन्धिं रामेण रावण ॥
ये दो श्लोक भी किन्त्यां रामायण-पोथियोंमें ये, जिनमें
प्रथममें स्पष्टतया राम विल्लुके अवतार बताये गये हैं ।
परन्तु रामवर्माके तिलकसे पता चलता है कि 'कतक'-
व्याख्याकी दृष्टिमें ये दोनों श्लोक प्रतिस हैं, इसी कारणसे
प्राचीन व्याख्याकारोंने इनका व्याख्यान नहीं किया । इसी
विचारसे हमने भी इस लेखके प्रमाणोंमें इसप्रकारके
प्रमाणोंका समावेश नहीं किया है ।

यथापि उत्तरकारणदक्षी प्रामाणिकता भी युद्धकारण सर्वं
६० श्लोक ४-१२ तथा सर्वं ११० श्लोक १२-१३, इत्यादिसे
ही सिद्ध है कि यहाँ सुत्ररूपमें उन-उन कथाओंका संकेत

विचारान है जो उत्तरकावड़के सर्ग १०, १६, १७, १८, २१, २४, २६ इत्यादिमें विकारासे विवरिती हैं और लिखके विना युद्धकावडपर्यन्त रामायणकी अर्थवता भी अपूर्ण ही इसी है क्योंकि उत्तरकावडके अतिरिक्त अन्यत्र रामायणभरमें कहीं हनका विशद वर्णन नहीं किया गया है। (और इसप्रकारसे उत्तरकावड एक प्रकारका परिचिह्न है जो स्वयं आदिकवि द्वारके कुछ ही कावके पश्चात होनेवाले किसी ऐसे महापुरुषका रथा प्रलील होता है विसने

मुद्रकावडपर्यन्त रामायणकी अपूर्ण वातोंको ही पूर्ण करनेका सफल प्रयत्न किया है) तथापि आधुनिक पुरातत्ववेत्ताओंकी इहिमें उत्तरकावड वास्तीकिहत और अतएव प्रामाणिक नहीं समझा जाता है। इसीसे उत्तर-कावडस्थ प्रमाणोंको मैंने इस लेखमें स्पाल नहीं किया है, यथापि उनकी एक वस्त्री संख्या है। इसप्रकार वह लेख यहीं समाप्त करके भगवद्वर्षण करता है।

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

उदासी साधु भगवान् श्रीराम

(लेखक—स्वामी श्रीहरिनामदासजी उदासीन महान्, श्रीसाधुदेला)



त्वन्त प्राचीन काव्यसे भारतवर्षे ही संसारकी सम्यताका आश्रितोत रहा है। यहींसे संसारके समस्त विभागोंमें धर्म, सम्पत्ता, संकृति, विद्या, कला, कौशल आदिके प्रचारक महामा, साधु तथा धर्मगुरु जाया करते थे। साधुका स्वरूप ही धर्म-उपदेश, आतिन-क्षा और देश-सेवाकी निशानी है। यही कारण है कि सृष्टिके आदिकाव्यसे आवनक धर्म-क्षा, देश-सेवाकी बागडोर साधु-महामाओंके हाथोंमें रही है और आगे भी रहेगी।

भगवान्के अवतार भारतका प्रण भी माधु-क्षा हो है—‘पृथिव्याय नाथाना ।’ यहीं नहीं मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्रजीने अवतार भारताकर अनेक बाल-कीलाएँ करते हुए त्रय बलकपुरमें जाकर भनुष तोड़ा नव परशुरामजीने उदासी साधुके धीर-बानेमें ही आकर बातचीत की थी—

गौर मीर मूलि मल भ्राजा । भल त्रिसल त्रिपुढ विराजा ॥

सीस बटा ससि बदन मुहावा ।

कटि मुनि बसन नूण दुइ बाँधे । बनु सर कर कुठार कल काँधे ॥

सांत मेष करनी कठिन बरनि न जाव मुरुष ।

धरि मुनि तनु बनु बीरतस आये बहुं सब भूष ॥

श्रीपरशुरामजीको देखकर सब राजाओंने लड़े होकर पितासमेत अपना-अपना नाम छेने हुए उनको प्रश्नाम किया। वह साधु-स्वरूपका ही प्रताप था।

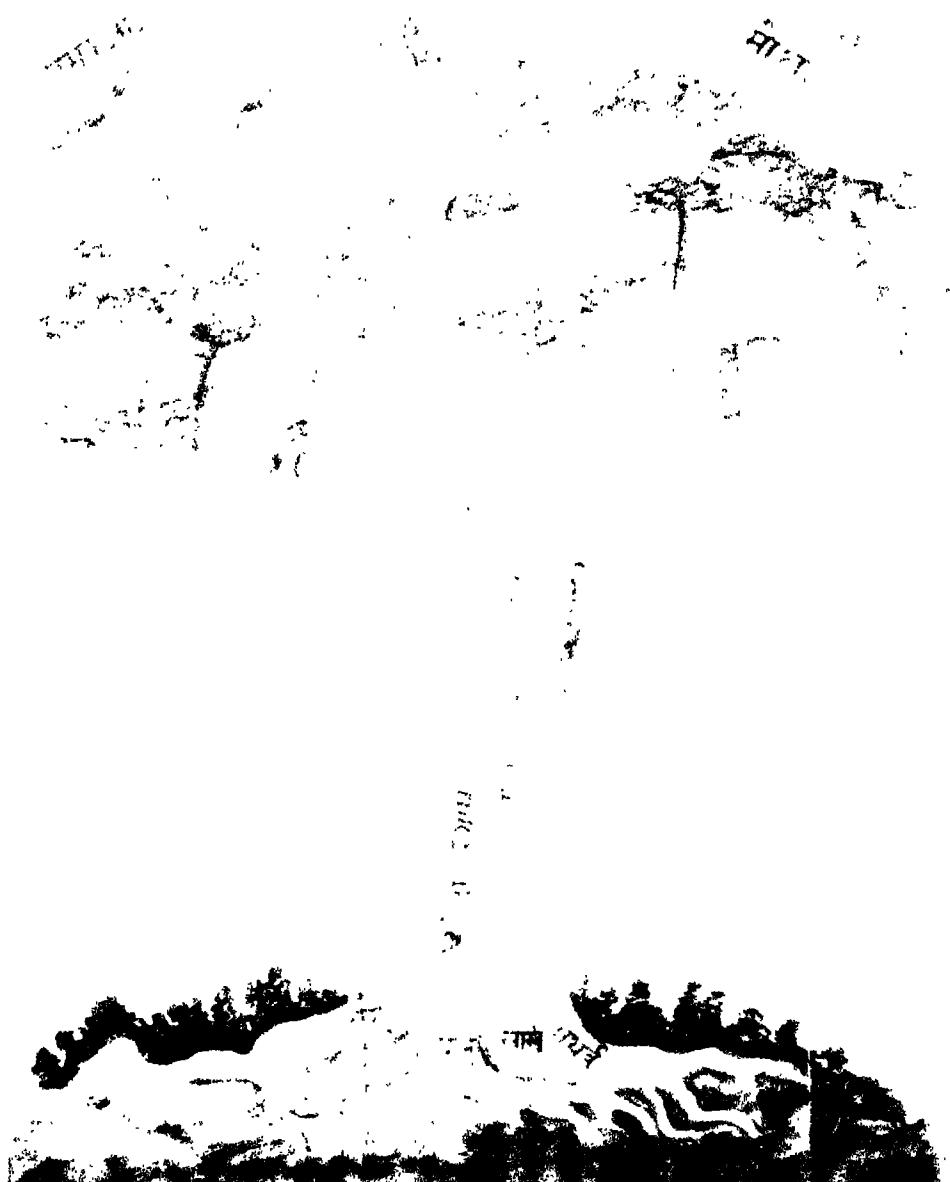
तदनन्तर श्रीरामने अपनी चौदह वर्षों बनवात्रामें उदासी साधुके रूपमें रहकर देश-हित, नीनि-उपदेश, लोक-मर्यादा, व्यष्टिचर्याद्वाहिता वेदप्रतिपादित साधु शब्दोंका वरिताथं करके दिला दिया। भगवान् त्रिकालवर्णीये, उच्चा-भीचा सब जानते थे, उन्हें यह पूर्णतया विदित था कि यदि इस माधुरूप धारणा किये विना ही गृहीका भार उनारेंगे तो आगे महामा साधु लोगोंमें माहम बन्नार होंगर देश और धर्म-क्षाके पुरुष कार्योंमें उनको कैसे प्रहृत बनेगा? जब देश और धर्मविदाका कार्य इनके हाथपरे नियंत्रित जायगा तो साधुओंकी महता तुस हो जायगी और ऐसा होनेपर उन्हें अनेक कष्ट उठाने पड़ेंगे। जब माधुओंको कष्ट होता है तब मुझे अवतार देना पड़ता है। इसलिये भगवान्नने पहलेसे ही माधु-रूप धारकाकर सबका कल्याण किया।

इस गृह गद्यका दृश्य जान श्रीमती महारानी कैकेयी-बीको भी था, तभी उन्होंने अपने पति महाराजा दशरथजीमें बरहान मर्यादा-आंशकामीके द्विये चौदह वर्षके बनवायके साथ-साथ उनके द्विये उदासी-माधु-मेष और तपस्वी-हृषिसे रहना भी माँगा—

ताप्स मेष द्विये उदासी । चौदह बरस राम बनवासी ॥

महाराजा दशरथजीको वह बात बनवानेसे भी अद्विक कठोर प्रतीत हुई, पर इसके भीतर जो गृह रहस्य या उसको बे नहीं समझ सके। वह भगवान् रामकी हृष्टा थी। उसमें भासा सहायक हो गयी। विस समय श्रीरामने

कल्याण



गमायण दुभं नौमि गमरथा नवांकुरम् ।
गायत्रो वीज वसाय मूर्ते मोक्ष महाफलम् ॥

सांखुषेष धरकर वन आगे की बाल सुनी उस समय उनका सुख-
कमल लिक गया, उनकी मनमानी हो गयी। वे बोले—

मुनि गण मिलन बिसेष बन सबहि माँति भल मोर ।
तेहि महै पितु आयु सु बहुरि सम्मति जननी तोर ॥

श्रीरामचन्द्रजीकी प्रसवताका कारण माता-पिताकी
आङ्गासे उनकी मनोकांशकी पूर्ति होना था। भगवान्
तुम्हन्त ही राजोचित वैभव, अवधार और निवास-स्थान
स्थागकर उनको चढ़े, वरके रमणीय पदार्थोंका एक बार
मुहकर भी अवकोडन न किया।

'मुनि पट भूषन भाजन आनी। आगे धरि बोली मृदु बाना ॥'
'राम तुरत मुनि भेष बनाई। चले जनक जननी सिर नई ॥'

माता कैकेयीके दिये मुनि-(सांखु)-पट धारणाकर श्रीराम-
ने उनका सीधा मार्ग किया। उनका उदासी सांखुमेषमें
बन जाना सुन धर्मपत्नी महाराजी सोता कब रुक सकती थीं?
उन्होंने अपने मनमें निश्चय कर लिया—

की तन प्रान कि केवल प्रान। त्रिधि करनव करु जान न जाना ॥

श्रीरामने उनके आनेक दुःख सुनाकर उनकी परीका ली,
पर वह पतिप्राणा वीर-पक्षी धर्मसे कब यीछे पैर रखनेवाली
थी, मारक कह दिया—

राखिय अवध जो अवधि लगि रहत न जानिय प्रान।

सीताने रामजीके साथ समझ उनवानामें तपस्विनीरूपमें
रहकर उनका साथ दिया। यह है इमरे भारतवर्षका
गौरवपूर्ण सका पतिव्रत-धर्म। इन दोनोंको सांखुरूपमें
बन जाने देत लक्ष्मण—गमजीसे एक कब भी पृथक् व
रहनेवाले लक्ष्मण—कब ठहर सकते थे? उनके तो जीवन-
सर्वस्व प्राण-धन श्रीरामजी ही थे। यह है भाग्यन्त्रके पूर्ण
स्वरूपका एक उद्घवक चित्र।

श्रीराम, सीता और लक्ष्मणने औदृढ़ बर्तोतक बममें
प्रेमपूर्वक उदासी सांखुमेष धारणाकर तदनुकूल व्यवहार और
आचरणोंद्वारा सांखु शब्दको चरितार्थ कर लियाया। उन्होंने
बटा धारणा की, (अनुत्रमहित सिर जट) बनाये, अज्ञ नहीं
स्वाया, केवल कम्द-भूष-फलका भोजन किया।

सिं मुमंत भ्राता सहित कंद-मूळ-फल खाय।

नोट—मुनि नाम सांखुका और क्रष्ण नाम विद्वान् तपस्वी गीतामें बताया है, 'मुनीनामप्यहं व्यासः' (१०।५०) 'महर्णीण भृत्यरहं' (१०।२५)।—लेखक

जब श्रीरामचन्द्रजी उनमें ज्ञाति-मुनियोंके आधमामें
मिलने गये तब उनके जगह ज्ञाति और मुनियोंने उनको उदासी
सांखुरूपमें देखकर ही प्रथम प्रश्नाम किया। श्रीरामजी बहु
महात्माओंको प्रथम प्रश्नाम किया करते थे। सांखुको सांखु
आपसमें प्रश्नाम किया करते हैं। अगर श्रीरामचन्द्रजी
ज्ञातियरूपमें गये होते तो उनको बाह्यसांखु प्रश्नाम नहीं
कर सकते। यदि कहा जाय कि राजा या बलिह आवकर
किया होगा तो यह नीतिके विवर होगा। जब रामजीके
पिता महाराजा दशरथजीको कोई ब्राह्मण-सांखु प्रश्नाम नहीं
करता था, वस्तिके ही मुनियों और सांखुओंका आगमन सुनकर
आगे जाकर प्रश्नाम कर उनको सादर साथ लाते थे—

मुनि आगमन सुना जब राजा। मिलन गयठ लै बिप्र समावा ॥
करि दंदवत मुनिहि सनमानी। निज आसन बैठोर आनी ॥
चरन पक्षार कौन्ह अति पूजा। मो सम धन्य आजु नहि दूजा ॥

तब उनका रामजी ज्ञातियरूपमें होते तो उनको कौन
सांखु प्रथम प्रश्नाम कर सकता था और श्रीरामजीको ही
यह कब स्वीकार होता! भगवान् वेद तथा लोक-मर्यादा-
भंगका कलंक अपने शिरपर क्यों लेते! वह तो स्वयं
मर्यादा-पुरुषोत्तम थे। जब वे उदासीन मुनि सुतीक्ष्णके
आश्रममें गये तब सुतीक्ष्णने उनको उदासी सांखु या
तपस्वीके लेखमें देखकर ही प्रथम प्रश्नाम किया था—‘पंडि
लकुट इव चरनकि लागी।’

श्रीहन्मानजीने विग्रहरूमें होते हुए भी भगवान्को
प्रथम प्रश्नाम किया, इसका कारण भी रामजीका सांखुरूपमें
होना था, क्योंकि सांखु सर्व वशोंका गुरु होता है। इसीसे
हन्मानजीने कोई हानि नहीं समझी। यदि रामजी ज्ञाति-
रूपमें होते तो हन्मान-जैसे पश्चिमत कब ऐसा कर
सकते थे!

जब श्रीरामजीने रामको उनमें देखकर मन-ही-मन
प्रश्नाम किया था, तब भी रामजी उदासी सांखुके ही
रूपमें थे—

पिता न चन तजि राज उदासी। दंदक बन विचरत अविनासी ॥

नारदजीने भगवान् रामको पश्चासरपर उदासी सांखु-
रूपमें बैठे देखकर ही प्रथम प्रश्नाम किया था—

करत दंदवत हिये उठाई। राखे बड़ी बार उर लाई ॥

—भगवान् अथवा राजा जानकर नहीं किया था। ऐसा करना तो धर्म-मर्यादाके लिस्ट होता। तब आजकलका-सा मनमानी धरजानीवाला समय नहीं था; गोसाई तुलसीदासजी उस समवकी मर्यादा विसाते हुए लिखते हैं—

बरनाप्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग ।
चलहि सदा पावहि सुख नहिं भय सोक न रोग ॥

यदि कोई कहे कि नारदजीने भगवान् या राजा जानकर प्रशान्त किया था तो उसका उत्तर यह है कि जब वे अयोध्यामें रामचन्द्रजीके पास ब्राह्मीके भेजे गये थे वह समय रामजी अत्रिय राजकुमारके बेथमें थे, इसलिये उन्होंने नारदजीको देखते ही सहसा उठकर प्रशान्त किया—

देखि राम सहसा उठि धाए। करत दंडवत मुनि उड़ लाए ॥
सादर निज आसन बैठाए। जनकसुता तब अग्न पकाए ॥

इससे साफ प्रकट है कि अयोध्यामें रामजीने साधुरूप नहीं धारा था इसलिये नारदजीको प्रशान्त किया था और पर्वासरोवरपर नारदजीने साधुरूप जानकर ही प्रथम प्रशान्त किया था। चालिने अग्न समय श्रीरामजीके जटाधारी साधुरूपका ही प्यान किया था—‘स्याम गान मिर जटा बनाय’।

इसी प्रकार महारानी भगवती सीताने भी अग्नने पतिके स्वरूपका सम्मत बनयात्रामें अनुकरण किया है। जब इन्हानेने छाँड़ाकी अरांग-दाटिकामें सीताजीका दर्शन किया, तब सती-शिरोमणि सीताका शरीर अत्यन्त कृश था और उन्होंने जटाजूट धारण कर रखता था—

कृस तनु सीस जटाइक बनी। जपति हृदय रमुपति गुन-अनी ॥

राष्ट्रण श्रीरामजीको उदासी साधु ही जानता था इर्वामे कहै जगह अग्नने बचनमें गमजीके लिये तपस्ती शक्तिका प्रयोग किया है—‘मम पुर वस नर्तमन मन प्रीना’ ‘कदु नपमिन कर बान बहोरी’। हृष्णादि

यदि किसीको संशय हो कि उदासी भेष तो पहले था ही नहीं परि भगवान् रामचन्द्रजीका नपस्ती, उदासी, साधु भेषमें इन्हा लिखकर कही गोसाई तुलसीदासजीने गहरती तो नहीं की? प्रिय पाठको! गोमाईजीने कहै

गहरती नहीं की है। उन्होंने उपर्युक्त प्रसक्त श्रीकालसीकि रामायणके आधारपर अस्तरशः सत्य लिखा है। लेखिये—

नव पश्च च वर्षाणि दण्डकारण्यमन्तिः ।
चीराजिनधरो धीरो रामो भवतु तापसः ॥
(२।११।२७)

एताशान्याश्च सुहदामुदासीनाः शुभाः कथाः ।

आत्मसम्पूजनोः शृण्वन्ययौ रामो महापथम् ॥

(२।१७।१२)

बेदप्रतिपादित सनातनधर्मी उदासी भेष अनादिकालसे चला आ रहा है। १०८ उपनिषदोंमें ४६ वर्ष निर्वाण उपनिषद् तथा गत्युराण आचार-संग्रह ४६। ६-१० और कृमेयुराण २।७६-८०-८१ वेदनेमें यह बात स्पष्ट हो जाती है।

अन्य कहै पुराणों तथा महाभास्त्रादि इनिहासोंमें उदासी साधुओंकी कथाएँ बहुत प्रकारसे आती हैं। लेख वह जानेके भयमें उदास नहीं की गयीं। गोसाई तुलसीदासजीने अपनी रामायणमें श्रीरामजीको छोड़कर अन्य कहै जगह उदासी साधुओंका बर्णन किया है। जैसे भगवतीके पूजनेपर भगवाज मुनिने अपनेको उदासीन तपस्ती बनाया है—

मुनहु भगव इम मृश न कदही। उदासीन तापस बन रही ॥

आगे चलकर और भी लिखते हैं—

‘सापक मिदू विमुक्त उदासी । कवि कंविन विग्न सन्यासी ॥’

‘प्रमुदित तीरथराज निवासी । देवानम बदु गृही उदासी ॥’

‘मिलहि किरात काँल बनबासी । देवानम बदु गृही उदासी ॥’

‘कहुं कहुं मरिता तीर उदासी । बमहि जानरन मुनि सन्यासी ॥’

स्या आज भी साधु लोग भगवान् श्रीरामचन्द्रके उत्थ आदर्श जीवन और उपरेशका अनुसरण और धारण करके न्याय एवं नपस्ताका परिचय देंगे, जिसमें समझ भारतका कल्याण होकर पूर्य साधु-समाज किए पूर्वक आदर्शीय होकर भारतकी विमल कीर्तिकी गगन-चुम्बी पताका फहराता हुआ संमारणे भगवान् रामचन्द्रकी भक्तिका प्रचार करके स्वयं कृतार्थ होकर औरोंको भी कृतार्थ करेगा!

भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके आशीर्वादसे देशका कल्याण हो।



फ़ारसीमें रामायण

(लेखक—श्रीमहेशप्रतादजी मौलवी, आलिम-फ़ाजिल)



सकामानोंके राज्यकालमें भारतमें हिन्दूसे सम्बन्ध रखनेवाले अनेक प्रम्थोंका अनुवाद फ़ारसीमें हुआ था अथवा वह कहना चाहिये कि अनेक फ़ारसी ग्रन्थ संस्कृत-पुस्तकोंके आधारपर लिखे गये थे। हिन्दू-समाजमें रामायणको जो स्थान प्राप्त है वह सभी जानते हैं। यही कारण है कि फ़ारसीमें भी अनेक रामायणोंपाली जाती जाती हैं।

रामायणको फ़ारसी जामा पहनानेका पता सबसे पहले अकबरके समयमें मिलता है। एक इतिहाससे पता आता है कि सन् १२८२ ई०में 'महाभारत' का फ़ारसी अनुवाद समाप्त होनेके बाद सन् १२८८ ई०में मुहा अब्दुल्लाह़ दिल बदायूनीको रामायणके फ़ारसी अनुवादके लिये आशा हुई। सन् १२८६ ई०में वह अनुवाद समाप्त हुआ। इसके पश्चात् आबश्यकतानुसार उसकी सचित्र और सुसजित प्रति शाही पुस्तकालयमें रखी गयी। यह अनुवाद फ़ारसी पथमें था। इसकी काँइ प्रति कहीं है या नहीं—इस विषयमें मैं अवश्यक कुछ नहीं जान सका। परन्तु फ़ारसीमें जो रामायणोंमें भी इहिसे गुज़री हैं उनका संचित विवरण नीचे दिया जाता है।

(१)

लगभग १२ वर्ष गुज़रे, मैंने 'नद्यतुल उल्मा' नामी लखनऊकी इस्लामी संस्थाके पुस्तकालयमें एक हस्तालिखित फ़ारसी रामायण देखी थी, उसपर लिखा हुआ है—'रामायण फ़ैज़ी'। यह सन् १३३४ ई०की लिखी हुई है। यह अधिकांश फ़ारसी ग्रन्थमें है और इसमें पद्धक अंश बहुत ही थोड़ा है।

सन्नाट् अकबरने जो अनुवाद कराया था, उससे यह ग्रन्थ लिखके पृथक् प्रतीत होता है, क्योंकि सन्नाट्की रामायण सर्वथा पथमें थी। उक्त रामायणमेंसे कुछ अंश इसप्रकार है—

जंग जाहकरे राथन बाफौजे ज़फ़रे मौजे श्रीरामचन्द्र
ए शिक्षस खुरदन व कुरतः शुदन फौजे राथन बदू करदार।

सहर गाहां कि शाहंशाह ख़ाबर दिवाय ज़फ़र दर
अरसा भशरिक वर फ़राप्रत्, ख़ाबर रम्तन इनुमान व

आमुखन न्याह संजीवन व सहीबुल्लाखदन व तम्बुखल
शुदन बहादुराने फ़ौज श्रीरामचन्द्र मुफ़्तसल व मुशरेह
बराबन ज़ाहिर शुद विस्तार ग़मगीन् ग़र्वीदः ब़लते अज़्
ग़ायत किंक नक़रा दीवार हैरत मान्द, बाद अज़् साम्रते
दखेराने फ़ौज ख़ुदरा आमाया पैकार नमूदा बदीं किंम
तरतीब दाद ॥

दूसरी रामायण फ़ारसी पथमें मुख्ता मसीह-हूत है।
मुख्ता साइबके बहुतेरे लोग वह समझते हैं कि वह
पानीपत (करनाल) के निवासी थे पर दरबरसल वह कराना
(जिक्रा सहारनपुर) के निवासी थे। उन्होंने जहाँगीर
बादशाहके ब़मानेमें अपना ग्रन्थ इच्छा किया है—

उक्त ग्रन्थ 'रामायण-मसीही' के नामसे मुंशी नवब-
किशोर साइबके यन्मालय लखनऊसे सन् १८६६ ई० में
प्रकाशित हो चुका है। वह मर्कजे आकारके ३३० पृष्ठोंमें
है। ददाहरवार्य कुछ अंश इसप्रकार है—

शकरे गुफ़तार है शीरीं फ़साना ।
बदीं आंग बसरुद है तराना ॥

कि राये बूद अन्दर किशवरे हिन्द ।

बज़ेरे म़ात मश् बज़ाल ता सिन्द ॥

बशहरे अवध नामश राजा जसरत ।

जै तख्त आसमां मीबुर्द हसरत ॥

पन्द दादन कुम्भकरन रावनरा व एराज़ शुदन रावन
अब ओ—

ज़मी बांसीद व गुफ़त दे शाह दीना ।

दिले मन् मान्दा अस्त इस्तोज़ हैं । ॥

कि अज़ साबम् चरा बेदार करदी ।

ख़िलाफ़ आदतम् आज़ार करदी ॥

मगर कारे दर उफ़तादः बदुशमन ।

कि शोरांदी चुना खुश खान बरमन ॥

बगुफ़ता राम लक्ष्मा कतल कर्द ।

सरासर शहर देवांरा ख़लल कर्द ॥

(३)

तीसरा ग्रन्थ श्रीमान् चन्द्रभान 'बेदिल' हूत पथमें है।
वह ग्रन्थ श्रीरामज़ेके राज्यकालमें किसी समय रचा गया था।

यह भी मुंशी नवबालिशोर साहबके यन्त्रावध जलनदेसे सन् १८७२ ई० में प्रकाशित हो चुका है। केवल ११४ पृष्ठोंमें है।

इस प्रतिसे पेसा भी प्रतीत होता है कि श्रीराम 'वेदिक' जीने रामावधको पहले कारसी गद्दमें दिला था। परन्तु आपकी गण-रामावधका कुछ पता नहीं खगता। बल्कि उसका सर्वथा अमाव प्रतीत होता है। अतः कारसी पण-रामावधका ही कुछ अंश उद्दृत किया जा रहा है:—

मस्तहृ वर अनेकतन् राघव बालहोदर वजीर आजम
जून व करार दावन् वर जंग ।

वरोत्रे दिगर शाहे लेका बतल्त,
बर आमद बसद आब व तावे ते बत्त ॥
हमः बारयावने दरगाह ऊ,
सतादन्द वर जाये खुद रवस ॥
जे शहजादहा अन्दरा मंजुलिसे,
नीशस्तः बजाहाय खुद हर कसे ॥

(४)

जाका अमरसिंह नामक सज्जन जातिके काष्ठल्य थे, इन्होंने संवत् १७८३ विं (१८०५ ई०) में एक रामावध कारसी गद्दमें लिखी थी। यह रामावध वं० माधवप्रसादजी-के उद्योगसे सन् १८७७ ई० में मुंशी नवबालिशोर साहबके यन्त्रावध जलनदेसे प्रकाशित हो चुकी है। इसका नाम 'रामावध अमर-प्रकाश' है। वहे काकारके ४४४ पृष्ठोंमें हैं।

नमूलके रूपमें कुछ अंश नीचे हैं—

कानायान पेरीन चुनीं गुफ़सः अन्द कि दर शहर प्राग
(प्रायग) अज़्य मुज़हिक् शुद्धन गङ्गा व अमुना व सरस्वती
निरंनी नाम तीर्थे अम इर कस दर उमर जून व कर मरतवः
गुप्त उमायद् अज़्याबहाय जन्म अन्म आँन वरवद् व
आँकि बनाम माह मकर गुप्त उमायद् मरातिव ऊ चिः
तवां गुफ़त ? अज़्य अर्थ व काम व मोह व खम' हमः
हासिल शवद् ।

(५)

पांचवें अन्थके लेखक ज्ञान अमानतगवदी हैं। यह जातिके लक्षिय व खालपुर नामक ग्रामके निवासी थे। उस ग्राममें अधिकांश लक्षिय ही थे जो बस्तुतः रखनेकी थे। पर यह विद्या-सेन्ट्रके एक शूर थे।

देवघोगसे बाह आयी। खालपुरकी दशा विगड़ी। ज्ञान अमानतगवदी देवघोगी पहुँचे। इनके विद्वान्ती चर्चा चारों ओर फैली। नवाब अमजद जाली साहबने इन्हें अपने बहाँ नौकर रक्षा और जब नवाब साहब स्वर्गांक सिंहारे तक उनकी बहिन रहीमुखिया बेगम खालालीकी ओविकाकी सहायिका थर्नी। खालालीने पहले 'श्रीमद्यागवत' को कारसी वद्दमें दिला था। देशमें जब उसका अनुज्ञा सत्कार हुआ तो आपने रामावधको सन् १८५४ ई०में कारसी पथका जामा पहनाया।

यह अपूर्व प्रथ्य भी मुंशी नवब लिशोर साहबके यन्त्रावधसे सन् १८७२ ई०में प्रकाशित हो चुका है। १८८ पृष्ठोंमें है। नमूलके रूपमें आरम्भका कुछ अंश नीचे दिया जा रहा है केवल इसके मालाम हो सकता है कि इस रामावधके पथ किरदौरीसाके शाइनामाके समान ज्ञारदार हैं।

फस्तहत वयानाने हिन्दी ज्ञां,
कुनलद ई चुनीं शरहे ई दासां ॥

कि दर नस्ले राजा मनू कामगार,
वसे राजा शुद जीनते रोमगार ॥
दमः साहवे उमला रुये जर्मी,
कर्शीदः जहां तेर भूते नर्मी ॥
अवरदस्त व फ़ियाज़ व आरीहिमम्,
तु बहर व चु अंवे सम्भावत अन्म ॥
अर्जी हा यके ऊ मगर नाम चुद,
तु सुर चुद ऊ ठर जहां आम चुद ॥

(६)

एक अन्य ज्ञानीरके एक परिदृष्ट श्रीबेंजीराम मिशनीके पुत्र परिदृष्ट रामदामवदी कृत है। इसके रखे जानेका समय सन् १८६४ ई० है। मैं इसे अभी तक म्यां नहीं देख सका, इस काष्ठल्य इसकी बाबत और अधिक जहों दिल्ली सकता।

X X X

मम्मव है कि उक्त रामावधकोंके सिंहा कुछ अन्य और भी रामावध कारसीमें हैं, किन्तु उनके विवरमें न तो मुझे अभी कुछ पता ही चला है न उनके देशनेकी नौवत ही आयी है। यदि किसी सज्जनको कुछ और पता हो और वह कृपया मुझे सूचित करनेका कर करें तो मैं उनका आभारी हूँगा।

मराठीमें रामायण

(केस्तृत-पं० लक्ष्मण राम चन्द्र पान्हारकर वी० ५०, सम्पादक 'मुमुक्षु')

३

मराठीमें गुलार्दु तुकसीशासजीकी रामायण जैसी लोकप्रिय है, इच्छिया अर्थात् महाराष्ट्रमें ज्ञानेश्वर महाराजकी ज्ञानेश्वरी-भी बैती ही है। ज्ञानेश्वरी श्रीमद्भगवद्गीता-पर एक अद्वितीय टीका ग्रन्थ है, वह ज्ञान-अक्षिप्रवान है। इसमें अद्वैत-ज्ञानका अक्षिके साथ उल्लङ्घ सम्बोधन है तथा ज्ञान-अक्षिकी पृष्ठरूपता है। मराठी साहित्यके सभी उल्लङ्घ ग्रन्थ ज्ञानेश्वरीके उंगपर ही लिखे गये हैं। ज्ञानेश्वरी, एकनाथजीकी भागवत और रामदासजीका दासबोध इन सीन प्रथमोंको महाराष्ट्र बंड-संस्करण मानता है। नामदेव और तुकारामके अवलंग भी हसी प्रवालोंके हैं। शिवोपासकोंके लिये 'शिवलीजामुन' और दत्तात्रेषके भक्तोंके लिये 'गृहचरित्र' वे दोनों साधप्रदाय-ग्रन्थ भी महाराष्ट्रमें लोकप्रिय हैं। महाराष्ट्रीय अन्न-कर्त्ताकी स्थिति ज्ञानप्रधान है परन्तु उस ज्ञानके साथ अक्षिकी पृष्ठरूपता है। निरे वेदान्त-ज्ञान और कोरी उपासनाका महाराष्ट्रमें विशेष आहर नहीं। ज्ञान और उपासना, ज्ञान और अक्षि, मगुण और निर्गुण, एवं मूर्त और अमूर्त इन सबमें महाराष्ट्रीय मन पूर्ख अभेद मानता है और महाराष्ट्रके समक्ष सन्तानविद्योंका दपदेश भी यही है।

मराठी साहित्यका यह रहस्य समझ लंगेके बाबू मराठीमें रामकथाको किसने कैसे गाया है, यह जानना विशेष आनन्द-प्रद होता है। पर्याप्त महाराष्ट्रमें राम और कृष्णको सब एकरूप ही मानते हैं तथापि स्वामी रामदासने राम और हनुमानकी उपासनाका विशेष प्रचार किया। अन्य अनेक संपुरुष और कवि श्रीकृष्ण अर्थात् विद्वान्के उपासक हैं। 'श्रीराम जय राम जय राम' यह रामदासका मन्त्र है और 'रामकृष्ण हरि' हृष्टोपासकका मन्त्र है। सारांश यह है कि राम-चरित्र और श्रीराम-चरित्र हिन्दूमात्रके लिये सर्वथा पूज्य और प्रिय हैं, और किसीकी किसी भी उपासनासे अविलम्ब है। राम और रामनाम सकल लोकप्रिय हैं।

मराठी भाषामें अनेक सन्तों और कवियोंने रामचरितका गान किया है और रामचरितसम्बन्धी पृथक् उपासनान

तो असंख्य है। राम-नामका गौरव-गृहन अपनी अपनी बुद्धिके अनुसार सभीने किया है।

मराठी भाषामें रामचरितका सर्वोत्तम सुन्दर वर्णन बार-पौराण कवियोंने किया है। इन सबमें सबसे बड़ा अत्यन्त सरस, विद्वाता, प्रतिभा और प्रसादगुणयुक्त, आध्यात्मिक तत्त्वज्ञोंसे निर्मित होनेपर भी श्रीरामकथाके माधुर्यको अत्यन्त बढ़ानेवाला प्रथ्य एकनाथजीका भावार्थ-रामायण है। यह चारीस इजार ओवियों (मराठीका एक छन्द)का प्रकाशद प्रथ्य भाषुकोंको अत्यन्त प्रिय है। वाल्मीकि, अध्यात्म, आनन्द और पोगवारिष्ठ रामायण हस्तादि अनेक संस्कृत-प्रथ्योंमें वर्णित कथाओंको अपनी इच्छानुसार उनकर कविने स्वतन्त्रताके साथ उनका सविस्तर वर्णन किया है। श्रीएकनाथजी महाभागवत भाने जाते हैं और श्रीमद्भगवद्गीतके एकादश स्फङ्खपर लिखा हुई उनका मराठी टीका भी ज्ञानेश्वरीके समान ही लोकप्रिय और सर्वमान्य है। मेरे निर्णयके अनुसार एकनाथजीका काल वि० सं० १२८८ से १२९५ है। भावार्थ-रामायण उनका अन्तिम ग्रन्थ होनेके कारण उसका रचनाकाल वि० सं० १६४६ से १६५२ तक ठहरता है अर्थात् यह ग्रन्थ भी गुमाह तुकसीशासजीके रामायणके समकालीन ही है। श्रीएकनाथजी काशी गये थे। उनका भागवतग्रन्थ काशीमें ही वि० सं० १६३० में पूरा हुआ था। इसके सिवा उनके 'श्रीकृष्णी-स्वयंवर' नामक ग्रन्थकी पूर्ति भी काशीमें वि० सं० १६२८ की रामनौमीके दिन हुई थी। इससे उनका करीब तीन वर्ष काशीमें रहना सिद्ध होता है। इस दीर्घमें एकनाथजी और तुकसीशासजीका काशीमें परस्पर प्रेम-परिचय अवश्य हुआ होगा क्योंकि दोनों ही महाभागवत थे। अवश्य ही दोनोंमेंसे किसीके ग्रन्थमें इस बातका उल्लेख नहीं मिलता।

एकनाथजीकी रामायणमें रामकथा और अहंकारनका उल्लङ्घ एकीकरण है। अतएव उसके अध्ययनसे संगुणप्रेम और अच्छायमज्ञान दोनोंकी साथ ही प्राप्ति हो जाती है। 'श्रीराम सुफलसे बरबरा अपना चरित्र गान करवाते हैं,' इस बातका उन्होंने बड़ी ही मनोहर रीतिसे वर्णन किया है।

‘जागृति माजी वर्ततां। पुडें प्रकाशे रामकथा ।
दुष्कृतपणे ठेवो जातां रामतत्त्वता ।
रामायण दावी ॥१॥

श्रीराम अपनी सत्त्वासे बदलाकार कथा कहता रहे हैं। जागते राम, सोते राम, मनमें राम, मौनमें राम, ग्रन्थ-बच्चामें राम इसप्रकार—

रामे पुर्णिली पाठी खिलिली दटी रामायणी ।

—राम मेरे पेसे पीछे पढ़े कि मेरी इष्टि श्रीरामायणपर अटक गयी। श्रीरामके इरारा इसप्रकार बदलाकार निज गुण-गत करवानेका दुर्दर प्रसङ्ग विरचे ही अन्यकारोंके भाव्यमें होता है। श्रीराम सर्वथा आज-आजन्मा है। अजसे दशेनिद्रय दशरथरूपसे अवतरित हुए, उनकी चार रानियाँ हैं। कौसल्या-सहिता, सुमित्रा-शुद्धमेष्ठा, कैकेयी-अविद्या और उसकी दासी मन्थरा-कुविता। जस्मय आत्म-बोध है, भरत भावार्थ है, श्रीराम पूर्ण आनन्द-विश्राह हैं। इस-प्रकार एकनायजीने रामायणका बहुत ही सुन्दर रूपक बाँधा है। आध्यात्मकथाकी ओर पेसी निर्मल इष्टि रखते हुए भी उन्होंने समस्त कथा-भागका अव्यन्त रसरूपं और मधुर भावमें सविस्तर वर्णन किया है। इन्हमान् जीकी रामभक्ति इतनी असीम थी, एकनायजी कहते हैं—

रामा वाचूनि ब्रह्मज्ञाना आद्यासीना न रोगेन रुगो जाण ।

आमुचे ब्रह्म रघुनन्दन । बोके गर्जून हनुमन्त ॥

वर्यात् श्रीहन्मान् जीने गरजाकर कहा कि राम ही मेरे ज्ञान है, उनके अतिरिक्त सुने कोई दूसरा ब्रह्मज्ञान मही चाहिये। इस पक्ष ही श्रोतीसे कथाके वर्णनकी संस्कृताका पता लग जाता है, विश्वार-भयसे अधिक नहीं लिखा जाता।

एकनायजीके नाती सुनेकरने भी एक शोकबद्ध रामायणकी रचना की है, उसकी शोक-संख्या १७२५ है। महाराष्ट्रके छोटे-छोटे गाँवोंमें अनपढ और पढ़-लिखे लोगोंको—सभी जीं पुरुषोंको श्रीरामकथा और श्रीकृष्ण-कथाका अमृत पिलानेवाला अत्यन्त रसिक और लोकप्रिय कवि या अधिकर। उसने विंसं० १७५५ में हरिविजय और १७६० में रामविजय पूर्वं १७६६ में पाण्डवप्रताप इन तीन सुन्दर अन्योंका निर्माण कर श्रीराम-कृष्णके चरित्रका महाराष्ट्रके कोने-कोनेरूपे प्रकार कर दिया।

महाराष्ट्रमें रामोपासनाका प्रकार बदलेवाले महापुरुष ये श्रीविकाजी महाराजके मोहारुक समर्थ श्रीरामदास। इनका ममय विंसं० १६१५ से १७३८ है। इन्होंने रामायणके दो

कावद लिखे हैं, जिसमें श्रीहन्मान् जीके चरित्रका सविस्तर वर्णन है, पहला सुन्दरकाष्ठ और दूसरा युद्धकाष्ठ। श्रीरामदास-जीने इन्होंने दोनों काव्योंपर रचना की, तथापि उनकी इस रामायणकी अपेक्षा महाराष्ट्रमें उनके लिखे हुए राम-नामके अभंग, पद, कल्पणाएक, सोन्त्र, सर्वथा आदि सुन्दर कविताओंका अधिक प्रचार है और उन्हींसे लोगोंमें रामभक्ति ठिकी है। श्रीरामदासजी रामके अनन्य भक्त थे। इन्होंने श्रीराम और श्रीमाहत्तीजीकी उपासनाका प्रकार किया और रामनवमीके उत्सवको लोकप्रिय बनाया।

मराठीमें रामकथापर लिखनेवाले एक विकास कवि है मयूर-परिषद्वत अथवा मोरोपन्तजी। इनका काल विंसं० १७८६ से १८८१ है। इनकी जीवनी काल्यविवेचनालहित अवसं २४ वर्ष पूर्व मैने प्रकाशित की थी। उसमें इस कविकी रामायणके सम्बन्धमें दो-तीन प्रकरणोंमें कठीय ८० श्लोकोंमें मैने सविस्तर विवेचन किया था। इस कविने १०८ रामायणों लिखी हैं, जिनमें कुछ तो बहुत छोटी उस-चीजों को कांकिता है और कुछ दो-चार इजार शोकांतक पहुँची हैं। इनके ये प्रथ्य बड़े अनुकूल हैं, इन सबकी शोक-संक्षया जोड़नेपर १६ हजारसे अधिक होती है। इन्होंने नामा प्रकारके छन्दोंमें रचना की है। आर्या-रामायण, अनुष्टुप-रामायण, पिण्डितमात्रा-रामायण, विश्वी-रामायण, प्रह्लिदी-रामायण, सकाशा-रामायण, ऋत्विकी-रामायण इत्यादि। इन रामायणोंके नाम छन्दोंके अनुसार ही रखते गये हैं।

कवि मोरोपन्न बडे विहान, साहित्यज्ञ, छन्द-शास्त्रमें निष्ठावात् और अत्यन्त रामभक्त थे। इनकी रामायणोंमें कहूं प्रसङ्ग तो बहुत ही मज़बूत हैं। मोरोपन्ती-रामायण भागों विवरकमात्रकी एक अनुसृत सहि है।

राम

रामके ही चिन्तनमें मनको लगाता रहूँ,
रामके गुणोंका ही स्तुल गत गाऊँ मैं।

रामको निहारा करूँ अनिमेष चक्षुओंसे,
रामको पुकारा करूँ रामको ही ध्याऊँ मैं॥

रामके ही पद-पङ्कजोंका पटपट बनूँ,

रामके ही प्रेमका प्रसाद नित्य पाऊँ मैं।

आशा अभिलाप्या और यही लालसा है मेरी,
राम-नामसे ही राममें हो मिल जाऊँ मैं॥

—भगवतीप्रसाद विपाठी विशारद एम० ८०८८-पक० १००

बंगलामें रामायण



गालकी जनतामें सबसे अधिक हीन ही ग्रन्थों-
का प्रचार है, जिनकी कथाओंको भक्तिपूर्व
हृदयसे सेकड़ों नर-नारी एकत्र होकर सुनते
हैं—कृत्तिवासकृत रामायण, काशीरामदासकृत
महाभारत और कृष्णदासकृत श्रीचैतन्य-
चरितामृत। फॉण्डीसे लेकर राजमहलोंतक
इनकी अवधित गति है। कृत्तिवासी रामायणके
बंगलामें कई संस्करण निकल चुके हैं। इसके रचयिता
पं० कृत्तिवास हैं० सन् १४३२ की वसन्तपञ्चमी रविवारको
बंगलाके नदिया-जिलान्तर्गत फुलिया नामक गाँवमें पैदा
हुए थे। यह गाँव बर्तमान राणाघाटले सात भील दृष्टिया-
पश्चिम है। कृत्तिवासके पितामह मुरारी ओझा अपने
समयके एक सर्वभान्य प्रधान परिवर्त थे। इनके पिताका
नाम बनमाली और माताका मालिनी था। ये आङ्गण थे।

गौड़-नरेशके आदेशसे कृत्तिवासने इस ग्रन्थकी रचना
की थी। रचना इनकी सुन्दर है कि आबाल-बूद्ध-निनिता
मधीके लिये परम आदरकी वस्तु है। इस ग्रन्थने बंगलाकी
जनताको श्रीरामचरित्रसे परिचित कर खर्मभाव और
सामाजिक आदर्शको बहुत ऊँचा उठा दिया है।

कृत्तिवासने वाल्मीकि और अन्यामके सिवा अन्यान्य
पुराणोंका भी आश्रय लिया है। सारी रचना बंगलाके पथार-
छूच्छमें है। भाषा बहुत सरल है। कहीं-कहीं अमृत कथाएँ
हैं। श्रीहन्मानजी जब द्वोषाचल-पर्वतको लेकर आये, सब
उनकी काँखमें तेजपुञ्ज सूर्यदेवको देखकर श्रीरामको बड़ा
आश्रय दुश्मा। उन्होंने पूछा कि 'हन्मान, सूर्यदेवको तुमने
काँखमें कैसे देखा रखा है?' हन्मान बोले—'नाथ ! मैं
पहाड़पर सजीबनी खोज रहा था, मुझे यह डर था कि कहीं
सबेरा न हो जाय। मैं सूर्यके पास गया और हाथ जोड़कर
ठनसे ग्रार्णना की कि आपके बंशज श्रीराम इस समय कट्टमें
हैं, अतएव जबतक श्रीखलमण न जी उड़ें, तबतक आप उदय न हों। परन्तु सूर्यने मेरी बात नहीं मानी।
मैंने सोचा कि सूर्य उदय हो जायेंगे तो बहुत दुरा होगा।
अतः मैं उन्हें एक लाया, इससे अब रात नहीं बीतेगी।'
इसके बाद श्रीरामने सूर्यको दुष्टा दिया। मूल वर्णन इस-
प्रकार है।

कक्षतले ताहार देखिया दिनको।

जिजासा करेन राम पवनकुमारे ॥

कि अद्भुत देखि, 'वापू पवननन्दन ।

तोमार शरीरे केन रविर किरन ॥

हन्मान बोले 'प्रभु कर अवगति ।

आनिवारे औषध गेलाम राताराति ॥

औषधि खूंजिया आमि शिखरे बेडाइ ।

पूर्वदिके दिनपति देखिया ढराइ ॥

पर्वत हर्षते गेनू भास्कोर ठाँई ।

जोड़ हाथ करि स्तव करिनू गोसाँई ॥

तोमार सन्तान अति कातर श्रीराम ।

क्षणेक कदयन-पुत्र करह विश्राम ॥

यात्रत लक्षण दौर नापान जीवन ।

तावत उदय नाहि हइओ तपन ॥

आमार ए वाक्य ना शुनेन दिनघति ।

घरिया एने छि ताइ ना पोहाय राति ॥

राम बलेन, 'वापू एकि चमत्कार ।

ना पोहाय रजनी ना धूचे अंधकार ॥

सूर्येर उदय-जन्य संसार-प्रकाशे ।

छाड़ह भास्कर इनि उठून आकाशे ॥

रामर दब्बने दौर तोले दूरै हात ।

बाहिर हइल तबे जगतेर नाथ ॥

सूर्येर प्रणाम करे पवननन्दन ।

यतेक बानर करे चरण-वन्दन ॥

आरिकर्ता आपन बंशेर दिवाकर ।

शत शत प्रणाम करेन रघुवर ॥

उदय-पर्वते मानु करेन गमन ।

पोहाइल विभावरी प्रकाश भुवन ॥

इसप्रकार बहुत रोचक वर्णन है। इसके अतिरिक्त

श्रीराजकृष्ण रथ महाशयसे भी वाल्मीकिके आधारपर बंगला

पथमें रामायण-रचना की है। माइकेज मधुसूदन वृत्तका

मेघनाद-वध काव्य बड़ा ही रोचक और श्रोतस्वी है।

इनके सिवा बंगलामें वाल्मीकि, अन्यामक और गुसाईंजीकृत

सभी रामायणोंके अनुवाद हो चुके हैं तथा रामायण और

रामायणके पात्रोंपर अनेक महत्वपूर्ण पुस्तकें लिखी गयी हैं।

उत्कल-रामायण

(लेखक—पं० श्रीलोचनप्रसादजी पाण्डे)



बन्धावली के बोलक पं० रामभुन्दर
राथगुह वी० ए० लिखते हैं—हिन्दी-
भाषी प्रान्तोंमें जिस भाँति गुसाईंबी-
कृत रामचरितमानसका प्रचार और
आवर है, बङ्गालमें जिस भाँति
कृष्णास परिवर्त विरचित 'रामायण'
का मान है, दिल्ली-देशमें 'भास्कर-कवि' कृत रामचरित्र
जैसा आवृत है, उसी भाँति उत्कल-प्रान्तमें बलरामदास
कविहारा रचित 'रामायण' का प्रचार है। इन्हें यहि
'उत्कल-बालमीकि' कहा जाय तो अच्छुति न होगी। ये
उदीसाके राजा प्रतापरदके समयमें अर्थात् ईसा की
सोलहवीं सदीमें विद्यमान थे। ये जातिके कवय (उत्कलीय
काव्य) थे। घर इनका श्रीपुरुषोत्तमचेत्र (पुरी) में था।
इनके पिताका नाम महापात्र सोमनाथ था। इनकी जननीका
नाम था मनोमाया। रामायण-चनाके समय इनकी
अवस्था केवल ३२ वर्षकी थी। बालमीकि-रामायणके
आधारपर इन्होंने अपनी रामायणकी रचना की। पर स्थान-
स्थानपर बहुन-सी याहरी और नर्या बातें भी जारी रखी हैं।
हम इनको रामायणको मूल संस्कृत-प्रन्थका अनुवाद नहीं
कह सकते। ३२ वर्षके युवकके लिये इन्हें वहे प्रन्थका
प्रयोग बड़े महासका कार्य कहा जायगा। उन्होंके शब्दोंमें
मुनिये—

(उत्कलीय भाषा :)

सामवेदै॒ सम्भूत ए सत काप्द कहि ,
कृष्णरूप अनन्त अदूरै॒ तनु बहि ।
ताहा प्रसादे मंत्रे सारदा दया कला ,
रामायण प्रन्थ मोर मुख उच्चारिता ॥
चौबिस महम लांक ए गीन रस ,
बालमीक मुनि याहा कलेक प्रकाश ।
विद्वजन मुखरै॒ ये सुनिलै॒ ताहा ,
दया कले मंत्रे ये कमला देवी नाहा ॥
तेनु यहि महाकान्यकु ये बक्ष्य कहि ,
लेक पद ठिक करि गीते बसाइलि ।

उत्कल मुख्ल मोर अलय बयस ,
प्रन्थकला काले मोते बरस बतिस ।
दामा सुत बन जन सुखमोग शिरी ,
अलये आपने देश अछिन्त ता हरि ॥

इन्होंने अपनी रामायणका नाम 'जगन्मोहन-रामायण'
कहा है। उसमें एक लाल पद है—

‘जगन्मोहन’ बलि ए रामायण नाम ।
तथ करि भजिले पाइब विणु स्थान ॥

× × × ×
श्रीजगन्मोहन चरित मुहि कहि ।
रामायण सात काप्द लक्षे पद होई ॥

जागरणेतर जातिके एक व्यक्तिहारा रचित अन्य उपेक्षासे
में देखा जाय, इस भयसे कविने लंकाकाशदमें लिखा है—

मुहि हीन पारी ये विगेय शृङ्ग योनि ।
मुह जने कोप न कीब इहा मुनि ॥

इनकी भाषा अत्यन्त सरस और सरल है। सरलताके
लिये इन्होंने ग्राम्य शब्दोंको साहित्यगत करनेमें आनाकानी
नहीं की है। अपने समयकी लोक-प्रचकित भाषाका बहुना
इनके ग्रन्थभरमें देखा जाता है। वर्णनमें आदमबद-शून्यता
है। कृन्दमें भी स्वच्छन्दना है। किसी एके अवर १२,
किसीके १३ वा १५ और कहाँ-कहाँ १५ और १६ अवर
भी मिलते हैं।

प्रसिद्ध विद्वान् और समाजोचक पं० विजयचन्द्र
मञ्चमदार महोदय लिखते हैं—

Balram Das is not ashamed of using those words freely which soon after his time came to be regarded as vulgar, for the poet reckons himself as one of the common people of the country. Balram Das as a national poet has sung for the people and by making Orissa a miniature world by itself has taught his countrymen to love the land of their birth.

मञ्चमदार महोदयके ऐसा लिखनेका कारण है ।
बलरामदासजीने लंकाकाश रामचन्द्रगति कृष्णास पर्वतको

प्रसिद्ध उद्घास चैत आवा है । उदीसाके कहूं स्थानोंमें
श्रीराम-बलरामको विचरण कराता है एवं 'बालराम' और
'बलाहि' राज्योंका भी उद्घोष किया है ।

बलरामदास आपने समयके प्रसिद्ध भक्तोंमेंसे थे ।
अनशुति है कि एक बार रथयात्राके अवसरपर यश्छे और
पुजारियोंने आपसे अभद्रताका व्यवहार किया था । आप
उस अधमानको न सहकर महोदयिके निकट 'बाँझी मुहान'
में जा कातर होकर भगवान्मोक्षारणपूर्वक रोने लगे । इधर
श्रीजगताथ महाप्रभुका रथ आगे न बढ़ा—खोग सीधे सीधे
कर थक गये । पीछे स्वप्नमें तक्षालीन गवापति महाराजको
वह आदेश हुआ कि मेरे भक्तका आपमान किया गया है ।
उसने भग्ना मौगी जाय और उसे आवरपूर्वक आमन्त्रित किया
जाय, तब रथ चलेगा । वैसा ही किया गया । तबसे
इनकी गत्ता पुरीके प्रधान हरिभक्तोंमें होने लगी । इसी
घटनाको जन्मपत्र किसी बर्झांच कविने लिखा था—

बन्दे ओडिया बलरामदास महाशय ।

जगत्ताथ बलराम वश यार हय ॥

इनकी यह कथा उदिया-भाषणके भक्त-माल कवि
रामदासकृत 'शार्दूल-भक्ति-रसायन' में दी गयी है ।

इनके रखे हुए अन्यान्य ग्रन्थोंके नाम हैं—

- (१) कान्त कोहली (२) अर्जुनगीता (३) बेदा परिकमा
- (४) मृगुणीस्तुति (५) ब्रह्माशृद्भूतोल (६) गुसगीना
- (७) दुर्गास्तुति ।

कहा जाता है कि आपने ग्रैषावस्थामें प्रसिद्ध चैतन्यदेव
महाराजसे बैल्याक्षरमेंकी दीक्षा ले ली थी । खोग इन्हें
'मत बलरामदास' भी कहा करते थे, क्योंकि ये सदैव
हरिनामायन पानकर मत रहा करते थे ।

दधारवार्य २०-२५ पंक्तियाँ हम 'आहि-काषड' से
मही उदृत करते हैं—

नमो नारायण प्रभु कमलारपति ।

नीलगिरि-शिखर ये अपूर्व मूरति ॥

सुन्दर श्रीमुखे नीलगिरि पाप शोभा ।

कि जाणि कि पटन्तर शरद शक्तीप्रभा ॥

नवन-युगल किंवा शतदल पद्म ।

जगत् जीवन नाय परम-आनन्द ॥

सर्व जन निस्तारण सुरगण साहा ।

सर्वदा ये शंख चक्र गदा पद्म बाहा ॥

× × ×

श्रीजगताथहु आजा शिररे मुँ धरि ।

ग्रन्थ बङ्गाणिवा इच्छा आदि अन्त करि ॥

कविने श्रीनीलाक्ष्मा या श्रीलगिरिकी वर्णना तथा
श्रीदास्त्रह जगत्ताथ महाप्रभुके श्रीपुरुषोत्तमधाम(पुरी नगर)
के सुन्दर शब्द-चित्र अद्वित करते लिखा है कि श्रीजगताथ
महाप्रभुको आशासे मैं इस रामायण-रचना-कार्यमें प्रवृत्त
हुआ हूँ ।

कविने पुरीधामहीमें ग्रन्थकी रचना की थी । उस
समय पुरीका नाम पुरुषोत्तमपुरी था । पुरुषोत्तमका उदिया
अपन्नांश नाम 'पुरस्तम' होता है । पाटना नगर विशेषतः
राजधानीको कहा जाता है । इसका समर्थन इन दो
पंक्तियोंसे होता है—

पाटना-नगर नाम पुरस्तम पुरी ।

ब्रह्म मृजि अछि जाहा अति यदि करि ॥

श्रीरामनामकी महिमाका वर्णन करते हुए कवि
बलरामदास लिखते हैं कि पावतीजी श्रीसदाशिवजीसे
जो-ओ प्रभ करती है उन्होंको लेकर रामायणकी असृतसूची
कथा बनी है । एक बार 'कपिलास कम्भर' में जब विश्वनाथ
शिवजी विराजमान थे तब उनसे औ-माय (चतुर्मुख)
ब्रह्माजी मिले । कुशल-जिज्ञासाके पश्चात् शिवजीने ब्रह्माजी-
से कहा कि मेरा शरीर इन दिनों 'बलाहीन हुर्बल' हो रहा
है, इसका कारण क्या है और यह हुर्बलता क्योंकि दूर
हो । ब्रह्माजीने उत्तर दिया कि आपने दृष्टमहाश्वरके
विष्वना उठनेमें जो 'तामस भाव' धारण किया उसी पापसे
यह अस्वस्थता उत्पन्न हुई है । इसके दूर उठनेका एकमात्र
उपाय 'तारक ब्रह्म' का जप करना है, सो आप वही करें ।
कविके शब्दोंमें ब्रह्माजी कहते हैं—

पड़िला तोते से महापापर ये भोग ।

शरीर असुस्थ सावि न पारिबु योग ॥

ऐ सदाशिव तू शोहर बोलकर ।

तारक ब्रह्म नाम तु जपि पाप हर ॥

राम नाम जपिले ये छाडि जिव पाप ।

विश्वामित्र मुनि ऋषि छन्द अनुष्टुप ॥

साधन कर है जिव रामनाम पद—।
 दुर्बलद्वा नाश जिव सुबल आनन्द ॥
 होइव प्रापत तेते सकल पदार्थ ।
 सर्वे लेश नाश जिव होइव सामर्थ्य ॥
 पते होइ रक्षा मुखे सामवेद वेषि ।
 रुद्रहु द्वि 'राम' पद कहिले विशेषि ॥
 कृताङ्गि होइ रहिले से सदाशिव ।
 रक्षाहुर कर्त्याणरे देह सुस्थ देव ॥
 हथादि ।

X X X

वनकासमें जावेके लिये उच्चत श्रीरामचन्द्रजी सीताजीसे
 कहते हैं—

कहारि सङ्ग ते तु गो न करिनु कलि ।
 तेते तुहि रक्षा करयिनु महियिली ॥

गुजरातीमें रामायण

(नै०—शंखुक प्रहाड चन्द्रशेखर दीवान जी)



भुनिक गुजराती, पश्चिमी राजस्थानी और
 प्राचीन गुजरातीसे निकली है। इसके
 नेत्रहर्षी शताब्दीके अन्ततक सो अपन्नंश
 सौरयोनी ही गुजरात और मालवा
 आदि प्रान्तोंमें प्रचलित थी। तदनन्दर
 जगमग सोताबहर्षी शताब्दीके अन्ततक
 पश्चिमी राजस्थानीको बोल-दाढ़ा
 रहा। आचुनिक गुजरातीकी उत्पत्ति सतरहर्षी शताब्दीके
 प्रारंभिक चतुर्थांशसे पूर्व नहीं हुई थी, उस समयसे अंग्रेजी
 शासनकी शिक्षाकी नवीन पद्धतिके प्रारंभकालतक थानी
 १६वीं शताब्दीके पूर्वार्द्धके अन्ततकके समयमें जिस गुजराती
 साहित्यका निर्माण हुआ वह अन्य भाषाओंकी तुलनामें
 नगद्य था। इसके लिया झीकूलके चरित्रसे सम्बन्धित
 महाभारतका अंश गुजरातके ल्यायडारिक और कौशल-
 प्रिय आत्माको जितना जीव सका उतना रामायण जीव
 भी नहीं सकी। गुजराती साहित्यके अनुशीलनसे वह

बात सहज ही समझमें आ सकती है तथापि रामायणके
 सम्बन्धमें मुखे जो कुछ आनकारी प्राप्त हुई है वह
 निश्चिलित है।

सोताबहर्षी शताब्दीमें गुजरातमें भावाय नामक पुक अच्छे
 कवि हो चुके हैं। उनके ढद्य नामक एक पुत्र था।
 सतरहर्षी शताब्दीमें सबसे पहले उसीने रामायणकी
 रचना की। इसी शताब्दीमें महाकवि प्रेमानन्दका शिष्य
 रखेवर हुआ। यह संस्कृतका अच्छा परिदर्श था, इसने
 भी लङ्घाकारणकी रचना की, इसका निवास-स्थान
 कभीही था।

अठारहर्षी शताब्दीमें प्रीतमदास नामका एक साधु
 जेवा जिलेके सन्देशर गाँवमें एक मठमें रहता था। इसको
 वेदान्तका अच्छा अन्यास था। गुजराती और हिन्दीमें
 इसने अनेक प्रन्थों और पदांकी रचना की। इन्होंमेंसे एक
 अध्यात्मरामायण भी है।

उसीसहर्षी शताब्दीके पूर्वार्द्धके अन्ततक शिक्षाकी
 प्राचीन पद्धति ही प्रथिति थी। जिसके कारण अनेक भक्त-
 कवि पैदा हुए इनमेंसे एकका नाम शिरधरदास था।
 यह बहुदाके निकट किसी गाँवके लाड-बनिया थे।
 इन्होंने एक जैन-वर्तमासे संस्कृत और हिन्दी सांस्की और
 उसीके प्रतापसे इन्होंने अनेक पथ-प्रन्थोंकी रचना की।
 इनमें रामायण सुख्य है। गुजरातीमें इन्होंकी रामायण
 मध्यसे अच्छी मानी जाती है और वह जोकप्रिय भी है। इस
 कविके अन्य प्रन्थोंके नाम तुजसी-विवाह, गोकुल-जीवा,
 अस्मेष और मथुरा जीवा हैं। इसके अतिरिक्त इसी
 सहर्षीमें एक रामायण रथकौदभक्त नामक कविकी बतायी
 हुई भी है।

इस शताब्दीके प्रथम चतुर्थांशमें शिक्षाकी नवीन
 पद्धतिका आरम्भ हुआ और दूसरे चतुर्थांशमें उसकी जड़
 गुजरातमें भी जारी और फैलने लगी। और उसके फलस्वरूप
 नथा भारतमें मुद्रणकलाके प्रवेश और प्रचारके कारण
 गुजराती साहित्य भी विभिन्न नूतन दिशाओंमें विकसित
 होने लगा। प्राचीन साहित्यपर भी विशेष और गवधीर
 अन्यथन आरम्भ हुआ और उसके परिणामस्वरूप अवताक
 स्वतन्त्र प्रन्थों और भाषाओंके हृपमें रामायण-सम्बन्धी
 जगमग तीस प्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं।

हाडोती भाषामें रामायण

(लंकाक—श्रीनन्दकिशोरजी सक्सेना)



लक्ष्मानमें कोटा, पूँडी और झाज्जाबाद
रियासतें हाडोती भाषामें प्रसिद्ध हैं। इस
प्रान्त (हाडोती) की ओज़ी वही ही
सुन्दर, रसीली, चिलाकर्क है। भगवान्
श्रीरामचन्द्रजीकी लीलाका गुणानुवाद अब
विभिन्न भारतीय भाषाओंमें हुआ तो वह
प्रान्त भी ऐसा अभागा नहीं था कि
भगवान् रामके गुण-गानसे शून्य रहता।
अस्तु, इस भाषामें भी वहा ही सुन्दर अनुवाद हुआ है।
इस अनुवादकी कुछ पंक्तियां पाठकोंके सम्मुख रखकी
जाती हैं। पाठकगण इनको पढ़कर इसें नहीं, क्योंकि
प्रत्येक प्रान्तकी भाषा निराकी होती है।

श्रीपांडितजी श्रीशिवजीसे भगवान् रामके अवतार-
धारण उन्नेका कारण पूछती हैं—

सदाशिव पूँडूँ, राम अवतार,
पृथ्वीको बांने कैसे उतारें भार
तान (सदा शिव पूँडूँ जी)
निर्जुन बद्ध सुण रयों होया, मनुष्य देहके घार
नूप दशरथके कर्मां लियो अवतार
काई तपस्या करी छी भूपने, जी मूँ जन्मां आर
(सदा शिव पूँडूँ जी)

श्रीशिवजी कहने हैं—

परी उमा मला पँड्या समंचार
रामका अरिद कहूँ अवतार ॥
जब जब दुःख पड़यो री भक्तनपर
होयो धर्मको नाश ।
असुर जब जन्माँ पृथ्वीपर आर
दुखी हो गया गऊ ब्राह्मण देवता
जब हीनो अवतार ॥

विस समय रामलीला होती है उस समय इसे प्राम-
वासी ऐसी तज़्र से गाते हैं कि दर्शकगण सुन्ध हो जाते हैं,
परन्तु समझते हैं केवल हाडोतीवासी ही ।

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी महाराज ताराको विकाप

करते हुए देखकर समझते हैं, वह भी तुम्हें—

जीव अविनाशी पड़ी या देह

पृथ्वी अग्नि गग्न जल वायु, यो कर रख्यो शरीर

बीच मल मूत्र भरीरी या देह ।

जीव अमर छे सुन जे री तारा, किसपर धारयो नेह ॥

परमप्रिय पाठकगण ! इस भाषाकी रामलीलामें
वह आनन्द आता है जो अवर्णनीय है। रामलीला
हो जानेके बाद भी जोगा बारहों भईने रामचरितको वडे
प्रेमके साथ गाते हैं। वास्तवमें भगवान्जी लीलामें जो
आनन्द है वह किसी बस्तुमें भी नहीं है—

अच्युतकेशवं रामनारायणं

कृष्ण-दामोदरं वासुदेवं हरिम् ,

श्रीघरं माधवं गोपिकावल्लभं

जानकीनायकं रामचन्द्रं भजे ॥

द्रविड़ रामायण

द्रविड़ विड्डी भाषामें एक रामायण है। इसमें बहुत
नर्या-नर्या घटनाओंका समावेश है। पाठकोंके
मनोरञ्जनार्थ उसकी कुछ बातें संचेपमें यहाँ
द्रविड़ वी जाती हैं—

द्रविड़देशके राजाका नाम जीमूतवाहन था। एक बार
इसने शत्रुओंसे भयभीत होकर बड़ा और पातालजल्लाके
महाबली और प्रतापी राष्ट्रसराज भीमकी शरण प्रह्लय की।
राष्ट्रसराजके कोई पुत्र नहीं था, और वह बूढ़ा हो चक्का
था। उसने जीमूतवाहनको सर्व सुखस्त्रय-सम्पद समझकर
गोद (दत्तक) ले लिया। जीमूतवाहनका वही एक सुन्दरी
राष्ट्रस-कन्यासे विवाह हो गया। महाराज भीमने जल्ला
और पातालजल्लाके राजसिंहासनपर जीमूतवाहनको बैठा
दिया। इसी जीमूतवाहनके बंशमें भाली, सुमाली और
माल्यवान नामक तीन बलवान राजा हुए थे। परन्तु
विद्याधरदेशके राजा इन्हने उनसे जल्लाका राज्य छीन लिया

जिससे उन्हें भागकर पातालाकड़ामें आना पड़ा। इन तीनोंमें सुमारीके पुत्रका नाम रावधना था। प्रतापवान और दिविजरी राष्ट्रसराज रावय इसी रावधनाका पुत्र था। रावधने विद्याधर-देशके राजा हनुमको पराजितकर कड़ागें पुनः अपना राज्य स्थापित किया। तदनन्तर किञ्चिन्धा-राज्य-को बीतकर वही ब्रह्म और सूर्यजहों राजा बनाया। सूर्यजहे वाखि और सुग्रीव नामक हो जाके थे। रावधने किञ्चिन्धा-राज्यके बदलेमें वाखि और सुश्रीवकी सुख्ती बहिनके साथ विद्याधरना बना चाहा। वाखिको यह प्रस्ताव अच्छा नहीं लगा और हूस विद्यमें सुग्रीव आविके साथ उसका मतभेद हो गया। भगवा बड़ाना उचित न समझकर वाखि राजसिंहासन सुश्रीवको सौंपकर चक्रा गया और सुग्रीव अपनी बहिनका विद्याधर रावयके साथ उसके निर्विघ्र राज्य करने लगा। एक बार सुश्रीवका अपनी छोटी 'सुतारा' से कुछ मनमुदाय हो गया। जिससे बदराकर सुश्रीव राजधानीसे दूर किसी एक दुष्ट मनुष्यने सुश्रीवका रूप बारबाकर किञ्चिन्धामें आकर राज्यपर अधिकार कर दिया। ऐसेसे जब सुश्रीवको हूस अपिय घटनाका पता लगा, तब वह बदराकर अपने प्राणोपम मित्र हनुवर-देशके राजा एवनजयके पुत्र हनुमानके पास उनकी सकाइ लेने गया। राजा हनुमानको अपने चोरोंद्वारा यह संवाद मिला ही था कि क्षेत्रदेशके सूर्यवंशी रामचन्द्र नामक पृथक अति बद्रवान वीर राजकुमार अपने गूर्वीर भाई ब्रह्मवसुहित किसी कारणवश बनाये आये हैं और समीप ही कहीं विचर रहे हैं। हनुमान् स्वयं श्रीरामके पास गया और अग्रिकी सार्वी बनाकर सुश्रीवके साथ उनकी मित्रता करवा दी। राम सुश्रीव दोनोंने परस्पर सहायता करनेकी प्रतिज्ञा की। यह निश्चित हुआ कि राम नक्की सुश्रीवको भागकर मित्र सुश्रीव-को उसका राज्य बापस दिया देंगे और सुश्रीव राम-भगवीनी सीताका पता लगाकर उसे रामके पास लानेके कारणमें सहायता पहुँचायेगा। नक्की और असदी सुश्रीवका चेहरा बहुत ही मिकला-जुला था। हृषिकेये श्रीरामने बहानेमें के लिये असदी सुश्रीवको माला पहना ही और असदी सुश्रीवके साथ बुद्धकर हनुमानकी सहायतासे उसे भागकर असदी सुश्रीवको उसका राज्य बापस दिया दिया। तदनन्तर सीताकी ओरके लिये सुश्रीवने आरों और दूसरे भेजे। इन दूसरोंने बौद्धकर लकड़र दी कि अद्वाका राजा रावधन सीताको

इरकर के गया है। उससे मैं सीताका रोमा-चिह्नाना सुनकर राजा बटायुने उसे दुष्टके अंगुजसे कुकानेका प्रबल किया था, परन्तु वह सफलमनोरथ नहीं हो सका, रावधने उसको मार डाया।

सीताका पता लगनेपर वह प्रथम उठा कि सीताको रावधनके पञ्चेसे कैसे कुकाया जाय। इसपर सर्व-सम्मतिसे यह निश्चय हुआ कि राजा हनुमान् सीताको छोड़ा देनेके निमित्त रावधनको समझानेके लिये कड़ा जायें। हनुमान्-को भेजनेकी यह बोलना बहुत ही युक्तियुक्त थी। उसोंकि हनुमान् रावधनकी भाँति राष्ट्रसंहासन सम्बन्धी थे। कारण, सुश्रीवकी बहिन रावधनको दूरसम्पर्कीय सम्बन्धी थे। असाधारण शूरवीर और कुशलवक्ता तो थे ही। हनुमान् श्रीरामके पाससे कुछ दस्तुर्यं विद्वस्तरूप सीताको देनेके लिये साथ लेकर भेजन्न और विमुख-पर्वतके मार्गसे जड़ा गये और रावधनसे भिजकर उसको सब तरहसे समझाया, परन्तु उसने एक भी बात नहीं सुनी। हनुमान् लौट आये। अब श्रीराम, सुश्रीव और हनुमान् दुबकी नैयारीमें लगे। सुश्रीव और हनुमान्ने अन्यान्य द्वाविदी नदेशोंका सहयोग प्राप्तकर वहीं सेना इकट्ठी की। तदनन्तर बड़ाहृषि करनेके लिये श्रीराम लेनासहित चले। इस शान्त्रामें उन्हें बेलान्धपुर, सुवेदाचल और हंसद्वीप आदि राष्ट्रोंसे होकर जाना पड़ा। उस समय बेलान्धपुरमें समुद्रनामक राजा राज करता था। उसने रामकी सेनाको अपने राज्यमें द्वोकर जानेके लिये मार्ग दिया।

इसप्रकार द्वाविदी की अनुत बातें हैं। यह बर्णन पुराने 'बंगारी' नामक बंगला-मान्धिक-पत्र और भराठीके 'केसरी' नामक पत्रमें प्रकाशित लेखोंके आधारपर किया गया है।

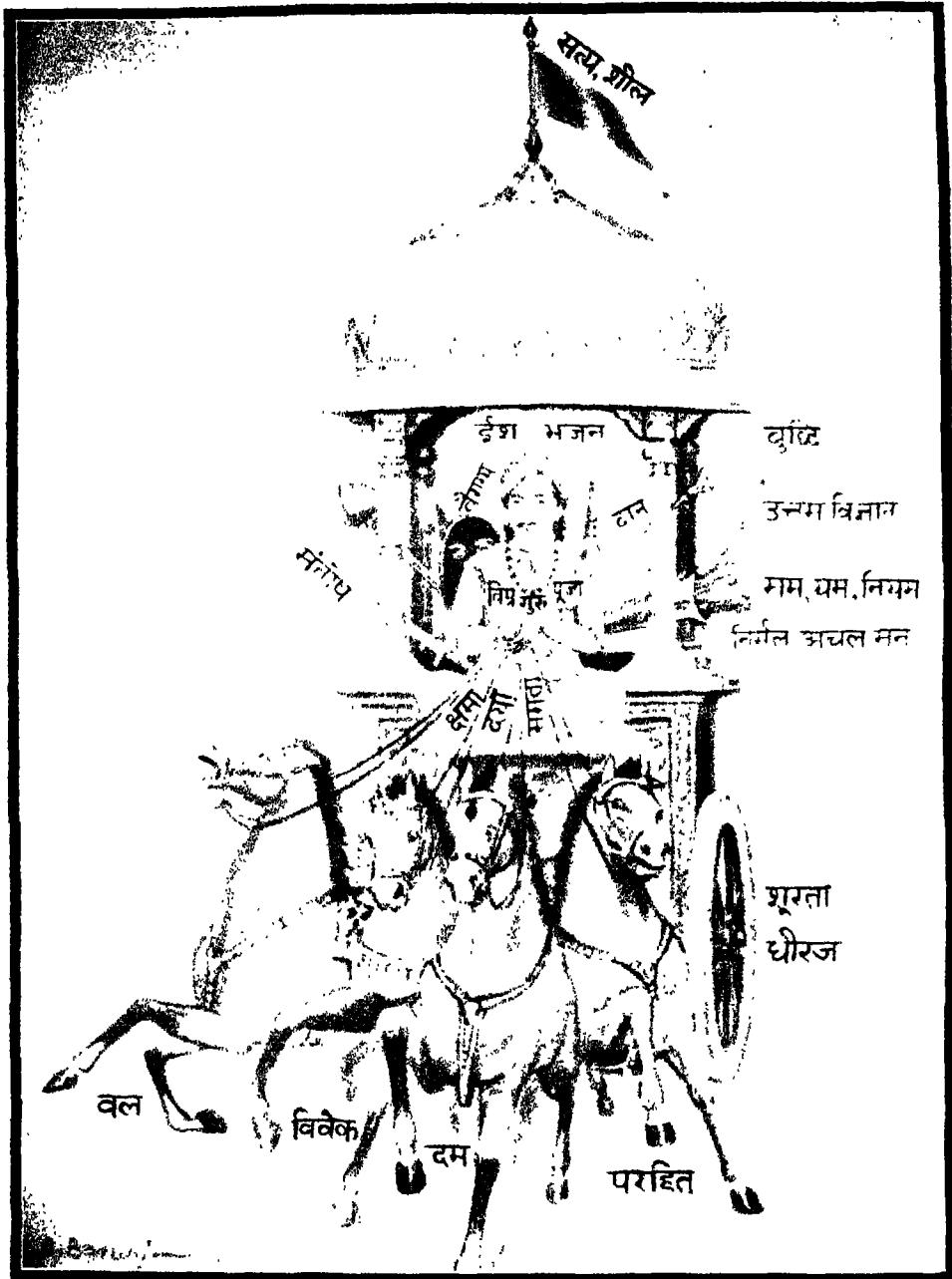
श्रीरामका आदर्श विजय-रथ

सौरज दीरज तेहि रथ चाका। सत्य शील दद ध्वजा-पत्राका।
बहु विवेक दम पराहित धोरे। छमा कृपा समता दिनु जोरे।
ईस-भजन सारथी सुजाना। विरति चर्म संतोष कृपाना।
दान परसु नुषि शकि प्रचंडा। वर विहान कठिन कोदण्डा।
अमल अचल बन त्रान समाना। सम यम निवम सिलीमुखनाना।
कृष्ण अमेद विप्र-गुरु-पूजा। यहि सम विजय उपाय न दूजा।
सका धर्मप्रय अस रथ जाके। जीतन कहै न कतहुँ रिपुताके।

कल्याण

सौरज धर्म जाहि रथ चाका । सरस्य शोल दुन ध्वजा पताका ॥

बल विद्येष दम परहित धारे । कुमा दया समरा रजु जोरे ॥



धैर्य भजन सारथी मुजाहा । विरति वर्ते संतोष इयाना ॥ दान प्रथु वृभि शक्ति प्रवणा । चर विजय कठिन कोवण्डा ॥

अजेय-रथ ।

संयम नियम शिलोमुख नाना । अमल अवल मन त्रोण समाना ॥
कवच अमेद विप्रगुरु पूजा । यहि सम विजय उपाय न दूजा ॥

रामायण और राजनीति

(केसक—काव्यरीथं प्रो० लौटसिंहजी गौतम ४८० ५०, एल० ११०, एम० आर० ५० एस०)



दृष्ट धर्म-प्रम्भोंमें रामायणका स्थान बहुत ऊँचा है। सच्चमुख यह दर्दोंका भयदार है। इस निराके महाप्रन्थका नाम 'पश्चम वेद' रखना सब तरहसे ठीक है। यह धर्म-नीति, राज-नीति और समाज-नीतिके उपदेशोंसे पूर्ण है। इसमें वे सुखभ सधन बताये गये हैं जिनसे मानव-जीवनका पूर्ण विकास और शेषमें अन्तिम लक्ष्यकी प्राप्ति हो सकती है।

भगवान् व्यासकृत अथ्यामरामायण और आदि-कवि-इचित वाल्मीकिनामायण दोनों ही प्रन्थ संस्कृतमें हैं। इन्हीं दोनोंके आधारपर भारतकी विभिन्न भाषाओंमें अनेक रामायणोंकी रचना हुई है। उनमें गोस्वामी तुलसीदासकृत रामनवितमानका स्थान सर्वोच्च माना जाता है।

रामायणने मनुष्य-जीवनकी समस्याओंको बड़े अच्छे ढंगसे हल किया है। गृहस्थमें रहने हुए भी हम अपने अन्तिम ध्येयको प्राप्त कर सकते हैं। इसी विषयका रामायणमें विशद विवेचन किया गया है। विज्ञानको माननेवाले वेदान्ती, बौद्ध और जैन आदि दार्शनिकोंने गृहस्थ-धर्मकी अपूर्णांशिद्ध की थी। पर रामायणमें इन माया, छाया और वैराग्यवादियोंको अच्छा उमर दिया गया है। मनुष्य-जीवनकी सफलताके लिये कुछ मन्दगुणोंकी आवश्यकता है। जीवनमें किसी एक विशेष भुकावकी प्रवृत्तिमें निवृत्तिकी आवश्यकता है। यथार्थ आत्मस्थाग और आत्मामिकताकी जरूरत है जो धर और वन दोनों ही स्थानोंमें सम्भव है। रामायणके प्रधान नायक भगवान् श्रीरामका पदानुसरण करना ही प्रधान साधन है, क्योंकि आदर्श गृहस्थ और संसारके समस्त यति तथा विवासी पुरुषोंसमें श्रीरामकी आरण-पादुका छूनेमें अपना अहोभाग्य समझते हैं।

उपर कहा जा सका है कि रामायणमें धर्म, राज्य और समाजकी नीतिका उपदेश भरा है। प्रस्तुत छोखमें रामायणकी राजनीतिपर ही दो-चार शब्द लिखने हैं। कुछ छोरोंकी आरया है कि 'हिन्दू-सन्ध्यतामें राजनीतिक और सामाजिक संस्थाएँ कभी विकसित नहीं हुईं, यहाँ से जन्मने अवसान

तक और जागनेसे सोनेतक केवल धर्मका ही अवश्यक साक्रान्त छाया रहता है। इसके अतिरिक्त हिन्दुओंके पास और दक्षा ही क्या है? वही एकतन्त्रवाद (Autocracy) और वही राजाको ईश्वर बतानेवाली भेद-सद्वा प्रजा! इतना ही नहीं हिन्दू-राजाओंकी आज्ञा रूपके अत्याचारी जारके समान ही निरकृश होती है। इनमें पाश्चात्य उदार राजनीतिकी कल्पना तो आकाश-कुसुमवन् है। इस निराधार उक्तिका पूर्ण उत्तर स्वतन्त्र लोखमें दिया जा सकता है। इसके दिवाने हनके सुप्रसिद्ध विद्वान् इसकी सारहीनता सिद्ध कर ही चुके हैं। यहाँपर इतना ही कह देना अलग होगा कि रामायणमें उस मनुष्यत्वहीन कठोर राजनीतिका या शासनकल्पका वर्णन अवश्य ही नहीं है जिसके कारण आज सभ्य और असभ्य संसारमें हाहाकार मच रहा है। रामायणकी राजनीति मनुष्यके प्रेम, आत्मस्थाग और सर्वभूत-हितकी भावनापर अवलम्बित है। इस राजनीतिका उद्देश्य लोकसंघ है। दूसरे शब्दोंमें यों कहा जा सकता है कि हिन्दुओंकी राजनीतिका आधार धर्म है। रामायणमें रावणकी राजनीति भी है, पर वह जन्म होनेके कारण व्याप्त है। श्रीरामकी राजनीति ही धर्मानुमोदित और प्राप्त है। नाहिन गम राजके मृसे। धर्मानुग्रह विषय-रस रूप है॥

श्रीरामकी यह भावना ही उत्कृष्ट राजनीति है। पाश्चात्य देशोंमें राजनीतिको ही धर्म समझा जाता है। जघन्य-से-जघन्य कार्य करनेपर भी किसीको राजनीतिक जाभ होता हो तो भी वे उसे धर्म ही मानते हैं। पर श्रीरामकी राजनीतिमें यह बात कदाचित् नहीं। जिस राजनीतिका विकास यूरोपकी पिछुकी चार शताब्दियोंमें हुआ है, समझतः उस राजनीतिका उत्तेज्ज्वर रामायणमें न हो। उसके न होनेमें कोई हानि तो है ही नहीं, मानव-समाजका लाभ अवश्य है। पाश्चात्य राजनीति (Politics) या शासनकला यूरोपके लिये भले ही कल्याणकारक हो, हमारे लिये तो वह घातक ही है। हमारी राजनीति तो मनुष्यता, समता, दया और प्रेमकी गोदमें फली-फूली है। रामायणमें देवर्षि वारवने वाल्मीकिजीके प्रति श्रीरामकी गुणावलिका वर्णन किया है। वहाँ अन्य गुणोंके साथ ही श्रीरामको अत्यन्त उद्दिष्टान्, नीतिमान्, वाम्मी और दयालु बताया है। मेरे

विचारसे तो श्रीराम जिस प्रभ्यके नायक है वह रामायण मारतीय राजनीतिका एक अनूठा ग्रन्थ है। 'अप्रमत्त प्रजां रक्षेत्' प्रमाण छोकर प्रजाको रक्षा करना ही राजाका कर्तव्य है। इस कर्तव्यकी रक्षा रामायणमें आदिसे अन्ततक की गयी है। महर्षि वास्मीकिनो आदर्श राजा, आदर्श राजकुमार और आदर्श राजनीतिका वर्णन किया है।

महाराज दशरथकी उम्र उम्र रही है। आदर्शीकी शरणि शीश होती जा रही है। उन्हें मालूम होता है कि उम्रता न रहनेपर राजधर्ममें विश्वस्तता आ जायगी। उनके श्वेत केश श्रीरामको युवराज बनानेका परामर्श दे रहे हैं। इसी विश्वको गोस्वामी तुलसीदासजीने यों कहा है—

राठ मुमाठ मुकुट कर लीन्हा। बदन बिलोकि मुकुट सम कीन्हा॥
स्वन सभीप भये सित केसा। मनहु जरठन अस उपदेसा॥
नृप युवराज गमकहै देहु। जीवन जनम लाह किन लेहु॥

महाराज दशरथने उसके जार, इट्टीके मुसोकिनी आधाका अभागे भारतके कूर शास्त्रक और गजेशकी भाँति मन-माना फरमान नहीं निकाला। उन्होंने राज्य-परिषद्की बैठकमें सबके सामने कहा—'आप जोग आनते हैं कि इमारा राज्य कैना उत्तम है? इमारे धूर्जोंने पुत्रके समान प्रजाका पालन किया है, मैंने भी वयाशकि आख्यत त्यागकर सेवा की है, अब मैं वृद्ध हो गया हूँ, प्रजा-पालनका धर्म बड़े ही दायित्वका है। अतः मैं श्रीरामको युवराज बनाकर प्रजापालनका भार सौंपना चाहना हूँ। आप जोग निस्तंकोच अपनी सम्मति दीजिये।' उपस्थित वाद्यया, सामन्त, राजा, नागरिक पूर्व राज्य तथा प्रजाके प्रतिनिधियोंने निकाल परामर्श किया और सबने एकमतसे रामको युवराज बनानेकी सम्मति दी। महाराजा दशरथको इसपर भी सन्तोष नहीं हुआ। प्रजा कहीं मेरे दशाकर्मे मेरी रायमें राय न मिला दे, अतएव महाराज दशरथने उनसे फिर पूछा—

कथं नु मयि धर्मेण पृथिवीमनुशासनि।
मवन्तो द्रष्टुमिद्यन्ति युवराजं महाबहूम्॥

'मैं धर्मरक्षक राज्यका शासन कर रहा हूँ, फिर आप-जोग महाबलवान् युवराज रखों चाहते हैं?' उन खोगोंने सुकक्षयसे कहा, 'महाराज! रामके गुणोंको देखकर ही इम पेसा चाहते हैं, अतएव आप शीघ्र ही उनका अभियेक करवाइये।' दशरथकी राजनीतिका अनुमान पाठक इसीमें कर सकते हैं।

श्रीरामके राजनीतिक श्रीबनका श्रीगद्वेष होनेवाला है, राज्याभियोककी तैयारियां हो रही हैं। सब जोग वहे प्रस्तर हैं, पर श्रीरामको जब वह दुभ समाचार मिलता है तब वे सहसा कह उठते हैं—

जनमे एक संग सब माई। मोजन समय केलि लरिकाई॥
विमल बंस यह अनुचित एकू। सबहि बिहार बढेहि अभियेकू॥

श्रीरामकी त्यागमूलक राजनीतिका यह एक आदर्श है। आज भाइयोंमें ज्यूरा-सी भूमि और तनिकसे स्वार्थके लिये खूब-खराबी हो जाती है। इतिहासक जानते हैं कि औरंगजेबने अपने वहे माई दाराको कस्त करवाया, बेचारे मुरादको युका-युकाकर मार डाका, युकाको बड़खोंमें भटकाया और सगे बापको कैद किया तथा मुग़ल-साजाज्य-के बिनाशका बीज बोया। वह सब क्यों हुआ? उसकी अतुल राज्यविप्लवा और बज्ज-स्वार्थके कारण। वह राजनीति रामकी राजनीति नहीं है। वह तो संसारके इतिहासमें एक आदर्श बत्तु है। रामने प्रेममूलक राजनीतिसे गुह निशादको अपने वशमें कर लिया। उसकी वश मन्त्र-मुग्ध नागराजकी-सी हो गयी। ज्यूरा देखिये—

लिय कल मूळ-भेट भरि भाग। मिलन बलेल हिय हरप अपारा॥
करि दंडगत में धरि आंगे। प्रभुहि बिलोकत अति अनुरागे॥

वहाँ कोई इसप्रकार अनुराग-रजित होकर मिलता है वहाँ क्या राजनीतिके सिद्धान्तके अनुसार अङ्गरक्षकोंकी किसी प्रकारकी जेटाकी अपेक्षा है?

राम-बलगमनके पश्चात् आई भरतको वहाँ चिन्ना कर्गी हुई थी कि कहीं राज्यकी कोई प्राचीन प्रथा दृट न आय और वहे माई रामके उत्ते उनसे ज्योटा होनेके कारण शुम्लको राज्य-शासन देना देश और समाजके लिये हानिकर मिल न हो। भरतका गहरी राजनीतिक शिष्टता और नज़रता आदर्श है। वह कहते हैं—

कहीं साँच सब सुनि परतयाहु। आहिय धरमसील नरनाहु॥
मोहि राज हठि देशहु जवही। रसा रसातल जाहिं तवही॥

भरतने आदी राज्यकान्तिका विचारकर श्रीरामसे मिलनेकी इच्छा की और सेनाके साथ अदोज्यासे प्रश्नान किया। गुह निशादको भरतपर सम्बेद हुआ था और उसने उनसे जोहा देना चाहा था। परन्तु भरतकी सातुरासुप विमल गंगाकी धारामें स्नानकर वह निष्पाप हो गया। श्रीरामने वह भरतको सदैन्य आते हुए सुना सो उच्च

राजनीतिक पहुंच कोषके सामने लिखुस नहीं हो गयी । भैरवनूर्ति राम आपने मनमें किसी भी राजनीतिक चालकी आशंकासे विचित्र न हुए । श्रीरामकी यह राजनीतिक परीक्षा भी और वे इसमें उत्तीर्ण हो गये ।

भरत-सुमात समुक्ष मनमाहीं । प्रमु-चित हित-शित पावत नहीं ॥
समाचान तब भा यह जाने । भरत कहे मईं सानु समाने ॥

जलमध्यको बदा कोष आवा । वे युद्धके विचारोंमें
निमग्न हो जानेक कही बातें कहने लगे । और भरत, शत्रुघ्नके
वज्रकी प्रतिज्ञातककी जीवत आ गयी । किन्तु राजनीति-कुशल
श्रीरामचन्द्रकीमें उन्हें समझाया—

सुन्हु लघन भल भरत-सीखा । विधि-प्रपञ्चमहं सुना न दीखा ॥

भरतहि हेइ न राज-मद विधि-हरि-हर-पद पार ।

कबहुकि काँजी-सीकरन्हि छीरसिंहु बिनसाह ॥

यह तो यी रामकी राजनीतिक गव्हीरता, और
कहत भरत-गुन-सील-सुभाऊ । प्रेमपर्याप्ति मगन रघुराऊ ॥

यह यी श्रीरामकी सज्जी भावना । भरत आये और
चरणपातुका लेकर चढ़े गये । श्रीरामके समव अकाशव
साम्राज्यका बदा प्रलोभन था ! किन्तु उन्होंने आपनी
प्रतिज्ञापर स्थिर रहते हुए भरतका प्रेम निवाहा । श्रीराम
आगे चढ़कर मुनिदंसे लिखे । उनके साथ-साथ मुनि-हन्द
भी चढ़ पाए । एक स्थानपर—

अस्थि-समूह देखि रघुरामा । पूछा मुनिन लगि अति दाया ॥

मुनिगव्यने उत्तर दिया--

निसिचर निकर सकल मुनि लाये । मुनि रघुबीर नयन जक लाये ॥

यह या श्रीरामका भाव और यह यी उनकी सहदेवता !
क्या राजा या राजकुमारके लिये आपनी प्रकाका दुःख देखकर
भी उसके निवारणकी चेहा न करना राजनीतिशंखे कहीं
किला है ? यदि नहीं, तो भला क्या राम इस आइशंसे
पीछे पैर रखनेवाले थे ? उन्होंने उसी समय प्रतिज्ञा की—

निसिचर हीन करौं महि भुज डाइ प्रन कीन ।

सकल मुनिन्हके आप्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह ॥

बही है उस राजनीतिककी शक्ति, जिसके भरोसेपर
शासन किया जाता है ।

श्रीराम गोदावरीके तटपर पश्चिमीमें रहते थे । उस
समय—

सूपनका रत्नके बहिनी । हुष्टदम दारून जसि बहिनी ॥

पंचबटी से गह एक बारा । देखि चिकड़ भइ जुगल कुमारा ॥

शूर्पश्यालाने श्रीरामसे विचाहका प्रस्ताव किया ।
श्रीरामने जलमध्यको और जलमध्याले श्रीरामको संकेत किया ।
आपनी हृष्टा पूर्ण न होते देख शूर्पश्यालाको कोष आया
और उसने विचारक भेष भारवा किया । जलमध्यने उसके
नाम और कान काट किये । तदनन्तर सर, दूषण, त्रिशिरा-
समेत औदृह हजार निवारकोंको श्रीरामने भराशायी
किया । शूर्पश्यालाके अपमानका बदला खेनेके लिये रावणने
जगद्बन्धा श्रीजानकीजीको हरनेका निवाय किया और
मारीचके पास आकर सहायता माँगी । श्रीरामचन्द्रकीका
नाम सुनकर मारीच कौप उठा और रावणको श्रीरामचन्द्रसे
कैर न करनेकी सजाह देने लगा । वह एक बार भगवान् का
प्रभाव देख लुका था । श्रीरामके भवसे कह उठा—

राममेव हि पश्यामि गहिते राष्ट्रसेश्वर ।

दृष्टा स्वप्नगतं राममुद्भ्रमामीव चेतनः ॥

रकारादीनि नामानि रामत्रस्तस्य रावण ।

रवानि च रथाद्यैव विनासं जनयन्ति मे ॥

न ते गमकया कार्या यदि मां द्रष्टुमिष्ठासि ।

(वा० रा० ३ । ३० । १७-१८-२०)

‘हे रावण ! जिस स्थानपर गमचन्द्रजी नहीं है वहाँ भी
मैं उन्होंको देखता हूँ । स्वप्नमें रामचन्द्रको देखकर मेरा
मन बदला जाता है और मैं बकने लगता हूँ । हे रावण !
रामचन्द्रसे उरे हुए मुक्को रथ, रथ आदि रकारसे प्रावरभ
होनेवाले पदार्थ भी भयभीत कर देते हैं । यदि मुझे देखना
चाहते हो तो रामचन्द्रकी बात मेरे सामने न कहो ।’

वाल्मीकि-रामायणके अ० का० ४६, ४०, ४१, ४२
सर्गोंमें रावण और मारीचका वाद-विवाद सब राजनीतिशंखोंके
लिये विशेषतया आइनिक शासकोंके देखने योग्य है ।
मारीच रावणको समझता है—

दध्या खल न वध्यन्ते सचिवास्तव रावण ।

मे त्वामुत्पथमारुदं नानुगृह्णन्ति सर्वजा ॥

(वा० रा० ३ । ५१ । ३)

‘हे रावण ! जो मन्त्री कुमारगंगे जानेसे तुम्हें नहीं
रोकते वे बच हैं । तुम उनको क्यों नहीं मार दाकते ?’
परन्तु रावणने तो एक शासकका भ्रत के लिया था । वह
था आजकलकी भाषामें Thorough Administrator
अर्थात् ‘पूर्णशासक ।’ रावणने वहे अभिमानसे बहा था—

अददयं तु मया तस्य संयुगे खरघातिनः ।
प्राणेः प्रियतरा सीता हृतव्या तव सज्जिवौ ॥
एवं मे निश्चिता बुद्धिर्दि मारीच विद्यते ।
न व्यावर्तयितुं शक्या सेन्द्रैषि सुरासुरैः ॥
(वा० २० ३ । ४० । ६-७)

अर्थात् 'खरको मारनेवाले रामचन्द्रके प्राणोंसे प्यारी सीताका मैं अवश्य हरय कहूँगा, सो भी तुहारे सामने ही। मारीच ! यह मेरा निश्चित विचार है। इसको इन्ह, देवता या असुर कोई नहीं बदल सकते ।' रावणने जिस दिन सीताहरयका निश्चय किया था, उभीदिन उमकी भीका नाश होना प्रारम्भ हो गया था ।

श्रीरामकी राजनीतिका पूर्ण परिचय सुधीर-मैत्री और विभीषणकी शरणागतिसे मिलता है। उनकी संगठनात्मक शक्ति बहुत ही प्रौढ़ थी। सभी पहलेपर भगवान् श्रीराम सुप्रीवसे कहते हैं—

तदधीना वयं सर्वे वनेऽस्मिन्भागणं भवान् ।
तस्माद्युध्यस्व भूयस्त्वं मा माशक्षीश वानर ॥
(वा० २० ४१ । १२ । ३३)

'इम सब इस सभी तुहारे अधीन हैं। इस बन्में तुम्हीं इमलोगोंके रक्षक हो। तुम शंका न करो, मुझ युद्ध करो।' सुधीरको समझाउभावकर श्रीराम उसे बाबिसे उद्देशके लिये प्रेरित करते हैं और अन्तमें शालिका वध करने हैं। राजनीतिपर श्रीराम और बालिका बाद-विवाद अनुरूपीकृत करने योग्य है। बालिका राजनीतिक तर्क बदा ही मरम्भशरी है। इसके उत्तरमें श्रीराम यह कहते हैं—

तदेतत्कारणं पदय यदर्थं त्वं मया हनः ।
आनुर्वत्सि भार्यायो त्वक्वा धर्मं सनातनम् ॥
(वा० २० ४१ । १८ । १८)

अर्थात् 'सनातन-धर्मको त्यागकर तुम छोटे भाईकी छोंका उपभोग कर रहे हो इसी कारणसे तुमको मैंने मारा है।' इस उत्तरसे बाबि निम्नर हो जाता है। श्रीरामका सुधीरको राजा बनावा उनकी राजनीतिपटुताका उत्तम उदाहरण है। सुधीरका विषयासक होकर विवर्य करना, किरलालगद्वारा उभको उचित मार्गपर लाना तथा सीताकी खोज करवाना आदि विषय श्रीरामकी राजनीतिक अतुरताके घोतक हैं।

यहाँ एक बात विशेष विचारर्थीय है। मेरे तुम्ह अन्से उपर कपितानुसार रामायण एक राजनीतिक धन्य है परन्तु भगवान् देवत्यासजीका अध्यात्मरामायण आध्यात्मिक

रहिते लिखा गया है। अतः वह आध्यात्मिक रामका गौरव है। और महात्मा तुलसीदासजीका रामचरितमानस भक्तिरससे ड्रावित है। बास्तविक-रामायणमें राजनीतिक अच्छा विवेचन है। इस महाप्रलयमें पद-पदपर राजनीतिक उपदेश दिये गये हैं। बास्तवमें कोई भी रामायण श्रीरामका विषय होनेसे राजनीतिसे शून्य नहीं हो सकती। यदि इस विषयकी गठभौतिक पद विस्तृत विवेचना की जाय तो अधिक स्थानकी आवश्यकता पड़ेगी। अतः सूक्ष्मरूपसे ही इसके सम्बन्धमें कुछ लिखा जाता है।

भगवान् रामने महारानी सीताके अन्वेषणके लिये श्रीहन्मान्जीको भेजा। श्रीहन्मान्जीने बड़ी बुद्धिमत्तासे माता सीताका पता लगा लेनेके बाद अपने शत्रु राजसोंके हृदयपर अपने प्रबल प्रभुत्वका सिक्षा जमाना चाहा। उन्होंने राजनीतिके बार अंगोंमें साम, बान और भेड़के उपयुक्त उप्रयन देख दशकों आयोजना की। अशोक-वाटिकाको उजाहा, 'रामकां' के लिये बैंध गये, लंका जलाया। और अन्तमें पूर्णमनोरथ होकर लौटे एवं सीताका सन्देश रामको सुनाया।

श्रीरामका बानरी सेना समुद्रपर है। रावणका छोटा भाई विभीषण रावणसे फृटफूर भगवान्से मिलने जाता है। बानर उमके आनेके रहस्यको यमक नहीं पाते। यहाँपर श्रीरामचन्द्र जिस उदाहर राजनीतिका वर्णन करते हैं उसे देखकर शत्रु भी मित्र हो सकते हैं। भगवान् कहते हैं 'सबसे पहली बात तो यह है कि विभीषण शरणागत है अनः रक्षीय है। यदि मान भी ले कि वह दशाननका भाई है तो भी हे सखा!—

जगमहं सत्ता निसाचरं जेते । लक्ष्मिन दनह निमित्तमहं तेते ॥
जो समीत आवा मरनाई । गविहं तदिः प्रानकी नंदिः ॥

अतः—

उमय भास्त ले आवहु, हैसि कह इपानिकेत ।

जब विभीषण आया तो रामने 'मुत्र विभाल गहि हृदय लगावा' और बड़ी नक्षत्रासे एका—

स्वरं मंडगी बसदु दिन-गनी । सत्ता ! शमि निबहै केहि भौंती ॥

एक और श्रीरामका आध्यात्मिक, दूसरी ओर विषयको प्रोस्पाइन, तीसरी ओर सबी सहृदयता और उदाहरण। इन सब सुन्दर गुणोंके सम्मिश्रणसे श्रीरामकी राजनीतिमें और भी सौन्दर्य आ जाता है। आगे उल्लङ्घन भगवान् कहते हैं—

जदपि सखा तब इच्छा नाही । मोर दरस अमोघ जगमाई ॥
अस कहि राम तिलक तेहि सारा । सुमन वृष्टि नम भई अपारा ॥

इन चौपाईयोंमें कैसी राजनीति और कितना आत्म-विश्वास है। बानरोंमें कोई भी ऐसा न था जिससे श्रीरामने कुशल-प्रश्न न पूछा हो। यह आदर्श है नेतृत्वका। नेताका कर्तव्य है कि वह सबकी सम्मति के और सबके कल्याण-मार्गको स्थिरकर कार्यक्रमें डारे। श्रीरामको विनयद्वारा समुद्रसे पार जानेका कोई मार्ग नहीं विखलायी देता, अतः यहाँ उनको राजनीतिका रहस्य बतलाना पड़ा।

विनय न मानत जलधि जड़ गये तीनि दिन बीति ।
बोले गम सकेप तब बिनु भय होइ न प्रीति ॥

शक्षिसे भय और भयमें प्रीति, यह राजनीतिका उच्चतम उपदेश है। श्रीरामने इसीके अनुसार कार्य कर समुद्रको अपने वशमें किया।

मंमारके इतिहासमें राजनीतिका बर्णन किसने न पढ़ा होगा। आज भी राजनीतिका पालन होता है। पर श्रीरामकी राजनीति इन सबमें निराली है। उन्होंने सुदूरके भय रावणके साथ पद पदपर राजनीतिका पालन किया है। उन्होंने विभीषणका उचित उपयोग किया है। रामने रावणका नाशकर सुवर्णमयी लक्ष्मा विभीषणको दी और आर्य-संस्कृत-भूम्यताका झण्डा फहराया। तदनन्तर सती भीताको लेकर आयोध्या आये। आयोध्यामें अपने बानरोंको गुरु वशिष्ठका परिचय इन शब्दोंमें करवाया—

पुनि रघुपति सब सखा बोलाये । मुनिपद लग्नु सकल मिलाये ॥
गुरु वसिष्ठ कुल पूज्य हमारे । इनकी कृपा दनुज रन मारे ॥

और गुरु वशिष्ठसे बानरोंके विषयमें कहा—

ये सब सखा मुनहु मुनि मेरे । भये समर-सागर कहु चेरे ॥
मम हित लागि जनम इन होरे । भरतहु ते मोहि अविक पियोरे ॥
मुनि प्रभु बचन मगन सब भये निमिष निमिष उपजत मुख नये॥

एक ओर अपनी विजयका अर्थ गुरुओं और दूसरी ओर अपने सहायक बानरोंको देकर आप तटस्थ रह गये। विजय-अपने सहायक बानरोंको देकर आप तटस्थ रह गये। विजय-अपने ही मस्तकको सुरोभित कर रही थी, परन्तु अपने डसका सारा अर्थ दूसरोंको ही दिया। अहा! राजनीतिक पटुता, सजनता, शिष्टता, कृतज्ञता, नज़्रता और निरभिमानताका कैसा अलौकिक उदाहरण है! इस राजनीतिमें आवश्यकी राजनीतिकी नुशंसता और पष्टुता नहीं है। इसमें महान्धता, नास्तिकता, स्वार्थपरता और अहमन्यता नहीं है। इसमें महान्धता, नास्तिकता, स्वार्थपरता और अहमन्यता नहीं है। एष तो इसकिये दिया जाता है कि वह—

दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवामिरक्षति ।

दण्डः सुहेमु जगति दण्ड घर्म विदुर्वृचाः ॥

(मनु० ७। १८)

भगवान् रामने खोक-कल्याणार्थ रावणके प्राण अवश्य ले लिये। परन्तु उन्होंने उसकी आत्माको अपनेमें मिलाकर उसको शुभ गति दी। तभी तो कहा है—‘कोरेषापि देवस्य वरेण तुन्यम्।’ मारकर भी मोर देना, अपराधीको भी भौतिक बन्धनोंसे छुड़ाकर सुक्षि देना, भगवान्की विश्ववन्धुताके एक अंगका सुन्दर परिचय है। रामायणकी रामकी इसी आवागपर अवस्थित राजनीति नियम खोक-कल्याण-कारिणी है।

यह शंका हो सकता है कि जिस आधुनिक राजनीतिको हेय समझकर उसको निन्दा की गयी है वह भी तो रामायणमें पार्थी जाती है। रावणकी एकान्तनीति ‘भक्षण-भक्षण’ (eat or be eaten) ही थी। जिसका पालन आजकल पाश्चात्य राजतन्त्रमें किया जाता है। श्रीरामने भी बालिवध कर्यों किया था?

इसका उत्तर यह है कि रावणकी नीति रामायणकी इष्टिये त्याग होनेके कारण वह रामायणकी राजनीति नहीं कही जा सकती। श्रीरामका बालि-वध संसारके कल्याणके हेतु अथवा आर्य-संस्कृतिकी उत्तरितके लिये भी आवश्यक था अतः उसमें स्वार्थका दोष देखना भावनिमात्र है। इस विषयपर स्वतन्त्र लेख किया जा सकता है, स्थानाभावसे यहाँ विशेष वर्णन नहीं किया जाता। निससन्देह श्रीरामकी राजनीति खोकसंभ्रह और कल्याणके लिये ही थी।

आज श्रीरामकी राजनीतिमें संसारका पुनः उद्धार-कल्याण हो सकता है। इस प्रजाराजनी राजनीतिसे सेनाकी बदली हुई संख्या लक जायगी। इससे दबे हुए छोटे-छोटे देशोंके साथ न्याय होनेके कारण अनेक भावी विश्रवोंका अन्त हो जायगा। इसके अवलम्बनसे अवधव-विगतित जाति अपना स्वरूप यहचानेगी। इसीसे सत्य, धर्म, वया, न्यायादि मनुष्योचित भावोंकी रक्षा होगी। इससे मानव-समाजके विकाशमें पूर्ण सहायता मिलेगी। रामायणके प्रेमियोंका रामके भक्तोंका कर्तव्य है कि वे श्रीरामकी राजनीतिहारा महान्ध और लड़वादगत मनुष्योंको ही नहीं, बरन् राष्ट्रोंको सुधारकर सम्भागपर जानेका प्रयत्न करें। यह कार्य धार्मिक उत्थान और संसारके कल्याणका है। बोलो राजा रामचन्द्रकी जय!

बालि-वधका राजनीतिक कारण

(लेखक—प० श्रीराजेन्द्रनाथजी विष्णुभूषण)



वह सोताइरणको लेकर ही रामसे रावणका बैर था, सो बात नहीं है। इच्छाकुन्तशील राजाओंसे रावणकी शक्ति बहुत दिनोंसे चली आती थी। इच्छाकुन्तसे नीचेकी पांचवीं शीर्षीके राजा अनरथके साथ रावणका भयानक संग्राम हुआ था, जिसमें रावणके हाथसे अनरथ भारे गये थे। इस युद्धके बहुत दिनों बाद इच्छाकुन्ते दसवें राजा मानवाताके साथ भी रावणका युद्ध हुआ था (उत्तरकावड सर्ग ११२६)। राजा दशरथ भी रावणके पराक्रमसे भली भाँति परिविल थे। इतना ही नहीं, वह रावणके नामसे डरते थी थे। रावण कभी छोटे भोटे उपद्रव नहीं करता था। इन एवं कामोंके लिये तो वह अपने सेवकोंको ही नियुक्त रखता था। जिस कामको दूसरे नहीं कर सकते, वैसे वहे काममें वह स्वयं लगता था। विश्वामित्रने बह वज्र आरम्भ किया, तब रावण ने उसमें विष ढाकनेके लिये मारीच और सुखाहु नामक दो महावर्षी राज्ञोंको नियुक्त कर दिया। यज्ञ-रक्षाका अन्य कोई उपाय न देखकर विश्वामित्र दशरथके द्वरबाटरैं रामको माँगने गये। विश्वामित्रने तरोऽहसु यह आन दिया था कि रामके अन्तिरिक्ष दूसरेसे मारीच-सुखाहु नहीं मर सकते। रावण दिया समुद्रके दस पार काहामें था और विश्वामित्र यज्ञ करते थे उत्तर दिमाक्षरके अन्तःशास्त्रियमें। वहाँ रावण-प्रेरित सुखाहु और मारीच बज्रमें विष करते थे और उनको मारनेके लिये विश्वामित्र आये थे अचोक्ष्याके राजा दशरथके पास रामको माँगने! मानो मारी पृथ्वीमें किसी एक इच्छाका सूत्रपात हो रहा था। विश्वामित्रने सुखमें 'रावण-प्रेरित' रावण सुनते ही दशरथ सहम गये और उन्होंने कपट छोड़कर कहा—

नहि शकोस्मि संग्रामे स्थानुं तस्य दुरात्मनः ।
देवदानवस्त्वं यशा: पत्तगपत्तगः ॥
न सका रावणं सेदुं कि पुनर्मानवा युधि ।
स तु वीर्यवतां वीर्यमादत्ते युधि रावण ॥
ते न चाहं न सकोऽस्मि संयोद्धुं तस्य वा दहैः ।

(गा० रा० ३१२०)

'रावणकी तो बात ही दूर है मैं तो उसकी सेवाके साथ भी युद्ध नहीं कर सकता। फिर मेरे उंच तो है ही किस गिरफ्तीमें?' जो कुछ भी हो विश्वामित्रसे दशरथने रामको विश्वामित्रके हाथ सौंप दिया। अकमय भी वहे भाईके साथ उच्च दिये।

मारीच-सुखाहुका वह हो चुका। रावणके कामोंतक यह संकाद अवश्य ही पहुँचा था और इस संकादसे मारीच-इन्द्रा रामके प्रति रावणके मनमें कैसे भाव पैदा हुए, आदि-कविकी भाषामें इस सम्बन्धमें स्पष्टरूपसे कुछ आवाहत न होनेपर भी रामायणकी घटनाओंपर विचार अनेकसे उस भनोभावका रूप बहुत कुछ समझा जा सकता है। क्रमशः इस विवरणपर विचार कोजिये :

रामके बनगमनके बाद जब भरतने निजिहातासे लौट कर सारी बातें सुनी और सब लोगोंको साथ लेकर रामकी सेवामें उपस्थित हो बापस छोटीनेके लिये उनसे अपन्त आग्रह किया। तब अनेक प्रकारसे समझाकर अन्तमें रामने स्पष्ट ही कह दिया कि 'भाई, मैं नहीं कौहूँगा। पिताजीने जिस प्रकारसे विभाग कर दिया है मैं उसी प्रकारसे राज्य भोग करूँगा—

त्वया राज्यमयोऽयां प्राप्तन्यं लोकसङ्कलम् ।
वस्त्रं दण्डकार्ण्ये मया दत्कलवासमा ॥
प्रवमुक्तवा भद्राराजो विमां लोकसङ्गीचौ ।
न्यादित्रय च महागतो दिवं दशारयो गतः ॥

(गा० रा० ३१२०)

तुम अप्योक्त्वा जाहो और मैं इच्छाकारवय जाना हूँ। तुम्हारे सहाय दशवृश्च हैं तो मेरे साथी बद्धमय हैं। (गा० रा० २१०१) अनेक प्रकारसे समझानेपर भी जब भरत जिसी तरह नहीं माने तब रामने और भी इसासे कहा—'भरत, तुम आजकर मनुष्योंपर रावण करो और मैं बनवार पशुओंका राजा बनूँगा। तुम प्रसङ्ग-हृदयसे नगरको छोट जाहो, हृष्ट मैं भी सहरे इच्छाकारवयमें प्रवेश करूँगा। सूर्य-विश्वामित्र निवारण करने-वाला जब तुम्हारे मालकपर शीतक जाता करेगा। हृष्ट मैं भी बनके हृष्ट-समृद्धोंकी जली जाताका आवय करूँगा। भाई, कुरुक्षेत्रि शत्रुघ्न तुम्हारे सहायता हैं, इसी प्रकार सौमित्र दशरथ वहाँ मेरे प्रधान निवाससे रहेंगे। हम आरों ही

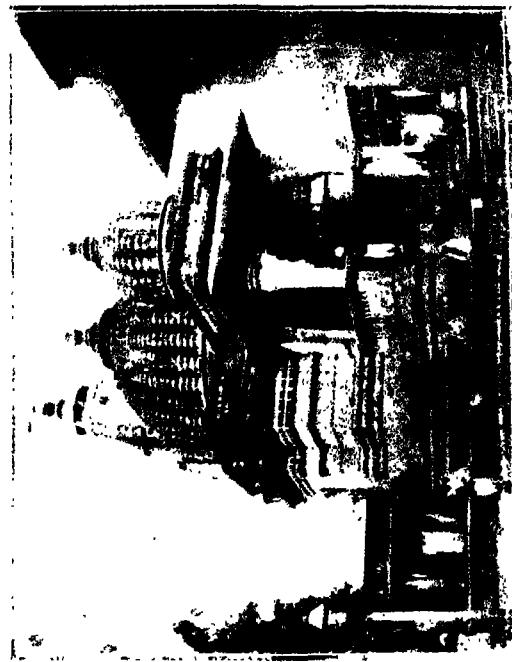
कल्याण

(नामिक पञ्चवटी)

१५



नामिक गोदावरी दृश्य (१)



पंचवटीमें श्रीराम मन्दिर



नामिक गोदावरी दृश्य (२)



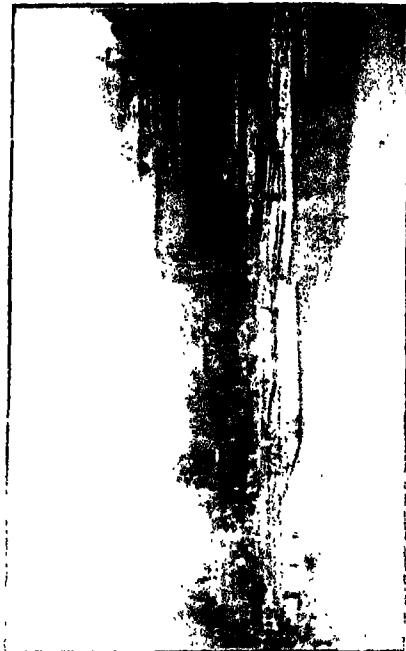
नामिका नाला

कल्याण

(नासिक पञ्चवटी)



श्रीनाथसंकेत मर्दिनरका वाहनी हृष्ण



रामकृष्ण और गंगामन्दिर



गोदावरिपर नारा शंकरका मर्दिन



गोदावरिंगा पुर

भाई महाराजके चार सुनुन्ह हैं अतपर आओ, हम सब मिल-
कर महाराजको सत्यपर स्थिर करें। तुम इसमें किसी
प्रकारकी न तो आपत्ति करो और व विचार ही करो।’
(पा० ३० २, १०७। १० से ११)

रामकी इस उक्तिसे वह प्रतीत होता है कि दशरथ
मानो सबके सामने राज्यका बँडवारा कर गये थे। एकके
लिये अयोध्या और दूसरेके लिये दशदक्षन। श्रीरामचन्द्र
पिताके लिये हुए बँटवारेको शिर चढ़ाकर आज दशदक्ष-
नमें जीवन राज्यकी स्थापनाके लिये चले।

राम-नवनगमनके बहुत पहले से ही राज्यकी विधवा
बहिन शूर्पशाला दशदक्षनमें रहती थी। मदगर्वित,
कोचान्ध राज्यने प्रमादसे शूर्पशालाके स्वामी अपने बहनोंहें-
को मार डाका था। तदनन्दन अपने भौतेर भाई के
नामक राज्यको चौदह हजार सेनाका स्वामी बनाकर और
शूर्पशालाके सेनापति बनाकर शूर्पशालाकी रक्षाके लिये उसके
साथ दशदक्ष बन भेज दिया था। खन-नृपताके अस्ताचारसे
दशदक्षारण्यवासी अधियोंके नाकोंदम हो गया था
और उनके सारे कर्मकायद प्रायः मिट चुके थे। रावण
स्वयं लक्ष्मीमें रहा और विधवा युक्ती बहिनको भेज दिया
समुद्रके उस पार घोर दशदक्षनमें। और फिर उसकी सौज
खबर भी नहीं रक्खी, ऐसा क्यों किया? उत्तर आगे मिलेगा।

रावण कितना बड़ा पराक्रमी और भयहर अपराजेय
थीर था, इस बासको दशरथ भक्तीभूति जानते थे। दशद-
कारकर्यमें रावणका एकाधिपत्य था, वह बात इसीसे सिद्ध
होती है कि बहिन शूर्पशालाके रहनेके लिये रावणने दशदक्ष-
नको ही चुका था। जब विश्वमित्र रावणपक्षीय और
सास रावणके द्वारा ही नियुक्त यश-विभक्तारी सुवाहु और
मारीचको मारनेके लिये श्रीरामचन्द्रको मार्गिने गये थे, तब
रावणके नामसे ही राजा दशरथ कितने अधिक डर गये थे,
वह बात ऊपर कही जा सकी है। राजपरिवारकी प्रधान
और प्रथम सन्तान रामको अस्तम्यसहित विश्वमित्र ले
गये थे। उस समय बालक राम-नवनगमनके प्रति कौशल्या,
सुभित्रा और कैकेयी तीनों ही रानियोंका समान आकर्षण था।
क्योंकि युवराज्याभियेककी बातसे एकतक कैकेयी रामको
खूब चाहती थी, और वहे स्नेहकी इहिसे देखती थी, इस
बातको सभी जानते हैं। ऐसी अवस्थामें रावणके दबके
और रावणके द्वारा ही नियुक्त दोनों राज्यसोंके बधके लिये
विश्वमित्रके साथ राम-बाल्यके जानेकी और साथ ही
प्रबल पराक्रमी रावणके बड़ा-विकल्पी चर्चा राम-माताप्रभामें

अवश्य ही हुई होगी, वह सहजहीमें समझा जा सकता है।
प्रस्तुतः दशदक्षारण्यमें रावण-सौदरा शूर्पशालाका सेना-
सहित निवास करना, वहाँ रावणका एकाधिपत्य होना,
रावणासम्बन्धी अन्य अनेक विषयोंकी आड़ोचना होकर, जी-
त्वाव-सुखम अनेक दन्तकथाओंसे उसका पक्ष रूप बन
जाना भी सम्भूर्ण स्वाभाविक है। अब देखना यह है कि इस
अनुमानकी सार्थकता कहाँ तक होती है।

मन्त्रवाराने अपने कुपरामर्दमें कैकेयीको केवल दो ही
बर माँगनेकी बात सिखायी थी—एकमें रामको औदृष्ट वर्षका
बनवास और दूसरेमें भरतका राज्याभियेक। इसके सिवा
उसने और कुछ भी नहीं सिखाया था। पर जब कैकेयीका
मिजाज़ विगड़ा तब वह मन्त्रवारके हारा कुकुरिलूप बहरकी
चूंट पिलाये जानेसे पूर्व जैसे सोंबढ़हों आने अच्छी थी, वैसे ही,
बहिक उससे भी और अधिक कुरी हो गयी। इसीलिये उसने
मन्त्रवारके ‘बनवास दशदक्षके साथ’ ‘दशदक्षारण्य’ शब्द और
जोड़ दिया। देशमें अयानक जंगल तो और बहुतसे थे, उसे
दशदक्ष ही क्यों बाद आया? निश्चय ही दशदक्षारण्यके
सम्बन्धमें पहलेसे ही उसके मनमें कुछ संस्कार बदलूँ थे।
यह नहीं कि वह स्थान सुखोपभोगके लिये सुन्दर है किन्तु
इसके विपरीत उसकी आरक्षा यह थी कि दण्डक भयहर
राज्यसोंसे पूर्ण रावणशासित होनेके कारण विपरिपूर्ण और
सत्युल्लोके रहनेके लिये सर्वथा अयोग्य है। उसने सुखसे
रहनेके लिये रामको वहाँ नहीं भेजा था। पिता दशरथके
विभागके अनुसार राम दशदक्ष ले और भरत अयोध्यामें
राज्य करें, यह बात भरतको समझानेके समय स्वयं
श्रीरामके मुखसे इम सुन ही चुके हैं।

दशदक्षारण्यमें शूर्पशालाको भेजकर रावण
निरिचन्त था। क्योंकि उसके समुद्र पार जड़में रहने-
पर भी उसका अभिनन्दनद्वय मित्र वीरभेद बाजि तो
दशदक्षके समीप ही राज्य करता था। बालिकी जानकारीमें
रावणकी और रावणकी जानकारीमें बालिकी कोई चित्त
नहीं हो सकती थी या उनपर कोई आपत्ति नहीं आ सकती
थी। वे दोनों अधिको साझी देवर (Offensive-Defen-
sive) सन्धि-सूत्रमें बैंध चुके थे। इस पार बालिका
साग्राम्य था और उस पार रावणका, बीचमें था विराट्-
समुद्र। इस पारसे रावणके राज्यपर आक्रमण करनेवालेको
सबसे पहले बालिके साथ युद्ध करना होगा और उस पारसे
बालिके राज्यपर आक्रमण करनेवालेके साथ सर्वप्रथम
रावणका युद्ध होना अनिवार्य था। इस सन्धिका ग्रस्ताव
रावणने ही पहले किया था। बालिके साथ बड़ा-पराजित

हारकर रावणने उससे कहा 'हे बानर-भ्रेष्ट ! मैंने आपका वज्र अपनी आँखों देख लिया, अब मैं अग्निको सामने रखकर आपके साथ चिरबन्धुव स्थापन करना चाहता हूँ। हे बीरराज !

आजसे हमारे और आपके भी ऊँ पुत्र, घर, राज्य, भोग, आश्चादन, भाजन सब अविभक्त हो गये थानी एक हो गये ।' यह कहकर उसने अग्नि जला दी और दोनोंने परस्पर हृदयसे लगाकर स्नेहपूर्ण आत्मकी स्थापना की । इसके बाद दोनों मित्र परस्पर हाथ पकड़कर महलमें गये । (वा० रा० ७ । ३४ । ४०से४३)

अतएव शूरपंशस्त्राके विहारचेत्र दयडक-वनपर ही नहीं, रावणराज्यके किसी भी अंशपर किसी प्रकारसे भी यदि कोई भारतवर्षसे आक्रमण करने जाता तो उसके सबसे पहले बीरभ्रेष्ट बालिसे लड़ना अनिवार्य था ।

श्रीराम अपने पिताकी आशासे दयडक-वनमें आये । वनवासमें बस वर्षका लड़ा समय अनेक आश्रमोंमें धूमकर और तीन वर्षका समय पञ्चवटीमें रहकर आपने बिनाया । अब केवल एक वर्ष बाकी है, इसी समय रावणने सीताको हर लिया ।

रावणके सदृश दुर्दर्शन गत्सु वृसरा नहीं । लङ्घमें उसका निवास है । ऐसे शाश्वतों के दमन करनेके लिये जो कुछ आवश्यक है सुप्रीव सबसे पहले वही कर रहे हैं—'हे लक्ष्मण ! आप शान्त हों, सुधीव राज्ञसाधम रावणका वधकर रोहिणीके साथ चन्द्रमाकी भाँति सीतासहित रामको लायेंगे । रावणके साथ युद्ध करनेके लिये ही सुप्रीव करोड़ों बानरोंकी सेना एकत्र करनेमें लगे हैं ।' (फि० नं० ३५)

ताराकी हम उकिसे प्रर्णात होता है कि रावणके साथ युद्ध करनेके लिये ही सुप्रीव भीषण और वृहत् आदोजनमें करो दूष है । रावणने भीताको हर लिया, इस बातको सभी जान गये हैं और उसके समुचित प्रतिकारकी चंदा भी हो रही है, यह भी ताराकी बातोंसे स्पष्ट है । परन्तु वही एक विकट प्रभ उपस्थित होता है कि सारी बातें जानेपर भी सुप्रीवने अनेक स्थानोंके नाम बतला-बतलाकर उन देशोंमें आकर सांताके अपहरण करनेवाले रावणका पता खोगानेके लिये बानरोंसे कर्मों कहा ? रावण सांताको लङ्घमें ले गया था, यह बात तो ताराने लक्ष्मणसे पहले ही कह दी थी, किंतु इतिहास-भूगोलके इतने लम्बे स्थानानकी कथा आवश्यकना थी ? सीधे शब्दोंमें लङ्घा कहनेमें ही काम चल सकता था । इस लङ्घाका समाधान किसी अग्ने द्वेषमें किया जायगा ।

आज तो हमें यह देखना है कि रामने केवल सुधीवके साथ मित्रता करनेके लिये ही बालिको मारा या इसमें कोई और भी कारण था ।

श्रीरामने अब भरतको अयोध्या लौट जानेके लिये ओर देकर कहा था । तब यह भी स्पष्ट कह दिया था कि पिताके किये हुए विभागके अनुसार तुम अयोध्यामें जाकर मनुष्योंके राजा बनो और मैं दयडक-वनमें जाकर बन चरोंका 'राज-राज' बनता हूँ । राजा और 'राज-राज' अर्थात् राजाके राजामें बहुत अन्तर है । दयडक-वनमें शूरपंशस्त्राके नाक-कान काटने और खर-न्यूवयको मारनेसे रावणके साथ और शक्ति नहीं हो गयी थी । इस बातसे राम-द्वयमय अपरिचित नहीं थे । शूरपंशस्त्रानेही रामके पूछनेपर यह साफ कह दिया था कि रावण, कुम्भकरण, विभीषण और दूषण आदि मेरे भाई हैं । ऐसी अवस्थामें महाबली रावणकी बहिनके नाक-कान काटनेका कितना भयझूर परिणाम हो सकता है, राजनीति-विशारद श्रीरामके लिये इस बातको समझना बाकी नहीं था । रावणके साथ किञ्चिन्धा-नरेश महार्षी बालिकी मैत्री और सनिधिकी बात पहले कही जा चुकी है । अब यह भी मालूम होता है कि सीताहरणके बाद सहायताके लिये श्रीराम सुप्रीवके माथ मैत्री करनेके लिये तैयार न भी होते और बालिको मारकर सुप्रीवको फिसे गउयगीपर बैठानेकी प्रतिज्ञा न भी करते तो भी उन्हें बालिको तो मारना ही पहला समुद्रके ठम पार लङ्घापति रावणपर आक्रमण करनेके लिये सारा उद्योग इस पार बालिके राज्यमें ही करना था । गवण-बन्धु महार्वीर बालि मिथके विलम्ब रणसज्जाको कभी भहन नहीं कर सकता । सन्धि-सूत्रके अनुसार रावणका शत्रु बालिका भी शत्रु था । अतएव रावणके साथ युद्ध करनेमें पूर्व ही रामको बालिके साथ युद्ध करना पहला । दयडकमें राज्यस्थापन और लङ्घापति रावणके माथ बिवाद यह दोनों ही बातें बालिके जीवित रहते सद्बूज नहीं थीं । अतएव रामका संवयमय कलन्दित हो गया था—बालिको पराजित करना । अन्यथा सीता-उद्धार एक प्रकारमें असम्भव था । इसीलिये श्रीरामचन्द्रने एक दृष्ट दृष्ट गजनीतिज्ञकी भाँति आगे-पीछेकी सारी बातोंको योग-समझकर सुप्रीवके साथ मैत्री और बालि-वधकी प्रतिज्ञा करके उरोड़ों बानर-सेनाकी सहायतामें कलन्दित-सम्भालनका निश्चय किया था । अबश्य ही बालिका प्रतिज्ञाही सुप्रीव इतना गहरा नहीं जा सका । राज्यभ्रष्ट सुप्रीव तो केवल बालिका वध और स्वराज्यका

उद्धार ही आहता था। अपने ये दोनों ही उद्देश्य श्रीरामहारा सिद्ध होते देखकर उनने सेनासहित अपने आपको रामकी सहजारितामें लगा दिया। रामचन्द्र भर्मोपार्जनके लिये वनमें नहीं गये थे। जीवनके प्रारम्भमें राजपुत्र राम अपनी प्यारी कन्याशूलिको छोड़कर जानेको साथ्य हुए थे। प्रकृतिके शीखानिकेतन लियिद दृष्टकारथयमें नवीन और विशाल साक्षात्य स्थापनके लिये ही कृतसङ्करण होकर श्रीरामने दृष्टकमें प्रवेश किया था। वे बीरे थे। उनके लिये कोई भी कारण बुझकर नहीं था। वे प्रसङ्गवित्तसे आमन्वयके साथ अपने दिन बिता रहे थे। इसी बीचमें सीताका अपहरण होनेसे

रावणके साथ युद्धका उद्योग करना पक्का और उसीके अंगीभूत अवश्य कर्तव्यमें बालिवध भी एक कर्तव्य था। अतएव रामपर किसी प्रकार भी दोषारोपण नहीं किया जा सकता। सीताके उद्धारके लिये बालिके राज्यमें रहकर बालिके जीते समुद्रपर पुक्क बाँचना और रावणके सर्वनाशके लिये विपुल उद्योग करना असम्भव था। सीताके उद्धारके लिये सबसे पहले बालिका वध अस्यन्त आवश्यक था। प्रसङ्गवित्त इस बालि-वधके उपराज्यमें सुग्रीवके साथ मैत्री हो गयी। जिससे समुद्र-नद्यन आदि कठिन कार्य बहुत कुछ सहज-साध्य हो गये। यह भी बालि-वधका एक रहस्य है।

रामायण और श्राद्ध-तर्पण

(लेखक—प० श्रीअश्वारामजी शास्त्री, साहित्यभूषण, व्याकरणाचार्य, वेदान्तपाठी)



रांवा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रकी दिव्य लीला और उनके। हारा स्थापित दिव्य आदर्शोंका तथा उनके अनुकरणीय आचरणोंका वर्णन जिसप्रकार श्रीमहारामीकिंजीने अपनी रामायणमें किया है, वैसा वर्णन करनेका सौभाग्य किंतु दूसरे ग्रन्थकारको प्राप्त नहीं हो सका। यही कारण है कि इस प्रन्थमें सब सम्प्रदायोंकी समान अद्या है। और प्राप्तः सभी आस्तिक पुरुष अनुकरण करनेके विचारमें ही इसका अध्ययन करते हैं। इसी अन्यसे प्रसङ्गवित्त श्राद्ध-तर्पण जैसे वटिक विषयपर कुछ विवरण ज्ञाना अनुचित न होगा। आजकल आद्ध तर्पणपर कुछ जोगोंकी अभद्रा बढ़ रही है। इस बातको भी इष्टिमें रखकर यह प्रसङ्ग उपादेय ही प्रतीत होगा।

रामायणमें सर्व प्रथम, अयोध्याकालके ७६ वें और ७७ वें सर्गोंमें, श्राद्ध-तर्पणादिका वर्णन आया है, जहाँ अरतीने महाराज दशरथका और्ज्वर्देहिक संस्कार कर कौसल्या आदि राजियोंके सहित उद्दक्षान दिया है—

ततो रुदन्तो विवशा विलम्ब च पुनः पुनः ।

यानेभ्यः सरयूतीरमन्तेरुनृपाङ्गनाः ॥

रुद्वेदकं ते भरतेन सार्व नृपाङ्गना मन्त्रिपुरोहिताश्च ।

पुर प्रविश्याशुपरीतेनेत्रा भूमौ दशाह व्यनयन्त दुःखम् ॥

(वा० रा० २।७६।२३-२५)

अर्थात् 'रोती-रोती वे जिर्याँ सुरक्षा गर्याँ। उन जोगोंमें बार बार बिकाप किया, फिर वे राजस्थिराँ सरयूके तीरपर सवारियोंसे उतरीं। उन रानियोंने तथा मन्त्री और पुरोहित आदिने भरतके साथ राजा को बालाशक्ति दी। अनन्तर वहाँसे रोते हुए वे नगरमें आये और दूस दिनोंको भूमि-शायन आदिके हारा दुःखपूर्वक बिताया।' तथा—

ततो दशाहेऽतिगते इतशौचो नृपात्मजः ।

दादरेऽहनि संप्राप्ते श्राद्धकर्मण्यकारयत् ॥

प्राणणेभ्यो धने रहं ददावतं च पुष्कलम् ।

वासिनिं बहुशुरुं च गश्चापि बहुशस्तदा ॥

(वा० रा० २।७७।१-३)

अर्थात् 'एस दिन बीसनंपर राजकुमार भरतने व्यारहवें दिनके आमशुद्धि करनेवाले कर्म किये। बारहवें दिन उन्होंने राजा के सब आदकर्म किये और प्राणयोंको धनरक, बहुत-सा अच, अनेक प्रकारके दामी वस, वकरी और अनेक गौर्यं पशान की।

इस प्रकरणमें तर्पण, इवशाहादि, सपिद्धीकरणके अन्तमें आद्ध और पितरोंके उद्देश्यसे दिये गये ब्राह्मणोंके दानका भी स्पष्ट प्रतिपादन मिलता है। जो लोग शङ्का करते हैं कि 'दान अन्यको दिया जाता है और प्राप्त होता है अन्यको', यह बात असङ्गत-सी है। उनको उपर्युक्त उद्दरण-पर आस्तिक-भावसे विचार करना चाहिये। आगे श्रीरामचन्द्रजी हारा किये हुए पितृ-तर्पणादिका उल्लेख पाया जाता है—

ते सुवीर्या ततः कृच्छ्रादुपगम्य यशस्विनः ।
नर्दी मन्दाकिनी रम्यां सदा पुणितकाननम् ॥
शीघ्रलोतसमासाद्य तीर्थं शिवमर्दभम् ।
सिंचित्तुसूदरकं रहे तैतते भवतिति ॥
प्रगृह तु महीपाले बलपूरितमन्त्यहिम् ।
दिशन्वाम्यामिमुखो ददन्वचनमन्तवीत् ॥
पतते राजशार्वूकं विमलं तोयमक्षयम् ।
पितृलोकगतस्याद् मदत्तमुपतिष्ठतु ॥

(वा० रा० २१०३।२४-२७)

अर्थात् 'बे यशस्वी सुन्दर घाटवाली रमणीय मन्दाकिनी नदीके तीरपर बड़े कष्टसे गये । मन्दाकिनी नदीके पासका चत सदा पुणित रहता है । शीघ्र चलनेवाली मन्दाकिनीके सुन्दर और विना कीचड़के घाटपर जाकर उन लोगोंने पिताको यह कहकर जब दिया कि यह जल आपको मिले । श्रीरामचन्द्र अपनी अजलिको जलसे भरकर दिविय दिशाकी ओर मुँह करके रोते हुए बोले—हे राजसिंह, यह विमल और अचर भेरा विद्या हुआ जब पितृकोंमें आपको प्राप्त हो ।

इसप्रकार जबाजिके पश्चात् हङ्की और बेरसे पिलदानादिका भी विचार है—

पेहुंचं बदरैर्मिंशं पिण्यां दर्मसंस्तरे ।
न्यस्य रामः सुदुःखातो ददन्वचनमन्तवीत् ॥
इदं नुक्तं महाराज ग्रीतो यदशना वयम् ।
यद्गः पुरुषो मवति तदनास्तम्य देवताः ॥

(वा० रा० २१०३।२५-३०)

अर्थात् उसपर हङ्की और बेरके फल रखकर, हुसी रामचन्द्र बोले—'महाराज ! प्रसन्नतापूर्वक यह भोजन कीजिये, क्योंकि हमलोगोंका यही भोजन है । मनुष्य जो अच खाता है उसके देवता भी वही अच खाते हैं ।'

इस प्रसङ्गके पश्चात् रामलीके हारा अवानुके तर्पणका वर्णन आया है—'

शाङ्कदेवेन विधिना जलं गृज्ञाय राघवौ ।
स्नात्वा तौ गृप्रराजाय उदकं अक्रनुसदा ॥

(वा० रा० ३।६१।६६)

इसका अभिप्राय स्पष्ट ही है । जटायु देवांश, दिव्य-बद्धशाली पश्चिमाज या तथा राजा दशरथका मित्र था । इसलिये उसके तिर्यग्नेनिमें उत्पत्ति होनेपर भी भगवान् रामचन्द्रलीने उसका तर्पणादि किया । इसी प्रकार किञ्चिन्धा-कायडके २५ बैं सर्गमें सुधीवहारा सम्पादित वाजिके आदाविका तथा युद्धकारणमें विर्मीपणहृत रावणके तर्पणादिका वर्णन आया है । इन अवतरणोंको देखकर स्पष्ट ज्ञात होता है कि आद-तर्पणादिका विधान सनातन है और आर्यग्रन्थोंके आधारपर स्थित सनातन हृत्य है ।

जीवित पुरुषके आदसे इन अवतरणोंका कुछ सम्पर्क ही नहीं है और न आन्तिक पुरुष इनमें अनार्थ भावनार्थी ही कहना करने हैं । अतएव 'मातृ देवो भव, पितृ देवो भव, आचार्य देवो भव' इस श्रुतिके अनुसार इस निर्दर्शकमें अद्वापूर्वक भाग छोड़कर अपना कर्तव्य पालनकर सनातन मर्यादाकी रक्षा करना प्रथेक धर्मप्राण हिन्दूका परम कर्तव्य है ।

राम अटल रहे

रामचन्द्रकी माता कैकेयीने रामचन्द्रके वनवास जानेका वरदान माँगा । दशरथको वह कुकूल करना पड़ा । मासूली तौरपर तो यहां कह सकते हैं कि दशरथ पागल तो नहीं हो गये थे । पर रामचन्द्र क्यों डिगने लगे ? उनसे कहा गया, तुम्हारे वियोगमें पिता रो रोकर मर जायेगे, अयोध्या विघ्वा हो जायगी । पर उन्होंने सब बातोंको तुच्छ समझा—

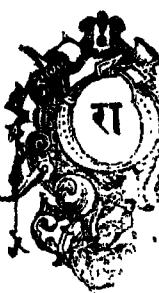
रुकुल रीति सदा चालि आई । प्राण बाह बद बचन न जाई ॥

अयोध्या निस्लंज हुई, दशरथका मृत्यु हुई, पर राम अटल रहे ।……

—महामा गाँधी

रामायणमें सत्य और प्रेम

(लेखक—श्रीसदानन्दजी सम्पादक 'मेसेज'*)



मायदका अहरव श्रीरामचन्द्रजीके वनवासमें निहित है। श्रीरामचन्द्रजीके पिता राजा वशरथने अपनी छोटी रानी कैकेयीको उसकी इच्छानुसार दो वरदान देनेको प्रतिज्ञा की थी। जब रामचन्द्रजीके राज्याभिषेककी तैयारियाँ हो रही थीं, उनकी विमाताने अपने सदाकीके उत्तरको राज्याभिषेकके लिये चुने जानेपर ईर्ष्या करते हुए राजासे अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनेको कहा। एक वरसे उसने श्रीरामचन्द्रके लिये और हवं वर्षका वनवास और शूसरेसे अपने पुत्र भरतके लिये आवाज्याका राज्य मांगा। यह सुनते ही राजाके शिरपर भानो चंगपात हो गया! इस शुभ अवसरपर आकस्मिक ऐसा वरदान माँगनेसे वे दुःखमग्न हो गये। अपनी शूल्यके समयतक भी उनके सुखसे स्वीकृति-सूचक शट्ट भ निकल सके। किन्तु उस युगमें प्रतिज्ञा-पालन अस्थम्त पवित्र कर्म समझा जाता था, प्रतिज्ञाकी अवमानना अस्त्रम्य अपराध था। और वशरथजीको बाहे कितना ही कष्ट कर्मों न महना पड़े, प्रतिज्ञाको पूरा करना उनका धर्म था।

श्रीरामचन्द्रजीने अपनी विमाताने जब अपने पिता के शोकका कारण मुग्न तो वे राजाको शोकमुक्त करनेके लिये स्वेच्छापूर्वक आत्मत्याग करनेको न्याय हो गये। सच पूँछिये तो पिताकी प्रतिज्ञाके लिये रामचन्द्रजी उत्तरदायी नहीं थे, और न राजाने ही उन्हें कोई ऐसी स्पष्ट आशा मिली थी। किन्तु उनकी सत्यके प्रति ऐसी महान् अद्वा थी कि उन्होंने राजाको सत्यके आर्यपथसे गिरते नहीं देखना चाहा, चाहे उन्हें इसके लिये प्राण भी क्यों न देने पड़ें। यथापि सारी प्रजाने उनसे आश्रम किया, भरतने भी स्वयं उनसे प्रार्थना की और अधियोग्योंने समझाया परन्तु श्रीरामचन्द्रजी अपने निष्पत्तपर सुन्दर रहे, कर्मोंकि वह सत्यको ही परमधर्म

समझते थे। जब भरतने रामचन्द्रासन प्रदण्ड करनेके लिये प्रबल युक्तियाँ पेश कीं, जब सारे नार-निवासी प्रार्थना करने लगे तब श्रीरामने कहा—‘सत्यसे बदकर कुछ नहीं है, सच पदार्थोंमें सत्यको ही परम पुनीत बस्तु समझना चाहिये। सत्यपर ही वेद अवलम्बित है। पिताकी आशाका अनुकर्त्तन करनेकी प्रतिज्ञा कर सेनेपर, अब मैं जोभसे, प्रमादसे या अज्ञानसे कभी सत्यकी भर्यादाका उत्तराङ्कन न करूँगा।’

वे इस आत्म-स्वागती कठिनाइयोंसे पूर्व एवं एवं एवं वे अपने सिरपर आनेवाली आपद-विपद्को देखते थे, किन्तु सत्यके निमित्त उन्होंने उनकी कुछ भी परवा न की। आधुनिक कूटनीतिज्ञ उनके इस कार्यको विवेकशूल्य समझेंगे, किन्तु आजकलकी गर्हित कूटनीति जो अद्वसत्य या असत्यके आधार-पर ठहरी हुई है, उस युगमें किसीको मालूम ही नहीं थी। आजकी माँति श्रीरामचन्द्र सत्यको, अपनी आत्माको लूट और परस्वापहरणके बाजारमें बेचनेके लिये तैयार न थे। सांसारिक क्षाभके लिये आसक्ति, जोभ और स्वार्यपरताके हारा अन्ये होनेके कारण, आधुनिक युगमें, इमर्सेसे अधिकांश मनुष्य इसकी महसाका अनुभव नहीं कर सकते। सत्यकी महिमा आज जड़वादके घकाचौंधरमें, जोभ और लूट-खसेटके कूड़े-करकटमें, आहङ्कर और दृभकी धूलमें लुप्त-प्राय हो गयी है। प्राचीनकालके यहूदियोंने सत्यके लिये ईसाको सूलीपर चढ़ा दिया, पर आधुनिक कालके यहूदियोंने सत्यको ही सूलीपर चढ़ा दिया है। श्रीरामचन्द्रजीका युग एक दूसरा ही युग था। आधुनिक कालके हीन मतवाद उस युगके सरल वित्त और ईश्वरसे दरनेवाले जोगोंके हृदयको स्वर्णतक नहीं कर सके थे। किन्तु उस समय भी सत्यके निमित्त श्रीरामकी महत्ती निष्ठाने आत्मत्यागी अधियोग्योंको भी अकित कर दिया था। सत्यकी रक्षाके लिये उनके प्रिय भाई अम्बरेश्वर—जो उन्हें प्राणसे भी प्रिय

*'दी मेसेज'(The Message) अंग्रेजीका सर्वथर्मसमन्वय कारक और प्रेमका प्रचारक बहुत अच्छा मासिकपत्र है, इसमें साधु वास्तवीजीके और सदानन्दजीके बहुत ही महस्त्वपूर्ण लेख रहते हैं। सदानन्दजी बहुत पवित्र भावसे यह कार्य कर रहे हैं। अंग्रेजी जानेवालोंको यह पत्र अवश्य पढ़ना चाहिये। इसका बाहिक मूल्य सिर्फ एक रुपया है। यह गोरखपुर 'आनन्द-आश्रम' से प्रकाशित होता है—सम्पादक।

थे—बन जाना आसान्यागता एक दूसरा उदाहरण है। यह सत्य-प्रेम ही उनके सर्वप्रिय होनेवाला भीषण-सूक्ष्म है, जिसके कारण वे अवतार माने गये हैं।

इसके अतिरिक्त इम रामचन्द्रजीमें उन दक्षितों, अनाथों और पहाड़ी तथा घट्ठी जातियोंके प्रति अग्रणी प्रेमका परिचय पाते हैं, जिन्हें जोग छोटी बजारसे देखते, घुड़ा करते और पश्युवत् घ्यवहार करते थे तथा जिन्हें बन्दर, भालु, निशिचर और राष्ट्रप्रभुति नामोंसे उकारते थे। एतदर्थं इसप्रकारका साहसिक कार्य करनेके लिये एक राजकुमारमें बहुत बड़े उत्साहकी आवश्यकता थी। अन्यतज राजा गुहको मित्रवद् आविक्षन करना, शवरीके जँड़े बेर साना, बानरराज सुधीवके साथ मैत्री, राजसराज विभीषणके प्रति प्रेमभाव, जटायुका दाह-संस्कार करना, शत्रु रावणके मरणोपरान्त उत्साही अन्येहि प्रभृति करना, श्रीरामके वे कार्य जोगोंको इतने प्रिय लगे कि वे उनके लिये प्रत्येक प्रकारका त्याग करनेके लिये तैयार हो गये। बस्तुतः वे जहाँके युद्धमें इन्हीं दक्षित, आतं तथा उत्पेति जोगोंके प्रति अन्यतम प्रेम रखनेके कारण ही विजय प्राप्त कर सके थे। वे उस समय राजा नहीं थे और उनके बास सेनाको देनेके लिये—यहाँतक कि भोजन प्रदान करनेके लिये भी—कुछ न था। किन्तु प्रेमके कारण ही उन्होंने एक विशाख सेनाका सङ्कटन कर दिया, जोग उनके प्रेम और सूख्यवहारसे इतने मुग्ध हो गये कि उनमेंसे प्रत्येकने श्रीरामके लिये अपना जीवन उत्सर्ग करना अपना पवित्र धर्म समझा। हमारे नवयुवकोंको इससे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

श्रीसीताजीके रावणहारा हरे जानेपर श्रीरामने उनके लिये लोकाङ्ग दोक्कर जो विकाप किया है उसीसे उनके पर्वी-प्रेमका पता खागता है। वालमीकिकी इच्छा यहीं वहीं सुन्दर हो गयी है।

श्रीरामका प्रजाके प्रति प्रेम जोक-प्रसिद्ध है ही। 'राम-राज्य' सुन्दर शासनके लिये एक पर्याप्यकाची परम्परागत नाम पद गया है। आधुनिक सरकार इस शासनकासे क्या शिक्षा ग्रहण करेगी?

अपनी प्रजाकी सम्मतिके प्रति श्रीराममें इतना आदर

था कि एक तुष्णि घोबीके विचारसे उन्होंने अपनी आच-प्रिया सीताजी कवनवासके लिये भेज दिया।

श्रीकृष्णजीके चरित्रमें आत्मस्फुलित तथा आत्मप्रेमके पवित्र भाव पूर्णरूपसे विळसित है। वे रामकी विपरितमें स्वेष्टकापूर्वक भाग लेते हैं और रामायणके पाठक अचूकी सरह जाते हैं कि राम-प्रेमके कारण उन्होंने कैसे-कैसे कह प्रसादतापूर्वक सहे थे।

श्रीसीताजी एक आदर्श हिन्दू-महिला थीं, श्री-सुखम गुब्बोंकी अवतार थीं। अपार कर्णों और विष्णियोंकी परवा न करके अपने पतिके साथ बनमें गयी थीं। उन्होंने अपने पतिके साथ बन आनेके लिये आज्ञा भाँगते समय जो तह उपस्थित किये थे, वे उनके स्वामी और प्रभुके प्रति अनुपम भक्तिसे ओतप्रोत थे। इमारे आधुनिक श्री-समाजको सीताजीका अनुकरण करना चाहिये और उससे बद्ध उपदेश प्राप्त करना चाहिये।

श्रीहनूमानका प्रेम और प्रभुमळि, जिसने उनके नाम-को अमर बना दिया और जिसके कारण वे देवताओं प्राप्त हुए, मातृ-जीवनके हतिहासमें एक विजाहत बात है।

सारांश यह है कि रामायण आदिमें अन्ततक सत्य और प्रेमकी विजयका आक्षयानमात्र है। सत्य-प्रेम, पवी-प्रेम, पति-प्रेम, आत्म-प्रेम, मित्र-प्रेम, शत्रु-प्रेम, प्रभु-प्रेम, धून और दक्षितोंके प्रति प्रेम, गिलहरीके समान जोड़े जीवोंके प्रति प्रेम, चारों ओर प्रेम-ही-प्रेम है! और प्रेम ही एकमात्र मुक्तिका मार्ग है। जो जोग इस बातका अनुभव नहीं करते, वे रामायणको व्यर्थ ही पढ़ते हैं। रामायणके प्रयोगा, अमर बशास्त्री अथि बालमालिने ढीक ही कहा है—

इंद्र पवित्रं पापम् पुण्यं वेदैश्च संमितम् ।

यः पठेद्रामचरितं सर्वपौष्पः प्रभुच्यते ॥

पतदाम्ब्यानमायुष्यं पठन्नामायणं नरम् ।

सपुत्रपौष्पः सगणः प्रेत्य स्वर्गं महीयते ॥

जो मनुष्य इस पवित्र, उत्थयमय, वेदार्थप्रतिपादक, आयु-प्रदाता (जीवन प्रदान करनेवाले) रामायणका पाठ करता है, अन्यतन करता है, वह सब पापोंसे कूटकर अपने पुत्र-पौत्रादि सम्बन्धियोंसहित स्वर्गको प्राप्त होता है।

रामायणी-प्रजा

(लेखक—श्रीदत्तात्रेय चालकम् कालेश्वर)



रामचन्द्रजीने खोकादुरभगवान्विभारा-
वत प्रहय किया था वह अभी भी
पूरा नहीं हुआ है। वाल्मीकिने बैसा
विस्ता बैसी ही जीका रामचन्द्रजीको
करनी पड़ी। तुलसीदासजीने उस
रामायण-कथामें बहुत कुछ परिवर्तन
किया। श्रीरामचन्द्रजीको वह भी मंजूर
रखना पड़ा। अच्यात्मरामायण, अनुतरामायण, आनन्द-
रामायण, भावार्थरामायण इत्यादि अनेक प्रासादिक प्रणाली-
में श्रीरामचन्द्रजीको नये-नये रूपमें अपनी जीका विखानी
पड़ती है। भक्तवत्सल प्रभु भक्तोंकी इच्छा पूर्ण करनेके
लिये सभी कुछ महन करते हैं।

रामायणमें भारतीय जीवनका आदर्श चित्रित है।
एवंजीका उद्देश्य आदर्श राजा का वित्र प्रशंसित करना
था। वाल्मीकिने यह चित्र तैयार करके मनुष्य-जातिके
सामने अनन्तकालके लिये रख दिया है। रामायणमें
आदर्श राजा (रामचन्द्र), आदर्श पुत्र (रामचन्द्र),
आदर्श भाई (लक्ष्मण और भगवन्), आदर्श सेवक
(इन्द्रान्), आदर्श भक्त (शबरी), आदर्श पुरोहित
(वशिष्ठ), आदर्श मित्र (गुहक और विभीषण),
आदर्श सहायक (जटायु), आदर्श सचिव (धंगद), आदर्श
पड़ी (कौसल्या, सीता और डमिला तथा मन्दोदरी), आदर्श
शत्रु (रावण), इत्यादि कई सुन्दर आदर्श बताये गये हैं।
क्या हम कह सकते हैं कि रामायणी-प्रजा भी आदर्श है?

रामायणने बताया है कि राजा परवरा और प्रजाकी
इच्छाके अनुसार राज्यके उत्तराधिकारीका निर्णय कर
सकता था। राजा दशरथने प्रजासे पूछा कि राम
तुम्हें पसन्द हैं? जोगोंने आनन्दित होकर कहा, 'अवश्य'
रामचन्द्र ही हमें पसन्द है।' परन्तु कैकेयीने जोगोंकी
पसन्दगीको नहीं माना। बस, जोग तुष्ण्याप बैठ गये।
वेषारे क्या कर सकते थे? रामचन्द्रजीको चौकह वर्षका
दण्डास हुआ, जोग उनके पीछे चढ़े। रामचन्द्रजीने
उनको बापस लौटा दिया। वे रोते-नोते बापस लौट आये।
दशरथजीका देहान्त हुआ। कैकेयीने राजसुत्र अपने
हाथमें लिया। प्रजाने तुष्ण्याप उसे मंजूर कर लिया।

फिर भरतजी आये। उन्होंने राजधानी बदल दी। वह लो
प्रजाको मंजूर ही करना पड़ा।

श्रीरामचन्द्रजी जंगलमें कहीं गये? उनका क्या हुआ? इस बातकी तो प्रजाने कभी कुछ खोज-खबर नहीं दी। सीताका हरया हुआ, बटादुका बध हुआ, रामचन्द्रजीने बाजर और रीछोंकी मदद दी, समुद्रपर सेहु बाँधा, छांकापर हमडा लिया, हुनियाका असाधारण युद्ध हुआ, लेकिन श्रीरामचन्द्रजीको उसका कुछ भी पता नहीं था। हनुमानजी उत्तरसे झोयागिरि ला सके, लेकिन रामायणी-प्रजा दक्षिणसे रामचन्द्रजीकी खबरें भालूम नहीं कर सकी। रावणका बध हुआ, लंका विभीषणको दी गयी, सीताने अम्भि-परीका दी, इन बातोंकी भी इन खोगोंको कोई खबर नहीं थी।

आनन्द लोकप्रिय राजा रामचन्द्रजीके प्रति अनुरक्त
प्रजाकी हत्तीनी उदासीनता क्यों थी? कुछ समझमें नहीं
आता। क्या प्रजाको सुख-खुब नहीं थी? क्या धर्मका
खयाल ही न था? मानो इस तोहमतका निराकरण
करनेके लिये ही रामचन्द्रजी जब सीता और खफ्मणके
साथ विजयात्रा पूरी करके अयोध्या पधारे तब प्रजाने
अपने हक्का सवाल पूछा कि सीता माता रावण-जैसे
तुराचारीके घरमें रहकर कैसे हुदूर रह सकीं? अम्भि-शुद्धि
तो इस जोगोंने देखी ही नहीं है। उसका हत्यार कैसे
करें? रावणके घरमें सीताजी रही थीं, इतना शायद ये सब
जोग देख आये होंगे! इसलिये उस धातपर तो विश्वास
कैसे करें? शास्त्रोंने ही कहा है, 'चक्षुं चलम्।'

ऐसी प्रजाको लेकर रामचन्द्रजीने राज्य किया।
सीताका स्वाग करके सीताकी स्वर्णमयी प्रतिमा पास रखकर
अश्वमेध-पश्च किया। फिर तो वाल्मीकिजी स्वयं सीताको
दोनों पुत्रोंके साथ बापस ले आये। तो भी क्या हुआ—
'शान्तमथवा किमिहोत्तरेण?'

क्या ऐसी प्रजाको पुर्योपर भारभूत समझकर ही
श्रीरामचन्द्रजी अपने साथ निजधान ले गये?

रामायणकालसे यह आवश्यकता मालूम होती है कि
इस देशमें सेवस्वी भव्यप्राण प्रजाका अवतार हो।

रामायणी शक्ति

(लेखक—श्रीनिलोकानन्द गुप्त, अरविन्दधाम—पाठ्यचौरी)

अंग-पूर्व विषयकी इटिसे आत्मनीय होनेपर भी रामायण के केवल एक काव्यमात्र ही नहीं है; रामायण **अंग-पूर्व** है एक शक्ति।

यह रामायणी शक्ति, भारत-शक्तिका एक प्रधान अंग—एक मुख्य स्वरूप है। जिन मन्त्र-शक्तियोंने भारतकी शिवादीशाको, भारतके धर्म-कर्यको एक महान् वैशिष्ट्य प्रदानकर निर्मित किया है, उन सबमें बालमीकिको यह गाथा एक विशेष अवदान है।

प्रथम वेद और उपनिषद्, इनके बाद रामायण और महाभारत, तीसरे पुराण पूर्व चौथे धर्म या स्मृति-शास्त्र हैं। भारतकी समस्त शिवादीशा इन्हीं चार प्रस्थानोंके द्वारा हुई है। इन्हीं चारोंने भारतीय जीवन-प्रतिभाको आहूति और प्रकृति—स्वरूप और स्वभाव प्रदान किया है।

भारतकी आदिमूल माहू-शक्ति है वेद। भारतकी अन्तरात्मा यहीं है। दूसरे छोरपर, भारतके दैहिक आयतनका विभान है स्मृति। यह बाहरी स्थूल कर्मज्ञेत्रका, व्यवहारिक जीवन-यात्राकी व्यवस्था है। इन दोनों छोरोंके—इस अन्तरात्मा और देहके बीचमें जो अन्नःजलयकी पृथक्-पृथक् भूमियाँ हैं, उनका निर्माण किया है रामायण, महाभारत और पुराणोंने।

वेद-उपनिषद् भारत-प्रतिभाको दुनियाव है, पर वह चुनियाव बहुत अन्दर, बहुत गहरी और लोक-इटिसे परे है। उसके सत्य, शाश्वत, अन्यथ, स्थायुने गुसरूपसे पीछेमे प्रमस्त भारतजीवनको धारण कर रक्खा है और वह सबमें शक्तिका सज्जार कर रहा है। दूसरी ओर स्मृति केवल उसकी प्रशास्त्रा-पत्रमात्र है। वह उसके केवल वहिंगका विकास है। स्मृतिका सत्य, देश, काल और पात्रके नियमार्थीन है, वह निष्प एवितनशील है। रामायण-महाभारत भारतीय जीवनके प्रधान काषड हैं, और पुराण हैं इनकी कलिष्य मुख्य शास्त्राएँ।

अन्नरात्माके स्वरूपको, वैदिक औपनिषदिक मिदिको रामायण और महाभारतहीने जीवनमें—प्राणोंके मन्दस्तर-रूपमें सच्चल मूर्ति करके धारण करनेकी चेष्टा की है और पुराणोंने डसी प्राणजीवाको विशद् विवरणाद्वारा स्थाया करके विशेषरूपसे स्पष्ट और विशेषरूपसे निष्प-नैमित्तिक

व्यवहार बनाना चाहा है। आरथयक्षमै साधकमयद्वारा वेद-शक्ति छिपी हुई है। परन्तु जनसाधरणमें, समाजके लीयनमें जो शक्ति प्रकट है वह प्रकाशयमें निकलती है रामायण, महाभारत तथा पुराणोंसे। भारतके विषयको, मूरक्षप्राणाको—जो कार्यकारियी प्रकृतिकी प्रतिष्ठा है—निर्माण किया है रामायण और महाभारतने! पुराणोंने उस विषय धर्मको और भी गोचर और अंकंकृत करके ग्रहण किया है और तदनुसार स्थूलतर मन बुद्धिको उसी साँचेमें डालकर तैयार करनेकी कोशिश की है।

रामायणने भारतकी विशद्वृत्ति, प्राणोंकी धाराको स्पर्श किया है, उसका निर्माण किया है हृष्टयके अवदानसे, तथा सरल सुझामार अथव समर्थ भावशीखनके व्यवस्थासे। परन्तु महाभारतने उन प्राणोंको बाँध किया है स्थिरबुद्धि-स्थित इच्छाशक्तिके—सुहृद मानसिक शक्तिके दबावसे। कहा जा सकता है कि रामायणका मूलमन्त्र है 'सत्य' और महाभारतका है 'धर्म'। मत्ताकी सहज स्फुर्ति ही सत्य है; एक सहज बोध, सरल अनुभव उसे व्यक्त करता है। परन्तु धर्मकी उत्पत्ति है सम्बृद्ध बुद्धिसे, कर्तव्यज्ञानसे और आदर्श-परायनातासे। धर्मकी स्थिति है स्थायसंगत और युक्तियुक्त विचारके आधारपर, परन्तु सत्य तो स्वतःमिद है। वह एक नैसर्गिक औचित्यके आधारपर स्वयं प्रकाशित है।

रामायणके दशरथ, राम, सीना, छत्यरथ, भरत, हन्मान्, सुशील, विभीषण आदि सभी पात्रोंने कर्तव्यके निर्धारण और सम्पादनमें विचार-विवेचनपर विशेष निर्भर नहीं किया है। यदि वहाँ मस्तिष्क पहुँचकर नौल-माप करना चाहता तो कहे पात्रोंकी एकाधिक किया सम्भवतः दूनरे ही प्रकारकी होती। परन्तु ये तो अनुप्राप्तित हुए हैं सहजान स्वभावमिद विवेकसे। इनके कम हैं अन्तराकी एक महात्माके, उदात्ताके, विशालात्माके और उन्मुक्ताके परिमित ! यहाँतक कि ऐकेवी, मन्त्रा एवं शावण-सर्वात्मे पात्र भी अपने विकर्मके पथपर जिसने उस्माहके माध्य चक्षे हैं उसने बुद्धि, युक्ति स्थाया किसी उद्देश्यका स्थाय करके नहीं। इसके विपरीत महाभारतके वीरगण युविहिर, अर्जुन, भीम, द्वीपा, इतरादृ, दुर्योधन आदिमें कर्मका प्रवाह सीधे प्राक्तोंसे उत्सर्त होकर नहीं

आया, वह मार्गों शूष्म-प्रियकर मस्तिष्ठके अन्दरसे होता हुआ बाहर निकला है। महाभारतके महापुरुष श्रीकृष्णमें शुद्धियोग विशेषरूपसे विकसित है। उनकी सीताका प्रधान-मन्त्र ही है 'शुद्धियोग'। परन्तु श्रीराम सरज निरंक प्राणोंको सहज गतिके विश्रह हैं। पाञ्चालीके प्रत्येक पाइनिचेपमें एक परिवर्त, आख्यप्रतिष्ठ, मनका रियर सङ्क्षण, इच्छा-शक्तिकी कल्पना परिस्फुटित है। परन्तु सीताके कर्मके साथ है एक सरज आवगम्भीर्य। उसमें मन, शुद्धि आथवा शुक्लिकी जाव नहीं है।

महाभारतकी शक्तिसे मानो तपरचर्याका, कृष्णवाका गम्भीर, उदाच और कठोर ताप निकल रहा है। रामायणी शक्ति भी शक्तिमान है किन्तु वह एक उदार, महान् प्रसन्नकान्त-गुणसे मयित है। महाभारत उसुक शैक्षणिकर है तो रामायण विशाल जलवि। महाभारत रामायणका आधार है, कृप और दोष आकृत्य होते हुए भी उत्तिवधमं और आचारको प्रवृत्त किये हुए हैं। रामायणके वावभावमें वामण-गुणका परिचय विशेष है। रामायणके नायकके चरित्र होनेपर भी शम, इम, शुचि, अन्तराम्बाकी सरज शुभता, प्राणोंकी सहज महता आदि सच्चे आकृत्यके गुणोंने उनकी प्रकृतिका वैशिष्ट्य रच दिया है। वास्त्वाकिके

इत्योंसे जिस सृष्टिकी रचना हुई है उसका सरवगुण रक्षणात्मको अतिक्रम कर गया है। व्यासकी सृष्टिमें सच्चकी अपेक्षा रक्षणात्मकी ही अधिक प्रधानता है। महाभारत विन-कुपहरीका प्रकार प्रकाश है तो रामायण है पूर्णिमाकी स्तिंश्च ज्योरस्ना।

भारतके प्राणोंमें रामायणी शक्तिने ताल्लू, दुक्षभारता, सहज महापुरुषता, वैसरिंग गतिमा, अनायास सौष्ठुद, अवधपास परिपाठ्य सरबता और आर्कव आदि गुण भर दिये हैं। व्यासदेवका आविर्भाव द्वापरके अन्तमें हुआ था। उनको इमारा निर्माण करना या कलियुगके लिये। सम्भवतः इसी हेतुसे उन्होंने इमारोंगांको विशेष सज्ज, सावधान, दृढ़, कुछ रुद्ध और रुक्ख बनाना चाहा। परन्तु सौम्य सहास्य बाल्मीकिको इसकी आवश्यकता नहीं थी। वे हमारे प्राणोंमें जिस शक्तिका सब्लाकर कर रहे हैं उसमें कोई जबरदस्ती प्रयास और शुद्धिका सङ्क्षण नहीं है। वह शक्ति है वर्द्धनशील शिशु या तस्तुताकी अदृढ़ अव्यर्थ अश्वच प्रशान्त अन्तःसंखिया जीवनी शक्ति, जो हृदयके अन्तस्तुतमें प्रतिष्ठित है।

महाभारतका प्रयास है सत्ताका (गीताकी भाषामें) 'उजिंत' करके निर्माण करना; रामायण चाहती है सत्ताको 'श्रीमान्' करके प्रकाशित करना !

श्रीलक्ष्मण और देवी उर्मिलाका महात्म्य

(केवक—'उर्मिला-पद्म-रज-कण')

रा

मायणमें रामसेवा-प्रती श्रीकृष्णर्याजीका और उनकी धर्मपक्षी श्रीउर्मिलादेवीजीका चरित्र बड़ा ही अनुपम है। लोग कहेंगे कि उर्मिलाके चरित्रका तो रामायणमें कहीं वर्णन ही नहीं है फिर वह अनुपम कैसे हो गया? वास्तवमें उनके चरित्रके सम्बन्धमें कविका मौवावलम्बन ही चरित्रकी परम उत्तमताका सूचक है। उनका चरित्र इतना महान् त्यागपूर्ण है कि कविकी लेखनी उसका चित्रण करनेमें अपनेको असमर्थ पाती है। सीताजी श्रीरामके साथ वन जानेके लिये आग्रह करती हैं, और न के जानेपर प्राण-परित्यागके लिये प्रस्तुत हो जाती हैं। यद्यपि ऐसा करना उनका अधिकार था और इसीलिये श्रीराम अपने पहले वचनोंको पक्षटकर उन्हें साथ दे गये। श्रीरामने जो सीताजीको घर-बैहरमें रहनेका उपदेश दिया था,

सो तो ज्ञाक्षिणा, सती पतिव्रताके परम आदर्शकी स्थापना और पक्षीके प्रति पतिके कर्तव्यकी सविष्टाके लिये था। वास्तवमें सीताको श्रीरामजी बनाने के जाना ही चाहते थे, क्योंकि उनके गये विना रावण अपराधी नहीं होता और ऐसा हुए विना उसकी मृत्यु असम्भव थी जो अवतार भारताका एक प्रधान कार्य था। श्रीसीताजी सावात् जगत्तायिका और श्रीराम सविदानन्दघन थे। वह उनसे कभी अलग रह भी नहीं सकती! केवक पातिव्रतकी बात होती तो सीताजी भी शायद उर्मिलाकी भाँति अयोध्यामें रह जाती। उर्मिला सीताजीकी छोटी बहिन थीं, परम पतिव्रती थीं। वही बहिन सीताजी जैसे अपने स्वामी श्रीराममें अनुरक्ता और उनकी सेवावतधारियी थीं, वैसे ही उर्मिला भी थीं। वह भी सीताकी भाँति ही साथ आनेके लिये प्रेमाद्यह कर सकती थीं, परन्तु उनके घर रहनेमें ही श्रीरामकाजमें

सुमीता था, जिसमें सेवक बनकर रहना उनके पतिका एकलात्र चर्म था और जिसके लिये उर्मिला पूर्ण सहमत और सहायक थी। इन्द्रजित् मेघाद्वादको वरदान था कि जो महाउरुल खगातार बारह वर्षतक फलमूल खायेगा, निद्राका त्वाग करेगा और अखरण ब्रह्मचर्यका पालन करेगा, उसीके हाथोंसे मेघाद्वादका मरण होगा। इसकिये जैसे रावण-बधमें कारण बननेके लिये सीताजीका श्रीरामलीलामें सहयोगिनी बनकर बन जाना आवश्यक था, वैसे ही खरमणजीका भी श्रीरामलीलामें शारिरिक होनेके लिये तीव्र महाब्रत-पादानपूर्वक मेघाद्वाद-बधके लिये बन जाना आवश्यक था और ठीक इसी तरह उर्मिलाजीका भी राम-जीवाको सुखारुपसे सम्पन्न करानेके लिये ही, जो दम्पतिके जीवनका ब्रत था, घरपर रहना आवश्यक था। उर्मिलाजी साथ जाती, तब भी खरमणजीका महाब्रत पालन होना कठिन था और वे घरपर रहते तब तो कठिन था ही।

यह बात श्रीखरमणजीने उर्मिलाजीको अवश्य समझ दी होगी या महान् विभूति होनेके कारण वह इस बातको समझती ही होंगी। इसीसे उन्होंने पतिके साथ जानेके लिये एक शब्द भी न कहकर आदर्श पातिव्रत-चर्मका वैसा ही पालन किया, जैसा श्रीसीताजीने साथ जानेके लिये प्रेमाग्रह करके किया था। घर रहनेमें ही पति खरमणजीका सेवाचर्म सम्पन्न होता है, जिन रामकी सेवाके लिये खरमणजी अवतीर्ण दृष्टि दृष्टि के वह सेवाकार्य इनीमें सफल होता है। यह बात जाननेके बाद आदर्श पतिव्रता देवी उर्मिला कैसे कुछ कह सकती थी? वह आजकलकी भाँति आंगकी भूली तो थी ही नहीं। पतिकी चर्मरक्षामें सहायक होना ही पर्णीका चर्म है, इस बातको वह कूप मममती थी और वही उर्मिलाजीने किया।

जोग कहते हैं कि 'खरमण वहे निहृ थे, राम तो सीताको साथ ले गये, परन्तु खरमणने तो उर्मिलासे बात-तक नहीं की।' पर वह क्या बात कहते, वह इस बातको कूप जानते थे कि मेरा और मेरी पर्णीका एक ही चर्म है। मेरे अर्थपालनमें मद्भूतप्राणा कर्तव्यपरायणा प्रेममर्दी उर्मिलाको सदा ही बढ़ा आनन्द है। वह चर्मके लिये सानन्द मेरा विक्रोह सह सकती है। जबकपुरुणे व्याहकर जानेके बाद बारह वर्षोंमें खरमण और उनकी झनुगामिनी सही उर्मिलाने अपना राम-सेवा चर्म निश्चय कर लिया था, उसी निश्चयके अनुसार पतिको रामसेवामें भेजनेके लिये श्रीरामगा उर्मिला

भी उसी प्रकार सम्मत और प्रसन्न थीं, जैसे खरमण-माता श्री-प्रसविनी देवी सुमित्राजी प्रसन्न थीं। चर्म-परायणा श्रीरामगार्द अपने पति-पुत्रोंको इंसते-ईंसते रक्षाक्रान्तिमें भेजा ही करती है, जैसे ही वहाँ सुमित्रा और उर्मिलाने भी किया। अवश्य ही उर्मिला कुछ बोकी नहीं, परन्तु वहाँ न तो बोकनेका अवकाश ही था और न अपनेमें नित्य हार्दिक सम्मति होनेके कारण बोकनेकी आवश्यकता ही थी, और न मर्यादा ही ऐसी आङ्गा देती थी। सेवा-चर्ममें तत्पर निःस्वार्थ सेवकको तुरन्त करने योग्य प्रबल ममचाहा सेवाकार्य सामने आ पड़नेपर सज्जाह-मशाविरेके लिये न तो अवकाश ही रहता है और न उसकी सहर्षमिथी पही भी इससे तुःख करती है, क्योंकि वह अपने पतिकी स्थितिसे भक्तीभाँति परिवित होती है और उसके प्रत्येक कार्यका अनुमोदन करना ही अपना चर्म समझती है।

एक बात और है, सेवक परतन्त्र होता है। स्वामी श्रीराम तो स्वतन्त्र थे, वे अपने साथ जानकीजीको ले गये। परन्तु परतन्त्र सेवापरायण खरमण भी ब्रह्म उर्मिलाको साथ ले जाना आहटे सो यह अनुचित होता, उन्हें रामजीकी सम्मति लेना पड़ती, जहाँ बातमें श्रीरामली सीताजीको साथ ले जानेमें ही आपत्ति करते थे वहाँ उर्मिलाको साथ ले जानेमें तो बँहूर आपत्ति करते। जो कार्य स्वामीका रुचिके प्रतिकूल हो, उसकी कल्पना भी सर्वे सेवकके लियामें उत्पन्न नहीं हो सकती। इसीप्रकार पतिकी रुचिके प्रतिकूल कल्पना सर्वा पतिव्रता पर्णीके इश्यमें नहीं उठ सकती। उर्मिला परम पतिव्रता थी। खरमण उनको जानते थे। चर्मपालनमें उनकी चिरसम्मति उन्हें प्राप्त थी। एक बात वह भी है कि खरमणजी सेवाके लिये बन जाना आहटे थे, संरक्षके लिये नहीं। पर्णीको साथ ले जानेसे उसकी देखभावमें भी इनका समय आता तथा दो लियोंके सम्बांधनेका भार श्रीरामपर पड़ता। सेवक अपने स्वामीको संकोचमें कभी नहीं ढाक सकता, खरमणजी और उर्मिलाजी दोनों ही इस बातको बँहूर समझते थे। अतश्च उन्होंने कोई निहृताका बताव नहीं किया, प्रत्युत इसीमें खरमणजी और उर्मिलाजी दोनोंकी सबी महिमा है।

बनवासमें श्रीखरमणजीके ब्रतपालका महस्त देखिये। वे विनाश श्रीसीता-रामके पास रहते हैं। कृष्ण-मूर्ख-फल जा देना, पूजाकी सामग्री खुदा देना, आशमको जानना-जुहानना, वेदिकापर चौक खगा देना, श्रीसीता-रामकी शृणि

कल्याण



श्री सौताजोक गहने ।

नाहं जानामि केयुरं नाहं जानामि कुण्डलम् ।
नपुरं चैव जानामि निन्यं पादाभिवन्दनान् ॥

अनुसार उनकी हर प्रकारकी सेवा करना और विनाशक सज्जा रहकर श्रीरासनसे बैठे राममें भन लगाये राम-नाम अपते हुए पहरा देवा ही उनका कार्य है । वे अपने कार्यमें बड़ी तत्पर हैं । श्रीकृष्णवत्सका तो पता हसीसे लग जाता है कि माता सीताजी की सेवामें सदा प्रस्तुत रहनेपर भी उन्होंने उनके चरणोंको छोड़कर अन्य किसी अंगका कभी दर्शन नहीं किया । यह बात हसीसे सिद्ध है कि लक्ष्मणजी सीताजीके गहनोंको पहचान नहीं सके । जब रावण श्रीसीताजीको आकाशमार्गसे ले जा रहा था, तब उन्होंने यहाँपर बैठे हुए बानरोंके दलमें कुछ गहने डालदिये थे । श्रीराम-लक्ष्मण सीताको खोजते हुए जब हनुमानजीकी प्रेरणासे सुप्रीवके पास पहुँचे तब सुश्रीवने श्रीरामको दे गहने विश्वाये । श्रीरामके पूछनेपर लक्ष्मणजी बोले—

नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले ।
नूपुरे त्वमिजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात् ॥
(वा०गा०४।३।२२)

‘स्वामिन् ! मैं हन केयूर और कुण्डलोंको नहीं पहचानता । मैंने तो प्रतिदिन चरणवन्दनके समय माताजीके नुपुर देखे हैं, अतः उन्हें पहचान सकता हूँ ।’ आजकलके देवरोंको हस्ते शिक्षा अहं करनी चाहिये । श्रीकृष्मणजीके हस्त महान् व्रतपर श्रीरामका बदा भारी विश्वास था, हस्त सेवा का पता हसीसे

जाता है कि वे मर्यादापुरुषोत्तम होनेपर भी लक्ष्मणजीके पास सीताजीको अक्षे बेघड़क छोड़ देते थे । जब स्वर-बूच्छा भगवान्के साथ शुद्धके लिये आये थे तब श्रीरामने जानकीजीको लक्ष्मणजीकी संरक्षकतामें गिरिगुहामें भेज दिया था—

‘राम बोलूँ अनुजसन कहा’—
‘लहि जानकिहि जाहु गिरिकंदर ।’

मायामृगको मारनेके समय भी सीताके पास आप लक्ष्मणजीको छोड़ गये थे । और निर्वासनके समय भी लक्ष्मणजीको ही सीताके साथ भेजा था ।

लक्ष्मणजीका सेवाव्रत तपश्चय था । उन्होंने बारह सालतक जगतार श्रीरामसेवामें रहकर कठिन तपस्या की, हसी कारण वे मेघनादको मारकर राम-काजमें सहायक बन सके थे । तपस्यामें उनका उद्देश्य भी यही था, क्योंकि वे श्रीरामका छोड़कर दूसरी बात न तो जानते थे और न जानना चाहते ही थे । उन्होंने स्वयं कहा है—

गुह पिनु मातु न जानउँ काहू । कहुँ तु मुभाउ नाथ पतिआहू ॥
जहुँ लगि जगत सनेह सगाई । प्रीति प्रतीति निगम निज गाई ॥
मोरे सबहि एक तुम्ह स्वामी । दीनबंधु उर-अंतर-जामी ॥
धरम नीति उपदेसिअ ताही । कीरनि-मूति-सुगति प्रिय जाही ॥

रामजन्मकी प्रतीक्षा

(१)

कहके गए थे पर आते हो न लाड़ले क्यों ।
वयस व्यतीत होती जा रही विछोहमें ;
चाह करती हूँ, भरती हूँ आह दिन-रात ,
स्वासा चलती है सदा आशा बन टोहमें ।
कान खड़े ध्यान हैं लगाए व्योम वाणी ओर ,
आँखे थक बैठीं अंत शवरीकी लोहमें ;
छूत औ अछूत-अंग-अंग हो रहे हैं दूत ,
जाने कहाँ पूत ! सो रहे हो किस गोहमें ।

(२)

कृषक विदेह देह तोड़ जोतते हैं भूमि ,
तो भी शस्य-श्यामला न सीता कर पाती है ;
खूनके घड़े अरे ! गड़े ही गड़े जाते सड़े ,
होंगे पड़े सोचते-यहीं तो मति आती है ।
आतुर निषाद भुज-भर भेटनेको यहाँ ,
उसकी न, तात, तुम्हें सुध ही सताती है ;
आज्ञा-अभिलाषा उपजाती छोड़ ताती याद ,
आती रामनीमी पछताती रह जाती है ।

मातादीन शुद्ध साहित्यशास्त्री, काव्यभूषण

पशु-पक्षियोंका रामग्रेम

(लेखक—श्रीरामेश्वर बाजोरिया)

पाहन् पसु विटप बिहँग अपने करि लीहे । महाराज दशरथके रंग राय कीन्हे ॥



मवरित अगाध कल्याण-रमोंकी जानि है । उसमें जीवनको येसे सुन्दर सीधे सर्व-मान्य पथपर जानेकी शक्ति है कि जिससे सहज हीं सुख-शान्ति और भक्ति-मुक्ति प्राप्त की जा सकती है । इसीसे वह सदासे सबका आदर्शरूप और प्रिय रहा है, और है । जिसमें

अपना परम हित सूझता है उसी कार्यको सद किया करते हैं । वह परमहित भगवद्वेमका प्रत्यक्ष अनुभव होता है । भग-मङ्गलकर्ता जनसुखदायक भगवान् श्रीराम साहाय ईश्वर थे, परम-पिता थे, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं । वे प्रत्येक चराचर प्राणीके दुःख-मुखका, हिताहितका सबंदा ज्यान रखते थे । इसी लोक-हित, इसी जन-कल्याणके किये हीं तो वे अपनी प्रतिज्ञानुसार अवतरित हुए थे, किर भक्त उनके चराचर-प्रिय होनेमें आश्रम्य हीं क्या ? वे केवल उनको साहाय भगवान्-रूपसे जानेवाले विशिष्टादिके ही प्रिय न थे वरन् प्रेम-मुख माता-पिताके भी अत्यन्त प्रिय थे । यहाँ ऐसा भी कहा जा सकता है कि जब माता-पिताको अपना कुपूर पूत भी अच्छा लगता है, तब किर राम तो आज्ञाकारी मातृ-पितृ-भक्त थे, इससे उनका प्रिय होना स्वाभाविक ही है । यह ठीक है, परन्तु श्रीरामचन्द्रजी तो पुर-जन-परिवार सभीके अतिप्रिय थे । सारी प्रजा सदा उनके देखती रहना चाहती थी, सदा उनके पास रहना चाहती थी । उनको उनसे विद्युतनेका नाम भी सुनते हीं प्रायान्त कष्टका अनुभव होने लगा था । इसका वर्णन बन-गमनके प्रसंगमें सभी रामकथाओंमें आता है । उसे पड़कर कौन सहदेव पाठक उनके कहर्का महानुभूतिसे रो नहीं उठता । भगवान्-की शृंगारें मनुष्य सर्वोच्च, सर्वश्रद्ध प्राणी समझा गया है, अपने हिरन्यके प्रति कृतशता और अटा प्रकट करना उसका स्वाभाविक कर्त्तव्य है, घर्म है । परन्तु अस्तित्व भुवन-प्रिय रामको पशु-पक्षी और जला-द्रुम भी कितना प्रेम करते थे, यह कुछ अज्ञानसे मनन करनेका विषय है । यहाँ इसी विषयका कुछ वर्णन करता है ।

सांसारिक लीलाके सुखके किये भगवान् अपनी लीला-द्वारा माता के देवीसं प्रित महाराज दशरथकी आज्ञा पाकर

वलकल-बच भारताकर सीताजी और अपमयासहित बनको जा रहे हैं । सुमन्तजीको उन्हें रथमें बैठा बन विलाकर जलदी वापस लौटा जानेकी आज्ञा हुई है । पुर-जन-नारियोंके दुःखका तो आज कहना ही क्या है, पर जरा पशु-पक्षी और पेढ़-बौद्धोंका भी हाल देखिये ।

ततस्त्वयोध्यागहिता महात्मना पुरन्दरंपैव मही सपर्वता ।

चन्द्रां धोरं वयशोकदीपिता सनागयोधाश्वगणा ननाद च ॥

(वा० १० २।४१।२०)

सारी अवांग्या आज भगवान्-के वियोगमें कौप उठी, घोड़े और हाथी चिंगार कारने लगे, सर्वत्र शोक-साक्रांत्य जा गया । सभी भक्तिमान् जङ्गम और स्थावर प्राणी भगवान्-को बनमें कह होनेकी आशंकामें दुःखित हैं और भगवान्-से अपनी मृक भाषा निश्चेष्ट चेष्टामें जाँट बदलनेकी प्रार्थना करते हैं ।

भक्तिमन्तीह भूतानि जहमाजहमानि च ।

याज्ञमानेगु तेपु न्वे भक्ति भक्तेषु दर्शय ॥

अनुगन्तुमउक्तास्त्वां मूर्तेरुद्धनवेगिनः ।

उज्जना गायुंगोग्न विक्षेपन्तीव पादपाः ॥

निश्चाहादागसंचाग तृष्णेकम्याननिष्ठताः ।

पश्चिणोपि प्रयः चन्ते मर्य भूतानुकरपनम् ॥

दर्शने तमसा तत्र वारयन्तीव गथवत् ॥

(वा० १० २।४१।२१-२२)

भगवान्-की लीलामें उसीके दिये रूपदे शामिल रहनेवाले अचर बृक्षादि चतु नहीं मक्के बोज वहीं मक्के परन्तु श्रीराम तो उन्हें भी अत्यन्त प्रिय है, इसीसे तो वे भी आज दुखी हैं । इवयं भगवान् इन जड जीवोंकी वृणका वर्णन करते हुए वास्तविक रूप हैं—

पश्य यून्यान्यरपयनि ददन्तीव समन्ततः ।

यथा निलयमायद्विर्निलीनानि मृगद्विः ॥

(वा० १० २।४६।३)

इमारे दुःखोंमें दुखी होकर किये हुए पशु-पक्षियोंके शब्दोंसे चिर्दी इस शून्य बनके उद्धको देखो ।'

कृष्ण करत्तामय भीरामने सुमन्तको आशा ही—
अप्रमत्स्तवमशेषु भव सौमेत्युवाच ह ॥
(वा० रा० २। ४६। ११)

‘हे सौम्य ! तुम सावधानीसे घोड़ोंकी देल-भाल करो ।’ भागुक भक्ताशोंका उन पशु-पक्षियोंको, इन वय-जवियोंको और जाता-धूषोंको कृतपुण्य-घन्य धन्य कहना ठाक ही है; जिनके द्विये स्वयं भगवान्—

कदहु पुनरामय सरखा पुणिते वने ।
मृगयां पर्यटिष्यामि मात्रा पित्रा च संगतः ॥
(वा० रा० २। ४६। १२)

—कहकर उनसे पुनर्मिलनकी उत्कलठा दिलगाते हैं । निषादराज गुहका गुण-गानकर कौन अपनेको पवित्र करना नहीं चाहेगा । नगर-निवासी शिलित, सम्य जनसमुदायसे दूर विकट घोर जंगलमें रहकर हिंसावृत्तिसे जीवन-निर्वाह करनेवाले दयामाया-ईन मनुष्य भी परम नन्ह और सेवा-भाववाले बनकर रामके दासोंमें उच्च गिने जानेवाले बन जाते हैं, यह सारी जीला अपने भगवत्-चरणोंमें प्रेम और उनकी (चरणोंकी) दीन दयालुताकी ही है । एक अनावश्यक और हानिकर एवं निन्दनीय पर रूदिगत साधारण्य बानको भी जहाँ हम घोड़नेमें असमर्थ होते हैं वहाँ उन भीलोंको— जिनको इम जंगली कहते हैं— सर्वथा बदबकर अपने अतिथियों सेकामें हाथ जोड़कर खड़े हुए उसकी आशाकी प्रतीक्षा करना कितने आश्वयोंकी बात है ? जिनपर ‘उसको’ कृपा हो उनका देवता—नहीं नहीं—स्वयं ग्रहा, बन जाना भी कोई अनोखी बात नहीं, ‘मसकाहि करइ बिरंचि सम ।’ वह ‘तो कक्षु’ अकतुं अन्यथा कक्षु’ समर्थ है ।

अब भगवान् गुहराजके साथ गंगाको पारकर आगे बढ़ना चाहते हैं, सुमन्तको यहाँसे लौट जानेके लिये समझा रहे हैं । परम्परा सुमन्तको राजा और राजमाताओंके साथ-साथ उन पशुओं और घोड़ोंका भी दुःख स्मरण हो आता है और वह कहता है—

मम तावलियोगस्थास्त्वद्वन्वुजनवाहिनः ।
कर्यं रथं त्वया हीनं प्रवाहान्ति हयोत्तमाः ॥
(वा० रा० २। ५२। ४७)

‘हे राम ! ये घोड़े जिनकी देल-भाल मेरे अधीन हैं, आप बाल्यवांको ही खे जलते हैं । अब आप खोड़े कोई

इस रथपर नहीं रहेंगे तब ये घोड़े रथको कैसे ले जायेंगे ?’ सचमुच रामके जानेके बाद उनके विद्योगमें घोड़ोंकी बड़ी दशा हुई—

देखि दस्तिन दसित हय हिनाहीं । जनु बिनु पंख बिहँग अकुलाहीं ॥
नहि तुन चाहिं न पिअहि जल मोचहि लोचनबाहि ।
ब्याकुल भयेउ निषाद सब रथुवर-बाजि निहारि ॥

× × ×

चर फरहि मग चले न घोरे । बनमृग मनहुँ अनि रथ जोरे ॥
अदुकि परहि फिरि हेरहि पैछे । रामबिधान बिकल दुख तीछे ॥
जो कह रामु लकन बैदेही । हिकरि हिकरि हित हेरहि तेही ॥
बाजि-बिरहगति कहि किमि जाती । बिनु मरिन कनिक चिकल जेहि माँती
भयेउ निषाद बिपादबस देसत सचिव तुरंग ।
बोलि मुसेवक चारि तब दिप सारथी संग ॥

वे येवारे जिधर राम गये थे उधर देल-देल पंख-कटे पहीकी तरह विकल हो बार-बार हिनहिनाने लगे । दुःखके मारे उनका खाना-पीनानक ढूट गया । आँखोंसे अजल अशुश्राग बहने लगी । राम-विरहाकुल घोड़ोंकी दशा देखकर उपस्थित जोग भी विषाद-मन हो गये । वे उन पशुओंको कृतकृत्य समझने लगे, जो श्रीरामको इतना प्रेम करते हैं कि उनके विद्योगमें अपने शरीर-प्राणकी भी परवा नहीं ।

घोड़े यह देसनेके द्विये बार-बार कनौटी उठाकर हधर-उधर देखते हैं कि कहीं किसी ओरसे रामचन्द्रजी आ तो नहीं रहे हैं या पास ही कहीं बोल तो नहीं रहे हैं । वे उनके दर्शन पाने और उनके वचनाशृत सुननेको व्याकुल हो रहे हैं । अशिंशित जंगली जानवरोंको लालकर रथमें जोड़नेसे उनकी जो दशा होती है वही इन चतुर घोड़ोंकी हो गयी है । चलते-चलते बार-बार अटक (ठहर) जाते हैं, और गदंग बुमाकर पीछेकी ओर देखते हैं कि एक बार फिर रामजीके दर्शन हो जायें । रामका विद्योगजनित उनका दुःख अपार है । यदि वे किसीके मुँहसे राम, लक्ष्मण और सीताका नाम सुन पाते हैं तो हुकारकर उसकी ओर प्रेमसे देखने लग जाते हैं । उन घोड़ोंकी विकल दशाका वर्णन कैसे हो सकता है ? वे मणिहीन सर्पकी तरह व्याकुल हैं । अब निषाद उनकी दशा देखकर अत्यन्त दुःखित हुए और वह सोचकर कि ऐसे घोड़ोंके

रथमें बैठे सुमन्तके साथ कुछ आदमियोंका होना अत्यन्त आवश्यक है, न मालूम रास्तेमें इन घोड़ोंको क्या हो जाय, उन्होंने रथके साथ अपने चार आदमी भेज दिये।

पाठको देखी अपने इन पशुओंके विषय प्रेमकी दुर्लभ क्षमीकी। हम मनुष्य क्या इन पशु कहलानेवाले घोड़ोंकी बराबरी कर सकते हैं? वे परम भ्रम हैं जो रामके विषयमें इसप्रकार अपनी सुधि-बुधि लो देते हैं।

अस्तु, किसी प्रकार गिरते-पड़ते घोड़ोंने रथको अपोज्याजीतक पहुँचा दिया। सुमन्त महाद्वारोंमें चले गये। फिर, बेचारे घोड़े रामवियोगको और अधिक न महसुस कर सके। उनकी इस कल्पणापूर्ण दशाका ध्यानकर आगेकी बातका लिखना-पढ़ना कठिन हो जाता है, इसीसे बादका

कुछ पता नहीं मिलता। न-जाने उन घोड़ोंने भी महाराज दशरथजीकी तरह विषयमें अपने प्राच लो दिये या पुनर्दर्शनकी आशासे भरत और कौसल्याकी तरह किसी प्रकार जीवित रहे।

श्रद्ध-वानरोंके प्रेमकी बात तो भगवान् ने स्वयं अपने श्रीमुखसे कही है, उसके विषयमें हम क्या कहें। विंगमर गीधराजकी कथा तो प्रसिद्ध ही है, उनका रामर अत्यन्त प्रेम था।

यदि वे सबके परमप्रिय श्रावानम न होते तो 'जीव चराचर याचत जेही' क्यों कहा जाता। वे सो अवश्य ही सबके आत्मा होनेके कारण सर्वप्रिय हैं।

जय! सर्वप्रिय श्रीराम और उनके प्रेमियोंकी।

रामायणके कुछ रत

(लेखक—श्रीयुत रामायणशरणजीं रामायणी)

मंगल मदन अमरांत-हारी। द्रवहु सो उमरथ अजित-बिहारी॥

रामायणके कुछ रत रामायणका महसून अनिवार्यनीय है। इसकी धृति श्री महिमा जितनी गायी जाय उतनी ही घोड़ी रामायणके कुछ रत रामायणके पाठकोंकी भेट करता है। कृपया स्वीकार करें। उपहार प्रभोस्तरके रूपमें हैं।

१—‘श्रीरामचरितमानस किम मन्त्रार्थपर है, जैसे श्रीमद्भागवत द्वादशाश्वर मन्त्रपर है और श्रीबाल्मीकीय रामायण गायत्रीके चौबीस अक्षरोंपर है?’

‘श्रीमानसरामायण ‘श्रीरामाय नमः’—इस पदावर तारक मन्त्रराज पर है। परन्तु गुप्त है। ‘बर्णाना’ इस प्रथम श्लोकमें ‘र’कार ‘अ’कार बिन्दुमहिन गमयोज है और पांच अक्षर पांच कारदारोंमें है, और अस्तका विसर्ग उत्तरकाशडके अन्तमें है।’

२—‘ग्रन्थकारने इस ग्रन्थको ‘व’ कारसे क्यों प्रारम्भ किया?’

‘ग्रन्थके आदि और अन्तमें भी बकार ही है। बकार असूल रीज है, इससे श्रीरामचरितमानसको ‘अमियमय’ सुधित किया। जैसे असूल पान करनेवालेको दूसरे रस-पान

करनेकी आपेक्षा नहीं, वैसे ही श्रीरामचरितासृत पान करनेवालेको दूसरे साधनकी आवश्यकता नहीं है।

३—‘तुलसीकृत रामायणका श्रीरामचरितमानस नाम कैसे पड़ा?’

‘इसको श्रीशिवजीने रथकर एहुत ममरतक अपने मानवमें रक्षा, किं सुप्रबन्ध पाकर श्रीशिवासे कहा। इसीमें ‘रामचरितमानस’ नाम पड़ा।’

४—‘श्रीरामचरितमानसमें गीतापदेशका वर्णन कहाँ है?’

‘श्रीरामचरितमानसमें गीताका भाषाभ्यर शा समाजार्थक वर्णन बहुत जागता है। विष्णुरभवसे में यहाँ यही लिखता। देवत भानसमें कितनी गीताएँ हैं उनके नाम-मात्र यहाँ लिखे जाते हैं, सज्जनाय रामायणमें पदकर देख लें। अपोज्याकाशडमें ११ दोहेसे १२ दोहेसक लियाएँके प्रति श्रीबाल्मीकीका उपदेश ‘श्रीबाल्मीकी-गीता’ है। आरथकाशडमें पदकटीमें दोहा १४ से १८ दोहेतक श्रीबाल्मीकीके प्रति श्रीरघुनाथकीका उपदेश ‘श्रीराम-गीता’ है। छहाकाशडमें श्रीविमीषके प्रति श्रीरघुनाथकीमें

बोधमेस्य इया रूपकर्म वर्णन किया है वह 'श्रीभगवद्गीता' है। उत्तरकाशङ्कमें ४२ दोहेसे ४६ दोहेतक श्रीभगवद्गीता-वाचियोंके प्रति श्रीरघुनाथजीका उपदेश 'पुरजलगीता' है। पुनः उत्तरकाशङ्कके अन्तमें ११६ दोहेसे ११८ दोहेतक 'कालगीता' और ११९ दोहेसे १२० दोहेतक 'श्रीभगवद्गीता' है।

५—'मनस्ती दर्पणमें मल क्या है ?'

'काई विषम मुकुर मन लागी ।'

६—'मनस्ती दर्पणके साफ करनेका उपाय क्या है ?'

'श्रीगुरुदेवके चरणकमलकी रज ।' यथा—

'जन मन मञ्जु मुक्त-मल दरनी ।'

७—'परमेश्वरका रूप हृदयमें कैसे आ सकता है ?'

'मुमिरिय नाम रूप बिनु देखे। आवत हृदय सनेह बिसेवे ॥'

८—'श्रीरामजीको वश करनेका उपाय क्या है ? और किसने उन्हें वश किया ?'

'मुमिरि पवनसुत पावन नाम् । अपने वस करि राखेहु राम् ॥'

९—'श्रीरामजी कैसे रीझते हैं ?'

'श्रीकृष्ण राम सनेह निसेते ।'

'तुम रीझहु सनेह सुहि थेरे ।'

'रीझउ देखि तोरि चुरुइ ।'

१०—'पापोंसे मुक्त होनेके विषयमें श्रीरामचरित-मानसमें क्या कहा है ?'

'विवसहु जामु नाम नर कहहीं। जनम अनेक संचित अघ दहहीं ॥'

'तीरथ अमित केटिसत पावन। नाम अखिल अघ-पुज्जन नसावन ॥'

'राज कि रहै नीति बिनु जाने। अघ कि रहै हरि-चरित बजाने ॥'

'सनमुख होय जीव मोहि जबहीं। जनम केटि अघ नासौं तबहीं ॥'

'सरदातप निसि ससि अपहरई। सन्त-दरस जिमि पातक ठगई ॥'

११—'श्रीरामायणमें सहज स्वरूप किसको कहते हैं ?'

'स्थूल, सूख और कारब्ब शरीर लीनोंसे परे या पत्तोंशादि तथा तीर्णों गुणोंसे परे भिज, अवका जाग्रत स्वरूप, सुखुमि अवस्थाओंसे अलीत और तुरीय अवस्थायें याह विमल आनन्दकी राशि शुद्ध सचिदाकब्दधनस्वरूप ही सहज स्वरूप है। यथा—

'इधर अंस जीव अविनाशी। चेतन अमल सहज सुखराती ॥'

'भम दरसन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज सरुपा ॥'

'संकर सहज सरुप सँभारा। लागि समाधि अखण्ड अपारा ॥'

१२—'वेदमें परमधर्म किसको कहा है ?'

'श्रुति कह परम धर्म उपकारा ।'

'परम धर्म श्रुति विदित अहिसा ।'

'सिर धरि आयमु करिय तुम्हारा। परम धर्म यह नाय हमारा ॥'

१३—'सन्त किसकी प्रशंसा करते हैं ?'

'परहित लागि तजे जे देही। संत संत प्रसंसाहि तेही ॥'

१४—'इश्वरका प्रण क्या है ?'

'प्रन हमार सेवक हितकारी। भम प्रन सरनागत भयहारी ॥'

१५—'कीन मनुष्य भवसागरमें नहीं पड़ता ?'

'भव कि परहिं परमात्म विन्दक ।'

१६—'भवसागरमें कीन लोग पड़ते हैं ?'

'भवसिन्हु अगाव परे नर ते। पद-पंकज-प्रेम न जे करते ॥'

१७—'संसारमें यश कैसे मिलता है और अपयश कैसे ?'

'पावन जस कि पुन्य बिनु होई। बिनु अघ अजस कि पाँवे कोई ॥'

१८—'संसारमें किसकी भक्ति बिना सुख नहीं मिलता ?'

'श्रुति पुरान सदग्रन्थ कहहीं। रघुपति-भगति बिना सुख नाहीं ॥'

१९—'जीव किसके विमुख होनेसे सुख नहीं पाता ?'

'राम-बिमुख सुख जीव न पावे ।'

'जीव न लह सुख हरि-प्रतिकूला ।'

'जिमि मुख लहै न शंकर-द्रोही ॥'

२०—'जगत्में किसको कोई पदार्थ दुर्लभ नहीं है ?'

'परहित बस जिनके मनमाही। तिनकहैं जग दुरक्षम कहु नाहीं ॥'

'हरि-प्रसाद दुरलभ कहु नाहीं ॥'

२१—'जगत्में सबसे दुर्लभ क्या है ?'

'सबसे दुरलभ मनुज सरीरा ।'

'सत्संगति दुरलभ संसारा ।'

२२—'मनुष्यको संसारमें सबसे बड़ी हानि क्या है ?'

'हानि कि जग यहि सम कहु माहे ।

'भजिय न रामहि नर तनु पाई ॥'

२३—‘परायी निन्दा करनेका क्या फल है ?’

‘पर-निंदा-सम अथ न गरिसा ।’

‘सबकी निन्दा जेनर करहों । ते चमगादुर होइ अवतरहों ॥’

२४—‘शोक करने योग्य कौन मनुष्य है ?’

‘सोचनीय सबही विधि सई । जो न छाँड़ि लल हरिजन होई ॥’

२५—‘श्रीरामजी कब कृपा करते हैं ?’

‘भन क्रम बन छाँड़ि चतुराई । भजत कृपा करिहैं रघुराई ।’

२६—‘श्रीरामजीको स्वप्नमें भी कौन अच्छा नहीं लगता ?’

‘सिव पद-क्रमल जिनहि रति नाहीं । रामहि ते सपनेहु न सोहाहीं ॥’

२७—‘श्रीरामभक्तके लक्षण क्या हैं ?’

‘बिनु छल विश्वनाथ-पदनेहु । राम मगतकर लक्षण पहु ॥’

२८—‘किस उपायसे जीव शोक-रहित हो सकता है ?’

‘चहुं युग तीन काल तिहुं लंका । भये नाम जपि जीव असोका ॥’

२९—‘संसारमें अभागी कौन है ?’

‘सुनहु ठमाते लोग अभागी । हरि नजि होहिं विषय-अनुगामी ॥’

३०—‘बड़भागी कौन है ?’

‘सोइ गुण्य सोई बड़भागी । जो रघुबीर चरन अनुगामी ॥’

‘रमा विजास राम अनुगामी । नजन बनन इव नर बड़भागी ॥’

३१—‘श्रीरामजीका स्वभाव कैसा है ?’

‘अति कोमल रघुबीर सुमाऊ । जदापि अनिल लोककर राझ ॥’

‘मुनहु रामकर सहज सुमाऊ । जन अभिमान न राखै काझ ॥’

‘उमा सुनाव राम जिन जाना । ताहि भजन तजि भाव न आना ॥’

‘अस सुमाव फहुं सुनी न देखा । केहि खेस सुपुति सम खेखा ॥’

‘मैं जानौ जिज नाथ सुनाऊ । अपारधिदुप ॥ कोह न काझ ॥’

‘राम सुमाव सुनिरि देदही । मनन प्रेम-नन-मुखि नहि तेही ॥’

‘जामु सुभाव अरिहु अनुकूल ॥’

३२—‘लोक और परलोकमें सुखका क्या उपाय है ?’

‘जो परलोक इहाँ मुख छहहू ।

मुनि मम बचन हृदय हृद गहहू ॥’

‘मुक्त मुखद मारग यह भाई ।

मगति मोरि पुगन श्रुति गाई ॥’

केवटका अतुल प्रेम

(लेखक—पं० श्रीरामनारायणजी शुक्ल साहित्य-रत्न)

महिला ज, आओ ! परम भनोहर भगवती भागीरथीके

तटपर देखो कैसी रमणीयता है ? क्या ही छब्बीसी छटा बिटक रही है । कृष्णार, परम

ददार श्रीरामजी श्रीमिथिलेश-किशोरी और प्यारे

खण्डलालजी सहित पधारे हैं । चलो, उनका

पावन चरण-रज मस्तकपर धारणाकर जन्म-जन्मान्तरोंके अनन्त कल्यु-पुरुओं ओ ढालें । सम्भव है

कि आज इस तापस वेषमें ‘बिनु सेवा जो द्रवै दीनपर राम-

सरिस कोउ नाहीं ।’ से भी विशेष उदारता हो ।

वह देखो, वही है हमारे प्यारे राम ! वही है हमारे हृदय-धन !! जीमें आ रहा है कि चरण एकद्वारा जीभर

रो लें और उन कोमल अरुण चरणोंके प्रेमाश्रुओंसे ही

ओ ढालें ! पर नहीं, ठहरो । इनका उचित अधिकारी बड़ी

दलहठामे बाट जोह रहा है, उसका हडीला मन मनमानी

करनेको आतुर बैठा है ! उसे उसकी सीधी-सारी असृतमर्या

वाणी सुनें और उसीके कर-कलजांहारा प्रेमसे धांये हुए

चरणामृतका पान करें ! आज प्रेम-पारावार प्रभु मचले

हुए भक्तके बश हो प्रेमका पाठ पढायेंगे और अपने भन्य

माव प्रकटकर भवसागरसे भी पार लगायेंगे ।

बाहरे मनचले बड़भागी केवट ! धन्य तेरा अनन्य प्रेम !

धन्य तेरा निष्पट भक्ति ! धन्य तेरा अनुदा हठ ! त्—

लोक वेद सब भाँतिहि नीचा : जामु लाँह दृश लेहाहि सांचा ॥

—इस छाँपाइको चरितायं करता दृष्टा भी सरकारमें सुखे

बदलाकाजोंमें सीचाजोरी कर रहा है । जिन्होंने सुर-भयुर सबको

‘प्रदद कर्मकी दंरीमें’ बाँध रक्खा है, उन्हीको आज नूने

बातों ही बातोंमें बाँध लिया, और बाँधा भी ऐसा कि अपने

पिता-पितामह तकका बन्धन मुक्त करवा लिया ! धन्य है !

माँसी नाव न केवट अना । कर्त्ता सुमहार मरमु में जाना ॥

नाव माँगनेपर खुले शब्दोंमें साफ इक्कारी और

किर एक तुरा तानाज्ञानका भी ‘तुम्हार मरमु में जाना ।’

क्या त्वय ? कैसा सौम्य और सरद माव है ! जिस प्रभुके

भृकुटि-विजाससे ही सृष्टिका ब्रह्म विकाश होता है । जो अकिञ्च

ब्रह्मादका नायक है, राजराजेश्वर है, उसपर यह आदेष कि

मैं तुम्हारी शीयत त्वय आजता हूं । सद्गमें तुम्हारी बातमें नहीं

आ सकता । किर इनने पर भी चुप लही रहा । कहने लगा—

पहि घाटें थोरिक दूर अहै
कठिनीं जल थाह दिखाइहौं जू ।
परसे पगधूरि तरै तरनी
धरनी धर क्यों समझाइहौं जू ॥
तुलसी अवलंब न और कथू
लरिका केहि भाँति जियाइहौं जू ।
बद मारिष मोहि बिना पग धोए
हौं नाथ न नाव चढ़ाइहौं जू ॥

महाराज ! गंगाजीमें जलकी गहराई कमरतक ही है ।
आइये, मैं निकटका मार्ग बिल्ला दूँ । आप उसी मार्गसे
निकल जाइये, नावकी जरूरत ही क्या है ? मैं तो सरकार
अधम दीन हूँ, नाव ही मेरा दोजगार है—

‘यहि प्रतिपानों सब परिवारु । नहिं जानौं कथु और कबारु ॥

यही मेरी जीसे प्यारी जीविका है ! न जाने आप-
सरीसे कितने राजा-बाबू इससे डतर गये हैं । हमें किसीसे
परिचय नों करना नहीं है, ‘खरी मजरी चोखा काम’ आपका
अच्छा काम होगा, थोड़ा बहुत इनाम-अकराम दे देंगे ।
जन्मभर नों हसीसे काम है, महाराज !

तरनिट मुनि-धरनी हाँह जाई । बाट पंप मोरि नाव उड़ाई ॥

ऐसा काम मैं नहीं करना चाहता । चलिये जलद,
आपको वह मार्ग बताऊँ तूँ, मुझे तो आपना काम करना है
और आपको भी बिल्लब होता होगा । पर सरकार, मैं
आपको यों ही नावपर नहों बैठा सकता ।

पात भरी सहरी, सकल सुन बोंग बोंग,
केवटकी जनि कथु बेद ना पढ़ाइहौं ।
सब परिवार मंगो याही लागि राजाजू,
हौं दीन बित्तहीन कैसे दूसरं गढ़ाइहौं ॥
गंगामकी धरनी ज्यों तरनी तरेणी मेराँ,
प्रभुसों निषाद हूँके बाद न बढ़ाइहौं ।
तुलसीके इस राम रावरसों साँची कहौं
बिना पग धोए नाथ नाव ना चढ़ाइहौं ॥

आप जानते ही हैं, आपके चरणकी धूलि छूते ही मेरी
नाव खो बन जायगी । फिर आज-बच्चोंको दो रोटी कहाँसे
मिलेगी ? हाँ, एक उपाय है—मुझे चरण धो लेने दांजिये ।

पदपदुम बोह चढ़ाइ नाव न नाथ उतराई चहों,
मोहि राम राडरि आन दसरथ सपथ सब सौंची कहों ॥
बरु हीर मारहु लवन् पै जबलगि न पाँय पसारिहों,
तबलगि न तुलसीदास नाथ छपारु पार उतारिहों ॥

और क्या कहूँ ? बडे सरकारकी सौगन्ध करके कहता
हूँ—नाय, पैर छोये बिना तो पार नहीं उतारनेका । छोटे
सरकार देदे-देदे लाक रहे हैं, भले ही वे बाय मारकर मेरे
प्राप्त ले लें । मैं मारा जाऊँगा, पर बाय-बच्चोंके लिये नाव तो
बच जायगी ।

जौ प्रभु पार अदसि गा चहहूँ । मोहि पद-पदुम पसारन कहहूँ ॥

आज दे ‘पद-पदुम’के सच्चे उजारी ! क्यों न हो, आज
तेरा प्यारा नाम प्रत्येक राम-भक्तके रोम-रोममें रम गया
है । बन्ध तेरा प्रेमाग्रह ! जिन चरणोंको श्रीविदेशीने
अपनी काढ़की कुमारी सीताको अर्पित करके पक्षारथा, जिन
चरणोंकी धूलि जन्मजन्मान्तर तपश्चर्या करके महर्पिंगण
कठिनतासे प्राप्त कर सकते हैं । आज तूने अपने सरख
प्रेमसे उनको प्राप्त कर लिया ।

आनन्दकन्द श्रीकौसुखकिंशुरं श्रीराम अपने जनकी‘प्रेम-
खण्डी अटरटी’वार्षी सुनकर मन्द-मन्द मुसकराते हुए बोले—
‘बंगि आनु जल पाय पसारु । होत बिलंब उतारहि पारु ॥

बस, अब क्या था । भक्तने मनमाना पदार्थ पाया ।
वह प्रेममें बिल्लब हो चरणोंपर गिर पड़ा और छाया
प्रेमाश्रुओंसे ही पादन चरणोंको पसारने । उसके आनन्दका
पार नहीं रहा—‘जन्म रंक जनु पारम पावा ।’

श्रीरामजीने कहा—‘भाई, हमें देर हो रही है । यह
क्या कर रहे हो । जल्दी पार उतार दो ।’ प्रभुके बार-बार
कहनेपर केवट दौषकर कठीता ले आया और बोला कि
'नाय ! जल्दी न कांजिये । जल्दीका मार्ग तो मैंने आपको
पहले ही बताया था । ज़रा शान्ति रखिये । मैं आपको
छुलाने तो गया ही नहीं था, अनेक घाट थे, जल्दी भी तो
हृधर न आते । अब तो ज़हरक मेरा काम न होगा, तब-
तक आपका भी नहीं होनेका । मैं जब रखके एक-एक
कणको चरणसे छुड़ा लूँगा, तब नाव मिलेगी ।’ प्रभु
मुसकराये और वह—

अति आनन्द उमगि अनुरागा । चरन-सोरेज पसारन लागा ॥

केवट परमानन्दमें भग्न हो धीरे धीरे प्यारेके चरण धो
रहा है । अनन्य प्रेमभाजन केवट, आज तेरे सौभाष्यको
देवगण भी लखाचा रहे हैं ! जिन चरणोंकी पादुका-
मात्रसे ही श्रीभरतकालजीने नन्दीधाममें पर्वंहुटी बनाकर
१४ चरणकी अवधि पार की थी । जो चरण श्रीशंकर
भगवान्के हृष्ण-मानसमें सहैव लिवास करते हैं, आज

तुमे उनको हतना कशमें कर लिया कि बार-बार कहनेपर
भी नहीं छोड़ता ।

देवगत्या आनन्दमग्न मुख्य वर्षा करते हुए मुक्तकण्ठसे
मुकार उठे—

'महि सम पुण्यपुजा कोउ नाहीं ।'

केवटले खूब रगड़-रगड़कर धरण थोये और किर—

पद चक्षारि जलपान करि आपु सहित परिवार ।

पितर पार करि प्रभुहि पुनि मुदित मयउ ठेह भार ॥

पार ले आकार केवटले पुनः प्रणाम किया । प्रभु सकुचाये ।
कुछ देना चाहिये, किर क्या दें ? जगन्माता श्रीजानकीजीने
प्रभुके मवका सङ्कोच जानकर—'मनि-मुदरी मन मुदित

जतारी ।' सरकार केवटले डतराई देने लगे, पर
केवट बड़ा चालाक था, उसने कहा—

नाथ आजु मैं काह न पावा । मिटे दोष-दुःख-दारिद्र-दावा ॥

बहुत काल मैं कौहिं मजूरी । आजु दीनिहि विधि बनि महि मूरी ॥

अब कहु नाथ न चाहिय मेरे । दीनदयाल अनुप्रह तेरे ॥

फिरती बार मोहि जोह देवा । सो प्रसादु मैं सिर चरि केवा ॥

'फिरती बार मोहि जोह देवा ।' देखा, जाक विष्णुकर
कैसे फाँस लिया सरकारको । औह वर्ष बाद श्रीराम
झौटते समय किर इसी घाटपर आना होगा !
बोलो भक्त और भक्तवत्सल भगवानकी जय ।

रसने !

[भक्ति-गान]

भजन कर ले, अरी रसना ! सरस हो, भजन कर ले । अरी रसना ॥

रामकी सुनके कथा, उससे कुछ सबक पा ले,
तू भी भूतलमें गुणोंसे महा सुयश छाले ।
चल चुकी खब तो विषयोंके विर्यले भोजन,
है सुधा जिसमें भरी अब वही भोजन स्था ले ॥

भक्ति-भावोंसे प्रभुका हृदय हर ले ।
अरी रसना ! सरस हो, भजन कर ले । अरी ॥१॥

पञ्च कृतियोंका पूर्ण मान करनेके लिये ; ज्ञान गुरु-गौरवका गान कर रसने !
'रसिकेन्द्र' पर्वजोंकी आन, बान, शानपर; भक्ति-भरी भावनाका दान कर रसने !
मुक्ति मिल जायगी, तू पायगी अमर-पद; सत्य, धर्म-धारणाका ध्यान कर रसने !
सरस सुधाकी धार बरस रही है, बस;—रामकी कथाका रस पान कर रसने !

व्याप रही संसारमें रामायणकी शक्ति,
पाता सिद्धि अभीष्ट वह, करता जो वर-भक्ति ।

राम रटके तू सागर अगम तर ले ।
अरी, रसना, सरस हो भजन कर ले । अरी ॥२॥

जब-जब भग्नि-भार भारी भरपूर होता, भूतलमें पापों भरे घड़े भर जाते हैं,
तब-तब हरि अवतार ले पसार प्रभा, दानवोंको मार भार भूमिका हटाते हैं।
त्रेतायुगका पवित्र रामका चरित्र, मित्र, अवतक सुन-सुन भक्त सुख पाते हैं,
राजनीति-मर्म, न्याय, धर्म, पुराय-कर्म भरे, वीर, रणधीर राम-राज्यमें दिखाते हैं ॥

रामचन्द्र बल-धामके बल-विक्रमका गान,
बरस धीर-रस, डाल दे—बेजानोंमें जान ।

भव्य भारत भी पहिली प्रभा भर ले ।
अरी रसना, सरस हो, भजन कर ले । अरी ॥३॥ —रसिकेन्द्र

रामचरितमानस

(लेखक—महात्मा गांधीजी)

भिज्ज मिज्ज मिज्ज पूछते हैं—

'रामायणको आप सर्वोत्तम ग्रन्थ भानते हैं, परन्तु समझमें नहीं आता, क्यों ? देखिये, तुलसीदासजी-ने श्री-जातिकी निन्दा की है। बालि-परवा कैसा समर्थन किया है। विनीष्यके देश-द्वोहकी किस कदर प्रशंसा की है। सीताजीपर घोर अन्याय करनेवाले रामको अवतार बताया है। ऐसे अन्यमें आप कौन सौन्दर्य देख पाते हैं ? तुलसीदासके काव्य-चातुर्यके लिये तो, शायद, आप रामायणको सर्वोत्तम ग्रन्थ नहीं समझते होंगे ? यदि ऐसा ही है तो, कहना पड़ेगा कि आपको काव्य-परीक्षाका कोई अधिकार ही नहीं।'

उपर्युक्त सब सवाल एक ही भिन्नके नहीं हैं, परन्तु भिज्ज-भिज्ज भिन्नोंने भिज्ज-भिज्ज समर्थपर जो कुछ कहा है और लिखा है, उसका सार है। यदि ऐसी एक-एक टीकाको लेकर देखें तो सारी-की-सारी रामायण दोषमय सिद्ध की जा सकती है। सन्धोप यही है कि इस तरह प्रथेक ग्रन्थ और प्रथेक मनुष्य दोषमय सिद्ध किया जा सकता है। एक चित्रकारने अपने टीकाकारोंको उत्तर देनेके लिये अपने चित्रको प्रशंसिनामें रखता और नीचे इस तरह लिखा—'इसी चित्रमें जिसको जिस जगह दोष प्रतीत हो, वह उस जगह अपनी कलमसे चिह्न कर दे।' परिणाम यह हुआ कि चित्रके चांग-प्रचंग दोष-पूर्ण बताये गये। मगर वस्तुस्थिति यह थी कि वह चित्र अत्यन्त कलायुक्त था। टीकाकारोंने तो बेद, बाह्यल और कुरानमें भी यहुतेर दोष बताये हैं, परन्तु उन ग्रन्थोंके भक्त उनमें दोषोंका अनुभव नहीं करते। प्रथेक ग्रन्थकी परीक्षा पूरे ग्रन्थके रहस्यको देखकर ही की जानी चाहिये। यह वादा परीक्षा है। अधिकांश पाठोंपर ग्रन्थविशेषका वाचा असर हुआ है यह देखकर ही ग्रन्थकी आनंदिक परीक्षा की जाती है। किसी भी साधनसे क्यों न देखा जाय रामायणकी अंगृहता ही सिद्ध होती है। ग्रन्थको सर्वोत्तम कहनेका यह अर्थ कदापि नहीं कि उसमें एक भी दोष नहीं है। परन्तु रामचरित-मानसके लिये यह वाचा अवश्य है कि उससे लालों मनुष्योंको शान्ति भिली है। जो लोग ईरवर-विमुक्त थे वे ईरवरके सम्मुख गये हैं और आब भी

जा रहे हैं। मानसका प्रथेक पृष्ठ अस्तिसे भरपूर है। मानस अनुभवजन्म ज्ञानका भवदार है।

यह बात ठीक है कि पापी अपने पापका समर्थन करनेके लिये रामचरितमानसका सहारा लेते हैं, हस्ते यह सिद्ध नहीं हो सकता कि वे लोग रामचरितमानसमें से अकेले पापका ही पाठ सीखते हैं। मैं स्वीकार करता हूँ कि तुलसीदासजीने छियोंपर अनिच्छासे अन्याय किया है। इसमें और ऐसी ही अन्य बातोंमें तुलसीदासजी अपने युगकी प्रचलित भाव्यताओंसे परे नहीं जा सके थे अर्थात् तुलसीदासजी सुधारक नहीं, बल्कि भक्त-शिरोमणि थे। इसमें इम तुलसीदासजीके दोषोंका नहीं परन्तु उनके युगके दोषोंका दर्शन अवश्य करते हैं।

ऐसी दशामें सुधारक वाचा को ? क्या इसको तुलसीदासजी-से कुछ सहायता नहीं भिज सकती ? अवश्य भिज सकती है। रामचरितमानसमें श्री-जातिकी काफी निन्दा भिजती है, परन्तु उसी ग्रन्थद्वारा सीताजीके पुनर्नियत चरित्रका भी हमें परिचय भिजता है। विना सीताके राम कैसे ? रामका यश सीताजीपर निर्भर है। सीताजी-का रामजीपर नहीं। कौशल्या, सुभित्रा आदि भी मानसके पृजनीय पात्र हैं। शब्दरी और अहल्याकी भक्ति आज भी सराहनीय है। रावण राहस था, मगर मन्दोदरी सती थी। ऐसे अनेक दृष्टान्त इस परिचर भवदारमें से भिज सकते हैं। मेरे विचारमें इन सब दृष्टान्तोंसे यही सिद्ध होता है कि तुलसीदासजी ज्ञानपूर्वक श्री-जातिके निन्दक नहीं थे। ज्ञानपूर्वक तो वह श्री-जातिके उजारी ही थे। यह तो छियोंकी वात हुई। परन्तु बालि-बधादिके धारेमें भी दो मनोंको गुंजाइश है। विभीषणमें तो मैं कोई दोष नहीं पाता हूँ। विभीषणने अपने भाईके साथ सत्याग्रह किया था। विभीषणका दृष्टान्त हमें यह सिखाता है कि अपने देश या अपने शासकके दोषोंके प्रति सहानुभूति रखना या उन्हें क्षिपणा देशभक्तिके नामको लजाना है, इसके विपरीत देशके दोषोंका विरोध करना सच्ची देशभक्ति है। विभीषणने रामजीकी सहायता करके देशका भला ही किया था। सीताजीके प्रति रामचन्द्रके घर्तव्यमें निर्दयता नहीं थी, उसमें राजधर्म और पति-प्रेमका इन्द्रियुद था।

जिसके दिलमें इस सम्बन्धकी शंकाएँ शुद्ध भावसे उठें, उन्हें मेरी सलाह है कि वे मेरे या किसी औरके अर्थको मन्त्रवत् स्वीकार न करें। जिस विषयमें हृष्ट शंकित हो, उसे छोड़ दें। सत्य, आहिंसादिकी विरोधिनी किसी वस्तुको स्वीकार न करें। रामचन्द्रने छुल किया था, इसलिये हम भी छुल करें, यह सोचवा औरा पाठ पढ़ना है। यह विचास रखकर कि रामजी कभी छुल कर ही नहीं सकते, हम पूर्ण युत्थका ही ध्यान करें और पूर्ण अन्यका

ही पठन-पाठन करें। परन्तु 'सर्वारंभा हि दोषेण भूमेना-ग्रिरिवावृता' अवश्यानुसार सब अन्य दोषपूर्व हैं, वह समझकर हंसवत् दोषरूपी नीरको निकाल करें और गुण-रूपी चीर ही अहव करें। इस तरह अपूर्वमें सम्पूर्णकी प्रतिष्ठा करना, गुणदोषका पृथक्करण करना, हमेशा व्यक्तियों और युगोंकी परिस्थितिपर निर्भर रहेगा। स्वतन्त्र सम्पूर्णता केरल ईश्वरमें ही है और वह अकथनीय है। (नवजीवनसे)

केवटका सर्वांगपूर्ण प्रेम

(लेखक—५० श्रीरामेश्वरामजी दिवेशी)

परम पुनीत श्रीरामायणजीमें भक्तराज केवटका प्रेम-प्रसंग एक अद्वितीय घटना है। यह प्रसंग ज्ञान एवं भक्ति-रस-सुधासे पूर्ण है। भक्तिये आकर्षित होकर ही मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रने वह अरिष्ट प्रदर्शित किया, अन्यथा श्रीभगवान्को तो नौकापर बहुनेकी आवश्यकता भी नहीं थी, परम भगवद्गत श्रीगोत्तमी तुदसीदासजीने कवितावकीमें तो केवटके मुखसे ही वह बात स्पष्ट करा दी है कि वहि आपको पार जाना अमीर है और चरण खुलाना अभीष्ट नहीं है तो 'अहि घाट ने धोरिक दूर अहै कटिला जल धाह देखाइही जू' अर्थात् 'नौकाके पीछे आप स्थों पर रहे हैं, इस घाटके समीप ही भगवती मामीरथी केवल कटिर्यन्त ही हैं, यह केवल कहनेकी ही बात नहीं है, मैं स्वयं आपके आगे आगे चढ़ाकर बता दूँगा' इत्यादि। किन्तु श्रीभगवान्को तो भक्तको विमल भक्तिके रससे नृस करना था, अतएव यह प्रसंग उसके जनोंसे भावोंको प्रदर्शित कराकर प्रकट किया है।

कुछ सजनोंकी यह धारणा है कि निषादराज और श्रीचरणाकृत पान करनेवाला केवट दोनों एक ही न्यकि हैं। यह धारणा असंगत-स्त्री प्रतीत होती है।

* अध्यात्मरामायणमें यह प्रसंग बालकाण्डमें अहल्योदारके बाद ही जनकपुरके रास्तमें गंगापार होनेके ममय आता है। अहल्याका पायाणसे कृषिपक्षी हो जानेके कारण आमपास बक्क हो-हङ्का मच गया था, गँवोंके रहनेवाले मरले कोगोने यही समझ किया था कि रामके चरणा-रजसे पत्थर ही स्त्री बन जाता है, अतएव वहाँ केवट कहता है—

क्षाक्षयामि नव पादपंकजं नाथ ! दारुद्वषदोः किमन्तरम् । मानुषीकाणचूर्णमस्ति ते पादयोरिति कथा प्रथीयसी ॥
पादम्बुद्धं ते विमलं हि कृत्वा पश्चात्परं तीरमहं नवायमि । नोचेत्तरी सद्यवती मलेन स्यादेदिभो ! विदि कुटुम्बाहानिः ॥

केवट-प्रसंग तो श्रीभगवान् श्रीरामचन्द्रजीसे सुमन्तके विदा होनेके पश्चात्—

परवस राम सुमन्त पठाये । सुरसगि तीर आपु चक्षि आये ॥
माँगी नाव न केवट आज्ञा । ॥

इत्यादि स्थानमें आरम्भ होता है और—

बहुत कीन्ह प्रभु लक्षन सिय, नहि कल्पु केवट लेइ ।

विदा कीन्ह कदनायतन, भगति विमल बर देइ ॥

—पर समाप्त होता है। 'विदा' शब्द भी इस बातका अनुमत उदाहरण है। और निषादराजका प्रसंग—

यहि सुधि गुह निषाद जब पाई—से प्रारम्भ होकर

तब रघुनार अनेक विदि ससहि सिसावन दीन्ह ।

गम रजायसु सीस घरि गवन भवन तिन्ह कीन्ह ॥

—पर समाप्त होता है। उमः दूसरे स्थानपर भी—

उतरि ठाढ़ भये सुरसि भेता । सीय गम गुह लक्षन समेता ॥

केवट उतरि दण्डवत कीन्ह । ॥

इत्यादिसे भी यही प्रमाणित होता है कि केवट और गुह दो अव्यक्ति हैं। कारण कि पाँच व्यक्ति नौकासे उत्तरते हैं—सीता, राम, गुह, लक्ष्मण और केवट। केवट तो गुह (निषादराज) की प्रजामात्र है। क्ष



श्रीराम और केवट

अनि आनंद उमा अनुरागा । चात सरोज पवारन लगा ॥
बरपि सुमन सुर सकल मिहाहे । पाहि सम पुनर्पुज कोउ नाही ॥

उच्च भक्तिका पर्यावरणी शब्द 'भ्रम' है, अलएव हस प्रसंगमें भक्तिके स्थानमें भ्रमका ही विवेचन किया जाना उचित होता। भ्रममें अतुल, अक्षय, अखौकिक शक्ति है इसी कारणसे यह प्रसंग अखौकिक है! सदिषु अन्यथन प्रभु भ्रमके वशीभृत होकर ही जाना अवलारोहारा अमित विवित्र लीजाएँ करते हैं। कभी पुत्र और कभी जामाना बनकर सेवा-युक्ता करना, कभी अपने भ्रमियोंके वश होकर नृत्य करना, कभी विनय-निहोरा कर हा हा जाना, कभी भीकरनीके जूँडे फल जाना, कभी खगका आद् जनना, कभी मानवतीके मनानेको परम सुन्दर वश भारण करना, कभी उत्तममें रूप जाना, कभी दूष ठानना, कभी इथका परिया खेकर दौड़ना और कभी अपनेको परम कृतकृत्य भावना इत्यादि सभी लीजाएँ भगवान् अपने भ्रमी जनोंके भ्रमवश होकर ही करते हैं। वेद-शास्त्र-पुराण सभी सगुण ब्रह्मके भ्रमकी गाथा गाते हैं। ढीक ही कहा है—

जाकी भायावस विर्वन्चि किव नाचत पार न पाये ।

करतल ताल बगाइ ग्वाल-जुर्वनिन तेहि नाच नचाये ॥

भगवान् नारदजीने भी भ्रमके विषयमें यही कहा है कि—‘अनिर्वचनीय भ्रमस्वरूपम्’ (ना०भ०म० ५१)

देखा जाय तो समग्र नारदभक्तिसूत्र ‘भ्रम’ शब्दपर ही एक यूरा निरन्तर है। ऐसे अनिर्वचनीय शब्दपर तो इन्यके अन्य भी अपर्याप्त हैं, उस भ्रमकी महिमा कहकर कौन पार पा सकता है? भ्रमका स्वरूप, भ्रमकी शक्ति, भ्रमकी प्रधानता, भ्रमका साधन, भ्रमकी दशा इत्यादि प्रत्येक विषय ही गहन और किलने योग्य है + किन्तु इन सबपर यहाँ योका धोका किलना भी कठिन है तथापि केवटके भ्रमको उपर्युक्त विषयोंमें से एक-आधपर घटाना असंगत नहीं होगा।

‘केवटक भ्रम’ ज्ञानमय है, केवट और ज्ञानके साधनका विचार करनेसे हस्तगतर तुलना होती है कि ज्ञानका अन्य, अवसानरसे पार तथा ब्रह्म-जीवकी एकरूपता होता है। केवटका यह कथन कहा जाता है—

तुम केवट भवसानर केर। नदी नावके हम बहुतेर ॥

तुम्हरी हमरी कस उतराई नापित नापितकी बनवाई ॥

दास्तीकीयरामायणमें ‘वरण-पञ्चारन’ प्रसंग नहीं है, परन्तु और वही श्रीरामको पार उतारते हैं। निषादराज वहीं रह जाता है। इससे भी यही सिद्ध होता है कि उह और केवट दो अकिं दे ।

+ भ्रमके सम्बन्धमें विवेच जानना हो तो गौतमेससे ‘भ्रमबोग’ नामक अन्य भँगकर अवश्य पढ़िये—सम्पादक

इन शब्दोंमें तरवा-तारवा और सादरपताका भाव भरा है, केवट शब्द ही ज्ञानका बोधक है—केवटके भ्रममें अर्थांकता, निर्भयता, उदासीनता, बोउता, निहुतता आदि गुण अनुपम सादरपताके धोतक हैं। सुतरां केवटका भ्रम ज्ञानमय है जो भक्तिका प्रधान काण्ड है।

केवटका-ना सुहावना भंगसमय सुधावसर भी संसारके इतिहासमें इन गिने व्यक्तियोंको ही नर्सीब हुआ है। एक दिन महाराज बक्षिको मिला था, जब सोनेकी झारीमें जल भरके उन्होंने श्रीभगवान्के पद-पङ्कज पसारे थे। किर भगवान् भमलयोनि कियाताने इन्हीं चरणोंका प्रधानन करके लोक-हितार्थ उस पावन चरणामूर्तिको निज कमरदाहुमें भर किया था, तदनन्तर योगिराज विवेहको भी वह दिन दिलाया दिया था, जब उन्होंने—

बहुरि राम पद पंकज धोये । जे हर-हृदय-कमलमहं गोये ॥

इन सब भास्त्रनिधि महामुर्लोंने भ्रम-पद-सरसीलूह धोये अवश्य थे परन्तु इस केवटकी तो धोबानि कुछ और ही है। अवसर चरण धोनेवाले ही चरण धुलानेवालेसे चरण धोनेवा निहोरा करते आये हैं। किन्तु यहाँ सो चरण धुलानेवाले—ही धोनेवालोंका विनय-निहोरा कर रहे हैं। सत्य है भ्रम या भक्ति कियासाथ नहों है, श्रीराम-कृष्णसाथ हैं।

भ्रमकी दशाएँ भ्रमज्ञालमें भावानुकूल, अमित कहकर प्रधानतः बारह धरतायी हैं। भक्तशिरोमणि महामा गोस्वामी श्रीमुखसीशसजीने केवट-प्रसंगमें भ्रमकी बारहों दशाएँ वर्णन की हैं। सबसे पहली भ्रमकी ‘उस’ दशा कही गयी है—

सोइ कृष्ण-केवटहि निहोरा । जेहि किय जग तिहुँ पगते थोरा ॥

यहाँ केवटके भ्रमकी ‘उस’ दशाका वर्णन है। ‘उस’ दशामें साधक जब ‘गुण-ग्राम-अवश्य’-रूप बीज बोता है तब वह साधार नयनगोचर होकर साधको कृतकृत्य करता है। अपने पूर्व संस्कारके ब्रह्मपर केवटने स्वयं भगवान्को वहाँ पा किया और देखते ही उसने पद्मान लिया, जिससे चरण धोनेके यिससे उसने श्रीभगवान्से प्रेम-विनोद ग्रहणम किया। भ्रमकी दूसरी ‘बद्ध’ दशा है—‘पद’ शब्द-

का अर्थ है जो अर्थात् जो वस्तु वाचिक है उसीकी चर्चा करना, उसीकी प्रासिका विशेष करना 'वस्तु' दशा है ।

जो प्रभु अवसि पार गा चहूँ । तो पद-पद्म पखारन कहूँ ॥

इसमें 'वस्तु' वाचक 'जो' शब्द है, उसका निर्याह यहाँ कैसा सुन्दर किया गया है अर्थात् जो शब्दमें प्रेमकी 'वस्तु' दशा समाची हुई है । तीसरी 'लक्षित' दशा—मनको प्रसन्न करनेवाली दशा है, जिससे गुरु-जनादिसे लज्जा भय आदि दूर होकर प्रीतममें परायेगता होती है । एषु सुधि होनेपर लज्जा और भय शास्त्र होता है ।

जासु नाम सुमिरत इकवारा । उतरहि नर मन्दिन्मु भ्रपारा ॥

तथा—

पद-पद्म धोइ चढ़ाइ नारन नाय उतराई चहौँ,
मोहि राम रातर आनि दसरथ सपथ सब साँची कहौँ ।
बहु तीर मारहि लक्ष्मि पै जबलगि न पाँव पक्षितीहौँ,
तबलगि न तुरसीदास नाथ कृपालु पार उतारिहौँ ॥

इन शब्दोंमें प्रेमकी किसी भी दूर दशा विशित की गयी है, यहाँ केवट अपने व्यवसायकी बराबरीका दावा रखना हुआ बराबरका व्यवहार निभाना चाहता है । श्रीरामचन्द्रीका भय भी मानता है, और अपनेको एड एवं सम्प्रतिक्ष भी सिद्ध करता है । चौथी दशा 'विलित' है—यह दशा विकलासुचक है । यथा—

'अमिन काल मे कौन्ह मृदी ।'

तथा—

'मिटे दोष दुखदारिद यावा ।'

यहाँ केवट अपनी विकलित दशाको प्रभुके यम्मुख विशेष दरता है । पाँचवीं 'निलित' दशा है, अर्थात् प्रीतमके संयोगका परमसुख 'विलित' दशा है ।

अति आनन्द उमगि अनुग्रहा । चरन-सरोज पखारन कागा ॥

चरण-कमलोंके पखारनेके अनुरागमें केवटको गोस्त्वामीजीने किसना आनन्दिन चित्रण किया है । यह उद्घाहरण छठी 'विलित' दशामें भी घटित होता है जिसमें कि भक्त अपनेको भूल-सा जाना है । सातवीं 'विलित' दशा है जिसको प्राप्तकर मन्त्र प्रेममें मन्त्र हो अपनपा विस्तारकर तन्मय हो जाता है ।

कहूँ कृपालु लेड उतराई । केवट चरन गहूँ अकुराई ॥

यहाँ सो बराबरीका दावा या कि हम दोनों नाविक

हैं, व्यवहार शुद्ध रहना चाहिये, कहाँ उतराई खोलेकी पूछते ही अकुलाकर चरण गह खेता है । यह प्रेमकी 'कलित' दशा का ही चित्र है । आठवीं 'विलित' दशा है जिसमें स्नेहकी रगड़से कभी-कभी भक्तका हृष्ण छिक जाता है । यथा—

'कहूँ तुमार मर्म मैं जाना ।'

तथा—

'मुनि केवटके बैन प्रेम लंपेटे अटपटे ।'

तथा—

फिरती बार जो कहु मोहि देवा । सो प्रसाद में सिर धरि केवा ॥

आदि वाक्य केवटके प्रेमकी विलित-दशा सूचित करते हैं । सब कुछ पा लिया किन्तु तृप्त नहीं हुआ । मुनः क्लौटी बार आकर जब देंगे तब सिरपर भरकर ग्रहण किया जायगा । इसनेमें सो स्नेहकी शृदि हुई है, प्रेमका नित्य नाता जोड़ लिया गया है । भगवान्का पूछना केवटके स्नेहार्द्ध हृष्णको छूतीलाला है जिसका कि आङ्ग्रेजी उत्तर दे देता है । नवीं 'विलित' दशा है, यहाँ चलना पारहौकिक याक्रासे सम्बन्ध रखता है ।

पद पक्षागि जन्मपान करि आङ्ग्र सहित परिवार ।

पितर पारकर प्रभुहि पूनि मृदित गयउ हैं पार ॥

अर्थात् प्रेमका नाता जोड़कर उसने पुरुषों सहित अपनी परलोकयात्रा निष्कर्षक कर ली है । दसवीं 'कान्त' दशा है जिसमें तृप्त होकर प्रेमी प्रियतममें अपना मनोरथ पूर्ण समझता है और अपने भाग्यकी सहायता करता है ।

अब कहु नाथ न चाहिय मेंगे । दीनदयारु अनुग्रह तेरे ॥

भाव स्पष्ट है । ग्यारहवीं 'विहृन' दशा है जिसमें मनहरण-को प्राप्त करके भी मान न त्वागनेपर उसके विशेषमें मन विशेष हृष्ण हो जानेसे पक्षनाला होता है । यथा—

पद नख निर्विदेव सरि हरर्दी । सुनि प्रभु बर्जन मोहसति करर्ही ॥

भगवान्को केवटके प्रेममें मन देखकर श्रीरामचन्द्रीको भी पक्षनाला हुआ । बारहवीं 'मंतस' दशा है जिसमें पूर्ण तृप्त होकर प्रेमरसमें सम्यक् तृप्त होकर मन बला रहता है । यथा—'नाय आज हम बाह न पाया ॥' हृष्णादि—

केवटके अमित भाव और कृपालुकी अद्वितीय कृपालुता दोनोंकी अद्वितीय ही अकथनीय है । अव्य केवट ! जिसकी अपार मायाका पार विधि-हरि-हरि में भी न पाया, उन्हें पार करना तुम्हारे ही लियमें आया ।

मानस और व्याकरण

(लेखक—पं० श्रीजगजाथप्रसादजी चतुर्वेदी)



छ गोरोंको प्रायः यह कहते सुना है कि कविताकाश-कलाधर कविवर गोस्वामी तुलसीदासजीके 'रामचरित-मानस'में व्याकरण-बिल्ड प्रयोगोंकी प्रचुरता है। उसमें लिङ्ग-वचनके व्यभिचारके अतिरिक्त 'ने' विभक्तिका बहिष्कार पद-पदपर इष्टिगोचर होता है। गोस्वामीजीने भूलकर भी कहीं 'ने' विभक्तिका प्रयोग नहीं किया है। पर यथार्थमें ऐसी बात नहीं है। जिन्हें हिन्दी व्याकरणका तनिक भी ज्ञान है, या जो उसकी बारीकियाँ समझते हैं वे ऐसा कभी नहीं कह सकते। हाँ, केवल पादिनिका पाठ करनेवाले जो आहें सो कह सकते हैं। मुझे तो 'रामचरित-मानस'में व्याकरणानुकूल प्रयोग ही अधिकासे मिले हैं। उनमें न तो लिङ्ग-वचनका व्यभिचार ही हुआ है और न 'ने' विभक्तिका बहिष्कार ही। कहीं-कहीं एकाथ स्थानमें शिथिल प्रयोग अवश्य है, पर उसे गोस्वामीजीके मध्ये मदना कदापि उचित नहीं, क्योंकि रामचरितमानसकी बड़ी छीड़ालेवर हुई है। लेलकों और प्रकाशकोंकी कृपासे ही गोस्वामीजी-पर ऐसा आदेष होता है। जिन गोरोंको गोस्वामीजी पर व्याकरण न जाननेका सन्देह है उनका सन्देह दूर करनेका लिये मैं यथाशक्ति प्रयत्न करता हूँ।

सबसे पहले मैं यही दिलानेका प्रयत्न करूँगा कि गोस्वामीजीने 'ने' विभक्तिका प्रयोग किया है और अच्छा किया है। जिनका यह अनुमान है कि गोस्वामीजीके समयमें हिन्दी भाषामें 'ने' का अवहार नहीं था, वह नीचे लिसी चौपाईयाँ जरा व्यानसे पढ़े और विचारें। बस, यही मेरी आर्थिका है। अच्छा देखिये—

'चतुराई तुम्हारि मैं जानी'

इसमें 'ने' का प्रयोग है या नहीं? यदि कोई कहे 'नहीं' तो मैं उसे दयाका पात्र समझूँगा, क्योंकि इसमें 'ने' का प्रयोग है, पर वह है। कवियोंको ऐसा करनेका पूर्ण अधिकार है। यदि गोस्वामीजी लिखते—

'चतुराई तुम्हारि मैं जाना।'

—तो अवश्य ही 'ने' का अभाव रहता, पर वही वह

बात नहीं है। यही 'ने' साक मालूम होता है। इसका अवश्य होगा—

मैं (ने) तुम्हारि चतुराई जानी।

इसी तरह—

'कही जनक जस अनुचित जानी'

—को समझना चाहिये। कोई कहे कि ऐसा छुणाव-व्यायसे हो गया है तो और भी उदाहरण लीजिये। यथा:-

सत्संगत महिमा नहि गोई।

निज निज मुखन कही निज होनी।

मंल पोच सब विवि उपजाये।

राय मुमाय भुकुर कर लीन्हा। बदन बिलोकि मुकुट सम कीन्हा॥

कपट लुरी उर पहन टेई।

कारन कवन कुटिलपन ठाना।

सहे घरम-हित कोटि कलेसा।

मरन काल विवि मति हर लीन्ही।

परमुराम पिनु आज्ञा राखी। मारी मातु लोक सब साखी॥

प्रभु करि कृपा पांवरी दीन्हाँ। सादर भरत सीस घरि लीन्हाँ॥

लठिमनहूँ यह मरम न जाना। जो कनू चारित रचा भगवाना॥

सो गोसाँव विवि गति जो छेकी। सके को टारि टेक जो टेकी॥

इत्यादि इसके प्रभुर प्रमाण हैं। विस्तार-भयसे केवल अयोध्या और बालकाशडसे ही कुछ चुने हुए उदाहरण दिये हैं। शेष पाँच कारण अभी छुए भी नहीं हैं। जिन्हें विश्वास न हो वह एक बार मानसरामायण व्याकरण से पढ़ जायें सो आप ही विश्वास हो जायगा।

अब लिङ्ग-वचनका प्रयोग देखिये। वह भी बाबत तोले पाव इसी ठीक ही मिलेगा।

'मति अति नीच ऊचि रुचि आछी।

ऊँची अच्छी रुचि, क्या अच्छा प्रयोग है। और सुनिये—
एकहि बार आस सब पूँजी। अब कनू कहब जीभ करि दूँजी॥

दूमब देबि बड़ि चूक हमारी।

चोर नारि जिमि प्रगट न रोई।

चढ़ी चंग जनु लैच खिलाउ।

सीय मातु कह विधि-बुधि बाँकी ।

बरसा विगत सरद रितु आई ।

मूमि परत भा डावर पानी । जिमि जीवहि माया लपटानी ॥

इनमें आस पूरी, बोम छरि दूजी, चूक हमारी, और
नारि रोई, बड़ी चंग, विधि-बुधि बाँकी, सरद रितु आई,
भा डावर पानी और माया लपटानी, ये प्रयोग विकल्पी शुद्धि
डंकेकी चोट बता रहे हैं। अब वचनकी शुद्धि देखिये—

ते पितु मातु कहहु सक्षि कैसे । जिन पठेये बन बालक पेसे ॥

माता-पिता के लिये कैसे और बालक (राम + लक्ष्मण)
के लिये ऐसे, कैसे व्याकरणसम्मत प्रयोग हैं। अच्छा
और भी सुनिये—

सल मूँह सब सुहृत सुहाये ।

और

जाने सरद रितु खंजन आये ॥

'सब सुहृत सुहाये' और 'खंजन आये' देखकर
भी क्या कोई गोस्तामीजीपर व्याकरण न जाननेका दोष
लगा सकता है?

कुछ लोगोंका कहना है कि गोस्तामीजीने 'का, को,
के' का व्यवहार न कर केवल 'कर' से ही काम चलाया है।
एवं यह बात भी भ्रमसे जाकी नहीं है। रामायणमें होनों
प्रकारके प्रयोग लिखते हैं, यथा—

मोह-मग्न मति नहि विदेहकी। महिमा सिय रघुवर सनेहकी॥

सुर नर मुनि सबकी यह रीती ।

भूतल परं लकुटकी नाई ।

इसपर टीका-टिप्पणी व्यर्थ है। हाँ, एक चिन्तनीय प्रयोग
भी मिला है, पर मैं उसे गोस्तामीजीके मत्थे नहीं मैंडना
चाहता, क्योंकि यह निश्चय ही लेखकोंकी भूल है। यथा—
कर-दूषनपैह गइ बिलक्षाता । विक विक तव पौष्टि बल भ्राना॥

यहाँ 'गई बिलक्षाता' न होकर बिलक्षाती होना
चाहिये था। इसी तरह एक स्थानपर और सन्देह दुश्मा
था, पर अब दूर हो गया। क्या कोई सज्जन 'बिलक्षाता'
का भी सन्देह दूर कर देंगे?

सिवर पं० अभिकाप्रसादजी बाजरेही 'स्वतन्त्र'सम्बादक
से प्रार्थना है कि वह अपने सूतोंके द्वारा इसका विवरण
कृपाकर कर दें। हाँ वह सन्देहाती जौशाई वह है—

मर्य बचन सीता जब बोला। हरिप्रेरित कछिमन मन ढोला ॥

एवं एक दूसरी रामायणमें नीचे लिखा पाठ मिलनेसे
सन्देह दूर हो गया ।

मर्य बचन सीता जब बोली । हरि प्रेरित कछिमन मन ढोली ॥

लेखकोंसे 'मर्य' का मन हो जाना असम्भव नहीं।
मतिज्ञ मन होनेसे 'बोली' का 'बोला' और 'बोली' का
'बोला' हो जाना भी स्वाभाविक ही है।

आशा है, गोस्तामीजीके व्याकरण-ज्ञानपर सन्देह
करनेवाले सज्जन इतनेहीसे सन्तुष्ट हो जायेंगे और फिर
सन्देह न करेंगे।

रामायण-सम्बन्धी यत् किञ्चित्

(लेखक—पं० भीशावरमहान् शर्मा)

(१) प्राक्थन



न्दू-जातिके परमाराष्य मर्यादा-
पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रका
पुरय-वरित चिप्रित कर रामायणके
रूपमें महिं वालमीकि जगत्कं
लिये शिशाका अस्त्रय एवं विपुल
भण्डार छोड़ गये हैं। रामायण
केवल राम-रावय-युद्धकी मारकाट-
का शुक्त इतिहास नहीं है, प्रत्युत
वह सर्वोच्च मानव-समाजका कर्तव्य-शास्त्र है। दूसरे शब्दोंमें
यों कह सकते हैं कि रामायण भारतवर्षकी धर्मप्राण धार्य-
जातिका सर्वेत्व है। रामायणका विशेष माहात्म्य लिखकर
समझानेकी आवश्यकता नहीं। कोटि-कोटि अद्वालु
हिन्दुओंके हृष्य-पटकपर अतिप्राचीन काव्यसे वालमीकि-
रामायणकी महिमा अद्वित है। यहाँ रामायणका पठन-
पाठन और अवलोकन पूर्ण अभीष्ट-फलदायक समका
आता है। रामायणके प्रति हिन्दुओंकी जो यह अद्वृ
त्तदा है, वह खर्म-नुदिसे है, कोरे इतिहास या काव्यकी
इहिसे ही नहीं। रामायणकी महिमाका दोतम करनेके
लिये लिङ्गाद्वित कुछ वचन ही पर्याप्त है—

वस्त्रमीकिनिरिसन्मूता राम-सागरगमिनी ।

पुनातु मुवनं पुण्या रामायणमहानदी ॥

X X X

वेदः प्रचेतसादसीत्साक्षाद्रामायणात्मना ॥

× × ×

रामायणमादिकाव्यं सर्वविदार्थसंमतम् ।
सर्वेषापहरे पुष्पं सर्वदुःखानिर्वहणम् ॥
समस्तपुण्यफलदं सर्वयशफलप्रदम् ।

× × ×

पैकेकमध्यं पुंसां महापातकनाशनम् ॥

× × ×

जो महापुरुष रामायणकी रचनाकर अन्य हो गये हैं, निस्सन्देह वह मुनिओह वाल्मीकि हमारे प्रश्नम् एवं अद्वासमन्वित भक्तिके पात्र हैं ।

(२) महर्षि वाल्मीकि

वाल्मीकि अति प्राचीन महर्षि हैं । प्रचेता-नन्य होनेसे उनका नामान्तर प्राचेत भी है । वह तपोनिष त्रिकावह ऋषि-ब्रेष्ट महापुरुष थे । भरद्वाज-जैसे प्रश्नात ऋषि उनके शिष्य-समुदाय-भुक्त थे । लक्ष्म-राज्य भगवान् रामचन्द्रका समस्त चरित प्रशस्त अर्थ-समन्वित विचित्र पदोंमें उन्होंने वर्णन किया है । आरभमें उन्होंने पञ्चशतसगांत्रिक छः काशदाँड़की रचना की । सप्तम उत्तर काशद महर्षिने पीछे बनाया ।

जिस समय जोकापवाद-भयसे भगवान् भीरामने संगर्भी सीताका न्याय किया उस समय रामाशानुसार लक्ष्मणजीने सतीशिरोमणि सीताको गङ्गाके पर-पारवर्ती तमसा-नदी-नीरस्य पुरुषकर्मा महर्षि वाल्मीकिके स्वर्ग-तुल्य आश्रममें ही छोड़ा था । वह वहीं महर्षिकी रक्षामें रही । उसी आश्रममें जन्मग्रहणपूर्वक जाक्षित-पालित होकर सुखर-सम्पन्न परम मेधावी कुश और खबने महर्षि वाल्मीकि-इहारा रामायण-गानकी शिक्षा जाभ की थी । वाल्मीकिके आश्रममें ही शत्रुघ्नको रामचरित अवश्य करनेका सौभाग्य शास्त्र हुआ था ।

आशुनिक अन्वेषणकारियोंका मत है कि Tons नामक एक नदी जो कुम्भेलखण्डसे होकर प्रयागसे योद्धी दूरपर गङ्गामें मिलती है, वही तमसा नदी है और इसी सङ्गम-स्थानके पास वाल्मीकिजीका तपोवन था ।

महर्षि वाल्मीकिके सम्बन्धमें वह प्रवाद भी प्रचलित है कि उनका पूर्व नाम रक्षाकर और वस्तु-वृत्ति भी । राम-

का उदादा भूद्वासे 'मरा' 'मरा' जपनेके प्रभावसे उन्होंने महर्षि-पद पाया । किन्तु यह बहुत पीछेकी कल्पना मालूम होती है । इसका कोई प्राचीन प्रामाणिक आधार भी नहीं है ।

(३) रामायणकी शिक्षा

रामायणके साथ संसारके किसी अन्यकी तुलना नहीं हो सकती । इसका कारण यह है कि महर्षि वाल्मीकिने अपने हृदयके सत्यको रामायणके प्रत्येक श्लोकके साथ विविधत कर दिया है । इस विशेषतासे रामायणका महत्व बहुत बड़ गया है । वाल्मीकि-रामायणपर भलेविवेशपूर्वक विचार कीजिये । वह विविध रस समन्वित काव्य है, सत्य-चटनाकलमित इतिहास है और है कर्तव्यविधायक सोदाहरण स्थृति । रामायणके द्वारा ही हमारे समस्त मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् और शारामका आदर्श उपस्थित होता है, राज्यसराज रावणकी दुर्दान्त प्रवृत्ति और कार्यप्रणालीका परिचय मिलता है । राम और रावणकी कार्य-द्वातियोंका परस्पर मिलान कर हम भिज-भिज परिणामोंकी शिक्षा रामायणसे पा सकते हैं । पिताके प्रति उत्रका क्या कर्तव्य है, भाई भाईका परस्पर क्या सम्बन्ध है, क्या व्यवहार है, प्रतिज्ञाका पालन कैसे करना चाहिये, प्रजाके प्रति राजाका क्या धर्म है, एक-पक्षीव्रतकी क्या महिमा है, लोकापवादसे किसप्रकार उत्तर चाहिये, धर्म-विरोधियोंका शमन किस तर्फरतासे किया जाय इत्यादि बातें हमें भगवान् रामके आदर्शसे मालूम होती हैं । इसके अतिरिक्त रामायण-वर्णित दशरथ और कौसल्या प्रभृतिका अपव्य-स्नेह, कलहप्रिय मन्त्रराकी परोक्षर्व-असहिष्णुता, सीताका प्रतिव्रत, लक्ष्मणकी निःस्वार्थ सेवा, भरतका आत्म-भक्ति-प्रधान स्वार्थ-त्याग, सुग्रीवकी मैत्री, इन्द्रानंकी एकान्त प्रभुभक्ति और विभीषणकी शरणागतिके उदाहरण मानव-समाजके लिये शिक्षाके उत्कृष्ट साधन हैं । रामायणसे जिन आदर्शोंकी शिक्षा मिलती है उन आदर्शोंमें से यदि कोई एक भी आदर्शका पालन कर सके तो उसके जीवनके धन्य होनेमें कुछ भी सन्देह नहीं । वह अपने लिये, अपनी जातिके लिये—सभीके लिये उपयोगी हो सकता है । वह स्वयं आदर्श बनकर अपने समाजको आदर्श बना सकता है । जननी और जन्मभूमिको स्वर्गसे भी अविक गरीबसी बताने वाला—‘जननी जन्मभूमिश्व स्वर्गादपि गरीयसी’—वह महामन्त्र महर्षि वाल्मीकिके हृदयकी ही मुखर घनि है ।

(४) रामायणमें वर्णाश्रम-धर्म

भगवान् श्रीरामचन्द्रके समयमें वर्णाश्रम-धर्म पूर्वोक्तप्रसे
प्रतिष्ठित था । आश्रम, उत्तिर, वैश्य और शूद्र—चारोंवर्ग
अपने-अपने चर्मके इन अनुयायी थे । यथा—

क्षत्रि ब्रह्मसुखं आसीदैश्याः क्षत्रमनुक्रताः ।

शूद्राः स्वर्कर्मनिरताक्षीन्वरणनुपचारिणः ॥

(वा० रा० १।६।१५)

अपने धर्मसे विपरीत शूद्र शूद्रक तपस्या करने लगा
या, उसका श्रीरामचन्द्रजीको वध करना पड़ा । यही नहीं,
आश्रम कोग शूद्रको मन्त्र दान करनेपर पतित हो जाते थे ।
सुन्दरकावदके ८ वें सर्गके ८ वें श्लोकमें इसका उल्लेख
है । आश्रमोंके लिये आन और आसनादिकी स्वतन्त्र
व्यवस्था थी ।

(५) रामायणकी विवाह-विधि

रामायणमें स्वयंवरका उल्लेख होनेपर भी कल्याको
पति स्वयं वरण करनेका अधिकार नहीं था । वे स्वेष्टा-
चारियों नहीं थीं । वीर्यशुल्क सीताजीके स्वयंवरका
आयोजन भी सीताजीने स्वयं नहीं, किन्तु राजा जनकने
अपनी प्रतिशक्ती पूर्तिके लिये किया था । अब
श्रीरामचन्द्रका प्रवल पौरुष उन्होंने देव लिया—उनको और
उनके भाईयोंको उपर्युक्त पात्र समझ लिया—तब राजा
दशरथको दृतहारा सन्देश भेजकर उत्तराय । राजा दशरथ
भरत-शत्रुघ्निको बोकर वसिष्ठादि सहित जनकपुर आये ।
वहाँ वर-पक्षकी ओरसे इच्छाकुल-पुरोहित भगवान्
वसिष्ठने वैदिकाओं सुनाये और वधु-पक्षका वंश कीर्तन
स्वयं राजा जनकने किया । इसके पश्चात् जनक दशरथको
गोदान पूर्ण पितॄकार्य (नार्दीमुख आदि) करनेके लिये
कहते हैं । यह कृप्य विवाहसे वहले दिन सम्पन्न हुए । दूसरे
दिन समस्त कर्तव्यकर्म समाधानपूर्वक राजा दशरथ
श्रवियोंको अग्रस्थी बनाकर राम, सप्तमव्य, भरत, शत्रुघ्नि सहित
राजा जनकके द्वारस्थ हुए । उसी समय वसिष्ठजीने आगे
बढ़कर जनकको विवाहकी तंयारी करनेके साथ-साथ
दशरथादिको वज्ञानारमें आनेकी अनुमति देनेके लिये कहा ।
जनक वहलेसे ही कल्याणों सहित तैयार बैठे थे । श्रवियों
और पुत्रों सहित राजा दशरथके यज्ञ-मण्डपमें घुँचनेपर
राजा जनकने वसिष्ठजीसे कहा—‘आप श्रवियों सहित

बोकाभिराम रामका विवाह-कार्य कराइये । इसके पश्चात्
विश्वामित्र और शताभन्द ने मण्डपमें विजिपूर्वक बेदी-रचना
की और—

अलब्रकार तं वेदि गन्धपुर्वैः समन्ततः ।

सुवर्णपालिकाभिश्च चित्रकुमैश्च सांकुरैः ॥

अंकुराङ्गैः शरावैश्च धूपपात्रैः सधूषकैः ।

शङ्खपात्रैः सुवैः सुरिमः पात्रैरर्णादिपूजितैः ॥

लाज्जूर्णैश्च पात्रीभिरक्षैतरपि संस्कृतैः ।

दमैः समैः समासीर्य विधिवन्मन्त्रपूर्वकम् ॥

अग्निमाधाय तं वेद्यां विधिमन्त्रपुरस्कृतम् ।

जुहवाप्रौ महांतेजा वसिष्ठो मुनिपुङ्गवः ॥

ततः सीता समार्नोय सर्वाभरणभूषिताम् ।

समक्षमद्ये संस्थाप्य राघवाभिमुखं तदा ॥

(वा० रा० १।७३।२१-२५)

इसके बाद राजा जनक कौशल्यानन्दवर्द्धन श्रीरामसे
कहते हैं—

इये सीता मम सुता सहर्षमच्चरी तव ।

प्रतिष्ठ्छ चेना भर्ते ते पश्चि गृह्णात्वं पाणिना ॥

पतित्रता महाभागा छायवानुगता सदा ।

यह कहकर राजाने मन्त्रपूर्ण जल छोड़ दिया । इसी
तरह लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्निके हाथमें क्रमानुसार दर्मिला,
मायदीपी पुंवं श्रुतिकीर्तिके उद्देश्यसे जलनिषेपपूर्वक राजा
जनकने सबको आशीर्वाद दिया—

सर्वे भवन्तः सीता श्रीसुता मुच्चार्थत्रताः ।

पन्निमिः मनु काकुत्स्या मानुकालस्य पर्ययः ।

नदनन्तर कृष्णागृहीताखोंने तीनवार अग्निकी प्रदक्षिणा
करके राजा तथा श्रवियोंकी परिक्रमा की और यों विवाह-
विधि समाप्त हुई । यह भी रामायणसे सिद्ध है कि राजा
जनकने वहा देवज दिया था । इस विवाह-विधानको
कल्याणोंका स्वेच्छासम्मत स्वयंवर नहीं कहा जा सकता ।
रामायणमें यह भी देखा जाता है कि विवाहके सम्बन्धमें
कल्या स्वतन्त्र—स्वेच्छाचारियी नहीं, प्रत्युत अपने पिताके
सर्वथा अधीन थीं । इसका उदाहरण— वहाँ वायु, कुण्डलाभकी
कल्याणोंसे भावी बल आनेकी प्राप्त्यना करता है वहाँ वे

कल्पाएँ उत्सको बड़ी कड़ी फटकार बताती हैं और
कहती हैं—

मा भूत्स कालो दुर्मेघः पितरं सत्यवादिनम् ।
अबमन्य स्वधर्मेण स्वयंवरमुपासम्हे ॥
पिता हि प्रमुरस्माकं दैवतं परमं च सः ।
यस्य नो दास्यति पिता स नो मर्ता भविष्यति ॥

(१३२।२१-२२)

ऐ दुर्दिंदि वायु ! अपने सत्यवादी पिताका अपमान
करके हम अपनी इच्छासे स्वयंवर करें, ऐसा समय कभी
न आवे । हमारे पिता कुशनाभ हाँ हमारे प्रभु और परम
दैवत हैं वे जिस उरुपके साथ हमारा विवाह करेंगे वही
हमारा पति होगा ।

(६) रामायणकी कुछ फुटकर बातें ।

प्रथः चौबीस सहस्र श्लोकात्मक सप्तकाशद रामायणके
वर्णित विषयोंकी चर्चा किसी एक जेलमें नहीं हो सकती ।
उनका ज्ञान मनोरोगसे पढ़ने या सुननेपर हाँ हो सकता है ।
रामायणमें राजा दशरथकी जिस राज्य-न्यवस्थाका वर्णन है,
उसके साथ समुच्छतसे समुच्छत राज्यकी व्यवस्थाकी तुलना की
जा सकती है । विपुल वैभवशालिना अयोध्याकी मनोहरताका
चित्र भी रामायणमें अनुपम है । इसके अतिरिक्त रामायणमें
पितरोंके तर्पण और आदका भर्तीभाँति प्रतिपादन है ।
प्रायोपदेशन (धरना) का भी उत्तरेल मिलता है । भरतजी
रामचन्द्रजीको वापस जानेके लिये धरना देकर बैठ गये थे
किन्तु रामचन्द्रजीने धरनेको चत्रियोंके लिये अनुचित बताकर
उन्हें मना कर दिया था । सीताको खोजमें जाकर जब
अक्षदण्डि बानर कुछ पता नहीं चढ़ा सके तब उन्होंने भी
प्रायोपदेशन करनेका विचार किया था । रामायण-कालमें
संस्कृत वोक्यालकी भाषाके रूपमें प्रचलित थी । इल्लव
आङ्गाणका रूप धारणाकर संस्कृत वोक्याकर ही आङ्गाणोंको
निमित्तित करता था । इन्मानजीने भी सर्वप्रथम शशोक्तव्यमें
पहुँचकर सीताजीसे किसप्रकार वार्तालाप किया जाय—इस
विषयमें बड़ा सोच-विचार किया और अन्तमें संस्कृतमें ही
भाषण करना विश्वित किया । उस समय वेदशास्त्रोंके पठन-
पाठनकी सुव्यवस्था थी । वेदशास्त्र-सम्प्रभ आङ्गाण विहानोंका
बड़ा समावर था, उन्हें बान-दण्डिया भी खूँ लिखती थी ।
पवित्र लोग सभाओंमें पहुँचकर विजय पानेकी इच्छासे
शाकार्थ भी किया करते थे । इबन एवं यशानुषाग भी बड़ों

५५

भूम-धामसे विचिपूर्वक सम्प्रभ होते थे । देवताओंके उद्देश्यसे
कामना-सिद्धिके लिये इच्छाँ पूजा, प्रार्थना और रात्रि-जागरण
(रातीजगा) भी किया करती थीं ।

तुलसी-काव्य

(लेखक—श्रीदामोदरसहायसिंहजी, एक० टी०, 'कविकिर')

(१)

जानि परै मारगा न छाये कुस कास उहाँ

इहाँहूँ न सूझे कछु मारग सुभावनो ।
सर सरितानको लतानको वितान उहाँ

हरे हरे सूझे इहाँ अन्ध-जस सावनो ॥
'दामोदर' दीननको गृहतें विहाननको

एक दुखदाई दूजो दुर्जन दुखावनो ।
नातो साधुसज्जनके हेतु सब भाँतिन ही
काव्य तुलसीके कैधीं सावन सुहावनो ॥

(२)

रामको जनमसो संज्ञोगिनको आनंद है

राम बनबाससो वियोगिन दुखावनो ।
दादुरको सोर चहूँओर राम जस सोई

रावनको जुद्ध रैन-रूपसो भयावनो ॥
भायप भरतको अनूप हरियाली भरो

खेतनमें नाज राम-राज मन भावनो ।
पावनो मनोरथ नसावनो हियेको सोक

काव्य तुलसीके कैधीं सावन सुहावनो ॥

(३)

राम रस अमल अमृतकी बिसद बूँदें

भक्तसालि ऊपर सदाही बरसावनो ।
मरम्भूमि मालवपै बायें दाहिनेपर सम

जोग जुकिकोंहूँ भक्ति-भावन भुलावनो ॥
राम स्यामताके छाये धन धनघोर सिया—

'दामोदर' दामिनी दमंक दमकावनो ।
हिय हुलसावनो नसावनो हियेकी पीर

काव्य तुलसीके कैधीं सावन सुहावनो ॥

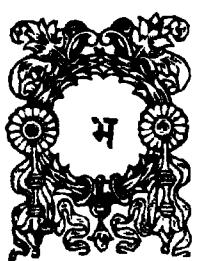
~~~~~

## रामायणमें आदर्श भ्रातृ-प्रेम

( लेखक—श्रीजयदयाकर्जी गोयन्दका )

अनुज-जानकी सहित प्रभु आप-बान-धर राम ।

मम हिय-गण इन्हु इव बसहु सदा निष्काम ॥



**भ**गवान् श्रीरामचन्द्रजीके समान मर्यादा-रत्नक आजतक कोई दूसरा नहीं हुआ, ऐसा कहना अत्युक्ति नहीं होगा। श्रीराम सावात् परमात्मा थे, वे धर्मकी रक्षा और खोकांके उद्धारके लिये ही अवतीर्ण हुए थे। उनके आदर्श लीलाचरित्रिको पढ़ने, सुनने और स्मरण करनेसे हृष्टप्रभु महान् पवित्र भावोंकी लहरें उठने लगती हैं और मन मुग्ध हो जाता है। उनका प्रत्येक कार्य परम पवित्र, मनोमुग्धकारी और अनुकरण करने योग्य है। ऐसे अनन्त गुणोंके समुद्र श्रीरामके सम्बन्धमें मुझ-सरीखे व्यक्तिका कुछ विख्याना एकप्रकारसे लड़कपन है तथापि अपने मनोविनोदके लिये शास्त्रोंके आचारपर यत्किञ्चित् विख्यानका साहस करता हूँ, विज्ञान चमा करते। श्रीराम सर्वगुणाधार थे। सत्य, सुहृदता, गम्भीरता, चमा, दया, शुद्धता, शृता, धृता, निर्भयता, विनय, शान्ति, तितिष्ठा, उपरामता, नीतिज्ञता, तेज, प्रेम, मर्यादा-संरक्षकता, एक-प्रतीकृत, प्रजारञ्जकता, ब्रह्मव्ययता, मातृपितृ-भक्ति, गुरुभक्ति, आतृप्रेम, सरदाना, व्यवहारकुशकता, प्रतिज्ञा-उत्परता, शारण्यागत-वस्त्रजाता, त्याग, साधु-संरक्षण, हुष्ट-विनाश, निर्वैरता, सख्यता, खोकप्रियता आदि सभी सद्गुणोंका श्रीराममें विलक्षण विकास था। इतने गुणोंका एकत्र विकास जगतमें कहीं नहीं मिलता। माता-पिता, बन्धु-मित्र, छो-बुद्र, सेवक-प्रजा आदिके साथ उनका जैसा आदर्श बताऊँ है, डसकी ओर स्वयात् करने ही मन मुग्ध हो जाता है। श्रीराम-जैसी खोकप्रियता सो आजतक कहीं नहीं देखनेमें आयी। कैकेयी और मन्थराको छोबकर उस समय ऐसा कोई भी ग्राही नहीं था जो श्रीरामके व्यवहार और प्रेमके बताऊँसे मुग्ध न हो गया हो। वास्तवमें कैकेयी भी श्रीरामके प्रभाव और प्रेमपे सदा मुग्ध थी। राम-राज्याभियंकरों बात सुनकर वह मन्थराको पुरस्कार देनेके लिये प्रस्तुत हुई थी, श्रीरामके गुणोंपर उम्मका बड़ा भारी

विश्वास था। वस्त्रास भेजनेके समय शान्त बनी हुई कैकेयीके मुखसे भी ये सच्चे उद्घार निकल पड़ते हैं—

तुम अपराध जोग नहीं ताता। जननी-जनक-बन्धु-मुख-दाता ॥

राम सत्य सब जो कहु कहू। तुम पितु-मातु-बचन-रत अहू ॥

कैकेयीका रामके प्रति अग्रिय और कठोर बर्ताव सो भगवान्की इच्छा और देवताओंकी प्रेरणासे खोकहितार्थ हुआ था। इससे यह नहीं सिद्ध होता कि कैकेयीको श्रीराम प्रिय नहीं थे। वेद, भगवत्, राष्ट्र और पश्च पर्वी किसीका भी रामसे विरोध नहीं था। यशविद्युत्सकारी राष्ट्रों और शूरपंथस्त्राके कान-नाक काटनेपर खर, दूषण, त्रिशिरा, रावण, कुम्भकर्ण, मेघादू आदिके साथ जो धैर-भाव और युद्धका प्रसंग आता है, उसमें भी रहस्य भरा है। वास्तवमें रामके बहमें उनमेंसे किसीके साथ वैर था ही नहीं। राष्ट्रसगण भी अपने सकुटु-बद्धारके लिये ही उन्हें धैर-भावसे भजते थे। रावण और मारीचकी उपियोंसे यह स्वप्न है—

मुरंजन मंजन महि भारा। जो जगदीस लौह अवतार ॥

तो मैं जाह वैर हठि करिहौं। प्रभु-सरं भवसागर तरिहौं ॥

होइ भजन नहि तामस देहा। मन क्रम बचन मन्त्र इह पहा ॥

—रावण

मम पांछे धर धावत, धौं सरासन बन ।

किरि किरि प्रभुहि बिलोकिहौं। धन्य न मोसम अन ॥

—मारीच

इसमें यह सिद्ध है कि श्रीरामके जगन्में चराचर जीवोंका श्रीरामके प्रति जैसा आदर्श प्रेम था, वैसा आजतक किसीके सम्बन्धमें भी देखने सुननेमें नहीं आया।

श्रीरामकी मातृ-भक्ति कैसी आदर्श है। स्वमाता और अन्य माताओंकी तो बात ही क्या, कठोर-से-कठोर व्यवहार करनेवाली कैकेयीके प्रति भी श्रीरामने भक्ति और सम्मानसे पूर्ण ही बताऊँ किया।

जिस समय कैकेयीने बन जानेकी आङ्ग दी, उस समय श्रीराम उसके प्रति सम्मान प्रकट करते हुए बोहे, माता, इसमें सभी तरह मेरा कस्ताण है—

मुनिगन मिलन विशेष बन सबहि भाँति हित मोर ॥  
तेहिमहे पितु आयसु बहुरि, सम्मत जननी तोर ॥

श्रीरामने कुपित हुए भाई लक्ष्मणसे कहा—

यस्मा भद्रभिषेकार्थं मानसं परित्यजते ।  
माता नः सा यथा न स्यात्सविदाहा तथा कुरु ॥  
तस्याः शङ्खाभ्यं दुःखं मुहूर्तमपि नोत्सहे ।  
मनसि प्रतिसंजातं सौमित्रेऽहमुपेष्ठितुम् ॥  
न बुद्धिपूर्वं नानुदं स्मरामीह कदाचन ।  
मानूणां वा पितुर्वाहं कृतमलं च विप्रियम् ॥  
( वा०रा०२ । २२ । ६-८ )

‘हे लक्ष्मण ! मेरे राज्याभिषेकके संवादसे अस्यमत परिताप पायो हुई माता कैकेयीके मनमें किसी प्रकारकी शङ्खा न हो नुग्हे बैसा ही करना आहिये । मैं उसके मनमें उपजे हुए शंकारूप दुःखको एक घडीके लिये भी नहीं सह सकता । हे भाई ! जहाँनक मुझे याद है, मैंने अपने जीवनमें जानमें या अनजानमें माताश्रोणका और पिताजीका कभी कोई जरा-सा अधिय कार्य नहीं किया ।’

इसके बाद बनसे औटते हुए भरतजीमेरे श्रीरामने कहा—

कामाहा तात ! लोमाद्वा मात्रा तुम्हसिद्ध कृतम् ।  
न तन्मनसि कर्तव्यं वर्तत्वं च मातृवृत् ।  
( वा०रा०२ । ११२ । १९ )

‘माता कैकेयीने (मुहुरारी हित- ) कामनासे था (राज्यके) छोभसे जो यह कार्य किया, इसके लिये मनमें कुछ भी विचार न कर भक्तिभावसे डनकी माताकी भाँति सेवा करना ।’

इससे पता लगता है कि रामकी अपनी माताश्रोणके प्रति किसी भक्ति थी । एक बार लक्ष्मणने बनसे कैकेयीकी कुछ निन्दा कर दाली । इसपर भारतभक्त और भ्रातृप्रभी श्रीरामने जो कुछ कहा सो सदा मनन करने योग्य है—

न तेऽम्बा मध्यमा तात गर्हितव्या कदाचन ।  
तांसेवेष्वाकुनाथस्य भारतस्य कथां कुरु ॥  
( वा०रा० ३ । १६ । ३७ )

हे भाई ! विचक्षी माता ( कैकेयीकी ) निन्दा कभी मत किया करो । काते करनी हों तो इच्छाकुनाथ भरतके सम्बन्धमें करनी आहिये । ( क्योंकि भरतकी चर्चा मुझे बहुत ही मिय है )

इसीप्रकार डनकी पितृभक्ति भी अनुहृत है । पिताके वचनोंको सत्य करने लिये श्रीरामने क्या नहीं किया ।

पिताको दुखी देखकर जब श्रीरामने कैकेयीसे दुःखका कारण पूछा तब उसने कहा कि ‘राजा के मनमें एक बात है परन्तु वे तुम्हारे डरसे कहते नहीं हैं, तुम हृष्णे बहुत प्यारे हो, तुम्हारे प्रति हनके मुखसे अभिय वचन ही नहीं निकलते, यदि तुम राजाकी आज्ञापाकानकी प्रतिश्वाकरों सो ये कह सकते हैं, तुमको वह कार्य अवश्य ही करना चाहिये जिसके लिये हन्दोंने मुखसे प्रतिश्वाकी हैं ।’ हनके उत्तरमें श्रीरामने कहा—

अहो विद् नार्हसे देवि वक्तुं मामीदां वचः ।

अहं हि वचनाद्राकः पतेयमपि पावके ॥

मक्षयेदं विवं तीक्ष्णं पतेयमपि चार्णवे ।

( वा०रा०२ । १८ । २८-२९ )

‘अहो मुझे धिक्कार है, हे देवि ! तुमको ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये, मैं महाराजा पिताकी आज्ञासे आगमे कृत सकता हूं, तीक्ष्ण विष खा सकता हूं, समुद्रमें कृत सकता हूं ।’ लक्ष्मणने जब यह कहा कि ऐसे कामासक पिताकी आज्ञा भावना अवश्य है, तब श्रीरामने सगरपुश और परशुरामजी आदिका उदाहरण देते हुए कहा कि ‘पिता प्रत्यक्ष देवता है, उन्होंने किसी भी कारणसे वचन दिया हो, मुझे उसका विचार नहीं करना है, मैं विचारक नहीं हूं, मैं तो निश्चय ही पिताके वचनोंका पालन करूँगा ।’

विकाप करती हुई जननी कौसल्यासे श्रीरामने स्पष्ट ही कह दिया था कि—

नास्ति शक्तिः पितुर्वाक्यं समतिक्रिमितुं मम ।

प्रसादये तां शिरसा गन्तुमिच्छाम्यहं बनम् ॥

( वा०रा० २।४१।३० )

‘मैं चरणोंमें सिर टेककर प्रणाम करता हूं, मुझे बल जानेके लिये आज्ञा दो, माता ! पिताजीके वचनोंको दाखले-की मुखमें शक्ति नहीं है ।’

श्रीरामका पृष्ठपक्षीघ्रत आदर्श है, पक्षी सीताके प्रति रामका क्षितना प्रेम था, इसका कुछ विवरण सीताहरणके पश्चात् श्रीरामकी दशा देखनेसे होता है । महान् श्रीर वीर राम विरहोन्मत होकर अशुपूर्ण नेत्रोंसे कदव, ब्रेल, अशोकादि कुर्चोंसे और हरियोंसे सीताका पता पूछते हैं । यहाँ भगवान् श्रीरामने अपने ‘ये यथा मां प्रपथन्ते तास्थैव भजाम्यहम्’ के वचनको मानो चरितार्थ कर दिया है । वे विकाप करते हैं, प्रकाप करते हैं, पागलकी भाँति लालालून्य-से हो

जाते हैं, मूर्छित हो पड़ते हैं, और 'हा सीते हा सीते' उकार ड़ठते हैं।

श्रीरामका सख्य-प्रेम भी आदर्श है। सुमीषके साथ मित्रता होनेपर आप मित्रके खबरण बताते हैं—

जे न मित्र दुस होहि दुखारी । तिनहि बिलोकत पातक भारी ॥  
निज दुख गिरि सम रज करि जाना । मित्रके दुख रज मेरु समाना ॥  
देत लेत मन संक न धरहीं । बल अनुमान सदा हित करहीं ॥  
विपतिकाल कर सतगुन नेहा । सुति कह सत मित्र गुन पहा ॥

फिर उसे आशासन देते हुए कहते हैं—

सखा सोच त्यागहु बल मोरे । सब विवि करन काज मैं तोरे ॥

इसी प्रकार रामका आतृप्रेम भी अतुलनीय है : रामायणमें हमें जिस आतृप्रेमकी शिक्षा मिलती है, आतृप्रेम का जैसा उचातिदृष्ट आदर्श प्राप्त होता है वैसा जगतके इतिहासमें कहीं नहीं है। पारदर्शनमें भी परस्पर बड़ा भारी प्रेम था। उनके आतृप्रेमकी कथाएँ पढ़-सुनकर चित्त द्रवित हो उठता है और हम उनकी महिमा गाने लगते हैं, परन्तु रामायणके आतृप्रेमसे उसकी तुलना नहीं हो सकती। रामायणकालसे महाभारतकालके आतृप्रेमका आदर्श बहुत जीवा था। इस कालकी तो बात ही क्या है, जहाँ बात-बातमें जड़ाइयाँ होती हैं और जरा-जग-से सुख-भोगके लिये भाइयोंकी हरयातक कर ढाली जाती है ! आज हम जेवरमें श्रीराम प्रभृति चारों भाइयोंके आतृप्रेमके सम्बन्धमें यथामति किंचित् दिमर्शन कराया जाता है।

### श्रीरामका आतृप्रेम

लद्दकपनसे ही श्रीराम अपने तीनों भाइयोंके साथ बड़ा भारी प्रेम करते थे। सदा उनकी रक्षा करते और उन्हें प्रसन्न रखनेकी चेहा करते थे। खेळ-झूझमें भी कभी उनको दुखी नहीं होने देते थे। यहाँ तक कि अपनी जीतमें भी उन्हें नुश करनेके लिये हार मान लेने थे और प्रेमसे पुचकार तुचकारकर दौब देने थे—

खेलत संग अनुन बालक निन जोगवत अनट अपाठ ।

जीति हारि चुचुकारि दुलारत देत दिवावत डाठ ॥

श्रीराम तीनों भाइयोंके साथ लेकर भोजन करते, साथ ही खेलते और सोते थे। विश्वामित्रजीके साथ उनके यज्ञरथार्थ श्रीराम-खदमण बनमें गये। अनेक विद्या सीखकर और राष्ट्रसोंका विनाशकर मुकिके साथ जोनों भाई जनकपुरमें

पहुँचे। घनुष भंग हुआ। परशुरामकी आवे और कोप करके घनुष सोइनेवालेका नामधारम पूछने लगे, श्रीरामवे वसी नव्रतासे और लक्ष्मणजीने तेजयुक्त बचनोंसे उनके प्रभका उत्तर दिया। लक्ष्मणजीके कथनपर परशुरामजीको बड़ा कोष आया, वे उनपर दर्ता यीसने लगे। इसपर श्रीरामने जिस चतुरतासे भाईके कार्यका समर्थनकर आतृप्रेमका परिचय दिया, उस प्रसंगके पड़नेपर हरय सुगम हो जाता है।

तदनन्तर विवाहकी तैयारी हुई, परन्तु श्रीरामने स्वयंवरमें विजय प्राप्त कर अकेले ही अपना विवाह नहीं करा लिया। लक्ष्मणजी तो साथ थे ही, भरत-शत्रुघ्नको तुलाकर सबका विवाह भी साथ ही करवाया।

विवाहके अनन्तर अयोध्या लौटकर चारों भाई प्रेमपूर्वक रहने लगे और अपने आचरणोंसे सबको मोहित करने लगे। कुछ समय बाद भरत-शत्रुघ्न नगिहाल चले गये। पीछे से राजा दशरथने मुनि वशिष्ठजी का आज्ञा और प्रजाकी समर्पितसे श्रीरामके अनिश्चीय राज्याभिषेकका विजय किया। चारों ओर मंगल-वधाइयाँ बैठने लगीं और राज्याभिषेककी नैयारी की जाने लगी। वशिष्ठजीने जाकर श्रीरामको यह हर्ष-संवाद सुनाया। राज्याभिषेककी बात सुनकर कौन प्रसन्न नहीं होता। परन्तु श्रीराम प्रसन्न नहीं हुए, वे पश्चात्पाप करते हुए कहने लगे 'अहो ! यह कैसी बात है, जन्मे साथ, खाना-पीना, सोना-खेलना साथ हुआ, कर्णवध, जनेड और विवाह भी चारोंके एक साथ हुए, फिर यह राज्य ही सुख अकेलेको बयों मिलना चाहिये, हमारे विमल कुलमें वही एक प्रथा अनुचित है कि छोटे भाइयोंको छोड़कर अकेले बड़ेको ही राज्यार्थ। मिलती है—

जनमें एक संग सब भाई । मोजन सयन केलि लरिकाई ॥  
कन्देव उपचारि विवाह । संग संग सब भयउ उछाहा ॥  
विमल बंस यह अनुचित एका । अनुज विहाइ बड़े अभिषेका ॥

श्रीरामको अकेले राज्य स्वीकार करनेमें बड़ा अनौचित्य प्रतीत हुआ। मनकी प्रमद्धतासे नहीं, परन्तु विलाक्षी आशासे उन्हें राज्याभिषेकका प्रस्ताव स्वीकार करना पड़ा। परन्तु उनके मनमें यही था कि मैं सिर्फ यह प्रथा भर पूरी कर रहा हूँ, बासबद्धमें राज्य तो भाइयोंका ही है। भरत शत्रुघ्न तो उस समय मौजूद नहीं थे, अतः श्रीरामजीने लक्ष्मणसे कहा—

सौमित्रे मुद्दहर भोगास्त्रविद्वान्प्राप्यफलानि च ।

जीवितं चापि राज्यं च त्वदर्थमिकामये ॥

(बा० रा० २१४४)

‘भाई सौमिने ! तुम (झोग) वाञ्छित भोग और राज्य-फलका भोग करो, मेरा यह जीवन और राज्य तुम्हारे ही लिये है ।’

इसके बाद ही इस जीला-नाटकका पट परिवर्तन हो गया । माता कैकेयीकी कामनाके अनुसार राज्याभिषेक वत्तगमनके रूपमें परिवर्त हो गया । प्रातःकालके समय जब श्रीराम पिता दशरथकी सम्मतिसे सुमन्तके द्वारा कैकेयीके महामें जुखाये गये और जब उन्हें कैकेयीके बरदानकी बात मातृम हुई तब उन्होंने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की, वे कहने लगे कि ‘माता ! इसमें बात ही कौन-सी है, सुके तो कबल एक ही बातका दुःख है कि महाराजने भरतके अभियेके लिये मुझसे ही क्यों नहीं कहा—

गच्छन्तु चौवानयितु दृतः शीघ्रजैवह्ये ।  
भरतं मातुकुलादैवं नृपशासनात् ॥  
दण्डवत्तरण्यमेवोऽहं गच्छाग्नेव हि सत्वरः ।  
अविचार्यं पितुर्बद्यं समा वस्तुं चतुर्दश ॥  
(वा० ग ० २। १०। १०-११)

महाराजकी आजासे दूनगण अभी नेज छोड़ोपर सवार होकर मामाजीके यहाँ भाई भरतको लानेके लिये जाएँ । मैं पिताजीके बचन सत्य करनेके लिये बिना कुछ विचार किये चाँदह वर्षके लिये दण्डवत्तरण्य जाता हूँ । प्राणप्रिय भाई भरतका राज्याभियेक हो, इससे अधिक प्रसन्नता मेरे लिये और क्या होगी ? विचारा आज सब तरहसे मेरे अनुकूल है—

भरत प्रानप्रिय पावहि रात्रु । विधि सब विधि मोहि सन्मुख आत्रु ।  
जो न जाँ बन ऐमहि कोजा । प्रथम गनिय मोहि मृदु-समाजा ॥

अब्य है यह त्याग, आदिसे अन्ततक कहीं भी राज्यविसाक्षा नाम नहीं, और भाइयोंके लिये सर्वदा सर्वस्व त्याग करनेको तैयार ! इस प्रसंगासे हमें यह विद्वा ग्रहण करनी चाहिये कि छोटे भाइयोंको छोड़कर राज्य, धन या सुखका अकेले कभी ग्रहण नहीं करना चाहिये । योग्यतावश कहीं ग्रहण करना ही परे तो उसमें भाइयोंका अपनेसे अधिक धर्मिकार समझना चाहिये, लिक यह मानना चाहिये कि उन्हों भोगोंके लिये मैं इसे ग्रहण करता हूँ और यदि ऐसा भौका आ जाय कि अब भाइयोंको राज्य, धन, सुख मिलता हो और इसलिये अपनेको त्याग करना पड़ता हो तो बहुत ही प्रसन्न होना चाहिये ।

इसके बाद श्रीराम माता कौसल्या और पही सीतासे विदा माँगने गये । श्रीरामने भरत या कैकेयीके प्रति कोई भी अपशब्द या विदेषमूलक शब्द नहीं कहा । बल्कि सीतासे आपने कहा—

दन्तितव्याश्च ते नित्यं याः शेषा मम मातरः ।  
स्नेहप्रणयसंभेगैः समा हि मम मातरः ॥  
आतृपुत्र समौ चापि द्रष्टव्यां च विशेषतः ।  
त्वया भरतशत्रुं प्राणः प्रियतरौ मम ॥  
(वा० रा० २। २६। ३२-३३)

‘मेरी माताजीओंको नित्य प्रशाम करना, मुझपर स्नेह करनेमें और मेरा छाड़-प्यार तथा पालन-पोषण करनेमें मेरी सभी माताएँ समान हैं । साथ ही तुम भरत-शत्रुघ्निको भी अपने भाई और बेटेके समान समझना, क्योंकि वे दोनों मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्यारे हैं ।’

यहाँ विशेष आग्रह और भ्रेमके कारण सीताजीको भी साथ चलनेकी अनुमति श्रीरामको देनी पड़ी, तब लक्ष्मणजीने भी साथ चलना चाहा । श्रीराम ऐसे तो पुरुष थे ही नहीं, जो अपने आरामके लिये लक्ष्मणसे कहते या उसे उभारते कि ‘ऐसे अन्याय राज्यमें रहकर क्या करोगे तुम भी साथ चलो ।’ उन्होंने लक्ष्मणको घर रहनेके लिये बहुत समझाया, अनेक युक्तियोंसे यह चेष्टा की कि किसी तरह लक्ष्मण अयोध्यामें रहें, जिससे राज्य-परिवारकी सेवा-सम्भाल हो सके, और लक्ष्मणको बनके कष्ट न भोगने पड़ें, परन्तु यह लक्ष्मणने किसी तरह नहीं माना तब उसको सुख पहुँचानेके लिये श्रीरामने साथ ले जाना स्वीकार किया ।

श्रीराम छोटे भाई लक्ष्मण और सीतासहित बनके चले गये । बनमें लक्ष्मणजी श्रीराम-सीताकी हर तरह सेवा करते हैं और श्रीराम भी वही कहते और करते हैं जिससे श्रीसीताजी और भाई लक्ष्मण सुखी हों । सीध-रघुनं जेहि विधि मुख लटहीं सोइ रघुनाथ करहिं सोइ कहहीं । जुगवहि प्रभु गिय-अनुजहि कैसे । पलक बिलाचन-गोलक जैसे ।

इससे यह सीखना चाहिये कि अपनी सेवा करनेवाले छोटे भाई और पहीको जैसे सुख पहुँचे वैसे ही कार्य करने चाहिये तथा उनको वैसे ही रक्षा करनी चाहिये जैसे पलक और लक्ष्मणकी करती हैं ।

×            ×            ×

भरतके सत्तेन्य बनमें आनेका समाचार प्राप्तकर यह श्रीराम-प्रेमके कारण लक्ष्मणजी चुन्ध होकर भरतके प्रति

न कहने योग्य शब्द कह बैठे, तब श्रीरामने भरतकी प्रशंसा करते हुए कहा, 'भाई ! भरतको मारनेकी वास तुम क्यों कहते हो, मुझे अपने बान्धवोंके नाश करनेसे प्राप्त होनेवाला धन नहीं चाहिये, वह तो विषयक आङ्के समान है—

धर्ममर्थं च कामं च पृथिवीं चापि लक्षणं ।  
इच्छामि भवतामर्थं पतत्रपतिशृणामि ते ॥  
भार्तृणां संग्रहार्थं च सुखार्थं चापि लक्षणं ।  
राज्यमप्यहमिच्छामि सल्येनायुधमालमे ॥  
यद्विना भरतं त्वां च शत्रुं चापि मानद ।  
मेवन्मम सुखं किञ्चिद्ग्रस्म तत्कुरुतां शिखी ॥  
मन्येऽहमागताऽयोध्यां भरतो आनृतसङ्कः ।  
मम प्राणात् प्रियतरः कुलधर्ममनुस्मरन् ॥  
श्रुत्वां प्रवजितं भां हि जटावत्कलचारिणाम् ।  
जानक्या सहितं वीर त्वया च पुरुषोत्तम ॥  
स्नेहेनाक्रान्तहृदयः शोकनाकुलिसेन्द्रियः ।  
द्रष्टुमस्यागतो हृष भरतो नान्यथगतः ॥  
अस्मां च कैक्यों रुप्य भरतश्चाप्रियं बदन् ।  
प्रसाद्य पितं श्रीमान् राज्यं मे दातुमागतः ॥

(वा०८० २।०७ : ४-५ एवं ८।१२)

हे लक्षण ! मैं सत्य और आयुधकी शापथ करके कहता हूँ कि मैं धर्म, अर्थ, काम और सारी पृथ्वी तथा और जो कुछ आहना हूँ, वह सब तुम्हीं जोगोंके लिये ! राज्यकी इच्छा तुम्हीं जोगोंके धन और सुखके लिये कहता हूँ । भरत, तुम और शशुभ्रको छोड़कर यदि मुझे कोई मुख होता हो तो उसमें आग लगजाय । हे भाई ! मैं तो समझता हूँ मेरे प्राणव्यारे आनृतसङ्क भाई भरतने जब अप्योद्यामे आकर यह सुना होगा कि मैं जटा-चाँद धारणाकर तुम्हारे और जानकीके साथ उसमें जलागया हूँ तब वह कुछ वर्षोंके अरण करके अति स्लेहके कारण आकुड़ होकर कातर और अप्य वर्षोंसे माता कैक्यीको अप्रसन्न और पिता दशरथजीको प्रसङ्ग करता हुआ हम जोगोंके दर्शनके लिये तथा तुम्हे जौटाकर राज्य देनेके लिये ही आ रहा है ।' वह मनसे भी कभी विपरीत आचरण नहीं कर सकता । तुम्हें राज्यकी इच्छा हो तो मैं भगतसे कहकर दिलवाऊँगा । तुम भरतके सम्बन्धमें भूत समझ रहे हो ! भाई भरतको कभी राजमद नहीं हो सकता—

सुनहु लक्ष्म लक्ष्म भरत सरीका । विवि प्रपंचमहें मुनान दीका ॥

भरतहि होइ न राजमद, विवि-हरि-हर पद शाइ ।

कहुँ कि कौंजी सीकरान्हि, छीरसिंघु बिनसाइ ॥

लगन तुम्हार सपथ पितु आना । सुचि सुबंधु नहि भरत समाना ॥

सगुन छीर, अबगुन जल ताता । मिले रचे परपंच विचाता ॥

भरत हंस रविंस तड़ागा । जनविकीन्ह गुणदोष विमागा ॥

गहि गुन-पथ तजि अबगुन-बारी । निज जस जगत कीन्ह उजियारी ॥

कहत भरत गुन सील सुभाऊ । प्रेम-पयोधि मगन रघुराऊ ॥

श्रीराम भरतका गुण गान करते हुए प्रेमके समुद्रमें निमग्न हो गये ! लक्ष्मणजीको अपनी भूत भालूम हो गयी ! यहाँ भगवान् श्रीरामने लक्ष्मणके प्रति जो नीतियुक्त तीखे और प्रेमभरे बचन कहे, उनमें प्रधान अभिशाश तीन समझने चाहिये । प्रथम, भरतके प्रति श्रीरामका परम विश्वास प्रकट करना, दूसरे, लक्ष्मणको यह चेतावनी देना कि तुम भरतकी सरलता, प्रेम, त्याग आदिको जानसे हुए भी मेरे प्रेमवश प्रमादसे बालककी तरह ऐसा क्यों बोल रहे हो ? और तीसरे, उन्हें फटकारकर ऐसे अनुचित मार्गसे बचाना ।

भरत आये और 'हे नाय ! रक्षा करो' कहकर दशहकी तरह घृवीपर गिर पड़े । भरतहृदय श्रीलक्ष्मणने भरतकी बार्षी पहचानकर उन्हें श्रीरामके चरणोंमें प्रवाम करते देखा हृदयमें आनुप्रेम उभवा, परम्पु सेवा-धर्म बदा जवरदस्त है । लक्ष्मणजीका मन करता है कि भाई भरतको हृदयसे जगा लूँ परन्तु फिर अपने कर्तव्यका ध्यान आना है तब श्रीराम-सेवामें लड़े रह जाते हैं, इसप्रकार—

मिलि न जाइ नहि गुरुरत बनइ । भुकवि लगन-मनकी गति भनइ ॥

गहि गालि सेवापर भाऊ । आँधी चंग जनु लंच खेलाऊ ॥

आखिर सेवामें लगे रहना ही उचित समझा, परन्तु श्रीरामसे निवेदन किये विना उनसे नहीं रहा गया— लक्ष्मणजीने निर बदाकर प्रेमसे कहा—

भरत प्रनाम करत रनुनाथा !

भगवान् तो भरतका नाम सुनसे ही विद्वाह हो गये और प्रेममें आधीर होकर उन्हें उठाकर गले जगानेको ठठ सड़े हुए । उस समय श्रीरामकी कैसी दशा हुई—

ठठ राम सुनि प्रेम अधीरा । कहुँ पट कहुँ निर्वग धनुतीरा ॥

बरबस लिये उठाइ ठर लायं कृपनिधान ॥

भरत रामकी निलनि लक्षि विसरे सबहि अपान ॥

यहाँ चारों भाइयोंका परस्पर प्रेम देखकर सभी सुख हो गये । भरतकी विनय, नव्रता, साधुता और राम-भक्ति देखकर तां कोग तन-मनकी सुधि भूल गये । श्रीरामको पिता के मरण-संवादसे बड़ा दुःख दुष्टा । यथोचित शास्त्रोक्त विषयसे किया करनेके बाद समाज शुद्धा । भरतने भाँति भाँतिसे अनेक युक्तियाँ दिखाकर श्रीरामको राजग्रहणके लिये प्रार्थना की । कशिष्ठादि ऋषियोंने, मन्त्री, पुरवासी और माताघोरोंने भी भरतका साथ दिया । जब भगवान् श्रीरामने किसी प्रकार भी स्वीकार नहीं किया तो भरतकीने कहा कि मैं अनशन ब्रत रखकर प्राण दे दूँगा । इसपर श्रीरामने उन्हें पहले तो धरना देनेके लिये फटकारा, फिर, विक्रिधि भाँतिसे समझाकर शान्त किया और अन्तमें अरण्यमें पढ़ रांसे दुष्ट भरतको अपने हाथोंसे खीचकर गोदमें बैठा लिया और प्रेमवश कहने लगे—

हे भरत, सुझे बनवाससे जौटाकर राज्याभिषेक करानेके लिये तुमको जो बुद्धि दुर्ह है सो स्वाभाविक ही है, यह गुल्सेवा द्वारा प्राप्त विनय-विवेकका फल है । इस श्रेष्ठ बुद्धिके कारण तुम समस्त पृथ्वीका पालन कर सकते हो । परन्तु—

तथीश्वन्द्रादप्याद्वा हिमवान्वा हिमं त्पंगत् ।

अतीयात्सागरे वर्णा न प्रितिशमहं पंतुः ॥

( वा० २० २११२१२ )

'चन्द्रमा चाहे अपनी भी स्थान दे, हिमावय हिमको छोड़ दे, समुद्र मर्यादाका उल्लंघन करदे पर मैं पिता की प्रतिज्ञाको सत्य किये बिना धर नहीं छौट सकता ।'

अंगुस्ताईजीने लिखा है कि श्रीरामने अन्तमें प्रेमविवश हो कर भरतजीसे कहा कि—

मैया ! तुम दुःख न करो, जीवकी गति ईश्वराधीन है, हे भाई ! मेरी समझसे तो तानों काल और तानों लोकोंमें जितने पुरुषको पुरुष हैं वे सब तुमसे नीचे हैं । तुमको जो मनमें भी कुटिल समझेगा, उसके लालक-परजोक विगड़ जायेंगे, माता कैकेयीको वही ज्ञान देंगे जिन्होंने गुरु और साधुओंका संग नहीं किया है । मैं शिवको साड़ी देकर सत्य कहता हूँ, कि भाई ! अब यह पृथ्वी तुम्हारे रख्ले ही रहेगी । तुम अपने मनमें कुछ भी शंका न करो । हे प्यारे ! देखो ! महाराजने सुझको स्थान दिया, प्रेमका प्रया निकाहनेके लिये शरीर भी छोड़ दिया परन्तु सत्य नहीं छोड़ा । इसलिये सुझको उनके बचन दालनेमें बड़ा संकोच

हो रहा है, परन्तु उससे भी बढ़कर सुझे तुम्हारा संकोच है, गुल्मीभी कहते हैं, अतः अब सारा भार तुमपर है, तुम जो कुछ कहो, मैं वही करनेको तैयार हूँ—

मन प्रसन्न करि सोच तजि कहहु करौं सो आज ।

सत्यसिन्धु रथुवर बचन सुनि भा सुखी समाज ॥

सोच छोड़कर प्रसन्न मनसे आज तुम जो कुछ कह दोगे वही करनेको तैयार हूँ यानी सुझे सत्य बहुत प्यारा है परन्तु उससे भी बढ़कर तुम प्यारे हो । तुम्हारे लिये सब कुछ कर सकता हूँ । इससे अधिक आत्मप्रेम और क्या होगा ? जिस सत्यके लिये पिता-माताकी परवा नहीं की, आज अनायास वही सत्य, लौटानेके लिये आए हुए, भाई भरतके प्रेमपर छोड़ दिया गया ।

अवश्य ही भरत भी श्रीरामके ही भाई थे । उन्होंने यहे भाई श्रीरामका अपने ऊपर इतना प्रेम देखकर उन्हें संकोचमें डालना नहीं चाहा और योजे कि—

जो मनक साहिब संकोची । निज हित चैहंतासु मति पोची ॥

'जो दास अपने मालिकको संकोचमें डालकर अपना कल्याण चाहता है उसकी बुद्धि वर्दा ही नीच है । मैं तो आपके राजतिथकके लिये सामग्री लाया था परन्तु अब—

प्रभु प्रसन्न मन सकुच तजि जो जेहि आयसु देव ।

सो सिर घरि घरि करहि सब मिठिहि अनट अवरेव ॥

प्रभु निःसंकोच होकर प्रसन्नतासे जिसको जो आशा देंगे वह उसीको सिर चढ़ाकर करेगा, जिससे सारी उल्लङ्घन आप ही सुलझ जायगी । अन्तमें श्रीरामने फिर कहा 'मैया ! तुम मन बचन कर्मसे निर्मल हो, तुम्हारी डपमा तुम्हीं हो, बड़ोंके सामने छोडे भाईके गुण हस तुम्हसमयमें कैसे बखान् ? भाई ! तुम अपने सूर्यवंशकी रीति, पिताजीकी कीर्ति और प्रांति जानते हो, और भी सारी बातें तुमपर विदित है । अवश्य चौदह वर्षतक तुम्हारोंको बहुत कष्ट होगा—

जानि तुमहि मृदु कहों कठोरा । कुसमय तात न अनुचित मोरा ॥

होहिं कुठाँ सुबंधु सहाये । आडि हाथ असनिके घाये ॥

हे प्यारे ! मैं तुम्हारे हृदयकी कोमलता जानता हुआ भी तुम्हें यह कठोर बचन कह रहा हूँ परन्तु क्या कहूँ ? यह समय ही ऐसा है, इस समयके लिये यही उचित है, जब तुम समय आता है तब भले भाई ही काम आते हैं तब वारके बारको बचानेके लिये अपने ही हाथकी आद करनी पड़ती है ।'

भगवान्के इन प्रेमपूर्ण रहस्यके वचनोंको सुनते ही भरत श्रीरामकी रुखको भक्तीभाँति समझ गये। उनका विचाद दूर हो गया। परन्तु औदृश साज निराधार जीवन रहेगा कैसे? अतः—

सो अवलम्ब देव मोहि देवा। अवधि पार पाँवउ जेहि सेवा॥

भगवान्ने उसीसमय भरतजीकी हृच्छानुसार अपनी चरणपादुका परम तेजस्वी महात्मा भरतजीको दे दी! भरतजी पादुकाओंको प्रणामकर मस्तकपर धारणकर अयोध्या छौट गये।

×                    ×                    ×

श्रीरामने कुछ समय तक चित्रकूटमें निवास किया, फिर अचियोंके आश्रमोंमें धूमते धूमते पंचवटीमें आये। वहाँ कुछ समय रहे। वनमें रहने समय भगवान् ग्रातिदिन ही लक्ष्मणजीको भाँति भाँतिसे ज्ञान-भक्ति-वैराग्यका उपदेश किया करते। एक दिन उपदेश देते हुए उन्होंने कहा—

संत-चरन पंकज अति प्रेमा। मन-क्रम-बचन भजन दढ़ नेमा॥  
गुरु पितु मानु बन्धु पतिदेवा। सब मोहि कहै जानै दढ़ सेवा॥  
मम गुन गावत पुलकि सरीरा। गद-गद पिरा नयन बह नीरा॥  
कामादिक मद दंमन जाके। तात निरन्तर बस मैं ताके॥

बचन कर्म मन मोरि गति, भजन करह निष्काम।

तिनके हृषय कमल महि, करड़ सदा विसाम॥

इसप्रकार सद्वर्चर्चाँ और परम रहस्यके वातांकापमें ही समय दीतता था। भाईपर इतना प्रेम था कि श्रीराम उन्हें हृषय खोलकर अपना रहस्य समझाने थे।

×                    ×                    ×

सीता-हरण हुआ, लक्ष्मण चदाई की गयी और भयानक युद्ध आरम्भ हो गया। एक दिन शक्तिवायसे श्रीकृष्णमणके घायल हो जानेपर श्रीरामने भाईके लिये जैसी

\* यह भगवान् श्रीरामकी प्रलःप-लीला मानी जाना है। आगे के देखेके इस वाचन्यमें भी प्रलाप ही मिद होता है। भगवान् शिवके इन वचनोंमें कि, 'उमा एक अखेड रघुराई। 'नर गति' भगत-कृपालु देखाई' से भी साधारण मनु वयत्र प्रलाप ही ठहरता है। इसमें अर्थात्तर करनेका आवश्यकता नहीं, परन्तु यह दूसरा अर्थ किया जाय तो उपर्युक्त चौपाईयोंमें—'जो जनतेड़ बन-बन्धु विलोहू। पिता बचन भनतेड़ नहि ओहू॥' इस चौपाईका अर्थ यह करना चाहिये कि यहि मैं जानता कि वनमें बन्धुओंमें विलोह होगा तो मैं (पिता बचन भनतेड़) पिताके बचन मानकर वनमें तो आता, परन्तु ('नहि ओहू') लक्ष्मणका आश्रम स्थीकार कर उमे वनमें साथ नहीं लाता।

इसी प्रकार 'निज जननीके पक दुसरा। नासु तात तुम प्राण अथारा' उन चौपाईका अर्थ यों करना चाहिये कि मैं जैसे अपनी माताका प्यारा इकाईता पेटा हूँ, वैसे ही अपनी माता सुमित्राके तुम प्राणाधार हो।

इस चौपाईका अर्थ यह भी किया जा सकता है कि 'मैं अपनी माताके एक ही लड़का हूँ और तुम उसके (मेरे) प्राणाधार हो। अर्थात् तुम्हारे जीवनमें ही मेरा जीवन है।'

विशाप-प्रलापकी जीवा की, उससे पता लगता है कि छोटे भाई लक्ष्मणके प्रति श्रीरामका कितना अधिक स्वेह था।

श्रीराम कहने लगे—

किमे राज्येन किं प्राणे युद्धे कार्यन विद्धते ।

यत्रायं निहतः शेते रणमूर्च्छनि लक्ष्मणः ॥

यथेव मां वनं यान्तमनुयाति महाद्युतिः ।

अहमप्यनुयास्यामि तथैवैनं यमक्षयम् ॥

(वा० रा० ६। १०१। १२-१३)

'अब युद्धसे, रास्यसे या जीवनसे क्या प्रयोगन है जब कि प्यारा भाई लक्ष्मण रथभूमिमें सो चुका है। भाई! जिसप्रकार महातेजस्वा तुम मेरे साथ बनमें आये थे उसीप्रकार मैं भी तुझारे साथ परलोकमें जाऊँगा।' गुसाईजी लिखते हैं—

श्रीराम प्रकाप करते हुए कहते हैं—

सक्तु न दुखित देखि मांहि काऊ। बंगु सदा तब मृदुल सुमाऊ ॥

मन हित लागि तजेहु पितु माता। सहेड विधिन हिम आतप बाता ॥

सो अनुराग कहाँ अब भाई। उठहु न सुनि मम बच बिकलाई ॥

जो जनतेड़ बन बन्धु विलोहू। पिता बचन मनतेड़ नहि ओहू ॥

सुत बित नारि भवन परियारा। होहि जाहिं जग बारहि बारा ॥

जया पंख बिनु खग अति दीना। मनि बिनु फनि करिबा करीनाम ॥

अस बिचारि जिय जागहु ताता। मिलहु न जगत सहादर भ्राता ॥

अस मम जिवन बंधु बिनु तोही। जौ जड़ देव जियावहि मांही ॥

जेहऊं अवव कवन मुँह लाई। नारि हेतु प्रिय बन्धु गंवाई ॥

अब अपलोक सोक सुत तोग। सहिति निहुर कठोर उर मोरा ॥

निज जननीके एक कुमारा। तात तामु तुम प्रान-अधारा ॥

सोंपेसि मांहि तुमहिं गहि पानी। सबबिनि सुखद परम हित जानी॥

उत्र काह देहऊं तेहि जाई। उठि किन मोहि सिखावहु भाई ॥

बहु विवि संचत सोच विमोचन। स्वतंसकिल राजिद-दल-लोचन॥\*

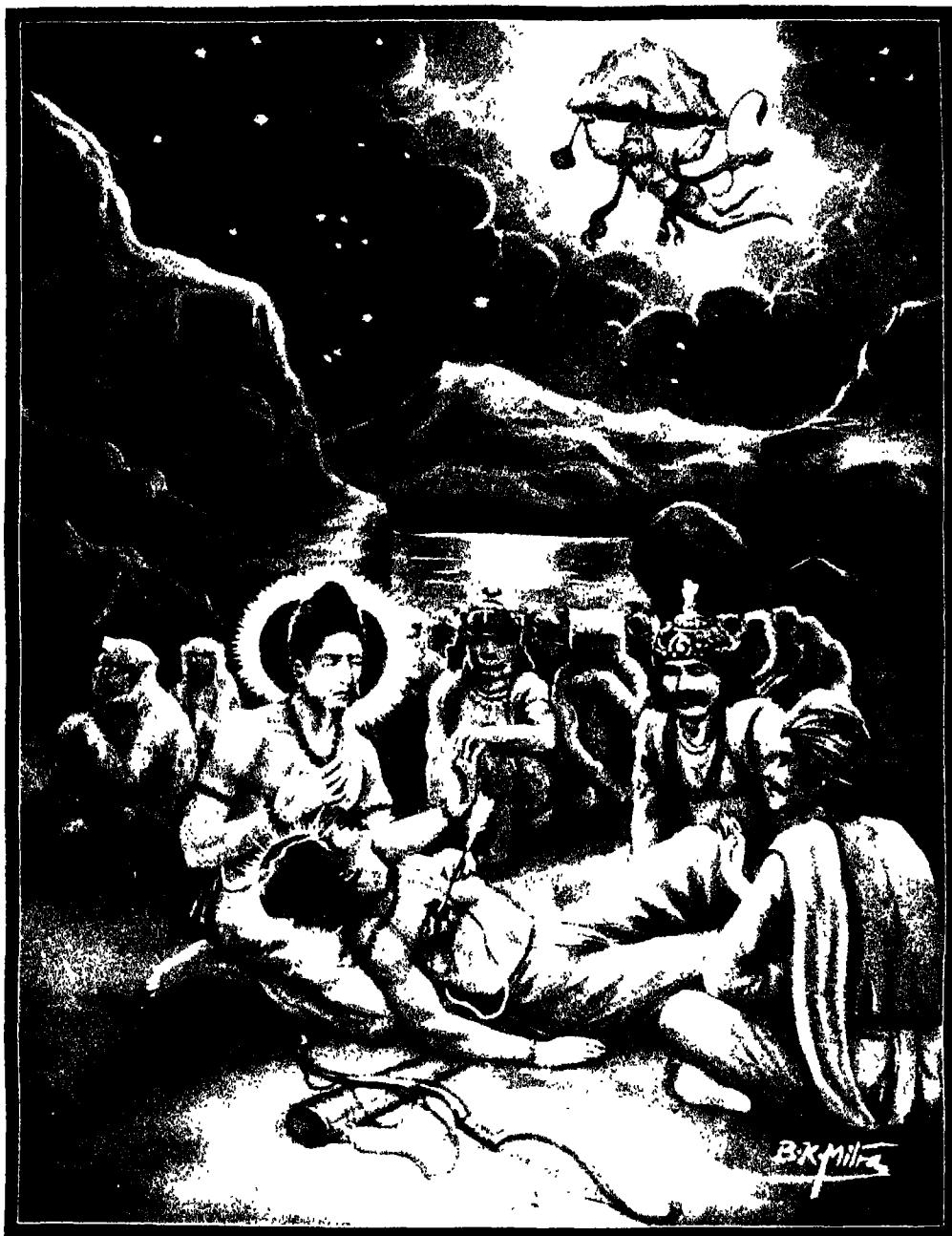
प्रलापमें कुछका कुछ कहा जाना ही स्वाभाविक है। 'प्रमुप्रलाप सुनि

कान' आगे के देखेके इस वाचन्यमें भी प्रलाप ही मिद होता है। भगवान् शिवके इन वचनोंमें कि, 'उमा एक अखेड रघुराई।

'नर गति' भगत-कृपालु देखाई' से भी साधारण मनु वयत्र प्रलाप ही ठहरता है। इसमें अर्थात्तर करनेका आवश्यकता नहीं, परन्तु यह दूसरा अर्थ किया जाय तो उपर्युक्त चौपाईयोंमें—'जो जनतेड़ बन-बन्धु विलोहू। पिता बचन भनतेड़ नहि ओहू॥'

इस चौपाईके अर्थ यह करना चाहिये कि यहि मैं जानता कि वनमें बन्धुओंमें विलोह होगा तो मैं (पिता बचन भनतेड़)

कल्याण



राम-विलाप ।

प्रभु-विलाप सुनिकान, विकल भण वानरनिकर ।

आइ गयेउ हनुमान, जिमि करना महं दीर रस ॥



जो भाई अपने लिये बरदार छोड़कर मरतेको तैयार है, उसके लिये विज्ञाप किया जाना उचित ही है परन्तु श्रीरामने तो विज्ञापकी पराकाढ़ा कर आत्मप्रेमकी बड़ी ही सुन्दर गिरिया दी है।

श्रीहनूमान्‌खीके द्वारा संखीवनी लानेपर लक्ष्मणजी स्वस्य हो गये। राम-रावय युद्ध समाप्त हुआ। सीता-परीक्षाके अनन्तर श्रीराम सबको साथ लेकर पुष्पक विमानके द्वारा अयोध्या लौटेकी तैयारीमें है। इसी समय विभीषण प्रार्थना करने लगे—

‘भगवन्! यदि मैं आपके अनुग्रहका पात्र हूँ, आदि आप मुझपर स्नेह करते हैं तो मेरी प्रार्थना है—आप कुछ समय तक यहाँ रहें, लक्ष्मण और सीता सहित आपकी मैं पूजा करना चाहता हूँ। आप अपनी सेना तथा मित्रों सहित घर पश्चार कर उसको पवित्र करें और वर्तिक्षित, सत्कार स्वीकार करें। मैं आपके प्रति आकाश नहीं कर रहा हूँ, परन्तु स्नेह-सम्मान और मित्रताके कारण एक सेवककी भाँति आपको प्रसन्न करनेकी अभिलापा रखता हूँ। (वा० रा० ६। १२१। १२-१३) विनयका क्षमा ही सुन्दर सीखने योग्य तरीका है।

श्रीरामने उत्तरमें कहा—

न खल्वेतत्र कुर्याते वचनं राजसंश्वर !  
तं तु मे भ्रातरं द्रुं भरतं त्वरं त्वरं मनः ॥  
मां निवर्त्येति योऽसौ चित्रकूटमुपाभतः ।  
शिरसा याच्तो यस्य वचनं न कृतं मया ॥  
(वा० रा० ६। १२१। १८-१९)

इस राष्ट्रसेभर, मैं इस समय तुम्हारी बात नहीं मान सकता, मेरा मन भाई भरतसे मिलनेके लिये छृपटा रहा है, जिसने चित्रकूटतक आकर मुझे लौटानेके लिये विनीत प्रार्थना की थी और मैंने उसको स्वीकार नहीं किया था। विवर, तुम मेरी इस प्रार्थनापर तुल न करना।

तोर कोस गृह मेर सब, सत्य बचन सुनु तात ।  
दसा भरतकी सुमिरि मोहि निमिष कलृप सम जात ॥  
तापस वेष सरीर कृत, जपत निरंतर मोहि ।  
देखौं बेगि सो जतन करु, सखा ! निहोरौं तोहि ॥  
जो जैहों बोते अवधि, जियत न पाऊं बीर ।  
प्रीति भरतकी समुक्ति प्रमु, पुनि पुनि पुलक सरीर ॥

५६

विभीषण नहीं रोक सके, विमानपर सवार होकर चले। भगवान्‌ने अपने आनेका संवाद हनुमान्जके द्वारा भरतजीके पास पहुँचेसे ही भेजकर उन्हें सुख पहुँचाया।

तदनन्तर अनन्तशक्ति भगवान् श्रीराम अयोध्या पहुँच-कर चलमें लौकासे ही सबसे मिल लिये।

प्रेमातुर सब लोग निहारी । कौतुक कीन्ह कृपालु स्तरारी ॥  
अभित रूप प्रगटे तेहि काठा । जयजोग्य मिलि सबहि कृपाला ॥  
कृपादृष्टि सब लोग लिलेकी । कियं सकल नरनारि लिंसाकी ॥  
ठन महें सबहि मिले भगवाना । उमा मर्य यह काहु न जाना ॥

भरतके साथ भगवान्‌का मिलन तो अपूर्व आनन्दमय है। फिर शत्रुघ्नसे मिलकर डनका विरह-दुःख नष्ट किया। राज-तिवारकी तैयारी हुई। ज्ञान-मार्जन होने लगा। श्रीराम भी भाईयोंकी वास्तव्य-भावसे सेवा करने लगे। भरतजी बुझाये गये, श्रीरामने अपने हाथोंसे उनकी जटा सुखमार्द। तदनन्तर तीनों प्राणप्रिय भाईयोंको श्रीरामने स्वयं अपने हाथसे मक्क-मक्काकर नहजाया। भरत लक्ष्मण शत्रुघ्न पिण्डुल्य श्रीरामके इस वास्तव्य-भावसे सुख हो गये।

पुनि कहनानिधि भरत हँकरे। निजकर राम जटा निर्वारे ॥  
अन्हवाये प्रसु तीनिँ माई । भगत-वचल कृपालु रघुराई ॥  
भरत माय प्रसु कोमलताई । सेष कोटिसत सकहि न गाई ॥

शिवकी कहते हैं कि भरतजी (आदि भाईयों) के भाव्य और प्रभुकी कोमलताका वसान सौ करोड़ शेषजी भी नहीं कर सकते। धन्य आत्मप्रेम !!

भगवान् श्रीराम तीनों भाईयोंसे सेवित होकर राज्य करने लगे। रामराज्यकी महिमा कौन गा सकता है? भगवान् समय समय पर अपनी प्रजाको इकट्ठा कर उन्हें विविध भाँतिसे लोक-परलोकमें उज्जति और कल्याणके साधनोंके सम्बन्धमें शिक्षा देते हैं। ऐसा न्याय और दया-पूर्ण शासन, सुन्दर वर्ताव, प्रेमभाव, लोक-परलोकमें सुख पहुँचानेवाली तथा सुकिदायिनी शिक्षा, सबप्रकारके सुख रामराज्यके अतिरिक्त अवतक अन्य किसी भी राज्यमें कभी देखे, सुने, या पढ़े नहीं गये!

X X X

समय समय पर भाईयोंको साथ लेकर श्रीराम बन-ठपकनोंमें जाते हैं भाँति भाँतिके शिखाप्रद उपदेश करते हैं एक समय सब डपवनमें गये। भरतजीने श्रीरामके लिये अपना दुपहा लिया, भगवान् दसपर विराजे, तदनन्तर

श्रीरामचन्द्रीके द्वारा भरतजीके प्रभ करनेपर श्रीरामने सन्द-  
ग्रसन्तके छाउव बतलाते हुए अन्तमें बदा ही सुन्दर  
उपरेका दिया-

परहित सरिस धरम नहि माई । परपीडा सम नहि अथमाई ॥  
निरनय सकल पुरान बेद करा कहउं तात जानहिं कोविदवर ॥  
नर-सीर धरि जे परपीरा । करहिं ते सहहि महा-भवभीरा ॥  
करहिं मोहबस नर अथ नाना । स्वारथरत परलोक नसाना ॥  
कालहृष तिन्हकहूँ मैं ग्राता। सुम अह अहुम करम फलदाता ॥  
अस बिज्ञारि जे परम सपाने । मजहिं मोहि संसृति दुख जाने ॥  
त्याहिं कर्म भुमामुम-दायक । मजहिं मोहि सुर-नर-मुनिनायक

कैसा सुन्दर सपके ग्रहण करने चोग्य उपदेश है !  
ये से बड़े माई अनन्त पुरुषबलसे ही प्राप्त होते हैं !!

X X X

आगे चल कर लवण्यासुरको भारनेके लिये शत्रुघ्नके  
कहनेपर श्रीरामने उन्हें रणाङ्गणमें भेजना स्वीकारकर कहा कि  
'वाईका राज्य तुझें भोगना पर्वता । मेरी आशाका प्रतिवाद न  
करना ।' शत्रुघ्नको राज्याभियोकी बात बहुत बुरी लगी परन्तु  
रामाज्ञा समझकर उसे स्वीकार करना पदा । न चाहनेपर  
भी छोटे भाईको बधनोंमें बांधकर राजसुख देना, राम  
सर्वतों बड़े भाईका ही कार्य है

इसके बाद लवण्य-त्यागका प्रभ आता है, कुछ  
बोग्य इसको श्रीरामका बदा ही निष्ठुर कार्य समझते हैं । जिस  
भाईने राज्यको और राजा को दास्य शृणि-शाश्वते बधाया,  
उसके लिये पुरस्काररूपमें भी पहलेका विचान बदल देना  
उचित था, परन्तु ऐसा कहनेवाले लोग इस बातको  
भूल जाने हैं कि श्रीराम सन्ध्यप्रतिज्ञ हैं, इसी स्थानकी  
रक्षाके लिये उन्होंने लवण्याका त्याग कर दिया परन्तु  
प्यारे भाई लवण्यका विवोग होने ही आप भी भरत  
शत्रुघ्न और प्रजा-परिजनोंको साथ केवर परम धामको प्रवाण  
कर गये !

श्रीरामके भ्रातृप्रेमका यह अति संदिप्त वर्णन है ।  
श्रीरामकी भ्रातृवस्तवताका इससे कुछ अनुमान हो सकता  
है । भाईयोंके लिये ही राज्य ग्रहण करना, भाईको राज  
मिलनेके प्रस्तावसे अपना हक्क छोड़कर परम  
आनन्दित होना, जिसके कारण राज्याभियोक रक्षा  
उस भाई भरतकी माता के केवी पर भक्ति करना,  
भरतका गुणगान करना, भरता हेतेके समय भरतको  
और भरतपर कोष करनेके समय लवण्याको फलकार

बताकर अन्याय-मानसे बधाना, भरतकी इच्छापर अपने  
सत्यप्रतको भी क्षोब देना, लवण्याजीके शक्ति लगानेपर उनके  
साथ प्राय त्याग करनेको तैयार हो जाना, समय समयपर  
सदुपदेश देना, स्वार्थ छोड़कर सबपर समझावसे पूर्ण प्रेम  
करना और लवण्यासुरपर आळमणके समय जबरदस्ती  
राज्याभियोकके लिये शत्रुघ्नसे स्वीकार करना आदि श्रीरामके  
आदर्श भ्रातृ-प्रेमपूर्ण कार्योंसे इस सबको विद्यावोच्च शिक्षा  
प्राप्त्या करनी चाहिये !

### श्रीभरतका आत्मप्रेम

सिय-राम-प्रेम-पियुष पूर्ण होत जनम न भरतको ।  
मुनि-मन-अगम जम नियम सम दम विषम ब्रत आचरत को ॥  
दुखदाह दारिद्र देम दूषन सुजस मिस अपहरत को ॥  
कलिकाल तुलसीसे सठनिह तटि राम सनमुख करत को ॥

भरतजीकी अपार महिमा है । रामायणमें भरतजीका ही  
एक ऐसा उत्तमबद्ध विव्रत है जिसमें कहों कुछ भी दोष  
नहों दीख पदता । भरतजी धर्मके ज्ञाना, नीतिज्ञ, व्यागी,  
सदगुणोंसे युक्त, संयमी, मदाचारी, प्रेम और विनयकी मूर्ति,  
शहद-भक्तिमयनन्द और बड़े बुद्धिमान थे । वैराज्य, सत्य,  
तप, इमा, तिनिज्ञा, दया, वास्तविक, धीरता, शान्ति, सरदता  
गदभीरता, सौम्बद्धता, समता, मधुरता, अमानिता, सुदृढता  
और स्वामीरेत्वा आदि गुणोंका इनमें विवरण विकास था ।  
आनन्दप्रेमकी तो आप मानों सजीव मृगि थे ।

श्रीराम-वनवास अचक्षा ही हुआ, जिससे भरतजीका  
दृष्ट प्रेम-भाव जगत्तमें प्रकट हो गया । राम-विद्योग न होता  
तो विश्वको इस अनुब्रह्म प्रेमकी मुखा-धारामें अक्षगाहम  
करनेका सुअवसर शायद ही मिलता ।

प्रेम अभिय मन्दर विहार भरत पर्यावरि ॥ भीर ।  
मध्य प्रनेट सुर-सातु दिति कृपासिन्दु रथुबीर ॥

गदभीर समुद्ररूप भरतजीको अपने वनवासस्त्री  
मन्त्राच्छव-पर्वतमें प्रथम हृषीसिन्दु रथुनाथर्जीने सुर-  
सन्तोंके हितार्थं प्रेमस्त्री अमृतको प्रकट किया है ।

श्रीराम-वनवास और लवण्याकी मृत्यु द्वारेपर शुरु  
विद्युषकी आज्ञासे भरत-शत्रुघ्नको जुलानेके लिये केवलदेश-  
को दून जाते हैं । उधर भरतजीको तुःस्वप्न होता है,  
जिससे वे व्याकुल हो जाते हैं और माता-पिता तथा भाई-  
भौजाईकी मङ्गकामनासे दानपुरुष करते हैं । दूतोंने  
जाकर गुरुका सन्देश सुना दिया । भरतजीने कुशल पूर्ण,

लिसके उत्तरमें दूसोंने भी मानो व्यक्ति से ही कहा कि 'आप विनाकी कुशल पूछते हैं वे कुशलते हैं ।' भरतजी उसी विवर चले गये । अबोच्चामें पहुँचकर उसे अधीन देख वह दुखित हुए, उनका इदय परिवारकी अनिष्ट धार्यांकासे भर गया, न तो किसीसे कुछ पूछनेकी हिम्मत हुई और न किसीने कुछ कहा ही । लोग तो उस समय भरतजीको रामवनवास और दशरथकी शृणुमें हेतु समझकर बहुत ही शुरी इटिसे थेस्ते थे, अतः उनसे कोई अच्छी तरह बोलता ही कैसे ? आगे चलकर प्रजाने साफ कहा है—

मिथ्या प्रवाजितो रामः सभार्यः सहलक्षणः ।  
मरते गनिबद्धाः स्म सौनिके पश्चावे यथा ॥

(वा० रा० २।४८।१८)

'कृष्ण बहाना करके कैकेयीने श्रीरामको सीता लक्ष्मणसहित घनमें भेज दिया है । अब हम लोग उसी प्रकार भरतके अधीन हैं, जैसे कसाईके अधीन पशु होते हैं ।' लोग सामने आते हैं और दूरसे ही जुहार करके मुँह फेरकर चले जाते हैं—

पुरजन घिलहि न कहहि कानु गवहि जोहागहि जाहि ।  
भरत कुसल पृष्ठि न मकहि भय बिपाद मनमाहि ॥

बवराये हुए भरतजी पिताकी लोलमें ग्राता कैकेयीके महलमें पहुँचे और 'पिता कहाँ हैं' ऐसा पूछने लगे, कैकेयी अपने किंवपुर फूली नहाँ समाती थी, वह समझती थी कि भरत भी मेरी कृति सुनकर राजी होगे, अतः उसने कठोर बनकर महस्ते कह दिया—

या गतिः सर्वभृतानां तां गति ते पिता गतः ।  
राजा महात्मा तंजस्वी यायजूकः सतां गतिः ॥

( वा० रा० २।७२।१० )

'सब भूत-प्राणियोंकी अन्तमें जो गति होती है वही तुम्हारे पिताकी भी हुई, महात्मा तेजस्वी और यज्ञ करनेकाके राजाने सप्तपुरुषोंकी गति प्राप्त की है ।'

यह सुनते ही भरत रोकपीडित हो 'हाय ! मैं मारा गया' पुकारकर सहसा पक्षाव लाकर पृथ्वीपर गिर पड़े । भौंति-भौंतिसे विकाप करते हुए कहने लगे, 'हाय पिताजी ! मुझे हुःक्षालागरमें क्षोडकर कहाँ चले गये—

असम्पूर्व रामाय राजे मां क गतोऽसि भो ।  
( अध्यात्म रा० २। ७।६७ )

हे पिता, मुझे रामके हाथोंमें सौंपे दिना ही आप कहाँ चले गये ।' कैकेयीने विकाप करते हुए भरतको उड़ाकर उसके आँसू पौँछे और कहा कि 'बेटा, धीरज रक्षा, मैंने तुम्हारे लिये सब काम बना रखा है—समाशसिंहि भद्रं तं सर्व सम्पादितं यथा । ( वा० रा० २।७।६८ ) परन्तु भरतजीका रोना बन्द नहीं हुआ, उन्होंने कहा—

यो मं आत्रापिता बन्धुर्यस्य दासोऽस्मि संमतः ।  
तस्य मां शीघ्रमाल्याहि रामस्याक्षिष्टकर्मणः ॥  
पिता हि भवति उपेष्ठो धर्ममार्यस्य जानतः ।  
तस्य पादौ गृहीत्यामि स हृदालौ गतिर्मम ॥  
धर्मविद्वमशीलश्च महामाणो दद्वतः ।  
आर्ये किमत्रवीद्वात्रा पिता मे सत्यविक्रमः ॥  
पश्चिमं सामु सन्देशमच्छ्यामि श्रातुमात्मनः ।

( वा० रा० २।७।२२-२५ )

यह तो शीघ्र बता कि मेरे पिता-तुल्य वडे भाई सरक-स्वभाव वह श्रीरघुनाथजी कहाँ हैं, जिनका मैं प्रिय दास हूँ । मैं उनके चरण-बन्धन करूँगा, क्योंकि अब वे ही मेरे अवलम्ब हैं । आर्य-धर्मसे कामनेकाले लोग वडे भाईको पिताके सहश समझते हैं । माता, यह भी बतता कि धर्मश्च, दद्वत सत्यपराक्रमी मेरे पिता राजा दशरथने अन्त समयमें क्या कहा था, मैं उनका अन्तिम शुभ सन्देश सुनना चाहता हूँ ।' उत्तरमें कैकेयीने कहा—

रामेनि राजा विलपन् हा सीतं लक्ष्मणेनि च ।  
स महात्मा परं लंकं गतो गतिमतां वरः ॥  
इतीमां पश्चिमां वाचं व्याजहार पिना तव ।  
कालघर्मं पोश्चितः पाशैरिव महागजः ॥  
सिद्धार्थस्तु नरा राममगतं सह सीतया ।  
लक्ष्मणं च महाबाहुं द्रव्यनिति पुनरामतम् ॥

( वा० रा० २। ७२। ३६-३८ )

'बेटा ! दुदिमानोंमें ओष्ठ तेरे पिता अन्तकालमें 'हा राम ! हा सीते !' पुकारते हुए परलोक सिधारे हैं । हारीजिसप्रकार पाशमें बँधकर विवश हो जाता है उसी प्रकार काल-पाशसे बँधकर तेरे पिताने केवल यही कहा था कि 'अहो ! सीताके साथ बौद्धकर आये हुए श्रीराम-लक्ष्मणको जो मनुष्य देखेंगे, वही कृतार्थ होंगे ।' यह सुनते ही भरतजीके तुःकी सीमा न रही ।

तामाह भरतो हेऽन्न रामः सलिहितो न किम् ।  
तद्वानीं लक्ष्मणो बपि सीता वा कुत्र ते गतः ॥  
( अध्यात्म रा० २। ७।०१ )

भरतजीने पूछा 'माता ! क्या उस समय श्रीरामली, लक्ष्मण या सीतार्थियोंसे कोई भी नहीं था, वे सब कहाँ चले गये थे ?' अब वज्र-हवया कैकेयीने सारी कहानी सुनाते हुए कहा कि—

रामस्य गौवराज्यार्थं पित्रा ते सम्ब्रमः कृतः ।  
तद राज्यप्रदानाय तदाऽहं विघ्नमाचारम् ॥  
राजां दर्ते हि मे पूर्वं वरदेन वरदृश्यम् ।  
यच्चितं तदिदानीं मे तयोरकेन तेऽखिलम् ॥  
राज्यं रामस्य चकेन वनवासे सुनिद्रितम् ।  
ततः सत्यपरो राजा राज्यं दत्त्वा तवैव हि ॥  
रामं सम्प्रवयथामास वनमेव पिता तद ।  
सीताप्यनुगता रामं पातिक्षयनुप्रशिता ॥  
सैन्यावं दर्शयन्नराममनुयातोऽपि लक्षणः ।  
वनं गतेषु सर्वेषु राजा तानेव चिन्तयन् ॥  
प्रलपन् रामरामति ममार नृपसत्तमः ।  
(अध्यात्म रा० २ । ७ । ७२—७५)

'तुम्हारे पिताने रामके राज्याभिरेककी बड़ी तैयारी की थी, परन्तु तुम्हें राज्य दिलानेके अभिप्रायसे मैंने उसमें विझ ढाल दिया, वरदानी राजाने पूर्वमें सुके दो वर देनेको कह रखा था, उनमेंसे एकसे मैंने तुम्हारे लिये सरण्यं राज्य भाँगा और दूसरेसे रामके लिये सुनि-वत-आरज्य-पूर्वक छौदह सालका वनवास भाँगा । तुम्हारे पिता सत्यपरायण राजाने तुम्हें राज्य दे दिया, और रामको वन भेज दिया । पतिक्षिता सीता भी रामके साथ वन चली गई, और सदा आशृत्य दिल्लाकर लक्ष्मण भी उन्हींके पीछे चल दिये । उन सांगोंके बन जानेपर उन्होंका चिन्तन करते हुए और 'हा राम, हा राम' पुकारते हुए महाराजा भी परकारक सिधार गये !'

कैकेयीके हृत वचनोंसे मानो भरतजीपर वक्षणात हो गया । वे पिताकी शुस्तुको तो भूल गये और अपने हेतुसे श्रीरामका वक्षणमन सुनते ही सहम गये, पके हुए बावपर मानो आगस्ती लग गयी ।

भरतहि विसर्गेऽपिनु-प्ररन सुनत राम बन गौन ।

हेतु अपनपठ जानि जिय थकित रंह घरि मौन ॥

सुनि सुठि सहमेत राजकुमारू । पाके कृत जनु लगु अंगामू ॥

भरतजी व्याकुल हो उठे और दाहण शोकमें सारी सुष्ठु-बुध भूलकर माताको विज्ञानकर विज्ञाते हुए कहने लगे—

'अरी कूरे ! तू राज चाहनेवाली माताके रूपमें मेरी शत्रु हैं, तू धतिषातिनी और कुल-धातिनी हैं, तू धर्मात्मा अशपतिकी कहानी नहीं है, उनके कुलका नाश करनेवाली राजसी पैदा हुई है । तू जानती नहीं कि श्रीरामके प्रति मेरा कैसा भाव है इसीसे तूने यह अन्याय किया है, मैं राम-लक्ष्मणको छोड़कर किसके बलपर राज्य कर्हूँगा ? तूने मेरे धर्मात्मा पिताका नाश कर दिया और मेरे भाइयोंको गली गली भीख माँगनेके लिये भेजा है, एकपुत्रा माता कौसल्याको पुत्र-विवाहका दुःख दिया है, जा तू नरकमें पढ़ । तू राज्यसे अष्ट हो जा । अरी दुष्टे ! तू धर्मसे पतित है, भगवान् कर्है मैं मर जाऊँ और तू मेरे लिये रोया करे ! मैं इस समस्त राज्यको भाईके प्रति अर्पण कर दूँगा, जा तू अग्रिमें प्रवेश कर जा, जंगलमें निकल जा या गलेमें रस्सीकी फाँसी लगाकर मर जा । मैं सत्यपराक्रम रामको राज्य देकर ही अपना कहड़ धोऊँगा और अपनेको कृतकृत्य समझूँगा ।'

(वा० रा० २।७४)

भरतजीने राम-प्रममें नांति भूलकर शत्रुघ्नसे यहाँतक कह दाला कि—

हन्यामहर्मिमां पापां कैकेयीं दुष्टचारिणीम् ।

यदि मां धर्मिकों रामो नासूयन्मातृघातकम् ।

(वा० रा० २।७१।२२)

'हे भाई ! इस दुष्ट आचरणवाली कैकेयीको मैं मार दालता, यदि धर्मात्मा श्रीराम मातृहत्यारा समझकर मुझसे धृणा न करते ।'

आखिर भरतजीने माताका मुँह देखना तक पाप समझा और बोले कि—

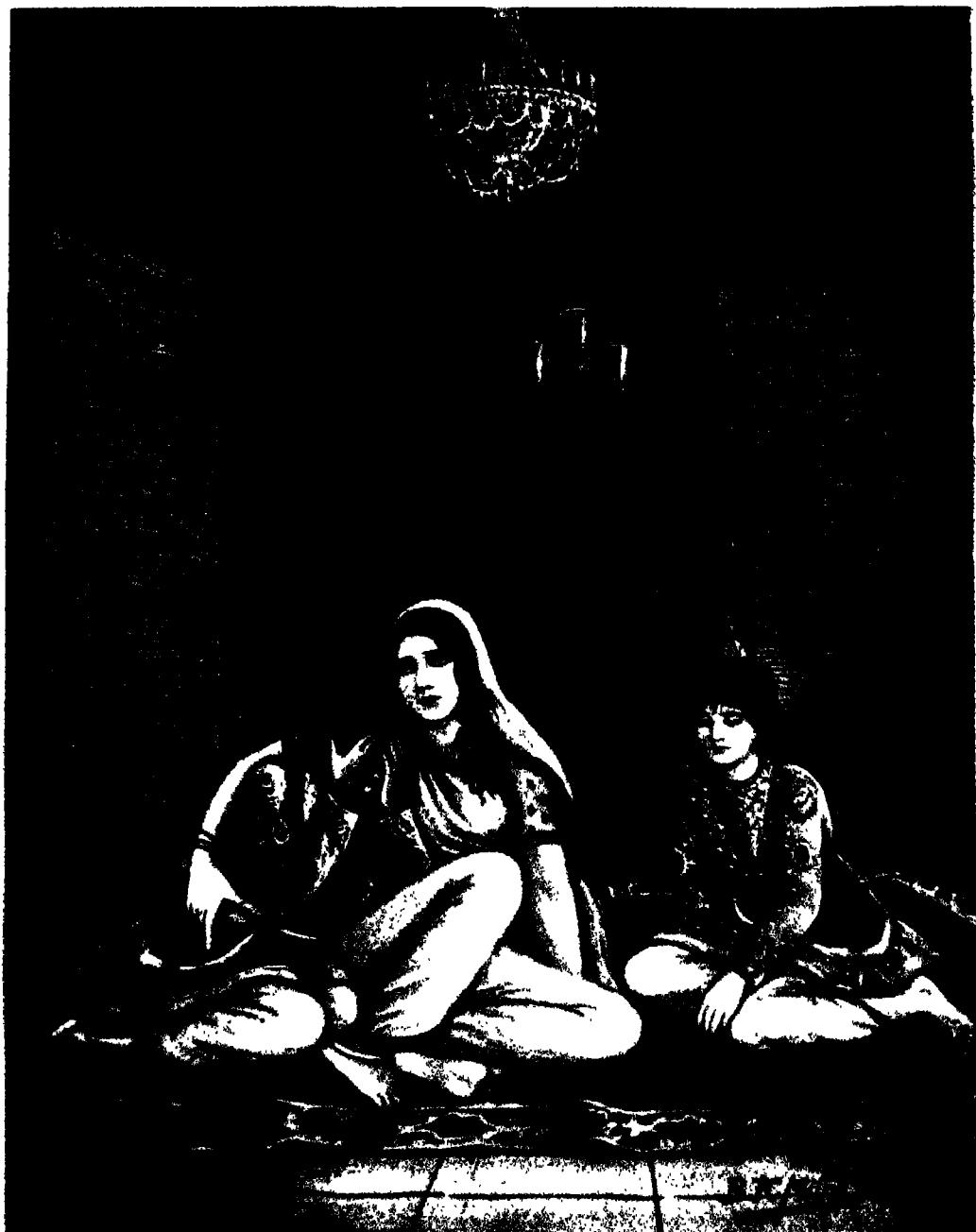
जांहसि साहसि मुँहं मसिणाई । आँख ओट डर्ठि बेठहु जाई ॥

×                    ×                    ×

इतनेमें कुछदी मन्त्रया हनाम पानेकी आशासे सञ्चयकर आयी । उसे देखते ही शत्रुघ्नीका कोध बढ़ा, वे लगे उसे हनाम देने, परन्तु दयालु भरतजीने छुका दिया । इसके बाद भरतजी माता कौसल्याके पास पहुँचे और उनकी दद्यनीय दशा देखकर न्याकुल हो उठे । कौसल्याजीने भी कैकेयी-पुत्रके नाते भरतपर सन्देह करके कहुँ कहुँ शब्द बढ़े । कौसल्याजीके कहु वचनोंसे भरतका हृदय विद्योर्य हो गया, और वह मृद्धित होकर कौसल्याके चरणोंमें गिर पड़े, जब होशमें आये तब ऐसी-ऐसी कठोर शपथें लाले लगे, विजासे माताका हृदय पसीज गया । भरतने कहा—



कल्याण



कौशल्या भरत ।

माता भरत गोद वैनारे । आंसु पोँछि मृदु चन्नन उवारे ॥

कैकेया यत्कर्तं कर्म रामराज्याभिवेचने ।  
अन्यद्वा यदि जानामि सा मया नोदिता यदि ॥  
पापं भेदस्तु तदा मार्तब्द्याहत्याशतोद्भवम् ।  
इत्वा वशिष्ठं सज्जेन अस्त्वं विष्णुसमन्वितम् ॥  
(अध्यात्म रा० २।७।८८-८९)

'माता ! श्रीरामके राज्याभिवेचके विषयमें कैकेयोंने जो कुछमें किया है, उसमें यदि ऐरी सम्मति हो था मैं उसे आनंदा भी होऊँ तो मुझे तीव्र विष्णुहत्याका पाप लगे, और वह पाप भी लगे जो गुरु विशिष्ठजीकी अस्त्वंत्यासमन्वितम् तज्ज्वारसे हत्या करनेमें लगता है ।'

कौसल्याने गङ्गा द्वारा निर्दोष भरतको गोदमें बिडा दिया और उसके आँख पौँछकर कहने लगी—'बेटा ! मैंने शोकमें विकल होकर तुम्हपर आप्तेप कर दिया था । मैं जानती हूँ—

गम प्रानतं प्रान तुम्हारे । तुम्ह ग्रुष्टिहि प्रानते प्याते ॥  
निधु विष चुर्वं सदै हिम आगी । होइ बारिचर बारिविरागी ।  
भण ग्यान बद्ध मिटै न मोहू । तुम्ह रामहि प्रतिकूलन होहू ॥  
मत तुम्हार यह जो जग कहहीं । सो सपनेहुं मुखु सुगति न लहहीं ॥  
अम कहि मातु भरनु हियताप । यनपय स्वर्वहि नयन जन छाए ॥

भरतजीके राम-प्रेमका पता कौसल्याके इन वचनोंसे खूब लगता है । भरतका चरित्रबल और विर आचरित आनंदप्रेम ही था जिसने इस अवस्थामें भी कौसल्याके हारा भरतको भ्रान्तप्रेमका देसा जोरदार सर्टिकिकेट दिलवा दिया ।

X X X

पिताकी शास्त्रोक्त और्ध्वदैहिक किंवा करनेके बाद राजसभामें गुरु, मण्डी, प्रजा और माताज्ञोंने यहाँतक कि माता कौसल्याने भी भरतको राजसिंहासन स्थापिकर करनेके लिये अनुरोध किया परन्तु भरत किसी प्रकार भी राजी नहीं हुए । उन्होंने अटलरूपसे कह दिया—

आपनि दाखल दीनता कहाँ सबहि सिरनाह ।  
देखे बिनु रघुनाथ-पद जियैके जरनि न जाह ॥  
आन उपाड मोहि नहि सूक्षा । को जियकी रघुबर बिनु बूक्षा ॥  
एकहि आँक है भनगमाही । प्रातकाल चलिहैं प्रमुपाही ॥  
जद्यपि मैं अन भल अपराधी । भद्र मोहि कारन सकल उपाधी ॥  
तदपि सरन सन मुख मोहि देखी । लमि सब करहि कृपा बिसेखी ॥  
सील सकुचि सुठि सरल सुभाऊ । कृपा-सनेह-सदन रघुराऊ ॥  
अरिहुक अन भल कीन्ह न रामा । मैं सिसु सेवक जद्यपि बामा ॥

भरतके प्रेम भरे वचन सुनकर सभी मुख हो गये । रामदर्शनके लिये बनगमनका निश्चय हुआ । सभी चर्चेको तैयार हो गये । रामदर्शन छोडकर घरमें कौन रहता ?

जेहि रासहि धर रहु रक्षवारी । सो जाने गरदन जनु मारी ॥  
कोउ कह रहन कहिय नहिं काहू । को न जाहै जग-जीवन लाहू ॥

जरौं सुमधुति सदन-मुख, मुहूद मातु पितु भाइ ॥  
सन मुख होत जो गमपद, करह न सहज सहाइ ॥

भरतजीने भगवान् रामकी सम्पत्तिकी इच्छा करना कर्तव्य समक्षकर जिम्मेवार कर्तव्यपरायण रक्षकोंको नियुक्त कर दिया और अयोध्यावासी नर-नारी चल पढ़े । उस समय भरतके साथ नौ हजार हायी, साठ हजार भनुर्धारी, एक लाख धुक्षसवार थे । इसके सिवा रथों, माताज्ञों और ब्राह्मणोंकी पालकियों एवं सदाचारी आद्योंकी तथा कारीगरों एवं सामानकी बैलगाडियोंकी गिनती ही नहीं थी ।

भरतजीने वन जाते हुए भवमें सोचा—'श्रीराम, सीता और लक्ष्मण पैदल ही नंगे पाँव वन-धन धूमते हैं और मैं सवारीपर चढ़कर उनसे मिलने जा रहा हूँ, मुझे चिकार है ।' यह विचारकर भरत और शत्रुघ्न पैदल हो लिये । दोनों आनंदभक्त भाइयोंको पैदल चलते देखकर अन्य लोग भी मुख्य होकर सवारियोंसे उत्तरकर पैदल चलने लगे—  
देखि सनेह लोग अनुरोगे । उतरि चले हथ गज रथ त्यागे ॥

यह देखकर माता कौसल्याने अपनी ढोली भरतके पास ले जाकर मधुर वचनोंमें कहा—

तात चढ़हु रथ बलि भहतारी । होइहि प्रिय परिवार दुखारी ॥  
तुम्हरे चलत चलिहि सब लोगू । सकल सोक-कृस नहि भग-जोगू ॥

माता कौसल्याकी आकृष्णा मानकर भरतजी रथपर चढ गये, चलते-चलते शंगवेरपुर पहुँचे । यहाँ निवादराजने भी भरतपर सन्देह किया परन्तु परीक्षा करके भरतका आचरण देख वह मन्त्रमुग्धकी भाँति भरतकी सेवामें लग गया । इंगुदीके पैदले नीचे जहाँ श्रीरामने 'कृश-किसक्षय'की शम्भापर लेटकर शत वितायी थी, गुहके हारा उस स्थानको देखकर भरतकी विचित्र दशा हो गयी ! वे भाँति-भाँतिसे विलापकर कहने लगे 'हा ! यह विलरी हुई पत्तोंकी शम्भा क्षया उन्हीं श्रीरामकी है जो सदा आकाशस्पर्शी राजप्रापालमें रहनेके अन्यासी हैं । जिनके महल सदा पुष्पों, खितों और चन्द्रमसे चर्चित रहते हैं, जिनके महबाका ढँचा चूक नस्य करनेवाले पक्षियों और मधूरोंका विहारस्थल है, जिसकी

सोनेकी दीपारोंपर विचित्र विश्रकारीका काम किया हुआ है, वही स्वामी राम क्या हसी इंगुष्ठी पेढ़के जीचे रहे हैं ? हा ! हस अनर्थका कारण मैं ही हूँ—

हा होतोऽस्मि नृशंसोऽस्मि यत्समार्थः कृते मम ।  
ईदर्शी राघवः शश्यामधिशेते धनायत्वत् ॥  
सर्वभौमकुले जातः सर्वलोकमुख्यावहः ।  
सर्वप्रियकम्भयस्त्वा राज्यं प्रियमनुत्तमम् ॥  
कथमिन्दीवरश्यामो रकाक्षः प्रियदर्शनः ।  
मुख्यामी न दुःखार्हः शशितो मुवि राघवः ॥

(वा० रा० ३ । ८८।१७०-१०)

हाय ! मैं कितना कूर हूँ, हा ! मैं मारा गया, क्योंकि मेरे ही कारण श्रीरघुनाथजीको सती सीताजीके साथ ऐसी कठिन शश्यापर अनायकी भाँति सोना पड़ा । अहो ! बक्षशीर्ती कुळमें उत्तरज हुए, सबको सुख देनेवाले, सबका प्रिय करनेवाले, कमनीय-कान्ति, नीज़ कमलके समान कान्तिवाले, रकाक्ष प्रियदर्शन श्रीरामचन्द्रका, जो सदा ही सुख भोगनेके योग्य तथा हस दुःख-भोगके अयोग्य हैं, मेरे ही कारण हम जमीनपर सोना पड़ा ।'

तदनन्तर भरतजीने उम कुश-शश्याकी प्रणाम-प्रदिविका की—

कुसमाथी निहारि सुहाइं । कन्ह प्रनाम प्रदान्तिन जाई ।  
चरन-रेख-रज अँगिन्ह लाई । बनद्रन कृत्त प्रति नघिराई ।  
कनकविंदु दुइ चारिक देखे । गंब सीम सींग मम हेमे ॥

यहाँसे भरतजी फिर पैदल चलने लगे, जब सेवकोंने बोहेपर सवार होनेके लिये विशेष आग्रह किया तब आप कहने लगे—

गमु पयदेहि पाय सिचाए । हमकहूँ रथ मत चाजि बनाए ॥  
सिरमर जाँ टचिन अम मोरा । मबने मंवक भरम कठोरा ॥

माई ! मुझे तो सिरके बल चलना चाहिये । क्योंकि वहाँ रामके चरण टिके हैं वहाँ मेरा सिर ही टिकता योग्य है । सीता-राम सीता-रामका कीर्तन करते हुए भरतजी प्रशांत पहुँचे । उनके पैरोंके छाले बक्षशके पत्तोंपर ओसकी बूँदोंके समान चमकते हैं—

क्षतका अलकत पायन्ह कैसे । पंकजकांथ ओस-कन जैसे ॥

तदनन्तर महाराज भरतजी मुनि भारद्वाजके आग्रहमें पहुँचे । परस्पर विद्वाचारके उपरान्त भरद्वाजजीने भी भरतके हृवदपर मानो गहरा आचात करते हुए उनसे शुद्ध—

कषित तस्यापस्य पापं करुमिहेष्ठापि ।

अकण्टके भोक्तुमना राज्यं तस्यानुजस्य च ॥

(वा० रा० २१०।११)

‘हमा तुम उन पापहीन श्रीरामचन्द्र और बक्षशका बधकर निष्कर्षटक राज्य भोगनेकी हृष्णासे तो बचमें नहीं आ रहे हो ?’ भरद्वाजजीके हृन बचनोंसे भरतजीका हृष्ण टुकड़े-टुकड़े हो गया । वे कातर-कचड़से होते हुए बोले—

हतोऽस्मि यदि मामेन भगवानपि मन्यते ।

(वा० रा० २१०।१२)

‘भगवन् ! यदि विकालदर्शी होकर आप भी ऐसा ही मानते हैं तब तो मैं मारा गया । ऐसा कठोर बचन नहीं कहना चाहिये ।’

केकेया यश्छुतं कर्म गमराज्यविशातनम् ॥  
वनवासादिकं वापि नहि जानामि किञ्चन ।  
भद्रपादयुगे भेड्य प्रमाणं मुनिसत्तम् ॥  
दत्युक्त्वा पादयुगलं मुनेः सप्तवर्तमानसः ।  
जानुमहसि मां देव गुदांवा शुद्ध पद वा ॥  
मम राज्येन किं व्यामिन् गंगं तिर्थिन राजनि ।  
किञ्चिरोऽहं मुनिश्रेष्ठ गमचन्द्रस्य शाश्वतः ॥

(अथाम रा० २ । ४६ ४९)

‘हे मुनिश्रेष्ठ ! केलेयीने श्रीरामचन्द्रजीके राज्याभियोगमें विश्व ढालनेके लिये जो कुछ किया था राम-वनवासादिके सम्बन्धमें जो कुछ हुआ, हस विवरमें मैं कुछ भी नहीं जानता, हस सम्बन्धमें आपके चरणयुगल ही मेरे लिये प्रमाण हैं ।’ इतना कह मुनिके दोनों चरणोंको पक्षकर भरतजी कहने लगे, ‘हे देव ! मैं शुद्ध हूँ या अशुद्ध, हस बातको आप भर्तीभर्ती जान सकते हैं । हे स्वामिन् ! श्रीरामजीके गता रहते, मुझे राज्यसे क्या प्रयोगन है, मैं तो सदा-सर्वदा श्रीरामका एक किलर हूँ ।’

इसपर भरद्वाजजीने प्रसन्न होकर कहा ‘मैं तुम्हारी सब बातें जानता था, मैंने तो तुम्हारे भाव इह करने और तुम्हारी कोर्त्ति बढ़ानेके लिये ही तुमसे ऐसा एक लिया था । बासवमें तुम्हारे समान बदभागी शूसरा कौन है, जिसका जीवन-धन-प्राण श्रीरामके चरणकमल है—

सा तुम्हार जीवन-धन-प्राणा । भूरि आग को तुमहिं समाना ॥  
मुनहु भरत इशुबर मनमाही । प्रेम-पात्र तुम सम कोउ नहीं ॥  
लक्ष्मन राम सीतहि अति प्रीती । निसि सब तुमहिं सराहत वीती ॥

मैं जानता हूँ तुम राम, सीता, ब्रह्मलको अत्यन्त प्यारे हो, वे जब वहाँ डहरे थे तो रातभर तुम्हारी ही प्रयाणसा कर रहे थे। तुम तो भरत ! मानो श्रीराम-प्रेमके शरीरधारी अवतार हो।

तुम तो भरत मोर मत पहूँ। वेरे देह जगु रामसनेहूँ॥

हे भरत ! तुमो, हम तपश्ची उदासी बनवासी हैं, तुम्हारी खातिरसे झूँड नहीं लोकने, हमारी समझसे तो हमारी समझ सावनाधोंके फलस्वरूप हमें श्रीराम-सीता और ब्रह्मलके वर्णन मिले थे और अब श्रीरामदर्शनके फलस्वरूप तुम्हारे वर्णन हुए हैं, सारे प्रयाणविवासियों सहित हमारा बदा सौभाग्य है—

भरत धन्य तुम जग जस लयऊ। कहि अस प्रेमभग्न मुनि भयऊ॥

इसके अनन्तर भरहाजु तुमने सिद्धियोंके द्वारा परम सम्मान्य अतिथि भरतजीका आतिथ्य-सत्कार किया, सभी प्रकारकी विज्ञास-सामग्री उत्पन्न हो गयी; सब लोग अपनी-अपनी इच्छानुसार खान-पान और भोगादिमें जग गये परन्तु भरतजीको रामके बिना कहीं चैन नहीं है, वे किसी भी प्रलोभनमें नहीं आ सकते।

सम्पति चकई भरत चक मुने आगमु खेलवार ।

तेदि निसि आसम पीजारा राखे भा मिनुसार ॥

भरहाजीकी सिद्धियोंद्वारा उत्पन्न सम्पति मानो चकई है, और भरतजी चकवा है, सुनिकी आज्ञा बहेनिया है, जिसने उस रातको भरतजीको आश्रमरूपी पिजरेमें बन्द कर रखा और इसी प्रकार सबेरा हो गया। चकई-चकवा रातको नहीं मिल सकते। इसी तरह विज्ञास-सामग्री और भरतजीका (आश्रमरूपी पिजरेमें) एक साथ रहनेपर भी मिलाप नहीं हुआ ! धन्य त्यागपूर्व भ्रातृप्रेम !

\* \* \*

रात्ता बतानेके लिये लिपालको आगे करके महाराज भरतजी चित्रकूटकी ओर जा रहे हैं मानो साजात अनुराग ही शरीर धारण करके बद रहा हो। यहाँपर गुसाईंजीने बदा ही मनोहर वर्णन किया है। भरतजीके न हो पैरोंमें जूते हैं और न सिरपर छुत्र है। वे निष्कपटभावसे प्रेमपूर्वक निष्पम-ब्रत करते हुए जा रहे हैं। भरतजी जिस मार्गसे निष्कब्रत है उसीमें मानो प्रेमका समुद्र उमड़ पहता है और वहाँका बातावरण इतना विद्युद हो जाता है कि वहाँके अद्य-चेतन जीव भरतके भवरोग-नाशक दर्शन

पाकर परमपदको प्राप्त हो जाते हैं। जिन रामजीका एक बार भी नाम लोनेवाला भनुष्य स्वयं तरता और दूसरोंको तारनेवाला बन जाता है वे श्रीराम स्वयं जिन भरतजीका मनमें सदा विम्बन किया करते हैं, उनके दर्शनसे लोगोंका अन्धन-मुक्त हो जाना कौन बड़ी बात है ?

भरतजीके दर्शनसे भ्रातृप्रेमके भाव चारों ओर फैल रहे हैं, जब महाराज भरतजी श्रीराम कहकर साँस लेते हैं तब मानो चारों ओर प्रेम उमड़ पहता है, उनके प्रेमपूर्ण वचन सुनकर वज्र और पथर भी पिछल जाते हैं, फिर भनुष्योंकी तो बात ही क्या है ?

जबहि राम कहि लेहि उसासा । उमगत प्रेम मनहुँ चहुंपासा ॥

द्रवहि बचन सुनि कुलिस-पक्षाना । पुरजन प्रेम न जाइ बक्षाना ॥

मार्गके नर-नरी भरतजीको पैदल चलते देख-देखकर नेत्रोंको सफल करते हैं और भाँति-भाँतिकी चर्चा करते हैं। बचकी नारियाँ भरतजीके शील प्रेम और भाग्यकी सराहना करती हुई कहती हैं—

चलत पयादेहि सात फल पिता दीन्ह तजि राज ।

जात मनावन रघुवरहि भरत-सर्गिस को आज ॥

भायप भगति भरत आचरन् । कहूत सुनत दुष्न-दूषन हरन् ॥

‘हाँ ! पिताके दिये हुए राज्यको छोड़कर आज भरत फल-मूल लाते हुए पैदल ही श्रीरामको मनाने जा रहे हैं, इनके समान भाग्यवान् दूसरा कौन होगा ? भरतजीके भाईपन, भक्ति और आचरणोंका गुण गाने और सुननेसे दुःख और पाप नाश हो जाते हैं !’

भरतका ऐसा प्रभाव पड़ना ही चाहिये था !

भरतजीसहित सबको शुभ सकुन होने लगे, जिससे प्रेम और भी बदा, प्रेमकी विद्वलतासे पैर उलटे-सीधे पहड़ रहे हैं, इतनेमें रामसला निषादवाजने शैवशिरोमणि चित्रकूटको दूरसे दिलजाया। अहा ! इसी पुरायवान पर्वत-पर मेरे स्वामी रघुनाथजी रहते हैं, यह सोचकर भरतजी प्रयाम करने लगे और सियावर रामचन्द्रजीकी जय-ज्वनि करने लगे। उस समय भरतको जैसा प्रेम था, उसका वर्णन शेषजी भी नहीं कर सकते। कविके लिये तो यह उतना ही कठिन है जितना अहंता-ममतावाले मन्त्रिन मनुष्यके लिये ग्रहानन्द !

भरत प्रेमु तेहि समय जस तस कहि सकै न सेपु ॥

कनिहि अगम जिमि ब्रह्मसुख अह-मम-मलिन-जनेपु ॥

भरतजीने सारे समुदायसहित मनकिनीमें स्नान किया और सब लोगोंको वहीं क्षोककर थे केवल शशुभ्र और गुहको साथ लेकर आगे चले। वहाँपर भरतजीके मनकी दशाका चिन्ह श्रीगोस्तामीजीने बहुत ही सुन्दर किया है—

समुक्षि मानुकरतव सकुचाहीं। करत कुतरक कोटि मनमाहीं॥  
राम-लघन-सिंह सुनि मम नाँूं। उठि जीन अनत जाहि तजि ठाँूं॥

मातु मते महं मानि मोहि जो कुछ कहहि सो थोर।  
अथ अवगुन दृमि आदरहि समुक्षि आपनी ओर॥

जौं परिहरहि मलिन मन जानी। जौं सनमानहि सेवक मानी॥  
मोरं सरन रामकी पनही। राम सुस्वामि दोष सब जनहाँ॥

धन्य भरतजी ! जानते हैं कि मैं निर्दोष हूँ, परन्तु जब अपोद्याके दृत, सब नगर-निवासी, माता कौसल्या, निषाद और विकालदर्शी भरद्वाजजी तकने एक एक बार सन्देह किया तो वहाँ भी लक्षण्य-सीता सुझपर सन्देह न करेंगे या श्रीराम ही सुझे मन-मक्षिन समझकर न त्याग देंगे, इसका क्या भरोसा है ? यह कौन मान सकता है कि माताके मतके साथ मेरा मत नहीं था । जो कुछ हो, राम चाहे त्याग दें, परन्तु मैं तो उन्होंकी जूतियोंकी शरण पढ़ा रहूँगा । माताके नाते मैं तो दोषी हूँ ही । पर श्रीराम सुस्वामी हैं, वे अवश्य करेंगे ।

फिर जब माताका करदूत याद आ जाता है तो पैर पीछे पढ़ने लग जाते हैं, अपनी भक्तिकी ओर देखकर कुछ आगे बढ़ते हैं और जब श्रीरघुनाथजीके न्यभावकी ओर कृति जाती है तो मार्गमें जलदी-जलदी पाँच पढ़ते हैं । इस समय भरतजीकी दशा बेसी ही है जैसे जबककं प्रवाहमें भैंदरकी होती है, जो कभी पीछे इटता है, कभी उफकर खाता है और कभी फिर आगे बढ़ने लगता है । भरतके इस प्रेमको देखकर निषादराज मान-मनकी सुखि भूलगया ।

केरति मनहि मानुकृत स्त्री। चलत मगति बह धीरज घोरी ॥  
बब समुक्षत रघुनाथसुमाऊ। तब पथ परत डताउल पाऊ ॥  
भरतदसातेहि अवसर कैसी। जन-प्रवाह जन-अति-गति जैसी ॥  
देखि भरत कर सोच सनेहू। भा निकाद तेहि समय बिदेहू ॥

भरत-शशुभ्र प्रेममें चिह्नक दुष्ट जले आ रहे हैं—  
स तत्र वत्रांकुशवारि अंचित ध्वनादिचिह्नानि पदानि सर्वतः ।  
ददर्श रामस्य मुवेति भंगलान्यच्छ यत्पादरजः सुसानुजः ॥

अहो ! सुधन्योहमसूनि रामपादाग्विन्दाङ्कितमूलानि ।  
पश्यामि यत्पादरजेविमृण्य ब्रह्मादिदेवैःश्रुतिभिक्ष नित्यम् ॥  
(अध्यात्म रा० २१९२-३)

वहाँ श्रीरामके बज्र, अंकुश, ज्वला और कमल आदि चिन्होंसे अंकित शुभ चरण-चिह्न देखते हैं वहीं दोनों भाई उस चरणरखमें लोटने लगते हैं और कहते हैं कि यहो ! हम धन्य हैं जो श्रीरामके डन चरणोंसे चिह्नित भूमिका दर्शन कर रहे हैं, जिन चरणोंकी रज ब्रह्मादि देखता और वेद सदा लोजते रहते हैं ।

भरतकी इस अवस्थाको देखकर पश्य, पश्ची और कुछ भी सुख हो गये । पश्य-पश्ची जब पाण्याकी भाँति एकटकी लगाकर भरतकी ओर देखने लगे और कृतादि व्रित्ति हांकर हिलने-जोकने लगे—

होत न मृतू माठ भरतको । अबर सचर चर अबर करत को ॥

भरत-शशुभ्रकी यह दशा देख निषादराज प्रेममें तन्मय होकर रास्ता भूल गया । दो पाण्यांमें तीसरा भी पाण्य द्वानेसे कैसे बचता ? तीनों ही भूतवाले हो गये । देवताओंने फूल बरसाकर निषादको सावधान करते हुए रास्ता बताया । बित्तिहारी प्रेमकी !

X . . . X

इधर लक्षण्यजीको सन्देह हुआ, उन्होंने समझा कि भरत बुरी नीतसे आ रहे हैं, अतः वे नीतिको भूलकर कहने लगे, आज मैं उन्हें भलीभांति शिखा दूँगा—

राम निरादर कर कल पाई । मावहु समर रंज दोड भाई ॥

श्रीरामने लक्षण्यजीकी नीतिकी प्रशंसाकर उन्हें भरतका महाव समकाया, लक्षण्यजीका चित्त शान्त हो गया ।

भरतका जीवन बदा ही मार्मिक है । सर्वदा सातु और निर्दोष होते हुए भी सबके सन्देहका शिकार बनता पड़ता है । भरतके लक्ष्य सर्वथा राज्यविप्लवा-शूल भर्माका त्यागी महापुरुषपर इसप्रकारके सन्देहका इतिहास जगत्‌में कहीं नहीं मिलता । इतनेपर भी भरत सब सहते हैं, उबकर आत्महत्या नहीं कर लेते । शान्ति, प्रेम और सहिष्णुतासे अपनी निर्दोषताका ढंका बजाकर अगरपूर्व बन जाते हैं ।

कुछ ही समय बाद श्रीभरतजी वहाँ आ पहुँचे और दूरसे ही व्रतोपवासोंके कारण कुछ हुए श्रीरामको तुल्यके आसनपर बैठे देखकर दौड़े और कृष्ण-कृष्ण करते हुए जो कहने लगे—

यः संसदि प्रकृतिभिर्भवुक्त उपासितुम् ।  
बन्नैमृगैरुपासीनः सोऽयमासे ममाग्रजः ॥  
वासोगिर्वहुसाहस्रैर्भूमि भवत्मा पुरोचितः ।  
मृगजिने सोऽयमिह प्रवर्तं धर्माच्छ्रन् ॥  
अधारयतो विविधाश्चित्राः सुमनसः सदा ।  
सोऽयं जटाभारभिमं सहते राघवः कथम् ॥  
यस्य यज्ञेयशादिष्ट्युको धर्मस्य संचयः ।  
शरीरक्षेशसंभूतं स वर्मं परिमार्गते ॥  
चन्दनेन महाहृष्ण यस्याङ्गमुपसेवितम् ।  
मलेन तस्यांगमिदं कथमार्यस्य सेवयते ॥  
मन्त्रिमित्तिमिदं दुःखं प्राप्तो रामः सुखेचितः ।  
विनाजीवितं नृशंसस्य मम लोकविगर्हितम् ॥

( वा० रा० २ । ६६ । ३१ से ३६ )

मेरे बडे भाई राम, जो राजदरबारमें प्रजा और मन्त्रियों द्वारा उपासित होने योग्य हैं वे, आज इन जंगली पशुओंसे उपासित हो रहे हैं । जो भद्रामा अव्योद्यातीमें उत्समोक्षम बहुमूल्य वस्त्रोंको धारण करते थे वे आज धर्माच्छ्रवयके लिये इस निर्जन बनमें केवल सूगछाला धारण किये हुए हैं । जो श्रीरघुनाथजी एक दिन अपने भलकपर अनेक प्रकारकी सुगन्धित पुष्पमालाएँ धारण करते थे आज वे इस जटाभारको कैसे सह रहे हैं ? जो अविज्ञां-द्वारा विधिवैक वज्र करते थे वे आज शरीरको अस्थन्त फ़ेश देते हुए धर्मका संवन कर रहे हैं । जिनके शरीरपर सदा चन्दन लगाया जाता था आज उनके शरीरपर मैल जमी हुई है । हाय ! निरन्तर सुख भोगनेवाले ये मेरे बडे भाई श्रीरामजीको आज मेरे लिये ही इतना असह कष सहन करना पड़ रहा है, मुझ कहुके इस लोकनिन्दित जीवनको छिक्कार है । यों विजाप करते और अँसुओंकी अजग्ग धारा बहाते हुए भरतजी श्रीरामके समीप जा पहुँचे, परन्तु अस्थन्त दुःखके कारण उनके चरणोंतक नहीं पहुँच पाये । अच्छ ही मैं ‘हा आर्य, पुकारकर दीनकी भाँति गिर पड़े । शोकसे गला रुक गया । वे कुछ बात नहीं कह सके । इसप्रकार—

जटिं चीरसंनं प्राजिलि परितं भुवि ।  
ददर्श रामो हुदशं युगान्ते भास्करं यथा ॥

( वा० रा० २ । १०० । १ )

‘जटा वर्षकज्जारी भरतको हाथ जोडे हुए जमीनपर पड़े श्रीरामने देखा, भरतजीकी कानिस उसी प्रकार मतिन हो रही थी, जैसे प्रलयकालमें सूर्यकी होती है । श्रीरामने

विवर्य और दुर्बल भरतको बहुत ही कठिनतासे बहाना और वह आदरके साथ जमीनसे उठाकर उनका सिर सूँच गोदमें बैठाकर कहा । ‘भाई ! तुम्हारा यह वेश क्यों ? तुम जटा-वर्षकज्ज धारणाकर राज्य व्यागकर बनमें कैसे आये ?’ इसपर भरतजीने पिताजी कृत्युका संवाद सुनाया और कहा कि ‘मेरी माँ कैकेयी विधवा होकर निन्दाके घोर नरकमें पड़ी है, मैं आपका दासानुसास हूँ, भाई हूँ, शिष्य हूँ, आप मुझपर दया करें ।

परिष्ठ सचिवैः सार्व शिरसा याचितो मया ।

आतुः शिष्यस्य दासस्य प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥

( वा० रा० २ । १०१ । १२ )

पिताजा मरणसंवाद सुनते ही श्रीरामजी अँखोंमें अँसू भर आये । माताजी और गुह विश्वादि ब्राह्मणोंको प्रणालीकर तथा सबसे भिजाकर श्रीरामने मन्दाकिनीपर जाकर स्नान किया, तर्पणकर पिण्डदान किये । उस दिन सबने उपवास किया । दूसरे दिन सबलोग एकत्र हुए, तब भरतजीने राज्याभिषेकके लिये श्रीरामसे प्रार्थना की और कहा कि—

राज्यं पालय पित्यं ते ज्येष्ठस्त्वं मे पिता तथा ।

क्षियाणामयं चर्मो यत्रजापरिपालनम् ॥

इट्वा यज्ञैर्बहुविचैः पुत्रानुत्पाद तन्तवे ।

राज्ये पुत्रं समारोप्य गमिष्यति ततो बनम् ॥

इदानीं बनवासस्य कालो नैव प्रसीद मे ।

मातुमें दुष्कृतं किञ्चित् स्मर्तु नाहसि पाहि नः ॥

( अ० रा० २ । १ । २३-२५ )

आप सबमें बड़े हैं, मेरे पिताजीके समान हैं, अतः आप राज्यका पालन कीजिये । प्रजा-पालन ही तत्रियोंका धर्म है । अनेक प्रकार यज्ञ करके एवं कृत्य-वृद्धिके लिये पुत्र उत्पाद करके पुत्रोंको राजसिंहासनपर बैठानेके बाद आप बनमें पधारियेगा । यह बनवासका समय नहीं है । मुझपर कृपा कीजिये, मेरी मातासे जो कुर्कम बन गया है उसे भूवाकर मेरी रक्षा कीजिये ।

इतना कहकर भरतजी दूरदकी तरह श्रीरामके चरणोंमें गिर पड़े, श्रीरामने स्नेहसे उठाकर गोदमें बैठाया और अँखोंमें अँसू भरकर भीरेसे श्रीभरतजीसे बोले—‘भाई ! पिताजीने तुम्हें राज्य किया है, और मुझे बन भेजा है—

अतः पितुर्वचः कार्यमावाभ्यामतिथक्तः ॥

पितुर्वचनमुलङ्घ्य स्वतन्त्रो यस्तु बर्तते ।

स जीवज्ञेव मृतको देहान्ते निरयं ब्रजेत् ॥

( अ० रा० २ । १ । ३१-३२ )

‘इतएव हम दोनोंको यज्ञपूर्वक पिताके बचनात्मार कार्यं करना चाहिये । जो पिताके बचनोंकी अवहेलाना कर स्वतन्त्रतासे बत्ता है वह अतीत ही मरके समान है और मृत्युके बाद नरकगामी होता है । इसलिये मुम अयोध्याका राज्य कहो ।’ भरतने कहा—‘पिताजी कामुकतासे खींचे बरा हो रहे थे, उनका चित्त स्थिर नहीं था, वे उन्मत्तसे थे, उन्मत्त पिताके बचनोंको सत्य नहीं भानना चाहिये ।’ हसपर श्रीरामजीने कहा, ‘प्रिय माई ! ऐसी बात मुखसे नहीं कहनी चाहिये, पिताजी न तो खींचे बराएं थे, न कामुक थे और न मूर्ख थे, वे बड़े ही सत्यवादी थे और अपने पहलेके बचनोंको सत्य करनेके लिये ही उन्होंने ऐसा किया । हम रथुवंशी द्वनके बचनोंको कैसे घराय कर सकते हैं ?’ भरतजीने कहा—‘यदि ऐसा ही है तो मैं भी आपके साथ उनमें गहर जन्मयकी भाँति आपकी सेवा करूँगा, यदि आप मेरी हस बातको भी स्वीकार न करेंगे तो मैं अनशन ब्रत लेकर शरीर-स्थाप कर दूँगा ।’ श्रीरामने उनको उत्ताहना देकर समझाया । परन्तु जब किसी प्रकार भी भरत नहीं भाने तब श्रीरामने विशिष्टजीको इशारा किया । श्रीरामका इशारा पाकर गुरु वशिष्ठजीने भरतको एकान्तमें जे जाकर कहा—

पकान्ते भरतं प्राह वशिष्ठो शानिनां वरः ।  
बत्स ! गुह्यं शृणु व्येदं मम वाक्यं मुनिश्चितम् ॥  
रामो नारायणः साक्षाद्ब्रह्मणा याचितः पुरा ।  
रावणस्य वधार्थीय जातो दशरथामजः ॥  
योगमावापि सीतेति जाता जनकनन्दिनी ।  
शेषोऽपि लक्ष्मणो जातो रामनन्देति सर्वदा ॥  
रावणं हन्तुकामात्से गमिष्यन्ति न संशयः ।  
तस्मान्यजाग्रहं तात ! रामस्य विनिवर्तने ॥

( अध्यात्म०१०२ । ९ । ४२-४३ )

‘वेदा ! मैं तुमसे एक निश्चित गुप्त बात बताना है । श्रीराम साक्षात् नारायण है, पूर्णकालमें विश्वाजीने हृतसे रावण-वधार्थी प्रार्थना की थी तदनुसार ये दशरथजीके यहाँ अवतीर्ण हुए हैं, जनकनन्दिनी सीताजी योगमाया है और जन्मयकी शेषजीके अवतार हैं जो सदा रामजीके पीछे-पीछे उनकी सेवामें जागे रहते हैं । श्रीराम रावणको मारनेके लिये उनमें अवश्य जायेंगे, इसलिये तुम इन्हें छौटा जे बानेका हड़ छोड़ दो ।’

श्रीरामका अपने प्रति असाचाररक्ष प्रेम, अपने सेवाजर्म और गुरुके इन गुण बचनोंपर ख्याल कर भरतजी कापस

अवोध्या लौटनेको तैयार हो गये और श्रीरामकी चरण-पातुकाशोंको प्रशाम करके बोले कि—

चतुर्दश हि वर्षणि जटापीरवरो षष्ठम् ॥  
फलमूलाशनो वीर भवेष्य रघुनन्दन ।  
तवाशमनमाकाङ्क्षान्वसन्नै नगराद्विः ॥  
तद पादुकयोन्वर्त्य राज्यतन्त्रं परन्तप ।  
चतुर्दश हि सम्पूर्णे वर्षेऽहनि रघुतम् ॥  
न द्रष्ट्यामि यदितां तु प्रवेष्यामि हुताशनम् ।  
तथेति च प्रतिशाय त्वं परिभज्य सादरम् ॥

( वा०रा० २ । ११२ । २३-२६ )

‘हे आर्य रघुनन्दन ! मैं जटा-बल्कज चारण कहूँगा, फल-मूल खाऊँगा, सारे राज-कालका भार आपकी चरण-पातुकाशोंको सौंपकर आपकी राह देखता हुआ चौदह साक्षतक नगरके बाहर निवास करूँगा । चौदहवर्षके पृथ्वी होनेपर पन्द्रहवें वर्षके पहले दिन यदि आपके बर्हान न होंगे तो आपमें प्रवेश कर जाऊँगा ।’

श्रीरामने भरतकी इद प्रतिश्वासुनकर अस्थन्त प्रेमसे उन्हें हृषयसे जगा लिया और छीक अवधिपर अयोध्या लौटनेका बचन दिया । भरतजीने श्रीरामजीके प्रति प्रशाम-प्रदर्शिया करके स्वर्णजिवित पातुकाशोंको पहले ममतकर चारण किया और तदनन्दन उन्हें हारीपर रखाया । उनसे अयोध्या लौटकर नगरसे बाहर नन्दिग्राममें पहुँचकर कहा—

पत्रद्राज्यं मम आत्रा दत्तं संन्यासमुत्तमम् ।  
योगक्षेमवहे चेम पादंकं हेमसूचिते ॥  
उत्रं चारथत शिप्रमार्बपदाविमौ मतौ ।  
आभ्यां रात्रेष्व यित्रो धर्मः पादुकाभ्यां गुरोर्मम् ॥  
आत्रानु मरिय संन्यासो निक्षिप्तसीहादादयम् ।  
तमिम पाठयिष्यामि राघवागमनं प्रति ॥  
क्षिप्रं संयोजयित्वा तु राघवस्य पुनः स्वयम् ।  
चरणौ तौ तु रामस्य द्रष्ट्यामि सह पादुकौ ॥  
ततो निक्षिप्तमारोऽहं राघवण समागतः ।  
निवेद्य गुरेव राज्यं भगिष्य गुरुवर्तिताम् ॥  
राघवाय च संन्यासं दत्तेष्वं वरपादुक ।  
राज्यं चेदमयोध्यां च धूतपात्रो मवाम्यहम् ॥

( वा०रा० २ । १५ । १४-२० )

‘अहो ! मेरे पूर्य आईने यह राज्य मुझे चरोहररूप सौंपा है, और इसके बोगहेमके लिये ये स्वर्ण-पातुकाशें ही

हैं। वे पादुका भगवान्की प्रतिनिधि हैं, अतः इनपर कुछ खारण कहो, मेरे गुह औरामकी इन्हीं पादुकाओंसे खर्म-राज्यकी स्थापना होगी। मेरे भाईने प्रेमके कारण मुझे वह राज्यरूप धरोहर दी है, लक्ष्मक वे लौटकर नहीं आयेंगे लक्ष्मक मैं इसकी रक्षा और सेवा करूँगा। मेरे ज्येष्ठ बन्धु औरधुनाधी जब सकुशल यहाँ पथारेंगे तब इन दोनों पादुकाओंको उनके चरणोंमें पहनाकर आनन्दमें दर्शन करूँगा। पादुकाओंके साथ ही वह धरोहररूप राज्य उन्हें सौंपकर राज्यभारसे छूटकर मैं निरन्तर उनकी आज्ञामें रहता हुआ उनका भजन करूँगा। इसप्रकार दोनों पादुका, राज्य, और अयोध्या उन्हें पुनः सौंपकर मैं कलङ्क-मुक्त हो आऊँगा।'

उद्दनन्तर पादुकाओंका अभियेक किया गया, भरतजीने त्वयं कुछ-चामर खारण किये। भरतजी राज्यका समस्त धासन-सम्बन्धी कार्य पादुकासे पूँछकर करते थे। जो कुछ भी कार्य होता था या भेंट आती थी सो सबसे पहले पादुकाको निवेदन करते, पुनः उसका यथोचित प्रबन्ध करते और वह भी पादुकाको सुना देते थे। इसप्रकार पादुकाके अध्यान होकर भरतजी निन्दियाममें नियमपूर्वक रहने लगे। उनकी 'रहनी-करनी' के सम्बन्धमें गुसाईजी लिखते हैं—

जटाजूट सिर मुनिपट धारी। महि ज्वनि कुस-साथरी सर्वाँरी॥  
असन बसन वासन ब्रत नेमा। कागत कठिन रिचि-घरम सप्रेमा॥  
नूपन बसन भोग सुख भूरी। तन मन बचन तजे तिनु तूरी॥  
अबधराजु सुरराजु सिंहाही। दसरथ-घन सुनि धनद लज्जाही॥  
तेहि पुर बसत भरत निनु रामा। चंचरीक जिमि चंपक-बागा॥  
रमाविलास राम-अनुरागी। तजत बमन जिमि उन बड़ भागी॥

×      ×      ×      ×

देह दिनहि दिन दूबति होई। घट न तेज बढ़ मुख-छाँवि सोई॥  
नित नव राम-प्रेम-पन पीना। बढ़त धरमदल मन न मलीना॥  
जिमि जल निघट सरद प्रकासे। बिलसत बेतस बनज बिकासे॥  
सम दम संजम नियम उपासा। नक्षत भरत हिय बिमल अकासा॥  
प्रुव विस्वास अवधि राका-सी। स्वामिसुरति सुर-बीधि बिकासी॥  
रामप्रेम-विधु अचल अदोका। सहित समाज सोह नित चोका॥  
भरत रहनि-समुक्षनि करतूती। भगति विरति गुन बिमल बिमूती॥  
बरनत सकल सुकषि सकुचाही। सेह-ग्नेस-गिरा गम नाही॥

नित पूजत प्रमुखांबरी प्रीति न हृदय समाति ।

मौंगि मौंगि आयसु करत राजकाज बहु मौंति ॥

पुलक गात हिय सिय-चुबुबीक। जीह नाम बप लोचन नील ॥

लखन राम सिय कानन बसही। भरत भवन बसि तप तनु कसही॥

भरतजीकी इस वैराज्य-स्थागमधी भन्जुल मूर्तिका व्याम और उनके आचरणोंका अनुकरण कर कृतार्थ हो जाइये !

इस प्रसंगसे इम जोगोंको यह शिक्षा अहय करनी चाहिये कि छोटे भाईको बड़े भाईके साथ कैसा स्थाग और विनयपूर्व वसांष करना चाहिये ।

×      ×      ×

राजवाचधके उद्दनन्तर श्रीराम सीता, लक्ष्मण, मिथों और सेवकों सहित पुष्पक-विमानपर सदार होकर अयोध्या जा रहे हैं। उच्च भरतजी महाराज अवधिके दिन गिर रहे हैं। एक दिन शेष रहा है, भरतजीकी चिन्ताका पार नहीं है। वे सोचते हैं—

कारन कवन नाय नहि आप। जानि कुटिल प्रभु मोहि विसराण।  
अहह धन्य लछिमन बड़भागी। राम-पदारबिन्द अनुरागी॥  
कपटी कुटिल मोहि प्रभु चौन्हा। तते नाय संग नहि लौन्हा॥  
जो करनी समुद्राहि प्रभु मंगरी। नहि निस्तार कल्पसत कोरी॥  
जन-अवगुन प्रभु मान नकाऊ। दीनबन्धु अति मूँदुल मुभाऊ॥  
मेरे जिय मरोस दद सोई। मिलिहि राम सगुन सुभ होई॥  
बीतैं अवधि रहहि जो प्राना। अधम कवन जग मोहि समाना॥

श्रीरघुनाथजी कर्मों नहीं आये ? क्या मुझे कुटिल समझ-कर भुखा दिया ? धन्य है बड़भागी जैया लक्ष्मणको, जिसका रामके चरणकमलोंमें हतना अनुराग है। मुझे तो कपटी और कुटिल जानकर ही नायने बनमें साथ नहीं रक्षा था (असलजमें कैकेयी-पुष्पके लिये यह ढीक ही है)। मेरी करनी सोचनेसे तो सौ करोड़ कल्पोंतक भी उद्धार महीं हो सकता। परन्तु भगवान्का स्वभाव बहा ही कोमल है वे अपने जनोंका अवगुण नहीं देखते। मेरे मनमें भगवान्के इस विरद्धका दृष्ट धरोसा है, सगुन भी दृष्ट हो रहे हैं, इससे निश्चय होता है भगवान् कृपापूर्वक अवधय दर्शन होंगे। परन्तु यदि अवधि बीतनेपर भी ये अधम प्राण रहेंगे तो मेरे समान जगतमें दूसरा नीच और कौन होगा ?

भरतजी इस व्याकुल दशाको जानकर उधर 'ये यथा मां प्रश्नन्ते तांस्तयैव भजाम्यहम्' की प्रतिज्ञाके अनुसार भगवान् भी व्याकुल हो गये, उन्होंने सन्देश देनेके लिये

हनुमानजीको भेज दिया । रामविरहके अथाह समुद्रमें भरतजी-का मन हृष रहा था, इसनेहीमें ब्राह्मणका स्वरूप धारणकर श्रीहनुमानजी भानो उद्धार करनेके लिये जहाजरूप होकर आ गये । हनुमानजी रामगतप्राप्त, रामपरामव्य भरतजी-की स्थिति देखकर मुश्व हो गये, उनके रोमाञ्च हो आया और आँखोंसे आँखू बहने लगे । भरतकी कंसी स्थिति थी ?

वैठे देलि कुसासन जटामुकुट कृप गत ।  
राम राम रघुपति जपत स्वत नयन जल जात ॥

हनुमानने भरतकी आँखू बहाती तुहुं नाम-अप-परायण  
न्यायस्थ मूर्तिको देखकर परम सुखसे भरकर कानोंमें अमृत  
बरसानेवाली वाहीसे कहा—

जासु विरह सोच्छु दिनराती । रथु निरन्तर गुनगान पाँती ॥  
रथुकुलतिलक मुजन-सुखदाता । आयेहुं कुसल देव-मुनि-व्राता ॥  
रिपुरन जीति सुजस सुर गावत । सीता-अनुजसहित प्रभु आवता ॥

यह बचन सुनते ही भरतजीके सारे हुःख मिट गये ।  
प्यासेको अमृत मिथ गया । प्राणाहीनमें प्राण आगये ।  
भरतजी इर्षोन्मत्त होकर पूछने लगे—

को तुम तात ! कहाँते आये । मोहि परमप्रिय बचन मुनाये ॥

हनुमानजीने कहा कि—

मास्त-सुत मैं कपि हनुमाना । नाम भोर सुनु कृपानिवाना ।  
दीनबन्धु रघुपति कर किकर । X X X

भरतजीने उठकर हनुमानजीको हृषसे लगा लिया—

सुनत भरत भेठउ डठि सादर ॥

प्रेम हृषमें नहीं समाना है, नेत्रोंसे प्रेमाभुजोंकी धारा  
वह रही है, शरीर पुलकित हो रहा है । भरतजी कहते हैं—  
कपि तब दरस सकल दुख बनते, मिले आज मोहि राम पिरिते ॥  
बार बार बूझी कुसलाता । तोकहैं देठं काह सुनु आता ॥  
यहि सन्देश सरिस जगमाहों । करि बिचार देखेहुं करु नाहों ॥  
नाहिन तात ! उरिन मैं तोहों । अब प्रनुचरित मुनावहु मोहीं ॥

हनुमानजीने चरण-बन्धन कर मारी कथा संचेपमें  
सुना दी । तदनन्तर भरतजीने फिर पूछा—

कहु कपि कबहु कृपानु गोसाईं मुमिरहि मोहि निज दासकि नाहीं ॥

निज दास ज्यों रथुबंसमूषन कबहु मोहि सुमिरन करयों,  
सुनि भरत बचन बिनीत अति कपि पुलकि तनु चरननि परयो ।  
रघुबीर निज मुख बासु गुन-गन कहत अग-अग-नाथ जो,  
कहे न होइ बिनीत परम पुरीत, सदगुन-सिंधु सो ॥

श्रीहनुमानजीने गदगद होकर कहा—

राम प्रानप्रिय नाथ तुम्ह सत्य बद्धन भम तात ।  
पुनि पुनि मिलत भरतसन हृष न हृष समात ॥

भरत और हनुमान् बार-बार गले लगकर मिलते हैं ।  
हर्षका पार नहीं है । हनुमानजी बापस लौट गये, हृष  
सारे रनिवासमें और नगरमें खबर भेजी गयी । सभी ओह  
हर्ष द्वा गया । सारा नगर सजाया गया ।

भगवान्का विमान आयोद्धामें पहुँचा । भरतजी,  
श्रुतजी अगवानीके लिये सब मन्त्रियों और पुरुषासियों  
सहित सामने गये । विमान जमीनपर उतरा, भरतजी  
विमानमें जाकर श्रीरामके चरणोंमें लौट गये । और  
आनन्दाश्रुओंसे उनके चरणोंको धोने लगे । श्रीरघुनाथजीने  
उन्हें उठाकर छातीसे लगा लिया । तदनन्तर भरतजी भाई  
ब्रह्मण्यजीसे मिले और उन्होंने माता सीताको प्रणाम किया ।  
श्रीरामने भरतको गोदमें बैठाकर विमानको भरतके आश्रम-  
की ओर जानेकी आज्ञा दी । तदनन्तर नगरमें आकर सबसे  
मिले । श्रीरामने भरतकी जटा अपने हाथोंसे सुलकाई ।  
फिर तीनों भाइयोंको नहजाया । इसके बाद स्वयं जटा  
सुखकाकर स्नान किया ।

तदनन्तर भगवान् राजसिंहासनपर बैठे । तीनों भाई  
मेंबामें लगे । समय-समयपर भरतजी अनेक सुन्दर प्रभ  
करके रामने विविध उपदेश प्राप्त करने लगे । और अन्तमें  
श्रीरामके साथ ही परमधारण पशारे ।

श्रीभरतजीका चरित्र विलक्षण और परम आदर्श है ।  
उनका रामप्रेम अतुलनीय है, इसीसे कहा गया है कि—

भरत सप्तिस को राम मनही । जग जपु गम, राम जपु जही ॥

वाल्मीकीमें भरतजीका आनु-प्रेम जगत्के हनिहासमें एक  
ही है । इनका राज्य-न्याय, संघम, वन, निवास आदि सभी  
संगहीनीय और अनुकरणीय है । इनके चरित्रसे स्वार्थ्यन्याय,  
विवर, सहिष्णुना, गम्भीरता, संगलता, चमा, विरग और  
प्रधानतः भानूभक्तिर्हा वर्डी ही अनुपम शिला लेनी चाहिये ।

### श्रीलक्ष्मणका आतुप्रेम

अहह धन्य लक्ष्मिन बड़भागी । राम-पदारबिन्द-अनुरामी ॥

राम-मेवके आतक लक्ष्मणजीकी महिमा अपार है ।  
लक्ष्मणजीका अवतार श्रीरामके चरणोंमें रहकर उनकी सेवा  
करनेके लिये ही हुआ था । इसीसे आज रामकी शक्ति  
मूर्तिके साथ लक्ष्मणजी गौर मूर्ति भी स्थापित होती है और  
रामके साथ लक्ष्मणका भानूभिष्ठा जाता है । राम-भरत

कल्याण

(संतुबन्ध गमेश्वर)



रामेश्वर मन्दिरका एक स्तम्भ

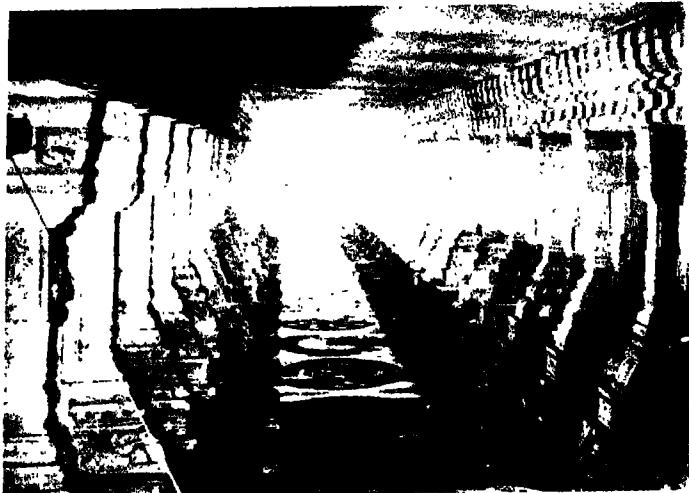


रामेश्वर मन्दिरका प्रधान प्रवेशद्वार



रामेश्वर मन्दिरका एक पाश्व प्रवेशद्वार

कल्याण



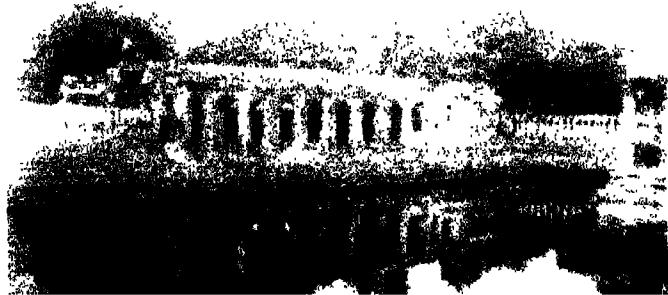
(सेतुबन्ध रामेश्वर)

श्रीरामेश्वरजीके  
मन्दिरकी  
प्रदक्षिणा (फोर्ट)



राम भगवान्

लक्ष्मण-नीरथ (तालाब)



या राम-शत्रुघ्न कोई नहीं कहता, परन्तु राम-लक्ष्मण सभी कहते हैं। श्रीकृष्णजी भीर, वीर, तेजस्वी, ब्रह्मचर्यवर्षी, इन्द्रियविजयी, पराक्रमी, सरब्जनन्दन, तितिहा-सत्यवज्ञ, विर्युष, विष्टप्त, त्यागी, बुद्धिमान्, पुरुषार्थी, तपस्ती, सेवाधर्मी, नीतिके जाननेवाले, सत्यवत्सी और रामगतप्राण थे। उनका सबसे मुख्य धर्म श्रीरामके चरणोंमें रहकर उनका अनुसरण करना था। वे श्रीरामसेवामें अपने आपको भूल जाते थे। भरतजीका विनय और मनुष्यता युक्त गम्भीर प्रेम जैसे अनोखा है, वैसे ही श्रीकृष्णजीका श्रीरामायुक्त सेवामुलक अनन्य प्रेम भी परम आदर्श है।

लक्ष्मणमें साथ सेवने-खानेके उपरान्त पन्द्रह वर्षकी उम्रमें ही लक्ष्मणजी अपने बड़े भाई श्रीरामजीके साथ विश्वामित्रके यज्ञरक्षार्थ चढ़े जाते हैं। वहाँ सब प्रकारसे भाईकी सेवामें नियुक्त रहते हैं। इनकी सेवाके विवरणमें जनकपुरुषका वह दृश्य देखना चाहिये, जहाँ रातके समय विश्वामित्रजीके साथ श्रीराम-लक्ष्मण महाराजा जनकके अतिथिरूपमें द्वेरेपर ढारे हैं। गुरुआईजी उनके बर्तावका इसप्रकार वर्णन करते हैं—

सभय सप्रेम बिनीतं प्रति सकुच्च-सहित दोउ भाइ ।

गुरु-पद-पंकज नाइ सिर बैठे आयमु पाइ ॥

निसि प्रेवस मुनि आयमु दौन्हा । सबही सन्ध्या बन्दन कीन्हा ॥  
कहत कथा इतिहास पुराना । सचिर रजनि युग जाम सिरानी ॥  
मुनिवर सभय कीन्ह तब जाई । लंग चरन चाँपन दोउ भाइ ॥  
जिन्हें चरनसरोरुह लाई । करत बिविध जप जोग विरामी ॥  
ते दोउ बंधु प्रेम जनु जीते । गुरु-पद-पदुम पलोटत प्रीते ॥  
बार बार मुनि आग्या दैन्ही । रघुबर जाइ समय तब कीन्ही ॥  
चाँपन चरन लघन उर लाप । सभय सप्रेम परम सनुपाए ॥  
पुनि पुनि प्रभु कह सोवहु ताता । पैंढे धरि उर पदजलजाता ॥

ठं लक्ष्मन निसि विगत सुनि अस्तु-सिखा-युनि कान ।

गुरुते पहिलेहि जगतपति जगे राम सुजान ॥

अहा, यहाँ ही सुन्दर आदर्श दृश्य है! श्रीराम-लक्ष्मण नगर देखने गये थे, वहाँ नगरवासी जन-नारी और सम्बद्धस्त तथा छोटे बालकोंके प्रेममें रम गये, परन्तु अबेर होते देख गुरु विश्वामित्रजीका डर लगा। अतएव बालकोंको समझा-युक्ताकर वह मिथिलामोहिनी जुगल-जोड़ी द्वेरेपर लौट आयी। आकर भय, प्रेम, विनय और संकोषके साथ गुरु-चरणोंमें प्रशामकर दोनों भाई युपचाप लाये रहे, जब गुरुजीने आज्ञा दी तब बैठे, फिर गुरुकी आज्ञासे डीक सभय-

पर सन्ध्याबन्दन किया। तदगत्तर कथा-पुराण होते-होते वो पहर रात बीत गयी। तब मुनि विश्वामित्रजी सोये। अब दोनों भाई उनके चरण देखने लगे। मुनि बार-बार दोकते और सोनेके लिये कहते हैं पर चरण देखनेके छाम-को वे छोड़ना नहीं चाहते, बहुत कहने-सुननेपर श्रीराम भी छेट गये, अब लक्ष्मणजी उनके चरणोंको हृदयपर रखकर भय-प्रेम-सहित युपचाप देखने लगे। ऐसे युपचाप प्रेमसे देखने लगे कि महाराजाको नींद आ जाय। श्रीरामने बार-बार कहा, तब लक्ष्मणजी श्रीरामके चरणकमलोंका हृदयमें ध्यान करते हुए सोये। प्रातःकाल मुनोंकी व्यापि सुनते ही सबसे पहले लक्ष्मणजी उठे, उनके बाद श्रीरामजी और तदनन्तर गुरु विश्वामित्रजी। इस आदर्श रात्रिवर्षासे ही दिनधर्याका भी अनुमान कर लीजिये। आज ऐसा दृश्य सपनेकी-सी बात हो रही है। इससे अनुमान हो सकता है कि श्रीकृष्णजी रामकी किसप्रकार सेवा करते थे।

×                    ×                    ×

श्रीकृष्णजीकी भ्रातृभक्ति अनुलनीय है। वे सब कुछ सह सकते थे परन्तु श्रीरामका अपमान, तिरस्कार और दुःख उनके लिये असह था। अपने लिये-अपने सुखोंके लिये उन्होंने कभी किसीपर क्रोध नहीं किया। अपने जीवनको तो सर्वथा त्यागमय और रामकी कठिन सेवामें ही लगाये रखा, परन्तु रामका तिविक्ष-सा तिरस्कार भी उनको तलमला देता और वे भयानक काळनागकी भाँति कुँकार भार उठते। फिर उनके सामने कोई भी क्यों न हो वे किसीकी भी परवान हन्हों करते।

जनकपुरके स्वयंवरमें जब शिवधनुषको तोड़नेमें कोई भी समर्थ नहीं हुआ, तब जनकजीको बड़ा फ़ेर हुआ, उन्होंने दुःखभरे शब्दोंमें कहा—

अब जनि कोउ मालू भट माली । बीर-बिहीन मही में जानी ॥

तजहु आस निज निज गृह जाहू । लिखान विधि बैदेहि विवाहू ॥

जो जनतेउं बिनु भट महि माई । तौ पन करि हेतेउं न हँसाई ॥

जनकजीकी इस वाणीको सुनकर सीताकी ओर देख-कर लोग दुखी हो गये। परन्तु लक्ष्मणजीके मनकी कुछ दूसरी ही अवस्था है। जब जनकके मुँहसे 'आब कोई शीरता-का अभिमान न करे' यह शब्द निकले, तभी वे अकुला उठे, उन्होंने सोचा कि श्रीरामकी उपस्थितिमें जनक यह कथा कह रहे हैं, परन्तु रामकी आज्ञा नहीं थी, युप रहे लेकिन जब जनकजीने बार-बार धरणीको श्रीरविहीन

बसकावा तब लभमयजीकी भौंहें टेढ़ी और जींसे काज हो गयीं, उनके होठ काँपने लगे, आखिर उनसे नहीं रहा गया, उन्होंने श्रीरामके लभमयोंमें सिर नवाकर कहा—

रघुवंशनहमहँ जहँ कोठ होई । तैहि समाज अस कहह न कोई ॥  
कही जनक जस अनुचित बानी । विद्यमान रघुकुलमनि जानी ॥

जहाँ रघुवंशमयि श्रीरामजी बैठे हों वहाँ ऐसी धनुषित वायी कौन कह सकता है ? लभमय कहते हैं कि 'हे श्रीराम ! यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं स्वभावसे ही इस प्रकाशदण्डको गेवकी तरह हाथमें उठा लूँ और—

कौचे घट जिमि दारौं कोरी । सकड़ मेरु मूलक इव तोरा ॥

फिर आपके प्रतापसे इस देवारे उताने धनुषकी तो बात ही कौन-सी है, आज्ञा मिले तो विस्तार्दं खेल—  
कमल-नाल जिमि चाप छढ़ाऊँ । जो जन सत प्रमान लह धाऊँ ॥

तोरँ लभकदण्ड जिमि तव प्रताप बल नाय ।

जौं न करूँ प्रभु-पद सपथ पुनि न धरूँ धनु हाय ॥

लभमयजीके इन वचनोंसे धुन्ही काँप उठी, सारा राज-समाज दर गया, सीताजीका सकुचाया हुआ हृश्य-कमल खिल उठा, जनकजीं सकुचा गये, विश्वामित्रसहित सब मुनियाँ और श्रीरघुवंशीजीको हृष्टके मारे बाहम्बार रोमाञ्च होने लगा । लभमयजीने अपनी सेवा बजा ही, रामका भहन्त लोगोंपर प्रकट हो गया । वीररसकी जीती-आगती मूर्ति देखकर लोग विसुख हो गये । परन्तु इस वीररसके महान् विप्रपटको श्रीरामने एक ही सैनसे पलट दिया—  
सपनहि रघुति लघन निवारे । प्रेषसमेत निकट बैठारे ॥

तदनन्तर शिवलीका धनुष गुलकी आज्ञासे श्रीरामने भयं कर दिया । परशुरामजी आये और कुपित होकर धनुष तोड़नेवालेका नाम-धाम पूछने लगे । श्रीरामने प्रकारान्नसे धनुष नोडना स्वीकार किया ।

नाय संभु-धनु भंजनेहारा । हैवहर्विंह कोउ एक दास तुम्हारा ॥

यहाँ परशुराम-लभमयका संवाद यहा ही रोचक है । लभमयने ध्यंग-धावसे श्रीरामकी महिमा सुनायी है और श्रीरामने भाई लभमयोंका प्रकारान्नरसे समर्थन किया । मानो दोनों भाई अन्दरसे गिरे हुए उपरसे दो प्रकारका वर्ताव करते हुए एक दूसरेका पक्ष समर्थन कर रहे हैं । आखिर श्रीरामके यहु गृह वचन सुनकर परशुरामजीकी जींसे खुल्हों, तब उन्होंने कहा—

राम रमापति कर धनु लेहू । लंचहु चाप मिठाहि संदेहू ॥

धनुष हाथमें लेते ही आपसे चाप लड़ गया—

दुबत चाप आपहि छढ़ि गयऊ । परसुराम मन विसमय भवऊ ॥

भगवान्का प्रभाव समझ परशुरामजी गद्गद हो गये और उन्होंने श्रीराम-समर्थको प्रवामकर आपवा रास्ता लिया ।

जारों भाहयोंका विचाह हुआ । सब अपोक्या लौटे । राज-परिवार सुखके समाजमें एवं हो गया । मातापै आनन्दमें भर उठीं ।

X            X            X

तदनन्तर श्रीभरत-शशुभ्र अविहाक चढ़े गये । परन्तु लभमयजी नहीं गये । उन्हें ननिहाल ससुरारकी, भगर-आरथकी कुछ भी परवा नहीं, रामजी साथ आहिये । रामके विना लभमय नहीं रह सकते । आया कायासे अलग हो तो लभमय रामसे अलग हों, उन्हें रातके समय न तो रामके विना नोंद आती है और न रामके प्रसादको कोइकर और कुछ जानेको कभी जी ही आहता है—

न च तेन विना निद्रां लभते पुरुषोत्तमः ।

मृष्टमन्त्रमुपानीतमदनाति न हि तं विना ॥

राम-राज्याभिषेककी तैयारी हुई, लभमयजीके आनन्दका पार नहीं है । श्रीरामको राज्यसिंहासनपर देखनेके लिये लभमय कितने अधिक दावायित थे, इसका पता राज्यसिंहासनके बदले बनवासकी आज्ञा होनेपर लभमयजीके भभके हुए कोआनखोंको देखनेसे ही लग आता है । जो शात मनके जितनी अधिक प्रनिकूज होती है, उसपर उतना ही अधिक कोष आता है ।

जब श्रीराम बनवास जाना स्वीकार करके कैकेयी और दशरथकी प्रशाम-प्रदविष्णुकर मातापै कौसल्यासे आज्ञा लेनेके लिये महात्मे बाहर निकले, तब लभमयजी भी कोषमें भरकर धनुपूर्ण नेत्रोंसे उनके पीछे-पीछे गये । वे हर हाथतमें श्रीरामके साथ हैं ।

दोनों भाई माता कौसल्याके पास पहुँचे । श्रीरामने सारी कथा सुनायी । माताके दुःखका पार नहीं रहा, माताने रामको रोकनेकी चेता की, परन्तु श्रीराम न माने । श्रीरामका यह कार्य लभमयजीको नहीं रुचा, वे श्रीरामके पूर्ण अनुयायी थे परन्तु श्रीरामको अपना हक्क कोइसे देखकर उनसे नहीं रहा गया । लभमयजीके चरित्रमें यह एक विशेषता है, वे जो शात अपने मनमें बैचती है, सो वहे

क्षोडकर शब्दोंमें रामके सामने रखते हैं, उनकी उकियोंका सरहन करते हैं, कभी विहृत होकर विकाप नहीं करते। पुरुषत्व सो उनमें टपका पढ़ता है, परन्तु जब श्रीरामका अन्तिम विश्वास आने लेते हैं, तब अपना सारा पृष्ठ सर्वथा छोड़कर रामका सर्वतोभावसे अनुगमन करने लगते हैं। यशरथजी और कैकेयीके इस भावरथासे दुखी हुई माता कौसल्याको विकाप करते देख आत्मप्रेमी जन्मवाली मातासे कहने लगे—

अनुरक्तोऽस्मि भावेन आतरं देवि तत्पतः ।  
सत्येन धनुषा चैव दत्तेनेन ते शये ॥  
दीप्तमधिमरणं वा यदि रामः प्रवेश्यति ।  
प्रविष्टं तत्र मां देवि त्वं पूर्वमवधारय ॥  
हरामि वीर्याद्दुःखं ते तमः सूर्यं इवोदितः ।  
देवी पश्यतु मे वीर्यं राघवच्चैव पश्यतु ॥

( वा० रा० २। २१। १६-१८ )

‘हे देवि ! मैं सत्य, धनुष, दानपुरुष और इष्टकी शपथ करके कहता हूँ कि मैं वथार्य ही सब प्रकारसे अपने बड़े भाई श्रीरामका अनुयायी हूँ । यदि श्रीराम जबती हुई अप्सिमें या घोर बनमें प्रवेश करें तो सुके पहले ही उनमें प्रवेश हुआ समझो ! हे माता ! जैसे सूर्य उदय होकर सब प्रकारके अन्धकारको हर जाता है उसी प्रकार मैं अपने पराक्रमसे आपके दुःखको दूर करूँगा । आप और श्रीरामचन्द्र मेरा पराक्रम देलें !’ इन वचनोंमें भातृप्रेम किसना छुपकरा है !

इसके अनन्तर वे श्रीरामसे हर तरहकी बीरोचित बातें फहने लगे—‘हे भार्य ! आप तुरन्त राज्यवर अधिकार कर लें । आप किसी तरहका भय न करें, मैं धनुष-वाह द्वायमें लिये आपकी सेवा और इष्टके लिये सर्वेषां तैयार हूँ । मैं जब काशकूप होकर आपकी सहायता करूँगा तब किसकी शक्ति है जो कुछ भी विज्ञ कर सके ? अयोध्याभरमें पृष्ठ कैकेयीको छोड़कर दूसरा काँइ भी आपके विस्तृत नहीं है, परन्तु यदि सारीं अयोध्या भी हो जाय तो मैं आयोध्याभरको अपने सीमावाणोंसे मनुष्यहीन कर डालूँगा । भरतके मामा या उनके कोई भी हितेजी मित्र पृष्ठ जागे तो उनका भी वध कर डालूँगा । कैकेयीमें आसक पिताजी यदि कैकेयीके उभावनेसे हमारे शाश्वतोंगे तो उनको केंद्र कर लूँगा या मार डालूँगा । इसमें सुके पाप नहीं लगेगा । अन्याय करनेवालोंको शिका देना भर्म है ।’

त्वया चैव मया चैव इत्वा वैरमनुच्चमम् ।

काऽस्य शक्तिः श्रियं दातुं भरतायारिशासन ॥

( वा० रा० २। २१। १५ )

‘हे शत्रुघ्न ! आपसे और मुझसे वैर करके किसकी शक्ति है जो भरतको राज्य दे सके ?’

श्रीरामने जन्मवालों सान्त्वना देते हुए कहा—

तत्र लक्षणं । जानामि प्रयि स्तेऽमनुच्चमम् ।

विक्रमं चैव सर्वं च तेजश्च सुदुरासदम् ॥

धर्मो हि परमो लोके धर्मे सत्यं प्रतिष्ठितम् ।

धर्मसंश्रितमप्येतत्पितुर्वचनमनुच्चम् ॥

संताऽहं न शक्यामि पुनर्लियोगमतिवर्तितुम् ।

पितुर्विद्वचनादीर ! कैकेयाहं प्रचोदितः ॥

तदेतां विसृजानार्या क्षत्रवर्माश्रितां मतिम् ।

धर्ममाश्रय मा तैषप्यं मदूबुद्धिरनुगम्यताम् ॥

( वा० रा० २। २१। १६। ४१। ४३। ४४ )

‘काशमण ! मैं जानता हूँ, तुरहारा मुझमें बढ़ा प्रेम है और यह भी जानता हूँ कि तुम्हें अपराजेय पराक्रम, तेज और सत्य है, परन्तु भाई ! इस लोकमें धर्म ही सबसे श्रेष्ठ है, धर्ममें ही सत्य भरा है । पिताके वचन धर्म और सत्यसे युक्त हैं । हमें उनका पालन करना चाहिये । हे वीर ! सत्य और धर्मको श्रेष्ठ समझनेवाला मैं कैकेयीके हारा प्राप्त हुई पिताकी आङ्गाका उद्घाटन करनेमें समर्थ नहीं हूँ । तुम भी इस काशधर्मांशी उम्र वृत्तिको छोड़ दो और इस तोक्षताका त्यागकर विशुद्ध धर्मका आश्रय ले मेरे विचारका अनुसरण करो ।

‘हे भाई ! तुम क्रोध और दुःखको छोड़कर जीर्य धारण कर, अपमानको भूलकर इर्षित हो जाओ । पिताजी सत्यवादी और सत्यप्रतिष्ठा हैं, वे सत्यवृत्तिके भयसे परछोकसे डर रहे हैं, मेरे हारा सत्यका पालन होनेसे वे निर्भय हो जायेंगे । मेरा अभिषेक न रोका गया तो पिताजीका सत्य आवगा, जिससे उम्मको बढ़ा दुःख होगा और उनका दुखी होना मेरे लिये भी बड़े ही दुःखकी बात होगी । हे भाई ! मेरे बनवासमें दैव ही प्रशान कारण है, नहीं तो जो कैकेयी माता मुझपर हसना अधिक स्नेह रखती थीं वह मेरे लिये बनवासका बरबाज मर्मों माँगती ? उसकी लुट्ठ बैठने ही बिगाड़ी है । आज्ञातक कौसल्या और कैकेयी आदि सभी माताजीोंने मेरे साथ पृष्ठ-सा वर्ताव किया है । कैकेयी मुझे

कभी कहु दबत नहीं कह सकती, यदि वह प्रबल दैवके  
वशमें न होती। अतएव तुम मेरी बात मानकर कुःख-  
इहस हो अभियेककी तैयारीको जलदी-से-जलदी हटवा दो।'

श्रीरामके चरण सुनकर कुछ देर सो लक्ष्मणने सिर  
नीचा करके कुछ सोचा परन्तु पुरुषार्थकी मूर्ति लक्ष्मणको  
रामकी यह दबोच नहीं जँची, उनकी भौंहें चढ गयीं,  
सिरमें बढ पड़ गया, वे कोधमें भरे बिलके सौफ़की तरह  
सर्स लेने लगे और पृथ्वीपर हाथ पटककर बोले—'आप ये  
भ्रमको-सी बातें कैसे कह रहे हैं, आप तो महारीर हैं—

विहोरो वीर्यहीनो यः स दैवमनुवर्तते ।

वीराः संभावितमानो न दैवं पर्युपासते ॥

दैवं पुरुषकोरण यः समर्थः प्रवाभितुम् ।

न दैवेन विपचार्यः पुरुषः सोऽवसीदर्ति ॥

दैवसन्ति त्वद्य दैवस्य पैषव्यं पुरुषस्य च ।

दैवमानुषयोऽद्य व्यक्ता व्यक्तिर्भविष्यति ॥

(वा० रा० २ २३।१६-१७)

'दैव दैव तो वही पुकारा करते हैं जो पौरुषहीन और  
कायर होते हैं। जिन शूरवरोंके पराक्रमकी जगत्में प्रयिति है,  
वे कभी ऐसा नहीं करते। जो पुरुष अपने पुरुषार्थमें दैवको  
दबा सकते हैं, उनके कार्य दैवत्य अभ्यक्त दानेपर भी  
उन्हें कुःख नहीं होता। हे रघुनन्दन ! आज दैव और  
पुरुषार्थके पराक्रमको लोग देखेंगे, इनमें कौन बलवान है,  
इस बातका आज पता लग जाएगा !'

अतएव हे आर्य—

त्रैवीहि कोऽद्यैव नया विषुव्यतां तवानुहृत्वाणवशः मुदृजनेः ।

तथा तदेव बमुधा दशा मन्त्रत्येव मां शाखि तवादिन किंकः ॥

(वा० रा० २ २२।३।३०)

'मुझे आशा दीक्षिये कि मैं आपके किन्तु शशुको आज  
माला, यह और मिठांसे झड़ा करूँ (मार डालूँ)। प्रभो !  
मैं आपका किंक हूँ, ऐसो आजा वे जिम्मे हम सारी  
पृथ्वीपर आपका अविकार हो जाय !' इतना कहकर  
लक्ष्मणकी राम-प्रेममें रोने लगे। भगवान् श्रीरामने अपने  
हाथोंसे उनके आँसू पौँछकर उन्हें बार-बार भास्त्रवा देते  
हुए कहा कि 'मार्ह ! तुम निष्ठय समझो कि माता-पिता की  
आज्ञा मानना ही पुत्रका उत्तमोत्तम धर्म है, इसीकिये मैं  
पिताकी आज्ञा माननेको नैकार कुशा हूँ। किंतु इस रात्यमें  
रक्षा ही क्या है, यह तो स्वप्नकी इष्टपात्रिके सहश है—

मदिदं दद्यते सर्वं रात्यं देहादिकं च यत् ।

यदि सर्वं मन्त्रत्य आयासः सरुलभ्यते ॥

मोगमेघवितानस्थ विषुलेसंव चथताः ।  
आयुरप्यपिनसंतसलोहस्यजलविन्दुबद् ॥  
क्रोधमूलो मनस्तापः कोचः संसारबन्धनम् ।  
धर्मक्षयकरः कोचस्तस्मात्कोचं परित्यज ॥  
तस्माच्छान्तिं भजस्वाद्य शत्रुरंबं प्रवेन्ते ।  
दंहेन्द्रियमनः प्राणनुद्यादिभ्यो विलक्षणः ॥  
आत्मा शुद्धः स्वयंज्योतिरविकारी निराङ्गतिः ।  
यावदेहेन्द्रियप्राणैर्भिन्नत्वं नामनो विदुः ॥  
तावत्संसारदुःखौचैः पीड्यन्ते मृत्युसंयुताः ।  
तस्मात्सं सर्वदा भिन्नमात्मानं हृदि भावय ॥

(अथ्यात्मरामायण २।४)

'यदि यह सब राज्य और शरीरादि दैव पक्षार्थ  
सम्बद्ध होने सो उसमें तुम्हारा परिवार कुछ भक्त भी हो  
सकता, परन्तु ये इन्द्रियोंके भोग सो बालकोंके समूहमें  
किंजलीकी चमकके समान बदल हैं और यह आयु अस्तिसे  
नये हुए लोहेपर जलकी बृंदके समान धरणविनाशी हैं।  
भार्ह ! यह क्रोध ही मानसिक सम्मापकी जड़ है, क्रोधसंहीन  
संसारका बन्धन होता है, क्रोध धर्मका नाश कर डालता है,  
अतएव इस क्रोधको न्यायकर शान्तिका सेवन करो, फिर  
संसारमें तुम्हारा कोई शत्रु नहीं है। आत्मा तो देह, इन्द्रिय,  
मन, प्राण, शुद्धि आदि सबमें विकल्पश्च ही हैं। यह आत्मा शुद्ध,  
स्वयंप्रकाश निविकार और निराकार है। जबतक यह पुरुष  
आत्माको देह, इन्द्रिय, प्राण आदिवे अवग नहीं जानता, तब  
उस उसे संमारके जन्म-मृत्यु-जन्मिन दुःखोंसे पंचिन होना  
पड़ता है, अतएव हे लक्ष्मण ! तुम अपने दैवत्यमें आत्माको  
सम्बन्धिता इनमें एथक् (इनका दृष्टा) समझो !'

X X X

आराम बन जानेको तेयार हो गये, सोतान्त्री भी साथ  
जाती हैं, अब लक्ष्मणांशीका कोच तो शास्त्र है परन्तु ये  
श्रीरामके साथ जानेके लिये द्वाकुल हैं, द्वैकुल श्रीरामके  
चरणोंमें लोट जाने हैं और रोने हुए बहते हैं—'हे रघुनन्दन  
आपने मुझमे कहा था कि तू मेरे विचारका अनुसरका कर,  
किंतु आज आप मुझ क्षोषकर रखों जा रहे हैं

न देवलोकावस्थं नामरत्वमहं बृण ।

ऐष्यं चापि गोकानी कामये न त्वया विना ॥

(वा० रा० २ १३।१५)

'हे भार्ह ! मैं आपको क्षोषकर रखूँ, मोक्ष या संसारका  
कोई भी ऐकर्य नहीं जाता।' भार्ह तो लक्ष्मणकी बह

लेकोमधी विकराल सूर्ति और कहाँ यह माताके सामने  
वर्षेही-सी करियाए ! यही तो जग्मयजीके आत्मप्रेमको  
दिशेचता है । श्रीरामजी भाई जग्मयके इस ज्यवहारसे  
मुग्ध हो गये और उन्हें कालीसे खगाकर बोले—

स्निधो धर्मरतो धीरः सततं सत्पथे वित्तः ।  
प्रिय प्राणसो वदयो विद्येयश सक्ता च मे ॥  
(वा० १० २।३११०)

भाई ! तुम मेरे स्नेही हो, जग्मयरायण, धीर, सदा सम्मानं-  
में रित हो, मुझे पालोंके समान प्रिय हो, मेरे बालकर्ती हो,  
मेरे आज्ञाकर्ता हो और मेरे मित्र हो ! इसमें कुछ भी  
सम्बेद नहीं है, परन्तु तुम्हें साथ के चलनेसे वहाँ तुली  
विता और शोषकादिता माता-धोंको कौन सान्तवना देंगा ?

मात-पि॥-गुरु-स्वामि सिक्षा सिरा धरि करहि सुमाय ।

हेड लाम तिन्ह जनमकर नतक जनम जग जाम ॥

अस जिय जानि भुनहु सिल भाई । करहु मातु-पिन् पद सेवकहि ॥  
रहहु करहु सब कर परितोऽपु । नतक तात होइहि बड़ दोपू ॥

यही ही शुभ शिक्षा है, परन्तु आतक तो भेदकी स्वाति-  
रूपको छोड़कर गंगाकी ओर भी नहीं ताकला आहता, एक-  
लिहु जग्मय पक बार तो महस गये प्रेम-वश कुछ बोल न  
सके, किर अकुलाकर चरणोंमें गिर पहं और आँखुओंसे  
चरण धोते हुए बोले—

दीनह मोहिं मिल नीक गोसाई । लगि अगम मोरी कदरहि ॥  
नरबर धीर धरम-मुर-धारी । निगम नीति कहेंते अधिकारी ॥  
मै तिसु प्रभु-सनेह प्रतिपाला । मंदर मेह कि लेह मराला ॥  
गुरु पिन् मातु न जानड़ काढू । कहड़ मुमाऊ नाथ पतियाह ॥  
जहें लगि जागत सनेह सगाई । ग्रीति प्रतीति निगम निज गाई ॥  
मेरे सबह पक तुम्ह स्वामी । दीनबन्हु उठ अन्तरजामी ॥  
धरमनीति टपंदिय ताई । कीरति, भूति, मुगति प्रिय जाई ॥  
मन क्रम बचन जगनत होई । कृपासिन् परिहरिय कि सोई ॥

भगवान्ने देखा कि जग जग्मय नहीं रहेंगे, तब उन्हें  
आशा ही, अच्छा—

माँगहु बिदा मातुसन जाई । आबहु जेगि अलहु बन माई ॥

जग्मय दरतेसे माता सुमिश्राजीके पास गये कि कहीं  
माता रोक न दें । परन्तु यह भी जग्मयकी ही मां थी,  
उन्होंने बड़ प्रेमसे कहा—

रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम् ।  
अगोच्यामटवी लिद्धि गच्छ तात मथासुकम् ॥

जाम्हो बेटा ! सुखसे बनको जाम्हो, श्रीरामको दशरथ,  
सीताको मुक्ते और बनको अवांश्या समझना । बेटा !  
अब वह तहो जहें रामनिवास् । तहाँ दिवस जहें मानुप्रकास् ॥  
अस जिय जानि संग बन जाही । केहु तात जग जीवन लाहू ॥  
तुम्हेहि भाग राम बन जाही । दूसर हेतु तात ककु नाही ॥  
पुत्रती जुबती जग सोई । रघुपति-भगवत जामु सुत होई ॥  
नतर बौहं मलि बादि विचारी । राम-विमुक्त मुतते बड़ हानी ॥

जग्मयजीका मनचाहा हो गया, वे दौषकर श्रीरामके  
पास पहुँच गये और सालाके साथ दोनों भाई अबोच्या-  
कासियोंका श्वाकर बनको और चल दिये ।

×            ×            ×

एक दिनकी बात है, जबमें चक्कते-चक्कते सम्भव हो  
गयी । कभी ऐदर चक्कनेका किसीको अन्यास नहीं था,  
दोनों बने यहे हुए थे, जबमें जारों और काले सांप  
धूम रहे थे । जग्मयने बगह साफकर एक ऐदरके नीचे  
कामब पत्ते बिछा दिये । श्रीराम-सीता उसपर बैठ गये ।  
जग्मयजीने भोजनका सामान जुटाया । श्रीराम इस कष्टको  
देसकर स्नेहवश जग्मयसे बार-बार कहने लगे कि ‘भाई !  
तुम अयोध्या बौद्ध जाम्हो, वहाँ जाकर माताजीको सान्तवना  
दो । यहाँके कष्ट मुक्तको और सीताको ही भोगने हो ।’  
इसके उत्तरमें जग्मयने बड़े हो मार्गिक शब्द कहे—

न च सीता त्वया हीना न चाहमपि राधव ।

मुहूर्तमपि जीवादो जलान्मत्स्याविवोदधृतां ॥

न हि तातं न शात्रुं न सुमित्रां परन्तप !

द्रष्टुमिष्ठेयमदाहं स्वर्गं चापि त्वया विना ॥

( वा० १० २।५३।३१-३२ )

‘हे शुनन्दन ! सीताजी और मैं आपसे अलग रहकर<sup>१</sup>  
उसी तरह नहीं जी सकते, जैसे जलसे निकालनेपर मङ्गलियाँ  
नहीं जी सकतीं । हे शत्रुनाशन ! आपको छोड़कर मैं माता,  
पिता, भाई शत्रुग्न और स्वर्गको भी नहीं देखना चाहता ।’

धन्य भान्त-प्रेम ! इसीलिये तो श्रीराम भी जग्मयके  
साथ प्राण देनेको नैयार हुए थे !

जिस समय निशादराज गुहके वहाँ श्रीराम-सीता रातके  
समय जग्मयजीके द्वारा तैयार की हुई धासपत्तोंकी जग्मय-  
पर सांते हैं उस समय श्रीजग्मय कुछ दूरपर खड़े पहरा  
दे रहे हैं, गुहक आकर कहता है ‘आपको जागनेका अभ्यास

नहीं है आप सो आइये । मैंने पहरेका सारा प्रवन्ध कर दिया है । इस बातको सुनकर श्रीलक्ष्मणी कहने लगे-

कथं दाशरथी भूमौ शयने सह सीताम् ।

शक्या निद्रा मया लन्धुं जीवितानि सुखानि वा ॥

( वा० गा० रा० ८६३० )

'इश्वरसन्दर्भ श्रीराम सीताके साथ अभीनपर सो रहे हैं, किंतु मुझे कैसे तो नोंद आ सकती है और कैसे मेरा जीवन सुखक हो सकता है ?'

बनमें श्रीलक्ष्मणी इर तरहसे श्रीराम-सीताकी सेवा करते हैं । चित्रकूटमें काठ और पत्ते इकट्ठे करके लकड़ीने ही कुदालसे मिट्टी लोदकर सुन्दर कुटिया बनायी थी । फल-मूँद बाजा, इच्छाकी सामग्री इकट्ठी करना, सीताके गहने-कपड़ोंकी बौंसकी ऐटी तथा शक्यालोंको डाकर चलना, आदेकी रातमें दूरसे लोतोंमें से होकर पानी मरकर जाना । रातों पहचाननेके लिये पेंडों-पर्खोंपर पुराने कपड़े लगेट रखना, छाव, देना, चौका देना, बैठनेके लिये लेही बनाना, अज्ञानेके लिये काठ ईंधन इकट्ठा करना और रातभर आग-कर पहरा बेते रहना, यह सारे काम लक्ष्मणीके लिये ही और बड़े इरके साथ बे सब कार्य सुखास्तरपर करते हैं ।

सबहि लक्ष्मन काम मन बानी । जाइ न सील सनेह दखानी ॥  
सबहि लक्ष्मन सीय-चुप्तुर्गाहि । त्रिमि अदिवेशी प्रवृत्त सीराहि ॥

X V .

आज्ञाकरितामें तो लक्ष्मणी बड़े ही आदर्श है । कितनी भी विर्गीन आज्ञा उठों न हो, वे चिना 'किन्तु-परन्तु' किये चुप्ताप उमे मिर बढ़ा लेने हैं, आज्ञा-पालनके कुछ इत्यान्त देकिये-

१—बनवासके समय आपने आज्ञा मानकर लक्ष्मणको सारी इच्छा एकत्रम छोड़ दी ।

२—भरतके चित्रकूट आनेके समय बढ़ा गुम्मा आज्ञा, परन्तु श्रीरामकी आज्ञा होने ही नाथ्य ममम्भकर शान्त हो गये ।

३—बार-दूषकामे तुद करनेके समय श्रीरामने आज्ञा दी कि 'मैं इनके साथ तुद करना हूँ, तुम सीताकीको साथ ले जाओ तर्बत-गुफामें आ जैदों ।' लक्ष्मण-मरीमे तेजस्वी शीरके लिये बाराईके मैदानसे इटनेकी यह आज्ञा बहुत ही कड़ी थी, परन्तु उन्होंने सुखाप इसे सीकार कर दिया ।

४—श्रीसीताकी अशोकवाटिकासे गाढ़कीमें आई हीं । श्रीरामने पैदल जानेको विभीषणको आज्ञा दी हस्ते लक्ष्मणीको पक बार दुःख हुआ, परन्तु कुछ भी नहीं कोये ।

५—श्रीरामके हारा तिरस्कार पायी हुई सीताने अब चिता जवानेके लिये लक्ष्मणीको आज्ञा दी, तब श्रीरामका हुशारा पाकर मर्म-वेणुगाके साथ इन्होंने चिता तेपार कर दी ।

६—सीता-बनवासके समय श्रीरामकी आज्ञासे पर्यटका-सा कडेजा बनाकर अन्तरके दुःखसे दाघ होते हुए भी सीताकीको बनवे छोड़ आये ।

इनके जीवनमें राम-आज्ञा-भंगके सिफं दो प्रसंग आते हैं, जिनमें प्रथम तो, सीताको अकेले पर्याकूटीमें छोड़ कर माया-सूरक्षाको मानानेके लिये गये हुए श्रीरामके पास आज्ञा और दूसरा मुनि दुर्वासाके शापसे राजको बचानेके लिये अपने त्यागे जानेका महान् कष्ट स्वीकार करने हुए भी दुर्वासाको श्रीरामके पास आने देना । परन्तु वे दोनों ही अवसर अपवादस्त्रकप हैं ।

सीताकीके कहु वसन कहनेपर लक्ष्मणने उन्हें यममाता कि 'माता, यह शब्द मायाकी मारीचके हैं, श्रीरामको विभुवनमें कोई जहों जांत ममका, आप जैरं रक्षें । मैं रामकी आज्ञाका उल्लंघन कर आपको अकेला छोड़कर नहीं जा ममका ।' इतनेपर भी जब उन्होंने तमककर कहा कि 'मैं मममकां हूँ, तू ममकका दूत हूँ, तेरे मनमें काम-विकार है, तू मुझे प्राप करना आहारा है, मैं आपमें जब मर्हंगी परन्तु तेरे और भरतके हाथ नहीं जा ममका ।' हन वसन-बालोंमें पवित्र-हृदय चिनेन्द्रिय लक्ष्मणका हृदय विष गया, उन्होंने कहा, 'हे माता बैदेही ! आप मेरे लिये देवस्वरूप हैं, इसमें मैं आपको कुछ भी कह नहीं सकता, परन्तु मैं आपके शब्दोंको महन करनेमें अमर्याप्त हूँ । हे बनदेवनाथो ! आप सब मारी हैं, मैं आपने बड़े भाई रामकी आज्ञामें रहना हूँ, तिसपर भी माता सीता जी-स्वभावमें सुखपर मन्देह करती है । मैं समझता हूँ कि कोई मारी संकट आनेवाला है । माता ! आपका कल्याण हो, बनदेवता आपकी रक्षा करें । मैं जाता हूँ ।' हम अवसरमें लक्ष्मणका वहाँसे जाना दोशहर नहीं बाना जा सकता ।

दूसरे प्रमंगमें भी लक्ष्मणने कुदुम्बसहित आईको और भाईके साजाझको शापमें बचानेके लिये ही यह त्वाग किया था ।

कुछ खोग कहते हैं कि शीतलमयादी रामसे ही प्रेम करते थे, भरतके प्रति तो उनका विदेश बना ही रहा, परन्तु वह बात ठोक नहीं। रामकी अवज्ञा करनेवालेको अवश्य ही थे जमा नहीं कर सकते थे, परन्तु यह उन्हें मालूम हो गया कि भरत छाँटी नहीं हैं तब वक्षमयके अन्तःकरणमें अपनी कृतिपूर बदा ही पश्चात्ताप हुआ और वे भरतपर पूर्ववत् अद्वा तथा स्नेह करने लगे। एक समय जावेकी अत्युपर्याप्त वनके अन्दर शीतकी भयानकताको देखकर लक्ष्मणादी नन्दिग्रामनिवासी भरतकी चिन्ता करते हुए कहते हैं—

अस्मिस्तु पुरुषव्याघ कालं दुःखसमान्वितः ।  
तपश्चर्ति चर्मात्मा त्वद्वक्त्या भरतः पुरु ॥  
त्वक्त्वा राज्यश्च मानश्च मोगांश्च विविधान् बहून् ।  
तपस्त्वी नियताहारः शेते शति महीतलं ॥  
सोऽपि वेलामिमां नूनभिपेकार्थमुद्यतः ।  
बृतः प्रकृतिर्भिन्नं प्रयाति सरयूं नदीम् ॥  
अत्यन्तमुखसंवृद्धः मुकुमारो हिमार्दितः ।  
कथं त्वपरत्रेषु सरयूभवाहते ॥  
पदापेत्यग्णः इवामः श्रीमालिष्टदो महान् ।  
घमेषः सायनादी च हीनिषेषो जितेन्द्रियः ॥  
प्रियाभिभासी मधुरो दीर्घनाहुर्गीन्द्रियः ।  
मन्त्यज्य तिविधान्नोगानाय सर्वाभिना ग्रितः ॥  
जितः स्वर्गस्तव भात्रा भरतेन महात्मना ।  
नन्दस्थमपि नापस्ये यस्त्रामनुविधीयते ॥

( १० १० ३१६ ३३ ३३ )

‘हे पुरुषश्चेष्ठ ! ऐसे अत्यन्त शीतकालमें धर्मात्मा भरत आपके प्रेमके कारण कह सहकर तप कर रहे होंगे। आहो ! नियमित आहार करनेवाले तपस्त्री भरत राज्य, सम्मान और विविध प्रकारके भोग-विकासोंको त्यागकर हम शीतकालमें ढंडी ज्येष्ठवर सोते होंगे। आहो ! भरत भी इसी समय उठकर अपने साधियोंको लेकर सरयूमें नहाने जाते होंगे। अत्यन्त सुखमें पले हुए सुकुमार शरीरवाले भरत इतने तबके सरयूके अव्यन्त शीतक जलमें कैसे स्नान करते होंगे ? क्य यज्ञनयन रथामसुन्दर भाई भरत सबा नीरोग, धर्मज्ञ, सत्यवादी, जाजावश परस्तीकी और कभी न ताकनेवाले, जितेन्द्रिय, प्रिय और मधुर-भासी और जन्मी भुजाओंवाले महात्मा हैं। आहा ! भरतने सब प्रकारके सुखोंका त्यागकर सब प्रकारसे आपका ही आश्रय ले लिया है। महात्मा भाई भरतने स्वर्गको भी

बीत विद्या स्थोंकि आप वनमें हैं इसलिये वे भी आपकी ही भाँति तपस्त्री-धर्मका पालनकर आपका अनुसरण कर रहे हैं ।

इन वचनोंको पढ़नेपर भी क्या यह कहा जा सकता है कि लक्ष्मणादी भरतके प्रति प्रेम नहीं था ? इनमें तो उनका प्रेम टपका पड़ता है ।

×                    ×                    ×

लक्ष्मणादी अपनी बुद्धिका भी कुछ घमण्ड न रखके श्रीराम-सेवामें किसप्रकार अर्पित-प्राण थे, इस बातजा पता तब आगता है कि जब पञ्चवटीमें भगवान् श्रीराम अच्छा-सा स्थान लोबकर पर्यंकुटी तैयार करनेके लिये लक्ष्मणको आज्ञा देते हैं। तब सेवा-परायण लक्ष्मण हाथ जोकर भगवान्सेकहते हैं कि हे प्रभो ! मैं अपर्णा स्वतन्त्रतासे, कुछ नहीं कर सकता ।

परवानस्मि काकुल्य त्वयि वर्षशनं स्थिते ।

स्वयं तु शुचिरं दंशो क्रियतामिति मां बद ॥

‘हे काकुल्य ! आहे संकहों वर्ष बीत आईं पर मैं तो आपके ही आजीन हूं। आप ही पसन्द करके उत्तम स्थान बतायें ।’

इसका यह भत्तलव नहीं है कि लक्ष्मणादी विदेशीन थे। वे बड़े बुद्धिमान् और विद्वान् थे परं समय-समयपर रामकी सेवाके लिये बुद्धिका प्रयोग भी करते थे किन्तु जहाँ रामके किये कामपर ही पूरा सन्तोष होता वहाँ वे कुछ भी नहीं बोलते थे। उनमें तेज और क्रोधके भाव थे, पर वे थे सब रामके लिये हीं। लक्ष्मण विलाप करना, विद्वान् होना, डिगना और रामविरोधीपर जमा करना नहीं जानते थे। इसीसे अन्य दृष्टिसे देखेवाले लोग उनके अतिरिक्त दोषोंकी कल्पना किया करते हैं परन्तु लक्ष्मण सर्वथा निर्विष, रामप्रिय, रामरहस्यके ज्ञाता और आदर्श आता हैं। इनके ज्ञानका नमूना देखना हो तो युहके साथ इन्होंने पकान्तमें जो बातें की थीं, उन्हें पढ़ देसिये। जब निशादने विचारकर कैकेयीको बुरा भाला कहा और श्रीसीतारामजीके भूमि-शाश्वत-को देखकर हुःख प्रकट किया तब लक्ष्मणादी जाताके साथ मसुर वायीसे उससे कहने लगे—

काहु न कोठ सुख-दुखकर दाता निजकृत करम मोग सब आता ॥

जाग बियोग भोग भल मंदा । हित अनहित मध्यम भ्रम फंदा ॥

जनम मरन जहं लगि जगजालू । संपर्ति विपर्ति करम अह कालू ॥

धरनि धाम धन पुर परिवारु । सरग नरक जहं लगि व्यवहारु ॥

देखिय सुनिय गुनिय मन माहीं । मोह-मूल परमारथ नाहीं ॥

सप्तने होइ मिलारि नृप रंक नाकपति होइ ।  
जागे हानि न लाभ कलु तिमि प्रपञ्च जिय जाइ ॥

अस बिचारि नहिं कीजिय रोषू । काहुहि बादि न देहय दोषू ॥  
मोहनिसा सब सोवनिहारा । देखिय सपन अनेक प्रकारा ॥  
षहि जग-जामिनि जागाई जागी । परमारथी प्रपञ्चियोगी ॥  
जानिय तबहि जीव जग जागा । जब सब विषय-बिलास बिरागा ॥  
होइ बिवेक मोहभ्रम भागा । तब रघुनाथ-चरन अनुगामा ॥  
सखा परम परमारथ एहु । भन-कम-बचन राम-पद-नेहु ॥  
गम ब्रह्म परमारथ रूपा । अविगत, अलख, अनादि अनूपा ॥  
सकल विकार-रहित गतभेदा । कहि नित नेति निरूपहि बेदा ॥

भगत भूमि भूमुर सुरभि सुरहित लागि कृषाण ।  
करत चरित धरि मनुजतन सुनत मिटहि जग-जाल ॥  
सखा समुद्दिः अस परिहरि मोहु । सिंह-श्रुती-चरन गत होहु ॥

श्रीलक्ष्मणजीकी भाइमा कौन गा सकता है ? इनके समान पन्नाथं और ब्रेमका, बुद्धिमता और सरकाराका, परामर्श और शाकाकारिताका तेज और मैत्रीका विजयव्य समन्वय इन्हींके चरित्रमें है । सारा संसार अंगमका गुणगान करता है, श्रीराम भरतका गुण गते हैं और भरत लक्ष्मणके भाग्यका वराहना करते हैं । किं इम किस गिजतीमें हैं जो वर्षमयजीके गुणोंका संचयमें बसान कर सके ?

### श्रीश्रुतम् का आत्-प्रेम

रिपुमूर्दन पद-कमल नमामी । दूर सुरील मरण अनुगामी ॥

रामदासानुदाम श्रीश्रुतम् भगवान् अंगम और भरत-कमलके परमप्रिय और शाकाकारी बन्धु थे । श्रुतम् भौनकर्मी, प्रेमी, सदाकारी यित्रभावी, सत्यवादी, विषय-विरागी, सरल, तेजपूर्ण, गुहजोंके अनुगामी, वीर और शत्रुनाशक थे । अंगमायका में इनके मध्यन्वये विशेष विवरण नहीं मिलता परन्तु जो कुछ मिलता है, उससे इनकी महसूका अनुमान हो जाता है । जैपं श्रीलक्ष्मणजी भगवान् श्रीरामके चिर-मंगी थे, इर्माप्रकार लक्ष्मणानुज श्रुतम् भी भरतजीकी सेवायें नियुक्त रहते थे । भरतजीके लाय ही प्राप उनके निनिहाल गये थे और पिताजी कृष्णपर साथही लाठे थे । अयोध्या पहुँचनेपर लैकेयीजीके द्वारा पितामरण और राम-नीता-कर्मणके बचावका समाचार सुनकर हवको भी बड़ा भारी दुःख हुआ । भाई वर्षमयके दौरान

आप परिचित थे, अतएव इन्होंने शोकपूर्व दृष्टपते वजे आश्रमके साथ भरतजीसे कहा—

गतिर्यः सर्वभूतानां दुःखे कि पुनरात्मनः ।  
स रामः सत्त्वसम्पदः छिया प्रवाजितो वनम् ॥  
बलवान्वीर्यसमप्लो लक्ष्मणो नाम योऽप्यसौ ।  
कि न मोक्षयते रामे कृत्वापि पितृनिश्रहम् ॥

( वा० ३० २ । ७८ । २-३ )

‘श्रीराम, जो दुःखके समय सब भूतप्राणियोंके आश्रय है, वे इमलांगोंके आश्रय तो हैं ही, ऐसे महाबलवान् राम एक जा (कैकेया)के प्रेरणासे ही बनमें जाले गये । अहा ! श्रीलक्ष्मण तो बलवान् और महापराकर्मी थे, उन्होंने पिताजी के समझकार रामको बन आनेसे क्यों नहीं रोका ?’ इस समय श्रुतम् भौनकर्मी को एप्से भरे थे, इतनेमें राम-विरहमें दुलांग एक हरयालने आकर कहा कि ‘हे राजकुमार ! जिसके घटयन्त्रमें श्रीरामको बन आना पड़ा, और महाराजकी शत्रु हुई, वह क्या पापिनी कुक्कुटा वज्राभूतयोंसे सब्दों हुई रहा है, आप उचित समझें तो उसे कुछ शिक्षा दें ।’ कुक्कुटा भरतजीसे इनाम लेने आ रही थी और उसे दूरशास्त्रेपर देखते ही द्वारपालने अन्दर आकर श्रुतम् से ऐसा कह दिया था, श्रुतम् को बड़ा गुस्सा आया, उन्होंने कुक्कुटा का चाटी पकड़कर उसे घसीटा, उसने झाँकर संक्षम भारी । यह दशा देखकर कुक्कुटा का अव्य सम्मिळित हो गयी, उन्होंने कहा कि अब भूतुरभाषिणी, दयामयी कौसल्याके विवरण गये इना श्रुतम् इमलांगोंको भी नहीं छोड़ेंगे । कैंकेयी कुहाने आयों नो उनको भी फटकार दिया, आमिर भरतने आकर श्रुतम्से कहा—‘माहे ! छां-जाति अवश्य है, नहीं तो मैं ही कैंकेयीको मार दाऊता—

इमापि इतां कुम्जा यदि जानति रात्रवः ।

त्वं च मां चतुर्थं वर्षमात्रा नारिं शाविष्यतं प्रुदम् ॥

( वा० ३० २ । ७८ । २३ )

‘माहे, यह कुक्कुटा चरि तुम्हारे हाथमें मारी जायगी तो श्रीराम निश्चय ही तुमसं कौर सुम्भसे बोलना चाहे देने ।’ भरतजीके बचन सुनकर श्रुतम् भौनकर्मीने उसको छोड़ दिया । यही यह पता लगता है कि प्रथम सो रामकी घर्मनिमें छां-जातिका द्वितीया आदृ था, जी अवश्य समझी जाती पी । दूसरे, शोककुम्ह भरतने इस अवस्थामें भी भाई

कल्याण



मात्रांको अग्नि-परामृ  
विशुद्धभावां निष्पापां प्रनिरुहणीच्च मैथिलीम् ।  
त किञ्चिद्भिघानव्या अहमाज्ञापयामि ते ॥



शत्रुघ्नीको भाद्र-प्रेमके कारण रामकी शब्दनीति बदलाकर अवधिसे रोका, और तीसरे, रोपमें भरे हुए शत्रुघ्नी भी तुरन्त भाईकी बात मान ली। इससे हमेंगोंको वयायोग्य शिक्षा प्राप्ति करनी चाहिये। जो ज्ञाग वह आवेद किया करते हैं कि प्राचीन कालमें भारतीय पुस्तकोंको बहुत तुष्टु बुद्धिसे देखते थे, उनको इस प्रसंगसे शिक्षा प्राप्ति करनी चाहिये।

\* \* \*

इसके अनन्तर शत्रुघ्नी भी भरतजीके साथ श्रीरामको लौटाने बनाए जाते हैं, और वहीं भरतजीकी आज्ञासे रामकी कुटिया हूँदते हैं। जब भरतजी दूरसे श्रीरामको देख कर दौड़ते हैं, तब श्रीरामदर्शनोंसुक शत्रुघ्नी भी योग्यी ही दौड़े जाते हैं, और—

शत्रुघ्नश्चापि रामस्य वनन्दे चरणौ रुदन ।

तानुमौ च समालिङ्गं रामोप्यशृण्यवैयत् ॥

( वा० रा० २ : १६ : ५० )

वे भी रोने हुए श्रीरामके चरणोंमें प्रवाप भरते हैं श्रीराम आमनसे उठ अपने हाथोंसे उन्हें उठाने हैं, किर दोनों छानामें चिट्ठ जाने हैं। इसा पक्षर शत्रुघ्न अपने बड़े भाई लक्ष्मणजीसे भी मिलते हैं—मैंने लग्नन लक्ष्मण की लघु भाई।

इसके बाद श्रीराम भरतके संवादमें लक्ष्मण-शत्रुघ्नका बीचमें बोलानेका कोई काम नहीं था। दोनोंके अपने-अपने नेता बड़े भाई भौजूद थे। शत्रुघ्नने तो भरतको अपना जीवन सीधे ही दिया था। इसीसे भरत कह रहे थे कि—

सानुञ्ज पठिय भार्ति बन, कीरत्य सबहि सनाथ ।

शत्रुघ्नजीकी सम्मति न होती था शत्रुघ्नके भाद्र-प्रेमपर भरोसा न होता तो भरतजी ऐसा बयोंकर कह सकते ?

पातुका लेकर क्लौटनेके समय श्रीरामने दोनों भाई पुनः गले खाकर मिलते हैं। रामकी प्रशिक्षण करते हैं। लक्ष्मणजीका भाई शत्रुघ्नजी भी कुछ तेज थे, कैंकेरीके ब्रह्म उनके मनमें रोप था, श्रीराम इस बातको समझते थे, इससे बनसे विदा होते समय श्रीरामने शत्रुघ्नजीको बालसत्यताके कारण शिक्षा देते हुए कहा—

मातरं रक्ष केतयी मा रोचं कुरु तां प्रति ।

ममा च सीतयाचैव शप्ताऽसि रथुनन्दन ॥

( वा० रा० २ : ११२ : २० )

‘हे भाई, तुम्हें मेरी चाँच सीताकी शपथ है तुम माता कैलेकी प्रति कुछ भी कांच न करके उनकी रक्षा करते

रहना।’ इतना कहनेपर उनकी चाँचें प्रेमाभुजोंसे भर गयीं ! इससे पता लगता है कि श्रीराम-शत्रुघ्नमें परस्पर कितना प्रेम था !

इसके बाद शत्रुघ्नजी भरतजीके साथ अपोद्या क्लौटकर उनकी आज्ञानुसार राज और परिवारकी सेवामें रहते हैं तथा श्रीरामके अपोद्या क्लौट आनेपर प्रेमपूर्वक उनसे मिलते हैं ‘पुनि प्रसु इति शत्रुघ्न भेटे हृदय लगाइ ।’ तदनन्तर उनकी सेवामें लग जाते हैं। श्रीरामका राज्याभिषेक होता है और रामराज्यमें सबका जीवन सुख और धर्ममय बीतता है।

एक समय शत्रुघ्नोंने आकर श्रीरामसे कहा कि जलवायासुर नामक राजस बहा उपचाव कर रहा है, वह प्राणिमात्रको—जास करके तपस्त्रियोंको पकड़कर खा जाता है। इस सब बढ़े ही दुखी हैं। श्रीरामने उनसे कहा कि ‘आप भव न करें मैं उस राजसको मारनेका प्रबन्ध करता हूँ ।’ तदनन्तर श्रीरामने अपने भाईयोंसे पूछा कि ‘लक्ष्मणसुरको मारने कौन जाता है ?’ भरतजीने कहा ‘महाराज ! श्रीरामकी आज्ञा होगी सो मैं चला जाऊँगा ।’ इसपर लक्ष्मणानुज शत्रुघ्नजीने नज़रतासे कहा—‘हे रघुनाथजी ! आप जब बनमें थे तब महाराज भरतजीने बढ़े-बढ़े हुए सहकर राज्यका पालन किया था, ये नगरसे बाहर नन्दीगाँवमें रहते थे, कुणपर सोते थे, फलमूल साते थे, और जटावल्कल जारण करते थे। इब मैं दास जब सेवामें उपस्थित हूँ तब हन्हें न भेजकर मुझे ही भेजना चाहिये ।’ भगवान् श्रीरामने कहा—‘अद्वैती बात है तुम्हारी इच्छा है तो ऐसा ही करो, मैं तुम्हारा मधुदैत्यके सुभद्र नगरका राज्याभिषेक करूँगा, तुम शूरवीर हो, नगर बसा लक्ष्मण हो, मधुराइसके पुत्र लक्ष्मणसुरको मारकर धर्म-बुद्धिसे वहीका राज्य करो । मैंने जो कुछ कहा है, इसके बदलेमें कुछ भी न कहना, क्योंकि वहोंको आज्ञा बालकोंको माननी चाहिये। तुम उसे स्त्रीकार करो ।’ श्रीरामने अपने मुहँसे बदोंकी आज्ञाका महात्म हसीलिये बतलाया कि वे शत्रुघ्नकी त्वाग-धृतिको जानते थे। श्रीराम ऐसा न कहते तो वे सहजमें राज्य स्वीकार न करते। इस बातका पता उनके उत्तरसे लगता है। शत्रुघ्नजी बोले—

‘हे नरेश ! वहे भाईकी उपस्थितिमें क्लौटेका राज्याभिषेक होना मैं अबर्थं समझता हूँ। इधर श्रीरामकी आज्ञाका पालन भी अवश्य करना चाहिये। श्रीराम द्वारा ही मैंने यह धर्म सुना है। अभरतजीके बीचमें सुखको कुछ भी नहीं बोलना चाहिये था—

व्याहृति दुर्वचं धोरं हन्ताऽस्मि लक्णं मृचे ।  
तस्यैव मे दुरुक्षस्य दुर्गतिः पुरुषंम् ॥  
उत्तरं नहि वक्तव्यं ज्येष्ठेनाभिहिते पुनः ।  
अधर्मसहितं चैव परलोकविवर्जितम् ॥  
( शा० रा० २।६३।४५ )

'हे पुरुषभाषु ! 'जबलासुरको मैं मारूँगा' मैंने ये दुर्वचन कहे, इसीसे मेरी यह दुर्गति हुई । वह भाइयोंके बीचमें कभी नहीं बोलना चाहिये । ऐसा करना अधर्मसुख और परलोकका नाश करनेवाला है ।' धन्य शत्रुघ्नजा, आप राज्य-प्राप्तिको 'दुर्गति' सबभलते हैं ! कैसा आशर्व त्याग है ! आप फिर कहते हैं कि 'हे काकुस्य ! एक दद्ध तो मुझे मिल गया, अब आपके बच्चोंपर कुछ बोलूँ तो कहाँ दूसरा दद्ध न मिल जाय, अतएव मैं कुछ भी नहीं कहना । आपकी इच्छानुसार करनेको तैयार हूँ ।'

भगवान्की आशामे शत्रुघ्नजा राज्याभिषेक हो गया, तदनन्तर उन्होंने जबलासुरपर चढाई की, श्रीरामने चार इजार घोड़े, दो इजार रथ, एक सौ उत्तम शारी, क्षव-विक्रय करने-वाले व्यापारी, व्यंके लिये एक ज्ञाल स्वर्णसुदृशं साथ ही । और भाँति-भाँतिके सत्रुपदेश देकर शत्रुघ्नको विदा किया । इससे पता लगता है कि शत्रुघ्नजा भाँगमको किसने पकारे थे ।

इस्तेमें अधियोंके आश्रमोंमें ढहरने हुए वे जाने लगे । बाल्मीकिर्णीके आश्रममें भी एक गत ढहरे, उसी गतको सीतार्जीके लक्ष-कुशका जन्म हुआ था । अतः वह गत शत्रुघ्नीके लिये वहे आनन्दकी रही । शत्रुघ्नजा ने मधुपुर जाकर जबलासुरका वध किया । देखता और अधियोंने आशीर्वाद दिये । तदनन्तर वारह साजरक भृत्युपांते रहकर शत्रुघ्नी वापस श्रीरामदर्शनार्थ छौटे । रामनेमें फिर बाल्मीकिर्णीके आश्रममें ढहरे । अब लक्ष-कुश वारह वर्षके हो गये थे । मुनिने उनको रामायणका गान सिखाका दिया था । अतएव मुनिकी आशामे लक्ष-कुशने शत्रुघ्नीको रामायणका मनोहर और कस्त्यांत्यादक गान सुकाया । राम-महिमाका गान सुनकर शत्रुघ्न मुख्य हो गये—

श्रुत्वा पुरुषशार्दूलो विसंग्रे वाणप्लोचनः ।  
स मुहूर्तमिवालंजो विनि शस्य मुदुमुदुः ॥  
( शा० रा० ३।७।१३ )

'उस गानको सुनकर पुरुषनिह शत्रुघ्नीकी आँखोंमें अंसुओंकी आरा वह चर्ची, और वे बेहोश हो गये । उस

बेहोशीमें एक बड़ी तक उनके जोर-जोरसे साँस चलता रहा ।' धन्य है !

इसके अनन्तर उन्होंने अयोध्या पूर्वोक्त श्रीरामसहित सब भाइयोंके दर्शन किये । फिर कुछ दिनों बाद मधुपुरी छोट गये ।

X X X

परम भामके प्रथायका समय आया, इन्द्रियविजयी शत्रुघ्नको पता लगने ही वह अपने पुत्रोंको राज्य सौंपकर दौड़े हुए श्रीरामके पास आये और चरणोंमें प्रणामकर गदगदकरकरसे कहनेलगे—

कृत्वाभिषेकं मुत्योद्दीयो राघवनन्दनः ।  
तवानुगमने राजन् । विद्धि मा कृतनिष्ठयम् ॥  
न चान्यदद्य वक्तव्यमतो तीर्त न शासनम् ।  
विहन्यमानमिन्नदामि भद्रिभेन विदेषतः ॥  
( शा० रा० ३। १०८। १४-१५ )

'हे रघुनन्दन ! हे राजन् ! मैं अपने दोनों पुत्रोंको राज्य सौंपकर आपके साथ जानेका निश्चय करके आया हूँ । हे बाट ! आज आप कृष्णकर न तो दूसरी बात कहे और न दूसरी आशा ही दे, यह मैं इमलिये कह रहा हूँ कि मैं लासानीरपर आपको आजाका उहांधन नहीं करना चाहता ।' मतलब यह कि आप कही साथ क्षोभकर यहाँ रहनेका आशा न दे दें जिसमें मुझे आपको आज्ञा भंग करनी पड़े, जो मैंने आज नक नहीं का । धन्य है आदृप्रेम !

भगवान्ने प्रार्थना ल्पीकार की और सबने मिलकर श्रीरामके साथ रामधामको प्रथाय किया ।

### उपमंहार

वह रामायणके यांगे एव्युलांके आदर्श भाग्यप्रदका किञ्चित् दिव्यरूपन है । यह लेख विशेषरूपसे आनु-प्रेमपर ही किला गया है । धन्य वर्णन सो प्रसंगावश आ गये हैं, अतएव दृमरे उपदेशप्रद आदर्श विषयोंकी वर्णोचित वर्चा नहीं हो सकती है । इस लेखमें अधिकांश भाग शाल्मीकि, अध्यायम और रामचन्द्रिमानसके आचारपर किला गया है ।

वास्तवमें श्रीराम और उनके बन्धुओंके आश्रम चरितकी याह कौन पा सकता है । मैंने तो अपने दिनोंके किये यह चेष्टा की है, भूटियोंके किये किलावन चमा करें । श्रीराम और

उनके प्रिय कन्धुओंके विमल और आळर्ह चरितसे हमलोगोंको पूरा काम उठाना चाहिये । साथात् सचिदामन्दवन भगवान् होनेपर भी उन्होंने जीवनमें अनुभ्योंको भाँति खालाएँ की हैं जिनको आदर्श मानकर हम काममें ला सकते हैं ।

कुछ लोग कहा करते हैं कि 'श्रीराम अब साहात् भगवान् थे, तब उन्हें अवतार खारण करनेकी क्या आवश्यकता थी, वे अपनी शक्तिमें यों ही सब कुछ कर सकते थे'! इसमें कोई सन्देह नहीं कि भगवान् सभी कुछ कर सकते हैं, करते हैं, उनके लिये कुछ भी असम्भव नहीं

है, परन्तु उन्होंने अवतार खारणकर ये आदर्श लीखाएँ इसलिये की हैं कि हमलोग उनका गुणानुवाद गाकर और अनुकरण कर कृतार्थ हों, यदि वे अवतार खारणकर हमलोगोंको शिक्षाके लिये ये लीखाएँ न करते तो हमलोगोंका आदर्श शिक्षा कहाँसे और कैसे मिलती? अब हम लोगोंका यही कर्तव्य है कि उनकी लीखाओंका अवलोकन और अनुकरण कर उनके सहे भक्त बनें! लेकिन बहुत बड़ा हो गया है इसलिये यहीं समाप्त किया जाता है ।

## श्रीरामचरितमानसका महाकाव्यत्व

( लेखक—श्रीविन्दु ब्रह्मचारीजी । )



मध्यमें कवि केवल अपनी दशाओंका वर्णन करता है, नानाचिध कल्पनाओंके द्वारा वह अपनी भावनाओंको प्रकट करता है और महाकाव्य वह है जिसमें वह सम्पूर्ण समाज और समस्त देशकी संस्कृति, भावना, रीति-नीति तथा मानव-प्रकृतिके सभी शुभाशुभ रूपोंका विवरण करता है । उसके महाकाव्यमें जगद्गृहके दर्शन होते हैं । श्रीमद्भौम्बामि तुलसीदासजी महाराजका श्रीरामचरितमानस ऐसाही महाकाव्य है । उसमें नायकत्वके सर्वांग तुलसीदास-रूप, नरस्वके विवर आदर्शके साथ-साथ आसुरभावके भी पूर्ण विकाशका उत्कृष्ट प्रदर्शन हुआ है । इसीसे उसमें प्रत्येक प्रकृति और दशाके अनुकूल उपक्रिया लिख जाती है और उसका समाजमें सहजभावसे व्यवहार होता है । अब हमें यह देखना है कि श्रीरामचरितमानस महाकाव्य कैसे है और उसके मध्यमें ज्ञात्य उसमें कैसे बटित हैं?

साहित्यवर्ष्यमें महाकाव्यके ज्ञात्य इसप्रकार दिये हैं—

सर्गबन्दो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः ।  
सद्वृशः क्षत्रियो वाऽपि धीरोदात्तुगुणान्वितः ॥  
एकवेशमवा भूपाः कुक्ला बहवोऽपि वा ।  
शुक्रारवीरशान्तानामेकोऽङ्गीरस इप्तते ॥  
अङ्गानि सर्वेऽपि रसाः सर्वेनाटकसन्धयः ।  
इतिहासेष्ठवं वृत्तमन्यद्वा सज्जनाश्रयम् ॥

नव्यारसनस्य वर्गः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत् ।

अद्वै नमस्तिक्षमाशीर्वां वस्तुनिर्देश एव वा ।

वचिचिन्निदा खलादीनां सतां च गुणकीर्तनम् ॥

एकवृत्तमयः पैदैरवसानेऽन्यवृत्तकः ।

नानिस्वत्या नातिदार्थीः सर्गी अष्टाविका इह ॥

नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दद्यते ।

सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सृचनं भवेत् ॥

सन्ध्यामूर्त्येष्टुरज्ञी प्रदोषव्यान्तवासराः ।

प्रातर्मध्याह्नमृग्या शैलर्तुवनसपाराः ॥

सम्मोगिप्रतरमौच मुनिस्वर्गपुराध्वराः ।

रणप्रयाणोपगममन्त्रपुत्रोदयादयः ॥

वर्णनीया यथायोगां सहोपाज्ञा असी इह ।

कर्वेत्तर्य वा नामा नायकस्येतरस्य वा ॥

**मानसमें इनकी चरितार्थता—**

**धीरोदात्तनायकत्व—**धीरोदात्त नायक उसे कहते हैं जिसमें आत्मरक्षावा न हो, जमाशील एवम् अत्यन्त गम्भीर हो, इच्छाक्षेत्रसे जो अभिभूत न हो, गर्व भी विसका विनाशक हो और जो दृढ़वत हो, यथा—

अविक्तयः क्षमावानतिगम्भीरो महासत्तः ।

स्थेयान्निगृद्मानो धीरोदात्तो दद्व्रतः कथितः ॥

**अनात्मशल्लाघा—**

'सभ्य विलोके लोग सब बानि जानकी भीर ।

ददय न हरष-विषाद कहु बोले श्रीरघुबीर ॥

नाथ, समु-घनु मंजनिहारा । होहाहि कोठ एक दास तुम्हारा ॥  
आयसु काह कहिय किन मोही ।  
राममात्र लघु नाम हमरा । परसु सहित बड़ नाम तुम्हारा ॥  
देव एक गुन घुन घमरे । नव गुन परम पुनीत तुम्हारे ॥  
सब प्रकार हम तुमसन होऐ । छमहु विप्र अपराध हमरे ॥  
चितै सबनिपर कीन्ही दावा । बोके मुदुल बचन रघुराया ॥  
तुम्हरे बल मैं रावन मारा । तिक विभीषन कहै पुनि सारा ॥

## गाम्भीर्यातिशय—यथा—

राम कहेड रिस तनिय मुनीसा । कर कुठार ओगे यह सीसा ॥  
मृगुपति बकहि कुठार उठाप । मन मुसुकाहि राम सिर नाप ॥

## क्षमा—यथा—

फौहि मोह बस द्रोह जयपि तेहिकर बध उचित ।  
प्रमु छाड़े करि छोह को कृषाणु रघुबीर सम ॥

## इत्यादि ।

## महासत्त्वत्व—

प्रसन्नतां या न गतानिषेकतः ।  
तथा न मङ्गे बनवासदुःखतः ।  
मुक्षाम्बुज श्रीरघुनन्दनस्य मे  
सदास्तु सा मञ्जुकमहूलप्रदम् ॥

पितु आयसु मूषन बसन तात तंज रघुवीर ।  
निसमय-हरप न हृदय कहु पर्हिं बत्कल चीर ॥  
मुख प्रसन्न मन गग न रोधू ।

मूष सजेठ अभियक समानू । चाहत देन तुमहि नुवरानू ॥  
गुरु दिल देइ राम पहै गचक । राम हृदय अस विसमय मयऊ ॥  
जनमें एक सब सब भाई । नोजन-समय-कलिन्लिकाई ॥  
करनबेघ उपवीत विचाहा । संग-संग सब भयट उठाहा ॥  
विमल बंस यह अनुचित एकू । बनधु विहाय बड़हि अनिवृकू ॥

## विमाताले बनवास-प्रसङ्ग सुनकर—

सब प्रसन्न रघुपतिहि मुनाई । बैठि मनहु तनु वरि नियुराई ॥  
मन मुसुकाहि भानुकुल मानू । राम महज आनन्द-निवानू ॥

## स्त्रीर्य—

प्रत कहा मुनिसन रघुराई । निर्मय जग्य काहु तुम जाई ॥  
होम करन लगे मुनि ज्ञारी । आयु रहे मस्तकी रक्षारी ॥  
मुनि मारीच निसाचर कोही । है सहाय चावा मुनि-ज्ञाही ॥  
विनु कर-बान राम तिहि मारा । सत जांजन गा सामर पाग ॥

पावक सर सुबाहु पुनि जारा । अनुज निसाचर कटक सेहाम ॥  
मारि असुर दिज निर्भयकारी । असुति करहि देव-मुनि ज्ञारी ॥

## निगद्धमानता—

छुताहि दूट पिनाक पुराना । मैं केहि हेतु करौं अभिमाना ॥  
जौं हम निदरहि विप्र बदि सत्य सुनहु मृगुनाथ ।  
तौ अस को जग सुभट जेहि भयबस नावहि माथ ॥  
देव-दनुज-भूषित-भट नाना । समबल अधिक होउ बलनाना ॥  
जौं रन हमहि प्रचारे कोऊ । लरहि सुखेन काल किन होऊ ॥  
छत्रिय तनु चीर समर सकाना । कुरु-कलहु तेहि पांवर जाना ॥  
कहौं सुमाव न कुलहि प्रसंसी । काळहु डराह न रन रघुबंसी ॥  
विप्रबंसके असि प्रमुताई । अभय होइ जो तुमहि ढेराई ॥

## हृदयतता—यथा—

राय राम राजन-हित लाती । बहुत उपाय किए छल त्याती ॥  
रक्षी राम रुक्ष रहत न जाने । चरम-बुरन्धर चीर सयाने ॥  
मानु बचन मुनि अति अनुकूला । जनु सेनेह सुरतरुक फूला ॥  
सुख-मकरन्द भरे श्रीमूला । निरक्षि राम-मन-भंवर न मूला ॥  
जौं नहि किरहि चार दोउ माई । सद्य-सन्ध दद्वत रघुराई ॥  
बनवासको स्वीकार कर विदा, फिर छलेक प्रेमानुरोध  
और कल्पा-प्रार्थनाओंपर भीं विचक्षित नहीं हुए ।

## बनमें मुनियोंका अम्बिय-समूह देखकर—

निसिचर हीन करौं माई मुज ठठाय पन कीनह ।

## बालिवध-प्रतिक्षा—यथा—

सुनु मुश्रीब मैं मारिहीं बालिहि पर्हाई बान ।

ब्रह्म-दृढ़-सानामतहुं गए न टर्हाहि प्रान ॥

उन रघुजलियक भीर-बीरशिरोमयिने जो कुछ  
कहा, वह कर दिलाया, जिसका आङ्ग-का और स्वीकार  
कर विदा, अन्तस्त क सब प्रकार उसका निवाह किया ।  
चत्रियोंके सबैबेहु पवित्र सूर्यवामे, वरमप्रतापी सार्वभौम  
चक्रवर्ती-कुछमें अवनार धारय दिला । रुप, शीत, कुम,  
वयस, गुण, गोरक, विद्या, प्रतिमा, विनय, ब्रह्म, विकल्प, सेज, शौर्य  
प्रेरवर्य, माधुर्य तथा कल्पादि निविल कल्पाद्युम्बारिवि  
होनेमे दग्धरथ-राजकुमार और मध्यवर्दी नावकलके दिव्य  
आकर्षी एवम् पुरुषोंसम्पर्की भव्य मर्यादा हैं । जैसे वे  
नृपत्वमें चक्रवर्ती हैं, वैसे ही नावकलमें सार्वभौम असद् व  
र्धीराजान् नावकलगर्वके वृत्रपति राजा मर्यादा-पुरुषोंसम्पर्की हैं ।  
( कमरा । )

## रामायणमें आदर्श पितृभक्ति

(लेखक—राजावदादुर राजा श्रीलक्ष्मीनारायण हरिचन्दन जगदेव विश्वावाचस्पति, पुरातत्त्वविशारद टेकाली)

पिता हि परमः स्वर्गः पिता हि परमं तपः ।  
पितरि श्रीतिमापने श्रीयन्ते सर्वदेवताः ॥

‘स्वर्गकामो यंत्र’ इत्यादि वेदप्रतिपादित वाक्योंसे सकल-सुख-समन्वय, वितापशृण्य, उत्थवकर्मी उल्लेखोंकी भोग्यभूमि तथा पवित्र-चरित्र-देव-कृपाके आवास दिव्य स्वर्गकी कामनावाले मनुष्य यज्ञके हाता यज्ञपुरुषकी अराधना करते हैं । उसी स्वर्गकी प्राप्तिके लिये पुराणाभिपादित मार्गमें अग्रसर होनेवाले लोगतीर्थ-सेवन, भजन-पूजन करते हैं, तथा उपनिषदोंमें अदाशीज-मनुष्य तत्त्वज्ञानका साधन करते हैं । श्रीमांसाके अनुयायी वेद-प्रतिपादित यज्ञकर्ममें तत्परताको ही उपासना मानते हैं । इन सब धर्मशास्त्रानुभोदित मार्गोंपर चलनेवाले साधक विभिन्न शास्त्रोंका साधनाआँद्हारा जिस लोकको उन्नत समझ-प्राप्त करना चाहते हैं और साहित्यमूलसेवी चरम वर्ष्य कर जिसकी ओर एकटक देखते हैं—वह स्वर्ग क्या है? कहाँ है? कैमें पहचाना जाता है? और उसे प्राप्त होनेवाले मनुष्य वहाँ क्या सुख भोगते हैं? इन प्रश्नोंके उपर्युक्त उत्तर स्वाज्ञानेत समय महर्षि वेदव्यासरचित् महाभारतका उपर्युक्त श्लोक स्मरण हो आता है, जिसका तात्पर्य यह है कि स्वर्गप्राप्त पुरुष जिन सुखका उपभोग करते हैं, उसकी उपलब्धिप्रति पिता से ही होती है । पितृसेवी तीनों तापांसे छूट जाता है । तपके प्रभावसे जो कुछ प्राप्त होता है, पितृभक्तको वह भी अनायास निक्त जाता है । पिता को मनुष्य राजनेवाले पुरुषमें समस्त देवता भी सम्मुण्ड रहते हैं । इष्टान्तके लिये रामायणका नाम जिया जा सकता है जिसे इम विशुद्ध पितृभक्तिका आदर्श ग्रन्थ समझते हैं । इस ग्रन्थके नामकरणमें भी पितृभक्तिका भाव व्यन्नित है । राम × अय्य—रामायण अर्थात् परमपितृभक्त श्रीरामका स्थान; तात्पर्य यह है कि वह ग्रन्थ जिसमें आदर्श पितृभक्त श्रीरामके चरित्रका निवेश हुआ हो ।

अतः उपर्युक्त वारों प्रश्नोंके उत्तर इसप्रकार दिये जा सकते हैं— (१) पिता से स्वर्गं भिन्न नहीं है अर्थात् पिता ही स्वर्ग है । (२) वह पिता हमारे समीप रहते हैं । (३) हमारे हस्तगत वस्तुकी तरह वे हमारे अधीन रहते

हैं । (४) उनके सन्तोषसे प्राबोधित भ्रसन हो सुखकी बृद्धि करते हैं ।

आविकविने पितृभक्तिका स्वरूप-निवर्णन करते के पूर्व पितृशक्तों यथेष्टरूपसे दिलचारा है । यथा—पुत्रप्राप्तिके लिये राजा दशरथकी विनता, श्रीविष्णुजीके परामर्शसे पुत्रेष्टिका समारम्भ, अग्नशक्तों कुलानेके लिये सुमन्तका उपदेश तथा ऋषिका प्रागमन और यज्ञारम्भ प्रभृति विभिन्न सन्दर्भोंका उद्घान्तन किया गया है । महाराज दशरथके पुत्र प्राप्त होनेके पश्चात् ऋषिवर्ष विश्वामित्रने अयोध्या पवार कर प्रबल पराक्रमी विविध मायाविशारद मारीच, तारका, सुवाहु आदि दुर्दान्त राजसोंके विनाशार्थ महाराजसे उनके पञ्चदश वर्षीय उत्र श्रीरामको माँगा । इच्छा न होने पर भी महागजने श्रीरामको विश्वामित्रके मख-रक्षार्थ अरथगमनके लिये आज्ञा दे दी और श्रीरामने भी राजकुमारोंचित् सुख-सद्भोग-स्पृहाकी उपेक्षाकर अद्वा और भक्तिपूर्वक विश्वामित्रका अनुगमन किया । यहाँ विकार करनेपर यह सहज ही जाना जा सकता है कि श्रीरामको राज्यसुखसे अरथगमन अधिक सुखकर था । कहाँ तो श्रीरामका युद्धकलानभिज्ञ पञ्चदशवर्षीय सुखमार बालक कहा जाना और कहाँ उनका ही हुदान्त भयंकर राजसोंसे निविद् अरथमें अकेले युद्धके लिये भेजा जाना । कैसा भयङ्कर व्यापार है? परन्तु वस्तुतः श्रीराम कलानभिज्ञ न थे क्योंकि उनके लौकिक ज्ञान तथा दिवोष अभिज्ञताका कवितर वालमीकिजीने सूत्र वर्णन किया है । पितृ-आदेशके प्रति ऐसी अद्वाका कारण, उनके सुकोमल अन्तःकरणमें पितृभक्तिका जो अकुरोद्धम हो रहा था, निःसंशय वही था ।

श्रीराम निःसन्देह यह समझते थे कि पिता हमारे परम देव हैं उनकी आज्ञा पालन करनेसे हमें अवश्य ही सब प्रकारसे सुख-सौभाग्य तथा समुन्नतिकी प्राप्ति होगी । उनके हृदयमें ऐसा विश्वास होनेपर उसमें भक्तिलताका संवर्धन भी सहज ही होने लगा, जिसके फलस्वरूप हुदान्त राजसोंका वध, विश्वामित्रकी मख-रक्षा, शस्त्राद्ध-प्राप्ति, अनेक विषयोंमें अभिज्ञता, अहस्योदार, शिवधनुर्भग, विशुद्धा कीर्ति-रूपिणी जानकी देवीका वाभ तथा परशुराम-गर्व-हरण आदि अनेक आश्रयजनक कार्य सम्पन्न हुए । अतः

विदि पिण्ड-भक्तिकी पराकाङ्क्षा से उनका हृष्ण परिप्रावित न होता तो वे विशामिक्रके महसुकी समाप्तिपर अपना काय' समाप्त हुआ समझ अविज्ञी आज्ञा प्राप्तकर अधोध्या छौट सकते थे किंतु ऐसा होनेसे पूर्वोक्त अभीष्ट-प्रग्नपराकी प्राप्ति कैसे होती ? इसपर विचार करनेसे ज्ञात हो जाता है कि वेद-व्यासकृत उपर्युक्त पिण्डप्रशस्तिमें तत्त्विक भी अस्तुकि नहीं है। विदि कहीं कलमें व्यतिक्रम दीख पहे तो समझना आहिये कि वहीं पिण्डभक्तिमें आत्म-पिण्डित नहीं है, अन्यथा आदिकवि अपने ग्रन्थमें लिखिके अस्त्रयह कलमोगका निर्देश ही नहीं करते ।

राजा दशरथने जर्जरित देह तथा वार्द्धक्यके कारण राज्यभारको अपने कन्धेसे उत्तरकर सर्वाग्रह-मुक्त उद्योग पुत्र श्रीरामको जब युवराज बनानेका निश्चय किया और अधोध्या के नागरिकों और राजनीतिज्ञोंने भी जब इसके लिये आग्रह किया, तब विशामिकी मन्त्राने कैदेवीको राजा दशरथसे थोकठिन बर माँगनेके लिये उत्तराया । कलतः कैदेवीने एक बरसे श्रीरामके लिये औदृढ बरं बनवास माँग और दूसरेसे भरतको यौवराज्य देनेके लिये राजासे कहा । सम्पन्निष्ठ परम धार्मिक महाराज दशरथ अपनी पूर्व प्रतिक्राक्षका स्मरणकर कैदेवीके इन वज्रतुल्य वरनोंको सुन उत्तम हो गये । तब 'मौनं न्यग्निलद्वग्नम्' के अनुसार राजीने उनके प्राक्ष-प्रतिम रामको बनवास जानेका आदेश किया । सूर्यवंशके इस ओर विष्वदके विषयमें रामायण-चयिताके अभिभावकी विवेचना करनेपर यह स्पष्ट हो जाता है कि रामायणमें पिण्डभक्तिका आदर्श विलानेके हेतुसे ही अन्यकर्ताने इस प्रसङ्गका उल्लेख किया है । एक और श्रीराम नवयुवक राजकुमार हैं जिनकी राज्यवालाज्ञासा, विवास-बैंगवादि-सुख-संभोगस्थृदा तथा उत्तरासियोंके स्वेह-मग्नमात्रादि अभीष्ट योग सर्वदा अभिव्यक्तीय हैं और उच्चर वादांक्यमें जर्जरित झांवशासापन राजा दशरथका कठोर बनगमनादेश—वह भी एक दो विनके लिये नहीं, सुर्वीषं औदृढ वर्णोंके लिये उटा-बल्कुल-भूषित बनवारी-वैष्णवारण्य कर परिग्रहय करना, किन्तु विरोधस्थक है ! साधारण्य पुरुष तो यह मुनकर ही विस्पाव हो जायगा, इसमें कुछ भी अस्तुकि नहीं । परन्तु आक्षर्य तो यह है कि श्रीराम स्वरूपस्त्रक होते हुए भी धीर, स्थिर तथा प्रसन्न विस्तरे दस आज्ञाके पालन करनेमें उत्तर होते हैं । वहीं पाठ्योंको श्रीरामकी पवित्र अस्त्रानोहिका दृष्टिहार प्रयाज करना सुर्यंगत होगा—

अनाजाप्तेऽपि कुरुते पितुः कार्यं स उत्तमः ।

उक्तः करोति यः पुत्रः स मध्यम उदाहृतः ॥

उक्तोपि कुरुते नैव स पुत्रो मल उत्थते ॥

'आज्ञा के विना (केवल आश्रय समझकर ही) विताका कार्य सम्पादन करनेवाला पुत्र उत्तम है । आज्ञा पानेपर जो पिताका कार्य करता है वह मध्यम पुत्र है और जो आज्ञा पानेपर भी उत्तरका वाक्य नहीं करता वह तो मध्यस्थरूप है ।' ऐसा कहकर उसे चरितार्थ कर देनेमें श्रीरामके गम्भीर अन्तःकरणका सुन्दर परिचय मिलता है । मांसास्थियुक्त शरीरवारी कौन ऐसा पुलव है जो यों कर सके विदि कोई शहा करे कि श्रीराम और वह ही तथा सकते हैं ? तो उत्तर यह है कि सामान्य राज्यके लिये और व-पायदृष्ट जड़ गये । हेमनीष रमणी-सम्पर्कसे प्रवचन पराकान्त औरेन्द्र शुभ-निशुभमें आतुरिष्ट उत्तम हो गया । ऐसे ही लिखने विद्वानान्त प्रञ्जलित हुए, जिनसे इस संसारके लिखने वाला तथा ब्रह्मराशि-समन्वित साक्षात्त्व भस्मसात् हो गये । भिन्नसे लेकर बाह्यात्मक प्रत्येक प्राणी अपने स्वार्थके लिये क्या नहीं करता ? प्रतिदिन उसी अनिष्ट-सन्नायसे क्या आर्णावदीं सन्तासु नहीं हैं ? रहे हैं ? फिर भी नवे-नवे सुख-सम्भोगकी प्राप्तिके लिये लग जाते हैं, यह तो प्राणीमात्रका स्वभाव है इस विषयमें अब अधिक विस्तार असुक है ।

अब हम लेखके प्रहृत विषयको देखा जाय सो पता चलता है कि विताके आदेशको द्वयनस-मस्तक ही ग्रहण कर, प्राणप्रियसमा जानकी और प्राणप्रिय वस्त्रमध्यके साथ पिण्ड भक्ताप्रयाणी नववयस्त्रक श्रीरामने औदृढ वर्षोंतक उत्तरवायें तापस दृष्टिसे काढातिपात किया । इनना ही नहीं, महाराज दशरथके देहान्तके उपरान्त भरतके आग्रह करनेपर भी पिण्ड-आदेश उत्तरवायन करनेकी करणना उनके मनमें रुपज्ञमें भी उद्दित नहीं हुई । हावह-राज गुहने जब अपने राज्यमें कसनेके लिये श्रीरामसे अनुरोध किया था तब वहीं भी राज्याद्यवरके साप छाक्कांप करना विताके अभिव्यक्तके विस्तर समझ उठानेमें उसे अस्वीकार किया । द्वयकारवदमें जय शूर्पवाला, व्यर-दृपद्य तथा विशिशादि राज्योंके ओर अस्त्रावाहसे पीड़ित हुए । तब भी 'पिण्ड-आदेश-का पालन करना कष्टकर है' पह उनके मनमें नहीं आया । सतीरिशोभकि प्राणप्रिया आवर्कोंके अपहरण होनेपर भी पिण्ड-आदेशके पालनके नियमोंमें रक्षमात्र भी कमी

नहीं हुई। यह पितृ-मकि धन्य है! कौन कह सकता है कि ऐसी पितृ-मकि सफला नहीं होती?

पिताके जीवित रहनेपर उनकी आज्ञाका पालन करनेवाले बहुत मिलेंगे, पर पिताके मर जानेपर भी उनकी आज्ञापर हस्प्रकार छड़े रहनेका उदाहरण श्रीरामके सिवा अन्यथा नहीं मिलता!

धर्मादर्श वीरेन्द्रचूकामणि श्रीरामने छहकार्यके अन्तमें अपनी प्राण-प्रिया सीताके अपहार-अभित दोषके परिहारके लिये अभिपरीक्षा करायी। पर अभिपरीक्षाके अनन्तर भी उनके मनमें सीताका निर्दोष होना नहीं जैसा, तब उनके पिता श्रीदशरथने स्वर्गदोक्षसे आदेश किया - 'जानकी सती-शिरोमणि है इसमें सन्देह नहीं'। श्रीरामने पिताको इस आकाशवासीको सुनते ही अपना कामाङ्क सीताके लिये समर्पित कर दिया।

चतुर्दशवर्ष-चन्द्रासके बाद अपनीप्रया लौटकर राजग्रहण और प्रजापालन प्रभृति कार्य भी श्रीरामके जीवनमें पितृ-आदेशके द्वारा ही हुए थे। इसप्रकार भगवान् श्रीरामका सम्पूर्ण जीवन पितृ-आदेशसे ओतप्रोत था!

जगतमें दृश्यमान देव-देवीगण जो देवादयोंमें विराजमान हो रहे हैं वे सब स्थूलतः अन्तःप्राण हैं, उनकी प्रतिदिन-की पूजा-अर्चना हमलोगोंके अर्चीन है। अदृश्यमान—स्व-स्व-आमस्थित देव-देवीगण मानव-चतुर्के अगोचर हैं। काशनिक झालाटहि-गोचर देव-देवियोंके अभीष्टप्रद होनेसे भी उन लोगोंसे इम लोगोंकी अभिलापा-सिद्धि अति दूर है। परन्तु पितृवेद इन सबोंमें अंषु है, इसमें कुछ भी अस्युक्त नहीं। इससे अपराध होनेपर भी वे हमें शाप नहीं देते। आराधना नहीं करनेपर भी वे असन्तुष्ट नहीं होते अस्तित्वे सदा-सर्वदा पुत्रके उत्तरिके लिये सचेष्ट रहते हैं। अतः ऐसे पितृवेदकी उपासना इस जगतमें मानवमात्रको अवश्य करनी चाहिये। इसप्रकार हमें पितृ-आराधनामें तत्पर कर उत्तरित्यमें पहुँचानेके लिये आदिकविने रामायण नामक वेदोपम अन्यथा रचना करके हमारे अभिकन्दनीय स्थानको प्राप्त किया है। इस विषयको अधिक इतीभूत करनेके लिये इस प्रबन्धके शीर्षकके नीचे लिखे हुए 'पिताहि परमः सर्वः' इत्यादिकी पुनरायुत्पत्तिकर इस लेखको समाप्त करते हैं।

## श्रीराम-नाम

( लेखक-महात्मा गांधीजी )

**R**मनामके प्रतापसे पथर तैरने लगे। रामनामके घरसे बावर-सेनाने रावणके छक्के लुढ़ा दिये। रामनामके सहारे हनुमानने पथंत बड़ा लिया और रावसोंके घर अनेक बर्य रहनेपर भी सीता अपने सतीत्वको बचा सकी। अरतने जौदाह साक्षतक प्राण धारण कर रखे, क्योंकि उनके करणसे सिवा रामनामके दूसरा कोई शब्द नहीं निकलता था। इसीलिये तुलसीदासजीने कहा है कि कलिकालका मल भी डाढ़नेके लिये रामनाम बर्थे।

इसप्रकार भाष्टु और संस्कृत दोनों प्रकारके मनुष्य रामनाम खेळ पवित्र होते हैं। परन्तु पावन होनेके लिये रामनाम हृदयसे लेना चाहिये। जीम और हृदयको पुकारसे करके रामनाम लेना चाहिये।

×                    ×                    ×

रामनामके गीत गानेके लिये यदि कोई मुझसे कहे तो मैं सारी रात गाया कहूँ। सो यदि आप अपनेको दुखी और पतित मानते हों-और हम सब पतित हैं-तो सुरह, शाम और सोते समय रामनामका रटन करो और पवित्र होओ।

×                    ×                    ×

मैं इपने उन पाठकोंके सामने भी इसे पेश करता हूँ जिनकी दृष्टि खुँ धब्दी न हुई हो और जिनकी अदा बहुत विद्वता प्राप्त करनेसे मन्द न हो गयी हो। विद्वता इसे जीवनकी अनेक अवस्थाओंसे पार ले जाती है, पर संकट और प्रलोभनके समय वह हमारा साथ बिलकुल नहीं देती। उस हालतमें अकेली अदा ही उचारती है। रामनाम उन लोगोंके लिये नहीं है जो ईश्वरको हर तरहसे फुसबाना चाहते हैं और इमेशा अपनी रक्षाकी आशा उससे लगावे रहते हैं। वह उन लोगोंके लिये है जो ईश्वरसे डरकर उत्तरते हैं और जो संयमर्थक जीवन विताना चाहते हैं पर अपनी निर्बलताके कारण उसका पालन कर नहीं पाते।

×                    ×                    ×

इसलिये पाठक खूब समझ लें कि रामनाम हृदयका बोत है। जहां वाचा और मनमें पुकार नहीं, वहां वाचा

केवल सिव्यात्म है, दूसरा है, शब्दजाल है। ऐसे उच्चारणसे चाहे संसार मध्ये भोखा खा जाय, पर वह अन्तर्यामी राम कहीं भोखा खा सकता है? सीताजी की हुई मालाके मनके इनूमान्नसे फोड़ डाले कर्योंकि वे देखना चाहते थे कि अन्दर रामनाम है या नहीं? अपनेको समझदार समझनेवाले सुभटोंने उनसे पूछा—‘सीताजीकी मणिमालाका ऐसा अनादर?’ इनूमान्ने जवाब दिया—‘यदि उसके अन्दर रामनाम न होगा तो सीताजीका दिया होनेपर भी वह

हार भेरे किये भारभूत होगा।’ तब उन समझदार सुभटोंने मुँह बनाकर पूछा—‘तो क्या तुम्हारे भीतर रामनाम है?’ हनूमान्नने कुरीसे तुरन्त अपना हृदय छीरफर दिखाया और कहा—‘देखो अन्दर रामनामके सिवा अगर और कुछ हो सो कहना।’ सुभट अजिस दुए, इनूमान्नपर पुष्पबूटि हुई और उस विनसे रामकथाके समय हनूमान्नका आवाहन आरम्भ हुआ।

( नवजीवनके पुराने अंकोमें गंकलित )

## श्रीरामकथामें एक अद्भुत पाठान्तर

( लेखक—श्रीयुत जी० एन० बोधनकर एम० ए०, एल-एल० ब०० )



यः सभी प्राच्य विद्या विशारदोंका भूत है  
कि हिन्दुओंके महाभारत, रामायण इत्यादि  
पुरातन धर्मोंके जो पाठ इस समय  
विद्यमान हैं वे ज्योंके न्यों मूलग्रन्थके  
वयायं पाठ नहीं हैं, उनमें बहुत कुछ  
उल्टटोर हुआ है। रामकथाकी भी यहीं  
नहीं अद्वयस्था है। गोरेसियोका वंगलिपिकद्

पाठ, माझमैन, र्क्षागेल और वर्जिन  
वाइबेरी ( जिसके दो संस्करण भारतमें हो सुके हैं ) के  
संस्कृतपाठ—सभीमें कुछ-न-कुछ पाठभेद अद्वय पाया  
जाता है। इसी प्रकार बम्बईमें प्रकाशित वाल्मीकीय  
रामायणके आधारपर ‘ग्रिफिय’ का पाठमय अंगरेजी अनुवाद  
तथा गोरेसियोकी प्रतिसे ‘हिंपेसिदि. फांश’ का फ्रेंच  
स्वान्तर भी पाठभेदमें सुक्ष नहीं है। वाल्मीकि-  
रामायण, अध्यात्मरामायण और तुलसीके रामचरित-  
मानसमें भी कथा-भेदतक पाया जाता है। कुछ दिन हुए  
विष्वसन साहबने किसी कारमीरी लेखकके एक ग्रन्थकी  
कोलकी थी, जिसमें किया था कि श्रीसीताजी मन्दोदरीकी  
छीरफर कल्पा भी और मालाके परिष्याग भरनेपर जनकने  
उन्हें पाला-रोया था। बंगलाके अद्भुत रामायणमें भी यह  
कथा इसी प्रकार वर्णित है। पर सर्ववाचारणामें सीताजीके  
भूमिसे उत्पन्न होनेकी गाथा ही प्रचलित है। इसी प्रकार  
और भी विभिन्न प्रान्तोंमें अनेक कथा-भेद जिनमें ग्रन्थोंमें  
प्राप्त होते हैं, वहीं उन सबके विवरककी आवश्यकता नहीं;  
वहीं सो केवल रामकथाका एक अद्भुत पाठान्तर उपस्थित  
कथा ही इमारा उद्देश है।

‘कोकापवादके भयसे सीताजीका परिवार करनेके  
बाद श्रीरामचन्द्रजीने उन्हें पुनः स्वीकार नहीं किया।  
बाल्मीकि मुनिके आश्रमसे जौटेनेपर श्रीराम-मध्यमें सबके  
सामने अपने नित्यधर्मको दिखलाकर मानाजीके निजधार्म  
प्रयास करनेपर श्रीरामचन्द्रजीने साना-विरहित विराग-  
वृत्तिसे अवशेष जीवन स्पर्तीत किया।’ यहां कथा सर्वं  
प्रचलित है। पर महाकवि भवभूतिने अपने ‘उत्तररामचरित’  
नाटकके ‘सम्मेलनाहु’ में श्रीसीताजी और श्रीरामजीका  
उन्मिलन वर्णन किया है।

यहां स्वद्वय ही यह प्रश्न उठता है कि ऐसे विद्वान नथा  
महाकविने श्रीरामकथामें हत्तना यदा परिवर्तन क्यों और किस  
आधारपर किया? क्या हम इसे कविकी निरी किरंकुशता  
कहेंगे अथवा नाटकको मुख्यान्म बनानेके किये उनका ऐसा  
करना उपयुक्त था? कुछ विद्वानोंका भूत है कि संस्कृत-  
नाटकशास्त्रके विषमोंके अनुसार शोक-पर्यंतमार्यी नाटकोंकी  
रचना एक काम्य-दोष नमका जाना है। कविता इसी  
दोषके परिवारके तिथे अवभूतिने अपने नाटकमें ‘सम्मेलनाहु’  
की आयोजना की है। यह कल्पना सम्पूर्ण हो सकती है  
क्योंकि संस्कृत साहित्यमें भासकविके नामपर प्रसिद्ध  
‘त्रिवेन्द्रम् सिरीजः’ के एक शोकान्म नाटकके भूलिका और  
किमी शोकान्म नाटकका उल्लंघन नहीं मिलता। पर अब  
पना चला है कि हम बहुभूत, विद्वान् और कविभेषजने जो  
यह महसूपूर्ण कथान्तर उपस्थित किया है उसका आधार  
प्रसिद्ध ग्रन्थ ‘बृहस्पत्य’ है। दा० बूहरे ( Buhler )  
मतानुसार इसकी रचना ईसाकी प्रथम वा द्वितीय

शताविंशमें हुई थी। लेमेन्ड दासव्यास, सोमभृत तथा अन्यान्य कवियोंके कथनानुसार वह ग्रन्थ वैशाखी भाषामें लिखा गया था। वाणभट्ट, सुबन्धु, दशर्थी प्रभृति महाकवियोंके उल्लेखसे पता चलता है कि वह ग्रन्थ ईसाकी पाँचवीं या छठी शताविंशतक प्रचलित था। इस ग्रन्थके छायास्वरूप तीन अन्य संस्कृत-भाषामें और एक ग्रन्थ तामिळमें आज भी विद्यमान हैं। संस्कृत-ग्रन्थोंमें कारभीरका 'वृहत्कथा-स्कोक-संग्रह' सबसे पुराना है। प्रसिद्ध विहान M. Lacote ने इसका सम्पादन किया है। दूसरा ग्रन्थ लेमेन्डव्यास व्यासकृत 'वृहत्कथामञ्जरी' है, जिसकी रचना १०३० ई० के लगभग हुई। और तीसरा ग्रन्थ कारभीरी कविश्रेष्ठ सोमदेवभक्त 'कथासरित्सागर' नामक वृहत्कथा है जो १०७० ई० के लगभग ग्रन्थीत हुआ माना जाता है। यथापि अन्तिम दोनों, लेमेन्ड और सोमदेव समकालीन ही थे तथापि उन्होंने अपने-अपने ग्रन्थ स्वतन्त्र रीतिसे ही रचे हैं। 'वृहत्कथामञ्जरी' एक छोटी पुस्तक है, परन्तु 'कथासरित्सागर' तो एक विशाल ग्रन्थ है। इन सब ग्रन्थोंमें 'कथासरित्सागर' विशेष उल्लेखनीय है, क्योंकि स्वयं ग्रन्थकालीन कहा है—

ग-ग-म- तर्मित्वान् न प्रनाम्यनिकम् ।  
अन्यान्यमन्तस्तुपमात्रं भाषा च विद्यते ॥  
(कथा० स० स० ११११०)

इसमें महज ही अनुमान किया जा सकता है कि 'कथासरित्सागर' में वर्णित कथाएँ उर्यों-की-स्त्रीों पहले 'वृहत्कथा' में रही होंगी। और साथ ही यह भी सिद्ध होता है कि महाकवि भवभृति, जो ईसाकी ३ वीं और ८ वीं शताव्यासके सन्धिकालमें उपस्थित थे, 'वृहत्कथा' से पूर्णतया परिचित थे।

अब इम उत्तरामवरितके 'सम्मेलनाङ्क' के आधारका निवारण करते हैं। कथासरित्सागरके 'अलङ्कारवती लम्बकमें' 'काल्पनप्रभा' नामी विशाधरी अपनी कल्पा अलङ्कारवतीके विरहानन्दसे सन्तुष्ट अपने भावी आमता नववाहनकी सान्वदना करती हुई श्रीरामकथाका वर्णन करती है। इसी कथामें सीताराम-संयोगका विवरण प्राप्त होता है, साथ ही कुछ और अनोखी बातें हैं जो सर्वसाधारणको झात नहीं। अतः उस कथाका मूल इम पाठकोंकी सेवामें उपस्थित करते

हैं। एक दिन अपनी नगरीमें गुसबेशमें घूमते हुए प्रसु श्रीरामने देखा कि, एक पुकार—

हस्ते गृहीत्वा गृहिणी निरस्यन्ते निजात गृहात् ।  
परस्येयं गृहमगात् इति दोषानुकीर्तनात् ॥

—‘अपनी जीको हाथसे पकड़कर अपने घरसे निकाल रहा है और यह बोप दे रहा है कि तू दूसरे के घर गयी थी।’ इसपर वह भी कहती है—

रक्षा गृहेष्ठिता सीता रामदेवेन नर्तन्ता ।  
अयमभ्यविक्षेपो मामुज्ज्ञित ज्ञातिवेदमगान् ॥

‘प्रत्यक्ष शशु और तिसपर भी तमोगुणके अवलार राजसेश्वरके घर रहनेपर भी सीता निर्दोषा रही और सुझे बन्धुके गृह जानेपर भी इतना लाल्पित किया जाता है।’ इसे देखकर श्रीरामचन्द्रजी विचारते हैं—‘कहाँ एक साधारण पुरुष-की जीके सर्वथा उपेक्षणीय सामान्य अपराधके लिये दराढ़—गृहनिवासन और कहाँ प्रजाके आदर्शभूत, मर्यादापुरुषोत्तम कहलानेवाले राजपिं रामचन्द्रका सीतापर ऐसा उत्कट प्रेम ! श्रीरामचन्द्रका आदर्श इतना गिरा हुआ है ? ऐसा कदायि नहीं हो सकता !’ यह विचारकर लोकापवादके भयसे प्रभुने अपनी प्राणप्रियाका परित्याग कर दाला और जनक-नन्दिनी वाल्मीकिके आश्रमकी ओर आश्रय पानेके लिये अग्रसर हुई। सीता दुर्देवके फेरमें पही हुई थी। जो ज्ञापि-मुनि श्रीसीता-रामके गुण-वर्णनमें जीवनकी सफलता मानते थे, वही जोग उस सतीके सतीत्वपर शङ्का करने लगे—

नून मीता सदोषेवं त्वका भर्त्तियथा कथम् ।

‘अवश्य ही यह सीता सदोषा है नहीं तो इसके पास इसे क्यों त्वागते ?’ हा ! विधि-विवान कैसा विकल्पण है ! आज ज्ञापिगण सीताको पापमूर्ति समझकर ठहरने वही देते हैं और कहते हैं ‘दिनोंवं किंविदाश्रमम्’ अर्थात् किसी दूसरे आश्रमको चली जाओ ! आह ! इसमें अधिक दुःखवादी बात और कथा हो सकती है ? परन्तु सहस्ररिम सूर्यको अन्धकारका भय कैसे हो सकता है ? सीता निर्भय होकर कहती है—

भगवन्ते यथा वित्य तथा शोधयते ह माम् ।

अशुद्धाया शिरद्वेष निग्रहः क्रियतां मम ॥

‘भगवन् ! आप जोगोंको मेरे विषयमें जो सन्देह है उसकी जाँच कर लें, बदि मैं अशुद्धा होऊँ तो दण्डस्वरूप

मेरा सिर काट लाला जाय ।' अधिवर्योंने सरीकी सत्य-परीक्षा करना निश्चित किया और कहा—

अस्त्यत्र टिहिमसरो नाम तीर्थं महावने ।  
टिहिमी हि पुरा कावि भ्रांत्यासङ्गशक्तिना ॥  
मिथ्यैव दूषिता साध्वी चक्रनदाशरणासुवन् ।  
लोकपालांश्च तैस्तस्या शुद्धयथं तद्विनिर्मितम् ॥  
ततैषा राघववधूः परिशुद्धि करोतु नः ।

'इस महावनमें टिहिम-सर नामका पुरीत सरोवर है। प्राचीन काव्यमें एक टिहिमीके पतिने अन्यासङ्ग होनेकी शाक्षात्त्वे भूते ही उस साध्वीको दूषित छहराया था। इसपर वह टिहिमी अस्तित्व भूमध्यदलमें शरण पानेके लिये चिह्नाती किरी, अन्तमें लोकपालोंने उसकी शुद्धिके लिये इस सरोवरका निर्माण किया। उसी सरके किनारे इस राघव-पश्चिमीको परिशुद्धि भी की जाय।' फिर क्या या? अगन्तामा श्रीसीताजी तकाल उस सरोवरके तट पहुँचो और इसप्रकार श्रिमुखनको धरनेवाला शपथोक्ता किया—

यथार्थुवादन्यत्र न स्वंग्रहित मना मम ।  
तदुत्तरं सरस षारमन्द बसुन्वेद ॥

'यदि मेरा मन आर्युद्र श्रीरामसे अन्यत्र स्वर्णमें भी न गया हो तो हे भासा बहुन्वरे! इस सरोवरको मैं पार कर आऊँ।' इतना कहना या कि श्रीसीताजी उस अगाध सरको खींबासे पार कर गयीं।

इस दिव्य दरयका अधिवरोंके ऊपर अद्भुत प्रभाव पड़ा। उनका सन्देह समृद्ध नहीं हो गया। और तत्प्राद-  
तत्सां ते महासाध्वीं प्रणम्भुमन्योऽर्जितः ।  
राघवं शप्तुमेन्द्रंश्च तत्पर्यग्याम मन्युना ॥

—'वे अस्तित्व मुनि उस महासाध्वी श्रीसीताजीको प्रभाव करने जारे और कोहित हों सीताको परिस्थापन करनेके कारण साकान् श्रीरामको शाप देनेके लिये उपर हो गये।' बात उचित थी। लोकपालाद्-भूमध्ये ही क्षणों न हो, पूर्व लिप्याया सरीके साथ व्यथं बुझ करनेवाले रामचन्द्रको भी इच्छ नहीं न दिया जाय? पर वह ठीक नहीं। जिसके पुरुष-प्रभावमें और सर्वात्मकी अमोघ शक्तिके बहात स्वार्य संस्कृतिकी यताका आज सारे संसारमें फैहरा रही है और भविष्यमें भी फैहराती रहेगी वह आर्य-जी पातिव्रतसे कषापि विवक्षित नहीं हो सकती, वह सदा 'पतिहितेरता' और सबीं पति-वा वाक्यकी बनी रहेगी। उनका सर्वीत्य ही उनके पतिव्रत सदा रक्षा है। अर्थात् महिलाओंका

यह विरोध गुहा है। तापर्य यह कि श्रीसीताजीने अधिवृन्दको शापोचत अवस्थासे विरत करते हुए कहा—

युष्मामिरायर्पुत्रस्य न ध्यातव्यमवगलम् ।'

'आप ज्ञानोंके लिये आर्युपुत्रके अमङ्गलका ध्यान करना भी उचित नहीं, फिर शाप देना तो और भी अनुचित है।' सरीके पतिव्रतमांका यह सर्वोच्च आदर्श अवस्था ही आदरशील है। उन्होंने अधिवरोंसे स्पष्ट कहा—'शातुमर्द्ध मामेष' अर्थात् 'शाप देना हो तो आप सुन्दे शाप दें।' आर्य-जीके मुख-कमलसे ये शब्द कैसी शोभा दे रहे हैं? दोष सर्वथा रामचन्द्रजीका हैं और प्रायश्चित्त सर्वी सीता अपने माथे ले रही हैं! सच है, ब्रह्मको सिरावान देनेवाले ब्रह्म और भवानीश्वा पुरुषोत्तम श्रीरामकी पक्षी ऐसा न करे तो और कौन की करेगी?

असु, कुछ दिन बीतनेपर सीताजीके लव नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। एक दिन सीताजी उसे खेकर जान करने लगी गयीं। उनको अनुपश्चित्तमें ही बालमीकीजी आधममें लौटे और जबको हिंदोलमें न पा बडे चिन्तित हुए। उन्हें भय हुआ कि कोई हिंन पशु बालकको उठा लेनहीं ले गया। सीताके भयसे तकाल ही अधिवे तपोवस्थासे उत्पादित एक बालकको रखना हां और उस कुश-बालकको हिंदोलमें सुखा दिया। इसप्रकार सीताजीके लव और कुश ही पुत्र हो गये।

एक दिन इन सीताकुमारोंने—

अर्चार्तिंग च बालमिकेश्वरः क्रीडनीयकम् ॥

'बालमीकि मुनिके अर्चनीय शिवलिङ्गोंको क्रीडाका सामग्री बना डाला।' उनके इस दोषके परिहारके लिये मुनिने परम दुर्बृत प्रायश्चित्त सुनाया—

सत्वा नुरामसस् स्वर्णपश्चान्यानय नवः ।

तदुद्यानाश्च मन्दारपुर्णप्राणानयतु द्रुतम् ॥

मैस्ती भ्रामांदेन्त् निर्गमचंद्रतामुभाः ।

'कुवेश्वर जा कर लव स्वर्णपश्चोंको और उसी उपरान्ते मन्दार उपर्योंको लावें और दोनों भाई शिवलिङ्गकी दूजा करें।' इसे मुनने ही बह बालक कुवेश्वर पहुँचा और बहीके रुप वशोंको मारकर स्वर्णपश्च तथा मन्दार पुर्ण बेकर लौटा, रास्तेमें पक्ष हृषके जीवे विज्ञाम करने करा, इतनेमें—

तत्रान्तरे च रामस्य नरमेवे सुरक्षणम् ।

निर्वन् पुरुषमागच्छत् तेन मर्मेण लक्षणः ॥

स लवं समराहूं मोहनालेण मोहितम् ।

क्षत्रघमेण देवा तं अयोध्यामानयत्पुरीम् ॥

‘श्रीरामके नरमेघके हेतु भुवन उच्चाकाशे कुश पुरुषोंको हृष्टे-हृष्टे और उच्चाकाशी उसी मार्गसे लौटे और लक्षके युद्धे लिये जाकरकर उसे मोहनालेण मोहित कर बाँध करके अयोध्यापुरी ले गये ।’ पाठक विचार कर सकते हैं कि इस समय सीताजी क्या देखा हुई होगी ? पर सबकल वास्त्रोक्तिकीने कुशको दिव्य शक्तियां देकर अयोध्या आकर लक्षको कुश कानेकी आज्ञा दी । कुशने तुरन्त अयोध्याके लिये प्रस्ताव किया और वहाँ आकर—

राघ्यमानामयोध्यायां यज्ञभूमि ग्रोव सः ।

अयोध्यामें घोर संग्राम हुआ । पर सीताजी-जैसी पतिव्रता-शिरोमणिको, लोकापवाद तथा धर्मके नामपर, निर्बासित कर देनेवाले राम और लक्ष्मण, साहात नारायणके अवतार भी उस जैसी महासतीके पुत्र और अपिवर वाल्मीकि के परमभक्त ग्रिनुवननिजयी वीर कुशके सामने कैसे डहर सकते थे ? तथामात्रमें कुशने उन विभुवन-कर्त्ता वीरवरोंको पराक्रम कर दिया । अन्तमें रामचन्द्रजीके पूछनेपर उन्होंने कहा—

कुशमतोऽप्रवीत् बद्ध्वा उद्देशेणाग्रजो भम ।

आनीत इह तस्याहं मोक्षार्थमिहागतः ॥

आवां लव-कुशीं रामतनयो ज्ञति जानकी ।

माता नां वक्ति चतुर्युक्त्वा तदृतान्तं शशांस सः ॥

जग्मय मेरे बडे भाईको बाँधकर यहाँ लाये हैं । मैं उनके कुशानेके लिये यहाँ आया हूँ । हमारी माता जानकीने बतलाया है कि इम दोनों लव-कुश श्रीरामके पुत्र हैं । इस दृतान्तको सुनकर श्रीरामका हृदय भर आया और उन्होंने उन बाल-बीरोंको एकइकट्ठा हृदयसे लगा किया—

अथ सीतां प्रशंसतु वीरोऽपदयत्सुतौ शिशृ ।

पैरेषु मिलितेष्व तौ रामोऽप्रहीत् सुतौ ॥

आनाथ्य सीतादेवां च वाल्मीकिरामात्ततः ।

तया सह सुखं तस्यै पुञ्चन्यस्तमरोऽथ सः ।

श्रीरामचन्द्रजीने सीताजी प्रशंसा करते हुए और उन दोनों अपने शिशु पुत्रोंको देखते हुए नगरनिवासियोंके साथ आवन्दसे उनको ग्रहण किया और वाल्मीकिजीके आधमसे

४८ मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामका नरमेष्य यह करना कदापि सम्भव नहीं माना जा सकता । सम्भव है, नरमेष्य माननेवाले लोगोंने अपनी कठपनासे देसी बातें किया ही हो । परन्तु इन बातोंपर कभी विश्वास करने योग्य नहीं ।

श्रीसीता देवीजो उच्चाकाश पुत्रोंके ऊपर राज्यभार छोड़कर वे तुरसे जीवन व्यतीत करने जाने ।

यही ‘कथासरित्सागर’ में कही हुई कथाका संचेष्टन्य है । अब पाठक सहज ही देख सकते हैं कि इस बर्णनमें और बोल-विभूत रामायणी कथामें कितना भेद है ? उपर्युक्त दिव्यभूत रामायणी कथामें जीवन राया जाता । रावद्व-वधके पश्चात् सीताजीके आग्नी-प्रवेशकी कथा सबको विदित है । पर सीताजीकी वह सरोकरप्रवेशकी बात एकदम अनेकी है । हाँ, सीताजीका नदी-प्रवाहके मारीको बदल देने या नूतन गंगाधाराको उत्पन्न करनेकी कथाएँ प्रवक्तित हैं परन्तु सत्य-परीक्षार्थ सीताजीका सदोचर—प्रवेश करना एक विलुप्त जयी बात है । वैसे इस कथामें, नरमेष्यका उल्लेख भी कम आश्रयजनक नहीं । श्रीरामके अवतरणेभकी बात तो प्रसिद्ध ही है पर श्रीरामके समय नरमेष्यकी रातसी प्रया प्रवक्तित थीं यह अत्यन्त ही असम्भव प्रतीत होता है । क्षी तीसरी बात, इस कथामें कुश-लक्ष्मणका अयोध्यामें युद्ध होता है । रामायणीय कथाके अनुसार यह युद्ध वाल्मीकिके आधमके सर्वीष हुआ था । कहीं-कहीं तो इस युद्धके वाल्मीकि-आधमके सर्वीष होने और कुश-लवके हारा श्रीराम-लक्ष्मणके पराजित होनेकी बात भिजती है । पश्चपुराणमें भी इस युद्धकी भूमि आधमके सर्वीष ही बतलायी गयी है । इस कथामें कुश अपने माता-पिताका नाम स्पष्ट कह देने हैं और वाल्मीकि तथा अज्ञाम-रामायणमें दोनों बालक अपनेको मुनिन-कुमार और वाल्मीकिजीके शिशृ कहते हैं और राम-सभामें राम-कथाका सुस्वर गान करते हैं । अपियोंका प्रभुको शाप देनेके लिये उद्यत होनेकी और लवके स्वर्णपद लानेकी कथा भी उल्लेखनीय है । एक और कथामें इसमें यह है कि जहाँ अन्य स्थलमें श्रीरामचन्द्रको सीता-सम्बन्धी अपवादकी कथा दूतोंहारा प्राप्त होती है वहाँ इस कथामें उसे श्रीराम गुप्तवेष्यमें अयोध्यामें धूमते हुए स्थयं सुनते हैं । इस कथामें सती सीताके एक ही पुत्र होनेका वर्णन है और रामायणमें लव-कुश दोनोंके जानकीजीके गर्भसे उत्पन्न होनेकी बात पायी जाती है । कुश-से कुशकी उपस्थिका वर्णन अज्ञाम-रामायणमें भी नहीं पाया जाता । तथापि यह कथा समस्त भारतमें प्रचलित है । इस कथामें

सीता-निर्वासनके पश्चात् सीता-रामका पुनः संयोग विजाया गया है। यह कथा रामायणीय कथासे विलक्ष विलक्ष है। बालमीकीय रामायणमें सीता-निर्वासनका उल्लेख तो मिलता है परं परं सीताराम-संयोगकी बात नहीं मिलती। और 'कथासरित्सागर'में स्पष्ट लिखा है—

तथा सह सुखं तस्यौ पुत्रन्यस्तभरोऽथ सः ।

सोमदेवके कथनानुसार यह अनुमान किया जाता है कि यह कथा देसी ही 'बृहकथा' में वर्णित होगी। यह सम्भव नहीं कि सोमदेव-जैसा बहुश्रुत और विहान-कवि रामायणीय कथा (सीता-निर्वासन और मुनि आधमसे बौटते ही श्रीसीताजीके निव धाम-नामन) से अपरिचित हो और साथ ही यह भी सम्भव नहीं कि उन्होंने 'सरित्सागर' के आधारभूत बृहकथामें वर्णित राम-कथाके विपरीत ऐसा फेरफार किया हो। अतः सोमदेवके कथनानुसार ही बृहकथामें श्रीसीता-राम-संयोग अवश्य ही वर्णित रहा होगा। साथ ही यह भी निस्सन्देह है कि भवभूति इस प्रसिद्ध महान् ग्रन्थमें अवश्य परिचित है। दरडी, बाण-मुखन्तु प्रभृति कविवरोंके कथनानुसार इसकी कठी शताविदमें यह ग्रन्थ प्रचलित था, अतः भवभूतिका इसमें परिचित होना नितान्त सम्भव है। प्रोफेसर लेडीका भी यह मन है कि भवभूतिने मालतीमाथवका कथानक बृहकथाकी उस मूल कथासे लिया था जिसके आधारपर ही सोमदेवने कथासरित्सागरमें भवितव्यतीकी कथा लिखी थी।

M. Lacote हारा प्रकाशित 'बृहकथा-स्तोक संग्रह' की विषयसूचीमें उपर्युक्त रामकथाका वर्णन नहीं है, परं सेमेन्ट्रकी 'बृहकथा-मञ्चरी' में रामकथा अति संख्यमें वर्णित है तथा यह स्तोक भी उसमें पाये जाने हैं—

## दोनों लोकोंका पन्थ

बैद्नको भेद बैद्यथासने ब्रह्मान्दों सोई,  
सरल मुद्रोथ भाषावद्ध करि गायी है।  
रामायन बालमीकि आदि गुम ग्रन्थन के।  
भाव भरि कीन्हों सार-संग्रह सुहायी है॥  
पान करि पावन सुजान-अनजान, ऐसों  
बानीमय पावन गिरूप बरसायी है।  
दास नुल्लमीने प्रथ मानसके व्याज मानो,  
पंथ दुहुँ लोकनको पाघरो बनायी है॥

—अनुनादास केदिया।

टिटिमोऽनिधितो जायां दृष्टवन्येन समागताम् ।  
प्रतिश्रयार्थिना भर्तृविष्या निवार्ज मानसाम् ॥  
पुत्रौ कुशलवाभिस्यौ उक्तौ बालमीकिना स्वयम् ।  
ती प्राप्य रामोदयितां विशुद्धामानिनाय ताम् ॥

'स्वयं बालमीकिलीके कहने पर कि ये कुश-बब नामके दोनों आपके पुत्र हैं, श्रीरामचन्द्रजीने उन्हें ब्रह्मण करके उस अपनी विशुद्धा भार्ता श्रीसीताजीको बुला भेजा। इस-प्रकार बृहकथाके आधारपर लिखे गये तीन संस्कृत-ग्रन्थोंमें श्रीसीता-रामके पुनः सम्मेलनका वर्णन मिलता है। इतना ही नहीं, कथासरित्सागरके ग्रन्थकार तो यहाँतक कहने हैं कि 'यथः मैं तथैवेतत्र मनागत्यनित्रमः' इससे यह अनुमान सुरुद होता है कि बृहकथामें श्रीसीता-राम-सम्मेलनकी कथा अवश्य वर्णित थी और व्योंकि यह ग्रन्थ ईसाकी कुछीं शताब्दीमें प्रचलित था। अतः बहुश्रुत विहान-भवभूतिने इस कथासे परिचित होनेके कारण उत्तरामचरितके सम्मेलनाङ्कका रचना करते समय इस कथाको अपने भवनश्चके सामने अवश्य रखा था।

साथ ही यह बात भी याद रखने योग्य है कि रामकथा-जैसी परम प्रसिद्ध और परम पुरीत कथामें, नाट्यरचनाके लिये ही क्यों न हो, सहसा ऐसा विषयांम् करना भी महज नहीं। और नाटकी लोकप्रियताके लिये भी ऐसा करना तदनक उचित नहीं समझा जाना, जबतक कविको उसके लिये तत्कालीन साहित्यमें कुछ आधार न मिल जाय। अन्नमें इम यह भी कह देना चाहने हैं कि उपर्युक्त सांसदेवकी कथासे मिलती-जुलती कथाएँ अन्यत्र भी थायी जानी हैं।

## तुम्हे अर्पण करे

लोचन लखे नो लखे नेरा ही अनृप कर,  
बाणी जो करे तो करे नेरे गुण गानको।  
अवश्य सुने तो सुने नेरे ही मधुर वीन,  
तेरे ही ननू की गन्ध मुग्र करे ध्वाणको।  
त्वचा भी छुए तो छुए नेरे गुण-दानको।  
हृदय तेरा ही लोभी तेरा ही आनंद बने,  
अपण तुम्हे ही करे "बंदू" प्रिय प्राणको।  
—ताराचंद पाल्ला शो० ५० "बंदू"



## कल्याण



परमत पद पावन मोक्ष-नमावन प्रगट भई नपंज जही।  
देखत गघुनायक जन-सुख-दायक सनसुख होइ कर जोरी रही ॥

स. सा. भुवनेश्वर अभद्राचार.

## अहल्याका पद-चन्दन

गम-पद-पदुम-गगणग पर्ण ।

अर्थसितिव नुरत त्यागि पाहन-ननु छविमय देह धर्म ॥  
 प्रश्न पाप पनि-माप-दुमह-दव दारुन जगनि जर्ण ।  
 कृष्ण-मुथा मिनि विनुध चंद्रि ज्यो किंरि मृम्ब-फरनि फर्ण ॥  
 निगम-अगम मूर्गनि महेम-मनि-जुवनि वगय वर्ण ।  
 मांड मूर्गनि भद्र जानि नयन-नथ इक टुकरे न टर्ण ॥  
 वरनानि हृदय मरुप-माल-गुन-प्रेम-प्रमोद भर्ण ।  
 तुलामिंदाम अम कंहि आगतकी आगति प्रभु न हर्ण ॥

## श्रीगोस्वामी तुलसीदामजीकी स्वकथित जीवनी

(लेखक-मार्ति यरुदन पं० श्रीविजयजन्मजी विपाठी )



विकृत-चढ़ामणि, धर्मप्राण, सकल-शास्त्र-  
तत्त्वज्ञ, भगवद्गत्ता प्रगत्य श्रीगोस्वामी  
तुलसीदामजीका परिचय देनेकी कम-मे-कम  
हिन्दी जाननेवालोंके जिये कोइ आवश्यकता  
नहीं है । आपको काशी-लाभ हुए केवल  
तोन सी वय बोने हैं, फिर भी आपकी  
जीवनके विषयमें बहुत कुछ खोज होनेपर भी कोई विशेष  
जानकारी नहीं प्राप्त हो सकती बल्कि अम और भी बह  
गया । इनके माता-पिताके नाम, इनको जन्मभूमि आदिके  
विषयमें ऐसा घोर मन्त्रमेद है कि जिमका सामझन्य होना  
नितान्त असम्भव-मा हो गया है । प्रांबंणीमध्यवरचित  
'गोसाई चरित' का नाम बहुत दिनोंसे सुनने आते हैं,  
परन्तु वह उसके बहुत सोज करनेपर भी प्राप्त नहीं हुई ।

ऐसी अवस्थामें कविने स्वयं अपने विषयमें प्रमंगानुमार  
कहीं कहीं जो कुछ कह दिया है उसके संग्रहसे सन्तोष  
करना है । यह कविनी भी ऐसे विरक्त थे कि अनन्त विषयमें  
गौरवकी बात तो कहना ही नहीं चाहते थे, बहुत नाराज  
हुए तो कह डें—

‘मी जाति पाँति न चूँ काढूं काढूं जानि पाँति ।

मेरे कोऊ कामको, न ही काढूं कामको ।

सानु के असानु मलो के पोच सोच कहा ।

का काढूं के द्वार पर्ण, जो ही सो हीं रामको ॥

तथा—

यूत कहीं अवशूत कहीं  
रजन कहीं, जेलहा कहो कोऊ ।  
काढूंको बटीसो बटा न ब्याहब .  
काढूंको जात ब्रिगान मोऊ ॥  
तुलसी सरनाम गुलाम है रामको  
जाऊ रुच सो कह कहु कोऊ ।  
माँगिके खैबो मजीनको सोइबो .  
लैबको एक न दैबको दोऊ ॥

परन्तु इसमें मन्देह नहीं कि गोसाईजीने किसी पवित्र  
वाल्मीकी-कृत्त्वमें जन्म प्राप्त किया था यदि ऐसा न होता तो  
वे रजपूत कठनेसे न चिढ़ते । तृप्तरे, उन्होंने स्वयं लिखा है  
'यदो सुकून नन्म शरीर सुन्दर देतु जो फल जारिको ।' इससे  
यह बात भी सिद्ध होती है कि गोस्वामीजीका शरीर भी  
सुन्दर था । नारायण-प्रचारिणी-सभाके प्रबन्धसे छपे हुए  
रामायणमें-जैया चेतावा चित्र दिया हुआ है, उनका शरीर  
वैमा नहीं था । 'सुन्दर' पदसे तो बड़विलास-प्रेस बाँकीपुरमें  
छपे हुए रामचरितमानसमें जिस प्राचीन चित्रकी प्रतिलिपि  
ही हुई है वही समीचीन जैचती है, और वही प्रतिलिपि,  
गोस्वामीजीके अवाङ्मे के पाश्वर्वती स्वर्गीय विष्वेश्वरीप्रसाद  
परदाजीके यहीं गोस्वामीजीका जो प्राचीन चित्र है, उससे  
मिलती जुलती है ।

गोस्वामीजीके माता-पिताने हनके जन्म लेते ही- चाहे अभुक्त मूलमें जन्म लेनेके कारणसे ही हो- हन्हें थाग दिया था, और ये बहुत दिनोंतक बहुत ही दुखी अवस्थामें भयकरते किरे थे । यथा—

जायो कुरु मंगन वश्यो ना बजायो सुनि ,  
भयो परिताप पाप जननी जनकको ।  
बरेत ललत विलगत द्वार द्वार दीन  
जानत ही चाहि कल चार ही चनकको ॥

तथा—

मानु पिता जय जाय तज्ज्वी  
विधिहृ न लिये करु भाव भग्नि ।  
नीच निराड़ग नाजन कादर  
कुकड़ दुकन लाम तज्ज्वी ॥

परन्तु बचपनहीमें हन्हें किंवा अच्छे महामाका मन्दिर हुआ, और उन्होंका शिव्यव प्राप्त होनेमें ये राम-रंगमें रंग गये, यथा—

मै पुनि नेज ग्रहमन मुनी कया दुमकर खेन ।  
मनुषि नहीं तसि वासपन तव अति रहें अचेत ॥  
तदायि करी दुर बाहि बाय ॥ मनुषि पर्यं करु मन अनुमाग ॥

गोस्वामीजीके हृदयमें ऐसी गुहभक्ति थी, उसमें उनके गुरुजीके अलौकिक मद्गुणोंका परिचय मिलता है, और उनके मन्मरणमें गोस्वामीजीमें ऐसे मद्गुण, श्रद्धा, विधाय, ज्ञान, वैगम्य और भक्तिका उदय हुआ, उसमें भी कहा जा सकता है कि एहसेष बोधमय शाङ्कररूप ही थे ।

गोस्वामीजीका नाम चाहे उनके गुरुजीने रखा हो, अथवा उनके रामनामकी गदनको मुनकर लोगोंने ही रख लिया हो-रामयोजा था, जिसका उल्लेख गोस्वामीजी अभिमानके साथ किया करते थे, यथा ‘राम ना जान ह गुहाम राम लड़ियो’ किर विनयपत्रिकामें कहने हें कि ‘गमदं गुलाम न राम रामदेवा रामदेव राम ।’

गोस्वामीजीकी अपनी मानुभुक्तिके प्रति किंवा भक्ति थी, उसकी स्थाया श्रीगमवन्द्रजीमें आयोःयाका वर्णन करकानेमें आगयी है, यथा—

जन्मसूमि मम तुर्मि सुहावनि उत्तर ठाँसु यह गृह तू पावनि ॥  
जद्यपि सब बेकुण्ठ जलाना । बेद दुरान विदित जग जान ॥  
अवध सर्वस मोहि प्रिय नहीं सोठा यह प्रसंग जान कोठ कोठ ॥

गोस्वामीजी स्वयं जिस भाँति चित्रकूटका वर्णन करते हैं और वहाँके कोल-फिरान, वेलि-विटप, तुणको भी महिमा कहते हैं, इससे उनके चित्रकूट-प्रान्तमें जन्म ग्रहण करनेकी बात युक्तियुक्त मालूम होती है । चित्रकूट जाते समय— कवि अग्रिमत गति बैष विरागी । मन कम बचन राम अनुरागी ॥

—बहुका श्रीरामचन्द्रसे मिलना और फिर उसका एथर्न होना, श्रीरामचरितमानसमें एक ऐसी विचित्र घटना है, जिससे उक्त स्थलको उनकी जन्म-भूमि माननेके लिये बाल्य होवा पढ़ता है ।

गोस्वामीजीके धन्योंके अवलोकनमें यह बात स्पष्ट मालूम होती है कि पारलौकिक साधनके उपयुक्त शास्त्रानुभवके होने हुए भी, गोस्वामीजीको गृहस्थाप्रभका पूरा अनुभव था, उन्होंने अवश्य ही गृहस्थ जांचन निर्वाह किया था, और उसके मरम्बो उनकी कुशाम तुष्णिने अर्धकी नरह समझ लिया था । विनयमें तो उन्होंने स्वयं स्पष्ट स्वाक्षार ही किया है—

लरिकार्द बीमा अचेत चित चन्द्ररता चैर्में चाय ।  
नैवेत तर तुर्मि इपाय कवि नग्न विदेश भय मदन भाय ॥

इत्यादि ।

परन्तु ऐसे महापुरुषोंका बहुत दिनोंतक गृहस्थीके बालमें केमे पदा रहना अमरभव था । निमित्त कारण चाहे कुछ भी हुआ हो, पर हममें स्मदेह नहीं कि अवसर पाते ही रक्षा हुआ वैगम्यका सोना पूर्ण पढ़ा, और

बाहु विषन भेदाय मनदू भाव मृग भरम वस—  
को चरितार्थ कर दिव्यज्ञाया ।

गोस्वामीजीके रामानन्दीय मध्यदायी (वैरागी) होनेके अनुकूल अनेक प्रमाण पाये जाने हैं । हम मध्यदायके गृहस्थ शिष्यको विग्रह होनेमें किंवा विग्रेप संस्कारकी आवश्यकता नहीं पड़ती । यहका न्याय देना ही पर्याप्त समका जाता है, गृहस्थीके समयकी जी हुई दीक्षा ही यथेष्ट होनी है । मालूम होता है कि गोस्वामीजीने भी ऐसा ही किया था, यथा—

मै पुनि नित्र गुहमन मुर्मा रथा मधुकर बैत ।  
समुद्रि नहीं तसि बासपन तव अनि रहें अचेत ॥

तृपर वैराग्यात्माज अपना अवयुत गोत्र बतलाता है और गोत्रार्जी भी कहते हैं—

अतिहीं अथने उपखानेहृ न बूझे लोग  
साहिबके गेन गेत होत है गुलामको ।

इस पदसे अस्तु गोत्र ही ध्वनित होता है । वैष्णव-  
सम्प्रदायमें स्मार्त सम्प्रदाय के बड़ा वैरागियोंका है, और  
गोसाहंजीके स्मार्त-वैष्णव होनेमें कोई सन्देह नहीं है ।

संछेषतः गोस्वामीजीकी सम्पूर्ण जीवनी नीचे लिखे  
हुमानाहुके दो कवितामें आ जाती है, यथा—

बारपन सुय मन राम सनमुख भयो,  
राम नाम लेत मौंगि खान टक-टाक हैं ।

परनी नक्षीमें पुर्नित प्रीति रामराय ,  
मोह-बस बैठदी तोंगि तरक तरक हैं ।

स्नेह साँट आचरन आचरन अपनायो  
अजनीकुमार साँधो रामपानिपाक है ।

नरमां गासाई भयो, नोंद दिन शुक्ल भयो,  
तांग फल पावत निनान परिपाक हैं ।

गमन-वमन-हृत विषम विपाद लीन  
देवि दीन दुर्बो कर्त न हाथ हाय को ।

जुगर्मि ब्रनायसो मनाय रुनाय किये  
दिनों फल साँल सन्तु आपने सुनायको ॥

नरच वहि वीच पति पाइ भरुआदा  
बिहाय प्रभु भजन बचन मन कायको ।

ताने तन पंगियत चार बरतेह मिस  
भूटि दृष्टि निकसत लोन गम-गायको ॥

साधु-वेषधारी होनेपर गोस्वामीजीने अपनी अस्तु  
मर्यादालियोंसे रामरस बरसाना आश्रम किया और इनका  
महिमा दिग्नतमें प्रसिद्ध हुई । ऐसे भगवद्गतका करामाती  
होना भी कोई आशर्थकी बात नहीं है, यथा—

रामप्रताप महि जो कह कोउ शिला मरोरु जायो ।

निदान हृनका नाम बड़ा परन्तु महापुरुष भरक होते हैं,  
अपनी कछो-पक्की सब कह ढालते हैं । यथा—

पर घर माँगे टुक पुनि भूषति पूज पाय ।  
ने तुलसी तब राम बिनु ते अब राम सहाय ॥

गोस्वामीजी बहुत दिनों तक अयोध्यामें रहे और वहीं  
रामचरितमानसकी रचना संवत् १६३१ की रामनवमीको

प्रारम्भ की । इस समय गोस्वामीजीकी परिपक्वत्वाया थी ।  
यथा—

भेड़ सुमानस सुथिग गिराना । सुमद मीन गंगि चाठ चिराना ॥

आप प्रथागत, बृन्दावन, जनकपुर, हिमालय,  
चित्रकूट आदि तीर्थोंकी यात्रा भी करने थे और इन  
तीर्थोंका वर्णन भी इनके प्रन्थोंमें पाया जाता है । रामचरित-  
मानसके नियांगते ४६ वर्ष बादतक जीवित रहनेसे तो  
यही अनुमान होता है कि गोस्वामीजीके विशेष नहीं, तो  
शतायु होनेमें कोई सन्देह ही नहीं है ।

यद्यपि गोस्वामीजीके नामसे बहुत से ग्रन्थ देखे जाते  
हैं, परन्तु बारह ग्रन्थ तो गोस्वामीजीहारा रचित होनेमें  
सब एकमत हैं । (१) रामचरितमानस (२) रामलला-  
नहरू (३) वैराग्यनंदीयनी (४) बरवै रामायण (५)  
पार्वतीमंगल (६) जानकीमंगल (७) रामाज्ञा प्रश्न  
(८) दोहावली (९) कवितावस्ती (१०) गीतावली  
(११) श्रीकृष्णानितावली और (१२) विनयपत्रिका ।  
इन्हीं ग्रन्थरूपी स्मारकोंने गोस्वामीजीका नाम अमर  
कर दिया है । इन ग्रन्थोंको देखनेसे गोस्वामीजीके प्रगाढ़  
पापिडल्य, लोकोत्तर कवित, अमन्य रामोपासना, सरल  
स्वभाव, निश्चल विद्यालय, उच्च उदारभाव आदिका पता चलता  
है । ये ग्रन्थ ऐसे हैं कि इनको वैष्णव, शंख, शक्ति सभी  
सामान्द पढ़ते हैं, और किसीके हृदयपर ठेस नहीं लगते  
पाती । अहंतवादी, विशिष्टाद्वितवादी और हृतवादी सभी  
मनन करने हैं और किसीको अस्तु नहीं बोध होता ।

रामके बुगानवकी रीति प्राप्ति सूची सब,  
सबसे संनेह सनहीको सनसालिये ।

इस पदको गोस्वामीजीने कायमें परिणत करके  
दिल्ला दिया है और अर्ना॒ रचनाकी फल-श्रुतिमें जो  
गोस्वामीजीने कहा है कि—

गावत वेद पुरान अद्दस . लवं शाम सब गत्यनसे रस .

मुनि जन धन सन्तनको सर्वस , मार अम सब विधि सबहीकी ॥  
मो विल्कुल ठीक है ।

अपनी रचनामें गोस्वामीजीने सम्पूर्ण शास्त्रोंका  
सामर्जन्य कर दिखाया है, एक बाममार्गका सामर्जन्य करनेमें  
गोस्वामीजी अमर्मथ रहे । इतना ही नहीं, गोस्वामीजी बाम-  
मार्गको श्रुति-सम्मत नहीं मानते थे, यथा—

तत्रि श्रुति पंथ बाम पथ अरहीं । अचक विरचि वेष जग भरहीं ॥  
रामणके प्रति अंगदकी उक्ति है—

कौन कान बस कृपिन विमूढा । अति दक्षिण अजसी अति बूढा ॥  
जीवत शब्द समान ये प्राणी ।

गोस्वामीजीने अलिल वेदमूलक वादोंको, अधिकारी भेदमें ठीक माना है। अहैतवादको गोस्वामीजी परम अधिकारीके लिये ठाक मानते हैं, यथा—

माहि परम अधिकारी जानी ।

लाग करन ब्रह्म उपदेश । अज अद्वृत अगुण हृदयेता ॥  
अकृत अनीह अनाम अरुपा । अनुभवशय अखेड अनूपा ॥  
निरविकार निरविष मुखरासी । मनोनीन अनन अविनासी ॥  
सोते तोहि ताहि नहि भेदा । बारि वीचिटव गारहि वेदा ॥

और जब भुशुविडीजीने उस उपदेशको नहीं माना, तब मुनिजीसे कोष्ठर्वक कहलाते हैं कि—

मूढ परम सिख देउ न मानसि । उत्तर प्रद्युम्न बहु अनसि ॥

भुशुविडीजी हसी प्रकरणका उद्देश्य करते हुए गरुडजीमें छहते हैं कि 'भक्तिगृह इठ करि रहेउ दीन महामुनि दाप'

वहाँ भी भुशुविडीजी हठ कहकर अहैतवादका उल्लङ्घन दिलायी है। ज्ञानवीष-प्रकरणमें तो 'मेहधिक इति वृति अवश्य' कहकर स्पष्ट अहैतवादका स्थापन करते हैं, परन्तु सामान्य जीवके लिये हसे निवान्त दुष्कर समझने हैं। इसमात्रि अहैतवादको गोस्वामीजीने ज्ञानमार्गके नाममें डक किया है।

विशिष्टाद्वित मर्यम अधिकारियोंके लिये माना है, यथा—

मायावस परिहित जट जीव कि इस ममन ।

अथवा—

सदक सद्य भाव दिन भव न निय दानासी ।

इस वाक्यको गोस्वामीजी भक्तिमार्गके नाममें उक करते हैं। भक्तिमार्गके प्रकरणमें ज्ञानकी दुष्करता और भक्तिके सुकृताको बहुत अष्ट करके दिलाया है, और इसमात्रि ज्ञानपर भी भक्तिकी प्रगतना दिलायी है।

सब सिद्धान्तोंको आश्र देने हुए देवकर लोगोंमें अम उत्पन्न होता है कि स्वर्य गोस्वामीजीका कौन-सा मिद्दान्त या? और इसपर वाद-विचार उपस्थित हो जाता है। परन्तु विचारर्थीय बात है कि अरोप वादोंका व्याप्त्यान आश्र तथा पञ्चेतोपासन सिवा अहैतवादके और कहीं सम्बन्ध है?

प्रामाणिक रीतिसे वह भी पता चलता है कि इस सम्प्रदायके परमावार्थ भगवान् रामानन्दजी ज्योतिर्मुखके व्याचारी हैं। बारह वर्षतक शिरवारपर तप करके उच्छ्वासे सिद्धि प्राप्त की थी। इनके सम्प्रदायमें भजनका प्राचान्य है। इसीसे लोगोंको इनके विशिष्टाद्वैतानुयायी होनेका भ्रम हो जाता है। परन्तु वस्तु-स्थिति ऐसी नहीं है, शहूर सम्प्रदायवाले भी निरपालि-ज्ञानको (उपासनाहीन) अकिञ्चित्कर मानते हैं। हरयं नामाजीने भक्तमालमें भगवान् शङ्कराचार्यकी भक्तोंमें गव्यना की है, यथा— 'आचारज शङ्कर सुभृ' निवान रामानन्दीय सम्प्रदायमें वादविचारकी अभिभाविति कभी भी नहीं रही। गुरु-परम्परासे मौखिक उपदेशकी प्रथा गोस्वामीजी तक चली आयी, और गोस्वामीजीने उसे लिपित्रिद करके रामचरितमानस नाम रखा। अतएव यह उक्त सम्प्रदायका पृष्ठ मात्र साम्प्रदायिक ग्रन्थ है। इसके मूलसम्प्रदायप्रवर्तक भी शहूर ही मान गये हैं यथा—

रचि मोस नित नानम राम । पाइ मुगमय निवासन नाम ॥  
सोसित राम नमुदिह दीनहा । राम-भगव अधिकारी चंडिहा ॥  
नेति सत जागविक दुनि पाना तिन दुन माहात्र प्रति गामा ।  
प्रैरो जहरि भगव दुनाना कहहि मुनहि समुद्दिह विषि नामा ॥

म यून नित उमनन सुनी कथा मुमुक्षा भैन ।  
..... भाष्याद भरव में मैरै ॥

कविवाचकीमें गोस्वामीजीने कहा है कि 'वेष विवाहो राग भो नमु'। हमसे उनका वैशार्णी होना सिद्ध होता है और हमेषे भी कहा है, यथा '५।' हमको वेष वसे मरम नहीं रक्ष कायमनी यानी' कहाचित् वैरागिकोंके वेषको हंस-वेष और मन्यासियोंके वेषको परमहंस-वेष माना हो।

गोस्वामीजीकी स्वरूपता, माधुता और भजनका संसारमें भी ऐसा आश्र किया कि उहाँ-जहाँ उमका वास-विभाग हुआ वे सब स्थान तीर्थंस भाने गये, और वहाँ भन्दिर-आसारे बने हुए हैं।

जामु नामवर सहूर आसी । देव समहि सम गति अविनासी ॥

इस विवाहपर गोस्वामीजी कालीमें आ रहे, और यहो—

सम्बत सोलह से असं असी मंगके तीर ।  
सारन स्याम तीजको मुक्ती तजे लगीर ॥

१८



प्रह्लाद-माट, काशी। पं० गंगारामनी जोशीका प्रर ।



पं० गंगारामजी जोशीके घरका बाहरी हृष्य, काशी



तुलसीधाट, काशी

विनय-पत्रिका भवनका बाहरी भाग, काशी



गोमाई नवरथामंडीका चित्र, काशी



संकटमाचनका भूतरी हस्य, काशी



५. ४

श्रीहनुमानजोका मन्दिर, काशी



संकटमाचनका भूतरी हस्य, काशी

आवाकलका प्रचलित पाठ है कि-

सावन शुक्ला सप्तमी तुलसी तज्ज्ञी सरीर ।

-परन्तु यह पाठ निनान्त अशुद्ध है। भट्टके कहे दोहे 'सावन शुक्ला सप्तमी' परक है, यथा—

सावन शुक्ला सप्तमी जाँ गरजे अधिष्ठात,  
तथा-

सावन शुक्ला सप्तमी उदय न देलिय मान । हृष्णादि  
अतः सावन शुक्ला सप्तमी लोगोंके ज़बानपर थी,  
और सावन श्यामा नीन का अर्थ भी उतना सीधा नहीं  
है। अतएव प्रमादसे इस पदके स्थानको भी सावन शुक्ला  
सप्तमीने दखल कर लिया ।

गोस्वामीजीके अच्छाहेका कई पुस्तकसे मेवक होनेके नाते  
में अच्छी तरह जानता है कि 'सावन श्यामा र्तीज' पाठ ही  
शुद्ध है। गोस्वामीजीके अच्छाहेमें तथा टोडरमलके (जिनके  
यहाँका पञ्चनामा गोसाहूंजीके हाथका लिखा आमान्  
काशीनरेगके यहाँ सुरक्षित है) बंशज चौथुरी जालवहादुर  
मिहके यहाँ भी यही लियि मान्य है ।

यह सुनकर भी कह होना है कि किमी मठाशयने,  
सम्भवतः डाक्टर यित्यर्थके अनुमानका अनुसरण करने  
हुए कविनावलीसे यहाँतक पिछ करनेका प्रयत्न किया है  
कि उस समय काशीमें प्रेग फैला हुआ था । यथा

संदर्भ सहा मा नारि नर वरिच  
विरुद्ध सरुम महाराजा भास भई है ।  
एक तो करार करिचरमन मन लामे,  
कोढ़भंही लाज भी मर्मचरी है भीनका ।

अतः गोसाहूंजीको भी प्रेग हो गया, कोड़ा हुआ,  
वाहमें पीड़ा हुई, यथा—

'पाषपीर पर्युषर वाहुर्पात मुहैपीर  
गर जर सहल सर्वां पर्यमई है ।

बहुत-से देवी-देवता मनाये गये, जब नहीं अच्छे हुए  
तब यह कहा कि 'हाँह रही भीनही धयों से जानि नुनियं  
और देहान्त हो गया ।

शरीरीका शरीरसे गियोग किसी-न-किसी हेतुसे होता  
ही है, प्रेगका हेतु होगा कोई आशयकी बात नहीं है ।

परन्तु जिस समय काशीमें प्रेग फैला या उस समय  
कवितावलीके ही अनुसार मीनकी सनीचरी थी, और यदि  
दोहावलीकी सहायता की जाय तो यह भी सिद्ध होता है  
कि उस समय रुद्रबीसी भी चल रही थी, यथा—

अपनी बीसी आपने पुरहि लगाया हाथ ।  
कहि विधि बिनती बिद्वकी करो विद्वके नाथ ॥

अतः मीनकी सनीचरी और रुद्रबीसी दोनों संबद्ध  
१६७१ में ही समाप्त हो जाती है, और गोसाहूंजीका देहावसान  
संबद्ध १६८० में हुआ, अतः गोसाहूंजीके देहावसानका  
कारण प्रेग प्रमाणित करनेके लिये इतना बड़ा साहस करना  
कि मीनकी सनीचरी तथा रुद्रबीसीको भी ६ वर्ष आगे  
तक स्थित ले जाना उपयुक्त नहीं मालूम होता ।

वैद्य-डाक्टरोंके पूछनेसे पता चलेगा कि बाहुपीर बाहु-  
मूलसे उठकर डॉगलियों तक जाती है, और अनि असह्य बेदना  
पैदा करती है, अतएव बाहुमूलकी पीर प्रेगकी घोतकहीं  
है, और न बरतोर का अर्थ प्रेगकी गिराई है, और ज  
'हाँह रही मान धयों सो जानि नुनिये' यह पद ही कविता-  
वलीकी प्राचीन लिपिमें मिलता है, अतएव उनका प्रेगसे  
मरना नवी खोजके प्रयत्नमें शाबाशी पानेवालोंकी कठोल-  
कलरनाके अनिविक्त और कुछ भी नहीं है ।

सश्मै बड़ा प्रमाण यह है कि यदि उक्त रोगसे गोस्वामीजी-  
का देहावसान हो गया होता, तो अनुमानबाहुकका  
अनुष्टान रेगकी निवृत्तिके लिये कदापि न किया जाना ।  
अनुमानबाहुकके अनुष्टानका परिपाठीसे ही यह बात सिद्ध  
है कि गोस्वामी इस रचनाके बलसे इतनी बड़ी पीरसे  
विनिमुक्त हुए ।

### गोस्वामीजीकी लिखावट

गोस्वामीजीके असर सुन्दर और पुष्ट होते थे । संबद्ध  
१६६६ में उनके भक्त डॉ.डरमलके बंशजोंमें संपत्ति-विभागके  
लिये झगड़ा हुआ । गोस्वामीजीने विभाग कर दिया और  
उसे दोनों पक्षोंने प्रमाण माना । तदनुसार एक्कनामा लिखा  
गया, उसमें दो श्लोक और पक्के हाथ गोस्वामीजीके हाथका  
लिखा हुआ है । स्वर्वावासी महाराज हैरवीनारायणसिंह  
काशिराजने उस पञ्चनामेको टोडरमलके बंशजोंके यहाँसे  
अपने यहाँ मँगवा लिया, और वहीं अवतक भौजूद है ।

दूसरी लेखरूपमें गोस्वामीजीके हाथकी लिखी हुई बालमीकीय रामायण सातों काशड पं० राधाकान्त पाशदेव नवाबगंज काशीके यहाँ थी, जिसमेंसे उत्तरकाशड इस समय कीन्स कालिजकी लाइब्रेरीमें है। उसमें 'लि० तुलसी-दासेन' अन्तमें लिखा हुआ है, दो काशड और भी कही चले गये, शेष तीन काशड पश्चिमीजीके यहाँ मौजूद हैं। इस प्रथमके अलावा और प्रभातमेंके अलावा विश्वकल पाठ-से हैं।

गोस्वामीजी लिखित वा० समायण उत्तरकाण्डका प्रथम पुस्त

क्षमताप्राप्तनम्। जिततपावनाते नहरिणोलेकधारिणाद्यनेनविश्वस्त्रपेण किंतु एन्द्रगुणात्मा १  
८। सप्तरात्मगमन्यपरिदासागदायं सातासागम्भुक्षयभृत्यघववतिनटिलोऽनशीर्वते यववीतोरेम्पत्त्वद्  
नएववाकांगोत्तेवातिश्चापवांयेसाथितादिशं भव्यावेषोद्यभगवाऽनमुवाविश्ववश्या आत्मगुणेभ्यं  
हृषीक्ष्य वैथातदीर्घादिशाउपद्रुत्यम्भवेत्स्वरोदात्रकम्भदाराणातेष्यात्मामात्राशिष्यावधीर्वयेष्विवादि  
शावशिस्माकावपायाद्विश्वागिकाप्रभगताम्। इस्मद्विभवत्वात्मस्थासप्तव्योमत्वापाप्यत्वमहामानं।  
गायत्रमनिद्वलान्विभित्ताप्रत्याहारं द्वैत्यत्ताप्रसमविश्वागत्तीहारवत्वात्मस्थाप्त्यगद्यवत्वात्मास्थाप्तमसीपूर्व  
ध्वन्याय विविद्यमहामानां। न भवेष्व इस्मद्विभित्ताप्रत्याहारं सप्तव्यात्मस्थाप्तिभित्तिभ  
हायाद्वाविभाज्यमुनीयाक्षत्त्वात्मस्थाप्तनाम्भायाद्वाविभाज्यमुनीयाक्षत्त्वात्मस्थाप्तिभित्तिभ  
नामावृत्विभित्तिरन्नामामामुनीयाक्षत्त्वात्मस्थाप्तिभित्तिरन्नामाम्भायाद्विभाज्यमुनीयाविभाज्यमुनीय  
कामनावृत्विभित्तिरन्नामाम्भायाद्विभाज्यमुनीयाविभाज्यमुनीयाविभाज्यमुनीयाविभाज्यमुनीय  
द्विभित्तिरन्नामाम्भायाद्विभाज्यमुनीयाविभाज्यमुनीयाविभाज्यमुनीयाविभाज्यमुनीयाविभाज्यमुनीय

गोद्धामी जी लिखित व्याङ्ग समायण उत्तराद्याहका अद्वितीय पद \*

कामद्युगादविष्टतोपायम्यपि भवति कुर्वन्नमया प्रेतस्तनिप्पतो वयोध्यात्तरीक्ष्य प्राप्त्यन्वया वैष्णवता म  
भिः अप्यमध्याप्य तत्त्वतिक्षणमयतिप्पतोऽद्वैतस्य प्राप्त्यन्वये वा तत्त्वाल्लक्ष्यत्वात्त्वापार्थीभावात्  
ब्रह्मात्मावस्थापापत्तेऽप्यत्त्वं तत्त्वाकामप्रवृत्तपाप्त्यस्य मुख्यं तामवैष्णवतत्प्राप्त्यन्वया गता  
व्यज्ञामय्यात् सर्वत्विद्या गत्वा द्वाषाः प्रत्ययां तत्त्वां स्वरूपां शीर्षां उद्धव्याप्तेवामप्यत्त्वाः ॥ इत्याप्यत्त्वापार्थीवात्म  
कापेत्वत्तत्विद्यात्तिप्पतो द्वाषामाद्यायात् तत्त्वकामात्मारूपेत्वात् तत्त्वाप्यस्य गता ॥ तु अप्यस्यका ॥ स्माह  
तत्त्वेदमहमकामप्रीतिरामायापापात् ॥ तत्त्वतः ॥ १८५२ ॥ सप्तम्यस्तीर्ता स्मरि ॥ द्वौतिति तु तत्त्वासाधनेन ॥  
स्मै प्रस्तृते द्वौतिति तत्त्वासाधनेन स्मै प्रस्तृते द्वौतिति तत्त्वासाधनेन स्मै प्रस्तृते द्वौतिति तत्त्वासाधनेन ॥ तत्त्वासाधनेन स्मै प्रस्तृते द्वौतिति तत्त्वासाधनेन ॥

तीसरी मिथिलाके किसी परिषदन-घरानेमें कोई चीटी है, जो गोमातारीजीके हाथकी किसी हुई कही जानी है परन्तु उसके दर्शनका सौभाग्य मझे नहीं प्राप्त हआ।

चौथी मलीहाकादकी गमायण भी गोस्थामीजीके हाथ-  
की लिखी हुई कही जानी है, परन्तु विश्वस्त मूत्रमें पता  
चला है कि यह बाण गलत है

इनके अतिरिक्त गोदामीजीके द्वेषका पता नहीं  
चलता। राजापुरकी प्रति भी बहुत प्राचीन है, पर उसके  
अहर धैर्य से मेज नहीं सासे और कि पञ्चनामा और उपर्युक्त  
वालमीकीय रामायणके अहर मिल जाते हैं

गोखामीजीकी खना

गोस्वामीजीके उपर्युक्त १३ प्रम्योंमेंसे कई एक लो

आरंभसे अन्ततक कम् पूर्वक रखे हुए हैं, और शेष उनकी विभिन्न समयकी कविताओंके मध्यसाथ हैं। दर्थोंके बारोंमें भी परिवर्तन हुआ है, रूपमें भी परिवर्तन हुआ है। इस विषयमें जहाँतक सुझे एवा चला है, मर्दमाधारके सामने उपलित करूँगा, जिसमें इस विषयक न्यायन-शास्त्रोंके दरके प्रथममें सहायता मिले। ।

क्षेत्र देन्वा द्यायाचित्र फूल गोलेज की लाइब्रेरी के उत्तरकान्द में लिये गये हैं। इस कृति के किये हम स इतिहास भोजन का उद्देश्य भव्यतापूर्ण करते हैं। — सम्पादक

† इन विषयमें आपका 'नवर्माकृत ग्रन्थोंके शुद्ध पाठकी खोज' शीर्षक लेख मिल गया है। यानाभावमें इस अद्दमें न उपस्थिति किए गए अन्य अद्दमें द्वारा नेत्रका विचार है। —सप्ताहिक

## श्रीहनूमान्जकी महत्व

( लेखक—श्रीयुत रामचन्द्र शंकरजी टकी महाराज बां० प० )

जय देव, जय देव, जय मारुतिराया, श्रीमासुनिराया ।  
आरति ओवाणु तु त्र. भक्तवासृत प्याया ॥  
लक्ष्मीर्षी काम-कोषा जानुनियां ।  
बुद्धी सीता गुद्धी, करिसी कपिवरी ॥  
अगाव भर्ती त्रुटी, न करे कोणाही ।  
द्रोणागिरि त्रु उच्छुनि, देवा रक्षीसी ।  
दवडुनि गहडगरी, फोडुनि मणि ताना ।  
दास्य भर्ती अम्हां, शिकविसी हनुमता ॥  
ब्रह्माण्ड पराणी, आहुकुल ज्ञान ।  
फेकसि तेचि प्रनरपि अरुन रथी पूर्ण ॥  
धारिभि उडी तद ओढे, जप्ति नू मंदिरीया ।  
श्रीशंकरग्रन्थ राम, जापि तव पाया ॥

**अ**म्भुत्ति म दिन सुके उपर्युक्त आरतीकी भूर्णि हुई  
**उ**म्भुत्ति और मैने गोपालको बुलाकर हसे लिखा ता  
**अ**म्भुत्ति लिया। आज श्रीहनूमानकी प्रेरणासे उम्भ<sup>१</sup>  
आरतीका स्पृष्टीकरण करनेका अवमर प्राप्त हुआ है।  
श्रीहनूमान कौन है, उनका क्या अधिकार है? प्रभुति प्रभोंके  
उत्तर जान लेनेपर आरतीका अभिप्राय सहज ही हृदयझम हो जायगा। थनः भारतीय पौराणिक साहित्यके अवतरण  
देकर मैं इस विषयको स्पष्ट करूँगा।

केमरी तथा अभ्यर्ती बानर-युगमसे वायुदेवताके प्रयादमे  
एक पृथ्र हुआ। वही बालक हनूमान् नामसे प्रख्यात हुआ।  
श्रीहनूमानजी रुदांश लेकर अवतरित हुए थे। इनका जन्म  
चैत्र-शुक्ल १२ को हुआ।

जिम दिन यह सूर्यके विश्वको पकड़ने आकाशमें उड़े,  
दस दिन सूर्यग्रहण था। जब यह आकाशमें तीन सौ  
दोजन ऊंचे उड़गये, तब सूर्य घबरा गये। सब देवता  
दौड़े आये। पर हनके सामने किसीको एक भी न चली।  
तब हन्द्रने इनपर वज्रप्रहार किया, जिससे हनु भंग  
होनेके कारण श्रीहनूमानजी भूर्धित होकर गिर पड़े। इस  
प्रसङ्गको देखकर हनके पिता वायुदेवने सब वेष्टाधोंके  
प्राणवायुको आकर्षण कर लिया, जिससे सब घबराकर

<sup>१</sup> जन्मदूरीपके एक खण्डका नाम किंपुरुषवर्ष है।

उनकी शरण गये और हनूमानको सचेतकर उन्हें बहुत-से  
वरदान दिये। हन्द्रवज्रसे हनु-भंग हो जानेके कारण हनका  
हनूमान् नाम पड़ा। यह अस्यन्त बुद्धिमान्, तेजस्वी तथा  
पराक्रमी हैं। हन्द्रोंने श्रीरामचन्द्रन्द्यमें सुप्रीवका सख्य कराया,  
सीताके अन्वेषणका कठिन कार्य भी हन्द्रोंने किया,  
रावणका गर्व नष्ट किया और श्रीरामचन्द्रजीकी अन्य अनेक  
प्रकारसे सहायता की। यह एकनिष्ठ रामभक्त है।  
किंपुरुषवर्षमें रहकर श्रीरामकी उपासना करने हैं। ये अमर  
हैं। अमुनके रथपर महाभारतयुद्धमें यहां बैठे थे। इनके  
मारुति, महावीर, अञ्जननदन आदि अनेक नाम हैं। इनकी  
रामायण-चनना 'नाटकरामायण' या 'हनुमचाटक' के  
नामसे विख्यात हैं।

श्रीहनूमानका जन्म चैत्र-शुक्ल पूर्णिमाको होनेका  
कारण यह है कि मन्द्रक मणुग मोह-प्राप्तिके लिये प्रतिपदासे  
नव दिन नवधा भक्तिका साधना प्राप्तम करता है। पहले  
दिन अवण-भक्ति करनेके उपरान्त फिर क्रमशः प्रतिदिन  
कीर्तन, नामस्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य  
तथा आनन्दनिवेदन आदि भक्तियोंको निष्काम बुद्धिसे करके  
तथा उन सबका हेत्वरपण करनेपर उसे नौमीको रामदर्शन-  
का लाभ होता है। अर्थात् अन्तिम भक्ति करनेसे सदगुरु-  
कृपासे उसे स्वरूप-बोध होता है।

श्रीहनूमान् यह देखकर कि, सृथरूप ज्ञानको राहुरूप  
अज्ञान अप रहा है तथा यह जानकर कि, ज्ञान-अज्ञान  
दोनों ही मायानिर्मिन हैं। ब्रह्मभावसे वह उनपर झपट  
पड़े। उस समय उनका विरोध करनेके लिये हन्द्राविरूप  
कामादि पद्धिपुष्टोंने अपनी वज्ररूप शक्ति उनके हनुरूप  
भूमिकापर ढाली, किन्तु वह केवल स्पर्शकरके ही गेंदकी  
तरह उछल गयी।

अब उपर्युक्त आरतीकी र्मामांसा करते हैं—

'जयदेव, जयदेव, जय मारुतिराया।' मरुत अर्थात्  
वायुके प्रसादसे हनका जन्म होनेके कारण उन्हें मारुति या  
वायुसुत कहते हैं। इसमें श्रीहनूमानजीको प्रेमपूर्वक गौरव

प्रदानकर ज्ञानयुक्त भक्तिका आवश्यक करनेके लिये 'आरती ओबाल्' वह पद दिया गया है।

### लंका दहन

'लङ्घा स्पी कान क्रांप जातुनियाँ युद्धि सीता मुद्धि रिति कपिर्या

'इस पदसे बहुदहन तथा सीता-युद्धि-अर्थात् श्रीहनूमान्‌जीकी हृत लीलाओंमें जीवोंके स्वरूपी दर्शणका रज-समरूप खेष नष्ट हो जानेपर वित्तशुद्धि-योगमें प्रतिविद्धि विडमें मिल जानेपर सद्गुरुकी कृपासे 'तत्त्वमसि' वाक्यका ज्ञान कैसे प्राप्त होता है, यह बताया। इस लीलाका वर्णन अपटे महोदयके बालरामायणमें इमप्रकार किया है

'सीताको अनुकूल करनेके लिये रावणने उसे बहुत मनावा, परन्तु सीताने उसकी एक बात भी नहीं सुनी। पश्चात् रावणने राजसियोंके पहरेमें रथकर सीतासे छल किया। इसपर भी उसके बशमें न होनेके कारण उसे एक बर्षकी अवधि दी और उस अवधिके बीतनेपर यदि वह राजी न हुई तो उसे मार डालनेकी धमकी दी। इस अवधिमें अब दो ही साप बाकी रह गये थे। सीता वारउवार श्रीरामका स्मरण करती हुई महान् दुर्ली हो रही थी। उसे अब-जल भी अद्वा नहीं लगता था। इस दशामें अचानक हनूमान्‌जीने आकर श्रीरामचन्द्रकी दो हुई अंगठीका रस्तिचिह्न दे श्रीराम-जन्मस्थलके कुशलयुक्त होने और राष्ट्रही आकर उसे छुड़ा ले जानेका समाचार निवेदनकर दादम दिया। उस समय श्रीजानकीको जो आनन्द प्राप्त हुआ, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। उन्होंने हनूमान्‌को यह कहकर विदा किया कि शीघ्र जाकर श्रीराम-जन्मस्थलको ले आओ। श्रीहनूमान्‌ने बहाँमें जाने समय अशोक-बनको विवरण कर डाला। यह समाचार पर राजम दोहे आये, पर उन मनको भी उन्होंने मार डाला। तब रावणने अरने पुत्र अवय नथा इन्द्रजीतको भेजा। जिनमें आवश्यक नो हनूमान्‌जीने पछाड़ दिया, पर इन्द्रजीतके आप स्वयं ही अधीन हो गये। नव रावस इनके हाथ-पर बाँधकर रावणके समीप ले गये। रावणने उन्हें मार डालनेकी आज्ञा दी, परन्तु विभीषणके राजथर्म समझानेपर उसने उनकी पूँछमें चिथड़े लेट नेल दालकर आग लगानेकी आज्ञा दी। रावणकी इस आज्ञाका पालन होते ही हनूमान्‌जी उछले और इन्होंने एक दूसरे दूसरे घरपर कृदते हुए सारी बहुको जला दिया। उपर्यात् समुद्र पारकर अंगदादि बानरोंसे आ मिले और

सबके साथ रामचन्द्रजीके समीप गये। श्रीहनूमान्‌जी चिह्नके लिये श्रीसीताजीकी बेणीकी दिव्यमणि लाये थे उसे श्रीरामचन्द्रजीको दिखलाकर सब वृत्तान्त निवेदन करने लगे। तब श्रीरामको अस्यन्त हर्ष हुआ और उन्होंने अस्यन्त प्रेमसे श्रीहनूमान्‌जीको छातीसे लगा लिया।

### द्रोणगिरि लाना

श्रीहनूमान्‌जीके द्रोणगिरि उठा जानेकी कथा श्रीवैष्णवन् रामायणमें इमप्रकार है-

'सुरेण(रामसैन्यका वानर), श्रीरामको मानवना देते कहता है--

'महाराज, लभ्यण मरे नहीं हैं, ऐसा मेरा विश्वाय है। इनका मुख निम्नेज नहीं हुआ है। इनके करतल पद्म-पत्रके समान शीतल और मुखरपर जान पद्मते हैं। हृदयका धुक्कुकी चल रहा है। शासोन्दूवास भी अन्द-मन्द चलता प्रनीत होता है। इस समय यदि सभीवनी मिल मदे तो मैं इन्हें तुरन् मचेत कर सकता हूँ। तब श्रीहनूमान्‌जी आगे शक्रर बोले, 'हे सुरेण ! मञ्जावनी कहाँ मिलेगी ? वसाओ, मैं उसे एक बशमें ले आ सकता हूँ।' सुरेणने कहा- 'इस दुष्कर कार्यको करनेवाला न हो है, और कोइ नहीं। जा, हिमालयपर कैजामके दिल्ला शङ्कपर मञ्जावनी महीपथि है, और वही विश्वलयकरणी नथा सावधानी नहीं अोपधियाँ हैं। उन्हें गोप्त ला।' यह सुनते ही श्रीहनूमान्‌जी उहे आग थोड़े ही समयमें हिमालय-पर्वत-पर पहुँच कैजामपवनके दिल्ला शङ्कपर आपथि हृदने लगे, पर उन्हें पहचान न मिले। फिर यह सोचकर कि मोजानेमें विशेष विलम्ब हो जायगा, श्रीहनूमान्‌जी उथ मध्यर्थ शङ्कको ही उत्ताप कर उसे गोदकी सरह हाथमें ले हिमालयमें उड़े थे। लङ्घा में सुषंगके समीप उतरे। सुरेण श्रीहनूमान्‌जीके इस अद्भुत पराक्रमको देखकर दानां तत्त्वे डैगर्वा। दवाकर रह गया और उसने घतिप्रेसमें उनकी पाठ ढाँकी। किञ्चित् विभ्राम करके हनूमान्‌ने कहा-- 'इस शङ्कपरका आपथियाँ आप पहचान लाजिये, मैं पहचान नहीं सका और विलम्ब होनेके भयसे इस शङ्कको ही लेते आया।' सुरेणजीने आवश्यक आपथियाँका रस निकाल श्रीखण्डमण्डी-के नाममें छोड़ा जिससे वे तख्ताल सावधान हो उठ बैठे।



शोलाद्यम गतीजोंका जीवित करनेके लिये दोणाच्यत लाना



हनमूनजीका हार, नोडना और हृदय चोरकर विषसाता ।



लेका जलानेके बाद हनुमानजी जननी मीनार्थी चरण उच्छवा कर रहे हैं ।



शोहनसाहजीके डारा गरदुजीका शब्द हरण

## कल्याण



श्रीगमका हनूमानके प्रति ज्ञानोपदेश



पाथंके रथगर हनूमानजी



श्रीहनूमानजीं पर टंडका वज्र विगता

गरुड़-गर्व-हरण

गरुड़के मनमें आपने परम पराक्रमी होनेका महान्‌ गर्व था । वह जानकर श्रीविष्णु भगवान्‌ने आङ्गा दी कि—‘हे सुरपति, तू वहा पुरुषार्थी है, तेरे-जैसा पुरुषार्थी तीनों लोकमें और कौन होगा? अब तू शोध बदलें जाकर यह बन्दर पकड़ कर ला । तू अकेला ही पकड़ आयगा या आपने साथ कुछ सेवा भी केता जायगा?’ वह सुन कर गरुड़ वहे आवेशमें आये और उन्होंने श्रीहरिसे कहा—‘मैं तो गिरते हुए आकाशको भी आपने बदलसे चारव्य कर सकता हूँ, सुन्दे यही आवश्य मालूम होता है कि आप सुख-लैसे पराक्रमीको बन्दर पकड़ने क्यों नहीं होते हैं? हे समाजदो! देखो, मैं अभी बन्दर पकड़ लाता हूँ।’ ऐसा कहकर श्रीहरिके चरण-कन्दगा कर गरुड़ आकाशमें डूबे । शोभ ही बदलें पहुँचकर उन्होंने देखा कि हनुमान्‌ उनकी ओर पीठ किये हुए बैठे हैं और कौतुकसे कल ला रहे हैं, साथ-साथ सुंहसे रामनाम-कीर्तन भी कर रहे हैं । वह देखकर गरुड़ने कहा—‘रे बन्दर! तूने सारा बन नष्ट कर दाढ़ा और सारे बनवरोंको भगा दिया । अबे पामर! तूने तो सब कल भी ला दाढ़े । तु यहा अम्बायी है, मैं तुम्हें देख देंगा।’ गरुड़की इस बातको सुनकर हनुमान्‌जीने मुसकरा-कर कहा कि—‘तुम अपना नाम हमें बताओ! तुम्हें फिसने भेजा है?’ गरुड़ने कहा कि ‘मेरा पुरुषार्थ तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है । मैं करवपुसुल, श्रीहरिका दूत पक्षिराज गरुड़ हूँ । मैंने सब देवताओंको परापूर्त कर अपने पुरुषार्थसे असृत प्राप्त किया है । मेरे भयसे नागराज पृथिवीके नीचे जा लिये हैं ।’ इसपर हनुमान्‌जीने कहा—‘जो आपने सुंहसे अपनी प्रशंसा करता है वह सौं मूर्मोंकी अपेक्षा भी अधिक अझारी है । बल, यश, कीर्ति, धर्म, पुरुषार्थ तथा आपनी परम विद्याकी जो अपने मुँहसे प्रशंसा करता है, वह वास्तवमें वैसा नहीं होता।’ इसपर गरुड़ने हँसकर कहा कि, ‘रे बन्दर, मालूम होता है, मरते समय तेरी नूती बोलने लगी है।’ हनुमान्‌जीने भी वैसा ही उत्तर दिया, जिसे सुनकर गरुड़ने आकाशमें उड़कर ऐसी प्रश्न गर्वना की कि सबका अरुद्ध बनवरादि श्रीव भयभीत हो गये । तब अकस्मात् गरुड़ हनुमान्‌जीपर भयटा और जौंच मारने लगा । पर हनुमान्‌जी ज़रा भी न हिले । पर्वतपर भयट, वहे पेदपर मक्की या हाथीके कन्धेपर चाँटीका जैसा भार होता है वैसा ही गरुड़का भार हनुमान्‌जीको मालूम हुआ । उसमें ऐसी जीका करनेके उपरान्त

६१

हनुमान्‌जीने गरुड़को पांवोंमें दबा गर्दन पकड़कर डाढ़ा, जिससे गरुड़ बबरा गया, उसकी आँखें निकलने लगीं, तब उसको पकड़कर हनुमान्‌जीने समुद्रमें फेंक दिया । श्रीहनुमान्‌जीने गरुड़को जो द्वारकासे केंका तो वह साठ सहस्र योजन दूर आकर समुद्रमें गिर आये और छटपटाकर दूबने लगा, जिस साँस रोककर वह पानीसे ऊपर आया और मनमें कहने लगा कि ‘मैंने जो हरिके सामने अभिमान किया था, उसका पूरा कल मिल गया। संसारमें कोई विद्या-मूलसे मस्त है तो कोई धनमदमे उन्मत्त है, पर भगवान्‌ ज़रा भी अभिमान करनेसे उन्हें दण्ड देते हैं।’ अब गरुड़जी श्रीहरिका स्मरण करने लगे । उन्होंने कहा—‘हे भक्तवत्स! आप सुखपूर्वक क्यों कोप करते हैं?’ गरुड़को दिशाभ्रम हो गया, इतनेमें उसने द्वारकाका प्रकाश देखा । तब श्रीहरि-कृष्णका नाम जपते हुए वह आकाशमें डूबा और मनमें सोचने लगा कि ‘यदि जिस दसी वनसे जाँचा तो वह बन्दर सुन्दे किस पकड़ लेगा, अतः वह दूसरे मार्गसे ही लौटा। किसी प्रकार द्वारकाके महाद्वारपर आया और वहाँ मूर्खित हो गिर पड़ा। सेवकोंने यह समाचार श्रीहरिके पहुँचाया और गरुड़को भी उड़ाकर श्रीहरिके चरणोंपर रख दिया। तब श्रीहरिने कृपापूर्वक उसके नेत्रोंमें जल लगाकर उसे सचेत किया।

भीम गर्व-नंजन

कथा है कि एक बार खोटे-बड़े अर्पि रक्की याकियों-में देव-नुर्लंभ पट्टरस भोजन कर रहे थे, उस समय भीमने ब्राह्मणोंमें इसप्रकार कठोर वचन कहे—‘हे ब्राह्मणो! देखो, पात्रमें आप कुछ भी उच्छिष्ट न छोड़ सकेंगे । यदि ऐसा करेंगे तो मैं उन्हें आपकी चोटियोंमें बांध दूँगा । जितना आपके पेटमें झैंटे उतना मार्ग ले । याकीमें अधिक लेकर छोड़ देना ठीक नहीं होगा । मेरा स्वभाव आप ज्ञान अच्छी तरह जावते ही हैं।’ भीमके भयसे ब्राह्मण अत्यल्प आहार करने लगे, जिससे वे बेचारे दुर्बल हो गये । यह बात श्रीहरि ताढ़ गये और भीमसे बोले—‘तुम शीघ्र जाकर गन्धमादनसे अविद्योंको छुला आओ, उनकी बड़ी आवश्यकता है।’ भीमके मनमें अपने बलका गर्व था अतः वह तेजीसे उन अविद्योंको लाने लगे । मार्गमें बृद्ध वानरके वेशमें महान्‌ पर्वतकी तरह अपनी पूँछ भागमें अदाकर हनुमान्‌जी बैठे थे । उनसे भीमने शर्वकर कहा—‘रे वानर! रास्तेमें पूँछ इटा, सुन्दे शीघ्र अविद्यान्‌ करनेकी आवश्यकता है।’ इसपर श्रीहनुमान्‌जीने नम्रतापूर्वक कहा—‘हे

भीम, मैं अब बृद्ध हो गया हूँ, परन्तु तुम सो महाबली भीमसेन हो, अतः तुम ही जरा पूँछ को हटा दो !' भीमसेन राजी हो गये और दस सहस्र दायित्वोंका बल खगाकर पूँछ हटाने लगे, पर वह ज़रा भी न हटी तथा पर्कतकी तरह अचल पड़ी रही। भीमसेनको हतबज देख हनूमानजी जारोंसे हैंस पढ़े और बोले कि 'हे धर्मार्थ ! तू गवर्णको छोड़कर श्रीकृष्णका भजन कर !' तब सो भीमसेन श्रीहनूमानजीकी इसप्रकार स्तुति करने लगे। 'हे भगवन् ! आप श्रीरघुनाथके व्यारे हैं, आपने राष्ट्रके बल-दर्पणको चूर्ण किया और ओसीताके शोकको दूर किया है !' भीमको निरभिमान होते देखकर श्रीहनूमानजीने अपनी पूँछ हटा ली, तब भीम गन्धमादन-पर्वत खले गये।

### हार फोड़ना

श्रीधरस्वामी आपने शमविजयमें लिखते हैं, 'श्रीसीताने बावर-बृन्दको वक्षालङ्घारादिसे गौरवाञ्चित करनेके दृष्टरान्त श्रीहनूमानको अपने कचठका दिव्य रुद्ध-हार दिया। वह हार अद्वितीय था, तीनों लोकोंसे भी उसका मूल्य नहीं चुकाया जा सकता था। उसकी पृक पृक मणि इस पृथ्वीकी कीमतकी थी। श्रीजानकीजीने ऐसे हारको इनूमानजीके गलेमें डाढ़ा दिया। श्रीहनूमानजी हार पहन कर एक पेड़पर चढ़ गये और एक-एक मणिको दाढ़से फोड़कर देसने लगे। पर किमी भी मणियें उन्हें राम नहीं दिल्लानी दिये, तब उन्होंने 'व्यर्थ पारापर' कहकर उनको फेंक दिया। यह देखकर लोगोंने कहा कि 'व्यर्थ ही हार क्यों नहीं कर रहे हो !' श्रीहनूमानजीने कहा कि 'इसमें राम नहीं दीखता' तब लोगोंने आशंका किया कि 'क्या तुम अपने हृदयमें भी राम दिल्ला सकते हो ?' यह सुनते हीं श्रीहनूमानजीने अपना हृदय चोककर दिल्लाया। उसमें उन लोगोंने, दिस प्रकार बाहर श्रीरामचन्द्र सिंहासनपर विराजमान थे, वैसी ही मूर्ति देखी। तब सबने उठकर श्रीहनूमानजीको दृशदबत किया।

### श्रीहनूमानके प्रति श्रीरामचन्द्रजीका प्रेम

अंबैष्यहृत रामचरित्रमें लिखा है कि 'जब सुप्रीमादि श्रीरामचन्द्रजीसे अकर दांने लगे तो भगवान् ने सुन्दीप, विमोचन, जागवन्त, मैन्द, हिविद, अङ्गद, हनूमानादि सब लोगोंको रक्ष-आभूत्यक आदिसे सकृत किया। और

\* मूल लेख मराठीभाषामें आया था, लेख बेदानके बहुत पश्च भी बहूत ही बदूत ही बदूत किये गये थे। लेख बहुत बड़ा होने और अधिकाद काव्यमय होनेके कारण पूरा अनुवाद नहीं दिया गया। केवल श्रीहनूमानजीके जीवनसम्बन्धी कुछ बातें दी गई हैं। इसके लिये प्रदेश लेखक महादर्थमें क्षमा आहता है। आपका मूल मराठी लेख मैंने भयानपूर्वक पढ़ा है, बहूत ही उपरोक्त और सुन्दर है। — सम्पादक

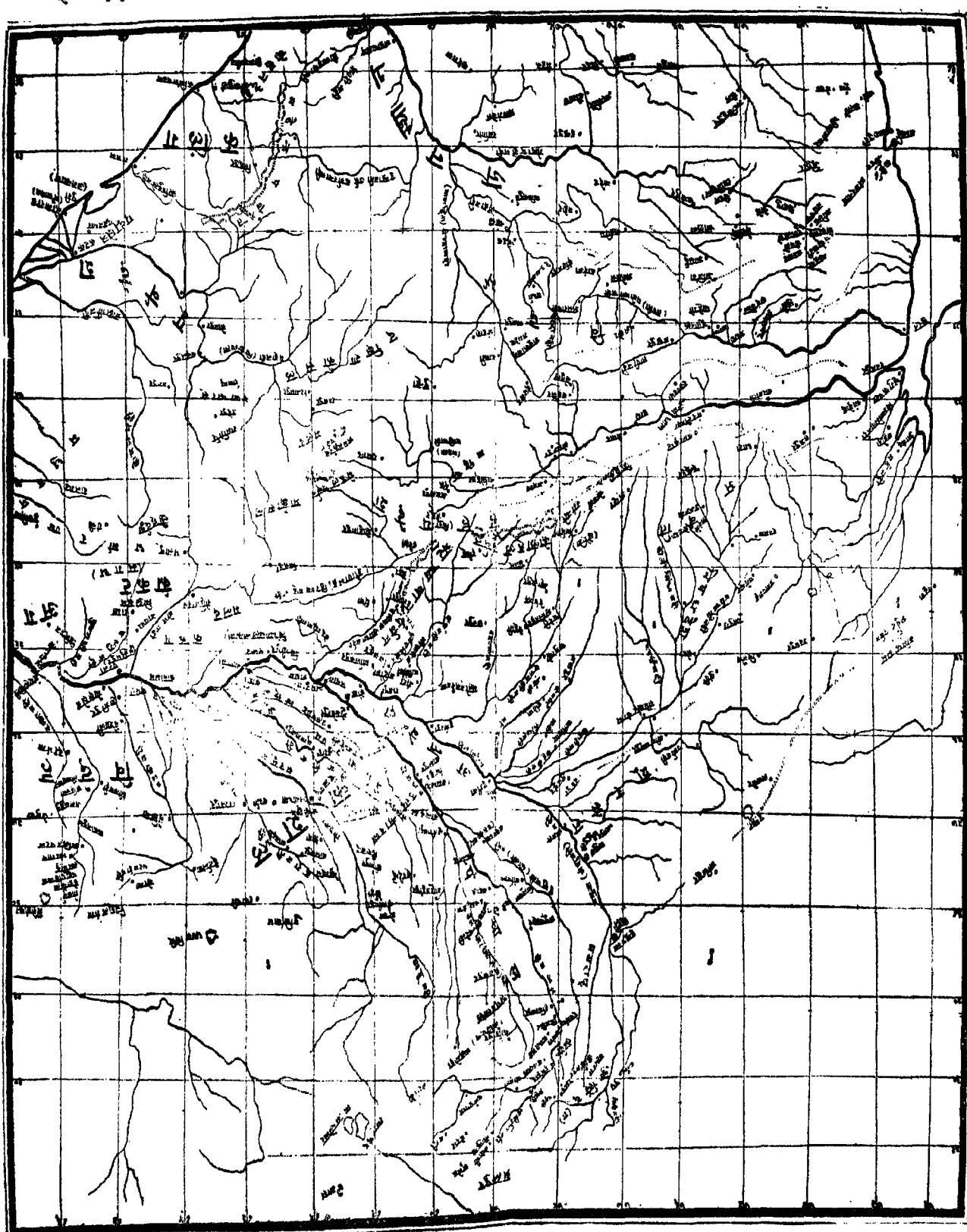
उन लोगोंसे विनयके साथ कहा कि 'हमें आप लोग याद रखियेगा, तब उन सब लोगोंकी आँखोंसे अशुशारा बहने लगी और वे श्रीरामचन्द्रके चरणोंपर शीश धर उनकी प्रदक्षिणा कर दिवा हुए। सबसे पीछे श्रीहनूमानजीने दिवा होते समय विनती की— 'हे महाराज ! मेरा प्रेम, मेरी भक्ति आपमें निश्चल रहेगी, अन्यत्र कहीं भी न जायगी। जबतक हम जगतमें रामकथाका प्रचार रहेगा तबतक मेरे प्राण इस देहमें रहेंगे। मैं नित आपके गुणानुवाद सुना करूँगा और इसीसे मेरे विरह-दुःखका शमन होगा।' श्रीहनूमानजीकी इस विनयको सुनकर भगवान् का शरीर रोमाञ्चित हो गया और शीघ्र ही सिंहासनसे उठ उन्होंने हनूमानजीको दृश्यालिंगन करते हुए कहा— 'हे हनूमान ! तुमने मुझपर हमने उपकार किये हैं कि मैं उनमें से पृकका भी बदला नहीं चुका सकता। पर मैं यही आहता हूँ कि नेरे उपकारका पृक मेरे मिरपर ही रहे और प्रथुपकार करनेका कोई प्रमाण ही न आये, ऐसी मेरी इच्छा है। तेरे कथनानुसार जबतक लोग मेरी कथाका गान करेंगे तबतक न जीवित रहेगा। और तेरा यश मर्वत्र फैलेगा।' ऐसा कह श्रीरामने आपने कचठका नवरत्नोंका हार उनके गलेमें डाढ़ा दिया।

### ज्ञानोपदेश

श्रीहनूमानजीको भगवान् श्रीरामने वक्षालङ्घ-पुराणमें जीव-ईश्वरकी पृक्ताका ज्ञानोपदेश किया था, वहाँ पार्थको गीतामें और उद्धरको भागवतमें किया था। श्रीहनूमानजी अनन्दवादव्य और परम ज्ञानी भए थे।

जो पवनसुत श्रीहनूमानजी सदा श्रीरघुनाथजीके प्रशान्तमें रहनेहैं वहा जो श्रीगमके मुख्य प्राण हैं ऐसे अऽतिनिनयर्हा जो भेदा करने हैं उन्हें श्रीरामचन्द्र स्वर्यं प्रकट होकर दर्शन देते हैं, अतः अपने मनमें उब हनूमानका चिन्तन करो। उन्होंके हृदयमें राम-भक्ति प्रशादित होती है। जो उन कपिश्रेष्ठका मनमें स्मरण करता है वह धन्व है। जहाँ श्रीगम गुणगान होता है वहाँ श्रीहनूमानजी गान और नृत्य करनेके लिये उपस्थित हो जाते हैं, उन्हें श्रीरामचन्द्रकी ग्रीसिके मिवा और कुछ भी अद्दा नहीं लगता। ऐसे श्रीहनूमानजी जो बन्दना करने हैं वे धन्व हैं।\*







## रामायणकालीन भौगोलिक दिग्दर्शन

( लेखक — श्री वी० एच० बडेर वी० ए०, एल-एल० वी०, एम० आ० ए० एस० )



इ समयसे रामायण एवं महाभारत प्रभानि ऐतिहासिक काल्य और पुराणोंकी विद्वानोंमें जाँच-पढ़नाल और तुलनात्मक वृद्धिमें भी विवेचन होने लगा है। रामायण महाभारतकी ऐतिहासिक परीक्षा अनेक पाश्चात्य और भारतीय विद्वानोंने की है। इनमें स्मी काल-गणनाकी दृष्टिसे और बौद्ध ग्रन्थोंके प्रमाणोंका दृष्टिसे मद्रासी लेखकोंने विशेष चर्चा की है। कर्णाटक, महाराष्ट्र, बंगाल आदिमें भी अन्यान्य दृष्टियोंसे वैदिक्यिक ग्रन्थोंका अध्ययन हुआ और हो रहा है। परन्तु भौगोलिक दृष्टिसे हम प्रत्यक्षका जितना विवेचन होना चाहिये उतना अभी नहीं हो पाया है। हम लेखमें हम मुख्यतः रामायणके भौगोलिक विषय पर ही विचार करना चाहते हैं।

भगवान् श्रीरामचन्द्रने वनवासके चौदह वर्ष भारतके किम-किम भागमें अमल या निवास करके विनाये, हम विषयमें प्राचीन ग्रन्थोंमें क्या प्रमाण मिलने हैं, हम लेखमें हमें विशेषकर इर्षापर विचार करना है।

जिता दशरथकी आज्ञा भिर चढ़ाकर श्रीराम सीता और लक्ष्मणके साथ वैशाख शुक्ल ३ को रथमें सवार होकर वनको चले। वे सबमें पहले वेदश्रुति नदीके तटपर आये। हमें ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय अयोध्या नगरी सरयु अथवा धावरा नदीके दक्षिण तटपर बसी हुई थी। सरयूके दक्षिण की ओर सबसे पहले मिलनेवाली नदी वेदश्रुति ही है जिसका वर्तमान नाम नानमा या नमसा है। महर्षि वाल्मीकिका आधाम जिस नमसाके तटपर था, वह नमसा दूमरी थी और गंगाके दक्षिण की ओर बहती थी। नानमा (वेदश्रुति) और नोमनीके मध्यमें दूमरी कोई नदी ही नहीं है। हम नमसा (वेदश्रुति) और सरयूके नटोंको महाराज दशरथने यज्ञमरणपां और वैदिक मन्त्रोंसे सुशोभित एवं पवित्र किया था। कालिदासके रघुवंश (६१०) में इसका वर्णन मिलता है। हमसे भी नमसाका 'वेदश्रुति' होना सिद्ध है। औंकुर दीक्षितने अपने भारतवर्षीय प्राचीन भू-वर्णनमें वेदश्रुति और तमसाको दो बतलाया है, परन्तु हमारे मतसे

यह ठीक नहीं। तमसाके तीरपर अर्थात् अयोध्यासे पन्द्रह नदीजपर श्रीरामजीने पहला सुकाम किया था, दीक्षितजीका यह कथन अवृक्ष है। किंवा भी ग्रन्थमें इसका कोई आधार नहीं मिलता।

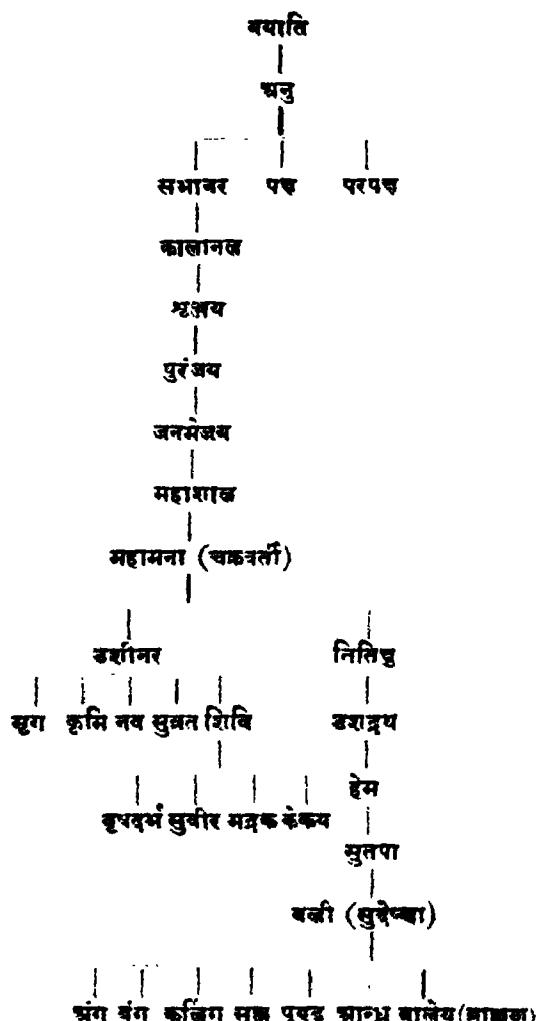
वेदश्रुति पार करनेके बाद दक्षिणमें पहलं गोमती मिली, उसके अनन्तर स्यन्दिका या आधुनिक सई नदी मिली। गोमती तो आजकल प्रसिद्ध ही है। स्यन्दिका (सई) उस कोशल-देशकी दक्षिण सीमापर थी, जो वैवस्वत भननुने अपने पुत्र इच्छाकुको दिया था। श्रीरामने सीतामें यही बात कही है।

इसके अनन्तर स्यन्दिकाके दक्षिणकी ओर स्थित छोटे-छोटे भोज-गंगायोंको पार करते हुए श्रीरामका रथ गंगाके निकट पहुँचा, यहाँ सुमन्त्र महित सभी लोग रथमें उतर पड़े। यह प्रदेश राम-ममता नियाद गुहके अधीन था। गुहकी राजधानी श्रंगवेरपुर थी, जिसका वर्तमान नाम सिंगरारै है। यह गाँव प्रयागमें १८ मील वायच्य दिशामें गंगा-नटपर बसा हुआ है। रात भर यहाँ ठहरकर दूसरे दिन सबरे गुहकी सहायतामें गंगापार करके श्रीराम दक्षिण तटपर पहुँचे।

श्रंगवेरपुरमें आगे पूर्वकी ओर गंगा-यमुनाके संगमपर आये। मार्गमें एक बड़ा वन मिला (वा० रा० २५४१२)। गंगा-यमुनाके संगमके पास भरद्वाजजीका आश्रम था और वहाँ प्रयाग लेत्र था। वहाँ एक रात ठहरे और वहाँ रहनेकी हृच्छा न होनेके कारण भरद्वाजके उपदेशानुसार वहाँसे दश कोमपर स्थित चित्रकूट-गिरिपर जानेके लिये दूसरे ही दिन श्रीरामचन्द्रजी रवाना हो गये। प्रयागके पास यमुनापार करनेके बाद एक कोस जानेपर नील-कानन नामक वन मिला। चित्रकूटके नीचे चित्रकूटा उर्फ मन्दाकिनी नामकी नदी बहती थी। हम चित्रकूट-पर्वतपर ही श्रीरामने अपनी पर्णकुटी बनायी।

श्रीरामचन्द्रके वनगमनके छठे दिन पुत्रशोकके कारण राजा दशरथका स्वर्गवास हो गया। उस समय भरत-शत्रुघ्न अपने ननिहाल केय-देशमें थे। केय-देशकी राजधानी 'गिरिवज' थी। देशको विना राजा के रखना विषत्तिमूलक समझकर दशरथके मन्त्रिमण्डलने सुख्य पुरोहित वशिष्ठसे कहा और वशिष्ठने भरत-शत्रुघ्नको लिवा लानेके लिये

दूसोंको केक्षय-देश भेजा ( वा० रा० २।३८।११ ) । उस समय केक्षय-देशमें अश्वपति नामक अश्वपति शासन करते थे । प्राचीनकालमें चन्द्रवंशमें अविं गोत्रोत्पन्न केक्षय नामक एक राजा हुए थे । उन्होंके नामपर देशका नाम केक्षय पड़ गया था । उन राजाका बंशावल इसप्रकार है —



शिवि, वृषदर्थं, सुवीर, मद्र, केक्षय एवं अंग, बंग, कुर्लिंग, सुक्ष, पुरद्, आनध आदि गणपुत्र जहाँ बसे, उन देशोंके नाम भी उन्होंके नामानुसार पड़ गये । ( वा०-पुराण ४।२४—३३ )

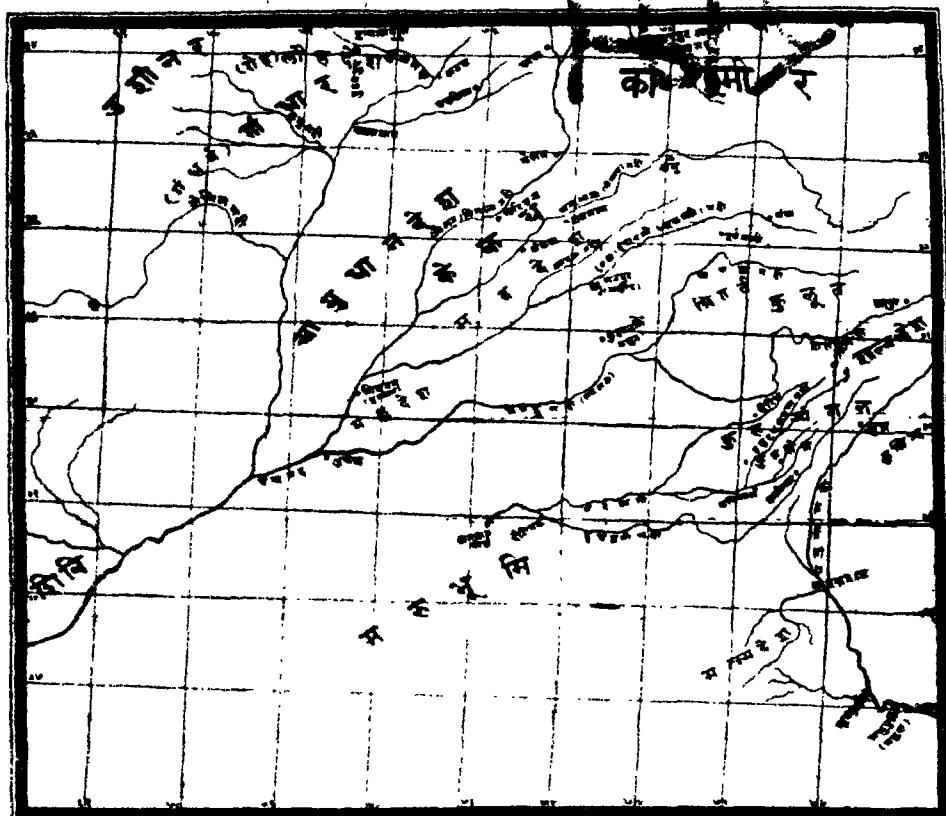
राजवंशके अयोध्याकालमें भरतको लानेके लिये दूस किस मार्गसे गये और भरत चतुरंगिनी सेना लेकर

अयोध्यालक किस मार्गसे आवे इसका बर्णन देखनेसे आत्म होता है कि वे दूत विपाशा अर्थात् आशुनिक व्यास तथा शासनाली\* नदीको देखते-देखते गये । पश्चात् चिनाव-नदीके उत्तरार विश्वासा ( बहात् या अद्वाम ) नदीके पास केक्षय-देशकी राजाज्ञी गिरिक्षज ( राजगृह ) मिलती है । इसका नाम गिरिक्षज भी पाता जाता है । मुसलमानोंके शासनकालमें गिरिक्षकका नाम बदलकर जबालपुर पड़ा है । सिफ़न्दर और पोरसकी जबाई इसी गाँवके पास हुई थी । अनरक कलिंगामने अपने प्राचीन भारतके भूगोलमें इस प्रकारकी विशेषज्ञतासे समीक्षा-परीक्षा करके वह निर्णय किया है, कि गिरिक्षक गिरिक्षजका अपनांश है । श्रीविश्वामीके भेजे हुए दूत नदीके कारण नदीके रास्तेसे ही गये । वे प्रथम अपरनाल-देशके पश्चिमकी ओर रास्ते प्रख्यातदेशके उत्तरमें बहनेवाली मालिनी नदीके सीरपरसे उत्तरकी ओर जाकर पुनः पश्चिमकी ओर लौटे । प्रख्यात आजकलके महाबल या मंडोरका नाम था । वह गाँव पश्चिम रुद्रालयदमें विजनीरके उत्तर आठ मीलपर बसा हुआ है । ग्रो० नन्दिखाल दे अपनी 'दी ज्योग्रामीकल डिक्षानरी आफ पृथ्यवट पृथक मैहिएवल इंडिया' ( The Geographical Dictionary of ancient and medieval India ) नामकी पुस्तकमें लिखते हैं कि मालिनी नदी पश्चिममें प्रख्यात-प्रान्त और पूर्वमें अपरनाल-देशके बीचमें बहती हुई अयोध्याके ऊपर २० मीलपर सरयू अर्थात् धाघरा नदीमें मिलती थी । इसके तटपर शकुन्तलाके पालक यिना कवव्यापिका आश्रम था । श्रीकिल्ल साहबकी रामायणमें आजकल जिसे सुका नदी कहते हैं, वही मालिनी नदी है ।

तदनन्तर वे दूस इन्द्रिनामुरमें गंगा-नदी पार करके पश्चिमकी ओर मुहे । इन्द्रिनामुर-शहरकी व्यापना पुस्तकाज्ञ कौरव-पारदर्वांके पूर्वज हम्मी गजाने की थी । गंगा-नदीकी गति बदल जानेके कारण इस प्राचीन शहरके अवशेष कहाँपर हैं, यह निश्चित नहीं किया जा सकता । परन्तु पुराणान्तर्गत बर्णनमें यह पता चलता है कि यह शहर मेरठके ईशानकोशमें २२ मीलपर गंगा-नदीके दाढ़िने तटपर था । बहाँसे आजकलका विजनीर शहर पास है । जिस पालाल ( उत्तर ) कुर्लिंग आदि देशोंमें से होते हुए शरवत्ता-नदीके किनारे-किनारे अनेक नदी-सरोवर पार करके कुर्लिंग ( कुर्लिन्द्र ) नगरमें वे जा पहुँचे ।

# कल्याण

रामायणकालीन भारतवर्ष नं० २



मानचित्रकार—श्री वी०पन्न०बडेर ।

राम

पाञ्चाल देश उत्तरी और दक्षिणी भागोंमें थीं विभक्त हुआ होगा, जिनमें उपर पाञ्चाल अर्थात् उत्तरसश्वत्तकी राजधानी अदिक्षिण थी। कुरुक्षेत्र का ग्रान्त हस्तिनापुरके बाह्यक्षेत्र में बर्तमान सरहिन्दभागका अरथ होते हैं। कुलहेत्रमें इस कुरु-जाङ्घातका समावेश था एवं श्रीरामचन्द्रके समवयमें इस ग्रान्तको कुरुक्षेत्र या कुलहेत्र नहीं कहते होंगे। कुलिन्दि दिल्लीके उत्तरमें स्थित सहारनपुर जिला है। शारदबदा नदी कीन-सी थी यह निश्चय नहीं किया जा सकता।

उत्तराखण्ड के अधिकारक तथा लेजेन्डिन गाँव और इन्हमती नदीको पार करके आगे बढ़े। इन्हमती नदीको आखड़ाका नदी कहते हैं। वह कालौज (काल्यकुम्भ) के पास गंगासे मिलती है। आगे यमुना पार किये जिना ही वे बालहीक (पञ्चाव) की ओर मुड़े। सुदाम-पर्वतके पाससे विपाशा (व्यास) तथा शारमती-नदियोंके देशते हुए गिरिवज (गिर्भक) नगरमें पहुँचे। सुदाम-पर्वतके आयुर्वेदिक नामका पता नहीं चलता।

भरतके साथ चतुरंगिणी सेना होनेके कारण उनको कुछ कुरुक्ष भाग स्वीकार करना पड़ा था। इसका वर्णन अयोध्याकाश्वर सर्ग ७१ से आगे मिलता है। उनको क्रमशः सुदामा, हादिनी और शत्रुघ्न नदी मिली। सुदामा उन्द्रभागा (विनाव) नदीका ही दूसरा नाम हो सकता है। हादिनी नदीका पाट अत्यन्त विस्तीर्ण था। इसपरसे अनुमान किया जा सकता है कि वह वर्णनमान रावी (इरावती) नदी होगी। अन्तिम शत्रुघ्न (सत्रुघ्न) तो प्रसिद्ध ही है।

नदनन्तर पेन्जाबहा और उम्मके समीप बहनेवाली शिलावहा नदी मिली। पश्चात् विशाल पर्वतोंको पार करके भरत चैत्ररथ बनमें आ पहुँचे और आगे पश्चिमकी ओर बहनेवाली सरस्वती नदी मिली।

शिलावहा नदीका ठीक-ठीक पता नहीं मिलता। तथापि सरस्वती (सुरसुही अथवा घाघर) नदीमें उत्तरसे आ मिलनेवाली अस्त्रा और कौशिकी नदियोंमेंसे वह एक हो सकती है। अस्त्राज्ञ जिलेके पूर्व भागका नाम चैत्ररथ वर्ण होगा। आगे सुचलु तथा सीता-नदीपरसे होते हुए पूर्व अझोशी गाँवके पास जा करके भरतजी दक्षिणी ओर मुड़े।

काश्मीरके उत्तर बाह्यक्षेत्रमें जो सुचलु और सीता नामकी नदियाँ बहती हैं, वे निज हैं। हमारी राथमें इसी नामकी नदियाँ अझोशीके पास भी बहती होंगी।

इसके बाद भरत श्रीरामल-देशके उत्तरमें स्थित प्रदेशमें होते हुए भास्त्रह नामके बनमें आ पहुँचे। इसके आगे चक्रवेद तुर्जिना उर्फ बेगिनी नदी मिली और हादिनी नदीको पार करके भरत यमुना-नदीके पास आ पहुँचे। वहाँ यमुनासीरपर उन्होंने सेनासहित विज्ञाम किया। यमुना पार करनेके उपरान्त अंगुष्ठान नामक ग्रामके पास गंगाको पार करना असम्भव देख भरत प्रावृत्तपुर आये और वहाँ भरतने ससैन्य गंगाको पार किया। इसके अनन्तर वे कूटिकोषिका नदीके समीप आये।

कूटिकोषिका नदी रामगंगासे मिलनेवाली अयोध्या ग्रान्तकी कोह नदी है, यह कोहकूटिका नदी पूर्वकी ओरसे रामगंगामें आ मिलती है और इसीका दूसरा नाम कोशिका भी है। कूटिकोषिका नदी ससैन्य पार करके भरत अमंवर्धन गाँवको गम्य और तोरण ग्रामके दक्षिणकी ओरसे जम्मूप्रस्थ गाँवमें पहुँचे। इसके बाद बरूप ग्रामक गाँव मिला। इसके आगे रम्यवनमें वास करके भरत पूर्वकी ओर चल पड़े और उजिहरन नगरमें पहुँचे। फिर बाहिनी नदीकी ओर चलकर तथा सर्वतोर्यात् नामके गाँवमें योद्धे समय निवास करके उन्होंने उत्तरगा नदीको पार किया तदनन्तर हस्तिपृष्ठक गाँवमें आ पहुँचे। अनन्तर कूटिका नदीको पार करके लोहिन्य ग्राममें कपिवर्ती नदीको पार किया। आगे एकसाल ग्रामके समीप स्थायुमती नदी उत्तरकर विनतगाँवके पास गोमती नदीका पार किया और किंवित नदारके पास सालवनमें आ पहुँचे, पुर्व रातोरात उस बनको पारकर अस्त्रोदयके समय अयोध्यामें आये। मार्गमें कुल सात रातें व्यतीत हुईं। वा० रा० २। ७१। १७ तक ऐसा वर्णन मिलता है और वा० रा० २। ७७। २२ में उस दिन दशरथ राजाके देहान्तके पश्चात् तेरहवें दिनके प्रारम्भ होनेका उल्लेख है।

तदनन्तर भरत श्रीराम-दर्शनार्थ चतुरंगिणी सेना-सहित निकले। उनके साथ कैहेयी, सुमित्रा तथा कौसल्याजी थीं। जिस मार्गसे श्रीरामचन्द्र चित्रकूट पहुँचे थे, उसी मार्गसे भरत भी चित्रकूट-गिरिपर रामचन्द्रकी पर्यांकुटीपर गये। चित्रकूट-गिरि भरहाज-आधम अर्थात् ग्रामगसे ३॥ योजन अर्थात् २४-२५ भीलपर था। जी. आई. पी. रेलवेके चित्रकूट स्टेशनसे ३॥ भील दूर यह पर्यात है।

आजहर इसका नाम कामतानाथगिरि हो गया है। चित्रकूटके उत्तरकी उपत्यकापर जो एक छोड़ोन शिला है वही सीतासेज है (वा० रा० २। २६)। यह स्थान जी. आई. पी. के बदौला स्टेशनके समीप ही दिखता है। इस पहाड़में बहुत-सी लोकों हुई हमारतें हैं। असु,

श्रीरामके दर्शन कर चुकनेपर श्रीरामकी आङ्गासे भरत आयोध्या लौटकर नन्दिग्राममें रहने लगे। इधर जब श्रीरामजी चित्रकूटपर वास कर रहे थे, तब सर नामक राष्ट्रसकी जनपदके सब तपस्वियोंको भगाने और सतानेकी शिकायत उनके पास आयी। अतएव उसका नाश करनेके लिये श्रीरामचन्द्रजी अत्रि-आश्रमकी ओर चल पड़े। इससे रफ़ह है कि अत्रिमुनिका आश्रम बन-प्रवेशमें था। बनमें प्रवेश करनेपर पहले विराध नामक राजस मिला। इसके पिताका नाम जब और माताका शतहदा था। विराधकी बाहोंको काटकर राम-लक्ष्मणने उसे पराम किया और गाढ़कर उसे मुक्ति दी।

विराधकी समाधिसे प्रनापी शरभंग मुनिका आश्रम १०-२० मीलपर होगा। श्रीराम भीना और लक्ष्मण महित उस आश्रमकी ओर पधारे। मार्गमें रामने लक्ष्मणको इन्द्र-रथ दिल्लाया। तपवधार, शरभंग अपिसे यिनका उनकी आङ्गासे राम मुतीक्षण मुनिके आश्रमकी ओर जानेके लिये रवाना हुए। इसके पूर्व द्वी प्रशंग मुनिके रामके समक्ष अग्नि-प्रवेशके हारा देह्याग करके स्वर्गं प्राप्त किया। मुतीक्षण मुनिका आश्रम मन्दिरिनी नदीके उद्गमकी ओर था।

उपर्युक्त बहुंनके अनुसार विराधकी समाधि, शरभंग मुनिका आश्रम तथा मुतीक्षण मुनिके आश्रमका बर्तमान पूर्व बुन्देलखण्डके पश्च रियासतमें होना न्यूष प्रकट होना है।

मुतीक्षण मुनिने रामने कहा,—‘हे राम! बानप्रस्थोंके विराट समुद्रावके नाथ आपके होते हुए भी अनायोक्ती तरह राजस उसका बासवार थाल करने हैं इसलिये आप उनका संरक्षण करें।’ श्रीरामने मुतीक्षण मुनिके आश्रमके मार्गमें सुन्दरके समान एक देवा पर्वत देखा (वा० रा० ३। ७)। मुनिका आश्रम एक घोर बनमें था। इस बनको दृश्यकारयका बदल आग मान लेनेमें कोई आपत्ति नहीं है।

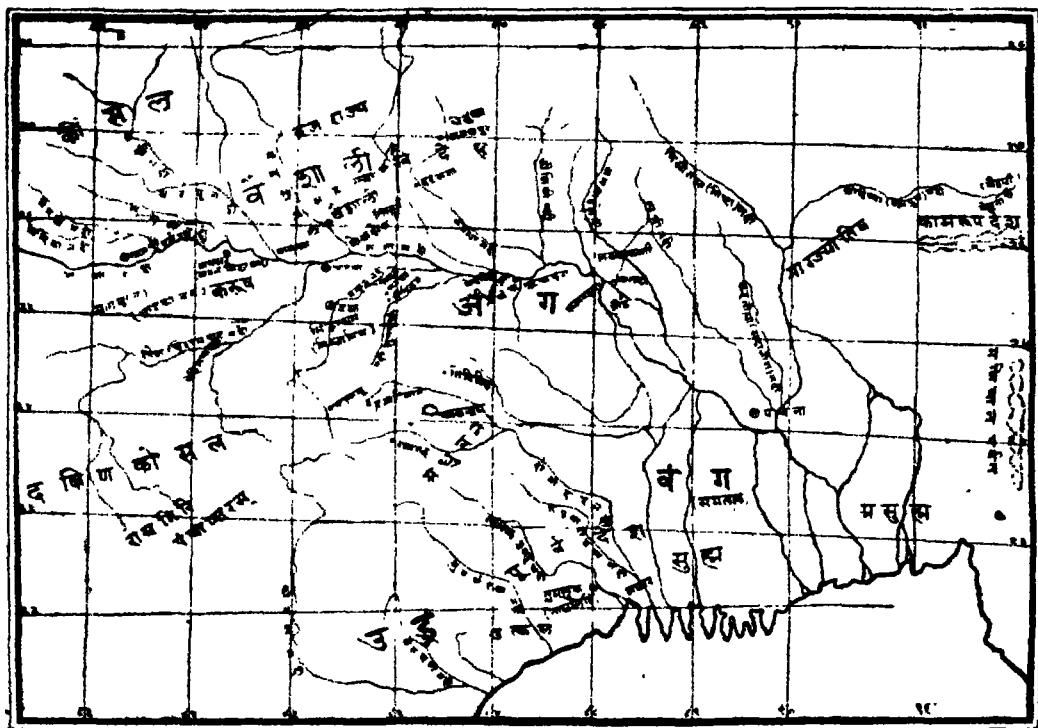
तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजी समग्र दृश्यकारय तथा उसमें वास करनेवाले अपिसोंहे आश्रम-दर्शनार्थ विदा हुए। मार्गमें उन तीनोंने द वर्गमीक्रका एक महाव् सरोवर देला। उस सरोवरके मध्य मारगसे सुस्वर गायत्री आवाज आती थी। अमंत्रत नामक मुनिने रामचन्द्रसे कहा कि ‘यह सरोवर मारुदक्षणं मुनिने दस हजार वर्ष और तपश्चर्या करके निर्माण किया है और इसका नाम पश्चाप्सर सरोवर है पूर्व यह सार्वकालिक है।’

इस पश्चाप्सर सरोवरके बारेमें प्रो॰ मन्दसाल ने अपने भौगोलिक कोष पृष्ठ ६५ में लिखते हैं कि, बोटा नामगुरुके मारुदलिक रियासत उदयपुर नामक स्थानमें यह सरोवर था। इस सरोवरका अधिकांश सूख गया है और वहाँ कुपु, बन्धनगुर आदि गाँव बस गये हैं। इस पश्चाप्सर तीर्थके आसपास अनेक मुनियोंके आश्रम थे। श्रीरामचन्द्रजी सब आश्रमोंमें घोड़-घोड़े समर्पणकर रहे। कहीं हम मर्हीने, कहीं साल भर, कहीं चार मर्हीने, कहीं पांच या छः मर्हीने, और कहीं साल दो सालसे भी अधिक रहे। इनप्रकार श्रीरामके दस वर्ष मुनियोंके आश्रमोंमें सुमासे बोते। तब रामचन्द्र फिर मुतीक्षण मुनिके आश्रमको लौट आये। वहाँ कुछ दिन रहनेके बाद उन्होंने अगम्य मुनिके आश्रमकी ओर प्रस्थान किया। मुतीक्षण मुनिके आश्रममें दिखिलकी ओर चार घोजनपर आगस्त अग्निके बन्धुका आश्रम था और उसके दिखिलमें एक घोजनपर आगस्त अग्नि वाम करने थे।

वहाँ कुछ काल व्यतीत करके श्रीरामचन्द्र मीता और लक्ष्मण महित आगस्त अग्निका आग्नानुसार पञ्चवटीकी ओर रहनेके लिये रवाना हुए। यह प्रदेश अगस्त्याश्रममें थो योजनके अन्तरपर था। इस प्रदेशपर राजसोंका बारवधार आक्षमण होता था। पञ्चवटी जाने हुए श्रीरामकी एक महाकाय गोध पर्वतमें भेट हुए। आवन्नर वे तीनों पञ्चवटी पहुँचे। इस प्रदेशका बर्दंज वा० रा० ३। १६ में है। इनके साथ जटायु भी था। पञ्चवटीमें पर्वशाला बनाकर उन्होंने एक आत्मांम व्यतीत किया। तपवधार, हंसमन्त-चतुर्था ग्रामम होनेपर एक दिन प्रातःकाल गवाणकी भगिनी शूरपंचला उस आश्रममें पहुँची, और सीताको मारनेके लिये नैवार होनेपर लक्ष्मणमें उसके बाक़-बाल काटकर उसे विकाल बाहर किया।

कल्याण

रामायणकालीन भारतवर्ष नं०३



मानचित्रकार—श्री वी०प॒ञ्च०घडे॑र।



इसपर वह सर-दूषणके पास आकर उन्हें श्रीरामसे युद्ध करनेके लिये प्रोस्ताहित कर अपने साथ ले आयी। औदृढ़ हजार सेना छोड़कर सर और दूषण जनस्थानसे चले। सर-दूषण रावण-राज्यके सीमा-रेखाएँ ( बा०रा०३१३ )। महा राज्ञ श्रीरामने उन औदृढ़ हजार राज्यसेंसहित सर, दूषण, विशिरा आदिका रथमें वध कर आया। उपर्युक्त पञ्चवटी, जनस्थान आदि प्रदेशोंका अभी तक सम्मोपजनक लियें नहीं हुआ है। बहुतसे विहानोंके मतानुसार जनस्थान और पञ्चवटी चर्तमान बन्हई प्रान्तके नासिक शहरके समीप गोदावरी नदीके उद्गम स्थानके पास थे। किन्तु कृष्ण विहानोंके मतानुसार प्राचीन समयमें गोदावरी नदीके मुखके समीप उसके उत्तर-दिश्य तटपर स्थित आन्ध्र प्रान्तके एक विभागका नाम जनस्थान था। पार्जीटर अपने 'Ancient Indian Historical Tradition' नामक पुस्तकके पृष्ठ २०८ में लिखते हैं:—

Rama travelled south to Prayaga then southwest to the region of भोपाल, then south across the नर्मदा and then to a district where he dwelt ten years. That was probably the छत्तीसगढ़ district, because that was called the दिलिङ कोसल and in it was a hill called रामगिरि. His long stay there connected it with his home कोमल, hence probably arose its name. Also later the people of दूर्व कोमल part of old कोसल through fear of जरासंध migrated to the south no doubt to this district. [ Vide J. R. A. S. of 1908 P. 323 & Mahabharat 2-13-591.] Afterwards he went south to the middle गोदावरी where he came into conflict with the राज्यस colony of जनस्थान.

श्रीरामचन्द्रके कालमें दिलिङ भारतमें सभ्य अर्थात् आवं लोगोंकी आवादी केवल जनस्थान और किलिन्डामें थी। उस समय पार्षदय लोगोंकी आवादी नहीं थी। उसी प्रकार कोच (कुल्य), चोल, केरल आदिको भी आवादी नहीं थी। यह पार्जीटर साहबका मत है। इससे इस सहमत नहीं है क्योंकि यथाति राजाके पाँच पुत्रोंमें तुरंसु

नामक पुत्रकी वंशावली आयः सब पुराणोंमें निश्चिह्नित प्रकारसे वर्णित है।

|         |                     |                     |     |
|---------|---------------------|---------------------|-----|
| यथाति   |                     |                     |     |
|         | तुरंसु              |                     |     |
|         | विल्लि              |                     |     |
|         |                     | भर्ग (भागवन११२३।१६) |     |
|         | गोभानु (भानुमान.)   |                     |     |
|         | त्रिभानु (त्रिभानु) |                     |     |
|         | करंधम               |                     |     |
|         | मरस                 |                     |     |
|         | दुर्घट (पौरव)       |                     |     |
|         | शास्त्र             |                     |     |
|         | जनापीठ              |                     |     |
| पार्षदय | केरल                | कुल्य (कोंक)        | चोल |

तेवं जनपदाः कुन्याः पाण्डवाश्चोक्ताः सकोलाः।

( वायुपुराण ५०।६ )

अर्थात् इन राजपुत्रोंने अति प्राचीन कालमें दिलिङ भारतमें अपने नामपर आवादी कायम की थी। प्र०० नन्दलाल देके अनुसार औरङ्गाबाद अथवा देवगिरि ( दौलताबाद ) के समीपवर्ती प्रदेशका नाम जनस्थान था। इस मतको न माननेके निश्चिह्नित कारण हैं—

( १ ) 'अर्धं-राघव' के कर्ता सुरारीका काल शालिवाहनका ३ वाँ राक है। उसने अपने नाटकके चौथे और पाँचवें अड्डोंमें श्रव्यमूक पर्वतको जनस्थानके पास ही बतलाया है। श्रव्यमूक-किञ्चिन्धा दिलिङमें तुङ्गभद्रा नदीके दिलिङ तटपर थे, ऐसा 'प्रसङ्ग-राघव'-नाटककार जयदेव कविने स्पष्ट बतलाया है। जयदेव कवि शालिवाहनकी तेरहवीं शताब्दिमें हो गये हैं। इसीप्रकार शालिवाहनकी आठवीं शताब्दिमें हुए बालरामायणके कर्ता राजशेखर कविका भी यही मत है।

( २ ) 'उत्तररामचरित'कार प्रसिद्ध कवि भवभूतिके 'महावीरचरितम्' अङ्क २ से भी निश्चिह्नित वार्ते स्पष्टतः प्रकट होती हैं—

अनस्थान, पञ्चवटी, जटायुका निवास-स्थान, प्रस्तवय गिरि आदि सब स्थान गोदावरी के मुहानेके निकटवर्ती प्रदेशमें थे और जनस्थानके मध्यभागमें प्रस्तवय गिरि था। (महाबीर चरितम् १।१५)

(३) ऐते ते कुहरेयु कुहरेयु गदगरनद० आदि लोकोंसे गोदावरी नदीके संगमके समीपका प्रदेश जनस्थान सिद्ध होता है।

(४) कालिकासके रघुवंश (६।६२) के अनुसार जनस्थान पावड्यदेशकी सीमाके विस्तुत समीप था। किंवद्वाना दोनों प्रदेश एक दूसरेसे लिखे हुए थे। कदाचित् गोदावरी नदीका दक्षिण तीर पावड्यदेशकी उत्तर सीमा हो।

(५) शालिकाहनकी तीसरी शताब्दिमें विमलचन्द्रसूरि नामक एक जैन ग्रन्थकार हुए हैं। उन्होंने रामचरितपर 'पश्च चरित्र' अथवा 'पउम चरित्र' नामक ग्रन्थ लिखा है। उसीके आधार पर हेमचन्द्रने अपने 'जैन रामायण' नामक ग्रन्थकी रचना की है। जैन रामायणमें लिखा है कि दृष्टदक्षारस्थान्तरं कर्णरवा-नदीके तटपर जब भीरामचन्द्रजी पहुँचे, तब वर्षा छह समीप आ गयी थी, इस कारण भीरामने छठमण्डको समुद्र तटसे न तो बहुत दूर और न बहुत पास किसी प्रशान्त स्थानमें कुटी बनानेकी आज्ञा थी। वह चारुमाल उन्होंने कौशरवा नदीपर बिताया। इससे स्पष्ट है कि जनस्थान गोदावरीके मुहानेके समीपके प्रदेशका नाम था। कर्णरवा नदीके दक्षिणमें जनस्थान और दक्षिणधा ये और कर्णरवा नदी नर्मदा और तासीके दक्षिणमें थी। जनस्थान जानेसे पहले आगमें समुद्र पहनेका वर्णन जैन-रामायणमें है। इससे भी उपर्युक्त सिद्धान्तका ममर्थन होता है। सर राहसका निवासस्थान समुद्रतटपर था और जिस स्थानपर रामचन्द्रने सरका वध किया, वह गाँव अब भी 'खरवाड़ी' के नामसे प्रसिद्ध है और एवं किनारेपर झड़ोक्के उत्तर ८ मीलकी दूरीपर है। वहाँ सर-वध-सम्बन्धी बहुत-सी ग्रामीन दन्तकथाएँ भी प्रचलित हैं।

जनस्थानसे तीन कोस चक्रनेपर कौशारवय मिला। तोहिल पर्वतकी डण्डकापर रामने सुख्ख सूगका वध किया, और जटायुका आन्धेष्ठिकर गोदावरीके तटपर पहुँचे। राववके सीतापहरक चरनेपर भीरामचन्द्रजीने उन्हें लोगोंके लिये अनस्थान छोड़ा। कौशारवयके पूर्व तीन कोसपर नर्तगाम बन था। आगे एक गहरे दर्तमें उन्हें लोगोंकी राहसी मिली। उसे मारकर भीराम-जन्मस्थान

गहन बनमें प्रवेश किया। वहाँ एक कोस लग्भे शरीरवाला कवन्ध राष्ट्रस मिला। कवन्धको मुकि देकर राम-जन्मस्थानसकी सकाइसे सुमीपसे मिलता करने गये। असु,

बेलारीसे पूर्वकी ओर समुद्र-तटतक, छोटे-बड़े पर्वतोंकी पूर्वसे पश्चिम ओर कैली हुई शेषियाँ हैं। बेलारीके पूर्व छः मीलपर लोहाघास नामका एक पर्वत है, उसे प्राचीन समयमें कौञ्ज पर्वत कहते थे। वहाँ एक तीर्थ है। उस चेत्रमें प्राचीन कालमें अगस्त्य ऋषि आये थे। कौञ्जारवय आति गहन था, ऐसा रामायणमें वर्णन मिलता है। कृष्ण नदीके दक्षिण तटपरके गुरुठकड़ और नंदगाम प्रदेशोंको प्राचीन समयमें कौञ्जारवय कहते होंगे।

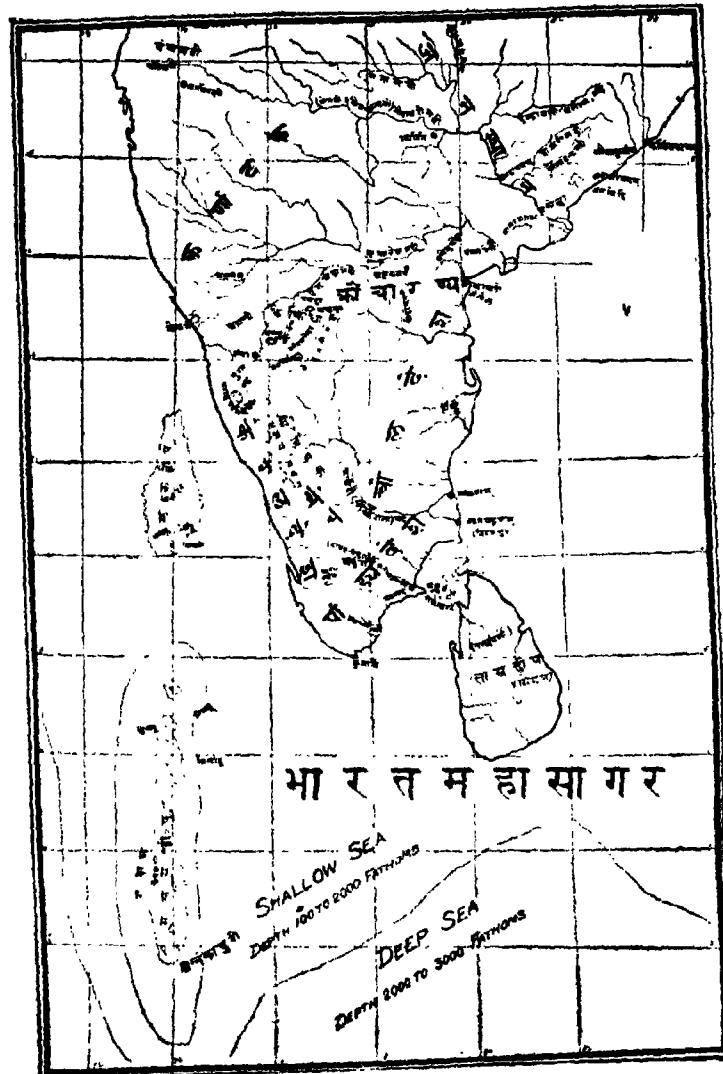
कौञ्जरवा नदी कौन-सी थी, वह निश्चित नहीं बताया जा सकता। परन्तु वह गोदावरीके दक्षिणमें होनी चाहिये, इसमें सन्देह नहीं। प्राचीन ग्रन्थोंमें कृष्ण नदीका नामकहीं भी दिलचारी नहीं देता। भासुनिक कुछ ग्रन्थोंमें कृष्णवेशीके नामसे इसका डलखेल मिलता है, कदाचित् कौञ्जरवा कृष्ण नदीका ही प्राचीन नाम हो। रामायण नथा विमल सूरिके ग्रन्थान्तरं वर्णनसे ऐसा भावनेमें कोई आपसि नहीं प्रतीत होती।

सन्ध्याकाल भीराम-जन्मस्थाने कल-फूलयुक्त उत्तर कुरु देशके सहश नन्दनवनके समान एक सुन्दर बनमें प्रवेश किया और वे पवासरके पश्चिम तटपर जा पहुँचे। पवासरके सामने अव्याप्त मूल पर्वत था। पवासरके पश्चिम तीरपर उन्होंने कुछ कालतक बिदाय किया। वहाँ शब्दी भीरामके चित्रकूट छोड़नेके समयसे उनकी प्रतीक्षामें आश्रम बनाकर रहती थी। उस प्रदेशका नाम 'मतङ्ग बन' था। उपर्युक्त 'मतङ्गाभ्य-बन' इस बिचारसे दूसरा है। होना चाहिये। इस 'मतङ्ग बन' में मतङ्ग ऋषिने प्रथक्स्यकी बेदीकी स्थापना की थी। वहाँ उस सुनिके प्रभावसे एकत्रित होकर आये हुए सहस्रार शब्दीने भीरामको दिलचारी। उस सहस्रार-तीर्थमें भीरामने बड़ी अद्भुत स्नानकर पिण्ड-तपेश किया। (३० रा० ३।७४।२६ तथा ३।७५।४)

सीतादेवीका हरय करके रावव एव्यासरतक पश्चिमकी ओर सुंद चरके गया, एकात् उस सरोवरको पार कर लेनेपर वह लहड़ा-नगरीकी ओर अर्धांश दक्षिणाभिमुख होकर चक्रमें लगा। तबनन्धर रावव अपनी कालजागिनी सीताको गोदमें लेकर अनुपसे कूटे बालकी तरह आकाश-मार्गसे नदी, पर्वत

कल्याण

रामायण कालीन भारतवर्ष



दक्षिण भारत और दक्षिण (मानानित्रकार बी ३० पच० वेटर)

2121196

और सरोवरोंको पार करता हुआ सरटेसे निकल गया। वह तिमि नामक मरम्य और नक्कोंके तथा बख्खके अवश्य लिकासस्थान-सागरको छाँचता हुआ चला। (वा० रा० ३।१४।८-८)

मध्यभारतमें रीवाँ प्रान्तके दक्षिणमें सौ मीलके अन्दर ही बहा थी, येमा आग्रहपूर्वक सिद्ध करनेवाले महानुभावोंने वाल्मीकीय रामायणान्तर्गत उपर्युक्त वर्णनको ज्ञा भी महसूब न देकर मध्यभारतमें ओ एक बड़ा दक्षदल था, उसीको सागर मान लिया है। उसी प्रकार वे रामायणोक्त समुद्रकी दूरी और जग्धाई-जौहाई तथा जग्धाकी जग्धाई-जौहाईके वर्णनको भी अतिशयोक्ति कहकर वाल्मीकिके आर्य काव्यको अनुसृत कथाओंका उपन्यास मानते हैं।

अस्तु, परपासरके समीप ही पव्या नदी बहती थी। बेहारी जिलेका हम्पी लेत्र ही पव्या है और पव्या नदी दस लंत्रके पाससे बहती है। जिसप्रकार काठियावाड़ और मारवाड़की भाषामें 'स' के स्थानपर 'ह' के उपयोग करनेको परिषट्टी है, उसी प्रकार कनाडी भाषामें 'प' के स्थानमें 'ह' का प्रयोग होना प्रसिद्ध है।

श्रीरामने एक वसन्त ऋतु ज्ञायमूक पर्वतपर वितायी। वहों रहते समय हनुमानजीका प्रेरणासे उनकी सुग्रीवके साथ मैत्री हुई। वालिके भयसे सुग्रीव माल्यवान पर्वतपर रहता था, और वालि किञ्चिन्धा नारीमें रहता था। वालि इतना बलवान् था कि वास्तु सुहृत्से उठकर पश्चिम समुद्रसे पूर्व समुद्रतक तथा दक्षिण समुद्रसे उत्तर समुद्र-तक प्रतिदिन चक्र लगा आया करता था।

सुग्रीवका कार्य करनेके लिये रामचन्द्रजीने ज्ञायमूकसे किञ्चिन्धा जानेका निश्चय किया। सप्तजन-सुनिके आश्रमसे किञ्चिन्धा विशेष दूरीपर थी। सप्तजन सुनिका आश्रम तथा सप्तसागर तीर्प एक ही प्रदेशमें थे। वहाँसे ज्ञायमूक पर्वत करोब ही होना चाहिये। श्रीरामजी उस पर्वतसे सुग्रीवको साथ लेकर तथा अपना प्रचरण धनुष लेकर रक्षा हुए। उनके साथ हनुमान्, नल, नील और तार नामक वीर-कानून भी थे। मार्गमें निर्मल नीरवाहिनी समुद्रगामिनी नदियोंका उग्घोने आवलोकन किया। रासेमें एक आवश्यक आवश्यकनक बन उग्घोने किया। उसी बनमें सप्तजन-सुनि सप्तस जलमें शोर्णासनसे (सिर नीचे और पैर ऊपरकर) तपश्चर्या करते थे, श्रीराम उनकी बन्दकाक जागे रहे। (वा० रा० ४।१३।२६)

इसके पश्चात् वालि-सुग्रीवका दुद हुआ और श्रीरामकी कृपासे वालिका बध हुआ। वालिकी अन्येष्टि श्रीरामने एक नदीके तीरपर अंगदद्वारा सम्प्रभ करवायी। निःसंशय वह नदी आत्मिक तुक्तभद्रा ही थी। वालिका वहन जिस स्थानपर किया गया था, वह स्थान आजकल भी देखनेको मिलता है।

पश्चात् श्रीरामने सुग्रीवके राज्याभिषेक तथा अंगदके यौवराज्याभिषेक करनेकी हनुमानको आज्ञा की, और वर्षोंका प्रथम मास आवश्यक हुए हों जानेके कारण प्रस्तवण गिरिपर वास करनेकी अपनी हृष्टा सुग्रीवमें प्रकट की। सुग्रीवने वर्षाकाल समाप्त होनेपर अर्थात् कार्तिकमें रावणवधके लिये यह करनेका श्रीरामको आश्वासन दिया। श्रीरामने प्रस्तवण-पर्वतके शिखरपर एक महान् विश्वीर्ण गुहामें निवास करनेका निश्चय किया। उस गुहाके पास एक रमणीय सरोवर था और एक अत्यन्त निर्मल जलवाली पूर्ववाहिनी नदी बहती थी। रमणीय किञ्चिन्धापुरी बहाँसे बहुत दूर नहीं थी। (वा० रा० ४। २७ )

उपर्युक्त वर्णनसे किञ्चिन्धा-नगरीका विन्द्य पर्वतके समीप होना किसी प्रकार भी नहीं माना जा सकता, क्योंकि विन्द्य पर्वतके पाससे पूर्वकी ओर बहनेवाली कोई नदी नहीं है, उपर्युक्त नदी निःसंशय तुक्तभद्रा नदी ही है। ज्ञायमूक, पव्या, माल्यवान पर्वत, प्रस्तवण-गिरि, किञ्चिन्धा आदि सब स्थान आज भी हम्पी लेन्ट्रके आस-पासके प्रदेशमें प्रसिद्ध हैं। और निःसंदेह यह प्रदेश अत्यन्त प्राचीनतम प्रतीत होता है। उसी विभागके पास ही आचीन विजयनगर राजधानीके भग्नावशेष आब भी इंगोचर होते हैं।

'एक विद्वान् का मत है कि (१) किञ्चिन्धा विन्द्यपर्वतके उत्तरमें गंगा-यमुनाके पश्चिम और चित्रफूटके नैऋत्यमें थी तथा रियासत रीवाँका कान्धो नामक प्राम ही प्राचीन किञ्चिन्धा है और (२) अमरकथटक ही प्रस्तवण गिरि है।' इस मतके विलम्ब एक दूसरे विद्वान् लेखकने वर्तमान अनागोदीको ही प्रबल प्रमाणोंसे किञ्चिन्धा निश्चित किया है। इसी लेखकने यह सिद्ध किया है कि किञ्चिन्धा, हम्पी (पव्या), अनागोदी, विजयनगर, विद्यानगर आदि सब एक ही प्रदेशमें तुक्तभद्राके तीरपर थे। परन्परागत जानकारी भी इसी मतको पुष्ट करती है। अनागोदीसे पव्यासर दो भील पर हैं। माल्यवान-पर्वत पास ही है। पव्या (हम्पी) गाँवसे आर भील दूर

अनागोदी (किञ्चिन्धा) है और मार्गमें चक्रतीर्थ है। विष्णुपात्र-सेत्रकी सीमाके अन्दर किञ्चिन्धा, पश्चासर, माल्यवान-पर्वत, शश्यमूक-पर्वत, इन सबका समावेश हो जाता है। अन्तीनी पर्वत भी कठीब ही है। अनागोदीसे वालिकी गुहा ॥। भीलपर है। प्रस्तवण पर्वत माल्यवान् पर्वतसे सटा हुआ ही था। जयदेव कविका अभिप्राय भी ऐसा ही है। 'प्रस्तवाध' नाटकके चर्चानसे शश्यमूक-पर्वत और किञ्चिन्धाका तुङ्गभद्रा नदीके दक्षिणमें होना संशयातीत है। वालरामायण-कार कवि राजरेखर ( शक ८०० - ६०० ) ने रामवनवासका बहुत ही व्यवस्थित वर्णन किया है। उससे भी किञ्चिन्धाका निःसन्देह तुङ्गभद्राके समीप होना ही प्रमाणित होता है। प्रसिद्ध कवि भवभूतिका ऐसा स्पष्ट अभिप्राय मिलता है कि किञ्चिन्धा-नगरी विन्ध्य-पर्वत और गोदावरी नदीके दक्षिणमें बहुत दूर थी।

जैन-कवि विमलसूरिका भी यही मत है कि दण्डकारशयके आग्नेयमें समुद्रके पास तथा कर्णवता-नदीके दक्षिणमें बहुत दूर जनस्थान था और कर्णवता-नदी नर्मदा तथा तासी नदियोंके दक्षिणमें थी, और किञ्चिन्धा उसके भी दक्षिणमें थी।

वराहमिहिरकी बृहत्संहितामें वर्णित भूवर्णनमें आग्नेय देशोंकी सूचीमें किञ्चिन्धा-देशका नाम दिया हुआ है। पर उसमें ठीक निश्चय नहीं हो सकता।

महाभागत ( सभायत्र ) में दक्षिणके देशोंकी सूचीमें किञ्चिन्धाका नाम आया है। अनः किञ्चिन्धा-नगरी तुङ्गभद्राके सट-प्रान्तमें थी, यह बान मिन्द होती है।

ग्रो० हायमन भी किञ्चिन्धाको दक्षिण भारतके मैसूर राज्यमें बनताते हैं। ( Classical Dictionary of Hindu Mythology, Geography etc. Page 150 )

इसी प्रकार सीतान्वेषणके लिये श्रीराम-लक्ष्मण जब दक्षिणकी ओर चले तब मार्गमें उन्हें पश्चिमेष्ट, मरणोन्मुख जटायु मिला। उसने रावणका आकाशमार्गसे सीताको दक्षिणकी ओर ले जानका समाचार श्रीरामसे निवेदन किया। जटायुकी अन्येष्ट किया श्रीरामने स्वयं सम्प्रस्त की। जिस स्थानपर यह घटना हुई वह स्थान आजकल मद्रास-प्रान्तके गवडूर-जिल्हेमें विनुकोंडा-ग्रामके समीप एक पहाड़ीपर बतलाया जाता है। विनुकोंडाका अर्थ 'समाचार मिलनेका स्थान' है। ( Provincial Geographies of India, Madras Presidency. Page 280. ) आगे श्रीराम कौशलग्रन्थमें पहुँचे जिसका चर्चन उपर दिया जा चुका है।

विलार-भवसे वहाँके समस्त भूगोल-वर्णनका विस्तृत विचार वहाँ करनेकी हमारी इच्छा नहीं है। अन्य किसी लेखमें इसपर विचार किया जा सकता है। असु।

सुधीवकी आज्ञासे गये हुए बानर वीरोंको एक मासके अन्दर सोज करके औट आनेकी विशेष आज्ञा थी। तबलक राम-खक्षमय प्रस्तवण-गिरिपर ही बास करते थे। सीताकी लोंगोंमें गये हुए बानर वीरोंमें हनूमान्के सिवा और किसीका विशेष वर्णन रामायणमें नहीं मिलता। अङ्गद तथा तारको लेकर हनूमान्जी चले थे वे दूर जाकर विन्ध्य-पर्वत ढूँढने लगे, वहाँ कहदुनामके अविसेफनकी भेट हुई। ढूँढँढूँढकर थक आनेपर वे बानर विन्ध्य पर्वतके नेत्रव्यामें आये। उन्हें वहाँ अक्षविल नामकी प्रचण्ड गुहा मिली। उस विवरमें मेरसाथर्थिकी स्वयं प्रभा नार्जी कन्दा, जो हैमा अप्सराके स्थानकी दशा कर गही थी, उन्हें मिली। यह बानरवीर जब उस गुफामें थे, तभी उन्हें मिला हुआ एक मासका समय समाप्त हो गया, जिससे सब बानर बहुत ही घबड़ा गये। तब उस स्वयंप्रभाने अपने योगबलसे सब बानरोंको उस विवरके बाहर विन्ध्य-पर्वतकी उपत्यकापर पहुँचा दिया। अङ्गदने कहा कि आश्विन( अश्वयुज ) महानंका अवधि समाप्त हो गयी। ( वा० रा० ४.२३.६ )

आगे हनूमानके मुखसे यह बाक्य निकलते हैं कि 'राजा सुधीवकी आज्ञाके कारण सीताका पता लगाये बिना जब यहाँसे लौट जानेपर हमारी जान जाना निश्चित ही है तो इस यहीं पवित्र समुद्र-नारगपर अज-जल त्याग करके क्यों न पाया दे दें।' ( वा० रा० ४.१३.२० )

इसपर सब बानर अनशन करनेके निश्चयसे जब बैठ गये, तब जटायुका बलवान् भाई सम्पादि वहाँ आया और बानरसूरी अपने भृत्यको देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ। पर अङ्गदके मुख्यमें जटायुका किम्बा सुनते ही पूर्वनिहास सुननेकी उसे प्रश्न इच्छा हुई। अङ्गदने उससे जटायुवधकी तथा कुल रामकहारी सुनायी। इसपर उसने सीताका वृत्तान्त तथा रावणकी छहाकाका बृत्तान्त बानरोंमें निवेदन किया—

इतो द्विष्टे समुद्रस्य सम्पूर्णे शतयोन्नने ।

तस्मिन्लङ्घातुर्या रथा निर्मिता विश्वकर्मणा ।

( वा० रा० ४.१८.२० )

और लाङ्कामें रावणके अन्तापुरमें सीताके रहनेका स्थान बतलाया। चालुमर्ता विद्याके योगसे वह सी बोलनसे दूरका दृश्य भी देख सकता था और उसी विद्यासे प्राप्त

दिव्य दृष्टि के कारण वह पता उसने बताया था। पश्चात् सउपातिके निवेदन करनेपर बानर उसे समुद्रतटपर ले आये, और वह सुपार्व पक्षीसे उसे जो संवाद प्राप्त हुआ था उसे कहने लगा—

‘सुपार्व महेन्द्र-पर्वतका द्वार अवश्य करके अपने भक्षणी प्रतीक्षामें जब बैठा था तब रावण सीताको ले जा रहा था और रावणके गिरिगिरानेके कारण उसने उसे जाने किया।’ तदनन्तर जटायुके नामसे समुद्र-तटपर तर्पण करके सम्पाती जब किर पर्वतपर आ बैठा, तब उसने कहा— ‘वह दक्षिण समुद्रके तटका विन्ध्य-पर्वत है, यहाँ पर एक निशाकर ऋषि आश्रममें तपश्रयों करते थे, उनके स्वर्ग मिशाइनेके पश्चात् आठ हजार वर्ष मैंने हस पर्वतपर विताये।’ ( वा० गा० ४।६०।८ )

मध्यान्तीको हस रामकार्यके करने ही पहुँच आ जानेका वरदान मिला हुआ था। अतः बावरोंसे सीता-समाचार कहनेही उम्मेद पहुँच फिर आ गये नव वे सब दक्षिण समुद्रके उत्तर नीरपर जाकर ठहरे।

उपर्युक्त वर्णनमें यह स्पष्ट है कि भारमकी दक्षिण सीमापर जो पर्वत था उसका नाम विन्ध्यादि था। नमेदा नदीके उत्तरका विन्ध्यादि उत्तरविन्ध्यादि है। अङ्गदका यह दल और सउपाती कुमारी-अन्नरीपके प्रदेशमें उहरे थे, ऐसा वाल्मीकीय रामायणमें स्पष्ट होता है। महेन्द्र-पर्वतके शिवरपर चढ़कर हनुमानने भौ योजन विस्तीर्ण उम्मेद समुद्रको लांधनेकी तैयारी की। वह प्राणवायुको हृदयमें निरुद्ध करके उड़े और प्रचण्डरूप धारण करके आकाशमार्गसे जाने लगे। उम्मेद समय समुद्रपर जो उनकी छाया पड़ी, वह दम योजन चौड़ी नथा नीस योजन लगड़ी थी। ( वा० रा० १।१०।४ ) हनुमानजी जब आकाशमार्गमें प्रवाय कर रहे थे, तब इच्छाकुलाधिपति मगर राजा के हारा बढ़ाये हुए समुद्रने उसी कुलमें उत्पक्ष रामको मद्रायता करनेका उक्तुष्ट विचार किया। नव उसने अपने जलमें आध्वादित सुवर्णमय पर्वतश्रेष्ठ मैनाको हनुमानकी महायता करनेके लिये उदकके बाहर आनेको कहा। आचानक मैनाक-पर्वतके बाहर निकलनेके कारण हनुमानको वह एक विष प्रतीन दुष्टा और हनुमानने अपने बड़ःस्थलके धड़ोंमें उसे नीचे गिरा दिया।

तत्पश्चात् सुरसा नाझी नागमाताके मुखमें जाकर अङ्गुष्ठ-प्राण देहसे बाहर निकलकर तथा उसके गर्भको मिथाकर हनुमान् आगे बढ़े तब उन्हें सिंहिका राक्षसी मिली जिसने

उनकी छाया पकड़ ली। तब हनुमान् अपना शरीर बढ़ाया और किर छोटा रूप धारण करके वे उसके मुखमें गये और सुंह फाढ़कर निकल आये। पश्चात्—

ददर्श तं भूत्वेव विविष्टुमपूर्णितम् ।

दीर्घं शास्त्रमृगश्चो भूत्वेष्वनानि च ॥

( वा० रा० ५। १। २०५ )

आकाशमार्गमें उड़ते हुए हनुमानने सौ योजनके अन्तमें एक बनपंसि देखी और नाना प्रकारके वृक्षोंसे सुशोभित हीप और उम्मेद उपवन देखे। इसके बाद नदियोंके मुख भी देखे। तदनन्तर हनुमान् शरीर छोटा करके उस हीपके त्रिकूटाचल-पहाड़के लम्ब नामी शिखरपर उतरे और वहाँसे लङ्घा-नगरीका निरीक्षण किया। तापश्चात् सीतादेवीके दर्शनकर हनुमानने उनसे राम-लक्ष्मणका सारा वृत्तान्त निवेदन किया और उनको आश्रमन दिया। श्रीरामचन्द्रके लिये सीताका सन्देश तथा मिलनका चिह्न ( महादानी ) लेकर हनुमान् वहाँसे जाए। लौटती बार रास्त-वीरोंको अपने बाहुबलका यथेष्ठ पराक्रम विस्तृलाकर बीचमें अरिष्ट नामके एक श्रेष्ठ पर्वतपर आरुह हुए ( वा० रा० ४।१६।२८ )। वह पर्वत ४० कोस ( ८० मील ) चौड़ा तथा १२० कोस ( २४० मील ) ऊँचा था। यहाँसे उड़नेके लिये प्रचण्डरूप धारणकर हनुमान् आकाशरूपी समुद्रमें तरने लगे और कुछ समयके बाद महेन्द्र-पर्वतके दस शिखरपर आ पहुँचे जहाँ जाउवन्त, अङ्गदादि बानरथे और वहाँ उनको लङ्घा का भव हाल सुनाया। वहाँसे राम-दर्शनार्थ चले और सुग्रीवके संरक्षित मधुवन नामक बनमें आ पहुँचे। वहाँमें प्रवृत्तण-गिरिपर जाकर हनुमानने सीतारकी खोज एवं लङ्घादहन आदि सब समाचार रामचन्द्रसे निवेदन किये तथा सीता देवीका दिया हुआ चिह्न देकर उनका वृत्तान्त कहा। इसके पश्चात् राम-रावण युद्ध हुआ और उम्मेद रावणका वध करके श्रीरामने सीताको छुड़ा किया।

उपर्युक्त वाल्मीकीय रामायणके विस्तृत वर्णनमें बानर राजा किस प्रदेशपर राज्य करते थे तथा लङ्घा-नगरी कहाँ थी, इसका पता चल जाता है। लङ्घा के सउबन्धमें ‘रावणकी लङ्घा कहाँ थी?’ शीर्षक प्रबन्धमें हमने लङ्घा का स्थान-निर्णय-सउबन्धी अपना मत प्रकट किया है, पाठक उसे प्रयानसे पढ़ें।

रामायणमें जो और भी भौगोलिक वृत्तान्त मिलता है, उसे हो सका तो दूसरे लोकमें देनेका विचार करके हम इस देखको समाप्त करते हैं।

## रामायणकालीन स्थान-परिचय

( लेखक श्रीयुत वी० एच० वडेर वी० ए०, एल-एल० वी०, एम० आर० ए०एस० )

अगस्त्याश्रम-यह भारतम् रोहिणा-पर्वत पर स्थित है। यह पूर्वोपशिष्टी धाटोंके नीचे दण्डिणा-भागमें काढ़मम्-पर्वतसे नीचे स्थित है। यह पृथिवीतज्ज्ञसे ६२०० फीट ऊँचा सूच्याकार पर्वतश्वर है। अगस्त्यजी वहींपर वास करते थे। काढ़मम्-पर्वत त्रायनकोरकी सीमापर अवस्थित है।  
(Provincial Geography of Madras)

आगस्तिपुरी-यह जासिकले २४ मील दण्डिणा-पर्वतके कोशपर है।

अद्रितवती-झोटी गणहक

अर्धगंगा-कावेरी।

अपर ताल-इसे नक्कोरमें दिव्यलाला है ( देशान्तर ७६° अक्षांश २६°३०' )

अपर निंदेह-रामपुर तथा दीनाजपुर।

अमिसारी-उत्तरी पश्चात्का हज़ारा जिला।

अद्रि-आश्रम-दण्डकारयनकी सीमापर

अबुद-आबू पर्वत

अयोध्या-प्रसिद्ध है।

अक्षगुण्डपुरा-शारद्धल

अद्रवतीर्य-गंगा तथा काली नदीका संगम।

अहिन्दुत्र-उत्तर पाञ्चाल ( लड्डलवर्ष ) की ताल्कालिक राजधानी।

अंग-यह प्रान्त भागलपुरके समीप था। इसकी राजधानी चम्पापुरी गङ्गाके तीरपर थी। इसकी पश्चिमी सीमा गङ्गा तथा सरयूके संगमस्थल थी।

अद्वान्त-आधुनिक उड़ीनमें पूर्वोक्ती ओर पृष्ठ प्राचीन नगर।

अंशुमती-कमुना नदीका एक प्राचीन नाम।

अंशुधान-गङ्गा नदीके किनारेका एक गाँव।

आमर्त मालवाका कुछ भाग तथा गुजरात

इमुमती-कोहेलपालदस्य काळतीनदीका प्राचीन नाम।

इत्यह-पछोरा Ellora—निजामराज्यके दौड़साकाद-नगरके समीक्ष पहाड़ोंको काटकर बनायी गयी शुकाओंमें यह इत्यह प्रसिद्ध है।

उक्कलक्ष्मेत्र-देखिये 'सोरों'।

उजनक-उज्जैन, यह स्थान काशीपुर या गोविल्लसे १५ मील पूर्वोक्ती ओर या मदावरसे दण्डिणा-पर्वतकी ओर ६७ मीलपर है।

उक्कल-उडीमा या उड़।

उत्तरगा नदी-उत्तरनिका नदी। इन नदियोंको आजकल रामगंगा कहते हैं। यह अवध-प्रदेशमें होकर बहती है।

उशीनर-दण्डिणी अफगानिस्तान।

ऋध्रवान् पर्वत-गौडवाना पर्वतश्वेषी। यह पर्वत विन्ध्याचलका पूर्वीय भाग है। इसका विस्तार बङ्गालकी नदीमें लेकर नर्मदा नदीके उत्तरमस्थानतक है।

ऋग्यमूक पर्वत-यह पर्वत मध्याम-प्रान्तके बेलारी-जिलान्तर्गत पर्या या हाम्पी ( Hampi )के समीप है।

ऋग्यशुद्धप्रान्त-भागलपुर जिलान्तर्गत माधीपुर लहमीन-में सिंहेश्वर नगरपर था।

एक्षमत च्यानुमती नदीपर स्थित एक ग्राम।

एन्नप्रान-शिलाबहा नदीपर स्थित पृष्ठ बस्ती।

आंकड़नाथ इसे आजकल अमरेश्वर कहते हैं। यह नर्मदा-नदीपर स्थित महेश नामक स्थानमें ५ मील पूर्वोक्ती ओर अंद्रलेश्वरके समीप है।

कण्ठ-आश्रम मालिनी-नदीपर स्थित विजनौर।

कपिघ-देखिये 'मंकास्या'।

कपीदनी-नदी-भैगू-नदी यह गंगानगा नदीकी एक शाखा है।

कहान-विहारप्रान्तान्तर्गत शाहाबाद ज़िलेका पूर्वीय भाग इस नाममें प्रसिद्ध है। इसके परिकमी भागको मखद कहा जाता था।

कण्ट-प्रचीनकालमें दण्डिणा-भारतका एक ग्राम। आजकलके बेलगांव, भारकाव, बीजापुर, बेलारी नथा इनके आसपासकी सभी देशी रियासतें इसीमें हैं।

कर्मनाशा-यह नदी विहारप्रान्तान्तर्गत जिला शाहाबाद-की परिकमी सीमापर है।

करतोपा नदी-बहुरस्तानुर तथा दिवावापुर जिलोंमें बहती है इसका दूसरा नाम 'सदानीरा' है।

कलिन देश-बड़ीसासे दक्षिण तथा द्रविड़ देशसे उत्तर पूर्वीशाटपर एक प्रदेश।

कम्भिरिणी घाट-मुँगेरमें है।

कांची-चिङ्गलपट जिलोंमें आधुनिक 'काञ्चीवरम्'।

कान्यकुन्ज-आधुनिक कल्मौज नगर।

काम्पल्य-कलिपल-यह फर्हस्तावाद जिलेके फलेहगढ़ (य०. पी०) से २८ मील उत्तर-पूर्व है।

कामरूप-देश-आसाम प्रान्त। इसकी राजधानी प्रायः उद्योतिष्ठपुर थी, जिसका वर्तमान नाम गौहाटी है।

कारापथ-कालाबाग अथवा कालाबाग। यह सिन्धुनदी-पर है। श्रीरामचन्द्रजीने श्रीकल्पणजीके पुत्र अनंदकेतुको यहाँका राजा बनाया था।

कालिन्दी नदी यमुना नदीका एक प्राचीन नाम।

कांची-प्रयिन्द नदी है। अर्धगङ्गा भी कहते हैं।

किंकिन्ना (आनागोदी) विजयानगर-राज्यान्तर्गत तुङ्गभद्रा-नदीपर विषय है। जिला बेलारीमें होस्टेटसे ६ मील तथा हारपी (पम्पा) से ४ मीलकी दूरीपर है।

कुटिकनदी इसे कौमिला नदी कहते हैं। यह अवध प्रान्तकी रामगंगाकी पूर्वी शाखा है।

कुशग्रन्थ-नार्थ वेस्टने रेखेके कुरुक्षेत्र स्टेशनके समीप एक प्राचीन नगर।

कुशजाग-यह स्थान हस्तिनापुरसे उत्तर पश्चिमकी ओर सरहिन्दमें है। बौद्धकालमें इसे आंकड़ देश कहा जाता था। यह कुरुक्षेत्रका एक भाग था।

कुलिंगपुरी-विहीसे उत्तरका सहारनपुर जिला।

कुशलवली-हारका, हारावली।

कुटिकोटिका नदी-अवधप्रान्तमें रामगंगा नदीकी एक छोटी-सी शाखा।

केकय-फेलम तथा चेनाव नदीके अवयक प्रदेश। यहाँका राजा अरवणति था।

केरल-इसमें आजकलके तीन प्रदेश हैं; कनाडा, महाराष्ट्र तथा द्रावनकोर।

कोसल-अवधप्रान्त।

कौशिकी नदी-कुशीनदी। यह गंगामें मिलती है।

क्रघ्यकैशिका-बरार-प्रदेशान्तर्गत पश्चिमिण नदी।

कृष्णवर्णी-बर्तमान कृष्णानदी।

कृष्णारण्य-इस विस्तृत अंगलका प्रसार मध्यासप्रान्तके समल सान्दूर-राज्यमें है। यह जिला बेलारी, गुम्तकल, नान्दधाल तथा पूर्वी घाटपर विषय आंगोले तक फैला हुआ है। जनस्थानसे तीन कोम दूर है।

गङ्गा नदी-प्रसिद्ध है।

गङ्गर्ध देश-कुनार तथा मिन्दु-नदीके बीच काहुल नदीके किनारे किनारेका प्रदेश।

गर्गात्रम-रायबरेली जिलेमें गंगाके पार असनीके ठीक सामने।

गारिपुर-कल्लौज।

गालबाश्रम-जयपुर (Jeypur से तीन मीलकी दूरीपर है।

गिरिव्रज-चेनाव (चन्द्रभाग) नदीपर विषय केकयदेश-की राजधानी। सउप्रति फेलमसे उत्तर-पश्चिमकी ओर ३० मीलपर गिरिव्रज या जलालपुर।

गोकर्ण पर्वत-गोकर्णसे तक समीप पश्चिमी घाटपर।

गोदावरी नदी प्रसिद्ध है। इसे रेवा या मुरला-नदी और दक्षिण-गङ्गा भी कहते थे। इसीके किनारे जटायुकी औच्च-देहिक किया की गयी थी।

गोप्रतार-घाट-यह फैजाबादमें सरयू नदीपर है। यहाँपर अंगरामचन्द्रजी परमधार पधारे थे।

गोमती नदी-यह नदी आजकल भी इसी नामसे प्रसिद्ध है, इसीपर जलनक नगर अवस्थित है।

गौतमात्रम-तिरहुतमें, जनकपुरसे २४ मील दक्षिण-पश्चिमकी ओर परगना जरैलके आहियारी गाँवमें अहिल्या-म्यान।

घग्गर नदी-द्यूद्धीती नदी।

चन्द्रिकापुरी-देखिये 'आबली'।

चम्पा-चम्पानगर-चम्पापुरी-भागलपुरके पास चम्पा नगर। यह अंगकी प्राचीन राजधानी भी है।

च्यवनाश्रम-शाहाबाद जिलेके अस्तर्गत आनसा या चयनपुर।

चम्पेष्टी नदी-आधुनिक चम्बल नदी।

चित्रकूट पर्वत-यह चित्रकूट स्टेशनके समीप है। आजकल इसे कामतानाथ-गिरि कहते हैं। चित्रध वर्दी मारा गया था।

चित्रकूटा नदी—देखिये मन्दाकिनी नदी ।

चेर—एक समय इसके भीतर द्रावनकोर, भलावारका  
कुछ हिस्सा, तथा कोवमधूर था ।

चैत्ररथ बन—चित्राल ।

चोल अथवा द्रविड़ देश—कारोमलडल—किनारेपर, कृष्णा  
तथा कावेरी नदीके मध्यका प्रदेश । इसकी राजधानी  
कांचीपुर अथवा कांची था ।

जनस्थान—महाकवि भवभूतिकी दृष्टिसे जनस्थान तथा  
पञ्चकी दोनों ही गोदावरी नदीके मुहाने हैं । आजकल  
यहाँ स्वर्वासी बस्ती है । यह दण्डकारण्यकी दृष्टिं सीमा  
पर है । (साथका नकाशा देखिये) यहाँ स्वर, तृष्ण, विशिष्टा  
आदि रहते थे ।

जन्हु आश्रम—भागलपुरमे पश्चिमकी ओर है । आर्ह०  
रेखावेपर स्थित सुखतानगंगामें । इसी स्थानपर अब गैरीगाथ  
महादेवका मन्दिर है ।

नमदिंग्री-आश्रम—गार्जीपुर जिलेमें जमानिया नामक बस्ती ।

जावानि-पट्टण—जबलपुर ।

त्रिशिरा—आजकलका लचिता आम ।

तमथा नदी—यह नदी अयोध्यामें इस्तिं वर्यूनदी  
और गोमनीनदी के बीचमें है ।

तम्रपर्णी नदी—आजकल यह निशेषेली जिलेमें ताम-  
वरवारीके नामसे प्रसिद्ध है । कृष्णनदीकी एक शाखा है ।

दक्षिण कांसन मध्यभारतका गोदावरा निला ।

दक्षिण गङ्गा गोदावरी नदी ।

दक्षिण पश्चिम मधुरा ।

दण्डकारण्य यह बन चित्रकूट-पर्वतमें लेकर जनस्थान  
अथवा गोदावरी-नदीके मुहानेनक फैला हुआ था ।  
( विमलसूरि ३०० प० ढी० )

दगार्जी मध्यभारतकी खस्तान (Dhassan) नदी ।

द्वार्वासाध्रम यह भागलपुर-जिल्लानगंगा कहलगाँव  
(Colgong) शहरमें एक भीजकी दूरीपर इसी नामके  
एक पर्वतपर स्थित था । अथवा—गया जिलेके नवादा  
तहसीलमें रजौलीसे ७ भीज दृष्टिं-पूर्वकी ओर इस  
आश्रमका स्थान है ।

दृष्टिं नदी—व्यात नदी ।

द्रविड़ देश—देखिये ‘चोल’

धनुषकोटि { भारत सथा सीखोनके मध्यका पर्वत  
धनुषीर्थ { नामक जल-मार्ग ।

धर्मगढ़—देखिये ‘आवस्ती ।’

धर्मरथ—सथा अथवा कृतयुगमें विहार, बंगाल तथा  
उरकलमें आयोका अधिनिवेश (भगवान् श्रीरामके समयसे पूर्व)

धृती राष्ट्री ।

धवला नदी { आलूनी ।

धुमेला नदी { सीताप्रस्था ।

बाहुदा ।

धोगायपुर सुखतानपुरसे १८ भीज दृष्टिं-पूर्वकी ओर  
गोमती-नदीपर स्थित है ।

नन्दीग्राम—नन्दिगाँव—अयोध्यासे एक कोस है ।

नर्मदा नदी प्रसिद्ध ही है ।

आजकल इसे नीमसार कहने हैं ।

नीमसार यह आ० आर० आर० के भर्त्ताला

अथवा—स्तेनमे २४ भीजकी दूरीपर तथा गोदती-

नैमित्यगंग नदीके बायें किनारेपर स्थित भीतापुरमें  
२० भीजकी दूरीपर है ।

पञ्चदटी आधुनिक नामिक । महाकवि भवभूतिके  
अनुसार यह गोदावरी नदीका मुहाना है । विमलसूरिके  
अनुसार यह जनस्थान, जो दण्डकारण्यके दृष्टिं पूर्व  
है—या ( ३०० प० ढी० )

पञ्चाम—मोतर छोटा नागपुर राज्यके उदयपुर जिलेमें  
है । आ० २२° दे० ८४° के पास है । ( श्रीनन्दलाल दे )

पर्णाणा नदी बस्ताय नदी ।

प्रग्नम सुन्दावर या सुन्दोर, पश्चिमो गङ्गलम्बवद्वामें  
विजनीरसे ८ भीज उत्तर है ।

प्रयाग प्रसिद्ध है । यहाँपर भरद्वाज-आश्रम था ।

प्रपासार इसे ‘हारपी’ भी कहने हैं । यह महाल-प्रान्तके  
बेलारी जिलानगंग दोम्पेटके पास है । अनांदीसे  
२ भीज है ।

प्रस्तिनी नदी देखिये ‘मन्दाकिनी नदी ।’

पाशाल लहेजसरह ।

पाण्डु जनपद—यहाँ आजकलके लिनेवेली तथा मधुरा  
जिलें हैं । पूर्णी किनारेपर स्थित नागपट्टण तथा किसी  
समय मधुरा राजधानी थी ।

पुष्टिनदी—स्वात नदी सथा कामुख नदीके संगमपर  
स्थित पुष्टिनदी गाँव ।

प्रशंसण पर्वत-सुखमद्रा नदीके पास है ।

प्रायोतिष-आमरूप अथवा कामाचया । कामरूपकी  
प्राचीन राजधानी ।

प्रायटपुर-गङ्गा-नदीपर एक नगर ।

प्राचीनवाहिनी नदी (जहाँवीतुल्य) किंचिक्षाके पास  
प्रतीक्षा-बेलिये 'रामगाया' ।

फलम् नदी-प्रेसिलिया आदि पर्वतोंके पास बहनेवाली  
नदी । श्रीरामचन्द्रजीके शापके कारण लोप हो गयी है ।  
इसे मधु नदी भी कहते हैं ।

नद्यनि पर्वत (नद्यनेनि) यही गवशिर पर्वत है ।

नद्यमर धर्मारथमें है ।

बाहुदा नदी-धरता नदी—भव इसका नाम भुमेला  
अथवा दृशी राष्ट्री है । यह अवधमें राष्ट्रीकी एक शाखा है ।

बाल्हिक आधुनिक बलच-प्राचीन ।

विन्दुसार गङ्गोत्रीसे २ माल दक्षिण है ।

वारदान नाम प्रयोगमें है ।

वारष्ठ देश बोरमस्य देशसे उत्तर ।

वामाची औमा नदी

मृदु लाघु बिल्या—यह गङ्गा तथा मरुद्यूके मध्यमध्य  
है । वयाक्षम भी इसीका नाम है ।

मन्द-आश्रम, मन्द-संग्राम-मदास प्राचीनके बेशारी  
जिलेमें पर्या नदीके पास । कौश्चारथसे ३ कोसके भीतर  
है (वा० ३० ३ । ६४ । ८)

मन्द-वन घण्टाके पश्चिमी सीरपर ।

मनिपुर मदावर—बिजनौरसे ८ मीलकी दूरीपर है ।

मृदु नदी—प्रेसिलिया आदि पर्वतोंके पास बहनेवाली  
नदी । श्रीरामचन्द्रजीके शापके कारण इसका लोप हो  
गया है ।

मधुपुरी—मधुरा—इसे शत्रुघ्नीने मधुके पुत्र लक्ष्मणको  
मरकर बसाया था । मधुरासे दक्षिण-पश्चिमकी ओर  
माहोली नामक स्थान है । यही प्राचीनकालमें मधुपुरीके  
नामसे प्रसिद्ध था ।

मन्दराज्ञ-भागलपुर जिलेके दक्षिण तहसीलमें बीसीसे  
१-३ मील ।

मन्दाकिनी नदी—विश्रांता नदी अथवा पश्चिमी नदी ।

यह अस्यवान पर्वतसे निकलकर विश्रांतमें बहती हुई  
कुछ दूरी जाकर शुभ्रामें मिल जाती है ।

महाद-विहारान्तर्गत शाहाबाद जिलेका पश्चिमी भाग ।

महेश विजापुर-प्राचीन कुञ्जतान जिला । लक्ष्मणके  
पुत्र अश्विनी श्रीरामचन्द्रजीने इस स्थानका राजा बनाया था ।

महानदी-प्रसिद्ध है ।

महेन्द्रपर्वत-पूर्वी धाटपर गङ्गाम जिलेमें है ।

मर्कण्डेयाश्रम-कामार्थ जिलेमें वारेश्वरके पास सरयू  
तथा गोमती-नदीके संगमपर स्थित है ।

माल्यवान् पर्वत-अनांगोदीके पास है ।

मालिनी नदी (संदिग्य)—प्रलम्ब तथा अपर-ताल नामक  
प्राचीन जिलोंके मध्यमें बहनेवाली चुक (चुक) नदी, यह  
नदी अयोध्यासे १०मील उत्तर सरयू नदीमें गिरती है ।  
शृणि कशवका आश्रम इसी नदीपर स्थित था ।

माहिमी नर्मदा-नदीपर स्थित आधुनिक मारहला ।

मित्रिना—(१) बैजयन नगर (२) विदेहमें अनकपुरसे  
दक्षिण एक नगर ।

मैसन-क्रम-अमरकरटक पर्वत जो कि नर्मदा-नदीका  
उत्तरम स्थान है ।

मेनक पर्वत-शिवालिक-पर्वतमाला ।

यगुना प्रसिद्ध जमना नदी ।

यद्वीप-जावा द्वीप ।

रदपर मध्यगान्तमें छत्तीसगढ़ प्रदेशमें दक्षिण कोसल-  
की राजधानी ।

राजनुपुर-बाबल नदीपर रमताल्लवर नगर

रामगाया, रामशिला बहायोनि पर्वतके पासकी अन्य  
पहाड़ियाँ । यहाँपर श्रीरामने पितृ-आदमें पिण्डदान दिया  
था । (वायुपुराण)

रामनाद-रामेश्वरके पास एक नगर । रामनादका  
राजा सेतुवसि-बंशकी सन्तान था । ज़हासे लौटे हुए  
श्रीरामचन्द्रजीने रामेश्वरपर सेतुकी रक्षाके लिये जिन सात  
दक्षिणोंको नियुक्त किया था, उनमेंसे एक रामनाद था ।

रामेश्वर-प्रसिद्ध ही है ।

रामेश्वर-संगम अवश्य तथा वकास नदीका संगमस्थान ।

रोहतास-सप्तरामसे ३०मील दक्षिण राहावाद ज़िल्हेमें है। इसको राजा हरिभद्रके उत्तर रोहिताश्वने बसाया था।

रोहण पर्वत-सीखोनमें सुमनकूट पर्वतको कहते हैं। आजकल यह ऐडम पीक (Adam's Peak) के नामसे प्रसिद्ध है।

लक्षणावती-लक्नौती, यह गोदका दूसरा नाम है, इसका भानावशेष मालदाके पास है।

लवपुर-लबकोट, लबवार अथवा बाहौर है। इसकी स्थापना भगवान् श्रीरामके उत्तर लवने की थी।

लाङूरी-राजपूतानेकी लूनी नदी।

लोमशगिरि-यह गया जिल्हान्तरगत नवादा सब-हिंदीजनके रजौबी स्थानसे ४मील उत्तर है।

लोमशाध्म-जोमशगिरि पर है।

लोह-अफगानिस्तान।

लोहितप्राम-कढीवती नदीपर स्थित है।

लोहितप्राम-बंगालकी खाड़ी।

लोहिता-नदी। बड़पुर-नदी।

कंसमूर्मि-प्रवागसे पश्चिम एक जिला। इसकी राजधानी कौशाली थी।

कानीरमार्दिनी नदी। घर्मारक्षयकी नदी।

कात्मीकि-आश्रम-सप्तरामा नदीपर। गंगासे दक्षिण। प्रवागसे १० कोस।

कालिगुहा-अनांगोदा स्थानसे १॥ मील दूर है।

कितस्ना नदी। एंजाबकी फेलम नदी।

विद्वन्-बरार।

विदिशा-भाजभारतका भिलिसा ग्राम।

विंदह-आशुनिक तिरहुत—इसे मिथिया भी कहते हैं।

विनताग्राम-गोमती नदीपर एक ग्राम।

विन्द्यादि-प्रसिद्ध है। यह पर्वत भारतवर्षको उत्तरी तथा दक्षिणी दो भागोंमें विभक्त करता है।

विनुकोडा-गन्धूर जिलेमें इस नामका एक नगर स्थान एक पर्वत है, इसका अर्थ 'सुननेका पर्वत' है। परम्परा-से यह बात चढ़ी आती है कि इसी स्थानपर श्रीरामचन्द्रजाने सीता-हरवका समाचार सुना था।

विपाशा नदी-पञ्जाबग्राम्तकी झास नदी। (वेदोंकी आर्द्धाक्षरा नदी)

विरुषाक्ष क्षेत्र-(हाथीमें मन्दिर)। इसके अन्तर्गत किञ्चित्तजा, पम्पासरोवर, तारा, मालवान् तथा जम्ममूक पर्वतादि हैं।

वेदशुत्रा नदी तमसा या तामसा नदी।

वेद्वृथपर्वत-सतपुरा पर्वत।

वैतरणी नदी-यह नदी कलिङ्ग ग्राम्तमें बहती हुई बड़ाक-की साढ़ीमें गिरती है।

वैशाली-हाजीपुरसे १८ मील दक्षर गद्यक नदीपर स्थित वैसारथ्याम।

वंग-वंगाक। किसी समय यह पाँच ग्राम्तोंमें विभक्त था। १-पुद्ध २-समस्त ३-कामरूप ४-ताच्छ्रित्स तथा २-कर्णसुवर्ण।

वत्तु नदी। पञ्जाबकी भत्ताका नदी।

वरांग-आश्रम डृश्यपुरमें। अत्रि-आश्रमसे दक्षिण दिशामें।

वरयु नदी। सरथू या घावरा नदी—गङ्गा नदीकी एक शाखा। इसके किनारेपर अथवा या कोमलकी तल्लाकीन राजधानी अशोध्यापुरी है।

विवि-सिविलान। सिंध नदोंके किनारे सिविलानका एक भाग।

शुक्रेन्द्र-देविये 'सोरों'।

शूरीनक-बर्षर्षे ग्राम्तमें बसहुँके वास सोपारा नामसे प्रसिद्ध है।

ओण-सांन नदी। यह गंगा नदीमें गिरती है। इसका एक नाम हिरवयवाह भी है।

श्रहंशपुर-आशुनिक सिंगराँर। ग्राम्तीनकालमें यहाँका राजा गुह था।

आदला-उत्तराखण्डसे २० मील दक्षिणपूर्वकी ओर तमसा नदीपर स्थित है। इसी स्थलपर राजा वशरथने भूसे अथवा अथवा सिंधु-अधिको भार दाखा था।

आदर्ला-सूर्यबंशी राजा आदर्लाके इसे बसाया था। आजकल रापती अथवा ईरावती नदीके दक्षिण तटपर सहेत-महेतके नामसे प्रसिद्ध है। यह अशोध्यासे ६८ मील दक्षरकी ओर है। ग्राम्तीनकालमें यह उत्तर कोसलकी राजधानी थी। इसके तीन नाम हैं १-बर्मध्य २-बनिद्रकापुरी ३-सहेत-महेत।

सदानीरा नदी-देविये 'करतोषा'।

स्पनिदका नदी-जलवध-ग्रदेशकी आत्मविक सहं नदी ।  
गोमती और गंगाके बीचमें कोसल-देशकी दिविय सीमा-  
पर बहती है ।

सरस्वती नदी—आजमज्जा इसे सरस्वती आयाता बनार नदी  
कहते हैं। यह उत्तर राजपूतानेकी रेतमें जूँड़ हो गयी है।

सहेत-महेत—देविये ‘आदर्शी’ ।

**सिंधुध्रम- थोरा तथा गंगा नदीके संगमके पास माहाराष्ट्र  
जिल्हेमें बस्सरके नामसे प्रसिद्ध है।**

सीता नदी-धारकम् शथवा धृत्रशारीरदी । इसीपर  
धारकम् दाहर बसा दूधा है ।

सीतासेज-कार्विकर पर्वतकी युक्त पहाड़ी ( साधारण  
ईंचा पथरीला भाग )

सतीष-अप्रम- शारभंगाखम्से इचिय ।

सुवर्णदीप-समाप्ति ।

सवामा नदी-हार्षर्गा नहीं। देखिये 'उत्तरया नहीं'।

सुक्षदेश-आराधनप्राप्त । एक समय इसकी राजधानी  
ताल्लुविहा थी ।

## सैरिन्घ-सरदिव्य ।

सोमणिरि-शाका-पर्वतका गुणिती भाग ।

सोरां-द्युक्षेत्र या उक्षेत्र—यह स्थान पटासे २७  
मील उत्तर-पूर्वी ओर है। यहाँ है इसी स्थानपर हिन्दीके  
प्रबन्धीय महाकवि तुवसीदासका बाल्यकालमें पादवन-योष्या  
हुआ था।

संकास्या-फर्ह आवाद्-विकान्तर्गत फलेहगावे पश्चिमकी ओर २३ मीलपर इच्छमती-नवीपर कपिरथके नामसे प्रसिद्ध है।

हत्याहरण—हरदोईसे २८ मील दक्षिण-पूर्वकी ओर  
कल्याणनगरे पास है।

हरदार-गंगापर प्रसिद्ध नगर है।

इस्तिनापुर-अभुला गढ़ा-नदीके दूरहिसे तटपर स्थित  
एक ग्राम। वह दिही तथा मेरठसे उत्तर-पूर्व तथा बिजनौरसे  
दक्षिण-पश्चिमकी ओर है।

**दृष्टक-कार्यक ( मायमीलके पास अवस्था स्थापन )**

हारीताश्रम-पुकारिंग। राजपूतानेके उद्यमपुरसे ६ नीव  
उत्तर।

## हिरण्यवती- खोटी गणठकी ।

**हित्यरा-रेखे 'ओम वरी' ।**

निष्प्रविलित स्थानोंके बारे रामायणमें आते हैं परन्तु  
इनके सम्बन्धमें दीर्घ-दीर्घ पता नहीं आगता ।—अभिकोद्धत,  
अभिकाव, अंबवरी, इच्छागर, उज्जित्तव, काष्ठमटी नदी, कुदिन्द,  
कुरु, चीरवागर, गिरिन्द्रंग, अमृप्रस्थ ग्राम, आत्मस्पृशील  
पर्वत, लेजोमिल, तोरव ग्राम, दूष्वाह आश्रम, भर्मवेश,  
प्रभास, प्रसवस्थली वेदी, मखिमान् पर्वत, महाग्राम,  
रीप्पक द्वीप, वरुथ ग्राम, वाहिनी नदी, वीरमस्त देश,  
यारदस्ता, यावरी आश्रम, शालकर्णव, शालमलीनदी, शिखावह  
नदी, शिशिर पर्वत, सप्तसत्त्वमुक्ति-आश्रम, सप्तसत्त्वतीर्थ,  
स्थाणुमती नदी, सुचडु नदी, सुदर्शन सरोवर, सुदामा नदी,  
सोरोन, हस्तपृष्ठक ग्राम, हारिनी नदी आदि ।

रामावतार-रहस्य

( एक नवीन इष्टि )

(लिखक—श्रीमोर्तीलाल रविशंकर धोडा जी १ प०, एस-एस०टी०)

रत्नकी अविनाशी सम्पति समझी जानेवाली  
रामायणी कथा सर्वांशमें चाहे ऐतिहासिक व  
हो परन्तु रामायण और श्रीरामचन्द्रजी के  
दोनों हिन्दू-समाजको गृहस्थाप्रम और  
गृहभूषणका अविनाशी प्राप्ति किसान रहे हैं।

इस बातको कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता । पर प्रसुत जेस इस आदर्दणी दृष्टिसे नहीं लिखा जाता है । यह जेस एक नवीन दृष्टिसे लिखा जाता है, इसलिये यदि किसी पाठकको उम्मीदपूर्ण प्रस्तीव हो तो इस पहलेदृष्टिसे उम्मा माँग जेते हैं ।

श्रीरामचन्द्रजीको हम परमात्मा, श्रीविष्णु भगवान् ज्ञ  
अदतार मानते हैं, हमारी इस आस्तिक तुदिके नातेसे को  
हमें किसी प्रकारको गंभीर नहीं करनी है। अदतारवादपर  
हम एक विषय दृष्टिसे विचार करता चाहते हैं, इसविषये  
एक नवीन विचार सुषिर करनेवाल प्रयास किया जाता है।  
अदतारवाद और विकासवाद इन दोनोंमें कुछ-कुछ समाविता  
है, और वे दोनों ही बाद तुदिवाचक होनेके कारण विचारके  
पोन्न छारते हैं।

हमारे पुराणोंका अध्ययन करनेसे पता आगता है कि इन ग्रन्थोंकी रचनामें किसी अनुरुद्ध सुविकाश उपबोग किया गया है। यह भी प्रतीत होता है कि इनमें वर्णित कथाओंको खोकोपकारक बनानेके लिये, उनके मूल शुभ चंशोंके आधारपर उन्हें नये वज्राभूषणोंसे सजित किया गया है। इसके अन्तिरिक्ष, 'यथा पिण्डे तथा ब्रह्मणे' हमारे इस तात्त्विक सूत्रमें निहित मुख्य भावको सर्वथा चरितार्थ करनेकी भी चेष्टा पुराणकारोंने की है।

पुराणोंके पाठको सूचम इटिसे कथाओंका पर्यावरण करना होगा। ग्रन्थोंकि अवताररूपसे माने हुए देव-दानवोंके अरित्र चित्रण करके ही पुराणकार ज्ञप नहीं हो गये हैं, उन्होंने उन देव-दानवोंका एक और ज्योतिश्चक्षकी इटिसे और दूसरों और आध्यात्मिक इटिसे भी वर्णन किया है। इस वर्णनके द्वारा उन्होंने आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक विषयोंकी एकायंता सिद्ध कर दी है। मतदब्द यह कि हमारी पुराण-कथाएँ ऐसी हैं कि उनको हम भिन्न-भिन्न अर्थोंमें बदा सकते हैं, और इसी इटिसे यह ज्ञेय किला गया है।

देवमें 'यज्ञ' 'विष्णु' और 'सूर्य' ये तीन शब्द पहली अर्थमें व्यवहृत हैं, इसके अन्तिरिक्ष उदय होते, केन्द्रमें स्थित रहते और अन्त होते सूर्यकी जिन तीन अवस्थाओंकी हम बार-बार आवृत्ति देखते हैं, वे तीनों ही विष्णुके एकके बाद एक अवताररूपसे समझी गयी है, ऐसा भी देवादि ग्रन्थोंके आधारपर कहा जा सकता है। अन्य अवतारोंके सम्बन्धमें यहाँ कुछ नहीं कहना है। रामावतके आधारपर हम श्रीरामजीको सूर्यवंशी मानते हैं। इसले श्रीरामका सूर्यके साथ सम्बन्धित होना सिद्ध है। रामने बाबी आनन्द प्रसाद बनेवालेको राम कहते हैं। ऐसे तेजस्वी पुरुष ही 'सूर्यवंशज राम' हैं। यह सीधा अर्थ किया जा सकता है। प्रकर विषयोंबाबे सूर्यका परशुराम उपस्थित है, उसके फुलनेपर (परावित होनेपर) वो नथा स्वरूप (सूर्यका) बनता है उसका अस्य उम होकर खोकमात्रको सुख पहुँचानेवाला होना स्वाभाविक ही है (उमे तुर सूर्यका स्वरूप उप्रतामें कम और सुखकारक होता है)। श्रीरामके अन्मकालसे ही खोकमात्रको आनन्द होता है परन्तु आनन्द तो बही है जो होता ही रहे। रामका वय ज्यों-ज्यों बढ़ता है त्वों-ही-त्वों आनन्द भी बढ़ता जाता है, पर वहाँ तक और किस प्रमाणमें? राम अपनी ग्रिवा श्रीसीताकी सुतिका त्वाग करके भी खोकमात्रको प्रसन्न करनेसे नहीं चूल्हे।

श्रीराम अपना परामर्श दिलाकर जो सीताका वरण करते हैं, वह बात भी उतनी ही रहस्यरूप है। परशुराम, संजान्तिकालके सूर्यका स्वरूप होनेसे अर्द्धकामिसहस्रिलक्षी अनुपका भंग करनेवाले रामरूपी सूर्यसे परावित हों, नह दों, इसमें आवश्य ही क्या है। रामकी पक्षीका नाम सीता है। 'सीता' रामका अर्थ 'शुद्ध' वा 'इच्छेता' होता है, और वह चुतिरूप भी है, तथा सौम्य भी है। अनुष्ठ-भंग करके रामरूपी सूर्य सीतारूपी सुतिका वरण करते हैं। इसका अर्थ यह करना चाहिये कि रामरूपी सूर्यका तेज ज्ञोक-मात्रको सदा है। उत्तरायणका सूर्य दिन बीतनेके साथ ही दक्षिणायनका होने लगता है। यह बात श्रीरामके अपनी पक्षी सीताके साथ दक्षिण-नमनकी कथासे इतनी अधिक मिलती है कि राम-कथा और सूर्य-कथाको हम परस्पर पृथक् नहीं कह सकते। रामकी शक्तिरूपा सीताका रावणमें हरण किया, इस कथाको जो हम सूर्यके अन्य अवतारों—नृसिंह या बामनकी कथाके साथ तुलना करते हैं तो तरवतः उन सबसे एक ही अर्थका बोध होता है। सूर्यकी अपनी वास्तविक चुतिरूप पक्षीको केव कर रखनेवाले 'तेजोमयदल' रूपी हिरवयक्षिपुका जैसा नृसिंहरूपी विष्णु भगवान् ने इंस किया था, उसी प्रकार (बायुपुरायके अनुसार) हिरवयक्षिपुके अवतार रावणका,— जिसने सीताको केव कर रखवा था—रामरूपी सूर्य—विष्णुद्वारा इंस दुष्पा और परियाममें रामरूपी सूर्यको सीतारूपी सुतिकी पुनः प्राप्ति हुई।

मतदब्द यह कि रामायणान्तर्गत राम-कथाका हम ज्योतिर्विद्याकी इटिसे अन्यरूपमें भी अर्थ कर सकते हैं और ऐसा करनेसे अवश्य ही रामायणी कथाका प्रयोगन भी नह नहीं होता।

### वरसाये देत

छाये देत छार छार सावनी व्रटान्सी छारा,

तुष्टन जवास कोरि भोरि भरसाये देत।

दिज्जु सी परत धाय पातक-पहारन पै.

चातक चितुध उर भक्ति सरसाये देत।

दास तुलसीके छाँद गरजत मेघ जैसे,

भक्त मंजु मानस मयूर हरसाये देत।

राम यश पात्रन सुहावन है धारा धर,

जगमे पियूष बारि धारा वरसाये देत।

जगज्जाप्रसाद दिवेदी

## श्रीरामनामकी महत्त्वी

( लेखक—विविध-विद्या-विशारद पं० ज्ञानदधनराम गीता संगीतकर )



ति प्राचीन कालसे श्रीरामनाम-चारणकी  
जो इतनी महिमा वली आयी है, इसका  
कारण क्या है ? यह रामनामका सरण  
हमारे ऐहिक या पारमार्थिक कल्याणमें न्या  
और कैसे काम आया है, यह जानना  
चाहिये । रामनामका यह प्रचार केवल  
पुरानी लीक फीटते क्षेत्र जानेका ही एक  
नमूना है या इसमें कोई गवाहीर विचार भी  
है, यह जाननेके लिये इस नामकी महिमा जिन्होंने बतायी  
है उनकी योग्यता क्या और कितनी भी यह देखकर आज  
जिन आधिभौतिक शास्त्रोंकी इतनी उच्छिति दुर्दृष्टि है उन  
आधिभौतिक शास्त्रोंकी कसौटीपर कसकर यह देखना होगा  
कि इस रामनामकी महिमा कितनी उच्चता है और उससे  
कितना बड़ा उपकार हो सकता है । ऐसा करनेसे  
आधुनिक कालके सुशिक्षित मनुष्यको इस विषयमें कोई  
सन्देह नहीं रहेगा और वह इसका उपयोग करके अपना  
व्यावहारिक और परमार्थिक लाभकर लेगा ।

### उपनिषदोंमें वर्णित महिमा

रमनं योगिनोऽनन्तं नित्यानन्दचिदात्मनि ।  
इति रामपैदनासीं परं ब्रह्माभित्यं ॥  
—रामपूर्वतापिन्दुपनिषद्

‘योगीज्ञोग जिस अनन्त नित्यानन्द चिदात्मामें  
रममाण होने हैं उसीका रामपैदसे बोध होता है । उसीको  
परब्रह्म कहते हैं ।’

मन्त्रोऽयं वाचको रमो वाच्यः स्यादोग गतयोः ।  
फलदर्शीवं सर्वेषां साधकानां न संक्षयः ॥  
—रामपूर्वतापिन्दुपनिषद्

‘यह मन्त्र रामका वाचक है और राम काच्य हैं ।  
इन दोनोंका जो वोग है वह सब प्रकारके साधकोंको  
कल देखता है, इसमें कोई सन्देह नहीं ।’

मुमूर्देवक्षिणे कर्णे दस्य कल्यापि वा स्वयम् ।  
उपदेश्यसि मन्त्रः स मुक्ते भविता शिव ॥

स्वर्यं श्रीरामचन्द्रं भगवान् शंकरसे कहते हैं—  
हे शिव ! सुमूर्दुके दाहिने कानमें जिस किसीको  
राममन्त्रका उपयोग हो और जो कोई इसप्रकार जप करे  
वह सुक्ष होगा ।

गणपत्येषु शंखेषु शक्तिरेष्वभीष्ठदः ।  
वैष्णवेष्वपि सर्वेषु राममन्त्रः फलाधिकः ॥  
—रामोत्तरतापिन्दुपनिषद्

‘गणेश, शिव, शक्ति, सूर्य और विष्णु इन सब नामोंके  
उपसे होनेवाले कल्याणकी अपेक्षा रामनाम-मन्त्रके उपका  
फल अधिक है ।’

इसप्रकार रामनामके उपकी महिमा उपनिषदोंने  
गायी है । अब मन्त्रशास्त्रकी इष्टसे राम इन अवरोंके  
उपायमें क्या शक्ति है, यह देखना चाहिये ।

### वर्णोच्चार-गुण-वर्णन

‘र’ वर्णं दाहकर विकृतिकर है ।  
‘च’ स्वरं सर्वंगत और आकर्षक है ।  
‘म’ वर्णं विद्वेषी मोहनकर है ।

—अश्वमालि-के पनिषद्

### बीजाक्षर गुणवर्णन

‘र’ अग्निकीज है ।  
‘आ’ वायुकीज है ।  
‘म’ आकाशकीज है ।

पृथ्वीकीज स्थम्भक, आपवीज शान्तिकर, तेजवीज  
दाहक, वायुवीज आबक और आकाशवीज संचेपक है ।  
इन अवरोंके मिथोचारणका परिणाम विकृत पञ्च महाभूतों-  
को स्थूल स्थिपर तथैव अपज्ञीकृत पञ्च महाभूतोंके सूक्ष्म  
स्वरूपपर भी घटित होता है । आकाशसे पृथ्वीतक आनेमें  
जैसे सूक्ष्मसे स्थूलमें आना होता है वैसे ही स्थूलको पुनः  
बौद्धकर पृथ्वी और आपको अग्नि, वायु और आकाशमें  
होकर इनके भी परे जो मूलस्वरूप अर्थात् ब्रह्मस्वरूप है  
उसमें जो जानेकी सामर्थ्य भी इन्हीं अवरोंमें अर्थात् राम-  
नाममें है । देखिये, गुणाईं तुलसीदासजी, क्या कहकर  
रामनामका अन्दन करते हैं—

बंदौ रामनाम रघुवरके । हेतु कृपानु भानु हिमकरके ॥

शरीरमें प्राणोंका कार्य चलानेवाली जो हडा, पिंगला और सुपुत्रा नाहियाँ हैं उनके अधिकाता देखता हृस राम-नाममें आ जाते हैं। हृशानु (अग्नि) सुपुत्राके, भानु (सूर्य) पिंगलाके और हिमकर (चन्द्र) हड़ाके अधिकाता देखता हैं। हन देवताओंको जगाकर, वास-प्रवासको सम करके प्राणको सुखज्ञा-नाडीमें ले जाकर समाधि-सुखमें उसे पहुँचानेकी सामर्थ्य हृस रामनाममें है; यही नहीं, प्रभुत अविक ग्रहाशब्दको चलानेवाली जो वे अग्नि, सूर्य और सोम-शक्तियाँ हैं इनपर भी स्वामित्व स्थापित करनेकी सामर्थ्य हृस रामनाममें है, इसीलिये हृस रामनामका उन्नन करते हैं।

रामनामकी हृस अनुत्त सामर्थ्यका इहस्त भी तुकसीदास-बीमे इहस्तमय भाषाके हारा ही कथन किया है। कहते हैं—

एक छत्र एक मुकुटमनि, सब बरनने पर जोड़ ।

तुलसी रघुवर नामके, बरन विराजत दोड़ ॥

‘एक छत्र और एक मुकुट मनि’ यानी ज्ञानमात्रा और उसपर विन्दी। इनके साथ सब बहों सहित अवधा किसी अवधरयुक्त वर्णसंहित विस ‘अ’ करका योग होता है और उस अकारके बोगसे हृसप्रकार जो औंकारस्वरूप है वही ‘राम’ हृस हो बद्धोंमें शोभावामान है। रामनामका उक्तार औंकारका ही उक्तार है। रेक्षयोर्वां गतिः । ‘मोऽनुस्वारः ।’ ये बद्ध और सूत्र प्रसिद्ध हैं। ‘र’ कार रेक विहू सूचित करता है, वही बद्ध है। ‘अ’ कार विन्दु विहू सूचित करता है, वही मुकुटमनि है और दोनोंको जोनेवाला ‘आ’ है जो ‘अ’ का ही शीर्षस्वरूप है। इसकिये १. आ म-‘राम’ औंकारस्वरूप ही है। औंकारके बफका जो कुछ माहात्म्य बेदों और उपनिषदोंमें बताया है वही माहात्म्य रामनामके बफका है। रामनामके बफका स्वयं अनुभव प्राप्त करके तुकसीदासबीमे उसकी इतनी महिमा गाढ़ी है। परन्तु शब्दादि प्रमाणोंपर जिनका विश्वास नहीं, उन आत्मिक नवदिवितोंका इतनेसे समाधान न होगा। उन्हें आधिकौतिक शास्त्रीय पद्धतिये ही रामनामकी महिमा बैठा देनी होगी।

आधिकौतिक पद्धतिसे विवेचन करनेके लिये, हृस विषयको अग्नि-शक्तिकी रहिसे देखना होगा। अग्नि-विभावी ज्ञानेवाली इनियरोंके सम्बन्धसे इनियन-विज्ञान भी देखना होगा। जिर शरीर और मनका सम्बन्ध होनेसे

शरीरविहान और मानस-शक्तिकी रहिसे भी हृसकी जाँच करनी होगी।

इस शरीरमें जिज्ञ-भिज्ज कार्य करनेवाले पर साथ ही परस्परावहनकी ज्ञेन भाग है—(तचा, स्त्रायु, नरें, हड्डी, ज्ञानतन्त्र हृशादि) इन सबके संयोगसे शरीर बनता और चलता है। एक ही शरीरके अन्दर वे जिज्ञ जिज्ञ स्थूल और सूक्ष्म शरीर ही हैं। हृसमें ज्ञानतन्त्र सबसे सूक्ष्म है। इन सबके अन्दर कोई जाक करता है जिनके बिना वे शरीर अवश्य काम नहीं कर सकते। शरीरके इन जिज्ञ-भिज्ज आगोंकी स्थूल और सूक्ष्म किंवद्दन-शक्तिके ज्ञानके लिये हृसके कुछ सास काम रखते हैं—अह-इनियन-समूह शरीरको वह अवश्य स्थूल देह, शुद्ध मानस-शक्तिको जारी-देह और आत्मशक्ति-को महाकारवयेह कहा है—

इस देहका हृस अविक ग्रहाशब्दके साथ निकट सम्बन्ध है। ग्रहाशब्दके पश्च ग्रहानुतोंके अंशसे ही वह शरीर बना है। और ग्रहाशब्दकी उप्पता, विद्युत और प्राण इन शक्तियोंसे ही वह किंवद्दन दुष्टा और कार्य कर रहा है। इतनी बातें सामने रखकर अब हम यह देखें कि मुखसे निकलनेवाले शब्द वा अग्निका क्षय वरिष्ठाम होता है।

(१) अग्निसे प्रकल्पन होता है। वह प्रकल्पन स्वरूप अस्पष्ट, चीमा वा तेज, हृस या दीर्घ जैसा होगा वैसा वह बातावरणमें आन्दोलन उत्पन्न करके फैलने लगेगा।

(२) हृस आन्दोलनसे बातावरणमें कम्फ्के बर्तुकारक रूप उत्पन्न होते हैं।

(३) जिर इन बर्तुकोंके मिलनसे विशिष्ट आङ्गुष्ठियाँ बनती हैं।

(४) कम्फके उस आयुमशब्दकमें जो सूक्ष्म और स्थूल द्रव्य हों उनपर उन आङ्गुष्ठियोंका परिष्कार होता है।

(५) हृसप्रकार सूक्ष्मरूपसे होनेवाला वह विकिप परिष्कार बोन्ह संस्कार होनेसे सतत कार्य करता रहे तो उससे स्थूल कार्य लिंगाय होता है।

(६) हृस अग्निकम्फका परिष्कार हृसर जाक क (जिसे प्रवृहायु कहते हैं) अवस्था सूक्ष्म द्रव्यपर भी होता है और उससे उसकी समतामें भी प्रकल्पन-कार्य आरम्भ होता है।

(७) हृसमें होनेवाली वह कम्फ-लिंगा ही प्राण-तेज (Odic light) है।

नसिंहं तु भरणी देवी बाहुद्यां गृह्य मैत्रिम् । च्वागतेनाभिनन्दे नामास्ते जोपवेशम् ॥ तामासनगतो हृष्णा प्रचिशन्तोऽसातत्म् ॥





( = ) इथरमें होनेवाले ये सूक्ष्म कल्प तेज और उच्चता-के रूपमें वाह और नेत्रके द्वारा ज्ञात होनेकी कहाँमें आजाते हैं तभी उन्हें अवशाहरमें तेज और उच्चता कहते हैं।

इसप्रकार इथरपर होनेवाले ध्वनिके परिवामनका विचार हुआ। अब शारीरके किन-किन भागों और ब्रह्मों-पर क्या परिवाम होता है, इसका विचार करें।

मुँहसे भन्नोचार करनेके पूर्व उस उच्चारका अपने मनमें उत्पन्न होना आवश्यक होता है। मनमें उत्पन्न हुए विचार वह मुँहसे निकल ही नहीं सकता। पर मनके भी पूर्व उसका अपने मस्तिष्कमें किसी सूक्ष्म अनुद्भूत-सी अवश्यकतामें होना जरूरी है। मस्तिष्कमें होनेसे ही वह मनमें उत्पन्न होकर मुँहके द्वारा बाहर निकलता है।

पिण्डवाङ्मालका शाश्वत और व्यापक वस्तुस्वरूप सथा विचारस्वरूपका बोध करानेवाले श्रीराम-मन्त्रके कल्प ( Vibrations ) मस्तिष्कमें अन्तर्भूगके सूक्ष्म-सूक्ष्मतर तन्मुखोंको कल्पित किये हुए वहाँ अनुद्भूतरूपमें रहते हैं। बदि ऐसा न हो तो उन कल्पोंका कहाँसे उत्थापन नहीं हो सकता। इन अनुद्भूत कल्पोंका उत्थापन होनेपर वे कल्प बहाँसे ज्ञानवान् नाड़ी-जाव ( Sympathetic Nerve ) में, किंवद्धाँसे ज्ञानेनिद्रिय नाड़ी-जाव ( Sensory ) के वाग्-नाड़ी-जावमें रहनेवाले शब्दोत्तावक ( Hypoglossal Nerve ) गतिकान् ( Motor Nerve ) ज्ञान-तन्मुखोंको प्रेरित करते और जीभको कल्पित करके मन्त्रका स्वयं उच्चार करते हैं। राममन्त्रके कल्प इसप्रकार वाय ज्ञातावद्वपर पवित्र और समर्थ परिवाम करके फिर छोटकर शारीरके अन्तर्भूगोंपर परिवाम करते हुए भूज उत्पत्ति-स्थानमें जा पहुँचते हैं। सृष्टि-शब्दका वह अवधित सिद्धान्त है कि, जो-जो शक्ति जिस-जिस मूँज स्थानसे उठकर कियामें प्रवृत्त होती है वह शक्ति जिस उसी मूँज उत्पत्ति-स्थानमें आकर अपना वर्तुल ( Circulation ) पूरा करके ही वर्षको प्राप्त होती है। इस नियमके अनुसार रामनामके जो कल्प अपने भूज स्थानसे उठकर मुँहतक आकर बाहर निकलते हैं और फिर वर्तुल पूरा करते हुए खौटते हैं, वे शरीरमें अन्धरकी ओर जाते हुए जीभके स्नानखुंबोंमेंसे होकर गतिकान् ज्ञानतन्मुखोंमें जाते हैं, बहाँसे ज्ञान-तन्मुखोंके शब्दज्ञानरूप ( Auditory Nerve ) में कल्प उत्पन्न करते हुए अुल्लम रीतिसे ज्ञानवान् ज्ञानतन्मु-जावमें कल्पित करते हुए वह जानव ब्रह्ममें जाते हैं तभी वे अपने और

दूसरोंके शारीरके शब्दका स्वरूप पक्ष लकड़ते हैं, वही उनके अर्थका कार्य निर्माण होता है और श्रीरामस्वरूप तेज अवलित द्वारा निर्माण होकर मस्तिष्क पिण्डान्तर्गत ब्रह्मद्वय ( Seat of the Soul ) में बिलीन हो रहता है। इस प्रकार यह पूरी क्रिया प्रत्येक जपमें होती है। और राम-मन्त्रके जपसे, स्थूल और सूक्ष्म क्रियात्मक संस्कारसे, ज्ञानस-शक्तियों, विद्युत् और प्राणमें प्रकृत्यन उत्पन्न होते हैं और उनके संबंध तथा संबंधसमुद्घातसे सूक्ष्म और शास्त्र तेजोमय आकृति निर्माण होती है।

इस तेजोमय देवताकृतिमें उच्चता नहीं, शान्ति होती है ( सूर्यकेत्रिप्रतिकाशं चन्द्रकेदिसमप्रभं )। इस आकृतिकी निर्माणक्रियामें मन्त्र शब्दोचार, मन्त्र अर्थोकार और भावास्वरूप जितना ही समर्थ और इह होगा उससे उतने ही अधिक तेजस्वी और बलवान् मानिसक तेज-कल्पन और वैतन्य विद्युत-कल्पन होते हैं और उसी परिमाणसे युक्त उस देवताका सूक्ष्म अवयवा स्थूल देह निर्माण होता है। मन्त्र-शास्त्रके नियमानुसार इसप्रकार जपके द्वारा उस देवताका वह आकार हमारे मानसिक ब्रह्ममें उच्च भूमिकापर सूक्ष्म रूपसे तैयार होने लगता है और जैसे-जैसे इसका संस्कार सतत जपसे उठ होता है वैसे-वैसे हमारे सम्पूर्ण शरीर और मनमें पवित्र शुद्ध भक्ति फैलकर वह मनुष्यको इसी मनुष्य देहमें देख बना लाती है, उसे ज्ञानयुक्त भक्त और सूक्ष्म बना देती है। श्रीरामनामके जपमें इतनी सामर्थ्य है।

इसप्रकार देव और दरपनिषद्के वर्णनोंसे, अनुभवी सम्भावोंकी वासीसे, मन्त्रशास्त्रसे, शारीरशास्त्र और मनो-विज्ञानसे तथा ध्वनिशास्त्रसे श्रीरामनामके जपकी अपार महिमा सिद्ध होती है। श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान् ने कहा है—

‘पञ्चानां जपयोऽऽस्मि’

इसप्रकार जप-न्यज्ञ सब यज्ञोंमें अद्वैत है ही, पर इसमें रामनामके जपकी महिमा सबसे अधिक है, वह उपरके विवेचनसे पाठकोंके ज्ञानमें ज्ञा गया होगा। इस इष्टसे रामराज्यास्तोत्रमें जो वह कहा है, वह वर्णार्थ ही है कि—

राम रामेति रामेति रामे रामे मनोरमे ।

सद्गुरुनाम ततुत्यं रामनाम वरानने ॥

बहाँतक जप और राममन्त्र जपकी महिमाका विवरण उपरके पश्चात् भव मन्त्र-जपकी क्रमपद्धतिका विवरण भी यहाँ दे देना आवश्यक मालूम होता है।

वाचिक जप-इस जपकेदो अंग हैं—प्रथम वाचिक और अनन्तर उपरांतु। जोरसे स्वयं उच्चार करते हुए तालवद्द व्यरके

साथ जिसके आवर्तन होते हैं उसे वाचिक जप कहते हैं; और जिसमें हौठ और जीभ हिलते हैं पर स्वर हतना भीमा होता है कि आपने ही कानमें वह सुनायी दे, शब्द बाहर न आय उसे उपांशु जप कहते हैं। इन वाचिक और उपांशु जपोंसे वाणी और अवगति कार्य करनेवाले स्नायुओं और ज्ञानतन्तुओंमें गति निर्माण होती है और उससे अन्तर्बाहा जगतपर बैखरी वाणीसे गतिशील प्रकल्पन उत्पन्न होते हैं। इनसे अन्तर्बाहा सृष्टिमें इट परिवर्तन होता है।

मानसिक जप—इस जपमें हौठ या जीभके हिलनेका काम नहीं है। मनसे मनोमय शब्दका मन-ही-मन स्पष्ट उच्चार करना होता है। यह उच्चार शब्दाचारप्रेरक ज्ञान-तन्तुओंमें होता है और उससे कानोंके शब्दज्ञान तन्तु कवित होकर मनसे होने-वाला स्पष्ट उच्चार मनको ही सुनायी देता है। इसप्रकार जो जप होता है उसे मानसिक जप कहते हैं। यह मानसिक जप मन्त्रमा वाणीसे ज्ञानतन्तुओंमें सूक्ष्म गति उत्पन्न करके इथर आदि सूक्ष्म द्रव्योंमें कम्प निर्माण कर पिण्ड-ग्रहाशब्दके सूक्ष्म शरीरपर परिणाम करते हैं।

ध्यान जप—यह जप परयन्त्री वाणीसे मानस तेजाकार देवता मानस प्रव्याप्त करके स्वतन्त्र ज्ञानवान् ज्ञानतन्तु-जाल (Sympathetic Nerve System) और नार्सिक्स (Nervous flexuous) को सूक्ष्म गति देकर इथरसे भी सूक्ष्म प्राणद्रव्यमें प्रकल्पन उत्पन्न करता है और उसका पिण्ड-ग्रहाशब्दके कारण शरीरपर परिणाम होता है।

अनन्य जप—यह जप परावाणीसे कुण्डलिनी नार्दीमें तेज उत्पन्न करके जीवात्मतेजमें सूक्ष्मतर गतियुक्त प्रकल्पन उत्पन्न करता है और पिण्डग्रहाशब्दके महाकारण देहपर परिणाम करके जीवात्मरूपी लघु केन्द्रको परमात्मरूपी बृहस्पति बनाया करता है।

यह मन्त्र-जपकी क्रमपद्धति है। प्रथम उच्चस्वरमें राम-नामका जो जप करता है, उस उसके अन्तर्गत ही, जैस-जैसे अध्यास बढ़े, वैस-वैसे, उसको प्रकृति आप ही इसका ज्ञान करा देती है, और वह वाचिक जपसे मानसिक जपमें, मानसिकसे ज्ञानमें और ज्ञानमें अनन्य जपमें पहुँच कर इत्यररूप हो जाता है। जिसको इस रामनामका एक बार इसात्माद गिरा और वह इस रामनाम-चक्रमें अटका कि किर वह और कोई प्रयत्न किये बिना, उसकी गतिके बेगके साथ आप ही आगे बढ़ता जाता है और स्वभावतः ही मनुष्यत्वके परे पहुँचकर भीराम-प्रमुखको प्राप्त होता है।

## श्रीमानसकी चौपाइयोंके विनोदी अर्थ

( लेखक—कविसम्राट पर्यार्थवाचरपति पं० बाबूरामजी शुक्ल )

स्वयकर मत खग नायक एहा ।

करिय राम पद पङ्कज नेहा ॥ ३० का०

( १ ) स्वयकर मत (सबहीके मत=सम्प्रदाय) ख शून्य अर्थात् कुछ नहीं, सार हीन हैं। गना यक एहा ( यह एक अर्थात् अङ्ग गिना गया है कि करिय राम पद पङ्कज नेहा (हरिभक्ति कर्त्तव्य है) भाव, बिना अङ्गके शून्य अर्थ होते हैं, जब अङ्ग साथमें हो, सब शून्य सार्थक होता है, इसी भाँतिसे हरिभक्तिसे योग विराग आदि सफल होते हैं, ० ० वा ०० वा ००० = कुछ नहीं पर १० = दश और ०१ =  $\frac{1}{10}$  । रामनामको अङ्ग है, सब साधन हैं मूल । अङ्ग गये कल्याण नहीं, अङ्ग रहे दश गून ॥ तुलसी सतसहै

( २ ) स्वयकर (सबही कुछ करनेवाला) हे खगनायक ! मन पहा (हे गहुङ यह मत है) कि—करिय राम-पद पङ्कज नेहा (हरिप्रेम करे)

( ३ ) हे खगनायक ! स्वय कर (सबही धर्म अर्थ काम मोक्षकी कर) मन । १० (यह सम्प्रदाय है) कि करिय रामपद पङ्कज नेहा (हरिप्रेम करे)

( ४ ) हे खगनायक ! स्वय (सकल सृष्टिके शिवपर) एहा रमत(यही रमता है) कि करिय रामपद पङ्कज नेहा (हरिप्रेम करे) क = शिर जैसे दशकल्पद-दश शिर आरण करनेवाला । शङ्का—किस रूपको भजे ? उच्चर

( ५ ) स (सञ्चयनमें) व (वासुदेव है) इ (रजोगुणासें) क (वक्षा है) त (तमोगुणासें) म (शिव है) पर—करिय रामपद पङ्कज नेहा येरा ही आंमदागावतमें कहा है—सत्त्वं रजनामः इति प्रकृतेन्दुणः पूर्वः पुरुष एक इहान्य धर्ते । मिथ्यादिये हरिवर्गीक्रेतेरि महा अंशयमि तत्र विनु मत्वदनन्देन्नां गः । क=—ग्रहा म—शिव । संस्कृत कोष देखो ।

आप ओंक अंर नीपाइयोंके पटोंका अर्थ करनेमें बड़े हा तिड़हन है अपकी विद्यापर मुश्य होना पड़ता है। रामायणकी चापाइयोंके सम्बन्धमें अपने एक बदा लेख भेजा रहा है। नमूनेके तीरपर उपांका एक छाटा-मा अंश पाटकोके विनोदार्थ दिया जाता है। पूरा लेख न आप सकनेके किंव सम्मान शुक्लजी महाराज कृपापूर्वक क्षमा करें । —सम्पादक

## तुलसी-रामायण

( लेखक—श्रीविनोबाजी भावे )



तीव्र साहित्यके इतिहासमें तुलसी-दासजीके रामायणका एक स्वतन्त्र स्थान है। हिन्दी राष्ट्रभाषा है और उस भाषाका यह सर्वोत्तम प्रन्थ है, अतः राष्ट्रीय दृष्टिसे तो इस प्रन्थका स्थान अद्वितीय है ही पर भारतके सात आठ करोड़ लोग इसे बेद-नुस्खा प्रामाणिक मानते हैं, यह नियम परिचित तथा धर्म-जागृतिका एकमात्र आधार है; अतः धर्मदृष्टिसे भी इसे अद्वितीय स्थान प्राप्त हुआ है। रामभक्तिका प्रचार करनेमें, 'शिश्यार्दिन्देत पर-नवयम्' इम न्यायसे बालमीकीय रामायणके पाराजयका आजन्त देने-वाला यह प्रन्थ है अतः भक्तिमार्गके दृष्टिसे भी यह अद्वितीय है। तीनों दृष्टियोंका ऐस्य करके यदि इसपर विचार किया जाय तो यह अनन्दवालंकारका उदादरण प्रतीत होता है। राम-रावणके युद्धकी उपमा जैसे राम-रावण युद्ध ही था वैसे ही तुलसीरामायणकी तुलना भी तुलसीरामायण है।

प्रथम नो रामायण भर्यादापुरोत्तम श्रीरामचन्द्रजीका चरित्र है और फिर तुलसीदासजीने भी उन्में विशेष भर्यादापूर्वक लिखा है, इस कारण यह प्रन्थ होते बालकोंके भी दृष्टिमें देने योग्य पवित्र और निर्दोष बन गया है। इसमें काव्यके मध्य रमांका वर्णन नैतिक भर्यादाकी रक्षा करते हुए किया गया है। स्वयं भक्तिको भी नियमोंसे नियन्त्रित किया गया है। अनःसुरास-जैसी भक्ति भक्ति इसमें देखनेको नहीं मिलती। तुलसीदासकी भक्ति नियमित थी। नियमित और मल्ल भक्तिमें वही मौलिक भेद है जो श्रीराम-भक्ति और श्रीकृष्ण-भक्तिमें है। पर यहाँ भी तुलसीदासजीकी कुछ विशेषता है ही।

तुलसी-रामायणका बालमीकीय रामायणकी अपेक्षा अध्यायरामायणसे अधिक सम्बन्ध है। बहुतसे वर्णनों-में—विशेषतः भक्तिके उद्घारोंमें तो भागवतकी छाया दीख पड़ती है, गीताकी छाया तो है ही। महाराष्ट्रीय भागवत-धर्मविद्वान्मध्ये सम्भूतोंसे जो परिचित हैं उन्हें तुलसी-रामायणमें कही भी कठिनाई नहीं प्रतीत होती! वही नीति,

वही लिमेंड भक्ति, वही संघर्ष है। तुलसीदासजीको अपने ग्राममें जौट आनेपर भी जैसे भ्रम हुआ था कि हम फिर हारकामें ही पहुँच गये हैं, उसी प्रकार तुलसी-रामायण पढ़ते समय महाराष्ट्रीय सन्त-प्रशंसकोंके वचनोंसे परिचित मनुष्यको ऐसी शंका होती है, कहों इस विश्वरिचित वचन तो नहीं पढ़ रहे हैं। महाराष्ट्रीय सम्भूतोंमें भी श्रीएकनाथका तुलसीदाससे विशेष साम्य पाया जाता है। श्रीएकनाथके भागवत और तुलसी-रामायणमें तो अस्तन्त माम्य दिव्यलायी पढ़ता है। श्रीएकनाथने भी रामायण लिखी है पर उनके आत्माका प्रतिविम्ब दिव्यलायी पढ़ता है, उनके भागवतमें! श्रीरामादेवोंको इसी भागवतने दागज बना दिया था। नाथ कृष्णभक्त थे तो तुलसीदासजी रामभक्त थे। नाथने कृष्ण-भक्तिकी मस्तिको उत्तरा, यह उनकी विशेषता थी। ज्ञानदेव, नामदेव, तुकाराम, एकनाथ आदि सबके सब कृष्णभक्त तथा भर्यादा-शीज थे।

तुलसीदासजीकी सुगम्य करामात उनके अयोध्याकाशमें दिव्यलायी देती है। उस क्षाशकी रचनामें उन्होंने विशेष परिश्रम किया, ऐसा दिव्यलायी देता है। अयोध्याकाशमें भरतकी भूमिका अनुत्त है। भरतजी तुलसीदासजीकी ज्यान-मूर्ति थे। इस ज्यानमूर्तिके बुननेमें श्रीचित्य प्रतीत होता है। लक्ष्मणजी और भरतजी दोनों ही श्रीरामके परम भक्त थे, पर एकको संयोगका सौभाग्य प्राप्त हुआ था तो दूसरेको वियोगका। वियोग भी 'सौभाग्य' स्वरूप ही गया क्योंकि उनमें भी भरतजीने संयोगका अनुभव किया। हमारे भाग्यमें परमेश्वरके वियोगमें रहकर काम करना बदा है, लक्ष्मणजीकी तरह संयोगमें रहकर कार्य करनेका हमारा अहोभाग्य नहीं है, अतः वियोगमें रहकर भी हमें सौभाग्य किस तरह प्राप्त हो सकता है, यह जाननेके लिये भरतजीका आदर्श हमारे लिये बहुत उपयोगी है।

शरीरिक संयोगकी अपेक्षा मानसिक संयोगका विशेष महत्व है। शरीरसे सञ्चिकट रहकर भी मनसे दूर रह सकता है। दिन-रात नशीकी ओढ़नी ओढ़कर सोया हुआ परथर आदर्शतासे विकृत अलिङ्ग रह सकता है। इसके विस्तृ शरीरिक वियोगमें भी मानसिक संयोग रह सकता

है। इसमें संवरम कहती है। भक्तिकी तीव्रता विषोगसे बहसी है। यदि आनन्द ही देखा जाय तो प्रत्यक्ष स्वराज्य-प्राप्तिके आनन्दकी अपेक्षा स्वराज्य-प्राप्तिके प्रबलोंमें जो आनन्द मिलता है, वह कुछ और ही है, केवल उसके अनुभव करने योग्य। रसिकता होनी चाहिये। भक्तोंमें यह रसिकता होती है अतः वे मुक्तिकी इच्छा न करके मरिमें ही मुखी रहते हैं। भक्तिका अर्थ है जाय विषोगमें आन्तरिक ऐक्य। वह कोई मामूली भाव्य नहीं, यह तो परम भाव्य है। मुक्तिसे भी बदल अहोभाव्य है। भरतजीका यही सौभाव्य था। वस्त्रमध्यजीका भी अहोभाव्य था। पर प्रथम तो वह इसें नसीब नहीं और दूसरे वह वास्तविक ही नहीं। इसका कारण 'बांगूर लट्टे हैं' यह नहीं कहिं 'उपवास मीठा है' वही है। भरतजीके भास्यमें उपवासकी अनुरता है।

'संन्यासीको भी मोक्षका द्वेष होता ही है।' गीता-रहस्यमें लोकमान्यने वेसा आवेष किया है, पर इमारे सामु-सम्भावनें इस आवेषसे बचनेका भी तरीका हृद निकाला है। उन्होंने जो भक्तोंही संन्यास दे डाका। स्वयं तुलसीदासजी भी भक्तिकी नोन-रोटीपर राजी हैं। मुक्तिकी मिजाजानीका उन्होंने तिरस्कार किया। तुलसीदासजीने स्वयं ही कहा है—'मुक्ति निरादरि भगवि जोभाने; ज्ञानदेव महाराजने भी 'मोग-मोक्ष निवानो ग पायानली।' 'मोक्षान्नो सोही बाँधी करी।' 'नडु पुण्यांशं शिरीः भान्न जैसी।' आदि बचनोंमें मुक्तिको भक्तिकी चेरी बनाया है और सामुदर तुकाराम महाराजने तो 'नको बदाहान आत्मविनियाव' कह करके मुक्तिको इनीका ही दे डाका है। श्रीएक्लनाथने भक्तिको मुक्तिसे कई स्थानोंमें श्रेष्ठ बतलाया है। गुजरातके नरसी मेहता नो 'हरिना जन नो मानो' की ही रुद्रन्त बाणाया करते थे। साधांश, कि सब आगवत-धर्मीय वैष्णव-भक्तजात्य मुक्तिके जो भस्ते पूर्णतया मुक्ष रहे हैं। इस वैष्णव-परमपरा-का उन्नम भक्तिरामणि प्रहारसे है। 'नैनःन् विहाय कृपणान् विमुक्ष पकः' अर्थात् 'इन गरीबोंको लोकान् में अकेला ही मुक्ष होना नहीं चाहता' वह सूक्षा ब्रह्म प्रहारने नृसिंहजीको दिया था। किंतु युगमें औल, स्मार्त, संन्याय-मार्गकी स्थापना करनेवाले श्रीशंकराचार्यने भी—

नष्टायाथाय कर्मणि संस्कृत्वा करोति यः ।

—इस गीताके लोकपर माव्य करते हुए 'मंग व्यक्त्वा'

अर्थात् 'मोक्षेऽपि फले संगं लक्ष्मा'—'मोक्षकी भी आसक्ति द्वोद करके'—जपनी तरफसे ऐसे शब्द जोकर प्रतिपादन किया है। तुलसीदासजीके भरत इस अक्षि-भाव्यकी सांचाद मूर्ति हैं। भरतजीकी माँग देखिये—

अरथ न धरम न काम कष्टि, गति न अहङ्क निरवान।

जनम जनम रति रामपद, यह बरदान न आन ॥

इसप्रकार लोकमान्यके आवेषका सम्भावने पूर्णतया उत्तर दिया है।

भरतजीमें विषोग-भक्तिका उत्कर्ष विलक्षणी देता है, इसी कारण वे तुलसीदासजीके आदर्श बने। भरतजीने सेवाधर्मका उत्तम रीतिसे पालन किया, नैतिक मर्यादाका भी पूर्ण परिवर्तन किया, ईश्वरका विभारण कभी न होने दिया, ईश्वरी जाङ्गा मानकर ही प्रजापालन किया और इस सबका अर्थ ईश्वरको अपन्य करके स्वयं सक्षम अवगत रहे। जनपदमें रहकर अरब्द-वासका अनुभव किया। वैराग्ययुक्त वित्तसे यम-नियमादि विषय बचनोंका पालन करके आत्माको ईश्वरसे दूर रखनेवाले देहके परदेहों पर दाका कर डाका। तुलसीदासजी कहने हैं कि यदि भरतजी-जैसे भक्त वैदा न होते तो मंग-जैसे पतितको रामके सम्मुख कौन करता ?—

सिध-राम-प्रेम-पितृ-पूरन होत जनम न भरतो ।

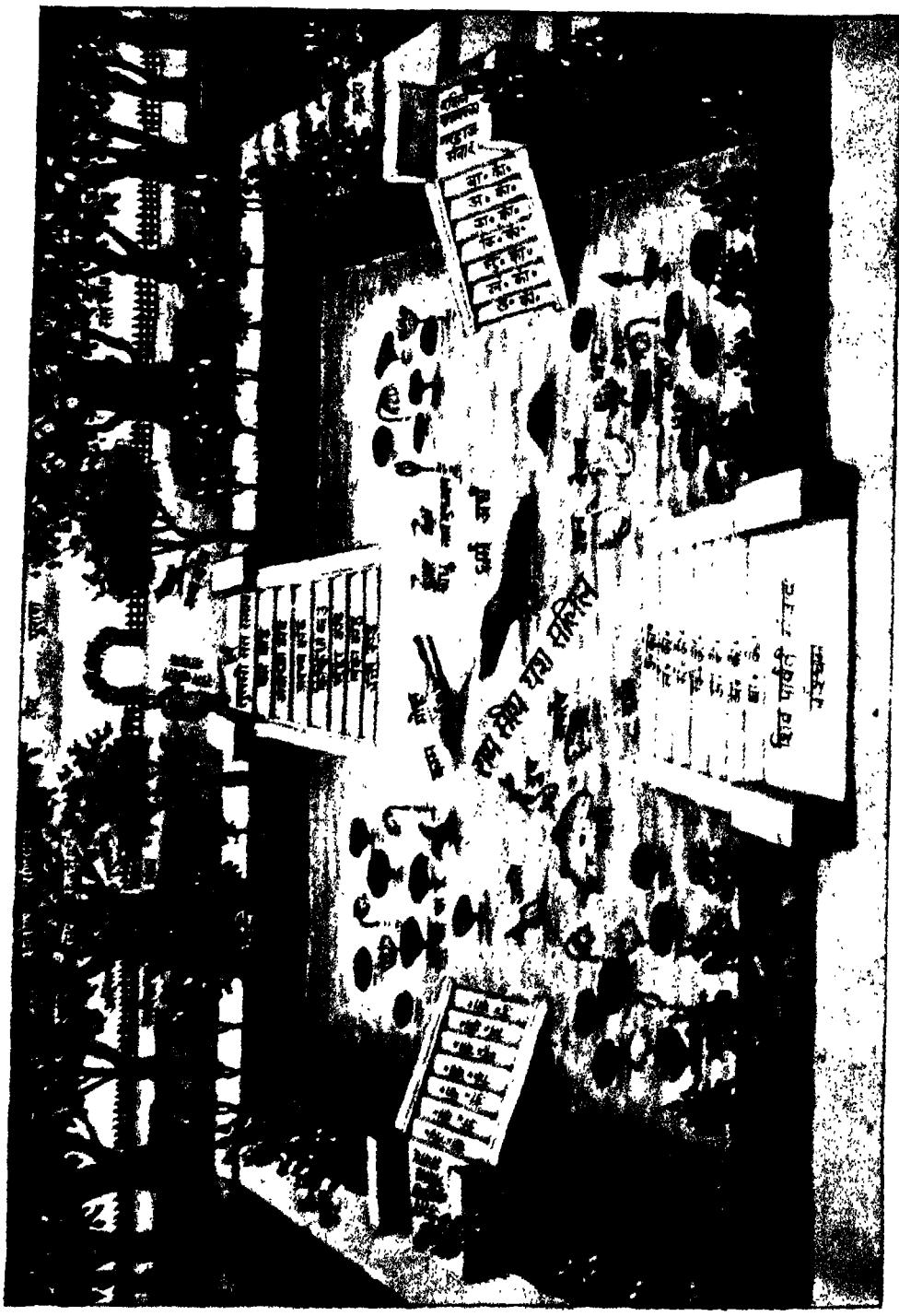
मुनि-मन-अगम-जम-नियम-मम-दम विषय ब्रत आचरन को ।

दुर्ल-दाह-दरिद्र-दैम-दूषन मुजस-मिस अपहरत को ।

कलिकाल-तुलसी-से सहायि इष्टि राम-सन्मुख करन को ॥

रामावल्यमें राम-सखा भरत, भारतमें शकुनजाके पुत्र पराक्रमी भरत और भागवतमें ज्ञानमुक्त जद भरत, ये से तीन भरत प्राचीन इतिहासमें प्रसिद्ध हैं। हिन्दुस्थानको 'भारतवर्ष'संज्ञा शकुनजाके बारे भरतसे मिली होगी, येसा ऐतिहासिकोंका अनुभाव है, श्रीएक्लनाथजीने जदभरतसे यह संज्ञा भास होना बतलाया है और तुलसीदासजी कदाचिद् इसको रामभक्त भरतसे प्राप्त बतलाते होंगे। कुछ भी हो पर आजके विषोगी भरतके द्विये भरतजीकी विषोग-भक्तिका आदर्श सब प्रकार अनुकरणीय है ! तुलसीदासजीने इस आदर्शोंको पवित्र अनुभवसे प्रदीप करके हमारे सम्मुख रखा है। उसके अनुसार आचरण करका हमारा कर्तव्य है।





## प्रार्थना !

सच्चिदानन्द सनातन रूप ।

अगुण अज अव्यय अलख अनूप ॥

अगोचर आदि अनादि अपार ।

विश्वापक विभु विश्वाधार ॥

न पाता जिनकी कोई थाह ।

बुद्धि-बल हो जाते गुमराह ॥

सन्त श्रद्धालु, तर्क कर त्याग ।

सदा भजते मनकं अनुराग ॥

समझकर विषवत् सरे भोग-

त्याग, हो जाने स्वस्थ निरोग ।

एक बस, करते प्रियकी चाह ।

विचरने जगमें बे-परवाह !

धरा धन धाम नाम आराम ।

सभी कुछ राम विश्व-विश्राम ॥

देखते सबमें, ऐसे भक्त ।

सतन रहते चिन्तन-आसक्त ॥

प्रेम-सागरकी तीक्ष्ण तरंग ।

बाँध मर्यादाका कर भंग ॥

वहा ले जानी, जब ध्रुति-धार ।

मन्त तब करते प्रेम-पुकार ॥

प्रेम-वज्र विद्वल हो श्रीराम ।

भक्त-मन-रंजन अति अभिराम ॥

दिव्य मानव-शरीर-वर धार-

अनोखा, हरि लेते अवनार ॥

मदन-मन-मोहन, मुनि-मन-हरण ।

सुरामुर सकल विश्व मुख-करण ॥

मधुर मञ्जुल मूरति द्युनिमान् ।

विविध कीड़ा करते भगवान् ॥

दयावश करते जग-उडार ।

प्रेममे, नथा किमीको मार ॥

विविध लौला विशाल शुचि चित्र ।

अलौकिक सुखकर सभी विचित्र ॥

जिन्हें गा-सुनकर सब संसार ।

सहज होता भव-वारिधि पार ॥

तोड़ माया-बन्धन जग-जाल ।

देखता 'सीय-राम' हर-हाल ॥

वही सुन्दर मृदु युगल-स्वरूप ।

दिखाते रहो राम रघु-भूप ॥

'सकल जग सीय-राममय' जान ।

कर्हं सबको प्रणाम तज मान ॥

अकिञ्चन

## रामायण हमें क्या सिखाती है

१-दृढ़ संविदानन्वयन एक परमात्मा ही सर्वत्र व्याप्त है और अस्ति विवर एवं विश्वकी घटनाएँ उसीका स्वरूप और जीवा हैं ।

२-परमात्मा समय-समयपर अवतार भारगव क्रेम-द्वारा सामुद्रोंका और दृष्टिहारा दुष्टोंका उद्धार करनेके लिये लोकलक्ष्यायार्थ आदर्श जीवा करते हैं ।

३-भगवान्की शरणागति ही उद्धारका सर्वोत्तम उपाय है । उदाहरण—विभीषण ।

४-सत्य ही परम धर्म है, सत्यके लिये धन, प्राण, ऐश्वर्य सभीका सुखपूर्वक व्याग कर देना चाहिये । उदाहरण—श्रीराम ।

५-मनुष्य-जीवनका परम ध्येय परमात्माकी प्राप्ति करना है और वह भगवन्-शरणागतिपूर्वक संसारके समस्त कर्म ईश्वरार्थ व्यागदृष्टिसे कलासक्ति-शून्य होकर करनेसे सफल हो सकता है ।

६-वर्याभ्रम-चर्मका पालन करना परम कर्तव्य है ।

७-माता-पिताकी सेवा पुत्रका प्रधान धर्म है । उदाहरण—श्रीराम, श्रीभवत्कुमार ।

८-छियोंके लिये पातिव्रत परम धर्म है । उदाहरण असीताजी ।

९-पुरुषके लिये एकपर्वी-व्रतका पालन अनि आवश्यक है । उदाहरण श्रीराम

१०-भाइयोंके लिये सर्वस्व व्यागव करन्हें सुख पहुँचाने-की चेष्टा करना परम कर्तव्य है । उदाहरण श्रीराम, भरत, लक्मण, शत्रुघ्न ।

११-धर्मात्मा राजाके लिये प्राण देकर भी उसकी सेवा करना प्रजाका प्रधान कर्तव्य है । उदाहरण-(१) बनगमनके समय अगोध्याकी प्रजा । (२) बहूके युद्धमें बानरी प्रजाका आत्मविजित ।

१२-अन्यादी अधर्मी राजाके अन्यायका कभी समर्थन न करना चाहिये । सगे भाई होनेपर भी उसके विरुद्ध लड़े होना उचित है । उदाहरण—विभीषण ।

१३-प्रजारञ्जनके लिये प्राण-प्रिय वस्तुका भी विसर्जन-कर देना राजाका प्रधान धर्म है । उदाहरण—श्रीरामजीहारा सीता-व्याग ।

१४-प्रजाहितके लिये यज्ञादि कर्मोंमें सर्वत्र दान दे डालना । उदाहरण—दशरथ और श्रीराम ।

१५-धर्मपर अन्याचार और जीजातिपर जुल्म करनेसे बड़े-बड़े शक्तिशाली सम्राट्का विनाश हो जाता है । उदाहरण—रावण ।

१६-मित्रके लिये प्राणतक देनेको तैयार रहना तथा उसके सभी कार्य करना । उदाहरण—श्रीराम सुग्रीव और श्रीराम-विभीषण ।

१७-निकाम मेवा-भावसे मदा मर्वदा भगवान्के दामनमें लगे रहना । उदाहरण—श्रीहनुमानजी ।

१८-मौतके पुत्रोंपर भी प्रेम करना । उदाहरण कौसल्या, सुमित्रा ।

१९-प्रतिज्ञा-पालनके लिये मगे भाईसकका उसके प्रति हृदयमें पूर्ण प्रेम रखने हुए भी व्याग कर देना । उदाहरण श्रीरामके हारा लक्ष्मण-व्याग ।

२०-याक्षण-मामुद्रोंका मदा दान-मानसे मर्कार करना । उदाहरण श्रीगंग ।

२१-आवकाशके समय भगवहमें या मन्दिरन करना । उदाहरण श्रीगंग आदि भाइयोंकी बातचीत ।

२२-गृह, माना, पिता, बड़े भाई आदिके चरणोंमें निष्प्रश्नाम करना ।

२३-पिनरांका अद्वापूर्वक नर्पण-आद करना ।

२४-अन्यायका सर्वदा और मर्वदा प्रतिवाद करना । उदाहरण—जन्मय ।

२५-धर्मपालनके लिये बड़े-मे-यदा कष्ट महन करना । उदाहरण—श्रीराम, लक्मण, सीता, भरत ।

२६-हिजमायको लिये ईक समयपर सन्ध्या करना चाहिये ।

२७-मदा निर्भय रहना चाहिये । उदाहरण श्रीराम-लक्मण ।

— २८—बहुविवाह कभी नहीं करना चाहिये । उदाहरण—  
श्रीराम ।

२९—साधु-सन्त-महात्माओंके धर्मकार्यकी रक्षाके लिये  
सदा तैयार रहना । उदाहरण—श्रीराम-लक्ष्मण

— ३०—अपना बुरा करनेवालेके प्रति भी अच्छा ही  
वर्ताव करना । उदाहरण—श्रीरामका वर्ताव कैकेयीके प्रति,  
श्रीवशिष्ठका वर्ताव विश्वामित्रके प्रति ।

— ३१ जीके लिये परपुरुषका किसी भी अवस्थामें  
जानबूझकर स्पर्श नहीं करना । उदाहरण—लङ्घामें सीताने  
हनूमान्की पीठपर चढ़कर जाना भी अस्वीकार कर दिया ।

— ३२ पुरुषोंके परस्परके अङ्ग नहीं देखना चाहिये ।

उदाहरण—लक्ष्मणजीने बरसों साथ रहनेपर भी सीताके  
अंग नहीं देखे, इससे वे उनके गहने तक नहीं पहचान सके ।

३३—साधारण-से-साधारण जीवके साथ भी प्रेम करना  
चाहिये । उदाहरण—श्रीराम ।

३४—भगवान्के चरणोंका आश्रय लेकर प्रेमसे उनकी  
चरण-रज मस्तकपर धारण करनेसे जड़ भी चैतन्य हो  
सकता है । उदाहरण—श्रीकृष्ण ।

३५—बड़ोंके बीचमें अवधिकार नहीं बोलना ।  
उदाहरण—शश्वत् ।

३६—नामिकवाद किसीका भी नहीं मानना । उदाहरण—  
श्रीरामने जावालि-सर्वासे ज्ञान और पिताके मन्त्रीकी बात  
नहीं मानी ।

## चित्र-परिचय

उद्गारकर्ता भगवान् (रंगीन) अन्दरका सुख-  
पृष्ठ यह चित्र गीता अ० १२ श्लो० ६-३ के आधारपर  
बनाया गया है । विशाल भवसमुद्रमें धनकी गँड़ी  
बांधे और भोग-विलासमें रन छो-उग्र गोते खा रहे  
हैं । भगवान्का अनन्यभक्त भगवान्की ओर मन और  
नेत्रोंको बायाये भवसमुद्रमें ढूँकते हुए लोगोंको उदारनेके  
लिये निष्काम प्रयत्न कर रहा है, भगवान् स्वयं सुन्दर सुदृढ़  
नीकापर स्थित हैं और भक्तकी चाँड़ पकड़कर उसे पार ले  
जानेके लिये नीकापर चढ़ाना चाहते हैं ।

श्रीरामपञ्चाश्रयन (रंगीन) पृष्ठ १ भगवान् श्रीराम  
सीताजी-सहित मिहासनपर दिराजमान हैं, भरतजी और  
लक्ष्मणजी चौबर दुजा रहे हैं, शत्रुघ्नी भेट लिये खड़े  
हैं, श्रीहनूमान्जी चरण दश रहे हैं ।

श्रीरामगीता—पृष्ठ ४ श्री 'राम' शब्दमें सारी राम-  
गीता लिखी है ।

सोहे रामसियाकी जोरी—पृष्ठ २० युगल जोरीका  
ध्यान करनेवालोंके लिये बहुत ही सुन्दर चित्र है ।

श्रीपरशुराम-राम (रंगीन) पृष्ठ २६ विवाहके बाद  
अयोध्या छौटनेके समय परशुरामजी रास्तेमें गिरते हैं, उन्हें  
देखते ही दशरथजी अस्पन्द डर जाते हैं, मुनि वशिष्ठ और  
विश्वामित्र शान्त लड़े हैं, श्रीलक्ष्मणजी तेजसे भर रहे हैं,

श्रीराम हाथमें धनुष लेते ही चढ़ा देते हैं, परशुरामजी  
अस्पन्द विस्मित हो जाते हैं । रामायणाङ्क पृष्ठ २६ देखिये ।

सीता-वनवास पृष्ठ ४५-गंगाके डस पार लक्ष्मण-  
जीने रोते हुए, सीताको रामका सन्देश सुनाया, सुनते ही  
सीताजी सहस गर्वी, लक्ष्मण रोने लगे, बढ़ा ही कल्पण-  
जनक दृश्य है ! चित्र बहुत सुन्दर भावपूर्ण है । रामायणांक  
पृष्ठ ४२ और वा० १० ७। ४८ देखिये ।

श्रीराम-सीताजी गुप्तमन्त्रणा-पृष्ठ ४५ (रंगीन)—  
सीताजी एकान्तमें श्रीरामको देवताओंका सन्देश सुनाती  
है । रामायणाङ्क पृष्ठ ४५ देखिये ।

श्रीरामके चरणोंमें भरत (रंगीन) पृष्ठ ६६ श्रीराम-  
सीता चित्रकूटमें पर्यांकुटीके बाहर बेदिकापर बैठे हैं,  
लक्ष्मणजी पास लड़े हैं, कुटियामें दोनों भाइयोंके धनुष-बाण,  
तजवार-दाल आदि टैंगे हुए हैं । इतनेमें भरतजी आकर  
दूरसे ही 'हा आर्य !' कहकर गिर पहते हैं, वहाँ श्रीराम  
और लक्ष्मणके भाव देखने ही चाहते हैं । शशुभजी पीछे  
लड़े चरणोंमें गिरना ही चाहते हैं । निषादराज हस कौकीको  
देखकर आनन्दमें भर रहा है । रामायणांक पृष्ठ ६६  
वा० १० २। ६६ देखिये ।

कैकेयीकी क्षमा-याचना, (रंगीन) पृष्ठ ८२-  
चित्रकूटके एकान्त स्थलमें कैकेयीजी श्रीरामसे उमा भाँग

रही हैं, श्रीराम उन्हें सान्तवना दे रहे हैं। रामायणाङ्क पृष्ठ ८८ तथा अन्यायम् १० २ देखिये।

**श्रीराम-प्रतिष्ठा-**(रंगीन) पृष्ठ ११३—ऋषियोंकी हस्तियोंका ढेर देखकर श्रीराम राहसींसोंको मारनेकी प्रतिष्ठा सुना उड़ाकर कर रहे हैं। श्रीलक्ष्मणजी सुखभावसे वह इस देख रहे हैं, सीताजी सोच रही हैं, मुनि प्रसन्न हो रहे हैं।

**भक्त-प्रब्रह्म रामाली-**पृष्ठ १२४—भ्रातका संस्कृत परिचय कल्याणमें निकल जुका है। रामायणाङ्क पृष्ठ १२४ देखिये।

**श्रीसीताराम-**(रंगीन) पृष्ठ १५२—वनवासका निश्चयकर श्रीराम सीताजीके महलमें जाकर उन्हें यह संवाद सुनाने हैं, सीताजी माय चलनेको बढ़े ही प्रेम और आतंमाकसे प्रार्थना कर रही हैं। १० १० २ १ ३० देखिये।

**श्रीशिव-परिछ्नन-**(रंगीन) पृष्ठ १७६—शिवजी बारान लेकर पहुँचे हैं, गिरिजाकी माता दमादका परचम करने स्वर्ण-यात्र लेकर जियोंके साथ दरबाजेपर आयी है, परम तरंगी भूतोंको देखकर जियाँ ढर गयी हैं, मैनाजीके चेहरेपर दुःख, परिताप, भय, निराशाके भाव खूब चित्रित किये गये हैं, शिवजी गमधीर हँसमुख लहरे हैं, बरानी देवता और भूत-प्रेत ठहराका मारकर हँस रहे हैं। गोसाईजीके रामायणका बालकाशड देखिये।

**श्रीराम-शबरी-**(रंगीन) पृष्ठ १६८—परम प्रेमिका तपस्विनी शबरीजी श्रीरामको जुने हुए फ़ज़ घड़े ही प्रेममें जिका रही हैं, चित्र दर्शनीय है।

**श्रीसीता-अनुसूया-**(रंगीन) पृष्ठ २११—ऋषिमुनि-के आश्रमका अन्नःपुर है, श्रीसीताजी मुनिपत्री अनुसूया-जीके चरणोंमें गिर रही हैं, अनुसूयाजी आशीर्वाद देकर पतिभक्तिका उपदेश करती है। गुसाईजीके रामायण अदरयकाशड देखिये।

**श्रीविश्वामित्रकी रामभिक्षा-**पृष्ठ २२४—दशरथ-जीके दरबारमें श्रीविश्वामित्रजी राम-कल्याणको माँग रहे हैं, दशरथ चिन्तामन्त्र है, श्रीराम-जद्यमण्ड मुसकरा रहे हैं।

**श्रीरामजन्म-**पृष्ठ २३६—यह प्राचीन चित्र श्रीकौशल-कियोरवीसे प्राप्त हुआ है।

**श्रीराम-पादुका-पृज्ञन** (रंगीन) पृष्ठ २४८—श्रीरामकी चरक्षपादुका स्वर्णसिंहासनपर सुभग्नित है।

उपर क्षत्र है, भरतजी ध्यानस्थ हुए स्वयं पंखा झेल रहे हैं, नीचे खूप जल रही है। मानस उत्तरकाशड देखिये।

**श्रीरामायण-गान-शिक्षा-**पृष्ठ २६६—महर्षि वाल्मीकिजी सीतापुत्र बालक खब-कुशको सुरनाटके साथ रामायणका वही गान सिक्षा रहे हैं जिसको गाकर दोनों बालकोंने रामकी सारी सभाको सुख कर दिया था।

**सदाप्रसन्न भगवान् श्रीरामचन्द्र-**(रंगीन) पृष्ठ २८० यह ध्यानके योग्य बहा ही मनोहर चित्र है।

**श्रीराम और काकभुशुरिड-**(रंगीन) पृष्ठ ३०४—भगवान्की बालबीजाका आनन्द लूटनेके लिये श्रीभुशुरिड-जी छोटेसे कौप बने हैं। श्रीराम मालपूरा दिखा रहे हैं, कौपा उड़ना चाहता है और पीछेकी ओर ताक रहा है। बहा सुन्दर चित्र है। तुलमीरामायण उत्तरकाशड गलड़-भुशुरिड संवाद देखिये।

**सुखेल-पहाड़पर श्रीरामकी भर्तीकी** (रंगीन) पृष्ठ ३४६—परिचय उसी पृष्ठमें छाँपी रामायणकी शौपाइयोंमें देखिये।

**श्रीरामसाई नुलसीदासजी** पृष्ठ ३४०।

**श्रीरामायण-द्रृग्र** पृष्ठ ३८८ परिचय चित्रमें ही जाना जा सकता है, इसके प्रेषण पं० श्रीभगवद्गायत्री मिथको अनेक धन्यवाद।

**अजेय-रथ-**पृष्ठ ४००—जब रावण युद्धके लिये आया तब श्रीरामको रथ-विहीन देखकर विभीतयने कहा—‘हे नाथ ! आप यिना रथ रावणको कैसे जात सकेंगे ?’ श्रीरामने उत्तर दिया—‘सर्वे ! जिस रथमें विजय प्राप्त होता है वह न्य ही दूसरा है।’ इसके बाद श्रीरामने जिस रथका बर्दन किया। उसीके आधारपर यह चित्र बनाया गया है। मानसका लकड़ाकाशड देखिये।

**श्रीसीताजीके गहने** (रंगीन) पृष्ठ ४१३ सुपीड़के दिये हुए गहने पहचाननेके लिये श्रीरामजी भाई लक्ष्मणको दिखा रहे हैं, शोकमें भरे लक्ष्मणजी कहते हैं—मैं इनको नहीं पहचानता। रामायणाङ्क पृष्ठ ४१६, १० १० ४ ६ देखिये।

**श्रीराम और केवट-**पृष्ठ ४२६—गंगाके तोरपर भास्यकान केवट श्रीरामके चरण बहे बाबसे धो रहा है, केवटका चेहरा आवन्दनरूप है, श्रीराम कृपारहिते उसकी

ओर देख रहे हैं। देवतागण पुण्य-हृषि कर रहे हैं। रामायणांक पृष्ठ ४२३ देखिये।

**श्रीराम-विलाप-**पृष्ठ ४४०—लक्ष्मणके शक्ति जगनेपर भगवान् विलाप कर रहे हैं, सुरेण वैष्ण यास बैठे हैं। इन्द्रमान्जी द्वोषिगिरि उडाये था रहे हैं।

**श्रीकौसल्या-भरत-**(रंगीन) पृष्ठ ४४२—भरत-शत्रुघ्न ननिहालसे छाँटकर माता कैकेयीसे मिलनेके बाद कौसल्याजीसे मिलते हैं, भरतजीको सचा प्रेमी और दुखी जानकर माता गोदमें ले लेनी हैं, दोनों माँ-बेटे रो रहे हैं रामायणाङ्क पृष्ठ ७७ और वा० रामायण सथा तु० रामायणमें देखिये।

**श्रीसीताकी अग्नि-परीक्षा** (रंगीन) पृष्ठ ४६०—सीताको लेकर अग्निदेवना जलती हुई लपटोंमेंसे प्रकट होकर श्रीरामको सीता समर्पित करते हैं। श्रीराम-लक्ष्मण आनन्द और आश्रयमें निमित्त हैं, उनके मुख और शरीरपर अग्निका प्रकाश पढ़ रहा है। रामायणाङ्क पृष्ठ २० नथा वा० रा० ६। ११८ देखिये।

अहन्याका उद्धार पृष्ठ ४७३, कथा प्रसिद्ध है। तुलसीरामायण-बालकावड देखिये।

**श्रीसीताका-पाताल-प्रवेश-**पृष्ठ ५०० पृथ्वी माता स्वयं प्रकट होकर सीताको लेकर पातालमें प्रवेश कर रही हैं। श्रीराम-कालमण्ड, मुनिगण और जल-कृश आश्रय और शोकमें हृव रहे हैं। रामायणाङ्क पृष्ठ २४ देखिये।

**मानस्य-मरोदर** (रंगीन) पृष्ठ ५०५ श्रीरामचरित-मानसके आरम्भमें गोमार्जीने मानस-सरका यथा हा॒ सुन्दर रूपक बाँधा है। उसीके आधारपर वह सुन्दर शिक्षाप्रद चित्र बनाया गया है। मानस-बालकावडमें वह प्रसङ्ग देखना चाहिये।

### श्रीहनूमान्जीके चित्र ७

|                                                     |             |
|-----------------------------------------------------|-------------|
| लहड़ा-वाहके बाद सीता चरण बन्दन                      | } पृष्ठ ४८० |
| द्वोषिगिरि बाना                                     |             |
| गहड़-गहरू-हरय                                       | } पृष्ठ ४८१ |
| हार सोचना और हृदय चीरकर दिलखाना                     |             |
| श्रीरामका शामोपदेश                                  | } पृष्ठ ४८१ |
| पर्यन्तपर श्रीहनूमान्जी                             |             |
| श्रीहनूमान्जीपर इन्द्रका वज्र गिराना                |             |
| इनका परिचय 'श्रीहनूमान्जीका महत्व' शीर्षक देख पृष्ठ |             |

४७६ में देखिये। चित्र भेदनेके लिये श्रीसत्त्वकिप्रसारक मरवदी अंधेरीको आनेक धन्यवाद !

**माननीय काशीनरेशकी अभूतपूर्व परमसुन्दर रामायणके चित्र-**३०

मूळ चित्र रंगीन बड़े ही सुन्दर हैं, सारी रामायण चित्रोंसे भरी है, उन्हीं चित्रोंमेंसे ३० चित्रोंके क्षात्य-चित्रोंके बड़ाक बनवाकर चित्र छापे गये हैं। ये चित्र बाबू श्रीकौसल्याकिशोरजी बी०४०७० एव०टी००से हमें प्राप्त हुए हैं। इसके लिये हम माननीय महाराज काशीनरेश और श्रीकौसल्याकिशोरजीके बड़े ही कृतज्ञ हैं। चित्रोंके परिचयके लिये प्रत्येक चित्रके नीचे बटनाक्रमको बतानेवाली छापाई या दोहा दे दिया गया है, उसीके आसपासका पूरा चित्रण प्रत्येक चित्र है, श्रीरामचरितमानसकी कथा निकालकर मिलान कीजिये। प्रत्येक चित्र कथाके आधारपर ही बना है।

### श्रीअग्नो-व्यापुरकींचित्र—३१

ये चित्र हमें सम्मान्य रायबहादुर अवधारसी लाला सीनारामजी बी०५० प० और उनके सुपुत्र बाबू कौसल्याकिशोरजी बी०५० प० एव०टी०० की कृपासे प्राप्त हुए हैं। इसलिये हम उनके परम कृतज्ञ हैं। चित्रोंका पूरा परिचय बाबूमाहद लिखकर भेज न सके। लालाजी लिखित 'अग्नो-व्यापीकीं' पुस्तकरूपमें प्रकाशित होनेपर प्रायः सब चित्रोंका ऐतिहासिक परिचय पाठकोंको मिल सकेगा। पुस्तक नैयार हो रही है।

### श्रीजनकपुराधाम, चित्र—६

श्रीजानकीजीका नौलखा मन्दिर—यह मन्दिर महाराजा टीकमगढ़का बनवाया हुआ है। कहा जाता है, महाराजने सत्रह लाख रुपये व्यय किये थे, जिसमें केवल इस मन्दिरके निर्माणमें नव लाख रुपये लाये हुए।

श्रीजानकीजीका सिंहासन—(श्रीजानकी-मन्दिरके अन्दर यह चाँदी-सोनेका सिंहासन है, यह भी राजा टीकमगढ़ने लगभग १० हजार रुपये लगाकर बनवाया था। इसपर श्रीराम-जानकीकी सुन्दर मूर्तियाँ विराजमाल हैं।) पृष्ठ ३२८

श्रीजानकी मन्दिरके भीतर श्रीजग्मोहनमन्दिरका पूर्वी दर्श पृष्ठ ३२८

श्रीराममन्दिरके सामनेका धनुषषेषसे पूर्वी दर्श पृष्ठ ३२८

श्रीरामचन्द्रमें प्राचीन सूर्तियाँ—पृष्ठ ३२६

श्रीरामजीके मन्दिरका पवित्री दर्श सेठ रामदासजीकी  
दिल्लीसे—पृष्ठ ३२६

श्रीबलभगवान्का मन्दिर आजकी मन्दिरसे उत्तर—पृष्ठ ३२६

ये सातों चित्र श्रीरामचन्द्रप्रसादसिंहजीकी प्रेरणासे  
जनकुरुक्षासी सेठ श्रीरामदासजीकी कृपासे भास हुए हैं।  
सेठजीमें फोटो उत्तरनेतकका खच अपने पाससे दिया है।  
इसके लिये इस उनके कृतज्ञ हैं।

#### ४७ गंधेरपुरके चित्र ४।

शान्तादेवीका मन्दिर—शान्ताजी भगवान् श्रीराम-  
की बड़ी बहिन शृङ्गशङ्कको ब्याही गयी थी। पृष्ठ ३४३

श्रीशङ्कीश्वरिकी समाधि—शान्ताजीके मन्दिरके  
पश्चिम एक मन्दिर बना हुआ है, इसीको श्रीपिकी समाधि  
बनाते हैं। पृष्ठ—३४१

श्रीरामके सोनेका स्थान—कहा जाता है कि वन  
आते समय यहाँ भगवान् सोते थे।

श्रीगौरीशङ्क-पाठशाळा—यह पाठशाळा श्रीमती  
बहुधाहन योधाकुंशरिजी आनापुर स्टेटने अपने पनिकी  
पुरायस्त्रृतिमें स्थापित की थी। पृष्ठ ३४।

यही स्थान निशादाजकी राजधानी और शृङ्गशङ्कका  
निवासस्थान बनाया जाता है। आजकल इसका नाम  
सिंगरौर है। कहने हैं यहाँसे श्रीराम, लक्ष्मण, जानकीने  
तापस वेष धर गंगा-पार किया था। ये चित्र और विवरण  
श्रीयुत महेशप्रसादजी आविभक्तिजिनने कृपापूर्वक भेजा हैं,  
इसके लिये उन्हें हार्दिक धन्यवाद है।

#### चित्रकृष्णके चित्र—५२

ये चित्र भी अद्वेष लालाजी और बाबू कौसलकिंशोरजी-  
की कृपासे ही मिले हैं इनका परिचय लालाजी लिखित  
'चित्रकृष्णकी जाँकी' नामक चुन्नमें शीघ्र ही प्रकाशित होगा।

भरद्वाज आश्रम (प्रयाग)—रु० ब० जाका र्माता-  
रामजीहारा प्राप्त। पृष्ठ—३३०

#### नासिक पञ्चवटी, चित्र—८

नासिक गोदावरी दर्श १, नासिक }  
गोदावरी दर्श २, लालका-नाला, पञ्चवटीमें } ४०६  
श्रीराममन्दिर (यहाँ प्रधान मन्दिर है)

गोदावरीपर नारोशङ्करका मन्दिर,  
श्रम्भकेशर मन्दिर (बाहरी दर्श) यह  
प्रसिद्ध पीठ गोदावरीसे १८ मील दूर है। }  
गोदावरीका पुल  
रामकुण्ड और गंगामन्दिर—इसी कुण्डमें स्नान  
किया जाता है। }

४०६

इन चाड़ चित्रोंमें तीन बाबू कौसलकिंशोरजीकी  
कृपासे और शेष 'मुमुक्षु'-सम्पादक-पं० लक्ष्मण रामचन्द्र  
पांगारकर बी० प० की कृपासे मिले हैं। एतदर्थं धन्यवाद!

#### सेनुबन्ध रामेश्वरम्-चित्र—६

इन छः चित्रोंमें तीन बाबू धर्मेश्वर सेमका रंगन  
प्रवासीसे और शेष बाबू कौसलकिंशोरजीसे मिले हैं। इस  
कृपाके लिये धन्यवाद।

#### श्रीकाशीकी चित्र—८।

प्रह्लादघाट, पं० गंगारामजी जोशीका घर। } पृष्ठ ४३६  
पं० गंगारामजी जोशीके घरका बाहरी दर्श। }

गोस्वामीजी पहलेपहल काशीमें प्रह्लादघाटपर  
मारवाड़ी पुलकरण ब्राह्मण पं० गंगारामजी जोशीके घर  
रहते थे, जोशीजीमें आपका बड़ा ग्रंथ था। जोशीजीके  
पास जहाँगीर बालशाहका बनवाया हुआ गोस्वामीजीका  
एक चित्र था जो अब उनके उत्तराधिकारी पं० रामछोड़लाल-  
जी न्यायके पास है। व्यासजीने प्रथम करके गोस्वामीजीकी  
एक दृष्टि बनवाकर स्थापन कर दी है।

विनयपत्रिका लिखनेका स्थान।

मुखसीधाट।

श्रीहन्मान्द्रजीका मन्दिर।

गोस्वामीजीका चित्र।

संकटमोचनका भीमरी दर्श।

संकटमोचनका बाहरी दर्श।

पृष्ठ ४३६

पृष्ठ ४००

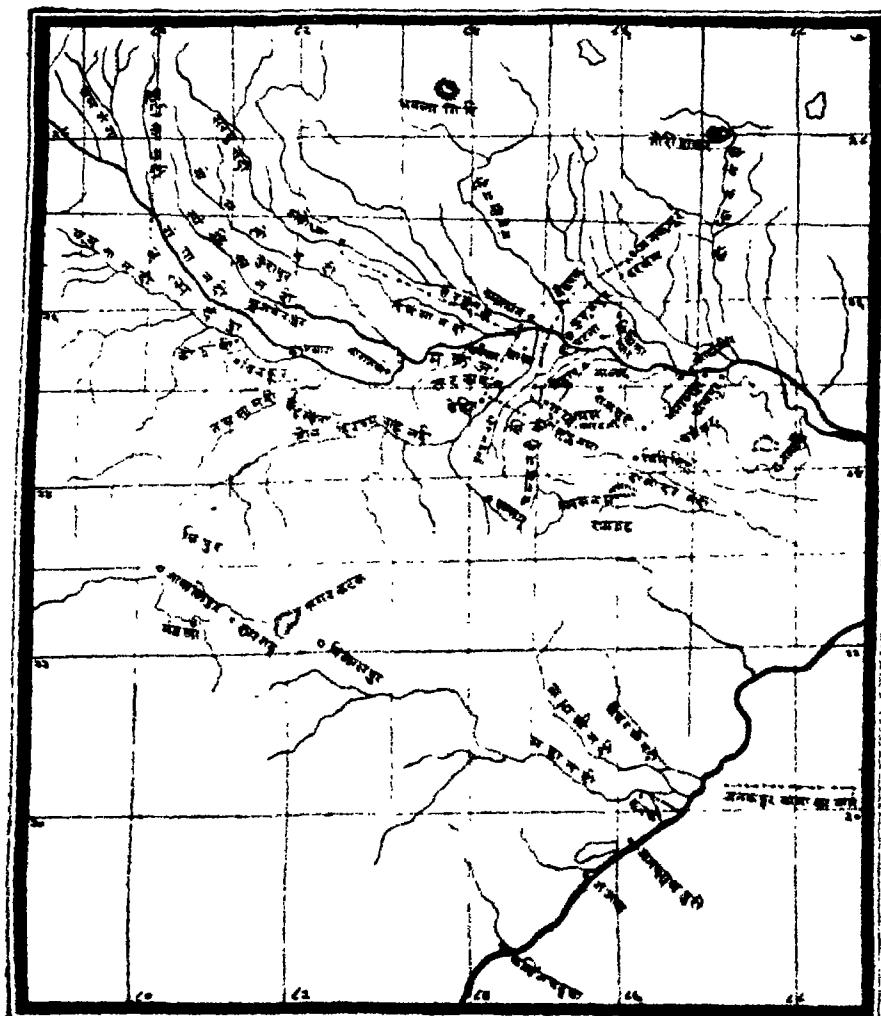
संकटमोचन हन्मान्द्रजीकी स्थापना गुप्तार्जीमें ही थी।

ये चित्र हिन्दू मूलके हेठलाप्तर पं० रामगारामस्थानी  
सिंध की० प० की प्रेरणासे उनके विद्यार्थी श्रीदेवगारामस्थानीने  
बड़े परिक्षमें उत्तरवाक्य दिये हैं, एतदर्थं दोनों सज्जनोंको  
अभेद धन्यवाद।



# कल्याण

रामायणकालीन भारतवर्ष नं० ५



श्रीरामकी जनकपुर यात्रा (मानचित्रकार श्री वी० ए० बडेर)

## क्षमा-याचना



गवान् श्रीरामका चरित्र लोक-परबोकमें  
निय परम कल्याणकारी है। इससे  
इहजौकिक मनवाविज्ञुत सुख और परम  
आनन्दवस्थ प्रेयकी प्राप्ति सहज ही  
हो सकती है। साक्षात् सचिवानन्दधन  
परमात्माके धराधाममें मानवादि रूपोंमें  
आवत्तांशं होकर विविध लीलाएँ करनेका  
एक प्रधान कारण यह भी है कि मनुष्य उन लीलाओंको  
गाकर, उन्हें पढ़-मुक्तकर, उनका अनुकरणकर अविद्याकी  
अनादि प्रनिधियोंसे मुक्त हो जाय और विश्वस्थ केवल  
एक भगवान्के ही दर्शनकर तद्रूपताको प्राप्त हो जाय।  
कलियुगी जीवोंके लिये तो दुःखोंसे छूटनेका प्रधान साधन  
भगवान्के गुणोंका गान करना ही है। गोस्वामीजीके  
अनुभवके बचत हैं—

उत्तित्तु-सम तुग आन नहि जो नर कर विम्बास।  
गात राम-तुन-गन विम्बा भव तर विनुहि प्रयास॥

भारतवर्षमें लाखों वर्षोंसे हम काव्यरूपमें प्रकाशित  
सबे इतिहास रामायणका इतना प्रचार और आदर हमी  
पारमार्थिक दृष्टिसे है। इतिहास और काव्य तो बहुत-न्यै हैं,  
पर उनके कथन-धरणोंके प्रभावसे जन्म-मृत्युका चक नहीं  
छूटता, अविद्याकी फाँसी नहीं टूटती; किन्तु श्रीगम और  
श्रीकृष्णके चरित्रोंमें पूर्ण पुरुष-ग्रन्थ रामायण, महाभाग  
और भागवत आदिमें यह विशेषता है। इनके कथन-  
धरणोंसे पुरुष-ज्ञान होता है, जौकिक कामनाएँ सिद्ध  
होती हैं, मदाचारकी झुक्कि होती है, दंबी-सम्पत्तिके गुणोंका  
विकास होता है और कवल्य मोड़ तथा परमात्माके  
अनन्य और विशुद्ध प्रेमतङ्ककी प्राप्ति हो जाती है। इसी  
विधासके कारण हिन्दूजाति इन प्रन्थोंको पूजनी है और इसी  
विधाससे कल्याण-सज्जाकोंका भी यह छुट प्रयास है।

इस सबके भावोंका आदर करते हुए तथा सर्वव्यापी,  
सर्वात्मा, विश्वरूप परमात्माके एवं यथायोग्य बुद्धिकी  
विशाखताके नाते सबको पूर्य और बन्धनीय मानते  
हुए नवतापूर्वक यह निवेदन करना चाहते हैं कि इम  
श्रीराम और श्रीकृष्णको साक्षात् पूर्णवृक्ष परमात्मा मानते  
हैं और अद्वाभकिपूर्वक उनके असीकिक गुण-कर्मोंको

गाने और सुननेमें ही अपना परम सौमान्य समझते हैं।  
अपनी जौकिक और विषय-विभोहित अनिश्चालिका  
तुच्छ बुद्धिके द्वारा भगवान् श्रीराम और श्रीकृष्णके लीला-  
चरित्रोंकी समाजोचना करने और उनके उचितानुचितकी  
मीमांसा करनेका हम अपना अधिकार नहीं समझते।

किनी भी बहाने भगवान्की लीलाओंका स्मरण और  
उनका गुण-गान होना इमलोगोंके लिये परम कल्याणप्रद  
है, इसी निश्चयसे रामायणाङ्क प्रकाशित करनेका प्रयास  
किया गया है। हम इस बातको त्वय समझते हैं कि  
रामायणांकके सभ्यादनकी योग्यता हममें नहीं है। न तो  
आध्यन्तरिक इत्य समझनेके लिये हृदयमें श्रीरामकी अकिं  
ही है और न वाय पर्वीहणाके लिये विद्या ही है, इसीसे  
मनमें कहूँ बार स्फुरण्या होनेपर भी पूरा साहस नहीं होता था।  
इसके अतिरिक्त विज्ञ भी अनेक आये। इस कार्यमें प्रधान  
महायक बाबा राघवदासजीको सरकारने मेहमान  
बना लिया, एक दूसरे सहायक भी सत्याग्रह-संप्रभमें चले  
गये, एक निपुण चित्रकार ठीक समयपर बीमार पड़ गये,  
द्वाक बनानेवाले और चित्र छापनेवाले कारीगर भी  
बीमार हो गये, एक बड़ी मशीन टूट गयी और मनमें भी  
अनेक प्रकारकी तरंगें उठीं, परन्तु तेरे यन कदु और है  
करताके कदु आंह ।<sup>१</sup> श्रीरामको यह कार्य करना अभीष्ट या,  
इसीसे हो गया। हम जब अपनी ओर देखते हैं तो इसे  
निस्संकोच यह सत्य मुक्तकरणसे स्वीकार करना पड़ता  
है कि हमारी शक्ति, हमारी योग्यता, हमारी इच्छा और  
हमारी जगन्नके बलपर रामायणांक नहींनिकला है। श्रीरामने  
प्रेरणा की, कृपालु और प्रेमी मित्रोंने कृपाकर बारंबार  
उत्साह दिलाया, लेखक महोदयोंने कृपापूर्वक लेख भेजे,  
सुयोग्य चित्रकार मिल गये, तीर्थोंके चित्र-संग्रहमें सम्मान्य  
रायबहादुर लाला सीतारामजी बी० ए० तथा आएके  
सुपुत्र लाला जौसकाक्षिरोजी बी० ए० ए० टी०, सुमुख-  
सम्पादक शीलभग्न रामचन्द्र पाङ्करकर बी० ए०, औजरी  
श्रीरघुनन्दनप्रसादसिंहजी, श्रीयुत महेशप्रसादजी प्रो० दि०  
वि० विशावाय, पं० रामनारायणजी मिश्र बी० ए० सैन्त्रज हिन्दू  
स्कूल काशी, सेठ रामदासजी, श्रीचंद्रचन्द्रजी सेमका, पं०  
भगवाहासद्वी अयोध्या आदिसे सहायता प्राप्त हुई, व्याक  
बनवाने और चित्रादि लृपताकर भेजनेमें श्रीबलरंगलालजीने

हमलोगोंके उत्ताहने सहते हुए भी बड़ी मदद की। इस प्रकार सारा सामान जुट गया। यद्यपि यह साग कार्य श्रीरामकी प्रेरणासे ही हुआ तथापि हमें तो इन कृपालु सज्जनोंका कृतज्ञ होना ही चाहिये। चित्र-मंग्रहमें जाला सीतारामजी और बालू कौसलकिंवा गर्जाने जिस परिथमक साथ सहायता की है उसके लिये तो हम उनके बड़े ही कृतज्ञ हैं। अद्योध्या, चित्रकृष्ण, प्रयाग और काशी रामायण के सभी चित्र आपसे ही प्राप्त हुए हैं।

इसके सिवा लेखादिके संघर्षमें तथा अन्यान्य प्रकारसे अनेक सज्जनोंने सहायता दी है, जिनमें निश्चिन्मित नाम विशेष उल्लेखयोग्य हैं अनेक हम उन सभी सज्जनोंके प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करने हैं—

१० जीवनशाङ्करजी याज्ञिक एम० ए०, श्रीरामचन्द्र दिवाकर पम० ए०, पक्ष-एल० बा०, श्री बा० एक० वडेर एम० ए०, पक्ष-एक० बा०, रायमाहित्र बाय० रायमसुन्दरदामजी बा० ए०, श्रीशंकरनारायण एय० बा० ए० बा० एक०, श्रीजनकम्मनारायण शीतलामहायज्ञ बा००प० एक०-एक० बा०० सम्पादक 'मानसप्रायूप', माहित्य त्रिलंग० विजयानन्दर्जी त्रिपाठी, श्रीमहलदेवजी शास्त्री एम० ए० शी-एक० डा०, स्वामी अवगडानन्दजी, श्रीयुत रामचन्द्रकृष्ण कामट, भद्रकलिप्रचारक मणिलो-अनंदरी, श्री टी० बा० कृष्णस्वामीगम सम्पादक 'मध्यसुनिधान', श्रीबनरमीदामजी चन्द्रवंदी सम्पादक 'विश्वान-भास्त', श्रीरामनरेशकृष्णजी गोपनका, व१० रामनरेशजी त्रिपाठी, व१० छायण्यानारायणजी गवे॒ सम्पादक 'श्रीकृष्ण-यन्देश', महाना वाल्करगमजी विनायक कलक्षभवन अद्योध्या आदि आदि।

रामायणांकके लिये हिन्दूके अर्णवित्त मराठा, गजगांवी, बगला और अंग्रेजीमें भी बहुत-से लेख आये थे जो अनुवाद करके प्रकाशित किये गये हैं। लेखकोंमें युक्तप्राप्त, यगात, विहार, उड़ाना, युक्तगान, सहागान, कंगारीक, मद्राय, पंजाब, राजपूताना आदि विभिन्न प्रान्तीय विहानोंके सिवा हुंगलेपहके भी कृष्ण विहान हैं। इनमें हिन्दू, मुसलमान, पारमी, हिमाई आदि सभी हैं। इनमें रामायणकी लोक-विद्याका भी पता लगता है।

इस अपने कृपालु लेखकों और कवियोंके प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करने हुए वृत्तियोंके लिये उनमें हाय जीवकर चमो-याचना करते हैं। कई लेखोंमें स्थानाभाव और अन्यान्य कारणोंमें काट-ट्रॉट की गयी है, कई अभूत छये

हैं, कृष्णका केवल अंशमात्र ही कृपा है और कृष्णलेख दरमें आनेके कारण तथा स्थानाभावमें हृच्छा इनपर भी विलक्षण नहीं कृप सकते हैं। गत बार 'गीतांक' बहुत बड़ा हो गया था जिसके कारण घाटा भी रहा और कृष्णविशिष्ट मिश्रोंने इस बार आकार कृष्ण दोटा करनेके लिये अनुरोध भी किया था, इससे गमयणांक लगभग ४०० पृष्ठका निकालनेका विचार किया गया था परन्तु लेख इतने अधिक आ गये कि विशेष होकर आकार बदाना पक्ष-तिमपर भी सैकड़ों लेख रह गये। लेख न लाप सकनेके अपराधके लिये लेखक महोदय लमा करे, स्वीकृत लेख आगामी अंकोंमें लापनेका विचार है।

रामायणांकका मूल्यना लापकर विभिन्न भाषाओंके देशी एवं विदेशी महायोगियोंने जो कृपा की है उसके लिये इस उनके अर्थी हैं।

इस अंकके लिये जितने विषय मोखे गये थे उनमें यह बहुत-से रट गये हैं : मेसे-मेसे कहे अंक हो तो रामायणके सब विषयोंपर कृष्ण कृष्ण प्रकाश डाला जा सकता है ; यदि अंक तो श्रीरामकी कृपामें जैगा कृष्ण यह सकता है आपलोगोंकी स्वामें उपस्थित किया जाना है, कैमा हुआ है, इसका निर्णय आर ही करें ; इस-मरामंड विद्या और कलातीन वृक्ष-एवं व्यक्तियोंका विद्यादलके आधारपूर्वक विद्यामें लाभित होनेके गमान हाम्यास्पद हो है और यस्तवमें इन सकारात्मक विद्याएँ किसनु धर्मोंका गाझा और मिश्रोंके ग्रेसमें यह निर्वाता स्वाक्षर करनी पड़ती है। गुरुजन, महामा, जानी, भगव-पर्मी, गमयणके मार्मिक विद्यान और विद्यान सम्पादकगत हुम् पृष्ठाने लिये दसा करें।

हे राम ! धन्तमें नेरे धर्मितावन चरणोंमें यह विनान प्राप्तना है कि इस शक्तमें अनेक जगह प्रभावयन तेरी अवज्ञा हुई दोरी, त उपात्त है अपनी धोर देवकर लमा कर। नीरी कृपामें इसी वटाने तेरे कृष्ण नाम आ गये हैं और तेरी जालार्थी यहने-समझनेका किदित सौभाग्य मिला है। यदि यह नेरी हो कृपा, हृच्छा और प्रेरणामें हुआ है। यह नेरी चाँज नेरे हा चाँक चरणोंमें अपेंग है। इसे तो दया कर तु ऐना वटा ले कि जिसमें हमारे मन सदा तेरे ही चरण कमनेके अमर चरनें रहे और तन-मनकी सारी क्रियाएँ केवल तेरी ही प्रेरणामें नेरे ही अर्थ हों !

इयान्दाप्रभाद कार्त्तिक्या । संयुक्त मण्डा ४  
हनुमानप्रभाद पांडुर ।

# गीताप्रेस गोरखपुरकी पुस्तकें

## ग्राहकोंके लिये नियम

(१) 'कल्पाण' के साथ पुस्तकें और चित्रनहीं भेजे जाते। इसमें 'गीता-प्रेस' को अलग निवेदकर यद्य पुस्तकें चित्र आदि अलग मैंगवाना चाहिये।

(२) पत्रमें नाम, पता, डाकघर, जिला बहुत साफ दैवनामगरी अक्षरोंमें लिखें।

(३) अगर १० दिनमें पत्रका उत्तर या माल न पहुँचे तो दूसरा पत्र साफ साफ लिखें। इस स्मृति पत्रमें अपनी माँग आदिका उल्लेख फिरसे करना चाहिये।

(४) श्रीमद्भगवद्गीता किस किसकी, किनने दामकी, और उसकी कितनी कापियाँ चाहिये यह ज्ञानेवार लिखना चाहिये।

(५) अगर जिनावें मालगाड़ी या रेल पार्मलें मैंगवानी हो तो रेलवे स्टेशनका नाम जरूर लिखें।

(६) ची० पी० में कुछ भूल मालदम हो तो पार्मल लीटावे नहीं; छुड़ालें। लिखनेपर बादको भूल दुरस्त कर दो जाना है। माल दूसरे दिनतक पार्मल आफिसमें भी रुकवा सकते हैं।

(७) जो सज्जन यार्डरके मुनाबिक माल मैंगवाकर बिना कारण लीटा देंगे, उनमें लीटानेका कुल नन्हा लिया जा सकता है।

(८) पछ मायेमें कमकी ची० पी० प्रायः नहीं भेजी जाना, इसमें कमकी किताबोंके लिये डाक-महसूल और रजिस्टर्ड व्हेस्माइल ट्रिक्ट भेजें। यर्जन न मिलनेमें पुस्तक नहीं भेजी जाती। रजिस्टर्डके दाम न मिलनेमें खोयी दुई पुस्तकोंके लिये हम जिम्मेवार नहीं हैं।

(९) कर्मशान-दर इनप्रश्नर हैः—(१) से (१०) तक (११) सेकड़ा, फिर (११) तक (१२)। इसमें ऊपर (११) सेकड़ा। इसमें ज्यादा कर्मशानके लिये नियमपढ़ी न करें। (११) से नीचे कर्मशान नहीं है।

(१०) पुस्तकें रवाना कर देनेके पहले ही न भेजनेका गूच्छा मिलनेमें माल न भेजा जायगा पर माल भेज देनेके बाद यार्ड पैसी सूचना मिलेगी तो दानों तरफका किराया आदि सर्व ग्राहकके जिम्मे रहेगा।

(११) डाकमें या रेलगाड़ीपे भगव दुई या चाँथी हुई पुस्तकोंके लिये हम जिम्मेवार नहीं हैं।

बड़ा सूचीपत्र मैंगाइये !

## (१) श्रीमद्भगवद्गीता [सचित्र]

### पाँचवाँ संस्करण

इसकी टीका इतनी भरत है कि साधारण पढ़े लिखे मनुष्य भी बिना अधिक परिश्रमके हमें समझ नकरे हैं। श्रोकर्कि श्रोक ठाक ब्रह्मवाद, पदच्छेद और अन्वयके कारण विद्यार्थियोंके लिये भी यह बड़े अधिकों चीज़ है। इसको भवत्से अधिक चिन्हायता यह है कि अर्थमें कहीं भी खींचातामी नहीं की गयी है। अन्येक संस्कृत शब्दके भास्मने उसका अर्थ दे दिया गया है, जिसमें कुछ दिनोंके अभ्याससे केवल श्योक-पाठमें ही अर्थका बोध हो सकता है। त्यागमें भगवत्प्राप्ति-विषयक अनुभव-पूर्ण निवन्ध भी इसके अभ्यासमें जाड़ दिया गया है। प्रारम्भमें गोपालके प्रधान और सूक्ष्म विषय भी दे दिये गये हैं। इसकी छपाईमें शुद्धताका बहुत अधिक ध्याल रखा गया है। ऐसी शुद्ध छपाई और स्वतीनी गीता बहुत कम मिलती है। अन्य बहुत बड़े और छपाई साफ है, कागज अच्छा लगाया गया है, हाथ-कर्योंके बने परे काढ़ेको अच्छी मरुद्वृत जिल्द लगायी गयी है। ७७० पृष्ठ हैं। किताबका आकार छिमार्द ८ पेजी है। चार निरंगे चित्र (१ दाम सिर्फ़ १) हैं। इनमी सस्ती ऐसी गीता शायद और न मिल सके। थोड़े ही दिनोंमें इस प्रभन्नको

(२)

४६ हजार ग्रनियाँ छप चुकी हैं। १) वाली २ ग्रनि गीता वी० पी० से मैगानेवालोंको ॥) डाकखार्च, पैकिंग -) और मनिअर्डर फोम =) कुल १॥८) पड़ेगा। इसलिये ख्याल करके आर्डर दें ताकि लौटाना न पड़े।

## (२) ओटे टाइपकी $22 \times 30$ माइजकी सोलह पेजी मझोली गीता (सचित्र)

इसमें यह विशेषता है कि प्रत्येक श्लोकके साथ किनारेपर ही सूहम विषय दे दिया गया है। वह एक प्रकारसे श्लोकका सारांश है। प्रधान विषय हर अध्यायके आरम्भमें रखा गया है। इन विशेषताओं-के सिवा शेष बातें गीता नं० १ के अनुसार ही हैं। पृ० ४६८: मूल्य चिना जिल्ड ॥८) मजिल्ड ॥९) : डाक महसूल एक प्रतिका ।-) , दोका ॥) और तीनका ॥१)

## (३) ओटे माइजकी गीता (सचित्र)

[ लाला नम्बरण ]

इसमें श्लोकोंके साथ भाषार्टीका भी है। नियमित रूपसे अर्थसहित पाठ करनेवाले मज्जनोंके लिये यह गीता बड़ी उपयोगी है। छपार, सफार सुन्दर और कागज बढ़िया है। कवरपर भगवान् धीरुष्णुका रंगान चित्र दिया गया है। पृ० ४७२: संख्या ३०२, फिर भी मूल्य केवल १॥। सजिल्ड ॥)। अबनक इमर्झ दो लाल नीसहजार ग्रनियाँ छप चुकी हैं।

## (४) केवल भाषा-गीता (सचित्र)

संस्कृत श्लोक न पढ़ मज्जनेवालोंके लिये बड़ी उपयोगी है। लोटे अक्षरोंसे जिल्डी जोखीमें पांडा होने लगती है वे इससे अधिक लाभ उठा सकते हैं, ज्योंकि इसके पश्चात् बड़े और गहरे हैं। शिरोंके लिये इसे विशेषरूपसे मैगानेवाली सिफारिश है। एक निर्माण चित्र देनेपर भी इसका मूल्य केवल ।) रक्सर गया है। सजिल्ड ।=)

## (५) केवल मूल गीता (सचित्र)

इसका दाइप न्यूच मॉटा रक्सर गया है। नीमियिये बालकों भी इस्योंके लिये यह अद्यतन मैगानामी चाहिये। जिनके लेखोंकी दृष्टि कुछ कम है, तो लोटे अधिक नहीं पढ़ सकते हैं उनको यह मूल गीता पाठके लिये अपने यास रखना चाहिये। धीरुष्णुका एक सुन्दर निरहा निश्च भी दिया गया है। मूल्य ।-) मजिल्ड ॥१)

## (६) गीता तारीजी माइज

ऐस्कनेये बड़ी मनोहर है। पांकेटके एक कोंबेये रक्सर जा सकती है। अधिक सुन्दर भी भाफ है। आकार २ ४ २ २ ३ ३, पृ० २१६, मजिल्ड मूल्य केवल ।) इनसे कम दाममें ऐसी सुन्दर गीता इसी कीर्ति तहीं है। पन्द्रह हजार पृष्ठके छप चुकी हैं। आरम्भसे एक माला चित्र भी है।

## (७) मूल गीता और विष्णुमहालनाम (सचित्र)

[ ३५ संख्या ]

मूल श्लोकोंके अनिवार्य विष्णुमहालनाम भी इसमें छप दिया है। चार सुन्दर निश्चोंसे सुन्दरित ।३२: पृष्ठोंकी सजिल्ड पुस्तकका मूल्य केवल ।)। केवल पाठ करनेवालोंके कामका चाँज है।

## (८) गीता डायरी

यह प्रत्येक घृहस्थ, प्रत्येक विद्यार्थी और प्राच्य द्वारा विभागके मनुष्यके पास रहने चाहिये है। सन्त महात्माओंके अमूल्य अन्वय, सरकारी विभागोंके प्रतिनिधि अध्यवाहकमें अविद्याले मूल्य-मूल्य लियम, साधारण

(३)

श्रीमारियोके अनुभवपूर्ण सीधे सारेनुहले आदि इसके आरम्भमें हैं दिये गये हैं। हिन्दी पर्यायवाचीक गणितके कुछ चुने हुए हिन्दी और । जनवरीसे हिन्दी, अगरेजी और बंगाला निधियोंके मिश्रा सम्बन्धमध्यवरपूर्ण बात यह है कि व्यापको सम्पूर्ण गीता भी इसीमें मिलेगी। एक पत्ता दो काज। इससे अधिक और लाभ क्या हो सकता है? इनपर भी मूल्य केवल ।) सजिल्द ।)

बड़े बड़े प्रसिद्ध विद्वानों और पत्रसम्पादकोंने इसको मुक्कण्डमें प्रशंसा की है।

### (४) प्रेम-योग

लेखक-श्रीविद्योगीहरिजी, विशेष विवरण पृष्ठ ५ में देखिये। मूल्य ।।) सजिल्द ।।)

### (१०) तत्त्वचिन्तामणि

लेखक-श्रीजयदयालजी गोयन्दका, विशेष विवरण पृष्ठ ७.८ में देखिये। मूल्य ।।) सजिल्द ।।)

### (११) भक्त-वालक

लेखक-श्रीहनुमानप्रसादजी पोडार, विवरण पृष्ठ १० में देखिये। मूल्य ।।)

### (१२) भक्त-नारी

लेखक-श्रीहनुमानप्रसादजी पोडार, विशेष विवरण पृष्ठ १० में देखिये। मूल्य ।।)

### (१३) पत्र पुष्प (मानित्र)

कल्याण-सम्पादक श्रीहनुमानप्रसादजी पोडारके हृदयसे निकले हुए, प्रेममूर्ति प्रभुके चरणोंमें समर्पित खुन्दर पत्र-पुस्तकोंका संग्रह है। इसके अन्तमें प्रत्यक्ष मनुष्यके डारा त्यागने और ग्रहण करने योग्य वासिनीका भी विस्तृत उल्लेख कर दिया गया है। पृष्ठ २६ मूल्य ॥)। सजिल्द ।।)

### (१४) मानव-धर्म

लेखक-श्रीहनुमानप्रसादजी पोडार, विशेष विवरण पृष्ठ ८ में देखिये। मूल्य ॥)

### १५ माथन-पथ

लेखक-श्रीहनुमानप्रसादजी पोडार, विशेष विवरण पृष्ठ ८ में देखिये। मूल्य ॥)।

### (१६) भजन-मंग्रह (प्रथम भाग)

इसमें भेदभाग

मकराज नुलसीदासजी, सूरदासजी, कर्वारजी और मीराबाईके सरस, भावपूर्ण और प्रसंभरे खुने हुए भजनोंका अच्छा संग्रह है। पहला संस्करण बहुत जल्दी बिक गया। पाकेट माइज, मूल्य ।।)।

### (१७) स्त्री-धर्मप्रश्नोत्तरी

इसके लेखक हैं 'कल्याण'के सुयोग्य सम्पादक श्रीहनुमानप्रसादजी पोडार। कई पाठशालाओंमें यह पाठ्यपुस्तकोंके रूपमें पढ़ायी जा रही है। वर्तमान समाजके डार्वाइल और दूषित बायुमडलको दृष्टिकोणमें इसते हुए यह पुस्तक प्रभासज्जनोंके विशेष आवश्यक सिद्धांशी गयी थी। कल्याणोंके कोमल हृदयोंमें इसके निरन्तर पाठ्य साहूत अच्छा प्रभाव पढ़नेकी सम्भावना है। सधया लियोंके धर्मका बड़ी रोचक शैलीसे विश्व दर्शन किया गया है। पति-संवाद-विद्य-वनका पालन करती हुई यह देवियाँ किम प्रकार मनुष्य-जन्मके चरम उत्तम भगवत्प्राप्तिके मार्गमें तत्पर, अग्रसर और सफल ही सकती हैं इसका सप्रमाण

(४)

उत्तमता करके लेखकने गागरमें सागर भग दिया है। विधवा-धर्मका निरूपण भी उत्तमतापूर्वक किया गया है। प्रश्नोत्तरके रूपमें हीनेस यह पुस्तक बड़ी रोचक बन गयी है। दामपत्न्य-प्रेम और गृहस्थादशंको इन्हें देखनेके दस्तुओंको इसका प्रनार विशेषरूपसे करना चाहिये। पृष्ठ ५६ मूल्य -)

### (१८) मच्छ सुख और उसकी प्राप्तिके उपाय

साधकोंके इसका अध्ययन अध्यस्त करना चाहिये।

मकार और निराकारके ध्यानादिका रहस्यगृह्ण भेद और मगल विधि जाननेके इच्छुकोंको इसे पढ़नेके लिये हमारा विशेष अनुरोध है। मूल्य -)।

### (१९) गीतोक्त मारुत्ययोग और निष्काम कर्मयोग

इसमें गीताके उक्त दो विषयोंपर वडी विवरणाएं व्याख्या की गयी हैं। प्रायः प्रत्येक मनुष्य इसे समझकर लाम उठा सकता है। मूल्य केवल -)।

### (२०) मनुस्मृति द्वितीय अध्याय मटीक

इसमें मनुस्मृतिके दूसरे अध्यायके मूल ध्यान और सरल हिन्दीमें उनका अनुवाद है। बड़े कामकी पुस्तक है। मूल्य -)।

### (२१) श्रीमद्भगवद्गीताके कुछ जानने योग्य विषय

इसके लेखक हैं—श्रीजयदयालजी गोयन्दका। विशेष विवरण पृष्ठ १० में देखिये। मूल्य -)।

### (२२) मनको वशमें करनेके उपाय (मन्त्रित्र)

लेखक श्रीहनुमानप्रभादत्ता गोडार—मनका स्वस्त्र बना है, साधकके। इसके अवश्यकोंका किस प्रकार सामना करना है तथा अन्यान्य इनपर किस प्रकार विकार आग की जल सकता है—इन्हाँदि जानने योग्य चारोंका उल्लेख बड़ी रूचक शिल्पांसे किया गया है। मूल्य -)।

श्रीजयदयालजी गोयन्दका-रचित अन्य उल्लेख दूसरे।

### (२३) गीताका मृद्घम विषय

इसमें गीताके प्रत्येक श्लोकका सगल हिन्दीमें मार्गित्र दिया गया है। १५८ में साँड़ भूम्य -)।

### (२४) श्रीप्रिमभक्तिकाण

मनको उसकी कामयापी प्रार्थनाओंके लिये जावान्मात्र द्वारा भूम्यन। भगवानके प्रभावका प्रार्थना के दूरमें करन तथा साकार ईश्वरके मानसिक पूजा शारिक वडी रोचक शिल्पांसे चर्चांसे किया है। श्रीप्रिम भगवान्के दो गीत नित्र देनेपर भी मूल्य केवल -) ही रहा गया है।

### (२५) त्यागमें भगवत्वापि

गृहस्थमें रहना हुआ भी मनुष्य जिन सात प्रकारके त्यागोंके फलस्थाप धर्मात्माकी प्राप्ति के सकता है उनका प्रतिपादन इसमें किया गया है। मूल्य -)

### (२६) ब्रह्मचर्य

लेखक श्रीकल्याण-सम्प्रदाय-दत्त श्रीहनुमानप्रभादत्ता गोडार। ब्रह्मचर्यके महस्त्र और उसके स्त्रम नहींपर वडी मार्मिक विवेचन किया गया है। मूल्य -)

(५)

### (२७) भगवान् क्या हैं ?

भगवान् के विषयमें भनुत्योंको अधिकतर जो शब्दों होनी हैं उनका भगवान् गीतार्थ शास्त्रों  
और अपने अनुभवकं आधारपर किया गया है। भगवद्ब्यानकी विविधां भी लिखी गयी हैं। भाषा  
सरल है। मूल्य -)

### (२८) समाज-सुधार

समाजके जटिल प्रश्नोंपर अच्छा प्रकाश डाला गया है। सुधारके प्रधान साधनोंका उल्लेख भी  
कर दिया गया है। मूल्य -)

### (२९) एक सन्तका अनुभव

साधकों और सन्तके सुखके अभिलापियोंके लिये बहुत ही कामकी चीज़ है। मूल्य -)

### (३०) मार्मी मगनानन्दकी जीवनी

ये उच्चे सन्देशोंहो गये हैं इनकी जीवनी बहुत ही उपदेशप्रद है। मूल्य -)

### (३१) हरंगामभजन

इस पुस्तकमें उपदेश और १६ नामोंके मन्त्रकी दी मालाएँ हैं। मूल्य -॥

### (३२) श्रीविष्णुमहमनाम

मूल विष्णुमहमनाम, गुरुका नामज, गांड धक्षर, भगवान्के निवासाद्वय पाठ करनेवालोंके लिये  
बहुत सुर्खियांकी चाह दें। मूल्य -॥

### (३३) श्रीर्मातारामभजन

आरम्भमें गुरुर्बाहुक देवीका सुन्दर भवह है, फिर श्रीर्मातारामकी इस मालाओंके मन्त्र लिये  
दें। मूल्य -॥

### (३४) श्रीशंकराचार्यजीकृत प्रश्नोत्तरी सर्टिक

श्रीर्मातारामाचार्यजीका प्रश्नोत्तरी प्राप्त है। इसमें उसके सूल शोक और अनुवाद है। मूल्य -॥

### (३५) मन्त्रया

इसमें मन्त्राचारके मन्त्र और साधा विनामें उसकी विवरण दिया गया है। मूल्य -॥

### (३६) वर्लिंगेश्वदेवर्यविधि

गुरुद्वयोंके लिये अवश्य कर्तव्य वार्लिंगेश्वदेव भवत और कर्तव्यकी विवरण मांटे कागजपर लिया है।  
मूल्य -॥

### (३७) पातञ्जलयांगदर्शन (मूल)

इसमें चारीं पादोंके सभी मन्त्र शुद्धतापूर्वक लिपेण्य हैं। मूल्य -॥

### (३८) धर्म क्या है ?

नामसे ही पुस्तकके विषयका एतद्वय ज्ञाता है। प्रश्नोत्तरके द्वंगपर होनेसे यह पुस्तक बड़ी  
रोचक बन गया है। मूल्य -॥

### (३९) दिव्यभन्देश

वर्तमान समयके दृष्टिकोणमें किस उपर्याम शास्त्र भगवन्-प्राप्ति हो सकती है, इस पुस्तिकामें  
ऐसे यातके सरल उपाय बनायां गये हैं। मूल्य -॥ यह पुस्तक गुजराती, मराठी, बंगला और झारखंडी  
में मिल सकती है।

(६)

### (४०) श्रीहरिसंकीर्तनकी धुन

इसमें श्रीहरिसंकीर्तनकी ४१ तरहकी धुनि छापी गयी है, कीर्तनके प्रेमियोंके लिये यहे कामकी चीज़ है। मृत्यु )।

### (४१) गीता दृसरा अध्याय सर्टीक

श्रीमद्भगवद्गीताका दृसरा अध्याय मूल लोक और सरल हिन्दी अनुवाद प्रचारार्थ छापा गया है। मृत्यु )।

### (४२) लोभमें पाप रहता है

महाभारतके एक अध्यायका अनुवाद है। यहुत सुन्दर उपदेशकी चीज़ है। मृत्यु आधा ऐसा।

### (४३) गजल गीता

लड़कोंके गाने लायक सरल हिन्दीमें गजलके दंगपर गीताके बारहवें अध्यायके कुछ उपदेशोंका अनुवाद है। लड़के इसे बहुत पसन्द करते हैं। मृत्यु आधा ऐसा।

### (४४) भगवन्नामांक

यह कल्याणका एक विशेषांक है, इसमें रंगविरणी ४१ चित्र है। पृष्ठ संख्या २२०। मृत्यु (॥८)

### (४५) बंगला गीता

मल, पद्मलेह, अन्धय, साधारणसाधा और उपर्याप्तियोंसहित। मृत्यु (१) सज्जित्तद (१) (यह १) बाली गीताका उन्था है।) पृष्ठ ५८०, चित्र ४। छपाई सकाई सुन्दर है।

### (४६) भक्तांक

यह भाँ कल्याणका विशेषांक है, इसमें रंग विरणी ५५ चित्र और २५० पृष्ठ, मृ० (॥८) सज्जित्तद (१) इसमें कमीशन नहीं है।

### (४७) गीतांक

पृष्ठ संख्या ५०६ चित्र संख्या १७० मृत्यु (॥८) सज्जित्तद (१) इसमें भी कमीशन नहीं है।

### (४८) रामायणांक

इसी वर्षका रामायणका विशेषांक पृष्ठ ५१८ चित्र १३०के द्वारा मृत्यु (२५०) इसमें भी कमीशन नहीं है।

### विशेष सुभीता

एक साथ भिरंज भगवन्दाले प्राहोंको डाकमहसूल और पेकिंग नहीं देना पड़ेगा।

सिरीज नं० १ पुस्तक नं० १ सज्जित्तद और पुस्तक नं० २ में नं० ४४ तक, अजित्तद कुल ४४ पुस्तकों का (११०) में।

सिरीज नं० २ पुस्तक नं० २ तक ८ में १० तक अजित्तद कुल ४ पुस्तकों (१० ३) में।

सिरीज नं० ३ पुस्तक नं० ३ और ८ तक नं० ११ में ४३ तक कुल ३९ पुस्तकों (१० ३०) में

सिरीज नं० ४ पुस्तक नं० ३ और नं० १० सज्जित्तद तक नं० ११-१२-१३-१४-१५ अजित्तद कुल ६ पुस्तकों (१० ३०) में।

(९)

आध्यात्मिक संसारका अनुपर्युक्त ग्रन्थ

## तत्त्व-चिन्तामणि

इस महात् ग्रन्थके लेखक हैं—श्रीजियदयालजी गोयन्दका,

पृष्ठ ३०३ मोटा एप्टिक कागज मूल्य ॥।।।) मजिल्द १) दो सुन्दर गीत इन्हें

खल्लालके पाठक और पाठिकाएँ आपके नामसे चिपकियत हैं। ऐसे जगतके अन्धपर हमारी ओरमें विशेष किसलेकी आवश्यकता नहीं हीमनी । हिन्दी, मराठी, बंगाली, अंग्रेजीके विद्वान् पश्च-सभ्यात्मकोंकी हम लाभिक ग्रन्थपर। क्या समझति है इसका पता निष्पत्तिलिखित कुछ अवश्यकोंमें लग सकता है—

### अपूर्व शान्ति

‘इन लेखोंके पढ़नेसे पाठकके तदन्तमें अपूर्व शान्ति और विरक्ति तथा हंथके प्रति आस्थाकी भावना बढ़ती है। लेखकों स्वयं साधक होनेसे लेखोंकी महत्ता और भी बढ़ जाती है।’—कर्मचार

### आवन-क्षेत्रमें सफलता

‘यह पुस्तक ग्रथान्तः गीतोंके आवश्यक प्रति जीवन-तत्त्वकी व्याख्या करती है। इसमें किशायमक जीवनके विभिन्न रूपर्वेष्टक वर्णन है और जीवनके विभिन्न चर्चोंमें सफलता प्राप्त करनेके लिये आवश्यक भाँति-भाँतिके धर्मोंका निर्देश किया गया है। इस पुस्तकमें बतलाया गया है कि किम प्रकार गीतोंका आदर्श धर्मका वाणिज्य—व्यापारमें भी उपयोग हो सकता है और किमप्रकार हन व्यवहारोंके द्वारा भी प्रयोग प्राप्त किया जा सकता है। यह पुस्तक बन्नुनः अपने उपरिकारोंके हाथमें भासनका कसीदा के गम्भीर है।’—अंग्रेजी भराडा, पृष्ठा ।

### अच्छा लाभ

गोयन्दगुरुसे ‘कल्याण’ नामक आस्तिक पत्र प्रकाशित होता है। उसमें जयदयालजी गोयन्दका के समय-समवयपर लिखे २६ जिवन्योंका इन पुस्तकमें संप्रद किया गया है। ज्ञानीकी अनिवृच्छाय विद्यति, भगवान् क्या है, अनन्य प्रेम ही भक्ति है, उपासनाका तत्त्व, धर्म क्या है, कर्मका रहस्य आदि जिवन्योंके नामोंमें ही पुस्तकका प्रतिपादा विषय ज्ञानमें अच्छा योग्य है। धार्मिक ग्रन्थ पढ़नेकी जिमकी कृचि हो उनको इस ग्रन्थके वाचनमें अच्छा लाभ है। ज्ञानप्रकाश प्रस्तुत पुस्तक बहुतोंको उपर्युक्त मार्गप्रदर्शक है। ज्ञानप्रकाश प्रस्तुति पृष्ठा ।

### तत्त्व-चिन्तामणि ज्योतिस्तम्भ है

‘... गोयन्दकाजीकी ‘तत्त्वचिन्तामणि’ मिला। मेरे लिये बहुत कामकी यात्रिन हुई है। गोयन्दकाजीकी पुस्तकका मेरेपर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा है, हमप्रकारकी कृतियाँ उन लोगोंके लिये उत्तोलनभस्त्ररूप हैं जिनको वीरस्तीर्ण जीवन-सागरमें उचित सर्वांग जीवनेवाला कोई रक्षक न हो। ...’—तत्त्वचिन्तामणि पृष्ठ १०, प्रोफेसर बगलिन युनिवर्सिटी।

### चिन्ताको दूर करनेवाला तत्त्वचिन्तामणि

‘तत्त्व-चिन्तामणि’ पत्रमार्ग ग्रन्थमालाका प्रथम पुस्तक है। इसके २६ सुशोभित दलोंके ऊपर देखनेवाले तत्त्व जिकायुक्ते प्रथम भगवान् ही वहे होकर अपने प्रदउशलित लेजामे तत्त्वकी चिन्ताको दूर करनेवाला ‘चिन्तामणि’ नामे ही पाठ्य-पाठिकामोंके गल्लमें वाँच देते हैं। अभ्यन्दित दृश्य बजार आता है। इसमें कुछ सन्देश नहीं।

( जिकायुक्ते अस्तीके लगभग नवीन और प्राचीन विषयोंपर प्रसालिक पुस्तकों लिखनेवाले महाराजा के महाराजा विद्वान् )

—पृष्ठ १० आनन्दघन रामजी, नास्तगाँव।

## यह गीताकी ही सुन्दर व्याख्या है

'तत्त्वचिन्तामणि' पदकर बहुत शुभ हुए। इसमें सरल हिन्दीमें साधनारथ पथ प्रदर्शित किया गया है। सालमें यह श्रीमद्भगवद्गीताकी ही सुन्दर व्याख्या है। ..... साधनतत्त्व, ध्यानतत्त्व, अध्यतत्त्व आदि शब्दों सुन्दर भाषणे प्रतिपादित हुए हैं। ..... साधनमार्गमें विज्ञानिक प्रश्नहें लिये कर्मकी ओर आवश्यकता है, वह सुन्दर भाषणे विलक्षणी गयी है। उपाई और कामज उल्लङ्घ है। मूल नाममात्र भी) ..... धर्मजिह्वासु हिन्दूसाम्रके लिये इस पुस्तकका पठन करना कठिन है।—अंगला हितवादी, कल्कत्ता,

## मानव-धर्म

(पृष्ठ-सं० १०७ मूल्य केवल =)

### महस्यपूर्ण पुस्तक

.....इसमें धर्मकी आवश्यकता, धूति, क्षमा आदि विषयोंपर प्राचीन गाथाओंको लेकर अच्छा विवेचन किया गया है।.....पाठकोंका ध्यान धर्म एवं आनन्दरणकी ओर कराया गया है।.....धर्मका साहित्यसे उचित सामझत्व कराया है।.....भाषा बहुत ही स्पर्श है। ऐसी महस्यपूर्ण पुस्तकोंका प्रचार इस समय खूब होना चाहिये। अन्तमें भी मनोरञ्जक कहानियों द्वारा ही धर्मका उपदेश दिया गया है। आशा है कि ऐसी पुस्तकों हिन्दी-प्रेमी अपनानेमें दैर न करें।

—हिन्दी-साहित्य-सम्बन्धकी सुखेश्विका अस्मिन्सन्दर्भिका

### धार्मिक जीवन

‘यह पुस्तक मनुस्मृतिमें बताये हुए धर्मके दृश्य लक्षणोंकी व्याख्या है। इन दृश्य गुणोंको भली भाँति समझनेसे, इनके अनुसार चलनेमें धार्मिक जीवन होना निश्चित है। यदि इस पुस्तकका पाठशालाओंमें प्रत्येक हिन्दू-बालकको पाठ पढ़ा दिया जाय तो उसे अपने धर्मका बहुत कुछ जान हो। जाय और अग्रिम भी सुन्दर जाय।’

—श्रीहरितामरी दाशदेव—धर्मप्रेषण—हिन्दू-विधविकालय, काशी।

## माधवनन्ध

(पृष्ठ-सं० ७२, भगवान्का एक अन्यन्य मनोरोहक सुन्दर बहुरंगा चित्र, मूल्य केवल =)॥

स्वामी विश्वामहेश्वरी लिखते हैं—

‘माधवनन्ध पढ़कर अत्यन्त आनन्द हुआ। भाषण का परिध्रम और विचार बहुत ही सराहनीय है। साधकोंके लिये सजा पथ-प्रदानक है।.....अवश्य ही अपने पास रमकर सदा प्रध्ययन करने का हमारा चाहिये।’

हिन्दू विधविकालय काशीके धर्म-शिक्षक लिखते हैं—

‘.....माधवनन्ध बहुत सहायता देनेवाली है। लेनक यह अनुभवी पुस्तक आज पढ़ते हैं।..... पढ़कर यही विचार मेरे मनमें उठा कि लेनक महाशयने उन सब ही बासीको अना दिया जिनको माधवनन्धके पश्चिकों द्वारा लक्ष्य में रखना चाहिये।’

पुस्तक इनी सुन्दर है कि एक सराटीके मालिक एवं भी हाथी हाथ क्षेप गयी है।

पवित्र प्रेमकी अपूर्व झाँकी  
हृष्णचरी कलियों खिला देनेवाला

## प्रे म यो ग

**लेखक-हिन्दी संसारके सुयरिचित श्रीविद्योगी हरिजी**

दो बरड़, पृष्ठ ४८, बहुत मोटे परिटक कागज, मनोहर रंगीन चित्रसंहित, मूल्य १) मजिल १।)

हिन्दी-साहित्य लगाए श्रीविद्योगी हरिजीके नामसे अपरिचित नहीं है। श्रावहीकी भावुकतापूर्व लेखनासे लिखा हुआ यह प्रथम अपने हंगामा एक ही है। सजीव भाषा और दिव्य भावोंसे सबा हुआ यह प्रेमयोग प्रेम-साहित्यका एक पूर्व प्रथम कहा जा सकता है। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि प्रायः लभी चर्मोद्धारियोंके प्रेम-विषयक आधुनिक अनुभवों और मनोहर सूचियोंका विचित्र संग्रह है। सम्तों, महायाज्ञों, भलों और अनुभवी ज्ञानियोंके प्रेमपर निष्कर्ष हुए हृष्णचरी उद्घारोंका अनुभूतपूर्व प्रेमा आखो चनामक विशद संग्रह निस्तन्त्रेष्व पठनीय है।

### आचार्यश्रीकी सम्मति

“आपकी भेंटी हुई तीमों पुस्तके गिरी है—प्रेमयोग, मानवधर्म और साधनपथ। परमार्थविषयक इसनी अच्छी पुस्तके हिन्दीमें मैंने यही देखी। इस तरहकी पुस्तकोंका प्रकाशन करके आप सर्वसाधारणका बड़ा ही उपकार कर रहे हैं। जो तात्त्व और ज्ञान संस्कृतके बड़े-बड़े ग्रन्थोंमें निहित है उसे आपने सभीके लिये कौदीमोहु चुनबम कर दिया। अच्यान्त और सदाचारविषयक इतनी सुन्दर पुस्तके लिकालकर आप अपने पुस्तकोंप्राप्ति कर रहे हैं और साथ ही फोटो भी हिन्दी भाषनेवालोंको कर्त्तव्यमानीकी ओर भी ले जा रहे हैं। आप धन्य हैं। आपकी ये पुस्तकें अचूत हैं।” — महारावीरप्रसाद डिवेदी

हिन्दीके धुराने महाराजी पं० लक्ष्मारामजी मेहताकी लम्बी सम्मतिका कुछ अंश पढ़िये—

“...प्रेम-जीमे गहन गर्भीर और पवित्र विषयके प्रथेक अंगाका चित्र-ग्रन्थ शीर्षकसे प्रनिपादन करनेमें श्रीविद्योगी-हरिजीने सफल प्रयत्नकर कराया है.....। और तो सब टीक ही है, किन्तु महाया सूरदासजी और गोवामी तुलसीदासजीके वास्तव्य-रसके दिव्यकार्यवाले विंतीस पृष्ठ पढ़नेमें भेरी जो दशा हुई है उसे मेरा हृष्ण ही जानता है। प्रथेक दो-दो बार-बार धन्तियाँ पढ़ते समय भेरी आँखोंसे भाराप्रवाह आँसू बहते थे, बार-बार ऐनक हठा-हठाकर में उन्हें पोछता था और फिर आगे बढ़नेका प्रयत्न करता था। कहे बार हृष्ण हुई कि किसी दूसरी बार कलंबोकी छड़ा करके इतने पृष्ठोंका अवलोकन करूँगा, परन्तु योथी छोड़ना भी नहीं बन सका।”

लोकमान्य निलकंद्रारा प्रतिष्ठित और श्रीकेलकरजीद्वारा समाप्तिप्रसिद्ध महाराष्ट्र पत्र 'केमरी' के उद्धार सुनिये—

“प्रेमके अर्थ कामकीदा नहीं। प्रेमका अवसर सो इसमें कितना ही उच्च है। वह कैसा है? इस पुस्तकमें श्रीविद्योगी हरिजीने उत्तम और विशद प्रकारसे विवाचा है। 'जो प्रेम शहीरके साथ कीका करता है वह प्रेम नहीं, मोह है।' इस विवाचके लेखकने असाधी प्रकार विवाचा है।.....प्रेमके विविध स्वरूपोंका मार्मिक विवेचन किया गया है। दूसरे अवधिमें 'विश्वप्रेम बना है' यह दिलाकर सूरदास, तुलसीदासके काव्योंमें वास्तव्य रस कैसा ओत-प्रोत है यह दिला परम्परिक और स्वदेशप्रेमके स्वरूपका पर्याप्त किया गया है। पुस्तक पहनीय है।”

चैदिक-अन्वेषणकारी श्रीपाठ दामोदर सातवलेकरजीके चैदिकधर्मकी सम्मति—

“अदि इस जगतमें कुछ दिव्य बस्तु है तो केवल प्रेम ही है। यदि इस रूप जगतमें रहते हुए चैदिक जगत्का अनुभव लेना है तो अपने अन्य ग्रंथकी कृदि करनी चाहिये। सबा उच्च और दैवी प्रेम कौनसा है, और धातक मोह कौन है, यह सराचारण मनुष्य नहीं जान सकता।.....जो यह 'प्रेमयोग' पुस्तक पढ़ेगे वे उच्च प्रेम और हीन का अन्यतर जात्य सकते हैं। पुस्तक गीताप्रेस गाँरखपुरसे प्रकाशित हुई है, इतना कहनेमात्रसे इसकी उत्तमताका अन्य ही स्फूर्ता है।”

नयी पुस्तकें !

॥ श्रीहरि ॥

नयी पुस्तकें !

## दो बहुत ही सुन्दर सचिव पुस्तकें

### (१) भक्त-बालक

पृष्ठ ८०, मोटा कार्गज, पुष्ट टाइटल, ४ रंगीन और १ साड़ी चित्र, पुस्तक सबके पढ़ने योग्य मोटे टाइपमें हापी है, दाम केवल ।।

इसमें भक्त वन्द्रहास, सुधस्त्रा, मोहन, गोविन्द और धन्नाकी सरस्म पर्व भक्तिरससे भरी हुई कथाएँ हैं। पढ़ते-पढ़ते रोमाञ्च और अश्रुपात होने लगता है। बार-बार भगवान् और उनके प्रभावका स्परण होता है।

भगवान् के प्यारे भक्तोंके जीवनकी भीड़ी-सीढ़ी बातोंको पढ़ने-सुननेसे आमन्द तो होता ही है, साथ ही हृदयके मल-मृष्ट होकर उसमें भगवान् की प्रेम-भक्तिका अंकुर भी रहतासे जम जाता है। दोनों पुस्तकोंमें ऐसी ही जीवनियाँ हैं। सर्वमाध्यमसे इनके मध्य और पवित्र पठनसे अपने सम-सम-वचनको प्रकृतित करनेकी प्रार्थना है।

### (२) भक्त-नारी

पृष्ठ ८०, मोटा कार्गज, पुष्ट टाइटल, ३ रंगीन और ३ साडे चित्र, पुस्तक सुन्दर मोटे टाइपमें हापी है, दाम केवल ।।

इसमें भक्तिमती शक्तीजी, भीराबाई, जवाहाई, करमैतीजाई और तपस्त्रिनी रचियाँकी प्रेमभक्तिसे पूर्ण बड़ी ही रोमाञ्च और उपदेशपूर्ण जीवनियाँ हैं। पढ़ते-पढ़ते हृदय आनन्दमें भर जाता है। चित्र भगवान् की ओर तेज़ीसे दौड़ने लगता है।

अन्य नयी पुस्तकें

### (३) श्रीमद्भगवद्गीताके कुछ जाननेयोग्य विषय

लेखक—‘कल्याण’—पाठकोंके सुपरिचित श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका

सुन्दर मोटे टाइपमें हापी हुए, पृष्ठ-संख्या ४३, पृष्ठ—))। डाकखाल अलग ।।

पुस्तकका विषय नामन्तर ही जान पड़ता है। इसमें लगल सुधोध मात्रामें गीताके कुछ विषय सम्भानेको चेष्टा की गयी है। जैसे जीवनसुखका स्वरूप, जीव, ईश्वर और ब्रह्मका भेद; क.म. विक्रम और अक्रमका स्वरूप; क्षण, अक्षण और पुरुषोत्तम; गीता मायावाद माननी है या परिणामवाद, ह्लानयोग आदि शब्दोंका धृधक् धृथक् अर्थमें प्रश्नोंग। पुस्तक सबके मनम करने शीघ्र है। इसकी अनेक विज्ञानोंनि भूमी-भूमी प्रशंसना की है। यह पुस्तक ‘गीता-परीक्षा समिति’की परीक्षामें राशी गयी है।

### (४) एक सन्तका अनुभव

श्रुपिकेशनिवासी न्यायी सन्त श्रीवाराधरणस्वामीने हृपाकर अपने जीवनमें जो साधन किये हैं, उन्हींको अपनी ही टेलीमीमें छिप दिया है। साधकों और सच्चे सुखके अभिलापियोंके लिये बहुत ही कामकी आँख़ हैं। पुस्तकको उपर्योगिताको देखकर महाराष्ट्रके प्रसिद्ध विद्वान् श्री धार ०के० कामदने मराठी अनुवाद करनेकी अनुमति भीगी है। पुस्तक वित्य भनन करने योग्य है। धारीदकर साधुओंमें घोटनेसे बहुत लाभ हो सकता है। मूल्य—)) डाकखाल अलग ।

गुजराती गीता, प्रह्लादकृष्ण, वैद्याम्बद्धावली, आचार्यके लड्यारेल विज्ञानकी भाँड़ी आदि पुस्तकें भीबड़ी निकलनेवाली हैं।

गीता  
बहुत बड़े

## सस्ते चित्र

भगवान् श्रीकृष्ण, श्रीराम, श्रीशिवजीके दिव्य दर्शन

जिसको देखकर हमें भगवान् योद्धा भावें, वह बस्तु हमारे लिये संप्रहणीय है। किसी भी उपायमें हमें भगवान् सदा सरण होते रहें तो हमारा धन्य भाग हो। भक्तों और भगवान्के स्वरूप एवं उनकी मधुर मोहिनी लीलाओंके मुन्दर दृश्य चित्र हमारे सामने रहें तो उन्हें देखकर योद्धा देवके लिये हमारा मन भवयत्-सरणमें लग जाता है, और हम सांसारिक पाप-नापोंको भूल जाते हैं।

निष्ठलिखित मुन्दर चित्र किसी अंशमें इस उद्देश्यको पूर्ण कर सकते हैं। इनका संप्रहकर प्रेममें जहाँ आपकी दृष्टि नित्य पहुँची हो वहाँ घरमें, बेटकर्में और देवालयोंमें लगाइये एवं चित्रोंके बहासे भगवान्की यादकर अपने मन-प्राणको प्रकुरुति कीजिये। भगवान्की मोहन-मूर्तिका ध्यान कीजिये।

### चित्र-सूची

माइज १० इंच औड़ा १५ इंच लम्बा ( भाग्यारणमें दुगुना )

प्रत्येक चित्रपर ग्राह्यना या परिचय भी छपा है

|                               |                |                           |                |
|-------------------------------|----------------|---------------------------|----------------|
| १ ध्रुवनारायण                 | ( बहुरंगा ) -> | ११ श्रीराम-जटायु          | ( दो रंगा ) )॥ |
| २ श्रीशंगशस्त्री भगवान् चित्र | ( .. ) ->      | १२ देवदेव भगवान् महादेवजी | ( बहुरंगा ) -> |
| ३ मुरलीमतोहर                  | ( .. ) ->      | १३ काशी-मुक्ति            | ( दो रंगा ) )॥ |
| ४ बृन्दावन-विहारी             | ( .. ) ->      | १४ मुझा पढ़ावत गणिका तमी  | ( बहुरंगा ) -> |
| ५ भक्त-मन-चौर                 | ( .. ) ->      | १५ श्रीरामचैतन्य महाप्रभु | ( .. ) ->      |
| ६ गोपाल-कृष्ण                 | ( .. ) ->      | १६ हरिलाल-संकीर्तन        | ( .. ) ->      |
| ७ श्रीकृष्णाञ्जन              | ( .. ) ->      | १७ हरिनाम-विनाय           | ( दो रंगा ) )॥ |
| ८ प्रेमोन्मादिनो घटुर-पत्नी   | ( .. ) ->      | १८ गोप्त्वामी नुलसोदामजी  | ( बहुरंगा ) -> |
| ९ कौशल्या-नारायण              | ( .. ) ->      | १९ मीराबाई                | ( दो रंगा ) )॥ |
| १० अहल्योदार                  | ( .. ) ->      |                           |                |

### विदेश सुभीता

पूरी सेट एक साथ लेनेवालोंको उच्चामों चित्र १) में मिलेंगे। प्रिकिंग = १ डाकखार्ज । १) अलग। २) कम्बल हर हालतमें आहकको लगेगा।

चित्रोंके लिये एक साथ अधिक संख्यामें लेनेवालोंको २०) स्कैकड़ा कर्माशन दिया जायगा।

पुस्तकें और चित्र मिलनेका पना— \*

गीताप्रेस, गोगमपुर

१) चित्र और पुस्तकोंके लिये 'कल्याण' कार्यालयको न पढ़ लियें और न उनके चलाके साथ पैसे दा स्टार्ट में।

## गीता प्रेसके अन्य चित्र

बहुरंगे चित्र साइज़ १० × ५॥ दाम प्रत्येकके )॥

|                                      |                             |                          |                          |
|--------------------------------------|-----------------------------|--------------------------|--------------------------|
| (१) सुरली मनोहर नं० १                | (६) भक्त-प्रवचनोर           | (१०) भक्तमोहन, गोपालभाई  | (२४) श्रीन सुदामा        |
| (२) श्री श्रीचैतन्य महाप्रभु         | (१०) कौशलला नारायण          | (१८) सूचा एवावत          | (२२) श्रोत्याकार्य       |
| (३) सुरली मनोहर नं० २                | (११) कृष्णकी बाल-कीर्ति     | गणिका लारी               | (२६) शीघ्रप्रितामह       |
| (४) भिज्जीके चेर                     | (१२) श्रीकृष्णानन्दमणि      | (१२) कृष्ण बन-भोज        | (१०) दानवीर कार्य        |
| (५) सुरदीयर                          | (१३) गोपालकृष्ण             | (२०) रामकी बाल-लीला      | (२८) भक्तभावन श्रीकृष्ण  |
| (६) गो० स्वा० श्रीनुजलसी-<br>दासजी । | (१४) भक्त-प्रतिष्ठा-नक्षत्र | (२१) ज्ञान वैराग्य भक्ति | (२६) बालरूप              |
| (७) अलामिक                           | भक्त ज्ञानदेवजी             | (२२) मात्स्य-धेनी कृष्ण  | श्रीरामचन्द्रजी          |
| (८) श्रीसीरोबाई                      | (१६) विदुर-पती              | (२३) भक्तसागरसे उद्धार   | (३०) चन्द्रवर्णन         |
|                                      |                             | करनेकाले श्रीकृष्ण       | (३१) हनुमावनविहारी कृष्ण |

सादे चित्र साइज़ १० × ५॥ दाम प्रत्येकके )॥

|                                                                                                     |                            |                                 |                        |
|-----------------------------------------------------------------------------------------------------|----------------------------|---------------------------------|------------------------|
| (१) मार्दी और सन्त                                                                                  | भारतसेन्ट्र इरिशन्ड        | (२५) देवी रविया, कैथेरिन        | (३२) परमहंस भगवनाथजी   |
| (२) काशी-सुकि                                                                                       | (१४) अकिकिको भगवद्गीत      | (२६) अमन्त्रप्रसुद्धी,          | स्वा० उत्तमलाल्यजी     |
| (३) बंधन-सुकि                                                                                       | (१५) भक्त सुधन्मा          | रामकृष्णजी                      | (३३) देशवन्धु दाम      |
| (४) महन-दहन                                                                                         | (१६) बलि और बामन           | (२७) श्रीपादवक्त्री, य० विष्णु- | लोकमान्य तिलक          |
| (५) चरण-प्रासादन                                                                                    | (१७) महात्मा सूरदासजी      | दिग्ब्रहरी रामनामके             | (३४) महाया गांधीजी     |
| भगत-गुह-मिलाप                                                                                       | (१८) श्रीरामानुजाकार्यजी   | भालिया बाजजी                    | १० मालवीयजी            |
| (६) भक्त विभीषण                                                                                     | (१९) गमदास और शिवाजी       | महाराज, रामशश्वत                | (३५) श्रीउद्धिगा शाहजी |
| (७) श्रीकृष्ण-कृष्ण                                                                                 | (२०) भक्तिके चार प्रवारक   | मोहनजी ।                        | (३६) श्रीराधारमण देव   |
| (८) युधिष्ठिर और श्रीकृष्ण                                                                          | शक्तिकार्य, रामानुजाकार्य, | (२१) श्रीअनन्ताकार्यजी          | भक्त सेठबलनारायणजी     |
| (९) नारद और याध                                                                                     | परमामाकार्य, निकाराकार्य,  | श्रीपोकुलकार्यजी                | लखनीनारायणजी           |
| याधकमे बालमीकि                                                                                      | (२२) भक्तिके बारह आशाय     | (२२) श्रीशक्तिकार्यजी           | रामदयालजी              |
| (१०) महाराज हन्तिदेव                                                                                | (२३) मालिकका दाम           | शराबजारेवरामनन्दजी              | भरतनेन्ट्र बन्दुरिशन्ड |
| (११) आद्यक और दाजा चोल                                                                              | (२४) स्वा० श्रीउत्तमनाथजी  | गौदेवरामायं —                   | ३॥ १० सादे निष         |
| आद्यक और चारहात                                                                                     | (२५) परमहंस रामकृष्णजी,    | मधुसूदनजी                       | दाम प्रत्येकके )।      |
| (१२) भक्तद्वयति रामकानका                                                                            | स्वा० विवेकानन्द           | (२०) सन्त शुकारामजी             | (३८) गोपाल कृष्ण बैठे  |
| (१३) आद्यको भगवद्गीतन                                                                               | विजयकृष्ण, कर्णर ।         | (३१) स्वामी भास्त्रामनन्दजी     | (३९) गोपाल कृष्ण सदे   |
| रामदयालुजी रेवटिया                                                                                  |                            | (३२) सन्त शुकारामजी             | प्रकृति भूमोता ।       |
| प्रर, बैटक, मन्दिर, देवालय सजाने, धर्मार्थ बाटिनेवालोंके लिये और चित्र-प्रिक्केताओंके लिये भूमोता । |                            | (३३) सन्त शुकारामजी             |                        |
| एक दर्जन एक साथ लेनेपर कमीशल १२५) मैकडा । २० चित्र एक साथ लेनेपर २२) सैकडा ।                        |                            | (३४) गोपाल कृष्ण बैठे           |                        |
| १०० चित्र „ „ ३३।—) सैकडा । ५५० „ „ ४०) सैकडा ।                                                     |                            | (३५) गोपाल कृष्ण सदे            |                        |
| १००० „ „ २०) सैकडा ।                                                                                |                            |                                 |                        |

उल्लीकृतजिये स्टाक समाप्त हो जानेपर मिलना कठिन है ।

### खास रियायत

रंगीन चित्रोंकी सम्मूर्ख सेट लेनेसे १२५) के बदले २२) कमीशल काटी जायगी ।

सादे चित्रोंकी सम्मूर्ख सेट लेनेसे १२५) के बदले ३३।—) कमीशल काटी जायगी ।

टोटः—(१) मद चित्र न लेनेवालों आर्द्ध चुम्छ लेनेवालोंके साथ यह रियायत न होगी ।

(२) पैंकिया, मासूरा, डाक्सर्व आदि कुछ सर्व शाहकोंके लिये है ।

पता—श्रीताम्रस, गोरखपुर



## श्रीरामायणकी आरती

आरति श्रीरामायणजीकी ।  
 कीरति कलित ललित सियपीकी ॥१॥  
  
 गावत ब्रह्मादिक मुनि नारद ,  
 वाल्मीकि विज्ञान विसारद ।  
 सुक सनकादि सेष अरु सारद ,  
 वरनि पवनसुत कीरति नीकी ॥२॥  
  
 संतत गावत मंभु भवानी ,  
 औघट संभव मुनि विज्ञानी ।  
 व्यास आदि कविपुंग वस्तानी ,  
 काकभुमुंडि गमडिके हियकी ॥३॥  
  
 चारउँ वेद पुराण अष्टदम ,  
 छहों मास्त्र मध्य ग्रन्थनको रम ।  
 तन मन धन मंतनकी मर्वम ,  
 मार अंम मम्पत मवहीकी ॥४॥  
  
 कलिमल-हरनि विषय-रमफाकी ,  
 सुभग मिंगार मुक्ति युवतीकी ।  
 हरनि रोग भव मृग अर्मीकी ,  
 तात मात मवविधि 'तुलसी'की ॥५॥



हरे राम हरे राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण हरे हरे !!  
जयति शिवा-शिव जानकि-राम । जय रघुनन्दन राधेश्याम ॥  
रघुपति राघव राजा राम । पतितपावन सीताराम ॥  
जय जय दुग्गो जय मा नारा । जय गणेश जय शुभ-आगारा ॥

जय पावक गवि चन्द्र जयति जय, मनु चिन आनंद भूमा जय जय ।  
जय जय विश्वलय हरि जय, जय अग्निलाल्मनु जगमय जय ।  
जय विग्रह जय जगन्पते, गोर्गयति जय रमापते ॥

वार्षिक मूल्य—भारतमें ४=) चिट्ठेगमें ५=) पक्षपानका मूल्य (=) इस भड़का मूल्य ॥)

Edited by Harumati Prasad Podear, Printed and Published by  
Ghanshyamdas at the Gita Press, Gorakhpur.

श्रीहरि:

## विषय-सूची

|                                                                                                                     |         |                                                                                                         |         |
|---------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|---------|---------------------------------------------------------------------------------------------------------|---------|
| १- एक रामते मोर भज [ कविता ] ।<br>( गोसाईजी महाराज )                                                                | ... २१३ | १७- वैदेही-विलाप [ कविता ] ।<br>( पं० श्रीरमाशंकरजी मिश्र 'श्रीपति' )                                   | ... २६२ |
| २- श्रीरामका राजधर्मोपदेश । (रामायण-प्रेमी)                                                                         | २१४     | १८- ज्ञानदीपक-नपटीकरण ।<br>( साहित्यरञ्जन पं० श्रीविजयानन्दजी त्रिपाठी )                                | २६३     |
| ३- श्रीरामायणका अनुष्टान-विचित्र ।<br>( पं० गौरीशंकरजी द्विवेदी )                                                   | २१५     | १९- महर्षि वशिष्ठकी महत्ता ।<br>( श्रीकाळीप्रसादजी चक्रवर्ती बी० प० )                                   | २६६     |
| ४- दीजे सुमति [ कविता ] ।<br>( श्री सुखराम चौबे 'गुणाकर' )                                                          | २१६     | २०- मक-भावना [ कविता ] ( श्रीअमृतनलालजी माधुर )                                                         | २७०     |
| ५- आदर्श राज्य-स्थवर्या ।<br>( श्री मी० एम० त्रिवेदीजी महोदय )                                                      | २२०     | २१- श्रीरामचरितमानस-चिनोद । ( श्रीमन्त वादव-<br>शंकरजी जामदार, रिटायर्ड सरबजज )                         | २७१     |
| ६- श्रीरामायणहारा जगनका कल्याण ।<br>( स्वामीजी श्रीचिदामानन्दजी )                                                   | २२४     | २२- शान्ति । [ कविता ] गोसाईजी महाराज                                                                   | २७२     |
| ७- भवनरथोपाय । (स्वामीजी श्रीभोलेश्वाराजी)                                                                          | २२६     | २३- मापदायिक शंका ।<br>( श्री म० वाल्लकरामजी विनायक, अयोध्या )                                          | २७७     |
| ८- मानसके दो रत । ( श्रीभैरवसिंहजी राईर )                                                                           | २३६     | २४- श्रीरामोपासनाकी प्राचीनता ।<br>( श्री श्रीवैष्णव पं० श्रीरामटहलदासर्जी )                            | २७८     |
| ९- श्रावालर्मीकीयका राम वन-गमन ।<br>( पं० श्रीप्रभुदत्तजी वक्ष्याचारी )                                             | २३७     | २५- रामायण-संख्या ।                                                                                     | २८२     |
| १०- मर्यादा-युग्मोनम राम ।<br>( कविराज पं० श्रीगयाप्रसादजी शास्त्री<br>माहिन्याचार्य, आयुर्वेद-वाचस्पति 'श्रीहरि' ) | २४५     | २६- गमायणकालीन कला और उद्योगकी सूची ।<br>( श्रीयुत बी० प० ड० बडेर, पम० प०, पल-पल० बी० )                 | २८३     |
| ११- गमायण [ कविना ] । ( श्रीगंगाधिनगुजी पाण्डेय )                                                                   | २४६     | २७- रामावतारका कारण ।<br>( श्रीवनाश्मीदामजी 'प्रेम' )                                                   | २८४     |
| १२- रामचरितमानसकी विशेषता ।<br>( श्रीदामोदरमहायसिंहजी, 'कविकिकर' )                                                  | २४८     | २८- वाल्मीकीय रामायणका आधार और काल ।<br>( श्रीगोविन्दनारायणजी आमोपा दार्ढीच<br>बी० प०, पम० आर० प० पम० ) | २८८     |
| १३- श्रीरामचरितमानसका महाकाव्यन ।<br>( श्रीविन्दुब्रह्मचारीजी )                                                     | २४९     | २९- संतार्जीके पूर्वजन्मका वृत्तान्त । ( शुद्धाइतभूषण<br>पं० श्रीज्येष्ठरामजी हरिजीवन शास्त्री )        | २८६     |
| १४- रामायण और तुलसी । [ कविना ]<br>( श्रीगौरीशंकरजी 'शुद्धर' )                                                      | २५५     | ३०- रामायणमें शिवानुशासन ।                                                                              | २८७     |
| १५- श्रीसुनीष्याजीकी प्रेमा-भक्ति ।<br>( पं० श्रीजयरामदामजी 'दीन' रामायणी )                                         | २५६     | ३१- रामचरितमानस और अध्यात्मरामायण ।<br>( श्रीब्योहार राजेन्द्रसिंहजी )                                  | २८८     |
| १६- हनूमन्जी [ हनुमन् ] । (रायबहादुर अवधारी<br>जाला श्रीसीतारामजी बी० प० )                                          | २६०     | ३२- चित्र-परिचय ।                                                                                       | २९२     |

## चित्र-सूची

|                            |     |     |         |
|----------------------------|-----|-----|---------|
| १— सीतान्वेषण ( रंगान )    | ... | ... | ... २१३ |
| २— सुनीष्यका प्रेमोन्माद   | ... | ... | ... २४६ |
| ३— लत-कुशका धनुर्वेद शित्य | ... | ... | ... २८८ |

## कल्याणके नियम

### उद्देश्य

भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, धर्म और सदाचार-समन्वित लेखोंहारा जनताके कल्याणके पथपर पहुँचानेका प्रयत्न करना हसका उद्देश्य है।

### प्रबन्ध सम्बन्धी नियम

(१) यह प्रतिमासकी कृष्णा एकादशीको प्रकाशित होता है।

(२) हसका डाकव्यय और विशेषांक महिन अग्रिम वार्षिक मूल्य भारतवर्षमें ४=) और भारतवर्षमें बाहरके लिये ५=) नियत है। एक संख्याका मूल्य १=) है। विना अग्रिम मूल्य प्राप्त हुए, पत्र प्रायः नहीं भेजा जाता। नमूना १= मिलनेपर भेजा जाता है।

(३) एक वर्षमें कमके आहक नहीं बनाये जाने। आहक प्रथम मंगलमें १२ वें अंकलकड़े हों बनाये जाने हैं। एक सालके बीचके किसी अक्षमे शुर्मरी मालके उम अक्ष तक नहीं बनाये जाने। 'कल्याण'का वर्ष आवण्यमें शुरू होता है।

(४) इम्मंत्र व्यवसायियोंके विजापन किसी भी दरमें स्वीकार कर प्रकाशित नहीं किये जाने।

(५) कार्यालयमें 'कल्याण' दो नीन वार जाँच करके प्रत्येक प्राहकके नाममें भेजा जाना है। यदि किसी मासका 'कल्याण' दोइक समयपर न पहुँचे तो अपने डाकघरमें लिखापट्टी करनी चाहिये। बहाँसंजो उनर गिरे, बह अगला अक्ष निकलनेके कम-में-कम यात्र दिन पड़ने तक कार्यालयमें पहुँच जाना चाहिये। उन होनेमें या डाकघरका जवाय शिकायती पत्रके साथ न आनेमें शुर्मरी प्रति विना मूल्य मिलनेमें बही अद्वित होगी।

(६) पना यद्यपनेकी सूचना (दि.दा.) महानेका हृष्ण प्रनिषद्के पहले पहने कार्यालयमें पहुँच जानी चाहिये। लिखने साथ आहक-संध्या, पुराना और नया नाम उन याक याक लिखना चाहिये। महानेंद्र महानेंद्र के लिये यद्यपनां डो नो अनें प्रोस्ट्रमान्तरको ही लिखकर प्रबन्ध कर लेना चाहिये।

### लेख-सम्बन्धी नियम

भगवद्गीति, भक्त्यरित, ज्ञान, वैशाख्यादि दृश्यपरक, कल्याणमार्गमें सहायक, अध्यात्मविषयक व्यक्तिगत आदेष रहित लेखोंके अतिरिक्त अन्य विषयोंके लेख भेजनेका कोई सज्जन करन न करें। लेखोंको घटाने बढ़ाने और छापने अथवा न छापनेका अधिकार ममादाकहो है। अमुद्रित लेख विना माँग लौटाये नहीं जाने। लेखोंमें प्रकाशित मतदेलिये ममादाक उत्तरदाता नहीं हैं।

### आवश्यक सूचनाएँ

(१) आहकोंको अपना नाम पता स्थित लिखनेके साथ साथ प्राहक नम्बर अवश्य लिखना चाहिये।

(२) पत्रके उनरके लिये जवाबी कार्ड या टिक्ट भेजना चाहियक है।

(३) आहकोंको चन्दा मनिशार्द्दर हारा भेजना चाहिये क्योंकि बांध पा क रुपये प्रायः देरांमें पहुँचते हैं, कभी कभी ना चेत दूर मर्दानोंनक नहीं मिलते। हमसे निश्चय नहीं हाता कि बांध पा क छुट्ठा या नहीं। रुपये न लिखते तक आहकोंमें नाम नहीं लिखा जाता, लिखतेहुए ही आहक अदृ भेज जाने हैं। यहाँ दोनोंमें प्रत्येक दोहरा पत्राना प्रयत्नन मूल्यानक और दूसरा अमूल्यिता है। तिनका समय जाना है उनको कल्याण पठनें भेजा जाना है।

(४) प्रेष-विभाग और कल्याण-विभाग एकस-अन्तर व्यापकर उनसा अक्षम एवं व्यवसाय करना और रुपया अदृ भेजना चाहिये। रुल्याणके सूत्रके साथ उल्लिखीया चित्रोंका सूत्र या और अधिक ऐसे नहीं भेजने चाहिये।

(५) मार्दी चिट्ठीने टिक्ट कभी नहीं भेजनी चाहिये।

(६) मनिशार्द्दरके कृपयाप, सूचीका नामान, साथे भेजनेका मतलब, प्राइक नम्बर, पूरा पना आदि सब बानें माफ-साक लिखनी चाहिये।

(७) प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र, आहक होनेका सूचना, मनिशार्द्दर आदि 'द्यवस्थापक' 'कल्याण' 'गोगम्बपूर' के नाममें और ममादाकवे सम्बन्ध इष्टवेशालै प्रायदि 'ममादाक' 'कल्याण' 'गोगम्बपूर' के नाममें भेजने चाहिये।

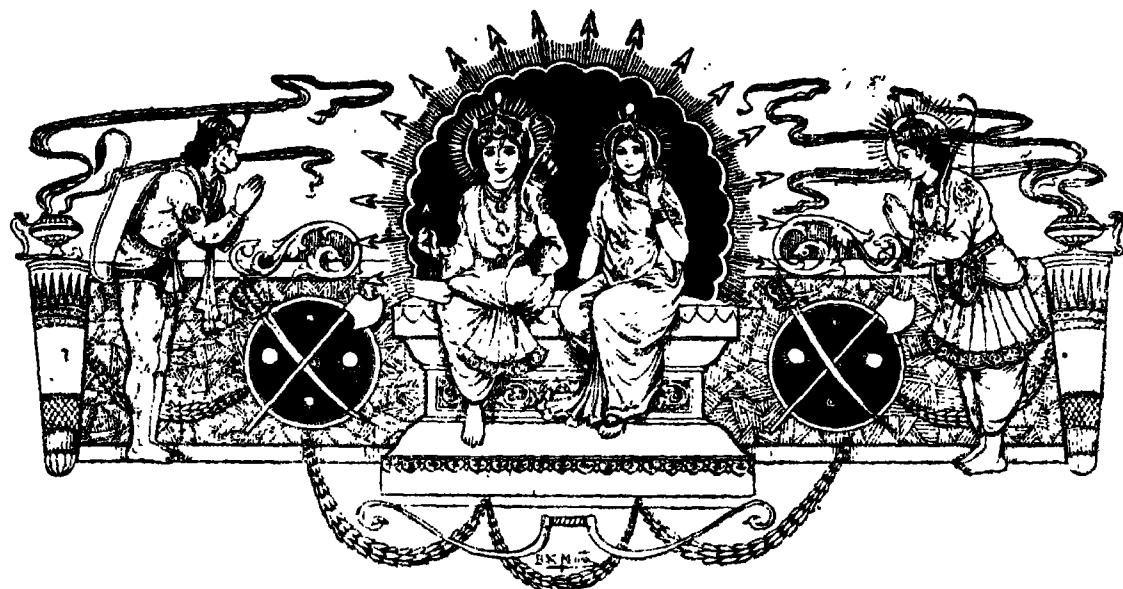


## कल्याण



सीता-अन्धेपण।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्चते ।  
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥



मायातीतं माधवमाद्यं जगदादि, मानातीतं मोहविनाशं मुनिवन्दयम् ।  
योगिभ्येयं योगविधानं परिपूर्णं, वन्दे रामं रञ्जितलोकं रमणीयम् ॥

वर्ष ५  
खण्ड १

भाद्रपद कृष्ण ११ संवत् १९८७ अगस्त १९३०

संख्या २  
पूर्ण सं ५०

### एक रामते मोर भल

राम मातु पितु बंधु सुजन गुरु पूज्य परम हित ।  
साहेब सत्ता सहाय नेह नाते पुनीत चित ॥  
देस कोस कुल कर्म धर्म धन धाम धरनि गति ।  
जाति पाँति सब भाँति लागि रामाहि हमारि पति ॥

परमारथ स्वारथ सुजस सुलभ रामते सकल फल ।  
कह तुलसिदास अब जब कबहुँ एक रामते मोर भल ॥

—गोमाईजी महाराज

## । श्रीरामका राजधर्मोपदेश



गमूर्ति धर्मात्मा भरतजी चित्रकूट-  
में श्रीरामजीके चरणोंपर पड़े हैं,  
अंसुओंसे उनके चरण धो रहे हैं,  
भरतका वेष तपस्त्वयोंका-सा है,  
अत्यन्त शोकके कारण थोड़े ही  
दिनोंमें उनका शरीर सूखकर काँटा  
हो गया है। श्रीरामने प्रेमसे उठाकर

भरतको हृदयसे लगा उनका मस्तक सूँधा और  
गोदमें बैठाकर बड़े प्यारसे उनकी इस दशाका  
कारण पूछा। एहले तो पिताजीके सम्बन्धमें प्रश्न  
किये फिर वे राजधर्मके विषयमें पूछने लगे। श्रीराम-  
जीके प्रश्नोंसे यह स्पष्ट हो जाता है कि उस समय  
राजधर्म कैसा था? श्रीरामजीने भरतको विष्णादमय  
देखकर कहा—

‘हे सौम्य! तुम अभी बालकके समान हो,  
तुम्हारे हाथसे कहीं राज्य तो नष्ट नहीं हो गया? हे  
सत्यपराक्रम! तुम पिताजीकी सेवा तो करते हो?  
भाई! अपने इक्ष्वाकु-कुलके आचार्य धर्मग्रंथी,  
विद्वान् महातेजस्वी महर्षि वशिष्ठजीकी पूजा तो  
करते हो? माता कौसल्या, सुपुत्र उत्पन्न करने-  
वाली सुमित्रा और आर्या देवी कैकेयी तो तुमसे  
प्रसन्न हैं? विनयी, सर्वशास्त्रज्ञ, कर्मकाण्ड-निपुण,  
असूयारहित, कुलगुरु वशिष्ठजीके पुत्र, जो तुम्हारे  
पुरोहित हैं, उनका भलीभाँति सत्कार तो करते  
हो? बड़े बुद्धिमान्, वेदविधिके ज्ञाता, अत्यन्त  
विनयी गुरुपुत्र सुयश, जिनका तुमने अग्निकार्य के  
लिये नियुक्ति की है, हवनके पर्व और हवनके पश्चान्  
तुम्हें उसकी सूचना तो देने हैं? तुम देवता,  
गुरुजन, पितर, पिताके समान पूज्य बड़े बूढ़े लोग,  
दैद्य, ब्राह्मण और नौकरोंका यथायोग्य सत्कार  
तो करते हो? इसी प्रकार शास्त्रके प्रयोग  
जानेवाले, अर्थ-शास्त्रके विद्वान्, राजनीतिविशारद  
घनुवेदके ज्ञाता सुधन्वा पण्डित आदि सत्पुरुष

तुम्हारे द्वारा आदर तो पाते हैं? तुमने अपने समान  
विश्वासी शूर, विद्वान्, जितेन्द्रिय, कुलीन और  
ऊपरकी चेष्टासे ही मनके भावको समझ जानेवाले  
लोगोंको तो अपना मन्त्री बनाया है? वर्योंकि  
शास्त्रज्ञ और मन्त्रकी रक्षा कर सकनेवाले मन्त्रियोंके  
द्वारा सुरक्षित मन्त्र ही राजाओंकी विजयका मूल  
कारण है।’

‘तुम जानेके समय सोते तो नहीं हो? रातके पिछले पहर उठकर अपने कार्यांकी सिद्धिका  
उपाय तो सोचते हो? अकेले ही तो किसी बातका  
मनमाना निश्चय नहीं कर लेते? अथवा बहुत-से  
अयोग्य आदमियोंके साथ मिलकर तो निश्चय नहीं  
करना चाहते? तुम्हारे स्थिर किये हुए विचारका  
काम परा होनेके पहले ही लोगोंको पता तो नहीं  
लग जाता? थोड़े प्रयत्नमें बड़ा फल उत्पन्न  
करनेवाला उपाय निश्चय कर लेनेपर फिर उसके  
अनुसार कार्य करनेमें विलम्ब तो नहीं करते? तुम्हारे सामन्त राजा तुम्हारे किसी विचारका  
कार्यके सिद्ध होने या सिद्धिके समीप पहुँचनेके  
पहले ही जान तो नहीं लेते? तुम्हारे निश्चित  
विषयोंको तुम्हारेढारा या मन्त्रयोंढारा कहे जानेमें  
पूर्वी अनुमान, तर्क, युक्ति आदिके द्वारा कोई जान तो  
नहीं लेते? परन्तु तुम और तुम्हारे मन्त्रीगण दूसरोंके  
निश्चय किये हुए विषयोंको अनुमान, युक्ति और तर्कके  
द्वारा जान तो लेने हो? हजारों मूर्खोंकी अपेक्षा  
एक पण्डितको तुम अपने पास रखना अच्छा  
समझते हो न? क्योंकि संकटके समय पण्डित ही  
उसमोक्तम उपाय सोचकर राजाका भग्नान कल्पणा  
करता है। राजा चाहे हजारों लाखों मूर्खोंको अपने  
पास रखसे, उनसे समयपर कोई सहायता नहीं  
मिलती, पक्षान्तरमें एक ही बुद्धिमान्, शूरबीर,  
दश, विचक्षण मन्त्री राजा या राजपुत्रको विशाल  
समृद्धिकी प्राप्ति करवा सकता है। तुम उसमें

सेवकोंको उत्तम कार्यपर, मध्यमको मध्यम कार्यपर और छोटे सेवकोंको छोटे कामपर यानी जिसके लायक जो काम हो, उसको उसी कामपर नियुक्त करके सबकी ठीक व्यवस्था तो रखते हो ? बड़े-बड़े कामोंपर भलीभाँति परीक्षा किये हुए, बाप-दादोंके समयके मन्त्रियोंके वंशज, निष्पाप, ऊँचे विचारवाले लोगोंको ही नियुक्त करते हो न ? तुम किसीको ऐसा उग्रदण्ड तो नहीं देते, जिससे दुखी होकर प्रजा या मन्त्री तुम्हारा तिरस्कार करते हों ? हे भाई ! जैसे कुलीन खीं पर-खीमें आसक पुरुषका तिरस्कार करती है वैसे ही यज्ञ करनेवाले व्राह्मण तुमपर कोई अपराध लगाकर तुम्हें यज्ञके योग्य नहीं समझकर तुम्हारा अपमान तो नहीं करते ? धनके लोभसे राजाकी बीमारी बढ़ानेवाले वैद्यको, राजाके ऐश्वर्यका स्मृति करनेके लिये विश्वासी मेवकोंको फोड़नेवाले सेवकोंजो राजा प्राण-दण्ड नहीं देता वह स्वयं ही मारा जाता है। हे भरत ! तुम्हारा सेनापति तुमसे सदा प्रेम करनेवाला शूर-वीर, धीर, बुद्धिमान्, पवित्र, कुलीन और चतुर तो है न ? युद्धकलामें निपुण, बलवान्, वीरतामें परीक्षा किये हुए प्रधान योद्धाओंको तुम सदा अपमान-दानसे प्रसन्न तो रखते हो न ? सेनाको अन्न और वेतन प्रतिमास ठीक समयपर मिल जाता है न ? इस कार्यमें कुछ भी देर तो नहीं होती ? क्योंकि सैनिकोंको अन्न और वेतन समय-पर न मिलनेसे वे चिढ़ोही हो उठते हैं जिससे बड़ा अनर्थ हो जाता है। तुम्हारे कुलके प्रधान लोग तुमपर प्रेम तो रखते हैं न ? वे तुम्हारे हितके लिये समयपर स्वेच्छासे सदा प्राण देनेको नियार तो रहते हैं न ? हे भाई ! अपने ही देशके चिढ़ान्, चतुर, प्रतिभाशाली, जैसा कहा हो वैसा ही कहनेवाले पण्डितोंको ही तुमनेदून बनाया है न ?

हे भरत ! एक दूसरेको न पहचाननेवाले तीन-तीन गुमदूतोंद्वारा तुम अपने राज्यके पन्द्रह और दूसरेके राज्यके अठारह तीर्थोंका परा पता तो रखते हो न ?

१ मन्त्री, २ पुरोहित, ३ युवराज, ४ सेनापति ५ द्वारपाल, ६ रनियासका रक्षक, ७ कारागृह-अध्यक्ष (जैल-सुपरिणियेंजेट), ८ खजाजी, ९ राज्यकी आक्षा सुनानेवाला, १० बकील, ११ न्यायकर्ता (जज), १२ व्यवहार-निर्णायक (पञ्च या जूरी), १३ सेनाको वेतन चुकानेवाला, १४ कर-संग्रहकर्ता (तहसीलदार) १५ नगराध्यक्ष, (म्युनिसिपलिटिका चेयरमन) १६ राष्ट्रान्तःपाल (सीमारक्षक), १७ दुष्टोंको दण्ड देनेवाला, और १८ जल, पर्वत और घनोंके किलोंकी रक्षा करनेवाला, ये अठारह तीर्थ हैं, इनमें मन्त्री, पुरोहित और युवराजको अलग कर देनेपर पन्द्रह बचते हैं। इन सबके कार्योंपर राजा को जल्द निगरानी रखनी चाहिये। हे शत्रुघ्न ! देशका अहत करनेवाले जिन लोगोंको तुमने देशमें निकाल दिया है, वे यदि देशमें फिर आ बसते हैं तो तुम उनको दुर्बल समझकर उनकी उपेक्षा तो नहीं करते ? तुम नास्तिक ब्राह्मणोंका संग तो नहीं करते ? परलोकज्ञानसे शून्य अनर्थपरायण, पापिण्डत्याभिमानी लोगोंसे बहुत बुराई होती है। ऐसे दुर्दिल लोग प्रामाणिक धर्म-शास्त्रोंके विद्यमान रहनेपर भी शुष्क तर्क-बुद्धिसे अर्थहीन उपदेश किया करते हैं। भाई ! हमलोगोंके धीर पर्वजोंके डारा सेवित यथार्थ अयोध्या (जहाँ युद्धार्थ कोई भी शब्द नहीं आता) नामवाली और मजदूत दग्धवाजेवाली, हाथी, रथ और घोड़ोंसे भरी हुई, अपने-अपने कर्ममें लगे हुए जितेन्द्रिय उत्साही और उत्तम हजारों व्राह्मण क्षत्रिय और वैश्योंसे युक्त, अनेक प्रकार बड़े-बड़े सुन्दर महलोंवाली, अनेक प्रकारके चिढ़ान् और धन-ऐश्वर्यसे परिपूर्ण विशाल नगरीकी भलीभाँति रक्षा तो करते हो न ? हे भाई ! जिसमें अनेक देव-मन्दिर हैं, अश्वमेधादि यज्ञ करने योग्य अनेक स्थल हैं, जो बुद्धिमान् मनुष्योंसे पर्ण है, नदी, तालाब आदि जलाशयोंसे युक्त है, जिसमें सभी खीं-पुरुष सुप्रसन्न हैं, जहाँ अनेक सभाएँ और उत्सव हुआ करते हैं, अच्छी लेती होती है, पर जो

बादलोंपर निर्भर नहीं है, जो गौ आदि पशुओंसे भरा है, जहाँ पशुहिंसा विलकुल नहीं होती जहाँ हिंसा पशु नहीं हैं अर्थात् हिंसक पशुओंने हिंसा छोड़करी है, किसीको किसी प्रकारका भय नहीं है, अनेक धातुओंकी खाने हैं, जहाँ पांच मनुष्य नहीं रहते, ऐसा अपने पूर्वजोंद्वारा सुरक्षित समृद्धिशाली देश तुम्हारे शासनमें सुखी तोहै ! हे भाई ! अपने देशमें रहनेवाल खेती और गोरक्षापर आजीविका चलानेवाले वैश्योंपर तुम प्रेम तो करते हो न ? खेती और व्यापारमें लगे हुए वश्योंकी सारी इच्छाओंको पूर्ण करके तुम उनका भलीभाँति संरक्षण तो करते हो न ? देशमें बसनेवाली प्रजाका पालन करना राजाका धर्म है। तुम खियोंका किसी प्रकार अपमान तो नहीं होने देते हो ? खियोंका भली-भाँति सन्तोष तो कराते हो ? वे तुमसे सुरक्षित तो रहती हैं ! तुम उनके बचनोंपर अतिविश्वास तो नहीं करते ? और उन्होंको इष्ट मानकर अपनी गुस बात तो नहीं कह देते हो ?

हे भारत ! जहाँ बहुतसे हाथी उत्पन्न होते हैं ऐसा अपना हाथीबन नो सुरक्षित है ! तुम अच्छे हाथी, हथिनी और छोड़ोंके संग्रहमें तृप्त तो नहीं होने ! तुम प्रतिदिन प्रातःकाल राजमार्गों-पर जाकर प्रजाको अपने सुसज्जित शरीरसे दर्शन तो देते हो ! तुम्हारे कर्मचारी, निशाङ्क होकर तुम्हारे सामने देवदर्शीमें तो नहीं आने ! अथवा तुमसे डरकर या तुम्हें अभिमानी समझकर तुम्हारे सामने आनेमें सङ्कोच तो नहीं करते ? कर्मचारियोंको न तो बहुत पास रखना चाहिये और न बहुत दूर ही। बीचका मार्ग ही अच्छा है। हे भाई, तुम्हारे सब किले धन-धान्य, हथियार, जल, अनेक प्रकारके यन्त्र-शिल्पी और धनुधारी धीरोंसे तो भरे हैं ! तुम्हारी आशदनी जन्मसे ज्यादा नी है ! तुम्हारा धन नाचनेवाले और खुशामद करनेवाले अपारोंमें तो खर्च नहीं होता ? राजाको आशदनीमें खर्च करना चाहिये और वह भी प्रजाको अल-

जल, वायु आदि दैवी वस्तुओंसे यथायोग्य सुख पहुँचानेवाले देवों, प्रजाके सुखाकांक्षी पूज्य पितृ-गणों, विद्यादान देनेवाले ब्राह्मणों, पूज्य अतिथियों, राज्यरक्षक योद्धाओं, समन्वयी और विद्य मित्रोंके पोषण करनेमें और प्रजाके सुखके कार्योंमें करना चाहिये ।

हे भाई ! तुम्हारे राज्यके न्यायाधीश, किसी सदाचारी साधुर और भूडा अपराध लगानेपर धर्मके शाता पुरुषोंके द्वारा निर्णय कराये बिना ही धनके लोभसे उसे दण्ड तो नहीं दे देते ? अथवा धरके मालिक या तुम्हारे सिपाही द्वारा पकड़े हुए चोरको, उसके चौर सिद्ध हो जानेपर एवं चोरीका माल पकड़ा जानेपर भी लोभसे छोड़ तो नहीं देते ! सारांश कि राजाको यह खयाल रखना चाहिये कि जिसमें उसके राज्यमें निरपराधी प्रजा दण्डित न हो और अपराधी छूट न जाय ! हे भाई ! तुम्हारे शासक मन्त्रीगण धनी और गरीबके मामलेमें लोभ छोड़कर निष्पक्ष यथार्थ न्याय तो करते हैं ? क्योंकि राजाके अन्यायके कारण बिना अपराध दण्डित हुए मनुष्योंकी आँखोंमें जो आँख गिरते हैं वे भोग-विलासके लिये राज्य करनेवाले राजाके पुत्र और पशुधनको नष्ट कर डालते हैं । हे प्रिय ! तुम वृद्धों, बालकों और प्रधान वैद्योंका दान, स्तेह और मधुर बचनोंमें संकार नो करने हो ? इसी प्रकार देवताओं, गुरुजनों, वृद्धों, तपस्वियों, अतिथियों, देवमन्दिरों और तपस्या आदि द्वारा पवित्र हुए ब्राह्मण आदिको प्रणाम नो करते हो ?

भाई ! प्रातःकालका समय धर्मीयाँजनका है, उस समय अर्थोंपार्जनके कार्यमें लगाकर धर्मका धाध तो नहीं करते ? ऐसे ही अध्यात्मकाल राज-काज देखनेका यानी अर्थ-संग्रह करनेका है, उस समय धर्मकार्यमें लगाकर अर्थका धाध नो नहीं करते ? अथवा इन्द्रिय-भोगार्थ, कामके वश हो धर्म अर्थ दोनों-को बाधित तो नहीं करने हो ? समयका उचित विमाग करके ही धर्म, अर्थ और कामका यथा-

योग्य आचरण करते हो न ? भाई ! देशके विद्वान्  
प्राण्यन और समस्त प्रजाजन तुम्हारा कल्याण तो  
आहते हैं ।

नास्तिकता, असत्य, क्रोध, प्रमाद, दीर्घसूचता  
ज्ञानियोंका संग न करना, आलस्य, इन्द्रियोंके वश  
होना, महस्वपूर्ण कार्यका अकेले ही विचार करना,  
विपरीत दृष्टिवाले अयोग्य पुरुषोंकी सलाह लेना,  
निष्ठित किये हुए कार्यका आरम्भ न करना, गुप्त  
मन्त्रणाओंका भेद खोल देना, प्रतिदिन प्रातःकाल  
नित्यकर्म न करना, सब ओरके शत्रुओंपर एक ही  
साथ चढ़ाई कर देना, और महापुरुषोंको आने देना

१—रिकार, जूझा, दिनमें सोना, व्यथ बकवाद, अति खा-सुग, मांदरा आदि नशेली चीजोंका सेवन, नाचना, गाना, “  
यांज बजाना और ये मनन्त्व भटकना : यह कामसे उत्पन्न होनेवाला ‘दशवर्ग’ है ।

२- पाँच प्रकारके किंल बनाना—समुद्र, नदी, तालाब आदि जलमानमें, पर्वतपर या पर्वतोंके बीचमें, वृक्षोंपर या  
वृक्षोंसे भेर जंगलमें, कमर जमीनमें (रणक्षेत्रमें) और हृथियारोंके बीचमें । यह पञ्चवर्ग है ।

३—राजा, मन्त्री, राष्ट्र, किंल, ग्रन्थाना, सोना और महायक बन्धु, यह सप्तवर्ग है, इनकी पररपर सहायतासे राज्य सुख होता है ।

४—साम, शान, भेद और इण्ड यह चतुर्वर्ग है ।

५—चिन्ना, दुःखाहम, प्राह, इथा, अमृता, अथर्वा वचनकी कठोरना और कठोर दण्ड, यह अष्टवर्ग है । यह क्रोधसे  
उत्पन्न होनेवाले दोषोंका समूह है ।

६—धम, अथ और काम यह त्रिवर्ग है । उत्साह, प्रभु और मन्त्रको भी त्रिवर्ग कहते हैं ।

७—वैदिक धर्मज्ञान, व्येनी-व्यायार अदि वृत्तिका ज्ञान और राजनीतिका ज्ञान ।

८—धम, नियम, आमन प्रणायाम और विचार विवेक आदि योग और हानके साधन ।

९—मन्त्रिष, विघ्रह, यान, आमन, दैर्घ्यभाव और आश्रय ।

१०—अग्नि, बाढ़, व्याजाल, भूकर्म्य, वज्रपात, अनाधृति, महामारी आदि ।

११—चोर, टाक, शत्रु, राजग्रोही, अधिकारी, और राज्यलोभी आदि मनुष्योंके द्वारा प्राप्त होनेवाली विपत्तिया ।

१२—शत्रुपदके लोभी, अधिमारी, क्रोधी और दरपोक मनुष्योंको धन मान ढेकत, प्रियकार्य कर और भय दिखलाकर वशमें करना ।

१३—बालक, बृद्ध, दीर्घकालका रोगी जातिवहिकृत, दरपोक, दरपोक साधियेवाला, लोभी, लोभी माधियेवाला वैरागी, अस्यन्त विषयासक्त, चश्चल, देव और ब्रह्मणोंका निनदक, अभागी, प्रारूपवादी, अकालपांडित, सेनाहीन, अयोग्य श्वानमें निवास करनेवाला, बहुत शत्रुआवाला, बालपीडित, और सत्यधर्ममें प्रीति न रखनेवाला । यह वीसवर्ग है । ऐसे  
शत्रुओंमें सन्धि करनेवाले आवश्यकता नहीं, वर्योंके इनपर विजय प्राप्त करना महज है ।

१४—मन्त्री, देश, किला, खाजाना और दण्ड, यह पाँच प्रकृति है ।

१५—विजिगीपु, शत्रु, मित्र, शत्रुका मित्र, मित्रका मित्र, शत्रुके मित्रका मित्र, पाण्डिग्राह, आकन्द, पाण्डिग्राहासार, आकन्दसार, मध्यस्थ और उदासान, ये द्वादश राजमण्डल हैं ।

१६—विगृहयान (बड़ी सेना साथ लेकर जाना) संधाययान (जिस राज्यपर आकमण किया था, उससे सन्धि करनेके बाद  
दूसरे शत्रुपर इमला करते जाना), संभूययान (शत्रुवीरोंको साथ लेकर जाना), प्रसंगतोयान (जिसपर इमला करने जा रहे थे,  
उसको छोड़कर बीचमें ही दूसरे शत्रुपर इमला करना) और उपेक्षयान (जिसपर चढ़ाई की थी, उसे बलवान समझकर  
उसके मित्रपर चढ़ाई करना )

सिंहासनसे उठकर उसे प्रणाम न करना ये चौदह राजदोष समझे जाते हैं, तुममें इनमेंसे एक भी दोष  
तो नहीं है न ?

हे बुद्धिमान् भरत ! दशवर्ग<sup>१</sup>, पञ्चवर्ग<sup>२</sup>,  
सप्तवर्ग<sup>३</sup>, चतुर्वर्ग<sup>४</sup>, अष्टवर्ग<sup>५</sup>, और त्रिवर्ग<sup>६</sup>,  
को तो तुम तत्त्वसे जानते हो ? त्रिविध विद्या<sup>७</sup>की  
ओर तो तुम्हारा ध्यान है न ? बुद्धिसे इन्द्रियोंको  
जीतनेका उपाय<sup>८</sup>, पद्मगुण<sup>९</sup>, देवी आपत्ति<sup>१०</sup>, मानुषी  
आपत्ति<sup>११</sup>, राजकर्तव्य<sup>१२</sup>, बीसवर्ग<sup>१३</sup>, पाँच प्रकृति<sup>१४</sup>,  
राजमण्डल<sup>१५</sup>, पञ्चयात्रा<sup>१६</sup>, दण्डविधान, एवं सन्धि  
और विग्रह, ये सब नीतिशास्कके तत्त्व हैं । इनमें

कुछ ग्रहण करने योग्य, कुछ त्याग करने योग्य और कुछ प्रतीकार करने योग्य हैं। तुम इन सबके भेदोंको समझते हुए यथायोग्य ग्रहण, त्याग और प्रतीकार तो करते हो न ?

हे बुद्धिमान् ! तुम शास्त्रानुसार तीन चार निषुण मन्त्रियोंसे एक साथया उनके मनकी बात जाननेके लिये अलग अलग राय लेकर तो सारे कार्य करते हो न ? वेदोंके क्रियाओंको करके तुम वेदोंके सफल तो करते हो ? तुम्हारे सारे राज्यकार्य सफल तो होते हैं ? उत्तम आचरण करके तुम श्रवण क्रिये शास्त्रोंको तो सफल कर रहे हो ? धर्मपरायण और सन्तानवती होकर स्थिर्यां तो सफल हैं ? भाई भरत !

मेरे कथनानुसार ही तुमने आशु, यश, धर्म, अर्थ और कामको प्रदान करनेवाली सद्गुद्धिका आश्रय ले रखता है न ? तुम अपने पिता-पितामहादिके व्यवहारके अनुकूल ही व्यवहार करते हो न ? क्योंकि वही शुभ और सत्पथा वृत्ति है। तुम स्वादिष्ट भोजन अकेले तो नहीं खाते ? अधिक ब्रेम होनेके कारण भोजन नाहनेवाले मिठोंको यथेष्ठ भोजन तो देते हो न ? इसप्रकार धर्मानुसार शासन करनेवाला राजा अपनी प्रजाका पालन करके समस्त पुरुषोंपर अपना आधिपत्य स्थापित करता है और मृत्युके अनन्तर स्वर्ग या परमधामको जाता है। यह वर्णन चालमीकिरामायणके आधारपर लिखा गया है।

— रामायण-प्रेमी

## श्रीरामायणकी अनुष्टान-विधि

( लखक ५० गोराशाकरणः दिवेशी )



स्वामीजीने रामचरितमानसमें जो भक्ति-सुधा-सरिता प्रवाहित की है उसका सेव अवतारवाद और भक्ति है, यह सर्वसम्मन है। शुद्ध परमात्म-ज्ञानभानुके आत्मोक्तमे उसके चमकृत होनेके साथ ही उसका उद्भव और अवसान उम्म मनानन-तन्त्र सन्त्रमें होना है जिसके बिना यह सारी रचना अपर्यंश हजानी है। यह है राम-नाम-जपकी महिमा। मन्त्र-जप तन्त्र-शास्त्रका प्रूप है। तांत्रिकोंकी सारी शक्तिका केन्द्र मन्त्र-जपमें ही होता है। तन्त्रमें हमारी श्रद्धा आदिकालमें है। वेदसे ज्ञेकर आधुनिक कालके नानापुराणनिगमागमप्रमाण रामचरितमानस्तक जितने अन्य मनाननधर्मपर लिखे गये हैं सबमें तन्त्रका प्रभाव है। इसकी शक्तिके विषयमें गोस्वामीजीने स्वर्ण कहा है—

मंत्र परम लघु जामु वम विभि द्विर हरा भर मर्व ।

महापत्र गजराजकहै वम कह अंतु खर्व ॥

मंत्र महामणि विषय ध्यानके। भेटन कठिन कुअंक मानके ॥

इसप्रकार मन्त्र-माहात्म्यके द्वारा तन्त्रशास्त्र (आगम)का

सार रामनाम श्रीरामचरितमानसका प्राण है। इस प्राणकी प्रतिष्ठा कथाके द्वारा हुई है। ज्ञान और भक्ति दो पार्श्व-सहकारी हैं।

इसप्रकार प्राण-प्रतिष्ठा हो जानेके अनन्तर मन्त्रका यजन-पूजन सनातन कृत्य है, जो 'मना वै देवः' के अनुसार वैदिक युगके यज्ञ-विधानके उपरान्त पौराणिक कालके नवधार्भक्तिके एकीकरणमें व्यक्त होता है। इसका प्रस्तुत स्वरूप पौराणिक कथाओंके माहात्म्यमें प्राप्त होता है। इन कथाओंका अनुष्टान, इनकी पूजा-पाठ-विधि भारतके प्राचेक प्रान्तोंमें पार्या जाती है। इन कथाओंके द्वारा तन्त्रशास्त्र-विहित मन्त्र-देवकी प्राण-प्रतिष्ठा, यजन-पूजनादि विधियाँ समाप्त होके साथ की जाती हैं, इनमें सुखरूपेष्ठ भक्ति और गौणरूपमें ज्ञान-वर्चा होती है। समाजकी नैतिक और आध्यात्मिक दशाओं सौम्य और समुक्त यनानेमें इन अनुष्टानोंका बहु दायर होता है और इनके द्वारा संस्कृतिकी रक्षा भी हो सकी है। यहाँ रामायणकी अनुष्टान-विधिपर कुछ लिखा जाता है। परम भागवत नारदमुनिजे श्रीसत्तत्कुमारसे ध्यानपूर्वक जो रामायणपाठकी

विधि बहलाई थी उसीका यहाँ संबोध में विश्वरूप कराया जाता है।

परम पुनीत चैत्र, कार्तिक या माघमासमें श्रीरामायणकी कथा नौ दिनतक निष्ठ अद्भुतर्वेक कहलावे। शुक्र-पृष्ठमें पञ्चमीसे कथारम्भ करे। प्रतिदिन अपामार्गको शाखा के दन्त-संशुद्धि कर स्नानादि करे और शुक्र शुक्रवर्ष धारणकर, नारायणका नाम-स्वरण करता हुआ आचमन करके अपने बन्धु-बान्धवोंको उत्ताकर रामभक्तिपरायण हो स्वनिवाचन करे। पश्चात् सङ्कल्प करके भक्तिभावसे पञ्चदेवताओंकी अर्चनाकर श्रीमद्रामायणके पुस्तककी अर्चना करे। श्रीराम, लक्ष्मण और सीताकी मूर्ति स्थापित करे और हनुमान्‌र्दी भी प्रतिमा रखें। आवाहन करके आसनादि प्रदान करे और गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्यमें भक्तिर्वेक श्रीनारायणकी पूजा करे और प्रत्यह एक बार, दो बार या तीन बार जितना हो सके अपनी शक्तिके अनुसार होम करे। तदनन्तर कर्मनिष्ठ उत्तम ब्राह्मणने श्रीरामायणकी कथा अवश्य करे। इसीप्रकार नव दिनतक निष्ठ कथा सुने। नवे दिन कथा समाप्त होनेके पश्चात् कथावाचक वाह्यणको गो, वच, द्रव्यादि यथाशक्ति प्रमाणतापूर्वक भक्तिभावमें दून करे और श्रीमद्रामायणकी पुस्तक अपनी शक्तिके अनुमार विहान ब्राह्मणमें बांटें।

श्रीरामचरितमानसके नवाद्विक पाठका क्रम इसप्रकार है-

प्रथम दिवस बालकायडके 'जो सुनिध निवि ॥३॥' इस संगठनसे लेकर 'दृष्टिपूर्ण भास्त्र' इस दोहेतक।

द्वितीय दिवस 'सुनु शुग कया भवानि' इस संगठनसे 'मतानन् यद भवनि प्रभु' इस दोहेतक।

तृतीय दिवस-'सीय स्वयंवर देखिय जाई' इस चौपाईसे 'कान्ह शौच सब सहज शुचि' इस दोहेतक।

चतुर्थ दिवस-'भूप बिलोकि लिए उरलाई' इस बालकायडकी चौपाईसे 'दयामल गौर किशोरवर' इस अयोध्याकायडके दोहेतक।

पंचम दिवस-'के ८८ मनोज लजावनि हारे' इस चौपाईसे 'राम गैल शोभा निराखि' इस दोहेतक।

षष्ठ दिवस-'नव चेवट डेंच चाँदि धाई' इस अयोध्याकायडकी चौपाईसे 'दारि पगा खल बहुत विधि' इस दोहेतक।

सप्तम दिवस-'जेहि विधि कपट कुरंगमेन' हस्त आरयणकायडके दोहेसे लंकाकायडके 'कह मारनसुन दुरुदु प्रभु' इस दोहेतक।

अष्टम दिवस-'पवनननयक वचन सुनि' इस लङ्काकायडके दोहेसे उत्तरकायडके 'जहें नह धावन पठइ पुनि' इस दोहेतक।

नवम दिवस 'अवध्युर्नि अनि अचिर बनई' इस चौपाईसे उत्तरकायडके अन्ततक।

इसप्रकार श्रीरामायणका पाठ समाप्त होनेपर प्रतिदिन आरती करे और मङ्गलग्रान करे तथपश्चात् सुमन वर्णकर श्रीनारायण-गुण-गानकर कथा समाप्त करे। जबतक कथा होती रहे तबतक भगवान् श्रीराम और शिवजीका नाम-जप करता रहे। इसप्रकार रामायणकथाका वाचन करवानेसे ऋद्ध-सिद्धि, सुख-सम्पत्ति और परमधार तक, अपनी-अपनी भावनाके अनुग्राह मनचाही सभी वस्तुएँ प्राप्त हो जाती हैं।

## दीजे सुमति

'दशरथजी' के 'लाल', 'जनकजी' के 'जामाता'

'मीताजी' के 'देव', 'भरतजी' के वर 'भ्राता'

'शंकरजी' के 'पूज्य', 'मास्तीजी' के 'स्वामी'

'रावण' के 'अरि' प्रबल, 'सुरों' के 'बल' निष्कामी।

'तुलसी' के सर्वस्व 'प्रभु', विष 'गुणाकर' की विनति।

चरण—कमलमें होय रति, यही राम दीजे सुमति।

सुखराम चौबे 'गुणाकर'

## आदर्श राज्य-व्यवस्था

अर्थात्

रामराज्य और प्रजासन्तोष

( लेखक—मी० सी० प० म० त्रिवेदी महोदय )



त्येक देशकी, देशवासियोंकी, समाजकी और समाजके प्रत्येक व्यक्तिकी आर्थिक, शारीरिक, औचोगिक, मानसिक और आध्यात्मिक उत्तमि प्रधानतः उनकी राज्यव्यवस्थापर अबलम्बित है। चारों दिशाओंके प्रायः सभी देशोंने इस सर्वमान्य सिद्धान्तका अनुभव किया है और इसीलिये वे अपने अपने बहाँ आदर्श राज्य-व्यवस्थाकी प्रतिष्ठाके लिये प्राणपत्तासे प्रबल कर रहे हैं।

एक या अनेक कारणोंसे बढ़ते हुए दुःख, दारिद्र्य, बेकारी और असन्तोषके कारण साधारण प्रजाको जीवन-निर्णायके आवश्यक साधनोंकी प्राप्तिमें भी उत्तरोत्तर कठिनता बढ़ती जा रही है। आत्मसम्मानकी सम्मान्य भावनाका भी सहजमें पोषण नहीं होता। इसप्रकारके अनेक कारणोंसे प्रत्येक देशकी अधिकांश प्रजाका जीवन क्रमशः मातुरिमाशून्य बनता जा रहा है। उनमें सीधता और कटुता बढ़ रही है। इस प्रकृतिने कहे जगह तो राजा-प्रजामें कटुता उत्पन्न कर दी है। प्रजामें बढ़ती हुई इस असन्तोषकी भावनाने अनेक सज्जाओं और राजाओंको निर्वासित करा दिया है और अनेक सज्जाओंके सिंहासन हुड़ा दिये हैं।

कैसी राज्य-व्यवस्थासे प्रजा सुखों, सन्तोषी, सम्पद और आम्बदाहुक हो सकती है, इस प्रश्नने ज्ञानके महापुरुषोंको भी चक्षरमें डाढ़ रखा है। इसीलिये यूरोपके पृथक् पृथक् देशोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारकी राज्य-व्यवस्था (Forms of Government) का प्रयोग हो रहा है। करोड़ों मनुष्योंके सुख, सन्तोष और जीवनकी आहुतिसे नहीं जानेवालों इन राज्य-व्यवस्थाओंमें कौन-सी उपादेय है, इस बातको अभी पाश्चात्य प्रजा एकत्वरसे निश्चयरूपसे नहीं बताता सकती है। उसने अभावक अपनी राज्य-व्यवस्थाका आदर्श अवान् आदर्श राज्यव्यवस्था (Ideal form of Government) प्रतिष्ठित कर्ती की है।

समुचित स्पष्ट आदर्शके अभावसे पाश्चात्य देशोंकी स्थिति-उन दलोंकी स्थिति भ्रुवहीन अद्वालके सदृश है।

ध्येय या आदर्शके अभावके कारण, ध्येयप्राप्तिके साधनोंपर भी आवश्यक विचार नहीं किया जा सकता। साधनका समुचित निवेश किये दिना राज्य-व्यवस्थाके सिद्धान्तका निश्चय न होना स्वाभाविक ही है।

सौभाग्य-वश इस विषयमें भारतकी स्थिति पाश्चात्य देशोंकी अपेक्षा अच्छी है। स्वराज (Home Rule) स्वतन्त्रता (Independence) और औषधिशाश्वत स्वराज्य (Dominion Status) आदि पारिभाषिक शब्दोंको पक्ष और इसकर भारतके जनसाधारणसे राज्य-व्यवस्थाका आदर्श पूछा जाय तो वे तुरन्त 'रामराज्य' का नाम लेंगे।

लगभग सभन्न भारतहारा स्वीकृत और सभन्न लगत हारा सहज ही आदर्शरूपमें आदरित रामराज्यकी इसनी वशोगाया क्यों गायी जाना है? इस प्रश्नका उत्तर पानेके लिये सभपूर्ण रामायणको भिन्न-भिन्न इटिविन्युओंसे पढ़ जानेकी आवश्यकता है। विभिन्न धर्माचलभिन्नोंकी इटियें भी रामायण धर्मप्रवृत्तिकी हैसियतसे पृष्ठ सर्वमान्य ग्रन्थ हैं। किमी भी दूसरे धर्मप्रवृत्तिकी अपेक्षा इसका पठन-पाठन अब भी अधिक होता है। परन्तु गवर्नरीतिक (Political Standpoint) इटिये इसका अभ्यास करनेवाले नहींके बराबर हैं। यदि इस प्रवृत्ति का राजनीतिक इटिये बारीकीके साथ अध्ययन किया जाय और वह लगान्के सामने रखा जाय तो आज जैसे रामराज्यके लिये भारत तखमला रहा है, रामायण-वर्णित राज्य-व्यवस्थाके लिये वैसी ही तखमलाइट सारे लगान्में हो जाय, इसमें सनिक भी सन्देह नहीं है।

प्रत्येक राज्यमें राजा (Ruling Power-Sovereign authority) और प्रजा (Ruled Subject) वे दो मुख्य बांहोंसे होते हैं। राजाका प्रजापर और प्रजाका राजापर असर (Interaction) होता है। राजाका भला बुरा होना उसकी शिक्षा (Education) और आसपासके वातावरण (Surroundings)पर अवलम्बित है। श्रीरामकी एक राजकुमार (Prince) की हैसियतसे जैसी शिक्षा मिली थी और उनके आसपास जैसा बायुमशड़ उपस्थित

किंवा गता था, वैसी शिक्षा और वैसा आत्मवर्ण हो तो आज भी श्रीराम-सीरीसे राजा हो सकते हैं और रामराज्यकी स्वापना हो जा सकती है। रामराज्यकी प्रजामें उस समय बैता सम्मोहन, सुख और आवादी यी वैसी ही स्थिति आज भी डरवाज़ की जा सकती है। इस इष्टिसे देखनेपर एता चलेगा कि यह रामायण राजा और प्रजा दोनोंके लिये एक बदा ही उपयोगी राजनीतिक-शास्त्र है।

बैसे समष्टि ( Society ) का मुख्य आधार अविदि ( Individual ) है, बैसे ही राज्यका मुख्य आधार एक कुटुम्ब है। आदर्श कुटुम्ब ( Ideal family ) आदर्श राज्यका प्रथम सोशाल है। यह आदर्श कुटुम्ब यदि राज-कुटुम्ब होता है तो उसका प्रभाव सारे समाजपर बहुत ही दीर्घ पहाड़ा है। रामायणका अर्थ है एक आदर्श राज्य-कुटुम्बका इतिहास। दशरथ, वशिष्ठ, विश्वमित्र, राम, सीता, वश्मिणी, भरत आदि इस आदर्श राज्य-कुटुम्बके अधिक हैं। हनुमान, अंगद प्रसिद्ध राज्य-सेवक हैं। आदर्श राजाके प्रति आदर्श राज-भक्तिके मूल्तमान सिद्धान्त रामायणके पछे-पक्षोंमें भरे हैं।

रामायण जनताके सामने केवल राम, सीता, लक्ष्मण, दशरथ, भरत, विश्वमित्र, हनुमान् आदिके आदर्श ( Ideals ) चरित्र ही उपस्थित नहीं करती, वह इस उच्च आदर्शके साथही वैनिक जीवन-व्यवहारमें Actual every day life) आनेवाले कितने ही साधारण और सांसारिक भोगदृष्टिकाले पात्रोंको भी उपस्थित करती है। कैंडेची, मन्थरा, शूरपंचका, यालि, रावण आदि इनी श्लोकोंके पात्र हैं।

'पहलोका समय अच्छा था। उस समय खोग भी भई थे। अब इस ओर कलिकालमें तो चरित्रका माहात्म्य ही नहीं रहा।' इसप्रकार कहनेवालोंको रामायण खूब मुँहतोड़ जवाब देती है। किंतुयामें नहीं, ग्रेतायुगमें भी-किसी विदेशी राज्यमें नहीं, साकान् रामराज्य और ज्ञात भगवान् रामचन्द्रजीके महलोंमें भी भई और तुरे दोनों ही तरहके मनुष्य थे, नेहीं-बदी, अच्छे-बुरे और मुख्य-पापकी आदाना सुष्टिके प्रारम्भसे ही चली आती है और सूर्य विवाहके पूर्व उसका सर्वथा बिनष्ट होना भी कठिन ही है। यह सत्य सभीको जान रखना चाहिये। पापका-दुष्टात्माओं-का सर्वथा अभाव तो असम्भव है। हाँ, राम जैसे पुरुषवर्गीय चरित्रसे पापात्मा भनुष्य भी अपना चरित्र निर्मल और

अमर कर सकता है। दुष्टी—पापकी—केवल विन्दा करनेमें नहीं, अपने चरित्र-विकाससे ही उसका पराजय करनेमें मनुष्यकी महत्ता निहित है, भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके चरित्रसे यही शिक्षा मिलती है।

भगवान् रामचन्द्रजी किसप्रकारकी शिक्षा और दिस-प्रकारके संबोधांसे एक आदर्श राजा, आदर्श पुत्र, आदर्श पति, आदर्श शिष्य और आदर्श स्वामी हो सके ये, इसका तत्त्व जाननेके लिये तो रामायणका बहुत ही सूख्म इष्टिसे अध्ययन करना आवश्यक है, परन्तु भगवान् रामचन्द्रजीके जीवनके कलिपय मुख्य-मुख्य प्रसंगोंका सहज विहंगावद्धोङ्ग (Birds-eye-view) करनेसे भी चरित्रके विकासमें—राज्य-व्यवस्थामें—आदर्श राज्यके संगठनमें बहुत कुछ सहायता मिल सकती है।

महाराज दशरथके वृद्धावस्थामें चार पुत्र हुए। इन बारों पुत्रोंमें उनकी रामचन्द्रजीपर अधिक ग्रीति थी। राजकुमारके पन्द्रह-सोलह वर्षोंकी किरोरावस्थाको पूरी करनेके पहले ही महर्षि विश्वमित्र-राज्यके एक प्रजाजन—ने अपने यज्ञकी रक्षाके लिये राजा से उनको माँगा।

तपत्वी मुनियोंका—सम्पुरुषोंका—राज्यकी सदाचारी प्रजाका यथायोग्य संरक्षण करना राज्यका सर्वप्रथम कर्तव्य है, महाराज दशरथ इस बातको भर्जीभाँति जानते थे। अतः उन्होंने राम-लक्ष्मणको विश्वमित्रके साथ भेज दिया। रामराज्यकी राज्य-व्यवस्थाका—प्रजाके प्रति प्रेमका—राजा के उत्तरदायिक्यके ज्ञानका—प्रजाके दुःख सुनकर उसे निर्भय रखनेके लिये राजाकी तत्परताका यह एक अमूल्य उदाहरण है। दशरथजीके दशरथमें शूरकीर सेनापति भी थे, परन्तु प्रजाका संरक्षण करनेके लिये राजा अपने लाड्जे पुत्रोंको राज्यसंसाके साथ लहने भेज देते हैं, यह रामराज्यका महत्ता है। जो राजा अपनी प्रजाके संरक्षणकी बेदापर अपने प्यारे और कोमल अंगके बच्चोंको होम देनेमें जरा भी नहीं किभक्ता, उस राजाके प्रति प्रजाकी कितनी और कैसी भक्ति होगी? इसका अनुमान सभी कर सकते हैं।

विश्वमित्रके आश्रममें रामचन्द्रजीने क्या किया? उन्होंने ऋषि-मुनियोंको यज्ञ करनेके लिये कहा और स्वयं उनकी पर्याकृतियोंके पहरेवार बने। ज्ञानसे ही राज्यवैभवमें पहले हुए इन दोनों वालकोंको ऋषियोंका संरक्षण करते देख प्रजा कैसे इर्षीयत न हो जायगी? राम-लक्ष्मणकी

स्वयंपरायणहृति, सुख-स्वार्थके ल्यागकी शक्ति और सुनिष्ठभूषाकी उत्सुकता महान् तपशीके तपसे भी किसेप उपर थी ।

राज्यकी ओरसे विश्वामित्रजीको जो संरक्षण (Protection) मिला था, वे भी उसका बदला लुकाये विना रहनेवाले अस्ति नहीं थे । प्रजाके प्रति वात्सल्यभाव विश्वामित्रके राजा दशरथके प्रति महर्षि विश्वामित्र भी राजभक्ति दिखानेमें पीछे नहीं हटे । राज्यके कल्पवित वातावरणमें जिन सदगुणोंका विकास नहीं हो सकता, ऐसे सदगुणोंका विश्वामित्रजीने श्रीरामचन्द्रजीमें विकास कर दिया । श्रीराममें महान् शारीरिक शक्ति आ गयी । संयम (Control) रहित शक्ति विना खगामशब्दे घोड़े जैसी है । इस बातको महर्षि भक्ती-भाँति जानते थे । अनेक भगवान् रामचन्द्रजीके चरित्रमें उन्होंने संयमकी शक्तिका भी विकास कर दिया ।

श्रीरामको सीता-स्वयंवरमें ले जानेवाले भी विश्वामित्र ही थे । हजारों योद्धाओंसे जो रिक्वीका धनुष नहीं हट सकता, रामचन्द्रजीने उसीको तोड़ डाला और परिव्राम-स्वरूप सीता-रामके शुभ विवाहका शुभ सुखोग उपरिष्ठत हुआ । इन सबका भेद विश्वामित्र-जैसे महर्षिको ही है । बाल्तवर्में यह प्रजा-रञ्जनका ही पुरुष प्रभाव था ।

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी तथा सर्वा भीताजीके भावमें अभी राज्य-वैभवका सुख नहो था । अभी उन्हें महान् संकटोंके पहाड़ लाँघने थे । रामचन्द्रजीको युवराज पद देनेकी तैयारी होने, हांने ही एक दुष्टा दासीकी तुरी सकाइसे सौमेली माता कैकेयी उभइ पही और उसने रामचन्द्रजीको बन और अपने उत्तर भरनको युवराज-पद देनेके लिये महाराज दशरथसे प्रार्थना की । राजा बचनबढ़ थे । कैकेयीको दिये हुए वचनका पिनाजी पालन कर मर्के और कुटुम्बका क्षेत्र दूर हो, इस विचारसे श्रीगंगामचन्द्रजीने स्वेच्छासे ही यह निर्वासन-वनवास स्वंकार किया । राजसिंहामनके लिये जानेवाले काले कारनामोंके नो संकहों दृष्टान्त इतिहासमें हैं परन्तु ऐसे महान् स्वार्थ-यागका उदाहरण तो कोई विरक्ता ही होना है ।

रामके हम स्वार्थ-यागमें- संयमसे- राजा दशरथ बहुत दुखी हुए । कैकेयीके अत्याचारसे प्रजा तिजमिला डठी, तो भी भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके हृदयमें कैकेयीके प्रति वैर या ह्रेष्टके विचारकी एक लहर तक नहीं रही ।

भगवान् रामचन्द्रजी और सरी सीताके लिये तो वह प्रसङ्ग बहुत ही दुःखका था; परन्तु वह दुःखद घटना न हुई होती—रामचन्द्रजी बनने न आते तो रामकी रामायण भी रायए नहीं किसी जाती । सत्यके लिये लिये गये स्वार्थ-स्वागते उस स्वार्थ-स्वागीको तपशी बना दिका और उसके इस तपश्में एक ऐसा तेज प्रकट हुआ जिसने अस्तित्व विकास के प्रकाशित कर दिया । यह सिद्धान्त भगवान् रामचन्द्रजीके लिये जितना खागू होता है उसना ही सहिके प्रत्येक प्राणीके लिये भी होता है ।

श्रीरामचन्द्रजीके बनवाससे समस्त प्रजा दुखी हुई, परन्तु उन सबमें सबसे अधिक दुखी भरतजी थे । जिस राज्य-वैभवके लिये कैकेयीने वह दावानक सुखगाया था उस राज्य-वैभवको भरतजीने दुकरा दिया । अन्यायसे प्राप्त राज्यके राजा या रामसक्ते प्रति प्रजाका भक्तिभाव या प्रेम कभी नहीं हो सकता । भरतजी इस बातको भक्तीभाँति जानते थे । प्रजाका प्रेम खर्मात्मा रामचन्द्रजीके प्रति था । प्रजाके आनन्दरिक प्रेमको भरतजीने वाह स्वरूप दिया । वे राज्य-वैभवका स्वागत अनेक स्वयं भगवान् रामचन्द्रजीके पास लिप्रकृत गये ।

वार्षीकि रामायणके अयोध्याकालडके १००-१०१ सर्गमें भगवान् रामचन्द्रजीके साथ भरतके मिलापका बया ही सुन्दर विचाप्रद वर्णन किया गया है । उस समय श्रीरामजीने अपने दुःखके सम्बन्धमें या कैकेयीके प्रति इष्टभावको लेकर एक शब्द भी उचारण नहीं किया ।

बननें रहनेपर भी प्रजाके प्रति रामचन्द्रजीका किसना प्रेम था, इस बातका पता उन प्रभोंसे लग जाता है जो (इन सर्गोंमें) श्रीरामने भरतजीमें किये थे ।

शामकपर कैसा और किसना भारी विशाख उत्तर-दायित्व है, इस बातका पता श्रीरामकी उक्त प्रभावकीसे अभीभाँति लग जाता है । राजाका अर्थ प्रजापर भारी कर लगाकर उसका धन चूपकर मौज़-शौकके लिये विवेशोंमें रहनेवाला अनुष्ठ नहीं । राजा वह नन-एव है जो प्रजासंरक्षणके लिये अपने राज्य-सुख और वैभवको स्वागत, आवश्यकता पहनेपर अपने को मालाझ बालकोंकी भी—प्रजाके सुख और सम्पोषके लिये—वहिं देनेको तैयार रहने हैं । राजाका वह आवर्त्त (Ideal) जगतकी किम्य प्रजाको आग भी मान्य न होगा ।

राज्य-ध्यावस्थामें कौन-कौन से मुख्य दोष हैं, यह बहल भी भगवान् रामचन्द्रजी के भरतको समझते हैं। भगवान् रामचन्द्रजी कहते हैं कि—हे बुद्धिमान् भरत ! नासिकता, झूठ, क्रोध, प्रमाद, दीर्घसूत्रता, विद्वानोंका अपमान, निष्प इनमें बोल्य कर्मोंमें आत्मत्त्व, अब आदि पाँचों हन्दियोंके बया हो जाना, राज्य-सम्बन्धी शातोंका अडेले मनमाना विचार करना, जिसकी सम्मति लेना उचित न हो, उस विषयीत इटिवाके साथ विकाकर विचार करना, मन्त्रीके साथ विक्रित किये हुए कार्यको आरम्भ करनेमें विकल्प करना, निश्चय किये हुए कार्यको गुप्त रखनेमें असाधानी करना, प्रातःकालके निष्पकर्ममें आलस्य, चारों ओरके शत्रुओंको दण्ड देना और महापुरुषोंको आते देख लेने न होना, यह राजाओंके दोष हैं। इन दोपर्योंसे प्रत्येक राजा को दूर रहना चाहिये।

संथमका बल ही यथार्थ बल है, यह भगवान् रामचन्द्रजी-के जीवनसे सिद्ध है। सुख-भोगकी लोलुपत्तासे नहीं, हुःख-भोगकी तप्तपत्तासे ही भगवान् रामचन्द्रजी देव-कोटिमें गिने जाते हैं। स्वार्थ-सिद्धमें नहीं, परमार्थकी पूरी लगनसे ही ऐ परमार्थ-पदको प्राप्त है।

मनुष्यकी उच्छ्रित पश्चु-बलसे नहीं, आःमबलसे हांती है, यह सिद्धान्त राम-रावणके युद्धसे स्पष्ट है। भगवान् रामचन्द्रजीसे रावण ( लोकटटिसे ) शारीरिक बलमें अथवा बुद्धिवलमें किसी प्रकार भी कम नहीं था। वह भगवान् महादेवजीका परम भक्त था। सर्व शास्त्रोंका अस्तरण अस्थासी था। देवपर भी उसने भास्य किये थे और युद्ध-कदम्बमें तो पूर्ण निपुण था ही। परन्तु वह नैतिक बल—आर्थिक रावणमें नहीं था, जो श्रीरामचन्द्रजीमें अस्तरण था। भगवान् रामचन्द्रजी एकपर्णीवत्तधारी थे और रावण बग्गट था; रामचन्द्रजी प्रजापालनको परम धर्म मानते थे, तो रावण प्रजाको पीड़ा पहुँचानेमें ही शानद मानता था। गुरु, आचार्य, विद्वान्, पूर्व वृद्धोंके प्रति रामका पूज्यभाव था, परन्तु रावण विभीषण और सती मन्दोदरी-जैसे हितेशियोंकी भी अधिकांश सम्मतियोंका तिरस्कार करता

था। अज्ञान, अधर्म, विषयलम्पटता, इन्द्रियबोलुपत्ता, उच्छ्रुत-सलता और अभिमान यह रामचन्द्रजीको कू भी नहीं सकते थे, पर रावणके अन्दर तो इन अवागुणोंने घर ही कर रक्खा था। ऐसे राजाका—ऐसी राज्य-ध्यावस्थाका विनाश होना स्थाभाविक ही था और हुआ भी वैसा ही।

पितृभक्ति, गुरुभक्ति, मातृभक्ति, स्वार्थस्याग, संयम, एक-पत्नीव्रत, महान् संकटोंको सहन करनेकी तप्तरता, कैंडेयी-सी दुःसह माताके प्रति भी वैरभावका अभाव और स्नेह-भावका सद्भाव, राज्यवैभवका तिरस्कार, प्रजापालनका प्रेम, दूसरोंके दुःख देखकर उनमें भाग लेनेकी उत्सुकता, दुष्टोंको दरब देनेकी शक्ति और तप्तरता एवं अपने द्वपर आनेवाले अनेक दुःखोंकी लापरवाही आदि सद्गुण श्रीरामचन्द्रजीमें रामायणके पञ्च-पन्नेमें देखे जाते हैं।

अग्रम गये, रावण गया, इजारों वर्ष बीत गये, परन्तु आर्थ प्रजाके सुखमेंसे राम शब्द नहीं गवा और न काकान्तरमें कभी जायगा। जहाँतक आर्थ-प्रजाके हृदयमें राम हैं, राम-भक्ति है जहाँतक पतिनपावनी रामायण श्रीरामचन्द्रजीके चरित्रका वर्णन करती है, वहाँतक राम और रामरास्यके स्थापनकी इच्छा आर्थिकर्त्तसे कभी कूर नहीं की जा सकती !

वैसे एक दीपकसे हजारों दीपक जलाये जा सकते हैं वैसे ही रामायणके रामचरित्रका एक दिन्य उग्रोतिमेंसे हजारों राम-नरवीर-धर्मवीर-पैदा करनेकी शक्ति आर्थिकर्त्तमें है। प्रभो ! आर्थ-प्रजा ( Civilised world ) को हजारों राम पैदा करनेका सामर्थ्य दीजिये। उसे राम राज्य-स्थापन करनेकी शक्ति दीजिये। उसकी इस शक्तिको आवश्यक सुयोग और साक्षात् आशीर्वाद दीजिये। आर्थिकर्त्तकी प्रजाकी—अलिल विश्वकी प्रजाकी जगत्प्रियन्तरासे यही प्रार्थना है। सती-सीता-सारी दुनियाँ—समरत विश्व-जनता आज वरमाल हाथमें दिये जाए है और शिवजीका धनुष तोड़कर अपने शारीरिक और मानसिक संयम शक्तिका निश्चय करानेवालेकी—भगवान् रामचन्द्रजीके अवतारकी, धर्मराज्यके स्थापनकी उत्सुकतासे बाढ़ देख रही है।



## श्रीरामायणद्वारा जगतका कल्याण

( लेखक-स्वामीजी श्रीचिदात्मानन्दजी )



सी भी ग्रन्थको परीक्षा बहिरंग और अन्तरंग दो ही प्रकारसे हुआ करती है, ग्रन्थकी रचना किस समय हुई, ग्रन्थका विषय ऐतिहासिक घटनाएँ पर निर्भर है या केवल कल्पना है, साहित्यकी दृष्टिसे उसमें कथा-कथा त्रुटियाँ और कथा-कथा महसूस हैं, कवितामें कौन-कौन-सी विशेषताएँ हैं और कौन-कौन-सी न्यूनताएँ हैं, इन सब विषयोंका परीक्षण 'बहिरंग-परीक्षा' कहलाती है। अन्तरंग परीक्षामें इन बातोंका विचार न कर समालोचकका ध्येय केवल यही रहता है कि ग्रन्थका मन, बुद्धि तथा आत्मापर कैसा प्रभाव पड़ता है, ग्रन्थके विचारसे जीवन समुद्रत होता है, या अधोगतिकी ओर चिन्तित है। उसके नायक-नायिकाओंके चरित्रोंसे चित्तमें शान्ति, उदारता तथा आत्मबलकी वृद्धि होती है अथवा पाश्विक वृत्तियाँ जागृत होती हैं, ग्रन्थकर्ताने किस ध्येयको सामने रखकर उसकी रचना की है और उसका वह उद्देश्य सफल हुआ है या नहीं? इत्यादि। रामायणकी समालोचनामें हम बहिरंग-परीक्षाको बुद्धिमान् तार्किक महानुभावोंके ऊपर छोड़कर केवल अन्तरंग-परीक्षाकी ओर ही अप्रसर होते हैं। क्योंकि हमें तो बगीचेके सुमधुर पीछिक फलोंको जाना और खिलाना ही चाचिकर है। जिन विद्वानोंको केवल पेढ़ गिनतेमें रुचि हो वह भले ही ऐसा किया करें।

इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि रामायणके पाठ करने और मनन करनेसे अद्भुत शान्ति और आमन्द प्राप्त होता है। मानसिक शिति दैवीसम्पत्तिसे परिपूर्ण हो जाती है, श्रद्धा-भक्तिकी वृद्धि होती है, तथा आत्मबल और आत्मज्ञानका उदय होने लगता है। रामायणसे हजारों जीवोंका उद्धार हुआ है

और आज भी इस अपूर्व ग्रन्थके भक्तगण भक्ति और ज्ञानका आह्वादन कर जीवन सफल कर रहे हैं। वास्तवमें श्रीमद्भगवद्गीता और रामायणादि ग्रन्थोंने ही भारतमें आध्यात्मिक विचारोंका सञ्चार कर इस देशको धार्मिक बना रखा है। ये ग्रन्थ न होते तो सम्भवतः धर्मका नितान्त लोप हो जाता, पाश्विक वृत्तियाँ बढ़ जातीं और अर्थम्-परायणताके कारण इस पवित्र भारतकी सन्तान भी विषयवासनाओंमें लम्पट होकर अङ्गामके गहरे अन्धकारमें ठोकरे जातीं फिरतीं। इन्हींके प्रतापसे भारत इस गिरी दशामें भी आज धर्मके कुछ अंगोंको पकड़े हुए हैं।

यद्यपि आज देशकी परिस्थिति बहुती शोषणीय है परन्तु जबतक रामायण-जैसे ग्रन्थोंमें हमलोगोंकी रुचि है, हम उन्हें प्रेमसे पढ़ने हैं और उनके विचारोंपर गम्भीरतासे मननकर जीवनको धर्मके संबोधित ढालनेका प्रयास करते रहते हैं तब-तक निराशाका कुछ भी कारण नहीं है। लेद इस बातका है कि आजकल बहुत से लेखक और पत्र प्रमादवश ऐसे साहित्यकी रचना कर रहे हैं, जिससे हमारे प्राचीन साहित्यके आध्यात्मिक और धार्मिक प्रभावोंको बहुत बहुत हानि पहुँच रही है। कथा बुराहोंका तथा गन्धीका नंगा चित्र लीचनेसे समाजकी किसी प्रकारकी भी गंदगी कभी भुल सकती है? कीचड़को कीचड़से धोना जैसे निष्पत्ति और व्यर्थ है वैसे ही जाति-देशके अनुचित आचार-विचारों और व्यवहारोंका शोधन उन्हींको सामने रखनेसे नितान्त असम्भव है। मन स्वभावसे ही चञ्चल और विषयोंमें रुचि रखनेवाला है, उसकी दुष्ट वासनाओंको नष्ट करनेके लिये उसके सामने उष्ण विचार और धार्मिक भाव रखने चाहिये, तभी वह धर्मपरायण हो सकता है। हमें

प्रसन्नता है कि 'कल्याण' की यह धार्मिक सेवा देशमें सराही जा रही है और इसके ग्रेमियोंकी संख्या दिनों-दिन बढ़ती जा रही है। इससे संखित होता है कि जनतामें धर्म-प्रेम अभी मौजूद है, इसलिये नैराश्यका कुछ भी भय नहीं है। निःस्वार्थ देशसेवा कभी निष्फल नहीं हुआ करती।

संस्कृतके वादिकवि महर्षि वाल्मीकि और देश-भाषाके सुविक्षयात् कवि भक्तप्रब्रव गोस्वामी नुलसीदासजीने रामायण रचकर जगत्का जो महान् कल्याण किया है, उनसे मनुष्य-जाति कभी उझण नहीं हो सकती। ऐसे महात्माओंके बलसे ही धर्म-स्तम्भ लड़ारहता है, इन्हीं जैसे विश्वोपकारक महानुभावोंके कारण भक्ति, ज्ञान और वैराग्यकी प्रभा जगत्में प्रकाश फैलाये रहती है। वह मनुष्य धन्य हैं जो इस प्रभाके सहारे अपना मार्ग ढूँढ़ लेने हैं और निर्दिष्ट स्थानपर जा पहुँचने हैं। रामायण वास्तवमें एक ऐसा अपूर्व प्रन्थ है, जिससे मानव-जीवनकी यथार्थ समुच्छित होती है, इसमें बहुती हुई भक्ति और ज्ञानकी निर्मल और कल्पयनाशिनी धारा मानविक कृष्ण-कर्कटको वहां ले जाकर आत्मा-को उज्ज्वल बना अन्तमें मुक्त कर देती है। इसमें तार्किक गोरखधन्त्रे नहीं, दाशनिक युक्तियोंके गहन जालमें बुद्धिकां फँसानेकी कोशिश नहीं। इसमें तो केवल मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामके उन आदर्श चरित्रोंका वर्णन है, जिससे साधारण बुद्धिका मनुष्य भी अपने जीवनको विशाल बना सकता है, शान्ति और सच्चा सुख प्राप्त कर सकता है एवं प्रेरणार्थमें अवगाहन कर जन्म-जन्मान्तरके मलोंको निःशोषणसे धो सकता है।

भगवान् श्रीरामने दाशनिक युक्तियोंद्वारा जगत्को उपदेश न देकर मनुष्यमात्रके सम्मुख केवल अपना सञ्चारित्र रखता है। इससे मनुष्य जीवनपर जैसा प्रभाव पड़ता है, जैसा सैकड़ों दर्शन-प्रन्थों और हजारों युक्तियोंसे भी असम्भव है। महापुरुषोंका यही महस्य है कि वे जगत्का उपकार अपने जीवनका आदर्श सामने रखकर ही किया करते हैं। उनमें

अगाधप्रेम होता है, वे परम त्यागकी मूर्चि होते हैं, धैर्य, पुरुषार्थ और आत्मबलसे पापियोंका भी उन्हें उद्धारकर परमधामके अधिकारी बना देते हैं, अपने भक्तोंको परमानन्द प्रदान करते हैं। समता ही उनका स्वभाव है; शत्रु-मित्र, पापी-पुण्यात्मा, स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध, सभीके लिये कर्णधार जन उन्हें संसार-सागरसे पार करदेते हैं। संसारमें सर्वदेखा जाता है कि मनुष्योंको सन्मार्गपर ले जाना उन्हीं सत्पुरुषोंका काम है जो बहुत वाक्-पटुता न दिखा अपने सदुपदेशोंको केवल अपने जीवनमें ही चरितार्थ कर जनताको जीता-जागता आदर्श दिखा जाते हैं। प्रायः देखा जाता है कि अनेक लोग भुरन्धर व्याख्यानों और सुन्दर रसीले लेखोंद्वारा अत्यन्त व्यानि प्राप्त कर लेते हैं परन्तु उनके परिश्रमका कोई स्थायी प्रभाव देशवासियोंपर नहीं पड़ सकता। वास्तविक चिरस्थायी प्रभाव उन्हीं महापुरुषोंने देशमें फैलाया है और सत्य धर्मकी विद्यत् उन्हीं इने-गिने महात्माओंद्वारा सञ्चरित हुई है, जो स्वयं परमत्यागी थे, निश्चयात्मिका बुद्धिवाले और आत्मनिष्ठ थे, जिन्हें अपनी व्याति और स्वार्थ-साधनासे अत्यन्त धृणा थी और जो समस्त जीवोंसे आत्मवृत् प्रेम करते थे। ऐसे महात्माओंका केवल जीवन ही जगत् कल्याणके लिये काफी है। ऐसे सत्पुरुषोंके उपदेशों और चरित्रोंमें कोई अन्तर नहीं हुआ करता।

महान् उत्कृष्ट जीवनका रहस्य त्याग ही है। जिसमें त्यागकी जितनी अधिकता है, उसके आत्माका उतना ही अधिक विकाश होता है। मोह और विषयासकि ही बन्धनके कारण हैं, यही अहान है। आत्मा वास्तवमें नित्यमुक्त, ज्ञानस्तवक्षण है। अहानके आवरणके कारण मेघाच्छादित रवि-मण्डलकी भाँति परिच्छिङ्गसा दील पड़ता है, वह आधरण वैराग्यद्वारा जितना क्षीण होता है उतना ही आत्माका प्रकाश विकसित होता जाता है। अहानान्धकारके नाश होते ही आत्माकी अप्रमेय शक्ति तथा ज्ञानका प्रकाश पर्याप्तया

प्रस्फुटित हो जाता है, फिर आत्मा और परमात्माका मेद भी नष्ट हो जाता है।

मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम नित्यमुक्त परात्पर ब्रह्म निज महिमामें स्थित जगत् के हितार्थ अपनी अचिन्त्य माया-शक्ति के द्वारा भूमण्डलपर अवतीर्ण हुए। निजानन्दमें स्थित भगवान् में प्रहण और त्यागका आभासमात्र भी नहीं हो सकता। जो स्वयं मायाधीश हैं वह किसका प्रहण करें और किसका त्याग करें। सब कुछ उन्हींकी विभूति है। वे निर्विकार, शुद्ध, पर्ण और आनन्दस्वरूप हैं। माया वा प्रकृति उन्हींकी अचिन्त्य शक्ति है। वे स्वयं ही अपने नाना कलित रूपोंमें लीला कर रहे हैं। जब-जब धर्मको ग़लानि होती है, समयानुकूल भौतिक देह धारणकर अपने भक्तोंको आनन्द और प्रेममें मग्न कर उद्धार करने हैं तथा मायाबद्ध उष्टुष्टु-वाले विषयासक पाप-निरत प्राणियोंको भी अपनी अप्रमेय दयाके कारण दण्ड देकर पापमुक्त कर परम धार्मके अधिकारी बना देते हैं। यह सब उनकी लीलामात्र है। श्रीरामाचतारमें जगत् में धर्ममर्यादा स्थापन करना उनका उद्देश्य था। परम त्याग क्या वस्तु है। इससे आत्मिक बल किनना विकसित होता है। सब अवस्थाओंमें रहने हुए भी किस प्रकार निजानन्दमें किञ्चिन्मात्र भी कमी नहीं हो सकती। समस्त जगत् के जीवोंमें प्रेम और शत्रु-मित्रोंमें सम्भाव्य कैसे रहा करता है, निर्भयता, सहनशीलता तथा धैर्य देहशारियोंमें कैसे हाने जाहिये, मातृ-पितृ-भक्ति, भ्रातृ-प्रेम तथा दामत्य-जीवनका आदर्श क्या है, भजा-रक्षक राजा का धर्म क्या है, राजा को किस तरह आसक्तिरहित उखिसे साम्राज्य-वंभव भोग करते हुए भी केवल प्रजाके हितार्थ अपनी प्यारी-से-प्यारी वस्तुको भी त्याग करनेमें किञ्चिन्मात्र भी संकोच नहीं करना जाहिये। इत्यादि सङ्घावोंको स्वकर्मोंसे चरितार्थकर दिखाना भगवान् श्रीरघुनाथजीका उद्देश्य था।

तिर्वलोंपर बलवानोंका अत्याचार होते देखना और दुष्टोंका जुल्म सहना महाल् कायरता है और एक प्रकार नपुंसकता है। ऐसा तभी होता है जब

मनुष्य इन्द्रियोंका दास और विषय-विलास-विमूळ होता है, विषयासकमें निर्भयता और मानसिक तथा शारीरिक बलका अभाव हो जाता है। ऐसा कायर मनुष्य अपने ही आत्माका नाश नहीं करता वरं अपने ऊपर अत्याचार करनेवाले प्राणीके आत्माके पतन होनेमें मुख्य सहायक बनता है। इसप्रकार कायर मनुष्य दो पापोंका भागी हो जाता है। श्रुति भी कहती है कि 'नायमात्मा बलानेन लभ्यः।' जिसमें शारीरिक, मानसिक और आत्मिक बल नहीं वह मनुष्य नितानत निकम्मा पृथग्निपर भारत्यप ही है, अपने ही इन्द्रिय-सुखोप-भोगमें लम्घ रहकर ऐसा प्राणी मनुष्यत्वका अधिकारी नहीं बन सकता। भगवद्गीतका लक्षण यही है कि वह सर्वथा निर्भय और विषयासक्ति-रहित रहे। दुष्ट बद्मोंकी प्रवृत्तिके सिवा उसे और किसीसे भी भय नहीं होता क्योंकि वह समस्त जगत् की भगवान् का रूप ही देखता है। फिर भयका कोई कारण ही नहीं रह जाता। एक मनुष्य रात-दिन चाहे भगवान् के ध्यानके सामने घण्टीबजा-बजाकर मूँहसे निमाऊँ स्नोओ-पाठ करता रहे परन्तु यदि उसमें पाप रहने हैं और उसके हृदयमें निर्भयना और दुष्ट बलवानोंके अत्याचारोंसे लोक-हितार्थ असहिष्णुता नहीं है तो उसका पूजा-पाठ केवल दोगमात्र है। ऐसे ही अद्वैत ज्ञानका अधिकारी पुरुष भी कायर नहीं हो सकता। श्रीरघुनाथजीके चरित्रसे हमें यह शिक्षा मिलती है कि दुष्टोंके अन्याययुक्तपाशकिक अत्याचारोंका प्रतोकार न करना आन्मनिष्ठ धीर पुरुषके लिये असम्भव हो जाता है। भगवानने पापात्मा दुष्ट राक्षसोंके घोर जुलमोंसे प्रजाकी रक्षा कर न्याय-राज्यकी स्थापना की थी। नानाप्रकारके परिश्रम और कष्ट सहकर भी केवल धर्म स्थापन करनेके अभिप्रायसे ही भगवान् का वह उद्योग था। राक्षसोंकी धन-सम्पत्ति तथा राज्य जीतकर भी उन्हींको बापस सौंप देना 'रघुपति राजा राम' का ही काम था। महापुरुषोंके सत् क्षमोंका यही स्वरूप है, जो कोई भी कर्म स्वार्थके उद्देश्यसे नहीं किया करते। इतना ही नहीं, वरं

श्रीभगवान् ने राजमें प्राण दे देनेपर राघणादि प्रतिपक्षियोंको सद्गति भी प्रदान की। उदारचरित धर्मानिधि प्रभुका यह कर्म उन्हींके बोय था। सुरदासजीने एक एदमें गाया है कि 'एक लोहा पूजामें राखो एक वर वधिक परो। पारस गुन अबुगुन नहिं चितवे कंचन करत खोरो ॥' पतितपावन भगवान्‌के स्पर्श-माओंसे राक्षसोंके उद्धार होनेमें कुछ आश्वर्य नहीं।

समत जगत् विशेषतः पाञ्चात्य गौरांग-देशोंके लिये भगवान् श्रीरामकी महान् उदारताका अनुकरण करना ही हितकी बात है। जबतक वर्तमान स्वार्थपरायणता और अमिमान हमारे हृष्टयोंको जकड़े हुए हैं तबतक किसी प्रकारके ऐकट कानफरेंस फलीभूत नहीं होंगे। नीन भावोंके रहने संसारमें सज्जी शान्ति नहीं फैलेगी। मायाकी प्रबल महिमा है जो मनुष्य अपने आपको सम्म्य मानते हैं, वे ही धौर स्वार्थ-वश केवल अपना ही नाश नहीं कर रहे हैं, वरं जगत्का भी अशान्तिकी अग्निमें भून रहे हैं। प्राणिमात्रसे निःस्वार्थ प्रेम बढ़ाये विना और सबके हितमें अपना हित माने विनान अपना ही कल्याण है और न जगत्का ही। श्रीरघुनाथजीके विशाल प्रेमके प्रभावने वानर, भालु आदि पशु-जातियोंको भी सहायक और मित्र बना लिया, किर मनुष्योंकी तो बात ही कौन-सी है? मनुष्यमात्र आजतक भगवान्‌के गुणोंका स्मरण करके आनन्दमें चिमोर हो जाने हैं। भारतवासी तो उनके सरियोंकी कथा सुन सुनकर अपना जीवन सफल मानते हैं और श्रीरामकी जन्म-भूमि भारत-देशमें जन्म लेनेको अपने पूर्व-जन्मोंकी सुकृतिका फल मानकर अपने जीवनको धन्य समझते हैं।

जिस महापुरुषमें अहिंसा और त्याग परिपक्ष अवस्थामें वर्तमान है, वह सदैव निर्भय तो होता ही है, उसके हृदयमें प्राणि-मात्रके प्रति अगाध प्रेम भी होता है, 'आभ्यरु सर्वभूतेषु' उसका अद्वल स्वभाव बन जाता है, वह अपने समस्त जीवनको जगत्के हितार्थ न्यौछावर कर देता है। 'परोपकाराय सतां विभूतः' ऐसे महात्मा जिस कामको आरम्भ करते हैं, तत्-मन-धन सब कुछ उसीमें लगा देते हैं, एक लक्ष्य होकर

अविच्छिन्नभावसे निष्काम कर्म करना ही उनका ध्येय होता है।

चित्तवृत्तियोंका समुचित निरोधकर एकाग्रता से कर्म करना योगीका लक्षण है। हमलोगोंके कार्य इसीलिये अधूरे रह जाते हैं कि विविध कामनाओंमें हमारी वृत्तियाँ बिखरी रहती हैं, निष्प्रयातिमिका बुद्धि नहीं होती, संशय घेरे रहते हैं, धैर्य का अभाव रहता है और इसी कारण पकाप्रता नष्ट होनेसे किसी कार्यमें सफलता नहीं होती। श्रीरघुनाथजीने जगत्के मनुष्योंको अपने सरियोंद्वारा शिक्षा देनेके अभिप्रायसे परम-त्यागका आदर्श दिखलाया है, त्यागसे ही महान् आत्मबल प्राप्त होता है, जिस आत्मबलके प्रभावसे महा कठिन कर्म भी सुगम हो जाने हैं। इसी परम त्यागसे अनासक्त-बुद्धि प्राप्त होनी है, फिर अपनी प्रियसे प्रिय वस्तु भी त्याग करना उसके लिये अन्यन्त सुलभ हो जाता है।

रघुपति श्रीरामचन्द्रका शासनकाल एक अद्भुत आदर्श है। 'रामराज्य' एक विल्यात कहावत बन गयी है। ऐसे धर्मयुक्त प्रजा-पालनका उदाहरण संसारमें शायद कहीं भी आजतक नहीं मिलता, भगवान्‌के शासनमें स्वार्थका लेशमात्र भी नहीं पाया जाता। उन्होंने अपना समस्त जीवन केवल प्रजाके हितार्थ ही समर्पण कर दिया था। श्रीराम-राज्यका वर्णन करते हुए श्रीबालमीकि मुनिने रामायणमें लिखा है कि 'रामराज्यमें सब लोग सत्य-धर्मपर भारुद् थे, सभी सुखी थे, राजा रामकी भाँति कोई किसीको सताता नहीं था। सारी प्रजा अपने-अपने वर्णाश्रम-धर्मको प्रसन्नतासे नियाहती थी, किसीकी अधर्ममें हच्छ नहीं थी, सभी सद्गुणोंसे सुशोभित थे।'

अध्यात्मरामायणका कथन है कि 'यद्यपि भगवान् राम साक्षात् शुद्ध-ब्रह्म ही थे, आत्मराम और नित्य मुक्तस्वभाव थे तथापि लोक-संग्रहार्थ असंख्य धन खर्च करके उन्होंने अश्वमेधादि अनेक यज्ञयाग किये। उनके राज्यमें कोई विधवा नहीं होती थी, किसीको सर्पादि हिंस्य जीवोंका भय नहीं था कोई भी रोगादि-से पीड़ित नहीं था। चोरी आदिसे किसीको हानि

नहीं पहुँचती थी, पाप-कर्ममें कोई भी रुचि नहीं रखता था । रामके राज्यमें पिताके जीते सन्तानकी मृत्यु नहीं होती थी । आबालवृद्ध श्रीरघुवीरको इष्टदेव मानकर उनकी पूजा करते थे । समयपर वर्षा होती थी । समस्त राज्य धन-धान्यसे भरपूर था । सबलोग स्वधर्ममें निरत और सहगुणसम्बन्ध थे । राघव भी अपनी प्रजापर पुत्रवत् प्रेम करते थे । क्या वर्तमान समयके राज्याधीश श्रीरामके शासनका अनुकरणकर संसारकी दिनों-दिन बढ़ती हुई अशान्ति और अधर्मपरायणता नष्टकर स्वयं सुखी होंगे और प्रजाओं सन्तुष्ट करेंगे ?

रघुपति राजा रामके अनेक अपर्व चरित्रोंमें श्रीजानकी महाराणीके परित्यागपर बहुत-से लोग आक्षेप करते हैं, वह लोग उनके और सारे चरित्रोंको बड़े आदर-भावसे सराहते हैं परन्तु उनकी समझमें उनका यह कर्म अत्यन्त निन्दनीय और कठोर है । पर गम्भीर विचार करनेसे सीता-परित्याग ही उनका सर्वोन्तुष्ट महान् चरित्र है । सौतेली माताकी इच्छापर पिताके बचनको सत्य करके निष्करणकर राज्य परित्याग कर बनवास स्वीकार करना इतना महसूक्षका नहीं, जितना अपनी परम प्रिया बैदेहीका परित्याग करना है । प्रजाके सन्तोषके हेतु, राज्यमें शान्ति बनाये रखनेके अभिप्रायसे भगवान् ने एक ऐसे महान् त्यागका उदाहरण विषयासक्त जीवोंके सम्मुख उपस्थित किया है जो उन जैसे महाप्रभु आत्मरामसे ही बन सकता था । प्रत्येक मनुष्य अपनी अपनी मानसिक स्थिति और दुष्किं अनुकूल ही विचार किया करता है । विषयासक्त मनुष्योंके द्वारा भगवान् का यह कर्म भयहूँ और निन्दनीय माना जाना कुछ भ्रात्यर्थकी बात नहीं, क्योंकि ऐसा परम त्याग उनकी दुष्किंकी सीमासे परे है । पर उन लोगोंको यह स्परण रखना चाहिये कि भगवान् रामचन्द्र और उग्रजननी श्रीसीता महाराणी साथारण विषयासक्त मनुष्य तो ये ही नहीं, जिन्हें छोटी-से-छोटी बस्तु भी त्यागना महा कठिन होता

है । ऐसे महान् त्यागके तारतम्यको परखनेके लिये कसौटी भी बैसी ही पवित्र होनी चाहिये जैसा कि वह अपर्व कर्म था । दोनों पति-पत्नी सांसारिक प्रलोभनोंसे विरक्त और अपनी निजी महिमा एवं निजानन्दमें परिपूर्ण थे । जिन्हें राज्य-वैभव और बनस्थ जीवन समान था । स्थितधी मनुष्यके यही तो लक्षण हैं । गीतामें कहा है—

दुःखनुद्विनमनाः सुखु विगतस्पृहः ।  
वीतराममयक्रोधः स्थितधीर्युनिकृष्टते ॥

ऐसे स्थितधी महात्मा शारीरिक वियोगको वियोग नहीं समझते । प्रजारक्षक महिपालका धर्म ही यह है कि वह अपने राज्यको निजी सम्पत्ति न मान प्रजाके हितार्थ और उसके सन्तोषके निमित्त अपना सर्वस्व समर्पण करनेसे भी न किफके । ऐसे त्यागका प्रभाव प्रजाके हृदयपर खूब ही पड़ता है । यही कारण था कि अयोध्यावासी भगवान् श्रीरामके ऊपर तन मन धन भ्योष्णावर करते थे । राज्यमें सब भाँति शान्ति और आनन्द विद्यमान था । ‘यथा राजा तथा प्रजा’ यह सोलहों आने सन्य उकि है । परित्यका श्रीजानकीजीका रघुनाथके प्रति सन्देश भी बड़े गौरवका है । वह कहती हैं—‘हे लक्ष्मण ! महाराजसे कहना कि ‘आप सर्वज्ञ हैं, इसलिये आप भलीभाँति जानते हैं कि मैं निष्पापा हूँ’ । सदैव आपकी अनुगामिनी और भक्ता हूँ । मैं जानती हूँ कि आप लोकापवाद और प्रजाके हितार्थ ही मेरा परित्याग कर रहे हैं । राजाका धर्म सब प्रकारसे प्रजाको मनुष्ट करना है । मैं अपने शरीर-मुख्यकी इतनी परवा नहीं करती, जितनी आपके सुख्याति और यशकी । खीके लिये भर्ता ही परम देवता है, वही उसका मित्र और वही उसका गुरु है, इसलिये सदैव खीके लिये पतिका कार्य पूरा करनेमें सहायक बनना परम धर्म है ।’

धन्य माता ! यह भाव तुम-जैसी नारी-रक्षके ही हो सकते हैं । तभी तो भारतवासी खो-पुरुष तुम्हारे पवित्र नामका नित्य स्मरण कर अपना जीवन सफल करते हैं ।

## भवतरणोपाय

### अवधूत और रामदासका संवाद

( लखक-रवामी जी श्रीमोलेशबाजी )

राममन्त्रापदिष्टां राममन्त्रैकजापकम् ।

रामस्य संवक्ते संवयं संक्षिणं च नमः शिवम् ॥



हीमें रामदासने सुना कि यमुना-किनारे  
एक अवधूत आये हुए हैं, वह कुछ फल  
देकर उनके दर्हनको गया तो देखा कि  
लंगोटी लगाये एक बाबला-सा मनुष्य  
दाथमें हृष्ट लिये बहुत-से लोगोंके पीछे  
लाल-जाक आँखें लिये दौड़ रहा  
है और वे सब डरके मारे भागे चले जा रहे हैं । जब लोग  
बहुत दूर निकल गये तो पगड़ा भी यमुनाजीकी तरफ  
चला गया । रामदासको उसके पास जानेकी हिम्मत नहीं  
पड़ी, वह घर लौट आया । दूसरे दिन फिर गया, अवधूत  
देतीमें यैठा हुआ कुछ गा रहा था । रामदासको गाना  
सुननेमें तो रस आया यरन्तु यमुना कुछ भी नहीं । उसने  
पास जाकर अवधूतके सामने फल रख दिये । अवधूतने  
पाँच-चार फल आप स्वा लिये और दोष रामदासको दे  
दिये, पश्चात् वह रेतामें ही लेट गया और शामलक पदा  
रहा—कुछ भी नहीं बोला, रामदास दिनभर बैठा रहा, जब  
शाम हो गयी, तो घर लौट आया । नीसरे दिन फिर  
उसी समय गया और कल सामने रखकर बैठ गया,  
अवधूतने कुछ फल आप स्वा लिये और कुछ रामदासको  
देकर खानेके लिये कहा । जब रामदास स्वा चुका तो  
अवधूत कहने लगा—

बचा ! क्या चाहता है ? रोज क्यों आता है ? मेरे  
पास धन-दौलत तो धीर है नहीं, सुद ही लंगोटी लगाये  
बैठा है । दुनिया आती है, कोई भन माँगता है, कोई  
सन्तान माँगता है, कोई दहा पूछता है, दम नाकमें आ  
गया है, तुझे भी यहि किसी संसारी वस्तुकी इच्छा हो,  
तो तुम्हत भाग जा और फिर कभी आना नहीं ।

रामदास— ( हाथ जोड़कर ) महाराज ! मैं संसारका  
कोई वस्तु आपसे नहीं माँगता, मैं तो भवसागरसे तरनेका  
उपाय आपसे पूछना चाहता हूँ, विं आप आनते हों और  
मैं उस उपायको कर सकूँ, तो हृषका बताइये ।

अवधूत एकदम लिखलिखाकर इस पदा और  
रामदासकी परीका लेनेके लिये कहने लगा—

बचा ! भवसागरसे तरना चाहता है ? सागरसे  
आजातक तो कोई तरा नहीं, यहानोंमें बड़े बड़े जहाज  
और स्टीमर आवि सागरके पार जानेको बनाये हैं, परन्तु  
पार तो कहीं है ही नहीं, फिर कोई कैसे जा सकता है ? हाँ,  
एक टापूसे दूसरे टापूको छले जाते हैं, पार तो कोई अवतक  
जाने पाया ही नहीं है । तू सागरके साथ 'भव' लिखेष्य  
लगाकर कहता है कि भवसागरसे तरना चाहता हूँ, तो बता  
भवसागरका स्वरूप क्या है और तू क्यों तरना चाहता है ?  
तुम्हें क्या दुःख है ? दूँ-दूँ लोग जिनके मुखमें दाँत नहीं,  
पेटमें आँत नहीं—मेरे पास आते हैं और भव-सागरमें  
फैसनेका ही उपाय पूछते हैं, तरनेका उपाय तो कोई  
नहीं पूछता ! तू तो अभी बचा है, कौस वर्षसे अधिक  
उम्रका नहीं जैसा, तुम्हपर अभीसे कौन-सा संकट आ  
पदा, जो भवसागरसे तरनेका उपाय पूछता है ?

### भवसागर

अवधूतका प्रश्न सुनकर रामदास भवसागरका वर्णन  
करने लगा—

महाराज ! मैंने संस्कृत नहीं पढ़ी है, योदी-सी  
हिन्दी जानता हूँ, मैंने एक पुस्तकमें भवसागरका वर्णन  
इसप्रकार पदा है और ऐसा ही मेरा अनुभव भी है कि  
यह भवसागर बाबाजीका बनाया हुआ है । जैसे सागर  
अगाध होता है, वैसे ही इस भवसागरमें आशारूपी अगाधता  
है । वह आशा इतनी गहरी है कि उसकी गहराईका पता  
ही नहीं लगता । तीनों लोकोंके प्राप्त होनेपर भी आशा  
पूर्ण नहीं होती । इन्द्र तीनों लोकोंका राजा है, वह भी  
जब किसीको तपत्या करते सुनता है तो उसका तप भंग  
करनेके लिये अप्सराएँ भेजता है या अवराकर रख्य ही  
दौकता है । इससे सिद्ध होता है कि भवसागरमें आशा  
अगाध है । समुद्रमें जल होता है, वह भवसागर मनोरथ-  
रूप जलसे पूर्ण है, जिसे देखो, किसी-न-किसी मनोरथमें  
दूब रहा है, एक मनोरथ पूर्ण हो गया तो दूसरा तैयार है,

मनोरथोंका कमी अन्त ही नहीं आता, इसलिये मनोरथोंकी जलसे ही उपमा बेना ठीक है। जैसे सागरमें तरंगें हैं, वैसे भवसागरमें तृष्णा तरंग है। कमर मुक जाती है, हाथ-पैर काम नहीं हेते, जबके-बाले निराकर करते हैं, खाटपरसे उतार लिया जाता है—मर जाता है, तिसपर तृष्णा नहीं जाती, वह तो मरे हुएके साथ सती हो जाती है। काम, क्रोध, बोझादि इस भवसागरके जबजल्नु हैं, जो इस जीवको अनेक प्रकारके कष्ट देते रहते हैं और अन्तमें मौका पाकर खा डाकते हैं। शब्दादि विषयोंका ग्रहण करना, भवसागरमें ढूब जाना है। इसप्रकार मैं सबको भवसागरमें ढूबता ही न ढूबते हों, नहीं तो सब ढूब ही जाते हैं।

जैसे समुद्रमें चौदह रत्न निकले थे, वैसे इस भवसागरमें भी चौदह रत्न हैं। सन्त महात्मा उत्तम रत्न हैं, उपासक अमृत है, कर्मी चन्द्रमा है और ज्ञानी कामधेनु है, दुष्टजन नष्ट रत्न हैं। विमुख जीव विष है और विषर्वी जीव वास्त्री ज्ञानी मन्दिरा है। बाकी रत्नोंमें सब हैं, धर्मी ऐरावत है, परिषद उच्चवृत्ता है, सुक्ष्मि अप्सरा है, दानी कल्पवृक्ष है, वशावान् धन्वन्तरि है, भ्रुवादि शंख हैं, अनेक देशके राजा मणि हैं, मतपदों आचार्य चनुप है और पतिवता वस्त्री है। महाराज ! इस भयङ्कर भवसागरको देखकर भय लगता है, इसलिये आपसे प्रार्थना करता हूँ कि भवसागरमें निकालकर मुझे सुख-शान्तिका स्थान दिखाए। इसमें मैं किसीको सुखी नहीं देखता, कोई कामके वश हुआ द्वारा कामी है, अनेक बनकर नाचता है, कोई क्रोधके वश आप जलता है और दूसरोंको भी जलाता है, कोई खोभमें देसा अन्धा हो रहा है कि उसको हिताहित सूक्ष्मता ही नहीं। कवि, परिषद छद्मवेषाले भी थोड़े-से खनके लोभसे कुत्सोंके समान लकड़े और अपनी हँसी करते हुए देखनेमें आते हैं। अधिक क्या कहूँ, आप सब जानते ही हैं, इसलिये भवसागरसे पार होनेका उपाय पूछता फिरता है। बहुत-से स्थानोंपर टकरे ला तुका है, यदि आप संसारसे तरनेका उपाय जानते हों और सुझे अधिकारी समझते हों तो बताइये !

रामदासकी कहानी सुनकर अवधूत निर विज्ञानिकाकर लूँ हँसा और कहने लगा—वाह ! भाई वाह ! तू तो भवसागरका अच्छा रूपक बांधा ! गोस्वामीजीकी रामायण-में एक सोना है—

बंदों विष-पद-रेनु, भवसागर जेहि कीन्ह जहै ।  
संत सुधा ससि धेनु, प्रकट सून विष बाल्नी ॥

इस सोरठेका भाव तूने बड़ी उत्तम रीतिसे दिखाया है। सचमुच यह भवसागर तेरे कथनानुसार ही भयङ्कर है, जो इस भयंकर भवसागरसे पार जानेका उपाय लोकते हैं, और इससे पार हो जाते हैं, उम्हीका जन्म सार्थक है, शेष तो सब ज्ञानाके मतभाग हैं और ज्ञानाको दुःख देनेके लिये ही उन्होंने जन्म लिया है ! तेरे ज्ञान-प्रिता धन्व हैं जिन्होंने तुम्हें सुपात्र सुखदि पुष्करों जन्म दिया। भाई ! रामायणका पाठ किया कर, श्रेमधूर्णक रघुनाथजीके विष्व गुणोंका गान किया कर और रघुनाथजीके 'राम' नामका आप किया कर, बस, निश्चय जान, तेरा देहा पार है !

रामदास—( प्रसन्न होकर ) महाराज ! कृष्णा राम-नामका प्रभाव सुनाइये !

### राम-नामका प्रभाव

अवधूत—भाई ! राम-नामका प्रभाव तो वेद, शास्त्र, मुनि, देवता आदि कोई भी नहीं जानते, केवल एक राम ही जानते हैं। महारामायणमें शिवर्जीके वचन हैं—

बंदा सर्वं तथा शास्त्रा मुनयो निर्जरार्थमाः ।

नामः प्रमावस्थयुग्रं ते न जानन्ति मुन्वते ॥

राम एवाभिज्ञानाति इत्स्मं नामर्थमद्भुतम् ।

ईष्टदामि नामर्थं देवि तस्यानुकृपया ॥

इससे यिदि है कि नामका प्रभाव सम्पूर्णस्पर्शे कोई नहीं जानता। जब जानता ही नहीं तो कोई कह किसप्रकार सकता है ? रघुनाथजी राम-नामका प्रभाव जानने हैं किन्तु वे कह नहीं सकते क्योंकि शिष्पुरुष तो अपनी बदाई सुनकर ही सकुच जाते हैं। जो सुनकर ही सकुच जायें, वह अपनी बदाई अपने सुखसे किसप्रकार करें, इसलिये राम-नामका प्रभाव रघुनाथजी भी कह नहीं सकते ! यदि कोई रामनामका किञ्चित् प्रभाव कह सकता है तो वह भी अरामकी भक्ति और कृपासे ही ! गोस्वामीजीने राम-नामका प्रभाव बहुत कुछ कहा है, उसीमेंसे विष्वाश सुनाता हैं। गोस्वामीजी कहते हैं—

बंदों रामनाम रघुवरको । हंतु कृमानु भानु हिमकरको ॥

रघुवरका राम-नाम जगतका पोषण करता है क्योंकि अग्नि, सूर्य और चन्द्रमा जगतके पोषण करनेवाले हैं, जैसे जगत् प्रथम तो भोजनको पकाता है, फिर भोजनको पकाकर देहका पोषण करता है, शीतमें सब अग्निसे तापते हैं, आहुति आदि देनेसे अग्नि सब प्रकारका कल देता है, रातके समय

वह प्रकाश करता है, इत्यादि अनेक प्रकारने असि पोषण करता है। सूर्य अँधेरेको नह करता है, उत्तरा देकर भूमिको शोधता है, जब उत्तरा कर आजादि अनेक ओरपि उत्पत्त करता है, पाले और जलकी सर्वोंको दूर करता है, इत्यादि अनेक प्रकारसे भानु पोषण करता है। चन्द्रमा से असूत झरता है, उससे आँधियाँ पुष्ट होती हैं। चन्द्रमा शीतलता देकर ताप दूर करता है, प्रकाशसे आगन्द देता है। इनप्रकार असि, भानु और चन्द्रमा जगत्के पोषण करताएँ हैं। इन तीनोंका कारण रामनाम है अर्थात् रकार अग्निका बीज है वही कृशानुके रेक है, इसीसे अग्निमें तेज है। आकार भानुका वीर्य है, वह भानुके अन्दर भक्तामें अकार है, इसलिये भानुमें प्रकाश-सापादि प्रताप है। भक्तार चन्द्रमाका बीज है, वही हिंमकरके अन्दर मकार है, इसीसे चन्द्रमामें शीतलतादि गुण हैं। यह स्थूलरूप है। सूर्यरूपसे इन तीनोंका रामनामके अन्दर वास है, जब कोई रामनाम अभरण करता है, तो उसके चित्तमें तीनोंका प्रभाव प्रकट हो आता है। अर्थात् अग्निके बीज 'र'कारके प्रभावसे भनके मोह आदि मैल और शुभाशुभ कर्म जब जाने हैं, भानुके बीज 'अ'कारके प्रभावसे अविद्यारूप अँधेरा दूर हो जाता है और वेद-शास्त्रादिके अर्थका प्रकाश होता है पूर्व चन्द्रमा की बीज 'म'कार तीनों तापोंको दूरकर इत्यमें शीतलता कर देता है। विष्वरूपसे 'र'कार वैराग्यका हेतु है अँधोंकि शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धादि इन्द्रियोंके विषयोंकी चाहने काम-क्रोधादि विकारों सहित संसारके सुखके हेतु मन रागद्वेषादि व्यापारमें फैला है, 'र'कार इस व्यापारको छुड़ाकर मनको शुद्ध करके स्वतन्त्र कर देता है। 'अ'कार जानका हेतु है, अँधोंकि अकार जड़-वैतन्यकी प्रनिधिको भेदन करता है अर्थात् इंधरका अंश जीव है और प्रकृतिका अंश मन है। जीव मनके अधीन होकर अपने स्वरूपको भूलकर मंसारमें फैल गया है इससे देहको ही सज्जा मानने लगा है, 'अ'कार इस भ्रमको मिटाकर आमदृष्टिका प्रकाश करता है, तब जीवको अपने स्वरूपका ज्ञान होता है, जोकि सदा स्वतन्त्र और आनन्दराशि है। 'म'कार भक्तिका हेतु है, समस्त आशा-भरोसा छोड़कर प्रभुकी शुद्ध शरणागतिका नाम भक्ति है, इस भक्तिको 'म'कार ग्रास कराना है। कहा है—

'र'कारहतुवैराग्यं परमं यत् कथयते ।

'अ'कारो जानहेतुश्च 'म'कारो भक्तिहेतुकम् ॥

'र'कार वैराग्यद्वारा परखोक्तमें और अग्निद्वारा बोक्तमें पोषण करता है, 'अ'कार जानद्वारा परखोक्तमें और भानुद्वारा लोक्तमें पोषण करता है और 'म'कार भक्तिद्वारा परखोक्तमें और चन्द्रमाद्वारा बोक्तमें सुख देता है, इस प्रकार श्री रामनाम जीवोंका लोक और परखोक दोनोंमें जालन, पालन और पोषण करता है, यह रामनामका प्रथम अर्थ है।

फिर गोस्वामीजी कहते हैं—

विषि-हरि-हरमय बद्र प्रानसे । अगुन अनूपम गुर्वनिधानसे ।

श्रीराम-नामसे प्रवाव सिद्ध होता है, जैसा कि महा-रामायणमें कहा है—

'र'कार गुरु राकारस्तथा वर्णविपर्ययः ।

'म'कार व्यञ्जनश्चैव प्रणवं चामिनीयते ॥

प्रश्नावमें अकार, उकार और भक्तार तीन वर्ण हैं, ये तीनों वर्ण विषि-हरि-हरमय हैं, इनमें अकार सतेगुणरूप है, इससे विष्णु उत्पन्न होकर सब ब्रह्माण्डोंका पालन करते हैं; उकार रजोगुणरूप है, इससे अग्न उत्पन्न होकर ब्रह्माण्डोंको उत्पन्न करते हैं और भक्तार तमोगुणरूप है, इससे रुद्र उत्पन्न होकर ब्रह्माण्डोंका नाश करते हैं। यही बात महारामायणमें कही है—

अकारः प्रणवं सत्त्वमुकारश्च रजेगुणः ।

तमोहरु भक्ताः स्यात् त्यंहिकारमुद्भवे ॥

प्रियं भगवतो रूपं त्रिविधो जागतेऽपि च ।

तिगुर्विधिरहं चिव त्रयोगुणविधारिणः ॥

प्रश्नके दो रूप हैं, एक अगुण और दूसरा सगुण। इनमें अगुण अनुपम यानी रामारहित है और सगुण गुणविधान है यानी अनेक द्विष्य गुणसम्बन्ध हैं, अगुण भ्रश्वका रूप 'अ' है और सगुण भ्रश्वका रूप 'ओं' है, इस 'ओं'में जैसे बीजमें बृह होता है, इसी प्रकार सर्व जगत् विद्यमान है। यह रामनामका संख्येसे दूसरा अर्थ है।

फिर गोस्वामीजी कहते हैं—

महामंत्रं जेहि जपत महेसु । काली-मुकि-हेतु उपदेसु ॥

रामनाम महामन्त्ररूप है। इस महामन्त्रको देवोंमें शेष, योगी, जानी और भक्तोंमें अप्रणीय, नाय-वेदके आचार्य और प्रश्नात्मकर्ता महेश जपते हैं, इसलिये रामनाम सदोषपरि शेष है। इस प्रभावसे ही शिवजी अजर अमर है,

इसलिये वे कालकूटको पान करके पचा गये थे, यह बात गोप्य है। इसी मन्त्रका कानमें उषदेश करके शिवजी काशीमें पशु-पशी आदिको मुक्त कर देते हैं। यह बात रामतापिनी उपनिषदमें प्रसिद्ध है, इसप्रकार राम-नामके अपसे मुक्त प्राप्त होती है, यह तीसरा अर्थ है।

राम-नामका पूजन कर गणेशजी सबसे प्रथम पूज्य हुए, यानी राम-नामके अन्दर सब लगाएँ है, यह चौथे अर्थ है। बालमीकि उल्टा नाम जपकर सब पापोंसे मुक्त हो गये, इसलिये राम-नाम उल्टा-सीधा किसी प्रकार भी अपनेसे वह अनेक अन्योंके पापोंको नहकर अनगतके निकट पहुँचाता है, यह पाँचवाँ अर्थ है। राम-नाम सहस्र नामोंके समान है, यह छठा अर्थ है। इसप्रकार हे भावुक ! गोक्ष्मामीजीने राम-नामका बहुत कुछ प्रभाव बर्णन किया है, उसका पूरा बर्णन करने और समझानेको बहुत समय चाहिये, सारांश यह कि राम-नामके अपसे सब कुछ प्राप्त हो सकता है।

सिद्धियोंकी प्राप्ति-हे भावुक ! जिनको सिद्धि प्राप्त करनेकी इच्छा है, वे साथक अवश्य, नेत्रादि इन्द्रियोंको विषयोंसे रोककर और मन, दुर्दि, चित्त तथा अहंकारकी दृष्टि सर्वोच्चकर एकाग्र होकर राम-नाम जपने हैं, और अग्निमादि सिद्धियोंको प्राप्त करके सिद्ध हो जाने हैं। जैसे (१) रामरूपमें मन लगाकर नाम जपनेसे थोड़े कालमें त्रिकालजन्म सिद्धि प्राप्त होती है यानी तीनों कालका ज्ञान हो जाता है (२) फिर कुछ समय पांच अद्वन्द्व सिद्धि प्राप्त होती है यानी शातोष्ण नहीं व्यापता। (३) तदनन्दन कुछ काल बीतनेपर चित्ताद्यनिष्ठाता-सिद्धि मिलती है अर्थात् दूसरे के चित्तकी जान जानी जा सकती है। (४) फिर योद्धे दिनोंमें 'परम्पराङ्गेश्वर विषादीनां प्रतिष्ठितं' सिद्धि मिलती है अर्थात् अग्निआदिसे बाधा नहीं होती (५) फिर कुछ कालमें अपराजिता-सिद्धि प्राप्त होती है यानी किसीसे भी पराजय नहीं होती इत्यादि कुछ सिद्धियाँ राम-नामके अपसे स्वाभाविक प्राप्त हो जाती हैं।

(१) श्रीरामरूपमें भग्न लगाकर नाम जपनेसे योद्धे ही दिनोंमें चूजा-पिण्डासा, शोक-मोह, अन्म-मरणादि पहुँची ही नाश हो जाती है। (२) अहायहनादमें अवश्य देह, रामरूपमें मन लगाकर नाम जपनेसे नूरअवश्य-सिद्धि प्राप्त होती है यानी दूरकी बात सुनी जा सकती है (३) सूर्यतेजमें रामरूप स्थित करके, उसमें मनहृषि लगाकर नाम जपनेसे दूरदर्शनसिद्धि प्राप्त होती है अर्थात् दूरकी वस्तु दीखने लगती है (४) एवतमें रामरूप स्थित करके

उसमें भग्न लगाकर नाम जपनेसे मनोज्ञव-सिद्धि मिलती है, यानी मनके समाज देहकी गति हो जाती है (५) अनन्तर मनोरथमें रामरूप स्थित करके उसमें भग्न लगाकर नाम जपनेसे मनोरथ-सिद्धि प्राप्त होती है यानी मनचाही यस्तु प्राप्त हो जाती है (६) सब देहोंमें स्थित आत्मामें रामरूप स्थित करके, उसमें भग्न लगाकर नाम जपनेसे परकाय-प्रवेश-सिद्धि प्राप्त हो जाती है यानी वह दूसरी देहमें प्रवेश करनेको समर्थ हो सकता है (७) प्राणायामकी विधिसे ब्रह्मरन्ध्रमें प्राण चढ़ाकर, वहाँ रामरूपमें मन लगाकर नाम जपनेसे स्वप्नस्व-मृत्यु-सिद्धि प्राप्त होती है। (८) देवसत्त्वसहित रामरूपमें भग्न लगाकर नाम जपनेसे देवांगना-क्षीरा-सिद्धि प्राप्त होती है (९) सत्य संकल्पमय रामरूपमें भग्न लगाकर नाम जपनेसे यथासंकल्प-सिद्धि प्राप्त होती है। (१०) अर्थात् आज्ञामय प्रभुमें भग्न लगाकर नाम जपनेसे आज्ञा-अप्रतिहता-सिद्धि प्राप्त हो जाती है यानी उसकी आज्ञाका कभी भंग नहीं हो सकता। ये दश सिद्धियाँ सामान्य गुण-सम्बन्धी हैं।

(१) शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध अन्माकाशोंमें रामरूप स्थित करके, उसमें मन लगाकर नाम जपनेसे अग्निमा-सिद्धि प्राप्त होती है यानी शरीर अशुभाज हो सकता है। (२) ज्ञानमय महात्मकमें रामरूप स्थित करके उसमें भग्न लगाकर नाम जपनेसे महिमा-सिद्धि प्राप्त होती है देह स्थूल हो सकता है। (३) आकाशादि पञ्चमूलोंमें रामरूप स्थित करके, उसमें भग्न लगाकर नाम जपनेसे ज्ञानमा-सिद्धि प्राप्त होती है, देह लघु हो सकता है। (४) सारिक अहंकारमय रामरूपमें भग्न लगाकर नाम जपनेसे प्राप्ति-सिद्धि प्राप्त होती है यानी इन्द्रिय और देहसहित पराये देहमें प्रवेश किया जा सकता है। (५) क्षिवा-महसत्त्वमय रामरूपमें भग्न लगाकर नाम जपनेसे प्रकाश-सिद्धि प्राप्त होती है यानी भूमि आदिके गुप्त एवार्थ विलासी देने लगते हैं। (६) त्रिगुण-माया-प्रेरक कालमय रामरूपमें भग्न लगाकर नाम जपनेसे ईशता-सिद्धि प्राप्त होती है यानी ईशवरी-शक्ति प्रेरणादि प्राप्त हो सकती है। (७) तुरीय अवस्थामय रामरूपमें भग्न लगाकर नाम जपनेसे, बलिता-सिद्धि प्राप्त होती है यानी भग्न विषदोंमें विजय हो जाता है। (८) अगुणमय रामरूपमें भग्न लगाकर नाम जपनेसे अवश्यति-सिद्धि प्राप्त होती है, यानी इच्छामात्रसे सर्वाङ्ग सुख प्राप्त होते हैं। इत्यादि यादों सिद्धिर्वा अगवत्-प्रधान हैं, सबसे अह ईश-सिद्धि

है, परिचित रामरूपमें मन कलाकर नाम अपनेसे सब सिद्धियाँ प्राप्त हो सकती हैं परन्तु आजकल तो विषय-सुख-सिद्धि ही परम सिद्धि मानी जाती है। इसी सिद्धिमें सब जीव स्वाभाविक खग रहे हैं, तब अन्य सिद्धियोंको कौन पूछे ?

भगवत्के बार प्रकारके भक्त हैं—आर्त, आर्थि, विकाशु और ज्ञानी, इन आरोंके नाम आधार है, इनमें ज्ञानी भक्त भगवान्नको विशेष प्लारा है। यद्यपि आरों युगोंमें राम-नामका प्रभाव समान ही है, किंतु भी कलियुगमें राम-नामका प्रभाव विशेष है, क्योंकि कलियुगमें राम-नामके विवाद अन्य उपाय नहीं हैं। कलियुगमें राम-नामक कल्पवृत्त है, जानी कल्पवृत्तके समान अर्थ, अर्थ, काम और मोक्ष सब मनोरथ पूर्ण करनेवाला है। पापीमें पापी भी रामनामके प्रभावसे शुद्ध होकर भगवन्-सम्बन्धी हो जाता है। इसविषये हे भावुक ! मेरा यही कहना है कि तनसे, मनसे, ब्रह्मसे राम-नामकी शरण लेनेपर भवसागरमें पार होनेमें कुछ भी सम्भेद नहीं है।

ग्रन्थान-भगवन् ! आपने अभी कहा कि रामरूपमें मन लगाकर नाम अपनेसे सब सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। कृष्ण रामरूपका भी किञ्चित् परिचय बीजिये, क्योंकि परिचय विज्ञानीति नहीं होती, यह अटल नियम है।

अद्यन्त (प्रसन्न होकर) भाई! राम-रूपका गोस्वामीजी-ने हमप्रकार वर्णन किया है, ज्ञान देकर सुन—

### रामका रूप

गन्मागावशदर्ति विश्वमिलं ब्रह्मादिदेवः पुरा  
गत्सच्चाद्मूर्त्यु भूति मकलं रजा यथाहेर्भवः ।  
यत्पादप्राप्नेनेव हि भवत्प्रभावस्तीर्त्यवतां  
वन्देऽहं तपसांकाराणपरं रामस्त्वमीशं हरिम् ॥

गोस्वामीजी कहते हैं कि 'जो रूप भीगम करके आकृत्यानी प्रसिद्ध है, उस रूपकी में बहुमा करता है, वह भीरामरूप कैसा है कि अपेक्षा कारणसे परे है। जोकोकी उत्तरतिका आदि देतु प्रकृति है, उस प्रकृतिको कारण कहते हैं : कारणरूप प्रकृतिके संगसे आत्मा अलाप्ती आत्मदृष्टि भूक्तकर जीव हो जाता। जब जीव ज्ञानमें वद्ध हुआ, तब असत् बुद्धि दुर्दृष्टि दुर्दृष्टि, तब जीव असद् ज्ञानमें वैष्ण गता, जब जीव असत् ज्ञानमें वैष्ण, तब अहंकार हुआ, अहंकार होनेसे जीवमें विषमता आयी। साविक, राजस

और तामस भेदसे अहंकार तीन प्रकारका है। साविक अहंकारसे दश हिन्दियाँ और मन हुआ, राजस अहंकारसे हिन्दियोंके वेतन हुए और तामस अहंकारसे शब्द, स्वर, रूप, रस, गन्ध सूक्ष्मभूत हुए। सूक्ष्मभूतोंसे, कमसे आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी पाँच स्थूलभूत हुए। इसप्रकार स्थूलशरीर हुआ। विषय-संगते काम हुआ, कामनाका नाश होनेसे क्रोध हुआ, क्रोधसे मोह हुआ, मोहात्म होनेसे बुद्धि नष्ट हुई, तब जीव विषयी हो गया। इस प्रकार अशेषकारण जो आदि प्रकृति है, डससे श्रीरामरूप परे हैं अर्थात् श्रीरामरूप, ज्ञानशूलरूप स्वतन्त्र, सदा अचल, एकरत है, प्रकृतिकेगुण श्रीरामरूपको कूते तक नहीं है। कहा है—

समो न गच्छति न तिष्ठति नानु दोन्न-  
न्याकांक्षते त्वजनि नो न करेति किंविन् ।  
आनन्दमूर्तिर्चतुः परिणामहीनो ।  
मायागुणाननुगो हि तथा विदाति ॥

अर्थात् श्रीरामरूप न चलता है, न बैठता है, न किसीके लिये शोक करता है, न आकंक्षा करता है, न तजता है और न कुछ करता है, वह आनन्दमूर्ति है, अचल है, परिणामहीन है और मायाके गुणोंमें अनुगत हुआ-सा प्रतीत होता है। सब रूपोंसे परे होनेसे श्रीरामरूप स्वतन्त्र है, क्योंकि श्रीरामकी हृष्टासे अनेक भगवत्रूप जोकोका कार्य कर रहे हैं। जैसा कि कहा है—

संभु विरंचि विष्णु भगवानः । उपजहि ज्ञामु असते नामा ॥

सदाशिवसंहितामें भी इसी प्रकार कहा है—

महाग्रन्थमुर्महामाया महाविष्णुद्व शक्तयः ।

कांलम समनुप्राप्ता राघवं पीरचिन्तयन ॥

कृम्पुराणमें कहा है—

मन्त्रः नूमो वराहो नरहरिरतुलो वामनो जामदग्निः

स भ्राता कंसशत्रु करुणमदवपुर्लक्षिविद्वसनद्वच ।

पते चायेष सर्वं तरिङ्कुरुभवो यस्य जाता: कुलाशैः

तं व्याप्तं ब्रह्मतेजं विमलगुणमयं गानवन्द्रं नमामि ॥

श्रुतिमें कहा है—'यस्यांशेनैव नद्वाविष्णुमेहेभरा अदि जाता महाविष्णुर्यस्य विष्णुगुणांश्च स एव कार्यकारणयोः परः परम-पुरुषो रामो राशरथो वधुः' श्रीरघुनाथजीकी मायाके ब्रह्ममें अस्तित्व विषय यानी सबूर्ध्य संसार है। जीव यह है कि जितने विषयी जीव हैं और ज्ञानादि जितने देवता यानी

मुक्त जीव है और जितने असुख यानी किसुख जीव है वे सब श्रीरामकी मायाके बरमें हैं। श्रीरामकी आशासे श्री, भू-स्तीका आदि तैतीस शक्तियाँ कोकोंका सब कार्य करती हैं, जैसे कि महारामायणमें कहा है—

'स्मे स्वे कार्यं गतः सर्वाः शक्तयः शीणित्रिशतीः ।  
यस्मिन्काले भवेद्यासां सीतारामानुशासनम् ।  
तस्मिन्कालेषु कुर्वन्ते सर्वेकार्थमशयतः ॥'

इन रघुवायजीकी सत्यतासे मृषा जगत् भी मोहकी सहायतासे निरक्षय करके सत्य ही भासता है। जैसे रज्जुमें तमकी सहायतासे सर्व भासता है इसी प्रकार कार्यस्थल मायाके अन्तभूत भगवत्की सत्यतासे संसार सत्य भासता है। यह संसार ऐसा अथाह है कि ब्रह्मादि भी इसमें पहे हुए दूँक रहे हैं; जो कोई संसारसे पार होना चाहे, उसके लिये श्रीरघुनाथजीके पादारविन्द जहाजरूप है। यानी श्रीरघुनाथजीके घरवारविन्दोंकी शरणागति विना जीवका कल्याण नहीं होता। जैसे कि कहा है—

हिमंते अनलं प्रकट बहु होई । राम-विमुख सुख पाव न कोई ॥

यही बात सन्तोषावधानमें कही है—

विना नक्ति न मुकिश्च नुजमुत्याय चोन्यंते ।  
यूयं अन्या महामाणा येषां प्रीतिश्च राधेऽ ॥

मैं ऐसे श्रीरघुनाथजीको नमस्कार करता हूँ।

हे भावुक ! उपर्युक्त कथनका सारांश यह है कि श्रीराम शुद्ध, तुद्ध, नित्यसुक्ष, सचिदानन्दस्वरूप हैं, वे ही लोकोदारके लिये नर-रूप धारण करके अनेक प्रकारके असुख चरित्र करते हैं, जिनका गान और अवण करनेमें पापोंसे पार्णा जीव भी शुद्ध होकर भगवत्को प्राप्त हो जाते हैं।

रामदास—महाराज ! रामायणका महत्व भी हृषया सुनाइये !

### रामायणका महत्व

अवधूत—माई ! जब परापर श्रीरामने रघुनन्दनरूपसे अवतार किया तभी वेदोंने भी वाल्मीकिहारा रामायणरूपसे अवतार किया, इसीसे रामायणका महत्व प्रकट है। रामायणके वक्ता-ओता दोनों शिव-या-रंती, काकमुश्युन्दि-गल्द, वाङ्मय-भरहाज, गोस्वामीर्जु के गुह, गोस्वामीजी और उनके शिष्य सभी ज्ञाननिधि और ज्ञातशेष हैं, तब रामायणका कितना महत्व है, वह स्पष्ट ही है। इस

रामायणके प्रभावसे लाखों-करोड़ों जीवोंका कल्याण हो रुका है, हो रहा है और आगे भी होता रहेगा ! अधिक क्या कहूँ, भाई ! मैं तो रामायणको भाषाका वेद मानता हूँ। वेदमें कर्म, उपासना और ज्ञान सीम काश्य हैं, इन्हीं सीमोंका रामायणमें विस्तारसे बर्णन है। वेद ग्राहीन संस्कृत-ज्ञाणीमें होनेसे सबको सुखम नहीं है और रामायण से भाषा होनेसे सबको सुखम है, वह रामायणकी विशेषता है ! इसके सिवा ब्रह्म, ब्रह्मायद, यामन, ब्रह्म-वैष्णव, मार्कंदेय, भविष्य राजसीपुत्राण; नारदोय, विष्णु, वाराह, गल्द, पश्च, भगवत् सात्यिकी पुराण और भीम, कूर्म, लिंग, शिव, स्कन्द, अष्टि तामसी पुराण एवं सनात्कुमार, नरसिंह, स्कन्द, कुर्वासा, बाल्यर्ण, नारद, कपिल, यानव, ब्रह्मायद, भार्गव, गल्द, महेश्वर, काञ्जिका, साम्ब, सूर्य, विष्णु, पाराशरी और देवी भगवत् उपपुराण तथा अन्य सब शास्त्रोंका सम्मत रामायणमें बर्णन है। इसलिये इसकी जितनी महिमा बर्णन की जाय, उतनी थोड़ी है। इसके पहनेसे अन्तःकरण निर्मल होकर भगवत्के सम्मुख होकर सुखी हो जाता है। भाव यह है कि अन्तःकरण चार हैं। वस्तुमें संशय होना कि यह है अथवा नहीं इसका नाम मन है, वस्तुमें विश्वय होना तुद्धि है, वस्तुका स्मरण करना चित्त है और जब वस्तुमें ऐसा आप्रह हो कि यह ऐसी ही है, दूसरी नहीं है, इसको अभिमान कहते हैं। विषयोंकी बाह्यसे अनेक प्रकारके संकल्प-विकल्प स्वप्न जो कुँख है, वह पुराणोंमें मन लगानेसे और कथा-दर्शनमें अहंकार लगानेसे अन्तःकरण निर्मल हो जाता है। अन्तःकरण निर्मल होने ही जीव भगवत्के सम्मुख होता है और भगवत्के सम्मुख होते ही जीवके करोड़ों जन्मके दरपारंग लिये हुए पाप नह जाते हैं। पापोंसे सबं प्रकारका दुःख है, पाप नह होने ही जीव सुखी हो जाता है। इतनेहाँमें रामायणका महत्व समझ ले।

अवधूतका इतना उपरेश सुनकर रामदास अवधूतके प्रश्नाय करके वरको जवाब द्याया, क्योंकि सन्ध्या हो गई थी फिर रातके दश म्यारह बजेतक अवधूतके कथन लिये हुए वाक्योंका विचार करता रहा। तदनन्तर सो गया। दूसरे दिन उसी समय फिर अवधूतके पास गया, तो वहाँ उसे न पाया। इधर-उधर दैनेसे कहीं बसा न जागा, रमते राम थे, कहीं रम गये। रामदासको बहुत शोक हुआ,

परन्तु उसका समाधान तो ही हुका था, इसलिये उसने नियमदूर्घट रामायणके पाठ करनेका, राम-नाम वर्णनेका और सचिदानन्द राम-रूपके चिन्तन करनेका इन शब्द फरजिया !

राम-नामके विरन्तर अभ्याससे कुछ कालमें रामदासको राम-नाम स्वाभाविक हो गया और स्वभावमें भी उसके चिन्तमें राम-नामकी धारा बहने लगी। इसमें, प्राण-कायुमें स्थिररूप राम-नाम नृत्य करने लगा और उसके देहस्थ-परमायु राम-नामय हो गये ! सागर और सागर-गामिनी नदियाँ राम-नाम गाने लगीं, कल-हंस मनुष-व्यनिसे राम-नामका कौतन करने लगे ! आकाशचारी पक्षी राम-नाम कूजने लगे और जगतका प्राणस्पवायु राम-नामका धोप करने लगा ! विश्वको माता प्रकृति राम-नामका कौतन करने लगी, अग्नि राम-नाममय हो गया और राम-नाम जगन्मय हो गया ! इसप्रकार रामनामके प्रभावसे रामदास-का रामग्रेमकी प्राप्ति हुई और वह राममें लीन होकर सर्वमय राम ही ही गया ! वह यमराजके भयको निवारण करनेकाले श्रीरामरूपका ध्यान करने लगा और बाहर-भातर परम शुद्धिको देनेकाले श्रीरामके गुणोंका मनन करने लगा । पत्येक प्राणीमें स्थित श्रीरामको नमन करने लगा और सर्वत्र, सब वस्तुओंमें श्रीरामका ही दर्शन करने लगा ।

इसप्रकार बड़भागी रामदास बाहरविश्वमें सचिदानन्द-वन कौसल्या-नन्दनका ही दर्शन करने लगा ! वह चन्द्रमण्डल-में आनन्द-सागर, नटनागर, मुनि-यज्ञ-रथके श्रीरामको हँसते हुए देखता था । गङ्गा-नदीके जलमें लीलामय, सौम्यस्वरूप अहल्योदारके श्रीरामको नृत्य करते देखता था । मास्तमें जन-रजन भूमि-भञ्जन श्रीरामको दीक्षने देखता था । पर्वतके जलके झरनोंमें मायावर, सौता-वरको गान करते देखता था । बालकोंकी कीड़ामें निशादके सखा श्रीरामको खेजते देखता था । मार्गमें चलते हुए पथिकोंमें चित्रकूट-विहारी श्रीरामको गमन करते देखता था । सूर्यमें खरदूख्या-नाशक श्रीरामको प्रकाश करते देखता था । रोगीके रोगमें रोगके नाश करनेकाले जटायुके आदकारी श्रीरामको शान्ति देते हुए देखता था । सब कांपोंके शासमें सबके जीवन मुश्किलेके मिश्रको जीवन देते हुए देखता था । सब प्राणियोंके शरीरोंके रक्तमें लोक-स्वामा बालिके मुक्तिदाता श्रीरामको बहते हुए देखता था । जिस देवका थोड़ी मूर्धा है, जिसके बन्द्यादित्य छोड़ने हैं, जिसके चरण भरती हैं, ऐसे सर्वके ओचन रामधारि

श्रीरामको ब्रह्माचरणमें परिपूर्ण देखता था ! जिस देवके बठरमें ब्रह्माचरण है, उस परमात्मा, परब्रह्म, अप्योच्चापति, सर्वान्तर्यामी विभुक्तो सर्वमें देखता था ! अनन्त, अपराजित, अन्तर्वाङ्गपूर्ण, अन्तर्बाह्यशून्य, चिन्मय आनन्दरूपको ही सर्वदा सर्वत्र देखता था ! सब इन्द्रियोंसे, आनन्दायतन श्रीरामको देखता था, सब इन्द्रियोंसे रसनायक रसालको नित्य पीता था ! पीता हुआ ही जगत्के आह्वादकारक श्रीरामको देखता था और देखता हुआ ही, श्रीराम-आनन्दरूप असृतको सदा पीता था ! सर्व अंगोंसे निरन्तर परमेश्वर श्रीरामका सेवन करता था, प्रथेक प्राणीमें विश्वरूप श्रीरामका दर्शन करता था ! सर्व मंगलोंके मंगल, सर्व यात्रोंसे यावन, आनन्दसागरमें मम होकर अतिशोभन श्रीरामको निहारता था ! इसप्रकार संदर्भन करनेमें अव्यय, सचिदानन्द, परिपूर्ण, शान्त, परमात्मा श्रीराममें चक्रचर विश्व लीन होगया और बड़भागी रामदास समाधिमें श्रीरामके अनुग्रहसे परब्रह्म श्रीरामको जानकर श्रीरामका अनुसन्धान करता हुआ, गृथिवीको पवित्र करता हुआ विचरने लगा ।

रे भोला ! यदि रामदासके चरित्रको पढ़कर भी तू भूला ही रहा, चेतमें न आया, तो क्य आयगा ? भाई ! चेत जा ! प्रयत्नपूर्वक श्रीरामके ध्यानयोगका आधय कर, ध्यानयोगके प्रसादसे मनुष्य दुसर भायाको तर जाता है । जब ध्येयमें लगा हुआ मन केवल ध्येयको ही देखता है, अन्य किसीको नहीं जानता, तब ध्यान कहलाता है । जैसे ध्यानके प्रभावसे कीट भी भ्रमर हो जाता है, उसीप्रकार ध्यानके सामर्थ्यमें जीव भी केवल हो जाता है । चेष्टासहित योगका अभ्यास करनेसे पुरुष चेष्टाईन, सदा भावरूप स्थिरब्रह्मको प्राप्त होता है । आरब्यका आश्रय करनेसे, नासाग्र अवलोकन करनेसे, बहुत अवश्य करनेसे अथवा बाह्य उपाय करनेसे योग सिद्ध नहीं होता, योग तो परमधर्मके चिन्तन करनेसे सिद्ध होता है । दानव, मानव, देव, पशु, वृक्ष, ग्राह, सागर, शैल, मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ, भूत, सर्वकर्म, भाव सब हरिके रूप हैं, सबमें सर्वत्र पक्ष हरि ही वर्तमान है । जहाँ-जहाँ मन जाय वहाँ-वहाँ निरञ्जन, निष्कल, पर-ब्रह्म, सचिदानन्द लक्षण श्रीरामको ही देख ! सदा आनन्दरूप, महा उद्गतव, अचिन्त्यशक्ति श्रीरामका एकाश भन होकर ध्यान कर ! नर-देहरूप तरणीको और कर्णधाररूप गुरुको प्राप्त होकर अभी अभी जोही ओह संसार-सागरसे तरनेका उपाय कर ! परापर

श्रीराममें भक्तिसे विचरता हुआ सदा व्रहचर्यका पालन कर !  
वहाँ-जहाँ मन आता है, वहाँ श्रीराम ही हैं, सर्वत्र व्यापक  
विभु श्रीरामको छोड़कर मन कहाँ जायगा ? कहीं नहीं !  
श्रीराम थमे हैं, श्रीराम ब्रत हैं, श्रीराम कर्म है, श्रीराम  
सनातन है, ज्ञात और अज्ञात श्रीराम ही हैं, निश्चय-निश्चय  
सब श्रीराममय ही है। इसलिये—

मत कर कोई काम, राम ही केवल भजे ।  
कर भगवतकी आशा, आशा सधकी ही तजे ॥  
दिन दोका संसार, सार इसमें कछु नाही ।  
भगवत केवल सार, प्रेमकर भगवत मार्ही ।  
राम नामका जाप कर, रघुवर गुण कर गान दे ।  
मोला ! जा सब भूले, रामरूप धर ध्यान दे ॥

## मानसके दो रत्न

( लखक-आमैरवसिंहजी राठोर )

सेवक कर पद नवनसे, मुखसे साहिब होय ।  
तुलसी प्रीतिकी रीति नहि, मुकाबे सराहौं सोय ॥  
मुखिया मुखसे चाहिये, सान पान कहै एक ।  
पहले पोवै सकल आँग, तुलसी सहित निकल ॥

**व** स, यह दोहे रामचरितमानसमें दो रत्न हैं।  
प्रथम दोहेमें राजा और प्रजा अथवा कुटुम्ब  
और कुटुम्बके प्रधानका सम्बन्ध बतलाया  
है। दूसरेमें प्रधानका कर्तव्य बतलाया है।  
इन दोहोंमें उपरी तौरसे देखनेसे ज्ञान होता  
है कि प्रधान अथवा राजाका तो कर्तव्य  
बतला दिया पर प्रजाका या कुटुम्बके अन्य  
अविक्षियोंका कर्तव्य नहीं बतलाया। पर नहीं, व्यापनसे  
देखनेपर पना चलता है कि प्रजाका कर्तव्य प्रथम दोहेमें  
ही आ गया है। सेवक कैसे हों ? कर-पद-नवनसे अर्थात्  
केवल काम करनेवाले, पर उसका कल चाहनेवाले नहीं।  
इच्छ-दृच्छरसे जो कुछ प्राप्त करें वह स्वयं अपने पास न  
रखकर मुखिया मुखको दे दें। पर मुखिया भी मुखसे क्षमान  
होना चाहिये। मुखका काम है कि जो कुछ कर-पद-नवन-  
से प्राप्त हो सब भरवा कर ले। यदि दूसरे दोहेहारा  
उसका अगवा कर्तव्य न बतलाया जाता तो अर्थ हो  
जाता। इसलिये दूसरे दोहेकी आवश्यकता हुई और मुख-  
मुखियाका कर्तव्य बतला दिया कि वह 'व्यान-पान कहै  
एक' अवश्य है पर उसका कर्तव्य है कि विवेकयुक्त  
कर-पद-नवन आहि सभी अंगोंका पालन करे।

बत, यही नियम जहाँ भी बताँ जावा वहाँ सुख  
और शाश्वत रहंगी। प्रकृतिमें देखिये, नदी-नादे सभी  
ज्वाह ज्वाह से ज्वल खाल समुद्र मुखियाको दे देते हैं वह  
उन्हें फिर वर्षाहारा ज्वल देकर उमरा शालन करता है।  
इसप्रकार नदी-नादे तथा समुद्र सभी ज्वलसे पूर्ण रहते हैं।

और यज्ञ-चक जारी रहता है। चुद्र मूढ लालाब इस  
नियमका भंग करके पानीको अपनेमें रोक लेते हैं, परिणाम  
यह होता है कि पानी सड़ जाता है और कुछ दिनमें सुख  
जाता है। ताल कंगाल हो जाता है। यही राजा-प्रजामें है।  
प्रजा जबतक अपनी कमाई राजाको देती है और  
राजा उस कमाईको प्रजाके ही कल्याणमें अवय बरता है  
तबतक राज्यमें सुख चैनकी बंशी बजती है। राजा-प्रजा  
सभीका पोषण होता है। इस नियमका भंग होनेसे  
आजकल जो हाजर है वह प्रकट है। कुटुम्बमें भी आज  
सभी अपनी कमाई अपने पास रखना चाहते हैं। फल  
होता है—विघ्न और निषंकता। यदि सभी अपनी-अपनी  
कमाई कुटुम्बके मुखियाको दे दें और वह भी विवेकके साथ  
मभीका पालन करे तो आनन्द हो। समाजमें भी सभी वर्ष  
अपनी कमाईको स्वयं लाना चाहते हैं। फल होता है—  
समाजकी विष्णु-भिष्टता। गीताका यज्ञ-चक यही है कि सभी  
छोटोंका कर्तव्य है कि निष्काम कर्म करें और उसमें जो धन  
प्राप्त हो वह सुखियाको दे दें, अपने पास न रखें तथा मुखिया-  
को चाहिये कि विवेकमें उस चन्द्रहारा सभीका पोषण करे।

देवान्मावयतानन ते देवा मावयन्तु वः ।

परम्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्यय ॥

इसीको महामा तुलसीदासजीने उपर्युक्त दो दोहोंमें  
बतलाया है। इसीको कायम रखनेके लिये भगवान्ने  
कहा है। इमप्रकार चकाये हुए यज्ञ-चकको जो इस  
जगतमें आगे नहीं चलता, उसकी आगु पापरूप है, उस  
इन्द्रिय-जग्गटका जीवन अर्थ है।

पदं प्रवर्तितं चकं नानुवर्तयतीह यः ।

अशायुर्गिन्द्रियारभो मोदं पर्यं स जीवति ॥

अतएव इम सभीका कर्तव्य है कि अपना-अपना  
अर्थ पालन करते हुए इसको कायम रखें।

## श्रीवाल्मीकीयका राम-चनगमन

( लेखक—पं० बापनुदत्तजी बहाचारी )



योग और वियोग दोनों हस संसाररूपी रथके पहिये हैं। मनीयोंने, यिथ उसके संयोगसे मनकी जो कृति होती है उसे सुख और उसके वियोगका नाम दुःख बताया है। सभी प्रकारके इन्होंका मूल कारण संयोग और वियोग ही है। कौन मनुष्य हस बातको आडेगा कि जो संसारमें सबसे अधिक प्यारा समझा जाता है, उसके दर्शनसे रोम-रोम खिल जाते हैं, वह हमारा प्यारा पात्र हमसे बिछुइ जाय ! किन्तु, मनुष्यके चाहनेसे ही सब काम नहीं हुआ करते ! हम जास प्रयत्न करें कि हमारा अपने प्रेमीसे वियोग न हो, किन्तु एक दिन वह अवश्य ही होता है। संसारमें जिसका मंयोग हुआ है उसका वियोग होना निश्चित ही है। इस प्राकृतिक नियमको कोई भी अन्यथा नहीं कर सकता। जो संयोग-सुखसे मुखों होकर हँसा है, उसे वियोग बेदनासे व्याकुल होकर रोना भी पड़ेगा ही ! हँसना-रोना, सुख-नुस्ख ये सभी जीवनके भ्यापार हैं। ऐसा कौन संसारी पुरुष होगा, जिसे कभी किसीके भी लिये आँख न बढ़ाने पड़े हों ?

संसारमें योहा बहुत वियोगजन्म दुःख सभीको भोगना पड़ता है। जिसे संयोगमें जितना ही अधिक सुख मिला होगा, उसे वियोगमें उतने ही दुःखका भी अनुभव होगा। वियोगका सम्बन्ध उसके एवंके संयोगके साथ है। इसलिये जो अधिक नहदय है, जिसका हृदय बहुत ही कोमल है, जिसका स्वभाव अत्यधिक भिन्ननसार है उसे वियोगका दुःख भी उतना ही अधिक सहन करना पड़ता है।

व्या वियोग सम्बन्ध निरानन्ददायक है? यदि यह बात सत्य होती तो संसारसे आजनक नल, युधिष्ठिर, मोरदश और हरिहरकी कथाएँ कभीकी जोप हो गयी होतीं। इन कल्प-कथाओंके अवलोके लोग अपने जीवनको अभीतक आनन्दरहित कर्मों बनाते रहते ? इससे ज्ञान पड़ता है, कि वियोगमें भी आनन्द है, किन्तु उस आनन्दका अनुभव सभी नहीं कर सकते। जिसने अगु परमाणुमें उस एक ही अत्यन्त सत्ताका साक्षात्कार कर लिया है, जो संयोग और वियोगके उत्तराम स्थानसे ढैंचा उठ गया है

४

वही वियोगजन्म सुखका आस्तावन कर सकता है। वही संयोग और वियोगकी दो तात्त्वाकी वीणाके साथ एक ही स्वर-में गायन कर सकता है। वही इस अव्युत्त आनन्दका अनुभव कर सकता है। अनुभव करके दूसरोंको उसका स्वाद खालाने वाले सन्त हस संसारमें विरहे ही पैदा होते हैं। उन्हें चाहे कवि कहिये, विद्वाता कहिये, देवज्ञ अथवा मनोविज्ञान-शास्त्री जो कुछ भी कह लीजिये, उनमें सभी प्रकारकी सामर्थ्य होती है। वे हमें तनिंहसी बातपर रुका सकते हैं और जरा-सी बातपर हँसा सकते हैं।

रोनेमें कितना आनन्द है, इसे वही जान सकता है, जो किसीकी बादमें रोता है। अपने दुःखसे रोनेवाले तो बहुत मिठेंगे किन्तु उनके रोनेका कोई स्वार्थ नहीं। जो दूसरोंके दुःखसे दुखी हो डटे, जिसका हृदय कल्पणाके लिये अपने-परायेका भेद-भाव न रखता हो, असद्वर्त, वही महापुरुष है। उसकी कल्पणा ही सच्चुचमें कल्पणा कही जा सकती है। उसकी बेदना ही सुखकर बेदना है और उसकी वियोगजन्म पीड़ा ही सुखकरी—मधुमयी पीड़ा है। उसके अनुभवमें आनन्द है, उसके अवश्यमें सौन्दर्य है और उसकी स्मृतिमें भीड़-भीड़ सुख है। इसांदिये तो कवियोंने कल्पण सकारोंसे रसोंमें श्रेष्ठ माना है।

आदिकवि भगवान् वाल्मीकिजीने अपने जीवनमें कल्पणाको प्रथम किया था। उनका सम्पूर्ण जीवन उसी जीवनाधारके पाक्षपद्मोंमें समर्पित था। उन्होंने कल्प-करणसंकल्पनिधानका आह्वान किया था। इसी लिये उनके प्रत्येक कार्यमें कल्पणा थी। कल्पणा क्या थी उनका सम्पूर्ण शरीर ही एक प्रकारसे कल्पणाका विग्रह बन गया था। जिसप्रकार बायुरुहित स्थानमें स्थित युँहतक जवालब भरा असृतका प्याजा तनिंहसी टेस छागनेसे ही छुल्कने लग जाता है, उसी प्रकार उस कल्पणामूर्ति अधिके कोमल हृदयमें भी क्रोंच पहीकी कातर जायी सुनकर एक गहरी-सी गर्म टेस लगती है। उस, उस गर्म टेसके लगते ही उनका जवनीतके समान जिग्न-सूक्ष्म द्रवीभूत होकर बह निकला। उस हृदयकी धारासे जो लोकपावनी मुनि मन-हरिशी सुरसरि वही, उसने इस जैत्रोक्षको पावन कर दिया। महामुनिकी वह अमर कृति संसारके सभी जीवोंको सुख-

—वाचिनी हुई । श्रीबालमीकीय रामायणे संसारको एक दिव्याकोक प्रकान किया, जिसके प्रकाशकी किरणोंसे सभी दिशाएँ अनन्त कालके लिये आक्रोक्ति हो उठी ।

बालमीकीय रामायणका अन्य कल्पणाके द्वारा ही हुआ है । इसलिये उसके आदि, मध्य और अन्तमें कल्पणा ही कल्पणा भरी है । हम यह भी कह सकते हैं कि उसमें कल्पणाके अतिरिक्त और कुछ ही ही नहीं । अन्य रसोंका जो वर्णन हुआ है वह केवल कल्पणाको पूर्ति के लिये ही है । जैसे 'राजा आरहा है' कहनेसे केवल राजाका बोध नहीं होता । उसके साथ नीजर-चाकर, पुरोहित, मन्त्री, सवारी, बाहन आदि सभीका बोध होता है किन्तु वे सभी 'राजा' के ही अन्तर्गत आजाते हैं, क्योंकि राजा अंगी है और सेवक आदि उसके अंग हैं । इसी प्रकार रामायणमें कल्पणास अंगी है और शेष सभी उस उसके सहायक अंग हैं ।

बालमीकीय रामायणमें तीन स्थल इतने कल्पणापूर्ण हैं कि उनके अवलोकनसे वज्राहृष्ट पुरुष भी बिना रोये नहीं रह सकता । आदिमें राम-वनगमन, मध्यमें लक्ष्मणकी मुर्छा और अन्तमें सीता और लक्ष्मणका परित्याग । इन तीनों स्थलोंके वर्णनमें आदिकविने कल्पणाका ऐसा प्रचलण प्रवाह बहाया है कि उसमें प्रवेश करनेपर अर्ध-अर्ध नैराकोंके पैर उत्सड़े बिना नहीं रह सकते । इन सबमें मुझे राम-वन-गमन सबसे भ्रष्ट जीतना है । उस लोहकी लेसलोंसे जिसे हुए प्रसंगको मैंने जब-जब पढ़ा है, तब-तब मैं खूब ही रोया हूँ । अब भी कोई मुझे उस प्रकल्पाको मुनाने लगे तो अशुद्धोंके बेगको रोकना मेरे लिये कठिन हो जायगा । महाकविने उन पोखे भोकोंके भीतर, कभी न चूकनेवाला ऐसा जानका रस भर दिया है, जो सीधा हृदयपर ही बार करता है और बेचारी औखोंपर आफ्रत आ जाती है । अन्य है आदिकवि, जिन्होंने इस कल्पण-कथाका कथन किया है; और अन्य है वे वाचकदृष्ट, जिन्होंने उसके अवलोकनसे अपने ओप्रोंको सफल बनाया है ।

भगवान् बालमीकिके 'राम' छुपवेषधारी राम नहीं हैं । वे संसारसे परेके, राग-हेष-शून्य तथा दुःख-सुखको समान समझनेवाले, मायापति महेश नहीं हैं । यथापि बालमीकिके राम विष्णुके अवतार सावात् श्रीमत्तारायण हैं, किन्तु अब उन्होंने नर-तन भारत ही कर लिया, तब तो फिर उन्होंने अपना सभी मुराना पेशवर्य मानने शुल्क दिया है । वे नरवेषमें आकर पुरुष नहीं, पुरुषोत्तम बन गये । मायिक विकारोंसे

उन्होंने अपनेको पृथक् नहीं दिखायाया, किन्तु वे दुःखमें दुःख और सुखमें सुखको लीला करने लगे । हाँ, यह बात जरूर थी कि वे सावारण अज्ञ पुरुषोंको भाँति दुःखमें एक-दम कातर होकर आधीर नहीं हो उठते थे और वे सुखमें आरेसे बाहर होकर अपने विवेकको ही खो दैते थे । यही तो उनकी श्रेष्ठता थी, इसीलिये तो वे पुरुषोत्तम कहलाये । आदिकविने भी हमें कहीं बीचमें इस बातको किंव समझानेका कष्ट नहीं किया है, कि श्रीराम दुःख-सुखसे परे हैं, इन्हें हर्ष-शोकके भाव नहीं व्याप सकते । यही नहीं, किन्तु वे रामपर विपत्ति पड़नेपर स्वयं रोये हैं और माय ही उन्होंने पाठकोंको भी खूब लक्खाया है । यही तो उस महान् कविकी महाता है ।

राम-बन-नामनके वर्णनमें कविने जो अपनी अद्भुत प्रतिभा-शक्ति दिखायायी है उसका दिव्यरूप हम इस संकुचित स्थलमें कैसे करा सकते हैं? क्या कभी गागरमें भी सागर भरा जा सकता है? उसका पूरा आनन्द तो उस अध्योप्याकाशदके अद्भुत स्थलको आदित्ये अनन्तक पड़नेमें ही आ सकता है, किन्तु पाठकोंकी प्रमङ्गताके निमित्त हम उसका अस्तित्व-दिव्यरूप कराने हैं ।

यक्षयक राजाका बुलावा सुनकर श्रीराम अपने रिता दशरथजीके समाप्त आने हैं । कैंकेयीके हारा अपने बनगमनकी बात सुनकर वे रिता दशरथ और सौतेली माता कैंकेयीको प्रणाम करके अपनी अनन्ती कौसल्यासे बनगमनकी आज्ञा लेने उनके महाद्वयोंमें जाने हैं ।

जीवनकी सभी मनोहर आशाओंका पुत्रके अभ्युदयमें ही सुख-स्वप्न देसनेवाली माता उस समय पुत्रकी मङ्गल-कामनाके निमित्त देव पूजनमें व्यस्त थी । वे जाने उन्होंने किंतु देवताओंकी मनोरी मान रखती थीं । जैसे नैसे करके वह सुहायता समय अब संक्षिप्त आ पहुँचा । सभी देवताओंको पूजाके द्वारा प्रसन्न करना चाहिये । विष-वायकके भयसे महारानी कौसल्या पूर्ण विधानमें असंबल बाहुदायोंको मनमानी वक्षिणा देकर विष्पूर्वक अस्तित्वे हवन करा रही थीं । वे पूजागृहमें ही थीं, उसी समय पुरुषांसिंह श्रीरामचन्द्र उनसे बन जानेकी आज्ञा लेने जा पहुँचे । माताको अभी इन बासोंका कुछ भी पता नहीं था, वे अभी तक पुराने मनस्ये ही बौद्ध रही थीं ।

प्रथम पुत्र रामचन्द्रको आया देव माता प्रेमके कारण आधीर हो उठी । उन्होंने पुत्रका आविष्टन किया, उसका

माता पूर्णा और वहे-वहे आशीर्वाद देकर अन्तमें वासस्थ-प्रेमके अचीन हो रामचन्द्रको अलवी ही कुछ ला लेनेके लिये कहा ।

मोजनके लिये जो राजसी आसन विक्षा था, उसे स्पर्श कर रामचन्द्रजी हाथ लोक विनीत वचनोंसे लोले—‘माता ! आपको पता नहीं है, मेरे सभी प्रिय बनोंके लिये इस समय बदा ही भय आया है, किन्तु आप सबको इससे दुखी न होना चाहिये । मैं दशकारथयको जा रहा हूँ । अब मुझे राजसी आसनसे क्या काम ? अब तो मेरे लिये कुशासन ही पर्याप्त होगा । मैं और वह वर्ष बनमें रहूँगा, जंगली वस्त्र धारण करूँगा और कन्द-मूत्र-कल खाकर ही अपना निर्वाह करूँगा ।’

ओह, इन वेदनापूर्ण वचनोंको सुनकर देवी कौसल्याको कितना अपार दुःख हुआ होगा, इसकी पूर्ण कल्पना क्या काही कर सकता है ? महाकविने निष्ठलिखित तीन श्लोकोंमें उम्मेद दुःखका चित्र खोंचा है—

सा निहतेव सामर्थ्य याः परशुना वने ।  
पपात महसा देवी देवतेव दिवश्चयुता ॥  
तामदुःखेचिनां दृष्ट्वा पतितां कदातिभित ।  
राममृत्युपमास मातरं गतचेतसम् ॥  
उपानृत्योत्तिष्ठानां दीनां वडवामिव वहितम् ।  
पामुरुण्डिनमवाहा विमर्शं च पाणिना ॥

( वा० रा० २।२०।३२-३४ )

‘इम ( भयहर ) संकाष्ठके सुननेसे देवी कौसल्या कुछहारीसे काटी हुई भाजकी शाम्भाके समान सहसा भूमिपर गिर पहाँ, मानों स्वर्गसे कोई देवाङ्गना गिरी हो । दुःखके अयोध्य, बेहोश कौसल्या कटे क्लेंके समान गिर पही । श्रीरामचन्द्रने अपनी माताको उठाया । करवट बदलकर दुःखिनी कौसल्या उठीं, जिस प्रकार बोझसे लटी धोंधी उठनी है, उनके सम्पूर्ण शरीरमें भूत लग गयी थी, श्रीरामचन्द्रने उसे अपने हाथसे काढा ।’

उस समय माताके धैर्यका बैंध सचमुच टूट गया होगा । जिन बातोंको अवतक वे अपने पुत्रसे क्षिपणे रखती थीं, भारी दुःख पहनेपर वे बातें आपसे आप ही बाहर निकली पहों ! वे वहे ही दुःखके साथ कहने लगीं—‘पुत्र ! यदि तुम दरपत्र न हुए होते तो मुझे दुःख होता अवश्य, किन्तु तब यह पुत्र-वियोगस्ती असद्य दुःख न होता । बल्याको पुत्राहीन होनेके अस्तित्वक और कोई दूसरा दुःख नहीं होता । मैंने पतिके प्रेमसे होनेवाले सुख

और कल्याण कभी नहीं देखे । हे राम ! मैंने सोचा था कि पुत्रके समयमें मैं सुख भोग्यूँगी, पर अब हृष्य क्षेवनेवाली अपनेसे छोटी सौतोंकी बहुत-सी अश्चिकर बातें, उनसे बही होनेपर भी सहनी पड़ेगी । हे पुत्र ! जब तुम्हारे रहनेपर ही यहाँ मेरा इतना अश्चिक तिरस्कार था, तब तुम्हारे चले जानेके बाद मेरा क्या हाल होगा ? उस समय तो निश्चय ही मेरी मृत्यु हो जायगी । राम ! तुम्हें दरपत्र हुए अद्वाईस वर्ष हो गये और ये वर्ष अपने दुःखोंकी समाप्तिकी कामनासे मैंने जैसे-तैसे करके बिताये । सौतोंके द्वारा अपमानको सहते-सहते मैं बढ़ी हो गयी, अब मुझसे ये दुःख नहीं सहे जायेंगे । तुम्हारा पूर्ण चन्द्रमाके समान सुन्दर मुख न देखनेसे दुःखिनों मैं किस प्रकार अपना जीवन बिताऊँगी ? राम ! मेरा हृष्य बदा ही कठोर है इसी कारण वह फटता नहीं । अवश्य ही मेरी मृत्यु नहीं है । मृत्युके घरमें शायद मेरे लिये लगाह ही नहीं रही ! इसीमें तो यमराज आज मुझे उठा नहीं ले जाते । मेरा हृष्य जोहेका बना हुआ है, तभी तो यह ऐसे भयंकर दुःखके आनेपर न तो टूटता ही है और न फटता ही है । यह बात बिल्कुल ठीक है कि निश्चित समयके पहले किसी प्रकार भी मृत्यु नहीं हो सकती । पुत्र-कल्याणकी कामनासे मैंने जो व्रत, दान, संदेश किया, वह सब अनर्थक हुआ । मैंने जो तपस्या की वह भी व्यर्थ गयी ।’ हृष्मप्रकार अनेक विलाप करती हुई माता अधीर होकर कहने लगी—

अद्यापि कि जीवितमध्य मे वृथा

त्वया विना चन्द्रनिभाननप्रभ ।

अनुव्रजिष्यामि वनं त्वयै गौः

सुदुर्बला वत्समिवाभिकौक्ष्या ॥

( वा० रा० २।२०।५४ )

‘चन्द्रमुख राम ! तुम्हारे विना मेरा यह गर्हित जीवन व्यर्थ है । इसलिये जिसप्रकार बछड़के पीछे दुबली गौ चलती है उसी प्रकार मैं भी तुम्हारे पीछे-पीछे बन चलूँगी ।’

बन जानेवाले रामसे माताने हृष्यको पिघला देनेवाली बातें कहीं, किन्तु सम्प्रतिक्ष राम उनसे तनिक भी विचलित नहीं हुए । पास ही खड़े हुए लक्ष्यमय इन सभी बातोंको सुन रहे थे । रामके कल्याणमें ही सदा तप्त रहनेवाले लक्ष्य इसको सहन नहीं कर सके । उन्होंने राजाको खूब ही स्त्री-स्त्रोटी सुनायी, कैकेयीको भी दुरा-भला कहा और रामको उनका अविकार

सुकाया । उन्होंने आवेशके साथ कहा—“पुरुषोत्तम, राजा किस बल-भरोसेपर और किस कारणसे सुम्हारा यह प्राप्त राज्याधिकार कैकेयीको देना चाहते हैं? हे शशुजिविन्! आपसे और मुझसे वैर करके राजा भरनेको राज्य देनेकी कौन-सी जाकि रखते हैं? इसलिये आप अभी राज्यपर जबरदस्ती अधिकार कर लें। उमरावाके समान धनुष-आज्ञा लेकर आपकी सहायता भरनेको मैं तैयार हूँ।” माता रामके स्वभावको जानती थी, इसलिये उन्होंने न तो जरूरत्यकी इन बातोंका समर्थन ही किया और न विरोध ही। उन्होंने केवल इतना ही कहा—“राम! अपने भाई जलमयकी सब बातें तुम सुनो, इसके अनन्तर जो कुछ तुम उसम समझो वह करो।” रामको और करना ही क्या था? प्रेममें—आज्ञा-पालनमें अधिकारका व्यापक कैसा? इन कार्योंका पूर्ण निर्वाह तो पृथक व्यापक ही हाता हो सकता है। इसलिये उन्होंने जलमयकी बड़ाई करते हुए उन्हें उनका कर्तव्य सुकाया। माताको सान्निध्य दी और उन्हें समझाने हुए विवेकी राम बड़ी ही सरलताके साथ बोले—“माता! तुम सोचो तो सही, हम सबके गुह धर्मार्था महाराज दशरथ अभी जीवित हैं, उनके रहते तुम विघ्ना खियोंकी भाँति मेरे साथ बहामें कैसे चल सकोगी? पिताजी आज्ञाका पालन करना मेरा और तुम्हारा सभीका परम धर्म है। माता! मैं राज्यको भक्त कारण पिताजी आज्ञाका उहङ्गवन नहीं कर सकता।” माताने जब देखा कि राम किसी भी प्रकार अपने निश्चयसे दिग्नेवाले नहीं हैं तो उन्होंने रोते-रोते रामकी बातें स्वीकार कीं। हुशिनी माताने कड़ी छाती करके रामकी मंगल-कामनाके लिये उनका स्वस्त्रयन किया। निरन्तर अश्रुओंके प्रवाहसे जिसकी छाती भीग रही है, ऐसी माताने विलाप करते हुए अपने इकलौते पुत्रको छातीसे चिपटा किया। रोते हुए रामके माथेको सूक्षकर अपनेको अभागिनी समझने वाली माताने उत्रको अनेक आशीर्वाद दिये। बार-बार जुचकारकर और उनके सुरक्षाये हुए सुखकमलको निहारकर माताने उन्हें बिदा किया। बहाँसे रामचन्द्रजी सीताजीके महालोंमें गये।

मनुष्य चाहे कितना भी साहसी बद्दों न हो, कैसा भी परिहत अथवा विवेकी हो, किन्तु हर और शोकके भाव उसके चेहरेपर प्रकट हो ही जाते हैं। रामचन्द्र अपने परिजनोंसे पृथक् होनेवाले थे अतः उनके चेहरेपर विद्योग-जन्म भावके कारण प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हो रहे थे। उन्हें

ऐसी दशामें देखते ही सीताने उसका कारण पूछा तथा आश्रय प्रकट करते हुए कहा—

अद्य वार्हस्पतः श्रीमान् गुरुः पुष्येण राघव ।

प्रोक्ष्यते ब्राह्मणैः प्रादैः केन त्वमसि दुर्भेनाः ॥

( वा० रा० २।२६।९ )

‘हे राघव! यह क्या? विद्वान् ब्राह्मण तो कह रहे हैं कि आज पुण्य नवम ई, जिसके देवता वृहस्पतिजी हैं, इसलिये इसमें आरम्भ किया हुआ कार्य सफल होता है। यह समय अभियेकके योग्य है, अतएव आपको ग्रसन्ध द्वेषना चाहिये या। मैं देखती हूँ कि बात इसके विन्कुल विपरीत है। कहिये तो सही, आप उदास व्याप्तों हैं?’

सीताके पृष्ठनेपर श्रीरामचन्द्रजीने आदिसे अन्तरक सभी वृत्तान्त सुनाया और उन्हें अपने पीछे उनका कर्तव्य सुकाकर अयोध्यामें ही रहनेका उपदेश दिया। रामचन्द्रजीके इन वचनोंको सुनकर पतिप्राणा सीताने न तो कैकेयीको ही बुरा-भला कहा, न अपने रघुसुर धर्मार्था महाराज दशरथहीकी निन्दा की, और न श्रीरामचन्द्रजीसे ही पुरमें रहनेका आग्रह किया। किन्तु वे इस बातसे दुखी हुई कि श्रीराम मुझे अयोध्यामें रहनेके लिये बद्दों कह रहे हैं। इसलिये उन्हसे कुपित होकर इताके माथ बोलीं—‘राघव! यदि आप आज ही बन जा रहे हैं, तो मैं आपके रास्तेके कुरा-कट्टकोंको हौंडती हुई आगे-आगे चलूँगी। मैं आपके साथ बन जाऊँगी, इसमें कुछ भी सम्बेद न कीजिये। महाभाग! मैं बन जानेके लिये तैयार हूँ। अब मैं किसी प्रकार रुक नहीं सकती।’ सीताके इन इद वचनोंको सुनकर भी राम उन्हें साथ ले चलनेको राजी न हुए। वे उन्हें जंगलोंके भवधूर दुःखोंको सुनाकर ढरनेका प्रयत्न करने लगे। उन्होंने खूब विस्तारके साथ बीहू बनोंमें होनेवाले भवधूर दुःखोंका बरान किया।

वे बातें सुनकर सीता न तो बरी ही और न अपने निश्चयसे तनिक विचित्रता ही हुई। वे रो रोकर पतिसे कहने लगीं—मैं आपकी सेविका हूँ, पतिव्रता हूँ, दीना हूँ और सुख-दुःखको समान समझनेवाली हूँ। हे राघव! आप मुझे साथ ले चलें, क्योंकि मैं आपके सुखदुःखकी संगिनी हूँ। यदि आप इसप्रकारकी हुशिनी मुझको अपने साथ बन ले जाना वहीं चाहते, तो मैं अपनी सूत्युके लिये विच, आग या बलका उपयोग करनेका विचार करूँगी।’ इसनेपर भी जब सीताने देखा कि पुरमेह रामचन्द्र मुझे बन ले

चकनेको राजी नहीं है, तब तो वे बहुत ही अधीर हो डठीं । उनका क्रोध आवश्यकतासे अधिक वह गया था, किन्तु वह क्रोध स्नेहसे भीगा हुआ और ममत्वसे भरा हुआ था । वे श्रीरामचन्द्रको स्नेहके साथ तीक्ष्ण तर्वं मारती हुई, प्रेम और अभिमानके साथ बोलीं—

किं त्वा मन्यत वैदेहः पिता मे मिथिलाधिपः ।  
राम जामातं प्राप्य किंयं पुरुषविग्रहम् ॥

(वा० रा० २३०१३)

‘मेरे पिता मिथिलाधिप राजा जनकने आपको पुरुष-शरीरधारी भी नहीं समझा था, अतएव उन्होंने आपको अपना दामाद बनाया ।’

इसप्रकार सीताने जब भाँति-भाँतिसे श्रीरामचन्द्रको मजबूर किया और किसी प्रकार भी अयोध्यामें रहनेको राजी न हुई तो रामने उन्हें साथ चकनेकी अनुमति दे दी । जन्मय कब घूकनेवाले थे ? उन्होंने कौमल्याके घरसे ही रामचन्द्रका पक्षा पकड़ किया था । उन्हें विशेष समझाना ज्याद था, इनकिये सहजमें ही साथ जानेकी अनुमति मिल गयी ।

अब रामचन्द्रजीने बन-गमनकी तैयारियाँ शुरू कर दीं । जन्मय उसी तत्परताके साथ बन-गमनकी तैयारी करने जुट गये जिस तत्परतासे अयसे थोड़ी देर पहले राजाभिवेकी तैयारीमें जुटे हुए थे । अब बन जाना ही है—यह सोचकर राम साहसी पुरुषकी भाँति सभी सामान ढीक करने लगे । उन्होंने कोपाच्छयसे अपना निझी धन मङ्गवाया और उसे कमने सभी बेदज्ज बाह्यणोंको बाँट दिया । अपने तथा जन्मयके घरोंकी रक्षाके निमित्त बहुत-सा धन देकर विशेष-विशेष नौकर नियुक्त कर दिये । सभी बाह्यण अपनी इच्छानुकूल बन-सम्पत्ति पाकर बहुत ही प्रसन्न हुए और रामचन्द्रको भाँति-भाँतिके आशीर्वाद देने लगे ।

ऐसे समयमें भी रामचन्द्रका विनोदी स्वभाव कुछ कम नहीं हुआ । अबोल्लामें उस समय गर्गोत्त्री क्रिकट नामका एक गरीब बाह्यण रहता था । उसके सम्मान से बहुत थी । किन्तु उसमें खानेका पूरा ठिकाना नहीं था । बेचारा बाह्यण होकर भी कुदाक और इस लेकर दिनभर कही धूपमें खेतर काम किया करता था । दुःखके कारण वह दुर्बल बाह्यण पीड़ा पर गया था । उसकी जीने उससे कहा—‘आप मेरी जात सुनिये, राजकुमार राम आज सभी

बाह्यणोंको मनमानी दृष्टिया बाँट रहे हैं । आप भी बड़े जार्ये । आपके मान्यमें होगा तो कुछ-न-कुछ मिल ही जायगा ।’ जीके बचन सुनकर उस दुर्बल बाह्यणने एक फटा-सा चिथड़ा अपने शरीरपर लपेट किया और राजकुमार रामके महसूसोंकी ओर चल पड़ा । राजकुमार सामारण्य मनुष्योंकी तरह बाहर खुले मैदानमें तो धूमते ही नहीं थे उनसे मिलना कोई हँसी सेल नहीं थी । रामचन्द्र चाँच पहरोंके भीतर रहते थे । किन्तु अब तो बनवासी बन जुके हैं, इनकिये आज उनके पास जानेके लिये किसीको भी जानाई नहीं है । इसीकिये वह क्रिकट बाह्यण बाँचों लखडोंको पारकर सीधा रामचन्द्रके पास पहुँच गया । किसी भी लखड़में पहरेवाले सिपाहियोंने उसे नहीं रोका । वह तेजस्वी बाह्यण रामचन्द्रके समीप आकर बोला—‘महाबली राजपुत्र ! मैं निर्धन हूँ, मेरे बहुत-से पुत्र हैं, मैं बनमें रहता हूँ, मेरी कोई निश्चित वृत्ति नहीं है, आप मेरी ओर देले ।’ श्रीरामचन्द्रने उस बाह्यणकी ओर देखकर सुसज्जराते हुए कहा—‘विप्रवर, अभी मैंने अपनी हाजार गौओं-मेंसे एक भी गौ दिसीको नहीं दी । इनकिये आप एक काम कीजिये । दृढ़ ढण्डा लीजिये—इसको आप लोरसे फेंके । यह जहाँ जाकर गिरेगा, वहाँ तककी सभी गौँये आपकी होंगी ।’ यह सुनकर उस दुर्बल बाह्यणमें न जाने कहाँसे बल आ गया । उसने जल्दीसे अपनी कटी खोतीको खूब जोरोंसे कसकर बाँच किया और अपने सारे बक्काको हाथमें एकत्रित करके जोरसे ढण्डा फेंका । कहै इजार गौओंके कुखड़को पार करता हुआ ढण्डा सरयूके उस पार आ गिरा । रामचन्द्र उस दुर्बल बाह्यणके इस कूत्सको देखकर इस पढ़े और प्रसन्न होकर बोले—‘विप्रवर ! आप कुछ और न समझें वह तो मैंने आपके साथ विनोद किया था । मैं इन स्त्री हँसियोंको देखना चाहता था, कि इनमें किसना बच है ? ये गायें सब आपकी हुई और भी जो आपको आवश्यकता हो, सो यहाँसे ले जायें, क्योंकि मैं बाह्यणोंका दास हूँ । मेरा सारा धन बाह्यणोंके लिये ही है ।’ रामचन्द्रने उस बाह्यणको इसप्रकार सन्तुष्टकर विदा किया ।

सारा धन बाँटकर राम अपनी पक्षी और भाईके साथ पैदल ही राजासे विदा होनेके लिये राजभवनमें चले । पुरावासियोंके उस समयके दुःखको कौन कह सकता है ? महाकविने उसका बदा ही सबों और इत्यग्राही वर्णन किया है । स्थानाभावके कारण वहाँ उसका तनिक भी उस्केस नहीं हो सकता ।

सुमन्तने जाकर दुखी और बेहोश राजा को समाचार दिया कि अपना सभी भन आळखोंके बाँटकर राम वन जा रहे हैं और वे आपके दर्शन करने के लिये हारपर लड़े हैं।

'हा ! क्या वह भयकूर समय सचमुचमें सत्तिष्ठ आ पहुँचा जब मैं अपने निर्दोष व्यारे पुत्रको इन्हीं आळखोंसे बनवासीके वेषमें देखूँगा ।' कही छाती करके राजा ने सुमन्तने कहा—'सूत ? मेरी सब लियोंको बुला लाओ, मैं एक बार इन सबके सहित रामचन्द्रको देखना चाहता हूँ ।' महाराजकी आळा उण भरमें ही पूरी की गयी । देखते ही—देखते सादे तीन सौ रामियां दुखमें लम्बी-लम्बी सौंस छोड़ती हुई बहाँ आ उपस्थित हुईं । उनके बब आळुओंसे भी गो हुए थे । रामियोंके आ जानेपर राजा ने भाई और सीतासहित रामको भीतर बुला भेजा । रामको देखते ही राजा दौड़कर बड़े लिये उनकी ओर चले, किन्तु बीचमें ही मृक्षा आ जानेके कारण बेहोश होकर गिर पड़े । बलहोसे दौड़कर श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मणने उन्हें संभाला, सुकुमार सीताने भी इम काममें सहायता की । राजा के दोनों नेत्रोंसे साबन-भार्योंकी वर्षके समान अशुद्धोंको भली लग रही थी । वे बेहोश हुए पलौंगपर पड़े थे । शोक-समुद्रमें जब हुए हुए राजा को लग भरमें होश हुआ । सब बिनीत भावसे श्रीरामचन्द्र हाथ जोड़कर पितासे बोले—

आपृच्छे त्वं महाराज सर्वेषांश्चरोऽसि नः ।  
प्रस्तिं दण्डकारणं पद्य त्वं कुरुतेन माम् ॥

( वा० रा० २।३४।२२ )

हे महाराज ! मैं आपकी आळा चाहता हूँ, क्योंकि आप इम सब लोगोंके स्वामी हैं, हम दण्डकारयोंको जानेके लिये नैयार हैं । आप प्रसन्न होकर हमारी ओर देखें और हमें जानेकी आळा दें ।

बर्मणशमें बैठे हुए राजा की उम बेश्नाका अनुभव तो उनके निष्पत्तिलिखित शब्दोंसे लगता है । वे दुखी होकर रामचन्द्रसे जोले—

अहं राघव कैकेया वरदानेन मोहितः ।  
अयोध्यायां त्वंमवाद्य भव राजा निगृह्ण माम् ॥

( वा० गा० २।३४।२६ )

'हे राघव ! कैकेयीने वरदानके द्वारा सुझे मोहित कर लिया है, मैं गज्यके अवोगद हूँ, क्योंकि मैं आब अपने अधीन नहीं हूँ, इसीलिये हे पुत्र ! सुने कैदकर तुम अशोच्याके राजा बनो ।'

राजा के इन वचनोंको सुनकर रामचन्द्र बोले—  
'महाराज ! इसारों वर्षोंतक आप पृथ्वीका राज्य खोगें ।

राज्य करनेकी मेरी इच्छा ही नहीं है, मैं तो बनमें जाकर रहूँगा और जौदर वर्ष पूरे होनेपर फिर आपके अधिकारोंके दर्शन करूँगा ।' पितामे देखा राम वन जानेसे रोके नहीं आ सकते । बेटानके सागरमें दुबकियाँ लगाते हुए दूड़े आप अपने सिंह-सदृश पश्चिमी पुत्रको इसप्रकार विस्कुल हीतैयार देखकर दीक्षिता और कहायाके साथ बोले—

अद्य त्रिदानों रजनीं पुत्र मा गच्छ सर्वेण ।  
एकाहदर्शनेनापि सामु तावच्चराम्यहम् ॥  
मातरं मां च संपदयन् वसेमापद्य शर्वरीम् ।  
तपितः सर्वकैमस्त्वं शः कात्मे साम्निष्यसि ॥

( वा० रा० २।३४।३३-३४ )

'बेटा ! तुम बन जाये बिना मानोरो नहीं, किन्तु मेरी एक अभिलाषा है, तुम आज मत जाओ, जिससे एक दिन और एक रात्रिका समय मैं तुम्हें देखकर सुखमें विता सकूँ । राम ! इस ( दुःखिनी ) अपनी माताकी ओर एवं मेरी ओर देखकर, बस, आज एक ही रात्रिके लिये यहाँ मेरे पाम और रह आओ । आज रहकर और मेरे सम्पूर्ण मनोरथोंको पूर्ण करके कल प्रातःकाल भले ही सुशीके साथ चले जाना ।' २८ वर्षनक दिन-रात्रि पाम रहनेपर जिन महाराजके मनोरथ पूर्ण नहीं हुए, वे एक दिनमें ही अपने सम्पूर्ण मनोरथोंको पूर्ण होनेका सुख-स्वप्न देख रहे हैं । सच है, 'दूषतेको तिनकोंका सहाय भी बहुत होता है ।' एक रातके रहनेकी अनुनयमें किन्ती कल्पणा भरी पड़ी है ! सचमुच यदि राम उस रात्रि रहकर बूढ़े आपके पाम बैठकर उसकी आजीमें साथ ही भोजन कर लेने, तो महाराज दशरथ अवश्य ही कृनकृष्ण हो जाने । किन्तु विविका विधान विचित्र है, जो पुत्र सहा अपने पिताके मुखका ओर हमलिये देखता रहता था कि देखें पिता किम समय क्या आळा करते हैं । ऐसा न हो कि उनके पाजन करनेमें तनिक भी विलम्ब हो जाय, वही पुत्र आज भर्म-पाशमें बैधनेके कारण ऐसा कठोर हो गया है कि इतनी चिरौरी करनेपर भी एक रात्रि रहनेको राजी नहीं होता, इसीका नाम अविनव्यता है !

कैदेही जानेके लिये जल्दी कर रही थी, उम समय वह यमराजकी सहोदरा तथा विषभर सपिंशी बनी हुई थी । उसे वहाँ श्रीरामका लक्ष्मण भी रहना अद्भुत नहीं लगता था । महाराजने रामको रोकनेके दैदादों प्रयत्न किये, किन्तु सभी निष्पत्त हुए । सब उन्होंने अपने बूढ़े मन्त्री सुमन्तनकी ओर हशारा किया । सुमन्त औरसे सिर छुपा, कई बार

जामी जामी सौंसे छोड़, हाथसे हाथ मल, दौत कटकटाकर,  
कोधसे लाल आँखें बना—अधिक कोधके कारण भयझूर  
दुःख भोगते हुए, भद्राराजके अभिग्राहको समझ अपने  
तीक्ष्ण वचनरूपी वाचोंसे कैकेयीके हृषयके कंपाते हुए  
तथा उसके अन्तस्तानको अपने अनुपम वाक्य-वाचोंसे देखते  
हुए, वहे ही क्रोधके साथ बहुत-सी उल्टी-सीधी वातें  
कहने लगे। कैकेयीकी माताकी कूरताका कथन करके क्रोधित  
सुमन्तने उसे कृजघातिनी बताया और कहा तू उसीकी  
कूर करनेवाली कूर्लिकी कल्पना है। तुमसे ऐसी ही  
आशा की जा सकती है। सच है, बेटी माँके ही समान गुण  
वाली होती है। इन्तु उसपर सुमन्तकी इन वातोंका कुछ  
भी असर नहीं हुआ। विशिष्ट, वामदेव, सिद्धार्थ आदि सभी  
समझदार व्यक्तियोंका समझाना व्यर्थ हुआ। वह अपने  
विचारको किसी प्रकार भी न बदल सकी। सब दुसी  
होकर भद्राराजने कहा—‘अब्दा, मैंना धन, कोप, वस्त्र,  
आभूषण और सभी राजसी सामग्रियाँ रामचन्द्रके साथ  
बनाएं जायें और इस शून्य राज्यको भरत भोगो।’ तब उसी  
हुई कैकेयी बोली—‘जब सभी बस्तुएँ चली जायेंगी तो  
इस सारहीन राज्यको लेकर भरत क्या करेगा। उसको  
पेसा राज्य नहीं चाहिये।’

जब दुर्वी गजाने इस बातपर कैकेयीको बहुत चुरा-  
भजा कहा और स्वयं रामचन्द्रके साथ बन जाने तकको  
उद्धत हो गये, तब रामचन्द्र वहे ही विवेकपूर्ण वचनोंसे  
बोले—

त्यक्तभागस्य मे राजन् बने बन्धेन जीवतः ।  
कि कायमनुयायंत्रणं त्यक्तसंगस्य सर्वतः ॥  
यो हि दत्ता दिप्पंडं कथयाऽनु कुरुते मनः ।  
रुद्रुमंहेन कि तस्य त्यजतः कुञ्चित्तमस ॥  
(वा० रा० २।३७.२-३)

पिताजाँ! मैंने तो सभी प्रकारके भोगोंका त्याग कर  
दिया है। मेरा निर्वाह जंगली बस्तुओंसे ही हो जायगा,  
जब मैंने सभी प्रकारकी आकांक्षाओंका त्याग कर दिया है,  
तब मेरे साथ सेनाकी क्या आवश्यकता है? जिसने अपना  
सबसे बढ़िया हाथी दे डाला उसे हाथी बाँधनेकी रस्सीसे  
भला मोह कैसा? वह क्या रस्सीके लिये आग्रह कर सकता  
है? अतएव सज्जनभेष राजन्! मुझे इस सेनाकी  
आवश्यकता नहीं। मेरे सब सेना आदि बस्तुएँ, मैंने भरतको  
दे दी हैं। मेरे लिये तो आपलोग बलकल-बस्त्र ले आओ।

मेरा काम एक सजती और साँचीसे ही चल जायगा। यही  
चीजें मुझे मिलनी चाहिये।

विक्रेता कैकेयी हतने आदित्योंके बीचमेंसे उठकर  
स्वयं बलकल-बस्त्र ले आयी। उस वज्रहस्ताको हस्तमें  
सुनिक भी लगा न लगी। रामचन्द्र और वामपायने सब  
आदित्योंके देखते-ही-ही-देखते अपने महीन वज्र डतारकर रख  
दिये और सुनित्योंके पहनने योग्य बलकल-बस्त्र पहन लिये।

ओ! उस समयका दृश्य कैसा हृदयविदारक होगा, जब  
सुकुमारी सीताके सामने चीर-बस्त्र आये होंगे। जिसने  
कभी दुःख नहीं देखा था, जो सदा लाल-चाव और प्यासे  
पढ़ी थी, वही रामकुमारी बिदेहकन्या और चकवर्ती  
भद्राराज दशरथकी पतोंहू आज दशरथके सामने मुनि-  
परिवर्योंकी तरह बलकल-बस्त्र धारणा करेगी! सचमुच उस  
समय बद्दीके सभी उपस्थित की तथा पुरुषोंका हृदय  
फटकर चकाचूर हो गया। विश्वकविकी चमत्र लेखनीने  
सीताके मनोभावोंका कैसा सजीव विद्र खोंचा है—

अयात्मपरिघानार्थं सीता कौशेयवासिनी ।

संप्रेष्य चीरं संत्रप्ता पृष्ठी वागुरमिद ॥

सान्धपत्रपमाणेद प्रगृह्ण च सुदुर्मनाः ।

कैनेम्याः कुशाचीरं ते जानकी शुभलक्षणा ॥

(वा० रा० २।३७.१९-२०)

सदा पीताम्बरोंको पहननेवाली सीता अपने बलकल-  
बस्त्रोंको देखकर पैमे भवभीत हो गयी जैसे विशालासी  
इरियाँ जालको देखकर दर जारी है। शुभबद्धवा  
जानकी कैकेयीसे वे बस्त्र पाकर लजित और दुःखित हुई,  
जानकीकी आँखोंमें आँसू भर आये। वह लजित हो  
गन्धवराजके समान अपने पतिसे बोली—

कथं तु चीरं वमनि मुनयो बनवासिनः ।

‘बनवासी मुनि किसमकार चीर पहना करते हैं?’ बेचारी-  
ने काहेको किसीको चीर बाँधते देखा था, इसलिये अपने  
चीर पहिनेके अशानको अमरणाकर वह लजित हुई और वहीं  
ठिठुक गयी, एक चीरको तो उसने कम्बेपर रख लिया  
और दूसरेको हाथमें लिये हुए वह सरलताके साथ  
रामचन्द्रजीके मुखकी ओर देखने लगी। सीता चीर पहनना  
नहीं जानती है, यह सोचकर धर्मार्थमा राम सीताके समीप  
गये और अपने हाथसे पीताम्बरके उपर चीर कस दिशा।  
जानकीको चति-बेचमें चीर पहने देखकर समूका राजभवन

लक्ष्मणके भीषण रवसे धूःख डढ़ा ! उस हृदय हिक्का देनेवाले इत्यसे सभी दुखी हुए ! गमधीरताके सागर भगवान् बरिष्ठ भी अपने आवेशको नहीं रोक सके और उन्होंने अपने शकारकी जली-कटी बातें कैकेयीको सुनायी ।

बेहोश और दुखी राजाको प्रथामकर रामचन्द्रजी भाई और पक्षीसहित बन जानेके लिये रथपर बैठे । उनके विदेशपर व्याकुल अपार भीड़ आँखोंसे अमु बहाती हुई और कहाँकी नैकेयीको जली-कटी सुनाती हुई रथके पीछे-पीछे चली । रोकना और समझाना सभी बेकार दुष्टा । उस विदेशकी बाइमें कोई किसीकी नहीं सुनता था । सभी एक अहुत आकर्षणसे स्वयं ही लिंचे जा रहे थे ।

श्रीरामचन्द्रके चले जानेपर दुखी राजा पाण्डवोंकी तरह वह कहते हुए घरसे पैदल ही दौड़े कि 'मैं अपने प्यारे पुत्रों देखूँगा ।' उनके पीछे-पीछे साढ़े तीनसौ राजियाँ भी चलीं । सम्पूर्ण नगर समानरूपसे दुखी था । इतनी अपार भीड़ होनेपर भी कहीं भूलिका नामतक नहीं था । कारण, वहाँकी भूलि सबके आँखुओंसे कीच हो गयी थी । रामचन्द्रने अपनी माता और विताको रथके पीछे-पीछे आते देखा । सहा सवारियोंपर बदनेवाली माताको अनायिनीकी तरह रथके पीछे-पीछे दौड़ते देखकर मालूभक्त श्रीराम दुःखसे तिक्खिका उठे । वे अमरपाणीमें बैंधे थे, इसलिये सामने देखते हुए भी मातासे आँखें न मिला सके । पुरवासी हाहाकार कर रहे थे । माता और सल्ला रामके रथके पीछे बिना बच्चे-बाली गौकी तरह कल्प द्वरमें 'हा राम ! हा लक्ष्मण ! हा सीते !' कहती हुई और-जोरसे लहू कर रही थी । राम-लक्ष्मण और सीताके लिये उनकी आँखोंसे निरन्तर आँख बह रहे थे । रामचन्द्रने कहूँ बार अपने रथके चारों ओर चक्कर लगाती हुई अपनी हुःकिनी माताको देखा । वह पगड़ीकी भाँति इत्यरसे उधर किसी लोहे हुई चाँबको ढूँढ रही थी । रामचन्द्र सारयोने बार-बार कहते हैं, 'बहरी रथ बढ़ाओ ! जल्दी करो !' किन्तु आरों औरकी उमरी हुई भीड़ रथको आगे बढ़ने दे रही थी । इतनेमें ही महाराज दशरथने भी जोरसे चिह्नाकर सुमन्तसे रथ रोकनेके लिये कहा । सुमन्त दुविजामें पढ़ गया । राम चलनेके लिये कहते हैं और शकाक्षन तथा महाराज चिह्ना-चिह्नाकर छहरनेका आग्रह कर रहे हैं । शोक-सन्तास राम उस समय सूरसे बोले—

'मैंवा सूत ! यह भीषण दुःख आप अधिक समय तक नहीं देखा जाता । तुम रथको असी हाँको !

बेचारा सारथी क्या करता ? उसे बचावके लिये रास्ता मिल गया । सूतने जाती कहीकर घोड़ोंके आँख मारी । घोड़े तिक्खिकाकर चबने लगे । अगस्तमूह एक स्वरमें ऊँचे स्वरसे पुकार डढ़ा 'हा राम !'

इय जब राजमहलको पारकर राजपथपर चलने लगा तब भीड़ने वारों तदकसे आकर किर बेर लिया । वे जोग रामचन्द्रके साथ बन जानेका निश्चयकर इत्यासे रथके पीछे-पीछे दौड़ने लगे । रामने सबको वयाचिचि समझा-पुकाकर जौटनेका प्रबल किया । उन्होंने देखा—भीड़के साथ बड़े-बड़े ओद्रिय और बेदह ब्राह्मण ऐश्वर चल रहे हैं । उन्होंने रामके साथ बनमें रहनेका पूर्ण निश्चय कर लिया है । हुहस्पति और अंगिराके समान तेजस्वी महाराजाओंके भी पूजनीय और अद्वेष ब्राह्मण दुःखसे व्याकुल होकर रामचन्द्रके रथके साथ दौड़ रहे हैं । उन बूढ़े ब्राह्मणोंको वे किसी प्रकार भी न रोक सके । वयाचि रामने हवय कठोर कर लिया था, किन्तु अभी आँखोंकी लिहाजको न छोड़ सके थे । बूढ़े ब्राह्मणोंको पीछे-पीछे आते देख वे रथसे उतर पड़े और भाँति-भाँतिसे अनुनय-विनय करने लगे । राम किसी भी प्रकारसे जौटनेको राखी नहीं है, यह सोचकर बूढ़े ब्राह्मण दुःखसे साथ कासरस्वरमें अपने सफेद बाज़ोंको दिखाकर कहने लगे —

तथि धर्मद्वयपेत्रे तु किं स्यात् धर्मपंथं स्थितम् ॥

याचितां नं निर्वर्तस्व हंसशुक्लशिरोऽरुः ।

शिरोमिर्निर्मृताचार महीपतनपांसुरः ॥

( वा० गा० २।४६।२८-२७ )

धर्मात्मा रामचन्द्र ! यदि आप-जैसे श्रेष्ठ धर्मात्मा उल्लङ्घन भी धर्मका तिरस्कार करेंगे—ब्राह्मण-बचनरूपी धर्मकी ओरसे लिखुल होंगे—तब अन्य साधारणकोग धर्मका पालन किसप्रकार करेंगे ? हम प्रार्थना करते हैं, आप जौट चलें । आप धर्मानुषानमें अचल हैं । हम जमीनपर जौटनेके कारण भूसे भरे हंसके समाज चेत केशोंसे युक्त मिराँ-बाबे ब्राह्मण आपसे प्रार्थना करते हैं, आप जौट चलें ।

ब्राह्मणोंने दीनताके साथ दुःखपूर्ण शब्दोंमें अपनी परिस्थिति बतायी, वे बोले—'बहुत ब्राह्मणोंका वज्र फैजा हुआ है, वे तभी यज्ञ कर सकेंगे जब आप जौटकर जबोध्याको चलेंगे । आप स्थावर और झंगम सभी प्राणियोंके मिल हैं ।' हसप्रकार ब्राह्मणोंने भाँति-भाँतिसे प्रार्थनाएँ

की, जिन्हु रामचन्द्रकी अपने विश्वसे तमिक भी विचित्रित  
वही हुए।

एवं विकेशातां तेषां द्विजातीनां निवर्तने ।

दद्दो तमसा तत्र वारयन्तीव रथवम् ॥

( १०० १० २४४३ )

इसप्रकार औटनेके लिये श्रीरामचन्द्रसे ग्राहणेने  
प्रार्थना की, उसी समय रामचन्द्रको आगे आनेसे रोकती  
हुई तमसा नामकी नदी दीख पड़ी ।

इसप्रकार श्रीरामचन्द्रकी राहको तमसाने रोक लिया  
और हमारी खेजनीको स्थल-संकोच बार-बार रोक रहा है, इस-  
लिये इस खेजको हम यहीं समाप्त करते हैं। अन्तमें पाठकोंसे  
इतना ही निवेदन करना है कि यदि राम-वन-गमनके

भृत शान्त्यका पूर्णरीत्या इसास्ताद करनेकी इच्छा हो  
तो श्रीमद्वासनीकिं-रामायणके इस प्रकारणको आशन्त  
अवश्य ही एवं आहये। किंतु एक-एक रुक्षोक्तमें कल्परसके  
वे भाव भर दिये हैं जिन्हें हजार बार पढ़नेपर भी वही  
अनिवृत्तनीय आवन्द आता है। नियम पढ़ते रहिये, आपको  
वे रुक्षोक्त रोज जये ही मालूम पड़ेंगे!

हे राम ! तुम बनमें रहकर भाँति-भाँतिके छुशेंगोंको  
सहसे रहे, दुःख उठाकर भी हमारे लिये आवन्द ही छोड़  
गये। यहीं तो तुम्हारी इमण्डीयता है। तुम्हारे सभी कर्म  
अनुत्त हैं। संसारी मनुष्य तुम्हारी जीवाणुओंके रहस्य कैसे  
समझ सकते हैं ? प्रभो ! तुम्हारे सभी प्रकारके चरित्र  
सुननेमें श्रीति हो, यहीं इस पामर प्राणीकी अन्तिम प्रार्थना है !

## मर्यादा-पुरुषोत्तम राम

( लक्ष्म-कविराज १०० श्रीगयापमादजी शास्त्री साहियाचार्य, आयुर्वेद-वाच्सपनि 'श्रीहरि' )



मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् रामके पवित्र चरित्रकी  
विशेषता तथा लोकप्रियताका इसमें अधिक  
और प्रमाण ही क्या हो सकता है कि आज  
धर्मप्राण समग्र हिन्दू-जाति भगवान् रामको  
अवनार पुण्य या महापुरुषके रूपमें ही नहीं  
किन्तु साक्षात् परथक् परमेश्वरके रूपमें  
भक्तिभरित हृषयमें सारण करती है। जन्मसे ढेकर मृत्यु  
पर्यन्त लौकिक अभ्युत्थ तथा परलौकिक विभेदसकी प्राप्तिके  
लिये असंख्य शनाविद्योंके अनन्तर आज भी हिन्दू-जातिका  
प्रत्येक व्यक्ति भगवान् रामको ही सारण करता है। सुख-  
दुःख, सम्पत्ति-विपर्यि एवं जीवन-मरणके समयमें भी  
जिन महापुरुषका नाम सारण करके असंख्य प्राणी आज  
भी असीम सुख-शान्तिका अनुभव करते हों, उनके पवित्र  
चरित्रकी अद्वितीयताके सम्बन्धमें किसीको सन्देह ही क्या  
हो सकता है ? भार्मिक और साम्प्रदायिक भत्तेदोंके होते  
हुए भी आज समस्त हिन्दू-जाति मर्यादा-पुरुषोत्तम रामको  
अपना आदर्श महापुरुष मानती है। संसारका इतिहास  
देखनेसे पता चलता है कि जो गौरव भगवान् रामको प्राप्त  
है, वह गौरव संसारके किसी भी महापुरुष या नेताको  
अवतक नहीं ग्राप हो सका है। भार्मिक, सामाजिक एवं  
राजनैतिक तीनों जगतमें ही भगवान् रामका चरित्र अतुलनीय

है। यहीं कारण है, भार्मिक जगत्में भगवान् रामको उनके  
भक्तगण परब्रह्म परमेश्वरके रूपमें, सामाजिक जगत्में मर्यादा-  
पुरुषोत्तमके रूपमें एवं राजनैतिक जगत्में आदर्श नेता वा  
राजा के रूपमें लोग उन्हें स्मरण करते हैं। भगवान् रामके  
राज्यशासनकी सर्वोक्तुष्टाका पता तो इसी बातसे चल  
जाता है कि इस बीसवीं शताब्दी या वैज्ञानिक युगमें भी  
किसी सुख-शान्ति-पूर्ण समृद्ध राज्यके लिये 'रामराज्य'  
का उपमा दी जाती है। उसरे भारतके ग्रामोंमें 'रामदुहाई'  
की प्रथा अवश्यक भी प्रचलित है। जिस समय कोई भी  
दशहनीय अपराधी 'रामदुहाई' कहकर अपने अपराधकी  
जमा मार्गता है, तो उसे तुरन्त छोड़ दिया जाता है। कहूं  
युग बीत जानेपर भी भगवान् रामके नामका व्यापक प्रभाव  
अवश्यक भी बैसा ही बना हुआ है। भगवान् रामके चरित्रका  
चिन्तन तथा अध्ययन वह आत्मिक शान्ति प्रदान करता  
है, जो अतुलनीय शान्ति संसारके किसी भी महापुरुष या  
अवतारपुरुषके द्वारा प्राप्त करना सर्वथा  
अठिन है। यहीं कारण है, भारतके विभिन्न प्रान्तवासी,  
भगवान् रामके मातृक भक्तोंने अपने-अपने प्रातःकी भाषणोंमें  
अपनी-अपनी सुहृदिके अनुसार भगवान् रामके पवित्र  
चरित्रका गान किया है।

### रामकी पितृभक्ति

जिन लोगोंने रामायण आदि प्रन्थोंमें भगवान् रामके चरितका भली प्रकार भनन् तथा अध्ययन किया है, उन्हें वह भक्ति भाँति विदित है कि संसारके इतिहासमें मर्दाना-पुरुषोत्तम रामकी पितृभक्ति अतुलनीय है। किसी किंवद्दि वहुत ही डीक कहा है—

आद्वृतस्याभिषेकाय विसृष्टस्य बनाय च ।

न मया लक्षितस्तस्य स्वल्पोप्याकारविप्रमः ॥

राज्याभिषेकके लिये उल्लासे जाकर और जंगलके लिये भेज दिये जानेवाले भगवान् रामकी मुख्यालक्षितके उपर तनिक भी हर्ष-विषाद-जनित विकार नहीं दिखायायी यहे। किनका अपूर्व त्याग है, किनका अभ्रत चरित-बल है। युद्धराज राम अपने मृग्जित पूज्य पिताजीके समीपमें खड़े हैं। समीपमें ही विमाता कैकेयी बैठी हुई है। पूज्य पिताजीकी इस दयनीय दीन-दशाको देखकर कल्याणमय राम माता कैकेयीसे अव्यन्त विनम्र शब्दोंमें पूछते हैं कि ‘मातृ! मेरे पूज्य पिताजी आज इतने हुसी क्यों हैं?’ कैकेयी उत्तर देती है—‘राम! पिताके दुःखके कारण तुम हो। मैंने तुझ्हारे पिताजीसे दो चरदान भरी हैं। एक चरदानके द्वारा भरतके लिये अद्योध्याका राज्य और दूसरे चरदानके हारा औदृढ़ वर्षका तुग्हारे लिये बनवास।’ माताके इन वचनोंको सुनकर भगवान् राम गोस्वामी-तुक्षसीदासजीके शब्दोंमें क्या कहते हैं—

सुनु जननी सोइ सुत बड़ भागी। जो पितृ-मातु-बचन-अनुरागी।  
तनय मातु-पिनु-तोषनि-हारा। दुर्लभ जननि सकूल संसारा।।  
मरतु प्रानप्रिय पावहि रात्रु। विवि सब विवि मोहि सनमुख आजृ।।  
जाँ न जाँ बन पंसेहु काजा। प्रथम गनिअ मोहि मूँहसमाजा।।

पूज्य पिताजीके वचनोंकी रका या आशापादनके लिये अपने आदर्श चरितके कारण गुरुजनोंकी आँखोंके तारे, अद्योध्याकी समस्त प्रजाके प्राणोंसे भी अधिक प्यार भगवान् राम, ‘जिनका आज राज्याभिषेक होनेवाला था’ बनवासी सुनियोंके वेषमें अतुर लक्षण तथा मिथिलेश-राजकुमारी भगवती सीता देवीके सहित अद्योध्याका समन्वय राज्य-वैभव छोड़कर जंगलको जा रहे हैं। चन्द्रघाय रामकी यह अपूर्व पितृभक्ति तथा आदर्श त्याग अनन्त शतानिदयोंके अनन्तर आज भी हम भारतीयोंके चरित्र-निर्माणमें विशेषरूपसे सहायक हो रहा है। जिम्म समय

हमारा अब अनेक प्रकारकी भोग-नृप्याओंसे महिल होकर कर्तव्य-भ्रष्ट होने लगता है, उस समय भगवान् रामका पवित्र-चत्रित्र ही हमारे पथप्रदर्शकका काम करता है।

### रामका आत्मप्रेम

इतिहास-प्रन्थोंमें आत्मप्रेमके अनेक सुन्दर-सुन्दर उदाहरण हमें देखने और सुननेको मिल सकते हैं किन्तु भगवान् रामका आत्मप्रेम जो एक अमूल्य शिवासे हम भारतीयोंको कृतकृत्य कर रहा है, वह सर्वथा वर्णनातीत है। ज्ञोटी-ज्ञोटी-सी बातोंके ऊपर आज संसारके विभिन्न देशोंमें किंतु भी भाई अपने प्यारे भाइयोंके प्राणोंके गाहक बन जाते हैं किन्तु इस उत्तरदेश भारतमें हमें जहाँ कहाँ भी आत्मप्रेमके कुछ छृश्याही उदाहरण मिलते हैं उनका साकात् सरबन्ध पृक्षमात्र भगवान् रामके आदर्श चरितकी शिखासे है। आधीरातका समय है, मेघनादकी शक्तिमें आहत, प्रिय अनुज लक्ष्मणका अचैतन्य शरीर अपनी पवित्र गोदमें लिये हुए भगवान् राम सखीवनी बूटी लेनेके लिये गये हुए हनुमानके आनेकी ग्रीष्मा कर रहे हैं। हनुमानजी अभीतक नहीं आये हैं, प्रातःकाल होते ही लक्ष्मणके ओवनकी आशा आती रहींगी, इस काल्पनिक वियोग-वेदनासे रीवित होकर भगवान् राम अपने आँसुओंकी वर्षासे समस्त चराचरको शोकसागरमें ढूबोते हुए कहते हैं—

मुत वित नारि भवन परिवार। होहि जाहि जग बारहि बारा।।  
अस विचारि जिय जाग्हु ताता। निनहि न जगत सहेदर भाना।।

कैसी कल्पकामी उक्ति है और कैसा अहंत्रिम विचित्र आत्मप्रेम है। यदि आज भगवान् रामका दिन्य चरित ‘रामायण’ आदि उत्तर प्रन्थ इमारे समझमें न होते तो साथरण जनसमाजको आत्मप्रेमकी ऐसी सुन्दर शिखा कहाँसे मिलती?

### रामका प्रजारञ्जन और भगवती सीतादेवी

जिन आदर्श सती भगवती सीतादेवीने अपने पिता तथा श्वसुरके राजमन्दिरोंके समस्त विषय-विकास तथा सुखोपमोगोंको छोड़कर आज अपने प्यारे पतिदेव भगवान् राजशयाम रामके साथ करटकाकीर्ण दशहकारशयकी कर्कशा भूमिको ही फूलोंके पांचदे भान रक्षा है, वही कल रात्रयके द्वारा हरी आकर लक्षा पहुँचायी जा रही है। लक्षा-विलय होनेपर भी अद्योध्याकी राजराजेश्वरी विना किसी सवारीके पैदल ही भगवान् रामके सामने जाती आती है

और उनकी अग्रि-परीक्षा होती है। अभी रामको राज्य-मिथेक हुए थोड़े भी विन नहीं हुए हैं और न आयोज्या राज्यकी राजकालमी जनककिशोरीको एक दिनके लिये भी अयमामिराम रामकी सुखमयी सुखदृष्टि देखनेका अवसर ही मिला है कि अक्षस्मात् पुनः बजूपात् होता है। एक साधारण राजके हारा बगाये हुए अपवादके कारण अन्मुखिनी जानकी आब फिर भी पतिवेष्टमे परित्यक्त होकर अपने देवर लक्ष्मणके साथ जंगलको जा रही हैं। भाईकी आज्ञाको शिरोधार्य मानकर आनृभक्त खण्डमय अचेतनावस्थामें ही शेर और भालुओं-जैसे हिसक पशुओंसे भरे हुए उस भीषण जंगलमें रावराजेश्वरी, अवधकी राजकालमी जनक-नग्निकीको छोड़कर आयोज्या बापिस जा रहे हैं। चैतन्यदाम द्वानेपर रोती और कलपती हुई भगवती सीतादेवी भगवानसे प्रार्थना करती है कि हे सर्वान्तर्यामिन् ! भक्तान्त्रा-कल्पतरु !! भगवन् !!! यदि मैं अपने हुमायनके कारण हस जीवनमें घक्षयाम रामकी सेवाका पुरुष-फल नहीं पा सकी हूँ तो भी जन्म-जन्मान्तरमें मुझे मर्यादा-पुरुषोत्तम राम ही पति रूपमें प्राप्त हों, हे अनाथोंके भाग्य ! अग्रजाय !! यही मुक्त अनायिनीकी आपने प्रार्थना है। हे करुणामय ! प्रभो !! मेरे प्यारे देवर लक्ष्मण मुक्त अभागिनीको जङ्गलमें छोड़कर अकेले अयोज्या जा रहे हैं, उन्हें मार्गोंमें लिस्ती प्रकारका कट न हो, वे निरापद अपनी यात्राको समाप्त करके मेरे पतिवेष्टकी राजधानी अयोज्या नगरीतक पहुँच आयें और उन्हें सब प्रकारसे राज्यकार्यमें सहायता पहुँचायें, यही मेरी आपसे अनिम विनती है। सीतादेवी यह अपूर्व आदर्श, भारतकी देवियोंका यह उत्तमत चरित्र आज हम भारतीयोंको कहाँ लिखता यदि भगवान् रामके भावुक भक्तोंके हारा संसारमें रामचरितका प्रचार न होता। परस्पर विरोधिनी इन घटनाओंके सम्मिश्रणसे किस प्रकारके सुखदर और सुमधुर भावोंकी सृष्टि हुई है, इन बातोंके रहस्यका एता ज्ञानाना केवल उन भावुक रामभक्तोंके लिये ही सुखभ है, जिन्होंने पूर्ण भक्ति तथा अद्वाके साथ मनोयोगपूर्वक रामायण आदि ग्रन्थोंमें भगवान् रामके चरितका अध्ययन तथा मनन किया है। जिन भगवान् रामने पश्चिमीमें राम्यके हारा सीतादेवीके हरी जानेपर अपनी पर्याकृतीके बारों ओर—

सीतेति हा जनकवेशजवैजयन्ति ।  
हा मद्दिकोचन-चकोर-नवेन्दुलेख ।  
इत्यं स्फुटं बहु विलप्य विलप्य राम-  
स्तामेव पर्णवसंति परितश्चार ॥

—हासीते ! हा भियेशननिद्विभि ! हा रामके लोकन-चकोरके लिये अभिनव चन्द्रलेख ! तुम कहाँ हो ? इस-प्रकारके प्रकट कल्पण विलाप-कलापके साथ जनककिशोरीको सोजते हुए श्रीरामने दण्डकारयके साधारण प्रायियोंको कौन कहे तह-जलाओं तकको रुका दिया था। वेही भक्तवत्सल, दीनबन्धु दयामय राम अपनी जीवनसहचरी, प्राणाधिक-प्रियतमा, आदर्श सती भगवती सीतादेवीको एक साधारण प्रजापत्राके कारण पूर्णगर्भा होनेपर भी पुनः बनवासको भेज रहे हैं, यह कैसी हृदयज्ञावक घटना है ? राग-विराग, कोमखाता-कठोरता एवं दया-निर्दयताका एक ही स्थानपर कैसा अपूर्व सम्मिश्रण है ? अविचारक जोग इस घटनाको लेकर चाहे भगवान् रामके चरितके ऊपर किसी प्रकारका आलेप क्यों न करे किन्तु सर्पूर्व रामचरितके अन्वर यही एक ऐसी घटना है जिसने भगवान् रामको 'मर्यादा-पुरुषोत्तम' एवं भगवती सीतादेवीको 'आदर्श सती' के सर्वोच्च पदपर आसीन किया है। अन्तमें मैं इस माझलिक लोकके साथ-साथ सब-साधारणसे भगवान् रामके चरितका विन्दन करनेकी प्रार्थना करता हूँ।

कल्याणानां निधानं कलिमहमथनं पादनं पादनानाम् ,  
पादेयं गन्मुमुक्षोः सपदि परपदं प्राप्ये प्रस्थितस्य ।  
विश्रामस्थानमेकं कविवरवचसां जीवनं सजनानाम् ,  
बीजं धर्मद्रुमस्य प्रभवतु भवतां भूतये रमनाम ॥

## रामायण

चित्रमें ललाम है चरित्रमें ललाम शुभं.  
नाममें ललाम पद्याठमें ललाम है।  
पाठसे कुवासना भी नष्ट होती चित्तकी है,  
बुद्धिहीन नर होता रामका गुलाम है ॥  
चौपाई ललाम. छंद-सोरठा ललाम 'विष्णु'  
दास तुलसीका खूब कामिल कलाम है।  
घर्ण हैं ललाम और काण्ड हैं ललाम सब.  
शास्त्रमें पुराणमें रामायण ललाम है ॥

—गंगाविष्णु पाढ़ेय

## राम-चरित-मानसकी विशेषता

( लेखक—मोदामोदरस हायसिंहजी, कविकिर )



राम-चरित-मानस अर्थात् गोसाईं तुलसीदासकी विशेष-चरित्र विवरण-निवृत्ति परम प्रसिद्ध औपाई-रामायण साहित्य-संसारका अनुपम काम्बरक है, जिसकी मधुर प्रसाद ज्योतिसे भारतवर्ष ही क्षेत्रों, सारा संसार चकित और मुख्य हो रहा है और जिसकी तुलसीका दूसरा ग्रन्थ हिन्दी भाषामें सो कथा, अन्य भाषाओंमें भी शाष्ट्रद ही मिले। हिन्दी भाषासे इसे हठा दीजिये, बस, हिन्दी साहित्यकी शोभा ही नहीं, महिमा भी आधी ही रह जाती है। निःसन्देह वह अन्य शिरोमणि भूत-भावन भवानी-पति भगवान् शिवजीकी कृपाका प्रत्यक्ष फळ है, जैसा कि स्वर्ण कविने स्वीकार किया है—

संमु-प्रसाद मुमति हिय हुलसी। राम-चरित-मानस कवि तुलसी।।

सचमुच ऐसी सर्वोक्तुम्भर काव्य-निर्माण-प्रतिभाकी प्राप्ति विजा किरणे देवदत्तके सम्मत नहीं। बदि यह अन्य आध्यात्मिक गगनका अशान-तिविर-नाशक देवीप्रभान यात्मांश है तो साहित्यिक आकाशका भी अमाक्षरा इस दरसाता हुआ पूर्ण शरवन्धन है। बदि इसमें बाहु अगतका प्रकाश व्रद्धशंख है तो अन्तर्जगतकी भी अमित सत्त्वता है। बदि इसमें बाहरी घोर तुद—देवातुर-संग्राम-का वर्णन है सो भीतरी भीषण मानसिक समरकी भी भरपूर चर्चा है जो मानव-मानसमें सदासे होता आ रहा है।

राम-चरित-मानस स्वर्ण और मर्लका अर्थवं सम्मेलन है। अनुराग और विरागका अनुपम गैंड-बन्धन है। यिव और विमागका ज्ञानानी जुटाव है। भक्ति, ज्ञान और कर्म-कायदकी अलौकिक पवित्रतासम्पद त्रिवेणी है। इन्हें, अद्वैत और विशिष्टाद्वैतकी एक विचित्र शंखदा है। वेद-शस्त्रोंका सार और उपविषदोंका निषेद है। इसकी बहुत-सी औपाईयाँ मन्त्र-स्फूर्तियाँ हैं। कविने वह ही कैशदसे तत्कालीन विशेषी समग्रद्वयोंमें मेल करा दिया है। वैष्णव होनेपर भी मानसकार शिव, शक्ति और विष्णुमें भेद नहीं मानते थे। उन्होंने वही चतुराईसे शिवजीको 'भेदक व्याप्ति नक्षा सिद्य पाके' दिवाकर बहुत-सा सन्देह और बहुत-भी महिमता निटा दी है। 'बदमब विमव परामव-हारिनि' किस कर शाकोंको भी अपनाकिया है। सचमुच मत-मतान्तरोंके

सम्बन्धमें कविने वही ही उदारताले काम किया है। मानसमें साम्प्रदायिकता नहीं है—पहचात नहीं है। यह कहावतों और भीति-वाक्योंका भवदार है। यथा—

ठेढ़ जानि संका सब काहू। बक चन्द्रमाहि ग्रसइ न राहू।।

बोक्षियता इसमें कूट-कूटकर भरी है। इस गुणमें यह ग्रन्थ अद्वितीय है, यदि ऐसा कहा जाय तो भी मैं समझता हूँ, अस्युक्ति नहीं होगी। जालों अनुष्ठोने इसे पाठ करनेके लिये नागरी सीखी है। इसप्रकारसे सावरताके प्रकारमें इसने कम सहायता नहीं पहुँचाई है। सहज तो ऐसा कि निपट गंवार भी इसका अर्थ कर लेते हैं और कठिन ऐसा कि महामहिम पवित्रतोंकी तुदि भी कुछित होकर चक्र काटने लगती है।

वह अन्य कभी तुलसी नहीं होता। अब तीन सौ वर्षोंके बाद भी बैसा ही नया है। बदिक यों कहना चाहिये कि प्रतिदिन नवीन होता जाता है। सैकड़ों बार पढ़नेके बाद फिर पक्षना शुरू कीजिये आपको नित्य नवीनतापूर्ण मिलती ही जायेगी। इसे स्त्री-मुख्य, गृहस्थ-संन्यासी, आङ्गण-शूद्र, बालक-नवजातक, जवान-बूढ़े सभी प्रकारके लोग दिवचत्त्वीसे पढ़ते हैं। मैं इसे चालीस-पैंतालीस वर्षोंसे बराबर नित्य पढ़ रहा हूँ पर कभी जी नहीं उड़ता, प्रत्युत बार-बार पढ़नेकी हुएका बनी ही रहती है। कभी तो पाठ करनेमें हर्षातिरेक और रोमाछ, और कभी-कभी कस्तुवातिरेक और अनुपात अनावास हो जाते हैं। जीवनभर अन्यथन और मनकी सामग्रियाँ इसमें प्रस्तुत हैं। इतना ही नहीं, इसका विषय कई वर्षोंमें इह किये जानेकी चीज है। इसमें क्या नहीं है? सर्वे सोबनेकालेके लिये सब कुछ है। भुक्ति-मुक्ति दोनों ही उपने-उपने स्थानपर सुशोभित हैं। प्रयत्न करनेसे इनके हारा भोग और मोह दोनों मिल सकते हैं। निर्मल आध्यात्मिकता और नीतिशूल लौकिकताका इसमें मध्य-कालन-योग है। गृह-से-गृह बेदान्त और संक्षयके सिद्धान्त सरकार-से-सरकल मायामें मरे पढ़े हैं। साथ हो भीतिमतापूर्ण व्यवहारोंका प्रमुख प्रियकार है। राजनीति इसमें आदर्श-स्वरूप है। देविये, नीते विष्णु देहेमें सम्पूर्ण राजनीति-सागरको गोसाईंकीने मानो घड़में भरकर कमाल किया है—

मुकिवा मुख्सो चाहिये जान पानके एक ।  
पालह पोषद सकल अँग तुलसी सहित विवेक ॥

इसके पाव सर्वथा आदर्श हैं । इसके नायक-नायिका राम-सीता व्रज-मायाके स्वरूप अथवा परमेश्वर और परमेश्वरीके रूप हैं । रामा और प्रसा, रिता और पुत्र, भाई और भाईका उत्तमोत्तम गम्भीरा जैसा मानसमें है वैसा अन्यत्र देखनेको नहीं मिलता । यद्ये पात्रोंकी सो बात ही क्या, तुरे पात्र भी संसारमें अपने सानी नहीं रखते । रावण-सा शक्तिशाली और विद्वान् दूसरा कौन है ? मानस मनोयोग-पूर्वक पद्मेश्वर मालूम होता है कि इसके पात्र मानो आँखोंके सामने नाच रहे हैं अथवा मानसिक जगन्में एक बड़ी विशेष रामर्दीखा हो रही है ।

प्रकृति-बर्याँन तो कविने मनोहर और इदंप्राही किया ही है, मनोभाव-विश्लेषणमें भी वही दुर्लभ दृष्टा विलापी है, जो किसी-किसी सुकृष्णके लिये वहे गर्वकी वस्तु है । बर्याँन-शैक्षी वही रुचिकर है । विषय-विशेषका विस्तृत वर्णन अथवा संक्षिप्त वर्णन कविके गाँप हाथका खेल है । अर्थ अ.मिन अति आसर थेरे' का सिद्धान्त खूब निवाहा गया है । मानसकी भाषामें अवधी और व्यञ्जभाषा भिन्नी हुई है । कहीं-कहीं बुन्देलखण्डी और भोजपुरीकी भी पुट है । भाषाकी यामीश्वरा, प्रसाद और माधुर्य-गुणोंमें स्वाभाविकहृष्पसे परिणाम हो गयी है । यह भी मानसकी एक विशेषता है । इसमें राष्ट्रविष्वास, अर्थसौहृद, काव्य-गीति, घटनाकाम, और अंग-वकोक्षियोंकी छटा देखते ही बनती है । घटना क्रमवन्द अर्थात् सिद्धासिलेवार कथाभाग मफलतापूर्वक लिखनेकी योग्यता गोसाईर्वाँमें विलक्षण पायी जाती है । यदि यह बोन्हता महाराजा दूरदासमें होती तो सम्भवतः वह तुलसीदाससे भी बढ़ जाते । इस अन्यमें नवरसोंकी जाराएँ अवश्वत बहती रहती हैं । शंगार-रसका इसमें बाहुरूप है परन्तु प्रशंसाकी बात तो यह है कि अरबीहृषताका कहीं नामोनियान नहीं ! रूपक, उपमा, उपेष्ठा आदि अलंकार ऐसे सहज स्वाभाविक ढंगसे पाये जाते हैं भानो कविको इनके लिये कोई प्रयत्न ही नहीं करना पड़ा या । साहित्यशास्त्रके अविकांश अलंकारोंसे यह अन्य पग-पगपर सुरक्षित है । और तो बया, सम्पूर्ण राम-चरित-मानस ही एक बदा-सा मानसरोवरका रूपक है, जैसा कि इसके नामसे प्रकृत है । वह पुस्तक सुग्राव-राजवत्कालामें विकी गयी थी सो भी यह सर्वेतः असंभवी बन गयी और

समयका जातू इसपर न चल सका । वह आश्वर्ण, सौभाग्य और विशेषताका विषय है । एक बात और है । गोसाईर्जीने बहुत-से अन्य लिखे पर सभीका विषय रामचरित ही रहा । हाँ, कृष्ण-वीतावलीमें कृष्णचरित अवश्य है पर किंके लिये राम और कृष्णमें भेद नहीं था । यह भी कम विशेषताकी बात नहीं । इस भाँति इस अन्यशिरोमणिकी बहुत-सी विशेषताएँ हैं, जिनमेंसे कुछ मैंने ऊपर गिनानेकी बेटा की है ।

जिस भाँति खोटे और खरे सोनेकी जाँच कसौटीपर कसनेसे होती है उसी भाँति काव्य कसनेकी भी कसौटी होती है । इसकी जाँचके लिये प्रकार होते हैं—

काव्यं यशोसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये ।

सद्यः परनिवृत्ये कान्तासमितयोपदेशयुजेः ॥

अर्थात् काव्य कीर्ति बढ़ाता है, धनोपार्जन कराता है, व्यावहारिक ज्ञान देता है, अमंगल वा हुःखको दूर करता है, परमानन्दकी तत्काल प्राप्ति कराता है और भार्याके समान भनोहर पूर्वं हितकर उपदेश देता है । ये काव्य-निर्माणके प्रबोजन हैं । यदि इन गुणोंमें से दो भी मलीभीति प्रभूतरूपसे किसी काव्यमें पाये जायें सो भी उस काव्यकी सार्थकता हो जाती है, पर राम-चरित-मानसमें तो सभी युग जागू होते हैं । मानसकारकी सुकृतिका तो कहना ही क्या ? वह संसारमें बायुकी तरह दिग्नन्त-म्यापिनी हो रही है । मारतवर्षमें कौन येता स्त्री, पुरुष वा वाज्र कहे जो गोसाईर्जीको उनके रामायणके कारण नहीं जानता ? भारतवर्ष तो स्वदेश ही है । विदेशोंमें यूरोप-अमेरिकामें भी उनका यशोगान निरन्तर हो रहा है । उनके अन्यथा बहुत-सी विदेशी भाषाओंमें अनुवाद हो जुका है और वहाँके लोग उसे बड़ी अद्भुते देखते हैं तथा गोसाईर्जीको संसारके इनेगिने महाकवियोंमें मानते हैं । जो कवि राजाओंके आभित रहते थे वे परितोषिक हृत्यादिसे बहुत-सा धन उपार्जन करते थे । परन्तु सके विरक गोसाईर्जी तो धनकी परवा नहीं करते थे । उन्होंने अपना सब धन एक बार छोरोंको दे दिया था । इसलिये वह किसी राजाके आभित रहकर अन्य कवियोंकी तरह उसको फूड़ी-सची प्रशंसा नहीं करते थे । उनका तो सिद्धान्त था—

कीन्द्र जो प्राकृत नर नुग गाना । सिर धुनि गिरा हाँगि पठताना ॥

वह अपने 'राजा-राम'के आगे किसी सद्राकृष्ण क्या बता करते थे ? उनके सामने बादशाह जहाँगीरको मुँहकी

कानी पढ़ी थी । इसलिये उनके घोपार्जनकी बात ही क्या रही ? हाँ, यह अवश्य है कि उनके बाबू वहुत-से प्रकाशकोंने राम-चरित-मानसको प्रकाशित करके और बेच करके वहुत-सा धन प्राप्त किया है । मेरा तो अनुभान है कि यदि इस अन्यथा प्रकाशन किसी व्यक्तिविशेषकी सम्पत्ति होता तो वह अवश्य इससे प्रत्युत लाभ उठाकर संसारके बड़े धनियों और पौजीपतियोंमें गिरा जाता । व्यवहार-कीशल इस अव्ययमें आदर्श-स्वरूप है । स्वामी-सेवकके, शत्रु-गिरजके, राजा-प्रजाके, भाई-भाईके बर्ताव जो इसमें मिहते हैं उन्हें ध्वनियों रखनेसे कौन ऐसा मनुष्य है जो ज्ञान नहीं उठाता ? इस अन्य-रक्षणमें अमङ्गलके नाश करवेकी, दुःख दूर करनेकी अमोघ शक्ति है । हनुमानवाहुको रक्षना करके गोसाईंजीने अपनी बाहुका कवा दर्व दूर किया था । मानसकी वहुत-सी घोपाइयाँ अन्द्रोंका-सा चमत्कार दिखाती हैं—

कठिन दुर्भाग्य दूर करनेके लिये—

मंत्र महामनि विषय व्यालके । मेटत कठिन कुञ्कं भालके ॥

विषयवासना दूर करनेके लिये—

मन करि विषय अनन्त बन जरई । होइ सुखी जो यहि सर परई ॥

भारी संकट हटानेके लिये—

दीनदयाल विरद संमारी । हरहु नय मम संकट भारी ॥

काव्यनिर्माणमें सहायता-प्राप्तिके लिये--

जेहिपर कृपा करहिं जन जानी । कवि उर अजिर नचावहि बानी ।

सम्बविशेषपर परमेश्वरकी सहायता-प्राप्तिके लिये--  
मेरो हित हरि सम नहि कोऊ । पहि अवसर सहाय सो होऊ ॥

सब भाँति अपना मुधार करनेके लिये—

मेरि मुधारिहि सो सब भाँती । जासु कृपा नहि कृपा अधाती ॥

अधिक कहाँतक कहा बाय, इसके हारा जालों मनुष्योंकी औदिक और पारलौकिक कठिनाइयाँ दूर होकर भारी भवाई हुई हैं और हो रही हैं । इसका पाठ करते समय चत्रिविद्या, भावोंकी समीक्षा, और अनुसृत रक्षना देखकर मनुष्योंका मन सकाळ हो प्रफुल्लित हो आबन्द-साराहमें गोते ज्ञाने लगता है । मनोहर और उच्च उपवेशरक तो इस ज्ञान समुद्रमें अनगिनत भरे पढ़े हैं । गोसाईंजी उंकेकी ओट कहते हैं—

देह चोरकर यह फल भरई । भजिय राम सब काम विहाई ॥

क्यों, क्या इससे बदकर भी कोई सुनुपदेश हो सकता है ?

व्यव्यक्ते काव्य वा न्यूजाभिक्षयसे काव्य क्षमशः साधारण, मध्यम और उत्तम श्रेणीके होते हैं । व्यंभग्रधान काव्य उत्तम कोटिका होता है, मानस उत्तम कोटिका काव्य है, क्योंकि इसमें जहाँ-तहाँ व्यंग्योंका प्राधान्य है । विशेषकर लक्ष्मण-परशुराम-संवाद और अंगव-रावण-संवादमें तो व्यंग्योंकी भरमार ही है । फिर इसमें काव्यके प्रधान गुण ओज, मातुर्य और प्रसाद प्रकृतासे पाये जाते हैं । प्रसाद-गुणके लिये तो यह अव्यय परम प्रसिद्ध ही है, जिस हेतु निषट गेवार भी पदकर उक्त अर्थ समझ ही जेते हैं । मानस पदनेपर मातुर्यका प्रभाव पाठकोंके हृषयपर पड़े बिना नहीं रहता । ओजकी अपेक्षा प्रसाद और मातुर्यसे मानसका अधिकांश न्यास है । उदाहरणोंकी आवश्यकता नहीं—मानसके पाठक अपने हृषयसे एक बेचें । उत्तम काव्यका वर्णण तो गोसाईंजी सबं बताताते हैं—

सरल कवित कीरति बिमल सोइ आदरहि सुजान ।

सहज वैर निसराह रिपु जा सुनि करहि बखान ॥

कविताको सहज करनेके ही अभिप्रायसे अव्यक्तारने मानसकी भाषा आव्य रक्सी है । सचमुच इसके गुखोंपर मोहित होकर विशेषी भी मानसकी प्रशंसा करते देखे गये हैं ।

महाकाव्य सो अनेक हैं, पर राम-चरित-मानस अपने दंगका एक अद्वितीय महाकाव्य है । इसलिये यदि इसे महामहाकाव्य कहें तो भी आद्युक्ति न होगी । इसमें नव रसोंका समावेश यथास्थान बड़े ही मनोहर दंगसे किया गया है । विभाव, अनुभाव, सज्जारी और स्थायी-भावका अपूर्व प्रदर्शन है । महाकवि भवशृतिके उत्तर-राम-चरितकी नरह इसमें एक ही रस ( कल्प ) व्याप्त नहीं है । राम-सीताके सदृश्यमें बड़े सुन्दर संशोध और विदोग-शंगारक बर्णन किया है । सीताजीकी अनुपम ओआ ओं कवित है—

सोमा रु मंदर लिंगारु । मैय पानि-पंकज निज मारु ॥

एहि विदि उपजै लच्छ जब सुन्दरता सुखमूल ।

तदपि सँकोच समेत कवि इहाहि सीय समदूळ ॥

क्या कोई भी उत्तम-से-उत्तम तुला शंगार उपर्युक्त वर्णनका सामना कर सकता है ? क्या उम वर्णनोंमें अधिक

कविकला है ? मङ्गु सत्रक्षणे जिस राम-सीतारूपका दर्शन किया था उसका वर्णन-संयोग-शंगारका एक उद्घटन नमूना है—

नील सरोवर ह नील भनि नीक नीरवर स्पाम ।

लाजहि तनु सोभा निरखि केटि-केटि-सत काम ॥ इत्यादि ।

अनकुपुरकी कुलवारीमें शंगार-रसका विशद वर्णन है । पूर्वानुराग बड़ी ही मार्मिक रीतिसे वहाँ दिखाया गया है । सम्पूर्ण प्रथमें बत्र-तत्र रामके रूप और शोभाका वर्णन बड़ी सुन्दरतासे किया गया है । सीताहरयके बाद रामका विकाप और उन्माद, तथा हनुमान-जीहारा आये गये राम-सम्बद्ध और सीता-सम्बद्ध वियोग-शंगारके उत्तम उदाहरण हैं । शिवकी और रामजीके विवाहमें बहाँ-सहाँ हास्परसकी छाड़ा विराजित है । कल्याणरससे तो समूचा अयोध्याकाशद परिप्लावित है । इस काशदमें ग्रामबासी नर-नारियोंका ग्रसंग तथा चित्रकूटमें भरत-राम-संबाद गोसाइजीकी सर्वोक्तृष्ट रथनाएँ प्रतीत होती हैं । मेरी चुद तुदियें तो भरतका चरित्र रामायणके सब पात्रोंसे उत्तम और निष्कलंक है । राजकुमार भरतमें अलौकिक वैराग्य और अनुराग, सदाचार और सेवाका अनुपम सामर्ज्य है, उनका चरित्र रोप और शारदाको भी अगम है

प्रेम अप्रिय मंदर विरह भरत पर्याप्ति गंभीर ।

अपि प्रपदे सुरसानुहित कृपासिंहु रघुबीर ॥

×            ×            ×

भरत इन्हि समुद्रनि करतुती । भगति विरति मुन विमल विमूती ॥  
यानत सकल सुकवि सकुचाही । सेस गेस गिरा गम नाही ॥

युद्ध-प्रकरणमें जहाँ-जहाँ कोषका स्थायी भाव परिपुष्ट हुआ है तहाँ-तहाँ रीढ़ रस देखनेको मिलता है । जोग कहते हैं कि वज्रभाषा वा प्राकृतमें, भूषण कविकी कविताओंको छोड़कर, बीर-रसकी रथनाएँ नहींके बराबर हैं, किन्तु मानसके विषयमें यह नहीं कहा जा सकता । युद्धके प्रसंगमें तथा अनेक संवादोंमें बीर-रसकी कविताएँ प्रसुरतासे आई आती हैं । एक दाम-बीरका उदाहरण बोलिये—

जो संपति सिव रावनहि दीन्ह दिये दस माथ ।

सोर संपदा विमीपनहि सकुचि दीन्ह रघुनाम ॥

अयोध्याकाशदमें भरतका आगमन सुनकर मङ्गाहोंगे औ उर्माह और बीरत्व विकामा था वह वहा विवरण है—

मलोहि नाथ सब कहाहि सहरता । एकहि एक बढ़ावहि हरता ॥

×            ×            ×

जीवत पाठ न पाले धरही । रंड-मुँदभय भेदिलि करही ॥

बङ्गादहनमें भयानक-रसका समावेश है किन्तु मानससे अधिक कवितावलीमें विस्तृत और विशद वर्णन है । मैं उसे पाठकोंसे पढ़नेका अनुरोध करता हूँ । बानरी-सेनाओंकी जहाँ गीध सम्पातिसे भेट हुई है वहाँ भी भयानक-रस है । युद्धमें सैनिकोंके मारे-काटे जानेपर वीभत्स-रसकी धार वह चढ़ती है—

बीर परहि जनु तीर तरु मजा वह जनु फैन ।

कादर देसत डरहि तेहि सुमठनके भन चैन ॥

×            ×            ×

काक कंक लेइ मुजा उड़ाही । एकेत छीनि एक लेइ खाही ॥

एक कहहि येसिट सौंधाहि । सठहु तुम्हार दरिद्र न जाहि ॥

×            ×            ×

मट कपाल करताल बजावहि । चामुडा नाना विधि गावहि ॥

×            ×            ×

कांसिन्ह रंड मुँद बिनु ढोलहि । सीसपरे महि जय जय बोलहि ॥

अनुत्त-रस मानसके बहुत स्थानोंमें प्रवर्णित हुआ है । ईश्वरके गुल-वर्णनमें, राम-विवाहमें, इन्द्रिय-व्याक्रामें, बङ्ग-दहनमें, विराटरूपोंके वर्णनमें जहाँ देखिये वहाँ अद्भुत-रसका साक्षात्त्व है । कैजाम, लीर्य, मुनि-कुटीर स्तुति-गत और राम-राम्यके वर्णनोंमें शान्त-रस बहुतायतसे पाया जाता है—

बेठ सोइ कामनियु कैसे । घर सरोर सान्त रस जैसे ॥

कहा जाता है कि वज्रभाषा वा प्राकृतमें प्रकृति-वर्णन की कर्मी हैं, पर मानस-रामायणमें सो बात नहीं है । इसमें अनेक स्थानोंमें प्रकृतिके जीते-जागते चित्र हैं । चित्रकूटके उपवन, पम्पासरोवर, और लङ्घा-नगरीके वर्णन पढ़िये । राजा प्रसादभानुके शिकारमें एक सूखरका वर्णन बड़ा विवित है—

फिरत विमिन नृप दीप बराहू । जनु बन दुरेड ससिहि ग्रसि राहू ॥

बड़ बिमु नहिं समात मुखमाही । मनहु क्रोध वस उगिलत नाही ॥

चित्रकूटके एक बट बृहके कबा-पत्तोंका वर्णन बद्येष्व-हारा किया गया है । देखिये—

नील सघन घळव फूल काला । अविचल छाँह सुखद सब काला ॥  
मानहु अरुन तिमिरमय रासी । विट्ठी विवि सकेलि सुखमा-सी ॥

किञ्चिन्धाकाशदमें वर्षा और शरद-वर्षान विलासे  
किया गया है, जिसकी व्यायः प्रथेक औपाईमें खोली  
उपमा है । केवल कुः पंक्तियोंमें संविष्ट एश्वर्यका वर्णन  
अरब्यकाशदके अन्तमें नारी-निवासके व्यावसे नारदके प्रति  
रामने किया है । बालकाशदके प्रारम्भमें मानसकी सुख  
घटनाओंका विभाग कुः अनुधोंके अनुसार केवल पाँच  
पंक्तियोंमें किया गया है, वया—

हिम हिमतैल-मुता-सिव-व्याहू। सिसिर सुखद प्रभु-जनम-उडाहू॥  
बरनब राम-बिबाह-समाजू । सो मुदमंगलमय रितुराजू ॥  
त्रीषम दुसह राम-बन-गवनू । पंथक्षया खर आतप पवनू ॥  
बरथा धोर निसाचर रारी । सुरकुल सालि सुमंगलकारी ॥  
राम-रात्रसुख विनय बडाई । विसद सुखद सोइ सरद सुर्दाई ॥

मानस अलंकारोंकी खान है । कुछ थोड़े-से नारब्य  
अलंकारोंको छोड़कर व्यायः सभी अलंकार इसमें पाये जाते  
हैं । मैं पहले कह चुका हूँ कि सम्पूर्ण ग्रन्थ ही एक वर्षे  
रूपकमें विलासा गया है । बालकाशदके प्रारम्भमें इस  
रूपकको किये व्यवस्थाएं समझाया है—

पुराइनि सघन चारू चौपाई । जुनुति भंजु मनि सीप सोइदाई ॥  
छन्द सोरठा सुन्दर दोहा । सोइ बहुंग कमल कुरु सोहा ॥

इत्यादि ।

ऐसे तो एक-से-एक अनूठे अलंकार मानसमें भरे पढ़े  
हैं, पर मुझे सबसे बड़कर गोसाईंजीके रूपक पसन्द आते हैं,  
जो जहाँ-तहाँ सम्पूर्ण अन्यमें बहुतायतसे विलासे पढ़े हैं ।  
भरहाज मुनिके आधमें राजकुमार भरतका कैमी पहुनाई  
हुई सो खुनिये—

संपति चक्षरै मरत चक मुनि आय मुखलवार ।

तेहि निसि आसम पौजा राखे मा भिनुसार ॥

जनकपुरके और मसैन्य अयोध्याके निकासियोंको रामी  
चित्रकूटमें अपने आधमको किये जा रहे हैं । इस प्रसंगके  
रूपककी छटा देखिये—

आधम सागर सान्त रस पूरन पावन वाय ।

सेम भनहु करना सरित लिये जात रघुनाथ ॥

बोरति व्याव विराग करोरे । बचन ससोक मिलत नद नरे ॥  
सोच उसाँप समीर तरंगा । धीरज तट तम्बर कर मंगा ॥

विषम विकार तोरामति चारा । अम झम भैरव अर्दत अचारा ॥  
केवट तुव विद्धा बढ़ि नावा । सकह न लेइ एक नहि आवा ॥  
बनचर कोल किरात विचारे । यके विलोकि पथिक हिम हारे ॥  
आक्षम उदाधि मिली जब जाई । मनहु उठेड अंबुधि अकुराई ॥

कैसा सुन्दर उच्चेष्ठामतगत सांगहृपक है, कहते नहीं  
बनता ।

राम-चरित-मानस अस्यात्म-तत्त्वका खजाना है, जिसमें  
अग्रिमत रक्ष जहाँ-तहाँ भरे पढ़े हैं । ईश्वर ( राम ) के  
नाममें अस्त्राव अद्वा और विश्वास उपजानेका प्रकाशद प्रवक्ष  
सैकड़ों शब्दोंमें मावसक्षरने किया है, जो उनके मनसे  
ईश्वर-प्राप्तिका सर्वोत्तम और सर्वमुगम साधन है । मानसमें  
बहुत-सी ईश-सुतियाँ हैं जो आध्यात्मिक विचारोंसे परिपूर्व  
हैं । प्रसिद्ध हिन्दी-प्रेरणी डाक्टर विवर्सनका कथन है कि यह  
ग्रन्थ भारतवर्षके विषे वेदोंसे भी बड़कर है, बहुत ऊँक है ।  
साहित्यिक और आध्यात्मिक तत्त्वोंका इसमें बड़ा मनोहर  
सम्मेलन है । कौन अधिक विशद है, कहते नहीं बनता ।  
कहीं पहवा बाबी भार खे जाता है और कहीं तूसरा ।  
मानो समनूल महोंकी भिन्नत है । बात तो यह है कि  
कविकमंकुशब और अस्यात्मशिरोमणि मानसकारने  
गृह अस्यात्मज्ञानका बड़े विशद साहित्यिक शैक्षण्यमें  
उद्घाटन किया है । मानसमें सात गीतार्ण वयास्थान  
गुणित हैं । गीतासे मेरा अभिप्राय उस ज्ञान-वर्णनसे है  
जो 'माया ब्रह्म जीव जगदामा' के सम्बन्धमें किया जाता  
है । अयोध्याकाशदमें लक्ष्मणगीता, अरब्यकाशदमें  
रामगीता, और लंकाकाशदमें रथनीता कहीं गयी  
है । उत्तराकाशमें चार गीतार्ण हैं— वया—पुरजनगीता,  
सिद्धामतगीता वा भुश्यविद्गीता, ज्ञानगीता वा ज्ञानदीपक,  
और भक्तिगीता वा भक्तिमणि । त्याग-संकोचके कारण मैं  
इन गीताओंको उद्धृत नहीं कर सकता । पाठक मूलग्रन्थमें  
इसका अध्ययन करें । मानसका आध्यात्मिक तर्फ इतना  
बदलावन और बहुतग्राही है कि उसने अकेले लालों दिन-  
नर-नारियोंको विकर्मीं मुसल्लमान-किलान होनेसे रोक्कर  
सनातन वैदिक चर्चेको सुरक्षित रखा है । ज्ञान और योगका  
प्रसंग जैवसे हुए मानसकारने भक्तिर वर्षी विशद अवाक्या  
की है और इसे ही कविकाशमें सुगम मार्ग बदलाया है ।  
उनका सिद्धामत है कि भक्ति सुगम होनेपर भी खतन्त्र

अन्तिम आध्यात्मिक तरव है, जिसके अबीन ज्ञान और विज्ञान है। देखिये वे अपने चरितमात्रके मुँहसे अवध-  
आसियोंके प्रति कथा कहलाते हैं—

कहु भगति पथ कवन प्रसासा। जोग न जप तप मख उभवासा॥  
सरल सुभाइ न मन कुटिलाई। जयलाभ सन्तोष सदाई॥  
मोर दास कहाइ नर आसा। करइ तो कहु कहाँ बिसवासा॥  
बहुत कहाँ का कथा बढाई। पहि आचरन वस्थ मैं भाई॥।।

रामको बश करनेका सुगम स्वाभाविक ढंग सुना  
आपने?

मनके कुरोगोंको दूर करनेके लिये गोसाईजीका सिद्धान्त-  
रामबाला-धौपथ सुनने ही योग्य है। वह यह भी कहते हैं  
कि इसकी दूसरी दवा नहीं है—

सदगुह बेद-बचन बिसवासा। संयम यह न बिषयकी आसा॥  
रपुत्रि माति सजीवन मूरी। अनूपान सदा अति रुरी॥।।  
पहि बिधि मते, नुरेण नसाहीं। नाहि तो कोटि जतन नहि जाही॥।।

जेख यह गया। सम्पादकजीकी आज्ञा है कि संविष्ट  
लिखो। पर क्या कहें—कितना संविष्ट कहें? इस ग्रन्थकी  
विशेषताओंका भली भाँति उड़ाने करनेके लिये पुक बड़ीसी  
पोथी चाहिये। मर्मा इच्छा है कि राम-चरित-मानसकी  
साहित्यिक विशेषता, आध्यात्मिक विशेषता, साम्प्रदायिक  
विशेषता, ध्यावहारिक विशेषता और विलक्षण लोकप्रियतापर  
कुछ विस्तृत आलोचनाएं लिखकर कल्याणको समर्पित  
करें।

इसमें सन्देह नहीं कि सब मिला-जुलाकर गोसाई  
तुलसीदास-सदृश दूसरा कवि हिन्दीमें देखनेमें नहीं आया।  
मेरे मित्र परिषद्वत् रामनरेश त्रिपाठीजीका कथन है कि  
हिन्दीभाषामें केवल तुलसीदास ही कवि कहलाने योग्य हैं।  
दूसरे कवि जैसे चिह्नारी केवल आदि तो अलंकारोंके कुत्रिम  
वज्रपर कवि कहलाते हैं। इस कथनमें अस्तुकि हो सकती  
है, पर श्रीहरिश्चौधर्जीका यह कथन नितान्त सत्य है—

कविता करके तुलसी न लें  
कविता लसी पा तुलसीकी कला।

धन्य कविकुलचूहामणि भक्तप्रबृह तुलसीदास ! और  
धन्य डगकी काव्यनिर्माणकारियों कला !!

## श्रीरामचरितमानसका महाकाव्यत्व

( लेखक—श्रीविन्दु ब्रह्मचारीजी )

( पृष्ठ ४६३ से आगे )



नसका अझीरस—शक्तार, धीर और शान्त हून तीन रसोंमेंसे एक रस महाकाव्यमें अझी मालासे रसला जाता है और सब अङ्गरूपसे आते हैं। अब यह देखना है कि मानसका अझीरस कौन है? उसका साधारणतः अच्युतन करनेसे यह प्रतीत होता है कि उसका अझीरस धीर है। रामायणमें तीन युद्ध प्रधानरूपसे दुए हैं। पहला कौशिकाभ्रमपर मारीच-सुबाहुसे, दूसरा पञ्चवटीपर खर-दूषणसे और तीसरा लक्ष्मी रावणसे। अस्तु, ये नीनों संप्राप्त बाल, अरश्य और लक्ष्मीश्वरमें क्रमशः वर्णित हैं। बालकाशडके सीता-स्वर्यवंशमें, किञ्चिन्धाके वालिवध-प्रसङ्गमें और सुन्दरकाशडके माहति-चरितमें भी वीररस आया है। अबोध्याकाशडमें भरतकुमारपर निषाद-राजके सन्देह और लक्ष्मणकुमारके रोषसे तो बहुत ही विशदरूपसे वीररस छुना है। रहा उत्तर, सो उसमें चरित-भाग बहुत थोड़ा है। उसके अदिसे 'गये जहाँ सातक अमराई' पर वह समाप्त हो गया है। बालका पूर्व और उत्तरका उत्तरांश चरितभागसे रहित है। वे क्रमशः ग्रन्थकी भूमिका और उपसंहारमात्र हैं। कथासूत्रसे वे अलग हैं। इस हेतु रामायणमें वीररसका ही प्राधान्य है और वही उसका अझीरस सिद्ध है।

कुछ लोग रामायणमें कल्परसको प्रधान मानते हैं। उनका कहना है कि सम्पूर्ण अयोध्याकाशड कालिक प्रसङ्गोंहीसे भरा हुआ है—श्रीराम-इन-गमन, दशरथ-महाली कथाएँ, कल्परससे सरावोर हैं। फिर अरश्य और लक्ष्मी-काशडोंमें श्रीजानकी-हरण और लक्ष्मण-शक्ति-वेद भी कल्परसके मार्मिक स्थल हैं। अतः कल्परस ही रामायणमें प्रधान मानने योग्य है।

परन्तु ऐसा नहीं। कल्पणकी मात्रा वीररससे स्वल्प ही है। इससे उसे प्रधानता नहीं दी जा सकती। वीररस ही रामायणका अझीरस सिद्ध है।

विशेष अध्ययनसे उपर्युक्त उभयपक्ष यथार्थ नहीं जान पहते। न सो धीर ही और न कल्पण ही मानसका अझीरस

है : चाहे उनमेंसे कोई श्रीमद्रामायण (वाल्मीकीय) का अङ्गीरस हो, परन्तु श्रीरामचरितमानसका अङ्गीरस तो नहीं है। उसका तो अङ्गीरस उन दोनोंसे भिन्न कोई तीसरा ही है। वह है भक्तिरस अथवा शान्तरस। चरित-निर्माणके सङ्कल्पके समय कविके हृदयमें जिस रसका सज्जार रहता है वही उसकी रचनामें अवतरित होता है और लोकमें निसर्गतः उसीका प्रभाव व्याप्त होता है। विचार करनेसे यह उद्धोषित होता है कि भानस रचनेके समय कविकी वृत्ति स्वान्तःसुख अथवा आत्मानन्दमें ही लीन थी। उसीकी प्राप्ति प्रन्थ-निर्माणका प्रयोगन और उद्देश्य था। उन्होंने अपनी आत्मामें सनातन शब्द-अक्षरकी अर्चना की है। सरयूजीके रूपकमें कविकी दशा व्यक्त हो गयी है, यथा—

भयउ तृदय आनन्द उठाहू । उमगेत प्रेम-प्रमोद-प्रबाहू ।  
चर्नी सुभग कविता-सरितासी । राम बिमल जस जल भरितासी ॥

आनसका आदि-मध्य-अन्त राम-महिमा और रामभक्तिसे भरभूर है—परब्रह्म पुरुषोत्तम श्रीरामके पादारविन्दोंको, महाकवि महाराज, मानसके पुरुष नीरसे, निरतिशयानुरुक्ति-पूर्वक लालित कर रहे हैं। जैसे हँसके हर एक पोरमें रस होता है वैसे ही मानसके प्रत्येक शब्दमें रामभक्ति भरी हुई है। उसीका सहज प्रभाव उसके पाठकोंपर पड़ता है। अतएव उसीको उसका अङ्गीरस कहना युक्तियुक्त होगा।

वृत्तकी ऐतिहासिकता—चरित अत्यन्त प्रसिद्ध और ऐतिहासिक है; इसमें कुछ कहना ही नहीं। कविने प्रधान-रूपसे श्रीमद्भाग्वतीकीय रामायणका आधार लिया है। इसको उन्होंने स्वीकार किया है, यथा—‘यद्रामायण निगदितं ।’

काव्य-फल—चतुर्वर्ग ( धर्म-धर्थ-काम-मोक्ष ) मेंसे मानसमें कौन फक्तित है ?

रामायणमें सामान्यतः धर्मका निरूपण है। उसमें उसका संस्कार और विकार अथवा व्यवहार, दोनों विस्ताराये गये हैं, अर्थात् विधि और अनुदान, धर्मके इन द्वय रूपोंका उसमें निवृत्तन पृष्ठ सहटन हुआ है। श्रीरामचरित-मानसमें धृति, दमा आदि सद्गुणरूप सामान्य धर्म तथा विशेष ( व्यक्तिगत ) धर्मका सुवारुपमें उद्घट प्रदर्शन हुआ है। निरामागमके तत्त्व और उपदेश उसमें मूर्तिमान् होकर, धर्यन्त मनोहर रूप धारणकर हमको अपनी ओर सहज ही आकृतिं करते हैं। उसके नायक हमारे पृथ्वी

और हृष्ट हो जाते हैं, वे हमसे बिजते हैं और हम उनके संग संग ढोकते फिरते हैं। वे हमारे दुःख पृष्ठते हैं और हमारे हृदयको सान्त्वना देते हैं। इसप्रकार हमारी श्रद्धा उनमें टिक जाती है। उनके सखा-सहायक हमारे सखा-सहायक और उनके शत्रु हमारे शत्रु बन जाते हैं। उनके प्रिय पात्रोंसे हमारी पूरी घनिष्ठता हो जाती है—इतनी कि हमको अनुभव होने लगता है कि हम भी त्रेतामें प्राप्त हैं और उनके समाजमें समरक्षित हैं।

रामायणका यह धार्मिक समाज प्रवृत्तिपथसे निवृत्तिको और गया हुआ है, उसके सामाजिक धर्ममें प्रवृत्ति और निवृत्तिका भेद मिटा हुआ है, उसके सभी सत्यात्र शूद्र निवृत्ति-सुखका उपभोग करते हैं, सबकी अन्तर्दृति पुरुषोत्तम श्रीरामके चरणोंमें लगी हुई है। इसप्रकार सभी परमात्म-परायण और जीवन्मुक्त हो रहे हैं, कवि स्वयम् निर्देश करते हैं—

कांसल-पुरवासी नर नारि वृद्ध अम् बाल ।  
प्रानहुते प्रिय लाली सबकहैं राम कृपाल ॥  
उमा अवधबाली नर नारि कृताम् ३५ ।  
त्रिवृसच्चिदानन्दवन ध्युनायक जहैं भृप ॥

कविने यह दिखाया है कि सम्पूर्ण चराचर-जगत्का नियन्ता—नायक सर्वेभर ही राजाजेभर होकर इस धरातलकी शोभा दबा रहा है, वह समस्त जीवलोकका पिता और पति ही अपने स्वाभाविक प्रजापतिरूपमें प्रकट होकर प्रजावर्गको कृतार्थ कर रहा है। अतएव तत्परायण होना और उसके चरणोंमें भक्ति करना जीवकुलका परम धर्म है। उन्होंने कल्पाणास्पद पद्मपात्रोंकी ओर उन्होंने दयापूर्वक हमको आकर्पित किया है, इस भयकुर भवान्यवसे पारकर शाश्वत आनन्दके विष्य देशमें हमें ले जानेका उन्होंने पुण्य प्रयत्न किया है। इस हेतु परमार्थं या मोक्ष ही श्रीरामचरित-मानसका पुरुषार्थ-फल है। कविने उसकी फल-सुतिमें यह प्रकट भी कर दिया है। यथा—

‘श्रीमद्रामचरितमानसविदं भक्त्यावगादिन्तं ये,  
ते संसारपत्रहोरकिरणैर्द्वृत्तिं नो मानवाः ॥’

‘राम-चरन-रति जा चैहै अथवा पद निर्वान ।

माव-सहित सो यह कथा करें श्रवन-पुट पान ॥’

‘मदसागर चह पार जो पावा। रामकथा ताकै ह दृढ नावा ॥’

‘भवसागर’ से उनके और ‘भवबन्धन’ से कूटनेके सुगम उपायका उपयोग अवसर पाते ही मनीषी कविने जगह-जगह दे डाला है। वे कवि-कार्यालयका पालन करते हुए भर्माचार्य और तथा चार्यका भी कार्य करते जलने हैं। परमार्थकी ओर पूर्णरूपसे उनका जक्ष्य है। भगवान् रामके सर्वेश्वरत्व एवं परब्रह्मत्वका अखण्ड ज्ञान उन्हें बना रहता है। गोस्वामीजीने अपूर्व चमकार यह दिखाया है कि उन्होंने भूतलके अवताररूप रामजीको अवतारी बेदोदित ‘……… सांचानन्दाद्वैकरणात्मा’<sup>४</sup> परमार्थ रामसे बिलकुल मिला दिया है। वह अपनी उदार ब्रह्म-बुद्धिसे ही नव कुछ देखते हैं और उन्होंने अपने रामचरितमानसका निर्माण किया है। अस्तु, यह माननेमें कुछ भी अनुपपत्ति नहीं दिखायी देती कि मानस भक्तिरससे ही भरा है और भवसिन्धुसे जीवोंके उद्धारहीकी ओर उसका जक्ष्य है।

यद्यपि श्रीमद्भास्करमिपादको उपदिष्ट रामभक्ति अपवर्ग-फलसे उत्कृष्ट है तथापि यहाँ उसे स्थूल-मावसे मोक्षका ही भेद मानकर आलोचना की गयी है। सूक्ष्म आलोचना करने समय उसे बन्ध-मोक्षसे अतीत सहजा ब्राह्मी स्थिति ही कहना उचित होगा। कविने धर्मरूप वृक्षको मोक्षका फल माना है और भक्तिको उपरका मधुर रस, यथा—

‘सब कर फल हरिभक्ति सोहाई ॥

‘सब साधन कर फल यह सुन्दर। तब पद-पङ्कज प्रांति निरन्तर ॥  
 ‘सबैं सो दुर्लभ खग राधा। राम-भगतिर गत मद माया ॥  
 ‘राम-भगति सोइ मुकुति गोसाई। अनइच्छत और्व बरियाई ॥  
 ‘जिमि थल बिनु जल रहि न सकाई कोटि कौड़ि करै उपाई ॥  
 ‘तथा मांध-मुख मुनु खागराई। रहि न सर्क हरिभगति विहाई ॥  
 ‘अस विचारि हरि-भगति सयान। मुकुति निरादरि भगति हो माने ॥  
 ‘भगति करत बिनु जतन-प्रयास। संसृति मूल अविद्या नासा ॥  
 ‘मोजन करिय तुसिहित लामी। जिमि सो असन पच्चं जठरामी ॥  
 ‘असि हरिभगति सुगम-सुखदाई। को अस मूढ न जाहि सोहाई ॥

अर्थ न धर्म न काम रुचि गति न चहौं निरबान।  
 जनम जनम रति राम पद यह बरदान न आन ॥

मानसकारने जिस भक्तिकी देसी महिमा कही है और जो उनके मानसकी फल-स्वरूप है वह प्रेमलक्षण और

‘भीरामतापिनी उपनिषद् ।

परा भक्ति ही है, जिसका महर्षि शाकिष्ठ्य तथा देवर्पि नारदने अपने सूत्रोंमें वर्णन किया है, यथा—

‘सा परानुरक्तीदिवरे’ ‘फलरूपत्वत्’, स्वयं फलरूपेति ( ब्रह्मकुमारः ) सा कथै परमश्रेमरूपा, अमृतस्वरूपा च, यलूच्छा पुमान् सिद्धो भवति, तृष्णे भवति ‘………आद्मारामो भवति ।’

निवारणगति इस भक्तिमें सहज ही सिद्ध है ‘अनइच्छत आवै बरियाई’ तथा ‘रहि न सर्क हरिभगति विहाई ।’ परम्पुरा कवित्व-शास्त्रिकी तरह यह भी हृष्वरदत्त दिव्य गुण है। भक्तिमें बड़ी विशेषता तथा सौलभ्य यह है कि उसमें अहम्मति और इच्छाका अत्यन्त अभाव होता है और अहकार ही जीवेश्वरभेद तथा इच्छा ही बन्धनका मुख्य कारण है। भक्तकी मति-गति सर्वतोभावसे एक-मात्र भगवत्तहीमें लीन रहती है, इसके अतिरिक्त न उसे और कुछ दीखता, न भाता है। गोस्वामीजीने इसी भक्तिकी उत्कृष्टता वर्णन की है, जो ज्ञानलब्ध ब्राह्मी गतिसे अभिन्न है। पर सौलभ्य और अवाभताके कारण उन्होंने उसे (भक्तिको) अधिक कहा है। ( क्रमशः )

## रामायण और तुलसी

विश्व सकलकी पूज्य, पुण्य-प्रद-प्रभा प्रकासिनि,

भक्ति-भाव भरि भव्य, विज्ञता विमल विकासिनि,

मंगुल, मृदुल, मनोजः, निखिल नित नीनि सुहावनि,

देती मुख-प्रद सतत, सबहि रामायण पावनि,

मुदि विदित सकल कृत्याणमय, नित कारुकगुच नसावनी ।

है मुद मङ्गलमय सदा-श्रीगमचरित विस्तारिणी ॥

मधि पुराण, श्रुति, वेद, निर्मयी स्वर्ग-नैसनी,

भक्ति-प्रेम-साहित्यमर्थी, बन गयी त्रिवैनी,

यहि जल जो जनन्हात, सुखद सद्गति सो पावत,

‘तुलसी’ के उपकार मान, गुण गरिमा गावत,

नित इसके आश्रयसे उन्हें,

मिलती कौर्ति अगम्य है ।

‘शङ्कर’ व्यापी विश्रमें,

‘श्रीतुलसी-स्मृति’ रम्य है ॥

गौरीशङ्कर दिवेदी ‘शङ्कर’

## श्रीसुतीद्वजाकी प्रेमा-भक्ति

( लेखक-पं० श्रीजयरामदासजी 'दीन' रामायणी )



राम-चरित-मानसके अरथ-काशडान्तर्गत  
श्रीसुतीकथा मुनिके प्रसङ्गकी आलोचना  
करनेपर आपमें नवधा, प्रेमा, परा आदि  
सर्व प्रकारकी भक्तियोंका आवश्यं तथा  
सगुणोपासनाके अनेक रहस्य स्थृतया  
परिचित होते हैं। नवधासे यह तात्पर्य है—

कि भक्ति नौ प्रकारकी मानी गयी है—

ध्रवण कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।

अर्चनं बन्दनं दास्यं सत्यमात्मनिदेनम् ॥

( भागवत )

श्रीसुतीकथाजीमें यह इसप्रकार पाठी जाती है—

(१) श्रवण-प्रभु आगमन स्ववन सुनि पावा ।

(२) कीर्तन-कबुड़ कूट करइ मुन गाइ ।

(३) स्मरण-हे निवि ! दीनबन्धु रनुरामा ।

मंसे सठपर करिहैंहि दाया ॥

(४) पाद-सेवन-परेउ लकुट इब चरननिह लागी ।

(५) अर्चन-निज आलम प्रभु आनिकै, पूजा विविध प्रकार ।

(६) बन्दन-कह मुनि प्रभु मुनु बिन्दी मोगी ।

असुति करड़ें कवनि विधि तेगी ॥

(७) दास्य-मन-क्रम-बचन राम-पद-सेवक ।

(८) सत्य-मुनिहि मिलत अम सोह कृपाला ।

(९) आत्मनिवेदन-को मैं चढेउं कहाँ नहि भूत्रः ।

प्रेमा-अविरत प्रेम भगति मुनि पाई ।

परा-मुनि मणु मैँझ अचन हाइ बमा ।

पुलक सरीर पनमफक जैसा ॥

मानसमें नवधा भक्ति दो प्रकारकी कही गयी है ।

एक तो उपर्युक्त भागवत-कथित है जो श्रीलक्ष्मण्यगीताके प्रसङ्गमें आयी है। जब उन्होंने ईश्वर, जीवादिका भेद पूछते समय भगवान् श्रीरामसे पूछा था कि 'कहु सो भगति करहु ऐहि दाया' तब उसके उत्तरमें कहा गया था कि—

भगति वात्र अनुपम सुखमूला । मिहै जो संत होहि अनूकूला ॥

पुणः—

— भक्तिक साधन कहाँ बखानी ।

प्रथमहि विप्र-चरन अति प्रीती । निज निज धरम निरत सुति रीती ॥  
तेहिकर फल पुनि विषय विरागा । तब मम चरन उपज अनुरागा ॥

स्वणादिक नव भक्ति दढ़ाही—

यहाँ इसी नवधा भक्तिका लक्ष्य है । यह उस भक्तके लिये है जो सन्त-शरण नहाँ प्राप्त कर सकता हो, अर्थात् गृहस्थाश्रम त्यागकर अपनेको सन्त-सेवामें लगा उनकी कृपाका भागी न हो सकता हो । ऐसा भक्त वर्णाधर्म-धर्मका पालन करता हुआ विप्र-चरणामें निष्ठा कर उसके फल-स्वरूप विषयोंसे वैरागी बन उपर्युक्त श्रवण आदि भक्तियोंके हारा कमशः प्रेम और परा भक्तिको प्राप्त होकर कृतार्थ होता है ।

दूसरी नवधा भक्ति श्रीसुख हारा ही श्रीशर्वरीजीके प्रति याँ कहा गयी है—

नवधा भगति कहाँ तोहि पाही । सधधान मुनु भग्न मनमाही ॥

प्रथम भगति संकलन कर मंदा । दूसरी रति मम कथा प्रसंगा ॥

गुरु-पद-पैकज सेषा, तीसरि भगति अमान ।

चौथी भगति मम मुन-नान, कहै कपट तजि गान ॥

मंत्र जाप मम दृढ़ विश्वासा । पंचम भजन सो बेद प्रकामा ॥

छठ दृष्टि भील विरति बहु कर्मा । निरत निरंतर सजन-धर्मा ॥

सन्दर्भ सम नोहिमग जग देखा । भोहिते संत अंवक कर लेखा ॥

आदर्दं जशा लाभ संतोषा । मपनहु नहि देखे परा दोषा ॥

नदम सरल सब सन छाहीना । मम भोहि दिव हर्ष न दीना ॥

यह नवधा-भक्ति जब साधक सन्तके सर्वथा अनुकूल हो जाता है, (अथाने शर्वरीजीका) उसमें जिज्ञासा उत्पन्न हो जाती है, (तब विजानार्थं अग्नुमेवाभिगच्छत् समितपाणिः शोत्रियं शर्वानिष्ठं) तब सदगुरुका संयोग होनेसे उपज होती है । अर्थात् गृहस्थाश्रमसे उपराम-चित्त और निवृत्ति-मार्गीकी इद उत्कल्पनासहित सर्वतोभावेन विरक्त सन्तकी शरण होकर उसके साक्षियमें उपस्थित रह सेवामें रत रहना, सन्तके संगरूप प्रथम भक्ति है । जब उस सन्त गुरुदेवसे भगवत्-कथा सुन-सुमक्षर उसमें रति होती है तो

कल्याण



सुतौष्णिका प्रेमोन्माद ।

अधिरल प्रेम-मगति मुनि पाई । प्रभु देखहिं तर ओट लुकाई ॥

Lakshmi Vilas Press Ltd., Cal.



वह वृत्तरी भक्ति कहकराती है। दीसरी भक्ति कथा आदिके अवश्यका सुख मिलते-मिलते गुरुमें अधिक प्रेम होकर उनके पद-कल्पकी सेवा होना है। चौथी भक्ति अवश्य करते-करते गुण-गान करनेकी उत्करठा होनेपर निष्कपट-रूपसे स्वयं गुण-गान करने लगता है। पाँचवीं भक्ति श्रीगुरु-देवसे प्राप्त राम-मन्त्रके जापमें हृदयिक आरूढ होना है। सप्तसंगके प्रभावमें इन्द्रियोंका दूषन और नानाविध कर्मोंकी प्रबुत्सिसे दैशाय होकर सन्-धर्ममें मन लगना छठी भक्ति है। सातवीं राग-हेत्यकी निवृत्ति होकर सम्बुद्धि होना और जगतका भगवद्वृण ही दोखना है। इस समय सन्तोंमें अधिक निष्ठा हो जाती है। आठवीं यथा-जाभमें ही सन्तुष्ट होकर दोषदृष्टिका आत्मनिक स्थाग होना है। नवमी भक्ति मरल वित्त, सबसे निरद्वल व्यवहार, केवल भगवानका भरोसा करना और हृदयके इर्ष-विषाद, तथा दीनता-रहिन हो जाना है।

विंतक भक्त शब्दरीके प्रति कही गयी। हम भक्तिके द्वारा और अनुरक्त भक्त जपमया-गानोंके भक्तिके द्वारा प्रेमा और परा भक्तिको प्राप्त कर सकते हैं, रामायणमें दोनोंके वर्णन करनेका यही अर्थ है।

अब श्रीसुतीक्षणजीकी योग्यता, नश्रता, दीनता विचारने योग्य है—

हे विधि दीनबेंगु रघुराया । मोसे सठपर करिदृढ़ि ही दाया ॥  
ऐरे त्रिय मरोस दृढ़ नाहा । भगवि त्रिरति न ग्यान मनमाही ॥  
नहि सत्संग जेग जप जागा । नहि दृढ़ चरन कमल अनुरागा ॥  
एक बानि करनानिधानकी । सो प्रिय जाके गति न आनकी ॥

भक्तिकी प्रकाष्ठाके यही लक्षण हैं, सबे भक्त अपनेमें कांडे योग्यता होना कब मान सकते हैं?

'नहि सत्संग' कहनेमें एक रहस्य है, श्रीसुतीक्षणजी किसी कारण-वश अपने गुरुदेव महर्षि अगस्त्यजीसे विद्या पद चुकनेके बास्तुसे ही अलग रहनेके लिये विवश हो गये थे। वह कारण आगे मालूम हो जायगा। सन्त-समागमका मुयोग न पानेके कारण ही आपमें अवश्यादि नवधा भक्तिकी ही तारतम्यता पायी जाती है।

श्रीसुतीक्षणजी जब प्रभु-आगमन सुनकर प्रेमानन्दमें मग हो गये तब श्रीरघुनाथजी आपकी अतिशय प्रीति देख-कर—ऐश्वर चबूत्र कर पास पहुँचनेमें देर होना जान येसी परम प्रेमा-दशामें तत्काल मालूम न होनेसे अपना विरद्ध कुछ होता

समझकर त्वरके कारण हृदयमें ही प्रकट हो र्घुनाथारा साचात हो गये। फिर क्या था—  
मुनि मगु मौक्ष अचल होइ बैसा । पुलक सरीर पनस फलैंसा ॥

श्रीसुतीक्षणजी हृदयमें ही सरकारको पाकर रोमाञ्चित हो मार्गमें ही अचल होकर बैठ गये। जब श्रीरघुनाथजी निकट आ गये और बहुत प्रकारसे जगाने लगे तो ध्यान-जनित सुखकी समाधिके कारण सुनि नहीं जागे। तब विरद्ध संभारन उनीत-प्रेमानुगामी प्रभु श्रीराम, जिह्वाने पैदल चबूत्र कर आनेमें कुछ विलम्ब होता देख प्रेमविवश हो प्रेमीके हृदयमें ही प्रकट होकर अपना विरद्ध संभाला था, भला उसके हृदयमेंसे उसका प्रेमज्यों-कान्त्यों रहते सर्वथा कैसे निकल सकते थे? अतः—

भूप रूप नव राम दुर्गावा । हृदय चतुर्भुज रूप दिसावा ॥

भगवान् अपने लोला-अवतार-विग्रह राजपुत्र-रूपको छिपाकर अपने ही नित्य अवतारी विग्रह चतुर्भुजरूपसे हृदयमें दर्शन देते हैं, जिनसे अवताररूप दाशरथी रामके द्विभुज रूपके उपासक सुतीक्षणजी घबड़ाकर जग भी जार्य और भगवान् अपने दूसरे नित्यरूपसे हृदयमें बने भी रहें। वैसा ही दुश्मा भी—

मुनि अकुणाइ उठा तब कैसे । विकल हीन मनि फनिवर जैसे ॥

जैसे मणिधर सर्व मणिहीन हो जानेपर विकल हो जाता है वैसे ही राम-रूप छिप जानेसे सुतीक्षणजी अकुला उठे। यहाँ मुनिको चतुर्भुज-रूपका द्वेषी बताना अपनी अल्पज्ञताको ही मूर्चित करना है। कारण, यह उपमा ही इस प्रसङ्गको रूप कर रही है कि साँप मणिके जानेसे विकल होता है न कि किसी चीजको देखनेसे। सुतीक्षणजी 'भूप-रूपके दुराने' से विकल हुए हैं न कि चतुर्भुज-रूपको देखनेसे। भला, जो नित्य विग्रहके अवतारका प्रेमी होगा वह अवतारी स्वरूपसे द्वेष क्यों करेगा? कहीं अवतारी और अवतारमें भी कांडे भक्त द्वैत-कुद्धि कर सकता है? कदाचि नहीं। देखिये श्रीसुतीक्षणजीका ही बचन यहाँ ऐक्यका प्रमाण दे रहा है—

जदपि विरज व्यापक अविनाशी । सबके हृदय निरंतर वासी ॥  
तदपि अनुज श्रीसहित खराई । बसहु मनसि मम कानन चारी ॥

इन्होंने जिनसे सब कुछ सीखा था, उन गुरुदंव अगस्त्यजीके भी ऐसे ही अमेदके बचन हैं—

जयापि ब्रह्म अखंड अनन्ता । अनुभवगम्य भजहि जेहि संता ॥  
अस तव रूप बलानों जानी । पुनि पुनि संगुन ब्रह्म रति मानी ॥

ऐसे ऐक्यके बोधमें इष्ट कैसे सम्भव है ?

जैसे ही श्रीसुतीचण्डी अकुलाकर जगे वैसे ही सामने  
श्रीसीता और लपणलालजी सहित श्रीरघुनाथजीको देखकर—  
परे लकुट इन चरनन्हि लागी । प्रेम मग्न मुनिवर बड़ भागी ॥

जैसे हाथसे छोड़ देनेपर छहीं बेलाग-शीघ्रतासे  
पृथ्वीपर गिर पड़ती है वैसे ही वे बेसुध होकर चरणोंपर गिर  
पड़े । 'दशद इव' न कहकर 'जकुट इव' कहनेसे उनका  
कृष गत होना सूचित किया गया है । श्रीस्वायम्भुवमनुके  
प्रसङ्गमें—

'पर दंड इव नहि पद पानीः कहकर—

'हृष्पुष्ट तन भयं सोहायं । मानो अबहि भवनेत आंगे ॥

— सूचित किया गया था ।

कृषाणु भगवान् ने उन्हें अपनी विशाल भुजाओंसे  
उड़ाकर हृष्पसे लगा लिया, उस समय ऐसी शोभा हुई  
मानो तमाल-तस्से कनक-लता भेंट रही हो । यहाँ  
श्रीमुनिर्जिके गौर शरीर तथा श्रीसरकारके श्याम तनुकी  
तारतम्यता की गयी है । मुनि भगवान्को आभ्यन्तर लाकर  
विविध प्रकारसे उनकी पृजाकर बोले, 'हे प्रभो ! सरकारकी  
महिमा अमित है और मेरी लुकि तुच्छ है, मैं किस  
प्रकार स्तुति करूँ ?' मुनिने चौदह चौपाइयोंमें ऐसी  
दीनतामें रुनि समाप्त की है कि प्रत्येक दो-दो चौपाइयोंके  
अन्तिम चरणमें एक बार 'नौमि' नो दूसरी बार  
'आनु' शब्द क्रमपूर्वक आते गये हैं । जिन पदोंमें स्वरूपके  
सौन्दर्यक कथन हैं उनके अन्तमें नमस्कारामक 'नौमि'  
तथा जिन पदोंमें विरद कथन हैं उनके अन्तमें रक्षायक  
'आनु' शब्द बराबर चक्रा आया है । इस अपूर्व भावके  
अतिरिक्त पृक विशेष बात यह भी है कि 'नौमि' के अहं-  
कर्ताके आरोपको भी 'आनु' से संभाला जा रहा है ।  
अर्थात् 'मैं किसी योग्य नहीं हूँ' रूपी अपने निश्चयकी पुष्टि  
'आनु' से करने जा रहे हैं कि कहीं भूलकर भी यह भाव  
न आ जाय किमें स्तुतिका कर्ता हूँ । उस्य है ऐसी दीनता !

अब आपकी असाध याचनाका रहस्य देखिये—

आप संगुण-च्यानके बड़े प्रेमी हैं, अतः यद्यि वर  
माँगने हैं कि हे भगवन् ! यथापि आप एक अन्तर्यामी  
व्यापकरूपसे तो सबके हृदयमें बसते ही हैं, तथापि मेरे

मावसमें तो इसी बजमें विचरणेवाले रूपसे श्रीसीता-च्यापण-  
लालजीसहित विवास कीजिये । परन्तु प्रासिमें विहङ्गकी  
शंकासे उरनेवाले आतं याचककी तरह श्रीसुतीचण्डीजीने  
सोचा कि 'काननचारी' सङ्केत देकर श्रीश्वतार-विग्रहको  
तो मैंने निश्चित कर लिया, पर काननमें विचरना तो केवल  
चौदह बचोंके लिये ही है, कहीं देसा न हो कि सरकारके  
काननसे लौटकर राज्यासीन होनेपर जटाजट उतारकर किरीट,  
मुकुट आदि धारण करनेसे प्रभुका 'काननचारी' रूप न  
रहनेके कारण मेरे हृदयसे भी ध्यानका तिरोभाव हो जाय ।  
अतः पुनः सँभाल लेते हैं—

जो कोसल-पति राजिवनयना । करी सो राम हृदय मम अयना ॥  
अस अभिमान जाय जीन भेरे । मैं सेवक रघुपति पति मेरे ॥

यहाँ 'कोसलपति' और 'रघुपति' शब्दोंसे वह कसर  
पूरी कर दी गयी है ।

श्रीलोकाधाम प्रभुजीने देखा कि मुनिजी थोड़ा देर  
पहले तो ज्यानमें इनने मझ थे कि मेरे जगानेपर भी नहीं  
जागते थे, परन्तु इस समय उनकी याचनामें कितनी दुरकी  
सोच-सँभाल प्रकट होती है ! अतः इन्हें और मन्त्रतंत्र  
अवसर दे अनि आरंतकाके रहस्यका आनन्द लेना चाहिये ।  
भगवान् भी भक्तोंके माथ विनोद उरनेमें वैमे ही सुर्खी होने  
हैं जैसे भक्त भगवान्की लीलामें । भगवान् श्रीमुखमें बोले—  
परम प्रसन्न जानु मुनि मोहन । जो बर माँग दें सो तेही ॥

'हे मुने ! और भी जो कुछ हृच्छा हो सो माँगनेमें  
कमर न करो, मैं मब कुछ देनेको तैयार हूँ ।'

मुनिचण्डीजीने विचारा, मालूम होना है माँगनेमें अब  
भी कोइन-कोइन कमर रह गयी है, तभी तो प्रभुजी ऐसे  
कह रहे हैं । अहा ! मैं अलवज्ञ जीव कड़ीनक सोच विचार  
कर सकता हूँ । उचित और उत्तम तो यही है कि प्रभुके  
ही उपर छोड़कर अपने अभीष्टको मर्वाऊ पुष्ट कर लूँ ।  
अतः मुनि बोले—

कह मुनि मैं बर क्युँ न जाँचा । समुक्षान पर दृष्ट का सौचा ॥  
तुमहि नीक लागे रघुदण्ड । सो मोहि देव दाम सुवदाण्ड ॥

तब श्रीसरकारने यह कौतुक किया कि और तो सब  
प्रकारके उत्तम वर दे दिये, पर ध्यानका प्रसङ्ग यह देखनेके  
लिये नहीं आवे दिया कि मुनिजीको वास्तवमें तो ज्यानकी  
ही आतुरता है, देखें उसके अभावमें यह क्या सोचते हैं ?  
प्रभु बोले—

अविरह मगति विरति विभाना । होहु सकल गुनध्यान निधाना ॥

यह सुन सुतीक्षणजी व्याकुल-चित्त हो सोचने लगे कि और सब कुछ तो सरकार दे रहे हैं परन्तु मैंने जो सतत ध्यानका मुख्य वर माँगा था उसकी तो चचरा भी नहीं की ! उसी कमीको तो पूरी करनेकी बात थी । फिर सोचने लगे कि प्रभुने जिस द्वटिको सुधारनेके लिये अवसर दिया था वह तो यही है कि कोसकपति या रघुपतिस्वरूप तो अवधिकद ही है—

दश वर्षसद्वाणीं दश वर्षशतानि च ।

गमो राज्यमुपसित्वा ब्रह्मलोकं प्रयास्यति ॥

( २० रा० )

प्रभु म्यारह हजार वर्षोंतक ही तो कोसकपतिस्वरूपसे रहेंगे । पीछे परधाम पथारनेके बाद ऐसा न हो कि श्रीराज्यार्थीनरूपका ध्यान भी हृदयसे तिरोहित हो जाय । इसलिये मुनिने पुनः याचना की—

प्रभु जो दीन्ह सो बास मैं पावा । अब सो देहु मोहि जो भावा ॥

परन्तु-जानकी सहित प्रभु चाप-बान-धर राम ।

मम हितं मगन इन्दु इव बस्तु सदा यह काम ॥

हे श्रीधनुष-बाण-धारी रामजी ! आप श्रीलपणलालजी और श्रीसीतानार्दिमहित मेरं हृदयमें आकाशचन्द्रवत् सदैव निवाम करें । यही मेरी कामना है । तब श्रीभरकार-वदमस्तु कर्त्ता रमानिवास । हर्षिं चले कुंभज कृषि पासा ॥

इर्षित हो एवमभ्यु कह आगस्थ्यजीके पास चले ।

अब भुनीक्षणजीका अपने गुरुकर्य श्रीआगस्थ्यजीमें पृथक रहनेका कारण मुनिये । आप पहले जय विद्याध्यथन करते थे, तब सब कुछ पहले कुनैपर आपने गुरुजीको गुरुदक्षिणा माँगनेके लिये बहुत भजवार किया । गुरुजीने बार-बार कहा कि हम यों ही उच्छ्वास कर देते हैं, तुम गुरुदक्षिणाका हठ न करो । परन्तु जय आपने किसी प्रकार आग्रह करना नहीं छोड़ा तो श्रीआगस्थ्यजी भयोप होकर बोले कि 'नहीं मानने हो तो जाओ दक्षिणामें श्रीरामजीको लाकर मुझमें मिलाओ ।'

तभीसे सुतीक्षणजी वहाँसे चले आये और श्रीसरकार-की प्राप्तिके लिये अरथयमें भजन करने लगे । उक बातके कारण लौटकर गुरुदेवके पास नहीं गये । इसीलिये श्रीरघुनाथजीका वन-आगमन सुनकर आप और भी अधिक प्रेम-मम हो नाचने लगे थे ।

जब प्रभु चलने लगे तो सुतीक्षणजी बोले—

बहुत दिवस गुरु दरसन पाए । मण मोहि यहि आश्रम आए ॥

अब प्रभु संग जाऊँ गुरुपाहाँ । तुम्ह कहै नाय निहोरा नाहीं ॥

हे नाय ! मुझे इस आश्रममें आये बहुत दिन हो गये । मैंने बहुत दिनोंसे गुरुजीके दर्शन नहीं पाये । प्रभुके संग मैं भी चलूँ ? इसमें सरकारके लिये कोई संकोचकी बात नहीं है; मैं तो अपने प्रथोजनसे चलना चाहता हूँ ।

देलि कृपानिविष मुनि चतुराई । लिये संग विहँसे दोठ भाई ॥

कृपानिधान श्रीरामजी मर्मको जान गये । दोनों भाई हैं स पड़े पूर्व मुनिको साथ ले लिया और—

पंथ कहत निज भगति अनूपा । मुनि आश्रम पहुँचे मुरभूपा ॥

आगस्थ्यजीके आश्रमके निष्ठ घुँचे तो—

तुरत सुतीक्षण गुरुपहुँ गयऊ । करि दंडवत कहत अस भयऊ ॥

नाय कौसलाधीस कुमारा । आप मिळन भगत आधारा ॥

राम अनुज समेत बैदेही । निसदिन देव जपत रहु जेही ॥

श्रीसुतीक्षणजीने तुरन्त आगे बढ़कर गुरुदक्षिणासे उच्छ्वास होनेके लिये अपने गुरुदेवके पाम जा दरडवत् की और 'हे देव ! आप जिन तीन मूर्तियोंका रात-दिन जाप करते हैं वे श्रीजानकीजी और लपणलालसहित भगवान् रामचन्द्रजी आपसे मिलने आ पहुँचे हैं' कहकर आपने अपणको सूक-दर-सूद छुका दिया ।

भुनत अगस्त तुरत उठि धाए । हरि विलोकि लोचन जल-द्वाए ॥

श्रीआगस्थ्यजी सुनते ही दौडे और दर्शन पाकर प्रेममध्य हो गये । इसप्रकार मुनि सुतीक्षणजी गुरुदक्षिणाके बन्धनसे सुक हो गये ।

उसकी प्रेमाभक्ति अनुपम और परम सराहनीय है जिसने अपने प्रभुको प्रेमके बलसे सचमुच प्राप्तकर दक्षिणाका धन बना दिया ।

इस प्रसङ्गसे माता-भक्तिके सर्वाङ्ग तथा उपासनाके गृह प्रभाव और आर्त प्रेमके रहस्यके सिद्धा एक और भी भारी उपरेका मिलता है, अर्थात् गुरु और शिष्यके बीच यदि दक्षिणाका व्यवहार हो तो ऐसी ही सेवाकी भेंट माँगी जाय ।

वह शिष्य धन्य है जो ऐसे सभ्य कर्मका सौभाग्य प्राप्तकर स्वयं भी कृतार्थ होता है और अपने गुरुदेवको भी कृतकार्य कर सन्तुष्ट कर देता है ।

## हनुमानजी (हनुमन्त)

( लेखक—राय बहादुर अवधारसी लाला श्रीसतीरामजी वी० ए० )

हनुमानजी श्रीरघुनाथजीके परमभक्त, वहे वीर और वहे ज्ञानी थे। इनके जन्मकी कथा बालमीकीय रामायण-किञ्चिकायदमें यों लिखी है कि जब सीताजीकी सोज करते-करते वानर सेना समुद्र-नदिपर पहुँची तो अथाह जब देखकर सब घबरा गये। अङ्गदने धीरज धरके उनसे कहा कि यह समय विक्रमका है विषादका नहीं। विषादसे पुरुषका तेज नष्ट हो जाता है और तेज-हीन पुरुषका कोई काम सिद्ध नहीं होता। तुम लोग हमें यह बताओ कि तुमसें सौन वीर समुद्र फाँद सकता है? इसपर अनेक वानर बोल उठे, किसीने कहा कि हम तीस योजन फाँद सकते हैं, किसीने चालीस कहा; जाम्बवन्तने नवये योजन फाँदनेका बल बताया। इसपर अङ्गदने कहा कि समुद्रकी चौड़ाई सौ योजन हैं सो इम फाँदनेको तो फाँद जायेंगे किन्तु यह निश्चय नहीं है कि बौट भी सकेंगे। जाम्बवान् बोला कि आप सबके स्वामी हैं, आपको न जाना चाहिये। इसपर अङ्गदने उत्तर दिया कि न हम जावें, न और कोई जाय तो हम लोगोंको यहीं मर जाना चाहिये, क्योंकि सुश्रीकी आज्ञा है कि चिना सीताका पना लगाये हमको मुझे न दिलाना। जब यह बातें हो रही थीं तो हनुमानजी पकान्तमें बैठे थे। जाम्बवानने कहा कि तुम चुपचाप क्यों बैठे हो, तुम्हारी भुजाओंमें हतना बल है जितना कि गलहके पंखोंमें। तुम्हारी माता अञ्जना, यहले पञ्चिकस्थला नामकी अप्सरा थीं। अग्रिमुनिके शापके कारण वानरी हो गईं। और कुछर नाम वानरध्रेषुके घरमें जन्मीं, उनका विवाह केशरीके साथ हुआ था। वर्णाचतुर्में वह एक बार पहाड़पर भूम रही थीं कि पदवनने उनका अङ्ग उड़ा दिया। अञ्जनाने कहा कि हमारा पातिक्षत-धर्म कौन नष्ट करवा चाहता है? इसपर पदवनदेवने उत्तर दिया कि तुम्हारा पातिक्षत-धर्म भंग न होगा। हमारे संसर्गमें तुम महासर्व, महानेत्रस्ती और महापराक्रमी पुत्र जनोगी। वही पुत्र तुम हो। जब तुम बालक ही थे, बनमें सूर्यको उदय होते देन उसे कल्प नमककर, उसके लानेको दौड़े थे। इसपर इन्द्रने तुम्हारे ऊपर बज ग्रहार

किया और तुम्हारी बाई हनु (वाद) हट गयी। तबसे तुम्हारा नाम हनुमान् पड़ा। ३

ब्रह्मपुराणमें यह कथा विशेष विस्तारके साथ दी हुई है।

गोदावरी और फेना (फेनगङ्गा) के संगमपर एक बड़ा तीर्थ है, जिसमें स्नान-दान करनेसे पुनर्जन्म नहीं होता। इस तीर्थके अनेक नाम हैं, कृपाकापि, हनुमत, माजारं और अङ्गज। यह तीर्थ गोदावरीके दक्षिण तटपर है और इसकी कथा यह है—

‘केशरीके दो खियाँ थीं, अञ्जना और अद्रिका। दोनों पहले अप्सराएँ थीं। शापके बारा अञ्जनाका मुँह वानरका-सा हो गया था, और अद्रिकाका विलक्षीका-सा। दोनों अञ्जन पर्वतपर रहती थीं। एक बार अगस्त्य मुनि वहाँ पहुँचे। दोनोंने उनकी पूजा की और मुनिने प्रसाद होकर दोनोंको एक एक पुत्रका वर दिया। दोनों उसी पर्वतपर नाचनी-गानी रहीं। वहीं वायुदेव और निकर्तिदेव पहुँच गये। वायुके संसर्गसे अञ्जनाके हनुमान् पुत्र हुए और निकर्तिदेवके संयोगसे अद्रिकाके अर्द्ध नाम पिशाचगज पुत्र हुआ। वीछे गोदावरीमें स्नान करनेपर दोनोंकी शाप-निरूपि हुई। जहाँ अद्रिने अञ्जनाको नहलाया उस तीर्थका नाम आञ्जन और वैशाख पड़ा। और जहाँ हनुमानजीने अद्रिकाको स्नान कराया था वह माजारं, हनुमत और वृगाकपिके नामोंसे प्रभिद्व हुआ।’

वृगाकपिका अर्थ है जियका सम्बन्ध वृपकपिसे हो और वृपकपिकी कथा अभ्याय १२६ में दी हुई है।

देवतोंका पूर्वज बड़ा बलवान् हिरण्य तपस्याके बजसे देवनार्थोंका अर्जय हो गया था। उसका बेटा महाशनि भी बड़ा बली था। उसने एक युद्धमें इन्द्रको हाथीमें बौद्धकर अपने पिताको भेंट कर दिया। पिताने इन्द्रको बन्द रखा। पीछे महाशनिने वस्त्रापर चढ़ाई कर दी। परन्तु वस्त्रादेवने उसे अपनी बेटी देकर समिध कर ली। इन्द्रके बैंध जानेसे देवना बहुत दुम्ही हुए और उन्होंने विलुप्ते सहायता

\* वान्मी दीय रामायण-किञ्चिकायद ६६

† यह मंगम अकोलके दर्शक निजामराज्यमें है।

माँगी। विष्णुने उत्तर दिया कि वस्त्रादेवकी सहायताके बिना हम कुछ नहीं कर सकते। तब देवता वस्त्राके पास गये।<sup>४</sup>

वस्त्राके कहनेसे महाशनिने हनुमको छोड़ तो दिया परन्तु उनको बहुत फटकारा और उनसे कहा कि तुम वस्त्राको आजसे गुह मानो। हनुम सुँह जटकाये अपने घर आये और हन्दायासे अपनी दुर्दशा कही। हन्दायाने कहा कि 'हिरण्यमें चचा था तो भी मैं अपने चचेरे भाईकी मृत्युका उपाय बताती हूँ। तपश्च और यज्ञसे सब कुछ हो सकता है। तुम दण्डक-वनमें शिव और विष्णुको आराधना करो।' हनुमने शिवकी पूजा की। शिवने कहा कि 'हम अकेले कुछ नहीं कर सकते। तुम विष्णुकी पूजा करो।' तब हनुम और हन्दायाने आपस्तम्भके साथ गोदावरीके तटपर—गोदावरी और फेनाके संगमपर विष्णु भगवान्की आराधना की। शिव और विष्णुके प्रसादसे जलमेंसे शिव विष्णु दोनोंका स्वरूप धारण किये हुए (अर्थात् चक्रपाणि और शूलधर) पक्ष पुरुष उत्पन्न हुआ। उसने रसातलमें जाकर महाशनिको मारा, यह हनुमका प्यारा मित्र अद्विक वृषाकपि कहलाया।

वृषाकपि अरिन्दनका नाम अध्याय ७० में उन लोगोंके साथ भी आया है जिन्होंने गोदावरी तटपर तीर्थ-स्थापन किये थे।

विचारनेसे यह ध्वनित होता है कि वृषाकपि<sup>५</sup> और हनुमन्त पक्ष ही थे। वृषाकपिका अर्थ है पुर्खिग बन्दर। क्या हनूमान्‌जी ऐसे ही बन्दर थे जैसे आजकल अपोप्या आदि नगरोंमें उपक्रम करते हैं। जो ऐसे ही थे तो क्या कारण है जो आजकल कोई बन्दर जानी नहीं निकलता? हम तो यह समझते हैं कि हनूमान्‌जी और उनके सैनिक दक्षिण देशके निवासी थे। आजकलके विज्ञानसे यह सिद्ध होता है कि हजारों वर्ष पहले भारतका दक्षिण प्रान्त अफ्रीका Africa से मिला हुआ था, पीछे धरती बैठ जानेसे अब सागर बन गया। अफ्रीकाके हिंदूओंका मुँह बन्दरोंसे बहुत मिलता जुलता है। दोनोंका चिपटी माफ, दंब मथे और थूथनकी भाँति आगे निकले हुए मुँह इब भी देखे जाते हैं। क्या इस बातके माननेसे कोई आपत्ति हो सकती

है कि ये बानर उन्हीं हिंदूओंके भाई हों जो अफ्रीकामें अवश्यक बसे हैं और भारतमें नष्ट हो गये था वर्णसंकर होकर यहाँके निवासियोंसे मिल गये। इसमें एक शंका हो सकती है कि रामायणके बन्दर पिंगल वर्ण थे और अफ्रीकाके इवरी काले होते हैं परन्तु यह आवधाका असर है।

अब रहा हनुमन्त नाम। जो हम मान लें कि हनूमान् और उनके सैनिक प्राचीन द्रविड़ थे तो सम्भव है कि रावणकी<sup>६</sup> भाँति हनुमन्त भी किसी तामिल-शब्दका संस्कृत रूप हो और जब हनुमन्त शब्द बना तो उसकी उत्पत्ति विखानेको हनुमके बजासे दाढ़ हृष्टनेकी कथा रखी गयी हो। इस कथासे भी यह ध्वनित होता है कि हनूमान्‌जी पहले ऐसे कुरुप न थे। मुँह दूट जानेसे बन्दरका-सा हो गया। ऐसे ही वृषाकपि भी किसी द्रविड़ शब्दका संस्कृत अनुवाद हो सकता है। क्योंकि यह तो सिद्ध ही है कि बानर गोदावरीके दक्षिणके रहनेवाले थे, जहाँ आजकल कनाडी या तामिल भाषा बोली जाती है। हम इस विषयमें १६१३ के जनरल रायल प्रशियाटिक सोसाइटीसे प्रसिद्ध विद्वान् भिट्ठर पार्जिटरका मत उद्धृत करते हैं।

वृषा पुर्खिगके लिये द्रविड़ शब्द आया है। और यह शब्द कनाडी, तामिल और मलयालम तीनों भाषाओंमें बोला जाता है। तेलगूमें इसके बदले मन और पोदु बोलते हैं। कफि वन्दरके लिये इन चारों भाषाओंमें दो शब्द हैं—एक कुरंगु, दूसरा मंडी। बानरवाची कुरंगु तामिल भाषाका है। शेष तीनोंमें कुरंगु हरिनको कहते हैं। मलयालममें इस शब्दके दो रूप हैं। कुरंग हरिन और कुरन्नु बन्दर। तामिल भाषामें मंडी विशेषकर बँदरियाको कहते हैं। मलयालममें मंडी काले मुँहके बन्दरोंके अर्थमें बोला जाता है। कनाडी और तेलगूमें मंडी संयुक्त शब्दोंमें हिन्दी 'लोग'के अर्थमें आता है। यह अर्थ विचारनेके योग्य है। कनाडीमें बन्दरके लिये दो शब्द हैं कोटि और तिम्मा। और दोनों नये हैं। यह बात सर्व-सम्मत है कि तामिलमें प्राचीन शब्द बहुत हैं। अब आण और मंडीके मिलानेसे एक द्रविड़ शब्द बन जाता है। और उसका संस्कृतानुवाद वृषाकपि होता है।

\* भग्नपुराण अध्याय ८४

<sup>†</sup> क्योंकि हनूमानेके संसारमें वह वृषाकपि तीर्थ कहलाया।

<sup>‡</sup> इस शब्दपर विचार आगे किसी लेखमें किया जायगा।

<sup>§</sup> बन्दरके लिये संस्कृतमें शाखामृग-शब्दका प्रयोग इसका उदाहरण है।

आख-अंडीका संस्कृतरूप हुआ हनुमन्त ! ब्रविद् शब्दके संस्कृत शब्द वनालेके लिये बहुधा एक 'ह' पहले जोड़ दिया जाता है । इसके कई उदाहरण मिस्टर पार्सिटरने दिये हैं । जैसे तामिळ-भाषामें इतुर्धीका अर्थ है 'गरबीली ओ !' वही नाम डस छोका था जो हिंदूमा कहायी ।

आजकल हनुमान्डो तामिळमें अनुमरण कहते हैं जिससे प्रकट है कि तामिळमें संस्कृतका 'ह' गिर जाता है । इसीसे वह सिद्ध होता है कि श्रीहनुमान्डो विद्यादेशके

प्राचीन निवासी थे और उनका असली नाम आख-अंडी था । जिसका अवरार्थ लेकर संस्कृतमें बृषाकपि के बनाया गया और संस्कृतरूप हनुमन्त हुआ ।

इस यहाँ इतना और कहना चाहते हैं कि प्राचीन यूरोपमें एक असमय लड़ाकी जाति बंदल Vandal थी । उनके आक्रमणोंसे रोम-साम्राज्य छिप भिज हो गया था । बंदर और बंदल शब्द बहुत मिलते-जुलते हैं, वरने बहुधा बन्दरको बंदल ही कहते हैं ।

### वैदेही-विलाप

( पृष्ठ २०१ से आगे )

(१०)

तदितीता-गात्रा, रुचिर-नयनी अम्बुज-युता,  
बग्न-मता, धात्री, रघुकुलबधु, मैथिलि-मुता,  
अयोध्या-सी रम्या, लौहित नगरी हाय ! तजते,  
बिहा बख्ताभूषा, बरु विपिनकं साज सज्जे,

(११)

बनलीमें आई, सुख बस यही क्या निरखन,  
अनाथा दीना-सी, अहह प्रभु ! योही बिलखन,  
भक्ता यों भी कोई, निज प्रियतमा नाथ ! तजते,  
तुम्हे भी क्या पेसे, अयशकर हैं सज सज्जे ।

(१२)

मनोबान्धा भेरी, विमल नव आशा मुनहरी,  
जलने आई हैं, बरबस विषादानन भरी,  
प्रणाली प्यारी वे, प्रिय-प्रणवर्का हैं अब कहाँ ?  
निराशाका कंसा, यह मन रह कन्दन महाँ !!

(१३)

ठणझा पेसी तो, अबतक न का नाथ ! तुमने,  
मुझी देखी पेसी, कब निदुरता हाय हमने,  
हैरी रामोमें जो, अविकल अभी मधु नवला,  
बनी जाती देखो, नव-कमलिनी काल-कवरा !

(१४)

मुझ जन्मा तो क्या, अवनि कितनी निष्ठुर बनी,  
कमी होती है क्या, जननि शिशुंस भी अनमनी ?  
समा जाती मैं तो, अब अवनिमें हाय ! सुखसे,  
सदांका पा जाती, बस सहज ही आण दुखसे ॥

— रामाशङ्कर मिश्र 'बीपति'

\* लाखुनिक संस्कृतमें 'बृषाकपि' के अनेक अर्थ हैं—इन्द्र, शिव, विष्णु आदि ।

## ज्ञानदीपक-स्पष्टीकरण

( लेखक-साहित्यरचन पं० विजयानन्दजी श्रियांशु )

( पृ० २७१ से अगे )

**९—सात्त्विक श्रद्धा धेनु सोहाई ।  
जो हरि कृष्ण हृदय बसि आई ॥**

अर्थ—सात्त्विकी श्रद्धा विद्याई हुई अच्छी गौ है,  
यदि वह हरि-कृष्णमें हृदयमें आकर बसे ।

सात्त्विक श्रद्धा—श्रद्धा तीन प्रकारकी होती है—(१) तामसी (२) राजसी और (३) सात्त्विकी । यहाँ तामसी एवं राजसी श्रद्धाका उपयोग नहीं है । यहाँ तो सात्त्विकी श्रद्धाकी ही आवश्यकता है, क्योंकि वह पुरुष श्रद्धामय है । जिसकी जैसी श्रद्धा है वैसा ही वह है, अतएव सात्त्विकी श्रद्धावाला पुरुष भी सात्त्विक होगा ।

धेनु सोहाई—सोहाई व्याहै गौ है । भाव यह कि राजसिक-नामसिक श्रद्धा भी गौ हैं, पर वे सोहाई नहीं हैं, वृथ न होंगी, यथा—

नामस धर्म करहि नन् तप मय ब्रत अप दान ।  
देव न बरसहि भरनिपर देव न जामहि धान ॥  
बहु गज स्वल्प सर्व करु तामस । दापर हर्ष शोक भय मानस ॥

हरिकृष्ण—हरि सत्त्वगुणके अधिष्ठाता है, अतएव सात्त्विकी श्रद्धाकी प्राप्तिके लिये हरिकी कृष्णकी आवश्यकता है । हरि समोगुणके अधिष्ठाता हैं, सुपुर्सिके विभु हैं, उनकी हृषासे हरिकी कृष्ण होती है, सुपुर्सिकी कृष्णसे जागृति होती है और जागृति ही तुरीयका द्वार है । जब शङ्कर कृष्ण करके तमको दबावेंगे, तब सत्त्वका उदय होगा ।

जो हृदय बसि आई—अर्थात् जो हरिकी कृष्णसे हृदयमें आकर बसे, क्योंकि ‘जीव हृदय तम मोह विक्षेप, हृदयमें अन्धकार भरा हुआ है । बद्धुवाली गौ तमोमय

१ यह पृ० सम्पत्तियोंमेंसे पौच्छी है ।

\* श्रीतोष्ण शुभ-दुःखादि सहनेको नितिका कहते हैं, यह पृ० सम्पत्तियोंमेंसे चौथी है ।

† रमण कीर्तने केनः प्रेक्षणं गुणभाषणन् । सकल्पोऽध्यवस्थायश्च क्रियानिर्वृतिरेव च ॥

पतन्मैयुनमद्याहं प्रवदन्ति यनीयणः । विपरीतं नितन्यर्थमनुष्ठेयं सुमुकुभिः ॥

स्त्रीके रूप, लावण्य हावभाव आदिका न्यरण करना, दूसरेके प्रति कहना, स्त्रीके साथ क्रीड़ा करना, स्त्रीका दर्शन करना, एकान्तमें सम्भाषण करना, स्त्रीके सहके लिये दृढ़ निश्चय करना, उसकी प्राप्तिके लिये उद्योग करना तथा अमोह निश्चयकी पूर्ति करना, इन आठ प्रकारके आचरणोंसे बचनेको अध्यवर्य कहते हैं ।

अंधेरी जगहमें जाना नहीं चाहेगी । (इस चैपाईमें श्रद्धा<sup>१</sup> सम्पत्तिका वर्णन किया है ।)

**१०—जप तप ब्रत जम नियम अपारा ।  
जे श्रुति कह सुभ मध्यम अचारा ॥**

अर्थ—जप, तप, ब्रत, यम, नियम और वेदविहित धर्माचार, ये सब अपार हैं । जप, तप, ब्रत, सुभ धर्माचार ये सब उपरामताके अङ्ग हैं, यम-नियम दोनों समाधानके अङ्ग हैं ।

जप तप ब्रत—यहाँ जपसे वाचा, तपसे मनसा और ब्रतसे कर्मणा धर्माचारण बतलाया है, नहीं तो नियममें तीनोंका समावेश हो जानेसे पुनरुक्ति दोष आ जायगा, और गोत्त्वामीजीने यही अर्थ लिया भी है ।

जप, यथा—

तुम पुनि गम राम दिन राती । सादर जपहु अनङ्ग अरती ॥

तप, यथा—विमर्श देह तपाहु मन लागा । (इससे तितिचाका<sup>२</sup> वर्णन किया ।)

ब्रत, यथा—हरि तोपण ब्रत द्विज सेवकाहं ।

यम पाँच हैं—ब्रह्मचर्यमहिसा च सत्यास्तेयापरिग्रहात्

(१) ब्रह्मचर्य—स्मरणादि अद्विष्व भैथुनके अभावको कहते हैं । यथा—

ब्रह्मचर्यं ब्रतरत मति धीरा । तुमहि कि करइ मनोमव पीरा ॥

(२) अहिंसा—सदा सर्वदा किसी भी प्राणीसे द्वोह न रखनेको कहते हैं, यह सब यम नियमोंकी जड़ है, यथा—

‘परम धर्म श्रुति विदित अहिंसा’

‘धर्म कि द्या सरिस हरियाना ॥’

इसीकी सिद्धिके लिये शेष यम-नियमोंका उपयोग है । अहिंसाकी प्रतिष्ठा होनेसे उसके सचिकट प्राणिमात्र वैरत्याग देते हैं, यथा—

चरहि एक सँग गज पञ्चानन । वैर विगत विचरहि सब कानन ॥

(३) सत्य-इन्द्रिय और मनके द्वारा जैसा निश्चय किया गया, वैसी ही वार्ता और वैसे ही मनके होनेको सत्य कहते हैं । वह वार्ता विजिता, कु आनन्द, † और प्रति-पञ्चिकन्धा ‡ न होनी चाहिये । प्राणियोंके उपकारके लिये होनी चाहिये, उपवासके लिये नहीं । यथा—‘कहाहि सत्य प्रिय बात विनारी ।’ इससे कियाके फलको आश्रय मिलता है, यथा—‘सत्य मूल सब सुकृत पुष्ट है ।’

४-अस्तेय-शास्त्र-विधिके प्रतिकूल दूसरेके ग्रन्थको लेना स्तेय कहलाता है, और उस स्तेयके नियेधको अस्तेय कहते हैं । सृष्टा न रखना भी अस्तेय कहलाता है । यथा—‘धन पराव विषेत विष भारी ।’ इससे सब रक्त उपस्थित होते हैं, यथा—‘दारहि रक्त तटहि नर लहरी ।’

५-अपरिग्रह-विषयोंके अर्जन, रक्षण, चय और संगसे हिंसादि दोष होते हैं, अतएव उनके अस्तीकारको अपरिग्रह कहते हैं, यथा—

यदपि अर्थ अनर्थ मूल तम कृप परब एहि लागे ।  
तदपि न तजत मूढ़ ममता वस जागतहु नहि जागे ॥१॥

(विनय०)

इससे अन्यकर्यताका बोध होता है, यथा—‘निज निज मुखन कही निज होनी ।’

नियम भी पाँच हैं—‘शौच सन्तोष तपः रक्षाध्याये-इवरप्रणिधानानि नियमाः ।’

१-शौच—देह और मनके मलको बूर करना शौच है । यथा—‘सकल शौच करि जाइ अन्हायं ।’ शौचकी स्थिरतासे बुद्धिकी शुद्धि, उससे मनकी प्रसन्नता, उससे एकाग्रता,

\*-बचनापूर्ण, जैसे अपने पुत्र अश्वथामाका मरण मुचकर द्रोणाचार्यने युधिष्ठिरसे पूछा—‘हे आयुधम्! हे सत्यवादी! सचमुच अश्वथामा मारा गया?’ इसके उत्तरमें, युधिष्ठिरका अश्वथामा नामक हार्थीको अभिलक्ष्यकर, ‘हाँ, सच अश्वथामा मारा गया’ ऐसा कथन बचनापूर्ण है, यहीं बाणी विजिता कही जाती है । वक्ताका अर्थप्राय अन्य हो और आंतो अन्य ममक जाय । जैसे यहाँपर युधिष्ठिरने हार्थीको लक्ष्यकर कहा, और द्रोणाचार्यने अपना पुत्र ममक किया । पर इसको कहनेमें युधिष्ठिरने छलने काम किया, इसलिये वह वाक्य सत्य नहीं है ।

† आनितप्रयुक्ति । वक्ताको स्वयं अम हो और दूसरेको समझाना चाहे ।

‡ अप्रसिद्ध पर्योंके रहनेसे यथार्थ दोष करनेमें अक्षम । जैसे आर्य लोगोंके प्रति ग्रेन्ड्रमात्रा दोष करानेमें असमर्थ हैं ।

उससे इन्द्रियजय, और उससे आत्म-दर्शनकी योग्यता होती है । अपने शरीरसे शृणा और दूसरेके संसर्गसे शृणा होती है । यथा—‘रहहि न अंतु अथम सरोरु ।’

२-सन्तोष-प्राप्ति साधनसे अधिक पैदा करनेकी अनिष्टाको सन्तोष कहते हैं, यथा—‘आठवें यथा लाभ सन्तोषा ।’ इसके द्वारा सद्यसे बड़कर सुखकी प्राप्ति होती है, यथा—‘मन सन्तोष सुनत कपि बानी ।’

३-तप-जाङ्ग-गर्मी, भूख-प्यास आदि इनहके सहनेको कहते हैं । यथा—

कलु दिन भोजन बारि बतासा । किये कठिन कलु दिन उपवासा ॥

इससे देह-इन्द्रियकी सिद्धि और अशुद्धिका चय होता है, यथा—

बरप सहस दस लांगू सोऊ । ठाढ़े रंह एकपग दोऊ ॥  
मांगू बर बहु मौति होमाये । परम धीर नहि चलहि चलाये ॥

४ स्वाध्याय भोक्षणात्मका पदना अथवा प्रश्नवक्ता जप करना । इससे देवता-ऋषियोंके दर्शन होते हैं । यथा—

नाम जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू । मर्त-सिरोमनि भे प्रहलादू ॥

५-ईश्वरप्रणिधान-सब कर्मोंका ईश्वरार्पण कर देना, यथा—‘प्रभुहि समर्पि कर्म भव तरही ।’ इससे समाधिकी सिद्धि होती है । यथा—‘सहज रिमल मन लागि समाधी ।’

अपारा-कहनेका भाव यह है कि इन दर्शों यम-नियमोंमेंसे एक-एक असाध्य है । इनका पार नहीं पाया जा सकता । यह रोगी जीव क्या पार पावेगा?

जो श्रुतिकह-अर्थात् जिसके लिये वेदमें विधि है । वेदकी आज्ञा ही धर्म है । वेदकी आज्ञा दो प्रकारकी होती है (१) विधि और (२) निषेध । जिनमें विषेष सर्वथा व्याप्त है, इसलिये ‘शुभ भरम अचारा’ कहा ।

शुभ धर्म अचारा-इसमें सर्वपूर्ण कर्मकारण आ गया । यज्ञ-धानादि दोष धर्म सब इसीके अन्तर्गत हैं । यथा—

जहँ लगि कहो पुरान श्रुति एक एक सब याग ।  
बार सहस्र सहस्र नृप कियो सहित अनुराग ॥  
इस चौथाईसे उपरम कहा ।

११—तेह तृण हरित चरह जब गाई ।  
भावबच्छ शिशु पाइ पेन्हाई ॥

अर्थ—उस हरे तृणको जब गाय चरे और भाव-  
रुपी बछड़ा पाकर उसके थनमें दूध आ जाय ।

तेह तृण हरित—वे ही हरे तृण अर्थात् जप-तप, व्रत, यम,  
नियम और शुभ धर्माचार वे छहों प्रकारके सरस तृण उस  
अद्वारुपिणी गौके लिये चारारूप हैं । लौकिक गौका चारा  
तृण, और्याचिं और वनस्पति-भेदसे तीन प्रकारका होता  
है, और उनके भी यीजलह तथा काशडलह-भेदसे दो प्रकार  
होते हैं । कुल छः प्रकार हुए । इसी भाँति अद्वारुपिणी  
गौके चाराके भी जप, तपादि भेदसे छः प्रकार कहे हैं ।

हरा तृण कहनेका भाव यह कि तृण सूखा न हो,  
वरन् सरस हो; नहीं तो गां चायसे न खायगी, फलतः  
यथार्थ तुम्हि न होगी, दूध भी कम होगा, जिससे बछड़ेकी  
तुम्हि भी कठिन हो पड़ेगी, फिर और कामोंके लिये  
दूधका मिलना तो दूरकी बात है । अतः जप-तपादि  
आनन्दरहित न हों, यथा—

अस्थिमात्र है रह्यो सरीरा । तदपि मनक मनहि नहि पीरा ॥

चरे जब—भाव यह कि जैसे गौ गोठ छोड़कर बाहर  
जाय और गोचरभूमिमें चरे, इसी भाँति अद्वा भी हृदयसे  
बाहर शब्द, स्वर्ण, रूप, इस, गम्भरुपी गोचरमें, जिस रुचिसे  
भूसी गाय हरी धास चरती है, उसी रुचिसे शुभ धर्माचरण  
करे और तृप्त हो, यथा—

नित नवराम ब्रेमण धीना । बढ़ि धर्म दल मन न मलीना ॥

गाई—गाय कहा, धेनु नहीं कहा, क्योंकि चाला घर  
छोड़ आयी है । अकेली धास चर रही है, पर चित्त बहुको  
ओर लगता है, यथा—

जनु धेनु बालक बच्छ तजि गृह चरन बन परबस गई ।

यह गाय अब अधाकर तृण चरे, तभी इतना  
दूध वे सकेगी कि जिसमें बहेका भी काम चले और अपने

काम भी आवे, सरल रखना चाहिये कि चरा हुआ  
चारा गौके पेटमें है । यह सामर्थ्य गौमें ही है कि उस  
चारेका सात्त्विक परिणाम दूधके रूपमें जगत्के कल्पाणाके  
लिये देवे, राजसिक परिणाम अपने शरीरके पोषणके लिये  
जगत चरवे, और तामसिक परिणाम गोबर आदि पृथक्  
दे । किसी भी शिशीरोकी सामर्थ्य नहीं है कि इस भाँति  
सात्त्विक, राजस और तामस परिणाम किसी उपायसे  
पृथक् कर सके । इसी भाँति अद्वासे आचरित शुमचर्म  
अद्वाके उदरमें जाकर परिणामको प्राप्त होता है, और  
उसके सात्त्विक परिणाम—परम धर्म—से जगत्का  
हित होता है, नहीं तो जिस भाँति तृणादि मनुष्यके  
ग्रहण योग्य नहीं रहते, उसी भाँति अद्वाहीन शुभ धर्म  
भी मनुष्यके कामके नहीं होते, यथा—अद्वा विना धर्म नहि  
होई । विनु महि गन्ध न पावे कोई ॥

गौने जितने प्रकारका तृण खाया है, उन सबके सात्त्विक  
परिणामका स्वारस्य दूध है, इसी प्रकार अद्वासे जो यम-  
नियमादि आचरित हुए हैं उनके सात्त्विक परिणामका  
स्वारस्य परम धर्ममें है ।

भावबच्छ शिशु—अद्वारुपिणी धेनुका सात्त्विक भाव  
अद्वोध बबा है, वह छुल-कपट नहीं जाता, अतपृष्ठ बहुत  
प्यारा है । चरनेके समय भी उसीकी ओर च्यान लगा रहता  
है । इसी भाँति अद्वासे धर्माचरण हो और वह भाव इत  
न होने पावे, यथा—

किये सहित सनेह जे अघ हृदय राखे चेरि ।

संग बस किय शुम, सुनाये सकल लोक निहोरि ॥

करों ओ कलु धर्मी संचि पशि मुक्त सिला बटोरि ।

पंठि उर बरबस कृपानिधि दम्म लेत अंजोरि ॥

पाइ पन्हाई—जब गौ हरी हरी धास चरके तृप्त होकर  
सम्बाके समय घर जौटती है, तो बालक-बच्छको पाकर  
झब्बीभूत हो जाती है । उसके थनोंमें दूध आ जाता है । इसी  
भाँति अद्वा धर्माचरण करके कुत्तहुय होकर भाव-पुष्टिके  
लिये अन्तसुख होती है । उस समय वह परम धर्म प्रसवमें  
समर्थ होती है, यथा—

दिन अन्त पुर रस बहत थन हुकार करि भावत मई ।

( क्रमशः )

## महर्षि वशिष्ठकी महत्ता

( लेखक—श्रीकालीप्रसन्नजी चक्रवर्ती वी० ए० )

रामतं रामचन्द्रो दशरथतनयः कौशिको ब्राह्मणत्वम्,  
संस्कृतातीतास्तथान्ये मुवि समधिगता यत्रसादान्महस्तम्।  
जेतां वड्डिपूणां तरणिकुलगुणं ज्ञानविज्ञाननिष्ठम्,  
भूदेवादर्शमेष्टे विधितनुजनुवं तं यतीन्द्रं वशिष्ठम् ॥



रामचन्द्रके पवित्र चरित्र वर्णन करते हुए वेष्ठिं नारदने महर्षि वाल्मीकिसे कहा था—‘इस समय समस्त भूमध्यदलमें श्रीरामचन्द्र ही सब शास्त्रोंके तत्त्वको ज्ञाननेवाले आदर्श राजा हैं। धनुर्वेदके, दिव्य अस्त्र-शास्त्रोंके पारदर्शी पवित्र होते हुए भी इसासागर हैं। उनके अन्तःकरणमें कषायि अनुचित हिंसाभाव पैदा नहीं होता। वे विनयी और वितान्त नन्हे हैं, परम्पुरा दीनताको अपने पास भी फ़रङ्गने नहीं देते। ओजस्विता, तेजस्विता, सहिष्णुता, संयमशीलता, अहङ्कारशून्यता और शाजनीति-मता आदि अनन्त गुणोंके आजकल वे ही एकमात्र निवास-स्थान हो रहे हैं। अपने शत्रुओंको तो वे कराल कालके विकराल गालमें भेज देते हैं, किन्तु शरणागतोंको देखकर उनके हृदयमें इमा और करुणाका समुद्र उमड़ पड़ता है। प्रजापादान उनके अवतारका एकमात्र उद्देश्य हो रहा है। उनकी सत्यपरावर्यता ऐसी बड़ी-बड़ी हुई है कि ‘रामो द्विनामिमापते’ इसप्रकारकी लोकोक्ति विकल्पात हो गयी है। श्रीरामचन्द्रजी सत्यवादी होते हुए भी मिथ्यवादी तथा मिथ्यदर्शी हैं। पृकाशार मनुष्यका आकार इतने संस्कृतातीत अग्रिम गुणोंका आगार हो, यह कल्प आश्वर्यकी बात नहीं है।’

इस समय भारतमें और अन्यान्य पाञ्चाल देशोंमें वह बड़ा भारी आन्दोलन उपस्थित हुआ है कि जब प्रत्येक देशकी उच्चति उसके विवासियोंकी विजापर ही निभैर है तो विसप्रकारकी शिक्षाका प्रचार होना आहिये, जिससे मनुष्य सुशिखित हों और अपने देशकी उच्चति कर सकें। सुशिक्षा प्रदान करनेके लिये आदर्श विषयकी आवश्यकता

होती है। इस विचारसे इन दिनों सर्वत्र ‘गुरु द्वैनिक् विद्यालयों’ की स्थापना की जा रही है।

ऐसी परिस्थितिमें आदर्श विद्याप्राप्त अध्यापक वशिष्ठ श्रीरामचन्द्रजीके गुरु छौन थे, और उनको ऐसी शिक्षा दी गयी थी, इन बातोंपर योजा प्रकाश दाढ़ना आवश्यक और सामयिक प्रतीत हो रहा है। यथापि मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी भगवान् विष्णुके ही अवतार थे, उनके लिये वासवमें किसी भी शिक्षाकी आवश्यकता नहीं थी, तथापि मानव-शरीर कैसा और कितना पूर्ण हो सकता है इस बातको दिलानेके लिये ही परमात्मा नरवेद धारण करते हैं। श्रीकृष्णने अनुंनसे कहा थालकि ‘हे अजुंन! सब मनुष्य मेरे ही पथके पथिक हैं। यदि मैं वर्णालिमोचित कर्म न करूँ तो सारा मानव-समाज कर्त्तव्यविसुल और नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा।’ सभी अवतार अपने लीला-धारीके अनुरूप काम करते हैं। इसीलिये महर्षि वाल्मीकिने श्रीरामचन्द्रजीका चरित्र आदर्श मनुष्यके रूपमें विवरण किया है। वेष्ठिं नारदने श्रीरामको मनुष्य समझकर ही प्रशंसा की है। श्रीराम भी अपनेको मनुष्य ही समझते थे। इसी विचारसे वशिष्ठजीने उनको आदर्श शिक्षा दी थी।

इसुंविशियोंके कुशगुरु आदर्श वाहण महर्षि वशिष्ठ अयोध्यामें ही विवास करते थे। एक दिन महाराज दशरथने उनसे प्रार्थना की कि आप मेरे कुशगुरु हैं इसलिये श्रीराम, भरत, लक्ष्मण और शशी-हनुकी शिक्षा-दीक्षाका उचित सुप्रबन्ध कीजिये। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि सूर्य-वंशियोंको आदर्श शिक्षा देना ही महर्षि वशिष्ठके जीवनका एकमात्र लक्ष्य था। महाराज दशरथकी प्रार्थनाको महर्षिने सामन्द स्वीकार किया। उन्होंने हाजकुमारोंको पन्द्रह वर्ष तक सब प्रकारकी आश्वमोचित शिक्षाएँ दी। श्रीरामचन्द्र

\* यदि शाहं न वर्तेयं जातु कर्मणतन्त्रितः ।

मम वर्तमनुवर्तने मनुष्याः पार्वं सर्वशः ॥

उत्सदेवुरिये लोका न कुर्यां कर्म चेदात् ॥

संकरस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः ॥

† वहनो दुर्लभाशैव वे त्वया कीर्तिता गुणाः ।

मुने वक्ष्याम्यहं दुर्ज्ञा तैर्युक्तः व्रयतं नरः ॥

वन्देश वर्षकी अवस्थामें ही शक्त और शास्त्रके पूर्व पारदर्शी हो गये।

गुरु-गृहकी शिक्षा समाप्त होनेपर जगद-कारिण्य (बागरिका) की शिक्षाके लिये वशिष्ठद्वारा उन्हें गये अप्यके विद्वानोंकी देख-रेखमें समाजवधारक कठिपप्य अन्य राजकुमारोंके सहित श्रीरामचन्द्रजी लीथं-कान्त्राके लिये भेजे गयेऽु। प्रायः साक्षमरमें भारतके सब तीर्थोंमें, हिमालयसे समुद्रतट कुमारिका पर्वन्त और द्वारकासे गंगा-नागर तक श्रीरामने पर्वटन किया। इस अवस्थामें उन्होंने काशी, उम्बियनी आदि विद्यापीठों, बुधिष्ठ शाखिष्ठ व्यापारकेन्द्रों, सैनिकोंके विविध घृहों, अनेक राजाओंकी शासन-पद्धतियों और सर्वभूत-हित-रत अनेक अर्थ-महर्षियोंके ग्रन्थान्त गम्भीर आश्रयोंका सशिक्षण निरीक्षण किया। इस समय श्रीरामके कोमङ्क इवपर बनीकस विरक महर्षियोंके पश्चिम चरित्रका अधिक प्रभाव पड़ा। तीर्थाटनसे छौटे ही भारतीय-राम श्रीरामके मनमें तत्कालसुलभ वैराग्य उत्पन्न हो गया और वे दुःखमय संसारका अनियतताका अनुभव कर दिन-प्रति-दिन मखिय होने लगे। रामको यह अवस्था वशिष्ठजीको विवित हुई। अन्य गुरुओंकी तरह युह वशिष्ठने समावरणके साथ-ही-साथ अपनी शिक्षा समाप्त न की थी। रामके इवयमें जो उद्देशप्रद अशान्तिकारक असामयिक वैराग्य उत्पन्न हुआ, उसको वृत्त करनेके लिये आदर्श अध्यापक महर्षि वशिष्ठने जो समयांचित उपदेश किया, वही एक अपूर्व महान् अन्य योगवाशिष्ठके नाममें विद्ययात है। अनुनके वैराग्यजनित व्यामोहको हटाकर निष्काम कर्मयोगमें प्रकृत करनेके लिये भगवान् श्रीकृष्णने श्रीरामचन्द्राताका उपदेश किया था। किन्तु उसके बहुत दिनों पहले ही महाराम वशिष्ठने श्रीरामको बैसा ही उपदेश किया था। उन्होंने योगवाशिष्ठमें सिद्ध किया है कि यह पृथ्वी-कर्म-भूमि है। यहाँ कर्म करना अत्यावश्यक है। ममतारहित होकर अपने कर्त्तव्यका पालन करना चाहिये, जिससे मनुष्य नित्य सुखों जीवन्मुक्त हो सकते हैं।

शिक्षाका उद्देश्य है जीवनको सुखमय बनाना। यह पाश्राय परिष्ठत भी भानते हैं। किन्तु उसके सुखका

६४ विष्णागृहाद् विनिष्कम्य रामो राजावलोचनः ।

वशिष्ठप्रहितैरिप्रैः शास्त्रैश्च समन्वितः ॥

स्त्रिरैः कठिपर्येरेव राजपुत्र वैः सह ।

निरगात् स्वगृहात् तसादतार्थयाचार्यमुष्यतः ॥

( योगवाशिष्ठ, वै० प० )

मूल है भोग। इसर वशिष्ठप्रवर्तित विद्वापद्विक्षय द्वारा है कामना-परिस्थाग। वही स्थायी सुख देनेवाली है। पाश्राय जगत्की शिक्षामें इस अवधारके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इसलिये जिस देशमें आर्थिक उत्तरि अधिक है वही सर्वोच्च समका जाता है। अमेरिकामें प्रत्येक विद्यार्थीका करोड़पति होना ही एकमात्र सर्वोच्च अभिष्ठाय है। इसलिये वहाँके युव अपने छात्रोंको अर्थकरी विद्या सिलखा कर निश्चिन्त हो जाते हैं। परन्तु वशिष्ठप्रसुख भारतीय युव अर्थकी विद्या प्रारम्भमें सिलखाकर अन्तमें स्थायी सुख देनेवाले जानका उपदेश करते थे। आत्मनिति दुःख-निष्कृति अर्थात् दुःखका अत्यन्त अभाव ही सक्ता सुख है। इस संसारमें दुःखके कारण सर्वत्र वर्तमान हैं। दुःखका विलक्षण न होना सुखुम अवश्य है, किन्तु दुःखके सहन करनेका अभ्यास करनेसे कह सुखम हो जाता है। चौबीस वर्षटमें एक समय आधरेट भोजन न पानेवाले गरीब जनोनपर ही सुखपूर्वक निद्रा लेते हैं। लेकिन कितने ही जोग मक्कल, मिश्ची, मक्काही, मोदक, मालपूर्णोंका इच्छानुसार संहार करके भी शशिकान्त-कोमल दुष्प्रभवजायात्रा-पर करवटे बदलते रहते हैं। पास्तमें दुःख-सहन-शक्ति ज्ञान और अभ्यासपर ही निर्भर है। श्रीरामचन्द्रजी भी अभ्यासके लिये ब्रह्मचर्यका और ज्ञानके लिये योगवाशिष्ठका उपदेश मिला था। उपदेश देनेके बाद वशिष्ठजी श्रीरामचन्द्रजीको विद्वान् समझाकर निश्चिन्त नहीं हो गये, बल्कि इस ज्ञानका कायदेशमें ढोक-ठीक उपयोग होता है या नहीं, इसका भीनिरीच्य करते रहे।

श्रीरामका विद्याह किस कुलमें और कैसी कृत्यासे होना चाहिये, इसका परामर्श भी वशिष्ठसे लिया गया था। रात्यर्थ-व्यवहारके अन्यतर जब श्रीराम अयोध्या छौटे, तो उन्होंने उनका राज्याभिषेक भी किया। शासन-सूत्र हाथमें आनेपर भी श्रीरामको महर्षि वशिष्ठजी सदा उपदेश देते रहते थे। कुनि आत्मशक्तिके बारह वर्षमें समाप्त होनेवाले यज्ञमें निमन्त्रित होकर जब वशिष्ठजी चले गये थे, तो वहाँसे भी उन्होंने अपने प्रिय शिष्य रामको राजवैतिक उपदेश भेजा था । कि राजाका प्रधान भर्म प्रजाराजन है। इससे जो यश प्राप्त होता है, उसीको तुम अपनी अतुल सम्पत्ति

† जामातृयवेन वयं निरुद्धा-

स्वं बाल यवासि नवं च राज्यम् ।

उत्तः प्रजानामनुरजने स्या-

स्तसाद् यशो यत् परमं धनं वः ॥

समझना । जैसा गुह वैसा ही शिष्य, श्रीरामचन्द्रजीने भी इस सन्देशको पाकर प्रतिज्ञा की कि ० 'स्नेह, दया, मुख और तो क्षा, प्राच्यप्रिया जानकीको भी यदि त्यागना परे तो मैं सहर्ष त्याग कर सकता हूँ, किन्तु प्रलानुराजनसे कहापि तुँह न मोहूँगा ।' इस प्रतिज्ञाको उन्होंने कार्यरूपमें परिलक्षक और संसारको विद्धिका भी दिया । वस्तुतः स्नेह, दया, मित्रता और प्राच्यप्रिया—इनमें किसी एकके फलदेमें फँसकर ही मनुष्य कर्तव्य-पालनसे विचलित हो जाते हैं । महाराज शार्यसिंह—जिनका नाम अन्तमें उद्द हुआ—इसी चक्रमें था गये थे । श्रीराम और अर्जुनकी तरह इन्हें भी संसारकी असताता ज्ञात हुई थी । पहले दिन रोगी, दूसरे दिन हृद, तीसरे दिन मृत शरीर और चौथे दिन एक संन्यासीको देख महाराज शार्यसिंह अपना राज्य-कार्य छोड़कर विरक्त हो गये थे । यदि महर्षि वशिष्ठ अथवा श्रीकृष्णकी तरह शार्यसिंहको गुह मिले होते, तो वे कभी भी पक्षाभ्यासित एकदेशीय बौद्ध-धर्मका प्रचार संसारमें न करते ।

श्रीरामचन्द्रजीकी शङ्खाभ्योंको दूर करनेके तत्त्वदर्शी वशिष्ठ लिखे गुह वशिष्ठजीने, 'अह सद्य अगत् मिथ्या' कैसे है ? अह और अगतमें क्या सम्बन्ध है ? किसप्रकार सूक्ष्मसे स्थूलकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय होते हैं ? इन तत्त्वोंका उपदेश विशदरूपसे सरब भूतुर और प्राभ्य-भावमें किया है । आजकल पाश्चात्य अगतके नवनवादिकृत विज्ञानको देखकर लोग मुख और अमरुकृत हो रहे हैं । परन्तु योगकाशिष्ठको ज्ञानपूर्वक उन्नेशो इस बातको भवोमर्त्ति जानते हैं कि इन सब विषयोंका पूर्ण ज्ञान भगवान् वशिष्ठको था । वर्तमान युगमें खार्द केवलिनका 'आवर्तवाद' (Vortex Theory) एक महान् आविष्कार समझ आता है । परन्तु उत्पत्ति-प्रलयमें वशिष्ठजीने बतायाएँ है कि † वैसे ज्ञानाद्यका जब आवर्तकारमें स्फुरित होता है, वैसे ही एकमात्र आगतिक शक्तिसम्पद मन ही द्वय अगतरूपमें प्रकाशित होता है । दाहरणों भूतोपदेशका 'स्पन्दनवाद' (Electron Theory) भी ज्ञानादिनके पावर आता है । इन 'वादों'

\* जोह दयां च सौस्यं च यदि वा जानकीमयि ।

आराधनाय लोकानां मुक्तिं नास्ति मे अथा ॥

† सर्वं हि मन एवेदमित्यं स्फुरति भूतिमत् ।

जङ्गं जलाज्ञयस्फारैविच्छ्रेष्ठकैरिव ॥

( यो०वा० ३० प्र० )

को बतानेके बाद वशिष्ठकी विमल बुद्धि उस सूक्ष्मतम बादमें भी पहुँची है जिसकी कल्पनाका गम्भीरता भी पाश्चात्य अन्तःकरणमें नहीं है । वायुनिक पाश्चात्य परिवर्त-मण्डली स्थूलसे सूक्ष्मकी ओर जानेकी चेष्टा कर रही है । इसमें उसे सफलता मिलेगी या नहीं, भगवान् जानें । परन्तु वशिष्ठप्रमुख प्राचीन अधिगण्य योगदानसे सूक्ष्मातिसूक्ष्म आदि कारणमें पहुँचकर 'ऋग्यो मन्त्रददारः' के अनुसार मन्त्रोंके प्रबल करते थे । अतः उनके उपदेशानुसार अहसे चिदाकाश और चिदाकाशसे चित्ताकाश तथा भूताकाशकी कल्पना होकर उसमें स्पन्दन होता है और उसीसे इस जगत्की सृष्टि होती है । वशिष्ठजीने कहा भी है कि 'हे राम' जब तक तुम्हें पूर्ण ज्ञान नहीं होता, तब तक मैं आकाशब्रह्मकी कल्पनाके अनुसार सृष्टिप्रकरण समझाऊँगा । † कुछ दिन हुए पाश्चात्य लोग 'परमाणुवाद' (Atomic Theory) पर्यन्त पहुँचे थे । अब स्पन्दन वाद (Electron Theory) तक पहुँचकर अपनेको कृतार्थ समझते हैं, जिसकी वशिष्ठजीने मरुभूमिकी मरीचिकासे तुलना की है ।

सर जगदीशचन्द्र बसु महोदयने बूषादि उद्भिदोंमें भी मन है, इस बातका आविष्कार कर वैज्ञानिक जगत्को स्तम्भित कर दिया है । किन्तु जातों वर्ष यहाँ वशिष्ठ महाराजने कह दिया है कि आकाशमें, वायुमें, अग्निमें, वृक्षोंमें, पृथ्वी और पर्वतोंमें भी शुद्ध चैतन्य है । § स्थूल जगत्के मिथ्यात्मक परिक्षान अनादिकावसे मानव-हृदयमें बदलमूल है । सर्वविद्य वस्तुसमन्वित सुरासुरकिलाराधित स्थावर जङ्गमारमण यह द्वय जगत् महाप्रबलयके समय विश्वकुल नष्ट हो जायगा । तब तेज या अन्धकार कुछ भी नहीं रहेगा । केवल वही एक अखण्ड सत्ता रह जायगी जो दर्शन-द्वयसे

† यावद् रामाप्रबुद्धस्वभाकाशश्रयकल्पना ।

त्वदेवादोधार्यं यदा त्वमुपदिश्यसे ॥

आकाशवित्ताकाशाद्याशिदाकाशकलंकिताम् ।

प्रमुतादावहनान् यथाभन्मरीचयः ॥

चिनोति मलिनं रूपं चित्ततं समुपागतम् ।

त्रिजगन्तान्द्रजालानि रूपयत्याकुकारमकम् ॥

§ शुद्ध हि चेतनं निन्यं नोशेति न च शास्त्राति ।

स्थावरे जङ्गमे अ्योक्ति वैलेङ्गी एवने स्थितम् ॥

परमार्थसं शैलाः परमार्थसं द्रुमाः ।

परमार्थसं पृथ्वी परमार्थसं नमः ॥

पृथक् प्रादिमव्याख्याहीन चित्तविरहित अद्वैत विज्ञानस्तरहै, जिसमें ज्ञानतत्त्व परिस्फुरण होता है। स्पष्टहीन आकाशमें जिस-प्रकार नींव पीतादि रूपका भान होता है, उसी प्रकार चिन्मय ब्रह्ममें मिथ्या अगत् दृष्टिगोचर होता है। जैसे सञ्चुम्रका जल कहीं तरङ्गरूपमें और कहीं आवर्तरूपमें दिखायी पड़ता है, ऐसे एक ही सुवर्ण कटक, अङ्गुष्ठ और केषूर प्रभृति नामारूपमें परिचयत होकर दिखायी देता है, उसी प्रकार एक ही चिदात्माके आभमय अनन्त रूप साधारण्य लोगोंको दृष्टिगोचर होते हैं। वशिष्ठने रामसे कहा है कि 'हे राम, वही ब्रह्म अज, अनादि, अजर, अमर, शाश्वत और अमूर्त है, सबका कारण है।' उसको जाननेसे आत्मज्ञान-ज्ञानभक्त जीवन्मुक्त बन सकोगे। वहिंजगतके व्यावहारिक लोकाचारको वासनाविहीन होकर करते रहो। सुख और हुःखमें जिस्मृह और राग-ह्रेष्टान्य होकर अपने कर्तव्योंका पालन करनेसे ही तुम जीवन्मुक्त हो सकते हो।'

निर्विकार  
सत्यत्रत वशिष्ठ

पाठक यह न समझें कि वशिष्ठजी के बाल परोपदेशकुशल ही थे। उन्होंने अपने जीवनमें उसे करके भी दिखा दिया है। विश्वामित्रजी वशिष्ठ कैसे हुए—इसका सविस्तर वर्णन वाल्मीकीय रामायण तथा महाभारतमें पाया जाता है। इन पुस्तकोंको पढ़नेवालोंको यह भी ज्ञात होगा कि उनमें वशिष्ठजीका चरित्र कैसा उद्भव, उदार, रागहेतरहित, चमापरायण, सत्यसम्पद, त्यागयुक्त और ब्रह्मवल-परिपूर्ण है। जब कान्दकुड़जके राजा विश्वामित्र मृगया-व्यापारसे तुषार्त होकर सेनासहित महर्षि वशिष्ठके आश्रममें आये, तब महर्षिने उनका राजोचित्त त्वागत किया और सर्वान्य उनको आतिथ्य ग्रहण करनेके लिये सविनय आग्रह किया। पहले तो वशिष्ठाभ्यमर्की ग्राफुतिक सम्पत्ति देखकर ही विश्वामित्र चक्षित और चमत्कृत हो गये। सर्वत्र सुलभ सुन्दर-सुन्दर फल-पुष्पोंसे सुशोभित बृंचोंके ग्रामान्तरी हीतल तच्छमें फलमुक्ताशाकाहारी महर्षि, देवर्षि, सिद्ध, आरब्ध प्रभृति तपस्या-परायण तपस्वियोंकी मददकी देसकर विश्वामित्रजी मन्त्रमुग्र हो गये। अब उन्होंने यह देखा कि एक ही शब्दका नाशी कामधेनुसे वशिष्ठजीने अगणित सेनासहित उनका सर्वेव आतिथ्यसम्भार सम्पन्न नहीं दिया; तब तो उनके आश्वर्यका ठिकाना न रहा। विश्वामित्रजी इस अमूर्त-पूर्व आतिथ्यसे सन्तुष्ट तो खूब हुए; परन्तु शब्दलाको ले लेनेका ग्रवण लोभ भी उनके मनमें उत्पन्न हुआ और उन्होंने

उस कामधेनुको दे देनेका प्रस्ताव किया। वशिष्ठजीने पहले बहुत समझाया कि इस गायकी सेवा राजा-महाराजाओंसे नहीं हो सकती। यह आपके यहाँ जा भी नहीं सकती। यह इस आश्रमका जीवन है। इसीके द्वारा सब वृत्ति महर्षियोंके सर्वेविष्व देवर्षिनिरूपार्थ सम्पन्न होते हैं। आप हृषकर इसे न ले जाइये। परन्तु विश्वामित्र कब मानने लगे। उन्होंने वशिष्ठजीको तरह तरहके लोभ दिलाये। अन्तमें उस कामधेनुके बदले राज्य दे देनेको भी नैवार हो गये। किन्तु वशिष्ठजी तो आदर्श आहया थे। उनके निकट लोभ कैसे ? जब विश्वामित्र सब बपायोंसे यह गये तब उन्होंने कहा कि 'जिसकी लाडी उसकी भैस' की कहावतके अनुसार संसारकी सब वस्तुएँ राकाकी ही हैं, यह कहकर शब्दलाको बलपूर्वक जे घलनेको उन्होंने अपने सैनिकोंको हुस्म दिया। आज्ञा पाते ही वे उसको पछड़कर ले जाने लगे। शब्दलामें यह शक्ति थी कि विश्वामित्रकी सारी सेनाका कच्चमर मिनटोंमें ही निकाल दे। किन्तु आज विश्वामित्र महर्षि वशिष्ठके अतिथि हैं। इसकिये वह दिना वशिष्ठजी आज्ञाके कोई काम करना उचित नहीं समझती थी। इतना होनेपर भी वशिष्ठजीके चेहरेपर लेशमात्र भी कोरक भाव नहीं था और असाधारण शान्ति विराजमान थी। किन्तु शब्दलाके जब अस्याचारियोंके आत्माचारसे पीड़ित होकर सजाव नेत्रसे वशिष्ठजीकी ओर देखा और उनसे आत्मरक्षाके लिये आज्ञा माँगी, तो उन्होंने आज्ञा दे दी। फिर क्या था, कपिला तो सब चीजोंको पैदा करनेवाली कामधेनु थी। वशिष्ठजीकी आज्ञा पाते ही अपने दोमहूपोंसे कहे सहस्र सैनिकोंको प्रकटकर उसने विश्वामित्र और उनकी सारी सेनाका चेहरा बिगाढ़ दिया। यह देखकर विश्वामित्र अस्त्रन्त ऊँचित हुए और वशिष्ठजीके ऊपर कुद होकर शिवजीकी तपस्या करनेके लिये चले गये। अपनी ओर तपस्यासे आशुतोषको तुष्टकर और उनसे सब प्रकारके अस्त-शब्द प्राप्तकर बदला लेनेकी नीयतसे फिर वशिष्ठके आश्रमपर पहुँचे और किसी प्रकारकी सूचना न देकर ही ऊधम मचाने लगे। विश्वामित्रके तीव्र अस्त-शब्दोंके ग्रवण आश्रमके जीव विकल हो गये और वृत्ति तथा अस्तिकाम आहि-आहि करने लगे। अब वशिष्ठसे न रहा गया। वे अपना ब्रह्मदण्ड लेकर विश्वामित्रके सामने लखे हो गये। उन ब्रह्मदण्डसे ओकर लाकर विश्वामित्रके सब अस्त लेकर भी उपर लुभा और उन्होंने

महाराजके सामने कोई वक्त चल नहीं सकता। अतः वे आकाश बननेकी इच्छासे विश्वावत्संकी और तपस्या करने चले गये। तपस्वी होनेपर भी वशिष्ठके ऊपर वे सदा आगचबूदा रहा करते थे और वशिष्ठकी अवधा उनके कुबकी हानिके लिये सर्वदा चेष्टा करते रहते थे। एक दिन वशिष्ठजीके ज्येष्ठ पुत्र शक्तिके द्वारा अभिशास राजा कल्माषपादको देखकर विश्वामित्रने सोचा कि हृतीसे वशिष्ठ-कुबका नाश हो सकता है। ऐसा सोचकर राजसंस्थापादी कल्माषपादके द्वारा उन्होंने वशिष्ठजीके एक सौ पुत्रोंको मरवा डाका! इससे वशिष्ठजी हुःसित अवश्य हुए, किन्तु विश्वामित्रके प्रति किञ्चिन्माश भी क्रोध नहीं किया। जब विश्वामित्रने अपनी उग्र तपस्यासे व्रजादि देवताओंको भयमिलत कर दिया तब देवताओंने विश्वामित्रको राजर्षि, महर्षि और अन्तमें ब्रह्मर्षि होनेका वर दिया। किन्तु विश्वामित्र व्रजादि देवताओंके ब्रह्मर्षि कहनेसे सन्तुष्ट न हुए। उन्होंने कहा कि जबतक वशिष्ठ ब्रह्मर्षि नहीं बनेंते तबतक मैं अपनी तपस्या पूर्ण न समझूँगा। जब वशिष्ठजीने देखा कि विश्वामित्रमें अब क्रोध या द्वेषकी मात्रा थोड़ी भी न रही तब उन्होंने आठकर विश्वामित्रको हृषकसे लगा दिया और उनको ब्रह्मर्षिका पद प्रदान किया। निवैर विश्वामित्रने भी महारथा वशिष्ठजीको भक्तिपूर्वक प्रश्नाम किया।

व्यवहारकुशल महर्षिपदसे प्रायः लोग संन्यासी क्रस्त्रिक् वशिष्ठ समझते हैं किन्तु यह भूल है। वशिष्ठजी गृहस्थ थे। कदं वशिष्ठी कन्या, स्वायम्भुव सुनिकी दौहित्री अस्तुवर्तीसे उनका विवाह हुआ था। उनके सौ पुत्र थे। सब ही पिन्तुरूप विहार, और तपस्वी थे। वशिष्ठके ज्येष्ठ पुत्र शक्तिका पुत्र पराशरजी वे जिनकी संहिता प्रसिद्ध है। पराशरजीके पुत्र महामहिमशाली वेदव्यासको कौन नहीं जानता? इसने विश्वामि विश्वामित्र-सुक गृहस्थ होनेपर भी वशिष्ठजी भोग-विहाससे विश्वकूर विरत थे। वहि वे आहते तो दशरथ प्रमृति सूर्यवंशी राजाओंसे अनुज्ञा सम्प्रिक्ता संग्रह कर सकते थे। परन्तु उनको उनकी कथा अस्तु? वे कर्मवीर इतने थे कि महाराज दशरथने उपने व्यवसेष-वशुका सम्पूर्ण प्रबन्ध उन्हींके करकमलोंमें अपित कर दिया था। सरथू-नदीके उत्तरीय लटपर बङ्ग-भूमि बगानेके लिये कारीगर और मजदूरोंका प्रबन्ध, आळाल, उत्तिप, लैस्प और शूद्रोंको नियन्त्रण देना, उनके मर्यादादुर्घ विवास तथा भोजनका प्रबन्ध, अधि-महर्षियोंका

आहान और उनके कर्तव्यका विभाग तथा कर्तव्य पूर्ण भवावाके अनुसार उनको संस्कार विश्वा देना—इत्यादि कार्य वशिष्ठजीने उत्तम रीतिसे सम्पन्न किये। किसी प्रकार भी नुटि नहीं रही। आगन्तुक ज्यविक्से खेकर साक्षरत्व अज्ञात तक सब लोग अत्यन्त सन्तुष्ट होकर गये। अन्तमें सर्विच्छिं सम्पन्न हुआ। वशिष्ठजी इत्यं भी इतने बड़े अतिथि, ये कि हृष्णने अपने भजका होता वशिष्ठजीको ही बनाया था। सूर्यवंशी राजाओंके कुबुरोहित तो वह थे ही; परन्तु उनकी कार्यकुशलता, निष्पृहता, विहार और तन मनसे वज्रमानका सर्विच्छिं कल्पाण्य साधन करता—इत्यादि शुद्धादिजिसे सुग्रह होकर सूर्यवंशीय महाराज संवरणने भी अपने कुबका पुरोहित वशिष्ठजीको ही बनाया था।

आजकलके अव्यापक विदि महर्षि वशिष्ठजीके आदर्शोंके अपने सामने रखें तो वहा उपकार होगा। शिष्यक विदि सदाचारी और सुशील हों तो शिष्य अवश्यमेव सदाचारी और सुशील होंगे। भारतीय शिष्यकसमुदाय महर्षि वशिष्ठके समान विहार, तपस्वी, निरहड़ारी, सत्यवादी, स्वारी, अमाशाली और कर्तव्यपरायन उन जाय तो कभी भी किसीको भी ऐसा कहनेका अवसर न मिलेगा कि आजकलके विद्यार्थी उष्ण-जल होते हैं और अपने अभ्यासकोंका कहना नहीं मानते।

## भक्त-भावना

विष्य विलास आस छोड़ि विष-रास जैसे  
एक विसवास करि प्रेम-पैथ पाँविंग ।  
और परपंचकी कथानको गिराय दूर  
मधुर गिरासों गुन गोविंदके गाँविंग ॥  
काम-रसहूं वं हिये आमरस आनि पूरो  
राम-रस रीबनमें जीबन विताविंग ।  
होवेंग अनाथके सनाथ हम बाही दिन  
और नाथ छोड़ि रघुनाथके कहावेंगे ?  
अनृतलाल मायुर ।

## श्रीरामचरितमानस-विनोद

( केस्क—श्रीमन्त यादवशंकरजी जामदार, रिटायर्ड सबज़र )



नक्षी जो अनेकानेक वृत्तियाँ हैं उनमें विनोद :  
भी एक हृषि है। जीवन-संग्रामके क्षिये,  
जीवन्तर वृत्तियाँ जितनी आवश्यक होती  
हैं, उसनी ही आवश्यकता इस विनोदी-  
वृत्तिकी भी है। विनोदी-वृत्तिके अभावमें  
मनुष्य-जीवन क्षिण तथा भारभूत-सा  
मालूम होने लगता है। इस वृत्तिमें हुःख भुजानेकी एक  
अनुत्त शक्ति है। इस विचारसे देखनेवाला पुरुष यही  
कहेगा, कि इस वृत्तिका निर्माण कर परमेश्वरने मानव-जाति-  
पर बड़ा भारी उपकार किया है।

यहाँ विनोदी-वृत्तिका शास्त्रीय दृष्टिसे विशद् विचार  
करनेका अवसर नहीं। अतः यहाँ विनोदके गुणानुसार  
तीन स्थूल भेद विलेखाकर हीं विषयका विवेचन किया  
जासा है। गुणानुसार भेद करनेका प्रधान कारण यह है  
कि प्रथेक मनुष्यमें सत्त्वादि तीन गुण अवश्यमेव रहते हैं।

### विनोदके तीन भेद

१. सात्त्विक-विनोद—( प्रेम-पर्यवर्त्ती विनोद ) जिस  
विनोदकी अन्तिम परिपक्वता स्थायी प्रेम और आनन्दमें हो।

२. राजस-विनोद—(मध्यम विनोद) जिसका परिणाम  
उद्घिक सुख अर्थात् तात्कालिक मनोरञ्जन हो।

३ तापस-विनोद—(शौपहासिक विनोद) जिसका परिणाम  
दिल्ली, मथुरा, तुष्टिता इत्यादिके द्वारा स्वाभाविक ही  
अनर्थमय होता है।

अब उपर्युक्त भेदोंको उदाहरणोंद्वारा समझिये !—

(१) सात्त्विक ( प्रेम-पर्यवर्त्ती ) विनोदका उदाहरण  
स्वयं श्रीगोस्तामी तुलसीलासजीका ही है। गुरुआईकी  
धर्मप्रवर्ती दलसे प्रेमभरा विनोद किया, परिणाम  
यह हुआ कि वे महान् राम-प्रेमी बन गये और इम दोन  
संसारियोंको रामचरितमानसकी उपलब्धि करा दी। जिन्हें  
इसके सत्त्वकी दृष्टि देखनी हो वे इन श्रीगोप्योंमें देखें—

जिमि कुलीन तिम साधु सगानी। परिदेवता करम मन बानी॥  
गेर कर्मकर्स परिहरि नाहु।……………॥

(२) राजस ( मध्यम ) विनोदके उदाहरण उपस्थित  
करनेकी वहाँ कोई आवश्यकता नहीं, क्योंकि इसका सभीको  
अनुभव है। इस मनोरञ्जक विनोदके विना किसी भी  
सांसारिक मनुष्यकी दिनचर्या प्रायः सुखकर नहीं होती।

(३) तापस ( शौपहासिक ) विनोदके प्रधान उदाहरण  
रामायण और महाभारतमें ही हैं।

कैकेयी देवीके विवाहमें स्वयं गुरुआईकी ही कहते हैं—  
कले खोरे कूरे कुटिल कुचाली जानि।  
तिय विसेव पुनि चेरि कहि मरतु मातु मुसुकानि ॥

भरत-माता 'काने……चेरी' आदि कहकर यदि  
मुसुकुराती नहीं तो उसका मन्त्यराके प्रति कदा रुक नहीं  
बदलता जिससे मन्त्यराको कुछ भी बोझनेका साहस न  
होता। कैकेयीका यह हँसना ही—यह विनोद ही  
राम बनवासका कारण हुआ यह निश्चित है। इसीप्रकार  
महाभारतका कारण भी हँसी ही है। कहावत है कि  
'भीमके कारण भारत' हुआ। इस कथनकी सत्त्वता  
निष्ठलिखित वर्णनमें स्पष्ट है—

राजा दुर्योधन जब धर्मराजकी मयविमित-सभामें  
पहुँचे, तो उन्हें मायावी मथासुरकी मायामयी रचनाके  
कारण ऐसा मोह हो गया कि उन्होंने स्थलको तो जल समझ-  
कर अपने वस्त्र समेट लिये और जलको स्थल समझकर  
चलते समय उसमें गिर पड़े। दुर्योधनकी यह दशा देख-  
कर भीम हँसे, तदनन्तर समस्त स्त्रियाँ और अन्यान्य  
राजागण भी जोरसे हँसने लगे। धर्मराजने यथासार्थ हँसीका  
निषेध किया, परन्तु श्रीकृष्ण भगवान्के प्रोत्साहनके कारण  
हँसी रुक न सकी। दुर्योधन जलसे झाँसे नीची कर, क्रोधसे  
तमतमाते हुए सिर स्फुरकर उसी समय सभासे एकदम  
निकल पड़े और सीधे हस्तिनापुर जा पहुँचे। उनके इस  
प्रकार चले जानेसे सब सजन हाहाकार करते हुए कहने लगे  
कि यह एक बड़े अनर्थका कारण हो गया है। धर्मराज  
श्रीयुधिष्ठिरजी भी उदास हो गये। परन्तु केवल दृष्टिमात्रसे  
ही संसार-चक्रको धुमानेवाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र भूसिका  
भार उत्तरना चाहते हैं, ऐसा सोचकर वे कुछ भी नहीं बोले।

(भीमद्वागवत १०।७।५।३८-४०)

‘यह कहा जा सकता है कि हँसीके द्वारा उत्पन्न होने-पर भी रामायण और महाभारतसे तो संसारकी अर्थसिद्धि ही हो रही है, अर्थ सो नहीं हो रहा है।’ यह सत्य है, इस भी इसमें सम्मत है। परन्तु हँसनेवालोंका उत्पन्न हँसीसे रामायण और भारतकी उत्पत्ति करना नहीं था। उनकी हँसीसे प्रकाशमें तो अनर्थाणात ही हुआ, उस अर्थके अप्रशंसनरूपसे अर्थावह हो जानेमें सो केवल हँसनेकी अगाध कृपा ही कारण है। उपर्युक्त उपोद्घातसे यही स्पष्ट दिखाना है कि तीन प्रकारके विनोदोंमेंसे सात्सिक (प्रेर्पर्ववसायी) विनोद ही सबोल्कृष्ट है।

अब मूल विषयपर ही आइये—

‘मानस-विनोद’ शब्दसे दो भाव सूचित होते हैं—  
(१) मानसका विनोद और (२) मानसमें विनोद। ‘मानसका विनोद’ कहनेसे तुलसी-रामायणके विनोदी अर्थ ऐसा भाव सूचित होता है, और ‘मानसमें विनोद’ कहनेसे तुलसी-रामायणमें विनोदी भाग ऐसा भाव सूचित होता है। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि इन दोनों अर्थोंमें जमीन-आसमानका अन्तर है।

मानसके जो विनोदी-अर्थ किये जाते हैं, वे प्रायः औपचारिक तावस का मध्यम (राजस) ही होते हैं। तुर्भायवश उन विनोदोंका एक भी प्रेर्पर्ववसायी अर्थ आवश्यक मैंने नहीं सुना। मैंने जैसे विनोदी-अर्थ सुने हैं, उनमेंमे उदाहरणार्थ एक-दो यहाँ लिखे जाते हैं—

सब मुत मोहि प्रानकी नाहि । राम देत नहि बन गुसाई ॥

यह वचन महाराज दशरथजीके श्रीविष्णुमित्रजीके प्रनि है। इनका अर्थ स्पष्ट है, यहाँ दुवारा अर्थ करनेकी आवश्यकता नहीं। अतः केवल विनोदी-अर्थ ही लिखा जाना है।

विनोद इस प्रकार किया गया था कि ‘राम देन नहि’ ‘बने गुसाई’ दशरथजी राम-काञ्चनबीजोंके देनेमें माफ इन्कार कर गये, केवल इतना ही नहीं, किन्तु वे उहताये विष्णुमित्रजीको कहने करो कि ‘काहा ! बने गुसाई बने काहे हो !

अब पाठक ही विचार करें कि यह विनोद है या काञ्चनकी इस्या है ज्याहा अर्थका अनर्थ है। इस विनोदसे—‘भगवन् लहाहि न जिनके नाहीं’ ऐसे दानवीर रुक्मिणीकी महसा वहाँ रह जाती है?

अग्रतात्तुरंवेदाः पृष्ठः सशरं चतुः ।

इदं ब्राह्मिदं क्षावं शापादपि शारादपि ॥

ऐसे महाप्रतापशास्त्री विष्णुमित्रजीकी कथा कहर होती है, तथा कवि और उनके काञ्चनोंकी भी कौनसी प्रतिक्रिया रह जाती है?

X X X

कोटि कोटि मुनि जतन कराही । अत राम कहि आवत नाही ॥

यह रामजीके प्रति बाखिकी अन्तसमयकी दफ्ति है। विनोदी, इस चौपाईका पदरूप इस प्रकार बतते हैं—  
कोटिको। टिमुनि। जतन कराही। अन्तराम कहि। आवत नाही।

—और उन्हे मात्रिक नौकरके संबादके रूपमें इस तरह प्रकट करते हैं—

मात्रिक—को टिको (कौन बैठा है ?)

नौकर—‘टिमुनि’ (टिमुनि नौकरका नाम है ।)

(मात्रिक—यहाँ पर तेरा काम क्या था ?)

नौकर—‘जतन कराही’ (मालपुरकी चताईकी इच्छालाई कर रहा है ।)

(मात्रिक—‘अन्तराम कहि’ (अन्तरामको इमने भी कहा, पर उसने साफ कह किया कि) ‘आवत नाही’ (इम नहीं आते ।)

इम मानने हैं कि उपर्युक्त विनोद निर्दोष है। परन्तु इनी मायापर्वी करके शास्त्रोंका तोष-मरोद करनेमें ताम ही क्या है ?

ऐसे विनोदके अविक उदाहरण देख भावुक पाठकोंका और स्वयं अपना समव नह करनेकी इमारी इसी नहीं। अब ऐसे कुनूरपूर्व दरिध्रमज्ञ शारितोकिं देनेका कार्य पाठकोंपर धोकाकर इम वक्तव्य विषयपर आते हैं।

मानस-विनोद वाली मानसगत विनोद देखनेका हमारा प्राकृत कार्य है। परन्तु मानस-गत सभी विनोदी-प्रसंगोंमें वहाँ उदृत करना दुखर है। नमूनेके लिये कुछ ही प्रसंगोंका उद्देश लिखा जाता है।

### साम्विक विनोद

प्रथम साम्विक यानी प्रेस्प्रोप्रक-विनोदके दो प्रसङ्ग विज्ञाप्त आते हैं—

( १ ) चित्रकूटपर भरतजीका तीसरा भाषण हो जुनके बाबू देवता निरान्तर अकुशा गये। भरतजीकी भक्तिके प्रभावको देख इन्द्रदेवको यह विनता हुई कि कवाचित् रामजी भरतजीको सम्मुख करनेके लिये बनसे भर न लौट आये। इस घबराहटमें इन्द्रदेवने 'किंकरंभविमुदु' हो सारी भवद्वीपर अपनी माथा फँकानेको कुचेष्टा की। इस मूर्खताको देखकर कवि कहते हैं—

लक्षि हिय हँसि कह कृपानिधान्। सरिस स्वान मधवान जुवान्॥

अथ-इन्द्रको कुचाक्षको देख कृपानिधान श्रीरामजीने मनमें सोचा कि कुता, इन्द्र और नौजवान ये तीनों एक ही शुभिके हैं और मनमें यह विचार आते हीं वे हँस पढ़े। अथ इस हँसीके कारणकी विज्ञासा होती है।

हमारे मतसे श्रीरामजीका इस हँसीका कारण विनोद है, और उस विनोदका कारण यह पाणिनीय सूत्र 'इवयुवमधोनामत'हित' है। सूत्रका अर्थ है तदित प्रक्रिया क्षेत्र-कर 'भूम्' 'मधवन्' और 'मुवन्' शब्दोंके रूप सब विभक्तियोंमें एकसे होते हैं। जैसे—

'शा, शानौ, शानः'

'मधवा, मधवानौ, मधवानः'

'युवा, युवनौ, युवानः'

कवि सूचित करते हैं कि इन्द्रजी कंपट-क्रिया देख गमजीको उक्त सूत्र याद आ गया। उनके मनमें विचार उठा कि क्या पाणिनिजीको पहले ही स्वप्न हुआ था कि कुता, इन्द्र और जवान ये तीनों एक ही मात्राकी मरणीयहैं। इस आत्मथसे महाराजजीको हँसी आयी, परन्तु देवराजको उद्दास करना अचक्षा नहीं, इस द्वयापूर्वे विचारसे उन्होंने अपनी हँसीको प्रकट नहीं होने दिया। कविके मतसे श्रीरामजीके द्वयाका कारण यही प्रतीत होता है कि 'अतदित ( अ + तद् ( यज्ञ, ईश्वर ) + हित = ईश्वर-विमूर्त ) पुरुष ऐसे ही हुआ करते हैं, परन्तु उन्हें कृष्णके बोग्य मावता हीक नहीं क्योंकि उनकी प्रकृति ही बैसी होती है। याच कहता है कि 'पर-स्वभाव कर्मणि न प्रशंसेन्न-गृह्येत्' इस वाचाक्षाके अनुसार श्रीरामजीने इन्द्रदेवके सारे

छब्ब हँसीपर छोड़ दिये। 'पतदेवहि विजानं पराणानामदशेनम्' इसके अनुसार भी श्रीरामजीका श्रौतिक्य उनकी दयामें ही था।

×            ×            ×

( २ ) उपर्युक्त प्रसङ्गसे भी बहकर साम्विक-विनोदके लघुण केवटके सत्याग्रहमें प्रतीत होते हैं। यह सत्याग्रह सभी रामायणोंमें अनुकृत है। प्रसङ्ग यों है—

'रामजी गंगाजीसे पार होना चाहते थे, इसके लिये उन्हें नावकी आवश्यकता थी। परन्तु नाव थी केवटके अविकाररूप, अतः उन्हें केवटको मनाना पड़ा। केवटने देखा कि अपना कार्य सफल करनेके लिये यही अत्यन्त सुअवसर है, कर्त्तोंकि अवहारकी परिपाठी ही बैसी है। पक्षको जो दुष्प्रिया होती है, वही दूसरेके लिये सुविधा हुआ करती है ( Ones difficulty is another's opportunity ) इसी विचारसे केवट सत्याग्रहके लिये तैयार हो गया।

गुरुर्बाहुनि अपनी रामायणमें केवटकी दबीलें अन्य रामायणोंके समान तो दिखलाई ही है, परन्तु उतनी-सी दबीलें उनके मन पर्याप्त नहीं जैसी, अतः उन्होंने ये दबीलें केवटके द्वारा विशेष उपस्थित कीं—

( पद-पद्म खेद चढ़ाइ नाव ) न नाथ उतराई चहाँ।

मोहि राम रातिर आनि दसरथ सपथ सब साँची कहाँ॥

बह तीर मारहि लथनु ( पै बब लगि न पाय पसारिहाँ )।

तब लगि न तुलसीदास-नाथ कृपालु पार उतारिहाँ )॥

मुनि केवटके बयन प्रेम लेपे अप्टे ।

बिहँसे करना-अयन चितै जानकी-लूपन-उन ॥

अब विचारिये, इस प्रपूरकके लोडेजमें गुरुर्बाहुनि का क्या हेतु था ? यह पहले ही कह दिया जाता है कि प्रपूरकके अत्यन्त गम्भीर भाव-भावी होनेके कारण तथा पाठकोंकी प्रकृति-भिन्नताके कारण भावोंकी एकवाक्यताका प्राप्त होना सहज नहीं है। तथापि इमारी रुचिके साथ यदि पाठकोंका सामाजिक्य हुआ तो एकवाक्यताका होना भी दुष्कर नहीं।

प्रपूरकके कारणोंमें हमें सुख-रुपसे तीन बातें दिखलायी देती हैं—( १ ) कविका मार्मिक पात्र परिचय-यानी पात्रकी शिक्षा, संस्कार, संगति, अवधारणा इत्यादिका निरीक्षण। ( २ ) कविकी भावग्रहण-शीक्षण और ( ३ ) लोक शिक्षाका कविका उद्देश्य। इन तीनों बातोंपर विचार करनेसे स्पष्ट हो जाता है कि 'न नाथ उतराई चहाँ' से 'सपथ सब

साँची कहाँ। उक्त प्रपूरक भाग केवटकी पात्रताएँ सर्वथा अनुकूल हैं। 'बहु तीर मारहि लश्नु' यह भाग लक्ष्मणजी-की पात्रताका घोरतक है, और 'विहंसे कल्ला-अयन चितै जानकी-ज्ञान-तत्त्व' यह भाग श्रीरामजीके जामका पूर्णतया शापक है।

उपर्युक्त बातोंके सम्बन्धमें पाठक यदि हमसे सहमत हैं तो अब उनके ध्यानमें यह भी आगया होगा कि गुसाईंजीने अपने प्रपूरकद्वारा परम संकीर्ण भावोंका एक नितान्त इमण्डीय शब्द-विचर सौंचा है। अपनी परम प्रेमपूरुष विनोदी अवस्थामें केवट ऐसा मस्त हो उठा कि एक रामजीही क्या, उनके परमपूरुष पिताजीतकसे मिछेमें भी उसने कहर नहीं रखी। उसका यह आसीन-भवद्वार उचित नहीं—यह बात उसे लक्ष्मणजीके बेहरेसे मालूम हो चुकी थी, तिसपर भी उसने एक कदम और आगे बढ़कर एकदम ललकार कर कह दिया कि 'बहु तीर मारहि लश्नु'—चाहे लक्ष्मणजी बाल्से बाँध डालें ! उसके इस निःसीम तथा निःस्वार्थ प्रेमको देखकर रामजी भी प्रेमसे विहृत हो गये। परिणाममें उनके मनमें भी विनोद लहरा उठा, जिसके कारण ये यकायक हँसते हुए जानकीजी तथा लक्ष्मणजीकी और देखने लगे !

गुसाईंजी, 'रामजी हँसते हुए देखने लगे' इतना ही कह कर चुप हो गये हैं। इसमें स्पष्ट है कि रामजीकी उस अवस्थाका विश्वय करना उन्होंने अपने पाठकोंपर ही कोइ दिया है। अतः रामजीकी वह हिति पागलपनकी थी, मुक्त-दशाकी थी या भावुकताकी थी, इसकी भी मांसांसा करनेका अनिवार्य भार पाठकोंपर ही आ पड़ा है !

यह तो सहज ही कहा जा सकता है कि रामजीकी स्थिति न तो पागलकी-सी थी और न मुक्त (अर्थात् विदेह-मुक्त) की-सी थी, क्योंकि गुसाईंजी ही आगे बढ़कर कहते हैं—

कृपासिंहु बोले मुकुर्दि । सोइ करु जेहि नाव न आई ॥  
बेगि आनि जन याँव पक्षारु । होत बिन्द्र उतारहु पारु ॥

यथा पागल या विदेह-मुक्तको ये हृषायुक्त विचार सूक्ष्म हैं ? अतः रामजीका हँसना भावयुक्त या यही सिद्ध होता है !

अब केवल रामजीके भावनिक्षयका कार्य बाकी रहा। इस विचारमें यह तो स्वयंसिद्ध है कि केवटका निःसीम

और निःस्वार्थ प्रेम देखकर ही रामजी अपने परम विष भाई और भार्याजी और देखने लगे थे अर्थात् इस स्वयंपर उनकी इष्टि तुलनात्मक थी, इसमें सन्देह नहीं। परन्तु तुलनाके लिये सिका केवट, जानकीजी और लक्ष्मणजी इन तीनोंके प्रेमके रामजीके सामने और कुछ या ही नहीं, अतः प्रमाणित हुआ कि रामजीका कदाच (चितै) तीनोंके प्रेमपर ही था। साथ ही भूल प्रबन्ध भी कह रहा है कि श्रीरामजी सीताजी और लक्ष्मणजीकी ओर देखकर ही हैंसे। इससे यही निश्चित होता है कि उन्होंके प्रेममें श्रीरामजीके हँसीका कारण केविन्द्रत था, और उस केवल स्थानका स्वरूप प्रेमगत तुलनात्मक भावके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं था। इस विचार-प्रणालीसे हमारे मनसे सीताजी और लक्ष्मणजी-की ओर हँसते हुए देखनेसे रामजीने उन्हें यह स्पष्ट किया कि 'माई और भार्या होनेसे मेरे प्रति तुझ्हारा प्रेम होना अत्यन्त स्वाभाविक है परन्तु इस जंगली केवटका प्रेम देखकर यदि मैं पूँछ कि मेरे सम्मुख प्रेमके जो ये हो (एक केवटके प्रेमका और दूसरा सीता-लक्ष्मणजीके प्रेमका) इस उपस्थित हैं, इनमेंसे अधिक उत्कट, निःसीम और निःस्वार्थ अतः अधिक सुखावना और यित्य इस्यु तुम्हें कौन-सा लैंचता है, तो तुम क्या उत्तर दोगे ?'

हमारी बुद्धिसे तुलसीरामायणमें भी इस कोटिके विनोदी सामिक प्रेमका अनुत उक्त उदाहरण दूसरा कोई नहीं है। यदि इस कथनमें हमारी भूत हुई हो तो ऐसा सूक्ष्म भावभरित अन्य प्रसंग दिखाऊर कोई महाशय हमारी भूत सुधारेंगे तो इस उनके बहुत अर्थी होंगे।

× × ×

क्षमते-वज्रते सामिक विनोदी प्रेमका एक और मूल्यान्वयनमें सेवामें सावर उपस्थित किया जाता है, जिसके सम्बन्धमें विशेष विवरणकी आवश्यकता नहीं क्योंकि स्वयं तुलसीदासजी सारी बातें कह चुके हैं। विशेष यात्रा इसपर आवाज दें—

चढ़ि विमल सुन रक्षा विमीलन । गगन जाइ बरसहु पट-मूरन ॥  
नमयर जाइ विमीलन तबही । बरासि दिए पट मूरन सबही ॥  
जो जेहि मन भाव सोनही । मनि मुख मेलि डारि कपि देही ॥  
हँसत राम रिय अनुब समेता । परम कौतुकी हृपनिकेता ॥

ध्यान न पावहि जामु मुनि नेति नेति कह बेद ।  
कृष्णसिन्दु सोइ कपिनसों करत अनेक बिनोद ॥  
उमा जोग जप दान तप नाना ब्रत मख नेम ।  
राम-कृष्ण नहि करहि तस जस निष्केवल प्रेम ॥

इमारी हृष्टा लेल बढानेकी नहीं है, परन्तु करें चाह ?  
प्रसङ्ग ही ऐसे निकल आये कि इमारे बालकी बात न रह  
गई । पाठक चमा करें । अब लेखके संकोचपर विशेष  
ज्यान इसनेका प्रयत्न किया जायगा ।

### राजस-विनोद

राजस-विनोदके हो एक छोटे-छोटे नमूने विश्वलाये  
आते हैं ।

( १ ) विभीषणका राज्याभियेक हो जानेके पश्चात्  
अशोकवाटिकासे सीतामाताको जानेके लिये हनुमानजी भेजे  
गये । विभीषण भी उनके साथ थे । उन्होंने माताजीको इथमें  
देखाया और वही ही धूमधामसे राज-वैभवमें उनकी मवारी  
चहरी, इसपर श्रीरामजी कहने लगे—

कह रघुबीर कहा मम मानहु । सीतहि सक्षा प्रयादहि अनहु ॥  
देखहि कपि जननीकी नाहु । विहैसि कहा रघुबीर गुसाइ ॥

वामतावर्द्धमें देखा जाय तो अन्तिम चरण अनावश्यक है ।  
प्रथम 'कह रघुबीर' कहकर फिर 'कहा रघुबीर' कहनेसे  
हिरण्यकोषीपकी आपत्ति उठती है । और 'देखहि कपि जननीकी  
नाहु' इस उच्च और प्रगल्भ शिक्षावनक वास्तवी 'विहैसि' से  
हैसी उडाना बहुत ही विलब्ध और अनुचित प्रतीत होता  
है । यह स्पष्ट है कि इन शहूओंकी जड़ चौपाइयोंके चारों चारण  
सङ्क्लित और सम्बन्धित होनेमें ही है । इमारे मतसे पहले  
तीन चरण ही परस्पराभित हैं । चतुर्थ चरण स्वतन्त्र है ।  
पहले तीन चरण आजार्यक हैं, और विभीषणको सम्बोधित  
करके कहे गये हैं । चौथा चरण किनीको भी सम्बोधित  
करके नहीं कहा । वह आक्षा देते समय रामजीकी मनोहृतिका  
सूचक है । [ अर्थात् काम्याद्य वह कविका (गुसाइजीका)  
प्रतिविम्ब है । ]

अब श्रीरामजीकी मनोहृतिका प्रभ आता है । यदि  
ऐसा कहा जाय कि चिरकालतक विना अव-अवके एक  
जगह चैंडी रहनेके कारण सीताजीको अशक्त, पंगु और  
हृदयाली-सी दशामें देखनेकी भविष्य कल्पनासे रामजी हैसे,  
तो इसे इम चहरापि नहीं भावेंगे । क्या सीताजीकी  
विपसिमें भी रामजी जानन्तु भला सकते हैं ? इम तो ऐसे

समाधानको पूर्णोक्त 'बने गुसाइ'की ओर्हीमें ही रखता  
चाहेंगे ।

वास्तवमें गोसाइजीको कणाभागके सम्बन्धमें जो कुछ  
कहना आवश्यक था, वह उन्होंने पहले तीन चरणोंमें  
कह दिया । इसले कहा जा सकता है कि चौथा चरण  
(‘विहैसि’ ३०) उन्होंने हेतुपूर्वक जोड़ा है । अतः उसमें  
अपूर्वता या विचित्रता होनी ही आहिये । परन्तु सीताजीके  
जुलूसके समय जो परिवर्थन थी, उसकी आलोचना कथा-  
प्रबन्धहारा करनेपर यही दीखता है कि सिवा एक बातके  
दूसरी कोई भी बात ऐसी नहीं थी कि जिसमें अपूर्वता या  
विचित्रता समाची हुई हो । यदि ऐसी कोई दूसरी बात  
होती तो कथा-प्रबन्धमें वह अवश्यमेव अद्वितीय की जाती ।  
परन्तु प्रबन्धमें गुसाइजी अपनी बर्दीन-शैकीके अनुसार  
'विहैसि कहा' ३०के पश्चात् और उसीके लगभग केवल  
एक ही बात अद्वित बतते हैं और वह यह है—

सीतहि प्रथम अद्वित है रामी । (प्रगटकौन्ह चह अन्तर साही) ॥

अतः सिद्ध हुआ कि सीताजीका अभिवेदमें सज्जिवेश  
ही वह अपूर्वताकी बात है ।

इस रीतिसे अपूर्वता प्रकट होनेपर 'विहैसि' का भाव  
प्रकट होनेमें कुछ भी क्लिक्टा नहीं दीखती । आज तो  
सभी जानते हैं कि जो सीताजी वहे भारी जुलूससे जायी  
जा रही थीं वह केवल नकली सीताजी थीं । परन्तु उस  
समय जुलूसके अवसरपर एक रामजी और दूसरी अमली  
सीताजी इन दो के सिथा शोष सभी लोग नकलीको ही  
असली समझते थे । इस इश्यपर ज्यान जानेसे स्वभावतः ही  
श्रीरामजीके मनमें यह कल्पना हुई कि, 'वाह ! किस धूम  
धामसे यह रसीके साँपका लेल खेला जा रहा है ! यह  
सीताजीका जुलूस है, या उनकी छायाका ?' यही कल्पना-  
गर्भित विनोद श्रीमान् भहारालजीके चेहरेपर हैसीके रूपमें  
प्रकट हो गया ।

( २ ) रामजी धुम्पक विमानपर चढ़कर लङ्घासे आते समय  
राहमें सीताजीको दृश्य किसाने लगे । दण्डकारय पहुँचनेपर  
वे अगस्त्य मुनिजीके आश्रमपर पधारे । वहाँसे आगे बढ़ने-  
पर जब उनका विमान उत्तरकी ओर चला तब उन्हें गङ्गा-  
पशुनालीके दर्शन हुए । कवि कहते हैं—

बहुरि राम जानकी दिलाई । जमुना कलि-मल-हरनि सुहाई ॥  
पुनि देखी सुरसी पुनीता । राम कहा प्रणाम कर सीता ॥

अर्थ स्वरूप ही है। आगे जो कुछ कहा है वह योदेहमें सुविधासे समझमें आनेके लिये पूर्वोत्तर-पश्चात्तरा इस-प्रकार है—

पूर्वपक्ष-उनके चौणाईयोंमें यमुनाजीका तो केवल दर्शनमात्र, और गङ्गाजीके दर्शन और उनके प्रति बन्धन दोनों ही करनेको कहा गया है। ऐसा क्यों? क्या रामजीके कहे विना सीताजी प्रश्नाम नहीं करती?

उत्तरपक्ष-बन्धन करनेको कहनेकी तो आवश्यकता ही नहीं थी, क्योंकि सीताजी स्वयमेव प्रश्नामरीक्षा थी। अतः इमें विश्वास है कि सीताजी प्रश्नाम किये विना रहती ही नहीं।

पूर्वपक्ष-सीताजीके प्रश्नामरीक्षताका क्या प्रमाण है?

उत्तरपक्ष—

सुन्दरि सेतु देखु मह थोर्पें रिव मुखाम।

सीता सहित शृण्यतन संभुहि कीन्ह प्रणाम॥

पूर्वपक्ष-माना जाय कि उत्तरपक्ष ठीक है, फिर गङ्गाजीके प्रश्नामके लिये कहनेकी क्यों आवश्यकता दुरुप्य?

उत्तरपक्ष-इसका कारण पूर्वक्यामें है। वह पूर्वक्या इसप्रकार है—

सिय सुरसरिह कहा करनेही। मानु मनोरथ पुरबहु मोरी॥  
पति देवर संग कुशक बहोरी। आइ करौं जेहि पूजा तंसी॥

पूर्वपक्ष-इससे और इमारे प्रश्नामें क्या सम्बन्ध?

उत्तरपक्ष-उनका सम्बन्ध विनोदमें है और वह इसप्रकार है।

वह स्वरूप ही है कि रामजी और सीताजीके बीच आई ब्रह्मस्थ और साथ ही अन्य भवदृष्टि दैठी थी, वहाँ सबके सामने पति-पत्नीका विनोद उचित नहीं था। परन्तु सत्य और शृद्ध प्रेमकी जहर सदा ही अनिवार्य होती है। इसलिये उनकी चेष्टा विनोदकारा-मर्यादा बन्धनमें भी निष्कर्ष पड़ी।

विनोदका सार यह है कि रामवको हम योदे ही मार सकते थे? वह को इमारे हाथसे मरा सो केवल तुम्हारे द्वारा की तुई गङ्गाजीकी मरीतीके कारण ही! अतः उनको नमस्कार करनेमें देर न करो!

उपर्युक्त दो उदाहरण राजस-विनोदके लिये गये हैं। प्रयात रहे कि विनोदके इस प्रकारमें प्रत्यक्षता दिल्ली ही विलासी देगी। साथ ही अप्रत्यक्षरूपसे शिलाका प्रतिक्रियित होना भी आवश्यक नहीं है, क्योंकि राजस-विनोदके आनन्दका स्थापीभाव नहीं होता।

### तामस विनोद

अब तामस विनोदके दो नमूने विलक्षणकर इस विषय-को समाप्त करनेकी इच्छा है।

(१) अधम निसाचरि कुटिल असि चली करन उपहास।

सुनु खेस मावी प्रबल भा चह निसिचर नास॥

शूर्पशस्त्रा राघवीने रामजीसे हँसी की। यह प्रसङ्ग उपर्युक्त दोहेमें है। इससे प्रत्यक्ष ही जाता है कि तामस-विनोदमें मर्यादाका बन्धन कुछ भी नहीं रहता, और इसी कारण वह प्रायः दुःख-पर्यवसायी ही होता है।

(२) अङ्गद-शिराहैसे किया हुआ वह उदाहरण इसप्रकार है—

कपिबल टेक्कि सकुन हिय हार। उठा आप कपिके परचांग॥  
गहत चरन कह थालि कुमार। मम पद गहत न तोर उबार॥  
गहसि न राम-चरन शठ जाई॥ सुनत किरा मन अति संकुचाई॥  
मय तेजहत थी सब गई॥ मन्य दिवस त्रिमि ससि सोहाई॥

यहाँसे देखिये कि इस दिल्लीकी भी कल दुःखमें हुआ है।

यहाँ एक विचित्रता यह है कि किसी भी दूसरे रामावत्यामें वह प्रसङ्ग प्राप्त नहीं होता। अतः यह गोस्त्यामीजीकी कल्पना ही प्रतीत होती है।

जात होता है कि इस वर्णनकी कल्पना क्लोटे बहाँके कहोतासे की गयी है। एक आवक दूसरेसे झूठे ही एकता है कि तेरे मलकामर दाग कैसा दाग है? बत्तुतः उसके मलकामर कोई दाग है ही नहीं। दूसरा चकित होकर मलकामर दाग लगाता है। इसपर पहला बदका एकदम वह उठता है कि 'ओहो! तूने हमें सदाम किया।' इसी प्रकारकी विकारी इस प्रसङ्गमें है।

### समालोचना

बेस बहुत बड़ानेके कारण समालोचनाका स्वरूप क्लोटा रखना ही इमें युक्तिसंगत मालूम होता है—

| संख्या | प्रसङ्ग                                                         | विनोदका वर्ग<br>(वाचण) |
|--------|-----------------------------------------------------------------|------------------------|
| १      | लेख हिय हैंसि कह कृपानिधानू ।<br>सरिस इवान मधवान मुवानू ॥       | विद्विनोद ।            |
| २      | मोहि राम राटरि आनि दसरथ शपथ<br>सब साँची कहौं । बह तीर मारहि लघण | ग्रामीण-विनोद ।        |
| ३      | चिंते जानकी लघण तन ।                                            | प्रगल्भ-विनोद ।        |
| ४      | चढ़ि विमान बरसदु पट मूषण                                        | शुद्ध-विनोद ।          |
| ५      | बिहूसि कहा रुमीर मुसारू ।                                       | स्वगत-विनोद ।          |
| ६      | राम कहा प्रणाम कर सीता ।                                        | गृह-विनोद ।            |
| ७      | अङ्गदका पाँव डानेके लिये<br>रावणका आहान ।                       | बाल-विनोद ।            |

शूर्पखाके विनोदके पृथक् वर्गीकरण करनेकी आवश्यकता नहीं । इसमें गोस्वामीजी ही उसे कुठिज और औपचारिक विनोद कह चुके हैं ।

### निष्कर्ष

उद्धिक्षित समाजोंचनाका हमारे विचारसे यही तार्पण निकल सकता है कि श्रीतुलसीद्वास महाराजजीका स्वभाव सभी जाह—एकान्तमें और लोकान्तरमें—सभी समाजोंमें आवाजतृदांको बहवानेवाला होनेके कारण वे सदा ही आनन्दमें रहनेवाले वहे ही कारबिक पुरुष थे, इसमें मन्देह नहीं ।

### शान्ति

अहंकारकी अग्निमें, दहत सकल संसार ।  
तुलसी बाँचें संतजन, केवल सांति-अधार ॥  
महा सांति जल परसिकै, सांत भए जन जोह ।  
अहं-अग्निलिते नहिं दहैं, कोटि करै जो कोइ ॥  
नेज होत तम तरनिको, अचरज मानत लोह ।  
तुलसी जो पाना भया, बहुरि न पाषक होइ ॥

### साम्प्रदायिक शंका

( लेखक—म० श्रीगालकरामजी विनायक, अयोध्या )



श्रको स्वसम्प्रदायाङ्कीहूत रीति-रहस्य पूर्व मतवादविशेषको सीमा-के बाहर न माननेवाले हमारे कातिपय बैष्णव बन्धु यह शङ्का किया करते हैं कि गोस्वामी श्रीतुलसीद्वासजी महाराज अनन्य वैष्णव कैसे थे ? क्योंकि उन्होंने शिव-गणेशादि देवान्तरकी बन्दनाएँ और स्तुतियाँ की हैं । इसके अतिरिक्त अङ्गत-वादका प्रतिपादन किया है । कोई साम्प्रदायिक वैष्णव ऐसा नहीं कर सकता । यदि वे वैष्णव ( उनके मतानुसार ) होते तो भगवान् श्रीरामचन्द्रजीसे शिवजीकी तथा श्रीजानकीजीसे पार्वतीजीकी पूजा क्यों कराते ? अतः यदि उन्हें किसी प्रकार वैष्णव मान भी किया जाय तथापि साम्प्रदायिक रीति-रहस्यसे अभिन्न अनन्य वैष्णव तो उन्हें कहापि नहीं कहा जा सकता ।

### समाधान

हमें दुःख है कि ऐसी कल्पना करनेवाले बन्धुओंने वैष्णवता और अनन्यताका रहस्य समझा ही नहीं । हम नहीं जानते कि दूसरेमें हृषि करना, सो भी सत्पुरुषोंसे, वैष्णवताका कौन-सा लक्ष्य है ? ऐसे लोगोंने मानो वैष्णवता देवीको अपनी कल्पना विशेषके कारणारमें बन्दकर रखा है । अतः यह विशेष प्रकारकी उनकी अपनी मानो हुई वैष्णवता केवल उन्होंकी वैष्णवता है । यह भगवद्ग्रन्थिका अर्थ इसनेवाली अपेक्ष वैष्णवता कदापि नहीं हो सकती ।

यह सम्पूर्ण चराचर जगत् ब्रह्म ही है अथवा ग्रहका ही रूप है । वह 'एकमेवाद्वितीय' ब्रह्म ही सृष्टि-विस्तारमें अनेक हो गया है, यही वैदिक सिद्धान्त है और समस्त आर्यशास्त्रोंका अभिप्राय है और यही विशुद्ध तथा उद्धार वैष्णव सिद्धान्त है । 'इदं विष्णुविचक्षेवेदा नि दधे पदम् । समृद्धस्य पांसुके ॥' 'चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अनायत । मुवादिन्दश्चाभिश्च प्राणादायुरजायत ॥' 'यस्य पृथीवीं शरीरम् ।' 'इशावास्यमिदं सर्वं' तथा 'सर्वं खलिकरं ब्रह्म' आदि अुतियोंका यही अभिप्राय है कि एकमेवाद्वितीय ब्रह्म ही जगदाकार हुआ है । वैष्णव-पुराणोंमें भी यही लिखा है । यथा—

एतत्सर्वमिदं विश्वं जगदेतत्त्वाचरम् ।  
परब्रह्मस्वरूपस्य विष्णोः शक्तिसमन्वितम् ॥  
—विष्णुपुराण  
सर्वभूतेषु यः पश्येद्गवद्गावमात्रमनः ।  
भूतानि भगवत्प्रमाणन्येष भगवतोत्तमः ॥  
—श्रीमद्भागवत

## अथवा—

'भूमौ अलं नभसि देवनरातुरेषु,  
भूतेषु देवि सकलेषु चराचरेषु ।  
पश्यन्ति शुद्धमनसा खलु रामरूपं,  
रामस्य वै भुवितले समुपासकाश ॥'

भगवान् गीताचार्यका भी श्रीसुखदत्तन है—'वासुदेवः सर्वमिति' । गोस्वामी श्रीतुलसीदासकी महाराजने 'नानापुराणनिगमगमप्रसन्नतं' सत्पुरुष-परिणीत वैदिक वैष्णवताका वही शुद्धस्वरूप और दिव्य आवर्ण प्रहण किया है जो एक सन्त और सहैवताके लिये स्वाभाविक है । 'निर्बैः सर्वभूतेषु' होकर उस विराट-पुरुष जगद्गवाङ्की भावना ही वास्तविक अनन्यता और वैष्णवता है । वही श्रीरामचरित-मानसमें और गोस्वामीजी-जैसे वैष्णवशिरोमलिके जीवनमें चरितार्थ है—

'सो अनन्य जाकी अस भृति न टैरे हनुमन्त ।  
मैं सेवक सच्चाचर रूप स्वामि भगवन्त ॥'  
'उमा, जे रामचरण-रत विगत काम-मद-कोष ।  
निज प्रभुमय देखाहि अगत का सन कराहि विरोध ॥'  
'विश्वरूप रघुवंशमनि करहु वचन विश्वासु ।  
होक-कल्पना वेदकर अङ्ग-अङ्ग प्रति जातु ॥'  
'सीयराममय सब जग जानी । कहों प्रनाम जोरि सुगपानी ।'

श्रीरामचरितमानस ही वैदिकवर्तमानका और वैष्णवताका शुद्ध स्वरूप प्रकट करता है और गोस्वामी श्रीतुलसीदासकी ही महर्षि व्यासके बाद ऐसे महाकावि हुए हैं जिन्होंने समास-रूपसे वैदिक काम्य-निर्माण किया है और उसमें शुद्धि-स्फुटि-पुराणोक्त सिद्धान्तोंका सारांश अस्त्वन्त शुद्धि-पद्मासुरेन्द्रसुकामस्पदसे सञ्चित किया है । उन्होंने रामायणकी की आरतीमें इसे स्पष्ट कह दिया है, यथा—

चारिहु वेद, पुराण अष्टदस, छहाँशाल, सदग्रन्थको रस ।  
तन-मन-धन सन्तनको सरबस, सार अंश समृत सबहीकी ॥  
गावत ब्रह्मादिक मुनि नारद, वालमीकि विज्ञान-विशारद ।  
शुक-ननकादि शेष अह शारद, वरनि पवनसुत कीरति नीकी ।

आनन्दकारने उम वालमीकि-व्यासादि महर्षियोंका ही अनुसरण किया है—

मुनिन प्रथम हरिकीरति गाई । तेहि मग अकल सुगम मोहि माई ॥

गोस्वामीबी श्रीरामानन्दीय वैदिक श्रीसुखदत्तन के श्रीवैष्णव थे । जगद्गुरु भगवान् श्रीरामानन्द स्वामीकी शिष्य-परम्परामें थे और थे—जगद्गुरु भगवत्पादाचार्यके, द्वादश महामार्गवतावतारोंमें अवश्यी शिष्य स्वामी श्रीशनन्दा-नन्दजीके स्वामी श्रीनरहयानन्दजी और उनके शिष्य गोस्वामी श्रीतुलसीदासकी महाराज थे, जिन्होंने सर्वहित-कारक विर्विरोध और समुदार वैदिक वैष्णव सिद्धान्तोंका प्रतिपादन करते हुए, अपने श्रीरामानन्दीय सरप्रदायका स्वरूप प्रदर्शित किया है । अतः यह नहीं कहा जा सकता कि वे सम्प्रदायी वैष्णव नहीं थे । वे अपने सप्तसप्तायके द्वारा संस्कार, सनातनधर्मार्थविस्तृत सिद्धान्त एवम् श्रीसिंहस्यके अनुसार आदर्श वैष्णव साधु थे ।

श्रीरामानन्दीय सम्प्रदायके व्यास-शुकादि परम्पराजुगत पूर्वाचार्य हैं । वह सभी जानते हैं कि विष्णु-रितादि अनेक नामरूपोंमें समान भावसे उन्होंने 'एकमेवाहितीय ब्रह्म' का उन्होंने विनिपत्ति किया है । वेदोंमें वर्णित देवतादका उन्होंने पुराणोंमें विस्तारसहित ऐतिहासिक रूपसे वर्णन किया है और द्वैताद्वैतादि ब्रह्मवादकी श्रुतियोंकी व्याप्तियोंमें सङ्कलित लगायी है । गोस्वामीबीने भी वही काम किया है । जगद्ग्रह-वादके सिद्धान्तपर अङ्गरूपसे देवान्तरोंको मानते हुए परब्रह्म उल्लोक्तम श्रीरामका माहात्म्य और चरित वर्णन किया है तथा ब्रह्मवादविषयक श्वैर्वैष्णविशिष्टाद्वैतादि भिन्न-भिन्न सिद्धान्तोंका व्याप्तान प्रतिपादन किया है । इश्वरके निर्गुण-संगुण दोनों रूपोंका वर्णन किया है ।

असु, गोस्वामीबी अपने पूर्वाचार्योंका अनुसरण करनेवाले, उनके सुधोरण उत्तराचिकारी श्रीरामानन्दीय सम्प्रदायके उदार तथा निर्विरोध संस्कारोंसे परिपूर्ण वैदिक वैष्णव थे । वे ऐसे सप्तसप्तायके वैष्णव थे, जिसके सनातन धर्मकी वैदिकायर प्रवक्त्र प्रसाद भावने जानेवाले सर्वश्वर्ण भागवताचमंके ग्रन्थ (प्रस्तावनाय और पुराणादि), साम्प्रदायिक ग्रन्थ हैं । अतः गोस्वामीबी अपने वैदिक श्रीसुखदत्तन के पूर्वाचार्य श्रुतियोंकी शीर्षीके, प्रकृतिसे उत्पन्न किये गये हुए वैष्णव थे, सहैवताचार्य थे । वे सप्तसप्तायके पूर्वाचार्य थे, अतः उनके उत्तमान श्रुत्याचित्योंको उन्हींके अनुसार अवता और अपना स्वरूप संमालना होगा और उन्हींको श्रामण भावना होगा । उन्हींकी वैष्णवता सभी वैष्णवता और उन्हींकी अनव्यता सभी

अवश्यता है। उस अवश्यतामें एक इष्टके अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं। कहा भी है—

उत्तमके अस बस मन माही । सपनेहु आन पुरब जग नाहीं ।  
नरक-सर्ग-अपदीर्घ समाना । जहंतहं-दीख घरे घनु-बाना ॥

बेदोंके दो एक वास्तव तो स्वरेती विदेशी अनेक मत-मतान्तरों और सम्बद्धावर्णोंमें आने जाते हैं। अहिंसालोके धर्मोंको औह भी मानते हैं। परन्तु वे वैदिक नहीं कहताते। वैदिक वही है जो बेदोंके सम्पूर्ण धर्मोंको धर्माचार्योंकी भावनाके अनुसार मानता है। गोस्तामीजी वैसे ही वैदिक वैष्णव महात्मा थे और उनका श्रीरामानन्दीष श्रीसम्प्रदाय वैता ही सम्प्रदाय भी है।

‘गोस्तामीजीने भगवान् श्रीरामचन्द्रजीसे श्रीमहादेवजी-की और श्रीजनकर्णजीसे श्रीपावतीजीकी पूजा और सूति क्यों करायी?’ यथापि इस आचेषका उत्तर वैष्णवताके समाधानमें यथेष्ट रूपसे हो चुका है तथापि इसके सम्बन्धमें दो एक शब्द विशेषरूपसे कह देना आवश्यक जग पड़ता है। यह बात सर्वविवित है कि गोस्तामीजी व्यासादि महर्षियोंकी शैक्षीके महात्मा थे और महर्षि व्यासने भगवन्नादि पुराणोंमें इसका वर्णन किया है कि श्रीरमेश्वरीजी देवीकी पूजा करने जाती थीं और भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने रामेश्वरकी स्थापना की। तब गोस्तामीजी वैसा क्यों न करेंगे? वे उन्हींके सम्प्रदायके तो वैष्णव और उनके सब अनुयायी हैं। भगवान् मर्यादा पुरुषोत्तम थे, वे लोकशिक्षार्थ आवर्ण न-नाथ करते थे। तब उस समय प्रचकित वैदिक धर्मकी मर्यादाकी वे क्यों न रक्षा करेंगे? और भगवान् शक्ति तो उनके परम भक्त और भागवतोत्तम हैं। वे ऐसे महानाभगवत हैं जो श्रीनाभा स्वामीके ‘भक्ति-भक्त-भगवन्त-गुरु चतुर नाम वपु एक’ वाले सिद्धान्तानुसार भगवत्से अभिष्ठ हो गये हैं, वे रामभक्ति-भागीरथी और रामभक्ति के आचार्य हैं। श्रीमद्भागवतमें अकूजीने भगवान्तसे सूतिमें कहा है—

त्वमेवान्ये शिवोकेन मार्गेण शिवरूपिणम् ।  
दद्वाकार्यं विभेदेन भगवन् समुपासते ॥

वही एक और अहिंसीय भगवान् पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र ही अनेक रूपोंमें रम रहे हैं और अनेक प्रकारसे सूचितेके अनुसार उन्हींकी पूजा हो रही है—‘संबदेवनमस्कारं केशवं प्रणिगच्छति’।

‘वत्तो वा शक्ताणो वापि ये लभन्ते पठक्षरम्’—श्रीराम-पापिनी उपनिषद्।

## श्रीरामोपासनाकी प्राचीनता

(लेखक—श्रीश्रीवैष्णव पं० श्रीरामठद्वासजी)



इके आविसे सनातन-धर्मका भूत वेद है, वेद-सिद्धान्तसे ही सब धर्मोंका शादिक्षार दुष्टा है। अतएव वेद-वर्णित सभी धर्म वैदिक धर्म कहे जाते हैं। वेदमें जिन-जिन देवताओंकी उपासना वर्णित हैं, वे सभी प्राचीन हैं। हमें यहीं श्रीरामोपासनाकी प्राचीनताके सम्बन्धमें विचार करना है। वेदमें श्रीरामोपासनाकी प्राचीनता बतायी गयी है, अन्येद मध्यदल ७ अनुवाक ८६में ‘मन्त्ररामाचरण’ नामक एक प्रक्षात प्रकरण है, इसके १४१ वें मन्त्रमें श्रीरामसन्नामादारका वर्णन आया है, इसपर श्रीनीलकण्ठ-सूरिने ‘मन्त्र-रहस्य-प्रकाशिका’ नामक व्याख्या भी की है। उक्त प्रकरणसे सिद्ध है कि सृष्टिके प्राचीनकालसे श्रीरामोपासना अविचिक्षणरूपसे चली आ रही है। सत्ययुगमें अनेक ऋषि-सुनि एवं भक्तगण श्रीरामके उपासक थे, इसके उदाहरणस्वरूप लोमश, आगस्त्य प्रभृतिकी कथा प्रसिद्ध है। वेदके पश्चात् श्रीरामोपासनाका सबसे बड़ा ग्रन्थ श्रीमद्भास्मीकीय-रामाचरण है, इसके अतिरिक्त ब्रह्म-रामाचरण, प्रमोदवरामाचरण, भुसुषिद्वारामाचरण, महारामाचरण, आकृत्वरामाचरण, प्रेमरामाचरण, अध्यात्मरामाचरण आदि अनेक रामाचरण हैं, श्रीरामचरित्रका वर्णन शतकोटि-विस्तार औदृढ़ लोकोंमें व्याप्त है।

श्रीरामतापिनी-उपनिषद्की चतुर्थ कथितकामें श्रीराम-मन्त्रका वर्णन आया है—‘श्रीरामस्य मनु वाद्यां जजाप वृपमध्वजः’। काशीमें श्रीराममन्त्रको शिवजीने जपा, तब श्रीरामचन्द्र भगवान् प्रकट होकर बोले, ‘वत्तो वा शक्ताणो वापि ये लभन्ते पठक्षरम्।’ हे शिवजी! आपसे या ब्रह्मासे जो कोई श्रीरामचरित्र मन्त्रको लेंगे, वे मेरे धामको प्राप्त होंगे। ब्रह्मासे वशिष्ठ-आगस्त्यादि अविष्योंने मन्त्र लिखा था और भी जिन-जिन अविष्योंने श्रीरामोपासना करके जिस-जिस पदको प्राप्त किया, उसका प्रमाण दृढ़हरीत-सूतिके एष अध्यायमें आया है—

पतन्त्रमगस्यस्तु जप्त्वा सूत्वमानुशात् ।  
ब्रह्मत्वं काशयो जप्त्वा कौशिकस्वररेशताम् ॥

कर्तिकेया मनुत्वं च इन्द्रार्कागिरि नारदौ ।  
बालवित्यादि मुनयो देवतात्वं प्रपेदिर ॥१॥

‘अर्थात् इस श्रीरामोपासना करके अगस्त्यजी हृदशकि-  
सम्पन्न हुए, कश्यपजीने श्रीराम-मन्त्रको अपठक ब्रह्मत्व  
प्राप्त किया, कौशिक मुनि अगस्त्यको प्राप्त हुए, कार्तिकेय  
मनु-पदपर नियुक्त हुए, और इन्द्र, सूर्य, नारद, बालवित्यादि  
ऋषियोंने श्रीरामोपासना करके दिव्य देवत्व पदको प्राप्त  
किया।’ इस प्रमाणसे सिद्ध है कि सत्ययुग, त्रेता, द्वाष्टारादि  
तीनों युगोंमें समस्त ऋषियां श्रीरामोपासक ही थे। यों  
तो अठारहों पुराण, महाभारत, पाञ्चरात्र आदि सभी  
अन्योंमें श्रीरामोपासनाका सविस्तर वर्णन है, किन्तु  
अगस्त्यसंहिताके १६ वें तथा २५ वें अध्याय और पञ्चरात्र  
वृहद्ब्रह्मसंहिता द्वितीय पाद ७ अध्याय एवं पद्मपुराण  
उत्तरस्त्राण २३-४० तथा वृहद्ब्रह्मदीय पुराण पूर्वभाग ३७  
एवं ४० इत्यादि अन्योंके स्पष्ट प्रमाणोंसे यह सिद्ध होता है कि  
श्रीरामोपासना तीनों युगोंमें होती आयी है। यह तो हुई,  
सत्ययुग त्रेता और द्वाष्टारतकी श्रीरामोपासनाकी प्राचीनता।  
परन्तु कलिकालमें श्रीरामोपासना किनके द्वारा और कैसे  
आयी? इसका इतिहास इसप्रकार है— सदाशिवसंहिताके  
नवम अध्यायमें लिखा है—

कलिकालोद्वावानान्वचं जीवानामनुकम्पया ।  
देव्यानुबोधितः साक्षाद्विष्णुः सर्वजनेश्वरः ॥१॥ ॥  
कृतकृत्या तदा लक्ष्मीर्हब्ध्वा मन्त्रं वडक्षरम् ।  
ददौ प्रीत्या तदा देवी विष्वक्सेनाय तारकम् ॥२॥  
बेङ्कटादौं पुरा बेदा द्वापरान्ते पराङ्कुदाः ।  
विष्वक्सेनं समाराध्य लभिष्यति षड्क्षरम् ॥३॥  
तत्सर्वपे महर्षिः बेङ्कटे रङ्गमण्डपे ।  
जपिष्यन्ति चिरं मन्त्रं तारकं तिमिरापहम् ॥४॥  
इति ते कथिनं मुने मुन्द्युपायं तु भार्गव ॥५॥

अर्थात् कलिकालके जीवोंका भवसागरसे तारनेकी  
इच्छासे भगवान् विलुप्तीने लक्ष्मीजीको श्रीराम-मन्त्रोपदेश  
दिया। तारक-मन्त्रको प्राप्तकर लक्ष्मीजी कृतकृत्य हुई और  
श्रीतपूर्वक लक्ष्मीजीने श्रीविष्वक्सेनजीको तारक-मन्त्र दिया।  
तत्पश्चात् द्वापरके अन्तमें श्रीपरांकुश (श्रीशठकोपस्वामीजी)  
बैकटाचल पर्वतपर सबसे प्रथम विष्वक्सेनजीका आराधन  
करके उनसे वेदाध्ययन पुरःगर वडकर तारक-मन्त्र लेंगे।  
बैकटादिके समीप रंगमण्डप सिद्धपीठपर बैठकर सर्वपाप-

बाशक श्रीरामतारक-मन्त्रको उक आचार्य शिष्योंके सहित  
बहुत कालपर्यन्त बैपेंगे। शिवजी कहते हैं, हे भार्गवमुने!  
हमने कलिकालके जीवोंके लिये तुमसे सुकिंचा उपाय  
कहा है। उपर्युक्त उदाहरणसे स्पष्ट सिद्ध है कि, कलिकी  
आदिमें विष्वक्सेनद्वारा श्रीशठकोपदेशिकजीको ही सर्व  
प्रथम श्रीरामोपासना मिली। ऐसेही उदाहरण वृहद्ब्रह्म-  
संहिताके द्वितीय पाद तात्वं अध्यायमें भी आये हैं—

‘विष्वक्सेनादिभिर्मः शठारिप्रमुखैद्विजैः ।  
रामानुजेन मुनिना कलै संस्थामुपैष्यति ॥  
द्वापरान्ते कलेरादों पालण्ठप्रचुरे जने ।  
रामानुजेति भविता विष्णुघर्मप्रवर्तकः ॥

अर्थात् श्रीमत्तारायणने श्रीलक्ष्मीजीको श्रीराम-मन्त्रोपदेश  
अर्थ-ध्यान-संहित देकर कहा है कि, ‘हे प्रिये! द्वापरके  
अन्तमें कलियुगके आदिमें पालणी मनुष्योंके अधिक हो  
जानेपर सद्भांगीं रक्षाके लिये श्रीविष्वक्सेन तथा श्री-  
शठकोपादि द्विजवरों एवं श्रीरामानुजप्रभुत्वद्वारा कलिमें  
श्रीरामोपासनाकी पूर्ण अभिवृद्धि होगी।’ इस प्रमाणसे  
भी सिद्ध है कि सर्वप्रथम कलिके आदिमें श्रीशठकोप-  
प्रभुत्वद्वारा ही श्रीरामोपासनाका प्रचार हुआ।

श्रीरामोपासनाकी वृद्धिके लिये श्रीशठकोपस्वामीजीने  
बैकटादिके निष्ठ तिरुपतिमें सर्वप्रथम श्रीसीतारामजीकी  
दिव्य मूर्ति स्थापन की थी। यह दिव्य स्थल श्रीशठकोप-  
स्वामीजीका मङ्गलानुशासित है। पाँच हजार वर्षोंसे यह स्थल  
प्रसुत है जो आज भी श्रीविष्वक्सेनके हस्तगत है और तिरुपतिके  
श्रीमहन्त्र प्रयागदासजीके प्रबन्धमें सुरक्षित है। इसी  
दिव्य मन्दिरमें बैठकर श्रीशठकोपस्वामीजीने बहुत काल-  
पर्यन्त श्रीराममन्त्रका जप किया था। इसीलिये सदाशिव-  
संहितामें लिखा है कि, ‘तन्मापं गदार्पणे व्यक्तं रंगमण्डने।’  
कहा जाता है कि, हिन्दुस्थानमें सबसे प्रथम श्रीराम-मूर्तिकी  
पूजाका समारंभ इस युगमें यहांसे हुआ और यह भी  
किंवदन्ती है कि, यह त्रेतायुगकी मूर्ति श्रीशठकोपस्वामीजी-  
को अस्यन्त उरकट तपस्यासे प्राप्त हुई थी। श्रीशठकोप-  
स्वामीजीने अपने दिव्य प्रबन्ध सहस्रगीतीके ३ शतक  
६ दशक ८ वीं गाथामें लिखा है—

‘दशरथस्य मुतं तं विना नन्यशरणवानस्मि ।’

अर्थात् श्रीमहशरथ-राजकुमारके अतिरिक्त दूसरेका  
शरणगत नहीं हैं। ऐसे ही श्रीराम सर्वेश्वरके महत्व-

परक एक सहस्र गाया आपने लिखी है। श्रीशठ-  
कोपदेशिकजीने श्रीरामोपासनाका समस्त आभार शिष्योंमें  
सर्वधारण शित्य श्रीनाथमुनिजीको सौंपा। श्रीनाथमुनिजीने  
भी श्रीरामोपासनाका प्रचार सर्वजगत्प्रवाही किया,  
जिसका स्पष्ट उदाहरण आपने अपने संग्रहीत ग्रन्थोंमें से  
'नाथमुनियोगपटक' नामक ग्रन्थमें दिया है। यह संहिता  
लगभग १० हजार है; इसमें श्रीरामजीके नित्योत्सव गजस्थ-  
तुरंग-पालकी नित्यविहारलीला एवं पाणिक-मातिक-  
त्रैमासिक-षष्ठमासिक-वार्षिक मंगलोत्सवोंका वर्णन है।  
आपकी एक 'मानसिक व्यावरामायण' अति विचित्र है आप  
मानसिक व्यानसे एक महीनेमें उसको समाप्त किया करते  
ये, जिस रामायणका शृतान्त कभीफिर सविस्तृत लिखेंगे।

श्रीनाथमुनिजीके शिष्योंमेंसे प्रधान श्रीपुण्डरीकाषड्जी  
हुए, आपने श्रीरामोपासना-विषयक 'श्रीरामार्था' तथा  
'श्रीरामप्रवालमनोहर' हस्तादि ग्रन्थ रचे हैं, जो कि दक्षिण  
दिव्य देशोंमें उपलब्ध हैं।

श्रीपुण्डरीकाषड्जीके शिष्य श्रीरामोपासक श्रीराममिथ्र-  
स्वामीजी हुए। आपने श्रीरामोपासनाके कई ग्रन्थ लिखे थे,  
जिनमेंसे 'श्रीरामपद्मत्रप्रसिद्धितोत्त्र' जो कि, श्रीराममन्त्रके  
छः अवरोपर छः श्लोक तथा 'श्रीसाकेतसोपान' में  
विद्यमान हैं, जिनको हस्त 'नित्यमनुतिसंग्रह' नामक पुस्तक-  
में सुनित करा चुके हैं। श्रीमद्रामायणपर आपकी बनायी,  
हुई भावप्रकाश' नामक टीका भी सुनी जाती है।

श्रीराममिथ्रजीके शिष्य श्रीयामुनमुनिजी हुए, आपने  
श्रीमद्रामायणका अर्थ २१ बार गुह-मुखसे अध्ययन किया।  
आपका बनाया 'श्रीमद्रामायण रहस्यप्रकाश' बड़ा विलक्षण  
ग्रन्थ है। 'श्रीरामभावनाष्टक' नामक स्तोत्र भी आपका  
निर्मित है, जिसको हस्त अभी-अभी 'श्रीसुदामाजीकी  
बारालक्ष' नामक संग्रहीत ग्रन्थमें सुनित करा चुके हैं। और  
म्नोग्रन्थ 'आलबन्दार' के अन्तमें आपने श्रीरामोपासनाका  
जोकोत्तर दर्श दिखाया है। इसके लिये श्रीवेदान्तदेशिक-  
कृत 'आलबन्दारभाष्य' का अवलोकन कर लेना चाहिये।  
'आगमप्रामायणसिद्धित्रयी' आदि आपके और भी अनेक  
ग्रन्थ उपलब्ध हैं।

श्रीयामुनाचारीस्वामीजीके श्रीमहापूर्णोचार्यादि पांच  
शिष्य हुए, श्रीमहापूर्णोचारी स्वामीजीके ही शिष्य श्री-  
माधवकार लक्ष्मणावतार 'श्रीरामानुजस्वामीजी' महाराज

हुए। शूलकटीकाकर श्रीगोविन्दराजस्वामीजीने श्री-  
मद्रामायणके आरम्भमें लिखा है कि, श्रीरामानुजस्वामी-  
जीने श्रीमद्रामायणका रहस्यार्थ १८ बार अध्ययन किया था।  
आपने श्रीरंग-मन्दिरके गोपुरपर चढ़कर श्रीराम-मन्त्रोच्चारण-  
द्वारा जगत्को उपवेश देकर श्रीरामोपासनाका अपूर्व प्रचार  
किया। आपने श्रीरामपद्मत्रमन्त्रार्थपरक छः अवरो-  
पर छः श्लोक लिखे हैं, उनमेंसे दो श्लोक अद्यावधि मिलते  
हैं, जिनको हस्त 'श्रीरामसारसंग्रह' नामक ग्रन्थके राम-  
रहस्यत्रयार्थ, प्रकरणमें सुनित करा चुके हैं। और 'गणत्रय'  
में भी आपने 'सकृदेव प्रपञ्चाय तवामानि च याचते।  
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददायेतद्रत्नं भम ॥' इस श्रीराम-चतुर्म  
मन्त्रको श्रीरामशश्वरागतिपरक दिया है; जिसपर  
श्रीवेदान्तदेशिकश्वामीजीने 'अभयप्रदानसार' नामक  
ग्रन्थमें १२ हजार व्याख्या की है। आपके हारा स्थापित  
यादवाद्रिमें श्रीयतिराज मठ है, वहाँपर भी श्रीरामपद्मत्र-  
की १२ हजार व्याख्या उपलब्ध है। यह व्याख्या आपके  
पश्चात् शिष्य-प्रशिष्योंने लिखी है। श्रीमद्रामायणपर भी  
श्रीभाष्यकारकी टीका विस्तृतरूपमें है; दिव्य देशोंमें  
भगवद्विषयके नामसे जिसका कालचेप हुआ करता है।  
आपने कन्याकुमारीसे हिमालयपर्यन्त श्रीरामोपासनाका  
अटल प्रचारकर चराचर चेतनोंको परमपद जानेका मार्ग  
सुलभ कर दिया। श्रीमाधवादि आपके और भी कई  
ग्रन्थ हैं।

श्रीरामानुजस्वामीजीके शिष्योंमेंसे श्रीकूरेशस्वामी-  
जी अनन्य श्रीरामोपासक हुए, इसका पता आपके विरचित  
ग्रन्थोंमेंसे 'पञ्चस्तवी' ग्रन्थसे स्पष्ट लगता है कि आप एक  
बड़े ही उच्चकोटिके उपासक थे। आपने कृमिक्षण  
राजाकी राजसभामें श्रीराममन्त्रका महस्य प्रकट करके  
श्रीरामोपासनाका विजय पाया—यह आपके 'कूरेशविजय'  
नामक ग्रन्थसे प्रमाणित होता है।

श्रीरामानुजस्वामीजीके श्रीगोविन्दार्थार्थ शिष्य हुए,  
उनके श्रीभट्टारकस्वामी बड़े ही प्रसिद्ध धुरम्भर विद्वान्  
हुए हैं। जिन्होंने 'भगवद्गुण-वर्णण-सहस्रनामभाष्य' में  
श्रीरामोपासनाका वर्णन विलक्षणरूपसे किया है। आपके  
और भी श्रीरामोपासनाके दिव्य प्रबन्ध हैं। श्रीभट्टारक-  
स्वामीजीके श्रीवेदान्ती स्वामी, उनके कलिजित स्वामी,  
उनके श्रीकृष्णाचारी, उनके श्रीलोकाचारी स्वामी हुए।  
आपने उपासनारहस्यमय १८ ग्रन्थ लिखे हैं। जिनमें

‘श्रीवचनभूषण’ श्रीरामोपासनाका अपूर्व ग्रन्थ है। आपके श्रीरौद्रेशजी, उनके श्रीवरवरमुनिस्तामीजी हुए। आपने श्रीरामोपासनाके परत्वपर अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। भगवद्गीता-माध्य श्रीरामपरत्वपर आपका लिखा हुआ भाव बहा ही विवरण है। श्रीरामोपासकोंको इसे अवश्य देख लेना चाहिये। आपने ‘श्रीराममंगलाशासनस्तोत्र’ में श्रीरामायणके सातों कावडोंका सारांश देसा लोंच लिया है मानो गागरमें सागर आ गया हो, जिसको हम ‘श्रीरामदिव्यस्तवराज’ में सुन्दरित करा चुके हैं। आपके शिष्य-प्रशिष्योंमें श्रीदिव्यरामाचार्यजी हुए हैं, जिन्होंने ‘श्रीराममहिन्द्रोत्र’ लिखकर श्रीराम-मन्त्रका महस्व प्रकट किया है। श्रीवरवरमुनिस्तामीजीके शिष्य श्रीदेवाचार्यजी हुए, उनके श्रीहरियाचार्यजी हुए, जिन्होंने ‘श्रीरामस्तवराज’ भाष्यादि अनेक ग्रन्थ श्रीरामोपासनाके लिखे हैं। आपके शिष्य श्रीराघवाचार्यस्तामीजी वहे ही उन्नत विद्वान् हुए हैं। आपके श्रीरामानन्दस्तामीजी महाराज समस्त शिष्योंमें शिरोमणि हुए हैं, आपने श्रीरामोपासनाकी रक्षाके लिये ‘श्रीवैष्णवमतावृत्त-भास्कर’ तथा ‘श्रीरामार्चनपद्मनि’ ये दो ग्रन्थ लिखे हैं, जिनको हम मूलमात्र सुन्दरित करा चुके हैं। आपके प्रतापसे भारतके कोने-कोनेमें आपके शिष्यप्रशिष्योंद्वारा श्रीरामोपासनाका नृव ही प्रचार हुआ। आपकी कृपासे भारतमें श्रीरामोपासनाका अचल हो गयी। कवीर आदि आपके शिष्य श्रीरामोपासनासे ही मर्वंजोकप्रसिद्ध हो गये। श्रीरामानन्दस्तामीजीके शिष्य श्रीनवहरियानन्दजी हुए; आपके ही शिष्य कविचार्वभौम, श्रीरामोपासक-चूडामणि श्रीमद्गोस्त्वामी तुखसीदासजी हुए। आपने श्रीरामोपासनाके श्रीरामायणादि १२ ग्रन्थ लिखकर श्रीरामोपासनाको अचल कर दिया। श्रीगोस्त्वामीजीकी कृपामें हिन्दुस्थानमें ही नहीं, अन्य देशोंमें भी श्रीरामोपासनाकी पताका फहरा रही है। इसप्रकार चारों सुर्गोंमें श्रीरामोपासनाकी प्राचीन गुरु-परम्परा चली आ रही है। परम्पराया प्राचीनकालकी प्राचीन श्रीरामोपासनाका मूल-मार्ग यही है। श्रीरामोपासनाके ग्रन्थ पूर्वाचार्योंहुत अमन्य भरे पढ़े हैं। विमार-भयसे शिवरामनमात्र करा दिया गया है।

॥ उपर्युक्त लेखमें जिन-जिन पुस्तकोंके नाम आये हैं, जिन्हें हम सुन्दरित करा चुके हैं, वे बिना मूल्य, ‘रागाग्रह वहास्थान—प्रयाग’ के पनेसे (२३) के टिकट भेजनेकावडोंको मिल सकेंगी।

## रामायण-संस्क्या

पाठकोंकी जानकारीके लिये बालमीकिरामायण और अध्यात्मरामायणकी श्लोक-संक्षा तथा गुसाईजीहुत रामायणके दोहे-चौथाई आदिकी संक्षा दी जाती है।

### श्रीमद्वालमीकिरामायणके सर्ग और श्लोक

| काण्ड           | सर्ग | श्लोक |
|-----------------|------|-------|
| बालकाण्ड        | ७७   | २२६७  |
| अयोध्याकाण्ड    | ११६  | ४२८६  |
| अरश्यकाण्ड      | ७५   | २४४४  |
| किञ्चिन्धाकाण्ड | ६७   | २४४८  |
| सुन्दरकाण्ड     | ६८   | २८२६  |
| युद्धकाण्ड      | १२८  | २७१०  |
| उत्तरकाण्ड      | १११  | ३३०६  |
|                 | ६४८  | २३३०० |

### श्रीमद्ध्यात्मरामायणके सर्ग और श्लोक

| काण्ड           | सर्ग | श्लोक |
|-----------------|------|-------|
| बालकाण्ड        | ७    | ३६१   |
| अयोध्याकाण्ड    | १    | ३२८   |
| अरश्यकाण्ड      | १०   | ४१६   |
| किञ्चिन्धाकाण्ड | १    | ४६०   |
| सुन्दरकाण्ड     | ८    | ३२७   |
| युद्धकाण्ड      | १६   | १११८  |
| उत्तरकाण्ड      | ४    | ६११   |
|                 | ६५   | ४२४८  |

### श्रीरामचरितमानसकी छन्द-संस्क्या

| काण्ड नौराई दोहा रोरठा अन्यछन्द कुल-सं० |
|-----------------------------------------|
| बाल १४६४ ३५९ ३८ ६८ १६२६                 |
| अयोध्या १३०६ ३१४ १३ १६ १६४६             |
| अरश्य २६३ ४० ८ ४५ ३६६                   |
| किञ्चिन्धा १५४ ३१ ३ ८ १६३               |
| सुन्दर २०१ ६२ १ १ ३४३                   |
| लंका २७४ १५० १ ७४ ८०७                   |
| उत्तर ५६६ २०७ १६ ८४ ८७३                 |
|                                         |
| ४६६८ ११०३ ८८ २७१ ६१८७                   |

## रामायणकालीन कला और उद्योगकी सूची

( लेखक—श्रीयुत वी० एच० बंदेर एम०ए० एल-एल० वी० )

|                                            |                |                                                          |            |
|--------------------------------------------|----------------|----------------------------------------------------------|------------|
| कलाचिक = मलबूर                             |                | कलाचिक = लकड़ी छीरनेवाले                                 |            |
| शिल्पकार = कारीगर                          |                | वैशक = मोती और मणिशादि में छंद करनेवाले                  |            |
| वर्षकि = वहाँ                              |                | रोचक = काँचकी शीशियाँ बनानेवाले                          | २ दृ० १३   |
| स्तनक = बेलदार (मिट्टी खोदनेवाले)          | वा०शा०३ - १३-७ | दन्तकार = हाथी-दाँतकी दस्तकारी करनेवाले                  |            |
| गलाक = उशेसियी                             |                | गन्धोपजीविन् = अतर सुगन्धवाले                            |            |
| नट = सूक्षधार                              |                | सुवर्णकार = सोनार                                        | २ दृ० १४   |
| शैलूप = अभिनेता                            |                | कम्बलकारक = कम्बल बनानेवाले                              |            |
| नर्तक = नाचनेवाले                          |                | वैष्ण = वैष्ण                                            | "          |
| गायक = गानेवाले                            | १ - ६४ २       | भूरक = भूषक व्यापार करनेवाले                             |            |
| सूत = रथ हाँकनेवाले                        | २ - ४ - ३      | रजक = धोत्री                                             | २ - दृ० १५ |
| सूत = पौराणिक                              | २ - ६२ २       | तनुवाय = जुलाहे                                          | "          |
| सूत = वहाँ                                 | "              | कैवर्षक = कैवट                                           | "          |
| दैवक } उपोतियी, भविष्यवका                  | २ - ४ - २१     | इमञ्चुवर्द्धन = नाहू                                     | ४-१२दृ० १३ |
| दैव-चिन्तक } मारात्मक                      |                | इनमें से कुछ उद्योग तो राज्यकी सहायतापर निर्भर           |            |
| मारात्म = वंशावली-गुणगान करनेवाले।         | २ - ६ - ६      | ये और कुछ राज्यसे पूर्ण स्वतन्त्र रहते थे। इनमें कुछ     |            |
| वन्दिन् = सुलि पाठ करनेवाले।               | "              | वंशागत थे जिनके कारण आधुनिक वर्णव्यवस्था उत्पन्न हुई।    |            |
| वादित्र = बाजा बजानेवाले।                  | २ १६ - ३८      | आराम के समयमें इन उद्योग-धन्धोंमें अत्यन्त हीम उद्योगों- |            |
| स्नानशिराशः = स्नान करानेमें पदुलोग।       | २ ६५ ८         | के अतिरिक्त शेष सब शूद्रोंके हाथ सज्जाजित होते थे और     |            |
| स्नापक =                                   | २ दृ० १४       | हीमतम उद्योग अनार्थ लोगोंके थे।                          |            |
| पाणिवाहक = तालके साथ गानके समय             |                | <b>कला और उद्योगधन्धे</b>                                |            |
| ताली बजानेवाले                             | २ - ६८ - ४     |                                                          |            |
| भूमिप्रदेशः = पृथ्वीके स्थलोंको जानेवाले   | २ - ८० - १     | व्यापार शिल्प नाटक गान ज्योतिष मार्ग श्लापक सूद          |            |
| व्यवहारिन् = व्यापार करनेवाले              | २ - ७६ १६      |                                                          |            |
| यन्त्रक = क्लोटी क्लोटी मरीन बनानेवाले     | २ - ८० - १     | नट शैलूप वन्दिन् मार्गशङ्क                               |            |
| यन्त्रकोविद् = बड़ी मशीनें बनानेवाले       | २ - ८० - २     | मार्गिन्                                                 |            |
| सूत्रकम्बिशारद = तम्भु छावनी आदि बनानेवाले | २ - ८० - १     |                                                          |            |
| मार्गिन् = पथ-रसक                          | २ ८० - २       |                                                          |            |
| वृषतस्क = वृष काटनेवाले                    | २ - ८० - ३     |                                                          |            |
| सूपकार } इसोई बनाने और परोसनेवाले          | २ १२ - ६६      |                                                          |            |
| सूप                                        |                |                                                          |            |
| सुधाकार = चूना बनानेवाले                   | "              |                                                          |            |
| वंशाहूत् = बौंसका काम करनेवाले             | २ - ८० ३       |                                                          |            |
| चर्मकृत् = चमार                            | २ - ८७ - ३     |                                                          |            |
| कुम्भकार = कुम्भार                         | २ - ८३ - १२    |                                                          |            |
| गन्धोपजीविन् = शूल बनानेवाले               | २ - ८३ - १२    |                                                          |            |
| मणिकार = जौहरी                             | "              |                                                          |            |
| मपूरक = मोर-पंखकी बस्तु बनानेवाले          | २ - ८३ - १३    |                                                          |            |

### गायक वादित्र नर्तक पाणिवाहक

- (क) वहाँ
  - (ख) रथकार
  - (ग) यन्त्रनिर्माण करनेवाले
  - (घ) वृष काटनेवाले
  - (ङ) चूना बनानेवाले
  - (च) बौंसका काम करनेवाले
  - (छ) हाथीदाँतकी दस्तकारी करनेवाले
  - (ज) काँचकी कारंगरी करनेवाले आदि आदि
- रामायणमें जो कलाकौशल तथा उद्योग-धन्धेका विस्तृत विवेक है, उनमें से कुछके नाम ऊपर दिये गये हैं। यह विविक्त स्पष्ट है कि तत्कालीन समाज एक समुदाय सभ्यता-की अवस्थामें था और अधिकतर मनुष्योंको इमानदारीके साथ अपनी जीविका बजानेका पर्याप्त अवसर प्राप्त था।

## रामावतारका कारण



सार परिवर्तनशील है। चक्रकी तरह सदा गतिशील रहता है। यदि चक्रके किसी अंगको धुमा दिया जाय तो सारा चक्र ही धूम जाता है। इसीप्रकार संसारकी प्रत्येक वस्तु एक अदृश्य डोरीमें इसप्रकार बँधी हुई है कि जिसका सम्बन्ध अनादि और अटल है एवं उसका धुमानेवाला परमात्मा परदेकी ओटमें बैठा उसे सतत धुमा रहा है। सूर्य अपनी किरणों द्वारा संसारकी वस्तुओंमें गर्मी प्रदान करता है और जलके अंशको ऊपर बीच लेता है। काटकों जलानेसे जो ज्वाला प्रकट होती है वह सूर्य-देवकी दी हुई पूँजी है, जिसे उस वृक्ष या काष्ठने दिन प्रतिदिन लेकर अपनी गाँठमें जमा कर रखता था। अब अपने अन्त समयका चिचारकर वृक्ष अपने अस्तित्वको नष्ट करते समय एक उदारचित्त दानी-की तरह उस ज्वालाको वापस सूर्यदेवकी भेंट कर रहा है। जल, जिसे सूर्यने वायु-रूपमें ऊपर बीच लिया था, पृथ्वीको उच्छता की नीब्र तिरछी और नुकीली छुरियोंद्वारा व्यथित होने देखकर काँप उठता है और अपने वायुरूपी शरीरको त्याग कर पृथ्वीके तप्त हृदयको अपने शीतल अंगसे आलिङ्गन कर उसके घावोंको अपनी नम्रता, शीतलता, आद्रता और उदारताके कोमल स्पर्शसे भर देता है।

एक वस्तुका प्रकट होना किसी दूसरी अवस्था या वस्तुके आगमनकी सूचना देता है। किसी वस्तुका जन्म उसकी मृत्युकी सूचना है! और मृत्यु उसके जन्मकी पताका है जो फहराकर आनन्द और हर्षकी सूचना देती रहती है।

‘मेरा होना या फक्त मेरे न होनेके लिये।

मेरा मरना या फक्त मेरे जीनेके लिये।’

बड़ी सीध गर्मी इस बातकी सूचना देती है कि

वर्षा या आँधीका आगमन समीप है। जब कोई मनुष्य दुःखसे खूब तड़फड़ा रहा हो तो यह जानरखना चाहिये कि उसके लिये एक दूसरी अवस्था ‘बेहोशी’ या ऐसी ही कुछ और दशा समीप ही लगी हुई है, जिसके प्राप्त होनेपर उसे पीड़का ज्ञान ही न रहेगा। पतझड़का मौसिम जहाँ वृक्षोंकी पत्तियाँ नोचनेमें ही लगा रहता है, वहाँ उसके बाद ही वसन्त भी पुष्पोंका तरकस लिये दौड़ा चला आता है।

जिस समय राघणके शासनसे प्रजा दुखी थी, अ॒ष्टि-  
मुनि जंगलोंमें बैठे हुए भी कष्ट और दुःखकी सीमासे अलग नहीं थे। चारों ओर घोर अन्धकार छाया हुआ था, मानो यह सब इस बातकी सूचना दे रहे थे कि सूर्यकुलमें बहुत शीघ्र एक अनुपम सूर्य प्रकट होगा जो अन्धकारको नष्ट करके पृथ्वीको पुनः स्वच्छ, पवित्र और उज्ज्वल चादर पहनाकर पहलेसे कहीं अधिक सुन्दर बना देगा। मिलनीका प्रेम, नियाद-की मुहब्बत उमड़-उमड़कर हृदय-देशकी दीवारों-को ढहाकर किसीसे भेंट करनेके लिये चारोंओर फैल रही थीं। क्या उमड़ती हुई धाराके प्रबल वेग-को रोकनेके लिये कोई सामान न होगा? क्या बुलबुलकी चहक, फूलकी महक, कोयलकी कूक और पपीहेकी दूकमें कोई असर न होगा? क्या मधुरस्वर मुनसान वायुमण्डलमें भिलकर नष्ट हो जायगा, क्या पहाड़ी चट्टानोंसे टकराकर ध्वनि प्रतिष्ठनिके बल पहनकर प्रकट न होगी? क्या पुष्पके पूरे खिलनेपर भी सुगन्ध न आयगी? क्या प्रेमसे भरे हृदयके लिये प्रेम-प्रतिमा प्रकट न होगी? क्या प्रेमीके लिये वह मनमोहनी मर्ति ‘राम-नाम’ से प्रसिद्ध होकर प्रेमकी कोमल डोरियोंमें बँधकर न लिखेगी, अवश्य, अवश्य लिखेगी! ‘हाँ हाँ बता रही है तेरी नहीं नहीं’ रामावतारका मुख्य भेद और कारण संक्षिप्तमें यही है! — बनारसीदास ‘प्रेम’



## कल्याण



पुत्र लव-कुशको जनकजा धनुर्वेद सिखा रही।

स. स. मुद्रणालय-अमरावाड़.

## वाल्मीकीय रामायणका आधार और काल

(लेखक—श्रीगोविनदनारायणजी आमोपा दाशीच वी० द०, एम० आर० प० एस० )

जते जगति वाल्मीकी कविरत्यभवद्धृवनि॑ ।  
कवी इति ततो व्यासे कवयस्तिवति दिष्टिनि॑ ॥

**म**

इर्वं आदिकवि वाल्मीकिके नामसे सभी  
साहर भलीभाँति परिचित हैं । संस्कृतमें  
वेदोंको छोड़कर सबसे प्राचीन प्रथा वाल्मीकीय  
रामायण है । यह एक अमल्कारिक प्रथा  
है । इसके पाठद्वारा कई प्रकारके अनुष्ठानोंकी  
सिद्धि इस कविकालमें अब भी होती है । यह

बात प्रथम प्रमाणित और अनुभूत है । इसके कुछ औरीस  
सहज लोक हैं, जिनमेंसे प्रायः प्रतिसहज पथके आचारोंसे  
गायत्रीमन्त्र निकलता है । जिसको गायत्रीमन्त्र रामायण  
कहते हैं । पाठोंके परिशानार्थ हम वह नीचे देते हैं—

ओं तत् ओं तपःस्वाध्यायनिरतं तपस्वी वारिवदां वरम् ।

नारदं परिप्रच्छ वाल्मीकिर्मुनिपुहवम् ॥ १ ॥

स सहत्वा राक्षसान् सर्वान् यज्ञाद्वान् रघुनन्दनः ।

ऋग्विभिः पूजितस्तत्र यथेन्द्रो विजयं पुरा ॥ २ ॥

वि विद्यामित्रः स वर्मात्मा श्रुत्वा जनकभाषितम् ।

वत्स ! राम ! ब्रनुः पद्य हति गथवमवतीत् ॥ ३ ॥

तुरु तुष्टावास्य तदा वैशं सुमन्त्रः स विशांपतेः ।

शयनीयं नरेन्द्रस्य तदासाद्व व्यतिष्ठतः ॥ ४ ॥

व वनवासं हि सङ्क्षयाय वासांस्यामरणानि च ।

भर्तीरमनुगच्छन्तै सीतीयं शशुरो ददौ ॥ ५ ॥

रे राजा सत्यं च धर्मश्च राजा कुलनां कुलम् ।

राजा भाता पिता चैव राजा हितकरो नृणाम् ॥ ६ ॥

पि निरीयं स मुदूरं तु ददर्श भरतो मुनिम् ।

उटं राममातीनं जटापण्डकधारिणम् ॥ ७ ॥

यं यदि बुद्धिः कृता द्रष्टुमगस्यं तं महाबलम् ।

अद्यैव गमने बुद्धिं रेचयत्वं महायशः ॥ ८ ॥

शर् भरतस्यार्थपत्रस्य शश्रूणा मम च प्रभो ।

भृगूरूपमिदं व्यक्तं विस्मयं जनयिष्यति ॥ ९ ॥

गं गच्छ शीर्पमितो वीर ! भुग्रीवं तं महाबलम् ।

वयस्यं तं कुरु क्षिप्रमितो गत्वाद्य राघव ॥ १० ॥

दे दंशकां भजस्वाद्य शममाणः प्रियाप्रिये ।

मुखदुःखसहः काले मुग्रीवश्चाग्नो भव ॥ ११ ॥

व वन्द्यास्ते च तपःसिद्धास्तपसा वीतकल्पता ।

प्रदृश्या चैव सीतामाः प्रवृत्तिर्विनयानितैः ॥ १२ ॥

स्थ स निर्जित्य पुरी लङ्घां श्रेष्ठां तां कामरूपिणीम् ।

विक्रमेण महातेजा हनुमान् मारुतासमजः ॥ १३ ॥

धी वन्या देवाः सप्तधवीं सिद्धाश्च परमर्षयः ।  
मम पद्यनिति ये नाथं रामीवलोचनम् ॥ १४ ॥  
म महलाभिमुखी तत्य सा तदासीनमहाकरेः ।  
उपतस्ये विशालाक्षी प्रयता हृव्यवहनम् ॥ १५ ॥  
हि हितं महार्थं मृदुहेतुसंहितं व्यतीतकालायति संप्रतिक्षमम् ।  
धि निशम्य तदाक्षयुपास्थितज्वरः प्रसङ्गवानुत्तरमेतदब्रवीत् ॥  
धर्मात्मा राक्षसोऽग्रः संप्राप्तोऽयं विर्माणः ।  
लङ्घैश्चर्यं ध्रुवं श्रीमानयं प्रामाण्यसंशयम् ॥ १७ ॥  
यो यो विजपाताशनिसंनिपातात्र चुक्कुमे नापि च चाल राजा ।  
त रामवाणाभिहतो भृशात्तरश्चाल चापं च मुमाचे वारः ।  
यो यस्य विक्रममासाद्व राक्षसा निघनं गताः ।  
तं मन्ये राघवं वैरं नाशयणमनामयम् ॥ १९ ॥  
नः न ते दहशिरे रामं दहन्तमरिवाहिनीम् ।  
मोहिता परमाल्लेण गान्धर्वेण महात्मना ॥ २० ॥  
प्र प्रणम्य दैवतेभ्यश्च ब्राह्मणेभ्यश्च मैथिली ।  
बद्धाजलिपुटा चेदभुवान्मिसमीपतः ॥ २१ ॥  
चो चालनात्पर्वतेन्द्रश्य गणा देवस्य कमिष्टाः ।  
च चाल चारीं चापि तदाक्षिण्या महेश्वरम् ॥ २२ ॥  
द दारा: पुत्राः प्रियं राट्टं भोगच्छादनमाजनम् ।  
सर्वमवाऽविभक्तं नौ भविष्यति हरीधरः ॥ २३ ॥  
यात् यामेव रात्रि शतुर्द्वः पर्णशालां समाविशत् ।  
तमेव रात्रि सीताऽपि प्रसूता दारकद्वयम् ॥ २४ ॥  
( यावदर्वतं चक्रं यावतीं च वसुन्धरा ।  
नावत्स्वमिह लोकस्य स्वामित्वमवधार्य ॥ )  
इदं रामायणं काव्यं गायत्रीबीजसंयुतम् ।  
विसन्ध्यं यः पठन्ति लोके ब्रह्मलोकं महीयते ॥

इतिहास-ग्रन्थोंमें रामायणका सर्वोच्च और सर्वप्रथम स्थान है । ग्रामाण्यिक इतिहासमें केवल रामायण और महाभारतकी गणना है, जिनमें भी रामायण प्रथम है । यह ग्रन्थ श्रीरामचन्द्रजीके समयमें ही बना था-जैसा कि इसके आन्तरिक प्रमाणोंसे प्रमाणित होता है । मूल रामायणमें १ से सेहतर १० लोकोंतक तो भूतकाल लिखा गया है और ११-१७ तक भविष्यतकाल लिखा है जिससे इष्ट प्रमाणित होता है कि जब रामचन्द्रजीने राम्यको मार, विभीषणको लङ्घाका राज्य दे, नन्दिग्राममें आ, जदा उत्तर, अयोध्याका राज्य पुनः प्राप्त कर लिया, उसके अनन्तर रामायणकी रचना हुई और तदनन्तर जो कृत्य किये उनका

भविष्यत्कालमें 'ऐसा करेगे' इसप्रकार बर्णन है, जिससे उन कृष्णोंके पूर्व रामायणकी रचना की गयी ऐसा सिद्ध होता है। यथा—

अभिष्यद्य च लक्ष्यां राक्षसन्दं विमीषणम् ।  
इतकृत्यसदा रामो विजरः प्रमुमोद ह ॥ ८५ ॥  
देवताभ्यो वरं प्राप्य समुत्थाप्य च बानरात् ।  
अयोध्यां प्रस्थितो रामः पुष्टकेण सुहृद्भ्रतः ॥ ८६ ॥  
मरद्वाजाग्रमं गत्वा रामः सत्यपराक्रमः ।  
मरतस्मान्तिके रामो हनुमन्तं व्यसर्जयत् ॥ ८७ ॥  
पुनरास्यायिकां बल्पन् सुग्रीवसहितसदा ।  
पुष्टकं तत्समारुद्धा नन्दिग्रामं ययो तदा ॥ ८८ ॥  
नन्दिग्रामे जटां हित्वा आतृभिः सहितेऽनघः ।  
रामः सीतामनुप्राप्य राज्यं पुनरवासवान् ॥ ८९ ॥  
बहौतकं सब भूतकालधोतकं कियाओंका प्रयोग हुआ

है, इसके अनन्तर भविष्यत् कियाएँ लिखी गयी हैं। यथा—  
न पुत्रमरणं केचिद्ब्रक्षयन्ति पुरुषाः कर्चित् ।  
नार्यश्वाविषवा नियं भविष्यन्ति पतिव्रताः ॥ ९१ ॥

अश्रमेष्वशैरिष्वा बहुवस्तुवर्णकैः ॥ ९४ ॥  
गवां केतियुतं दस्वा ब्रह्मलोकं गमिष्यति ।  
असंहेयेयं धनं दत्ता ब्राह्मणेभ्यो महायशाः ॥ ९५ ॥  
राजवंशास्तुतुणान् स्थापयिष्यति राजदः ।  
चातुर्वर्ष्यं च लोकेऽस्मिन् स्वे वर्षे नियोग्यति ॥ ९६ ॥  
दशर्वैसहस्राणि दशर्वाशतामि च ।  
रामो राज्यमुपासित्वा ब्रह्मलोकं गमिष्यति ॥ ९७ ॥

अतः यह बात निर्विवादतया स्पष्ट है कि रामचन्द्रजीके राज्यप्राप्तिके अनन्तर और अश्रमेष्व-यज्ञ करनेके पूर्वके समयमें इस महाकाव्यकी रचना हुई थी।

## सीताजीके पूर्वजन्मका वृत्तान्त

( केलक-शुद्धादीनभूषण प० श्रीजेष्ठारामजी हरिजावन शास्त्री )

जनकपुर जाते समय श्रीरामने विश्वामित्रसे पूछा कि महाराज ! आप विसके स्वयंवरमें जा रहे हैं वह सीता कौन है ? विश्वामित्रने कहा—हे श्रीराम ! पूर्वकालमें एक पश्चात नामक राजा था, उसने तपश्चर्यासे काश्मीरीको प्रसन्न करके वह वरदान माँगा कि आप मेरे बहाँ पुश्चीरूपसे प्रकट हों। यह सुनकर लक्ष्मीजीने कहा कि 'मैं तो श्रीविष्णुके अधीन हूँ, वह जहाँ आशा देते हैं वही प्रकट होती हूँ' यह सुनकर उस राजाने विष्णुकी तपस्या करके उन्हें प्रसन्न किया तब विष्णुने एक फल देखर उसे भक्षण करानेको कहा। उस फलसे नव मासके पश्चात एक कन्या उत्पन्न हुई। जब यह कन्या बड़ी हुई से उसका सौन्दर्य देखकर वहें राजा मोहित हो गये और उन्होंने पश्चात गजापर चढ़ाई कर दी, पश्चात मारा गया। पश्चात एक समय अग्निकुद्दासे बाहर लही थी, रावण उसे देखकर मोहित हो गया और उसे अहम्य करनेको आगे यदा, परन्तु पश्चाती अग्निकुद्दासमें लुप्त हो गयी। तबनन्नर रावणने कुद्दामें शोधकर पश्चात प्राप्त किये और उन्हें एक सन्दूकमें बन्दकर अपने घर लाकर मन्दोदरीको दिया और कहा कि यह रस में तुम्हारे लिये साधा हूँ। मन्दोदरीने अब सन्दूक खोकाकर देखा तो भीतर एक शिव्य कन्या दिखायी पड़ी। उसे देखकर मन्दोदरीने रावणसे कहा कि यह कन्या तुम्हारे कुलका नाश करेगी। सन्दूकमें भी

ऐसी ही आवाज़ आयी। तब रावण उस कन्याको भासनेको तैयार हुआ किन्तु मन्दोदरीके समझानेपर वह कन्याको सन्दूकमें बन्द करके बहों दूर उसरमें जनकपुरके पास नौकर-द्वारा एक खेतमें गढ़वा दिया। वशाहराजाने सृष्टुके अनन्तर इसी जनकपुरमें एक प्राक्षणके घर जन्म लिया था। उसीके खेतमें वह सन्दूक गाड़ी गयी थी, वह वाहण इकामें जब खेतको जोतने लगा तब वह सन्दूक प्राप्त हुई। उस सन्दूकको वृद्ध होनेकी आशंकासे उसने गजा जनकको जाकर दिया, राजाने उसे खोला नो भीतर कन्या देखा। नव उम्मने वाहणको द्रव्यमें बन्दुष करके विदा किया और कन्याको अपनी पुत्री करके अपने घरमें रखा, क्योंकि उसको भन्तति नहीं थी। उसका नाम भीना रक्षा गया और जनक-की पुत्री होनेसे वह जानकी भी कही जाने लगी। इस जनक राजाके यहाँ एक समय परशुरामजी आये और अपना शिव-धनुष बाहर रखकर भग्नाके भीतर भोजनको गथे, तब सीताजी इस प्रथायद धनुषको डालकर उसे अश्व बना उम्मके ऊपर बैठकर खेलने लगी। भोजनके बाद परशुरामजीने देखा कि सीताजी धनुषका धोका बनाकर खेल रही है, उन्हें बदा आश्रय दुआ और उन्होंने राजा जनकमें कहा कि यह धनुष जो बदावे, उसीके साथ तुम अपनी पुत्रीका विवाह करना। अतएव यह स्वयंवर हो रहा है, इस स्वयंवरमें जा धनुष खड़ावेगा उसीको यह कन्या प्राप्त होगी, ऐसा कहने कहते हे जनकपुर आ पहुँचे।

## रामायणमें शिवानुशासन

मुनहु उमा ते लोग अभागी । हरि तजि होहि विषय अनुरागी ॥  
 उमा कहौं मैं अनुभव अपना । हरिको भजन सत्य जग सपना ॥  
 उमा दाख योगितकी नाई । सबहि नचावन राम गुसाई ॥  
 उमा राम सम हिनु जग माहा । मुन पितु मातु बंधु कोउ नाही ॥  
 ऐसे प्रभुकहैं जो परिहरही । कोहन विषय जल नर परही ॥  
 उमा राम न्वभाव जिन जाना । तहि भजन तजि भाव न आना ॥  
 उमा संतकी यहै बड़ाई । मनद करत जो करै मलाई ॥  
 उमा रामकर नृकृष्ण विलासा । हीहिविष्व पुनि पावहि नासा ॥  
 उमा राम प्रदृचित कलाकार । बैर भाव मोहि दुर्मिलनिमिचर ॥  
 दोहि परमगति नो त्रिय जानी । अम कृष्णाकुंकुहु भवानी ? ॥  
 'मा अवण्ट राम रामाई । नरगति भाव कृष्ण दिखाई ॥  
 उमा करत रथुरनि नर नीला । खेल गरुदु दिमि अहिगण नीला ॥  
 जनपादन नीरति विर नरही । गाई गाई नर भवनिवि नरही ॥  
  
 उमा जे रामचण्डत विगत काम भद्र कोष ।  
 निज प्रभुनम देवहि त्रगत का सन करहि विरोध ॥  
 सो कुकु धन्य उमा मुनु जगत धूम सुधुनीत ।  
 असदृकीर परायण जहि नर उपज विरनीत ॥

मित्र ता मुनहु नभकी तीका । मुनहेत इनुज विसेहन सीला ॥  
 रामकथा कांचनविष्ट पुराणी । सादर मुनु गिरिगज-मुमागी ॥  
 नामु कृष्ण रम भव गमठ जाई । भारता सोइ कृष्ण रमगाई ॥  
 मित्र ता रथुपतिकी यहै गीता । संतत करहि प्रनतपर गीता ॥  
 मुनु गिरिजा जानानन जानू । जरै गुरुन चारिदस आगू ॥  
 जे अस प्रभु न भजहि भ्रम न्यायीति मतिमंद सो परम अमायी ॥  
 रामकथा गिरिजा ने बरनी । कायमन-समन भनोमलहरनी ॥

गिरिजा संतसमाम समन जाम कहु जान ।  
 विन हरि-कृष्ण होइ नहि गावहि बेट-पुगन ॥  
 गिरिजा जाकर नाम जपि नर काटहि भव फौस ।  
 सो प्रभु आव कि बधतर व्यापक विषद निवास ॥

निषिद्ध अथम भलायतन तहि दीनह निजवाम ।  
 गिरिजा ते नर मंदमति जे न भजहि श्रीराम ॥

×      ×      ×

राम सो परमात्मा भवानी । तहै भ्रम अति अविहित तब बानी ॥  
 जेहि जागे जग जाइ हेराई । जागे जथा स्वप्न भ्रम जाई ॥  
 बद्दीं बालरूप सोइ गमू । सब विष्व सुलभ जपत जस नामू ॥  
 भगलभवन अमंगलहरी । द्रौसो दसरथ अजिर विहारी ॥  
 जिन हरि-मकि हृदय नहि आनी । जीवत शब समान ते प्रानी ॥  
 जे नहि करहि रामगुन गाना । जीह सो दादुर जीह समाना ॥  
 सगुणहि अणुगाहि नहि कलु भेदा । गावहि मुनि पुराण बुध वेदा ॥  
 अगुन अरूप अद्वय अज जाई । मक-प्रेमबस सगुन सो होइ ॥  
 जामु नाम भ्रम तिमिर पतझा । तेहि किमि कहिय विमोह प्रसंगा ॥  
 राम सञ्चिदानन्द दिनेसा । नहि तहै मोहनिसा लबलेसा ॥  
 राम ब्रह्म व्यापक जग जाना । परमानन्द परेस पुराना ॥

पुष्प प्रसिद्ध प्रकास निधि प्रगट परावर नाथ ।  
 रघुकुलमनि मम म्वामि सोइ कहि सिव नृष्णं भाथ ॥

×      ×      ×

जगत प्रकाशय प्रकाशक रामू । मायाधीस शान गुन घामू ॥  
 विवसहु जामु नाम नर कहही । जनम अनेक संचित अथ दहही ॥  
 सोइ प्रभु सोर चराचर स्वामी । रघुबर सब डर अन्तरजामी ॥  
 सादर सुर्मरन जो नर कहही । भवबारिधि गोपद इवतरही ॥  
 द्वार व्यापक मर्वत्र समाना । प्रेम ते प्रकट होहिमैं जाना ॥  
 देम काल दिसि गिदिसहुँ माही । कहहु सो कहौं जहाँ प्रभु नाही ॥  
 अगजनमय सब रहित विरागी । प्रेमते प्रभु प्रकटहि जिमि आगी ॥  
 रथुपति-विमुख जतनकर कही । कबन सके भव-बन्धन छोरी ॥  
 जिनकर नाम लेत जगमाही । सकल अमंगल मूल नसाही ॥  
 राम अतक्षय बुद्धि मन बानी । मत हमार अस सुनहु भवानी ॥  
 अस विचारि जो परम विरागी । रामहि भजहि तर्क सब त्यागी ॥

उमा राम गूह, पंडित मुनि पावहि विरति ।  
 षवर्ति मोह विमूह, जे हरि-विमुख न धर्मरत ॥

## रामचरितमानस और अध्यात्मरामायण

( लेखक—श्रीव्योहार श्रीराजेन्द्रसिंहजी )



रामचरितमानसका रचनाकाल वाल्मीकि-रामायणके पीछे और तुलसीकृत रामायणके पूर्व माना जाता है। अध्यात्मरामायण वाल्मीकीय रामायणके बहुत पीछे तब बनी, जब कि श्रीरामजी आदर्श राजपुत्रके पदसे ऊपर उठकर साहात् परमास्त्राके पूर्ण अवतार माने जाने लगे थे। महर्षि वाल्मीकिने श्रीरामका अवतारस्व स्पष्ट स्वाक्षर करते हुए भी उन्हें अवतार-रूपसे चिह्नित नहीं किया है। अध्यात्मरामायणकी कथा वाल्मीकी-रामायणके ही आधारपर लिखी गयी है, पर रामचन्द्रजीको अवतार मानकर उसका रूप बिलकुल बदल दिया गया है।

इन दोनोंसे ऐसा मालूम होता है कि अध्यात्मरामायणकी रचना सिर्फ़ इसी उद्देश्यसे हुई है कि श्रीरामका इधरस्व सिद्ध किया जाय।

रामचरितमानसकी रचना किसी एक स्वास्थ ग्रन्थके आधारपर नहीं की गयी। उसके भाव 'नानापुराणनिगमागम' से लिये गये हैं। इसका कथाभाग अधिकतर वाल्मीकि-रामायण, अध्यात्मरामायण और भुशुविदिरामायण आदिये लिया गया है। बां रां फूँ अपेक्षा अध्यात्मरामायणका आधार ही इसमें अधिक है। आगे चलकर ज्ञात हो जायगा कि गोसाइंजीने किसीकी अन्धी नकल नहीं की है। मानस-अध्यात्मरामायणकी अन्धी नकल नहीं है बरन् इन दोनों ग्रन्थोंमें बहुत अन्तर है। मानसके पूर्ववर्ती होनेके कारण अध्यात्मरामायणका उसपर प्रभाव अवश्य पड़ा है। इस प्रभावके कारण दोनोंमें कहीं-कहीं भावसाम्य बहुत अधिक दीख पड़ता है। यही कारण है कि बहुतसे परिवर्तोंके यह अम हो गया है कि मानस-रामायण, अध्यात्मरामायणकी नकल है। पर दोनों ग्रन्थोंके व्यानपूर्वक पढ़नेसे साफ मालूम हो जायगा कि इन दोनोंमें बहुत अन्तर है। दोनों रामायणों उमा-महेश्वर-संवादके रूपमें हैं। इससे भी कुछ ज्ञान समझ लेठे हैं कि मानस अध्यात्मरामायणका अनुवाद है। अपने समर्थनमें ज्ञान तीन बातें उपस्थित करते हैं—

(१) दोनों रामायणोंके कथाभाग और भावोंमें बहुत कुछ साम्य है।

(२) मानस अध्यात्मरामायणके पीछे वर्णी।

(३) दोनों, उमा-महेश्वर-संवादके रूपमें हैं। गुसाइंजीने स्वयं कहा है कि—

'यत्पूर्वं प्रमुणा कृतं सुकृदिना श्रीशम्भुना दुर्गमम्'

उत्तर इसप्रकार है—

(१) केवल कुछ भावों और कथाओंमें साम्य होनेके कारण कोई किसीकी नकल नहीं कही जा सकती। आगे यह भी बतलाया जायगा कि कुछ बातोंमें दोनोंमें साम्य रहते हुए भी कुछ ऐसे अन्तर हैं जो भुलाये नहीं जा सकते और जिनके कारण तुलसीदामजीकी मौलिकता प्रकट होती है।

(२) अध्यात्मरामायणके पीछे रचे जानेके कारण मानस-पर उसका प्रभाव अवश्य पड़ा। जिस प्रकार गुसाइंजीने अध्यात्मरामायणसे अच्छी-अच्छी बातें लेकर अपने ग्रन्थमें सम्मिलित की हैं उन्हीं प्रकार अन्य अनेक ग्रन्थोंमें भी सूक्षियाँ वीं गयी हैं। अनः इसके कारण भी कोई ग्रन्थ नकल नहीं कहा जा सकता।

(३) अध्यात्मरामायणकी सारी कथा केवल उमा महेश्वरके संवादरूपमें है। पर मानसमें जो तीन संवाद प्रधान हैं—शंकर-पार्वतीसंवाद उनमेंसे एक है। एक महाशय कहते हैं कि उक्त स्वेच्छामें अन्य नामोंको छोड़कर केवल शम्भुके उपरेक किये जानेके कारण उनकी प्रधानता है। यह बात श्रीक मालूम होती है।

रामायण आरम्भ करते समय गुसाइंजीने उसके आधार-के विषयमें जो परमपरा लिखी है, वह यह है—

'शुभुकौन्ह यह करित सुहावा। बहुरि कृष्ण करि उमाहि सुनावा।'

संद सिव काग मुसुंडिहि दीनहा। ... ... ...

तेहिसनजागबिलि भुनि पावा। तिन पुनि भरद्वाज प्रति गवा।

मैं पुनि निज गुहसन सुनी। ... ... ...

भाषावद्व करव मैं संदै। ... ... ...

इससे प्रकट होता है कि जो कथा शिखने काकसुशुग्रिदसे कही, वही परम्परासे गुसाईजीने पाथी और उसीके आधारपर उन्होंने रामायण लिखी।

गुसाईजीने स्वयं स्वीकार किया है कि उन्होंने 'नाना पुराणों' का आधार लिया। अध्यात्मरामायण ब्रह्मायड़-उत्तरायके अन्तर्गत है। इसकिये उत्तरका भी आधार लेना सिद्ध ही है। अब हम यह बताकरेंगे कि गुसाईजीने कहाँ-कहाँ अध्यात्मरामायणका आधार लिया। पहले काथडोके अनुसार कथाओं समता देखिये।

बालकायडमें देवताओंकी प्रार्थनापर हैं भरका अवतार लेनेकी प्रतिक्षा करना, दशरथका उत्त्रेष्ठि-यज्ञ, रामजन्म, बाल-जीलासे लेकर विश्वामित्र-आगमन, ताङ्काकथ, यज्ञस्त्रय, अहल्योदार, धनुषभंग और विवाह ये कथाएँ मानस और अध्यात्मरामायणमें प्रायः एक-सी हैं। अचोथ्याकायडमें रामनवामन, गृहमिळाप, लक्ष्मणका गुहको उपदेश और भरतसंवाद दोनोंमें विलकृत एक-से हैं। आरण्यकायडके विश्ववध, शरभंग, सुनीषण और अगस्त्यमन्दाद, लक्ष्मणको शानदान, शूरपाण्डु-नासाकर्ण-हरण, मीताहरण, जटायुसंवाद, कवचन्यवध, खरयुद, शवरीदरीन, दोनों रामायणोंमें एक-से हैं। किंचिन्धारी कुर्मीव-मिलाई और सीनासांज, सम्प्राप्ती और योगिनीभेट, एक-से हैं। सुन्दरकायडकी कथा दोनोंकी मिलती है। लंकाकायडमें मन्दोदरीका उपदेश, शुक्रसंवाद, प्रहसनवाद और युद्ध आदि एक-से हैं।

उपर्युक्त कथाओंके साम्यमें यह प्रकट होता है कि मूल कथामें कुछ अधिक भेद नहीं है।

अब वे कथाभाग दिये जाने हैं, जिनमें दोनों रामायणोंमें अन्तर है।

#### अध्यात्मरामायणमें

#### रामनवरितमानसमें

- |                                                              |                                                                                            |
|--------------------------------------------------------------|--------------------------------------------------------------------------------------------|
| (१) आरम्भमें हनूमान्।                                        | (१) नहीं है।                                                                               |
| सीता और रामका संवाद।                                         |                                                                                            |
| (२) देवताओंका शीर-सागरपर जाकर सुनित करना व प्रथम बरदाव पाना। | (२) देवोंका हरिको-व्यापक सवभ समाना जानकर शिवलोकमें सुनि-करना और आकाश-वाणीसे आश्रासन मिलान। |

(३) ब्रह्मवर्षगको मोहित करके अद्योत्पादें करना।

(४) नहीं है। (४) उष्णवाटिकामें राम-जानकी-मेट।

(५) अकेलेमें धनुष-मङ्ग (५) सर्वदेवीय राजाओंकी करना। सभामें रामका धनुष अंग करना।

(६) अयोध्याके रास्तेमें (६) धनुष-भंगके बाद परशुरामका आगमन जनकी सभामें ही और संवाद। परशुराम-आगमन।

(७) आ० का०के आरम्भमें (७) नहीं है। नारदका आना।

(८) आ०का० के अन्तमें (८) आ०के आरम्भमें अत्रि अत्रि-मिलाप। मिलाप।

(९) नहीं है। (९) अनसूयाका सीताको छी-धर्मोपदेश।

(१०) जयन्तकी कथा लड़ा- (१०) आरबद्यकायडमें कायदमें है।

(११) नहीं है। (११) आ०अन्तमें नारदका आगमन।

(१२) नहीं है। (१२) खरका दूत भेजना।

(१३) नहीं हुआ। (१३) सुन्दरकायडमें हनूमन्जीका विभीयत्वसे मिलाप।

(१४) रावण-अङ्गद-संवाद नहीं हुआ। (१४) रावण-अङ्गद-संवाद हुआ।

(१५) हनूमन्जीके आनेपर रावणको स्वप्न हुआ। (१५) त्रिजटाको हुआ।

(१६) बानरोंके जिलानेके लिये हनूमन्जी सभीवनी लेने गये, रास्तेमें भरत और भरद्वाजसे मुलाकात की।

(१७) शक्ति लगानेपर रामने (१७) विद्याप किया। विद्याप नहीं किया।

|                             |                           |
|-----------------------------|---------------------------|
| (१८) रावणने सुमीषके         | (१९) वहों।                |
| पास शुक्रो संधि             |                           |
| करनेके दिये भेजा।           |                           |
| (२०) रावणका सीताको          | (२१) सीताको मारने         |
| मारनेकी इच्छा करना व        | दौड़ना व मन्दोदरीका       |
| सुपारबंका बचाना।            | वीच-बचाव।                 |
| (२०) रावणका होम करना।       | (२०) मेघनालका होम करना।   |
| (२१) अयोध्या खौटते समय      | (२१) नहीं हुआ।            |
| रामका भरहुआसे               |                           |
| मिलाप।                      |                           |
| (२२) लङ्घाकाशदहीमें         | (२२) उत्तरकाशदहीमें लौटना |
| रामका अयोध्या               | व राजगढ़ी।                |
| लौटना और                    |                           |
| राजगढ़ी।                    |                           |
| (२३) उत्तरकाशदहीमें शम्भूक- | (२३) नहीं है।             |
| वधकी कथा।                   |                           |
| (२४) सीता-त्याग।            | (२४) नहीं है।             |
| (२५) लवण्यवध।               | (२५) ..                   |
| (२६) दुर्वासा आगमन।         | (२६) ..                   |
| (२७) अन्तमें लक्ष्मणाय्या   | (२७) ..                   |
| और स्वर्गारोहण।             |                           |
| (२८) नहीं है।               | (२८) वालकाशदहीमें         |
|                             | प्रतापभाजुकी कथा।         |
| (२९) ..                     | (२९) नारदमोह।             |
| (३०) ..                     | (३०) मतीमोह।              |
| (३१) ..                     | (३१) शंकरकृत मदनदहन       |
|                             | पार्वतीविवाह इत्यादि।     |
| (३२) ये सब नहीं हैं।        | (३२) उत्तरके अन्तमें राम- |
|                             | राज्य वर्णन, कलि-         |
|                             | वर्णन, कागम्यशुरिद-       |
|                             | गरुद संवाद आदि।           |

\* इन चारोंके अलावा एकून-में लोटी-द्योदी वनोंमें अन्तर प.या जाना है, जिनमें अग्निका नामको अग्नि देना, धरनका छन्दोन्मुक्ति ग्राहन का बहुत जगह पूर्ण-में दीन्य पदते हैं। कहीं-कहीं तो गुराहंजीने अपने ग्रन्थमें अ० रा० के भोकोंके विळक्कल अनुवाद करके रख दिये हैं, कई स्थलोंपर अ० रा० के छोटे-से भावको गुराहंजीने अपनी प्रतिभासे

- अ० रामायणमें
- (१) राजाका विशेषको अपने घर बुलवाना।
  - (२) मीनाको वन-गमनकी स्वर रामन सुनाइ।
  - (३) केवटके चरण धोनेकी कथा मिलिला जाने समय।
  - (४) रावणकी शुद्ध-समांतं कुम्भकर्ण वा।

अध्यात्मरामायणकी कथा लङ्घाकाशदहीमें समाप्त कर दी गयी है। क्योंकि इससे अन्तमें ग्रन्थसमाप्तिसूचक पथ है। इससे मालूम पदता है कि अन्तसर्वमें इसी ग्रन्थकारने कथा समाप्त कर दी थी। पर छिसीने पीछेसे उत्तरकाशद जोड़ दिया। इसीप्रकार तुलसीकृत रामायणके अन्तमें लक्ष्मणाशकाशद जोड़ दिया गया है। इस लक्ष्मणाशकाशदकी कथा और अध्यात्मरामायणके उत्तरकी कथा एक-सी ही है। जितनी कथा इसमें लङ्घाके अन्तसरक है उतनी ही रामकथा मानसके उत्तरकाशदतक गयी है।

अध्यात्मरामायणके उत्तरकाशदको प्रक्रिया माननेका सिफर यह प्रमाण उपस्थित किया गया है कि लङ्घाकाशदके अन्तमें कुछ ऐसे इलोक आ गये हैं जिनसे मालूम होता है कि ग्रन्थ यहीं समाप्त हो गया। पर उत्तरकाशदमें फिर कथा आरम्भ हो जानी है और यदि लङ्घाकाशदके अन्तके कुछ इलोक निकाल लिये जायें तो कुछ अन्तर नहीं मालूम होता और कथाका सिलासिला। शरादर चला जाता है। ऐसा भी हो सकता है कि ये इलोक उत्तरकाशदके अन्तमें न रखके जाकर भूमि पर इस स्थानपर रख दिये गये हों।

अ० रा०के लङ्घा और उत्तरकाशदोंकी भाषा आदिमें ऐसा भेद नहीं है जिसमें दोनों काशद दो भिन्न कवियोंका रचनापूँ समझ पड़े। पर तुलसीकी रामायणके पीछे जोड़ा गया लक्ष्मणाशकाशद, रेशममें टाटके समान तुरन्त ही स्वटकते लगता है।

कथाभाग इतना अधिक रहते हुए भी गुसाहंजी और अध्यात्मरामायणके भाव बहुत जगह पूर्ण-में दीन्य पदते हैं। कहीं-कहीं तो गुसाहंजीने अपने ग्रन्थमें अ० रा०के भोकोंके विळक्कल अनुवाद करके रख दिये हैं, कई स्थलोंपर अ० रा०के छोटे-से भावको गुसाहंजीने अपनी प्रतिभासे

### रात्रियात्रे

- (१) रामका अभियोकके दिये भव्य गुरुगृह जाना।
- (२) मीना स्वर सुनकर लुट जानेकी सामने रामके पास आये।
- (३) वन जाने समय।
- (४) वह शुद्धके बाद जगाया गया, इत्यादि।

परिवर्धित व परिमार्जित करके अपना लिया है । कुछ  
उदाहरणोंसे यह स्पष्ट हो जायगा ।

१.-गोप्यं यदत्यन्तमनन्यवाच्यं

वदन्ति मर्केषु महानुभावाः ।

( रा० च० मा० )

गूढ़ी तत्व न साधु दुरावहि । आरत अधिकरी जहौं पावहि ॥  
( रा० च० मा० )

२.-‘मरणाद् भरतो नाम लक्ष्मणं लक्ष्मणान्वितम् ।

शबुद्धं शबुद्धतार्थं वं गुरुरभावत् ।

यस्मिन्मन्त्रे मुनयो विद्ययाऽज्ञानविष्णवे ।

तं गुरुः प्राह रामेति रमणाद्राम इत्यपि ॥

( अ० रा० )

विश्व भरणा पौष्णकर जोई । ताकर नाम भरत अस लोई ॥  
नांक सुनिर्मनं रितु नासा । नाम शबुद्धन वेद प्रकाशा ॥

लक्ष्मण धाम राम प्रिय, सकल जगत आधार ।

गुरु वसिष्ठ तेदि गंवंत्, लक्ष्मण नाम उदार ॥

जो आनन्दसिंहु सुख रासी । मौकाए त्रिलोक मुपासी ॥  
सो सुखधाम राम अस नामा । श्रीकृष्ण लोक दायक विश्रामा ॥

केवट कहता है कि—

३. भास्त्रार्थं तत्र पादपक्वम्,

तथा दासद्यदोः किमन्तरम् ॥

मानशीकरणेणुरुग्मिन् ते,

पादयोग्मिनि कथा प्रथयसी ॥

( अ० रा० )

ज्ञान-कर्म-रत्न कहें सब कहैशि । मामुग-करनि मूरि कहु अहैशि ॥  
( मानस )

४-पौराणित्यमहं जाने विनहि दृष्य अविनत ।

( रा० रा० )

अपरोहता कर्म अति भंदा । वेद पुरान करहि सब निन्दा ॥  
( रा० च० मा० )

कैकेयी कहती है—

५-ततोऽपि मरणं श्रेयो यत्सप्तन्याः परामवः ।

( अ० रा० )

नहर जन्म मरव बरु जाई । जियत न करब सबनि सेवकाई ॥  
( रा० च० मा० )

मंथरा कहती है—

६-लक्ष्मणो राममन्वेति राज्ये सोऽनुभविष्यति ॥

भरतो राघवस्याऽन्वेति किको वा भविष्यति ॥

त्वं तु दासीव कौशल्या नित्यं परिचरिष्यति ॥

( अ० रा० )

भरत बंदिग्रह सेहहहि, लघन रामके नेब ।

जो सुत सहित करहु सेवकाई । तो वर रहहु न आन उपाई ॥

( रा० च० मा० )

वशरथजीने कहा है—

७-बूहि कं धनिं कुर्या दरिद्रं ते प्रियंकरम् ।

धनिनं क्षणमेवेण निर्धनं च तवाहितम् ॥

( अ० रा० )

कहु केहि रकहि कर्ग नरेसु । कहु केहि नृपति निकार्दें देसु ॥

( रा० च० मा० )

कैकेयी कहती है—

८-तमाह कैकेयी राजा रात्रौ निद्रां न लब्धवान् ।

राम रामेति रामेति राममेवानुचिन्तयन् ॥

( अ० रा० )

परी न राजहि नीद निशि, हंतु जानु जगदीस ।

राम रामराटि भोग किय, कहेड न मरमु मद्दीस ॥

( रा० च० मा० )

९-स्वर्गं यथा देवपतिः सशक्त्या ॥ ( अ० रा० )

सोहत सुरपुर इन्द्र जनु, शक्ती जयत समेत ।

( रा० च० मा० )

१०-असमर्थेव रामाय रहे मां क गतोसि भो ॥

( अ० रा० )

—मरत न रामहि संपेत मोही ॥

( रा० च० मा० )

भरत-प्रतिज्ञा—

१.१-पापं मेऽस्तु तदा मातर्बद्धाहस्याशतोद्भवम् ॥

हत्वा वशिष्ठं खड्गेन अस्त्रघला समन्वितम् ॥

मूर्यास्त्रपापमहिंलं मम जानामि यद्यहम् ॥

मानसमें भी भरतने इसी प्रकारकी प्रतिज्ञाएँ की हैं

वधा—

१.२-त्रिअथ मातु पिता गुरु मारे । इत्यादि

१.३-अहोऽतिसफलं जन्म लक्ष्मणस्य महामनः ।

रामंव सदान्वेति बलस्थमपि दृष्टवीः ॥

( अ० रा० )

अहह धन्यलक्षणबड़ भागी । राम पदारविन्द अनुरागी ॥  
( रा० च० मा० )

५३-शिक्षणार्थ भवादशाम् ॥  
( अ० रा० )

तुमसे शठन सिखावन दाता ॥  
( रा० च० मा० )

५४ आभमिष्यति रामोऽपि क्षणं तिष्ठ सहानुजः ।  
मां को घर्षयितुं शक्ते होरभायां शशो यथा ॥  
( अ० रा० )

कह सीता धरि धीरज गढ़ा । आय गप प्रभु शठ रहु ठाड़ा ॥  
जिमि हरिबधुहि झुद्र शश आहा ॥  
( रा० च० मा० )

५५-अवतीर्णनिहपौचरन्तौ स्त्रियाहृतौ ।  
जगत्स्थितिलोत्सर्गैलया कर्त्तुमुद्यतौ ॥  
स्वनन्दे प्रेरकौ सर्वहृदयस्थानिदेश्वरो ॥  
वरभारारण्णे लोके चरन्ताविति मे मतिः ॥  
( अ० रा० )

की तुम तीन देवमहे कोई । नर नारायण की तुम दोई ॥  
जग कारन तारन भव मंजन धरणी भार ।  
की तुम अखिल मुबनपति, लीन्द मनुज अवतार ॥  
( रा० च० मा० )

५६-बाली मथा हतो मेड्डा मुश्रीवोऽपि तथा मंवत् ।  
( अ० रा० )

जेहि सायक मारा मैं बाली । तेहि शर हतो मूढकहैं कारी ॥  
( रा० च० मा० )

५७ उवाचाधोमुस्ती मून्वा वित्राय तृष्णमन्तरे ।  
( अ० गा० )

तृण धरि ओट कहति बेटेही ।  
( या० च० मा० )

विचारों और भिद्वान्तोंमें भी इन दोनों ग्रन्थोंमें बहुत साम्य है, दोनोंमें यह सिद्धान्त माना गया है कि श्रीराम साहान् परदाल ये और वे क्लोकोदरके लिये अवतार लेकर मनुष्य-सीका करते थे । वे अपनी कीलामें जिस नहीं थे । अश्यपि वे देसे कभी-कभी दीन्द पहसुते हैं—

पद रामः परो विष्णुरादिनारायणः स्मृतः ।  
एष सा जानकी लक्ष्मीयोगमायेति विश्रुता ॥  
( अ० रा० )

इन दोनों ग्रन्थोंमें हर जगह वह सिद्ध करनेका प्रथम किया गया है । अगर कहीं रामने विलाप किया तो तुरन्त ग्रन्थकार कहते हैं—

पूरन काम राम सुखरासी । मनुज चरित कर अज अविनासी ॥

जिसमें किसीको वह सन्देह न होने पाये कि श्रीराम साधरण्य मनुष्य हैं, वे दोनों ग्रन्थ उनके ईरकरत्वका हर जगह पाठकोंको ध्यान दिलाते हैं । यहाँतक कि राम और सीता कहीं-कहीं, स्वयं ही अपना ईरकरत्व सिद्ध करनेके लिये प्रमाण देते हैं । सीताजी इन्द्राजीसे कहती हैं—

मां विद्धि मूलप्रकृति सर्गस्थित्यन्तकारिणीम् ।  
तस्य सक्षिप्तिमात्रेण सृजामीदमतन्द्रिता ॥

गुसाईजीने भी हर जगह सीतारामको प्रकृति और पुरुष सिद्ध किया है पर सीताजीके मुख्यसे अपनेको कभी 'परमशक्ति' मुल प्रकृति आदि नहीं कहतवाचा ।  
( क्रमशः )

## वित्र-परिचय

सीता-अन्वेषण—(रंगीन) पृष्ठ ५१३ सीता-हरषके बाद भगवान् श्रीराम व्याकुल हुए जहाँ तहाँ सीताको खोज रहे हैं, जहाँ कोई मिलता है, उसीमें गदगद होकर सीताका पता पूछते हैं । इस वित्रमें दिलाया गया है कि श्रीराम मुनि-बालकोंसे सीताके मम्बन्धमें पूछ रहे हैं । वित्रकी सुन्दरता देखने योग्य है ।

सुतीक्ष्णका प्रेमोन्माद—पृष्ठ ५१६ श्रीरामका आगमन सुनकर सुतीक्ष्णजी प्रेममें मनवाले हुए रामदर्शनार्थ जा रहे हैं । श्रीराम वृषकी ओटमें ग्रदे हैं और बाहरकी ओर झुककर भक्तकी प्रेमलीला देख रहे हैं । सीता और लक्ष्मणजी भी मुग्ध हैं ।

लव-कुशको धनुर्वेद-शिक्षा—पृष्ठ ५८८ लव-कुश बाय घलाना सीख रहे हैं, सीताजी पाम बैठी है ।

## कल्याणकी पुरानी फाइलें और विशेषांक फाइलें

- (१) प्रथम वर्षके १० अंक विना जिल्द—मूल्य ३॥=) ( नीमरा और बारहवाँ अंक नहीं है )  
(२) प्रथम वर्षके छठे अंकमें बारहवें अंकतक छः महानेकी फाइल—सजिल्द मूल्य ८)  
(३) द्वितीय वर्षकी फाइल सजिल्द, इसमें प्रसिद्ध भगवन्नामांक भी शामिल है मूल्य ३॥=)

### (४) तीसरे वर्षकी फाइल

इसमें कुल मिलाकर ११२८ पृष्ठ हैं, जिनमें भिन्न भिन्न परम उपयोगी विषयोंपर प्रसिद्ध सन्त महात्माओं और विद्वानोंके लगभग ४०० से ऊपर लेख तथा ७२ मनोहर चित्र हैं, जिनमें ३७ तो बहुरंगे हैं, विना जिल्द ४॥=) सजिल्द ४॥=) इसमें भक्ताङ्क भी शामिल हैं।

### (५) चतुर्थ वर्षकी फाइल

इसमें कुल मिलाकर १३८८ पृष्ठ हैं जिनमें लगभग ३०० से ऊपर लेख तथा ८८१ हृदयहारी चित्र हैं, जिनमें २७ तो बहुरंगे हैं। 'गीतांक' इसमें शामिल हैं। ऐसा सुन्दर संग्रह और नहीं मिल सकता मूल्य विना जिल्द ४॥=)

### विशेषांक

- (१) भगवन्नामांक—पृष्ठ ११०, रंगचिरंगी ४, चित्र, मूल्य ॥॥)  
(२) भक्तांक (थोड़ेसे पड़े हुए मिल गये हैं) पृष्ठ २४८ चित्र ५५ मूल्य विना जिल्द १॥=) सजिल्द २॥=)  
(३) गीतांक पृष्ठ १०० से अधिक, निरंगे डकरंगे २७० चित्र, विना जिल्द मूल्य ३॥=)  
(४) रामायणांक तो आप देख ही रहे हैं—मूल्य ३॥=) विना जिल्द ।

जिनको सत् साहित्य अपने घरमें रखना हो, लोक परलोकमें कल्याणका मार्ग जानना हो, सद्वर्स्तु उपहारमें देना हो, साधु-सन्तोंको उत्तम दान देना हो, परम श्रेयके मार्गपर चलना हो, वे उपयुक्त श्रव्योंको तुरन्त मंगवा लें।

‘कल्याण’ कार्यालय—गोरखपुर



## गीताप्रेस गोरखपुरकी पुस्तके

|                                                                                                                                                                                                 |                                                      |
|-------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|------------------------------------------------------|
| १-श्रीमद्भगवद्गीता-मूल, पदच्छेद, अन्वय, साधारण भाषा टीका, टिप्पणी, प्रधान और सूचमविषय एवं त्यागसे भगवत्प्राप्ति सहित, मोटाटाहप, मजबूत कागज, सुन्दर कपड़ेकी जिल्ड, २७० पृष्ठ ४ बहुरंगे चित्र १।। |                                                      |
| २-श्रीमद्भगवद्गीता-प्राप्ति: सभी विषय १।) वालीके समान, विशेषता यह है कि श्लोकोंके सिरेपर भावार्थ छपा हुआ है, साइज और टाइप कुछ छोटे पृष्ठ ४८८ मूल्य ॥३॥ सजिल्ड                                   | ३॥३॥                                                 |
| ३-गीता-साधारणभाषाटीका त्यागसे भगवत्प्राप्ति सहित, सचित्र ३६२ पृष्ठ मूल्य =)॥ सजिल्ड                                                                                                             | ... ३॥३॥                                             |
| ४-गीता-केवलभाषा, मोटा टाइप, सचित्र मूल्य ।) सजिल्ड                                                                                                                                              | ... १॥१॥                                             |
| ५-गीता-मूल, बोटे अचरवाली, सचित्र मूल्य ।-) सजिल्ड                                                                                                                                               | ... १॥१॥                                             |
| ६-गीता-मूल, ताबीजी साइज, सजिल्ड                                                                                                                                                                 | ... १॥१॥                                             |
| ७-गीता-मूल, विष्णुमहन्तनामसहित, सचित्र और सजिल्ड                                                                                                                                                | ... १॥१॥                                             |
| ८-गीताइंश्वरी सन १६३० बिना जिल्ड ।)                                                                                                                                                             | सजिल्ड                                               |
| ९-प्रेम-योग, सचित्र लेखक श्रीवियोगी हरिजी पृष्ठ ४८८ बहुत मोटा प्रिण्टक कागज, अजिल्ड १।) सजिल्ड १॥                                                                                               |                                                      |
| १०-तत्त्वविन्दिमणि, सचित्र लेखक-श्रीजयदयालजी गोयन्दका, पृष्ठ ३६३, मोटा प्रिण्टक कागज ॥१॥- सजिल्ड १)                                                                                             |                                                      |
| ११-भक्त वालक सम्पा० श्रीहनुमानप्रसाद पोहार मूल्य ।-)                                                                                                                                            | ३०स्वर्मी सगानाननदकी जीवर्मी मूल्य                   |
| १२-भक्त-नारी सम्पा० श्रीहनुमानप्रसाद पोहार मूल्य ।-)                                                                                                                                            | ३१-हरेरामभजन                                         |
| १३-पत्रपुण्य- भावमय सचित्र भजनोंकी पुस्तक ॥॥॥                                                                                                                                                   | ३२-विष्णुमहन्तनाम मूल, मोटा टाइप                     |
| १४-मानवधर्म-ज्ञे० श्रीहनुमान प्रसादजी पोहार ॥)                                                                                                                                                  | ३३-सीतारामभजन                                        |
| १५-साधनपथ " =॥                                                                                                                                                                                  | ३४-पशोन्तरी श्रीशकुराचार्यजीकृत भाषा सहित            |
| १६-भजन-संग्रह प्रथम भाग ... ... =)                                                                                                                                                              | ३५-मन्त्रया ( हिन्दी विधि सहित )                     |
| १७-खोधर्मप्रश्नोत्तरी (नये सम्प्रकरणमें १० पृष्ठ बढ़े हैं) =)                                                                                                                                   | ३६-बनिवैश्वदेव विधि                                  |
| १८-सज्जासुव और उम्भकी प्राप्तिके उपाय ... -)॥                                                                                                                                                   | ३७-पातञ्जलियोगदर्गन मूल                              |
| १९-गीतोक्त सांख्यप्रयोग और निकाम कर्मयोग -)॥                                                                                                                                                    | ३८-धर्म क्या है ?                                    |
| २०-मनुस्मृति हिन्दीय अध्याय अर्थ सहित ... -)॥                                                                                                                                                   | ३९-द्विष्टयमन्देश                                    |
| २१-श्रीमद्भगवद्गीताके कुछ जानने योग्य विषय -)॥                                                                                                                                                  | ४०-श्रीहरि-संकोनन-भुन                                |
| २२-मनको बशमें करनेके उपाय, सचित्र ... -)।                                                                                                                                                       | ४१-गीता हिन्दीय अध्याय अर्थसहित                      |
| २३-रीताका सूद्धम विषय पाकेट साइज                                                                                                                                                                | ४२-लोभमें हो पाय है                                  |
| २४-प्रेमभक्तिप्रकाश, दो रंगीन लिपि ... -)                                                                                                                                                       | आधार्यसा                                             |
| २५-त्यागसे भगवत्प्राप्ति सचित्र ... -)                                                                                                                                                          | ४३-गजलर्गीता                                         |
| २६-ब्रह्मतर्य-ने० श्रीहनुमान प्रसादजी पोहार ... -)                                                                                                                                              | ४४-भगवत्तामाङ्ग चित्र ४१ पृष्ठ ११० ... ३॥३॥          |
| २७-भगवान् क्या है ? ... ... -)                                                                                                                                                                  | ४५-वंगला गीता नं० २ की तरह मूल्य ।) सजिल्ड १।)       |
| २८-भगवान्-सुधार-ज्ञे० श्रीहनुमान प्रसादजी पोहार -)                                                                                                                                              | गीतोंकी पुस्तकोंमें कर्मयोग नहाँ है। इकायचंद्र हमारा |
| २९-एक सन्तका अनुभव मूल्य ... ... -)                                                                                                                                                             | ४६-भक्तांक चित्र २५, पृष्ठ २०० मूल्य ।।=) सजिल्ड २=) |
|                                                                                                                                                                                                 | ४७-गीतांक चित्र १०० पृष्ठ २०० मूल्य ॥=) सजिल्ड ३=)   |
|                                                                                                                                                                                                 | ४८-गीतायांक चित्र १६० पृष्ठ २१२ मूल्य ॥=) २॥२॥       |

## विशेष सुर्भीता

एक साथ सिरीज मैंगानेवाले ग्राहकोंको डाकमहसूल और पेकिंग नहाँ देना पड़ेगा—

सिरीज नं० १ पुस्तक नं० १ सजिल्ड और पुस्तक नं० २ से ४४ तक अजिल्ड कुल ५४ पुस्तकें रु० ८॥१- में

सिरीज नं० २ पुस्तक नं० २ तथा २ में १० नक अजिल्ड कुल ४ पुस्तकें रु० ३॥१- में

सिरीज नं० ३ पुस्तक नं० ३ और ३ तथा नं० ११ से ४३ तक कुल ३५ पुस्तकें रु० ३॥१- में

सिरीज नं० ४ पुस्तक नं० ३ और नं० १० सजिल्ड तथा नं० १३-१२-१४-१५-१६ अजिल्ड ३ पुस्तकें रु० १०॥१- में।



**COLLECTION OF VARIOUS**  
-> HINDUISM SCRIPTURES  
-> HINDU COMICS  
-> AYURVEDA  
-> MAGZINES

**FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)**

Made with  
By  
**Avinash/Shashi**

Icreator of  
hinduism  
server!

